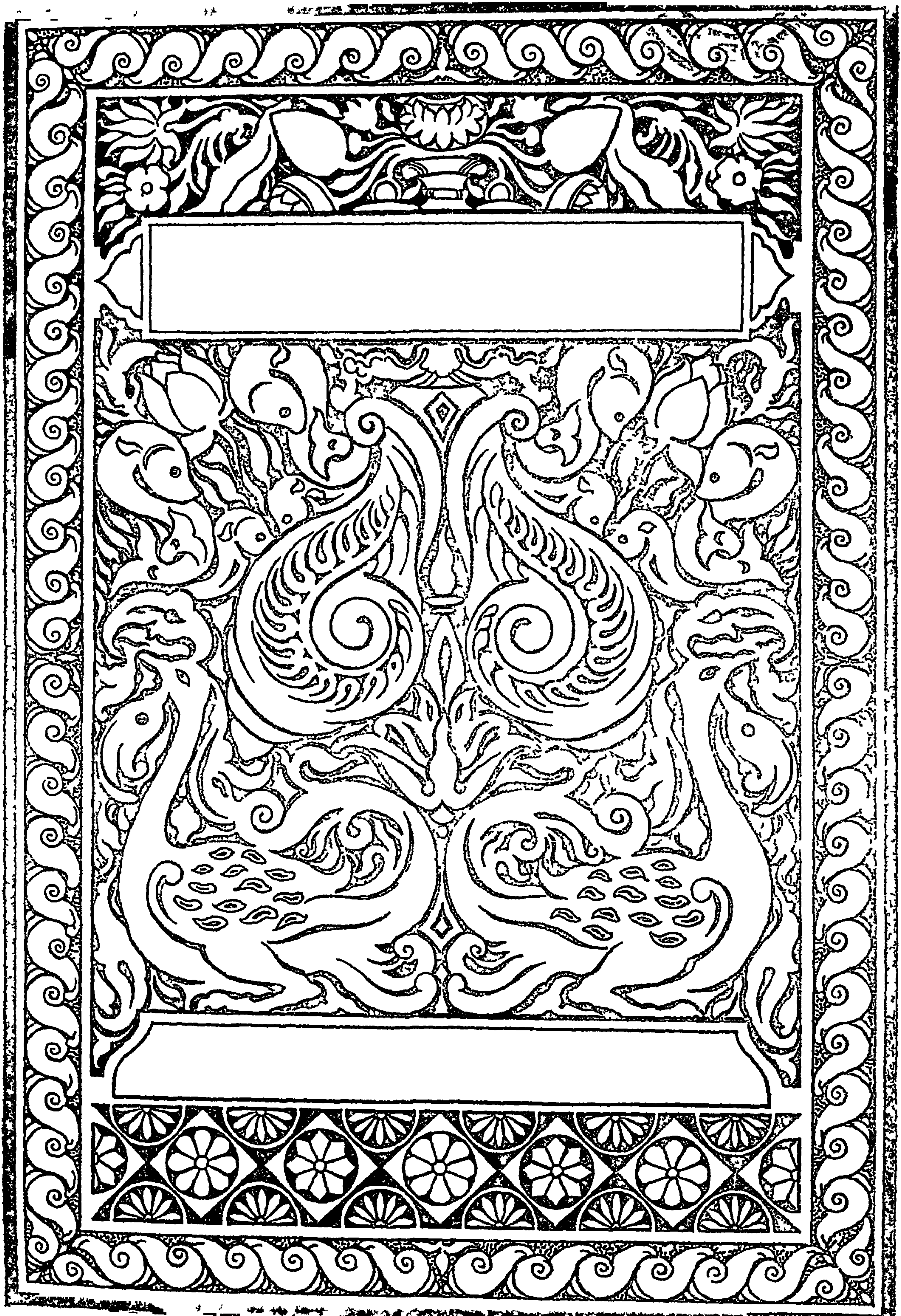
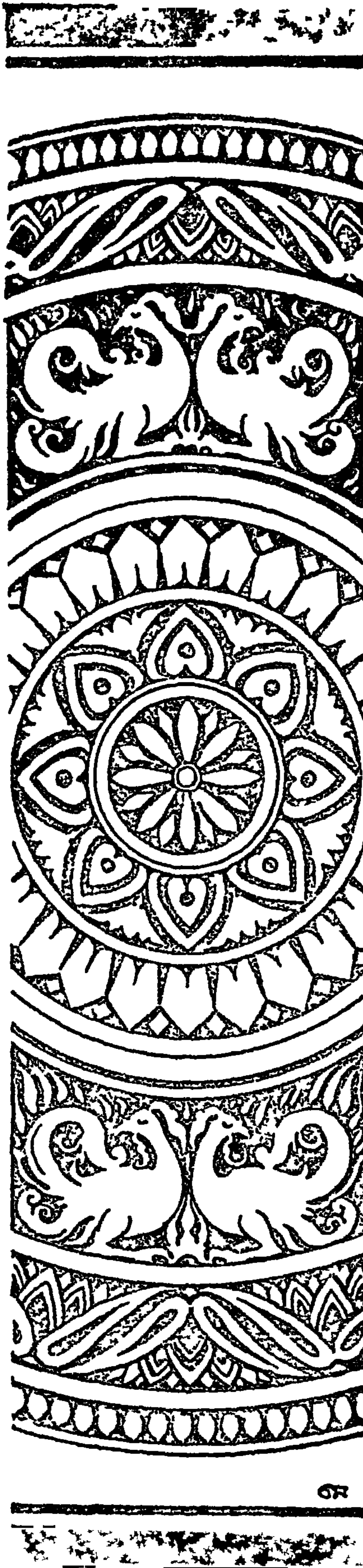
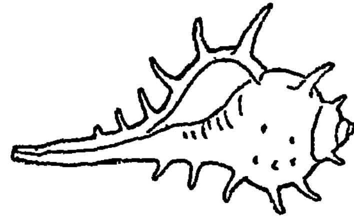

जयन्ती-स्मारक ग्रंथ
स्वर्ण-जयन्ती



जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ-समिति के प्रधान

कुमार गंगानन्दसिंह, एम० ए०





सम्पादक

प्रोफेसर शिवपूजनसहाय

[राजेन्द्र-कालेज, छपरा]

प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम० ए०

[बी० एन० कालेज, पटना]

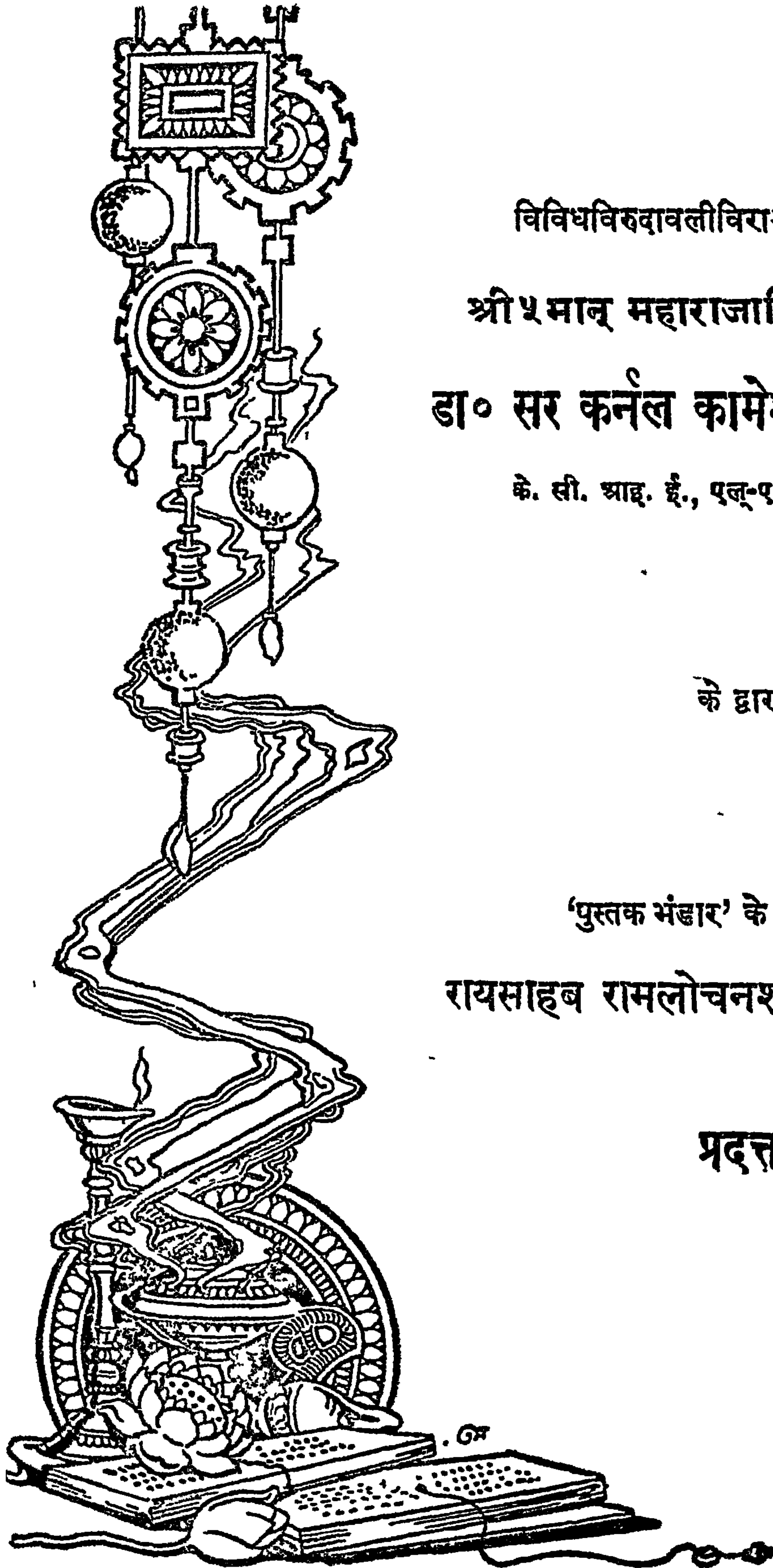
श्रीअच्युतानन्द दत्त

[सहकारी 'बालक'-सम्पादक]

मुद्रक—नारायण राजाराम सोमण
विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय
विक्रम-संवत् १९९९
सन् १९४२ ई०



श्रीमान महाराजाधिराज मिथिलेश कर्नल डॉक्टर सर कामेश्वरसिंह बहादुर
के० सी० आइ० ई०, एल-एल० डी०, डी० लिट्



विविधविरुदावलीविराजमानमानोन्नत

श्री ५ मान् महाराजाधिराज मिथिलेश

डा० सर कर्नल कामेश्वर सिंह बहादुर

के. सी. आइ. ई., एल्-एल्. डी., डी-लिट्.

के द्वारा

'पुस्तक भंडार' के व्यवस्थापक

रायसाहब रामलोचनशरण 'बिहारी' को

प्रदत्त

श्रद्धाञ्जलि

हे बिहार के गौरवस्तम्भ साहित्यतपस्वी,

साहित्यतरणी के कुशल कर्णधार,

गद्यशैली के नवयुग - प्रवर्त्तक,

अभिनव बालसाहित्य के यशस्वी निर्माता,

हिन्दी - व्याकरण के वंदनीय आचार्य,

बालकंठहार 'बालक' के सफल सम्पादक,

तीर्थस्वरूप 'पुस्तक-भंडार' के संस्थापक,

आचार्य श्रीरामलोचनशरणजी,

आपकी अमूल्य सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप

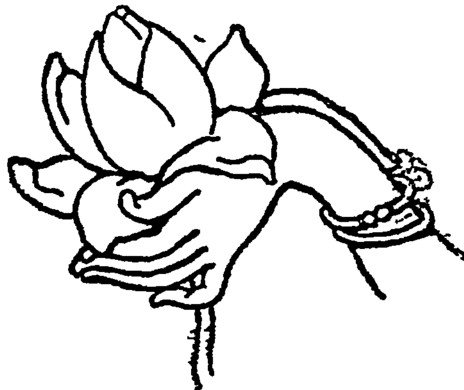
यह

जयन्ती-स्मारक ग्रंथ

आपको सस्नेह और सम्मान पूर्वक

प्रदान किया गया

ज्येष्ठ शुक्ल १०	विद्यापति-हिन्दी-सभा
सं० १९९९	दरभंगा





आचार्य श्रीरामलोचनशरण 'विहारी'

अनुक्रमणिका

[सम्पादकीय वक्तव्य; अतीत के द्वार पर—श्री 'दिनकर'; शब्दस्तवन—श्री 'केसरी']

☞ ❀चिह्नित लेख सचित्र हैं।

चित्रावली

परिशिष्ट

राजा शिवप्रसाद
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भूदेव मुखोपाध्याय
बाबू रामदीनसिंह
" लगट सिंह

बाबू हरिहरशरण
" शालग्रामसिंह
" देवकीनन्दन खत्री
श्रीबँसुलिया बाबा
श्रीजगन्नाथप्रसाद वैष्णव





वक्तव्य

कुछ दिनों से हिन्दी-ससार में एक ऐसी भावना का विकास हो रहा है, जिसे साहित्य की उन्नति के लिये शुभलक्षण समझना चाहिये। वह यह कि हम धीरे-धीरे अपने साहित्यकारों को उनके जीवनकाल में समुचित रूप से सम्मानित करने का महत्त्व समझने लग गये हैं। आचार्य द्विवेदीजी, प्रेमचन्दजी, हरिऔधजी आदि का जो आदर उनके जीवन-काल में हुआ है, वह इस बात का द्योतक है।

किन्तु, खेद है, बिहार में यह भावना अभी तक उतनी पुष्ट नहीं हो पाई है। आज तक हम अपने प्रान्त के किसी भी साहित्यिक का समुचित आदर नहीं कर पाये हैं। इस गुरुतर अपराध का मार्जन तभी हो सकता है जब हम बिहार के अतीत और वर्त्तमान साहित्यकारों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एक विराट् यज्ञ का अनुष्ठान करें।

इसी सद्भावना से प्रेरित होकर बिहार-प्रान्त के कतिपय उत्साही विद्वानों ने, जिनमें कुमार गंगानंद सिंह अग्रणी हैं, एक ऐसे महान् यज्ञ का संकल्प किया।

अब, यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' कौन देवता इस यज्ञ का अधिष्ठाता बनाया जाय? और, यह अनुष्ठान किया जाय किस उपलक्ष्य में?

ईश्वर की कृपा से, इस समस्या के हल होने में देर न लगी। देवता के वरण में दो मत हुए ही नही। सभी अनुष्ठाताओं ने एक स्वर से एक ही नाम उच्चारित किया—श्रीरामलोचनशरणजी बिहारी।

इस विषय में दो मत होने की गुंजाइश थी भी नहीं। बिहार-प्रान्त में हिन्दी-साहित्य की नौका का कर्णधार होने का श्रेय आपके सिवा और किसको प्राप्त है? विगत पचीस वर्षों से आप जिस कुशलता और कर्मठता के साथ इस साहित्य-पोत का संचालन और दिशानिर्देश करते आ रहे हैं, वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णवर्णाङ्कित होने योग्य है।

बिहार के हिन्दी-क्षेत्र में आप एक ही साहित्यसेवी 'मास्टर साहब' हैं। आपकी लेखनी आज के प्रत्येक नवयुवक बिहारी लेखक पर अपनी अमिट छाप डाले हुए है। सरल गद्य शैली के प्रवर्त्तन में आपने जो महत्त्वपूर्ण आदर्श उपस्थित किया है, वह हिन्दी-भाषा के विकास के इतिहास में अमर रहेगा। निष्पक्ष समालोचक आदर के साथ 'द्विवेदी-युग' के अनन्तर 'शरण-युग' का उल्लेख करेंगे।

बिहार के आप एकान्तनिष्ठ साहित्यिक दधीचि हैं। आपपर सारे हिन्दी-संसार को अभिमान होना चाहिये। आपके अभिनन्दन को व्यक्ति-विशेष का अभिनन्दन न समझकर साहित्यिक क्षेत्र में उस पुनीत आदर्श का अभिनंदन समझना चाहिये, जिसकी स्थापना में आपने अनवरत भगीरथ-परिश्रम करते हुए अपना सारा जीवन लगा दिया है।

अस्तु। विद्वानो की सभा ने सर्वसम्मति से इसी विचार का अनुमोदन किया कि बिहार में सबसे पहले आपका ही साहित्यिक सम्मान होना चाहिये।

संयोगवश उपलक्ष्य भी सुन्दर मिल गया। जिस समय उपर्युक्त विचार अस्तित्व-ग्रहण कर रहा था, उस समय ईश्वर की दया से आप अपने यशस्वी जीवन के पचासवें वर्ष में पदार्पण कर रहे थे, और आपकी अमर कीर्त्ति 'पुस्तक-भंडार' का पचीसवाँ वर्ष बीत रहा था।

फिर ऐसा दुर्लभ मणि-काञ्चन-योग क्यों छोड़ दिया जाय? क्यों न एक साथ ही 'मास्टर साहब' की स्वर्ण-जयन्ती और 'भंडार' की रजत-जयन्ती के उपलक्ष्य में एक सर्वाङ्गसुन्दर 'स्मारक ग्रन्थ' निकालने का आयोजन किया जाय?

साहित्यकार का यथार्थ सत्कार साहित्यिक सामग्री के द्वारा ही होता है। अतः निश्चित हुआ कि आपकी अमूल्य हिन्दी-सेवाओं के अनुरूप आपको एक ऐसी चिरस्मरणीय वस्तु समर्पित की जाय, जिसका स्थायी साहित्यिक महत्त्व हो। आपने अपनी स्तुत्य साहित्य-सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल किया है, आपने 'बिहारी' नाम को सार्थक एव आदरणीय बना दिया है; अतएव आपके प्रीत्यर्थ आपको बिहार के अतीत और वर्त्तमान गौरव का चित्रण ही समर्पित करना सबसे अधिक उपयुक्त होगा।

उपर्युक्त निश्चय के अनतर 'स्मारक ग्रन्थ' के उपयुक्त विषय-सूची बनाने के लिये एक विद्वत्समिति का निर्माण हुआ। समिति ने निर्णय किया कि इस ग्रंथ में बिहार-सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश होना चाहिये, क्योंकि बिहार के महत्त्व एव गौरव को सूचित करनेवाले अनेक विषय

अन्धकार में पड़े हुए हैं, जिनपर प्रकाश डालने का प्रयत्न आज तक हिन्दी-संसार में किसीने नहीं किया। यदि विहार के उत्कर्षसूचक विषयों पर साहित्यिक दृष्टि से प्रकाश डाला जाय तो हिन्दी में एक नये ढँग का ऐसा ग्रंथ तैयार हो सकता है, जो भावी पीढ़ी के लिये सहायक ग्रन्थ (Reference book) का काम दे सके।

उपर्युक्त निर्णयानुसार विषयों की तालिका बनी। पत्र-पत्रिकाओं में सूचना निकाल दी गई। प्रामाणिक एवं गवेषणापूर्ण निबन्ध प्रस्तुत करने के लिये अधिकारी विद्वानों के पास पत्र भेजे गये। महायज्ञ के अनुरूप होताओं का आवाहन होने लगा।

किन्तु, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस शुभ कार्य में भी नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आईं। लेखों के लिये जो अवधि निर्दिष्ट की गई थी, उसके भीतर बहुत ही कम लेख आये। कतिपय मनोनीत विषयों पर लेख आये ही नहीं। कितने ही आवश्यक चित्र भी उपलब्ध न हो सके, हुए भी तो मनोवाञ्छित नहीं। कई आवश्यक उपकरणों के लिये तो सुदीर्घकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

अन्त में विवश होकर उपयुक्त सुअवसर के बीत जाने की आशंका से, जो कुछ प्रस्तुत सामग्री थी, उसीसे ग्रन्थ का श्रीगणेश कर दिया गया। जो लेख आते गये, क्रमशः छपते गये। एक ही विषय से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न-भिन्न लेख एक साथ न पड़ सके। इस तरह विषय अथवा महत्त्व के अनुसार लेखों का क्रम-निरूपण न हो सका। उचित समय पर लेखों के न मिल सकने के कारण ऐसा करना अनिवार्य था।

फिर भी हमें दो-तीन बातों से संतोष है। पहली बात तो यह है कि जो लेख हमें मिले हैं, वे खोज और परिश्रम के साथ लिखे गये हैं और बहुत ही सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ सामग्री तो हमें ऐसी उपलब्ध हो गई, जिसकी आशा हमने नहीं की थी—उदाहरणार्थ, 'आचार्य द्विवेदी के पत्र'। ये पत्र बिहार के वयोवृद्ध साहित्यसेवी पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन' के यहाँ पुराने बक्सों में सड़ रहे थे, कीड़े ही इनका रसास्वादन कर रहे थे! आचार्य द्विवेदीजी का बिहार के साथ क्या सम्बन्ध था, यह बात अभी तक अन्धकार के गर्त्त में ही थी। उनको अर्पित किये गये 'अभिनन्दन ग्रन्थ' में भी इसका उल्लेख नहीं है। इन पत्रों से इस विषय पर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ता है। आशा है हिन्दी-संसार चाव से इन पत्रों को पढ़ेगा।

उक्त पण्डितजी ने ही राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' के जो बहुमूल्य संस्मरण लिखे हैं, वे भी नई पीढ़ी के साहित्यिकों के लिये मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन की वस्तु हैं। उनसे पता चलता है कि स्वर्गीय राजा साहब कितने विद्यानुरागी और साहित्यरसिक व्यक्ति थे।

श्रीसुमनजी-द्वारा लिखित 'हिन्दी-गद्य-निर्माण में बिहार का हाथ' भी साहित्यिकों के लिये पठनीय और मननीय वस्तु है। सुमनजी ने जिस पाण्डित्य-पूर्ण ढँग से इस विषय का प्रतिपादन किया है, वह प्रशंसनीय है।

बिहार के वयोवृद्ध यशस्वी लेखक श्रीयुत व्रजनदन सहायजी का 'बाल-साहित्य के निर्माण में बिहार का हाथ', श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव का 'बिहार के कथाकार', 'जासूस'—सम्पादक श्रीगोपालरामजी गहमरी का 'बिहार के हिन्दी पत्र और हिन्दी-लेखक', श्रीराधाकृष्णप्रसाद-लिखित 'बिहार की हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ', श्रीसिद्धिनाथमिश्र-लिखित 'बिहार के साहित्य की एक झाँकी', श्रीरामखेलावन पांडेय-लिखित 'बिहार की आधुनिक काव्य-साधना' तथा श्रीपरमानद दत्त 'परमार्थी' का 'बिहार के प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-साहित्यसेवी' आदि लेख भी काफी खोज और परिश्रम के साथ लिखे गये हैं। इन लेखों से बिहार की साहित्यिक महत्ता भली भाँति सिद्ध होती है।

श्रीतारकेश्वरप्रसाद वर्मा लिखित 'बिहार की विभूतियाँ' नामक लेख उन महापुरुषों की याद दिलाता है, जिन्होंने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस प्रान्त का यश बढ़ाया है। पं० जनार्दन झा 'जनसीदन' का 'मिथिला के पंडित' तथा श्रीकुलानंद दास 'नन्दन' का 'बिहार के मैथिली-साहित्यसेवी' भी अनुसन्धानपूर्ण संग्रहणीय लेख हैं। दोनों से मिथिला की गौरव-वृद्धि होती है। आगे के अन्वेषकों के लिये दोनों मार्गदर्शक हैं।

डाक्टर श्रीउमेश मिश्र-लिखित 'बिहार में न्याय और मीमांसा की उन्नति' और प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी-लिखित '*बिहारोद्भूत जैन-दर्शन का समन्वयवाद*' विद्वत्तापूर्ण विचारमूलक निबन्ध हैं, जो बिहार के सांस्कृतिक वातावरण का दिग्दर्शन कराते हैं।

महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा-लिखित 'वैदिक काल का बिहार', अध्यापक श्रीकृष्णचन्द्र मिश्र-लिखित 'बिहार का ऐतिहासिक महत्त्व', प० नलिनविलोचन शर्मा-लिखित 'भारत के प्राचीन इतिहास में बिहार का राजनीतिक महत्त्व', प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र-लिखित 'मौर्यकालीन शासन-प्रणाली और इसकी आभ्यन्तरिक अवस्था', श्रीअवनीन्द्रकुमार–लिखित 'नालन्दा-विद्यापीठ',

अध्यापक शंकरदेव विद्यालंकार-लिखित 'नालन्दा-विश्वविद्यालय के पंडित', श्रीसुमन वात्स्यायन-लिखित 'बौद्धयुग में बिहार की दो शिक्षण-संस्थाएँ', पं० गिरिधारीलाल शर्मा गर्ग-लिखित 'वैशाली के लिच्छवि', कविवर श्रीरघुवीर-नारायण-लिखित 'सारन जिले में प्राचीन बौद्धकाल के स्थल' आदि प्रामाणिक ऐतिहासिक निबन्ध हैं, जो बिहार के अतीत गौरव का सुन्दर और भावोत्तेजक चित्र उपस्थित करते हैं।

प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा का 'बिहार का खनिज-धन और उसके उद्योग-धन्धे', श्रीधर्मलाल सिंह-लिखित 'बिहार का गोधन और उसकी गोशालाएँ', श्रीयोगेन्द्रनाथ सिंह-लिखित 'बिहार का वन-वैभव', श्रीरायबहादुर भिखारीचरण पट्टनायक का 'गृहशिल्प' भी बहुत ही उपयोगी और व्यावहारिक लेख हैं।

श्रीमुरारिप्रसाद ऐडवोकेट ने 'बिहार और संगीतकला' में अपनी अगाध संगीत-मर्मज्ञता का परिचय देते हुए बहुत-से ज्ञातव्य विषयों पर नवीन प्रकाश डाला है। श्रीकमलनारायण झा 'कमलेश'-द्वारा लिखित 'बिहार की रियासतें' बिहार की साम्पत्तिक स्थिति का दिग्दर्शक है। 'ज्योतिःश्री'-सम्पादक श्रीजयकान्त मिश्र का 'बिहार के पुस्तकालय और संग्रहालय' विद्याप्रेमियों के लिये अतीव उपादेय लेख है।

पं० दयाशंकर दुबे ने 'बिहार में श्रीगंगाजी' में गंगातटवर्ती भिन्न-भिन्न मनोरम घाटों और नगरों का सुन्दर वर्णन किया है, जिससे पाठकों का मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन भी होगा। श्रीदिनकरजी का 'बिहार के मल्ल' इस बात का प्रमाण है कि शारीरिक बल में भी बिहार पिछड़ा हुआ नहीं है। प्रोफेसर बेनीमाधव अग्रवाल-लिखित 'पावापुरी', श्रीभुजबली शास्त्री का 'जैनियों की दृष्टि में बिहार' और ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायण व्यास-लिखित 'ओदन्तपुरी' सुन्दर अधिकारपूर्ण लेख है।

प्रोफेसर धर्मदेव शास्त्री का 'अथर्ववेद और राजतन्त्र का विकास', पं० अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'भगवान् भूतनाथ और भारत' तथा श्रीगोपाल शास्त्री का 'आस्तिक और नास्तिक' बड़े विचारपूर्ण गंभीर निबन्ध हैं। पं० बदरीनाथ झा ने 'संस्कृत-काव्यों में बिहार की चर्चा' में यह खोजकर निकाला है कि प्राचीन काव्यों में कहाँ-कहाँ किन-किन प्रसंगों में मिथिला, मगध और अङ्ग की चर्चा आई है। पं० श्रीकपिलेश्वर मिश्र ने 'बिहार का वैभव' में प्रसिद्ध किंवदन्तियों के आधार पर और पौराणिक तथा शास्त्रीय प्रमाणों के बल पर अनेक गौरवास्पद विषयों का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है। श्रीदत्तजी का 'कविवर हलधर

दास' विहार के एक अज्ञातप्राय कवि और उनके सुन्दर काव्य को प्रकाश में लाता है।

उपर्युक्त लेखो के अतिरिक्त एक बहुत बडा भाग संस्मरणो का भी है। शरणजी और 'भंडार' की सम्मिलित जयन्ती की सूचना निकलते ही चारो ओर से संस्मरणों, सम्मतियों और शुभकामनाओं की बाढ-सी आ गई। ये सब-के-सब यदि अविकल रूप में प्रकाशित किये जाते तो इस ग्रन्थ का कलेवर शायद चौगुना बडा हो जाता। इसलिये विवश होकर इनमें से बहुत अंशो को छाँट देना पडा है, किन्तु लाख सक्षेप करने पर भी कई सौ पृष्ठ इन्होने ले ही लिये हैं।

इन सस्मरणों से पता चलता है कि शरणजी कितने लोकप्रिय हैं और उनका 'भंडार' किस प्रकार आदर की दृष्टि से देखा जाता है। शरणजी-विषयक संस्मरण मुख्यत. तीन प्रकार के हैं—(१) उनकी जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाले, (२) उनके चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालनेवाले, और (३) उनकी साहित्यिक महत्ता का विश्लेपण करनेवाले। वहुत-से संस्मरण ऐसे भी है, जिनमें इन तीनों बातों का सम्मिश्रण पाया जाता है। इन सबके द्वारा शरणजी की चारित्रिक एवं साहित्यिक महत्ता पर भली भाँति प्रकाश पडता है तथा उनका आदर्श जीवन प्रत्येक अभ्युदयाभिलाषी मनुष्य के लिये अनुकरणीय एवं शिक्षाप्रद प्रमाणित होता है।

श्रीशरणजी की कृतियों से प्रभावित प्रशंसकों का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। उसमें एक ओर पूज्यपाद महात्मा गांधी और देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद-जैसे महर्षि हैं तो दूसरी ओर सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, डाक्टर सर गंगानाथझा और डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह-सदृश मनीषी हैं। आपकी साहित्यिक सेवाओं से प्रसन्न हो एक ओर यू० पी० और विहार के शिक्षा-विभाग आपको पुरस्कार और उपाधि प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर आचार्य द्विवेदीजी, प्रेमचन्दजी, हरिऔधजी, मैथिलीशरणजी, अक्षयवटजी, जनसीदनजी प्रभृति धुरधर साहित्य-महारथी आपकी कृतियों से मुग्ध हो मुक्तकण्ठ से आशीर्वादों की झड़ी लगा देते हैं। विहार के शिक्षक 'शरणजी' के नाम को शुद्धता की मुहर समझते हैं और विहार के शिक्षार्थी अपने 'मास्टर साहब' (शरणजी) को पिता की तरह श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसा सौभाग्य विरले ही महानुभाव को प्राप्त होता है।

शरणजी के प्रति जो विभिन्न उद्गार आये हैं उनमें दो-तीन बातें विशेषतया ध्यान देने की हैं। पहली बात तो यह कि आपको सभी ने एक स्वर से

ऐसा आदर्श महापुरुष माना है जिनकी जीवनी से प्रत्येक मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर लाभ उठा सकता है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी, जो शरणजी से अकारण ही ईर्ष्या-द्वेष का भाव रखते थे, आपके औदार्य्यपूर्ण व्यवहार और नैसर्गिक सदाशयता से पराभूत हो आपके भक्त बन गये हैं और इस अवसर पर उनके भावोद्गार फूट निकले हैं।

दूसरी बात यह कि कतिपय साहित्यालोचक विद्वानों ने शरणजी को 'बिहार का द्विवेदी' कहा है और आपको अभिनव सरल गद्यशैली का प्रवर्त्तक माना है। बाल साहित्य के निर्माता शरणजी का बिहार में वही स्थान है जो गुजरात मे गिजू भाई का। शरणजी हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों मे कथनोपकथनात्मक शैली के सर्वप्रथम आविर्भावक हैं और हिन्दी व्याकरण में आरोहविधि (Inductive method) की सृष्टि करने का श्रेय भी आप ही को प्राप्त है। शरणजी बालमनोविज्ञान के सफल आचार्य हैं। इसका साक्षित्व आपकी लिखी वे पुस्तकें देती हैं जो २५ वर्षों से बिहार-प्रान्त में लाखों विद्यार्थियों और शिक्षकों का कण्ठहार बन रही हैं। शरणजी में विषय को स्थापित (Put) करने का ढँग कुछ ऐसा है जो हृदय को बरबस खींच लेता है। आप कठिन-से-कठिन विषय को भी सुपरिचित दृष्टान्तों द्वारा बात-की-बात में हस्तामलकवत बना देते हैं।

भाषा की सुगमता में शरणजी अपना सानी नहीं रखते। आपका एक-एक शब्द नपा-तुला होता है—प्रत्येक वाक्य सयत और व्याकरण की मर्यादा से बँधा हुआ। बिन्दु-विराम की अशुद्धि भी आपको सह्य नहीं। हिन्दी के क्षेत्र में शुद्धता का यह पवित्र आदर्श स्थापित करना आपकी बहुत बड़ी कीर्त्ति है। हर्ष की बात है कि जो निरंकुश लेखक व्याकरण की सीमाएँ तोड़कर साहित्य में अराजकता का प्रसार कर रहे थे वे भी अब क्रमशः इसी आदर्श का अनुसरण करने लग गये हैं। शरणजी की बदौलत अब किसी को 'बिहार की हिन्दी' पर हँसने का साहस नही हो सकता। प्रत्युत आपकी गद्यशैली अन्यान्य प्रान्तों में भी अनुकरणीय वस्तु बन रही है। अतएव आलोचको ने एकमत होकर आपको हिन्दी के क्षेत्र में नवयुग-प्रवर्त्तक स्वीकार किया है।

शरणजी की आत्मा है हिन्दी-साहित्य और प्राण हैं पुस्तक-भंडार। आपके रत्नप्रसवी 'भंडार' ने अभी तक कौन-कौन अमूल्य ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित किये है, और कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना अनावश्यक-सा होगा;

क्योंकि यह सर्वविदित है। 'भंडार' की पुस्तकों ने छपाई-सफाई, शुद्धता, सुन्दरता, आकर्षकता और उपयोगिता से सारे भारत में अपना आदरणीय और गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है।

'भंडार' की सबसे अधिक आकर्षक विशेषता है वहाँ का शुद्ध, सात्विक, और साहित्यिक वातावरण। 'भंडार' के बीचोबीच एक पान के आकार का हरा मैदान है जिसमें सन्ध्या-काल साहित्यिकों का जमघट होता है। ७ बजे संध्या से १० बजे रात तक वह स्थान सरस साहित्य-चर्चा और समालोचना से मुखरित रहता है। विगत २५ वर्षों से न जाने कितनी बार वहाँ के वायुमंडल में विद्यापति और चडीदास, सूर और तुलसी, केशव और कृपाराम, बिहारी और देव गूँजे होंगे। 'दिनकर', 'मनोरंजन', 'वियोगी', 'आरसी', 'द्विज', 'नैपाली' आदि कवियों ने इस स्थान को अपनी कविता काकली से प्रतिध्वनित किया है। शरणजी की साहित्यिक सभा स्वर्गीय राजा कमलानंद सिंह के साहित्यिक दरबार का स्मरण दिलाती है। आज शरणजी की साहित्यिक तपश्चर्या के फलस्वरूप 'भंडार' हिन्दी-संसार का एक पवित्र तीर्थस्थान बन रहा है। जो एक बार वहाँ पहुँचते, वे वहाँ की मधुर स्मृतियों को नहीं भूलते। 'भंडार' को संस्था की अपेक्षा आश्रम कहना अधिक उपयुक्त होगा—ऐसा आश्रम जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं। 'भंडार'-परिवार के सभी सदस्यों का एकमात्र लक्ष्य है प्रेमपूर्वक सरस्वती की आराधना।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में जिन उदारहृदय लेखकों ने सहयोग-दान दिया है, हम हृदय से उनके कृतज्ञ हैं और उन्हें भूरि-भूरि हार्दिक धन्यवाद प्रदान करते हैं। विशेषत. श्रीउपेन्द्र महारथीजी के हम बहुत आभार मानते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ के सजाने-सँवारने मे श्लाघ्य योगदान किया है।

सभी आदरणीय लेखकों के स्वतंत्र विचार अविकल रूप में ही दिये गये हैं। जहाँ तक उनके भावों का सम्बन्ध है, कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया है। हाँ, सामञ्जस्य अथवा औचित्य की दृष्टि से थोड़ा बहुत परिवर्त्तन कहीं-कहीं करना पड़ा है, पर उससे मूल भाव में अन्तर नहीं आने पाया है।

लेखों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नही किया जा सकता; क्योंकि वे अधिकारी एव विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। लेखों को सुसम्पादित एव परिष्कृत बनाने में हमने भी यथाशक्ति सावधानता से काम लिया है। फिर भी अज्ञानवश या प्रमादवश ग्रन्थ में बहुत-सी त्रुटियों का रह जाना संभव है-सभव क्या, निश्चित ही समझना चाहिये। विशेषत. साहित्यिकों,

कलाविदों, संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं के वर्णन में कितनों ही के नाम छूट गये होंगे। हम इन सब भूलों के लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

किसी भी मानवीय कृति के लिये निर्दोषता, पूर्णता और सर्वाङ्गसुन्दरता असंभव है, तथापि हमें आशा है कि यह ग्रन्थ एक आधार-शिला का काम करेगा, जिसपर भावी पीढ़ी भव्य भवन का निर्माण कर सकेगी।

बिहार-सम्बन्धी बहुत-सी ऐसी बातें इसमें हैं, जिनका अन्यत्र उपलब्ध होना दुर्लभ है। यह अनेक अंशों में 'सहायक ग्रंथ' का काम देगा। यदि अन्यान्य प्रान्तों के हिन्दी-प्रेमी भी अपने यहाँ के साहित्यिकों के अभिनन्दन में इसी तरह के ग्रन्थ प्रकाशित करें तो हिन्दी-साहित्य का असीम उपकार और अभिनव शृंगार हो। हिन्दी-संसार के समक्ष इस प्रकार का आदर्श उपस्थित करना भी इस ग्रंथ का प्रधान उद्देश्य है। यदि इसका अनुसरण हुआ, तो इस ग्रंथ की एक महती उपयोगिता सिद्ध होगी।

कार्य की गुरुता और अपनी अल्पज्ञता को देखते हुए हम बड़े संकोच से यह ग्रंथ विद्वानों के समक्ष उपस्थित करते हैं। किन्तु, फिर भी हमें विश्वास है कि वे हमारे उद्देश्य की पवित्रता और जिनकी सेवा में यह कृति समर्पित की जा रही है उनकी महत्ता पर दृष्टि रखकर इस ग्रंथ को सादर अपनायेंगे।

अक्षयतृतीया
विक्रम-संवत् १९९९
सन् १९४२

—श्रीशिवपूजन सहाय
—श्रीहरिमोहन झा
—श्रीअच्युतानन्द दत्त



पूज्य बापू

जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ

अतीत के द्वार पर

'जय हो', खोलो अजिर-द्वार
मेरे अतीत ओ अभिमानी!
बाहर खड़ी लिये नीराजन
कब से भावों की रानी
बहुत बार भग्नावशेष पर
अक्षत-फूल बिखेर चुकी
खँड़हर में आरती जलाकर
रो-रो तुमको टेर चुकी
वर्त्तमान का आज निमंत्रण
देह धरो, आगे आओ
ग्रहण करो आकार, देवता!
यह पूजा-प्रसाद पाओ!
शिला नहीं चैतन्य-मूर्त्ति पर
तिलक लगाने मैं आइ
वर्त्तमान की समर-दूतिका
तुम्हें जगाने मैं आई
कह दो निज अस्तमित विभा से
तम का हृदय विदीर्ण करे
होकर उदित पुनः वसुधा पर
स्वर्ण-मरीचि प्रकीर्ण करे
अङ्कित हैं इतिहास पत्थरों—
पर जिनके अभियानों का
चरण-चरण पर चिह्न यहाँ
मिलता जिनके बलिदानों का
गुंजित जिनके विजय-नाद से
हवा आज भी बोल रही
जिनके पदाघात से कम्पित
धरा अभी तक डोल रही
कह दो उनसे जगा कि उनकी
ध्वजा धूल में सोती है

सिंहासन है शून्य, सिद्धि
उनकी विधवा-सी रोती है
रथ है रिक्त, कर-च्युत धनु है
छिन्न मुकुट शोभाशाली
खँड़हर में क्या धरा, पड़े
करते वे जिसकी रखवाली?
जीवित है इतिहास किसी विधि
वीर मगध बलशाली का
केवल नाम शेष है उनके
नालन्दा, वैशाली का
हिम-गह्वर में किसी सिंह का
आज मन्द्र हुङ्कार नहीं
सीमा पर बजनेवाले
धौंसे की अब धुधकार नहीं
बुझी शौर्य्य की शिखा, हाय
वह गौरव-ज्योति मलीन हुई
कह दो उनसे जगा कि उनकी
वसुधा वीर-विहीन हुई
बुझा धर्म्म का दीप, भुवन में
छाया तिमिर अहंकारी
हमीं नहीं खोजते, खोजती
इसे आज दुनिया सारी
वह प्रदीप जिसकी लौ रण में
पत्थर को पिघलाती है
लाल कीच के कमल, विजय, को
जो पद से ठुकराती है
आज कठिन नरमेध! सभ्यता
ने थे क्या विषधर पाले
लाल कीच ही नहीं, रुधिर के
दौड़ रहे हैं नद-नाले

सब कुछ मिला नये मानव को
एक न मिला हृदय कातर
जिसे तोड़ दे अनायास ही
करुणा की हल्की ठोकर
'जय हो', यंत्रपुरुष को दर्पण
एक फूटनेवाला दो
हृदय-हीन के लिये ठेस पर
हृदय टूटनेवाला दो
दो विषाद, निर्लज्ज मनुज यह
ग्लानि - मग्न होना सीखे
विजय मुकुट रुधिरार्द्र पहनकर
हँसे नही, रोना सीखे
दावानल - सा जला रहा
नर को अपना ही बुद्धि-अनल
भरो हृदय का शून्य सरोवर
दो शीतल करुणा का जल
जग मे भीषण अन्धकार है
जगो, तिमिर-नाशक ! जागो
जगो मंत्रद्रष्टा ! जगती के
गौरव, गुरु, शासक ! जागो
गरिमा - ज्ञान, तेज - तप कितने
सम्बल हाय, गये खोये
साक्षी है इतिहास, वीर !
तुम कितना बल लेकर सोये
'जय हो' खोलो द्वार, अमृत दो
हे जग के पहले दानी !
यह कोलाहल शमित करेगी
किसी बुद्ध की ही वानी

अब भी कभी लहू मे डूबी
विजय तैरती आयेगी
किस 'अशोक' की आँख किन्तु
रोकर उसको नहलायेगी ?
कहाँ अर्द्धनारीश वीर वे
अनल और मधु के मिश्रण ?
जिनमे नर का तेज प्रबल था
भीतर था नारी का मन
एक नयन सजीवन जिनका
एक नयन था हालाहल
जितना कठिन खड्ग था कर मे
उतना ही अन्तर कोमल
स्थूल देह की आज विजय
है जग का सफल वहिर्जीवन
क्षीण किन्तु आलोक प्राण का
क्षीण किन्तु मानव का मन
अर्चा सकल बुद्धि ने पाई
हृदय मनुज का भूखा है
बढ़ी सभ्यता बहुत, किन्तु
अन्तःसर अबतक सूखा है
यन्त्र-रचित नर के पुतले का
बढ़ा ज्ञान दिन - दिन दूना
एक फूल के विना किन्तु है
हृदय - देश उसका सूना
सहारो मे अचल खड़ा है
धीर, वीर मानव ज्ञानी
सूखा अन्त सलिल आँख मे
आये क्या इसकी पानी !

सीतामढ़ी
१९४१

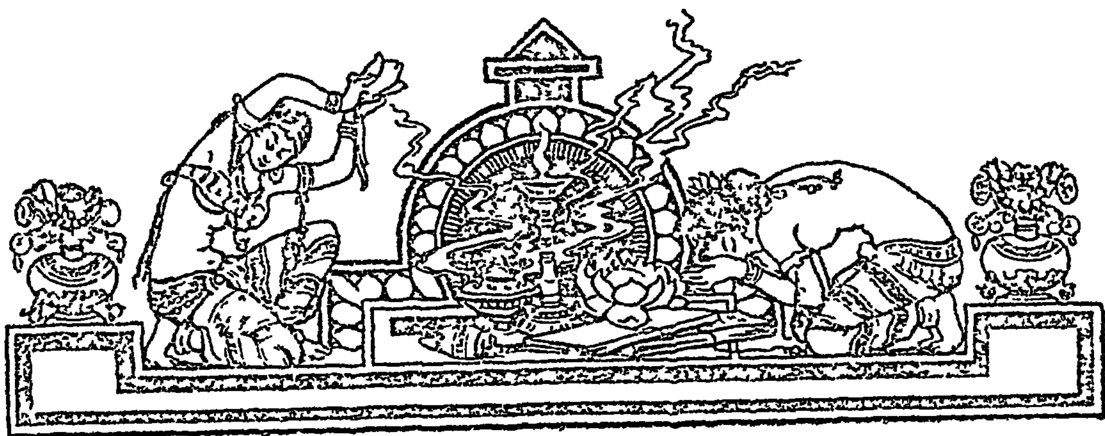
—'दिनकर'

शब्द-स्तवन

शब्द - सुन्दरी ! ओ शुभंकरी
उठो बीन में गान भरो
है त्योहार तुम्हारा ही यह
निज छवि का सम्मान करो
पुण्यथली यह आज त्रिवेणी—
तट आरती - भवानी का
उगा जहाँ फूला - फैला
अक्षयवट हिन्दी - रानी का
यह बिहार का कलातीर्थ
भडार हमारे स्वप्नों का—
गर्वित इसके अभिनदन से
घट - घट प्राणी-प्राणी का
देवि ! तुम्हारा ही वदन यह
और यही चंदनवारी
पत्र - पत्र में लिखी तुम्हारी—
ही विरुदावलियाँ प्यारी
पद - पद में ध्वनि ध्वनित
तुम्हारे चरणो के मजीरो को
अक्षर - अक्षर मे टपकीं
काजल-बूँदें दृग - कोरो को

रानी वाणी बनी तुम्हीं
हम नीरव मानव-कीरो को
हमने नही, तुम्ही ने गूँथी
नव माला यह हीरों की
शब्द शासिके ! प्रथम तुम्हारा
जगती में जयकार उठा
और तुम्हारी छवि-मंडप में
कवि का बंदनवार उठा
आज तुम्हारे मंगल - मंडप—
का जो सुधी पुरोधा है
और तुम्हारी ही विभूतियो
को जीवन-भर शोधा है
विजय-माल दो गले, बढ़ो
ओ शब्द - सुन्दरी ! स्वयंवरे
सिद्धलक्ष्य यह वीर
शब्दवेधी बिहार का योद्धा है
शब्द - सुन्दरी ! ओ शुभंकरी
उठो बीन में गान भरो
है त्योहार तुम्हारा ही यह
निज छवि का सम्मान करो

—'केसरी'



मिथिला के पंडित

श्रीजनार्दन झा 'जनसीदन'; वाजितपुर, मुजफ्फरपुर

एक वह समय था, जब मिथिला के गाँव-गाँव में संस्कृत के विद्वान् पाये जाते थे। ब्राह्मणों की कोई बस्ती ऐसी नहीं थी जहाँ दो-चार अच्छे पंडितों के नाम न सुने जाते रहे हों। दूर-दूर से छात्र शास्त्र पढ़ने के लिये उनके निकट आते थे और यथेच्छ शास्त्रों का अध्ययन करके अपने देश लौट जाते थे। उन दिनों मिथिला विद्या का केन्द्र मानी जाती थी। वेद-वेदाङ्ग आदि सभी शास्त्रों के एक-से-एक अध्यापक मिथिला में विद्यमान थे।

संस्कृत-पठन-पाठन की व्यवस्था भी यहाँ आज से ५०—६० वर्ष पूर्व तक बड़ी विलक्षण थी। विद्यार्थी पहले गुरु से समस्त शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त करके पुनः पठनार्थ विशेषतः काशी जाते थे। वहाँ यथेष्ट शास्त्रों का अध्ययन करके जब परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते थे, अध्यापकों से प्रशंसापत्र पाकर लब्धप्रतिष्ठ हो अपने देश आते थे। वहाँ आने पर वे बड़े आदरणीय समझे जाते थे, सब लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उन पंडितों को परिवार-पोषण की चिन्ता नहीं रहती थी। उनका एकमात्र ध्येय विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाना ही रहता था, उसीको वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। स्वयं साग खाकर गुजर करते थे और विद्यार्थियों को नियमानुसार पढ़ाते थे। किसी राजा-महाराज के यहाँ याचना करने नहीं जाते और न कभी किसी के आगे दान लेने के लिये हाथ

पसारते थे ; सन्तोष-पूर्वक समय बिताने में ही आनन्द का अनुभव करते थे। कितने तो ऐसे निर्लोभ थे, जो राजा-महाराजों के द्वारा बुलाये जाने पर भी जाने से इनकार करते थे। उनका सिद्धान्त था—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर! मोदते॥

वे द्रव्योपार्जन की अपेक्षा घर पर रहकर स्वच्छन्दतापूर्वक विद्यार्थियो के पढ़ाने ही में अपनी प्रतिष्ठा समझते थे।

उस समय विद्यार्थियों के पढ़ने का स्थान चौपाड़ (चतुष्पाठीय) के नाम से प्रसिद्ध था। उन सबके रहने के लिये गाँव के धनी व्यक्तियो की ओर से फूस के घर बनवा दिये जाते थे। जो विद्यार्थी दरिद्रता के कारण भोजनादि का प्रबन्ध स्वयं नहीं कर सकते थे, उन्हें गाँव के धनी-मानी व्यक्ति भोजन-वस्त्र देते थे।

प्राचीन समय में हाथ से मिथिलाक्षर में ग्रन्थ लिखकर पढ़ने का नियम था। तब छपे हुए ग्रन्थ दुष्प्राप्य थे। कुछ विद्यार्थी अपने सम्बन्धी के यहाँ रहकर, पाक-प्रक्रिया के झंझट से निवृत्त हो, शान्ति-पूर्वक अध्ययन करते थे।

जब मिथिला में व्याकरण, न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, वैशेषिक, मीमांसा, ज्योतिःतन्त्रशास्त्र आदि विद्याओ के बड़े-बड़े नामी पंडित विद्यमान थे, जिनका यश देश-देशान्तर में व्याप्त था, तब अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग आदि अनेक प्रान्तो के छात्र यहाँ आकर पढ़ते थे और पूर्ण पांडित्य प्राप्त करके मिथिला का यशोगान करते थे।

मधुबनी सब-डिवीजन (दरभंगा) के समीपवर्त्ती 'सौराठ' की महासभा में जब लाखो मैथिल ब्राह्मण कार्यवश एकत्र होते थे, तब समागत पंडितो में शास्त्रचर्चा छिड़ जाती थी। कुछ मध्यस्थ शास्त्रकुशल गुरुजनो की अध्यक्षता में वे नवीन पंडित शास्त्रार्थ करते थे। शास्त्रार्थ सुनने के लिये वहाँ शिक्षित-समाज की भीड़ लग जाती थी। कहीं व्याकरण में, कही तर्कशास्त्र में, कही वेदान्त में, कहीं ज्योति शास्त्र मे और कहीं अन्यान्य विपयो में शास्त्रार्थ की धूम मच जाती थी। शास्त्रार्थ मे जिनका उपपादन अच्छा समझा जाता था, उनके गले में सम्मान-सूचक फूल की माला पहनाई जाती थी और विद्वन्मंडली में उनकी प्रशंसा होती थी।

इसी प्रकार, जब किसी देवस्थान में किसी पर्व पर लोग जमा होते थे, वहाँ भी शास्त्रार्थ होता था। शास्त्रार्थ मे विजय पाने की इच्छा से प्रतिस्पर्धी पंडित पहले ही से विद्याभ्यसन में विशेष प्रयत्न करते थे।

उन दिनों प्रत्येक शास्त्र उन्नत अवस्था में था। अब वह समय आ गया है कि सभी शास्त्र अवनत होते जा रहे हैं। ज्योतिःशास्त्र के अध्यापकों की यह व्यवस्था थी कि वे वर्ष का अन्त होने के पहले ही अपने गणितज्ञ छात्रों के द्वारा पञ्चाङ्ग तैयार करवाते थे। उसकी जाँच के लिये दूसरे ज्योतिषी की चौपाड़ में जाकर ग्रह-गणित, तिथि-नक्षत्र आदि का मानदंड मिलाते थे। जहाँ फर्क पड़ता था, वहाँ फिर से गणित की जाँच की जाती थी। जिनके पञ्चाङ्ग में भूल निकलती थी, वे अपनी भूल को सुधारते थे। इस प्रकार सर्वाङ्ग-शुद्ध हो जाने पर छात्र तथा अन्य शिक्षित लोग, जिन्हें पञ्चाङ्ग-पत्र की जरूरत होती थी, उसकी नकल कर लेते थे। उस जमाने में हाथ से पत्रा * लिखने ही का नियम था।

मुझे खूब याद है कि ५० वर्ष पूर्व पहले-पहल मुजफ्फरपुर के रईस स्वर्गीय बाबू रामेश्वरनारायण महथा ने स्वर्गीय ज्योतिषी नित्यानन्द झा से पत्रा बनवा कर धर्मार्थ वितरण करने के लिये छपवाया था। कई साल तक वे इसी तरह पञ्चाङ्ग छपवाकर शिक्षित-समाज में बाँटते रहे। उनका देहान्त होने पर कुछ दिन तक उनके सम्बन्धियों ने तथा अन्य रईसों ने 'बाघी' ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी ज्योतिषी रामप्रसन्न झा से पत्रा बनवाकर छपवाया और उक्त महथाजी के मार्ग का अनुसरण करके कुछ दिन पञ्चाङ्ग-वितरण किया। जब उन लोगों ने पत्रा छपवाना बन्द कर दिया तब कोई-कोई प्रकाशक इसे व्यापारिक दृष्टि से छाप कर बेचने तथा उससे कुछ लाभ उठाने लगे। अब तो इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। पञ्चाङ्ग छापकर बेचना एक व्यवसाय-सा हो गया है। पर तो भी कुछ धार्मिक उदार प्रेसाध्यक्ष शुद्धतापूर्वक पत्रा छपवाकर, लोकोपकारार्थ, छपाई की लागत मात्र लेकर, थोड़े मूल्य में बेचते और बिना मूल्य भी योग्य व्यक्तियों को देते हैं। पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ऐसे ही उदार व्यक्तियों में हैं।

यद्यपि अब पहले की-सी शिक्षा-प्रणाली नहीं है, तो भी मिथिला में पंडितों की कमी नहीं है। अब भी अनेक विद्यालय हैं, जिनमें सभी शास्त्रों का पठन-पाठन जारी है। हाँ, बात इतनी अवश्य है कि समय बदल जाने से पंडितों में प्रायः न पहले का-सा उत्साह है और न वह सन्तोष है। यही कारण है कि संस्कृत-विद्या का दिन-दिन ह्रास होता जा रहा है!

* जब मेरी उम्र संवत् १९४२ में १४ वर्ष की थी और मै ज्योतिष पढ़ता था, अपने हाथ से पत्रा लिखता था। जबतक छपा हुआ पञ्चाङ्ग नहीं मिला, पञ्चाङ्ग की प्रतिलिपि प्रति वर्ष अपने हाथ से करनी पड़ती थी।

अब विद्यार्थियों का ध्येय ज्ञानोपलब्धि न होकर एकमात्र द्रव्योपार्जन रह गया है। वे आज की निश्चित नियमावली के अनुसार निर्धारित ग्रन्थ पढ़ते और आचार्य-परीक्षा पास करके स्कूलों में नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं। ३०)–४०) की नौकरी सुयोग से कही मिल गई तो वे उतने ही मे अपनेको धन्य मानते हैं।

पहले के और अब के संस्कृत-पंडितो की जीवनयात्रा के सिद्धान्त में भी आकाश-पाताल का अन्तर आ गया है। इसे समय का फेर छोड़ और क्या कह सकते हैं? जिस प्रकार पहले पढ़ने और पढ़ाने की व्यवस्था थी, गुरुओं और विद्यार्थियों में पिता-पुत्र का-सा व्यवहार था, वह अब शायद ही कही देखने में आता है।

अब छात्रो में कहॉ वह ब्रह्मचर्य, कहॉ वह आत्मिक बल, कहॉ वह गुरुभक्ति, कहॉ वह शान्ति और सन्तोष है! अँगरेजी की शिक्षा में जो उच्च कक्षा के लिये पाश्चात्य नियम निर्धारित हैं, संस्कृत के शिक्षार्थी भी क्रम-क्रम से अब उन नियमो का अनुकरण करने ही में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। शिक्षकों के द्वारा समझाये जाने पर भी कितने ही विद्यार्थी अपने विलासिता-मूलक सिद्धान्त से नहीं डिगते। वे जितना समय शरीर के सौन्दर्यसाधन में लगाते, उतना प्रायः दत्तचित्त होकर पढ़ने में नही लगाते हैं। यही कारण है कि विद्या का फल उन्हें जैसा मिलना चाहिये था, नही मिलता है।

अत्यन्त प्राचीन काल से मिथिला संस्कृत-भाषा की शिक्षा का केन्द्र रही है। संस्कृत-साहित्य के असंख्य उद्भट विद्वानो का यहाँ अनुपम जमघट था। १९वी शताब्दी तक के प्राचीन मैथिल पंडितो का परिचय देकर हम बीसवीं शताब्दी के मैथिल पंडितों का भी परिचय दे रहे हैं, जिससे मिथिला के विद्या-वैभव और ज्ञान-गौरव का पता लगता है—

न्यायशास्त्र के रचयिता गौतम मुनि का निवास मिथिला के दरभंगा जिले के अन्तर्गत ब्रह्मपुर गॉव में था। गौतमकुंड और अहल्यास्थान अब भी वहॉ दर्शनीय हैं। गौतम मुनि के पुत्र शतानन्द मिथिलाधिपति जनक के पुरोहित और कुलपूज्य थे।

महर्षि याज्ञवल्क्य मिथिला के निकटवर्त्ती नैपाल-राज्य के अन्तर्गत कुसुमा गॉव में रहते थे। आपकी बनाई 'याज्ञवल्क्यस्मृति' जगत्प्रसिद्ध और विशेष आदरणीय है। अपने विषय में इसी स्मृति में आपने स्वयं लिखा है—"मिथिला-स्थस्स योगीन्द्र"—आप महाराज जनक के गुरु और योगी थे। आपकी अर्द्धाङ्गिनी 'मैत्रेयी' वेदान्त की परम पंडिता तथा अन्यान्य शास्त्रों की भी विदुषी थीं।

सांख्यशास्त्र के निर्माता कपिल मुनि का आश्रम भी मिथिला में था। उन्होने अपने आश्रम के समीप श्रीकपिलेश्वरनाथ महादेव को स्थापित करके मिथिला का महत्त्व बढ़ा दिया है। महादेव के दर्शन-पूजन के हेतु वहाँ नित्य लोगों की भीड़ लगी रहती है। स्वर्गीय महाराजाधिराज मिथिलेश सर रमेश्वरसिंह बहादुर यात्रियो के उपकारार्थ मन्दिर के समीप एक वृहत् पोखर खुदवाकर अपना नाम अमर कर गये हैं।

महामहोपाध्याय मीमांसक मंडन मिश्र—मिथिला के प्राचीन पंडितों में आप सर्वश्रेष्ठ थे। न्याय और मीमांसा के अद्वितीय विद्वान् थे। आपने शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। आपकी धर्मपत्नी शारदा देवी (उभयभारती) साक्षात् सरस्वती का अवतार थीं। इन्होने शङ्कराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। मंडन मिश्र के द्वारा रचित ग्रन्थों में विधिविवेक, भावना-विवेक, ब्रह्मसिद्धि, नैष्कर्म्यसिद्धि, वेदान्तवार्त्तिक और मंडनत्रिशती विशेष प्रसिद्ध हैं। नवीं विक्रम-शताब्दी में आपका अस्तित्व पाया जाता है।

जब भगवान् शंकराचार्य आपकी खोज में आपके गाँव में पहुँचे तब एक पनिहारिन से आपके घर का पता पूछा। उसने उत्तर में दो श्लोक सुनाये—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं शुकाङ्गना यत्र विचारयन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं वा कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडाङ्गणसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥

इसी से उस समय की मिथिला के विद्या-वैभव का पता लग सकता है, जब यहाँ की साधारण स्त्रियाँ भी संस्कृत-भाषा में पारंगत थीं। यह भी किंवदन्ती है कि जब स्वामी शंकराचार्य उभयभारती से परास्त हो गये तब 'अमरु' राजा के शरीर में योगबल से प्रवेश कर उन्होंने 'अमरुशतक' नामक महाकाव्य की रचना की।

दर्शनाचार्य वाचस्पति मिश्र—आप ठाढ़ी (दरभंगा) के निवासी थे। आप सभी शास्त्रों के अद्वितीय विद्वान् थे। मंडन मिश्र की 'ब्रह्मसिद्धि' पर 'ब्रह्मतत्त्व-समीक्षा' नाम की टीका, न्यायकणिका (विधिविवेक की टीका), भामती * (ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य की टीका), सांख्यतत्त्वकौमुदी (सांख्यकारिका की टीका), न्यायवार्त्तिक-

* 'भामती' आपकी पत्नी का नाम था। वह निरसन्तान थी। इसलिये आपने उसके नाम पर 'भामती' टीका रचकर उसका नाम अमर कर दिया।

तात्पर्य्य (न्यायवार्त्तिक की टीका), तत्त्ववैशारदी, योगदर्शन आदि ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता के प्रमाणस्वरूप हैं। आपने अपने न्यायसूचीनिबन्ध में लिखा है—

न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वङ्कवसुवत्सरे ॥

इस ग्रन्थ की रचना का समय ८९८ शकाब्द (संवत् १०३३) सप्रमाण सिद्ध है। आप सर्वतंत्रस्वतंत्र विद्वान् थे।

महामहोपाध्याय उदयनाचार्य—'करियन' ग्रामवासी थे। आपने वाचस्पतिमिश्रकृत न्यायवार्त्तिकतात्पर्य की 'परिशुद्धि' नाम की टीका की है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ आपके लिखे विद्यमान हैं, जो विद्वन्मंडली में विशेष आदृत हैं। किरणावली, गुण-किरणावली, कुसुमाञ्जली, लक्षणावली, न्याय-परिशिष्ट, आत्मतत्त्वविवेक आदि ग्रन्थ आपके पांडित्य के परिचायक हैं। आपका समय ९०६ शकाब्द (संवत् १०४१) बताया जाता है। आपने अपने 'लक्षणावली' ग्रन्थ में लिखा है—

तर्काम्बराङ्क प्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ॥

आपकी यह गर्वोक्ति बहुत प्रसिद्ध है—

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा।
यदि पथि विपथे वा वर्त्तयामस्स पन्था ॥
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा।
नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥

आप जैसे दार्शनिक थे वैसे ही भक्त भी। एक बार जगन्नाथधाम जाते समय रास्ते में आपके मन में ईश्वर के अस्तित्व के विषय में संकल्प-विकल्प होने लगा। जगदीशपुरी में पहुँचकर जब आप मंदिर में प्रवेश करने लगे तब एकाएक फाटक बन्द हो गया। आपको अनुभव हुआ कि ईश्वर अवश्य है, और यह श्लोक रचकर कहा—

उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तवस्थितिः।
ऐश्वर्य्यमदमत्तस्सवं मामवज्ञाय वर्त्तसे ॥

इसपर फाटक अनायास खुल गया और आपने मंदिर में जाकर भक्ति-पूर्वक जगदीश की पूजा की।

अभिनव वाचस्पति मिश्र—दो और हुए हैं—एक दार्शनिक, दूसरे धर्मशास्त्री। दार्शनिक वाचस्पति मिश्र ने 'खाद्यखंडन' की टीका 'खंडनोद्धार' और 'न्यायसूत्र' की 'न्यायसूत्रोद्धार' नामक टीका की है। इनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग प्रमाणित हुआ है। और, धर्मशास्त्री वाचस्पति मिश्र ने तीर्थ-चिन्तामणि, विवादचिन्तामणि आदि प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं।

दार्शनिक गङ्गेशोपाध्याय—आप मधुबनी सब-डिवीजन के समीपवर्त्ती मङ्गरौनी-ग्रामवासी थे। न्यायशास्त्र के दुर्द्धर्ष विद्वान् थे। आपने खाद्यखंडन मत का खंडन करके अपनी शास्त्रज्ञता का परिचय दिया है। आपका बनाया 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। आप १२६०शकाब्द (सं० १४२५) में विद्यमान थे। आपके पुत्र वर्द्धमान उपाध्याय महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र के सहपाठी थे।

तार्किकप्रवर पक्षधर मिश्र—आप न्यायशास्त्र के परम विद्वान् थे। आपका निवास मङ्गरौनी ग्राम में था। गङ्गेशोपाध्याय-रचित 'तत्त्वचिन्तामणि' ग्रन्थ की आपने 'आलोक' नामक टीका की है।

आपका समकक्ष विद्वान् उस समय कोई न था। आपके विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है, जिससे आपकी उद्भट विद्वत्ता का परिचय मिलता है—

शङ्करवाचस्पत्योः शङ्करवाचस्पती सदृशौ।
पक्षधरप्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि॥

आपके विषय में मिथिला में आज तक अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। बंगाल में सर्वप्रथम न्यायशास्त्र का प्रचार करनेवाले रघुनाथ शिरोमणि आप ही के शिष्यों में थे। आपके रचित प्रसिद्धग्रंथ 'प्रसन्नराघव' नाटक और 'चन्द्रालोक' हैं।

महादार्शनिक कविवर गोवर्द्धनाचार्य—आप भी मिथिला के आदर्श पंडितों में परिगणित हैं। उदयनाचार्य आपके शिष्य थे। 'गोवर्द्धन-सप्तशती' ('आर्या सप्तशती') आपकी कवित्वशक्ति की परिचायिका है।

कविरत्न वररुचि मिश्र—महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न * पंडितो में 'वररुचि मिश्र' मैथिल थे। वर्त्तमान मिथिलेश के राजपंडित श्री बलदेव मिश्र ने बड़ी गवेषणा के साथ उनके वंशजों का पता लगाकर सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि वे मैथिल थे। उनके मैथिल होने में कुछ भी सन्देह शेष

* धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य॥

नहीं रह गया है। रसमञ्जरीकार कविवर भानु मिश्र, हलायुध तथा व्याकरणादर्श के रचयिता पद्मनाभ मिश्र उन्हींके वंशज थे। उक्त राजपंडित के कथनानुसार वररुचि मिश्र की वंशावली का क्रम पद्मनाभ मिश्र तक इस प्रकार है—(१) वररुचि मिश्र, (२) न्यासदत्त योगशास्त्रवेत्ता, (३) जयादित्य मीमांसक, (४) श्रीपति सांख्याचार्य, (५) गणेश्वर काव्यकोविद, (६) भानु मिश्र कविभानु, (७) हलायुध षट्शास्त्री, (८) श्रीदत्त धर्मशास्त्री, (९) भवदत्त वेदान्तनिष्णात, (१०) दामोदर काव्यालङ्कार-रचयिता, (११) पद्मनाभ व्याकरणादर्शकार। वररुचि मिश्र का, किंवदन्तिकथा के आधार पर, एक श्लोक प्रायः मिथिला के घर-घर में ख्यात है—

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।
सर्वत्र सञ्चरेद्धूर्तो वटे वररुचिर्यथा॥

महादार्शनिक भवनाथ मिश्र—आप अनेक शास्त्रो के ज्ञाता होते हुए भी तर्कशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। आपने कभी किसी से याचना नही की। इससे लोग आपको 'अयाची मिश्र' कहते थे। सन्तोषी ऐसे थे कि मोटे कपड़े से शरीर ढकते और साग-पात खाकर सुख से समय बिताते थे। आप सरिसव ग्राम के निवासी थे।

महामहोपाध्याय शंकर मिश्र—आप पंडित भवनाथ मिश्र (अयाची) के सुपुत्र थे। बाल्यावस्था में ही आपने अनेक शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपमें विलक्षण प्रतिभा थी। आपके अपूर्व संस्कार और शास्त्रीय योग्यता की ख्याति मिथिला में सर्वत्र फैल गई। वर्त्तमान मिथिलेश के किसी विद्यानुरागी पूर्वज महाराज ने आपको बुला भेजा। उस समय आपकी उम्र ५ वर्ष की थी। एक शूद्र आपको अपने कन्धे पर चढ़ाकर महाराज के पास ले गया। आप एक कौपीन मात्र पहने हुए थे। महाराज ने आपसे कोई श्लोक पढ़ने के लिये कहा। आपने यह श्लोक पढ़ा—

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम्॥

महाराज ने कहा, वर्णन कीजिये। आपने पूछा, 'लौकिकेन वैदिकेन वा ?' इसपर महाराज ने कहा—'उभयथा'। तब आपने यह श्लोक सुनाया—

चकितश्चलितश्छन्नः प्रयाणे तव भूपते।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥

इस श्लोक की दूसरी पंक्ति वैदिक मंत्र (पुरुषसूक्त) है, पहली पंक्ति स्वनिर्मित लौकिक संस्कृत है।

इसपर महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न होकर खजांची से कहा कि आपको कोषागार में ले जाओ, जितना अशर्फी-रुपया आप ले सकें, लेने देना।

खजांची आपको भंडार में ले गया। शिशु 'शंकर मिश्र' ने अपने कौपीन को खोलकर उसमें यथेष्ट अशर्फियाँ बाँध कन्धे पर लटका लिया। फिर आप महाराज के सामने लाये गये। आपका बुद्धिकौशल देख महाराज चकित हो गये। सैकड़ों अशर्फियाँ लेकर आप अपने घर आये। आपकी माँ आपका जन्म होने पर द्रव्याभाव के कारण चमारिन को कुछ न दे सकी थी; पर उन्होंने कहा था कि इनकी पहली कमाई मैं तुमको ही दूँगी। उन्होंने अपना वचन पूरा किया—उसी घड़ी उस चमारी को बुलाकर कुल अशर्फियाँ दे डालीं।

सुनते हैं कि उक्त चमारनी ने उस द्रव्य से एक पोखर खुदवा डाला, जो अब तक 'चमैनिया पोखर' के नाम से मशहूर है।

किन्तु आपके पिता ने जब इस प्रकार आपके द्रव्य लाने की बात सुनी, तत्काल जंगल का रास्ता लिया और वहीं कुटी बनाकर भगवद्भजन-तपस्या द्वारा अपने जीवन को सार्थक किया। यह किंवदन्ती अब भी मिथिला में घर-घर प्रसिद्ध है। आपके रचित अनुमानचिन्तामणिमयूख, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, भेदरत्न, गौरीदिगम्बर (प्रहसन-नाटक), कंटकोद्धार, रसार्णव, वादिविनोद, छन्दोगाह्निक आदि ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं।

मुरारि मिश्र—आपका रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'अनर्घराघव' नाटक है। नवीं शताब्दी के लगभग आप हुए थे। आप बड़े उद्भट दार्शनिक और आलंकारिक थे।

पार्थसारथि मिश्र—आप न्यायशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे; यों तो सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे। आपके रचित ग्रंथ—न्यायरत्नमाला, न्यायरत्नकणिका, शास्त्रदीपिका, तन्त्ररत्न, श्लोकवार्त्तिक और न्यायरत्नाकर प्रसिद्ध हैं।

वर्द्धमान उपाध्याय—आप गङ्गेश उपाध्याय के सुपुत्र और महादार्शनिक पक्षधर मिश्र के सहपाठी थे। आपका बनाया 'कुसुमाञ्जलिप्रकाश' प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त स्मृतिपरिभाषा, गयापद्धति आदि ग्रन्थ भी सुपाठ्य हैं।

महामहोपाध्याय कविकोकिल विद्यापति ठाकुर—आप पक्षधर मिश्र के चचा हरि मिश्र के विद्यार्थी थे। आपका उनसे पढ़ने का समय संवत् १४५७ पाया गया है। आप महाराज शिवसिंह के द्वारपंडित तथा प्रेमपात्र थे। आपको 'बिसपी' नामक ग्राम (दरभंगा) पुरस्कार में मिला था। आपके रचित ग्रन्थों

में दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, दानवाक्यावली, शैवसर्वस्वसार, लिखनावली, कीर्त्तिलता और पुरुष-परीक्षा विशेष प्रसिद्ध हैं। आपकी जीवनी 'पुस्तक-भंडार' से हिन्दी में प्रकाशित है और पदावली भी। आप मैथिली भाषा के जगत्प्रसिद्ध महाकवि हैं।

हरिनाथ उपाध्याय—आप बहुत बड़े विद्वान् थे। मिथिलाधीश महाराज हरिसिंह देव के समय में, संवत् १३७० के लगभग, आपकी स्थिति का पता लगता है। आप ही के समय में मैथिल ब्राह्मणों का पञ्जी-निर्माण हुआ था। आपका रचित ग्रंथ 'स्मृतिसार' प्रसिद्ध है।

उमापति उपाध्याय—आप कोइलख-ग्राम-(दरभंगा)-वासी थे। दार्शनिक तथा साहित्यिक पंडितों में आपकी बड़ी धाक थी। अपने समय के आप अद्वितीय विद्वान् थे। आप ही के द्वारा उस समय के बड़े-से-बड़े विद्वान् प्रतिष्ठा पाते थे। आपका रचित 'पारिजातहरण' नाटक प्रसिद्ध है, जो मैथिली और संस्कृत भाषा में लिखा गया है। मैथिली का यही सबसे प्राचीन नाटक है, प्रकाशित है।

रुद्रधर उपाध्याय—आप धर्मशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। आपके रचित वर्षकृत्य, शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक, व्रतपद्धति आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

गदाधर झा—ये अरई (दरभंगा) के निवासी थे। सूबेदार सुलतान नासिरुद्दीन द्वारा इनकी विद्वत्ता का परिचय पाकर सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक ने इन्हें कुछ गाँव जागीर में दिये थे। बनैली-राज्य के स्वामी इन्हीं के वंशधर हैं।

केशव मिश्र—आप सुगौना गाँव (दरभंगा) के निवासी थे। धर्मशास्त्र में आपका विशेष पांडित्य था। द्वैतपरिशिष्ट और संख्यापरिमाण—ये दोनों ग्रन्थ आपकी विद्वत्ता के विशेष परिचायक हैं। दोनों ग्रंथ प्रकाशित हैं।

द्वितीय मुरारि मिश्र—आप धर्मशास्त्री केशव मिश्र के शिष्य थे। दर्शनशास्त्र की शिक्षा आपने पंडित रामभद्र झा से प्राप्त की थी। आपके निर्मित 'शुभकर्मनिर्णय' ग्रंथ का मिथिला में सर्वत्र आदर हो रहा है।

छोटे मिश्र—आप व्याकरण के बेजोड़ विद्वान थे। न्यायशास्त्र में भी आपकी प्रगति थी। पंडित-मंडली में आप विशेष आदरणीय थे।

भानु मिश्र—आप साहित्य के अगाध विद्वान् थे। आपका समय बारहवीं शताब्दी बताया जाता है। इसहपुर (दरभंगा) के वासी थे। रसमञ्जरी, अलङ्कारतिलक, शृङ्गारदीपिका, रसतरङ्गिणी, रसकल्पतरु, मुहूर्त्तसार आदि ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं। इनमें एकाध को छोड़ सब प्रकाशित हैं।

गोविन्द ठाकुर—आप प्रायः भटसीमरि ग्राम (दरभंगा) के वासी थे। आपके प्रखर पांडित्य की समता करनेवाला कोई न था। मम्मट भट्ट के 'काव्य-प्रकाश' पर आपकी 'प्रदीप' नामक टीका साहित्य-संसार में एक रत्न समझी जाती है। आप परम ईश्वर-भक्त थे।

आपके छोटे भाई श्रीहर्ष भी बड़े भारी पंडित थे, जिनका परिचय आपके 'प्रदीप' ग्रंथ के निम्नलिखित श्लोक से मिलता है—

ज्येष्ठे सर्वगुणैः कनीयसि वयोमात्रेण पात्रे धियाम्।
गात्रेण स्मरखर्वगर्वितपरे निष्ठाप्रतिष्ठाश्रये॥
श्रीहर्षे त्रिदिवङ्गते मयि मनोहीने च कः शोधयेत्।
अत्राशुद्धिरहो महत्सुविधिना भारोऽयमारोपितः॥

शूलपाणि उपाध्याय—आप धर्मशास्त्र के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। आपके रचित आचारविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, प्रायश्चित्तशूलपाणि आदि धर्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ सर्वमान्य हैं। ये सब ग्रंथ प्रकाशित हैं।

गणेश्वर ठाकुर—आप बीरसायर ग्राम (दरभंगा) के वासी थे। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् थे। धर्मशास्त्र में आपका स्वतन्त्र अधिकार था। आपके बनाये विवाहरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर और श्राद्धरत्नाकर ग्रंथ पंडित-मंडली में विशेष रूप से आदृत हैं।

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर—आप व्याकरण और न्यायशास्त्र के श्रेष्ठ विद्वान् थे। वङ्ग देश के कितने ही विद्यार्थी आपसे पढ़कर अपने देश गये। रघुनन्दन राय आपके ही परम भक्त तथा आज्ञाकारी शिष्य थे, जिनके शास्त्रार्थ पर मुग्ध होकर आपकी विद्वत्ता के सम्मान में सम्राट् अकबर ने मिथिला का राज्य आपको सादर अर्पित किया था। विद्या की बदौलत ही आपने मिथिला का राज्य अकबर से प्राप्त किया। चिन्तामणि और आलोक-दर्पण पर आपकी अति उत्तम टीका है। आपका एक ग्रंथ 'मलमासनिर्णय' भी प्रकाशित है। आप मुगल-सम्राट् अकबर के समकालीन थे। वर्त्तमान मिथिलेश आप ही के वंशधर हैं।

शालिकनाथ मिश्र—आप मीमांसा-शास्त्र के विद्वान् थे। पंडित पार्थसारथि मिश्र के समय में आप विद्यमान थे।

शुचिकर उपाध्याय—आप दार्शनिक महेश ठाकुर के विद्या-गुरु थे। अन्य प्रान्तों के भी अनेक विद्यार्थी आपसे शास्त्राध्ययन करके अपने देश गये। आपका बनाया कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

हेमाङ्गद ठाकुर—आप ज्योतिःशास्त्र तथा साहित्य के विद्वान् थे। आपका रचित 'ग्रहणमाला' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

मेघ ठाकुर—आप महामहोपाध्याय महेश ठाकुर के भाई तथा 'जलज' ग्रन्थ के रचयिता हैं। आप अच्छे विद्वान् थे।

चंडेश्वर ठाकुर—आप विविध शास्त्रों के ज्ञाता थे। धर्मशास्त्र में आप बड़े ही कुशल थे। आपके रचित ग्रन्थों में स्मृतिरत्नाकर, पूजारत्नाकर, दानवाक्यावली, कृत्यचिन्तामणि, आदिविधि, शिववाक्यावली, स्वामिपालविवाद, दानविमोक्ष आदि ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

रामदत्त ठाकुर—आप व्याकरण और साहित्य के प्रगाढ पंडित थे। आपकी बनाई 'विवाहपद्धति' मिथिला में प्रचलित है।

धनपति ठाकुर—आप धर्मशास्त्र के विशिष्ट विद्वान् थे। धर्मशास्त्र में आपका ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है। आपने 'श्राद्धदर्पण' की रचना की है। आप इतने प्राचीन हैं कि आपका समय किसी को ज्ञात नहीं।

देवनाथ ठाकुर—आप दार्शनिक विद्वानों में प्रधान माने जाते थे। आलोक-परिशिष्ट और तत्त्व-चिन्तामणि ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं।

शुभंकर ठाकुर—आप महामहोपाध्याय महेश ठाकुर के विद्वन्मान्य सुपुत्र और मिथिला के शासक थे। आपके रचित ग्रन्थों मे तिथि-निर्णय और हस्तमुक्तावली उपलब्ध हैं। आपके नाम पर 'शुभंकरपुर' बसा हुआ है।

मधई ठाकुर—आप न्याय और मीमांसा के बड़े विद्वान् थे। बुद्धाधिकार, द्रव्यप्रकाशिका, कुसुमाञ्जलिप्रकाशिका, किरणावलीप्रकाशिका—ये सब ग्रन्थ आप ही के लिखे हुए हैं।

मधुसूदन शर्मा—आपका नाम प्राचीन ज्योतिषियों में प्रसिद्ध है। आपने 'ज्योतिपप्रदीपाङ्कुर' बनाया है।

मधुसूदन ठाकुर—आप न्यायशास्त्र और मीमांसा के विद्वान् थे। आपके रचित द्वैतनिर्णयोद्धार, समयप्रदीपजीर्णोद्धार, कंटकोद्धार, तत्त्वचिन्तामण्यालोक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

रघुदेव झा—आप राजा हरिसिंहदेव के आश्रित थे। उनकी अध्यक्षता में पञ्जी-प्रबन्ध के संग्रहकर्त्ता आप ही थे।

लक्ष्मीपति उपाध्याय—आप पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। आपका बनाया 'श्राद्धरत्न' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

लोचन शर्मा—आप संगीत के भी पूर्ण विद्वान् थे। आपकी बनाई 'राग-तरङ्गिणी' संगीत का प्रख्यात ग्रंथ है।

गोकुलनाथ उपाध्याय—आप मङ्गरौनी गॉव के वासी थे। १८ वीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आप हुए हैं। 'आप व्याकरण, न्याय और साहित्य के अद्वितीय विद्वान् थे। मिथिला भाषा में भी आप छन्द-रचना करते थे। आपके निर्मित कादम्बरीप्रदीप, कादम्बरीकीर्त्तिश्लोक, पद-वाक्यरत्नाकर, कादम्बरीप्रश्नोत्तरमाला, कुसुमाञ्जलीटिप्पणी, तत्त्वचिन्तामणि-पद्धति, आलोकटिप्पणी, खंडनकुठार, मुक्तिवाद-विचार, विशिष्ट-वैशिष्ट्य-बोध, प्रबोध-कादम्बरी, कुंड-कादम्बरी, मासमीमांसा, आधाराधेयभाव, तत्त्व-परीक्षा आदि ग्रन्थ बड़े प्रसिद्ध हैं। इनमें अधिकांश ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

गणेश्वर (द्वितीय)—आप विद्वान् तो थे ही, भगवान् विष्णु के भी बड़े भक्त थे। आपकी बनाई हरिभक्तिप्रदीपिका और गङ्गाभक्तितरङ्गिणी भक्ति-मार्ग की प्रदर्शिका हैं।

वामदेव उपाध्याय-आप 'स्मृतिदीपिका' के रचयिता हैं। समय अज्ञात।

देवनाथ उपाध्याय—'उपाहरण' संस्कृत-मैथिली नाटक के रचयिता।

हरिलाल उपाध्याय—'आचारादर्श-व्याख्या' ग्रन्थ के रचयिता।

वर्द्धमान (द्वितीय)—आप सरिसव ग्राम के निवासी थे। आपका बनाया 'परिभाषाविवेक' सुपरिचित ग्रंथ है।

महामहोपाध्याय रामेश्वर झा—उजान (दरभंगा) के निवासी, दर्शन-शास्त्र के अगाध विद्वान् थे। गंगाजी की स्तुति में बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। न्यायशास्त्र पर भी टीका लिखी है जो अप्रकाशित है। मिथिला के सुविख्यात विद्वान् गोकुलनाथ उपाध्याय से आपने शास्त्रों का अध्ययन किया था। गुरु के मरने पर आपने यह श्लोक रचा था जो अद्यापि प्रसिद्ध है—

मातर्गोकुलनाथनामक गुरोर्वाग्देवि तुभ्यं नमः।
पृच्छामो भवती महीतलमिदं त्यक्त्वैवयद्गच्छसि॥
भूलोके वसतिः कृता मम गुरौ स्वर्गे तथा गीष्पतौ।
पाताले फणिनायके च नितरां प्रौढि क्व लब्धाधिका॥

देवनाथ शर्मा—आपकी बनाई स्मृति-कौमुदी है। आप धर्मशास्त्र के मार्मिक विद्वान् थे। आपके अन्य ग्रन्थ अप्राप्य हैं।

नरहरि उपाध्याय—सरिसव ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण-कौमुदी की आपने विशद व्याख्या की है।

हरिहर उपाध्याय—आप अर्वाचीन विद्वानों में सुप्रसिद्ध थे। प्रभावती-परिणय और भर्तृहरि-निर्वेद नामक संस्कृत-नाटक आपके बनाये हुए हैं।

भवदेव मिश्र—आप व्याकरण, वैशेषिक और योगशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे। प्रायश्चित्तभवदेव, दानकर्मप्रक्रिया और पातञ्जलसूत्रभाष्य आपके बनाये ग्रंथ हैं।

रवि ठाकुर—आप १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। साहित्यशास्त्र में आप बड़े कुशल थे। काव्य-प्रकाश पर 'मधुमती' नाम की टीका आपके काव्य-कौशल की परिचायिका है।

गोविन्द मिश्र—आप व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। 'नलचरित्र' नाटक आपका बनाया है।

मिश्रू शर्मा—आप धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् थे। १५ वीं शताब्दी में आप हुए हैं। आपके बनाये विवादचन्द्र और पदार्थचन्द्र ग्रन्थ बड़े अच्छे हैं।

पद्मनाभ मिश्र—न्यायशास्त्र में बड़े प्रवीण थे। सिद्धान्तमुक्ताहार आप ही का रचा हुआ है। सत्रहवीं शताब्दी में आप हुए हैं।

ज्योतिषी नीलाम्बर झा—आप ज्योतिःशास्त्र के व्युत्पन्न विद्वान् थे। सिद्धान्त-ग्रन्थ में आपकी विलक्षण प्रतिभा थी। गोलीय रेखागणित आदि अनेक सिद्धान्तसम्बन्धी ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं। आपका घर पटने में था। १६ वीं शताब्दी में आप हुए हैं। काशी के जगत्प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने भी आपसे शिक्षा पाई थी।

ज्योतिर्वित् जीवनाथ झा—आप नीलाम्बर झा के भाई थे। ज्योतिष के फलित भाग में आप बड़े निविष्ट थे। आपके बनाये भावकुतूहल, दीक्षातत्त्वप्रकाश, वस्तुरत्नावली, जन्मपत्रीविधान और भावप्रकाश ग्रन्थ विशेष आदरणीय हैं।

वाचस्पति मिश्र (अर्वाचीन)—आप सरिसव (दरभंगा) के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र में आपके रचित द्वैतचिन्तामणि, आकारचिन्तामणि, आह्निकचिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शुद्धिचिन्तामणि, विवादनिर्णय, द्वैतनिर्णय, कृत्यमहार्णव, अनुमानखंड टीका आदि अनेक ग्रन्थ हैं।

चन्द्रदत्त झा—हरिनगर ग्रामवासी। आपका समय १६ वीं शताब्दी का

आरम्भ है। रचित ग्रन्थ—भगवद्भक्तिमाहात्म्य, कर्णगीतमाला, भगवतीस्तोत्र, काशीशिवस्तोत्र और कृष्णविरुदावली।

देवनाथ ठाकुर—समय १६ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—आलोकपरिशिष्ट और तत्त्वचिन्तामणि।

भीम शर्मा—आप अठारहवीं शताब्दी में हुए हैं। आपके रचित ग्रन्थों में गीतशङ्कर, कृत्यदर्पण तथा कुमारसंभव की टीका उपलब्ध हैं।

मदन मिश्र—समय अज्ञात। गोरक्षा ग्रन्थ के रचयिता।

मुक्तेश्वर झा—आप साहित्यिक विद्वान् थे। पूजा-पाठ में आपकी बड़ी निष्ठा थी। आपका रचित 'पूजापङ्कजभास्कर' है। समय अज्ञात।

पद्मनाभ दत्त—आप व्याकरण और न्याय के प्रखर पंडित थे। १४ वीं शताब्दी में आपके होने का समय बताया जाता है। आपका बनाया कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

वटेश्वर झा—समय १५ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'मुद्राराक्षस' नाटक की टीका।

परशुराम झा—आप न्यायशास्त्र के पूर्ण विद्वान् थे। आपका समय १७ वीं शताब्दी है।

रुचिदत्त उपाध्याय—समय १५ वीं शताब्दी। अनेक ग्रन्थों पर आपकी लिखी टीकाएँ हैं।

सुचरित मिश्र—आपका बनाया 'काशिका' नामक ग्रन्थ है।

वंशमणि शर्मा—समय १७ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—'गीत दिगम्बर' नाटक।

वासुदेव मिश्र—समय १५वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ–'तत्त्वचिन्तामणि' की टीका।

विश्वेश्वर मिश्र—आप सम्राट् शाहजहाँ के दरबार में सम्मानित थे। आपका रचित 'स्मृति-समुच्चय' ग्रन्थ है।

विष्णुदत्त झा—आप मिथिलेश महाराज प्रतापसिंह के दरबार में पूजित थे। कई ग्रन्थों पर आपकी लिखी टीकाएँ मिलती हैं। उक्त महाराज की कृपा से आपको एक गाँव भी मिला था।

प्रेमनिधि ठाकुर—आप धर्मशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। आपका रचित 'धर्माधर्मप्रबोधिनी' ग्रन्थ है।

लक्ष्मीधर उपाध्याय—समय १७ वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'कल्पतरु'।

वेणीदत्त झा—समय १८वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—'रसकौस्तुभ'। वासस्थान—विट्ठो (दरभंगा)।

महामहोपाध्याय सचल मिश्र—आप १८ वीं शताब्दी में हुए हैं। पाहीटोल ग्राम-(दरभंगा)-वासी पंडित रघुदेव मिश्र के सुपुत्र थे। मिथिलेश महाराज प्रतापसिंह ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर आपको जगतपुर गाँव और सं० १७७६ में महाराज माधवसिंह ने चनौर गाँव दिया था। आपने चनौर में मन्दिर बनवाकर शिवलिंग का स्थापन किया था, जो अबतक विद्यमान है। पूना के राजा माधवराव ने आपको जब्बलपुर के इलाके में 'महँगवा' और 'सलैया' दो गाँव दिये थे। आपने धर्मशास्त्र के अनुसार बहुत दिनों तक प्रधान न्यायाधीश (चीफ जज) का काम किया था। आपके किये धर्मशास्त्र के कई फैसले अब भी उपलब्ध हैं। गोवर्द्धनसप्तशती पर आपकी लिखी टीका है, जिसे दरभंगा-राज्य के सब-मैनेजर स्वर्गीय केशी मिश्र (आपके वंशज) ने विद्यापति प्रेस में छपवाया है।

चित्रधर उपाध्याय—आपका समय १८ वीं शताब्दी का आरम्भकाल था। आप मङ्गरौनी ग्राम (दरभंगा) के वासी थे। महामहोपाध्याय सचल मिश्र के विद्यागुरु थे। न्याय और धर्मशास्त्र के आप अद्वितीय विद्वान् थे। आपके बनाये 'वीरसारिणी, प्रमाणप्रमोद तथा शृङ्गारसारिणी' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

महामहोपाध्याय मुक्तिनाथ शर्मा—आप न्याय और धर्मशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। पुर्नियाँ जिले के अन्तर्गत धमदाहा ग्राम के निवासी थे। आप धर्मशास्त्र के पूर्ण वेत्ता होने के कारण पुर्नियाँ जिले के जज बनाये गये थे।

अचल उपाध्याय—आप महामहोपाध्याय सचल मिश्र के समकालीन और विद्या मे उनके प्रतिस्पर्द्धी थे। किवदन्ती है कि आपने सचल मिश्र को यह श्लोक लिखा था—

खे चरन्निशि तमोपशान्तये, ज्योतिरिङ्गण! कथं न लज्जसे।
इत्थमेव बहु किं न मन्यसे यत्त्वमेव तिमिरेषु लक्ष्यसे॥

इसका उत्तर सचल मिश्र ने बड़े मार्के का यह दिया—

मन्दिरतिमिरमपाकुरु दीप ! हिमांशुं किमाक्षिपसि।
भवनाद्बहिर्मनागपि पवनात्परिशीलयात्मानम्॥

मचल उपाध्याय—आप मङ्गरौनी-निवासी सचल उपाध्याय के सगे भाई थे। समय १८ वी शताब्दी। रचित ग्रन्थ 'शतरञ्जप्रबन्ध'। आप ज्योतिष के विद्वान् थे।

रत्नपाणि झा—समय १९वीं शताब्दी। वासस्थान कौशिकी नदी के निकटवर्त्ती परसा ग्राम। आप मिथिलाधीश महाराज रुद्रसिंह के द्वारपंडित थे। आपके रचित—प्रायश्चित्तपारिजात, प्रवरणचन्द्रिका, एकोद्दिष्टसारिणी, आचार-संग्रह, श्रीकृष्णार्चनचन्द्रिका, क्षयमासादिविवेक, नारीपरीक्षा, चिकित्सावर्णन, महादानवाक्यावली, मिथिलेशचरित, व्रताचार, रामचन्द्रप्रतिष्ठा, धर्मसुबोधिनी आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। आप बहुत अच्छे कवि भी थे।

विभाकर झा—समय १९वी शताब्दी। वासस्थान उजान ग्राम। आप न्यायशास्त्र के विद्वान् थे। न्यायलीलावती, कंठाभरण और खंडनखाद्य ग्रन्थों की टीका आपने की है।

महामहोपाध्याय ऑखी झा (पंडित जीवनाथ)—आप हरिनगर (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरणव्युत्पत्तिवाद और शक्तिवाद के पूर्ण विद्वान् थे। आपकी लिखी 'कृष्णपञ्चाशिका' आदि पुस्तिकाएँ हैं।

नरहरि मिश्र—आप ज्योतिःशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। आपका रचित 'स्वरोदय' ग्रन्थ है।

दुर्गादत्त मिश्र—आप व्याकरण और न्यायशास्त्र के पूर्ण पंडित थे। आपके रचित दो ग्रन्थ 'वृत्तमुक्तावली और न्यायबोधिनी' हैं।

बद्रीनाथ उपाध्याय—आप पुर्नियाँ जिले के खोखा ग्राम के निवासी थे। आपके रचित चक्रकौमुदी, ताराभक्तिसुधार्णव की टीका तथा मर्मसूचिका आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

दुर्गादत्त झा—वासस्थान भराम (दरभंगा)। समय १९वीं शताब्दी का आरम्भ। रचित ग्रन्थ—'वाताह्वान काव्य'।

मदन उपाध्याय—आप मङ्गरौनी के निवासी थे। पंडित-मंडली में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आप सिद्ध महात्मा गिने जाते थे। आपके ऊपर भगवती की बड़ी कृपा थी। सुनते हैं, आपकी वाक्सिद्धि ऐसी थी कि चमत्कार देखकर लोग चकित होते थे।

दुर्मिल झा उपाध्याय—आप कोइलख ग्राम (दरभंगा) के निवासी (लेखक के प्रपितामह) थे। व्याकरण, वेदान्त और न्यायशास्त्र के पूर्ण ...

थे। मिथिलेश ने आपकी विद्या से प्रसन्न होकर आपको जागीर (ब्रह्मोत्तर) दी थी, जो अबतक आपके वंशजों के अधिकार में है। समय १८वीं शताब्दी का अन्त और १९वीं शताब्दी का आरम्भ। आपने १९वीं शताब्दी में बीरसायर (दरभंगा) में एक योग्य पञ्जीबद्ध की कन्या से विवाह किया। इसलिये आपकी कुछ सन्तानें वहीं बस गईं।

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ झा उपाध्याय—आप मङ्गरौनी ग्राम के निवासी बड़े अच्छे विद्वान् थे। आपके रचित अनेक निबन्धों में काव्यप्रकाश-विवरण, अमृतोदय नाटक, रसमहार्णव, शिवस्तुति विशेष प्रसिद्ध हैं। आपके बनाये मिथिला भाषा के भी अनेक पद पाये जाते हैं।

हरिहर उपाध्याय—आप मदन उपाध्याय के चचेरे भाई थे। व्याकरण, न्याय के विशिष्ट विद्वान् थे। आपके रचित ग्रन्थ हैं—साहित्यरचना और मुक्तावली टीका।

कृष्णदत्त उपाध्याय (कृष्ण कवि)—वासस्थान उजान (दरभंगा)। समय १८वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—गीतगोपीपति, चंडिकाचरितचन्द्रिका और शशिलेखा काव्य तथा कुवलयापीड नाटक।

रमापति उपाध्याय—आप पंडित कृष्णपति उपाध्याय के पुत्र थे। महाराज नरेन्द्रसिंह (मिथिलाधीश) के मनोविनोदार्थ आपने 'रुक्मिणीहरण' नाटक रचा। आपका समय १८वीं शताब्दी है।

मोहन मिश्र—आप महामहोपाध्याय सचल मिश्र के छोटे भाई थे। रचित ग्रन्थ—'राधानयनद्विशती' काव्य। समय १८वीं शताब्दी।

श्रीकृष्ण झा—समय १९वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—कुमारसंभव और रघुवंश की अन्वयलापिका टीकाएँ।

खगेश शर्मा कविरत्न—वासस्थान टभका (दरभंगा)। समय १९वीं शताब्दी। गुरु का नाम—वागीश उपाध्याय। नरहन-राज के आश्रित। रचित ग्रन्थ—काशीशिवस्तुति और काश्यभिलाषाष्टक।

वसन्त मिश्र—आप टभका ग्राम के वासी थे। महाराज काशीनरेश के दरबार में रहकर आपने संस्कृत में 'छन्दोलता' ग्रन्थ बनाया। समय १९वीं शताब्दी।

परमेश्वरीदत्त मिश्र—आप सतलखा (दरभंगा)-निवासी थे। आप व्याकरण, न्याय और वेदान्त के मार्मिक विद्वान् थे। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे।

कन्हौली (मुजफ्फरपुर) के जमींदार श्री यमुनाप्रसाद शुक्ल के द्वारपंडित तथा दानाध्यक्ष थे। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

मधुसूदन झा—वासस्थान सतलखा। आप व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। साहित्य में भी निपुण थे। रचित ग्रन्थ—'अन्यायदेशशतक'। समय २०वी शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय हर्षनाथ झा—वासस्थान 'उजान'। आप व्याकरण, न्याय और साहित्य के बड़े विज्ञ पंडित थे। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर के दरबार में आपका पूर्ण सम्मान था। आपके रचित ग्रन्थो में शब्देन्दु-शेखर की कारकान्त टीका, परिभाषेन्दुशेखर की परिभाषार्थदीपक टीका, मनोरमा की भावदीपक टीका, शब्दरत्न की शब्दरत्नार्थदीपक टीका, गीतगोपीपति काव्य की टीका, राधाकृष्णप्रतिष्ठा, ताराप्रतिष्ठा, संस्कारदीपक आदि ग्रन्थ तथा उषा-हरण, माधवानन्द, राधाकृष्णमिलन, सुदामाचरित नामक चार नाटक प्रसिद्ध हैं।

अमृतनाथ झा—आप भागलपुर जिले के अन्तर्गत चैनपुर ग्राम के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के मार्मिक विद्वान् थे। आपके रचित प्रायश्चित्त-व्यवस्था और कृत्यसारसमुच्चय ग्रन्थ मिथिला में सर्वत्र प्रामाणिक माने जाते हैं।

तूफानी झा—आप दरभंगा जिले के मोहना ग्रामवासी थे। वरुआरी (भागलपुर) के राजा सुरेन्द्रनारायणसिंह के दरबार में आपका बड़ा मान था। आप थे तो ज्योतिषी, किन्तु आपने अनेक धर्मशास्त्र ग्रन्थों को देखकर 'कृत्य-शिरोमणि' नाम का एक बृहत् ग्रन्थ लिखा, जिसे वरुआरी के राजा साहब ने छपवाकर विद्वन्मंडली में वितरित करके यश प्राप्त किया। उक्त ग्रंथ में सभी पर्व-त्योहारो तथा व्रतोपवासों का प्रामाणिक रूप से निर्णय किया गया है। इसके अतिरिक्त अब्दचिन्तामणि, कृत्यतत्त्वचिन्तामणि, कृत्यसुधार्णव, कृत्यविवेक-रत्नाकर आदि ग्रंथो के रचयिता भी आप ही हैं।

जगद्धर झा—आप महाराज धीरसिंह के द्वारपंडित तथा दानाध्यक्ष थे। श्रीमद्भागवत, देवीमाहात्म्य, वेणीसंहार, मालतीमाधव और वासवदत्ता पर आपने अच्छी टीकाएँ की हैं।

कविवर गोविन्ददास झा—आप पंडित रामदास झा के भाई थे। संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होते हुए भी आप मैथिली भाषा के प्रसिद्ध कवि थे। आपकी रचित मिथिला भाषा की पदावली कविकोकिल विद्यापति ठाकुर की प्रसिद्ध

पदावली के जोड़ की है। संस्कृत में आपके बनाये 'कृष्णचरित और नलचरित' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

रामदास झा—महाराज सुन्दर ठाकुर के दरबार में आदृत थे। रचित ग्रन्थ 'आनन्दविजय' नाटक।

जासू मिश्र *—भागलपुर जिले के परसरमा ग्राम के निवासी थे। आप व्याकरण के विशुद्ध तथा यशस्वी विद्वान् थे। समय २०वी शताब्दी का मध्यभाग।

कन्हाई झा—आप पिलखवाड़ (दरभंगा) के निवासी थे। न्यायशास्त्र के प्रगाढ पंडित थे। जम्मू (काश्मीर) के महाराज के दरबार में रहकर आपने सम्मान-पुरस्सर प्रचुर धन प्राप्त किया।

बबुजन झा—आप भी पिलखवाड़ के निवासी और विशिष्ट नैयायिक थे। आपका रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

भानुनाथ (भाना) झा—आप नैयायिक बबुजन झा के सगे भाई थे। ज्योतिःशास्त्र के विद्वान् थे। धूर्त्त और परिहासप्रिय भी खूब थे। आपकी उपमा मिथिला के महाधूर्त्त गोनू झा से दी जाती है। आपका निर्मित ज्योतिष में 'व्यवहार-रत्न' ग्रंथ प्रसिद्ध है।

कमलनयन मिश्र—आप कोइलख के वासी महान् ज्योतिषी थे। आपका रचित कोई ग्रंथ प्राप्त नही है।

* जब मैं श्रीनगर (पुर्नियाँ) के (स्वर्गीय) राजा कमलानन्दसिंह के दरबार में नियुक्त था, आप कुछ सहायता के लिये राजा साहब के यहाँ उपस्थित हुए थे। उस समय पंडित-प्रवर खुद्दी झा भी राज-दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। राजा साहब के छोटे भाई कुमार कालिकानन्दसिंह के साले का यज्ञोपवीत हाल ही में हुआ था। पंडित खुद्दी झा का रचित दिनबन्ध था—

मार्गे मार्गे ससससावुपेतेऽग्लाने ग्लावि ग्लौजनौ विश्वपत्न्याम्।
मादृभूयुग्म श्रौत्रकृत्कृत्ययुग्मं मत्सद्मन्यागम्य संस्कार्यमार्य्यैः॥

कुमार साहब ने प० जासू मिश्र से परिहासवश कहा कि यह दिनबन्ध कहीं से आया है, आप इसका अर्थ बताइये। उन्होंने कुछ देर तक सोच-विचारकर कहा कि जब इस जगह प० खुद्दी झा व्याकरण-न्याय के आचार्य मौजूद हैं, तब वही इसका अर्थ बतावेंगे। यह कहकर वह श्लोक उनके हाथ में दिया। इसपर बड़ी हँसी हुई। यह १९०६-७ ई० की बात है। मार्गे मृग (मकर) सम्बन्धिनं, मार्गे पन्थानं, ससससौ सूर्ये, उपेते युक्ते, अग्लानेऽग्लावि शुक्लपक्षे, ग्लौजनौ बुधवासरे, विश्वपत्न्या एकादश्या तिथावित्यर्थः।

महामहोपाध्याय कृष्णसिंह ठाकुर—आप राजग्राम (भौर-दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण के तो आप पूर्ण विद्वान् थे ही, साथ ही न्याय, पातञ्जलि और वेदान्त में भी आपकी विशेष प्रगति थी। पूजापाठ और जपतप में आपकी बड़ी निष्ठा थी। नित्य योगक्रिया करते थे और अपने घर पर रहकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। शास्त्रार्थ में आप कहीं परास्त नहीं हुए। दान लेना दूषित जानकर आपने किसी राजधानी में बिदाई के रुपये नहीं लिये। लोभ को आप जीते हुए थे। किसी के मुँह से आप अपनी प्रशंसा सुनना नही चाहते थे। मेरी उम्र जब २०-२१ की रही होगी, मैं आपके दर्शनार्थ आपके घर पर गया, और आपकी प्रशंसा में कुछ पद्य बनाकर सुनाना चाहा ; किन्तु आपने ऐसा करने का पूरा निषेध किया।

महामहोपाध्याय मीमांसक चित्रधर मिश्र—आप टभका ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों में आपकी असाधारण विद्वत्ता थी। शास्त्रार्थी विषयों में आपकी सूझ विलक्षण थी। धर्मशास्त्र के भी आप विज्ञ थे। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरबार में आप बहुत दिनों तक रहे। विद्वन्-मंडली में आपका विशेष सम्मान था।

सर्वतंत्रस्वतंत्र बच्चा झा—आप नवानी ग्राम (दरभंगा)-वासी नैयायिक थे। आप अन्य अनेक शास्त्रों के भी ज्ञाता थे। अपने समय में आप अद्वितीय गिने जाते थे। आपने उच्च कोटि के अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें श्रीमद्भगवद्गीता की टीका, व्युत्पत्तिवाद पर गूढार्थतत्त्वालोक, सुलोचना-माधव नामक महाकाव्य, सामान्य निरुक्ति, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति और सिद्धान्तलक्षण आपकी विद्वत्ता के विशेप परिचायक हैं। आप मुजफ्फरपुर में संस्कृत-महाविद्यालय के प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त थे।

विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा—आपकी गणना मिथिला के सर्वश्रेष्ठ पंडितो में थी। आप सभी शास्त्रों के विद्वान् थे, बहुश्रुत थे, विश्वविख्यात थे। जयपुर-नरेश के दरबार में आपका आदर सर्वोपरि था। जयपुर के महाराजा-संस्कृत-कालेज के प्रिंसिपल महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आपके शिष्य हैं, जिनका कहना है कि भूमंडल में आपके सदृश वेदज्ञ विद्वान् कई शताब्दियों से कोई नहीं हुआ। आप वैदिक विज्ञान और वैदिक इतिहास के सफल अन्वेपक थे। सन् १९३९ में २७ सितम्बर को जयपुर (राजपूताना) में ७३ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ। आप 'गाढा' ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। विक्रम-

संवत् १६२३ में श्रीकृष्णजन्माष्टमी को आपका जन्म हुआ था। आपके पितृव्य राजीवलोचन झा ने जयपुर-नरेश द्वारा अतुलनीय प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और आप उन्हीं के दत्तक पुत्र थे। आपके एक पितृव्य तुलसीदास झा भी महान् पंडित थे और काशी में असी-घाट पर रहते थे। आपके पितामह देवनाथ झा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और मझौलिया-राज्य (गोरखपुर) के प्रधान राजपंडित थे। आपके लिखे लगभग दो सौ ग्रन्थ हैं, जिनमें अधिकांश प्रकाशित हैं।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी—आप हरिपुर ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। मुजफ्फरपुर-संस्कृत-कालेज में आप अध्यापक थे। कर्मकांड के बड़े अनुभवी पंडित थे। साहित्य-रचना में आपकी लिखी अमृतोदय टीका और भर्तृहरि-निर्वेद टीका बहुत उत्तम है। आपने मैथिली भाषा में 'मिथिलाभाषामय इतिहास' लिखा है, जो लगभग ६०० पृष्ठों का प्रकाशित वृहत् ग्रन्थ है।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा वैयाकरणकेसरी—आप तरौनी (दरभंगा) के निवासी थे। समय बीसवीं शताब्दी। आप महाराजाधिराज स्वर्गीय रमेश्वरसिंह बहादुर के दरबार में राजपंडित थे। आपके रचित ऋतुवर्णन, यक्ष-समागम और दशकर्मपद्धतियों का संशोधन तथा मिथिलातत्त्व-विमर्श गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ हैं।

महामहोपाध्याय राजनाथ (रजे) मिश्र—वासस्थान सौराठ (दरभंगा); समय बीसवी शताब्दी। व्याकरण के अप्रतिम विद्वान्, साहित्य और धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ थे। वृद्धावस्था में आप दरभंगा-नरेश स्वर्गीय रमेश्वरसिंह के आश्रित तथा 'रमेश्वर-लता-विद्यालय' के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। महामहोपाध्याय पंडित जयदेव मिश्र, महावैयाकरण विविधशास्त्रवेत्ता पंडित खुद्दी झा प्रभृति अनेक प्रसिद्ध लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आपके शिष्य थे। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी 'तिथि-निर्णय' आदि अनेक ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं।

महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र—वासस्थान गजहड़ा (दरभंगा)। आप व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् थे। दरभंगा-राज के काशीस्थ विद्यालय में पहले नियुक्त हुए। शास्त्रार्थ में आप सर्वत्र विजयी हुए। आपके रचित ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर की टीका विजया, व्युत्पत्तिवाद की टीका जया और शास्त्रार्थ-रत्नावली प्रसिद्ध हैं। पंडित मार्कण्डेय मिश्र, पंडित दीनबन्धु झा आदि अनेक सुयोग्य विद्यार्थी आपके विद्यमान हैं। समय बीसवीं शताब्दी।



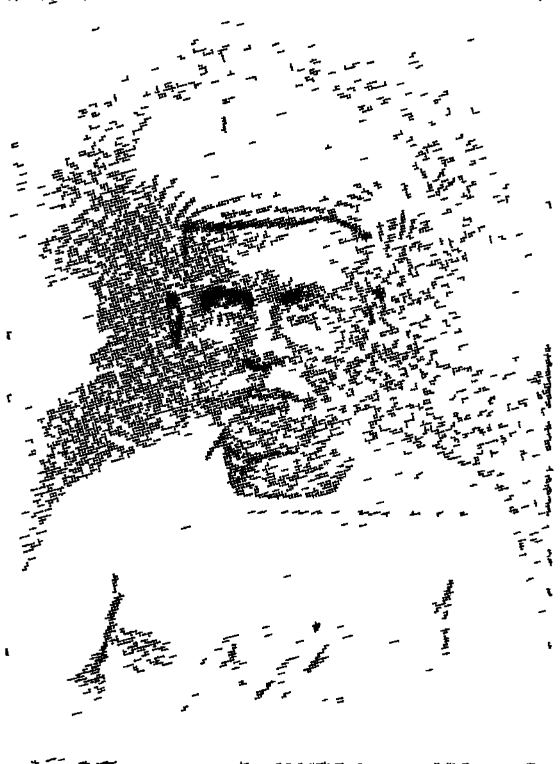
कविवर चन्दा झा (परिचय, पृष्ठ २५)



महामहोपाध्याय जयदेव मिश्र (पृष्ठ २२)



महामहोपाध्याय शशिनाथ झा (पृष्ठ २२)



महामहोपाध्याय मीमांसक चित्रधर मिश्र (पृष्ठ २१)



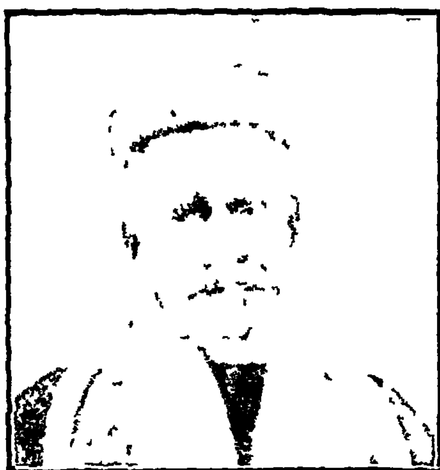
महामहोपाध्याय वैयाकरण-केसरी परमेश्वर झा (पृष्ठ २२)



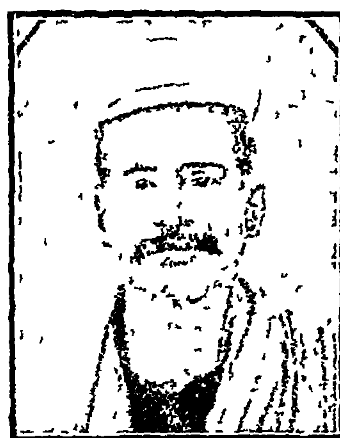
महामहोपाध्याय रजनाथ मिश्र (पृष्ठ २२)



स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा (पृष्ठ ३६, १४७, ५४३)



कविवर मुन्शी रघुनन्दन दास (पृष्ठ ४१२)



प० सीताराम झा (पृष्ठ ४१४)

महामहोपाध्याय शशिनाथ झा—वासस्थान मनीगाछी स्टेशन के समीपवर्त्ती चनौर ग्राम (दरभंगा)। समय बीसवीं शताब्दी। आप व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र तथा साहित्य के प्रकांड पंडित थे। आप बहुत दिनों तक कानपुर आदि कई स्थानों के विद्यालयों में प्रधानाध्यापक रहकर अन्त में संस्कृत-कालेज मुजफ्फरपुर के वाइस-प्रिंसिपल नियुक्त हुए। आपके रचित ग्रन्थ बहुत हैं, परन्तु वे अप्रकाशित हैं।

महामहोपाध्याय नैयायिक दुःखमोचन झा (बबुआ झा)—वासस्थान पिलखवाड़ (दरभंगा)। आप न्यायशास्त्र तथा साहित्य के धुरन्धर पंडित थे। आप अपने घर ही पर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। न्यायशास्त्र पर आपके लिखे कई ग्रन्थ हैं, जो उपलब्ध नहीं हैं। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और बीसवीं शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय चुम्बे झा—आप पिलखवाड़-(दरभंगा)-निवासी नैयायिक बबुआ झा के भाई थे। व्याकरण और न्याय में आपका प्रगाढ पांडित्य था। दरभंगे के महाराज के यहाँ आप विशेष रूप से सम्मानित थे। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

महामहोपाध्याय मुरलीधर झा—वासस्थान 'श्यामसीधप' (दरभंगा)। समय बीसवीं शताब्दी। आप बनारस के किन्स-कालेज में ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापक थे। ज्योतिष के अध्यापक होते हुए भी संस्कृत-साहित्य तथा मिथिला भाषा के साहित्य में आप बड़े कुशल थे। वाक्चातुर्य भी आपमें अद्भुत था। 'मिथिला-मोद' नामक मैथिली मासिक पत्र के प्रवर्त्तक और संचालक आप ही थे।

मुक्तिनाथ ठाकुर—वासस्थान अथरी (मुजफ्फरपुर)। समय १९वीं शताब्दी का अन्त और २०वीं शताब्दी का आरम्भ। आप व्याकरण और न्याय के बड़े गम्भीर विद्वान् थे। कान का वधिर होने पर भी आप शास्त्रार्थ करने में बड़े कुशल थे। व्याकरण-महाभाष्य पर आपकी लिखी बड़ी विलक्षण टीका है।

महावैयाकरण विश्वनाथ झा—वासस्थान पंडौल (दरभंगा)। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ। आप व्याकरण, वेदान्त और धर्मशास्त्र के तत्त्वदर्शी विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में आपका उपपादन पांडित्यपूर्ण होता था। आप जयपुर-राजधानी में बड़े आदृत थे। वहाँ से आप घर बैठे मासिक वृत्ति पाते थे।

नैयायिक विश्वनाथ झा—वासस्थान ठाढ़ी (दरभंगा)। न्यायशास्त्र

के आप अद्वितीय विद्वान् थे। शास्त्रार्थ में कोई आपको परास्त नहीं कर सका। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के द्वारपंडित थे। समय बीसवीं शताब्दी का आरम्भ। आप सर्वतंत्रस्वतंत्र बच्चा झा के सगे भाई थे।

जीवन झा—वासस्थान समस्तीपुर से ४ कोस दक्खिन 'हरिपुर' (दरभंगा)। व्याकरण और संस्कृत-साहित्य के पूर्ण पंडित तथा मिथिला-भाषा में भी पद्य बनाते थे। काशीनरेश महाराज प्रभुनारायणसिंह के दरबार मे आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। महाराज के मनोविनोदार्थ आपका रचित 'सुन्दरसंयोग' नाटक मिथिला में विशेष आदृत है। समय २०वी शताब्दी का आरम्भ।

महावैयाकरण खुद्दी झा—वासस्थान कोइलख (दरभंगा)। आप व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र तथा साहित्य के अनुपम विद्वान् थे। आप सर्वप्रथम काशीस्थ संन्यासी-विद्यालय में अध्यापक थे। १९०१ ई० में जब श्रीनगर (पुर्नियाँ) के स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह ग्रहणावसर पर अपनी पूजनीया माता के साथ काशी गये थे, उनके छोटे भाई कुमार कालिकानन्दसिंह ने पंडित खुद्दी झा को बुलाया, और आपको अपने साथ ड्योढ़ी श्रीनगर ले आये। आपसे उनका कोई नाता भी था। तब से आप बराबर वहीं रहकर दरबार की शोभा बढ़ाने लगे। मैं भी राजा साहब के साथ काशी गया था। मुझे पंडितजी के साथ एक ही आवास में रहने का सौभाग्य चिरकाल तक प्राप्त रहा। पंडितजी मे शास्त्रीय योग्यता और लौकिक चातुर्य दोनो की पूर्णता थी। आपके सदृश बहुश्रुत विद्वान् आज तक मुझे कोई दूसरा न मिला। कलकत्ते में भी, जब आप विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे, मेरा और आपका साथ रहा। श्रीनगर (पुर्नियाँ) के राजकुमार श्रीगंगानन्दसिंह जब १९२० ई० के लगभग वहाँ पढ़ने गये, दीदारबक्स लेन में एक मकान किराये पर लिया गया। उसी में आपके साथ मैं भी रहता था। मैं उन दिनो वणिक् प्रेस में नियुक्त था। पंडित खुद्दी झा की लिखी शब्देन्दुशेखर की टीका, नागेशोक्ति-प्रकाश और व्युत्पत्तिवाद की नौका नामक टीका बड़ी अच्छी है।

सुरेश मिश्र—वासस्थान प्राचीन विष्णुपुर अँरेरु, नूतन वास 'मङ्गरौनी'। व्याकरण और साहित्य के धुरन्धर पंडित तथा आशुकवि भी थे। दरभंगा-राज-विद्यालय में अध्यापक थे। आपकी व्युत्पत्ति प्रशंसनीय थी। आप पंडित खुद्दी झा के सहपाठी थे। समय २० वीं शताब्दी।

उमेश मिश्र—आप पंडित सुरेश मिश्र के सगे भाई थे। न्यायशास्त्र में कुशल थे। समय १९ वीं शताब्दी का अन्त और २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

चन्द्रमणि झा (चन्दा कवि)—आप ठाढ़ी-(दरभंगा)-ग्राम-निवासी थे। पहले आपका वास था पिड़ारुछ ग्राम (दरभंगा) में। आप संस्कृत-साहित्य के पंडित तथा मैथिली भाषा के असाधारण कवि थे। मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरबार में आप कवि-पद पर नियुक्त थे। मैथिली भाषा में आपका पद्यात्मक ग्रन्थ 'रामायण' विशेष प्रसिद्ध है। आप बड़े अध्यवसायी अन्वेषक थे। अनेक प्राचीन ग्रन्थों का अनुसन्धान किया था। विद्यापति के पदों का संग्रह करने में आपने ही सर्व-प्रथम नगेन्द्रनाथ सेन गुप्त को सहायता दी थी।

बाबूजी पाठक—आप माधवपुर (दरभंगा) के निवासी थे। अपने समय में आप ज्योतिष के आचार्य माने जाते थे। भगवती के आप बड़े भक्त तथा तान्त्रिक भी थे। हाजीपुर (मुजफ्फरपुर) में जब मैं ज्योतिष पढ़ता था, प्रायः संवत् १९४६ में, आपके दर्शन हुए थे। मेरे विद्यागुरु ज्योतिषी द्रव्येश्वर झा वहाँ धर्म-संजीवनी पाठशाला में अध्यापक थे; वे पाठकजी के शिष्य कमलपुर-ग्राम-वासी ज्योतिषी फतूरी मिश्र के विद्यार्थी थे। इसी सम्बन्ध से आप उनके यहाँ आकर ठहरे थे। आप दर्शनीय पुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं। विद्वन्मंडली में सर्वत्र आपका सम्मान था।

निधिनाथ झा—वासस्थान गोरौल (मुजफ्फरपुर)। आप व्याकरण के विद्वान् थे। धर्मसमाज स्कूल (मुजफ्फरपुर) के हेडपंडित के पद पर नियुक्त थे। समय १९ वीं शताब्दी का अन्त और २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नैयायिक देवकीनन्दन झा—आप कुरहनी स्टेशन (मुजफ्फरपुर) के समीप बङ्गरा गाँव के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के अच्छे पंडित थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

महावैयाकरण लालजी झा—वासस्थान चिकनौटा (मुजफ्फरपुर)। व्याकरण के आप धुरन्धर विद्वान् थे। वैयाकरण होते हुए भी न्याय, धर्मशास्त्र, वेदान्त और साहित्य के ज्ञाता थे। शास्त्रार्थी भी आप खूब थे। शास्त्रार्थ के समय आपकी सरस्वती उग्र रूप धारण करती थीं। सभी शास्त्रों में शास्त्रार्थ करने के लिये आप सदा साकांक्ष रहते थे। एक बार स्वर्गीय महाराज रमेश्वरसिंह की अध्यक्षता में कनवोकेशन के समय आपका शास्त्रार्थ हुआ था। एक अँगरेज डाइरेक्टर भी

वहाँ उपस्थित थे। उन्होने आपके पांडित्य की बड़ी प्रशंसा की। समय २०वीं शताब्दी का मध्यभाग। आपका रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं।

कृष्णदत्त झा—वासस्थान भखराइन (दरभंगा)। आप ज्योतिःशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। बनारस के किंस-कालेज में ज्योतिष के प्रधानाध्यापक थे। आपने अंतकाल तक काशी में रहकर छात्राध्यापन किया। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ। व्याकरण के भी अच्छे विद्वान् थे।

किशोरीलाल झा—आप पंडित लालजी झा के सगे भाई थे। संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) में व्याकरण के अध्यापक थे। व्याकरण और धर्म-शास्त्र में आपकी बड़ी अच्छी योग्यता थी। समय २० वीं शताब्दी का मध्यभाग।

नरसिंह झा—वासस्थान पोखरौनी (दरभंगा)। व्याकरण के पूर्ण विद्वान् थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

गिरिधारी झा—आप सतलखा-(दरभंगा)-वासी थे। बराबर काशी में ही रहा करते थे। शास्त्रार्थ में आप किसी से दबते नहीं थे। नवागत शास्त्रार्थी विद्वान् से शास्त्रार्थ करने के लिये आपके समकालीन काशीस्थ पंडित आप ही को भिड़ा देते थे। समय १६ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग। आपने अपने विद्याबल से पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि भी पाई थी।

नैयायिक राजा झा—आप परड़ी ग्राम (भागलपुर) के निवासी थे। न्याय और धर्मशास्त्र के पांडित्य में आपका सुयश सर्वत्र फैला था। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

ज्योतिषी अपूछ झा—आप कोइलख-(दरभंगा)-निवासी पंडित खुद्दी झा के अग्रज थे। ज्योति शास्त्र के महान् पंडित थे। आपने घर ही पर रहकर चिरकाल तक विद्यार्थियो को पढ़ाया। आपका रचित ग्रन्थ 'निर्णयार्क' प्रसिद्ध है। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

ज्योतिषी द्रव्येश्वर झा—आप वाजितपुर ग्राम (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। अपने गाँव मे रहकर कई साल तक विद्यार्थियों को ज्योतिष पढ़ाया। तदनन्तर हाजीपुर (मुजफ्फरपुर) की धर्म-संजीवनी पाठशाला में ज्योतिष पढ़ाने के लिये नियुक्त हुए। पाठ-शाला टूट जाने पर आप कन्हौली-रियासत (मुजफ्फरपुर) के जमीन्दार श्रीयमुनाप्रसाद शुक्ल के दरबार में अन्तकाल तक द्वारपंडित के पद पर नियुक्त रहे। आप बड़े धर्मनिष्ठ और मितव्ययी थे।

नैयायिक अपूछ झा—आप पुर्नियाँ जिले के सिरसिया ग्राम-निवासी

थे। आप अपने प्रान्त के नैयायिकों में अग्रगण्य थे। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे। श्रीनगर (पुर्नियाँ) की रानी साहबा (स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह की पूजनीया माता रानी जगरमा देवी) ने १६०२ ई० में कार्त्तिक-व्रत का उद्यापन किया था। उसमें सैकड़ो विद्वान् निमन्त्रित हुए थे। पंडित अपूछ झा नैयायिक भी आये थे। पंडित खुद्दी झा, पंडित श्रीकान्त मिश्र आदि मैथिल पंडितों की मध्यस्थता में दरभंगा-जिला-वासी एक प्रसिद्ध नैयायिक से आपका शास्त्रार्थ हुआ। आपका उपपादन अच्छा होने के कारण राजा साहब ने आपको गौरव-सूचक स्वर्णपदक सम्मान-पूर्वक प्रदान किया। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नित्यानन्द झा—आप मुजफ्फरपुर के धर्मसमाज स्कूल में ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

वासुदेव झा—आप चनौर ग्रामवासी महामहोपाध्याय शशिनाथ झा के बड़े भाई थे। मिथिलेश स्वर्गीय सर रमेश्वरसिंह के दरबार में आप ज्योतिषी के पद पर नियुक्त थे। समय २० वीं शताब्दी।

विश्वनाथ मिश्र—वासस्थान गोसपुर (भागलपुर)। विशिष्ट वैयाकरण और पौराणिक थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

फुदन चौधरी—वासस्थान 'महिषी' (भागलपुर)। आप व्याकरण, साहित्य और संगीत के मार्मिक विद्वान् थे। समय २० वीं शताब्दी।

विहारी पाठक—वासस्थान मुजौना (दरभंगा)। आप अच्छे वैयाकरण और साहित्य के ज्ञाता थे। आपके ग्राम के निवासी तथा सहपाठी यागेश्वर पाठक और लोकनाथ झा भी शब्द-शास्त्र में निविष्ट थे। समय २०वीं शताब्दी का आरम्भ।

नेना मिश्र—वासस्थान सिलौत—समस्तीपुर के समीप। व्याकरण के अच्छे पंडित और सदाचारी थे। समय २० वी शताब्दी।

यदुनाथ मिश्र—अच्छे वैयाकरण थे। रचित ग्रन्थ व्यञ्जनावाद-साहित्य। समय २० वीं शताब्दी का प्रथम भाग।

शशिपाल झा—आप मानेचौक (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। सिद्धान्त दृग्गणित में आपकी प्रतिभा विलक्षण थी। स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह आपको अपने दरबार मे नियुक्त करके आप ही से दृश्यगणितानुसार पञ्चाङ्ग बनवाते थे। समय २० वीं शताब्दी। आपका बनाया हुआ ग्रन्थ आल्हा छन्द में देवीचरित है।

देवीकान्त ठाकुर—आप अथरी (मुजफ्फरपुर) ग्राम के निवासी थे। व्याकरण और साहित्य के बड़े विद्वान् थे। आशुकवि तथा तान्त्रिक भी थे। पहले आप अमावाँ-राज्य (पटना) में संस्कृत-विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। तदनन्तर संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) में व्याकरण, सांख्य और पातञ्जलि पढ़ाने पर नियुक्त हुए। आपमें विलक्षण वाक्शक्ति थी। समय २०वीं शताब्दी का मध्यभाग। आपके द्वारा रचित देवीस्तुति, महिषासुरवध काव्य तथा पंडित रामावतार शर्मा-रचित शास्त्र-विरुद्ध कारिकावली का खंडन ग्रन्थ अप्रकाशित रूप में हैं। मैं राजकुमार के शिक्षक बाबू रामाधिकारीसिंह द्वारा निमन्त्रित होकर एक सभा में १६०६ ई० के लगभग एक बार अमावाँ-राजधानी गया था। आप से पहले-पहल वहीं भेंट हुई थी। आपकी अविलम्ब भावपूर्ण श्लोक-रचना का चमत्कार देखकर मुझे चकित होना पड़ा था।

ज्योतिषी बुद्धिनाथ झा—वासस्थान रामभद्रपुर (दरभंगा)। आप मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कालेज में ज्योतिष के अध्यापक थे। आपके रचित ग्रन्थ तारालहरी, प्रियालापकलाप तथा भ्रातृविलाप हैं। संस्कृत की व्युत्पत्ति भी आपमें अच्छी थी।

ज्योतिषी परमेश्वरीदत्त मिश्र—वासस्थान तिलाठी (नैपाल-राज्य, सप्तरी परगना)। आप प्राचीन ज्योतिषियों में अग्रगण्य थे। जन्मकुंडली, वर्ष-प्रवेश और प्रश्न का फल आप अच्छा बताते थे। आपकी बताई बहुत बातें समयानुसार ठीक मिलती थी। समय २० वी शताब्दी। आप आजीवन श्रीनगर (पुर्नियाँ) के राजा साहब के दरबार में रहे।

ज्योतिषी यदुनन्दन मिश्र—आप भी उक्त तिलाठी गाँव के ही निवासी थे। आप नैपाल के महाराज चन्द्रशमशेर जंगबहादुर के दरबार में पूजित थे। प्रश्न का फल आपका बहुत मिलता था। इससे प्रसन्न होकर महाराज ने आपको प्रचुर धन और ब्रह्मोत्तर दिया।

खड्गनाथ झा—आप परमानन्दपुर (पुर्नियाँ) के निवासी थे। व्याकरण और धर्मशास्त्र में आपकी योग्यता प्रशंसनीय थी। समय २० वीं शताब्दी। आप बड़े उचितवक्ता थे। आप वर्ष-भिक्षा लेने के लिये प्रतिवर्ष श्रीनगर (पुर्नियाँ) के नरेश राजा कमलानन्दसिंह के यहाँ आते थे। एक समय की बात है, आप श्रीनगर आये और सुना कि राजा साहब ने कुछ कर्ज लिया है। इसका आपके मन में बड़ा दुःख हुआ। आपने हितचिन्तना के खयाल से राजा साहब के निकट

विज्ञप्ति की और शीघ्र ऋण चुका देने का परामर्श दिया। आपकी इस सम्मति को राजा साहब ने अनधिकार चेष्टा समझकर अनसुनी कर दिया और नाराज होकर आपकी वर्ष-भिक्षा वन्द कर दी ! आपको वर्षभिक्षा वन्द होने का जरा भी रंज न हुआ, वल्कि अपने उचित भाषण पर हर्ष ही हुआ।

वदरीनाथ मिश्र—वासस्थान गोसपुर (भागलपुर)। आप व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य के गम्भीर विद्वान् थे। आपने अपने घर पर रहकर चिरकाल तक विद्यार्थियों को पढ़ाया। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी यदुनन्दन मिश्र (द्वितीय)—वासस्थान कठरा-तुसौल (दरभंगा)। आप व्यवहारकुशल न होने पर भी ज्योतिष में निपुण थे। पचगछिया (भागलपुर) इस्टेट के जमीन्दार रायबहादुर प्रियव्रतनारायणसिंह के आश्रित होकर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी वच्चेलाल झा—आप गुम्हों-पचाढ़ी (दरभंगा) के निवासी थे। प्राचीन ज्योतिषियों में आपका नाम प्रसिद्ध था। शास्त्रार्थी भी अच्छे थे। सिद्धान्त-भाग में आपकी सूझ विलक्षण थी। घर पर रहकर आपने बहुत दिनों तक विद्यार्थियो को योग्यतापूर्वक पढ़ाया। पश्चात् आप तारानगर (पुर्नियाँ) के जमीन्दार कुमार नित्यानन्दसिंह के दरवार में नियुक्त हुए।

एक वार आप आश्विन के नवरात्र में श्रीनगर (पुर्नियाँ) आये। मॉऊवेहट (दरभंगा) के वैदिक श्रीजयकृष्ण ठाकुर और आपमें एक श्लोक पर शास्त्रार्थ छिड़ गया। वैदिकजी कहते थे—"भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना। विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।" ज्योतिषीजी कहते थे—"भोज्ये भोजनशक्तिश्च रतिशक्तौ वराङ्गना। विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।" वैदिक कहते थे, हम ठीक कहते हैं; ज्योतिषी कहते थे—हम !

दोनों में वड़ी देर तक वादविवाद होता रहा। एक थे वैदिक, दूसरे थे ज्योतिषी। शास्त्रार्थ की निष्पत्ति होना कठिन था। अन्त में पंडित खुद्दी झा मध्यस्थ माने गये। दोनों ने प्रतिज्ञा की--"वे जो कहेंगे, हम स्वीकार करेंगे।"

पंडितजी कहीं वाहर गये थे। सन्ध्या का समय था। उनके आने पर वैदिकजी ने मुकद्दमा दायर किया। पंडितजी तो वड़े हास्यप्रिय थे। उन्होंने ज्योतिषी से कहा—"पहले आप पढ़िये।" ज्योतिषीजी ने श्लोक पढ़कर सुना दिया। तव पंडितजी ने कहा—"ज्योतिषीजी ! भोज्ये भोजनशक्तिश्च; भोज्य पदार्थ में तो भोजनशक्ति नहीं है। तव फिर इसके लिये आपको कुछ अध्याहार करना

पड़ेगा। यथा, भोज्यपदार्थे प्राप्ते सति भोक्तुर्भोजनशक्तिः इत्यादि। इसमें सप्तमी के साथ कर्त्ता के संयोग से तीन ही का वर्णन होता है। किन्तु वैदिकजी के पठित श्लोक में छः प्रधान वस्तुओं का वर्णन है। इसलिये आपके अर्थ से उनके अर्थ में चमत्कार है।"

ज्योतिषी चुप हो रहे। वैदिक अपनेको विजयी समझ बड़े प्रसन्न हुए। पंडितजी ने फिर कहा—"वैदिकजी! इस श्लोक की अन्तिम विवेचना तो अभी हुई ही नही। सुनिये, ज्योतिषीजी वृद्ध हैं, इनके प्राचीन पाठ में विशेष महत्त्व है। आशय यह कि भोज्य पदार्थ पाने पर उसमें भोजन करने की शक्ति, रतिशक्ति होने पर सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति, ऐसे ही धन प्राप्त होने पर दान देने की शक्ति—थोड़ी तपस्या का फल नहीं है। वैदिकजी के पाठान्तर में छः वस्तुओं का होना थोड़े तप का फल नही, इतना ही मात्र है। इसलिये जो चमत्कार ज्योतिषीजी के पठित श्लोक में है, वह विलक्षण भाव वैदिकजी के श्लोक में नही।"

यह सुनकर ज्योतिषीजी ने गद्गद कंठ से पंडितजी को आशीर्वाद देकर वैदिक से कहा—"हमसे फिर कभी वाद-विवाद न कीजियेगा।"

ज्योतिषीजी के वहाँ से टल जाने पर हमलोग खूब हँसे। वैदिक ने भी हमलोगों के हँसने मे योग दिया।

ज्योतिषी लालजी झा—वासस्थान मालपुर (मुजफ्फरपुर)। आप निर्लोभ होकर अपने यहाँ विद्यार्थियो को पढ़ाते रहे। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी रामप्रसन्न झा—वासस्थान बाघी (मुजफ्फरपुर)। आप सिद्धान्त-भाग के विशेष ज्ञाता थे। बाघी के जमीन्दार बाबू रामधारीप्रसाद से आपको आर्थिक सहायता मिलती थी। आप उक्त जमीन्दार के द्रव्य से निज-रचित पञ्चाङ्ग छपवाकर विना मूल्य योग्य व्यक्तियो में बाँटते थे। समय २० वीं शताब्दी।

ज्योतिषी चतुर्भुज मिश्र—आप दरभंगा शहर के निवासी थे। अपने घर पर रहकर विद्यार्थियो को पढ़ाया। दान लेने की इच्छा से कभी किसी दरबार में नहीं गये। आपकी प्रतिज्ञा थी,मिथिलेश बुलावेंगे तो जायँगे। पर उन्होंने न आपको बुलाया और न आप बे-बुलाये कभी उनके यहाँ गये। समय २०वीं शताब्दी।

ज्योतिषी मुक्तेश्वर झा—आप भी दरभंगा शहर के ही निवासी और ज्योतिषी चतुर्भुज मिश्र के सहपाठी थे। ज्योतिष में आपकी विद्वत्ता भी प्रशंसनीय थी।

अर्जुन मिश्र—आप सलमपुर ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण में तो आप निविष्ट थे ही, धर्मशास्त्र में भी आपकी असाधारण योग्यता

थी। पंडित श्रीकान्त मिश्र के आप विद्यागुरु थे। समय १६ वी शताब्दी का अन्त और २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

भाईलाल मिश्र—आप गँगुलिया (मुजफ्फरपुर) के वासी थे। व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य में आपका विशेष पांडित्य था। बड़े ही मिष्टभाषी और वाक्चतुर थे। दो विरुद्ध दलों में मेल-मिलाप करा देना आपके बाये हाथ का खेल था। धर्म में बड़ी निष्ठा थी। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

नचारी झा—प्राचीन वास बहेड़ी, नवीन वासस्थान नदौर (दरभंगा)। आप व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य के दुर्द्धर्ष विद्वान् थे। आपका पुराण बाँचना अत्यन्त हृदयग्राही होता था। चिरकाल तक आपने अपने यहाँ विद्यार्थियों को पढ़ाया। नदौर गाँव में मन्दिर बनवाकर उसमें सीताराम और हनुमान की मूर्त्तियो का वेद-विधि से स्थापन किया और जबतक जीवित रहे, अपने हाथ से उनकी पूजा-अर्चा की। समय २० वीं शताब्दी का मध्यभाग।

बबुजन ठाकुर—आप भी बहेड़ी-ग्राम-वासी और नचारी झा के सहपाठी थे। व्याकरण और साहित्य में आप बड़े विज्ञ थे। स्वभाव आपका अत्यन्त कोमल था। विद्यार्थियों को पढ़ाते समय आप कभी किसी पर रुष्ट नहीं हुए। समय २० वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

ज्योतिषी मन्नूलाल झा—आप सहोड़ा-पतोर (दरभंगा) के निवासी थे। अपने घर पर रहकर चिरकाल तक विद्यार्थियों को ज्योतिष पढ़ाया। समय २० वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

ज्योतिषी जगदीश झा—वासस्थान रामभद्रपुर (दरभंगा)। आप लक्ष्मीपुर ड्योढ़ी के संस्कृत-विद्यालय में ज्योतिष पढ़ाने पर नियुक्त थे। समय २०वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

सत्यदेव मिश्र—आप मधुबनी के समीप भक्षीग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण, धर्मशास्त्र, न्याय, वेदान्त और साहित्य के पंडित थे। मधुबनी-स्कूल में आप व्याकरण तथा साहित्य के प्रधानाध्यापक थे। मधुबनी-इस्टेट के संरक्षक जवाहर साहब तथा हीरा साहब के दरबार में आपका विशेष मान था। आश्विन के नवरात्र में आप पचगछिया (भागलपुर) रियासत में पुराण-पाठ करने के लिये प्रायः हर साल जाते थे। समय २० वी शताब्दी।

जुड़ान झा—आप सखवाड़ ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। व्याकरण

के पूर्ण पंडित थे। अपने घर पर निःस्वाथ भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाकर जीवन व्यतीत किया। समय २० वी शताब्दी का आरम्भ।

गुलाब झा—नडुआर (दरभंगा) के निवासी थे। न्याय, व्याकरण, साहित्य और धर्मशास्त्र में प्रशंसनीय योग्यता थी। काशीस्थ मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज के प्रधानाध्यापक थे। समय २० वीं शताब्दी।

महावैयाकरण शिवशंकर झा—वासस्थान ठाढ़ी (दरभंगा)। पहले आप अमृतसर (पंजाब) में राममल्ल श्यामदास संस्कृत-पाठशाला के प्रधानाध्यापक थे। तदनन्तर मिथिलेश द्वारा स्थापित लोहना विद्यापीठ (दरभंगा) के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। समय २० वीं शताब्दी।

गोविन्द ठाकुर (अपर)—वासस्थान सरिसव (दरभंगा)। आप व्याकरण के विद्वान् थे। साहित्य में भी कुशल थे। रचित ग्रन्थ 'भृङ्गदूत' है। समय २० वीं शताब्दी।

भवनाथ मिश्र—जमथैर ग्राम (दरभंगा) के निवासी थे। 'मिथिला-शब्द-प्रकाश' की रचना की। व्याकरण और साहित्य मे प्रशंसनीय पांडित्य था। समय २० वीं शताब्दी।

मोहन मिश्र—वास-स्थान पाहीटोल (दरभंगा)। समय २० वीं शताब्दी। रचित ग्रन्थ—'राधानयनद्विशती' जिसपर महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र की सुललित टीका है।

श्रीकृष्ण मिश्र—हिसार ग्राम (दरभंगा) के निवासी, व्याकरण के धुरन्धर पंडित थे। समय २० वीं शताब्दी का आरम्भ।

हली झा—हरिनगर (दरभंगा) के निवासी, बड़े वक्ता वैयाकरण थे। सभी शास्त्रों में विलक्षण प्रतिभा थी। कानपुर में स्वामी दयानन्द सरस्वती से मूर्त्तिपूजा, वर्णधर्म आदि पर आपका शास्त्रार्थ हुआ था। उसमे आप विजयी हुए। एक प्रचलित कवित्त का अन्तिम पद है—"हली ने हरायो कानपुर में संन्यासी को।" समय १९ वीं शताब्दी का अन्त और २० वी शताब्दी का आरम्भ।

राम झा—जलालपुर (मुजफ्फरपुर) के निवासी थे। व्याकरण, न्याय और साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। मुजफ्फरपुर संस्कृत कालेज में व्याकरण और साहित्य के शिक्षक थे। समय बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध। कुछ दिन आपने जिला स्कूल में हेड पंडित का भी काम किया था।

ज्योतिषी नन्दलाल झा—चनौर के निवासी थे। अपने घर पर रहकर

कुछ दिन छात्रों को ज्योतिष की शिक्षा दी। पुराण भी अच्छा बाँचते थे। समय २० वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

तर्कपंचानन लूटन झा—कोइलख-(दरभंगा)-निवासी। उद्भट शास्त्रार्थी विद्वान् थे। पूर्वोक्त खुदी झा के सहपाठी थे। इसी साल मरे हैं।

वैयाकरण दामोदर मिश्र तथा मधुसूदन मिश्र—वासस्थान गजहड़ा (दरभंगा)। व्याकरण के विद्वान् थे। रचित ग्रन्थ अनुपलव्ध।

नैयायिक जीवनाथ मिश्र—वासस्थान सुगौना (दरभंगा)। क्विन्स कालेज (बनारस) के न्यायाध्यापक थे।

द्वारकानाथ ठाकुर तथा रासधारी ठाकुर—वासस्थान गोसपुर (भागलपुर)। शब्दशास्त्र के विद्वान् थे और पद्धतियो के संशोधक।

ठक्कुर श्रीधर—आप मिथिला के महाराज नान्यदेव के अमात्य थे। संस्कृत के आप अच्छे विद्वान् और सुकवि थे। आपका बनाया हुआ संस्कृत ग्रन्थ 'सदुक्तिकर्णामृत' विशेष प्रसिद्ध है। अन्हरा-ठाढ़ी (दरभंगा) के भगवान् श्रीधर के मंदिर में खुदा हुआ शिलालेख आपकी याद दिलाता है—

मंत्रिणा नान्यदेवस्य क्षत्रवंशाब्जभानुना।
येनायं कारितः श्रीमान् श्रीधरः श्रीधरेण च॥

ठक्कुर अमीकर—आप ठकुर श्रीधर के वंश में बड़े ही विशिष्ट विद्वान् हुए। आप मिथिला के महाराज शिवसिंह के सान्धि-विग्रहिक मंत्री और कवि-कोकिल विद्यापति ठाकुर के प्रिय मित्र थे। विद्यापति ने आपको काव्य, अलंकार, कोष, व्याकरण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि में निपुण बताया है। उन्होंने आपके विषय में यहाँ तक कहा है—

कविकंठहार कल उच्चरइ,
अमिअ बरस्सइ अमिअकर॥

महात्मा बोधिदास—आपका नाम कवि-कोकिल विद्यापति ने अपने ग्रन्थ 'पुरुष-परीक्षा' में गौरव के साथ लिया है। आप उस ग्रन्थ में बड़े ही न्याय-निष्ठ, कृतविद्य, पंडित और गंगाजी को भी पवित्र करनेवाले बताये गये हैं।

घनानंद दास—आपका वासस्थान प्रायः सिमरा ग्राम (दरभंगा) में था। आप संस्कृत के प्रकांड पंडित और फारसी के भी विद्वान् थे। तंत्रशास्त्र में आपकी अच्छी प्रगति थी। तंत्रशास्त्र पर आपने संस्कृत में एक बहुत अच्छा और प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा जो आज तक अप्रकाशित है। समय उन्नीसवी शताब्दी।

ज्योतिषी गेनालाल मिश्र—ग्राम राधाउर (मुजफ्फरपुर)। ज्योतिष के अच्छे विद्वान् थे। ज्योतिष विषय पर दो-एक ग्रंथ भी आपने बनाये थे जो आज तक अप्रकाशित हैं। समय २० वीं शताब्दी।

नैयायिक बेचन झा—निवास-स्थान सहुरिया (दरभङ्गा)। सन् १९३८ ई० (बैसाख) में लगभग साठ की उम्र में आपकी मृत्यु हुई। आप न्यायशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे। आप धौतलब्ध* थे। बनारस में आपने बीस वर्ष तक संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया। आपको दो स्वर्णपदक भी मिले थे। वृद्धावस्था में लगभग बीस वर्ष तक घर पर ही रहे।

रघुपति उपाध्याय—आप बड़े ही अच्छे पंडित और सुकवि थे। भगवान् कृष्ण में आपकी अनन्य भक्ति थी। बंगाल के सुप्रसिद्ध सन्त गौराङ्गदेव चैतन्य महाप्रभु से आपकी भेंट हुई थी और उनके आग्रह से आपने भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में ये पद गाकर सुनाये थे—

> श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
> अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥
> कस्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।
> गोपतितनयाकुञ्जे गोपवधूटीविटं ब्रह्म॥

महामहोपाध्याय धीरेन्द्र उपाध्याय—आप बड़े ही उच्च कोटि के विद्वान् थे। उसी के अनुसार आपकी तपश्चर्या भी थी। आपने जमसम गाँव (दरभंगा) में एक विशाल पोखरा खुदवाकर चातुश्चरण-यज्ञ किया था। अबतक वह पोखरा तीर्थ समझा जाता है। इस सम्बन्ध में एक जनश्रुति भी है—यज्ञ समाप्त नहीं हुआ था, उसी समय सूर्य अस्त होने लगे, यह देखकर उपाध्यायजी ने चाकू को मन्त्रहित कर पृथ्वी में गाड़ दिया। यज्ञ की समाप्ति होने पर जब चाकू उखाड़ा गया तब रात को दस बज चुके थे। यज्ञान्त में आपने सुपारी के स्थान में सब लोगों को प्रचुर परिमाण में जायफल दिये थे। चाँदी का तुलादान भी किया था। आपकी यह कीर्ति-कौमुदी आजतक चमक रही है—

> न कोऽपिचातुश्चरणेसमर्थो न राजकीयासु तुलासु दक्षः।
> तवैव धीरेन्द्रयशःप्रतापाद्विभ्राजते सम्प्रति तीरभुक्तिः॥

* दरभगा-राज्याधीश मिथिलेश के यहाँ जब कोई मगलोत्सव (विवाहोपनयनादि) होता है तब पडितों को मिथिलाधीश स्वय अपने हाथ से धौत वस्त्र देकर सम्मानित करते हैं।

अन्य प्रसिद्ध स्वर्गीय पंडित—

केदारनाथ झा (अथरी)।

अयोध्या ठाकुर (बल्लीपुर)।

अयोध्यानाथ मिश्र (गमैल)।

दीनानाथ झा (लगमा)।

नैयायिक हरिपति झा (लोहना)।

तार्किक मीमांसक बलभद्र झा (लोहना)।

बन्धु झा वैयाकरण (उजान)।

दुःखमोचन झा वैयाकरण (कोइलख)।

वाणी झा वैयाकरण (कोइलख)।

हरिवंश झा वैयाकरण (रामभद्रपुर)।

मनभरण झा वैयाकरण (पुर्नियाँ जिला)।

बबुजन झा (उजान)।

नित्यानन्द झा।

भगीरथ झा (लोहना)।

महेश झा वैयाकरण (लगमा)।

धर्मशास्त्री वैयाकरण धनुर्धर झा (टटुआर)।

सदानन्द झा वैयाकरण (ठाढ़ी)।

नीरस झा (माँऊबेहट)।

चक्रधर झा। (सागरपुर)।

नैयायिक त्रिलोकनाथ ठाकुर (कोइलख)।

वैद्यनाथ झा (नडुआर)।

वैयाकरण तेजनारायण झा (बल्लीपुर)।

लोकनाथ चौधरी (मुरलियाचक)।

ज्योतिषी भगीरथ झा तथा लक्ष्मीकान्त झा (तरौनी)।

योगधर मिश्र (भक्षी)।

ताराचरण झा (मङ्गरौनी)।

शत्रुघ्न ठाकुर (कमौली)।

वैयाकरण रघुवर कुमर (कन्है)।

सुन्दर झा वैयाकरण (पिपरौली)।

वैदिक सुन्दरलाल झा (वेलौंजा)।
ज्योतिषी लेखनाथ कुमर (वाजितपुर)।
मनमोहन झा (बथुआ)।
वैयाकरण अभिराम मिश्र (सुहई हाजीपुर)
वैयाकरण तथा तान्त्रिक जीवनाथ ठाकुर (अथरी)।
ज्योतिषी छकौड़ी झा (रॉटी)।
वैयाकरण घीना झा (रॉटी)।
नैयायिक झिंगुर झा (कोइलख)।
विशिष्ट वैयाकरण गेनालाल मिश्र (रामनगर, पुर्नियाँ)।
देवीकान्त ठाकुर (अथरी)।
चन्द्रशेखर झा (माने)।

वर्त्तमान काल के जीवित प्रसिद्ध पंडित—

महामहोपाध्याय डाक्टर श्रीगङ्गानाथ झा—आप पाहीटोल ग्राम (दरभंगा) के निवासी हैं। अँगरेजी के यशस्वी विद्वान् होते हुए भी संस्कृत के लब्धकीर्त्ति विद्वान् हैं—अनेक शास्त्रों के पारंगत हैं। पहले आप मिथिलाधीश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर के लाइब्रेरियन थे। तदनन्तर इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कालेज के प्रोफेसर बहाल हुए। १९१८ ई० में डाक्टर वेनिस की मृत्यु के अनन्तर बनारस के गवर्नमेंट-संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। १९२३ ई० में प्रयाग-विश्वविद्यालय के प्रथम निर्वाचित 'वाइस-चांसलर' हुए।

१९१० ई० में, जब मैं इंडियन प्रेस (इलाहाबाद) में ट्रैन्सलेटर नियुक्त हुआ था, आपने त्रिवेणी-संगम से अनतिदूर जमीन खरीदकर 'मिथिला-भवन' नाम का एक रम्य भवन बनवाया था। गृह-प्रवेश के दिन मैं भी आपके द्वारा निमन्त्रित होकर महोत्सव में सम्मिलित हुआ था।

आप बड़े ही निरभिमान और सर्वप्रिय हैं। आपके रचित ग्रन्थ संस्कृत में भक्ति-कल्लोलिनी, शांडिल्य-सूत्र की टीका, प्रसन्नराघव नाटक की टीका, न्याय भाष्य की टीका, मंडन मिश्र-कृत मीमांसानुक्रमणी की टीका तथा हिन्दी में न्यायप्रकाश, वैशेषिक दर्शन, कवि-रहस्य आदि प्रसिद्ध हैं। आपके द्वारा अनूदित ग्रन्थ भी बहुत हैं जिनमें योगसार-संग्रह, सांख्यतत्त्व-कौमुदी, काव्यप्रकाश, योगभाष्य, छान्दोग्योपनिषद्, शाङ्करभाष्य, शबरभाष्य, प्रशस्तपादभाष्य (न्याय-



स्वर्गीय महामहोपाध्याय मुरलीधर झा (पृ० २३)



राजपंडित श्रीबलदेव मिश्र, दरभंगा (पृ० ३७)

कन्दली-सहित), न्यायभाष्य (वार्तिक-सहित), खण्डनखण्ड खाद्य, श्लोकवार्त्तिक, तन्त्रवार्त्तिक, वामनकाव्यालङ्कारसूत्र और तर्क-भाषा प्रसिद्ध हैं। मिथिला भाषा में भी वेदान्तदीपक नामक एक ग्रन्थ लिखा है। अँगरेजी में तो आपने अनेक स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी हैं।

महामहोपाध्याय नैयायिक बालकृष्ण मिश्र—आप नवटोल-सरिसव (दरभंगा) के निवासी हैं। सर्वप्रथम आप श्रीरमेश्वरलता-विद्यालय (संस्कृत-कालेज, दरभंगा) में अध्यापक नियुक्त हुए। तदनन्तर मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कालेज में न्यायशास्त्र के अध्यापक हुए। इस समय काशी-हिन्दूविश्व-विद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्रिन्सिपल के पद पर प्रतिष्ठित हैं। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र, मीमांसा, वेदान्त आदि अनेक शास्त्रों के पूर्ण विद्वान् हैं। स्वभाव आपका अत्यन्त सरल है। आपके रचित ग्रन्थों में एक 'लक्ष्मीश्वरी-चरित चम्पू काव्य' विशेष प्रशंसनीय है।

श्रीबालबोध मिश्र—आपका वासस्थान सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) के इलाके में कोकन गाँव है। आप अनेक शास्त्रों के पारंगत विद्वान् हैं। सम्प्रति काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों के अध्यापक हैं। आपके बनाये अनेक ग्रन्थों में एक 'रामलषणचरित काव्य' भी है, जो चोरौत के वर्त्तमान महन्त की प्रशंसा में लिखा गया है।

श्रीदीनबंधु झा—आप सरिसव ग्राम (दरभंगा) स्थित महारानी श्रीलक्ष्मी-वती विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् हैं। न्यायशास्त्र में भी आपकी अच्छी सूझ है। रचित ग्रन्थ—'रमेश्वरप्रतापोदय' और 'रसिक-मनोरञ्जिनी' प्रकाशित हैं।

व्याकरणाचार्य जगदीश झा—आप सतलखा-(दरभंगा)-निवासी महा-वैयाकरण गिरिधारी झा के पुत्र हैं। व्याकरण, न्याय और धर्मशास्त्र में आपकी अच्छी प्रगति है। आप चिरकाल से बलरामपुर स्टेट (युक्तप्रान्त) के संस्कृत-विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं।

बलदेव मिश्र—आप हरिपुर-(दरभंगा)-ग्राम-निवासी हैं। व्याकरण और साहित्य के पूर्ण विद्वान् हैं। अन्यान्य शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं। संस्कृत के अतिरिक्त आप हिन्दी और मातृ-भाषा मैथिली के भी बड़े अनुरागी हैं।

व्याख्यान आपका सारगर्भित और हृदयग्राही होता है। आप चिरकाल से दरभंगा-धीश महाराजाधिराज के सम्मानित राजपंडित हैं।

प्रयागदत्त झा—आप मोरवा-(दरभंगा)-निवासी वयोवृद्ध वैयाकरण हैं। नरहन-दरबार में आपका विशेष आदर था। आप अपने घर पर ही रहकर विद्यार्थियो को पढ़ाते हैं।

नैयायिक राधाकान्त झा—आप तुमौल (दरभंगा) के वासी हैं। न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। चिरकाल से काशी के एक संस्कृत-विद्यालय में न्यायाध्यापक हैं।

ज्योतिषी रघुनन्दन झा—आप लावापुर-(मुजफ्फरपुर)-ग्राम के निवासी हैं। ज्योतिःशास्त्र में निपुण तथा व्युत्पन्न हैं। आप अपने हाथ से मिथिलाक्षर में दशकर्म्मपद्धति लिखकर लीथो में छापकर बेचते हैं और दरिद्र पुरोहित को विना मूल्य भी देते हैं। जो मिथिलाक्षर नही पढ़ सकते, उन्हें मुफ्त नही देते। पञ्चाङ्ग भी हर साल स्वयं बनाकर छपवाते हैं।

श्रीरमेश झा—आप गङ्गौली-(दरभंगा)-निवासी श्रोत्रियकुलभूषण हैं। व्याकरण, साहित्य और धर्मशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं। कुछ दिन से पातेपुर श्रीरामप्रकाश-संस्कृत-विद्यालय में प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर विद्यार्थियो को पढ़ाते हैं।

गौरीनाथ झा—आप अच्छे वैयाकरण और साहित्यज्ञ हैं। पहले आप अपने घर पर रहकर छात्रो को शिक्षा देते थे। अब बनैली के राजकुमार श्रीकृष्णानन्दसिंह साहब के यहाँ सुलतानगंज (भागलपुर) में मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हैं। आपने वरसो 'गंगा' नामक सचित्र साहित्यिक पत्रिका का संचालन और सम्पादन किया था, मिथिला-प्रेस की स्थापना की थी। 'हलधर' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। वेदो का हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित किया था।

श्रीसीताराम झा—पुराणभूषण व्याकरणकाव्यतीर्थ। हैंठीबाली (दरभंगा)-वासी। मिथिला के पौराणिको में आप अग्रगण्य हैं। आप 'व्यास' कहे जाते हैं।

ज्योतिषी गेनालाल चौधरी—वासस्थान हावी-भौआड़ (दरभंगा)। ज्योतिषियो में आपकी वड़ी प्रतिष्ठा है। काशी के एक विद्यालय में ज्योतिष के अध्यापक हैं।

श्रीकान्त मिश्र—आप सोती-सलमपुर ग्राम (दरभंगा) के निवासी हैं।

व्याकरण, धर्मशास्त्र और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। पहले आप बनैली राज्य (पुर्नियाँ) के आश्रित थे। तदनन्तर श्रीनगर-नरेश राजा कमलानन्दसिह के दरबार में नियुक्त हुए। इस दरबार में आपका सम्मान अधिक था। राजा साहब की वंशावली का वर्णन संस्कृत-पद्यों में किया, जिसका नाम 'साम्बकमलानन्दकुलरत्न' काव्य है। श्लोक-संख्या एक सहस्र से कम न होगी। राजा साहब ने इस ग्रन्थ को अपने द्रव्य से छपवाया और पंडितजी को पुरस्कार-स्वरूप तीन हजार रुपये दिये, बहुमूल्य दुशाले आदि भी। आपका दूसरा चामत्कारिक ग्रन्थ 'लक्षबन्ध' है। आप कुछ दिन काशीवास करके सम्प्रति नब्बे बरस की आयु में अपने घर ही पर रहकर नित्य नियमानुसार पूजापाठ करते हैं।

दुःखमोचन झा—करियन-(दरभंगा)-निवासी। जोधपुर (राजपूताना) के संस्कृत-कालेज में अध्यापक रह चुके हैं। संस्कृत और हिन्दी में आपकी लिखी कई पुस्तकें छप चुकी हैं।

नैयायिक शिवेश्वर झा—लालगंज-(दरभंगा)-निवासी हैं। स्वर्गीय महाराज सर रमेश्वरसिंह (दरभंगा) के बड़े स्नेहभाजन थे। गणेश्वर झा न्यायाचार्य आपके विद्वान् सुपुत्र हैं।

उपेन्द्र झा—तरौनी-(दरभंगा)-निवासी। व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों के आचार्य हैं।

रामचन्द्र मिश्र—व्याकरण, साहित्य और मीमांसा के आचार्य तथा न्याय और वेदान्त के शास्त्री हैं। प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। सीवान (छपरा) के संस्कृत-विद्यालय में प्रधानाध्यापक हैं।

जटाशंकर झा—बरही-(दरभंगा)-निवासी। व्याकरण-न्यायाचार्य, राजेन्द्र-संस्कृत-विद्यालय (गया) के प्रधानाध्यापक हैं।

नमोनारायण झा—संस्कृत-विद्यालय (मधुबनी, दरभंगा) के प्रधान अध्यापक हैं। चकफतेहा-(मुजफ्फरपुर)-निवासी। वैयाकरण और नैयायिक हैं। आप ही के गाँव के व्याकरण-सांख्याचार्य गणेश मिश्र अमरपुर (भागलपुर) के संस्कृत-विद्यालय के प्रधानाचार्य हैं।

उग्रानन्द झा—ककरौर-(दरभंगा)-निवासी वैयाकरण और नैयायिक हैं। काशी में बनैली-राज्य (पुर्नियाँ) का जो श्यामा-मंदिर है उसी के संस्कृत-विद्यालय में अध्यापक हैं।

सदानन्द झा—वैयाकरण और नैयायिक हैं। गुरुकुल, वैद्यनाथधाम (देवघर) में प्रधानाध्यापक हैं। उपर्युक्त उग्रानन्द झा आपके सहपाठी हैं। आप-लोगों की शिष्य-परम्परा बहुत विस्तृत है।

घूटर झा—मढ़िया-(दरभंगा)-निवासी। व्याकरण और साहित्य के बहुत अच्छे विद्वान् हैं। ग्रैजुएट भी हैं। पहले हरद्वार के ऋषिकुल में संस्कृताध्यापक थे। आजकल लखनऊ-विश्व-विद्यालय के संस्कृत-विभाग में हैं।

ज्योतिषी नागेश्वर झा—मोहना-(दरभंगा)-निवासी। आप पूर्वोक्त तूफानी झा के विद्वान् सुपुत्र हैं। फलित ज्योतिष के पारंगत विद्वान् हैं।

वैयाकरणशिरोमणि कपिलेश्वर मिश्र—सोती-सलमपुर-(दरभंगा)-निवासी। कानपुर के संस्कृत-विद्यालय में कई साल तक अध्यापक थे। शान्ति-निकेतन-विश्वभारती (बंगाल) में भी बरसों संस्कृताध्यापक रह चुके हैं। आजकल पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) के संस्कृत-विभाग में हैं। आपके ग्रन्थ वेदान्तसूत्र-संस्करण (६ जिल्दों में) और मैथिली में 'सीतादाइ' प्रसिद्ध हैं। वयोवृद्ध बहुदर्शी विद्वान् हैं।

ज्योतिषी अभिराम मिश्र—राधाउर (मुजफ्फरपुर) के महँगू-संस्कृत-विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। आपका बनाया पञ्चाङ्ग प्रतिवर्ष छपता है। आप ज्योतिषी गेनालाल मिश्र के सुपुत्र हैं।

आद्यादत्त ठाकुर, एम्० ए०—लखनऊ-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में हैं। हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक हैं। दरभंगा जिले के निवासी हैं।

ज्योतिषी श्री तुरन्तलाल झा—वासस्थान बलहा (दरभंगा)। अवस्था ५७ वर्ष। आप एक गरीब तथा कुलीन गृहस्थ के घर में उत्पन्न हुए। आपने १६ वर्ष तक का समय खेल में ही बिताया। १७ वे वर्ष में प्राचीन वैष्णव विद्वान् स्वनामधन्य ज्योतिषी किशोरी झाजी से दीक्षा पाकर आपका विद्यारम्भ हुआ। आप बड़े परिश्रम से विद्या पढ़कर विशिष्ट विद्वान् हो गये। आपने अपने घर पर ही एक विद्यालय खोल रक्खा है जिसमे आप स्वयं ही अध्यापनकार्य करते हैं।

ज्योतिषी सुन्दरलाल झा—ग्राम मकुनाही (मुजफ्फरपुर)। आप ज्योतिष-शास्त्र के बहुत अच्छे विद्वान्, भक्त और संस्कृत के सुकवि हैं। आपके बनाये ग्रन्थों में सुतिहारा-माहात्म्य, उचेठ-माहात्म्य और सुन्दरीय सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। आप वयोवृद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से मैथिल पंडित हैं जिनके नाम-ग्राम आदि

मैं नहीं जानता। इसलिये जिन विद्वानों के नाम इस लेख में नहीं हैं वे कृपया क्षमा करें; क्योंकि एक मनुष्य के लिये सब विद्वानों का परिचय जानना संभव नहीं है। फिर भी जितने पंडितों के उल्लेख हो चुके हैं उनसे यह पता लगता है कि प्राचीन काल से ही मिथिला में संस्कृत के अध्ययनाध्यापन की जो प्रणाली चली आती है वह आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

अब, मिथिला के प्रधान संस्कृत-विद्यालयों के मुख्य-मुख्य अध्यापकों के परिचय–

धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) में सम्प्रति नियुक्त अध्यापक ये हैं–

ठाढ़ी ग्राम-निवासी रविनाथ झा व्याकरण, न्याय आदि अनेक शास्त्रो के गम्भीर विद्वान् हैं।

बद्रीनाथ झा सुकवि, व्याकरण और साहित्य के मर्मज्ञ।

दयानाथ झा ज्योतिषाचार्य तथा साहित्यज्ञ।

जटेश्वर झा मीमांसा आदि अनेक शास्त्रों के ज्ञाता।

रमाकान्त झा।

यमुना त्रिपाठी।

सुरेश द्विवेदी।

अनन्त मिश्र, एम्० ए०।

जगदीश ठाकुर।

कृष्णेश्वर झा।

अम्बिकादत्त चतुर्वेदी।

गोपीनाथ झा।

परमेश्वर त्रिपाठी।

श्रीरमेश्वरलता-विद्यालय (दरभंगा) के वर्त्तमान प्रिन्सिपल विविध-शास्त्र-निष्णात मुक्तिनाथ मिश्र हैं। अध्यापकों में महेन्द्रनाथ झा, उपेन्द्रनाथ झा, नित्यानन्द मिश्र, काशीनाथ ठाकुर, रघुनाथ झा आदि अध्यापन-कला में बड़े प्रवीण हैं।

संस्कृत-विद्यापीठ, लोहना (दरभंगा) के वर्त्तमान प्रिन्सिपल (गोसपुर—भागलपुर-निवासी) त्रिलोकनाथ मिश्र व्याकरण, साहित्य, न्याय आदि अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। संस्कृत-कविता रचने में आपकी समता करनेवाला इस समय शायद ही कोई होगा। आप बड़े प्रियभाषी तथा परिहासप्रिय हैं। अध्यापक—नन्दन मिश्र, दुर्गाधर झा, बदरीनाथ झा, कुमरलाल झा तथा बदरीनाथ ठाकुर शास्त्राध्यापन में कुशल सुयोग्य विद्वान् हैं।

श्री शारदाभवन-विद्यालय, नवानी (दरभंगा) के लब्धप्रतिष्ठ प्रधान अध्यापक जगदीश झा, अध्यापकवर्ग—षष्ठीनाथ झा, यदुपति मिश्र, ईश्वरनाथ झा।

संस्कृत-विद्यालय, रॉटी (दरभंगा) के प्रधान अध्यापक निरसन मिश्र वैयाकरणशिरोमणि तथा अन्यान्य शास्त्रों के प्रकांड विद्वान् हैं। अध्यापकवर्ग में कुलानन्द मिश्र बड़े तेजस्वी विद्वान् हैं।

श्रीरमेश्वरी-विद्यालय, राजनगर (दरभंगा) के प्रधान अध्यापक सहदेव झा हैं। सहकारी अध्यापक—अनिरुद्ध झा तथा लक्ष्मीकान्त झा वैयाकरण हैं।

श्रीनन्दन शर्मा ठाढ़ी-ग्राम-निवासी इस समय काशी के तारामन्दिर-विद्यालय में अध्यापक हैं। भूपनारायण झा वैयाकरण श्यामामन्दिर (काशी) के विद्यालय में प्रधानाध्यापक हैं।

ज्योतिषाचार्य श्रीसीताराम झा चौगमा ग्राम-निवासी हैं। संन्यासी-संस्कृत-विद्यालय (काशी) में अध्यापक हैं। संस्कृत की व्युत्पत्ति और काव्य-कौशल प्रशंसनीय है। मिथिला भाषा में आपकी कविता बड़ी हृदय-ग्राहिणी होती है। यदि आपको मिथिला भाषा का अनुपम कवि कहें तो अत्युक्ति न होगी। आपके रचित काव्य की अनेक पुस्तिकाएँ हैं। ज्योतिष के अनेक प्राचीन ग्रन्थो पर आपकी टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

ज्योतिपाचार्य श्रीदेव चौधरी (चनौर ग्राम-वासी) गया के खरखुरा-संस्कृत-पाठशाला में ज्योतिष के प्रधान अध्यापक हैं। इसी विद्यालय में मिथिला के दो और विद्वान् अध्यापक रह चुके हैं—बलदेव मिश्र ज्योतिषाचार्य (बनगॉव, भागलपुर) और विद्यानाथ झा (परवाना, दरभंगा)।

माऊँवेहट (दरभंगा) के वैदिक विश्वनाथ ठाकुर पहले कलकत्ते में रहकर वेदाध्यापन करते थे। इन दिनो भी आप वहीं हैं।

ढरिया ग्रामवासी अजबलाल झा वैदिक तथा सत्यदेव झा वेदाचार्य पहले लक्ष्मीपुर ड्योढ़ी (दरभंगा) की पाठशाला में अध्यापक थे, आजकल काशी में वेद के शिक्षक नियुक्त हैं।

शाहपुर-निवासी वेदाचार्य दामोदर झा गिद्धौर के महाराज के दरबार में नियुक्त थे और विद्यार्थियो को वेद पढ़ाते थे। सम्प्रति शाहपुर में ही वेद पढ़ाते हैं।

नवहथ ग्राम-(दरभंगा)-निवासी ज्योतिषाचार्य षडानन झा गिद्धौर-नरेश स्वर्गीय महाराज चन्द्रमौलीश्वरप्रसादसिंह के दरबार में राज-ज्योतिषी थे। अब भी

वहीं हैं। स्वर्गीय महाराज ने आपके ज्योतिःशास्त्र के कथित फलाफल पर प्रसन्न हो पचीस बीघे ब्रह्मोत्तर भूमि देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-ग्रामवासी ज्योतिषी श्री कुशेश्वर कुमर ज्योतिष और काव्य में कुशल हैं। पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) के संस्कृत-विभाग में रहकर आपने कर्मकांड की पद्धतियों को संशोधित करके छपवाया, और पञ्चाङ्ग भी बहुत दिनों तक निर्माण करते रहे। व्यवहार-मञ्जूषा, कृत्यमञ्जरी आदि धर्मशास्त्र-सम्बन्धी आपकी पुस्तकें संग्रहणीय हैं। मैथिली भाषा में आपने शिक्षा-सोपान नामक पद्यमय पुस्तक लिखी है जो पुस्तक-भंडार से प्रकाशित है।

ज्योतिषी श्यामनारायण कुमर भी उपर्युक्त ग्राम के निवासी हैं। सम्प्रति बाघी (मुजफ्फरपुर) के स्कूल में संस्कृत के अध्यापक हैं।

ज्योतिषी अनूपलाल झा (बरहा ग्रामवासी) पुपरी की संस्कृत-पाठशाला में अध्यापक हैं।

ज्योतिषाचार्य बबुआजी मिश्र (कोइलख ग्रामवासी) कलकत्ता-विश्वविद्यालय में मैथिली भाषा के प्रोफेसर हैं।

भवानीपुर-निवासी ज्योतिषाचार्य हरिनन्दन झा कानपुर के संस्कृत-विद्यालय में चिरकाल से ज्योतिष का अध्यापन करते हैं।

घोसरामा ग्रामवासी मुकुन्द ठाकुर वैयाकरण हैं। कुछ दिन सागर (मध्यप्रदेश) की संस्कृत-पाठशाला में अध्यापक थे। अब घर ही पर रहकर विद्या-व्यवसाय करते हैं।

कृष्णवार ग्रामवासी धनुर्द्धर झा वैयाकरण हैं। कन्हौली रियासत (मुजफ्फरपुर) में रहकर दरबार का काम करने के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी पढ़ाते हैं।

पूर्वोक्त जीवित पंडितों के अतिरिक्त मिथिलास्थ अनेक संस्कृत-पाठशालाओं में जो विद्वान् नियुक्त हैं उनके नाम-ग्राम से मैं परिचित नहीं हूँ। इसलिये केवल पाठशालाओं का नामोल्लेख कर इस लेख को समाप्त करता हूँ—

दरभंगा जिले में—राजकीय विद्यालय, मधुबनी। वंशीराज-विद्यालय, पचाढ़ी। संस्कृत-विद्यालय, जनकपुर। लक्ष्मीश्वरी-विद्यालय, लक्ष्मीपुर। कुशेश्वर-संस्कृत-विद्यालय, कुशेश्वरस्थान। विक्रम-ब्रह्मचर्याश्रम, कमौली। संस्कृत-विद्यालय, ठाढ़ी। संस्कृत-विद्यालय, लहेरियासराय। जनार्दन-संस्कृत-विद्यालय, दरभंगा। रमेश्वर-विद्यालय, कपिलेश्वर-स्थान। ताराभवन-विद्यालय, गन्धवारि। जानकीभवन-

पाठशाला, सतघरा। भवानीभवन-विद्यालय, गोनौली। सीतारामीय विद्यालय, सुगौना। संस्कृत-विद्यालय, तरौनी। श्रीकामेश्वर-विद्यालय, फुलपरास। संस्कृत-विद्यालय, बलहा। संस्कृत-विद्यालय, खोजपुर। संस्कृत-विद्यालय, महरैल। संस्कृत-विद्यालय, बाराही-स्थान। त्रिलोकेश्वरी-विद्यालय, चनौर। विश्वेश्वरी-विद्यालय, नरहन। संस्कृत-विद्यालय, रोसड़ा। अन्नपूर्णा-विद्यालय, हावीभौआड़। सरस्वती-सदन विद्यालय, माऊँबेहट। महावीर-विद्यालय, दलसिंगसराय। दुर्गा-विद्यालय, बहेड़ा। शारदा-भवन विद्यालय, परजुआरि। परमेश्वरी-विद्यालय, अन्हरा-ठाढ़ी। केदार-विद्यापीठ, शुम्भा-ड्योढ़ी। संस्कृत-विद्यालय, रघुनाथपुर। संस्कृत-विद्यालय, मऊ। जनकनन्दिनी-विद्यालय, पटसा। भागवत-विद्यालय, गाराटोल। संस्कृत-विद्यालय, घोघरड़िया। सरस्वती-भवन विद्यालय, बरहा। सच्चिदानन्द-विद्यालय, सेलीबेली। सरस्वती-विद्यालय, चकबेदौलिया। स्पर्शमणि-संस्कृत-टोल, रहुआ-सग्राम आदि।

मुजफ्फरपुर जिले में—जानकी-विद्यालय, सीतामढ़ी। तिलक-ब्रह्मचर्याश्रम, गन्नीपुर। विक्रम-संस्कृत-टोल, चिकनौटा। संस्कृत-विद्यालय, रीगा। रामचन्द्र-विद्यालय, पातेपुर। संस्कृत-विद्यालय, पकड़ी। लक्ष्मीनारायण-विद्यालय, चोरौत। रत्नेश्वर-विद्यालय, हाजीपुर। संस्कृत-विद्यालय, पुपरी। संस्कृत-विद्यालय, कुमरबाजितपुर। संस्कृत-टोल विद्यालय, भगवानपुर।

मुँगेर जिले में—सरस्वती-विद्यालय, बेगूसराय। संस्कृत-विद्यालय, मेहदा शाहपुर। संस्कृत-विद्यालय, गिद्धौर।

भागलपुर जिले में—संस्कृत-विद्यालय, भागलपुर। दुर्गा-विद्यालय, भ्रमरपुर। संस्कृत-टोल, नौगछिया। संस्कृत-विद्यालय, सुखसेना। संस्कृत-विद्यालय, धमदाहा। कलानन्द-संस्कृत-विद्यालय, सुलतानगंज।

पुर्नियाँ जिले में—संस्कृत-विद्यालय, नंदनपुर। संस्कृत-विद्यालय, पलाशी। संस्कृत-विद्यालय, डोरिया। संस्कृत-विद्यालय, वेलवाड़ी। संस्कृत-विद्यालय, ढंगरी। संस्कृत-विद्यालय, वरदबट्टा। संस्कृत-विद्यालय, तिलाठी। संस्कृत-विद्यालय, चम्पा-नगर ड्योढ़ी।

चम्पारन जिले मे–संस्कृत-विद्यालय, बेतिया। संस्कृत-विद्यालय, वगहा।

गाँव-गाँव मे जो संस्कृत-पाठशालाएँ स्थापित हैं, उनका उल्लेख स्थानाभाव से नहीं कर सका। विहार के अन्य जिलो के संस्कृत-विद्यालयो में भी कितने ही मैथिल पंडित हैं। यहाँ तक कि भारत के अन्य प्रान्तों में भी हैं।

मिथिला के कुछ भक्तशिरोमणि सिद्ध योगिराज—

योगिराज रघुवर गोसाईं—आप तरौनी के निवासी थे। योग-क्रिया में बड़े कुशल थे। आपको वाक्-सिद्धि प्राप्त थी। सभी शास्त्रों में आपकी प्रगति थी। आप शास्त्रार्थ में कभी-कभी मध्यस्थ भी माने जाते थे।

एक समय की बात है, आप सिंहेश्वर-स्थान (भागलपुर) में किसी पर्व पर गये थे। आप जहाँ जाते थे, आपके दर्शनों के लिये लोगों की भीड़ लग जाती थी। सब लोग आपके आगे अपना दुखड़ा रोने लग जाते थे। एक ब्राह्मण आपके पैरों पर गिरकर रोने लगा। उसका एक ८–१० वर्ष का बालक किसी रोग से आक्रान्त होने के कारण सूखकर काँटा हो गया था। उसने उसके आरोग्य के लिये प्रार्थना की। आपने कुछ देर सोचकर कहा,—"कोठवार मिट्टी नित्य इसके बदन में मलो। अच्छा हो जायगा।" मिट्टी लगाने से ही वह कुछ दिनों में नीरोग हो गया। ऐसे ही कितने लोगों का उपकार आप किया करते थे। समय २० वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

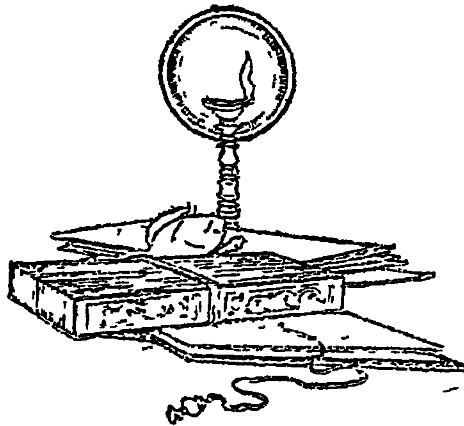
भक्तशिरोमणि लक्ष्मीनाथ गोसाईं—आप बनगाम—परसरमा (भागलपुर) के निवासी थे। आप बड़े भगवद्भक्त और महात्मा थे। आपके बनाये भजन और प्रभाती गीत मिथिला के घर-घर में गाये जाते हैं।

हँकडू गोसाईं—आप तरौनी (दरभंगा) के निवासी थे। आपका समय विशेषतः भगवद्भजन में ही व्यतीत होता था।

महन्त साहब-राम झा—आप कुसुमौल ग्राम के निवासी थे। आपने भगवद्भक्ति-सम्बन्धी बहुत भजन (गीत) बनाये हैं। समय १९ वीं शताब्दी का अन्त।

योगिराज मनमोहन गोसाईं—आप मधेपुरा के समीपवर्त्ती कहरा (भागलपुर) के निवासी हैं। जब काशी में ज्योतिष पढ़ते थे, तभी आपके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। अनेक साधु-महात्माओं की कृपा से आप आत्मज्ञान प्राप्त करके योगाभ्यास करने लगे। आप इन दिनों पोखरे के किनारे एक बगीचे में तृणकुटीर बनाकर उसी में अपनी नित्य-क्रिया करते हैं। सुखी घर के होने पर भी आपने विवाह न करके सदा के लिये ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया। वार्त्तालाप में लोग आपको तंग किया करते थे। इसलिये आपने मौन-व्रत धारण कर लिया है। आप दर्शनीय पुरुष हैं। साल में दो-एक बार आप काशी आदि तीर्थों में जाते हैं। समय २० वीं शताब्दी।

यह लेख मैंने अपनी स्मृति-शक्ति के आधार पर लिखा है। बचपन से बुढ़ापे तक जो कुछ देखा-सुना, सब लिपिबद्ध कर दिया। जो सामग्री मेरे साथ ही लुप्त हो जाती, उसे हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित कर दिया। अब आगे अनुसंधान की आवश्यकता है। साहित्यान्वेषक यदि श्रम करेंगे तो अभी सैकड़ों पंडित मिलेंगे। इस लेख में जिन पंडितों और ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं, उनके विषय में बहुत कुछ मतभेद सम्भव है; पर मैंने तो विद्वानों का केवल ध्यान इधर आकृष्ट करने के लिये तालिका मात्र तैयार कर दी है, आगे का काम अनुसन्धान-कर्त्ता करते रहें। मैं स्वयं यह बात भली भाँति जानता हूँ कि अभी असंख्य पंडितों का नामोल्लेख छूट गया है, पर एक ही मनुष्य सब बातों का ज्ञाता नहीं हो सकता। यदि अधिकारी सज्जन अपनी-अपनी स्मृति-शक्ति के अनुसार ऐसी तालिका तैयार कर डालें तो सबका मिलान करके एक प्रामाणिक पुस्तक तैयार की जा सकती है। मैंने तो अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु को प्रकाश में लाने की चेष्टा मात्र की है। इस वस्तु को विस्मृति के गर्भ से निकालकर साहित्यानुरागियों के समक्ष उपस्थित करना ही मेरा अभीष्ट था। जिन महानुभावों को इस विषय में कुछ विशेष जानना या खोजना हो वे कृपया 'मिथिला-मिहिर' का मिथिलाङ्क (मार्गशीर्ष, संवत् १६६२, सन् १६३६ ई०), 'मिथिला-दर्शन' (श्री शशिनाथ चौधरी—लिखित), 'तिरहुत का इतिहास' (रायबहादुर श्यामनारायणसिंह-लिखित, अँगरेजी-पुस्तक) तथा 'मिथिलाभाषामय इतिहास' (पंडित मुकुन्द झा बख्शी-लिखित) देखने का कष्ट करें।





वैदिक काल का बिहार

[१]

महामहोपाध्याय पंडित सकलनारायण शर्मा, लेकचरर, कलकत्ता-विश्वविद्यालय

मीमांसा दर्शन में लिखा है कि वेदों में इतिहास अथवा किसी देश अथवा किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। उनके शब्दों के सामान्य व्यापक अर्थ का ग्रहण होता है—

"परं श्रुतिसामान्यमात्रम्"

विद्वान् लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ के द्वारा इतिहासादिक की झलक पाते हैं। हम भी उसी शैली के अनुसार वैदिक काल के बिहार का एक चित्र अङ्कित कर रहे हैं।

वैदिक समय में बिहार दीनदुःखियों का आश्रयस्थल था। यजुर्वेद कहता है कि मगध देश के लोग रोते-कलपते मनुष्यों की खोज-खबर लें—"अतिक्रुष्टाय मागधम्" (यजु०)

ऋषित्वप्राप्ति के लिये विश्वामित्र ने बकसर (आरा) में तपस्या की थी तथा श्रीरामचन्द्र ने उसकी रक्षा की थी—"विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव" (निरुक्त)। विश्वामित्र 'सुद' बड़े दानी थे। कहते हैं कि उन्होंने जिस पिजवन-सुत राजा की पुरोहिती की थी, वह भागलपुरी था; भागलपुर के नाथनगर के पास उसकी राजधानी थी।

दक्षिणी बिहार में जंगल और पहाड़ बहुत हैं। उनमें कोल-भील-सौंताल अधिक रहते थे, उनमें पोते की बीमारी अधिक होती थी। वे ईश्वर और परलोक नहीं मानते थे। अनार्य और नास्तिक थे। वेदों में उनके देश का नाम 'कीकट' (कुछ नहीं करनेवाला) है। वे गौएँ पालते थे। उनके दूध से यज्ञादिक नहीं होते थे। वे सूद पर लोगों को कर्ज देते थे। भारत में उनकी प्रसिद्धि धनिकों में थी। धन के कारण उनके देश का नाम 'मगध' हो गया। घृणाव्यञ्जक 'कीकट' नाम लुप्त हो गया। 'मग' शब्द का अर्थ सूद है। उसका लेनेवाला 'मगध' है। इसमें 'ध' का अर्थ धारण करनेवाला है। ऋग्वेद में विश्वामित्र के नाम से एक मंत्र है कि मग—सूद के लिये धन देनेवालों का धन छीन लें और यज्ञों में खर्च करें; यद्यपि उनका धन नीची शाखा—नीच जाति वालों का है—

"किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु नाशिरं दुह्रे न जपन्ति धर्म्मम्।
आनोभर प्रमगन्दस्य वेदो नैचा शाखं मघवन् रन्धयानः॥"

(ऋ०)

"कीकटानाम देशोऽनार्यविशेषः। कीकटाः किं कृताः।
किं क्रियाभिरिति प्रेप्सा वा।''''मगन्द कुसीदी। प्रार्दयत्याण्डौ।"

(निरुक्त)

बड़े आश्चर्य की बात है कि वैदिक काल में बिहार का एक प्रान्त जगत्कर्त्ता ईश्वर माननेवाला नहीं था और यज्ञ नहीं करता था। अन्त में वही पर यज्ञेश्वर-विरोधी बौद्ध-जैनो का प्राबल्य बड़े जोरशोर से हुआ।

हिन्दू-जाति सूर्य की पूजा करती है। बिहार में भगवान् सूर्य के कई मन्दिर हैं। वेदों में जो विष्णु शब्द मिलता है वह सूर्य का वाचक है। गया शहर में जो विष्णुपद है उसकी चर्चा प्राचीन निरुक्तकार और्णनाभ ने की है। उनका सङ्केत वामन-अवतार से है। उनका एक पैर गया में विष्णुपद स्थान पर पड़ा था। वेदों में गय शब्द का अर्थ बेटा होता है। इसीलिये गया में बेटा पिंड-दान करता है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वामनजी का आश्रम बकसर में था। उनके नाम से प्रसिद्ध एक शिवलिङ्ग वहाँ की जेल के पास हैं। यदि विष्णु का अर्थ सूर्य किया जाय तो देवमूँगा आदि स्थानों में होनेवाली सूर्य-पूजा प्राचीन वैदिक प्रणाली का स्मरण दिलाती है—

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्"

(यजुर्वेद)



"पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाक पूणिः
समारोहणे गयशिरसीत्यौर्णनाभः"
(निरुक्त)

मिथिलाधिपति जनकजी बड़े भारी ज्ञानी और दानी थे। बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा हुआ है कि गार्ग्य ऋषि काशीराज के पास जाकर बोले कि मैं तुम्हें जनक के समान बना दूँगा; तुम मुझसे शिक्षा ग्रहण करो। पर वे स्वयं जनकजी के समान नहीं थे।

जनकजी ने अपने यज्ञ में ऋषियों से कहा कि जो ब्रह्म-निरूपण में समर्थ होगा उसे एक हजार गौएँ दूँगा। याज्ञवल्क्यजी के अतिरिक्त किसी को साहस नही हुआ। वहाँ भारत के विद्वान् इकट्ठे थे; पर निखिलविद्यानिष्णात जनक के सामने बोलने को तैयार नहीं हुए—"यो वो ब्रह्मिष्ठः एहतागाएद्जताम्"।

वैदिक काल में वेदान्त में मिथिला प्रधान (बृ० उ०) स्थान रखती थी। उस समय ब्राह्मणों के समान क्षत्रिय वेदवेत्ता होते थे।

वेद में गौतम और अहल्या की कथा आई है। इसी अहल्या का उद्धार रामचन्द्रजी ने किया था। यह बात वाल्मीकि-रामायण में है। गौतम का आश्रम सारन-जिले* के गोदना स्थान में था। उन्होंने वहीं पर न्याय-सूत्रों की रचना की थी। "क्रतुकथसूत्रान्तातृठक्"—अष्टाध्यायी के इस सूत्र से नैयायिक शब्द बनता है और सिद्ध करता है कि गौतमजी के पहले वैदिक काल में भी न्यायशास्त्र का अस्तित्व था; उन्होंने संग्रह मात्र कर दिया।

अष्टाध्यायी के बनानेवाले पाणिनि पटने के प्रसिद्ध पंडित उपवर्ष के विद्यार्थी थे। वे बिहार से पूर्ण परिचित थे। उनके पहले वैदिक काल में भी पटना था, पर उसका नाम कुसुमपुर था; क्योंकि वहाँ फूल अधिक होते थे। उसी का नाम कई शताब्दियों के बाद पाटलिपुत्र हो गया। वह दो भागों में बँटा था—पूर्वी और पश्चिमी पाटलिपुत्र। यह बात पाणिनि के 'रोपधेतोप्राचाम्' सूत्र से सिद्ध होती है। इसका उदाहरण 'पूर्व पाटलिपुत्रक' है। उस समय पाटलिपुत्र गाँव नहीं था—नगर था; क्योंकि 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' में पाटलिपुत्र (पटना) के लिये नगर शब्द का प्रयोग हुआ है।

* वाल्मीकि-रामायण की अनुश्रुति के अनुसार यह स्थान दरभंगा जिले के अहियारी गाँव के समीप पड़ता है, क्योंकि रामचन्द्रजी गगा पार करके विशाला (वैशाली) होते हुए गौतमाश्रम मे आये थे। स्कन्दपुराण और बृहद्विष्णुपुराण से भी यही प्रमाणित है।
—सम्पादक

'वरणादिभ्यश्च'—इसके गणपाठ में बिहार के गया, चम्पा आदि नगरों के नाम है। बिहार के पूर्वी प्रान्त को अङ्ग तथा पश्चिमी को मगध कहते थे। वैदिक साहित्य मे ये नाम आये हैं।

वैदिक काल में शिव, स्कन्द आदि की मूर्त्तियाँ कारीगर बनाते थे। पूजा के लिये जो मूर्त्तियाँ बनती थीं उन्हें 'शिव' अथवा 'स्कन्द' कहते थे और बेचने के लिये जो बनाई जाती थीं उनको 'शिवक' अथवा 'स्कन्दक' नाम दिया जाता था। 'जीविकार्थे चापण्ये'—इसके महाभाष्य में उक्त प्रयोग मिलते हैं। गुफाओं तथा मूर्त्तियों के बनाने में बिहार निपुण था। मुँगेर (मुद्गलपुर) तथा भागलपुर (भगदत्तपुर) के पहाड़ों में उक्त ढंग की कारीगरी दीख पड़ती है।

लाखो वर्ष पहले बिहार में दो बड़े जनपद थे। वहाँ के लोग बड़े धनी और शिक्षित थे। उक्त जनपदो का नाम करुष और मलद था। वहाँ के निवासी बड़े भारी शैव थे। वे 'याते रुद्र शिवातनू:' (यजुर्वेद) तथा 'पुरमिदं धृष्णवर्चत' (सामवेद) के अनुसार मूर्त्तिपूजक थे। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ये दोनो बकसर से कुछ दूर पर थे। रामचन्द्रजी को मिथिला जाने के समय राह में उनके चिह्न मिले थे। इन दोनो के नाम पर दो गाँव 'कारीसाथ' और 'मसाढ' अभी तक विद्यमान हैं। उनमे पृथ्वी से हजारो शिवलिङ्ग निकलते हैं। ई० आइ० रेलवे में कारीसाथ स्टेशन है और आरा जिले में है। हमने वहाँ के एक शिवलिङ्ग को देखा है जिनका रंग बदला करता है।

वैदिक काल में नौ जंगल बड़े प्रसिद्ध थे जिनमें ऋषि वेद-पाठ किया करते थे। उनमे तीन बिहार में थे—चम्पारण्य (चम्पारन), सारङ्गारण्य (सारन) और अरण्य (आरा)। पहल में चम्पा, दूसरे में हरिण और तीसरे में वृक्षश्रेणियाँ थी।

बिहार में गंगा, सरयू तथा शोण तीन नदियाँ थी। शोण का नाम उस समय मागधी था। वह पाँच पहाड़ो के बीच में बहता था—

सुमागधी नदी पुण्या मगधान् विश्रुता ययौ।
पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते॥

(वाल्मीकि-रामायण)

उस समय पटने से दूर पूर्व की ओर शोण था ; अब पटने से पश्चिम है। इस शोण के किनारे फसल नहीं होती , उस समय अधिक उपज थी। वैदिक काल में बिहार का आदर विद्या, तपस्या और सम्पत्ति तीनो के लिये था।

---

[२]

श्रीरमानाथ झा, एम. ए, बी एल्, काव्यतीर्थ, लाइब्रेरियन, राज-लाइब्रेरी, दरभंगा

हमारे प्रदेश का नाम 'बिहार' मुसलमानों का दिया हुआ है। कोषों में 'विहार' शब्द का एक अर्थ 'सुगतालय' या 'बौद्धमठभेद' मिलता है। आदिकाल से ही यह प्रदेश बौद्धधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र एवं बौद्धधर्मावलम्बियों की पवित्र विहार-भूमि था।

बारहवीं शताब्दी के अन्त में, जब मुसलमानों ने इस प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया, यहाँ पालवंशीय राजाओं की अधीनता में बौद्धों का ही प्राबल्य था। इस प्रदेश में असंख्य बौद्ध विहारों को देखकर—मालूम होता है, उन्हीं विहारों के कारण—इस प्रदेश का नाम 'बिहार' पड़ा।

किन्तु, वैदिक साहित्य की पर्यालोचना से पता लगता है कि उस प्राचीन काल में बिहार के अन्तर्गत तीन भिन्न-भिन्न प्रान्त थे। गङ्गा के दक्षिण-पश्चिम में 'मगधों' का राज्य था, और पूर्व में 'अङ्गो' का, तथा उत्तर में 'विदेहों' का, जिसको 'सदानीरा' (गडकी) कोसलो के राज्य से पृथक् करती थी। अतएव आजकल जिसे हमलोग 'बिहार' कहते हैं, वैदिक युग में वही मगध, अङ्ग और विदेह नामक तीन स्वतन्त्र प्रान्तों में विभक्त था।

वैदिक साहित्य के प्राचीनतम अंश ऋग्वेदसंहिता में इन तीनों में से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। उसके तीसरे अष्टक के ५३ वें सूक्त की १४ वीं ऋचा में 'कीकट' देश और उसके राजा 'प्रमगन्द' की बड़ी निन्दा की गई है। निरुक्तकार 'यास्क' इस कीकट देश को अनार्यों का निवास-स्थान कहते हैं तथा 'सायणाचार्य' उन्हीं की व्याख्या का अनुसरण करते हुए अपने भाष्य में 'कीकट' शब्द का एक अर्थ तो वही देते हैं और दूसरा अर्थ यह कहते हैं कि "कीकट वे नास्तिक हैं जो याग, दान, होम इत्यादि क्रियाओं पर श्रद्धा नही करते और कहते कि खाओ, पिओ, मौज करो; यही लोक सब कुछ है; परलोक कोई चीज नहीं"। किन्तु वायुपुराण में गया-माहात्म्य के प्रकरण में कहा है—

कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुनः।
च्यवनस्याश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम्॥

इससे स्पष्ट भासित होता है कि कीकट दक्षिण विहार ही का अति प्राचीन नाम है तथा वेदो के पंडित वेबर, विल्सन, ग्रिफिथ प्रभृति पाश्चात्य विद्वानो का भी यही कहना है कि 'कीकट' मगध का ही पुराना नाम है।

मगध और अङ्ग देशों के स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में मिलते हैं। उस वेद के ५ वें कांड के २२ वें सूक्त के १४ वें मन्त्र मे ज्वर से कहा गया है कि वह गन्धारियों को, मूजवन्तो को, अङ्ग देश-वासियो को तथा मगधदेश-वासियों को प्राप्त हो। फिर उसी वेद के १५ वें कांड के दूसरे अनुवाक् में व्रात्यमहिमा-प्रकरण में कहा गया है कि पूर्व दिशा में मागध व्रात्यो के मन्त्र हैं, दक्षिण दिशा में मागध व्रात्यो के मित्र हैं, पश्चिम दिशा में मागध व्रात्यो के हास हैं और उत्तर दिशा में मागध व्रात्यो के स्तनयित्नु (मेघ) हैं।

यजुर्वेद की वाजसनेयि-संहिता (अध्याय ३०, कंडिका ५) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३–४–१–१) में पुरुषमेध यज्ञ के प्रसङ्ग में कहा है कि अतिक्रुष्ट के लिये मागध को बलि देना। वाजसनेयि-संहिता के उसी अध्याय की २२ वीं कंडिका में अशूद्र और अब्राह्मण मागध को पुंश्चलियो, कितवो और क्लीवो के साथ प्राजापत्य पुरुषमेध के लिये वध्य कहा है।

श्रौतसूत्रों में भी मगधदेश-वासियों को बहुत नीचा स्थान दिया गया है। बौधायन धर्मसूत्र (१–२–१३) में मगध और अङ्ग देशों के निवासी संकीर्णयोनि कहे गये हैं।

कात्यायन (२२–४–२२) और लाट्यायन (८–६–२८) के श्रौतसूत्रों में कहा है कि दक्षिणा के समय व्रात्यों का धन मागधदेशीय ब्रह्मबन्धुओ को देना। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन श्रौतसूत्रो में मागधदेशीय ब्राह्मण ब्राह्मण न कहे जाकर ब्रह्मबन्धु कहे गये हैं, जिसकी व्याख्या यों की गई है कि ये लोग शुद्ध ब्राह्मण नहीं, किन्तु जातिमात्रोपेत ब्राह्मण हैं। तथापि, मगध में भी सद्ब्राह्मण रहते थे—यथा कौशीतकी आरण्यक (७–१४) में कहा है कि मध्यम प्रातिबोधी-पुत्र मगधवासी थे। किन्तु, इससे भी यही प्रतिपादित होता है कि ऐसे सद्ब्राह्मणों का मगध में रहना उस समय असाधारण था।

इन सभी स्थलों में जहाँ-जहाँ मागध शब्द आया है, उसकी व्याख्या भाष्यकारों ने कई प्रकार से की है। क्षत्रिय-कन्या मे वैश्य से उत्पन्न संकर को मागध कहते हैं (मनु १०।११ तथा गौतम ४।१७) और गायकों का भी नाम मागध है। सम्भव है, मगध कीही निन्दा के लिये इस वर्णसंकर का नाम मागध दिया गया हो तथा मगध देश मे उन दिनों अच्छे गवैये होते हों; किन्तु जहाँ-जहाँ स्पष्ट मगध देश का ही उल्लेख है वहाँ तो सन्देह का अवकाश नहीं रहता कि इससे क्या अभिप्रेत है।

एतावता यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में मगधदेश का स्थान बहुत ही हेय था। सर्वत्र उस देश की और उस देश के निवासियों की निन्दा ही की गई है। इसका हेतु क्या ? यह कहना कि यह देश आर्य-संस्कृति के अन्तर्गत नहीं था, सङ्गत न होगा; क्योंकि इन्ही उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि इस देश में भी शुद्ध नहीं तो कम-से-कम जातिमात्रोपेत ब्राह्मण लोग तो रहते ही थे—

पंडित वेबर (Indische Studien 1, 52, 53 etc. & Indian Literature 79, 111, 112 etc.) इसके दो कारण देते हैं—

प्रथमतः उनका कहना है कि बौद्धधर्म का उदय और उसका प्रचार मगध में ही हुआ था, इसलिये ब्राह्मण लोग इस देश की ओर घृणा की दृष्टि से देखते थे। श्रौतसूत्रों के प्रसङ्ग में यह कहना कदाचित् सत्य भी हो, किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद की संहिताओ के प्रसङ्ग में यह कहना असङ्गत होगा; क्योंकि इन संहिताओं की रचना निस्सन्देह बुद्धदेव के उदय से बहुत पहले ही हो चुकी थी। और, अगर इसीलिये मगध की इतनी निन्दा की गई है तो फिर काशी और कोसल की भी निन्दा क्यों नहीं है ? बुद्ध स्वयं कोसल देश के थे और पहले-पहल उन्होंने काशी में ही अपने धर्मप्रचार का कार्य आरम्भ किया तथा काशी और कोसल में भी बौद्धधर्म का प्रसार मगध से कुछ कम अथवा पीछे नहीं हुआ था।

उनका दूसरा अनुमान यह है कि मगध में आर्यों ने अपना अधिकार जमाया सही, आर्यों की संस्कृति भले ही यहाँ भी आई; किन्तु अनार्यों का यहाँ लोप नहीं हुआ। ब्राह्मणों की अधीनता स्वीकार करके भी यहाँ के अनार्य निवासियों ने अपना अस्तित्व कायम रक्खा। इसी कारण से ब्राह्मणों का प्राबल्य यहाँ नहीं हो पाया।

पार्जिटर साहब (J. R- A.S. 1908, P.851–853) तो इससे और आगे बढ़ गये हैं। उनका कथन है कि मगध में पूर्व की ओर से अनार्यों का आना-जाना बराबर जारी था। वे लोग जलमार्ग से यहाँ आते ही रहे। इसी कारण से यहाँ आर्यों की प्रधानता दृढ नहीं होने पाई। यह युक्ति-सङ्गत भी प्रतीत होता है। तभी तो ब्राह्मणों के विरुद्ध बुद्धदेव का उदय होते ही मागधों ने इस नये धर्म को स्वीकार कर लिया जिससे वे ब्राह्मणों की अधीनता से छुटकारा पावे।

इसके प्रसङ्ग में सबसे विशद और युक्तियुक्त विवेचना डाक्टर ओल्डनबर्ग ने अपने 'बुद्ध' नामक ग्रन्थ में की है। उनके कहने का सारांश यही है कि संहिता-काल में आर्य-सभ्यता का केन्द्र भले ही सरस्वती और दृषद्वती के बीच के देशों में—जिन्हें मनु 'ब्रह्मावर्त' कहते हैं—रहा हो, किन्तु ब्राह्मण-काल में इस संस्कृति का

केन्द्र कुरु तथा पञ्चाल और उसी के आसपास के देशों में था, जिसे मनु 'ब्रह्मर्षि देश' कहते हैं और जिस देश के प्रसङ्ग में उनका कहना है कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २-२०

ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) में भी आर्य देशों के लिये 'अस्यां ध्रुवायां प्रतिष्ठायां' विशेषणों का प्रयोग किया गया है ; शतपथ-ब्राह्मण में तो वारबार कुरु-पञ्चाल ही के ब्राह्मणों की प्रशंसा की गई है और (१-४-१-१४) स्पष्ट कहा गया है कि पहले ब्राह्मण लोग 'सदानीरा' को पार कर पूर्व की ओर नहीं गये थे—इन प्राच्य देशों में आर्यों का आना पीछे हुआ और कुरुपञ्चाल के ब्राह्मण लोग, जो आर्य-संस्कृति के नेता थे, इन प्राच्य देशों की ओर उसी दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से आगे बढ़े हुए लोग पिछड़े हुए लोगों को देखते हैं ।

इसके साथ-साथ, जब हम वेबर और पार्जिटर के मतों का विचार करते हैं तब यही प्रतीत होता है कि यद्यपि मगध में भी आर्यों ने अपना अधिकार स्थापित किया, तथापि आर्य-सभ्यता यहाँ जड़ जमाने नही पाई—मगधवासियों ने कुरु-पञ्चालों की तरह आर्य-संस्कृति को नही अपनाया—यहाँ के निवासियों ने वैदिक धर्म के रहस्यों को नहीं समझा, अर्थात् मगध ने आर्य-सभ्यता को पूर्णरूपेण ग्रहण नही किया । यही कारण है कि वैदिक साहित्य में सर्वत्र मगध की केवल निन्दा ही मिलती है और इसीसे यहाँ बौद्ध प्रभृति वेद-विरुद्ध धर्मों का बड़ी प्रवलता के साथ प्रसार हुआ ।

परन्तु, विहार का एक प्रान्त ऐसा है जहाँ आर्यों का आगमन बहुत पीछे हुआ सही, किन्तु जो अत्यन्त द्रुत वेग से आर्य-संस्कृति को अपनाकर बहुत शीघ्र ही आर्य-सभ्यता का एक प्रधान केन्द्र बन गया ; वह प्रान्त विदेहों का है । किसी भी संहिता में 'विदेह' का उल्लेख नहीं मिलता । तैत्तिरीय (२-१-४) और काठक (१३-४) संहिताओं में 'वैदेह्य', 'वैदेही' और 'वैदेह' पद मिलते हैं; पर वे सभी गायों और वैलों के लिये आये हैं । ऐतरेय ब्राह्मण (८-१४) में जहाँ आर्य देशों की चर्चा की गई है वहाँ भी 'विदेह' का पृथक् उल्लेख नहीं है । किन्तु काशी, कोसल, मगध और अङ्ग के साथ यह भी 'प्राच्य देशों' के ही अन्तर्गत कर दिया गया है।

विदेहों का उल्लेख सवसे पहले शतपथ-ब्राह्मण (१-४-१-१० से १६) में मिलता है । वहाँ कहा गया है कि विदेघ (जो प्रायः विदेह का ही प्राचीन रूप था) माथव (जो प्रायः मिथु की सन्तान थे या यह माधव का ही प्राचीन रूप

हो) अपने पुरोहित गौतम राहूगण के साथ वैश्वानर अग्नि का अनुसरण करते-करते सरस्वती के तीर से सदानीरा के तीर तक आये। इससे पहले ब्राह्मण लोग सदानीरा को पारकर इसके पूर्व के देशों में नही गये थे। वैश्वानर ने भी ऐसा नहीं किया; किन्तु उन्होंने 'विदेघ माथव' से कहा कि तुम इसको पारकर पूरब की ओर जाओ और वही अपना निवासस्थान स्थिर करो। विदेघ ने अपने पुरोहित के साथ ऐसा ही किया। वह देश 'विदेह' कहलाने लगा और सदानीरा विदेह तथा कोसल की सीमा हो गई।

इस कथा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विदेह में आर्यों का आगमन कैसे हुआ। किसी भी देश में आर्यों के आगमन का ऐसा स्पष्ट इतिहास समस्त वैदिक साहित्य में कहीं उपलब्ध नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि विदेह में आर्यों का आगमन पीछे हुआ है।

किन्तु विदेह शीघ्र ही आर्य-सभ्यता का प्रधान केन्द्र हो गया। विदेहों के राजा जनक अपने समय के ब्रह्मज्ञानियों में सबसे बड़े गिने जाते थे। वे विद्या के अनन्य प्रेमी और ब्राह्मणों के बड़े ही पोषक थे। उनके दरबार में कुरु-पञ्चाल से बड़े-बड़े ऋषि आया करते थे। शतपथ-ब्राह्मण के शेष अध्यायों में जनक ही के दरबार की कथाएँ हैं।

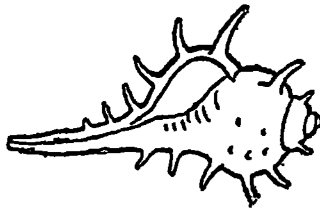
किन्तु केवल ब्रह्मज्ञानी राजा ही के कारण नहीं, विदेह की प्रतिष्ठा उन दिनों यहाँ के ऋषि याज्ञवल्क्य के हेतु भी समस्त आर्यावर्त्त में व्याप्त हो गई थी। राजा जनक के दरबार के ये प्रधान ऋपि थे। ब्रह्मज्ञानियों में इनके समान दूसरे ऋषि नहीं थे। इन्होने कुरु-पञ्चाल के ऋषियों से ही सभी विद्याएँ पढ़ी थी, किन्तु राजा जनक के दरबार में अनेक शास्त्रार्थों में इन्होंने कुरु-पञ्चाल के सभी ब्राह्मणों को बार-बार परास्त किया था। केवल अध्यात्मविद्या में ही नहीं, वैदिक क्रिया-कलाप में भी इनके वचन सर्वथा प्रमाण समझे जाते थे। यदि पुराणों की बात मानी जाय तो शुक्लयजुर्वेद के प्रवर्त्तक ये ही याज्ञवल्क्य हैं। शतपथ-ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् में अनेक स्थलों पर जनक और याज्ञवल्क्य की ब्रह्मसम्बन्धी विवेचनाओं तथा याज्ञवल्क्य और भिन्न-भिन्न ऋषियों के शास्त्रार्थों का वर्णन है।

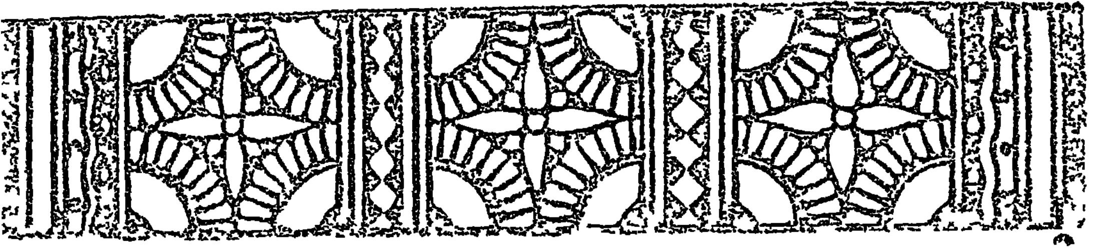
वैदिक साहित्य में विदेह के दूसरे-दूसरे राजाओं और ऋषियों की भी चर्चा है; किन्तु विदेह के यथार्थ गौरव ये दो ही हैं—जनक और याज्ञवल्क्य। केवल शतपथ-ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् ही में नहीं, तैत्तिरीय ब्राह्मण (३–१०–६६) में भी राजा जनक की बड़ी प्रशंसा की गई है और वह भी इनके ब्रह्मज्ञान ही के लिये।

कौशीतकी उपनिषद् (४–१) में एक कथा है, जो संक्षेप में शतपथ-ब्राह्मण (१४–५–१) में भी कही गई है। गर्ग के वंश में 'वालाकि' नाम के एक बड़े भारी ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, जो सभी देशों का पर्यटन कर अन्त में काशी के राजा अजातशत्रु के दरबार में पहुँचे। राजा से उन्होंने कहा—"आपके सामने मैं ब्रह्म का निरूपण करता हूँ।" इससे राजा इतना प्रसन्न हुए कि दृप्त वालाकि को केवल इतना ही कहने के लिये एक हजार गौएँ दे दी और कहा कि देखो, तब भी लोग 'जनक' 'जनक' चिल्लाते फिरते हैं।"

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विदेहों के राजा जनक की कीर्त्ति उन दिनो उनके ब्रह्मज्ञान के लिये इतनी फैल गई थी कि आसपास के राजा लोग उनसे ईर्ष्या करने लग गये थे। इससे यही सिद्ध होता है कि वैदिक मन्त्रो के द्रष्टा ऋषि-मुनि भले ही 'ब्रह्मावर्त्त' में रहे हो, वैदिक क्रिया-कलाप का विस्तार भले ही 'ब्रह्मर्षि देश' में हुआ हो; किन्तु जो ब्रह्मज्ञान आर्य-संस्कृति का चरम उत्कर्ष है—जिसके प्रसाद से आर्य-सभ्यता की महत्ता आज भी देश-विदेश में सर्वत्र अक्षुण्ण है, उसका विकास उस वैदिक युग में मुख्यतया विदेह में ही हुआ था। यह बात नहीं है कि उन दिनों दूसरे ब्रह्मज्ञानी थे ही नही, किन्तु सभी ब्रह्मज्ञानियों के सिरताज विदेहों के राजा जनक ही थे और उन्हीं के सभापंडित ऋषि याज्ञवल्क्य थे ,तथा अध्यात्म-विद्या का अन्तिम पाठ पढ़ने उन दिनों समस्त आर्यावर्त्त के ऋषि लोग विदेह में ही आया करते थे।

बिहार के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि वह गौरव-मंडित विदेह, जिसे अब मिथिला या तिरहुत कहते हैं, बिहार ही का एक अंग है। वैदिक काल के बिहार में विदेह ही गौरव का स्थान था। उसके सामने बिहार के अन्य प्रान्तो का स्थान प्राचीन साहित्य में महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ता।





आस्तिक और नास्तिक

श्रीगोपाल शास्त्री, दर्शनकेसरी, काशी-विद्यापीठ

संस्कृत वाङ्मय के परिशीलन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में ईश्वर मानने या न माननेवालों के लिये आस्तिक या नास्तिक शब्द का प्रयोग नहीं होता था; क्योंकि ईश्वर शब्द का प्रयोग परमेश्वर-अर्थ में इधर आकर बहुत अर्वाचीन समय से संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त पाया जाता है। वेद से लेकर पाणिनि-सूत्र तथा पतञ्जलि के महाभाष्य तक ईश्वर शब्द का प्रयोग स्वामी-अर्थ में, राजा-अर्थ में तथा खास किसी देव के अर्थ में पाया जाता है।

यद्यपि यह इतिहास का विषय है तथापि इतना यहाँ कह देना अप्रासङ्गिक न होगा कि पौराणिक काल में आकर शैव सिद्धान्त में शिव के लिये जो ईश्वर शब्द का प्रयोग था वही पौराणिक काल के बाद इधर आकर शैव धर्म द्वारा भारतीय संस्कृति में प्रविष्ट हो गया है, एवं शनैः-शनैः परमेश्वर-अर्थ में भी खूब प्रचलित हो गया है। अब कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें ईश्वर शब्द से परमेश्वर का अर्थ न लिया गया हो। इसकी पुष्टि के लिये थोड़े-से प्रमाणों का संग्रह करना उचित प्रतीत होता है।

पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है—"अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः"—उसीसे अस्ति-नास्ति शब्द सिद्ध होते हैं। उसके टीकाकारों ने 'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः' तथा 'नास्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स नास्तिकः', अर्थात् जो परलोक माने वह 'आस्तिक' और जो न माने वह 'नास्तिक', न कि जो ईश्वर को माने वह 'आस्तिक' और जो न माने वह 'नास्तिक'; ऐसा ही अर्थ दार्शनिक दृष्टि वालों के अतिरिक्त सर्वसाधारण जनता के लिये वेद-काल में भी प्रसिद्ध था,

यह कठोपनिषद् से प्रतीत होता है—जब नचिकेता यम से तीसरा वर माँगता है तब यही कहता है कि "येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥" अर्थात्—"मरने के पश्चात् आत्मा रहता है, ऐसा एक आस्तिक पक्षवाले कहते हैं, नहीं रहता है ; ऐसा दूसरे नास्तिक पक्षवाले कहते हैं। हे यमराज ! मैं आपके द्वारा अनुशासित होकर यह जान जाऊँ कि इन पक्षों में कौन पक्ष ठीक है, यही उन वरों मे से तीसरा वर है"—इत्यादि।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक काल से परलोक मानना न मानना ही आस्तिक-नास्तिक का व्यावहारिक अर्थ था।

मनु ने तो वेद की निन्दा करनेवाले को ही नास्तिक कहा है (नास्तिको वेद-निन्दकः)। और भी, पाणिनीय सूत्रों में ईश्वर शब्द का प्रयोग—"अधिरीश्वरे १।४।९७, स्वामीश्वराधिपतिः २।३।३९, यस्मादधिकं यस्यचेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २।३।९, ईश्वरे तोसुन् कसुनौ ३।४।१३, तस्येश्वरः ५।१।४२ इत्यादि सूत्रों के उदाहरणों में ईश्वर शब्द स्वामी-अर्थ मे ही प्रयुक्त होता है। पतञ्जलि के उदाहरणों में ईश्वर का अर्थ राजा ही पाया जाता है—जैसे, 'तद् यथा लोक ईश्वर आज्ञापयति ग्रामादस्मान्मनुष्या आनीयन्तामिति'—राजा आज्ञा देता है कि इस गाँव से मनुष्यों को ले आओ—इत्यादि उदाहरणों से ईश्वर शब्द का राजा ही अर्थ होता है।

इस अवस्था मे ईश्वर शब्द के परमेश्वर-अर्थ में प्रयुक्त होने से पहले ही दर्शनसिद्धान्तों के आविष्कर्त्ता दार्शनिकों की दृष्टि में 'ईश्वर माननेवाला आस्तिक और उसका न माननेवाला नास्तिक'—यह अर्थ हो सकता है—ऐसा कैसे कहा जा सकता है, जब उनकी उत्पत्ति एवं स्थिति 'ईश्वर माननेवाले आस्तिक और न माननेवाले नास्तिक'—इस भाव में आस्तिक-नास्तिक-शब्दों के प्रयुक्त होने के पहले ही सिद्ध हो चुकी है ? इसी कारण ज्ञात होता है कि वैशेषिक (कणाद), सांख्य (कपिल, और पूर्वमीमांसक (जैमिनि) ने अपने-अपने दर्शनों में ईश्वर का उल्लेख तक नहीं किया है। नैयायिक गौतम ने तथा योगी पतञ्जलि ने क्रमशः "ईश्वरः कारण-पुरुषः कर्माफल्यदर्शनात्"; "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"—इस तरह आनुषङ्गिक ईश्वर शब्द का प्रसङ्ग उठाया है। (इन सूत्रों में परमेश्वरार्थक ईश्वर शब्द के प्रयोग से इसकी पाणिनि से प्राचीनता भी विचारणीय है तथा महा-भाष्यकार पतञ्जलि और योगसूत्रकार पतञ्जलि की अभिन्नता भी विचारणीय है)।

व्यासजी के ब्रह्मसूत्रों में तो नहीं, किन्तु उनकी श्रीमद्भगवद्गीता में ईश्वर

शब्द का प्रयोग—कहीं राजा अर्थ में, कहीं परमेश्वर अर्थ में—दोनों तरह का पाया जाता है—जैसे, ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी'—यहाँ (मालिक) राजा-अर्थ में; 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'—यहाँ परमेश्वर-अर्थ में; यह भी विचारणीय है। वस्तुतः देखा जाय तो इनके सिद्धान्तों में ईश्वर कुछ आवश्यक वस्तु नहीं दीखता।

कणाद ने अपने छः पदार्थों के ज्ञान से—धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्म-सामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यांतत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्" (१-१-४०)- इस सूत्र से मुक्ति की प्राप्ति बतलाई है—(इस सूत्र में अभाव नामक सप्तम पदार्थ का उल्लेख नहीं है) और गौतम ने अपने सोलह पदार्थों के तत्त्व-ज्ञान से-"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वानान्निःश्रेयसाधिगमः" (१-१-१) इस सूत्र द्वारा मुक्ति का उपाय बतलाया। कपिल ने प्रकृति-पुरुष के भेद-ज्ञान से "दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धक्षयातिशययुक्तः तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात्' (का॰ २)। तथा पतञ्जलि ने भी चित्तवृत्ति-निरोध "योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः" 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (१।३) आदि से मोक्ष-प्राप्ति बतलाई है। इसी प्रकार जैमिनि ने धर्मानुष्ठान से नित्यसुखरूपी मोक्ष की सत्ता मानी है। ईश्वर का पूरा उपयोग तो इन दार्शनिकों के सिद्धान्तों में आता ही नहीं।

आगे चलकर भाष्यकारों तथा अन्यान्य टीकाकारों के साथ ही अन्यान्य ग्रन्थकारों (न्यायकुसुमाञ्जलिकार, ईश्वरानुमानचिन्तामणिकार) ने वैशेषिक और न्याय-दर्शन में ईश्वर का प्रवेश प्रत्यक्षतः कर दिया है; किन्तु मीमांसा और सांख्य में तो आगे चलकर भी कहीं किसी ग्रन्थ में प्रत्यक्ष ईश्वर-सिद्धि का उल्लेख नहीं है।

यहाँ एक बात विचारणीय प्रतीत होती है। वैशेषिक और सांख्य में शङ्कराचार्य से पहले ही कोई-कोई दार्शनिक ईश्वर को निमित्तकारण मानकर इनके सिद्धान्तों में भी ईश्वर का प्रवेश करा चुके थे; क्योंकि वेदान्त-सूत्र के मूल सूत्रों में जहाँ सांख्य और वैशेषिक मत के 'रचनानुपपत्तेश्च' (२।२।१) इत्यादि सूत्रों द्वारा प्रधान और परमाणु में स्वाभाविक प्रवृत्ति माननेवालों का खंडन है, वहाँ प्रधानकारणवादी और परमाणुकारणवादी को ही हैसियत से जगत् का कारण केवल प्रधान (प्रकृति) जड़ नहीं हो सकता, उनमें ये दोष हैं' इत्यादि बातें दिखाई गई हैं। और, उन सूत्रों से किसी भी प्रकार यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सांख्य और वैशेषिक सिद्धान्तों में भी ईश्वर का प्रवेश है।

परन्तु, आगे चलकर, बौद्धमतों के खंडन कर देने पर भी, पशुपति (माहेश्वरदर्शन) मत के खंडन में 'पत्युरसामञ्जस्यात्' सूत्र पर शङ्कराचार्यजी भाष्य करते हुए कहते हैं—'केचित्तावत्सांख्ययोगाव्यपाश्रयात् कल्पयन्ति प्रधान-पुरुषयोः अधिष्ठाता केवलं निमित्तकारणमीश्वरः इतरेतर विलक्षणाः प्रधानपुरुषेश्वरा इति तथा वैशेषिकादयोपि केचित् कथञ्चित्स्वप्रक्रियानुसारेण निमित्तकारण ईश्वर इति वर्णयन्ति'—अर्थात् "कोई-कोई सांख्य-योग-सिद्धान्त का आश्रय लेकर प्रधान-पुरुष से विलक्षण उनका अधिष्ठाता जगत् का केवल निमित्तकारण ईश्वर मानते हैं और कोई-कोई वैशेषिकप्रक्रिया के अनुयायी भी अपनी प्रक्रिया के अनुसार ईश्वर को जगत् का निमित्तकारण मानते हैं, इत्यादि।" इससे इतना तो स्पष्ट है कि सांख्य और वैशेषिकप्रक्रिया के मूल में ईश्वर का स्वीकार नहीं था।

इतना होने पर भी, आगे आकर कुछ लोगो ने ईश्वर का प्रवेश उनमें करा दिया है। ऐसे ही, मीमांसकों में भी कुछ लोगों ने मीमांसा में यह कहकर ईश्वर का प्रवेश कर दिया है कि 'कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देने से मुक्ति हो जाती है'—इत्यादि 'सोऽयंधर्मो यदुद्दिश्य विहितस्तदुद्देशेन क्रियमाणस्तद्धेतु श्रीगोविन्दा-र्पणबुद्ध्या क्रियमाणस्तु निःश्रेयसहेतुः' (न्यायप्रकाश, पृष्ठ २६७)। अस्तु।

जो कुछ हो, पर मेरी दृष्टि में, इन दर्शनों के अधीन वेद संहिता के यम, सूर्य, प्रजापति, अग्नि और पुरुष तथा उपनिषद् के ब्रह्म, पुराण के ईश्वर, वर्त्तमान समय के ईश्वर, परमेश्वर, अल्लाह, खुदा न रहें तो कुछ बिगड़ता नहीं, क्योंकि वेदान्त दर्शन (जिसके आगे इन सभी दर्शनों के सिद्धान्त फीके पड़ जाते हैं) तो ब्रह्म, पुरुष, ईश्वर चाहे जो भी कहिये, सभी की सिद्धि के लिये कमर कसकर ही बैठा है। संस्कृत दर्शनों में प्रस्थान-भेद की जो प्रथा है, उसका ध्यान न रहने से ही ये सब विवाद खड़े होते हैं।

वस्तुत भारतीय दर्शनों में दार्शनिकों ने 'शाखाचन्द्रतीन्याय' से अपने अपने विचारों को व्यक्त किया है, मूल सिद्धान्त में किसी का किसी से भी विरोध नहीं है। जिसको दृष्टि (दर्शन) में जो वस्तु अवश्य प्राप्त थी उसने उनकी व्याख्या की और उसीको प्रधानता दी। अन्यान्य पदार्थों को उसने अभ्युपगमवाद से अपने दर्शन के विषयों मे गौण मानकर स्वीकार या खंडन किया है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह पदार्थ सर्वथा मान्य नहीं है।

इसका आशय केवल यही होता है कि उस दर्शन के सिद्धान्त में उस पदार्थ की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि संस्कृत-शास्त्रों को 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' ही शैली

मानी गई है। यही बात विज्ञानभिक्षु ने भी अपने सांख्य-प्रवचन की भूमिका में कही है—"तस्मादास्तिकदर्शनेषु न कस्याप्यप्रामाण्यं विरोधो वा स्व स्व विषयेषु सर्वेषामबाधत अविरोधाच्च" अर्थात्—'आस्तिक दर्शनों में अपने-अपने विषयों में बाधाभाव और अविरोध होने के कारण किसी में भी अप्रामाण्य और विरोध नहीं है।' तभी तो जैमिनि की खास पूर्वमीमांसा में ईश्वर का उल्लेख तक नहीं है, बल्कि मीमांसक लोग तो 'किमन्तर्गडुना ईश्वरेण' कहकर ईश्वर का खंडन ही करते हैं। उनके विषय में 'कर्मेति मीमांसकाः'—ऐसी ही प्रसिद्धि है।

हरिभद्र सूरि ने भी षड्दर्शनसमुच्चय में पूर्वमीमांसकों को निरीश्वरवादी ही बताया है। जैसे, "जैमिनीयाः पुनः प्राहुः सर्वज्ञादि विशेषण'। देवो न विद्यते कोपि यस्य मानं वचो भवेत् ॥"—अर्थात् जैमिनीय मत के माननेवाले मीमांसक कहते हैं कि सर्वज्ञ, विभु, नित्य इत्यादि विशेषणों वाला कोई देव (ईश्वर) तो है नहीं, जिसका वचन प्रमाण मान लें।

कुमारिल भट्ट ने भी कहा है कि "अथापि वेदहेतुत्वाद्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। कामं भवन्तु सर्वज्ञाः सार्वज्ञं मानुपस्य किम् ॥" (वेद की रचना करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सर्वज्ञ भले माने जायँ, परन्तु मनुष्य की सर्वज्ञता किस काम की है ?); पर वेदान्त-सूत्र में बादरायणाचार्य (व्यास) ने ईश्वर शब्द से तो नहीं, किन्तु दूसरे शब्दों से उस विषय के जैमिनि महर्षि के विचारों को पूरा-पूरा व्यक्त किया है। देखिये निम्नाङ्कित सूत्रों का शाङ्करभाष्य—"साक्षादप्यविरोधम्' जैमिनिः (१।२।२६), "सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति" (१।२।३१), "अन्यार्थन्तु जैमिनिप्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैके।" (१।४।१८); "परं जैमिनिर्मुख्यत्वाद्" (४।३।१२); "ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः" (४।४।५) इत्यादि।

ऊपर कहा ही गया है कि प्राचीन समय में ईश्वर मानने न मानने से आस्तिक-नास्तिक नहीं कहे जाते थे; किन्तु परलोक (पुनर्जन्म) मानने न मानने के कारण आस्तिक-नास्तिक शब्द का प्रयोग होता था। जैसा ऊपर पाणिनि-सूत्र (अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः) के टीकाकारों की व्याख्या में तथा कठोपनिषद् के मन्त्रों द्वारा दिखाया गया है, और स्मृति-काल में वेद मानने न मानने के कारण भी आस्तिक और नास्तिक शब्द का व्यवहार था—ऐसा दिखाया गया है; पर दार्शनिक परिभाषा में तो असद्वादी और सद्वादी को ही क्रम से नास्तिक-आस्तिक कहने की प्रथा प्रतीत होती है, जैसा उपर्युक्त पाणिनि-सूत्र का यदि केवल सूत्रार्थ लिया

जाय तो, अर्थ होगा कि जो 'अस्ति'—सद्वाद को माने वह आस्तिक और जो 'नास्ति'—असद्वाद को माने वह नास्तिक कहा जाता है।

छान्दोग्य श्रुति ने भी कहा है–"सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्"–"तद्धैयक आहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्"—'तस्मादसतस्सज्जायते इति" (छा० ६।२।१)–अर्थात् उत्पत्ति से पहले यह संसार एक अद्वितीय सद्रूप (अस्तिरूप) में था, उसीको एक आचार्य कहते हैं कि यह संसार उत्पत्ति से पहले असत् (नास्ति) रूप में था, इसलिये असत् से सत् (अभाव से भाव) होता है। इस प्रकार श्रुति ने तो उसको आस्तिक कहा है जो संसार के मूल कारण सत् को स्वीकार करता है। और, जो असत (अभाव—शून्य) से उत्पन्न मानता है उसको नास्तिक कहा है। गीता में यही इस प्रकार कहा गया है–"असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्पर-सम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम्॥" इस नियम से तो सिवा बौद्ध दर्शन के अन्य सभी दर्शन, जो अस्तिवादी (भाव से संसार की उत्पत्ति माननेवाले) हैं, आस्तिक कहे जा सकते हैं, क्योकि चार्वाक दर्शन भी चार पदार्थों की सत्ता (अस्तित्व) से ही सारे जगत् (जड-चेतन) का परिणाम मानता है।

शङ्कराचार्य ने भी अपने उपनिषद्भाष्य तथा शारीरक भाष्य में आस्तिक और नास्तिक शब्द का ऐसा ही अर्थ किया है। वे नास्तिक, वैनाशिक इत्यादि शब्दो से बौद्धों का आह्वान करते है, क्योकि वे ही लोग उत्पत्ति से पहले जगत् का अभाव मानते हैं—"तथाहि—एके वैनाशिका आहु. वस्तुनिरूपयन्तोऽसत्सद्भाव मात्रं × × सद्भावमात्रं प्रागुत्पत्तेस्तत्त्वं कथयन्ति बौद्धा (छा० शा० ६।२।१), सोऽर्द्ध वैनाशिक इति वैनामिकत्वसाम्यात् सर्ववैनामिकत्वसाम्यात् सर्ववैनाशिक-राद्धान्तो नितरामयेक्षितव्य इति × × × तत्रैते त्रयो वादिनो भवन्ति केचित् सर्वास्तित्ववादिन. केचित् विज्ञानास्तित्वमात्रवादिनः अन्ये पुनः सर्वशून्यत्ववादिनः (वे० सू० शा० भा० २।२।२८)।"

वस्तुतः देखा जाय तो बौद्ध दार्शनिक भी नास्तिवादी नहीं हैं, क्योकि उनके भेदो मे जो क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार, क्षणिक वाह्यास्तित्ववादी वैभाषिक और वाह्यानुमेयत्ववादी सौत्रान्तिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे तो अस्तिवादी ही हैं। एक जो सर्वशून्यत्ववादी माध्यमिक है उनके मत मे भी शून्यता का अर्थ अभाव नहीं माना गया है, किन्तु पदार्थ के स्वतन्त्र स्वरूप का अभाव माना गया है। जैसे—"तस्मादिह प्रतीत्य समुत्पन्नस्य स्वतन्त्रस्य स्वरूपविरहात् स्वतन्त्रस्य रूपरहितोऽर्थः शून्यतार्थ."—"न सर्वाभावाभावोऽर्थः × × तस्मादिह प्रतीत्य समुत्पन्नं मायावत्"

(आर्यदेव, चतुर्थशतक, १४३७ कारिका की चन्द्रकीर्त्ति-व्याख्या)—अर्थात् "इसके लिये यहाँ प्रतीतिमात्र से उत्पन्न पदार्थों का स्वतन्त्र कोई स्वरूप न रहने के कारण शून्यता का अर्थ है वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता का अभाव, न कि सब भावों का अभाव। इस कारण यहाँ प्रतीतिमात्र तक उत्पन्न होकर रहनेवाले पदार्थों को माया के समान समझना चाहिये, यह चन्द्रकीर्त्ति की व्याख्या का तात्पर्य है। तभी तो अमरसिंह ने अपने 'अमरकोष' में बुद्धदेव के नामों में 'अद्वयवादी' भी एक नाम लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध भी एक प्रकार के 'अद्वैतवादी' ही हैं ; अन्तर केवल इतना ही है कि वे वेद या वेदान्त नही मानते जिससे स्मृति-कालीन 'नास्तिको वेदनिन्दकः' नियमानुसार वे नास्तिक ठहरते हैं।

इसी प्रकार चार्वाक और जैन भी वेद की निन्दा करने के कारण ही पंडित-समाज में नास्तिक शब्द से प्रसिद्ध हो गये हैं। परन्तु, यदि उपनिषद् और पाणिनि-सूत्र के टीकाकारों के मतानुसार तथा वेदकालीन सर्वसाधारण में प्रसिद्ध 'पुनर्जन्म' को मानना न मानना ही 'आस्तिक-नास्तिक' शब्द का अर्थ लिया जाय तो बौद्ध भी परम आस्तिक सिद्ध होते हैं। उनके सिद्धान्तों में तो पुनर्जन्म की बड़ी मर्यादा है। स्वयं बुद्धदेव ने अपने अनेक पिछले जन्मों की घटनाओं का वर्णन किया है, जिनका उल्लेख ललितविस्तर, बोधिचर्या, बोधिसत्वावदानकल्पलता प्रभृति बौद्ध ग्रन्थों में विस्तृत रूप से है।

बौद्ध सम्प्रदाय में बुद्ध हो जानेवाले जीवों की पूर्वजन्म की अवस्था को बोधिसत्वावस्था कहते हैं और उस बुद्ध जीव को पूर्व जन्म में बोधिसत्व कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्ध सम्प्रदाय में पुनर्जन्म माना गया है। शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह से यह पता चलता है कि वेद की निमित्त शाखा में बुद्धदेव को सर्वज्ञ माना है और उस शाखा को कुछ बौद्ध प्रामाण्य मानते थे। इससे यह सिद्ध है कि वेद को प्रामाण्य माननेवाले भी कुछ बौद्ध थे—जैसा लिखा पाया जाता है—"किन्तु वेदप्रमाणत्वं यदि युष्माभिरिष्यते। तत् किं भगवतो मूढैः सर्वज्ञत्वं न गम्यते ॥"—"निमित्तनाम्नि सर्वज्ञो भगवान् मुनिसत्तमः। शाखान्तरेहि विस्पष्टं पठ्यते ब्राह्मणै-र्बुधैः।" अर्थात्—"यदि वेद को प्रमाण मानना आपको अभीष्ट है तो हे मूर्खो, भगवान् (बुद्ध) का सर्वज्ञत्व क्यों नहीं मानते ? निमित्त नाम की दूसरी वेद-शाखा में ब्राह्मण-पंडितो के द्वारा भगवान् सर्वज्ञ कहा गया है, जो स्पष्ट है—अर्थात् अब वेद प्रामाण्य मानने पर भी सर्वज्ञत्व स्वीकार क्यों नहीं करते ?" इत्यादि।

इसी प्रकार जैन दर्शन भी आस्तिक दर्शन सिद्ध हो जाता है; क्योंकि उस

दर्शन में भी पुनर्जन्म एवं नानायोनि प्रभृति बातें मानी गई हैं। हरिभद्र सूरि ने भी इसी अर्थ को मानकर बौद्ध, जैन, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक और पूर्वमीमांसको को आस्तिक कहकर सम्बोधित किया है—"एवमास्तिकवादानां कृतं संक्षेपकीर्त्तनम्" "आस्तिकवादानां परलोकगतिपुण्यपापास्तित्ववादिनां, बौद्ध-नैयायिक-सांख्य-जैन-वैशेषिक-जैमिनीयानां संक्षेपकीर्त्तनम् कृत इति मणिभद्रकृतविवृतिः।" अर्थात् "आस्तिकवाद वे हैं जिनमें परलोक के लिये पाप-पुण्य की सत्ता मानी जाती है, जैसे बौद्ध, नैयायिक, सांख्य (कपिल), जैन, वैशेषिक, जैमिनीय (पूर्वमीमांसक) आदि—उन वादों का मैंने संक्षेप से वर्णन किया है।"—हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शन-समुच्चय की ७७ वीं कारिका पर मणिभद्र सूरि की व्याख्या।

पहले कहे हुए स्मृतिकालीन अर्थ में (अर्थात् वेद-विरोधी को नास्तिक कहते हैं) अथवा इसी अर्थ के आधार पर चार्वाक, जैन और बौद्ध भले ही नास्तिक कहे जायँ; किन्तु वर्त्तमानकालिक पौराणिक मत के ईश्वर न माननेवाले को नास्तिक कहने के अर्थ के आधार पर तो बौद्ध, चार्वाक, जैन, कणाद, गौतम, सांख्य-कार कपिल और मीमांसक जैमिनि—सभी नास्तिक कहे जा सकते हैं। इसलिये कणाद प्रभृति छः आस्तिक नाम से कहे जानेवाले दार्शनिक पुनर्जन्म मानने के कारण और वेद मान लेने के कारण आस्तिक शब्द से पुकारे जाते हैं, न कि ईश्वर मानने के कारण।

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि इन छः दार्शनिकों में वस्तुतः दो ही दार्शनिक वैदिक हैं, चार बेचारे तो तार्किक दार्शनिक कहे जाते हैं—उनका तो वैदिक दार्शनिकों में प्रवेश ही नहीं है! इस बात को बड़े गर्व से शङ्कराचार्यजी ने द्वितीय अध्याय के तर्कवाद के ग्यारहवें और बारहवें सूत्र के भाष्य में—"नहि प्रधानवादी सर्वेषां तार्किकाणां मध्ये उत्तम इति सर्वैस्तार्किकैः परिगृहीत. येन तदीयं मतं सम्यग्ज्ञानमिति प्रतिपद्येमहि"—"वैदिकस्य दर्शनस्य प्रत्यासन्नत्वाद्गुरुतर्कावलेपत्वात्" (सभी नैयायिक तार्किक दार्शनिकों में प्रधानवादी ही उत्तम तार्किक है, ऐसा सभी तार्किकों ने मिलकर उसे सर्टिफिकेट नहीं दे दिया है जिससे हम वैदिक दार्शनिक ऐसा मान लें कि उसका कथन अच्छा है। सांख्यदर्शन वैदिक दर्शन के बहुत कुछ पास पड़ता है। और, बड़ी युक्तियों के बल पर वह खड़ा होता है, इसीसे हमने उसे पूर्व-पक्षियों में प्रधान स्थान दिया है) इत्यादि वाक्यों द्वारा, जहाँ कहीं भी मौका मिला है, सभी दार्शनिकों को वैदिक श्रेणी से निकाल-बाहर करने का ही प्रयत्न किया है।

ये नैयायिक प्रभृति भी अपने-अपने दर्शन को तर्क की कसौटी पर

अधिक कसने का प्रयत्न करते हैं। हॉ, जहॉ-कहीं अवसर पाकर श्रुति के अर्थों को केवल अपने मत के समर्थन में खींच-खॉचकर लगा देते हैं। ये दार्शनिक सर्वदा श्रुति के अधीन नहीं चलते। सो भी आगे के टीकाकारों की ये बातें हैं; मूल सूत्रकारों के विषय में तो ऊपर कहा ही गया है कि ये लोग प्रस्थान-भेद से 'शाखारुन्धती' न्याय के अनुसार वेद के दार्शनिक अङ्ग के एक-एक पहलू को लेकर अपने दर्शनों का उपन्यास करते हैं—जैसे, नैयायिक और वैशेषिक दोनों मिलकर आरम्भवाद का, कपिल और पतञ्जलि परिणामवाद का, चारो बौद्ध संघातवाद का एवं वेदान्ती विवर्त्तवाद का (यथा हि—आरम्भवादः कणभक्षपक्ष. सांख्यादिपक्षः परिणामवादः। संघातवादस्तु भदन्तपक्षः वेदान्तपक्षस्तु विवर्त्तवादः।—सर्वमुनि का संक्षेप शारीरक)।

सर्वथा वेद के दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यक्त करने के लिये तो व्यास ही अग्रसर माने गये हैं। बल्कि देखा जाय तो 'दृष्टावदान श्रविकः' 'सत्यविशुद्धि क्षयातिसंयुक्तः' इत्यादि युक्तियों से सांख्यवाले तो वेद के हेतुओं का भी तिरस्कार ही करते हैं। ऐसा ही—'त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन—व्यासजी ने भी कहा है कि इन दोनों स्थानों पर 'आनुश्रविक' और 'वेद' शब्दों के अर्थ में संकोच करके क्रमशः कर्मकांडान्तर्गत वैदिक हेतुओं तथा कर्मकांड मात्र वेद के लिये कहा गया है, ऐसा आधुनिक विद्वान् अर्थ करते हैं। पर वेद पर एक प्रकार से प्रहार तो हुआ ही चाहे, उसके किसी एक अङ्ग पर ही हुआ तो क्या ? अस्तु।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि सभी दार्शनिक वेद के अक्षरशः पोषक नहीं हैं। कुछ लोग तो वेद को केवल अपने तर्क की पुष्टि के लिये मान लेते हैं। चार्वाक के ऐसा "त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः" कहकर दिल्लगी नहीं उड़ाते, यही उनकी विशेषता है।

इन छः दार्शनिकों में केवल बादरायणाचार्य और जैमिनि हैं जो वेद के मन्त्रपुष्पों में अपने सूत्रों को पिरोकर, वैदिक आचार्यों की एक अच्छी सुव्यवस्थित माला के रूप में. अपने दर्शनों को उपस्थित करते हैं। यह बात दूसरी है कि वेद की ऋचाओं पर इन सभी दार्शनिकों का मत अवलम्बित है। जैसे, "द्यावाभूमिजनयन् देव एक आस्ते विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता"—इसपर आधुनिक नैयायिकों का कारणवाद अवलम्बित है। "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी. प्रजाः सृजमानां सरूपा. अजो ह्येक जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः"—इसपर कपिल का प्रकृति-पुरुषवाद इत्यादि।

इसका कारण तो वेद की व्यापकता है (न कि इन दार्शनिको का वेद मान लेना), जैसा सदानन्द ने अपने वेदान्तसार मे चार्वाक-सिद्धान्त को भी "सवाएपपुरुषोन्नरस-मयः"—"तमेवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञास्ति" इत्यादि ऋचाओं का उद्धरण करके वैदिक सिद्ध कर दिया। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि चार्वाक-सिद्धान्त भी वैदिक है। उसी प्रकार व्यास और जैमिनि के अतिरिक्त सभी वैशेपिक प्रभृति दार्शनिक केवल तार्किक हैं, इन्हें वैदिक दार्शनिक नही कह सकते, तथापि ये लोग आस्तिक दर्शनकार कहे जाते हैं। इसका कारण मेरी दृष्टि में तो यही ज्ञात होता है कि वेद, उपनिषद्, स्मृति-पुराणादि संस्कृत के समस्त वाङ्मय-महार्णव में ओत-प्रोत एवं भारतीय संस्कृति का मेरुदंड पुनर्जन्मवाद या परलोक मानने के कारण ही ये सभी दार्शनिक आस्तिक कहे गये हैं और कहे जाने चाहिये। इस परिभाषा में केवल चार्वाक महाशय को छोड़कर—जो लोकायत (लोकैः आयतः विस्तृतः) नाम से प्रसिद्ध होकर साधारण जनता के प्राथमिक अज्ञान-कालिक भाव को व्यक्त करने मात्र के लिये अन्यान्य दर्शनो के पूर्वपक्षी-रूप में प्रतिनिधि मात्र माने गये हैं, भारतीय संस्कृति में स्वरूपतः सम्प्रदाय-रूप में जिनकी कहीं सत्ता नहीं है, जिनका कोई सूत्रग्रन्थ भी नही है, पुराणों में जिनके दर्शन के प्रचार का कारण भी निन्दित ही बताया गया है—अन्य सभी, बौद्ध तथा जैन दार्शनिक भी, आस्तिक-कोटि में आ जाते हैं।

परस्पर एक दूसरे को नास्तिक कहना तो भारत की पराधीनावस्था में फैला है। मूलकाल के विद्वानो में परस्पर मतभेद होते हुए भी इस तरह वैर नही चलता था जैसा इधर के कालो में होने लगा है। देखिये, बौद्धो की ओर से व्यङ्ग्योक्ति है—"वेदे प्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेप.। सन्तापेहा पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञाना पञ्चलिङ्गानि जाड्ये"।। (अर्थात्, वेद की प्रमाणता, किसी को—ईश्वर को—कर्त्ता मानना, जातिवाद का गर्व, पाप का प्रायश्चित्त इत्यादि मूर्खों के लक्षण हैं।)

इस लेख का निष्कर्ष यह है कि संक्षेप मे आस्तिक-नास्तिक शब्दो के अर्थ मे चार प्रकार के विचार संस्कृत-वाङ्मय-महार्णव मे पाये गये हैं—

(१) वेद-काल मे, सर्वसाधारण में, प्रसिद्ध अर्थ—परलोक माननेवाला आस्तिक और न माननेवाला नास्तिक कहा जाता है।

(२) दार्शनिको में जो जगत् का कारण सत् (भाव) मानता है वह आस्तिक और जो असत् (अभाव) को जगत् का कारण मानता है वह नास्तिक (अभाववादी) वैनाशिक कहा जाता है।

(३) मनु आदि स्मृतिकाल में जो वेद को माने वह आस्तिक और जो न माने—उसकी निन्दा करे—वह नास्तिक कहा जाता है।

(४) आजकल जो ईश्वर—परमेश्वर—माने वह आस्तिक और जो न माने वह नास्तिक कहा जाता है।

यों संक्षेप में आस्तिक-नास्तिक शब्दों की समीक्षा—दार्शनिक पद्धति से विचार करने पर—वेद से लेकर आधुनिक काल-पर्यन्त संस्कृत-वाङ्मय-महार्णव-द्वारा सिद्ध होती है। इत्यलमतिप्रपञ्चेनेति विरम्यते।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥





बिहार में न्याय और मीमांसा की उन्नति

श्रीउमेश मिश्र, एम्० ए०, डी-लिट्०, काव्यतीर्थ, प्रयाग-विश्वविद्यालय

भारतवर्ष में प्रायः बिहार ही एक ऐसा प्रदेश है जिसे ऋग्वेद के काल से लेकर अद्य-पर्यन्त, अविच्छिन्न रूप में, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारो की रक्षा करने का गौरव प्राप्त है।

बिहार, गंगाजी के प्रवाह के कारण, उत्तर और दक्षिण दो भागों में विभक्त है। उत्तरीय भाग को 'मिथिला' और दक्षिणीय भाग को 'मगध' कहते हैं। इन दोनों भागो के इतिहास पृथक् रूप में बड़े महत्त्व के हैं। ये दोनो भाग आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में दो विभिन्न सभ्यताओ के केन्द्र थे। प्राचीन वैदिक सभ्यता का केन्द्र मिथिला तथा अर्वाचीन बौद्ध सभ्यता का केन्द्र मगध था। इन दोनो के सम्बन्ध में इतिहास के ग्रन्थो से हमें बहुत-सी बाते मालूम हैं और हो सकती हैं। अतः उन बातो को छोड़ मैं बहुत ही सूक्ष्मरूप में एक अन्य अज्ञात या अल्पज्ञात विषय का उल्लेख करता हूँ।

शतपथ ब्राह्मण (१–४–१–१०) में विदेह के राजा माधव तथा उनके पुरोहित राहूगण गौतम की चर्चा है। राजा ने अपने पुरोहित के उद्योग से सदानीरा या गंडकी नदी के किनारे यज्ञ किया। अन्य ब्राह्मणो ने भी अनेक यज्ञ उस प्रान्त में किये, जिससे उस प्रान्त की भूमि बहुत ही उपजाऊ हो गई और राजा ने सदानीरा के पूर्वभाग में अपना निवास बनाया।

राहूगण गौतम का उल्लेख ऋग्वेद (I. 62. 13; I. 78.2, I. 84. 5; I. 85. 11; IV. 4. 11) में हमें मिलता है। यही गौतम राजा जनक के

समकालीन थे, यह भी हमें शतपथ (ix. 4, 3. 20) में मिलता है। याज्ञवल्क्य के भी समकालीन ये थे, यह भी शतपथ (ix. 4. 3.20) में मिलता है। ये एक 'स्तोम' के भी ऋषि हैं, ऐसा शतपथ (xiii. 5. 1. 1) और आश्वलायन श्रौतसूत्र (ix. 5. 6; 10. 8) में मिलता है। अथर्ववेद (iv. 29. 6; xviii. 3. 16), बृहदारण्यक उपनिषद् (ii. 2. 6) तथा षड्विंशब्राह्मण (1. 38) में भी इनका नाम है।

इन सबसे यह ज्ञात होता है कि 'वैदिक काल' में भी वैदिक सभ्यता का एक केन्द्र मिथिला-प्रान्त था।

बाद को उपनिषदों में मैथिल ऋषि याज्ञवल्क्य आदि के, सूत्रों में गौतम आदि मैथिलों के, और उसके पीछे क्रमशः धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों के रचयिता के रूप में अनेक मैथिलों के नाम हमें मिलते हैं, जिससे यह अनुमान होता है कि वैदिक काल से लेकर अद्य-पर्यन्त मिथिला में वैदिक सभ्यता की धारा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस सभ्यता के दो प्रधान अंग मालूम होते हैं—आध्यात्मिक विचार और तदनुकूल जीवन-निर्वाह करना तथा कर्मकांड के अनुसार यज्ञों का करना और धार्मिक आचार-व्यवहार का पालन करना।

दूसरी तरफ, दक्षिण बिहार में बाद को बुद्ध के आविर्भाव से एक दूसरी सभ्यता जगमगा उठी। बुद्ध के उपदेशों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस सभ्यता में कोई नवीनता या अपूर्वता नहीं थी। वैदिक सभ्यता ही के किसी अंश-विशेष को बुद्ध ने नवीन जीवन प्रदान किया था। उनके साक्षात् उपदेशों से यह किसी प्रकार नहीं मालूम होता कि बुद्ध वैदिक धर्म-कलाप के विरुद्ध थे। हाँ, उसके कुछ आगन्तुक दोषों को दूर करने का विचार भले ही उनके मन में रहा हो; परन्तु उनका साक्षात् कथन है ही बहुत अल्प, इसलिये इस सम्बन्ध में इस समय इतना ही कथन पर्याप्त है। परन्तु बाद को उनकी शिष्य-परम्परा ने अपने आचरणों से वैदिक सभ्यता के विरुद्ध अपना एक नवीन दल स्थापित तो कर ही दिया। क्रमशः ये लोग प्राचीन सभ्यता के विरुद्ध बोलने लगे और लोगों को बहकाने भी लगे। फलतः एक ही प्रदेश में दो विरुद्ध सभ्यताओं के परस्पर आक्षेप से अशान्ति फैली। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन तथा परस्पर-विरुद्ध सभ्यताओं का केन्द्र बिहार हो गया।

यों तो वैदिक सभ्यता में शान्ति प्रधान रूप से है—किसी प्रकार का उद्वेग नहीं, किसी का द्वेष नहीं, किसी प्रकार का चाञ्चल्य नहीं। नीरव प्रकृति के समान, व्यापक परमात्मा के समान तथा अनन्त आकाश के सदृश यह सभ्यता कर्त्तव्य मात्र

में लोगो को प्रेरित करना अपना एक मात्र उद्देश्य रखती है। किन्तु, आत्मरक्षा के लिये, किसी से छेड़े जाने पर, उद्योग करना भी इसी सभ्यता का रूप है। इस लिये जब बौद्धो ने आक्षेपो का प्रहार इसके ऊपर करना आरम्भ किया, वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध लोगो को जब वे उपदेश देने लगे, यज्ञ की निन्दा करने लगे और धर्मप्राण वेदो को अप्रमाण बतलाने लगे तथा ईश्वर के अस्तित्व का खंडन करने लगे तब स्वभावत शान्त प्रकृति के वैदिक सभ्यता वाले आत्मरक्षा के लिये उठ खड़े हुए।

सबसे प्रथम ये दोनो दल वाले शास्त्रीय तर्क-वितर्क के सहारे लड़ने लगे। प्रमाणो के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन तथा दूसरो का खंडन करना इनका प्रधान कार्य था। प्रमाणो में प्रत्यक्ष के कारण बहुत झंझट नहीं हुआ। शब्द-प्रमाण में एकवाक्यता नहीं, अतः इससे सिद्धान्त पर कोई नहीं पहुँच सकता था। इसलिये सबसे पूर्व इन्होने 'तर्क' के द्वारा लड़ाई छेड़ दी। 'तर्क' के सहारे ये लोग अपने-अपने मत की स्थापना तथा दूसरे के मत का खडन करने लगे। ये सब तार्किक विचार हम इन दोनों मतावलम्बियो के ग्रन्थो में पाते हैं।

सबसे प्रथम यह खंडन-मंडन 'आत्मा' तथा 'ईश्वर' के पृथक् अस्तित्व के सम्बन्ध में रहा और बाद को 'वर्णाश्रम-धर्म' के सम्बन्ध में था। बौद्धो के पक्ष में क्षणिकवाद से लेकर शून्यवाद तक तथा याज्ञिकी हिंसा को अधर्म-साधन बतलाने के सम्बन्ध में आक्षेप होता था। ये प्रधान विषय थे। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे विषय अनेक थे जहाँ दोनों के सिद्धान्तों में भेद था। इस प्रकार तार्किक आलोचना इतनी बढ़ी कि मिथिला-प्रान्त तर्कशास्त्र का एक प्रधान केन्द्र हो गया। एक-से-एक धुरंधर नैयायिक यहाँ हुए और उन्होने न्यायशास्त्र के ऊपर अनेक अपूर्व ग्रन्थ लिखे। न्यायशास्त्र के आदिसूत्रकार गौतम ऋषि यहीं हुए। और भी प्राचीन आचार्य क्रमश. यहाँ उत्पन्न हुए। यह क्रम १० वीं शताब्दी तक इसी प्रकार आक्षेप-युक्त वाक्यों में चलता रहा। उदयनाचार्य ने इन्ही विषयो का विचार 'आत्मतत्त्वविवेक' और 'कुसुमाञ्जलि' नामक अपने अद्वितीय ग्रन्थो मे किया है। मालूम होता है कि उदयन के पश्चात् बौद्धो में कोई विशिष्ट विद्वान् नहीं हुए।

इस प्रकार बौद्धो के संघर्ष से न्यायशास्त्र की उन्नति जो मिथिला में हुई वह और कहीं न हुई, क्योंकि अन्यत्र यह संघर्ष नहीं था। यदि यह संघर्ष न होता तो प्राय: मिथिला मे भी यह उन्नति कभी न होती। बाद को तो बङ्गाल और दक्षिण भारत में मिथिला ही से न्यायशास्त्र की परिपाटी फैली। तथापि मिथिला के समान

अन्य किसी एक प्रदेश में इतने अधिक न्याय के विद्वान् न हुए तथा न्यायशास्त्र के ग्रन्थों की रचना भी न हुई।

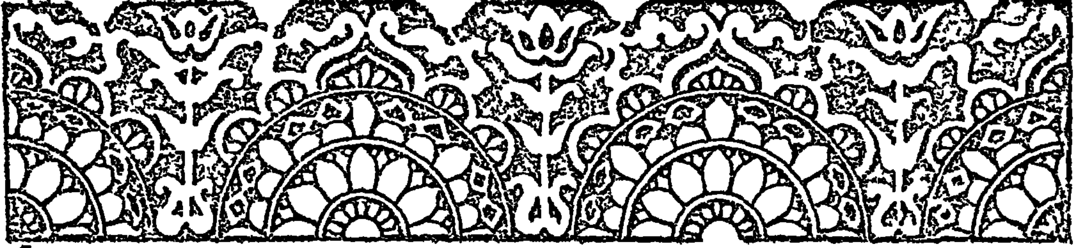
इसी प्रकार 'न्याय' के दूसरे अंग की भी उन्नति इसी उत्तरीय बिहार (मिथिला) में हुई। 'न्याय' शब्द पूर्व-मीमांसा-शास्त्र के लिये भी बहुत प्राचीन काल से प्रयोग में चला आ रहा है। पूर्व-मीमांसा वस्तुतः कोई दार्शनिक शास्त्र नहीं है। इसका उद्देश्य केवल 'धर्म'-निरूपण है। 'न्यायों' के द्वारा वैदिक मन्त्रों का यथार्थ अर्थ करना तथा उनका सद्विनियोग दिखाना पूर्वमीमांसा का गौण उद्देश्य है। यज्ञ कराने की विधि इसी शास्त्र में है। इसीलिये इस शास्त्र पर भी बौद्धो का पूर्ण प्रहार था। वैदिक कर्मकलाप को युक्तियों के द्वारा बौद्धो ने अधर्म साधन बतलाने का प्रयत्न किया, स्वर्ग का निराकरण किया, वेदों के प्रत्येक अंग पर आक्षेप किये। आस्तिको की तरफ से पुनः तर्क ही के सहारे उन सब बातो का समाधान किया गया। यज्ञ की महत्ता, धार्मिक विषयों में वेदो का आधिपत्य आदि सभी बातों की स्थापना तर्क और 'न्याय' के सहारे की गई। यह भी संघर्ष ही का फल था कि पूर्वमीमांसा की उन्नति इसी उत्तरीय बिहार में इस प्रकार हुई कि कहा जाता है, मिथिलेश महाराज शिवसिंह के भाई पद्मसिंह की रानी विश्वासदेवी के समय में एक यज्ञ में निमन्त्रित केवल मीमांसक पडितों की संख्या १४०० थी!

इन दोनों शास्त्रो की उन्नति के प्रमाण हमें इनके ग्रन्थों ही में मिलते हैं। यह धारणा अब और भी पुष्ट हो रही है। श्रीराहुल सांकृत्यायनजी के उद्योग से तिब्बत से लाये हुए ग्रन्थों के क्रमिक प्रकाशन से और उनके अध्ययन से आस्तिक-नास्तिक-विचार-धाराओं का पता स्पष्ट मालूम हो जाता है कि पारस्परिक ईर्ष्या ने किस प्रकार बौद्ध तथा हिन्दू न्यायशास्त्र को उन्नत शिखर तक पहुँचाया।

एक और भी ध्यान देने योग्य विषय यह है कि पूर्व में आध्यात्मिक विद्या का केन्द्र होते हुए भी मिथिला-प्रान्त ने बाद को वेदान्त-शास्त्र में वैसी विशेष योग्यता नही दिखाई जैसी न्याय और मीमांसा में। बहुत विरल मैथिलो ने वेदान्त-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। इसका भी कारण यही है कि बाध्य होकर मैथिलों को न्याय और पूर्व-मीमांसा ही को लेकर अपने अस्तित्व की रक्षा करनी पड़ी। और, इन्हीं दोनो शास्त्रों पर विशेष रूप से वेदान्त-शास्त्र निर्भर है। यदि मूल की रक्षा होगी तो सभी सुरक्षित रहेंगे, ऐसा विचारकर मैथिलो ने अध्यात्म-विद्या के मूलभूत न्याय और पूर्वमीमांसा की रक्षा की।

मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि इन दोनो मतो का यदि इस प्रकार संघर्ष न होता, तो प्राय: मिथिला में इन दोनो शास्त्रो की इतनी उन्नति न होती। इसलिये यद्यपि वौद्धो ने वैदिक धर्म पर आघात कर सनातन-धर्मावलम्बियो का विरोध किया तथापि उक्त उपकार के लिये वौद्धो के प्रति सनातनधर्मी ऋणी भी कहे जा सकते हैं।





बिहारोद्भूत जैन-दर्शन का समन्वयवाद

प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम्० ए० (त्रितय), पटना-कालिज

प्राक्कथन

पूर्व-ख्रिस्ताब्द की छठी और पाँचवीं शताब्दियों में बिहार ने दो लोकोत्तर विभूतियों को जन्म दिया जिन्होंने विचार-संसार में क्रान्ति कर दी। एक ओर तो वैशाली के वर्द्धमान महावीर ने जैनधर्म की स्थापना की और दूसरी ओर कपिलवस्तु के सिद्धार्थ गौतम ने उस महान् बौद्धधर्म को जन्म दिया जिसकी किरणें विहार के विहारों से फूटकर विश्व-भूमंडल के सुदूरतम क्षितिज तक फैल गई। यद्यपि बिहार को इन दोनों धर्मों के उद्गम-स्थान होने का गौरव प्राप्त है, तथापि आश्चर्य यह है कि आज दोनों ही अपने उद्गम-स्थान से निर्वासित-प्राय हो चुके हैं।

अवतरण

जैनियों के अनुसार जैनधर्म शाश्वत है और कल्प-कल्प में 'तीर्थङ्करों' द्वारा इसका प्रचार और प्रसार होता रहा है। वर्त्तमान कल्प में प्रथम तीर्थङ्कर थे ऋषभदेव और ऋषभदेव के बाद क्रम से चौबीसवें तीर्थङ्कर हुए वर्द्धमान महावीर, जिनका जन्म छठी पूर्व विक्रमीय में, पटने से लगभग २७ मील उत्तर, वैशाली (वर्त्तमान 'बसाढ़', मुजफ्फरपुर) के क्षत्रिय-कुल में हुआ था। पिता का नाम था सिद्धार्थ और माता का त्रिशला।

तीस वर्ष की अवस्था में गृहस्थ महावीर को विराग हुआ। तदनन्तर बारह वर्षों बाद उन्हें कैवल्य (संबोधि) उपलब्ध हुआ। इसके बाद और बयालीस वर्षों तक प्रचार-कार्य करने के अनन्तर ४८० पू० वि० में उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया।

ध्यान देने की बात है कि पाँचवीं-छठी पू० वि० शताब्दियों में बौद्ध और जैन धर्मों के द्वारा जो महान् क्रान्ति हुई उसके मूल में दो क्षत्रिय-कुमार थे। यह घटना ब्राह्मण-प्रधान ब्राह्मण-धर्म के प्रति उस युग के विप्लव का प्रतीक है। बौद्ध और जैन धर्म पूर्वकालीन यागप्रधान ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थे। इस प्रतिक्रिया का पूर्वरूप हम उपनिषदों के सूक्ष्म ब्रह्मवाद से ही पाते हैं।

उपनिषदों के अध्ययन से यही अनुमान होता है कि उस समय अध्यात्म-विद्या के क्षेत्र में क्षत्रियों की प्रधानता स्थापित हो चुकी थी। उनमें पचीसों ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि 'काशी' और 'विदेह' अध्यात्म-विद्या के दो प्रधान क्षेत्र थे और इन प्रदेशों के राजा—अजातशत्रु और 'जनक'—बहुत बड़े विद्वान् और विद्वानों के प्रेमी थे तथा इनकी राजसभा में कुरु, पंचाल, मत्स्य, अंग आदि देशों के उद्भट दार्शनिक एवं तार्किक आते, शास्त्रार्थ करते तथा अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाकर पुरस्कार पाते थे।

जिस प्रकार ब्राह्मणग्रन्थीय ब्राह्मण-धर्म, उपनिषदीय ब्राह्मण-धर्म तथा जैन-बौद्धधर्मों के क्रमिक विकास में क्षत्रियों की उत्तरोत्तर प्रधानता के लक्षण मिलते हैं उसी प्रकार उसमें हम सिद्धान्तों की अधिकाधिक सूक्ष्मरूपता का भी परिचय पाते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों का वह कर्म-प्रधान स्थूल याग-धर्म, जो उपनिषदों के ज्ञान-प्रधान ब्रह्मवाद और आत्मवाद में सूक्ष्मतर हो चुका था, बौद्धों के शून्यवाद में सूक्ष्मता की चरम सीमा को पहुँच गया।

दार्शनिक विचारों के इस क्रमिक इतिहास में जैनधर्म का एक अपना महत्त्व है—एक अपनी विशेषता है। जैनधर्म ने उपनिषदीय सत्तात्मक ब्रह्मवाद तथा बौद्धीय असत्तात्मक क्षणिकवाद या शून्यवाद के सम्मुख एक मध्यम मार्ग (Via media) प्रस्तुत करने की चेष्टा की। जैनधर्म का यह समन्वयवाद कई दृष्टियों से स्पष्ट किया जा सकता है—

[क] अनेकान्तवाद—महावीर ने जब अपनी अन्तर्दृष्टियाँ दौड़ाईं तब देखा कि उपनिषदों और बौद्धों के विचार परस्पर-विरोधी ध्रुवों पर थे। उपनिषदें 'अयमात्मा ब्रह्म' अथवा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-जैसे महावाक्यों द्वारा यह प्रमाणित करती थीं कि सारा विश्व ब्रह्म-रूप में 'सत्' है—उसकी सत्ता असन्दिग्ध है। नाम-

रूपों का नानात्व भले ही असत्य हो (नेह नानास्ति किञ्चन); किन्तु ब्रह्म की सत्ता निर्विवाद है। उधर बौद्ध दर्शन के भावना-चतुष्टय ने घोषित कर रक्खा था कि—

१. सर्वं क्षणिकम्

२. सर्वं दुःखम्

३. सर्वं स्वलक्षणम्

४. सर्वं शून्यम्

तात्पर्य यह कि सत्ता सत्य नहीं है, क्षणिकता ही सत्य है। पल-पल पर पलटनेवाले नाम-रूप-संसार के पीछे, अथवा आधारभूत किसी पर्दानशीन सत्ता की कल्पना, बौद्धों के अनुसार, युक्तिसंगत नहीं है।

ऐसी विषम परिस्थिति में जैनियों ने दोनों का खंडन भी किया, मंडन भी। बौद्धों के विरुद्ध यह प्रबल तर्क पेश किया गया कि यदि क-१, क-२, क-३, क-४·········की सन्तान और एकत्व का साधक 'क' नहीं है; यदि बालक राम, युवा राम और वृद्ध राम एक दूसरे से पृथक् हैं, तो फिर एक ही मनुष्य की भिन्न अवस्थाओं में किये गये एक ही मनुष्य के पाप-पुण्यों का सिलसिला और निपटारा कैसे हो सकता है? क-१ के कर्मों का भागी क ४ क्योंकर होगा? वास्तव में क्षणिकवाद और कर्म-सिद्धान्त दोनों बेमेल बैठते हैं। न क्षणिकवाद का माननेवाला कर्म-सिद्धान्त को निभा सकता है और न कर्म-सिद्धान्तवादी क्षणिकवाद को। 'महासाहसिक' * बौद्ध धर्म की यह असंगति अपरिहार्य है।

"दुहुँ किमि इक सँग होंहि भुआलू!
हँसबि ठठाइ फुलाइबि गालू!!"

उपनिषदों ने भी जो ब्रह्म की एकान्त, अव्यय सत्यता का प्रतिपादन किया है वह असंगत है; क्योंकि संसार में सभी पदार्थ उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, उत्पत्ति और विनाश का यही क्रम सनातन है। उत्पाद और व्यय के इस ध्रुवक्रम ही का नाम सत्ता है। किसी भी पदार्थ को हम एकान्त सत्य (absolute) नहीं कह सकते। माना कि ब्रह्म एकान्त सत्य है, घट मिथ्या है, सत्याभास है। घट भी तत्त्वतः ब्रह्म ही है। किन्तु यदि यह भावना तर्क-रूप (Syllogism) में रक्खी जाय तो यों होगा—

* कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो महासाहसिकः परोऽसौ ॥ '—सर्वदर्शन-संग्रह

यह घट (तत्त्वतः) ब्रह्म है।

यह घट (आभासतः) ब्रह्म नहीं है।

अतः यह घट ब्रह्म है भी, नहीं भी है*। किन्तु ऐसा वाक्य व्याघात-नियम (Law of contradiction) के अनुसार असिद्ध है।

'षड्दर्शनसमुच्चय'† की टीका में एकान्त सत्ता अथवा नित्यता का खंडन करते हुए मणिभद्र सूरि ने लिखा है—"कोई वस्तु एकान्त नित्य नहीं हो सकती, क्योंकि 'वस्तु' का लक्षण है 'अर्थक्रियाकारित्व' और 'क्रियाकारित्व' का अर्थ ही है गतिशीलता और क्रमिकता। किन्तु जो नित्य है वह शाश्वत, अक्रम और एक-रूप है। अतः यदि वस्तु नित्य है, तो उसमें क्रमिकता नहीं, और क्रमिकता नहीं तो अर्थक्रियाकारित्व नहीं, और अर्थक्रियाकारित्व नहीं तो वह वस्तु ही नहीं।" तात्पर्य यह है कि जो नित्य है वह वस्तु नहीं है, और जो वस्तु है वह नित्य नहीं है ‡। उसी प्रकार सामान्य और विशेष में भी व्याघात है। भला कोई भी गोत्व-विरहित गोव्यक्ति अथवा गोव्यक्ति-विच्छिन्न गोत्व का उपपादन कर सकता है? कभी नहीं। हरएक विशिष्ट गाय अपनी गोत्व-जाति की प्रतिनिधि है, और हरएक गोत्व-जाति की कल्पना विशिष्ट गौ से अनिवार्य रूप से संसृष्ट है। अतः एकमात्र सामान्य या एकमात्र विशेष की भावना अन्धगजीयता × है।

अतः जैनियों ने कहा कि इस समस्या का सुलझाव तभी होगा जब हम प्रत्येक वस्तु को 'है' और 'नहीं' दोनों कोटियों में रक्खे, एकान्त 'हाँ' या एकान्त 'ना' न मानकर प्रत्येक को 'अनेकान्त' रूप से 'हाँ' और 'ना' दोनों ही मानें।

* तुलना कीजिये—घटोऽस्तीति न वक्तव्यं सन्नेव हि यतो घटः। नास्तीत्यपि न वक्तव्यं विरोधात् सदसत्त्वयोः॥

† रचयिता—हरिभद्र सूरि और टीकाकार मणिभद्र सूरि।

‡ तथाहि वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वं लक्षणम्। तच्च नित्यैकान्ते न घटते। अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपो हि नित्यः। —षड्दर्शनसमुच्चय

× नहि कश्चित् कदाचित् केनचित् किञ्चित् सामान्य विशेष-विनाकृतमनुभूयते, विशेषो वा तद्विनाकृतः। ....केवलं दुर्णयबलप्रभावितप्रबलमतिव्यामोहादे-कमपलप्यान्यतरद्व्यवस्थापयन्ति कुमतयः। सोऽयमन्धगजन्यायः।.............

निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वेन विशेषास्तद्वदेव हि॥ —षड्दर्शनसमुच्चय और टीका

यह घट है, किन्तु पट नहीं है*। अर्थात् दृष्टि-भेद से घट भी है और नहीं भी है†। एक दूसरा निदर्शन 'अन्धों का हाथी' वाली किंवदन्ती (जिसे हमने 'अंधगजीयता' नाम दिया है) के द्वारा दिया जा सकता है। एक ही हाथी एक अंधे के लिये सूँड़-जैसा गाजरनुमा था, दूसरे के लिये दुम-जैसा छड़ीनुमा और तीसरे के लिये कान-जैसा पापड़नुमा !

सच पूछिये तो हाथी गाजरनुमा, छड़ीनुमा और पापड़नुमा है भी और नहीं भी है, विश्लेषणात्मक दृष्टि से तो है, किन्तु संश्लेषणात्मक दृष्टि से नहीं है।

जैनियों ने कहा कि वेदान्तियों का 'सत्य' और बौद्धों का 'शून्य' दोनों ही 'अन्धों का हाथी' हैं। आवश्यकता है व्यापक और उदार दृष्टि की—अनेकान्तवाद की—जिसमें एक नहीं, अनेकानेक दृष्टिकोणों की गुंजायश हो।

दृष्टिकोणों का पारिभाषिक नाम जैनियों ने 'नय' दिया और वेदान्त तथा बौद्ध का 'नयाभास' कहकर उसकी उपेक्षा की। 'नैगमनय', 'संग्रहनय', 'व्यवहारनय', 'पर्यायनय'‡ आदि नामों की कल्पना की गई और इन्हें नयाभासों के उपभेद मानकर तत्कालीन प्रचलित मतमतान्तरों की अपूर्णता और एकांगिता सिद्ध की गई।

[ख] स्याद्वाद—तर्क के क्षेत्र में विकसित इस 'नयवाद' को 'स्याद्वाद' का नाम दिया गया, क्योंकि जब हम किसी भी पदार्थ को निश्चित रूप से सत्य अथवा असत्य, 'हाँ' अथवा 'नहीं' नहीं कह सकते, तो फिर एक ही गति है—'शायद' (स्यात्)। घड़ा शायद है भी, शायद नही भी है; शायद है भी, नहीं भी—दोनो शायद अनिर्वचनीय हैं इत्यादि। तात्पर्य यह कि किसी भी पदार्थ के सम्बन्ध में कम-से-कम सात तरह—'भंगियों'—से अपना विचार प्रकट किया जा सकता है। इस 'सप्तभंगिन्याय' के सात पहलू ये हैं—

१. शायद हो,

२. शायद न हो;

३. शायद हो भी, नहीं भी हो;

* सर्वमास्ते स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च। —षड्दर्शनसमुच्चय

† किं वस्त्वस्तीत्यादि पर्यनुयोगे कथञ्चिदस्तीत्यादिप्रतिवचनसम्भवे ते वादिनः सर्वे निर्विण्णाः। —सर्वदर्शनसंग्रह

‡ क्या डेढ़ हजार वर्षों के बाद जब शंकराचार्य ने पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ताओं की कल्पना की, तब उनकी इस कल्पना मे हम तीर्थङ्कर महावीर का ऋण नहीं स्वीकार करेंगे ? सम्भव है, शांकर वेदान्त ने इस त्रिकोटिक सत्ता की सूझ जैनियों से ही ली हो।

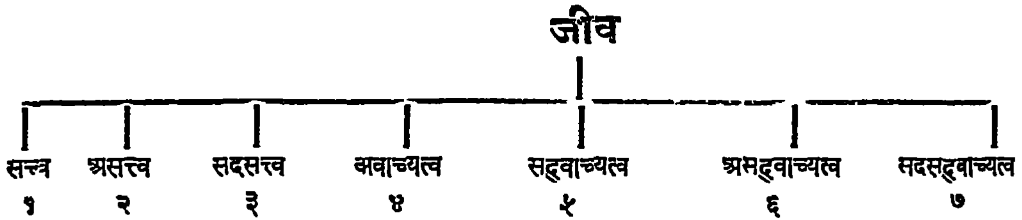
४ शायद अवक्तव्य हो,

५. शायद हो भी, अवक्तव्य भी हो;

६. शायद नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो;

७. शायद हो भी, नहीं भी हो, अवक्तव्य भी हो।*

[ग] अज्ञानवाद—इस स्याद्वाद का अनिवार्य परिणाम हुआ **अज्ञानवाद** (Scepticism)। अज्ञान, न कि ज्ञान, मोक्ष का साधन समझा गया। और, इस अज्ञानवाद के सप्तभंगियों और नवतत्त्वों† के सहारे ६७ अपवाद माने गये। इस संख्या की व्याख्या इस प्रकार होगी—सप्तभंगियो की दृष्टि से नव तत्त्वो में प्रत्येक के हिसाब से सात भेद होंगे—उदाहरणतः जीव के हिसाब से—



इस क्रम से, प्रकारतः नव तत्त्वो के हिसाब से, ९×७=६३ उपभेद हुए। किन्तु सत्त्व, असत्त्व, सदसत्त्व और अवाच्यत्व—इन चार दृष्टियों से नव तत्त्वो की उत्पत्ति का खयाल करते हुए चार और उपभेद हुए। इस तरह अज्ञानवाद के ६३+४= ६७ उपभेद हुए।‡

* अत्र सर्वत्र सप्तभङ्गिनयाख्य न्यायमवतारयन्ति जैनाः—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति। —सर्वदर्शनसग्रह

† प्राय जैनियों के अनुसार तत्त्वों की सख्या नव है—

जीव, अजीव, आस्रव, पाप, पुण्य, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष। (जीवाजीवौ तथा पुण्यपापमास्रवसंवरौ। बन्धश्च निर्जरामोक्षौ नवतत्त्वानि तन्मते।) —षड्दर्शनसमुच्चय

‡ Thus we have these seven schools under the first 'principle' and extending the same classification to each of the other eight 'principles' we have nine times seven' i. e., sixty-three schools. These refer to the nature of the nine 'principles' severally, but as for their origin in general four other schools are possible, viz., sattva, asattva, sad asattva, and avachyatva—the other three forms of the seven possible variations are not used in this case as they are used only in respect of the several parts of a thing only after its origin has taken place which is not the case here. The last four added to the previous sixty-three give us sixty-seven schools under Ajnanavada.

—Schools and Sects in Jain Literature 'Amulyachandra Sen, page 36

उपरिवर्णित 'स्याद्वाद' अथवा 'अज्ञानवाद' की तह में भी जैनियों की समन्वय-भावना ही काम करती है। 'यह भी ठीक'—'वह भी ठीक'—मनोवृत्ति जैनदर्शन के प्रायः प्रत्येक अंग में परिलक्षित है। समन्वयवादी के अज्ञानवादी होने की प्रवृत्ति भी स्वाभाविक ही है; क्योंकि समन्वयवादी का अपना विशिष्ट सिद्धान्त प्रायः नही होता और विशिष्ट सिद्धान्त के अभाव का ही तो कटुतर नाम है 'अज्ञान'। समन्वयवाद आरम्भ में रुचिकर भले ही हो, किन्तु कालक्रम से उसका ह्रास अनिवार्य है। उसमें उस व्यक्तित्व, उस प्रेरणा (drive) की कमी होती है जो किसी सिद्धान्त की जीवनशक्ति को संघर्ष-प्रतिसंघर्ष द्वारा अक्षुण्ण रक्खे। ऐसी दशा में यदि बौद्धमत ने कालक्रम से जैनमत को होड़ में हरा दिया तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। जैनमत की 'भलमनसी' ही उसकी पराजय का कारण बनी। आज जैनमतानुयायी अधिकाधिक लगभग ग्यारह लाख ही हैं—वह भी केवल भारत में; और भारत में भी श्वेताम्बर मुख्यतः गुजरात और पश्चिमी राजस्थान तथा दिगम्बर मुख्यतः दक्षिण में।

[घ] कर्मसिद्धान्त—हिन्दू, बौद्ध और जैन—तीनो के कर्मसिद्धान्त लगभग समान ही हैं। प्रत्येक ने कुछ पारिभाषिक शब्दों के समावेश द्वारा विशिष्ट रूप देने की चेष्टा की है। जैनियो के अनुसार जीव निसर्गतः अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य का भागी है। किन्तु कर्म के परमाणु, जीव के काषाय (वासनाओं) से मिलकर और उसके साथ चिपककर, जीव में आ घुसते हैं (आस्रवन्ति)। कर्म के इस आ घुसने (आ + स्रव) को 'आस्रव' कहते हैं। किन्तु हममें जो 'संवर' (अर्थात् तप और सच्चरित्रता) है (जिसकी विस्तृत व्याख्याएँ जैनमत में की गई हैं) वह इस आस्रव को ढक देने की चेष्टा करता है (सं + वृणोतीति संवरः)। परिणाम होता है 'निर्जर'—अर्जित कर्मो का क्षय और फलतः मोक्ष।*

इस कर्म-सिद्धान्त में जैनियों ने ज्ञान पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना चारित्र पर—जीवन के व्यावहारिक नियमों पर। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का 'रत्नत्रय' मोक्ष का साधन बताया गया†। इसे हम जैनियों का 'व्यवहारवाद' (pragmatism) भी कह सकते हैं। व्यवहारवाद और समन्वय-

* अभिनवकर्माभावान्निर्जराहेतुसान्निध्येनार्जितस्य कर्मणो निरसनादात्यन्तिककर्ममोक्षणं मोक्षः। —सर्वदर्शनसंग्रह

† सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

वाद प्रायः साथ-साथ चलते ही हैं। समन्वयवादी का यह ध्यान हमेशा रहेगा कि वह लोकसंग्रही हो—लोक-व्यवहार का विरोध तीव्ररूप से करना उसे नहीं भाता। जैनियों ने चारित्र के जो नियम निर्धारित किये उनमें और पातञ्जल योगदर्शन के साधनों में कहीं-कही बहुत समानता है। उदाहरणतः—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—जो पञ्चकोटिक 'यम' योगदर्शन ने बताये हैं, उन्हें जैनमत ने हूबहू ले लिया है और उनमें समिति, गुप्ति, धर्म, परिषहजय, अनुप्रेक्षा आदि अनेकानेक चारित्र के अंगो को जोड़ दिया है। अहिंसा को तो अत्यधिक प्रधानता दे दी गई है। पशु-वलि-प्रधान ब्राह्मणीय यागवाद से ऊवी भारतीय जनता को जैनों और बौद्धों का अहिसा-सिद्धान्त खूब जॅचा।

[ङ] अनीश्वरवाद एवं तीर्थङ्करवाद—जैनियो के व्यवहारवाद (Pragmatism) का परिचय उनके द्वारा स्वीकृत प्रमाणो से भी मिलता है। वे मुख्यतः प्रत्यक्ष और गौणतः अनुमान—दो ही प्रमाण स्वीकार करते है। प्रत्यक्ष में भी निर्विकल्प प्रत्यक्ष को वे नही मानते। ये सभी बाते यह सिद्ध करती हैं कि जैनियो का दृष्टिकोण मुख्यतः व्यवहारवादी रहा है।

ऊपर की पंक्तियों में यह दिखलाया गया है कि वेदो और ब्राह्मण-ग्रन्थों की स्थूल बहुदेवभावना क्रमशः उपनिषदो के सूक्ष्म ब्रह्मवाद से छनकर बौद्धो के शून्य-वाद की ओर अग्रसर हुई। उपनिषत्काल और बौद्ध-जैन-काल के बीच मे षड्दर्शनो की भी कल्पनाएँ हो चुकी थीं। इनमें सांख्य-योग को हम अनीश्वरवादी कह सकते हैं। सांख्यदर्शन में सृष्टिकर्त्ता-हर्त्ता ईश्वर की आवश्यकता नही है और योग ने भी सांख्य के 'पुरुष' की भावना को अपनाकर 'पुरुष-विशेष' को ही ईश्वर की उपाधि दी *। इन प्रमाणो से कम-से-कम इतना सिद्ध है कि वैदिक हिन्दू-दर्शनो में पहले से ही निरीश्वरवाद की विचारधारा प्रवाहित हो चुकी थी। अतः यह कहना या समझना कि बौद्धो और जैनियो से नास्तिकता या निरीश्वरवाद का प्रवाह चला—भ्रान्त है। यदि जनता मे निरीश्वरवाद की लहर पहले से ही न फैली होती तो बौद्ध-जैन निरीश्वर-भावना को प्रोत्साहन ही न मिलता।

जैनियो के अनुसार कर्मसिद्धान्त और प्राकृतिक तथा सदाचार-सम्बन्धी नियमो के अतिरिक्त एक चेतन पौरुषेय ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है। यदि आप कहें कि प्रत्येक कार्य के लिये एक कारण है, उसी प्रकार सृष्टिरूपी कार्य के

* क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

लिये ईश्वर-रूपी कारण की आवश्यकता है, तो उत्तर यह होगा कि चेतन ही क्यों, अचेतन प्रकृति ही क्यों न कारण मानी जाय ? अच्छा, यदि चेतन कारण माना भी जाय, तो प्रश्न होगा कि वह अशरीर है या सशरीर ? यदि अशरीर कारण कार्य कर सकता है, तो अशरीर कुम्भकार घट क्यों नही बना लेता ? फिर आखिर ईश्वर ने सृष्टि क्यों रची—मन की मौज या कर्मसिद्धान्त का कायल होकर ? यदि मन की मौज, तो ईश्वर निरंकुश हुआ, यदि कार्य, कारण अथवा कर्म और उसके भोग से कायल होकर, तो परवश और परतंत्र हुआ। अतः चेतन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सिद्धि आवश्यक है; ईश्वरवाद के सभी उद्देश्यों की सिद्धि 'अदृष्ट' (प्रकृति के अटल नियम) की कल्पना से ही हो सकती है।

किन्तु निरीश्वरवादी होते हुए भी योग ने जिस प्रकार 'पुरुष-विशेप' को ईश्वर का स्थानापन्न बनाया उसी प्रकार जैनदर्शन ने भी अपने तीर्थङ्करो को ईश्वर का स्थानापन्न बनाया। ईश्वर अथवा अवतार के प्रति हिन्दुओ की जैसी भावना है, जैनियों की अपने तीर्थङ्करों के प्रति भी वही भावना है। 'जिनेन्द्र' या 'अर्हन्' को हम जैनियो का ईश्वर समझ सकते हैं; क्योकि इनके लिये 'सर्वज्ञ', 'देव', 'परमेश्वर' आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं* और इनकी मूर्त्तियों की पूजा उसी भक्ति-भावना से होती है जिससे हिन्दू-देवी-देवताओ की। हिन्दुओं के चौबीस अवतारों और जैनियो के चौबीस तीर्थङ्करों की कल्पना तथा उनकी संख्या को देखकर भी हम जैनमत की समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय पा सकते हैं।

[च] उपसंहार—जिसे हमने ऊपर की पंक्तियों में समन्वयवाद कहा है उस मध्यम मार्ग का आश्रयण महावीर ने निष्पक्ष परीक्षण के नाम पर किया था। षड्दर्शनसमुचय के आरंभ में 'अपर दर्शनों' की दकियानूसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा गया है कि और दर्शनो ने पुराण, मनुस्मृति, वेद और

* तु०—षड्दर्शनसमुच्चय—

जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषबिवर्जित: ।
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा सम्प्राप्त: परमं पदम् ॥
... ...
सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजित ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वर. ॥

—सर्वदर्शन-संग्रह

चिकित्साशास्त्र को 'आज्ञा-सिद्ध' बताते हुए उन्हें तर्क से परे बताया है*; किन्तु जैनमतावलम्बी यह कहेगा कि तर्क की कसौटी पर कसने से भय खाना मानों यह सिद्ध कर देता है कि आपका पक्ष निन्द्य है, नहीं तो 'साँच में आँच' क्यो ? खरे सोने की जाँच से डरना कैसा ? जैनी परीक्षण से नहीं हिचकता। परीक्षण भी निष्पक्ष हो। न तो उसे महावीर में अनुचित पक्षपात है और न कपिल आदि में अनुचित द्वेष †। उसे तो युक्तिसंगत सिद्धान्तो का आश्रयण करना है। 'स्याद्वाद-मंजरी'—कार ने भी यह घोषित किया है कि—आर्हतमार्ग निष्पक्ष है ‡। निष्पक्ष परीक्षण का यह दृष्टिकोण कार्यरूप में, उस समन्वयवाद या मध्यम मार्ग (Via media) के रूप में, पल्लवित हुआ जिसकी रूप-रेखा का अंकन प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य था।

* पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभि.॥
किन्तु जैन—
अस्ति वक्तव्यता काचित्तेनेय न विचार्यते।
निर्दोष काञ्चनं चेत् स्यात् परीक्षाया विभेति किम्।
—षड्दर्शन-समुच्चय

† पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

‡ अपक्षपातो समयस्तथार्हतः ॥





भगवान् भूतनाथ और भारत

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के आधार से ही भगवान् भूतनाथ की कल्पना हुई है। वे असंख्य ब्रह्मांडाधिपति और समस्त सृष्टि के अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोम में भारत-जैसे करोड़ो प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है, तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्वमूर्त्ति की एक लघुतम मूर्त्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमे हम भगवान् भूतनाथ का साम्य अधिकतर पाते हैं तब हृदय परमानन्द से उत्फुल्ल हो जाता है। उस आनन्द का भागी हम आपलोगों को भी बनाना चाहते हैं।

'भूत' शब्द का अर्थ है पंचभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणि-समूह अथवा समस्त सजीव सृष्टि, जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रकट होता है—

"सर्वभूतहिते रतः।"

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥"

भूत शब्द का तीसरा अर्थ है योनि-विशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जाति से भिन्न है, और जिसकी गणना प्रेत एवं वैतालादि जीवों की कोटि में होती है। जब भगवान् शिव को हम 'भूतनाथ' कहते हैं, तब उसका यह अर्थ होता है कि वे पंच-भूत से लेकर चींटी तक समस्त जीवों के स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थ में भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्व की व्यापकता उतनी नहीं, तो भी वह भूतनाथ है क्योंकि पचभूतों के अनेक अंशों, और प्राणि-समूह के एक बहुत बड़े विभाग पर उसका

भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है। उनके ललाट-देश में यदि मयंक विराजमान हैं, तो उसके ऊर्ध्व भाग में। यदि वे सूर्य-शशांक-वह्नि-नयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है, क्योंकि उसके जीवमात्र के नयनो का साधन दिन मे सूर्य और रात्रि में शशांक एवं अग्नि (अर्थात् अग्नि-प्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान् शिव के शीश पर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारत का शिरोदेश भी उन्हीकी पवित्र धारा से प्लावित है। यदि वे विभूति-भूषण हैं, उनके कुन्देन्दुगौर शरीर पर विभूति (भभूत) विलसित है, जो सांसारिक सर्व विभूतियो की जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है—उसके अंक में नाना प्रकार के रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियो का भी जनक है, जिनसे उसकी भूमि स्वर्ण-प्रसविनी कही जाती है। यदि वे 'मुकुन्दप्रिय' हैं, तो भारत भी मुकुन्दप्रिय है; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे वार-वार अवतार धारण कर उसका भार-निवारण न करते, और न उसके भक्ति-भाजन वनते। उनके अंगो में निवास कर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयंकर जन्तु भी सरलगति वनता और विष-वमन करना भूल जाता है, तो उसके अंक में निवास कर अनेक वक्रगति प्राणियो की भी यही अवस्था हुई है और होती रहती है—भारत की अंगभूत आर्यधर्मा-वलम्बिनी अनेक विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि वे भुजंगभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है—अष्टकुलसम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभ-वाहन हैं, तो भारत को भी ऐसा होने का गौरव प्राप्त है, क्योंकि वह कृषि-प्रधान देश है, और उसका समस्त कृषिकर्म वृषभ पर ही अवलम्बित है।

भगवान् भूतनाथ की सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्ति का नाम 'उमा' है। उमा है—"ह्रीः श्रीः कीर्त्तिर्द्युतिः पुष्टिः उमा लक्ष्मीः सरस्वती"—उमा श्री है, कीर्त्ति है, द्युति है, पुष्टि है, और सरस्वती एवं लक्ष्मी-स्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है, जिसकी कामना प्रत्येक तम-निपतित जिज्ञासु पुरुष करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वेद-वाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्ति से शक्तिमान् है। जिस समय सभ्यता का विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञान का अंधकार चारो ओर छाया हुआ था, उस समय भारत की शक्ति से ही धरातल शक्तिमान् हुआ, उसीकी श्री से श्रीमान् एवं उसीके प्रकाश से प्रकाशमान् वना। उसी ने उसको पुष्टि दी, उसीकी लक्ष्मी से वह धनधान्य-सम्पन्न हुआ, और उसीकी सरस्वती उसके अंध नेत्रो के लिये ज्ञानांजन-शलाका हुई। चारो वेद भारत की ही विभूति हैं। सवसे पहले उन्होने ही इस महा-मंत्र का उच्चारण किया था—

"सत्यम् वद, धर्म्मम् चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदः।
मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव॥"
"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ॥
"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ॥
कृणुध्वम् विश्वमार्य्यम् ।"—इत्यादि

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उन सबकी जननी वेद-प्रसव-कारिणी शक्ति ही है, अन्य नहीं। यह सत्य है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षों के एक-एक पत्ते पर लिखा हुआ है। दृष्टि वाले प्राणियो के लिये उसकी विभूति संसार के प्रत्येक पदार्थ में उपलब्ध होती है।

किन्तु ईश्वरीय ज्ञान के आविष्कारकों का भी कोई स्थान है। वेदमंत्रों के द्रष्टा उसी स्थान के अधिकारी हैं। धरातल में सर्वप्रथम सब प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के प्रवर्त्तक का पद उन्हींको प्राप्त है। उन्हींके वंशजो में बुद्धदेव-जैसे भारतीय धर्मप्रचारक हैं, जिनका धर्म आज भी धरातल के बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ है। वर्त्तमानकाल में कवीन्द्र रवीन्द्र उन्हींके मंत्रो से अभिमंत्रित होने के कारण धरातल के सर्वप्रधान प्रदेशों में पूज्य दृष्टि से देखे जाते और सम्मानित होते हैं। यह मेरा ही कथन नहीं है, भगवान मनु भी यही कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अनेक अँगरेज विद्वानों ने भी भारत-शक्ति के इस उत्कर्ष को स्वीकार किया है और पक्षपातहीन होकर उसकी गुरुता का गुण गाया है। इस विषय के पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। सारांश यह कि भारतीय शक्ति वास्तव में उमास्वरूपिणी है और उन्हींके समान वह ज्योतिर्मयी और अलौकिक कीर्त्तिशालिनी भी है। यदि धरातल में पाशव शक्ति में सिंह को प्रधानता प्राप्त है, यदि उसपर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंहवाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमा से धरा की समस्त पाशव शक्तियों पर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंहवाहना है। यदि उमा ज्ञानगरिष्ठ गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम परम पराक्रमी कार्त्तिकेय-जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारत की शक्ति ने भी ऐसी अनेक संतानें उत्पन्न की हैं, जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति दोनो बातो मे अलौकिक कीर्त्ति प्राप्त की है। प्रमाण मे कपिलदेव,

वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, गौतम, व्यासादि जैसे महर्षि और भगवान् रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र-जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान् शंकर और भारतवर्ष में इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-संतान है, जो परम गौरवान्वित और अतीव आनन्दित न हो। वास्तव में बात यह है कि भारतीयों का उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है, जैसे भगवान् शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारत की यथार्थ सेवा कर अपना उभयलोक बनाने के लिये सचेष्ट न होंगे? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे, क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्व विभूतियों से भी विभासित और परिपूरित है, जो धरातल के किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं।





बिहार में श्रीगंगाजी

पंडित दयाशंकर दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अर्थशास्त्राध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय

हिन्दू-धर्मशास्त्रों में श्रीगंगाजी के माहात्म्य का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। हिन्दुओं का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य श्रीगंगाजी के गुण-गान से भरा पड़ा है। गंगा, गाय और गीता हिन्दू-जाति की जान और शान हैं।

श्रीगंगाजी का स्मरण करने से, उनके दर्शन करने से, उनमें स्नान करने से और उनका पवित्र जल पान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। साथ ही, स्वास्थ्य को भी बहुत लाभ होता है। स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से तो श्रीगंगाजी अमृत-नदी ही हैं। उनके निर्मल जल में भयंकर कीटाणुओं को नष्ट करने की अलौकिक शक्ति है। विदेशों के बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता विद्वानों ने मुक्तकंठ से यह स्वीकार किया है।

कलियुग में तो श्रीगंगाजी प्रत्यक्ष देवता हैं। उनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने जल में स्नान करनेवाले को कुछ क्षणों के लिये देवता बना देती हैं। जब कोई मनुष्य स्नान करने के लिये श्रीगंगाजी में पैर रखता है, तब वह भगवान् विष्णु का रूप धारण कर लेता है। जब वह गोता लगाता है, गंगाजल उसके बालों से गिरता है और वह भगवान् शंकर का रूप ग्रहण कर लेता है। जब स्नान करने के बाद वह अपने कमंडलु में गंगाजल भरकर घर ले जाता है, तब वह ब्रह्माजी का रूप बन जाता है। इस प्रकार गंगास्नान कुछ क्षणों के लिये मनुष्य को क्रमशः विष्णु, शंकर और ब्रह्मा के रूप में परिणत कर देता है।

आयुर्वेद की दृष्टि से भी श्रीगंगाजी का बहुत महत्त्व है। गंगाजल में

संक्रामक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने का विशेष गुण है। गंगाजल-सेवन करनेवाले व्यक्ति रोगो से मुक्त रहते और दीर्घजीवी होते हैं। गगा की मिट्टी भी अनेक रोगों का नाश करती है। गंगातट के उत्पन्न हुए अन्न और फूल-फल भी स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं।

श्रीगंगाजी का आर्थिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। उनके द्वारा प्रतिवर्ष हजारो एकड़ जमीन पर नई और उपज वढ़ानेवाली मिट्टी जमा होती है—लाखों एकड़ जमीन प्रतिवर्ष सींची जाती है—करोड़ो मन सामान नावों और जहाजों-द्वारा प्रतिवर्ष एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है।

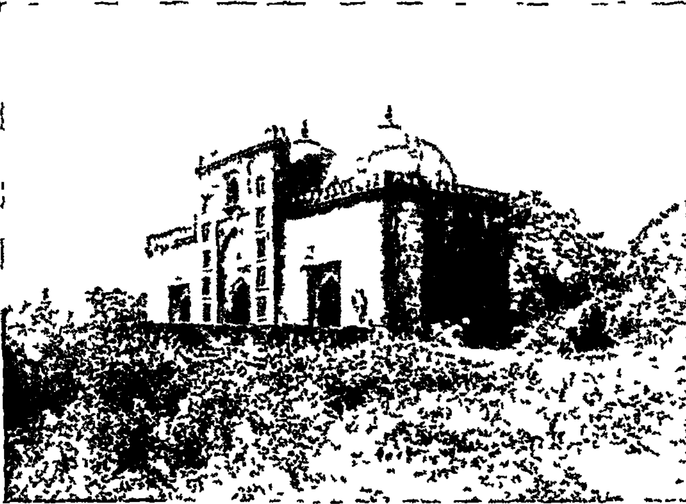
ऐतिहासिक दृष्टि से भी श्रीगंगाजी का महत्त्व वड़ा गम्भीर है। इतिहास के निर्माण में उन्होंने जो हाथ वटाया है वह ध्यान देने योग्य और वड़ा आकर्षक तथा स्तुत्य है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओ से गंगा का सम्बन्ध है।

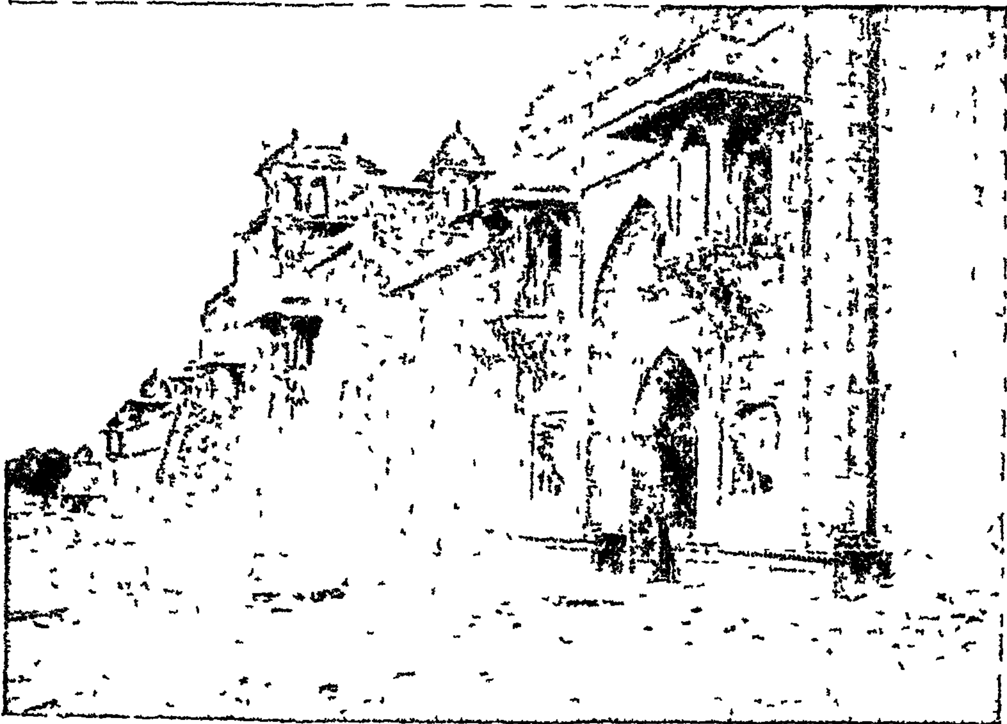
विहार-प्रान्त के लिये यह विशेष रूप से गौरव की वात है कि उसकी प्रधान नदी श्रीगंगाजी हैं। उन्होंने विहार को दो भागो मे विभक्त कर दिया है—मगध और मिथिला। गगा से दक्षिण का खंड मगध है और उत्तर का भाग मिथिला या तिरहुत। दक्षिण विहार की पश्चिमी सीमा पर शाहावाद (आरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर जिला सन्तालपरगना। उत्तरी विहार की पश्चिमी सीमा पर सारन (छपरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर पुर्नियाँ जिला। इस प्रकार विहार मे जहाँ गंगाजी प्रवेश करती हैं वहाँ दक्षिण भाग मे शाहावाद जिला पड़ता है और उत्तरी भाग में सारन। जहाँ से वे विहार को पार करके वंगाल मे पैठती हैं वहाँ दक्षिण भाग मे जिला सन्तालपरगना पड़ता है और उत्तरी भाग मे पुर्नियाँ। गंगा के दक्षिण तट पर पाँच जिले पड़ते हैं—शाहावाद, पटना, मुंगेर, भागलपुर और सन्तालपरगना, उत्तर की ओर भी पाँच ही जिले हैं—सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और पुर्नियाँ, पर चम्पारन को छोड़कर केवल चार ही जिले गंगा के उत्तरी तट पर पड़ते हैं। हाँ मुंगेर और भागलपुर जिले गगा के दोनो तटों पर फैले हुए हैं; क्योंकि इनके वीचोवीच से गंगाजी वहती हैं। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि लगभग समस्त विहार के निवासी श्रीगंगाजी के दर्शन और सेवन से कृतकृत्य होते रहते हैं। श्रीगंगाजी को भी विहार मे आठ वड़ी सहायक नदियाँ मिलती हैं—दक्षिण की ओर से कर्मनाशा, सोन, पुनपुन और फल्गु तथा उत्तर की ओर से गंडक (नारायणी, सदानीरा या शालग्रामी), सरयू (घाघरा या घर्घरा), वूढ़ी गंडक और कोशी। ये सव नदियाँ अत्यन्त प्राचीन और पुराण-प्रसिद्ध हैं।

रोहतासगढ़ (शाहाबाद)
की बारादरी



रोहतासगढ़ (शाहाबाद)
मे शेरशाह का मकबरा





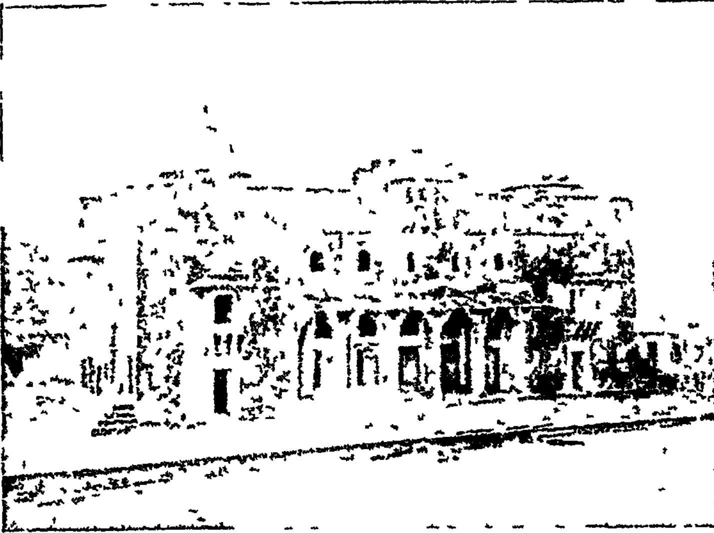
रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के दरबार-हॉल का पीछे का दृश्य

संक्रामक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने का विशेष गुण है। गंगाजल-सेवन करनेवाले व्यक्ति रोगो से मुक्त रहते और दीर्घजीवी होते हैं। गंगा की मिट्टी भी अनेक रोगो का नाश करती है। गंगातट के उत्पन्न हुए अन्न और फूल-फल भी स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं।

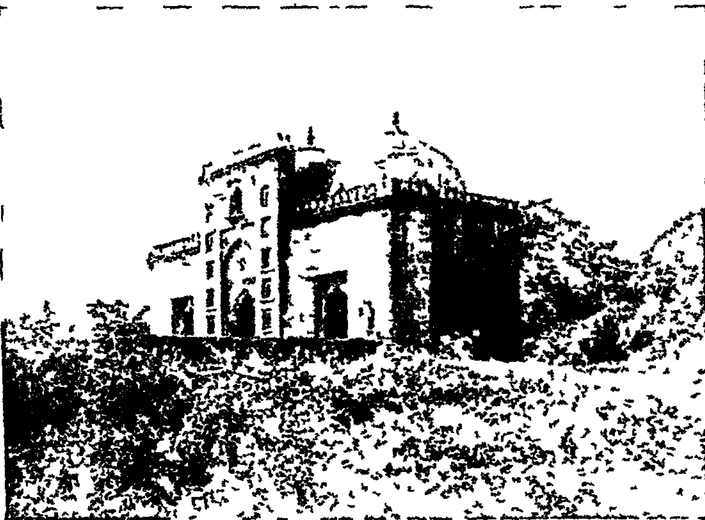
श्रीगंगाजी का आर्थिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। उनके द्वारा प्रतिवर्ष हजारों एकड़ जमीन पर नई और उपज बढ़ानेवाली मिट्टी जमा होती है—लाखो एकड़ जमीन प्रतिवर्ष सींची जाती है—करोड़ो मन सामान नावो और जहाजों-द्वारा प्रतिवर्ष एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी श्रीगंगाजी का महत्त्व बड़ा गम्भीर है। इतिहास के निर्माण में उन्होने जो हाथ बटाया है वह ध्यान देने योग्य और बडा आकर्षक तथा स्तुत्य है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से गंगा का सम्बन्ध है।

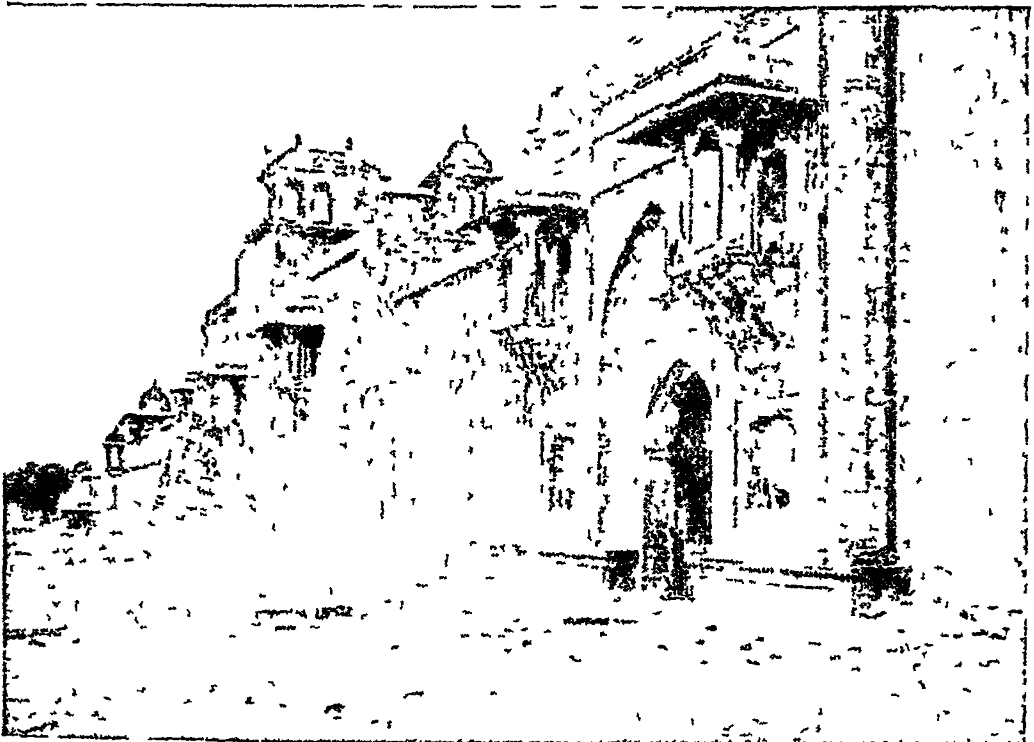
बिहार-प्रान्त के लिये यह विशेष रूप से गौरव की बात है कि उसकी प्रधान नदी श्रीगंगाजी है। उन्होंने बिहार को दो भागो में विभक्त कर दिया है—मगध और मिथिला। गंगा से दक्षिण का खंड मगध है और उत्तर का भाग मिथिला या तिरहुत। दक्षिण बिहार की पश्चिमी सीमा पर शाहाबाद (आरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर जिला सन्तालपरगना। उत्तरी बिहार की पश्चिमी सीमा पर सारन (छपरा) जिला है और पूर्वी सीमा पर पुर्नियाँ जिला। इस प्रकार बिहार मे जहाँ गंगाजी प्रवेश करती हैं वहाँ दक्षिण भाग मे शाहाबाद जिला पड़ता है और उत्तरी भाग में सारन। जहाँ से वे बिहार को पार करके बगाल मे पैठती है वहाँ दक्षिण भाग में जिला सन्तालपरगना पड़ता है और उत्तरी भाग मे पुर्नियाँ। गंगा के दक्षिण तट पर पाँच जिले पड़ते हैं—शाहाबाद, पटना, मुँगेर, भागलपुर और सन्तालपरगना; उत्तर की ओर भी पाँच ही जिले हैं—सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और पुर्नियाँ; पर चम्पारन को छोड़कर केवल चार ही जिले गंगा के उत्तरी तट पर पड़ते हैं। हाँ मुँगेर और भागलपुर जिले गंगा के दोनो तटो पर फैले हुए हैं; क्योकि इनके बीचोबीच से गंगाजी बहती हैं। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि लगभग समस्त बिहार के निवासी श्रीगंगाजी के दर्शन और सेवन से कृतकृत्य होते रहते हैं। श्रीगंगाजी को भी बिहार मे आठ बड़ी सहायक नदियाँ मिलती हैं—दक्षिण की ओर से कर्मनाशा, सोन, पुनपुन और फल्गु तथा उत्तर की ओर से गंडक (नारायणी, सदानीरा या शालग्रामी), सरयू (घाघरा या घर्घरा), बूढी गंडक और कोशी। ये सब नदियाँ अत्यन्त प्राचीन और पुराण-प्रसिद्ध हैं।



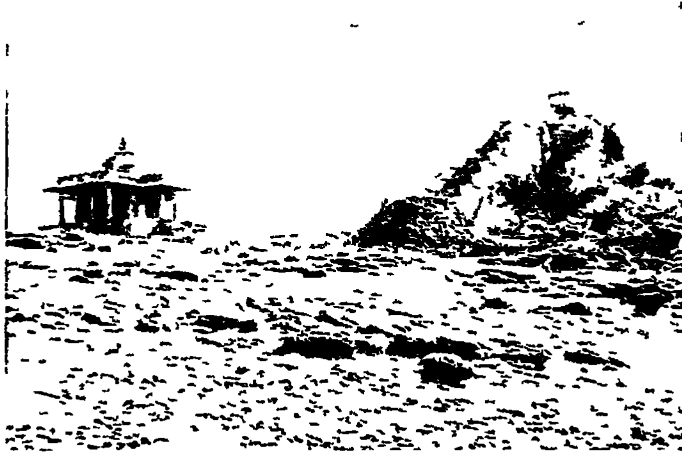
रोहतासगढ़ (शाहाबाद) की बारादरी



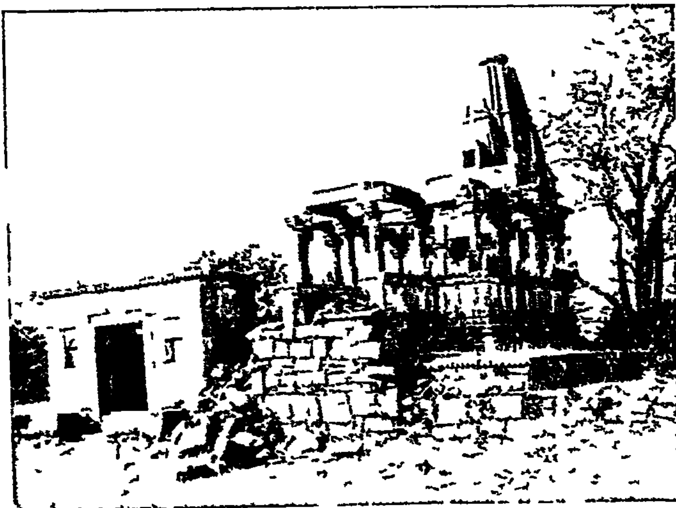
रोहतासगढ़ (शाहाबाद) में शेरशाह का मकबरा



रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के दरबार-हॉल का पीछे का दृश्य



रोहतासगढ़ (शाहाबाद) में रोहिताश्व और हरिश्चन्द्र के मन्दिर, जिन्हें अकबर के प्रधान सेनापति राजा मानसिंह ने बनवाया था।



रोहतासगढ़ (शाहाबाद) का गणेश-मन्दिर जिसे राजा मानसिंह ने ही बनाया। इसका गुम्बज टूटा हुआ है।

रोहतासगढ़ (शाहाबाड) के किले का दृश्य—यह किला १६ वीं शताब्दी का बना मालूम होता है। इस स्थान का सम्बन्ध पुराण-प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से बताया जाता है। ओराँव, चेरो और खारवार नामक आदिम जातियाँ भी इसे अपनी-अपनी । ।नी बतलाती हैं। विक्रम-संवत् १२७९ का एक शिला लेख यहाँ मिला है। मुसलमानी काल में इस किले का बडा महत्त्व रहा है। शेरशाह ने इसपर कब्जा कर अपनी स्थिति दृढ की थी।





संयुक्त-प्रान्त के गाजीपुर नगर से पूरब तरफ आगे बढ़ने पर पुण्यतोया श्रीगंगाजी बिहार-प्रान्त के शाहाबाद जिले के 'चौसा' नामक ग्राम के पास सर्वप्रथम बिहार की भूमि में प्रवेश करती हैं। 'चौसा' के पास ही उनका कर्मनाशा से संगम होता है। यहीं पर अफगान-सरदार शेरखाँ ने मुगल-सम्राट् हुमायूँ को परास्त किया था। हुमायूँ ने तैरकर गंगाजी को पार करना चाहा; किन्तु बीच में ही डूबने लगा। उस समय एक राजभक्त भिश्ती ने उसके प्राण बचाये, जिसके बदले में हुमायूँ ने भिश्ती को आधे दिन के लिये राजगद्दी पर बैठने की आज्ञा दी और उस अल्पकालिक राजत्वकाल में ही भिश्ती ने चमड़े का सिक्का चलाया था। यह इतिहासप्रसिद्ध घटना है।

बिहार में गंगाजी के प्रवेश-द्वार पर 'चौसा' बहुत ही पुराना गाँव है, जो शेरशाह और हुमायूँ का युद्धस्थल होने के कारण इतिहास में भी प्रसिद्ध है। ईस्ट-इंडियन रेलवे की मुगलसराय-पटना-लाइन पर 'चौसा' एक स्टेशन है, इसलिये जल और स्थल दोनों मार्गों से 'चौसा' पहुँचने की सुविधा है। श्रीगंगाजी चौसा से आगे शाहाबाद की उत्तरी सीमा पर बहती हुई संयुक्त-प्रान्त के दो जिलों—गाजीपुर और बलिया—को शाहाबाद से अलग करती हैं। 'चौसा' से उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई श्रीगंगाजी पुण्यभूमि 'बक्सर' में पहुँचती हैं।

बक्सर—यह शाहाबाद जिले का एक प्राचीन स्थान है—'चौसा' से लगभग आठ मील उत्तर-पूर्व गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है। ईस्ट-इंडियन रेलवे (ई० आइ० आर०) का बहुत प्रसिद्ध स्टेशन तथा व्यापार की अच्छी मंडी भी है। पहाड़ी और जंगली लकड़ियाँ और बाँस तथा मिर्जापुरी पत्थर भी यहाँ खूब बिकते हैं—यह सुविधा केवल गंगाजी के कारण है।

बक्सर की पश्चिमी सीमा पर दक्षिण से आकर 'ठोरा' नदी गंगाजी से मिली है और इसी संगम पर 'सेंट्रल जेल' है जो बिहार के बड़े जेलखानों में बहुत प्रसिद्ध है। इस जेल में हस्तशिल्प और गृहशिल्प की अनेक वस्तुएँ तैयार होती हैं। गंगाजी के कारण यह जेल कैदियों का स्वास्थ्यनिकेत है।

अति प्राचीन काल में यहाँ पर बहुत-से ऋषि-मुनियों का निवास-स्थान था। उन्हीं वेदज्ञ महात्माओं के नाम पर इसका प्राचीन नाम 'वेदगर्भ' था। यहाँ गंगा-तट पर 'चरित्रवन' नामक एक प्राचीन तपोवन का चिह्न अवशिष्ट है जहाँ आज भी वैष्णव वैरागियों के आश्रम और मठ-मन्दिर हैं। यह पंचक्रोशी के अन्दर है।

पटना शहर गंगा-तट पर बसे हुए सभी नगरो से लम्बा है। इस लम्बाई का अनुमान इन पॉच स्टेशनो से भी हो सकता है—दानापुर, पटना-जंकशन, गुलजारबाग, पटना सिटी और फतुआ। ये सभी स्टेशन गंगा-तट से बहुत निकट हैं। गंगा-तट पर इस सुदीर्घ नगर का विपुल विस्तार वस्तुत: विस्मयजनक है।

व्यापार की दृष्टि से गंगा-तट पर इसकी स्थिति बहुत महत्त्व-पूर्ण है। इसका प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस नगर का महत्त्व इतना अधिक है कि गंगा-तट का शायद ही कोई नगर इसका मुकाबला कर सके। इस समय यही बिहार की राजधानी है। इसके सिवा इस समय गंगा-तट का कोई नगर राजधानी के गौरव से मंडित नही है। यहॉ अनेक दर्शनीय स्थान हैं। यहॉ के पटना-जंकशन स्टेशन से ई० आइ० आर० की एक लाइन 'गया' गई है।

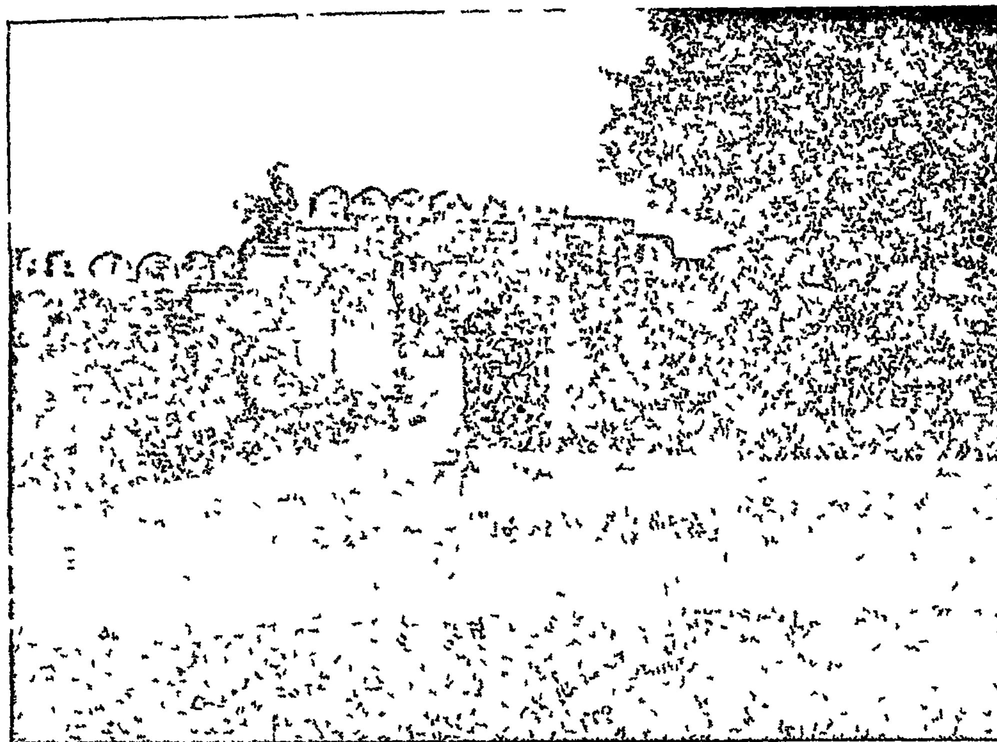
फतुआ पटना से ७ मील पूर्व में, गंगा के दक्षिणी किनारे पर गंगा और पुनपुन के संगम के पास, यह एक छोटा-सा कस्बा है। एक प्रकार से यह पटना नगर का ही पूर्वी छोर है। रेलवे स्टेशन के सिवा यहॉ सुन्दर कपड़ो की बुनाई के धन्धे का केन्द्र है। पटना और फतुआ के कारीगरो के तैयार किये हुए कपड़े बनारसी कपड़ो के समान बेशकीमत और टिकाऊ होते हैं। फतुआ से इसलामपुर तक २७ मील लम्बी बिहार-लाइट रेलवे की एक ब्राञ्च-लाइन है।

गंगा-स्नान के कई मेले प्रतिवर्ष पुनपुन-संगम पर लगते हैं। वारुणी द्वादशी का विशेष माहात्म्य है, क्योंकि इसी दिन यहॉ वामन-अवतार हुआ था।

बख्तियारपुर—यह फतुआ से लगभग १५ मील पूर्व मे गंगा के दाये तट पर छोटा-सा कस्बा है। पटना से कलकत्ता आने-जानेवाले स्टीमर यहॉ भी ठहरते हैं। ई० आइ० आर० का जंकशन-स्टेशन है। यहॉ से बिहारशरीफ तक ३२ मील लम्बी बिहार-लाइट रेलवे की एक ब्राञ्च-लाइन है। इसी लाइन से लोग राजगृह (राजगिरि) पहुँचते है। बिहारशरीफ से ही नालन्दा जाने का भी स्थल-मार्ग है।

बाढ़—बख्तियारपुर से लगभग १० मील पूर्व गंगा के दायें तट पर स्थित यह पटना जिले की एक तहसील है। यहॉ भी ई० आइ० आर० तथा स्टीमरो का स्टेशन है। पटना जिले का सबडिवीजन होने से यह छोटा-सा अच्छा कस्बा है।

बाढ़ से लगभग ३ मील उत्तर-पूर्व में स्थित 'नवाडीह-घाट' तक जाकर गंगा की दो धाराएँ हो गई है। परन्तु आगे ६ या ७ मील के बाद फिर दोनो धाराएँ मिल जाती है। इस मिलने के स्थान से गंगाजी अब उसी प्रकार दक्षिण-पूर्व को



मुंगेर के किले का दरवाजा—यह किला ढाई मील के घेरे मे है। इसकी बाहरी दीवार १२ फीट और भीतरी दीवार ४ फीट चौड़ी है। इसके अन्दर अब सरकारी जेल और कलक्टर का बँगला है।

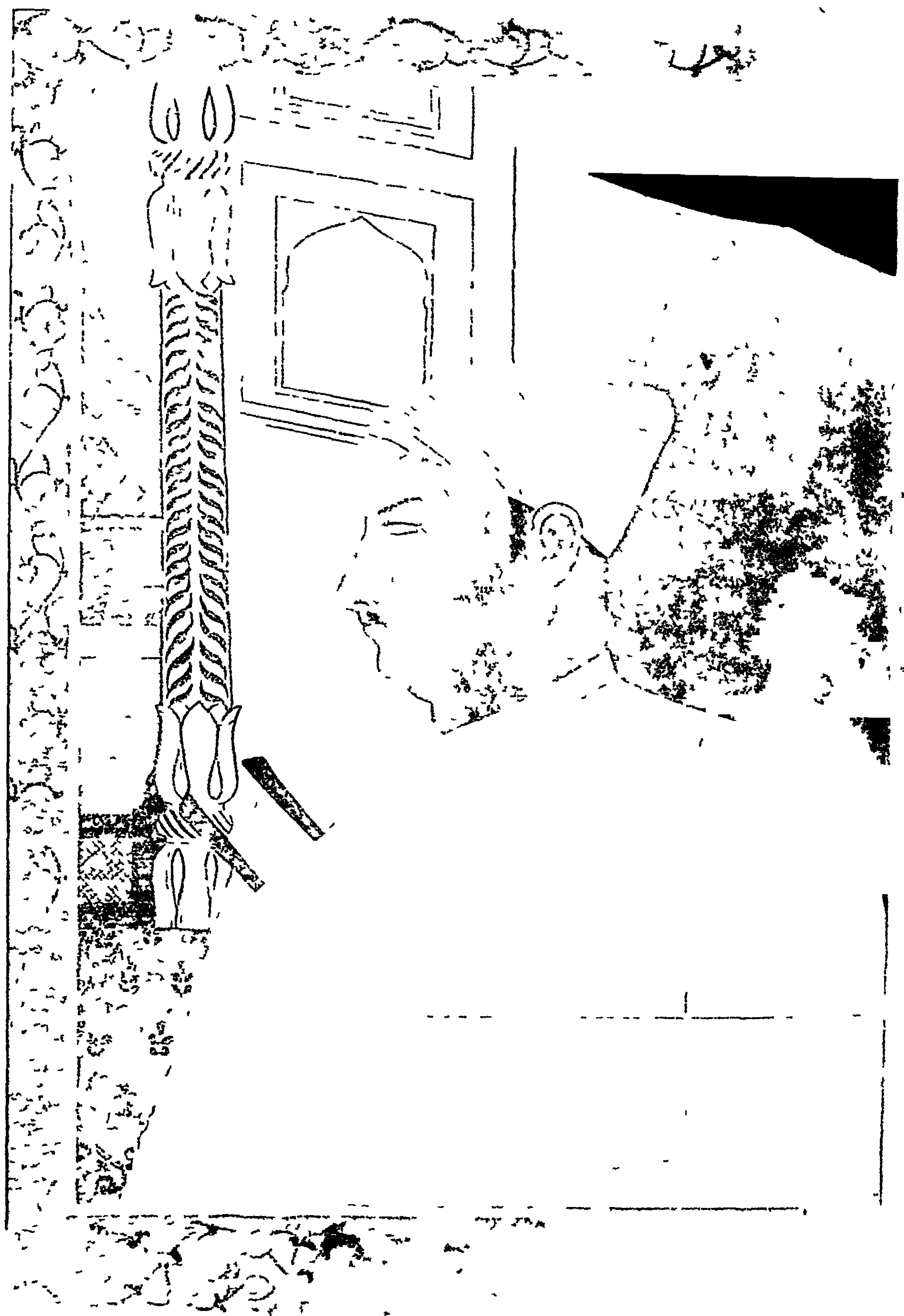


गंगा की ओर से मुंगेर के किले का दृश्य—यह सन् १२०० और १४९७ ई० के अन्दर बना था। इस किले ने, बाबर के जमाने से लेकर नवाब मीर कासिम तक, मुसलमानी शासनकाल के कितने ही उथलपुथल देखे हैं। शेरशाह की तलवार के जौहर का यह साक्षी था। टोडरमल ने इसी किले से अकबर के विद्रोहियो का दमन किया था। सबसे बढ़कर—यहीं मीर कासिम ने, भारत में पहली बार, आधुनिक शस्त्रास्त्रो का कारखाना खोला और यहीं से ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का जबरदस्त मुकाबला किया था। यो तो जनश्रुति के अनुसार महाभारत के राजा कर्ण की राजधानी भी यहीं थी।



मुगेर नगर मे गगा क
किनारे कष्टहरणी-घा
का सुरग-द्वार, जो किले
से सम्बद्ध है। कहा
जाता है, किले के अन्द
ऐसी कितनी ही सुरगें
थीं, जिनसे होकर
सकटकाल मे किले
के अधिवासी, शत्र
से छिपे-छिपे, दूर-
दूर निकल सकते थे।

सीताकुड (जिला मुगेर)—गरम पानी का कुड



मीर कासिम

बहने लगती हैं जिस प्रकार बक्सर और दीघाघाट से आगे बढ़ने पर उनकी धारा दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ गई है।

अपनी दो धाराओं को मिलाकर जहाँ से गंगाजी दक्षिण-पूर्व को बढ़ती हैं, वहाँ से लगभग ६ मील की दूरी पर 'मोकामा' है। यह गंगा के दक्षिणी तट पर ई० आइ० आर० का बहुत बड़ा और सुविख्यात स्टेशन है। जंकशन-स्टेशन के समीप ही गंगा के किनारे मोकामा-घाट स्टेशन है। उत्तर-बिहार के तिरहुत-डिवीजन में आनेवाले भारी माल की लदाई का प्रधान स्टेशन यही है।

मोकामा से ४॥ मील आगे दुर्गापुर में जाकर श्रीगंगाजी फिर कई धाराओं में विभक्त हो जाती हैं। सब धाराएँ सूरजगढ़ में, जो मोकामा से लगभग २२–२३ मील पूर्व-दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है, मिलती हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान माना जाता है। कहते हैं, यहाँ राजा सूरजमल का किला था, जिसका अब केवल कुछ भग्नांश बच गया है।

मुँगेर—सूरजगढ़ से लगभग १६ मील उत्तर-पूर्व में, गंगा के दक्षिण तट पर, 'मुँगेर' नगर है। भागलपुर-कमिश्नरी में 'मुँगेर' एक प्रसिद्ध जिला है। श्रीगंगाजी इस जिले को दो भागों में बाँट देती हैं। उत्तर का भाग खूब उपजाऊ है, पर दक्षिण का भाग विशेष उर्वर नहीं है। कहते हैं, सम्राट् चन्द्रगुप्त ने 'मुँगेर' नगर बसाया था; इसीलिये इसका पहला नाम 'गुप्तगढ़' था। यह भी किंवदन्ती है कि यहाँ गंगा-तट पर 'मुद्गल' नामक एक ऋषि तपस्या करते थे, उन्हींके नाम पर यह स्थान 'मुद्गलपुर' कहलाने लगा, जो बाद को 'मुँगेर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गंगा-तट पर चंडिका देवी का एक बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर का नाम चंडी-स्थान और देवी का नाम विक्रम-चंडी है। कहा जाता है कि मुद्गल ऋषि ने यहाँ के घाट का नाम 'कष्ट-हारिणी' घाट रक्खा था। तभी से वह घाट इसी नाम से आज तक प्रसिद्ध है। अब भी लोगों का विश्वास है कि इस घाट पर गंगा-स्नान करने से नामानुकूल वाञ्छित फल मिलता है।

यहाँ गंगा-तट पर एक पुराना और पुख्ता किला है, जिसका वर्णन इतिहास में भी मिलता है। नवाब मीरकासिम की राजधानी यहीं थी। बक्सर के किले के बाद बिहार में गंगा-तट पर यह दूसरा ऐतिहासिक किला है।

बिहार में 'गया' की तरह मुँगेर भी बड़ा धनी नगर समझा जाता है। यहाँ बड़े-बड़े धनाढ्य नागरिक हैं। १९३४ ई० के भूकम्प में इसकी पुरानी बस्ती बिलकुल नष्ट हो गई। नहीं तो गया की पुरानी बस्ती की तरह इसकी पुरानी बस्ती भी बहुत

घनी थी, जिससे यह 'बिहार का बनारस' कहा जाता था। नवाबी जमाने में यहाँ बन्दूक के कारखाने थे। आज भी यहाँ अनेक कुशल हस्तशिल्पी हैं।

मुँगेर से गंगाजी उत्तर की ओर मुड़ जाती हैं। ७ या ८ मील उत्तर में स्थित 'रहीम' तक जाकर फिर दक्षिण-पूर्व को घूमती हैं। मुँगेर में ई० आइ० आर० की गाड़ी से उतर स्टीमर द्वारा गंगा पार करके गंगा के उत्तरी किनारे पर मुँगेर-घाट मे बी० एन० डब्लू० रेलवे की गाड़ी पाते हैं। उत्तर-बिहार में जाने के लिये पहलेजा-घाट और सिमरिया-घाट के बाद यह तीसरा स्टेशन है।

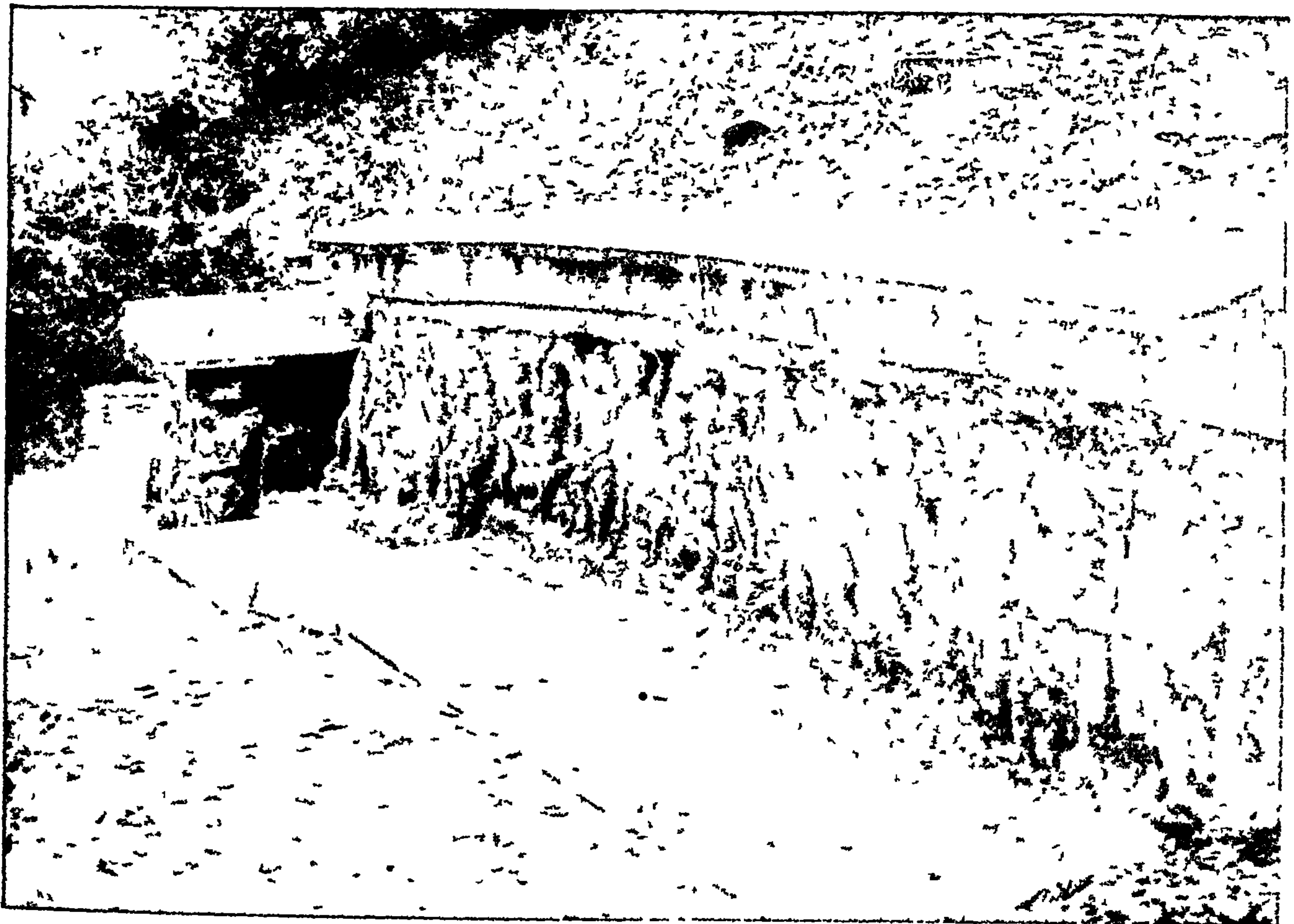
सुलतानगंज—मुँगेर से लगभग १९ मील पूर्व-दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर यह एक छोटा-सा कस्बा है। यहाँ गंगा-तट पर महाभारतीय दानवीर कर्ण का बनवाया हुआ एक गढ़ अथवा किला था, जिसका चिह्न अब केवल एक ऊँचा टीला रह गया है, जो वर्त्तमान समय में पुर्नियाँ जिले के बनैली-राज्य के राजकुमार श्रीमान् कुमार कृष्णानन्द सिंह के अधिकार में है। टीले पर उनका जो महल है वह 'कृष्णगढ़' नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने ही कई साल तक 'गंगा' नामक सचित्र मासिक पत्रिका निकाली थी। उनके महल के सामने गंगा की धारा के मध्यभाग में एक विशाल पर्वतखंड है, जिसपर 'श्री अजगवीनाथ महादेव' का मन्दिर है। उस पर्वतखंड की दीवारों पर बहुत-सी प्राचीन मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। नाव-द्वारा दर्शनार्थी लोग मंदिर में जाते हैं। उसके सामने ही गंगा के दक्षिण तट पर गंडशैल के ऊपर एक पुरानी मसजिद है, जो बखतियार खिलजी की बनवाई हुई कही जाती है। सुलतानगंज ई० आइ० आर० की लूप-लाइन का एक स्टेशन है।

भागलपुर—यह नगर सुलतानगंज से लगभग १३ मील पूर्व, गंगा के दक्षिण तट पर, स्थित है। पटना की तरह बिहार का यह दूसरा कमिश्नरी नगर गंगा-तट पर है। यहाँ के सेंट्रल जेल और रेशम-तसर के कपड़ों की बड़ी प्रसिद्धि है। व्यापार का प्रधान केन्द्र है। व्यापारी मारवाड़ियों की संख्या बहुत अधिक है। यह नगर ई० आइ० आर० की लूप-लाइन पर पड़ता है। यहाँ से उत्तर-बिहार में जाने के लिये गगा-तट पर बरारी-घाट में स्टीमर मिलता है, जिससे गंगा के उत्तरी किनारे के महादेवपुर-घाट नामक स्टेशन पर पहुँचकर बी० एन० डब्लू० की गाड़ी में सवार होते हैं। गंगा के बायें किनारे यह चौथा घाट-स्टेशन है।

भागलपुर मे जैनियों के दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं। यहाँ के बने हुए तसर के कपड़े देश-विदेश के बाजारों मे बिकने जाते हैं। कम्बल, कालीन, बेंत की चीजें यहाँ अच्छी बनती हैं। यहाँ भी गंगा के दाहने तट पर दानवीर कर्ण के बनवाये



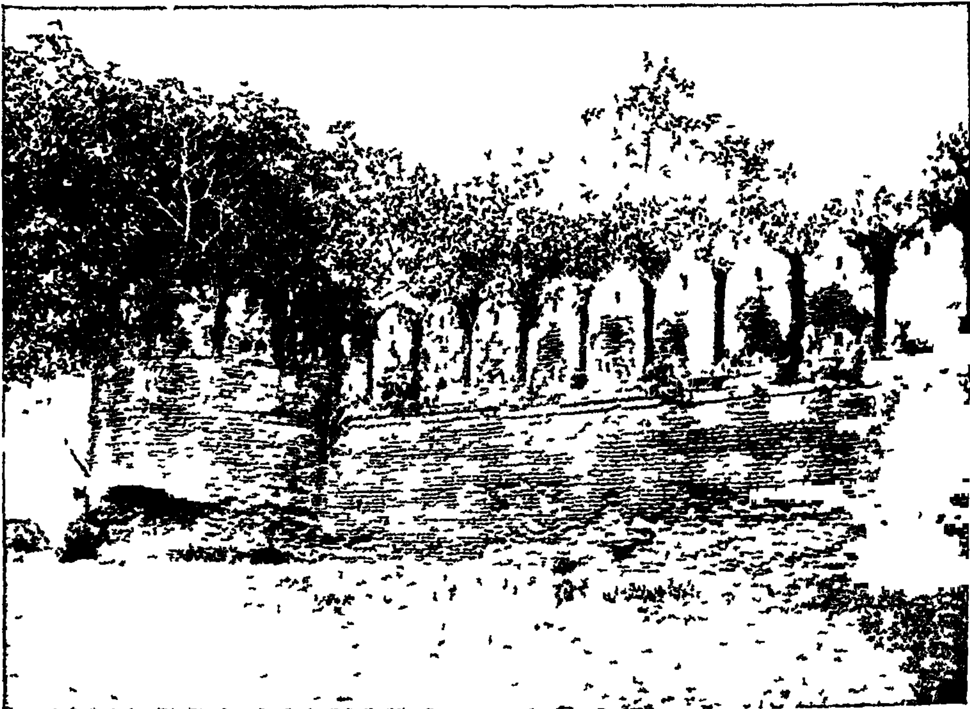
पथरघट्टा (भागलपुर) की 'चौरासी मुनि' पर्वत-गुफा, जिसके नीचे चट्टानों में खोदी गई कितनी ही देव-मूर्त्तियाँ हैं, जिनका रचना-काल छठी या सातवीं शताब्दी है। कहलगाँव से आठ मील उत्तर-पूरब, गंगा के किनारे, यह स्थान है।



पथरघट्टा (भागलपुर) में चट्टान में खोदी गई मूर्त्तियों की पंक्ति, जिसकी लम्बाई ४६ फीट ९ इंच और ऊँचाई ७ फीट है। किन्तु मूर्त्तियों की ऊँचाई सिर्फ साढ़े तीन फीट है। इन मूर्त्तियों में बलि-वामन की कथा, श्रीकृष्ण की चरितावली एवं चक्रधारी नृसिंह का चित्रण है। अपने ढंग की, बिहार की ये अकेली मूर्त्तियाँ हैं—ब्राह्मण-युग की मूर्त्तियाँ बिहार में बहुत ही कम मिलती हैं।



बन्दरझूला (पूर्णिया) का ईंटो का बना पुराना मन्दिर, जो अब 'कन्हैयाजी का स्थान' कहलाता है ।



जलालगढ (पूर्णिया) मे ईंटों का बना पुराना किला

हुए सुविशाल कर्णगढ़ का ध्वंसावशेष बहुत ऊँचे टीले के रूप में है। इसके दक्षिण-पश्चिम में 'मन-कामना-नाथ महादेव' का मन्दिर और कर्णगढ़-संस्कृत-महाविद्यालय है। गंगा-तट पर इस नगर के भव्य भवनों की अच्छी शोभा है।

कहलगाँव—भागलपुर से लगभग २२ मील पूर्व, गंगा के किनारे पर, यह एक छोटा-सा कस्बा है। ई० आइ० आर० का स्टेशन और व्यापार का केन्द्र है। बहुत प्राचीन और ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है। इसका पुराना नाम 'कुलगंग' है। सुलतानगंज की तरह यहाँ भी गंगा की मध्य धारा में एक विशाल पहाड़ी टीले पर विचित्र शैली का एक मन्दिर है।

मनिहारी—कहलगाँव से लगभग २४ मील पूर्व गंगा के उत्तरी किनारे पर बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव है। उत्तर-बिहार में जाने के लिये यही पाँचवाँ (अन्तिम) घाट-स्टेशन है। गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित ई० आइ० आर० के सकरीगली स्टेशन से यह स्टीमर द्वारा सम्बद्ध है। सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर यहाँ मेले लगते हैं। कार्त्तिक-पूर्णिमा और शिवरात्रि को भी छोटे-छोटे मेले लग जाते हैं। यह पुर्नियाँ जिले में पड़ता है। इसी जिले के काढ़ागोला नामक गाँव में भी माघी पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला होता है; यह गाँव गंगा के उत्तरी तट पर है; यहाँ से दार्जिलिङ्ग तक बहुत ही अच्छी पक्की सड़क है।

उपर्युक्त 'सकरीगली' नामक गंगा-तटस्थ स्टेशन से ६ मील पश्चिम 'साहबगंज' एक प्रसिद्ध रेलवे-स्टेशन है, जिसका उल्लेख पहले नहीं हो सका है। सन्ताल-परगना जिले में साहबगंज ही सबसे बड़ा शहर है। यह गंगा के दक्षिणी तट पर बसा हुआ एक व्यापार-केन्द्र है। इसके बाद गंगा के दक्षिणी तट पर बिहार-प्रान्त का अन्तिम नगर 'राजमहल' है, जो सन्ताल-परगना जिले का एक सबडिवीजन (तहसील) है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'राजमहल' अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है; बंगाल और बिहार की राजधानी रह चुका है, यहाँ के दर्शनीय पुराने खँड़हर इसके प्रमाण हैं।

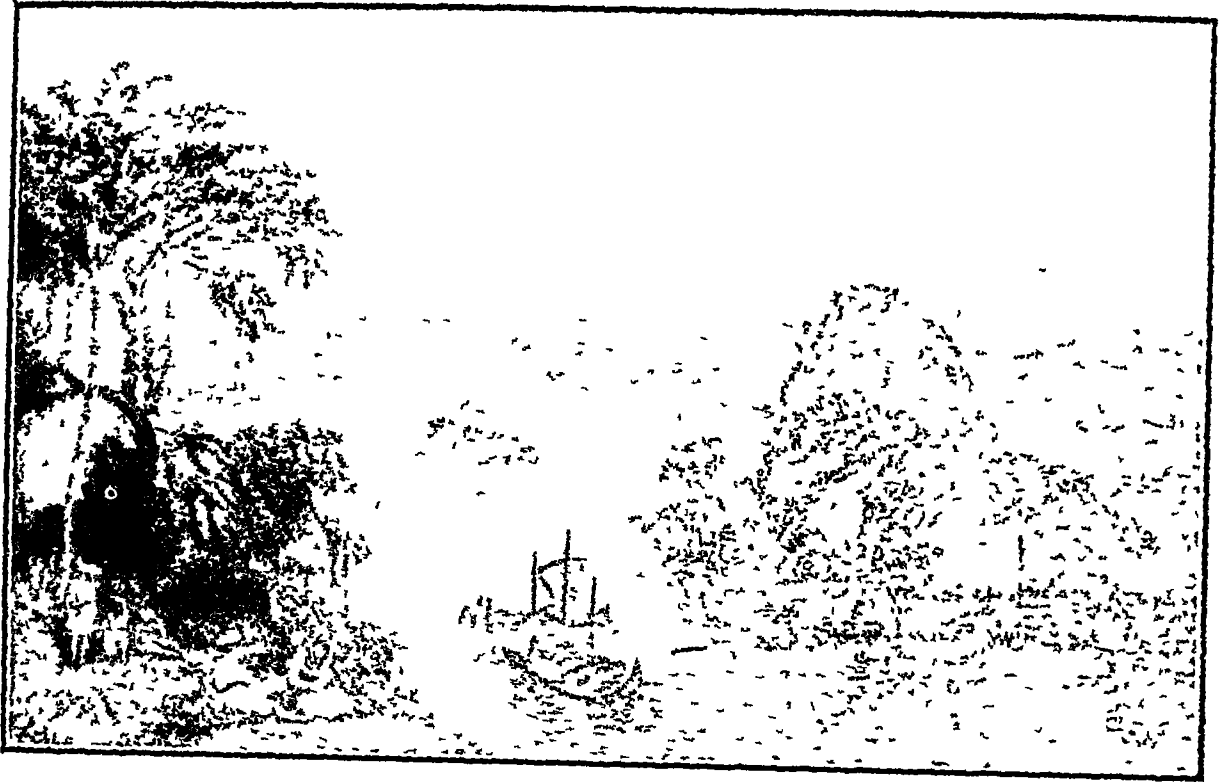
राजमहल के बाद श्रीगंगाजी बंगाल में प्रवेश करती हैं और उस प्रान्त में उनकी कई धाराएँ हो जाती हैं। ये धाराएँ अन्त मे बंगाल की खाड़ी मे जाकर गिरती हैं।

एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बिहार मे गंगाजी के दक्षिण तट पर ही नगर और महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, उत्तरी तट पर कोई नहीं; क्योंकि गंगा के उत्तर

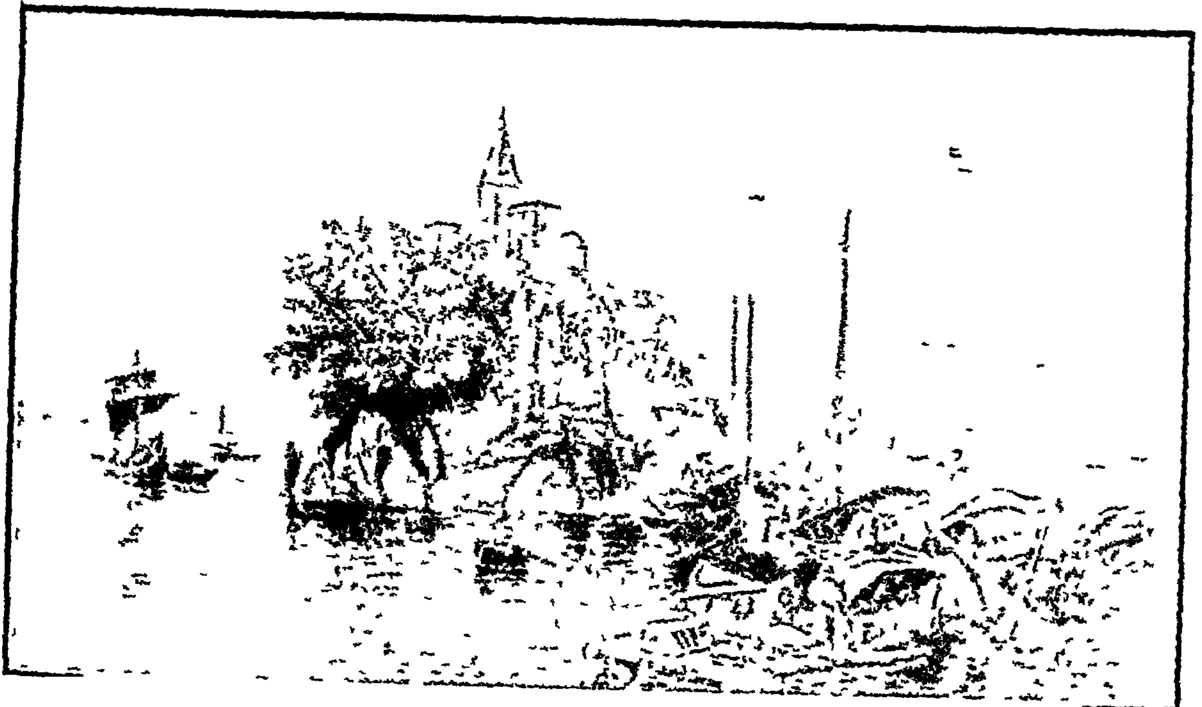
की भूमि हिमालय की तराई के समीप होने से बहुत नीची है। किन्तु उत्तरी तट की भूमि अत्यन्त उर्वरा-शक्ति-सम्पन्न तथा लहलही हरियाली से भरपूर है *।

* मैं श्रीगंगाजी के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिख रहा हूँ। मेरा विचार तो यह था कि स्वयं नाव पर हरद्वार से गंगासागर तक सैर करूँ—गंगा-तटस्थ प्रत्येक दर्शनीय स्थान एवं सन्त-महात्मा के दर्शन करूँ; पर अभी तक ऐसा सुअवसर न प्राप्त हुआ। बिहार और बंगाल में गंगा-तट पर जो दर्शनीय स्थान और महात्मा हैं उनके सचित्र परिचय की मुझे आवश्यकता है। कृपया गंगाप्रेमी पाठक इधर ध्यान दें।

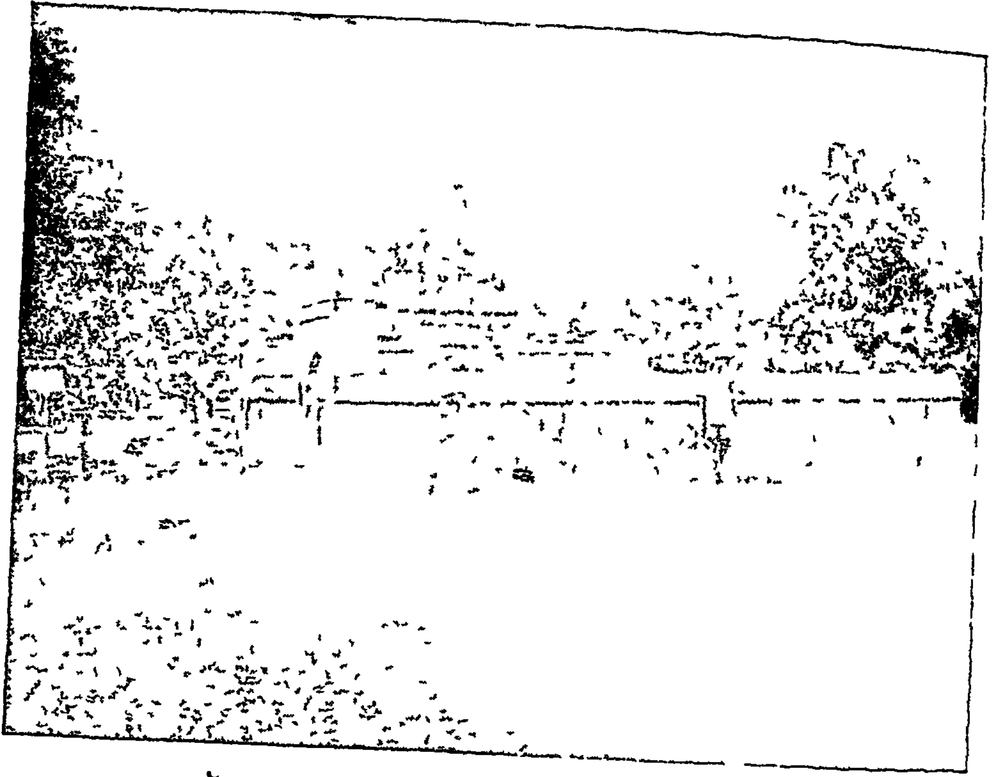




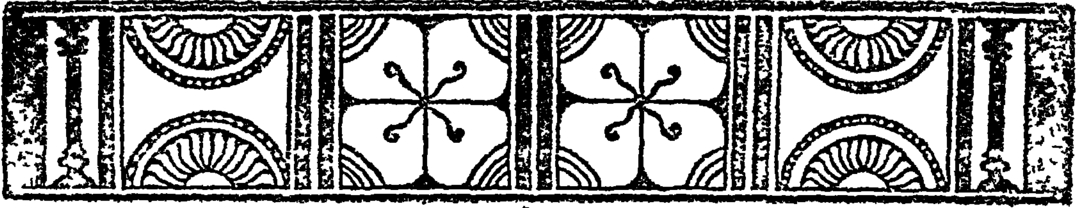
सुलतानगंज (भागलपुर) में, गंगाजी की मध्यधारा मे, टापूनुमा पहाड़ी पर, अजगवीनाथ महादेव का मन्दिर। पहले इसके बौद्धमन्दिर होने के भी प्रमाण मन्दिर मे ही मिलते है। (पृष्ठ ९४)



कहलगाँव (भागलपुर) मे गंगाजी की मध्यधारा मे पहाडी टापू का दृश्य (पृष्ठ ९५)



कहलगाँव (भागलपुर) में सुलतान महमूद का टूटा-फूटा मकबरा



बिहार का खनिज-धन और उसके उद्योग-धन्धे

प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी

हमारी पृथ्वी के अन्दर एक-से-एक सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुएँ पड़ी हुई हैं। पहले जिस स्थल पर ऐसी वस्तुएँ मिलती थीं उस स्थल को लोग खोदते थे। खोदने से उस प्रकार की और वस्तुएँ वहाँ मिलती थीं। इस प्रकार के खोदे हुए स्थान को 'खान' कहते थे और खान से निकले हुए पदार्थों को 'खनिज'।

जैसे-जैसे विज्ञान के अध्ययन में तरक्की हुई वैसे-वैसे विज्ञान के भिन्न-भिन्न अंगो का अध्ययन होने लगा। फल-स्वरूप उस विज्ञान का आविर्भाव हुआ जिससे हमें पृथ्वी के गर्भ में स्थित पदार्थों का ज्ञान होता है। इस विज्ञान को 'भूगर्भ-विज्ञान' (जिओलौजी) कहते हैं। इस विज्ञान के द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसका भिन्न-भिन्न खंडो में विभाजन, पर्वत-नदी-समुद्रादि की सृष्टि और पृथ्वीगर्भ में स्थित सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इस विज्ञान की पढ़ाई का आरम्भ आजतक बिहार-प्रान्त में नहीं हुआ है!!!

हर देश और प्रान्त को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता कि उसकी भूमि में सब उपयोगी खनिज विद्यमान हो। जिस देश में खनिजो का बाहुल्य होता है वह देश अधिक सम्पत्ति-शाली होता है। वर्त्तमान काल में अनेक राष्ट्रों में जो वैमनस्य चल रहा है वह बहुत-कुछ इन खनिजों के नियंत्रण के कारण ही होता है। खनिज तेलों के कारण ही इटली ने अबिसीनिया को अपने अधीन कर लिया है। इसके कारण इटली अब यूरोप मे एक प्रबल राष्ट्र बन गया है। चीन पर

जापान के आक्रमण का भी एक प्रबल कारण चीन के खनिजों पर जापान का आधिपत्य जमाना है।

बिहार के लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि उसकी भूमि में एक-से-एक उपयोगी और बहुमूल्य खनिज विद्यमान हैं। पर खेद है कि विदेशी शासन ने उन अधिकांश खानों और खनिजो से बिहार-वासियो को वञ्चित कर दिया है। पर अबतक जो खाने और खनिज उनके अधिकार में हैं उन्हें दूसरो के हाथ न जाने देने और उनसे अधिक-से-अधिक प्रान्त को लाभ पहुँचाने की कोशिश होनी चाहिये। बिहार में बहुमूल्य और उपयोगी खनिज इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं कि एक अर्थशास्त्र-विशेषज्ञ के कथनानुसार सारे भारत का बिहार ही कारखाना-केन्द्र बन सकता है।

आधुनिक युग में कोयला एक बडी उपयोगी वस्तु है। सब प्रकार के कल-कारखानों के चलाने के लिये शक्ति की जरूरत होती है। बिना शक्ति के कोई कल-कारखाने नहीं चल सकते। यह शक्ति आजकल कोयले, खनिज तेल और जल-प्रपात से ही प्राप्त होती है। कोयला प्राचीन काल—लाखो वर्ष पूर्व—की, सूर्य से प्राप्त, सञ्चित शक्ति है। बिहार में बहुत अधिक मात्रा में कोयला पाया गया है।

भारत की ६५ फी सदी कोयले की खाने बिहार में हैं और उनका तीन-चौथाई भाग केवल झरिया में है। झरिया और रानीगंज के कोयले उत्कृष्ट कोटि के होते हैं। बोकारो और करनपुरा में स्थित अत्यधिक कोयले उतने अच्छे दर्जे के नही समझे जाते। जिन उद्योग-धन्धो में अधिक जलावन की जरूरत होती है, वे उद्योग-धन्धे अपेक्षाकृत कम खर्च में, कोयले की खानो के निकटवर्त्ती स्थानो मे, चल सकते हैं।

कोयले से बड़ी सस्ती बिजली भी उत्पन्न हो सकती है। कोयले को वायुशून्य बरतनो में गरम करने से कोलतार इत्यादि अनेक उपयोगी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। इस कोलतार से ही कृत्रिम रंग, ओषधियाँ इत्यादि सामान तैयार होते हैं। इन रंगो और ओषधियों के लिये हमें आज जर्मनी पर निर्भर करना पड़ा है। यदि कोयले से कोलतार प्राप्त करने की कोशिशें हो तो हम सरलता से बिहार में इन सब पदार्थों का निर्माण कर सकते हैं।

आधुनिक युग में लोहा एक दूसरी बड़ी उपयोगी वस्तु है। लोहे से कितनी चीजें बनती हैं, उनका वर्णन सम्भव नहीं। कोई ऐसा व्यक्ति न होगा जो लोहे की चीजो का प्रतिदिन व्यवहार न करता हो। कील-काँटे और सूई से

लेकर बड़े-बड़े इंजिन, डायनमो, मशीन और जंगी जहाज तक लोहे से बनते हैं। एशिया-खंड का सबसे बड़ा लोहे का कारखाना बिहार-प्रान्त के 'जमशेदपुर' नगर में ही स्थित है। लोहे का खनिज इतनी मात्रा में इस प्रान्त में विद्यमान है कि अनेक ऐसे कारखाने खुल और चल सकते हैं। यहाँ के लोहे का खनिज उत्कृष्ट कोटि का होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में अबरक (अभ्रक) एक तीसरी बड़ी उपयोगी वस्तु है। अन्य उपयोगों के साथ विद्युत् यंत्रो में इसका उपयोग बड़ा महत्त्वपूर्ण है। विना अबरक के अनेक विद्युत्-यंत्रों का निर्माण हो ही नहीं सकता। बिहार अबरक के लिये ससार में सुप्रसिद्ध है। सारे संसार का प्रायः ५५ फी सदी अबरक केवल बिहार की खानों से निकलता है। ये खानें गया, हजारीबाग, भागलपुर और मुँगेर जिलों में हैं। अबरक भिन्न-भिन्न रगों के होते हैं और प्रायः सभी रंगो के अबरक बिहार में पाये जाते हैं। अबरक के चूर्ण से मिकेनाइट तैयार होता है। इसकी चद्दरे छप्परों के छाजन और अन्य अनेक कामों में प्रयुक्त होती हैं। बिहार का अबरक सर्वश्रेष्ठ कोटि का होता है।

सन् १९३८–३९ में प्रायः ५३ लाख रुपये के चीनी-मिट्टी और अग्नि-जित् (आग से न पिघलनेवाली) मिट्टी के सामान बाहर से भारत में आये। पर बिहार में केवल ८६ हजार रुपये के सामान बने। केवल एक कम्पनी 'बिहार-फायर-ब्रिक' और 'पौटरी लिमिटेड' बिहार के मानभूमि जिले में ईंटे और टाइल बनाने का काम कर रही है। बिहार में उच्चकोटि की केओलीन, चीनी-मिट्टी और अग्निजित् मिट्टी मिलती हैं, पर उन्हें उपयोग में लाने का अबतक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ है। उच्चकोटि की ऐसी मिट्टी भागलपुर जिले के पटारघट्टा पहाड़ी पर, बाँका सबडिवीजन के सुमुखिया गाँव में और गंगपुर स्टेट के किरपसेरा, माँझापारा, कुनरुगुट, कारडेगा इत्यादि स्थानो में मिलती है। गया जिले के कौआकोल में भी अच्छी मिट्टी मिली है। मानभूमि जिले के पटलाबारी और उसके अन्य निकटवर्त्ती स्थानों में तथा महाल्धी गाँव में अग्निजित् मिट्टी प्राप्त हुई है। इसी मिट्टी से उपर्युक्त कम्पनी काम कर रही है। मुँगेर जिले के नौवाडीह, पलामू जिले के रझारा; राँची जिले के डुमाटीपाट; सिंहभूमि जिले के हाटगभरिया, रघुनाथपुर, पड्डासाली, धाराडीह इत्यादि स्थानों में; संताल-परगना के दुधानी, करनपुर, कटाङ्गी, बागमारा, भुरकंडा, मंगलहाट इत्यादि स्थानो में पर्याप्त उच्चकोटि की मिट्टी प्राप्त होती है। इन्हीं स्थानो से मिट्टी जाकर

कलकत्ते की पौटरी कम्पनी में भी प्रयुक्त होती है। कॉच बनाने के उत्कृष्ट कोटि के सामान—स्फटिक, रेत इत्यादि—भी पर्याप्त मात्रा में बिहार में प्राप्य हैं।

अलुमिनियम भी एक उपयोगी धातु है। हल्का होने के कारण इसका उपयोग विशेषकर हवाई जहाज के निर्माण में दिन-दिन बढ़ रहा है। इसके अनेक घरेलू बरतन बनते हैं। यह बौक्साइट नामक खनिज से तैयार होता है। बौक्साइट पर्याप्त मात्रा में बिहार के पलामू और रॉची जिलों में प्राप्य है। बिहार के बौक्साइट में अलुमिनियम अधिक रहता है।

तॉबे के भी अनेक उपयोग हैं। तॉबे के खनिज बिहार के हजारीबाग, सतालपरगना, मानभूमि और पलामू जिलो में पाये जाते हैं। थोड़ी-सी मात्रा में खानो से निकालकर तॉबे के बनाने में प्रयुक्त होता है।

मैंगनीज धातु के खनिज बिहार के सिंहभूमि जिले मे पाये गये हैं। वहॉ से निकालकर यह कुछ बाहर भो भेजा जाता है। आजकल मैंगनीज खनिजों की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गई है; क्योंकि लोहे के साथ मिलकर मैंगनीज एक बहुत उपयोगी मैंगनीज-इस्पात बनाता है।

बहुमूल्य धातुओं में रेडियम का स्थान सबसे ऊँचा है। इसके बहुमूल्य होने का कारण इसका बहुत कम मात्रा में मिलना और अनेक रोगो के निवारण में प्रयुक्त होना है। रेडियम से रोगों के निवारण के लिये अनेक स्थानो पर विशेष अस्पताल बने हैं। ऐसे अस्पतालो मे भी रेडियम की मात्रा थोड़ी ही रहती है। रेडियम पिचब्लैंड नामक खनिज से प्राप्त होता है। यह खनिज अबरक की खानों में बिहार मे पाया गया है।

उत्कृष्ट कोटि के अस्बेष्टस के खनिज सिहभूमि और मुँगेर जिलो में पाये गये है। अस्बेष्टस ताप-चालक नहीं होता। इससे इसका प्रयोग चूल्हो और भट्ठों के निर्माण मे होता है। आग बुझानेवालो के कपड़े भी अस्बेष्टस के बनते हैं। बिहार मे स्थित अस्बेष्टस को निकालकर प्रयुक्त करने की अभीतक कोई चेष्टा नहीं हुई है।

उपर्युक्त खनिजो के सिवा सीस धातु, चॉदी, अंटीमनी और वङ्ग के खनिज भी हजारीबाग, मुँगेर, मानभूमि, सिहभूमि, रॉची और पुरुलिया जिलो में पाये गये हैं। मोलिबडेनम के खनिज और मोनेजाइट भी, जिससे थोरियम प्राप्त होता है, अनेक स्थानों मे पाये गये हैं। 'थोरियम' पेट्रोमैक्स लालटेन की बत्ती के बनाने मे व्यवहृत होता है। लाल और पीले रग के गेरू शाहाबाद और सिहभूमि जिलो में पाये गये हैं। ये रंग के रूप में व्यवहृत होते हैं।

घर बनाने के सामान—चूना, पत्थर, कंकड़ इत्यादि—बिहार के अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। उनसे आज भी अनेक कम्पनियाँ चूना और सीमेंट बनाने के काम करती हैं। छोटानागपुर की नदियों और सोन नदी की रेतों में 'सोना' रहता है। पटना में ग्रेफाइट मिलता है जिससे लिखने की पेन्सिल तैयार होती है। इनके अतिरिक्त हीरा, माकुट, वैदूर्य्य, अकीक इत्यादि बहुमूल्य पत्थर भी बिहार में मिलते हैं। बिहार की भूमि वस्तुतः रत्नगर्भा है।

खनिज-धन का इतना बाहुल्य होने पर भी दुर्भाग्यवश बिहार अबतक उद्योग-प्रधान प्रान्त नहीं हो सका है—इसका एकमात्र कारण उद्योग-धन्धों में लोगों की दिलचस्पी का अभाव और इस ओर से बिहार-सरकार की पूर्ण उदासीनता है! यद्यपि बिहार कृषि-प्रधान प्रांत कहा जाता है, तथापि उद्योग-प्रधान प्रान्त होने के अनेक आवश्यक साधन प्रचुर मात्रा में यहाँ सुलभ हैं।

उद्योग-धन्धों के स्थापन और सफल सञ्चालन के लिये जो-जो चीजे आवश्यक हैं उनमें मुख्य ये हैं—पूँजी के सिवा विशेषज्ञों का होना, कच्चे मालों की उत्पत्ति और सुगमता से उनकी प्राप्ति, सस्ती शक्ति और सस्ते मजदूरों की प्राप्ति। विशेषज्ञ शिक्षा और अनुभव से तैयार होते हैं। इसके लिये दो ही उपाय हैं। या तो ऐसी शिक्षा के लिये शिक्षा-संस्थाएँ खोली जायँ अथवा जहाँ ऐसी शिक्षा-संस्थाएँ पहले से विद्यमान हों वहाँ शिक्षा पाने के लिये छात्रों को उपयुक्त सुविधा दी जाय। पहली विधि अधिक खर्चीली है। ऐसी शिक्षा-संस्थाओं के स्थापन और सञ्चालन में बहुत अधिक खर्च पड़ता है। दूसरी विधि अपेक्षाकृत सस्ती है। सरकार को चाहिये कि वह प्रतिवर्ष छात्रों को वृत्ति देकर इस देश अथवा विदेश की औद्योगिक संस्थाओं में शिक्षा-प्राप्ति के लिये भेजे और ऐसी शिक्षा के पश्चात् कारखानों में उन्हें अनुभव प्राप्त करने का विशेष सुयोग दे। यह काम सरकार के द्वारा ही हो सकता है। बिना ऐसे विशेषज्ञ तैयार हुए उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती।

कच्चे माल बिहार में पर्याप्त मिलते हैं। बिहार के कच्चे मालों से अनेक कारखाने बिहार के बाहर चलते हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अनेक खनिज भी प्रचुर मात्रा में बिहार में मिलते हैं। इन खनिजों से दर्जनों कल-कारखाने चल सकते हैं, जिनमें लाखों आदमियों का गुजर हो सकता है।

बिहार में कोयले का बाहुल्य है। इससे बड़ी सस्ती बिजली उत्पन्न हो सकती है। बिहार में जल-प्रपात भी हैं, जिनसे भी सस्ती बिजली उत्पन्न की जा सकती है। अतः सस्ती शक्ति की प्राप्ति के लिये बिहार से बढ़कर दूसरा अधिक उपयुक्त स्थान नहीं मिल सकता।

यहाँ मजदूर भी बहुत और सस्ते मिलते हैं। यहाँ के मजदूरो से ही कलकत्ता और बंगाल के अनेक कल-कारखाने चलते हैं।

उद्योग-धन्धो के लिये यहाँ यदि किसी चीज की कमी है तो केवल पूँजी की। विहार के निवासी साधारणतया निर्धन होते हैं। जो धनी जमीन्दार हैं वे उद्योग-धन्धो में दिलचस्पी नहीं लेते। वे तो वचे-बचाये रुपयो को जमीन्दारी बढ़ाने मे लगाना ही अच्छा समझते हैं। इससे उनको उतना लाभ नहीं होता जितना उद्योग-धन्धो में रुपये लगाने से हो सकता है, पर वे अपने रुपयो को उद्योग-धन्धो में लगाने में असमर्थ हैं, क्योकि उद्योग-धंधो में पूँजी लगाने के लिये उन्हें सरकार की ओर से प्रोत्साहन नहीं मिलता। जबतक सरकार की ओर से उद्योग-धन्धो की उन्नति का विशेष उद्योग न होगा, तबतक उद्योग धन्धो का भविष्य बिहार के लिये उज्ज्वल नहीं है।

ऊपर कह चुके हैं कि एशिया-खंड का सबसे बड़ा लोहे का कारखाना विहार के सिहभूमि जिले के 'तातानगर' में है। इस नगर की सृष्टि इस कारखाने के कारण ही हुई है। करोड़ो रुपये की पूँजी से यह कारखाना स्थापित हुआ है। इसकी प्रायः बहुत कुछ पूँजी वम्बई और कलकत्ता के लोगो की है। हजारो रुपये मासिक वेतन पानेवाले विशेषज्ञ इसमें नियुक्त हैं। ये विशेषज्ञ पहले अमेरिका से आये थे। अब बहुत-से भारतीय भी उच्च पदों पर आसीन हैं। करीब १६ हजार आदमी इस कारखाने में काम करते है। यही एक दूसरी कम्पनी—टिनप्लेट-कम्पनी—है, जिसमें प्रायः तीन हजार आदमी काम करते हैं। इसके निकट ही कुमारधुबी में ईगल रोलिग कम्पनी है, जिसमें ४४५ आदमी काम करते हैं। इस प्रकार बिहार में लोहा और लोहे के सामान तैयार करनेवाली तीन कम्पनियाँ हैं, जिनमें प्रायः साढ़े वाइस हजार आदमी काम करते हैं।

विहार में सवसे अधिक कारखाने खेती से उपजे हुए माल के हैं। इन कृषि-उद्योगो में ईख से चीनी तैयार करने के कारखाने सर्व-प्रधान हैं। चीनी के कारखाने (सुगर-मिल) विहार मे ३६ हैं जिनमें १८३२४ आदमी काम करते हैं। इनमें चम्पारन में ६, सारन में ६, शाहाबाद में ३, मुजफ्फरपुर में ३, दरभंगा में ५, पटना में १, भागलपुर मे ६, गया में १, मुँगेर में १ और पुर्नियाँ में १ हैं। इन कारखानों के अधिकांश मालिक और मैनेजिग एजेट विहार से वाहर के रहनेवाले हैं। इनमे ऊँचे पदो पर वे वाहर के आदमियों को ही नियुक्त करते हैं। इन कारखानो को स्थायी वनाने के लिये यह आवश्यक है कि ईख की पैदावार वढ़ाई जाय,

ईख में चीनी की मात्रा बढ़ाई जाय, और ईख से अधिक चीनी निकालने में सफलता प्राप्त की जाय। ईख के शीरे से कुछ उपयोगी चीजें बनाने की भी कोशिश होनी चाहिये। ऐसा न होने से भारत के चीनी के व्यवसाय का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

चीनी के बाद चावल, आटा और तेल तैयार करने के कारखाने हैं। धान से चावल निकालने की ६२ मिले हैं जिनमें ३६५७ आदमी काम करते हैं। इनमें पटना में २, मुजफ्फरपुर में ४, मानभूमि में २, गया में २, चम्पारन में ८, शाहाबाद में १, सारन में १, दरभंगा मे १६, पुर्नियाँ में ६, संतालपरगना मे ३, भागलपुर में १० और सिंहभूमि में ४ हैं। आटा पीसने के बड़े कारखाने केवल तीन हैं और छोटे-छोटे कारखाने करीब ५००। बड़ी मिले प्राय: १७ लाख मन गेहूँ पीसती हैं। बड़े कारखानो में ३१५ आदमी काम करते हैं। पटना में श्री बिहारी मिल्स, पटना सिटी; भागलपुर में शिवगौरी फ्लावर मिल्स; भागलपुर और पुर्नियाँ में कटिहार-फ्लावर मिल्स हैं। तेल पेरने के कारखाने विहार में २३ हैं जिनमें मानभूमि में २, मुँगेर में १, पटना में ५, गया मे ४, भागलपुर में १, संतालपरगना मे ५, शाहाबाद में १, पुर्नियाँ में २, सिंहभूमि में १ और राँची मे १ हैं। इनमें करीब १६ हजार आदमी काम करते हैं।

विहार में तम्बाकू करीब १२ लाख मन पैदा होता है; पर तम्बाकू से सिगरेट बनाने का केवल एक ही बड़ा कारखाना विहार के मुँगेर जिले में है—टुबैको-मनुफैक्चरर लिमिटेड, बसुदेवपुर। इस टुबैको-फैक्टरी में १७४६ आदमी काम करते हैं। दरभगा जिले में भी दो छोटे-छोटे कारखाने हैं—'इंडियन टुबैको वर्ट्ट फैक्टरी' (दलसिंगसराय) और 'इंडियन लीफ टुबैको डेवलपमेंट कम्पनी वर्क्स' (दलसिंगसराय)—जिनमें प्राय: १५४ आदमी काम करते हैं।

दाल बनाने के ६ कारखाने हैं—१ भागलपुर में, १ संतालपरगना में, २ पटना में और २ मुँगेर में, जिनमें करीब ५०० आदमी काम करते हैं। चाय के भी कारखाने विहार में ६ ही है—३ राँची में और ३ पुर्नियाँ में, जिनमें ३३६ आदमी काम करते हैं। नील के कारखाने भी विहार में ६ ही हैं—१ मुँगेर मे, ३ मुजफ्फरपुर मे और २ दरभगा मे, जिनमे ३५८ आदमी काम करते हैं।

कपडे के पुतलीघर विहार मे कम है। केवल दो ही कारखाने हैं—कॉटन ऐंड जूट मिल्स (गया) और विहार कॉटन मिल्स (फुलवारीशरीफ, पटना)। सरकार की सेंट्रल-जेल (बक्सर) में भी कपड़े की अच्छी बुनाई होती है। जूट-मिलें भी

बिहार में तीन ही हैं—एक दरभंगा जिले मे और दो पुर्नियाँ जिले में—रामेश्वर मिल (मुक्तापुर, दरभंगा) और 'कटिहार जूट मिल्स' तथा 'रायबहादुर हरदत्त राय मोतीलाल जूट मिल्स' (कटिहार, पुर्नियाँ)। ऊनी कपड़ों की बुनाई केवल भागलपुर के 'सेंट्रल जेल वर्क्स' में होती है। कपड़े, जूट और ऊन के कारखानों के लिये रुई, जूट और ऊन की पैदावार बिहार मे पर्याप्त होती है तथा और भी अधिक हो सकती है। यहाँ इनके तैयार माल की खपत भी पर्याप्त है। अतः और भी मिलें खुल सकती और सफलता से चल सकती हैं।

मोटर-गाड़ी और अन्य गाड़ियों के बनाने और मरम्मत करने का केवल एक ही कारखाना मुजफ्फरपुर मे है—'बिहार मोटर वर्क्स'। इजिनियरिंग के कारखाने बिहार में छोटे मोटे ५ हैं, जिनमें करीब १५०० आदमी काम करते हैं। इनमें ३ ईस्ट-इंडिया रेलवे के है—इलेक्ट्रिक पावर हाउस, जमालपुर (मुँगेर); इलेक्ट्रिक पावर हाउस, धनबाद (मानभूमि) और इलेक्ट्रिक पावर हाउस, गोमो (हजारीबाग)। एक बी० एन० रेलवे का है—पावर हाउस, आद्रा (मानभूमि)। एक 'इंडियन केबल कम्पनी' तातानगर (सिंहभूमि) में है।

बिजली पैदा करने के ७ बड़े कारखाने बिहार में हैं, जिनमें प्रायः ४५० आदमी काम करते हैं—स्टीम पावर स्टेशन (पटना , इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (मुजफ्फरपुर), इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (भागलपुर); ई० आइ० रेलवे इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (गया), ई० आइ० रेलवे इलेक्ट्रिक पावर हाउस (झाझा, मुँगेर), सिजुआ इलेक्ट्रिक सप्लाइ कम्पनी (लोयाबाद, झरिया) और इलेक्ट्रिक सप्लाइ कॉरपोरेशन, दरभंगा।

कल-पुरजे बनाने के कारखाने (वर्कशौप) बिहार में १८ हैं, जिनमें ५२४६ आदमी काम करते हैं। इनमें मानभूमि में ६ वर्कशौप हैं—कुमारधुवी इंजिनियरिंग वर्क्स (कुमारधुवी), कतरास इजिनियरिंग वर्क्स (कतरासगढ़), झरिया आयरन ऐंड ब्रास वर्क्स (झरिया), ईस्टर्न कोल कम्पनी भौंवरा कोलियरी वर्क्स (जमदोवा), लोदना इंजिनियरिंग वर्क्स (झरिया), एक्रा इंजिनियरिंग वर्क्स (बसजोरा)। सिंहभूमि में ४ हैं—एग्रिकल्चरल इम्प्लीमेंट कम्पनी (तातानगर), जमशेदपुर इंजिनियरिंग वर्क्स (जमशेदपुर), इंडियन स्टीलवायर प्रोडक्ट्स (तातानगर), इंडियन ह्यूम पाइप कम्पनी (जमशेदपुर)। मुजफ्फरपुर मे दो हैं—आर्थर बटलर ऐंड कम्पनी इंजिनियरिंग वर्क्स (मुजफ्फरपुर), निरहुत टेकनिकल इंस्टिट्युट वर्कशौप (मुजफ्फरपुर)। हजारीबाग में एक है—हजारीबाग रिफौर्मेटरी स्कूल वर्कशौप।

सारन में एक है—सारन इंजिनियरिंग वर्क्स, महौढ़ा। पटना में दो हैं—ए० शर्मा फैक्टरी (कदमकुआँ, पटना), बिहार कौलेज आफ इंजिनियरिंग वर्कशौप, (बाँकीपुर)। शाहाबाद में एक है—पबलिक वर्क्स डिपार्टमेंट इंजिनियरिंग वर्कशौप (डिहरी, सोन-तटस्थ)। राँची में एक है—राँची टेक्निकल स्कूल वर्कशौप (राँची)।

रेलवे के कारखाने बिहार में २४ हैं जिनमें करीब १२ हजार आदमी काम करते हैं। इनमें ई० आइ० रेलवे के ६ हैं—जमालपुर, झाझा, दानापुर, खगौल, बनियाडीह, धनबाद, गोमो, जमशेदपुर और गया। बी० एन० डब्लू० रेलवे के ५ हैं—बरौनी, समस्तीपुर, मुकामाघाट, सोनपुर और मुजफ्फरपुर। बी० एन० रेलवे के ६ हैं—आद्रा, पुरुलिया, अनारा (मानभूमि), भोजूडीह और चक्रधरपुर (सिंहभूमि), तातानगर। ई० बी० रेलवे का एक कटिहार में और डिहरी-रोहतास लाइट रेलवे का एक डिहरी (Dehri-on-Sone) में है।

जहाज बनाने का केवल एक कारखाना, आइ० जी० एँड आर० एस० नेविगेशन कम्पनी का, दीघाघाट (पटना) में है, जहाँ करीब २५० आदमी काम करते हैं। यह गंगा-तट पर स्थित है।

लोहे के छोटे-मोटे सामान तैयार करने के तीन छोटे-छोटे कारखाने हैं, जिनमें करीब एक हजार आदमी काम करते हैं—दि ताता फाउंड्री (तातानगर), पटना आयरन फाउंड्री (पटना सिटी) और बाँकीपुर आयरन वर्क्स (बाँकीपुर)।

ताँबे के खनिजों को पिघलाकर ताँबा तैयार करने का एक कारखाना सिंहभूमि जिले के मौभन्दर स्थान में है—दि इंडियन कौपर कॉरपोरेशन कम्पनी, जिसमें प्रायः १३०० आदमी काम करते हैं।

अबरक की एक कम्पनी डोमचाँच (हजारीबाग) में है, जिसमें प्रायः पौने दो सौ आदमी काम करते हैं—एफ० एफ० क्रिश्चियन एँड कम्पनी माइका फैक्टरी।

मिठाई और बिस्कुट बनाने की केवल एक कम्पनी—मौर्टन लिमिटेड, महौढ़ा—जिला सारन में है, जिसमे प्रायः २० आदमी काम करते हैं। शायद यह कम्पनी साल-भर नहीं चलती।

शराब बनाने के लिये बिहार मे ४ डिस्टिलरी हैं, जिनमें प्रायः २०० आदमी काम करते हैं—एक सारन जिले में 'महौढ़ा डिस्टिलरी' है। एक भागलपुर जिले में 'सुलतानगंज डिस्टिलरी है। राँची जिले में एक 'लालपुर डिस्टिलरी' है। मुंगेर जिले में एक 'मनकट्ठा डिस्टिलरी' है।

गैस और रासायनिक द्रव्यों के निर्माण के कारखाने बिहार मे केवल दो हैं—एक सिहभूमि जिले के जमशेदपुर में 'इंडियन आक्सिजन ऐंड ए सिटिलीन कम्पनी' और दूसरा तातानगर में 'ताता केमिकल वर्क्स'। कोयले से कोक बनाने के ५ कारखाने हजारीबाग और मानभूमि मे हैं। कोलतार को स्रावण (distillation) करने का केवल एक कारखाना लोदना कोल-खान मे 'शालीमार टार डिस्टिलरी ऐंड वाटर-प्रूफ मनुफैक्चरिङ्ग कम्पनी' है। इन सब कारखानो में प्रायः दो हजार आदमी काम करते हैं।

छोटे-छोटे छापाखाने तो बिहार में बहुत हैं, पर ऐसे छापाखाने, जिनमे कारखाना-कानून लागू होता है, केवल १२ हैं। मुंगेर में १, पटना में ८, गया में १, सिहभूमि में १, भागलपुर में १। इनमें करीब १६०० आदमी काम करते हैं।

ईंट और टाइल बनाने के ६ कारखाने बिहार के मानभूमि जिले में हैं—मगमा, बराकर, कुमारधुबी और झरिया में। सुरखी, चूना और सीमेंट बनाने के ४ कारखाने मुंगेर, पलामू, राँची और शाहाबाद में हैं। लकडी चीरने का एक कारखाना—स्टीम सर्व मिल्स—बिसड़ा (सिंहभूमि) में है। पत्थर काटने के दो कारखाने संतालपरगना जिले में—मल्पाहारी और पाकौर में—हैं।

पानी के नल बनाने के दो कारखाने हैं—ढि इंडियन ह्यूम पाइप कम्पनी लिमिटेड (पटना) और दि इंडियन ह्यूम पाइप कम्पनी लिमिटेड (जमशेदपुर)—जिनमें २६१ आदमी काम करते हैं।

बिहार के सारन जिले के सीवान कस्बे मे रुई साफ करने और गाँठ तैयार करने की एक-मात्र कम्पनी है—बिहार जिन फैक्टरी ऐंड आयल मिल्स—जिसमें केवल २५ आदमी काम करते हैं।

उपर्युक्त आँकड़ो से पता लग जाता है कि बिहार में जो कारखाने हैं उनमें अपेक्षाकृत कम आदमी काम करते है। कुछ कारखाने तो बिलकुल छोटे हैं और अधिकांश कारखाने ऐसे हैं, जिनमें रेलवे-कम्पनियाँ अपने काम के सामान तैयार करती हैं। अनेक ऐसे कारखाने सरलता से खोले और चलाये जा सकते हैं जिनके लिये कच्चे माल और खपत के बाजार बिहार मे विद्यमान हैं। इसके लिये बिहार के धनी मानी लोगो और बिहार-सरकार को सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिये। तभी यहाँ के खनिज-धन और कृपि-सम्पत्ति के सहारे उद्योग-धन्धे स्थापित होकर सफलतापूर्वक चल सकते हैं।



बौद्धयुग में बिहार की दो शिक्षण-संस्थाएँ

श्रीसुमन वात्स्यायन; सारनाथ, काशी

बौद्धयुग में बिहार-प्रान्त की दो शिक्षण-संस्थाएँ जगत्प्रसिद्ध थीं। इतिहास में दोनों संस्थाओं का विशद वर्णन मिलता है। दोनों ही मगध में थीं। दोनो के भग्नावशेषों के चिह्न अद्यापि वर्त्तमान हैं।

[१] नालन्दा-विश्वविद्यालय

नालन्दा-विश्वविद्यालय, तक्षशिला को छोड़कर, ससार का प्राचीनतम शिक्षणालय था। वास्तव में यह संसार-भर का ज्ञान-पीठ था; इसके विस्तृत ध्वंसावशेष इसकी विशालता के साक्षी हैं। इसी ने तत्कालीन ज्ञात जगत् को भारतीय ज्ञान-विज्ञान, धर्म, साहित्य, दर्शन, कला, शिल्प, सभ्यता, संस्कृति आदि का दान दिया था। भारत का 'ससार का मुकुट-मणि' होने का गौरव इसीने अक्षुण्ण रक्खा। यहाँ के स्नातक पांडित्य में अपना सानी नहीं रखते थे। वे केवल किताबी ज्ञान के ही धनी नहीं होते थे, उनमें साहस और उत्साह भी भरपूर होता था। इसी के बल पर उन्होंने संसार को रौंद डाला था।

जब बौद्ध-धर्म की विजय-ध्वजा सारे एशियाखंड में फहरा रही थी, भारतीय ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत नालन्दा ही था। नालन्दा में अध्ययन किये विना शिक्षा पूरी नही समझी जाती थी।

नालन्दा को भगवान् तथागत की चरण-धूलि से पवित्र होने के अनेक अवसर मिले थे। उन्होंने नालन्दा में एक वर्षा-वास भी किया था, चौमासा बिताया था। यहाँ का सुन्दर आम्रवन, जिसमें भगवान् ठहरे थे, सेठ प्रावारक ने उन्हें दान कर दिया था। भगवान् के प्रधान शिष्य—'धर्म-सेनापति' की उपाधि से विभूषित—'सारिपुत्र' यही पैदा हुए थे।

सारि-पुत्र का जन्म 'नालक' ग्राम में हुआ था। शायद नालन्दा के खँड़हर से पूर्व की ओर स्थित वर्त्तमान 'सरिचक' नामक गाँव ही नालक ग्राम था। हो सकता है, बाद में, सारिपुत्र के नाम पर ही, इसका नाम पड़ा हो और अन्त में बिगड़ते-बिगड़ते सरिचक हो गया हो।

नालन्दा का भग्नावशेष 'बखतियारपुर-बिहार-लाइट (बी० बी० एल०) रेलवे के 'नालन्दा' स्टेशन से लगभग एक मील पर है। पालि-साहित्य में 'नालन्दा' राजगृह से आठ मील की दूरी पर बतलाया गया है। चीनी भिक्षु 'फा-हियान' का भी यही कथन है। कुछ दिनों तक नालन्दा के स्थान-निर्देश में भी बड़ी धाँधली रही। किन्तु खँड़हरो की खुदाई हो जाने के कारण अनुमान और कल्पना की कोई गुंजायश ही नही रही। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री 'ग्वान-च्वाङ्' का कथन है कि वज्रासन (बुद्धगया) से नालन्दा ४६ मील की दूरी पर स्थित है।

बौद्ध-साहित्य में नालन्दा का बड़ा महत्त्व है। नालन्दा ने ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायन-जैसे मनीषियो को पैदा किया। भगवान् बुद्धदेव ने यहाँ के 'पावारिक' आम्रवन में रहते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण और सारगर्भ उपदेश दिये थे।

यही एक बार किसी ने भगवान् से आकर पूछा—"भगवन्! ब्राह्मण लोग 'मृतक को हम अपने मंत्रबल से स्वर्ग भेज सकते हैं' कहकर प्रचार करते फिरते हैं। क्या आप भी ऐसा कर सकते हैं?" भगवान् ने उत्तर दिया—"जो जीवहत्या, चोरी आदि दुष्कर्म करता है वह कभी स्वर्ग नहीं जा सकता।"

जैन-ग्रन्थों के देखने से भी पता चलता है कि राजगृह से उत्तर की ओर नालन्दा अवस्थित था। एक बार जब बुद्ध नालन्दा में वास कर रहे थे तब श्रीपार्श्व-नाथ के शिष्य 'उदक' के साथ उनका परिचय हुआ था। उसने कर्मफल के सम्बन्ध में भगवान् का सिद्धान्त जानने के लिये अपने एक साथी को उनके पास भेजा था।

चीनी यात्री ग्वान्-च्वाङ् के कथनानुसार नालन्दा वर्त्तमान बिहार-शरीफ शहर के दक्षिण-पश्चिम में एक आम का बागीचा था। उस बागीचे में एक पुष्करिणी



नालंदा में प्राप्त (बैठे हुए) अवलोकितेश्वर की काँसे की मूर्त्ति



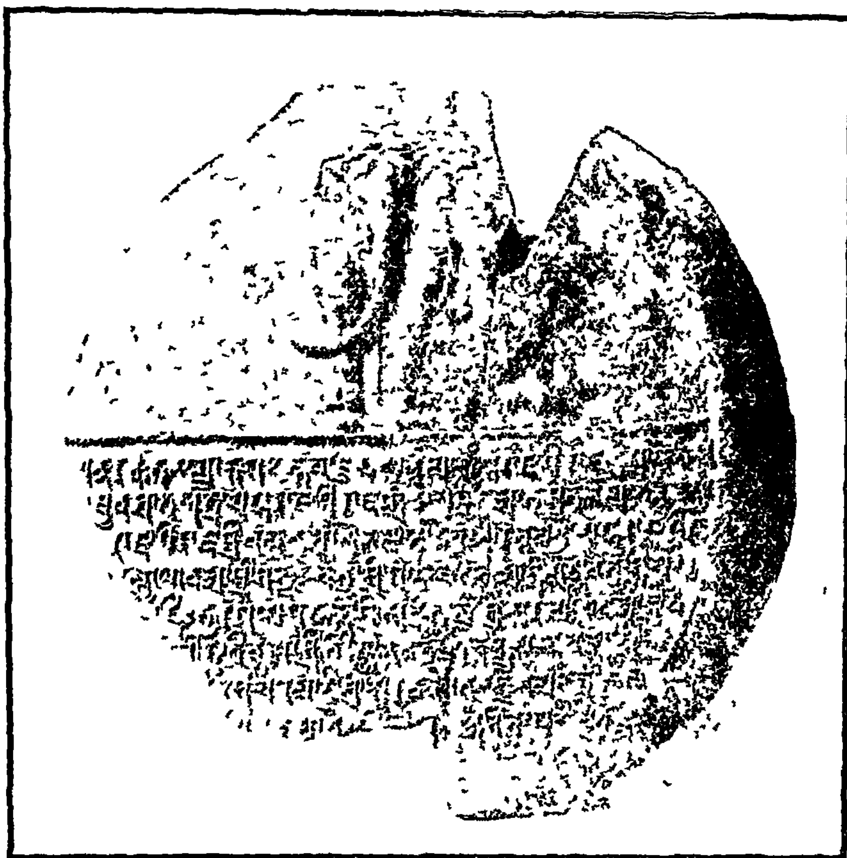
नालदा मे प्राप्त १८ हाथो वाली 'तारा' की काँसे की मूर्त्ति



नालदा मे प्राप्त चार हाथों वाली पत्थर की स्त्री-मूर्त्ति



नालंदा मे प्राप्त गजलक्ष्मी की प्रतिमूर्त्ति वाली मिट्टी की मुहर



नालंदा की खुदाई में पाया गया, मिट्टी का, पकाया हुआ, पतला चित्रित टुकडा, जिसके नीचे भास्कर वर्मा की प्रशस्ति और ऊपर हाथी की प्रतिमूर्त्ति है।



नालंदा मे प्राप्त (खडे हुए) 'त्रयलोक्यविजय' की काँसे की मूर्त्ति का सामने का दृश्य

(पृष्ठ १०७; २०१)

थी, जिसमें 'नालन्दा' नामक एक नाग-राज रहता था। ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध पूर्व-जन्म में वहाँ बोधिसत्व के रूप में पैदा हुए थे। *

भगवान् के परिनिर्वाण के सौ वर्ष बाद बैशाली में धर्मसंगीति (सभा) हुई थी। उस संगीति में बौद्ध-धर्म दो भागों में बँट गया—एक भाग 'स्थविर'वादी कहलाया और दूसरा 'महासांघिक'। धर्म-सम्राट् अशोक के समय तक इन दो प्रमुख भेदों से फिर अनेक प्रभेद हुए। तृतीय संगीति में सर्वास्तिवादी आदिनिकाय (सम्प्रदाय) वाले, स्थविर-वादियों द्वारा, अलग कर दिये गये। पृथक् हो जाने पर सर्वास्तिवादियों ने अन्य निकायों के साथ मिलकर नालन्दा में अपनी संगीति की। उसी दिन से नालन्दा सर्वास्तिवादियों का केन्द्र बना; किन्तु शुंग-काल (१८८ ईसवी पूर्व) में बौद्धों के ऊपर बड़ी कठोरता की गई। ब्राह्मण-भक्त शासकों ने बौद्ध-धर्म का मूलोच्छेद करने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। लाचार होकर इन निकायो को मथुरा और फिर कुषाणो के समय में गन्धार जाकर शरण लेनी पड़ी। कनिष्क के समय में सर्वास्तिवादियों ने अपना धर्मग्रंथ 'त्रिपिटक' पाली से संस्कृत में कर लिया।

तथागत के समय में ही नालन्दा में एक बौद्ध-विहार की स्थापना हो गई थी। मौर्य-सम्राट् अशोक ने अपने शासनकाल में शिक्षा-प्रचार के लिये काफी चेष्टा की थी। उनके शासन के उत्तरकाल में उनकी यह चेष्टा सफल हुई। कुछ लोगों की राय में नालन्दा की स्थापना—शिक्षण-संस्था के रूप में—इसी समय हुई थी।

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् शक्रादित्य, बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, बालादित्य और वज्र नाम के पाँच राजाओं ने नालन्दा में एक-एक संघाराम बनवाया था। स्वर्गीय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण की राय में, ४५० ई० के लगभग, बौद्ध-सम्राट् बालादित्य के राजत्वकाल में, नालन्दा-विहार एक विश्वविद्यालय के रूप में † परिणत हो गया था।

किन्तु नालन्दा में आर्य नागार्जुन की एक मूर्त्ति मिली है। यदि यह प्रतिमा शून्यवादी नागार्जुन की मानी जाय, तो इससे ज्ञात होता है कि दूसरी शताब्दी के मध्य में नालन्दा एक सुप्रतिष्ठित शिक्षाकेन्द्र था। यह बात ठीक भी जँचती है; क्योंकि नागार्जुन महायान के प्रवर्त्तक थे और नालन्दा महायानियों का गढ़ था।

* बौद्ध-विद्यापीठ

† बौद्ध-विद्यापीठ

अतः नालन्दा-विश्वविद्यालय का प्रारम्भ यदि तृतीय संगीति से माना जाय तो कोई हानि नहीं। यथार्थ में नालन्दा का विकास क्रमशः हुआ था।

जहाँ कभी नालन्दा-विद्यापीठ के भव्य भवन थे, वहाँ अब 'बड़गाँव' नामक एक गाँव है। बड़गाँव के निकट-स्थित विस्तृत और सुदूरव्यापी ध्वसावशेष, ऊँची-ऊँची उजाड़ दीवारें, अगणित टीले, आसपास के बड़े-बड़े प्राचीन तालाब आदि नालन्दा के प्राचीनतम गौरवमय दिनो की महत्ता सूचित करते हैं। इस विश्वविद्यालय और इसके आसपास के विहारो के निर्माण की प्रणाली, जो प्राचीन भारत के समुन्नत शिल्प-कला-कौशल का अपूर्व निदर्शन है, संसार में अपना सानी नहीं रखती।

यह विश्वविद्यालय मगध-साम्राज्य का प्रथम श्रेणी का शिक्षा-केन्द्र था। मगध-साम्राज्य में चार महाविहार थे—वज्रासन (बुद्धगया), नालन्दा, उदन्तपुरी और विक्रमशिला। धार्मिक दृष्टि से वज्रासन का बड़ा महत्त्व था, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से नालन्दा सर्वश्रेष्ठ था। जब आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान से नालन्दा के आचार्यों ने पूछा कि आप विक्रमशिला छोड़कर यहाँ क्यो आये, तब उन्होंने नालन्दा की प्राचीनता तथा उसकी और कितनी ही विशेषताएँ बतलाकर अपने आने का कारण समझाया।

उस समय सुदूरवर्त्ती चीन, जापान, तातार, मध्य एशिया, तिब्बत, स्याम, अनाम, बर्मा, मलय आदि अनेक देशों से ज्ञान-पिपासु लोग अध्ययनार्थ नालन्दा आते थे। अठारह बौद्ध-निकायों के ग्रन्थो के अतिरिक्त वैद्यक, दर्शन, साहित्य, अनेक प्रकार के कला-कौशल, ब्राह्मण-दर्शन, जैन-दर्शन आदि की भी शिक्षा यहाँ दी जाती थी। केवल पुस्तकी शिक्षा ही पर्य्याप्त नहीं समझी जाती थी, हस्तकौशल की शिक्षा का भी सुप्रबन्ध था। खँड़हरो की खुदाई में मिली भट्ठी और अनेक प्रकार के साँचे इसके प्रमाण हैं। इनके निरीक्षण और परीक्षण से ज्ञात होता है कि पीतल, ताँबा और अन्य अनेक धातुओ के उपयोग की भी शिक्षा यहाँ दी जाती थी।

नालन्दा-विश्वविद्यालय के साथ के विहार में आठ विस्तृत कक्ष और तीन सौ प्रकोष्ठ थे। सभागृह दस भागों में विभक्त था। शिक्षार्थियो के रहने के लिये भिन्न-भिन्न भागों में तीन सौ भवन थे। तीन विशाल ग्रन्थालय थे—रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरञ्जक। रत्नोदधि का भवन नव-तल्ला था। इन पुस्तकालयों में हीनयान, महायान, वज्रयान आदि बौद्ध तथा अन्य सम्प्रदायों

के अनेकानेक विषयों के ग्रन्थ संगृहीत थे। इस विश्वविद्यालय के संचालन-व्यय के लिये बौद्ध-सम्राटों ने सैकड़ों गाँव दिये थे। विश्वविद्यालय की अपनी मुहर (सील) थी। सुविज्ञ नामक किसी ब्राह्मण ने, सद्धर्म की परिपुष्टि के लिये, नालन्दा में १०८ विहार बनवाये थे। *

नालन्दा-विश्वविद्यालय के शिक्षा-विभाग में जिनमित्र, शीघ्रबुद्ध, चन्द्र-पाल, ज्ञानचन्द्र, स्थिरमति, प्रभाकरमित्र, धर्मपाल, भद्रसेन, ज्ञानगर्भ, शान्त-रक्षित आदि प्रथम श्रेणी के मस्तिष्कवाले अनेक विद्वान् थे। इनमें आचार्य शान्तरक्षित का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके समय में नालन्दा का कीर्त्ति-सौरभ संसार-व्यापी हो चुका था। उस समय तक 'ह्वान्-त्स्वाङ्' अपना अध्ययन समाप्त कर चला गया था। हाँ, दूसरे अनेक चीनी भिक्षु शिक्षा पा रहे थे। इनमें 'ई-चिङ्' (६७१—९५ ई०) का नाम उल्लेखनीय है।

आचार्य शान्तरक्षित 'सहोर' (विक्रमशिला) के राज-परिवार के थे। आपने राज्य छोड़कर नालन्दा के आचार्य ज्ञानगर्भ के पास, लगभग ६७५ ई० में, प्रव्रज्या ली थी। आप बरसों यहाँ रहकर अध्ययन करते रहे। शिक्षा की समाप्ति के बाद आप नालन्दा में ही अध्यापक-पद पर नियुक्त हुए। आपके शिष्यों में अनेक प्रतिभाशाली लेखक हो गये हैं। लगभग ७० वर्ष की अवस्था में आप तिब्बत गये। २५ वर्ष से भी अधिक समय तक वहीं धर्म-प्रचार करते रहे। तिब्बत जानेवालों में आप ही प्रथम भारतीय विद्वान् थे। वहाँ भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का प्रचार कर करीब १०० वर्ष की आयु में लग-भग ७५० ई० में, आपने शरीर छोड़ा। आपके समय में नालन्दा में तन्त्र-मन्त्र का खूब प्रचार था। सचमुच नालन्दा के अन्तिम दिनों में घोर वज्रयान का विकृत-से-विकृत रूप, बुद्ध के नाम पर, जनता में प्रचारित किया जा रहा था। इन्हीं आन्तरिक दुर्बलताओं और मुसलमानों के क्रूरतापूर्ण आक्रमण के कारण बौद्ध-धर्म का पतन हुआ। मुसलमान आक्रमणकारियों की बर्बरता से भारतीय स्थापत्य-कला के अनेक अमूल्य निदर्शन नष्ट-भ्रष्ट हो गये—भारतीय सभ्यता और संस्कृति के असंख्य चमत्कारपूर्ण चिह्न सदा के लिये लुप्त हो गये—विद्या वैभव-सम्पन्न अनेक ग्रंथसंग्रहालयों को अग्नि-समाधि मिल गई—शिल्प-सौष्ठव प्रदर्शित करनेवाले अनेक भव्य भवन भूमिसात् हो गये। धन्य धर्मोन्माद !

नालन्दा में दस हजार से ऊपर छात्र पढ़ते थे। अध्यापन के लिये डेढ़

* बौद्ध-विद्यापीठ

हजार अध्यापक थे। य्वान्-च्वाङ् यहाँ के प्रधानाध्यापक आचार्य शीलभद्र का असाधारण पांडित्य देखकर मुग्ध हो गया, और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

नालन्दा केवल मगध या भारत का ही ज्ञान-भंडार नही था, वह तो अपने समय में समस्त संसार में ज्ञान-विज्ञान का गोमुख था।

नालन्दा-विश्वविद्यालय को मुसलमानों ने बड़ी निष्ठुरता से नष्ट किया। इसके साक्षी हैं वहाँ की जली ईंटे, जली हुई चौखटे, जले हुए चावल के दाने इत्यादि। यदि भयंकर अमानुषिक आक्रमण से नालन्दा का नाश न हुआ होता, तो वहाँ के ग्रंथसंग्रहालय आज भी दुनिया को यह बतला सकते कि उस समय नालन्दा कितना विस्तृत एवं गम्भीर ज्ञान-समुद्र था--उसका ज्ञान का खजाना पृथ्वीतल पर कैसा अद्वितीय था!

[२] विक्रमशिला-विश्वविद्यालय

'विक्रमशिला' विहार प्रान्त का दूसरा विश्वविख्यात विश्वविद्यालय था। नालन्दा-विश्वविद्यालय की उन्नति क्रमशः हुई थी; किन्तु पालवंशी राजाओं की विशेष कृपादृष्टि होने के कारण इसकी उन्नति और ख्याति में अधिक समय न लगा।

विक्रमशिला के स्थान-निरूपण में अधिक कठिनाई न हुई होती, यदि बंगाली विद्वान् श्रीविनयतोष भट्टाचार्य इसको विहार से उठाकर ढाका न ले गये होते! दुर्भाग्यवश वहाँ 'विक्रमपुर' परगने में 'साभर' नाम का एक ग्राम उन्हें मिल गया। फिर क्या था, 'साभर' और 'सहोर' का मेल मिला दिया!

श्री कनिंघम साहब के मत से, राजगृह से छः मील उत्तर और नालन्दा से तीन मील दूर, 'शिला' नामक ग्राम में ही विक्रम-शिला का स्थान-निर्देश होता है।* किन्तु अब भोटिया ग्रंथो के अध्ययन से यह गलतफहमी प्रायः विलकुल दूर हो गई है।

नालन्दा के आचार्य शान्तरक्षित के समय से लेकर विक्रमशिला के आचार्य दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय तक तिव्वत और भारत का काफी सम्बन्ध रहा है। इन पाँच शताब्दियों (७०० से १२०० तक) में भारत से अनेक दिग्गज विद्वान् तिव्वत गये और वहाँ वौद्ध-धर्म का प्रचार किया। सारा वौद्ध-साहित्य भोट भापा में अनूदित हुआ। ये अनुवाद अधिकतर दुभाषियो के द्वारा करवाये

* वौद्ध-विद्यापीठ

गये। अतः बौद्धकालीन भारतीय इतिहास का प्रामाणिक तत्त्व ढूँढ़ने के लिये भोटिया-ग्रथों का अध्ययन आवश्यक है।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने भागलपुर जिले के सुलतानगज को विक्रमशिला निश्चित किया है। यह प्रदेश पहले 'सहोर' या 'भगल' (भंगल) नाम से विख्यात था। 'सहोर' एक मांडलिक राज्य था। दसवीं शताब्दी के अन्त में राजा कल्याणश्री इस प्रदेश के शासक थे। उस समय पालवंश की शक्ति अद्वितीय थी। राजा कल्याणश्री भी उसी के अधीनस्थ राजा थे।

त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायन ने भी सुलतानगंज को विक्रम-शिला मानने के पक्ष में भोटिया-ग्रंथों से कुछ उद्धरण दिये हैं। यथा—

"भारत पूर्व दिशा सहोर देशोत्तम में भंगल नाम का पुर है। इसके स्वामी धर्मराज कल्याणश्री......। प्रासाद कांचन ध्वजा। उस प्रासाद की उत्तार दिशा में विक्रम पुरी (विक्रम-शिला) है। उस विहार में जाकर पूजा करने को माता-पिता.. ......पाँच सौ रथों के साथ।

" श्री वज्रासन (बुद्धगया) की पूर्व दिशा में भंगल महादेश है। उस भंगल देश में बडा नगर है विक्रम-पुरी। उस देश का नामान्तर 'सहोर' है जिसके भीतर विक्रम-पुरी नामक नगर है......... ।"

लामा तारानाथ (जन्म १५७४ ई.) ने भी अपने ग्रन्थ में बौद्ध-युग के अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। इन भोटिया-ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पाल-वंशी राजा गोपालदेव ने उदन्तपुर (ओदन्तपुरी) * में एक विशाल विहार का निर्माण कराया था। जो संरक्षण ब्राह्मणधर्म को गुप्त-सम्राटों द्वारा मिला था वही संरक्षण आठवीं से बारहवीं सदी तक बौद्ध-धर्म को पालवंशी सम्राटों द्वारा मिला। महाराज गोपालदेव के पुत्र महाराज धर्मपाल ने गंगा के सुरम्य तट पर विक्रमशिला-विहार स्थापित किया। महाराज देवपाल (८०६–८४६ ई०) के राजत्वकाल में वज्रासन (बुद्धगया) नाम का सुप्रसिद्ध विहार निर्मित हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में महाराज महीपाल ने ऋषिपत्तन (=सारनाथ) के प्राचीन विहार का जीर्णोद्धार कराया था। जिस प्रकार धर्म-सम्राट् अशोक ने विदेशों

* यह स्थान पटना जिले का एक सबडिवीजन वर्त्तमान बिहारशरीफ है। इसके समीप की पहाड़ी पर वह विहार था। अब वहाँ दर्गाह है।

में धर्म-शासन के प्रचार की जी-तोड़ कोशिश की, उसी प्रकार पालवंशी राजाओं ने भी की। इन्हीं के समय में तिब्बत-जैसे दुर्गम और अर्द्धसभ्य देश में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में से अधिकांश विक्रम-शिला से सम्बद्ध थे। सिद्धयुग का उदय भी इसी समय हुआ था।

महाराज धर्मपाल के अनन्तर भी विक्रम-शिला पालवंशी शासकों का विशेष कृपापात्र बना रहा। यह बौद्ध-विहार मात्र ही नहीं रहा, शिक्षा का सर्वाङ्गपूर्ण केन्द्र भी बन गया था।

इस विश्वविद्यालय के चारो ओर चार तोरण थे। हर-एक प्रवेश-द्वार पर एक-एक प्रवेशिका-परीक्षा-गृह था। राजा जयपाल ने अपने शासन-काल में चार के सिवा दो प्रवेशिका-गृह और बनवाये थे। इन सभी द्वारों पर एक-एक दिग्गज विद्वान् नियुक्त थे—पूर्व-द्वार पर थे आचार्य रत्नाकर शान्ति, पश्चिम-द्वार पर आचार्य प्रज्ञाकरमति, उत्तर-द्वार पर भट्टारक नरोप (नरोत्पल), दक्षिण-द्वार पर आचार्य वागीश्वरकीर्त्ति, मध्य के प्रथम द्वार पर आचार्य रत्नभद्र और मध्य के द्वितीय द्वार पर आचार्य ज्ञानमित्र।

इसमें आठ महापंडित (महाध्यापक) और १०८ पडित (अध्यापक) थे। इनमें से कुछ के नाम आगे दिये जाते हैं—रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्णसमर-वज्र, तथागतरक्षित, दीपङ्करश्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित, नरेन्द्रश्रीज्ञान, दानरक्षित, अभयकरगुप्त, सुनायकश्री, धर्माकर शान्ति आदि। *

इन आचार्यों में दीपङ्कर श्रीज्ञान राजकुमार थे। आप अध्ययनशील व्यक्ति थे। महापडित जेतारि ने आपको नालन्दा-विश्वविद्यालय में अध्ययन करने की राय दी। आप नालन्दा से, मन्त्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, फिर विक्रम-शिला लौट आये। इससे ज्ञात होता है कि मंत्रशास्त्र के अध्ययन के लिये, विक्रम-शिला विशेष विख्यात था। २९ वर्ष की अवस्था तक यहाँ अध्ययन करने के बाद आप वज्रासन (बुद्धगया) चले गये। दो वर्ष तक वहाँ अध्ययन करने के बाद सुमात्रा जाकर आपने आचार्य धर्मपाल के पास शिक्षा पाई। अनेक द्वीपो की यात्रा करने के बाद जब आप भारत लौटे तब विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के आचार्य-पद पर आसीन हुए। अपने गहरे अध्ययन के फलस्वरूप आप यहाँ ५१ पडितों और १०८ देवालयो की देखरेख करनेवाले बनाये गये। ६० वर्ष की अवस्था में धर्म-

* बौद्ध-विद्यापीठ

प्रचारार्थ आप तिब्बत गये। वहीं ७३ वर्ष की आयु में शरीर-त्याग किया। आपका भिक्षापात्र, कमण्डलु आदि आज भी तिब्बत में सुरक्षित हैं।

विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के उत्थानकाल तक बौद्ध-धर्म का वह रूप नहीं रह गया था जो इसके प्रवर्त्तक ने रक्खा था। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में घोर वज्रयान का प्रचार था। तंत्र-मंत्रों और सिद्धों ने बौद्धधर्म की स्वच्छता को पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया था। नालन्दा-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय से लेकर विक्रमशिला-जैसे नवीन विश्वविद्यालय तक में तन्त्र-शास्त्र की ही प्रधानता थी। विक्रमशिला के आठ महापडितों में मैत्रिया, डोम्बीया, स्मृन्याकर आदि सिद्धों में से ही तो थे। स्वयं दीपङ्कर श्रीज्ञान ने तर से ऊपर तान्त्रिक ग्रन्थ लिखे हैं।

विक्रमशिला में भारतीय छात्रों के अतिरिक्त बहुत-से विदेशी छात्र भी विद्याध्ययन के लिये आते थे। अनेक तिब्बती भिक्षु यहीं रहकर विद्याध्ययन करते और अध्ययन समाप्त कर अपनी भाषा में संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करते थे।

भिन्न-भिन्न स्थानों से जो छात्र यहाँ प्रवेशार्थी होकर आते थे उन्हें द्वारस्थ पंडितों को परीक्षा में सन्तुष्ट करना पड़ता था। विद्यार्थियों के भोजन-छाजन का प्रबन्ध प्राय: विश्वविद्यालय की ओर से ही होता था। शिक्षा एकांगी नहीं होती थी। सभी विषयों की पढ़ाई होती थी।

दीपङ्कर श्रीज्ञान के समय में यहाँ के संघस्थविर 'रत्नाकर' थे। शान्तिभद्र, रत्नाकर शान्ति, मैत्रिया, डोम्बीया, स्थविरभद्र, स्मृन्याकर सिद्ध, अतिशा आदि आठ महापडित थे। विहार के मध्य में बोधिसत्व की मूर्त्ति थी। सैकड़ों तांत्रिक देवालय थे। सारा खर्च राज्य की ओर से प्राप्त होता था। विदेशी छात्रों को विशेष सुविधा दी जाती थी।

पालवंशी राजाओं के अध:पतन के साथ-साथ मगध-साम्राज्य के बौद्ध-विहार, संघाराम, विश्वविद्यालय आदि सदा के लिये नष्ट हो गये। सन् ११९३ ई० में महम्मद-बिन-बख्तियार ने गोविन्दपाल पर चढ़ाई की। उदन्तपुर का महाविहार नष्ट कर दिया। गोविन्दपाल का अन्त हुआ। विजयमदान्ध मुसलमानों ने उदन्तपुरी, नालन्दा और विक्रमशिला को खूब लूटा। हजारों अध्यापक और छात्र तलवार के घाट उतारे गये। बड़े-बड़े विहार संहार कर डाले गये, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल में मिला दी गईं, सोना-चाँदी की मूर्त्तियाँ गला डाली गईं, बौद्ध-धर्म का केन्द्र मगध लोथों से पट गया!

मुसलमानों के इस भीषण आक्रमण से बौद्ध-धर्म सदा के लिये विस्मृति-सागर में विलीन हो गया। जो भिक्षु किसी तरह बच पाये, उन्होने तिब्बत, नैपाल, बर्मा, लंका, मलय आदि देशो में जाकर आश्रय लिया। विजेताओं ने बचे-खुचे लोगों को अपना धर्म (इसलाम) स्वीकार करने के लिये वाध्य किया। लगभग दो हजार वर्ष के पुराने धर्म और प्रतिष्ठित सभ्यता को तुर्कों ने इस वर्वरता से नष्ट किया कि पुनः उनका उद्धार न हो सका। यह इतिहास की एक चिन्त्य घटना है !





बिहार की रियासतें

श्री कमलनारायण झा 'कमलेश'

बिहार में छोटी-बड़ी बहुत-सी रियासतें हैं। केवल सुप्रसिद्ध रियासतों का ही वर्णन इस लेख में है।

इन रियासतों के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि मुसलमानों के शासन-काल में इनमें से बहुतों का स्वतंत्र अस्तित्व था। हाँ, कभी-कभी मुसलमान बादशाह या उसके प्रतिनिधि को कुछ 'कर' तो अवश्य देना पड़ता था।

बरसों 'कर' न देने पर इनके अधिपतियों को कभी-कभी मुसलमान-शासकों से लड़ना-झगड़ना भी पड़ता था। बिहार में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना होने के कारण इनकी स्वतंत्रता जाती रही। इन दिनों ये जमींदारों में गिने जाते हैं।

हाँ, छोटानागपुर की दो रियासतें—खरसाँवा और सराइकला—आज तक देशी राज्यों में गिनी जाती हैं।

दरभंगा के महाराजाधिराज बिहार के जमींदारों के नेता हैं। यहाँ के जमींदारों की अपनी एक सभा भी है, जिसे 'बिहार-लैंड-होल्डर्स एसोसिएशन' कहते हैं।

दरभंगा-राज

मिथिला-प्रान्त पहले मुसलमानी जमाने में 'तिरहुत-सरकार' के नाम से प्रसिद्ध था। 'आईन-ए-अकबरी' में इसका यही नाम है। मिथिला-राज्य की

राजधानी दरभंगा है। अतः लोग इसे दरभंगा-राज के नाम से ही पुकारते हैं। दरभंगा के महाराजाधिराज भारत के जमींदारो में सबसे धनी और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। इस राज्य की आमदनी इन दिनों लगभग एक करोड़ है। भारत का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणराज्य यही है।

वर्त्तमान मिथिला-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय पंडित महेश ठाकुर थे। मुगल-सम्राट् अकबर ने इनकी विद्वत्ता और वाक्-पटुता पर प्रसन्न होकर इनके सम्मानार्थ इन्हें मिथिला का राज्य दे दिया। इस संबंध में 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत' ❋ में यह दोहा है—

नव ग्रह वेद वसुन्धरा, शक में अकबर-शाह।
पंडित सुबुध महेश को, कीन्हौं मिथिलानाह॥

शक-सवत् १४९९ का समय सन् १५७८ ई० होता है, परन्तु जनकपुर के निकट धनुष्कूप नामक स्थान में एक शिला-लेख † पाया जाता है, जिसमें महेश-ठाकुर की राज्य-प्राप्ति का समय १४७९ शकाब्द या १५५८ ई० मिलता है।

मिथिला में प्रचलित एक दोहे में शक-संवत् १४७८ लिखा है, जो इस प्रकार है—

वसु नग वेद वसुन्धरा, शक में अकबर-शाह।
ठकुर सुबुध महेश को, कीन्हौं मिथिलानाह॥

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर ने संस्कृत में कई ग्रंथों की रचना की। उनके स्वर्गारोहण के बाद उनके तीन पुत्र क्रमशः गद्दी पर बैठे—गोपाल ठाकुर, परमानन्द ठाकुर और शुभंकर ठाकुर। सन् १६०७ ई० में शुभंकर ठाकुर के स्वर्गारोहण के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र 'पुरुषोत्तम ठाकुर' राजा बनाये गये। इन्हें मुगल सरकार के मालगुजारी-तहसीलदार ने बागमती नदी के किनारे किलाघाट (दरभंगा) में मार डाला। तदुपरान्त इनके छोटे भाई 'श्री सुन्दर ठाकुर' राजा हुए। वे सन् १६६२ ई० में परलोकगामी हुए और उनके ज्येष्ठ पुत्र 'महिनाथ

❋ History of Tirhut—By Rai Bahadur Shyamnarayan Sinha.

† आसीत्पण्डितमण्डलाग्रगणिका भूमण्डलाखण्डलो
जातः खण्डवलाकुले गिरिसुताभक्तो महेशः कृती।
शाके रन्ध्रतुरङ्गमभुतिमही (१४७९) ....
वाग्देवीकृपयाशु येन मिथिलादेशः समस्तोऽर्जितः॥

ठाकुर' राजगद्दी पर बैठे। इन्हें 'सिमराँव' (चम्पारन) के राजा गजसिंह से लड़ना पड़ा था। 'सिमराँव' में ही संभवतः उन दिनों बेतिया-राज की राजधानी थी। मैथिली-साहित्य के प्रसिद्ध संगीत-ग्रंथ 'राग-तरंगिणी' के रचयिता लोचन कवि महिनाथ ठाकुर के दरबार के कवि थे।

राजा महिनाथ ठाकुर के बाद इस वंश के उल्लेखनीय अष्टम राजा हुए 'राजा राघवसिंह।' इन्हें भी बेतिया के राजा ध्रुवसिंह से लड़ना पड़ा था। इन्हें 'पंचमहल' (भागलपुर) के राजा और धर्मपुर (पुर्नियाँ) के बीरू कुर्मी से भी लड़ना पडा था। बीरू कुर्मी को इन्होंने धर्मपुर का तहसीलदार नियुक्त किया था; परन्तु उसने स्वतंत्र हो जाने की इच्छा से इनके विरुद्ध बलवा कर दिया। इन्होंने उसे मरवाकर बलवा शान्त किया।

राजा राघवसिंह के पुत्र थे राजा 'नरेन्द्रसिंह'। इन्होंने बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ को मिथिला के 'नरहन-राज' के विरुद्ध सहायता दी थी। मुस्तफा खाँ के विरुद्ध युद्ध में भी नवाब ने इनसे सहायता प्राप्त की थी। इन्ही के समय में पटना के नवाब राजा 'रामनारायण' ने मिथिला-विजय की अभिलाषा से 'भौर'-गढ़ पर चढ़ाई की। उन दिनों 'भौर'-गढ़ में ही मिथिला की राजधानी थी। दरभंगा जिले के कंदर्पी-घाट नामक स्थान में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अंत में राजा नरेन्द्रसिंह ही विजयी हुए और नवाब की सेना को अपनी हार पर पछताते हुए मिथिला छोड़ना पड़ा।

राजा नरेन्द्रसिंह सन् १७६० ई० में इस असार संसार से चल बसे। ये भी निःसंतान थे। इन्होंने राजा सुन्दर ठाकुर के छोटे भाई कुमार नारायण ठाकुर के प्रपौत्र कुमार 'प्रतापसिंह' को गोद लिया था। अतः यही प्रतापसिंह गद्दी के अधिकारी हुए।

राजा प्रतापसिंह ने अपने पूर्वजों के निवास-स्थान 'भौर' को छोड़कर दरभंगा में ही राजभवन बनवाया। यह सन् १७६२ ई० की बात है। इन्हीं के समय में मिथिला में 'सुरसंड' नामक एक नई रियासत कायम हुई।

सन् १७७६ ई० में राजा प्रतापसिंह के स्वर्गारोहण के बाद इनके छोटे भाई 'माधवसिंह' मिथिला के राजा हुए। इनके समय तक बिहार में अँगरेजी राज्य स्थापित हो चुका था। इन्हें तिरहुत के कलक्टर से झगड़ना पड़ा; क्योंकि कलक्टर ने इनकी सारी रियासत दूसरे-दूसरे जमींदारों के साथ बंदोबस्त कर दी थी। कुछ

काल के बाद इनकी सारी जायदाद बोर्ड-ऑफ-रेवेन्यु ने इन्हें वापस कर दी। इन्होने ही दरभंगा में अपनी राजधानी बनाई।

राजा माधवसिंह के पुत्र राजा 'क्षत्रसिह' ने ही पहले-पहल महाराज-बहादुर की उपाधि प्राप्त की। महाराज क्षत्रसिह के दो पुत्र थे—महाराजकुमार रुद्रसिंह 'महाराज-बहादुर' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे और महाराजकुमार वासुदेव-सिह को 'जरैल' परगने की जमीन्दारी मिली, जिनके दौहित्र स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा विश्वविख्यात विद्वान् हैं।

सन् १८५० ई० में महाराज रुद्रसिंह लोकान्तरित हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज महेश्वरसिह बहादुर सिंहासनस्थ हुए। सिर्फ दस वर्षों तक राज कर सन् १८६० ई० में महाराज महेश्वरसिह परलोकवासी हुए। इनके बाद इनके दो पुत्र—महाराज सर लक्ष्मीश्वरसिह बहादुर, जी० सी० आइ० ई० और महाराजाधिराज डाक्टर सर रमेश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आइ० ई०, के० बी० ई०, डि०-लिट्०—क्रमशः मिथिला की राजगद्दी पर बैठे।

इन दोनों भाइयों के विषय में भारत के यशस्वी पत्रकार डाक्टर सी० वाइ० चिन्तामणि ('लीडर'-सम्पादक) ने 'लीडर' (प्रयाग) में एक लेख लिखा था, जिसका कुछ अंश प्रयाग के हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'भारत' में छपा था। उसे मैं यहाँ अविकल उद्धृत करता हूँ—

"दरभंगे के वर्त्तमान महाराजाधिराज माननीय सर कामेश्वरसिह बहादुर के० सी० आइ० ई० के देशभक्त एवं लोकप्रिय पितृव्य महाराजा-बहादुर सर लक्ष्मीश्वरसिह के व्यक्तिगत परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। फिर भी मुझे अच्छी तरह याद है कि कांग्रेस के साथ उदारतापूर्ण सहानुभूति रखने के कारण उनकी प्रशंसा की जाती थी। कांग्रेस उनकी राजसी उदारता के अनेक कार्यों के लिये उनको ऋणी थी। सन् १८८८ में इलाहाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन की संपूर्ण तैयारी हो जाने पर भी स्वागत-समिति को उसके लिये कहीं उपयुक्त स्थान ही न मिल सका। अन्त में कांग्रेस का यह संकट तभी दूर हुआ जब महाराज-बहादुर सर लक्ष्मीश्वरसिह ने गवर्नमेंट हाउस के निकट स्थित 'लाउदर कैसल' को खरीद कर उसे स्वागत-समिति के हवाले कर दिया।

"वे पूरी अवस्था प्राप्त किये विना ही दिसम्बर सन् १८९८ में स्वर्गवासी हो गये। कांग्रेस के प्रेसिडेंट की हैसियत से भाषण करते हुए श्री आनन्दमोहन बोस ने अपनी शोकांजलि अर्पित करते समय उनको कांग्रेस का मित्र, उदार सहायक



स्वर्गीय दरभंगा-नरेश
महाराजाधिराज सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर
के सी आइ ई, जी. सी आइ. ई.
(पृष्ठ ११७—१२२)
श्रीमान् के राज्यकाल मे ही 'पुस्तक-भंडार' स्थापित हुआ।



स्वर्गीय मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर
के. सी. आइ ई., जी सी आइ. ई, डी-लिट्

तथा हार्दिक समर्थक कहा था और कहा था कि इन गुणों में आपसे बढ़कर कोई भी न था। कांग्रेस के प्रेसिडेंट का कहना था कि हमारे पास ऐसे शब्द ही नहीं हैं, जिनके द्वारा हम उनकी सेवाओं के मूल्य को उचित रूप से बतला सकें। कांग्रेस की ओर से इस संबंध में निम्न-लिखित शोक-प्रस्ताव पास किया गया था—

"स्वर्गीय महाराजा-दरभंगा सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर जी० सी० आइ० ई० की दुःखद एवं असामयिक मृत्यु से देश की जो अपार हानि हुई है, उसपर कांग्रेस हार्दिक शोक प्रकट करती है। उनकी उदारता एवं सदैव तत्पर रहनेवाली सार्वजनिक सेवा की भावना तथा सभी कार्यों में मुक्तहस्त होकर सहायता करने की प्रवृत्ति की कांग्रेस बहुत प्रशंसा करती है। कांग्रेस-आन्दोलन ने उनके द्वारा जो उदारतापूर्ण और ठोस सहायता पाई है, उसके प्रति कांग्रेस अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है। इस प्रस्ताव की एक प्रति स्वर्गीय महाराज के भाई महाराज रमेश्वरसिंह के पास भेज दी जाय।

"स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर के व्यक्तिगत परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सबसे पहले उनसे मेरी भेंट सन् १६०६ ई० में हुई और इसके बाद हम दोनों समय-समय पर मिलते रहे। वे मुझे सदैव बड़े प्रवीण, चतुर और बुद्धिमान् जान पड़े। उनकी कार्य करने की योग्यता तथा धर्मानुराग की कहानी बहुत विख्यात है—उसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है।"

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) के जन्मदाताओं में थे। भारतवर्ष में वे सनातनधर्म के प्रधान स्तम्भ थे। वर्त्तमान मिथिलेश ऑनरेबुल महाराजाधिराज कर्नल सर कामेश्वरसिंह बहादुर, जी० सी० आइ० ई०, के० बी० ई०, एल्०-एल्० डी०, डि०-लिट्० स्वर्गीय महाराजाधिराज डाक्टर सर रमेश्वरसिंह बहादुर के सुपुत्र हैं। आप सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आप भारत के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों और विधानज्ञो (पार्लियामेंटेरियनों) में गिने जाते हैं। आप अत्यन्त प्रजा-वत्सल और उत्साही समाज-सुधारक हैं। आपने लाखों रुपये दान कर भूकम्प-ध्वस्त दरभंगा नगर का जीर्णोद्धार करने के लिये एक इम्प्रूवमेंट-ट्रस्ट की स्थापना की है, जिसका उद्घाटन करने स्वयं लार्ड विलिंगडन दरभंगा पधारे थे। गोल-मेज-सभा (राउंड टेबुल कान्फ्रेंस) में, एक माननीय सदस्य की हैसियत से शामिल होने के लिये, दो बार आप इंगलैंड गये थे। हाँ, सम्राट् षष्ठ जार्ज के गत राज्याभिषेक के अवसर पर भी आप वहाँ गये थे। आप अपने राज्याभिषेक के बाद से ही आज तक भारतीय कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य,

अखिलभारतवर्षीय एवं बिहार-प्रांतीय जमींदार-सभाओं के सभापति हैं। आपके छोटे भाई राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर 'राजनगर-इस्टेट' (दरभंगा) के अधीश्वर और भारत के गिने-चुने खिलाड़ियों में हैं।

दरभंगा-राजधानी में लक्ष्मीश्वरविलास पैलेस, नरगौना पैलेस, विश्वनिवास पैलेस, विश्राम-कुटी, गेस्ट-हाउस, राज-लाइब्रेरी, राजप्रेस और चौरंगी रोड दर्शनीय हैं। राजनगर-पैलेस तो भूकम्प के पहले उत्तर-भारत का सर्वश्रेष्ठ राजमहल था।

बेतियाराज

यह रियासत चम्पारन जिले में है। इसके अधीश्वर भूमिहार-ब्राह्मण-जाति के हैं। इसकी राजधानी 'बेतिया' चम्पारन जिले की एक तहसील है और बी० एन० डब्लू० रेलवे का स्टेशन भी। बेतिया का राजभवन, राज-अस्पताल और राज-लाइब्रेरी दर्शनीय हैं। इस रियासत की सालाना आमदनी पचास लाख से ऊपर कही जाती है। इस राज के संस्थापक उग्रसेन थे, जिनके पुत्र राजसिंह को मुगल-सम्राट् अकबर से 'राजा' की उपाधि मिली थी। इस राज की राजधानी पहले सिमराँव-गढ़ में थी, जहाँ के राजा गजसिंह को तिरहुत के राजा महिनाथ ठाकुर से लड़ना पड़ा था, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

बहुत दिनों तक यहाँ के राजा विद्रोही गिने जाते थे। बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ ने बिहार के नायब नवाब मुस्तफा खाँ के साथ बेतिया पर चढ़ाई की थी। मीरकासिम और सर राबर्ट बार्कर ने भी बेतिया-नरेश को अपने अधीन किया।

सन् १७६६ ई० में राजा ध्रुवसिंह की मृत्यु होने पर उनके दौहित्र राजा युगलकिशोरसिंह गद्दी पर बैठे। इन्हें ईस्ट-इंडिया-कम्पनी से 'कर' न चुकाने के कारण, सन् १७७१ ई० में, युद्ध करना पड़ा। अन्त में संधि हो गई और कम्पनी ने फिर चम्पारन के 'मझौआ' और 'सीमाराम' परगने इनके ही हाथ बन्दोबस्त किये—अन्य छोटे-छोटे परगने उक्त गजसिंह के पौत्र कृष्णसिंह और अवधूतसिंह के हाथ बन्दोबस्त कर दिये।

कृष्णसिंह ने 'शिवहर'-राज (मुजफ्फरपुर) और अवधूतसिंह ने 'मधुबन'-राज (चम्पारन) की नींव डाली, जो अब उनके वंशधरों के हाथ में हैं।

महाराज आनन्दकिशोरसिंह, महाराज नवलकिशोरसिंह और महाराज राजेन्द्रकिशोरसिंह के समय में बेतिया-राज की बड़ी तरक्की रही। इन राजाओं के समय में दरबार में हिन्दी के अनेक कवि आश्रय पाये हुए थे। भारतेन्दु हरि-



श्रीमान् राजा विश्वेश्वर सिंह बहादुर, राजनगर (दरभंगा)



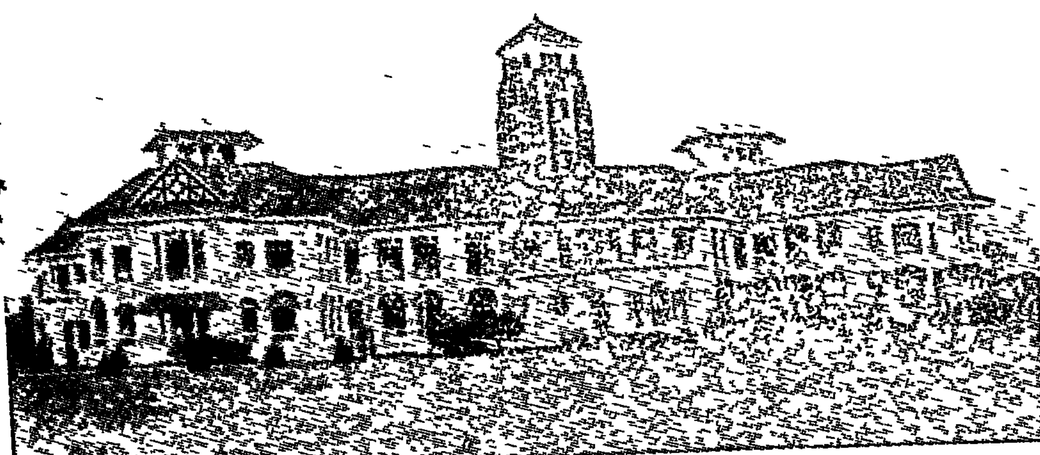
श्रीमान् राजकुमार जीवेश्वर सिंह साहब
(दरभंगा)



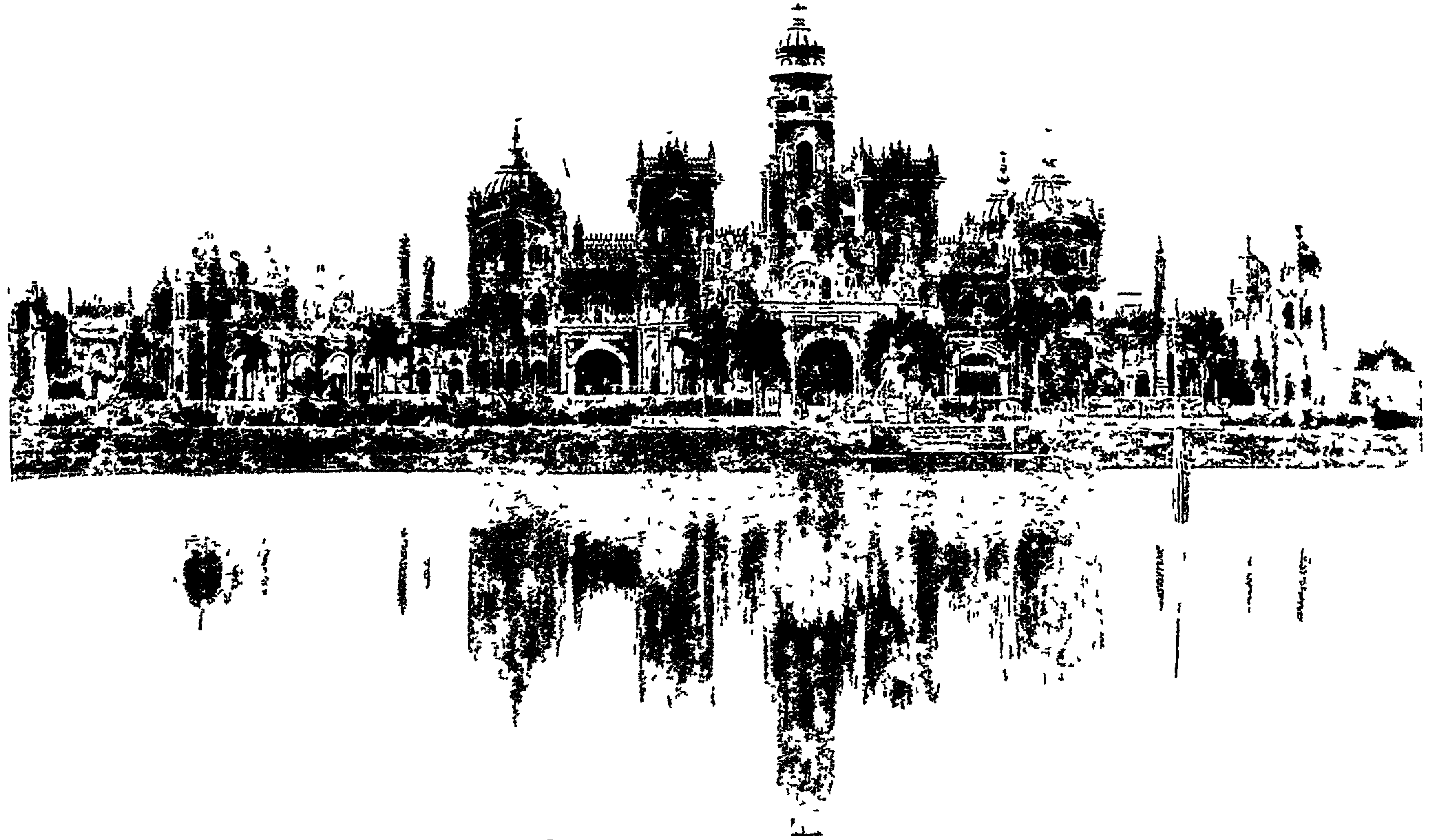
(पृष्ठ १२२)
लक्ष्मीश्वर-विलास-पैलेस —(आनन्द-बाग-महल), दरभंगा



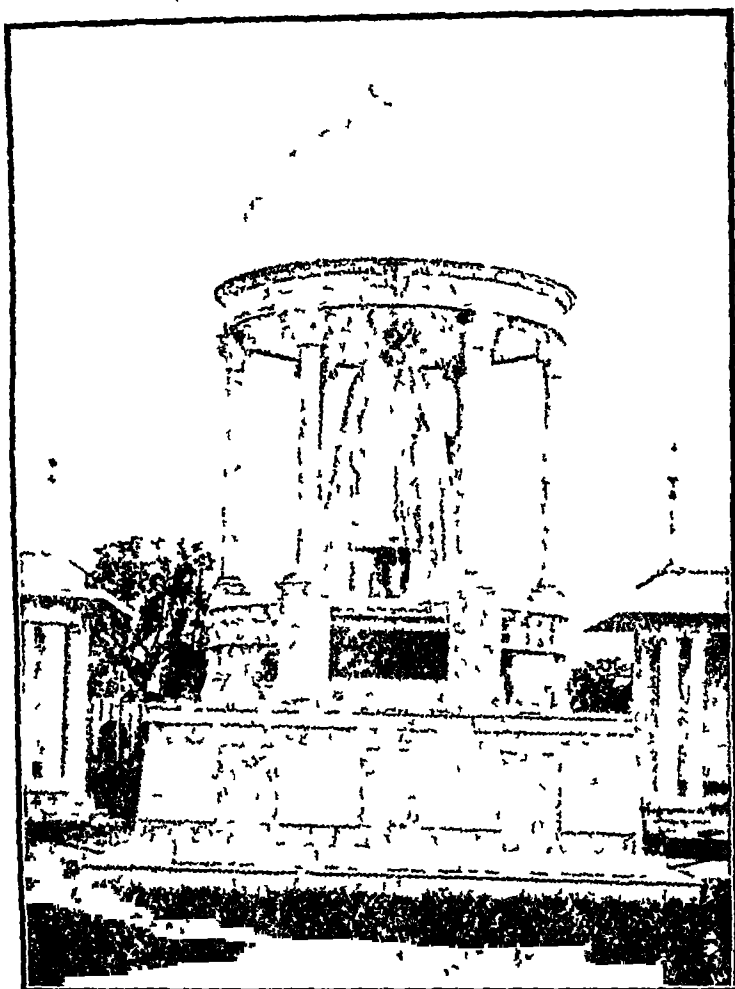
नरगौना-पैलेस (दरभगा), पहले यहाँ छत्रभवन-महल था, जो भूकम्प मे टूट गया (सन् १९३४ ई०)



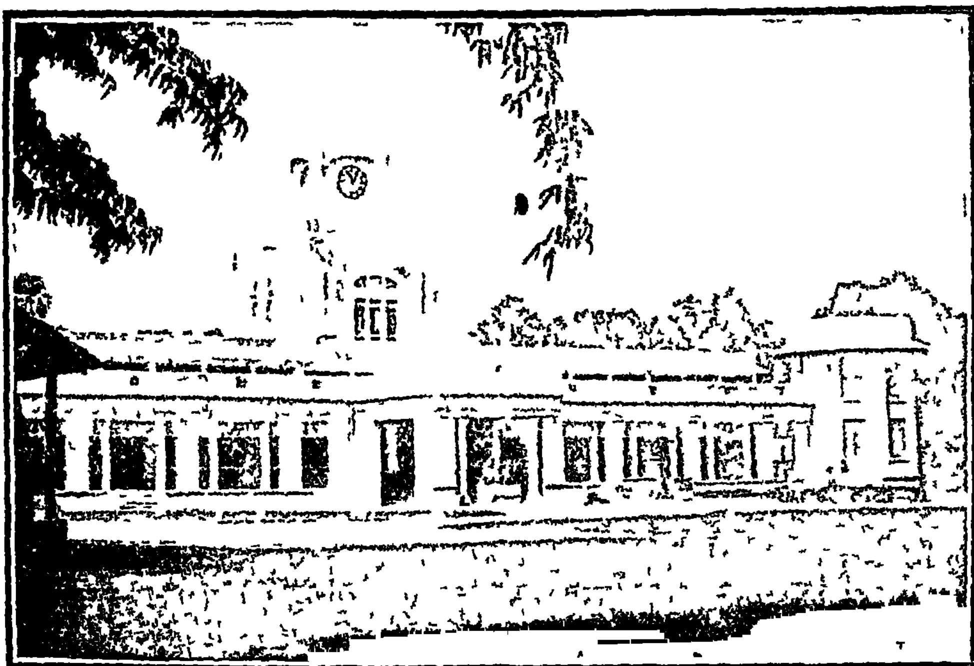
श्रीमान् मिथिलेश के अनुज राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर का निवासस्थान विश्वेश्वरनिवास-पैलेस, (दरभगा)



'राजनगर-पैलेस'—दरभंगा से २५ मील दूर—(पृष्ठ १२२)—उत्तर-भारत का सर्वश्रेष्ठ राजप्रासाद। स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह ने तीन करोड़ रुपये लगाकर इसे बनवाया था। १९३४ ई० के भूकम्प में यह नष्ट हो गया। इसके साथ नौलखा काली-मंदिर है, जिसमें नौ लाख रुपये लगे थे।



स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर की भव्य प्रस्तर-मूर्त्ति, जो दरभंगा-नगर के चौरंगी रोड के चौक में भूकम्प के बाद स्थापित हुई। यह मूर्त्ति इटली से बनकर आई थी।



दरभंगा - राज्य का हेड-आफिस (भूकम्प के बाद नया बना है)

अन्द्र और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द को इस दरबार से अनेक बार पर्याप्त आर्थिक सहायता मिली थी। अन्तिम महाराज सर हरीन्द्रकिशोरसिंह के० सी० आइ० ई० के निःसन्तान मरने पर उनकी छोटी महारानी बेतिया-राज की गद्दी की अधिकारिणी हुई जो अबतक हैं। राज्य-प्रबन्ध बिहार-सरकार द्वारा होता है।

शिवहर

यह रियासत मुजफ्फरपुर जिले में है। बेतिया-राजवंश की यह शाखा है। ब्रिटिश सरकार द्वारा यहाँ के अधिपति को भी राजा की उपाधि मिली। राजा रघुनन्दनसिंह, राजा शिवनन्दनसिंह और राजा शिवराजनन्दनसिंह इस वंश में प्रसिद्ध राजा हुए। इन दिनों राजा गिरीशनन्दनसिंह शिवहर की गद्दी पर हैं। इस वंश के कुमार रत्नेश्वरीनन्दनसिंह बरसों बिहार-उड़ीसा-लेजिस्लेटिव-कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

डुमराँव

यह रियासत शाहाबाद जिले में है। इसकी राजधानी 'डुमराँव' ई० आइ० आर० की मेन-लाइन में एक प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ का गढ़, बिहारीजी का मंदिर, बड़ा बाग और भोजपुर-कोठी दर्शनीय स्थान हैं।

डुमराँव-राज-वंश उज्जैन (मालवा) के परमारवंशी राजपूतों का है। कहा जाता है कि महाराज शान्तनु शाही पहले-पहल बिहार में आकर बसे। उन्होंने अपने पुत्र भोजसिंह को राजा बनाया। भोजसिंह के नाम पर ही 'भोजपुर' गाँव बसाया गया और रियासत के प्रधान हलके का नाम भी 'भोजपुर परगना' ही रक्खा गया। इसी लिये आजतक वहाँ के राजा भी 'भोजपुराधीश' कहलाते हैं। इतिहासकारों का मत है कि पालवंशी राजा मिहिरभोज ने पश्चिमी बिहार जीतकर भोजपुर-प्रान्त का नामकरण किया। जो हो, कालक्रम से भोजपुर-राज्य तीन शाखाओं में विभक्त हो गया—डुमराँव, जगदीशपुर और बक्सर। *

सिपाही-विद्रोह के नायक बाबू कुँवरसिंह जगदीशपुर-रियासत के ही अधिपति थे। उनके वंश में अब कोई नहीं है। उनके विशाल गढ़ के कुछ चिह्न जगदीशपुर में हैं। जगदीशपुर आज भी एक बहुत अच्छा कस्बा है। हाँ, उनके एक भाई के वंशज निकटस्थ दिलीपपुर में रहते हैं। सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक महाराज-

* Modern History of Indian Chiefs and Rajas—by Loknath Ghosh.

कुमार दुर्गाशंकरप्रसादसिंह दिलीपपुर के ही रईस हैं। इनके पितामह महाराज-कुमार नर्मदेश्वरप्रसादसिंह ('ईश' कवि) बड़े विद्वान् और व्रजभाषा के कवि थे। उनके बनाये दो अमूल्य ग्रंथ प्रकाशित हैं—धर्मप्रदर्शनी और शृङ्गारतिलक।

बक्सर-राजवंश में अब कोई नहीं है। सारी रियासत डुमरॉव-राज में ही मिल गई।

कहते हैं कि सन् १५७७ ई० में राजा दलपतिसिंह इस राजवंश के सबसे प्रसिद्ध राजा हुए और उन्हीं के समय से यह राजवंश विशेष प्रतिष्ठित और प्रभावशाली हुआ। किन्तु इतिहासकारों के अनुसार डुमरॉव के राजा नारायणमल्ल को तो मुगल-सम्राट् जहाँगीर ने पहले-पहल 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया था। उनके बाद बीरबलसिंह, रुद्रप्रतापसिंह, मान्धातासिंह, होरिलसिंह, छत्रधारीसिंह और विक्रमाजीतसिंह क्रमशः गद्दी पर बैठे। इन्हें भी जागीर और उपाधियाँ इस देश के मुसलमान शासको से मिलती रहीं।

भारतीय राजवंशो के इतिहास-लेखक श्री लोकनाथ घोष के अनुसार डुमराँव-नरेश महाराज जयप्रकाशसिंह ने बक्सर के युद्ध (१७६४) में अँगरेजों की सहायता की थी; अतः लार्ड हेस्टिंग्स ने उन्हें 'महाराजबहादुर' की उपाधि दी। उनके मरने पर उनके पौत्र महाराज जानकीप्रसादसिंह गद्दी पर बैठे, जिनके स्वर्गवासी होने पर महाराज महेश्वरबख्शसिंह डुमरॉव के महाराज हुए। इन्होने सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में अपने गोतिया जगदीशपुर के बाबू कुँवरसिंह के विरुद्ध अँगरेजों का साथ दिया और सन् १८७४—७५ के अकाल में भी पीडित जनता की बड़ी सहायता की। इस कारण इनके जीवन-काल में ही इनके पुत्र कुमार राधाप्रसादसिंह को सन् १८७५ ई० में 'राजा' की उपाधि मिल गई। फिर इनके स्वर्गारोहण के बाद राजा राधाप्रसादसिंह 'महाराजबहादुर' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे।

महाराज राधाप्रसादसिह के मरने पर उनकी सहधर्मिणी महारानी वेनीप्रसाद कुँवरि ने वीस वर्षों तक राज किया। महारानी ने जगदीशपुर-राजवंश के महाराज-कुमार श्रीनिवासप्रसादसिंह को गोद लिया। महाराज राधाप्रसादसिंह के निकटतम संबंधी महाराजकुमार श्री केशवप्रसादसिंह ने राज्य पर दावा किया। बहुत दिनो तक मुकदमा चलता रहा। आखिर महाराजकुमार केशवप्रसादसिंह की ही जीत हुई। ये महाराज-बहादुर की उपाधि धारण कर डुमरॉव की गद्दी पर बैठे। ये अत्यन्त बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ थे। बरसों बिहार-सरकार की कार्यकारिणी

समिति के सदस्य रह चुके थे। इनके सुपुत्र वर्त्तमान भोजपुराधीश महाराज रामरण-विजयप्रसादसिंह बहादुर नवयुवक होने पर भी बड़े योग्य और उत्साही राजा हैं। आप राजनीतिक कार्यों में काफी दिलचस्पी लेते हैं। आप इंडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली के भी माननीय सदस्य हैं।

सूर्यपुरा

शाहाबाद जिले में यह एक प्राचीन रियासत है। इसके अधीश्वर बराबर डुमरॉव-नरेश के दीवान रहते आये थे। इसलिये यहाँ के अधिपतियों की परम्परागत उपाधि थी 'दीवान' और यह राज भी 'दीवानजी की रियासत' कहलाता था। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह में सूर्यपुराधीश ने बड़ी वीरता के साथ उपद्रवियों को शांत करने का प्रयत्न किया था। दीवान श्रीरामकुमारसिंह के समय में रियासत की विशेष उन्नति हुई। इन्होंने सरकार को नहर निकालने के लिये अपनी रियासत की जमीन विना मूल्य दे दी थी। इनके पुत्र श्रीराजराजेश्वरीप्रसादसिंह को ही पहले-पहल 'राजा' की उपाधि मिली। उन्होंने शाहाबाद जिले के सदर शहर 'आरा' में पानी का नल बनवाने के लिये डेढ़ लाख रुपया दान दिया था। वे हिन्दी के नामी कवि और साहित्यसेवी थे। उनके ज्येष्ठ सुपुत्र वर्त्तमान सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण-प्रसादसिंह एम्० ए० हिन्दी के सुविख्यात गद्य-लेखक हैं। समस्त बिहार में एकमात्र आप ही कायस्थ-राजा हैं। आपके छोटे भाई बिहार-लेजिस्लेटिव-कौंसिल के सभापति, ऑनरेबुल कुमार राजीवरंजनप्रसादसिंह एम्० ए० राजनीतिक कामों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं।

टेकारी

यह रियासत गया जिले में है। इसकी राजधानी 'टेकारी' में राजभवन, राजमन्दिर और राजपुस्तकालय दर्शनीय हैं।

टेकारी-राज के संस्थापक धीरसिंह नामक एक भूमिहार-ब्राह्मण थे। उनके पुत्र सुन्दरसिंह ने बंगाल और बिहार के सूबेदार को सहसराम (शाहाबाद) और नरहन (दरभंगा) के युद्धों में सहायता दी थी। अतः उन्हें राजा की उपाधि मिली।

राजा सुन्दरसिंह ने निकटवर्त्ती आठ-नौ परगनों को अपने राज्य में मिला लिया। उनके कोई पुत्र नहीं था। अतः उनके मरने पर उनके भतीजा बुनियाद-सिंह टेकारी के राजा हुए। इन्होंने ब्रिटिश सरकार की संरक्षकता स्वीकार की। इसपर क्रुद्ध होकर नवाब मीरकासिम ने धोखे से इन्हें मरवा डाला। इनका बसाया हुआ 'बुनियादगंज' गॉव अब भी लोगो को इनकी याद दिलाता है।

बुनियादसिंह के मरने पर उनके पुत्र मित्राजीतसिंह राजा हुए। ये नाबालिग थे। अतः सितावराय रियासत के प्रबंधक नियुक्त हुए। उन्होंने राज की सारी जायदाद हड़प ली।

राजा मित्राजीतसिंह के बालिग होने पर, बिहार-डिवीजन के कलक्टर मिस्टर लॉ के प्रयत्न से, सारी रियासत पुन. उन्हें वापस मिल गई। उनकी योग्यता पर मुग्ध होकर मुगल-सरकार ने उन्हें महाराज की उपाधि दी और ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने भी उसे मान लिया।

महाराज मित्राजीतसिंह ने कई अवसरों पर ब्रिटिश सरकार की मदद की और सर्वसाधारण जनता की भलाई के कितने ही कार्य किये। सन् १८४१ ई० के दुर्भिक्ष के समय अन्न बाँटकर उन्होंने बहुत-से लोगों को भूखों मरने से बचाया।

राजा मित्राजीतसिंह के मरने पर उनके पुत्रों के बीच रियासत बाँटी गई। ज्येष्ठ कुमार हितनारायणसिंह को नौ आने और छोटे कुमार मोदनारायणसिंह को सात आने के हिस्से मिले।

कुमार हितनारायणसिंह टेकारी के महाराज हुए। वे बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी महारानी इन्द्रजीत कुँवरि अत्यन्त बुद्धिमती थीं और राज-काज स्वयं सँभाला करती थीं। महारानी ने अपने भतीजा श्रीरामकृष्णसिंह को गोद लिया और महाराज के मरने पर वही सन् १८६१ ई० में टेकारी की गद्दी पर बैठे। सन् १८७२ ई० में ब्रिटिश सरकार ने श्रीरामकृष्णसिंह को महाराज की उपाधि से विभूषित किया। ये भी अत्यन्त धर्मपरायण व्यक्ति थे। इन्होंने धार्मिक एवं सार्वजनिक कार्यों में कई लाख रुपये खर्च किये। सन् १८७५ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। तब इनकी विधवा महारानी राजरूपकुँवरि गद्दी पर बैठीं।

महाराज रामकृष्णसिंह के दौहित्र महाराजकुमार गोपाल-शरणसिंह वर्त्तमान टेकारी-नरेश हैं। आप भारत के शूर-वीर राजाओं में गिने जाते हैं। कहा जाता है कि मोटर चलाने और शिकार खेलने में आपके जोड़ का दूसरा व्यक्ति इस देश मे नहीं है।

अमावाँ

टेकारी के उपर्युक्त महाराजकुमार मोदनारायणसिंह के सात आने के हिस्से से पटना जिले में अमावाँ-राज कायम हुआ। राजा हरिहरप्रसाद-सिंह बहादुर अमावाँ के वर्त्तमान अधिपति हैं। आपके राजकुमार का विवाह

टेकारी-नरेश महाराज गोपालशरणसिंह बहादुर की एकमात्र कन्या से हुआ है। इस तरह अमावाँ और टेकारी दोनों रियासतें मिलकर अब फिर एक ही बन गई हैं।

हथुवा

यह रियासत सारन (छपरा) जिले में है। इसकी राजधानी हथुवा में राजप्रासाद, गोपाल-मन्दिर, केसर-बाग, शीश-महल आदि दर्शनीय हैं। हथुवा बी० एन्० डब्लू० रेलवे का एक स्टेशन है।

इस राज की स्थापना मुसलमानों की बिहार-विजय से भी पहले हुई थी। संस्थापक थे 'वीरसेन' नामक एक भूमिहार-ब्राह्मण, जिन्होंने 'होसैपुर' नामक गाँव में अपनी राजधानी बनाई। महाराज खेमकर्ण साही इस राजवंश के सत्तासीवाँ राजा थे। मुगल-दरबार से इन्हें 'महाराजबहादुर' की उपाधि मिली थी।

जब मुगल-सम्राट् शाहआलम ने ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को बंगाल-बिहार और उड़ीसा की दीवानी दी तब हथुवा-नरेश महाराज फतेह साही ने, सन् १७६९ ई० में, कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाया। कम्पनी ने हथुवा पर अधिकार जमा लिया और उक्त महाराज के चचेरे भाई कुमार बसंत साही मार डाले गये।

फिर भी इस राजवंश के लोगों ने लड़ते-झगड़ते अपना आधिपत्य कायम रक्खा और चिरस्थायी प्रबंध के समय कम्पनी ने भी महाराज छत्रधारी साही को हथुवा-राज का अधिपति माना। इसके पहले हथुवा-राज का स्वतंत्र अस्तित्व था और वह दिल्ली के सम्राट् के अधीन एक करद राज्य था।

सन् १८३७ ई० में हथुवा-नरेश को 'महाराज-बहादुर' की वंशपरम्परागत उपाधि दी गई। सन् १८५७ई० के सिपाही-विद्रोह के समय हथुवा-राज ने ब्रिटिश सरकार को काफी मदद पहुँचाई और उसके बदले में सरकार ने शाहाबाद जिले में जागीर दी।

महाराज छत्रधारी साही के समय में ही राजधानी होसैपुर से हथुवा चली आई। उनके मरने पर उनके पौत्र महाराज राजेन्द्रप्रताप साही बहादुर गद्दी पर बैठे। इनके पुत्र महाराज कृष्णप्रताप साही देव बहादुर अत्यन्त दयालु, परम शिवभक्त और प्रजावत्सल नरेश हुए। आपने सार्वजनिक कार्यों में लाखों रुपये खर्च किये। आप ही के सुपुत्र हैं वर्त्तमान महाराज श्रीगुरुमहादेवाश्रमप्रसाद साही देव बहादुर। आप भी बड़े धर्मप्राण नरेश हैं।

बनैली

यह रियासत पुर्नियाँ जिले में है। इसके अधीश्वर भी दरभंगा की तरह मैथिल ब्राह्मण हैं।

दरभंगा जिले के 'बैगनी-नवादा' गाँव के मैथिल ब्राह्मण पडित गदाधर झा की विद्वत्ता का परिचय पाकर दिल्ली के सम्राट् सुलतान गयासुद्दीन तुगलक ने इन्हें कुछ गाँव जागीर में दिये। इनकी दसवी पीढ़ी में चौधरी परमानन्द झा (हजारी-चौधरी) हुए, जिन्हें अजीमाबाद (वर्त्तमान पटना) के नवाब ने दरभंगा जिले का चौधरी और हजारी मनसब बनाया। किन्तु कई साल तक 'कर' न चुका सकने के कारण वे पुर्नियाँ जिले के 'मूसापुर' गाँव में जा बसे। वहाँ पुर्नियाँ और दिनाजपुर के कानूनगो भैरव मल्लिक ने कई तालुके उनके हाथ बन्दोबस्त किये। फिर पहसरा (जिला भागलपुर) की रानी इन्द्रावती के खैरखाह तहसीलदार रहकर उन्होंने 'तीरा' और 'असजा' परगने हासिल किये। इस तरह स्वयं आठ लाख की वार्षिक आमदनी की रियासत कायम कर उन्होने 'बनैली' नामक गाँव में अपनी राजधानी बनाई।

चौधरी परमानन्द झा के पुत्र चौधरी दुलारसिह ने नैपाल-युद्ध में ब्रिटिश सरकार की मदद कर 'राजा' की उपाधि प्राप्त की और साथ ही बनैली के आसपास सात कोस तक की जमीन भी। इनके दो पुत्र थे—राजा वेदानन्दसिंह और राजा रुद्रानन्दसिंह। राजा वेदानन्दसिह ने हिन्दी में 'वेदानन्दविनोद' नामक एक प्रामाणिक वैद्यक ग्रन्थ लिखा है। फिर इन दोनो के क्रमशः एक-एक पुत्र हुए—लीलानन्दसिह और श्रीनन्दसिंह।

राजा वेदानन्दसिंह के पुत्र राजा लीलानन्दसिंह बड़े दानी और उदार थे। अपनी दानशीलता के कारण वे 'कलिकर्ण' नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने बनैली के निकट चम्पानगर-देवढ़ी में अपनी राजधानी स्थापित की थी। उनके तीन पुत्र हुए—राजा पद्मानन्दसिह, राजा कलानन्दसिह और राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर बी० ए०।

राजा कीर्त्यानन्दसिंह बड़े प्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी और भारत-विख्यात शिकारी थे। हिन्दी के आप अनन्य भक्त थे। अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (भागलपुर) के आप ही स्वागताध्यक्ष थे और विहार-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन के भी सभापति हो चुके थे। देशोपकारक सार्व-



स्वर्गीय बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०
(पृष्ठ १२८)



श्रीमान् कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर
(पृष्ठ ९४; १२८, २१८; २८७)



जनिक कार्यों में आप काफी दिलचस्पी लेते थे। आपके छः पुत्र हैं—कुमार श्यामानन्दसिंह, कुमार विमलानन्दसिंह, कुमार तारानन्दसिंह, कुमार दुर्गानन्दसिंह, कुमार जयानन्दसिंह और कुमार आद्यानन्दसिंह। आप चम्पानगर-देवढ़ी के राजप्रासाद में रहा करते थे।

राजा पद्मानन्दसिंह के पुत्र कुमार चन्द्रानन्दसिंह और पुत्रवधू रानी चन्द्रावती के स्वर्गारोहण के बाद उनके दौहित्र श्रीमान् भीमनाथ मिश्र को राज्य का कुछ अंश मिला है।

राजा कलानन्दसिंह के दो पुत्र हैं—कुमार रमानन्दसिंह और कुमार कृष्णानन्दसिंह। कुमार रमानन्दसिंह गढ़-बनैली में रहते हैं और बिहार-लेजिस्लेटिव-कौंसिल (अपर-हाउस) के सदस्य हैं। कुमार कृष्णानन्दसिंह भागलपुर जिले के सुलतानगंज नामक स्थान में गंगा-तट पर कृष्णगढ़ नामक राजभवन बनवाकर रहते हैं। आप बड़े साहित्य-प्रेमी युवक हैं। हिन्दी में आपने प्रचुर द्रव्य व्यय कर 'गंगा' नाम की एक सचित्र मासिक पत्रिका और वैदिक-पुस्तक-माला का प्रकाशन बरसों किया था।

श्रीनगर

बनैली-राजवंश के पूर्वोक्त राजा रुद्रानन्दसिंह ने अपने पुत्र राजा श्रीनन्दसिंह के नाम पर बनैली से लगभग तीन मील दूर 'श्रीनगर' बसाया। राजा श्रीनन्दसिंह के तीन पुत्र हुए—कुमार नित्यानन्दसिंह, राजा कमलानन्दसिंह और कुमार कालिकानन्दसिंह। कुमार नित्यानन्दसिंह की शाखा आगे नहीं बढ़ी, क्योंकि वे विरक्त हो गये।

राजा कमलानन्दसिंह बड़े प्रसिद्ध साहित्यसेवी और उदार थे। इन्होंने हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये लाखों रुपये खर्च किये थे। इन्हें 'साहित्य-सरोज', 'अभिनव भोज', 'कलियुगी हरिश्चन्द्र', 'कलिकर्ण' आदि उपाधियाँ साहित्यिक संस्थाओं से मिली थी। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् कुमार गंगानन्दसिंह एम्० ए० भारत के नामी विद्वानो में हैं और कनिष्ठ कुमार अच्युतानन्दसिंह बी० ए० (ऑनर्स) हैं।

कुमार कालिकानन्दसिंह के पाँच सुपुत्र हैं—कुमार अभयानन्दसिंह, कुमार विजयानन्दसिंह, कुमार घनानन्दसिंह, कुमार दिव्यानन्दसिंह और कुमार प्रमदानन्दसिंह। कुमार अभयानन्दसिंह विलायत जाकर शिक्षा प्राप्त करनेवाले प्रथम मैथिल ब्राह्मण हैं।

श्रीनगर राजधानी के प्रासाद और पुस्तकालय उत्तरभारत की दर्शनीय वस्तुओ मे थे; पर सन् १६३२ ई० के भयंकर अग्निकांड में सब भस्म हो गये। उक्त पुस्तकालय में अमूल्य ग्रन्थो का विराट् संग्रह था।

देव

यह रियासत गया जिले में है। इसकी राजधानी 'देव' में भगवान् सूर्य का एक अत्यंत प्राचीन एवं भव्य मंदिर है, जहाॅ कार्तिक शुक्ल षष्ठी को बड़ा मेला लगा करता है। इस राज्य के संस्थापक राय भानसिह उदयपुर (मेवाड़) के एक राणा के छोटे भाई थे। कहा जाता है कि वे जगन्नाथपुरी जा रहे थे और रास्ते मे उमागढ़ (गया) की रानी के यहाॅ ठहरे। रानी की प्रजा ने विद्रोह मचाया था—रानी परेशान थी। भानसिह ने रानी का पक्ष ग्रहण किया और विद्रोहियों को मार भगाया। कुछ ही दिनों में राज-भर में शान्ति स्थापित हो गई। रानी बूढ़ी थी और उसके कोई सन्तान नहीं थी। अतः उसने भानसिंह को ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। 'उमागढ़' का दूसरा नाम 'उमगा' है और वह औरंगाबाद सबडिवीजन (गया) के पूर्वी भाग में है।

भानसिंह के वंशज उमागढ़ छोड़कर 'देव' नामक स्थान में चले आये और वहीं अपनी राजधानी बनाई।

देव के राजा क्षत्रपालसिंह के पुत्र फतहनारायणसिंह ने काशी के राजा चेतसिंह के विरुद्ध ईस्ट-इंडिया-कम्पनी की सहायता की थी। उन्होंने राजा होने पर इतिहासप्रसिद्ध पिंडारी-युद्ध में भी ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का पक्ष ग्रहण किया। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने उनकी वीरता पर मुग्ध होकर ग्यारह गाॅव पुरस्कार-स्वरूप दिये और उनका 'कर' सदा के लिये माफ कर दिया।

राजा फतहनारायणसिंह के पुत्र राजा घनश्यामसिंह ने सुरगुजा-राज्य (मध्यप्रदेश) के विद्रोही सिपाहियों के विरुद्ध ब्रिटिश सेना की मदद की और इनाम में छोटानागपुर का पलामू-राज पाया।

राजा घनश्यामसिह के पुत्र राजा मित्रभानसिह ने छोटानागपुर के कोल-युद्ध में ॲगरेजों की मदद की। ब्रिटिश सरकार ने प्रसन्न होकर इस रियासत को एक हजार रुपये की सालाना माफी दी।

राजा मित्रभानसिंह के बाद जयप्रकाशसिह बहादुर 'देव' के राजा हुए। उन्होने भी सिपाही-विद्रोह में ब्रिटिश सरकार की सहायता की। सरकार ने उन्हें जागीर दी और साथ ही महाराजा-बहादुर और के० सी० एस्० आइ० की उपाधि

भी। यह बात भी उल्लेखनीय है कि सिपाही-विद्रोह के एक इतिहास-प्रसिद्ध नेता जगदीशपुराधीश बाबू कुँवरसिंह की ससुराल इसी राजवंश में थी।

कुछ ही वर्ष हुए, इस रियासत के अधीश्वर राजा जगन्नाथप्रसादसिंह का स्वर्गवास हुआ है। आप बड़े हिन्दीप्रेमी और सहृदय पुरुष थे।

गिद्धौर

यह रियासत मुँगेर जिले के दक्षिणी भाग में है। गिद्धौर ई० आइ० आर० का एक स्टेशन है। राजधानी गिद्धौर में केवल राजप्रासाद देखने योग्य है।

इसकी स्थापना बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई थी। इस राजवंश के संस्थापक बुन्देलखंड के चन्द्रवंशी क्षत्रिय वीर विक्रमादित्य थे। इसी राजवंश के दसवें राजा पूरनमल ने वैद्यनाथधाम (देवघर, सन्तालपरगना) में शिवजी का मन्दिर बनवा दिया था। मुगल-सम्राट् शाहजहाँ ने इस राज्य के शासक को 'राजा' की उपाधि दी थी। बिहार में अँगरेजी राज्य स्थापित होने पर यहाँ के राजा गोपालसिंह से रियासत छीन ली गई। फिर राजा गोपालसिंह के पौत्र जयमंगल-सिंह ने सन्ताल-विद्रोह के समय अँगरेजों की बड़ी सहायता की, जिससे सन्तुष्ट होकर सरकार ने 'राजा' की उपाधि के साथ रियासत वापस कर दी। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह में भी राजा जयमंगलसिंह ने अँगरेजों की सहायता की, जिसके उपलक्ष्य में उन्हें 'महाराज-बहादुर' और 'के० सी० एस्० आइ०' की उपाधि तथा लाखिराज जागीर दी गई। उनके पुत्र महाराज शिवप्रसादसिंह थे। इनके पुत्र थे महाराज-बहादुर सर रावणेश्वरप्रसादसिंह के० सी० आइ० ई०, जो बड़े उदार, रूपवान्, धर्मप्राण और साहित्यानुरागी थे। आपके पुत्र महाराज चन्द्रमौलीश्वर-प्रसादसिंह थे, जिनके पुत्र महाराज चन्द्रचूडप्रसादसिंह का विवाह टिहरी-गढ़वाल (देशी राज्य) की राजकुमारी से हुआ था। युवावस्था में ही इनका स्वर्गवास हो गया। इनके बालक राजकुमार इस समय गिद्धौर के महाराज हैं।

नरहन

यह रियासत दरभंगा जिले में है। इसके अधिपति भूमिहार-ब्राह्मण हैं। सप्तरी (नैपाल) के सुप्रसिद्ध दोनवार (द्रोणवार) राजा पुरादित्य के वंशज राय गंगाराय ने दरभंगा जिले के 'सरैसा'-परगने को जीतकर 'गंगसरा' नामक गाँव में राजधानी बनाई। पीछे सरैसा का राज उनके वंशजों के बीच बँट जाने से कई छोटी-छोटी रियासतें कायम हुईं, जिनमें नरहन प्रमुख था। सन् १७५० ई० में जब अलीवर्दी

खॉं ने मिथिला के राजा नरेन्द्रसिंह पर चढ़ाई की तब नरहन के स्वामी श्रीकेशव-सिंह ने मिथिलेश को पूरी सहायता दी थी।

नरहन-राज्याधीश श्रीपरमेश्वरीनारायणसिंह बड़े ही रसिक, साहित्य प्रेमी और उदार थे। मिथिला के सुप्रसिद्ध पहलवान शंकरदत्त झा, सुप्रसिद्ध मैथिल कवि चन्दा झा और महामहोपाध्याय पंडित चित्रधर मिश्र पहले उन्ही के दरबार में रहते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र श्रीब्रह्मदेवनारायणसिंह नरहन के अधिपति हुए। ये अल्पायु हुए और इनके बाद इनकी पत्नी और माता क्रमशः गद्दी पर बैठीं।

नरहन की राजमाता को रानी की उपाधि मिली थी। रानी साहबा ने कई महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कार्यों में लाखों रुपये खर्च किये थे। उनकी मृत्यु के बाद नरहन-राज नरहन के राजवंशजों और काशी-नरेश के बीच बॉंटा गया। इस प्रकार आधा नरहन-राज अब काशी-नरेश के अधिकार में है और आधा नरहन-राजवंशजों के अधीन है।

नरहन-राज के वर्त्तमान वंशधरों में श्रीकामेश्वरनारायणसिंह प्रधान हैं। आप बड़े ही उदाराशय, विद्वान्, साहित्यानुरागी और राजनीतिक कार्यों में भी दिलचस्पी लेनेवाले व्यक्ति हैं। आप दरभंगा-जिला-जमींदार-सभा के सभापति हैं और बरसों बिहार-उड़ीसा-लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

सुरसंड

यह रियासत मुजफ्फरपुर जिले में है। यहाँ के स्वामी भूमिहार-ब्राह्मण हैं। मिथिला-नरेश राजा प्रतापसिंह के समय में इस राज्य की स्थापना हुई। इन दिनों इस राज्य के अधिपति हैं बिहार के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्रीचन्द्रेश्वरप्रसादनारायण-सिंह सी० आइ० ई०, एम्० एल्० ए०। आप बिहार-एसेम्बली में विरोधी दल के नेता हैं।

बरारी

दरभंगा-जिला-निवासी पंडित नारायण ठाकुर तांत्रिक को भागलपुर जिले मे जागीर मिली, उसीसे बरारी की रियासत कायम हुई। नारायण ठाकुर के वंशजों की तीन शाखाऍं हैं—दत्त, मोहन और नाथ। मोहन-शाखा की काफी उन्नति हुई। मोहन-परिवार के श्रीसूर्यमोहन ठाकुर एम्० एल्० ए० और श्रीनरेशमोहन ठाकुर विशेष प्रसिद्ध हैं।



अन्तिम बेतिया-नरेश
स्वर्गीय महाराज सर हरीन्द्रकिशोरसिंह
के सी आइ ई.



श्री बा० कामेश्वरनारायण सिंह (नरहन इस्टेट)

मुँगेर की रियासतें

मुँगेर नगर में भी कई रियासतें हैं। मुँगेर के राजा सर रघुनन्दनप्रसाद-सिंह और ऑनरेबुल राजा देवकीनन्दनप्रसादसिंह बड़े ही धार्मिक पुरुष हैं। रायबहादुर दिलीपनारायणसिंह, सेठ केदारनाथ गोयनका और श्रीराजनीतिप्रसाद-सिंह की रियासतें भी प्रसिद्ध हैं।

गंधवरियों की रियासतें

गंधवरिया लोग अपनेको पम्मार राजपूत और मिथिला-नरेश राजा नान्यदेवसिंह के वंशज मानते हैं। प्राचीन मिथिलाधिपति महाराज शिवसिंह के 'ओनीयवार-वंश' के नष्ट होने पर मिथिला में अराजकता फैली और पम्मारो ने दरभंगा जिले के 'गंधवार' और 'भौर' नामक स्थानों में अपने राज्य स्थापित किये। गंधवार में रहनेवाले पम्मार 'गंधवरिया' और भौर में रहनेवाले 'भौर-शूरिया' कहलाने लगे। वर्त्तमान मिथिला-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को भी पम्मारों से लड़ना पड़ा था। इस घटना के सम्बन्ध में 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत' में तीन दोहे मिलते हैं—

"रहै भौर छत्री प्रबल, बसत भौर निज ठौर।
सूर समर-विजयी बड़े, सब छत्री-सिरमौर॥
अच्युत मेघ गोपाल मिलि, मार्‌यो छत्रिय-राज।
निज सुत लै भागी तबै, रानी नैहर राज॥
बहुत दिवस के बाद सो, सजि आये पम्मार।
जुद्ध कियो मिथिलेस सो, सेना अपरम्पार॥"

कहा जाता है कि इस युद्ध में मिथिलेश महेश ठाकुर बंगाल-बिहार के मुगल-सूबेदार महाराज मानसिंह की सहायता से विजयी हुए थे।

गंधवरियो की तीन रियासतें मुख्य हैं और तीनों ही भागलपुर जिले में हैं—सोनबरसा, बरुआरी और पँचगछिया। सोनबरसा के अधिपति महाराज हरिवल्लभ-नारायणसिंह के स्वर्गारोहण के बाद उनके दौहित्र रावबहादुर रुद्रप्रतापनारायणसिंह सोनबरसा के अधिपति हुए, जो अबतक हैं। बरुआरी के कुमार भूपेन्द्रनारायणसिंह एम्० बी० ई० सुप्रसिद्ध बहादुर शिकारी हैं। पँचगछिया के स्वर्गीय रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह भारत के संगीतज्ञो के सिरमौर समझे जाते थे। आपके सुपुत्र श्री अमरेन्द्रनारायणसिंह 'हीराजी' एम्० ए० अब रियासत के स्वामी हैं।

गंधवरियों की छोटी-छोटी रियासतों) में दरभंगा जिले के भगवानपुर का एक विशिष्ट स्थान है।

पुर्निया-राज

पुर्निया नगर में राजा पृथ्वीचन्द लाल की रियासत मशहूर है। नगर की दूसरी रियासत है 'असत राजा' की, जो मुसलमान हैं।

भगवानपुर

यह रियासत शाहाबाद जिले के चैनपुर परगने में है। यह पुरानी रियासत है, पर अब खंड-खंड हो गई है। यहाँ के राजपूत अपना आदि-निवासस्थान तक्षशिला (पंजाब) और इतिहास-प्रसिद्ध वीर 'पोरस' को अपना पूर्वज बतलाते हैं। किन्तु भारतीय राजाओं के आधुनिक इतिहास के लेखक श्रीलोकनाथ घोष * के मतानुसार इस राज्य के संस्थापक लक्ष्मीमल्ल चन्द्रवंशी आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले दिल्ली के निकट 'सकरी' नामक स्थान से आकर शाहाबाद जिले के भगवानपुर नामक गाँव में बस गये। अरिमर्दनशाह इस वश के ग्यारहवें राजा थे। इन्होंने ब्रिटिश-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह मचाया और 'कर' देना बंद कर दिया। अतः सारा राज्य जब्त कर लिया गया।

महाराज अरिमर्दनशाह के पौत्र राजा लाल सूरभान ने सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में ब्रिटिश सरकार की मदद की थी। इसलिये उन्हें 'राजा' की उपाधि और जागीर मिली थी। इन दिनों कुमार चन्द्रसेनशरणसिंह इस रियासत के अधिकारी हैं।

कुछ अन्य रियासतें

पटना-नगर में इतिहास-प्रसिद्ध राजा सिताबराय के वंशधरों के हाथ में छोटी-मोटी रियासतें हैं। पटना के नवाबों की मुसलमानी रियासतें भी काफी मशहूर हैं।

पटना जिले की बदलपुरा-रियासत के अधीश्वर स्वर्गीय रायबहादुर रामानुग्रहनारायणसिंह ही प्रथम बिहारी थे जिन्हें कलक्टर का पद मिला था। इनके विषय में पूर्वोक्त इतिहासकार श्रीलोकनाथ घोष ने लिखा है—"ये अपने यहाँ एक अँगरेजी स्कूल खोले हुए हैं जिसमें पढ़नेवाले सभी छात्रों को भोजन मुफ्त दिया

* The Modern History of Indian Chiefs & Rajas—By Loknath Ghosh.

जाता है।" इनके पुत्र राय कृष्णमुरारीप्रसादसिंह इन दिनों इस रियासत के स्वामी हैं।

पटना जिले में भरतपुरा और मकसूदपुर रियासतें भी हैं। भरतपुरा के स्वामी श्रीरजनधारीसिंह बिहार-उड़ीसा-लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसिडेंट रह चुके हैं। मकसूदपुर के नवाब साहब खाँ-बहादुर सैयद महम्मद इस्माइल बिहार-लेजिस्लेटिव कौंसिल के विरोधी-दल के नेता हैं।

शाहाबाद जिले के सदर शहर 'आरा' में श्रीनिर्मलकुमार जैन और राय-बहादुर हरिहरप्रसाद सिंह (हरीजी) की रियासते उल्लेखनीय हैं। हरीजी के पिता स्वर्गीय दीवान जयप्रकाशलाल डुमरॉव-राज के दीवान रह चुके थे।

मुजफ्फरपुर नगर में ऑनरेबुल रायबहादुर श्रीनारायण महथा, रायबहादुर कृष्णदेवनारायण महथा, श्रीउमाशंकरप्रसाद बी. एस्-सी. और शाह-परिवार की रियासते प्रसिद्ध हैं। मुजफ्फरपुर जिले की 'बाघी' रियासत के अधिपति रायबहादुर श्यामनन्दनसहाय बिहार-लेजिस्लेटिव कौंसिल के बड़े प्रभावशाली सदस्य हैं।

दरभंगा-नगर में रायसाहब और खाँसाहब की रियासतें मशहूर हैं। दरभंगा जिले में मधुबनी, शुभंकरपुर, राघवपुर और बरहगोड़िया नामक रियासतो के अधीश्वर दरभंगा-नरेश मिथिलेश के गोतिया—दायाद हैं—इनकी रियासतें भी उल्लेखनीय हैं। इनके सिवा सिंहवाड़, शुम्भाड्योढ़ी, केवटा और खरारी की रियासतें भी मशहूर हैं।

सारन जिले में प्रमुख हथुवा-राज के सिवा हथुवा-राजवंश के महाराजकुमार रामेश्वरप्रताप साही और मॉझा के कुमार माधवेश्वरेन्द्र साही की रियासतें भी प्रसिद्ध हैं। इसी जिले की चैनपुर-रियासत के वर्त्तमान अधीश्वर हैं गोरखपुर जिले के तमकुही-नरेश।

चम्पारन जिले में बेतिया-राज के अतिरिक्त रामनगर के रामराजा, डुमरिया के श्रीशत्रुमर्दन साही बी. ए. और शिकारपुर के दीवान साहब तथा मधुबन के बाबू साहब की रियासतें उल्लेखनीय हैं। रामनगराधीश श्रीमान् रामराजा ने, देशपूज्य राजेन्द्र बाबू के द्वारा, महात्मा गान्धी को, अपनी रियासत का 'पोखरॉंवॉं' गॉव समर्पित कर दिया है। इस गॉव की सालाना आमदनी बीस हजार रुपये की है। इसी गॉव में महात्माजी ने चम्पारन के सत्याग्रह का श्रीगणेश किया था।

पुर्निया जिले में पूर्वोक्त राज्यों के सिवा 'खगड़ा' नाम की एक मुसलमानी रियासत है। पटना और गया जिले में भी कई मुसलमानी रियासतें हैं।

छोटानागपुर की रियासतें

बिहार के एक विभाग का नाम छोटानागपुर है। अँगरेजी राज्य के पहले छोटानागपुर बराबर स्वतंत्र रहा। मुसलमानों के समय में इसपर कई बार चढ़ाइयाँ हुई, पर घने जंगलों और बीहड़ पहाड़ों के कारण आक्रमणकारी पूर्ण रूप से विजयी न हो सके। हाँ, यहाँ के कुछ राजा मुगल-सम्राटों को 'कर' देते रहे।

मुगल-सम्राटो और बिहार के नायब नवाबों ने कई व्यक्तियों को छोटानागपुर में जागीरें भी दी थीं। छोटानागपुर कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जिनका हाल आगे दिया गया है। इन राज्यों के प्रधान नायक छोटानागपुर के नागवंशीय महाराज थे, जिनकी राजधानी 'रातू' (जिला राँची) में थी। अधिकांश राजा इन्हें ही 'कर' देते थे, पर कई राज्य पूर्ण स्वतंत्र भी थे। यह विभाग धीरे-धीरे, आज से सौ वर्ष पूर्व ही, अँगरेजों के हाथ में आ गया। इन दिनो यह पाँच जिलों में बँटा हुआ है—राँची, पलामू, हजारीबाग, सिंहभूमि और मानभूमि। हर जिले मे एक डिपुटी-कमिश्नर और राँची में कमिश्नर साहब रहते हैं।

पलामू

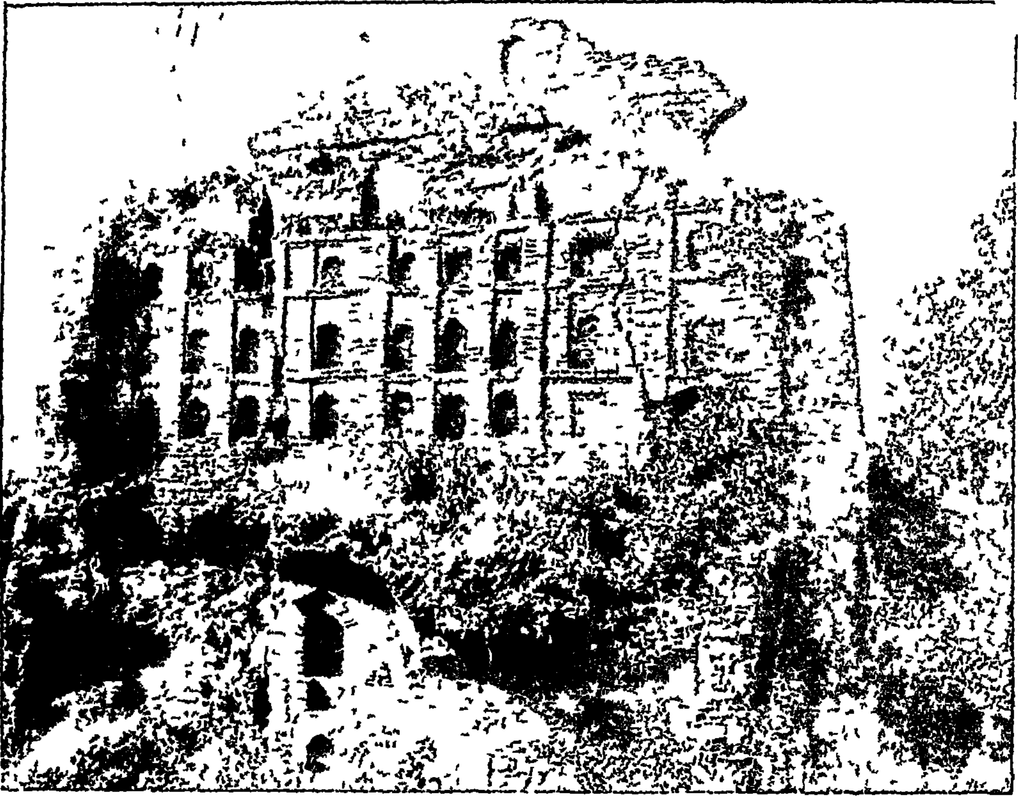
आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले खरवारों और उराँवों के साथ रणकौशल राजपूत भी दक्षिण-पूर्व पलामू में राज करते थे। इनकी राजधानी औरंगा नदी के किनारे पलामूगढ़ के नाम से विख्यात थी। इस वश के राजा मान-सिंह की अनुपस्थिति में उसके परिवार के लोगों को मारकर उसका सेनापति भागवत राय स्वतंत्र राजा हो गया।

भागवत राय चेरो-राजवंश का था। इसके वंश में राजा मेदिनीराय बड़ा ही धर्मात्मा और प्रतापी हुआ। इसके बाद राजा प्रतापराय, रणजीतराय, जयकृष्ण-राय और गोपालराय हुए। चूमनराय इस वंश का अंतिम राजा हुआ। इसके समय में अधीनस्थ जागीरदार स्वतंत्र हो गये। ब्रिटिश सरकार ने इसको पेंशन देकर राज्य को भारत-साम्राज्य में मिला लिया। पलामू जिले की नावा और विश्रामपुर रियासतों के स्वामी चेरो-वंश के ही हैं।

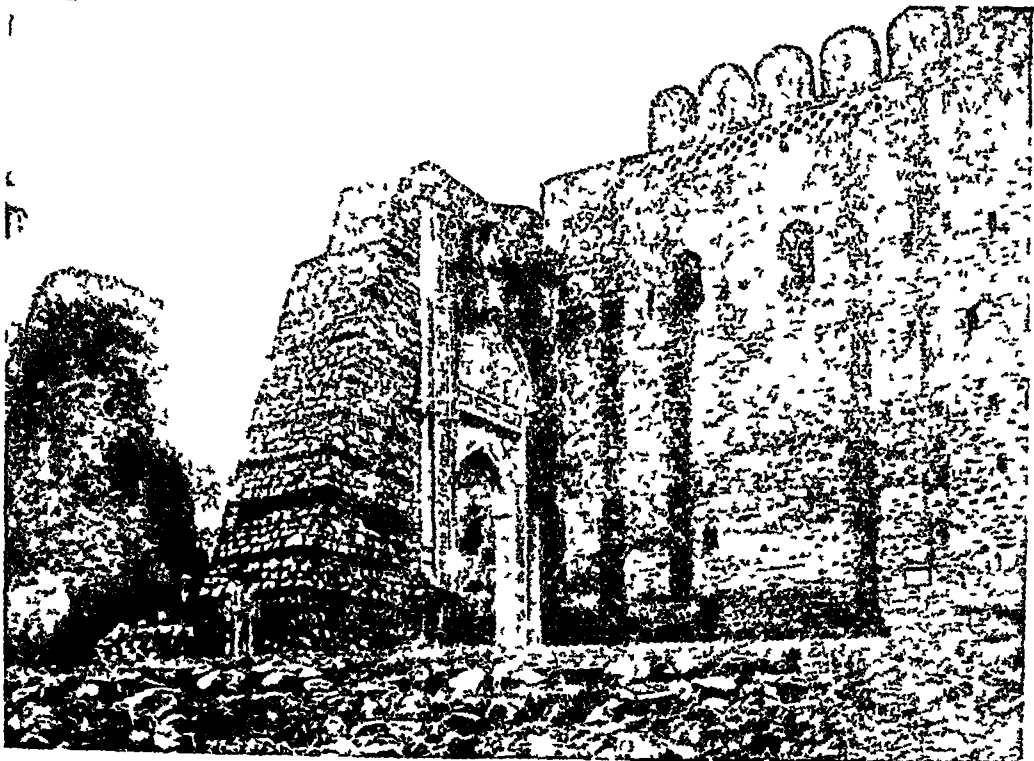
चैनपुर

पलामू जिले के चैनपुर-राजघराने के पूर्वज दिल्ली के निकट के रहनेवाले थे। पूरनमल पूर्वोक्त राजा भागवतराय के दीवान थे। इनके वंश के लोग बराबर इस पद पर रहे। चेरोवंश के नष्ट हो जाने पर ये चैनपुर में आ बसे थे।

दीवान पूरनमल के एक वंशधर 'ठकुराई रघुवरदयालसिंह ने कई बार



पलामू का नवीन दुर्ग, जिसे राजा मेदिनी राय के पुत्र राजा प्रताप राय ने बनवाया था, जो बिहार के मुसलमान सूबेदार से सन् १६६० ई० मे पराजित होकर जंगल मे भाग गया था।



पलामू के नवीन दुर्ग का 'नागपुरी दरवाजा', जिसकी रचना में मुगल-शिल्प-कला की जहाँगीरी पद्धति का पुट है।



पलामू के प्राचीन दुर्ग मे दाऊद खाँ की मसजिद। दाऊद खाँ ने मेदिनी राय के पुत्र प्रतापराय को पराजित किया था।
(पृष्ठ १३६)

पलामू के प्राचीन दुर्ग का 'सिह-दरवाजा', जो डालटेनगज से २० मील दक्षिण-पूर्व है। इसे पलामू के सबसे बडा चेरो-राजा मेदिनी राय ने १७ वी शताब्दी मे बनवाया था।

अँगरेज सरकार को विद्रोहियों के दबाने में मदद दी थी। इसी राजवंश के राजा भागवतदयालसिंह बड़े ही चतुर और ब्रिटिश सरकार के मित्र थे। इन्हींके पुत्र राजा ब्रह्मदेवनारायणसिंह 'रंका'-राज के अधीश्वर हैं। वे बिहार-सरकार की कौंसिल के सदस्य रह चुके हैं।

सोनपुरा

यह राज्य पलामू जिले में है। इस राजवंश के पूर्वपुरुष गोरखपुर जिले के निवासी थे। इस राजवश के किन्नर साही देव ने 'जपला' और 'लौजा' परगनों को दिल्ली के बादशाह से जागीर के रूप में पाकर 'सोनपुरा' में राजधानी बनाई। मुगल-सम्राट् मुहम्मद शाह ने ये दोनों परगने, किसी कारण, बिहार के नायब नवाब हिदायतअली खाँ के पुत्र गुलामहुसेन खाँ को दे दिये। सोनपुरा के राजा को नवाब गुलामहुसेन से लड़ना पड़ा। बड़ी मारकाट हुई। अंत में नवाब जितना दखल कर सका उतना ही लेकर, 'हुसेनाबाद' नामक कस्बा बसाकर, राज करने लगा। सोनपुरा के वर्त्तमान अधिपति राजा विश्वम्भरनाथ साही देव हैं। 'ऊँटारी' के भैयासाहब भी इसी वंश के हैं।

छोटानागपुर

सैकड़ो साल पहले नागवशी राजा मुकुटमणि ने छोटानागपुर में राज्य जमाया। इनकी राजधानी पूर्वोक्त 'रातू' में थी। इस वंश के ४२ राजा स्वतंत्र रहे। सन् १५६५ ई० में सम्राट् अकबर के सेनापति ने छोटानागपुर पर चढ़ाई की। उस समय राजा माधवसिंह 'रातू' का अधीश्वर था। पहले तो वह बहुत लड़ा, पर अंत में कुछ हीरे और धन देकर सुलह कर ली।

राजा दुर्जनशाल के समय में भी, सन् १६१६ ई० में, बिहार के मुगल सूबेदार इब्राहिम खाँ ने इस राज्य पर चढ़ाई की। राजा दुर्जनशाल हीरे और हाथी लेकर उससे मिलने चला, पर वह नजराने के साथ पकड़कर दिल्ली ले जाया गया। बादशाह ने खुश होकर उसे छोड़ दिया।

राजा धुवनाथ साही देव के समय में छोटानागपुर में उपद्रव मचा। अधीनस्थ सरदार स्वतंत्र हो गये। वर्त्तमान हजारीबाग जिले के रामगढ़ के राजा ने लड़ाई ठान दी। इसलिये राजा ध्रुवनाथ को अँगरेजों की मदद लेनी पड़ी। पीछे राजा ध्रुवनाथ ने अँगरेजों की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने राज्य का अँगरेजो द्वारा प्रबंध होना भी स्वीकार किया। बाद को ब्रिटिश सरकार ने छोटा-

नागपुर का राज्य-प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। राजा को जीवन-निर्वाह के लिये जमींदारी दे दी गई।

महाराजाधिराज प्रतापनाथ साही देव इन दिनो छोटानागपुर के अधीश्वर हैं। उनके सुपुत्र महाराजकुमार राजकिशोरनाथ साही देव बिहार-लेजिस्लेटिव-एसेम्बली के सदस्य हैं।

बालकोट (जिला राँची) के राजा लाल नवलकिशोरनाथ साही देव भी छोटानागपुर-राजवंश के हैं। उनके सुपुत्र लाल कन्दर्पनाथ साही देव भी बिहार-लेजिस्लेटिव-एसेम्बली के सदस्य हैं।

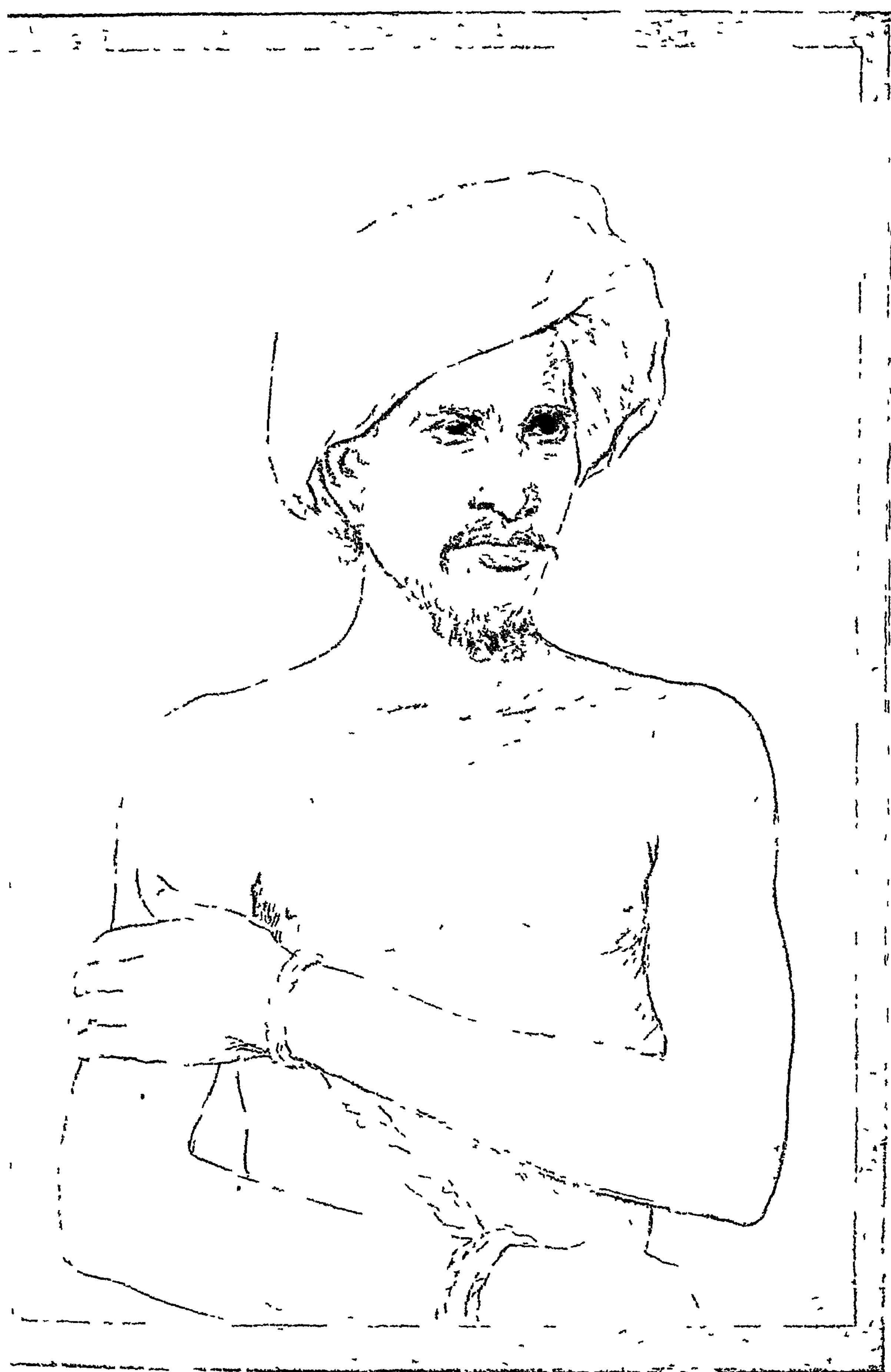
धनवार

इस राजवश के पूर्वपुरुष 'हंसराज' दक्षिण भारत से आये थे। इस वश के लोग पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत तक हजारीबाग जिले के 'धनवार' नामक स्थान में ही रहते थे। इसके बाद वे 'खड़गडीहा' (हजारीबाग) में आ बसे। सत्रहवीं शताब्दी के बाद इस वंश के राजा मोदनारायण देव को 'नरहट' परगने के जमीदार अकबर अली खाँ ने हराकर गद्दी छीन ली। कुछ काल तक रामगढ़ में रहकर राजा मर गया। इसका पोता गिरिवरनारायण देव हुआ। इसने अँगरेजो की मदद से अकबर अली के वंशजों को हराकर खड़गडीहा की गद्दी ले ली। पीछे इस राज्य का प्रबंध ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। आज तक यह रियासत धनवार-राजवंश वालो के हाथ में जागीर के तौर पर है।

रामगढ़

यह रियासत भी हजारीबाग जिले में है। वर्त्तमान पद्मा-राजवंश के पूर्वज रामगढ़ में रहते थे, इसलिये इस रियासत को पद्मा-राज्य और रामगढ़-राज्य भी कहते हैं। इस वंश के पूर्वपुरुप सिहदेव ने अपने भाई वाग्देव के साथ आकर छोटानागपुर के महाराज के यहाँ नौकरी की थी। वाग्देव बडा चतुर था। उसने महाराज से रामगढ़ परगना ले लिया। फिर महाराज से लड-झगड़ कर अपने वड़े भाई के मेल से अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। इस वश के लोग क्रमशः हजारीवाग जिले के सिसिया, ऊर्दा और वादाम (कर्णपुर) नामक स्थान में कुछ समय तक रहे। सत्रहवीं शती मे वे रामगढ़ चले आये।

रामगढ़ का पहला राजा दलेलसिह था। इस राज्य पर मुसलमानो ने तीन बार चढ़ाइयाँ की थीं। अन्तिम चढ़ाई विहार के नवाब हिदायत अली खाँ की हुई।



बिरसा भगवान

उसने रामगढ़ पर अधिकार कर लिया; परन्तु बिहार पर मराठों की चढ़ाई का हाल सुनकर पटना लौट गया। उसके जाते ही राजा मुकुन्दसिंह ने पुनः रामगढ़ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।

राजा मुकुन्दसिंह के भाई राजा तेजसिंह ने अँगरेजों की सहायता से अपने भाई मुकुन्दसिंह को मार डाला, और स्वयं राजा बन बैठा। अँगरेजों ने राज्यप्रबंध अपने हाथ में ले लिया। तेजसिंह ने 'पद्मा' (हजारीबाग) में अपनी राजधानी बनाई।

इन दिनों राजा कामाख्यानारायणसिंह इस राज्य के अधिपति हैं। आप नवयुवक हैं और यूरोप-भ्रमण भी कर चुके हैं। नैपाल की एक राजकुमारी से आपका विवाह हुआ है। आप ही के राज्य की भूमि में सन् १९४० की ५३ वीं कांग्रेस हुई थी।

कुण्डे

यह रियासत हजारीबाग जिले में है। सम्राट् औरंगजेब ने अपने नौकर रामसिंह को सन् १६६९ ई० में यह रियासत जागीर के तौर पर दी थी। रामसिंह घटवाल राजपूत था। उसके वंशज आज भी जागीरदार और ब्रिटिश सरकार के भक्त हैं।

काशीपुर

यह राज्य पुराने जमाने से ही मानभूमि जिले में कायम है। इसके राजा अपनेको गोवंशी कहते हैं। इस राजवंश के आदिपुरुष 'राजा जाटा' थे। उन्होंने पंचकोटि नामक एक किला बनवाया।

इस राजवंश में आज तक ९७ राजा हो गये हैं। यहाँ के राजा 'महाराजाधिराज' भी कहलाते थे। 'पंचकोटि' को पंचेतगढ़ भी कहते हैं। 'पंचकोटि' के अधीश्वर राजा कल्याणीप्रसादसिंह देव इन दिनो काशीपुर में रहते हैं और ब्रिटिश सरकार के अधीन हैं। उनके छोटे भाई कुमार अजीतप्रसाद सिंह देव बिहार-सरकार के स्थानीय स्वायत्त शासन के मंत्री रह चुके हैं।

पोरहाट

यह रियासत मानभूमि जिले में है। पोरहाट-राजवंश की राजधानी चक्रधरपुर में थी। इस वंश के आदिपुरुष राठौर-राजपूत और जयपुराधीश महाराज मानसिंह के अंगरक्षक थे। इस वंश में तेरह राजा हो गये हैं, जिनमें राजा जगन्नाथसिंह

बहुत प्रसिद्ध थे। उन्होने अँगरेजो की मदद से सिंहभूमि के आदि-निवासियो को अपने अधीन किया था।

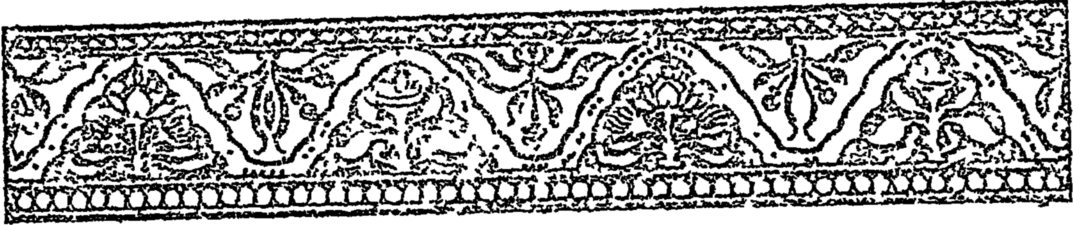
यहाँ के राजा अर्जुनसिंह ने सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में बलवाइयो का साथ दिया था। इसलिये यह राज्य जब्त हो गया और इसका कुछ भाग अर्जुन सिंह के पुत्र राजा नृपतिसिंह को दिया गया। राजा नृपतिसिंह के कोई पुत्र नही था, इसलिये उनके मरने पर उनका राज अँगरेजो के हाथ आ गया।

खरसावाँ और सराइकला

खरसावाँ के ठाकुर और सराइकला के राजा भी पोरहाट-राजवंश के ही हैं। ये दोनो राज्य ब्रिटिश सरकार के मित्र हैं और देशी रियासतो में गिने जाते हैं। खरसावाँ के वर्त्तमान अधीश्वर हैं राजा श्रीरामचन्द्रसिंह देव और सराइकला के हैं राजा आदित्यप्रतापसिंह देव।

सन् १८१३ ई० में सराइकला के कुँवर अभिरामसिंह ने ब्रिटिश सरकार को नागपुर के भोसले के विरुद्ध मदद दी थी। इस कारण उन्हें 'राजा बहादुर' को खानदानी उपाधि और जागीर मिली। सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह में भी उन्होने सरकार का साथ दिया था। इसलिये उन्हें पोरहाट-राज्य का कुछ अंश भी मिला।





बिहार की विभूतियाँ

श्रीतारकेश्वरप्रसाद वर्मा, अध्यापक, राजेन्द्र कालेजिएट स्कूल, छपरा

किसी देश की विभूति वहाँ की महान् आत्मा ही होती है। केवल प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न होने के कारण ही कोई देश विभूतिशाली नही कहा जा सकता। अजेय दुर्ग और गगनचुम्बी प्रासाद किसी देश की विभूति नहीं हो सकते। आदर्श महापुरुष और यशस्वी विद्वान् ही देश की विभूति होते हैं। हिमालय और गंगा तो भारत की नैसर्गिक विभूति हैं; पर वास्तविक विभूति हैं राम और कृष्ण—बुद्ध और महावीर—तिलक और गान्धी। भारत के सभी प्रान्तो में ऐसे महात्मा और स्वनामधन्य विज्ञ पुरुष हो चुके हैं तथा आज भी बहुतेरे ऐसे हैं जिनके लिये वहाँ के निवासी सदा गर्व-गौरव की अनुभूति से पुलकित होते रहते हैं। अति प्राचीन काल से आजतक बिहार-प्रान्त में भी ऐसे ख्यातनामा व्यक्ति होते चले आये हैं जिनकी स्मृति केवल बिहारियो का ही नही, प्रत्युत प्रत्येक भारतवासी का मस्तक गर्वोन्नत कर देती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय में योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी विशिष्ट विभूतियों का जो विशद वर्णन किया है उससे स्पष्ट विदित होता है कि संसार के विविध कर्मक्षेत्रों में अवतीर्ण होकर जो व्यक्ति अपनी सेवाओ से लोक-हित-साधन करके लोक-लोचन को आकृष्ट करते हैं वे ही ईश्वर की विभूति हैं। समय-समय पर देश-दशानुकूल जो अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति उत्पन्न होते

रहते हैं वे वास्तव में ईश्वर की ही विभूति हैं। ऐसे व्यक्तियों के जन्म से जिस देश की भूमि धन्य एवं कृतकृत्य होती है वही देश विभूतिशाली कहलाने योग्य होता है। इस दृष्टि से विहार वस्तुतः विभूतिशाली है और भारत के अन्य प्रान्तो के सामने वह भी अपनी विभूतियो के बल पर उचित गौरव के साथ अपना सिर ऊँचा कर सकता है।

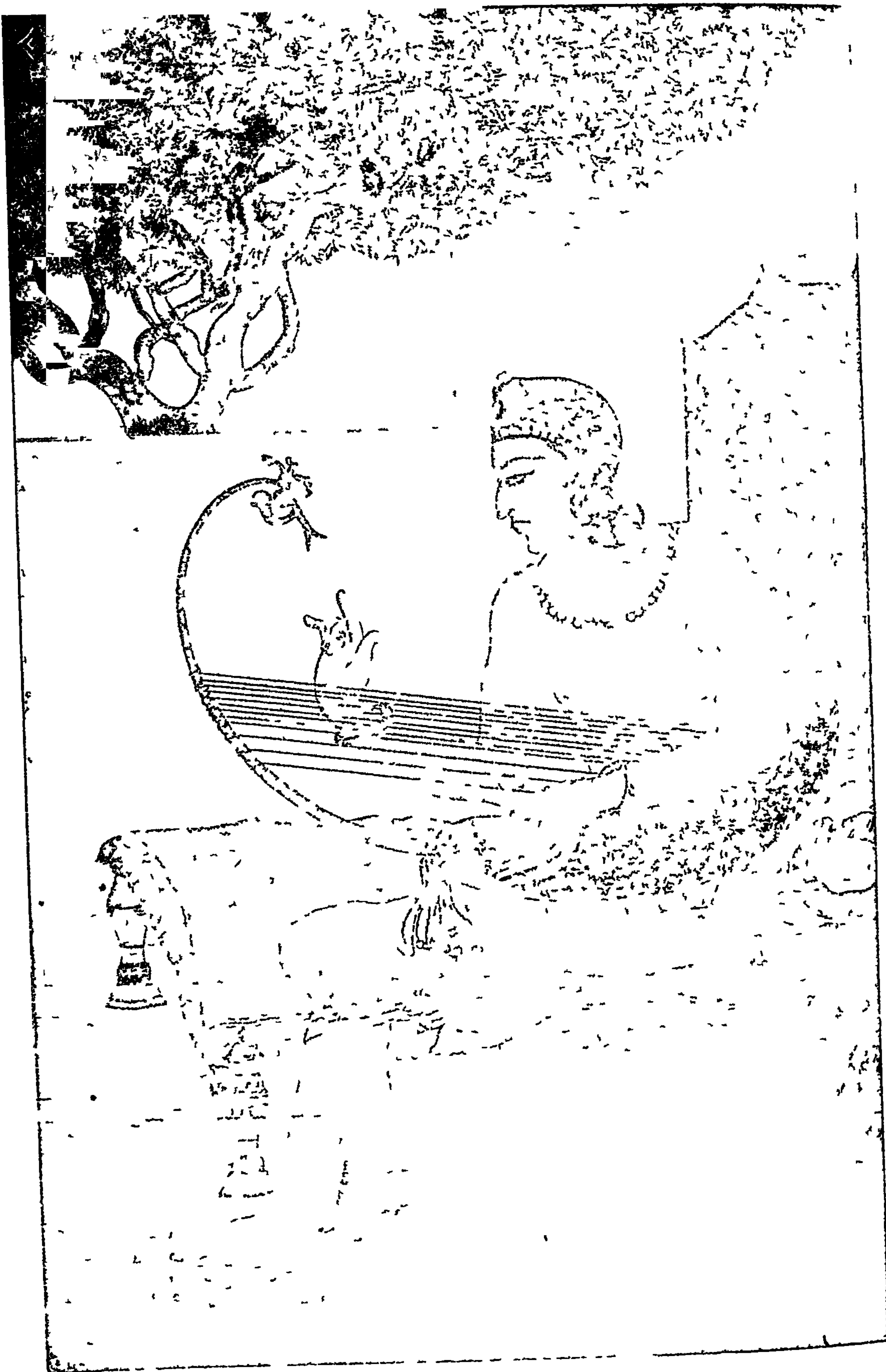
सतीशिरोमणि जगज्जननी जानकी के पिता मिथिलेश राजर्षि 'सीरध्वज जनक' विहार की एक अतुलनीय विभूति थे। वे भारतवर्ष में अद्वितीय ब्रह्मवादी हो गये हैं। पुनः मिथिलेश देवरात जनक के समय में मिथिला के राज-पंडित महर्षि याज्ञवल्क्य सबसे प्रसिद्ध ब्रह्म-विचारक और स्मृतिकार हो गये हैं। देवरात जनक के एक यज्ञ के अवसर पर एक वृहत् विद्वत्-परिषद् का आयोजन किया गया। उसमें आर्यावर्त्त के अनेक धुरन्धर विद्वान् निमंत्रित किये गये। जनक ने एक हजार गायो के सींगों पर सोने के दस-दस पाद (निष्क, सिक्का) बँधवाकर परिषद् में उपस्थित विद्वानो से कहा कि आपमें जो सबसे बड़ा विद्वान् हो वह इन्हें ले जाय। याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सामश्रवा को गायें हाँक ले जाने कहा। इसपर दूसरे लोगों ने उनसे प्रश्न पूछना शुरू किया। उन्होंने एक-एक का उत्तर दे दिया। तब वृद्ध उद्दालक, आरुणि, विदुषी गार्गी और देवमित्र शाकल्य 'विदग्ध' ने क्रमशः उनसे शास्त्रार्थ किया; पर कोई उनसे जीत न सका।

महाभारत-युग का दुर्द्धर्ष धनुर्द्धर और कौरवो का परम सहायक महारथी 'कर्ण' सुप्रसिद्ध दानवीर और रणधीर योद्धा था। वह विहार के दक्षिण-पूर्व खंड में स्थित अंग देश का राजा था। मुंगेर और भागलपुर जिलों में उसके किलों, गढ़ों और महत्त्व के कई निशान, ऊँचे-ऊँचे टीलों के रूप में, मौजूद हैं।

विहार के एक बलवन्त विजेता वीर मगधराज जरासंध ने ही मथुरा के यादव-वृष्णि-गणतंत्र पर चढ़ाई कर उसके नेता जगद्गुरु श्रीकृष्णचंद्र को मथुरा छोड़ द्वारका भाग जाने के लिये वाध्य किया था। श्रीकृष्ण ने षड्यन्त्र रचकर पांडव भीम द्वारा इसका वध करवाया था। इसके समय में मगध की राजधानी राजगृह (राजगिरि) में थी। यह उस समय का प्रचंड मल्ल योद्धा था।

न्यायशास्त्र के आचार्य गौतम मुनि बिहार के ही निवासी थे। दरभंगा जिले मे गौतम-कुंड और अहल्या-स्थान इनकी याद दिलाते हैं।

सुप्रसिद्ध वीर परशुराम के पूर्वज च्यवन ऋषि का निवास वर्त्तमान शाहाबाद जिले मे सोन नदी के तट पर था। कहते हैं कि च्यवनाश्रम के पास ही सस्कृत के



समुद्रगुप्त

महाकवि वाणभट्ट निवास करते थे, जिनकी रचना 'कादम्बरी' संस्कृत के गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि है।

भगवान् बुद्धदेव का सारा जीवन विहार में ही बीता। बोध-गया में ही उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ। विहार के मगध-सम्राटों ने ही बौद्ध-धर्म को भूमंडल में फैलाया।

जैनियों के सर्वश्रेष्ठ तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर का जन्म वैशाली (उत्तर-विहार) में ही हुआ था। वैशाली के लिच्छवि-नरेश चेटक उनके मामा थे।

मिथिला के राजकुमार महाजनक की बहादुरी की कहानियाँ बौद्ध जातक-कथाओं में पाई जाती हैं। उन्होंने अर्थ-संग्रह के लिये जावा, सुमात्रा, स्याम, मलय आदि द्वीपों और देशों की यात्रा की थी। उस अभियान में उन्होंने उपनिवेश-स्थापन भी किया था।

विहार का इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट् मगधराज चन्द्रगुप्त मौर्य ने सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पर अधिकार जमाकर सुविस्तृत मौर्य-साम्राज्य की नींव डाली थी। ग्रीक-सरदार सेल्यूकस को भी इसने हराया था।

चन्द्रगुप्त के पोता सम्राट् अशोक के समय में मौर्य-साम्राज्य की पूरी उन्नति हुई। यह संसार के प्रसिद्ध सम्राटों में गिना जाता है। इसने भारत के सिवा चीन, जापान, लंका, तिब्बत आदि सुदूरवर्त्ती देशों में भी बौद्ध-धर्म का प्रचार कराया, जहाँ वह आज तक जीवित है।

मगध-सम्राट् पुष्यमित्र ने ही सार्वभौम साम्राज्य के वैदिक आदर्श को अपना लक्ष्य घोषित करने के लिये अश्वमेध यज्ञ का पुनरुद्धार किया था। सारा आर्यावर्त्त इसके अधीन था।

पुष्यमित्र का पुत्र सम्राट् अग्निमित्र ही महाकवि कालिदास का आश्रयदाता 'प्रथम विक्रमादित्य' कहा जाता है। महाकवि के प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र' का प्रधान पात्र यही मगध-सम्राट् है।

गुप्तवंशी सम्राट् समुद्रगुप्त विहार का ही रत्न था। वह बड़ा वीर, विद्वान्, संगीतज्ञ और गुणियों का आदर करनेवाला था। इसके समय में मगध-साम्राज्य की पर्याप्त उन्नति हुई। सारा भारत इसकी छत्रच्छाया में आ गया था।

जगद्गुरु शंकराचार्य और विश्वविख्यात मैथिल पंडित मंडन मिश्र का शास्त्रार्थ, तथा मिश्रजी की सहधर्म्मिणी महाविदुषी 'सरस्वती' के साथ भी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ, काफी प्रसिद्ध है। मिश्रजी विहार की अमर विभूति हैं।

शांकरभाष्य की टीका 'भाष्य-भामती' के रचयिता वाचस्पति मिश्र, भारत मे

बौद्ध-धर्म का मूलोच्छेद करनेवाले उदयनाचार्य और सुप्रसिद्ध उद्भट नैयायिक पक्षधर मिश्र * मिथिला के ही निवासी थे।

महाकवि विद्यापति ठाकुर और भारत-सम्राट् शेरशाह का जन्मस्थान बिहार ही था। वर्त्तमान मिथिला-राज्य के संस्थापक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर की विद्वत्ता का प्रत्येक बिहारी को गर्व है।

बिहार में मुगल-साम्राज्य के अन्तिम प्रतिनिधि शासक राजा रामनारायण बड़े ही विद्याप्रेमी और स्वाभिमानी वीर थे। इनके मंत्री महामहोपाध्याय राजा हरिगोविन्दसिंह झा प्रसिद्ध नैयायिक हो गये हैं।

सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह के वीर नेता बाबू कुँवरसिंह की वीरता की अनेक सच्ची कहानियाँ बिहार के गाँवों में आज भी प्रसिद्ध हैं।

डुमराँव-राज के राजगुरु योगिराज दुर्गादत्त परमहंस बिहार की एक अलौकिक विभूति थे। उनकी अद्भुत विद्वत्ता ने अनेक भारत-प्रसिद्ध विद्वानो का मान-मर्दन किया था। उनकी प्रामाणिक जीवनी 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित है।

मिथिला के स्वर्गीय नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर ने दरभंगा-राज्य भर में बहुत-से स्कूलो की स्थापना कर बिहार में आधुनिक शिक्षा के प्रचार का स्तुत्य प्रयत्न किया था। उन्ही के अनुज महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह बहादुर अँगरेजी और संस्कृत के सुविख्यात विद्वान् थे। इन्ही के प्रचुर द्रव्यदान से दरभंगा में मेडिकल स्कूल की स्थापना हुई, जो बिहार-भर मे अकेला है। आधुनिक बिहार के निर्माण में इनका भी बहुत-कुछ हाथ था।

बिहार में शिक्षा का प्रकाश फैलानेवालो में उपर्युक्त मिथिलेशो के अतिरिक्त चार प्रमुख व्यक्तियो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

* पंडित पक्षधर मिश्र के हस्तलिखित विष्णुपुराण की प्रति मिथिला के एक पंडित के घर में सुरक्षित है। उसमें मिश्रजी ने उसके समाप्तिकाल का उल्लेख किया है अर्थात् लक्ष्मणाब्द ३४५ (शाके १३७५), अगहन शुदि षष्ठी तिथि को वह पुस्तक अमरावती में लिखी गई। (दरभंगा जिले के कोइलख ग्राम से बाजितपुर तक का इलाका प्राचीन काल में 'अमरावती' कहलाता था।) उक्त ग्रंथ में यह श्लोक लिखा है—

बाणैर्वेदमितैः सशम्भुनयनैः संख्याङ्किते हायने
श्रीमल्लक्ष्मणसेनकस्य नृपतेर्मार्गे सिते सत्तिथौ।
षष्ठ्यान्ताममरावतीमधिवसन्या भूमिदेवाश्रया
श्रीमत्पक्षधरः सुपुस्तकमिदं यत्नादव्यलेखिद्द्रुतम्॥ —सम्पादक

[१] कुलहरिया (शाहाबाद) के जमींदार बाबू शालग्रामसिंह ने पटना में 'बिहार नेशनल कालेज' की स्थापना कर बिहार में अँगरेजी की उच्च शिक्षा का प्रचार किया। ये भी आधुनिक बिहार के निर्माताओं में हैं।

[२] भागलपुर के प्रतिष्ठित एवं धनाढ्य रईस रायबहादुर तेजनारायणसिंह ने भागलपुर में 'तेजनारायण जुबली कॉलेज' की स्थापना की। ये भी आधुनिक बिहार के निर्माताओं में गिने जाते हैं।

[३] धरहरा (मुजफ्फरपुर) के निवासी बाबू लंगटसिंह ने मुजफ्फरपुर में 'भूमिहार ब्राह्मण-कॉलेज' की स्थापना कर उत्तर बिहार में उच्च अँगरेजी शिक्षा का प्रचार किया। ये साधारण कुली से लखपती बन गये थे।

[४] बाबू अदलसिंह ने बिहार-शरीफ में 'नालंदा-कॉलेज' की स्थापना की। पाँचवें व्यक्ति हैं राजेन्द्र-कालेज (छपरा) के संस्थापक बाबू हरिहरशरणजी।

आधुनिक बिहार के निर्माताओं में बाबू महेशनारायण भी हैं। बिहार को बंगाल से पृथक् कराने के आन्दोलन के जन्मदाता ये ही थे। इन्हीं की प्रेरणा से डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह ने इस संबंध में लेख लिखना शुरू किया था।

विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा वैदिक साहित्य के भारत-विख्यात विद्वान् होने के कारण बिहार के एक अलौकिक विभूति थे। वैदिक विज्ञान का रहस्योद्घाटन करने में आपकी विद्वत्ता अप्रतिम थी। आप अपने समय के अद्वितीय पंडित थे।

सन्तशिरोमणि डिपुटी भगवानप्रसाद 'रूपकला' तो बिहार की एक विमल विभूति थे। उन्होंने भगवद्भक्ति और हरिकीर्त्तन की जो सुधा-धारा प्रवाहित की, वह आज भी बिहार की भूमि को परिप्लावित कर रही है। अयोध्याजी के पूजनीय महात्माओं में उनका बहुत ही ऊँचा आसन था।

महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, एम्० ए० संस्कृत के विश्वविख्यात बहुश्रुत विद्वान् थे। आप छपरा-नगर के निवासी थे। अपने समय के आप एक ही विद्वान् थे। आपको हम बिहार की वास्तविक विभूति कह सकते हैं। परमार्थ-दर्शन, संस्कृत-विश्व-कोष आदि अपूर्व ग्रन्थों के आप रचयिता थे।

आधुनिक बिहार के निर्माण में इमाम-बन्धुओं—सैयद अली इमाम और सैयद हसन इमाम—का बहुत बड़ा हाथ था। अली इमाम बिहार को बंगाल से पृथक् कराने के आन्दोलन के प्रधान नेता रह चुके थे। भारत-प्रसिद्ध बारिस्टर सैयद हसन इमाम ने बिहार के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति के तीव्र करने में प्रमुख भाग लिया था। ये इंडियन नेशनल कांग्रेस के विशेषाधिवेशन (बम्बई) के

अध्यक्ष भी रह चुके थे। टर्किश पीस कानफरेन्स (लंदन) और लीग आफ नेशन्स (जेनेवा) में आप भारत के प्रतिनिधि-रूप में सम्मिलित हुए थे। ये दोनों सगे भाई थे और पटना जिले के 'नेवरा' ग्राम के निवासी थे। इस ग्राम के सभी निवासी ऊँची शिक्षा पाये हुए और ऊँचे ओहदेवाले हैं। सम्राट् पंचम जार्ज भी यहाँ उतरे थे।

सारन जिले के निवासी खाँ-बहादुर खुदाबख्श खाँ भी बिहार की एक उज्ज्वल विभूति थे। उनकी स्थापित की हुई ओरिएंटल लाइब्रेरी (पटना) एशिया में अपने ढंग का एक ही संग्रहालय है। दिल्ली और अवध की बादशाही के समाप्त होने पर इन्होंने शाही कुतुबखाने की बहुत-सी बहुमूल्य पुस्तकें खरीदकर इस पुस्तकालय को सुसज्जित किया था और अपनी वकालत की सारी कमाई ग्रन्थ-संकलन में ही लगा दी थी।

बिहार में राष्ट्रीय जागृति का प्रकाश फैलानेवालों में मौलाना मजहरुलहक साहब का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप भी सारन जिले के ही निवासी थे। दीघाघाट (पटना) में आपका स्थापित किया हुआ सदाकत-आश्रम बिहार की समस्त राजनीतिक प्रगतियों का प्रधान केन्द्र है। आप ही के नाम पर १९४० की (५३ वीं) रामगढ़-कांग्रेस का नगर बसाया गया था—'मजहरपुरी'।

उक्त रायबहादुर तेजनारायणसिंह के सुपुत्र बाबू दीपनारायणसिंह भारत के ओजस्वी वक्ताओं में गिने जाते थे। वक्तृत्व-कला की विभूति आपमें भरपूर थी।

पटना-निवासी भारत-प्रसिद्ध बारिस्टर, महामहोपाध्याय, विद्यामहोदधि, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल यद्यपि संयुक्त प्रान्त के मिर्जापुर नगर के निवासी थे, तथापि आपका कर्मक्षेत्र यावज्जीवन बिहार ही रहा। बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी के जन्मदाता आप ही थे। आप विश्वविख्यात इतिहासज्ञ थे। पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनेक अनुसंधानों के लिये आप प्रमाण माने जाते थे। आपके रचे हुए प्रसिद्ध और प्रामाणिक अँगरेजी ग्रन्थों के नाम ये हैं—Manu and Yajnavalkya, Hindu Polity, History of India, Imperial History of India—150 A D to 35) A. D, Chronology and History of Nepal. ओरिएंटल कानफरेन्स (बड़ोदा), पटना म्यूजियम, भारतीय मुद्रासमिति, बिहार-उड़ीसा-रिसर्च सोसाइटी आदि महान् संस्थाओं के आप सभापति हो चुके थे।

त्याग और तपस्या की मूर्त्ति पंडित बच्चा झा बिहार की एक दिव्य विभूति थे। आप षड्दर्शन के अगाध विद्वान् थे। मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वर



स्वनामधन्य देशपूज्य डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी
[जीरादेई-(सारन)-निवासी]

अध्यक्ष भी रह चुके थे। टर्किश पीस कानफरेन्स (लंदन) और लीग आफ नेशन्स (जेनेवा) में आप भारत के प्रतिनिधि-रूप में सम्मिलित हुए थे। ये दोनों सगे भाई थे और पटना जिले के 'नेवरा' ग्राम के निवासी थे। इस ग्राम के सभी निवासी ऊँची शिक्षा पाये हुए और ऊँचे ओहदेवाले हैं। सम्राट् पंचम जार्ज भी यहाँ उतरे थे।

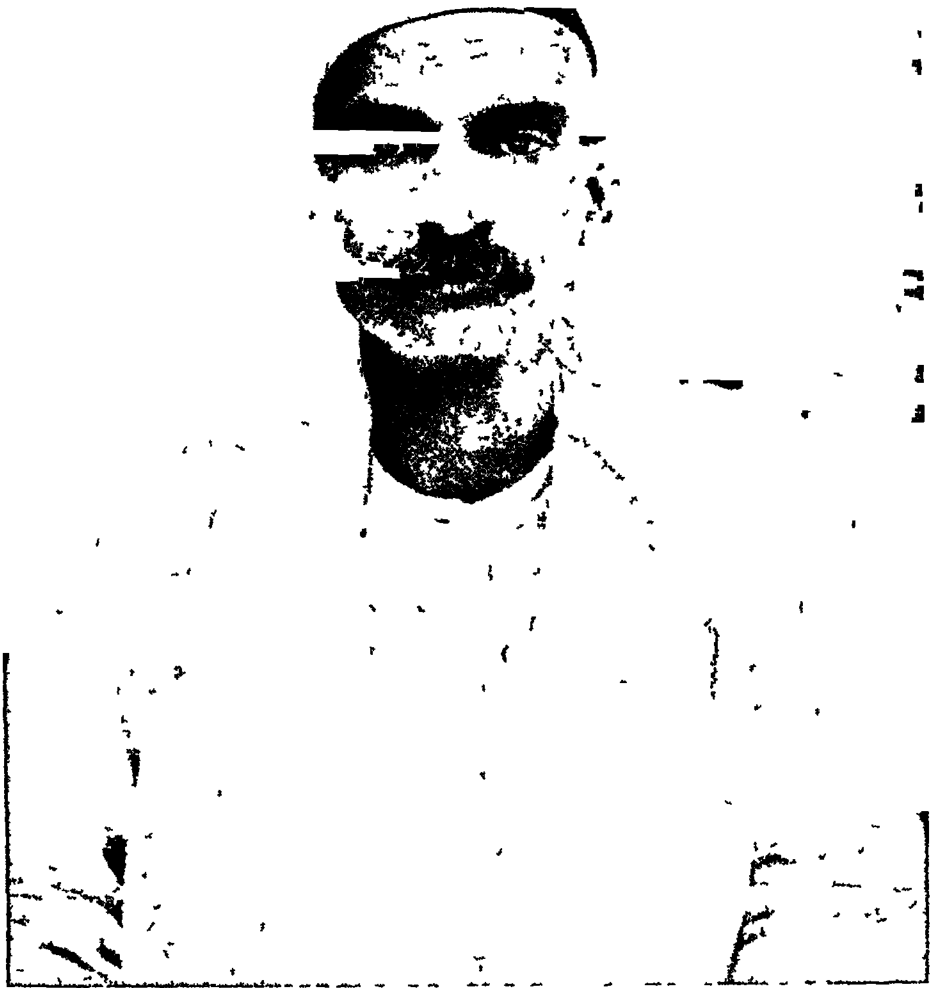
सारन जिले के निवासी खाँ-बहादुर खुदाबख्श खाँ भी बिहार की एक उज्ज्वल विभूति थे। उनकी स्थापित की हुई ओरिएंटल लाइब्रेरी (पटना) एशिया में अपने ढंग का एक ही संग्रहालय है। दिल्ली और अवध की बादशाही के समाप्त होने पर इन्होंने शाही कुतुबखाने की बहुत-सी बहुमूल्य पुस्तकें खरीदकर इस पुस्तकालय को सुसज्जित किया था और अपनी वकालत की सारी कमाई ग्रन्थ-संकलन में ही लगा दी थी।

बिहार में राष्ट्रीय जागृति का प्रकाश फैलानेवालों में मौलाना मजहरुलहक साहब का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप भी सारन जिले के ही निवासी थे। दीघाघाट (पटना) में आपका स्थापित किया हुआ सदाकत-आश्रम बिहार की समस्त राजनीतिक प्रगतियों का प्रधान केन्द्र है। आप ही के नाम पर १९४० की (५३ वीं) रामगढ़-कांग्रेस का नगर बसाया गया था—'मजहरपुरी'।

उक्त रायबहादुर तेजनारायणसिंह के सुपुत्र बाबू दीपनारायणसिंह भारत के ओजस्वी वक्ताओं में गिने जाते थे। वक्तृत्व-कला की विभूति आपमें भरपूर थी।

पटना-निवासी भारत-प्रसिद्ध बारिस्टर, महामहोपाध्याय, विद्यामहोदधि, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल यद्यपि संयुक्त प्रान्त के मिर्जापुर नगर के निवासी थे, तथापि आपका कर्मक्षेत्र यावज्जीवन बिहार ही रहा। बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी के जन्मदाता आप ही थे। आप विश्वविख्यात इतिहासज्ञ थे। पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनेक अनुसंधानों के लिये आप प्रमाण माने जाते थे। आपके रचे हुए प्रसिद्ध और प्रामाणिक अँगरेजी ग्रन्थों के नाम ये हैं—Manu and Yajnavalkya, Hindu Polity, History of India, Imperial History of India—150 A D to 350 A. D, Chronology and History of Nepal ओरिएंटल कानफरेन्स (बड़ोदा), पटना म्यूजियम, भारतीय मुद्रासमिति, बिहार-उड़ीसा-रिसर्च सोसाइटी आदि महान् संस्थाओं के आप सभापति हो चुके थे।

त्याग और तपस्या की मूर्त्ति पंडित बच्चा झा बिहार की एक दिव्य विभूति थे। आप षड्दर्शन के अगाध विद्वान् थे। मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वर



स्वनामधन्य देशपूज्य डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी
[जीरादेई-(सारन)-निवासी]

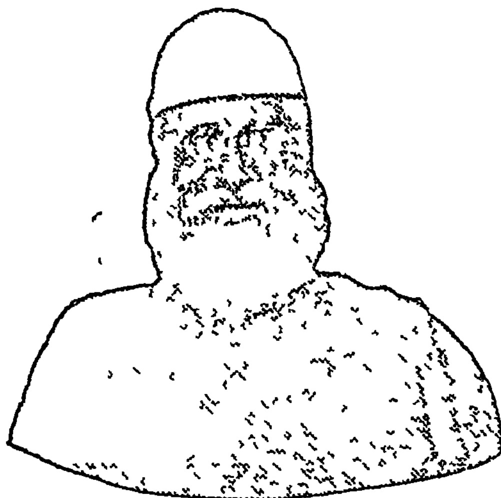


विहार के ख्यातनामा कुमार गंगानन्द सिंह



बिहार की विभूतियाँ

[लेख—पृष्ठ १४१]



स्वर्गीय मौलाना मजहरुलहक
जिनके नाम पर रामगढ़-काँग्रेस की मजहर-
पुरी बसाई गई थी



स्वर्गीय हसन इमाम साहब
जिन्होने बम्बई की विशेष काँग्रेस का
सभापतित्व किया था



डाक्टर सर गणेशदत्त सिंह
जिन्होने पटना-विश्वविद्यालय को लगभग पाँच लाख
रुपये का दान दिया है

सिंह के बहुत आग्रह करने पर आपने मुजफ्फरपुर-संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल का पद स्वीकार किया था।

यहाँ तक बिहार की स्वर्गीय विभूतियों का वर्णन किया गया, अब आगे जीवित विभूतियों का वर्णन किया जायगा—

महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर ऐसे महीप-रत्न हैं, जिनपर समग्र बिहार को गर्व है। आपकी राजनीतिज्ञता, प्रजावत्सलता तथा सुधारप्रियता अनुकरणीय है। मैथिल-समाज में सर्वप्रथम समुद्र-यात्रा का दृष्टान्त देकर आपने स्वजातीय नवयुवकों की उन्नति के लिये प्रशस्त मार्ग खोल दिया है। देश, जाति, समाज तथा सरकार के लिये आपका कोष सर्वदा मुक्त रहता है। लाखों रुपये आपने दान में दिये हैं। आपके समान सुसंस्कृत, उदारचेता तथा दयालु नरेश विरले ही मिलेंगे।

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गङ्गानाथ झा बिहार की उन विभूतियों में हैं जिन्होंने बिहार के बाहर जाकर अन्य प्रान्त में भी बिहार का सिर ऊँचा किया। आप अनेक वर्षों तक प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर रह चुके हैं। आप दरभंगा-राजवंश के समीपी सम्बन्धी हैं। आप अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के विद्वान् हैं। आपने सांख्यतत्त्वकौमुदी, योगसारसंग्रह, काव्यप्रकाश, श्लोकवार्त्तिक, प्रशस्तपाद-भाष्य, न्यायसूत्रभाष्यवार्त्तिक, खंडनखंडखाद्य, पुरुषपरीक्षा आदि गूढ़ संस्कृतग्रंथों का प्रामाणिक अँगरेजी-अनुवाद किया है। शांडिल्यभक्तिसूत्र, प्रसन्नराघव आदि ग्रंथों का भाष्य भी लिखा है। हाल ही में आपका 'मीमांसा का शावर भाष्य' और हिन्दू-विधान-सम्बन्धी वृहत् ग्रंथ प्रकाशित हुआ है।

बिहार-उड़ीसा के स्वायत्तशासनविभाग के भूतपूर्व मंत्री सर गणेशदत्तसिंह भी बिहार की एक देदीप्यमान विभूति हैं। आपने पटना-विश्वविद्यालय को कई लाख रुपये दान दिये हैं।। आप आदर्श त्यागी, स्वाध्यायी और दानवीर हैं। आप पटना जिले के निवासी हैं।

बिहार के अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त विभूतिशाली पुरुषों में डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आप लब्धकीर्त्ति पत्रकार, भारतप्रसिद्ध बारिस्टर, अँगरेजी के विश्वविख्यात लेखक और वक्ता हैं। आप भारत के प्रमुख राजनीतिशास्त्री और शिक्षाशास्त्री हैं। आप एक आदर्श विद्याव्यसनी और अक्लान्त स्वाध्यायी पुरुष हैं। बंगाल से बिहार के अलग कराने का अधिकांश श्रेय आप ही को है। लगातार कई साल तक आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य

थे। इंडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सर्वप्रथम भारतीय डिपुटी प्रेसिडेंट आप ही हुए थे। विहार-उड़ीसा-सरकार के भी आप सर्वप्रथम भारतीय अर्थमंत्री थे। विहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के भी आप सर्वप्रथम भारतीय अध्यक्ष थे। इंगलैंड में ज्वाइंट पार्लामेंटरी सबकमिटी के समक्ष अपना वक्तव्य देने के लिये खास तौर से आप निमंत्रित किये गये थे, जहाँ आपने भारतीय शासनविधान की वृहत् रूपरेखा तैयार कर पेश की थी। प्रयाग के सुप्रसिद्ध अँगरेजी-पत्र 'लीडर' के आप आदि-संस्थापकों में हैं। 'बिहार टाइम्स' का आप सम्पादन कर चुके हैं। अनेक वर्षों से आप अँगरेजी के प्रभावशाली मासिक पत्र 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के सम्पादक हैं। अँगरेजी में आपके लिखे कई दर्शनीय ग्रंथ हैं। अपनी स्वर्गीया पत्नी के नाम पर आपने पटना में 'श्रीमती राधिकासिंह इंस्टिट्यूट' नामक एक विराट् पुस्तकालय की स्थापना की है। गत कई वर्षों से आप पटना-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर हैं। आप बिहार के गौरवालंकार हैं।

सारन जिले के वयोवृद्ध राष्ट्रीय नेता और दरभंगा के त्यागवीर वकील बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद का भी बिहार के निर्माण में कुछ कम हाथ नहीं है। महात्मा गान्धी भी आपका बड़ा सम्मान करते हैं। भारतप्रसिद्ध साम्यवादी नेता श्रीजय-प्रकाशनारायण आप ही के जामाता हैं। बिहार में राष्ट्रीय जागृति की ज्योति फैलानेवाले आप सर्वप्रथम व्यक्ति हैं।

देशपूज्य भारत-रत्न डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भी सारन जिले के ही निवासी हैं। आप केवल विहार की ही विभूति नहीं हैं, बल्कि भारत की उज्ज्वलतम विभू-तियों में सादर आपकी गणना होती है। महात्मा गान्धी के बाद राजनीतिक क्षेत्र में आप ही का स्थान है। आपके त्याग और तपस्या की महिमा बिहार की ही नहीं, भारत की एक अमूल्य सम्पत्ति है। एम्० एल० की परीक्षा पास करनेवाले प्रथम विहारी आप ही हैं। दो-दो बार आप इंडियन नेशनल कांग्रेस और अखिलभारतीय राष्ट्रभाषा-सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। अँगरेजी, हिन्दी, फारसी, संस्कृत आदि कई प्रमुख भाषाओं के आप गंभीर विद्वान् हैं। केवल विहार के ही नहीं, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के भी आप कुशल कर्णधार हैं। आपकी कीर्त्ति देश-देशान्तर में विख्यात है। आप ही के नाम पर छपरा में राजेन्द्रकालेज स्थापित है।

श्रीयुत रामलोचनशरणजी विहारी यथार्थतः विहारियों के गौरवस्वरूप हैं। आपने निरन्तर २५ वर्षों की कठोर साहित्य-साधना से हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, वे स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य हैं। जिस सरल गद्यशैली का आपने प्रवर्त्तन

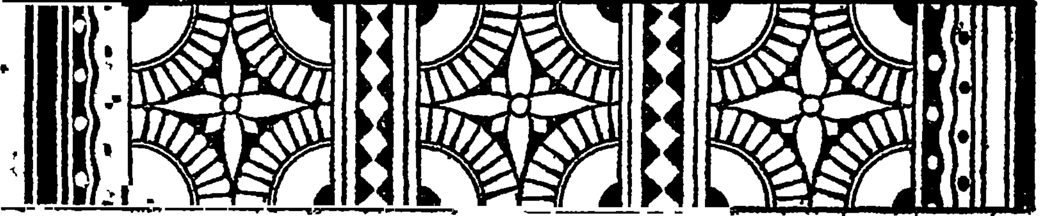
किया है, वह आदर्श बन गई है और बिहार के प्रायः सभी नवयुवक लेखक आज उसी आदर्श के अनुयायी हैं। आपकी 'बालक'-सम्पादन-कला द्विवेदीजी की याद दिलाती है। बाल-साहित्य के निर्माण में हिन्दी-भाषा में आपका वही स्थान है जो गुजराती भाषा में गिजू भाई का। पुस्तक-प्रकाशन में आपने बिहार का मस्तक वैसे ही उन्नत किया है जैसे गुरुदास चटर्जी ने बंगाल का। आपका प्रसिद्ध 'पुस्तक-भंडार' और यशस्वी 'बालक' इस प्रान्त का ही नहीं, अपितु समस्त देश का गौरव बढ़ा रहा है। शरणजी निःसन्देह बिहार के साहित्यिक दधीचि हैं।

श्रीनगराधीश कुमार गङ्गानन्दसिंह एम्० ए० इस प्रान्त की एक विशिष्ट विभूति हैं। आप रॉयल सोसाइटी आफ ग्रेटब्रिटेन ऍंड आयरलैंड, रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी, इम्पायर पार्लामेंटेरियन्स एसोसिएशन आफ ग्रेटब्रिटेन ऍंड आयरलैंड और बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल के फेलो और मेम्बर हैं। इंडियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली में आप कई साल तक कांग्रेस-पार्टी के प्रधान मंत्री रह चुके हैं। आप ही एकमात्र बिहारी हैं जिन्हें यह गौरव प्राप्त हुआ था। लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षों तक आप बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा के सभापति रह चुके हैं। आपकी रचनाएँ उपर्युक्त संस्थाओं के मुखपत्रों में सदा छपा करती हैं। आप अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के लेखकों में हैं। अँगरेजी, संस्कृत, फ्रेंच, हिन्दी, मैथिली, बँगला आदि कई विदेशी और देशी भाषाओं के आप प्रकांड पंडित हैं। वक्तृत्व-कला एवं पत्रकार-कला में भी आप निपुण हैं। आप बड़े मिष्टभाषी और निरभिमान पुरुष हैं।

प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर पंडित अमरनाथ झा बिहार की एक ज्वलंत विभूति हैं। आप महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा के द्वितीय सुपुत्र हैं। आप ही सर्वप्रथम भारतीय हैं जिन्हें पेरिस-विश्वविद्यालय ने अपना 'फेलो' चुनकर सम्मानित किया है। आप भी अन्ताराष्ट्रिय ख्याति के विद्वान् हैं।

हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) के संस्कृत-विभाग के प्रधानाध्यक्ष महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र भारत के गिने-चुने नैयायिकों में हैं। बिहार की विभूतियों में उनका स्थान अक्षुण्ण है।

इस प्रकार बिहार के अतीत और वर्त्तमान युग की विभूतियों की एक झलक दिखाकर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि बिहार चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय—ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक—सब तरह से यह गौरवमंडित और भारत-भूमि का एक रत्नखंड सिद्ध होता है।



अथर्व-वेद और राजतन्त्र का क्रमिक विकास

प्रोफेसर श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शनकेसरी, देहरादून

हिन्दु-धर्म में वेद अपौरुपेय माना गया है। भारतीय दर्शनों में आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार के दर्शनों का समावेश है; परन्तु मुख्य दर्शनकार अन्य बातों में मतभेद रखते हुए भी वेद की अपौरुषेयता में एकमत हैं। मीमांसा-दर्शन का तो आधार ही वेद है, वैदिक कर्मकांड-परक वाक्यों का समन्वय करना ही उसका मुख्य विषय है। तब भी मीमांसा-दर्शन रूढ अर्थों में अनीश्वरवादी है।

हमने वेद के लिये 'अपौरुपेय' शब्द का प्रयोग जान-बूझकर किया है; क्योंकि वेद की महत्ता का आधार भारतीय आर्य-दर्शन अपौरुपेयता को ही मानते हैं। ईश्वर-प्रोक्तता अपौरुषेयता का एक अर्थ है। हमारे विचार से 'अपौरुषेय' शब्द के रहते हुए भी वेद का ऐतिहासिक महत्त्व नष्ट नहीं हो जाता।

कुछ लोगों का तो विचार है कि वेद को अपौरुपेय कहना भी ऐतिहासिक तत्त्व ही है। उनके मत से अपौरुपेय का अर्थ है—'जिसके निर्माता का अति प्राचीनता के कारण ज्ञान ही न हो सके।' खैर, हम इस विवाद में न पड़कर अपने अभीष्ट विपय पर ही लिखेंगे।

मानव-समाज जिन अवस्थाओं में से गुजरकर आज की अवस्था में पहुँचा है, इसकी खोज अनेक तत्त्वों के आधार पर की जाती है। क्या इस सम्बन्ध में वेद से भी हमको सहायता मिल सकती है? इस प्रश्न का उत्तर सभी विवेचक 'हाँ' मे ही देंगे।

मनुष्य शिकारी की हालत से आज की विकसित दशा में किस तरह पहुँचा यह एक बहुत लम्बा विषय है। हम यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से और विकास-सिद्धान्त के आधार पर अथर्व-वेद का एक स्थल उपस्थित करना चाहते हैं, जिससे ज्ञात होगा कि अथर्व-वेद का ऋषि मनुष्य की नीराजकता की दशा से राजनीतिक विकास की उच्चतम अवस्था का क्या क्रम उपस्थित करता है।

अथर्व वेद ८।६

विराड्वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः
सर्वमबिभेत् इयमेव इदं भविष्यति इति।१।
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्।८।
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद।६।
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्।१०।
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद।११।
सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत्।१२।
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद।१३।

इन मंत्रों मे वैदिक ऋषि ने राजतंत्र के चार अवस्थान्तर, जिसके लिये वेद में 'उत्क्रान्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है, बताये हैं। प्रथम अवस्था विराट् (वि+राट्=राजहीन दशा) थी। तस्या जातायाः सर्वमबिभेत्—जब यह अवस्था अपने पूर्ण रूप से बढ़ी तब उससे सब भय करने लगे कि इस अवस्था में हम नष्ट हो जायँगे, यह हालत हमपर हावी हो जायगी। (इयमेवेदं भविष्यति इति)।

इस दशा में भी उत्क्रान्ति हुई (उदक्रामत्) और वह दशा 'सभा' में परिणत हो गई। आगे चलकर उस दशा में भी उत्क्रान्ति हुई और सभा 'समिति' में परिणत हो गई। सभा के सदस्य 'सभ्य' कहलाये और 'समिति' के सदस्य 'सामित्य' कहे जाने लगे। 'समिति' में भी दोष देखकर उसमें भी उत्क्रान्ति हुई; वह 'आमंत्रण' में बदल दी गई। आमंत्रण-सभा का सदस्य 'आमंत्रणीय' कहलाता था।

यहाँ चार अवस्थाओं के नाम हैं—

[१] **विराट्**—जब कोई राजा नहीं था, अराजकता की दशा।

[२] **सभा**—प्रत्येक ग्राम की पृथक्-पृथक् पञ्चायत, जिसमें सब ग्रामीण सदस्य होते थे, अर्थात् ग्राम पञ्चायत।

[३] **समिति**—जब ग्राम और ग्राम का सहयोग जीवन के लिये आवश्यक समझा गया तब अन्तर्ग्रामीय समिति। समिति में ग्राम-पञ्चायतो से प्रतिनिधि आते थे।

[४] **आमन्त्रण**—शासक और व्यवस्थापक का भेद करना आवश्यक हो गया, और शासन-सूत्र सभी सामित्यों के पास रहना हानिकर और अव्यवहार्य हो गया, तब आमन्त्रण-सभा का निर्माण हुआ।

संक्षेप में—राजहीन अवस्था, ग्राम-पंचायत, राष्ट्र-पंचायत, और राष्ट्र-पंचायत में से थोड़े व्यक्तियों का राज्य।

ध्यान देने की वात यह है कि इनमें स्वच्छन्द शासक (राजा) का कहीं नाम नही।





ओदन्तपुरी (उदंडपुरी)

ज्योतिषाचार्य पंडित सूर्यनारायण व्यास, विद्यारत्न; उज्जैन (मालवा)

बिहार-प्रान्त भारतवर्ष का विहार-स्थल ही रहा है—वैदिक काल मे भी—'गांधारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः' इत्यादि मंत्रो में मगध-देश की महत्ता परिगणित की गई है। मगध-साम्राज्य का वर्चस्व किसी समय समस्त भारत पर ही क्यो, बाहर भी रहा है।

बौद्ध-काल को बिहार का सुवर्ण-युग ही कहना होगा। बौद्ध-कालीन चंपानगरी* की महत्ता इतिहास में अनेक स्थलो पर वर्णित है। इसी प्रकार बिहार के ऐतिहासिक स्थलो में ओदन्तपुरी अथवा उदंडपुर का भी, मगध के अन्यान्य सुप्रसिद्ध स्थलो की तरह, उल्लेख किया गया है। इस नगर को सुदीर्घ-काल-पर्यन्त बंगीय पालवंशी राजाओ की राजधानी का गौरव प्राप्त रहा है।†

'उदंडपुर' के भी कई नाम कहे जाते थे। 'उदंतपुर' भी इसका एक नाम था‡। इसी प्रकार 'ओदंतपुरी' भी इसीका नामान्तर था। यह पटना जिले के

* वर्त्तमान भागलपुर नगर के एक अश का नाम 'चम्पानगर' है। प्राचीन अग देश की राजधानी 'चम्पा' यही है।

† आरकेऑलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, पुस्तक ८, पृष्ठ ७५

‡ बल्लाल-चरित—आनन्दभट्ट—अ० २

अंदर है। इसका आधुनिक नाम 'बिहारशरीफ' ❀ है और यह जिले का एक सब-डिवीजन भी है। इसी तहसील में इतिहास-प्रसिद्ध 'नालन्दा' और 'राजगिरि' (राजगृह) के दर्शनीय भग्नावशेष हैं।

बिहार-प्रान्त के अनेक प्रमुख नगरो के नाम 'द्वाविंश अवदान' में दिये गये हैं। उनमें इस 'ओदंतपुरी' का भी वर्णन मिलता है †। यहाँ पालवंशी राजाओ के महलों के खँड़हर आज भी विद्यमान हैं, जो 'गढ़' कहे जाते हैं।

लगभग ४०० बरसों तक यहाँ पालवंशी राजाओ की राजधानी थी। स्मिथ के कथनानुसार ‡ पालवंश के प्रवर्त्तक 'गोपाल' ने अपनी राजधानी 'उदंडपुर' में एक विशाल 'बौद्ध-विहार' बनवाया था। पाटलिपुत्र कालवश उध्वस्त हो गया था, तब भी गोपाल के पुत्र धर्मपाल ने आठवी शती में, गंगा के दक्षिण तट पर अवस्थित टेकरी के शिखर पर, सुप्रसिद्ध 'विक्रमशिला - विहार' का निर्माण करवाया था। +

जब इस नगर पर मुसलमान शासको का आधिपत्य स्थापित हो गया तब यहाँ के 'नवरतन' नामक भवन में मुसलिम 'आमिल' लोग रहा करते थे।

'बिहार' नगर के अतिनिकटस्थ एक पर्वतखंड पर, वायव्य कोण के एक निर्जन स्थान में, एक बौद्ध विहार और है। इस विहार में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की एक मूर्त्ति है। सप्तम शताब्दी में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री 'हुएनसंग' इस विहार की यात्रा के लिये आया था।

ऐश्वरीक उत्तरबुद्ध-सम्प्रदायवाले आदिबुद्ध को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि आदिबुद्ध ने अपने ध्यान-बल से श्वेत रंग, वैराचन (आसमानी रंग), अक्षोभ्य (पीतवर्ण), रत्नसंभव (रक्तवर्ण), अमिताभ और हरितवर्ण (अमोघसिद्ध) पाँच प्रकार के बुद्ध-ध्यान की कल्पना की; और पाँचो ने एक एक पुत्र उत्पन्न किया। ये ही 'बोधिसत्व' नाम से विख्यात हुए।

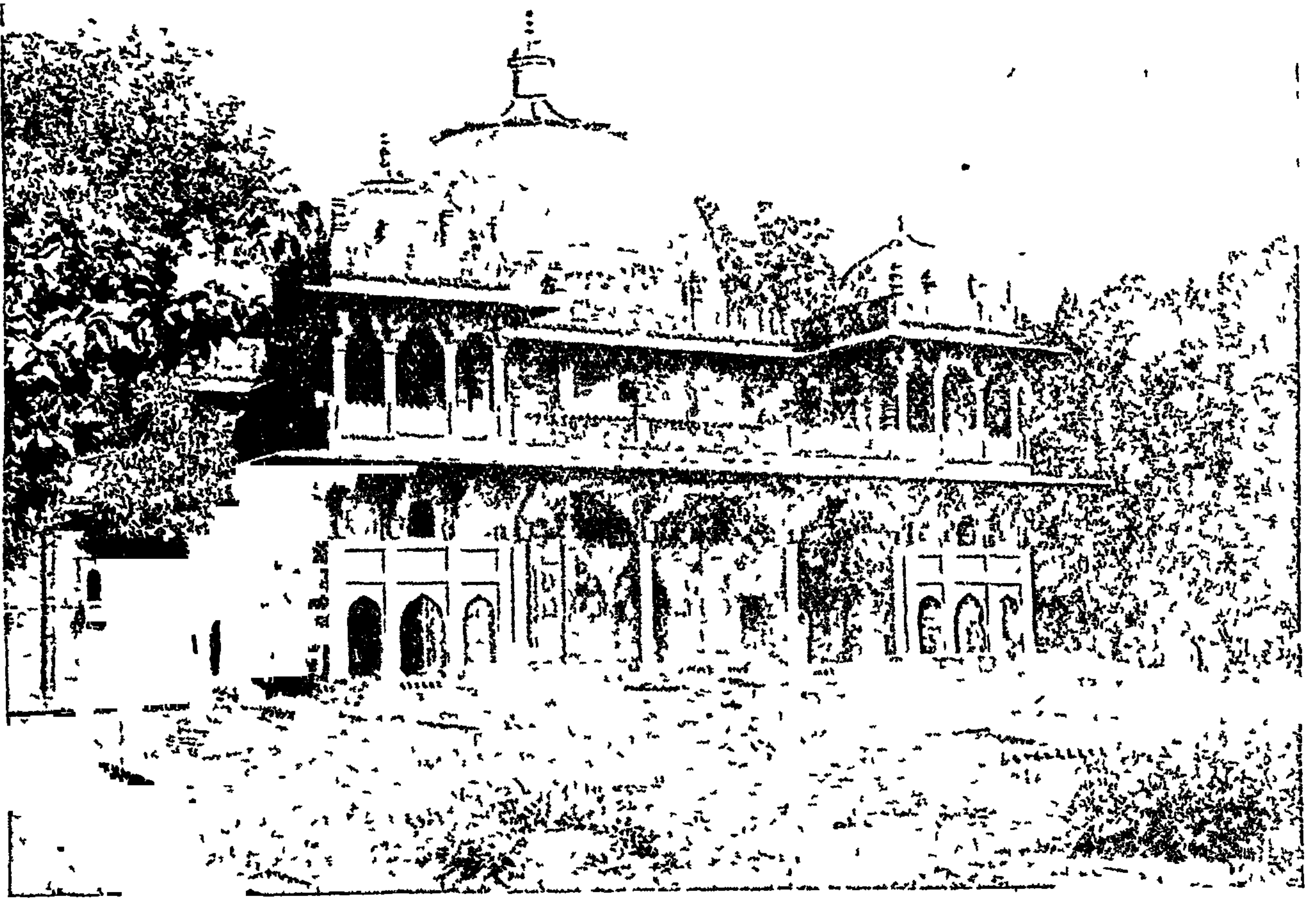
अमिताभ-बुद्ध ने ध्यान-बल से अवलोकितेश्वर-बोधिसत्व (अथवा 'सिह-

❀ इस नगर का नाम 'बिहार' है; पर मुसलमान इसे 'बिहारशरीफ' कहते हैं— उनके पीरों की बहुत-सी दरगाहें यहाँ हैं। नगर की सीमा पर 'पचाना' नदी बहती है। जनसंख्या लगभग ५० हजार।

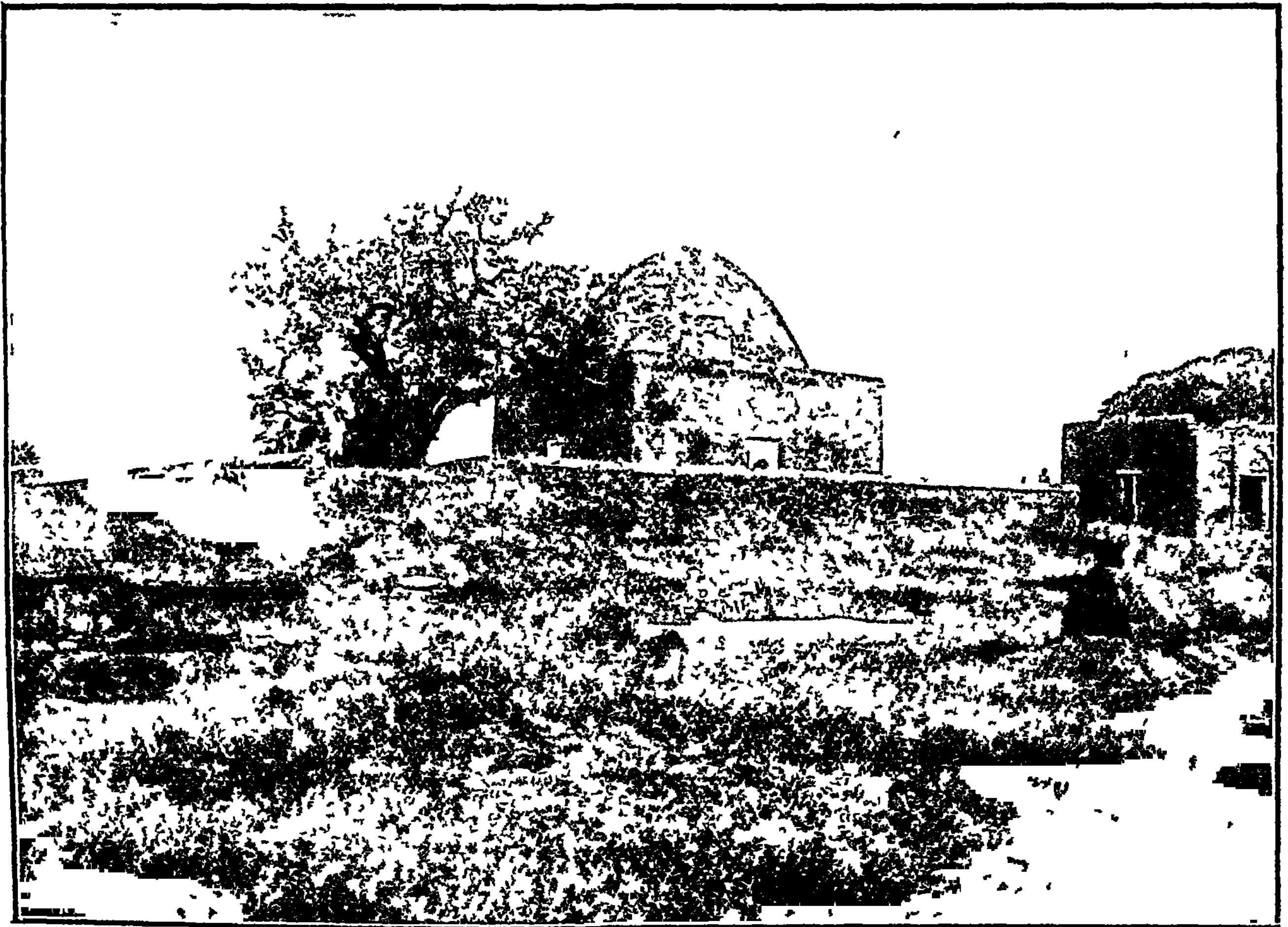
† डॉक्टर आर० मित्र का 'नैपाल में संस्कृत-साहित्य' (पृष्ठ ८८) देखें।

‡ विन्सेंट ए० स्मिथ—ईसवी सन् ८१५—८६०

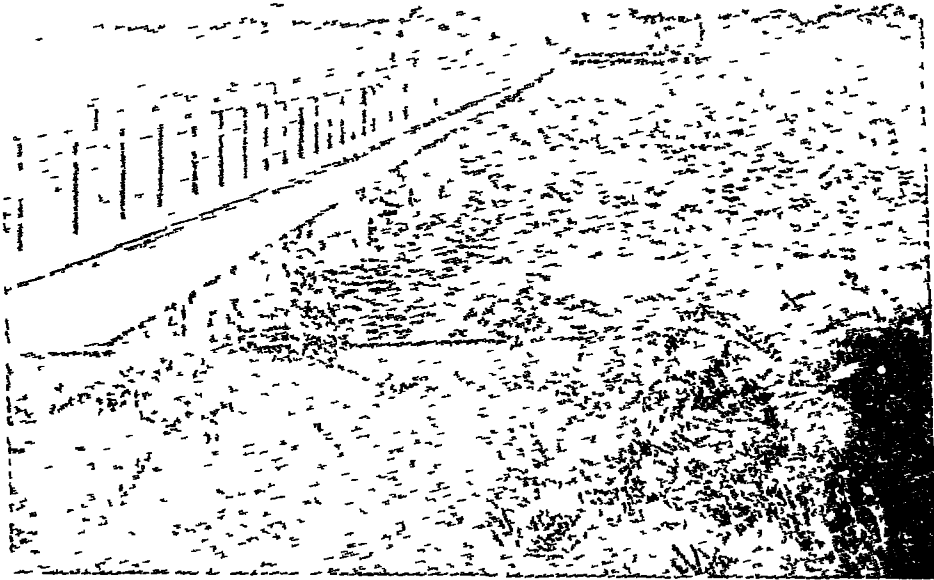
+ देखिये—'डे' का 'विक्रमशिला'—जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १९०९, पृ० १।



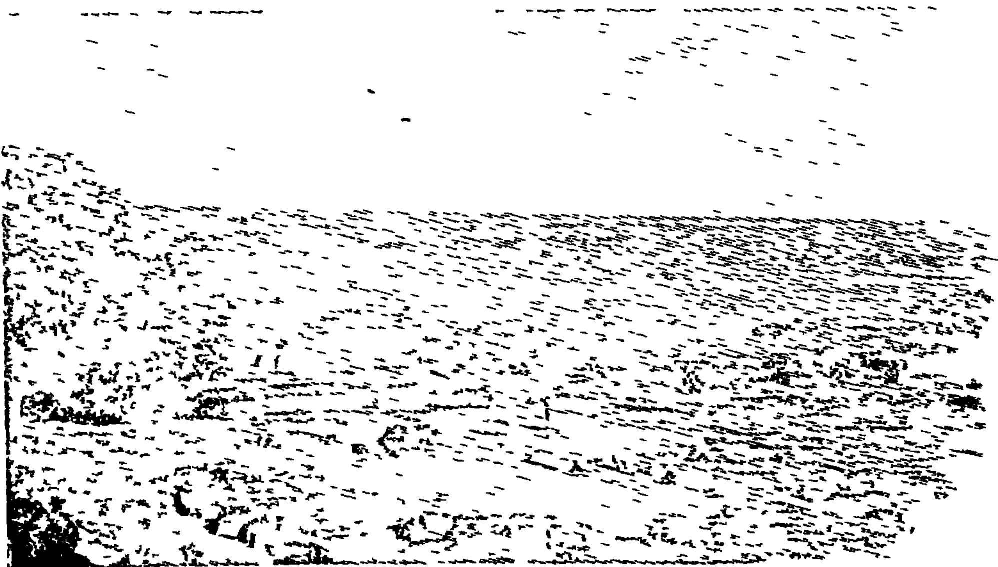
पटना से १९ मील की दूरी पर, 'मनेर' नामक कस्बे में, सन् १६१२ ई० मे बनकर तैयार हुआ, शाह दौलत नामक तत्त्वदर्शी संत का मकबरा, जो बिहार का सर्वश्रेष्ठ समाधि-मंदिर या स्मारक-भवन समझा जाता है और जिसका बरामदा फतहपुर-सिकरी (आगरा) के बरामदे से प्रतिस्पर्धा करता है। (पृष्ठ ६६३)



बिहारशरीफ (पटना) से दो मील की दूरी पर, बड़ी पहाड़ी पर बनी, मलिक इब्राहीम बाय्यू नामक एक पहुँचे हुए फकीर का मकबरा, जो १४ वीं सदी के मध्य मे बना था।



पावापुरी (पटना) का—जहाँ जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी को निर्वाण-प्राप्ति हुई थी—'जलमन्दिर'। लेख—पृष्ठ ३८६



प्राचीन उदन्तपुरी (विहारशरीफ, पटना) के भग्नावशेष का दृश्य। आठवीं सदी से १२ सदी तक जहाँ पालवंशी राजाओं की राजधानी थी। राजा गोपाल ने यहाँ एक विशाल वि॰ बनवाया था, जिससे 'विहार' नाम पड़ा, बख्तियार खिलजी ने इसे उजाड़ा। पीछे य मुसलमानों का केन्द्र हो 'शरीफ' बन गया। (पृष्ठ १५३)

नाथ-लोकेश्वर ') की रचना की। भ्रमवश यह महादेव-मूर्त्ति भी कही जाती है। दूसरा नाम 'पद्मपाणि' भी है। अवलोकितेश्वर को सृष्टि, पालन और संहार करने की क्षमता प्राप्त थी।*

'ईलियट' ने भी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में † इस स्थान का उल्लेख किया है—'नेपाल और उर्विल्व शब्द के अंतर्गत विवरण' में। उनके कथनानुरूप भी यहाँ बौद्ध-विहार था। बिहार नगर से ७ मील आग्नेय दिशा के 'तितरवा' स्थान में इस प्रकार के विहार के ध्वंसावशेष हैं।

सन् १४५१ ई० तक यहाँ राजधानी का होना पाया जाता है। बाद में शेर-शाह ने पटना में राजधानी पलट दी थी, और यह नगर उजड़ गया। इसी बात को प्रमाणित करनेवाला एक शिला-लेख भी प्राप्त ‡ है।

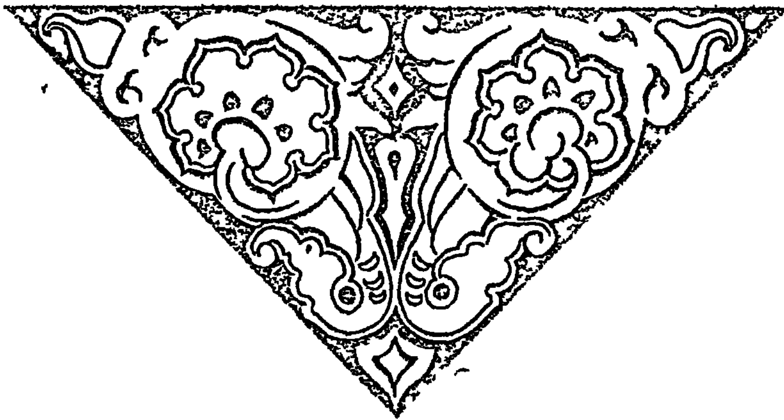
इस प्रकार बिहार-प्रान्त के अनेक छोटे-बड़े स्थान, भिन्न-भिन्न समयों में, ऐतिहासिक महत्त्व रखते रहे हैं। इनके वर्णनो से बुद्धकालीन साहित्य भरा पड़ा है।

वर्त्तमान बिहार-प्रान्त की एक प्रमुख साहित्यिक संस्था 'पुस्तक-भंडार' की 'रजत-जयंती' के इस पावन प्रसंग पर हम संक्षेप में 'उदंडपुर' का पुण्य स्मरण कर, बिहार के अतीत गौरव के समक्ष, सादर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

* 'बुद्ध-धर्म और साहित्य'—हॉगसन्—पृ० ६०-६१

† पुस्तक ४, पृष्ठ ४७७

‡ जनल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १८३९, पृष्ठ ३५०





बिहार का गोधन और उसकी गोशालाएँ

श्रीधर्मलालसिंह, व्यवस्थापक, दरभंगा-गोशाला-सोसाइटी

प्राणि-शास्त्रविशारदों ने यह बात एक मत से मान ली है कि मनुष्य । और गो-जाति—दोनों साथ-ही-साथ सृष्टि के प्रारंभ में आईं। ऋग्वेद की करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है कि मनुष्यों को गौ से ही बोली प्राप्त हुई इसका खुलासा मतलब इस प्रकार है कि मनुष्य और गाय दोनों जब एक आये तब दोनों ही चुप थे। गाय पहले रँभाई और फिर उसी धड़ल्ले से ने मुँह खोला और 'मा' शब्द का उच्चारण किया। यह तो हुआ हिन्दू-दृष्टिकोण।

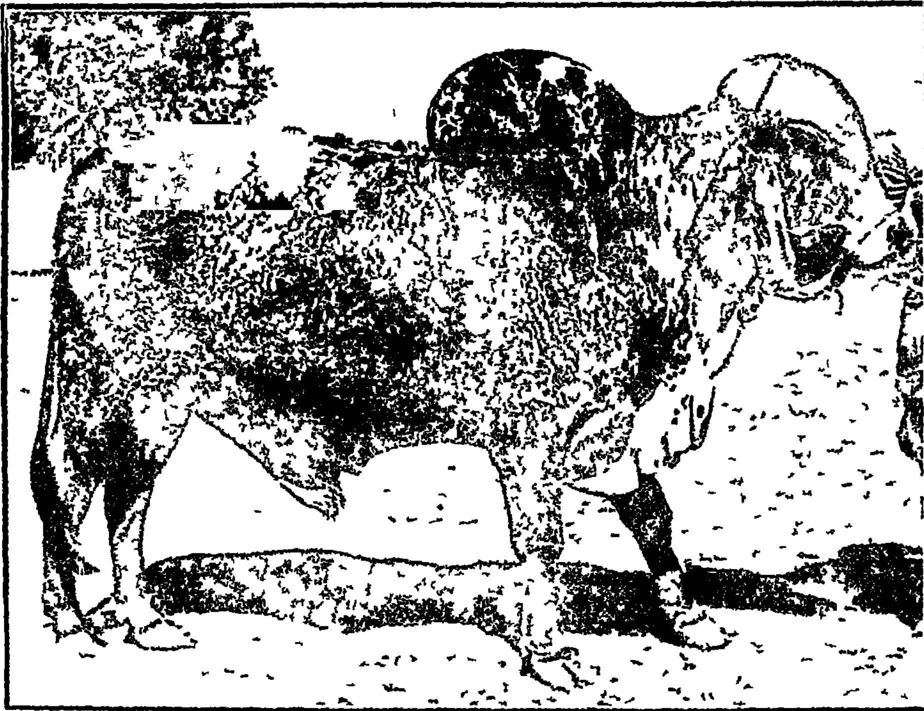
ईसाइयों और मुसलमानो के यहाँ लिखा है कि आदम और इव जब से निकाले गये तब खुदा ने उनको एक जोडी बैल और एक मुट्ठी गेहूँ दिया। भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य और गौ साथ-ही-साथ पृथ्वी पर आये।

पशु-विज्ञानवेत्ता डाक्टर मैकुलम और डाक्टर स्मित का कहना है कि के विना सभ्यता वन ही नहीं सकती। सभ्यता का आधार और रीढ़ गौ है इससे यह प्रमाणित होता है कि सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य और गौ के साथ आने पर भी गो-माता ही सभ्यता का प्रथम सोपान रही। और, सभी विद्वान् यह वात स्वीकार करते हैं कि सृष्टि की रचना तथा सभ्यता का सर्वप्रथम बिहार के उत्तर-भाग में, हिमालय की तराई की भूमि पर, हुआ था एक प्रमुख पाश्चात्य विद्वान् ने हिमालय और गंगा के मध्यस्थित विदेह-प्रदेश

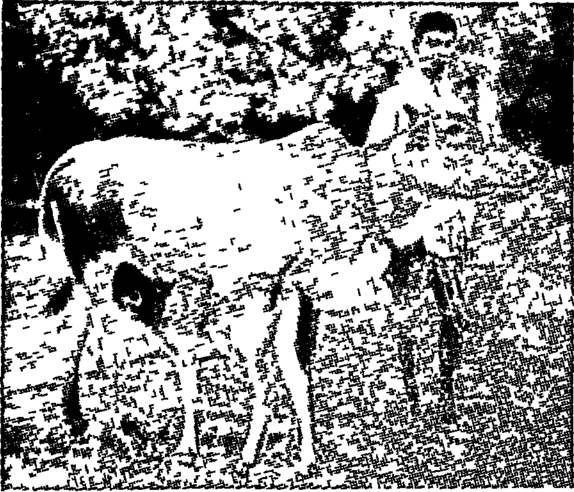
(लेख--पृष्ठ १५६)



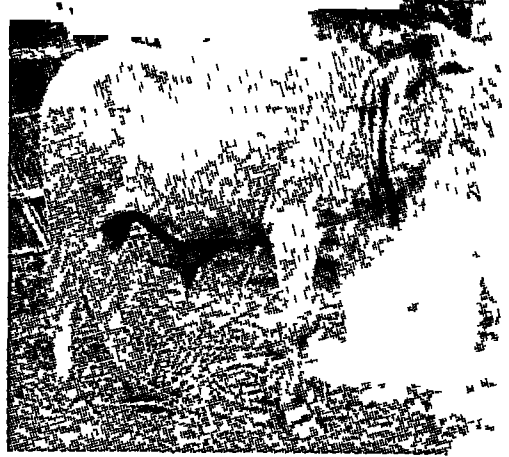
गोशाला (दरभंगा) का कार्यालय और संग्रहालय



गोशाला-सोसाइटी का गीर (गुजरात) जाति का साँड़



वछौर-जाति की दुग्धवती गाय



वछौर-जाति का, डेढ साल की उम्र का,



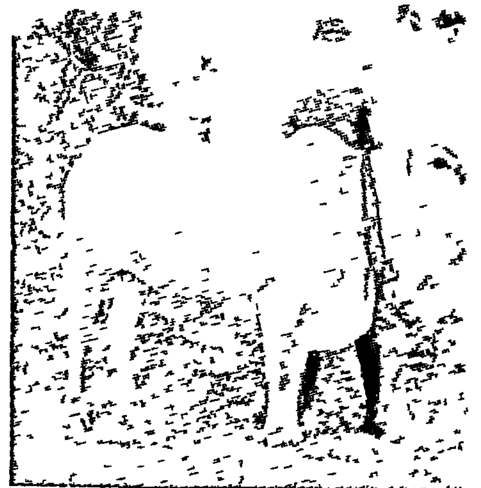
वछौर-जाति का वधिया बछड़ा



वछौर-जाति का कर्मठ बैल



वछौर-जाति की एक गाय



वछौर-जाति का बछड़ा-साँड़

आदिकालीन मानवी सभ्यता का पलना माना है। इसलिये स्वभावतः सिद्ध होता है कि बिहार के मनुष्यों तथा गोजाति का अति प्राचीन सम्बन्ध रहा है।

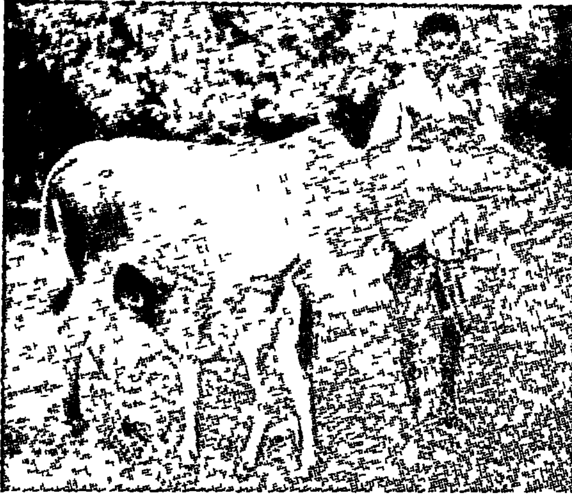
बात भी सच है। मगध, वैशाली और मिथिला का प्राचीन इतिहास संसार के लिये पथ-प्रदर्शक है। यहाँ के मनुष्यों ने मानव-जाति की सभ्यता के विकास में जो भाग लिया है उसके लिये सारा संसार उनका अनन्तकाल तक ऋणी रहेगा और सभ्यता के विकास में गोवंश का जो सहयोग रहा वह वैदिक युग के यज्ञकर्त्ता ऋषियों की दिनचर्या से स्पष्ट प्रकट है।

आधुनिक बिहार की उत्तरी सीमा के आसपास, हिमालय की तराई में, अनेक तपोवन और ऋषि-आश्रम थे। वहाँ कुँआ, पोखरा आदि के पूर्ण चिह्न आज भी घने जंगलों में मिलते हैं। वहीं उन ऋषियो का वासस्थान था जिन्होंने सृष्टि-रचना में बड़ा जबरदस्त हाथ बँटाया था। उन ऋषियों में प्रत्येक के पास हजार-हजार गायें थीं। यहाँ से कुछ दूर कैलास पर ब्रह्मा ने महादेव को बहुत-सी गौएँ दी थीं, जिससे उनका नाम 'पशुपति' पड़ा। आज भी नैपाल के प्रधान देव पशुपति हैं। वहाँ के सारे सरकारी कागज-पत्रों और सिक्कों पर पशुपति का चित्र अंकित रहता है। पशुपतिनाथ के दर्शन के लिये हर साल महाशिवरात्रि पर लाखों यात्री दूर-दूर से वहाँ आते हैं।

कहते हैं कि वाणासुर की राजधानी बिहार के निकट पड़ोसी नैपाल में थी। वह भगवान् महादेव का परम भक्त था। महादेव ने उससे प्रसन्न होकर उसको बारह गायें दी थीं। वाण की गायों के आगे संसार की विभूति का कुछ भी मूल्य न था। पश्चिम में वैज्ञानिक विधि से प्रतिपालित और परिपुष्ट गौएँ अपने दुग्ध-बाहुल्य से आज जो संसार को चकित करती हैं तथा प्रति दिन डेढ़ मन दो मन दूध देती हैं, वे भी वाणासुर की गायो के आगे बकरी की ही उपमा के योग्य हैं। इस प्रसंग में एक कथा है—

जब श्रीकृष्ण ने अपनी अजेय यादवी सेना लेकर वाणासुर की राजधानी पर चढ़ाई की तब वाण ने अपने मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा की। मंत्रियों ने कहा—"श्रीकृष्ण से पार पाना कठिन है। राज्य चला जाय, इसका मोह नहीं। परन्तु अपनी बारह गायों को किसी प्रकार बचा लेना चाहिये; क्योंकि इनके आगे राजपाट कोई चीज नहीं है।"

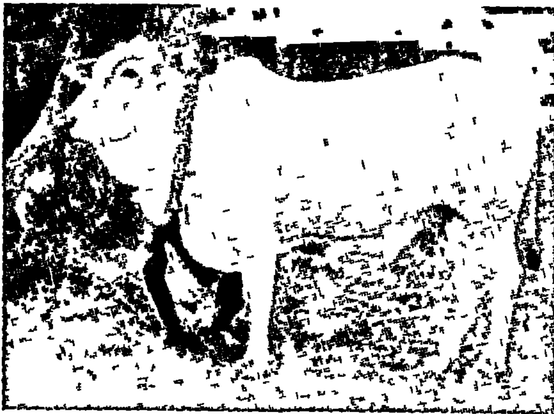
वाण ने अपनी बारह गायें कुबेर के पास छिपा रक्खीं। उनसे कह दिया कि मेरी अनुमति के बिना आप ये गायें किसीको न दें।



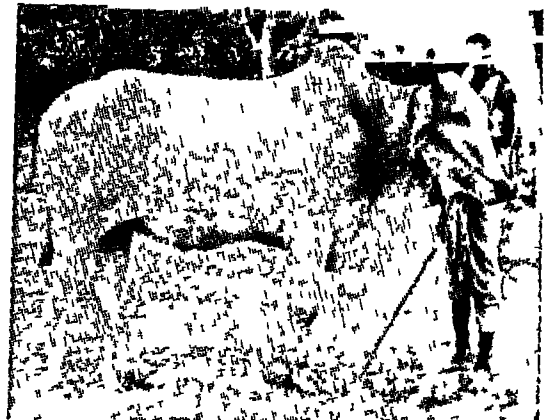
बछौर-जाति की दुग्धवती गाय



बछौर-जाति का, डेढ साल की उम्र का, बछड़ा



बछौर-जाति का बधिया बछड़ा



बछौर-जाति का कर्मठ बैल



बछौर-जाति की एक गाय



बछौर-जाति का बछड़ा-साँड

आदिकालीन मानवी सभ्यता का पलना माना है। इसलिये स्वभावतः सिद्ध होता है कि बिहार के मनुष्यों तथा गोजाति का अति प्राचीन सम्बन्ध रहा है।

बात भी सच है। मगध, वैशाली और मिथिला का प्राचीन इतिहास संसार के लिये पथ-प्रदर्शक है। यहाँ के मनुष्यों ने मानव-जाति की सभ्यता के विकास में जो भाग लिया है उसके लिये सारा संसार उनका अनन्तकाल तक ऋणी रहेगा और सभ्यता के विकास में गोवंश का जो सहयोग रहा वह वैदिक युग के यज्ञकर्त्ता ऋषियों की दिनचर्या से स्पष्ट प्रकट है।

आधुनिक बिहार की उत्तरी सीमा के आसपास, हिमालय की तराई में, अनेक तपोवन और ऋषि-आश्रम थे। वहाँ कुँआ, पोखरा आदि के पूर्ण चिह्न आज भी घने जंगलों में मिलते हैं। वहीं उन ऋषियों का वासस्थान था जिन्होंने सृष्टि-रचना में बड़ा जबरदस्त हाथ बँटाया था। उन ऋषियों में प्रत्येक के पास हजार-हजार गायें थीं। यहाँ से कुछ दूर कैलास पर ब्रह्मा ने महादेव को बहुत-सी गौएँ दी थीं, जिससे उनका नाम 'पशुपति' पड़ा। आज भी नैपाल के प्रधान देव पशुपति हैं। वहाँ के सारे सरकारी कागज-पत्रों और सिक्कों पर पशुपति का चित्र अंकित रहता है। पशुपतिनाथ के दर्शन के लिये हर साल महाशिवरात्रि पर लाखों यात्री दूर-दूर से वहाँ आते हैं।

कहते हैं कि वाणासुर की राजधानी बिहार के निकट पड़ोसी नैपाल में थी। वह भगवान् महादेव का परम भक्त था। महादेव ने उससे प्रसन्न होकर उसको बारह गायें दी थीं। वाण की गायों के आगे संसार की विभूति का कुछ भी मूल्य न था। पश्चिम में वैज्ञानिक विधि से प्रतिपालित और परिपुष्ट गौएँ अपने दुग्ध-बाहुल्य से आज जो संसार को चकित करती हैं तथा प्रति दिन डेढ़ मन दो मन दूध देती हैं, वे भी वाणासुर की गायों के आगे बकरी की ही उपमा के योग्य हैं। इस प्रसंग में एक कथा है—

जब श्रीकृष्ण ने अपनी अजेय यादवी सेना लेकर वाणासुर की राजधानी पर चढ़ाई की तब वाण ने अपने मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा की। मंत्रियो ने कहा—"श्रीकृष्ण से पार पाना कठिन है। राज्य चला जाय, इसका मोह नहीं। परन्तु अपनी बारह गायों को किसी प्रकार बचा लेना चाहिये; क्योंकि इनके आगे राजपाट कोई चीज नही है।"

वाण ने अपनी बारह गायें कुबेर के पास छिपा रक्खीं। उनसे कह दिया कि मेरी अनुमति के विना आप ये गायें किसीको न दें।

लड़ाई शुरू हुई। बाणासुर हार गया। लूट का माल लेकर कृष्ण चलने लगे। किसी ने उनसे कहा—"महाराज, आपने जीता क्या? इसकी बारह गायें कुबेर के पास छिपी हैं। यदि आपको वे न मिलीं तो आपकी जीत भी हार ही समझी जायगी।"

श्रीकृष्ण ने कुबेर को कहलाया कि गायें दे दो, परन्तु उन्होंने नहीं दीं। लड़ाई का सामान हुआ। देवता लोगो ने बीच-बचाव में पड़कर श्रीकृष्ण को समझा-बुझा दिया। इस तरह कुबेर का पिंड छूटा। इन बारह गायो के विचरण से विहार की भूमि पवित्र हो चुकी है।

मैथिल महर्षि याज्ञवल्क्य को पुरोहित बनाकर मिथिलेश महाराज देवरात जनक ने यहीं की भूमि पर संसार की सम्पदा को लजानेवाली उत्कृष्ट और सुवत्सा एक सहस्र गायों का दान किया था।

बिहार की पूर्वी सीमा के पास, पुर्नियाँ जिले में, बी० एन० डब्लू० रेलवे के 'जोगवनी' स्टेशन के समीप, विराटनगर नामक प्राचीन स्थान है। यहीं के राजा मत्स्यनरेश महाराज विराट् की गायें संसार-प्रसिद्ध हैं। यही आकर पांडवों ने अपने वनवास का अन्तिम समय बिताया था। विराट् की जातिवन्त उत्कृष्ट गायो की प्रशंसा सुनकर उनके हरण के लिये बड़ी विशाल सेना के साथ कौरव लोग चढ़ आये थे। बड़ी लड़ाई हुई और वे मुँह की खाकर लौटे।

यहीं के तपोवन में उपमन्यु नामक विद्यार्थी भूल से आक का पत्ता खा गया। वह अंधा हो गया। ऋषिगुरु ने उसे चार सौ गौएँ चराने को दीं। गौएँ चराते-चराते उसको दृष्टि-लाभ हुआ।

इन बातो से भी पता चलता है कि बिहार में उस समय गोधन की संख्या बेशुमार थी।

महादेवजी हिमालय पर तपस्या करते थे। वहाँ कपिला गायें इतनी संख्या मे चारो ओर भरी पड़ी थीं कि कपिला के बच्चो ने ऊधम मचाया और अपने मुँह का फेन महादेवजी के मस्तक पर गिरा दिया। उनका ध्यान टूटा और क्रोध-भरी दृष्टि से ऊपर देखा तो कपिला के बच्चे नाना रंगो के हो गये।

गोमाहात्म्य की एक कथा गणेशजन्म मे वर्णित है। पार्वती ने अश्विनी-कुमार से यह कहकर दवा खाई कि पुत्र-लाभ होने पर वैद्यजी को मुँहमाँगी दक्षिणा मिलेगी। मनोरथ पूरा हुआ। पार्वती ने दक्षिणा देनी चाही। अश्विनीकुमार ने दक्षिणा में महादेव को माँग लिया। पार्वती बहुत घबराईं। लोगों ने अश्विनी-

कुमार को बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु उन्होंने नहीं माना। अन्त में भगवान् विष्णु आये और उनके समझाने-बुझाने पर अश्विनीकुमार राजी हुए। बोले—"महादेव के मूल्य के बराबर कोई चीज हमको दे दी जाय।" फिर गाय मँगाई गई। वही महादेव के मूल्य के रूप में दी गई। उसे पाकर अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए।

अस्तु। पुराण-काल के पश्चात् बुद्ध-काल में भी विहार मे गोधन की बहुलता और प्रचुरता थी।

भगवान् बुद्ध को तपस्या करते छ वर्ष से ऊपर हो गये, परन्तु बुद्धत्व का लाभ नहीं हुआ। सुजाता नामक देवी ने उन्हें सहस्र गौओं के दूध की खीर खिलाई, तब तुरत उनको बुद्धत्व प्राप्त हुआ। कथा यह है—

गया के 'समानी' नामक गाँव के 'उरुवेला' नामक सेनानी-वंश की कन्या सुजाता ने मन्नत मानी थी कि उसका यदि मनचाहा योग्य वर से व्याह हो गया तो वह वट-वृक्ष को सहस्र गौओं के दूध की खीर चढ़ावेगी। वैसा ही हुआ। उसने सहस्र गौओं को जेठीमधु के वन में चराया। आधी को दूहकर आधी गौओं को पिलाया। फिर उनको दूहा और वह दूध आधी को पिला दिया। इस प्रकार दूहते-पिलाते उसने अन्त में सोलह गायों को दूहा और उनका दूध आठ गौओं को पिलाया। फिर उन आठों को दूहकर खीर तैयार की। अपनी दासी 'पूर्णा' को उसने वृक्ष की झाड़-बुहार और लीप-पोत करने के लिये भेजा। पूर्णा वहाँ जाकर भगवान् बुद्ध के कान्तिमय मुखमंडल को देखकर दबे पाँवों लौट आई। सुजाता से कहा—"मालकिन, आपकी भेंट लेने के लिये पहले से ही वटवृक्षदेव साक्षात् रूप में बैठे हैं।" सुजाता बहुत प्रसन्न हुई। सोने के थाल में खीर परसकर वटवृक्ष के पास गई। भगवान् बुद्ध ने खीर खाई। उसी क्षण उनको बुद्धत्व मिला। बौद्ध-ग्रन्थ के सुत्तनिपात में यह प्रसंग आता है—

यथा माता पिता भाता अञ्ञे वापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसधा॥

जिस प्रकार मा, बाप, भाई और दूसरे सगे-संबंधी अपने मित्र हैं, उसी प्रकार गाय भी हमारी परम मित्र है, जिससे मृत-संजीवनी ओपधियाँ निकलती हैं।

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा ह्नासु गावो हनिंसु ते॥

गाय हमें अन्न, बल, कान्ति तथा सुख देनेवाली है। यही जानकर वे लोग गाय को नही मारते थे।

न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गावो एलकसमाना सोरता कुंभदूहना॥
ता विसाणे गहेत्वान राजा सत्थेन घातयि॥
ततो च देवा पितरो इन्द्रो असुररक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं निपति गवे॥
तयो रोगा पुरे आसुं इच्छा अनसनं जरा।
पसूनां च समारंभा अट्ठानवुतिमागमुम्॥

पर पीछे दिन पलटे। किसी को दुःख न देनेवाली, घड़ा भर-भर दूध देनेवाली, गायें बकरी की तरह गोमेध में यज्ञ-बलि दी जाने लगी। यह देखकर देव, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस, सभी बोले कि यह महा अधर्म है। फल यह हुआ कि पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, भूख और बुढ़ापा; पर गोवध शुरू होने पर अठानवे रोग पैदा हो गये।

बुद्ध के समय की एक रोचक कथा है। उससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उस समय गौओं की कितनी संख्या थी।

मगधराज बिम्बसार के राज्य मे भद्दियनगर में विशाखा के पिता धनंजय श्रेष्ठी प्रथम रहते थे। धनंजय ने अपनी पुत्री विशाखा का व्याह श्रावस्ती के जैन मिगार सेठ के पुत्र पुण्यवर्धन के साथ किया। दहेज में धनंजय ने ५०० गाड़ी सुवर्ण-मुद्राएँ, ५०० गाड़ी सोने की चीजे, ५०० गाड़ी चाँदी के बर्तन, ५०० गाडी ताँबे के बर्तन, ५०० गाड़ी खादी, ५०० गाड़ी घी, ५०० गाड़ी गुड़, ५०० गाडी चावल, ५०० गाड़ी हल-कुदाल आदि हथियार, ५०० रथ और १५०० दासियाँ दीं।

धनंजय ने लड़की को असंख्य गायें भी दीं। अपने आदमियों से उन्होने कहा—"जाओ, छोटा व्रज (गोकुल) खोल दो। एक-एक कोस के अन्तर पर तीन नगाड़े लेकर खड़े रहो। १४० हाथ की जगह बीच में छोड़कर दोनो किनारे खड़े रहो। इससे आगे गायों को मत जाने दो; ठीक खड़े हो जाने पर नगाड़े बजाना।"

व्रज से निकलकर गायों के एक कोस पहुँचने पर नगाड़ा बजा। फिर आधे योजन पर बजा। पीछे तीन कोस पहुँचने पर बजा। इस प्रकार लम्बाई में तीन कोस और चौड़ाई मे १४० हाथ से अधिक न फैलने दिया। लम्बाई में तीन

कोस और चौड़ाई में १४० हाथ के मैदान में, एक दूसरी से देह रगड़ती हुई गायें, ठसाठस भर गईं।

धनंजय ने कहा—"मेरी बेटी के लिये इतनी गायें बहुत हैं।" यह कहकर सेठ ने गोशाला का फाटक बन्द करा दिया। दरवाजा बन्द करते-करते भी ६०००० गायें, ६०००० बैल और ६०००० बछड़े निकल पड़े!

बौद्ध-काल के पश्चात् जैन-काल का इतिहास देखने से पता लगता है कि बिहार उस समय भी गोधन से परिपूर्ण था। राजगृह के महाशतक के पास अस्सी हजार गायें थीं। कांपिल्य के कुंडकौलिक के पास साठ हजार गायें थीं। आनन्द श्रावक ने महावीर स्वामी के पास जब श्रावक-व्रत लिया था तब उसके परिग्रह-परिमाण में उसका गोधन चालीस हजार गायों का माना गया था।

बिहार कैसा गोधन सम्पन्न था!

मुसलमानी शासन-काल तक बिहार में गोधन की संख्या का चिन्ताजनक ह्रास नही हुआ था। उस शासन का अवसान होने पर चमड़े का व्यापार बढ़ने से गोवध की अपार वृद्धि हुई। फलतः वर्त्तमान बिहार में, विशेषतः उत्तर-बिहार में, चमड़े तथा सूखे मांस के व्यापार के लिये, अवाध गति से गोवध हो रहा है। हाटों पर अन्यप्रान्तीय और एतद्देशीय दलाल लाखों की संख्या में गोधन खरीद-कर प्रतिवर्ष बाहर ले जाते हैं। नतीजा यह हुआ है कि बिहार में गोदुग्ध दुष्प्राप्य हो गया है। जहाँ पंजाब के गाँवों में २०—२५ मन दूध सहज ही में मिल सकता है वहाँ बिहार के गाँवों में १० सेर भी गोदुग्ध मिलना कठिन हो गया है! बड़ी विपरीत स्थिति है! जिस भूमि में जरासंध, बाणासुर, चन्द्रगुप्त, अशोक, शेरशाह, गुरु गोविन्दसिंह, कुँवरसिंह आदि के समान पुरुषसिंह उत्पन्न हुए थे, वहाँ के आदमी दूध के अभाव से अब कठिन जाँच के बाद फौज में भर्ती किये जाते हैं। किसी भी फौजी रिसाले का नाम बिहार पर नहीं है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि गोधन से परिपूर्ण बिहार इन दिनों सूना क्यो मालूम पड़ता है—क्या सिर्फ चमड़े और सूखे मांस के व्यापार के कारण ही इसका गोधन निम्न श्रेणी का होकर, अवनत दशा में रहकर, भयंकर संख्या में मारा जाता है?

विचार-पूर्वक देखने पर इसके तीन प्रधान कारण मालूम होते हैं—(१) घनी आबादी के कारण गोचर-भूमि का अभाव, (२) निम्न श्रेणी के साँड़ों का

उत्सर्गीकरण और उनके संरक्षण तथा पालन-पोषण में घोर असावधानता, (३) लोगों की भयावनी गरीबी !

बिहार की भूमि बड़ी उर्वरा है। उत्तर-बिहार और भी अधिक उर्वर है। अतः बाहर से अधिक संख्या में आकर लोग यहाँ बस गये। गोचर, पड़ती—सारी जमीन जोत-कोड़कर कृषि के काम में लाने लगे। नतीजा यह निकला कि गौओ के चरने के लिये कुछ भी स्थान न बचा। पौष्टिक आहार के अभाव से गौओ का स्वास्थ्य गिरता गया। बल की कमी के कारण उनके गुण भी कमने लगे। अथच बिहार के मनुष्यो की ही तरह उनका गोधन भी बलहीन और गुणहीन हो गया।

बिहार में मृतक-श्राद्ध के अवसर पर प्रतिवर्ष हजारो साँड़ दागे और छोड़े जाते हैं। यह परिपाटी जितनी उत्तर-बिहार में है, उतनी भारत के अन्य किसी भी प्रान्त में नहीं। शास्त्रो में साँड़ की बड़ी महिमा है। अँगरेज लोग इन दिनो जिस प्रकार गोधन-वृद्धि की कुंजी उत्तम साँड़ को मानते हैं तथा साँड़ की नस्ल के सुधार में हजारों रुपये खर्च करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन भारतवर्ष के ऋषि अच्छे साँड़ो के चयन, संवर्द्धन और विकास के लिये बड़े सयत्न थे। हजारो वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियों ने इसके लिये कड़े नियम बना दिये थे, जिनके आधार पर कार्य करके पाश्चात्य जगत् के लोगो ने गोधन-वृद्धि द्वारा अपनी सभ्यता, संस्कृति और सुख-समृद्धि को स्वर्गोपम बना लिया है। और, भारतीय ? इन्हें तो उन नियमों का न ज्ञान है न ध्यान।

ऋषि-प्रणीत उन नियमों का दिग्दर्शन कराने के लिये यहाँ कुछ अवतरण दिये जाते हैं—

"वृषोत्सर्गादृते नान्यत्पुण्यमस्ति महीतले"—समाज-सेवा के लिये वृषोत्सर्ग के समान दूसरा कोई पुण्य नहीं है।

पारस्करगृह्यसूत्र के तीसरे कांड की नवीं कंडिका का छठा सूत्र इस प्रकार है—"एकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथं छादयति यं वा यूथं छादयेद् रोहितो वैव स्यात्सर्वाङ्गैरुपेतो जीववत्साया. पयस्विन्या. पुत्रो यूथे च रूपस्वित्तमः स्यात्तमलङ्-कृत्य··· ··उत्सृजेरन्।" साँड़ एक या दो रंगो का हो—लाल रंग का हो तो उत्तम। सारे झुंड मे. डीलडौल और शरीर-बल मे, सबसे बढ़ा-चढ़ा हो, जिसका सारा परिवार जीता हो और जो बहुत दुधार गाय का बछडा हो।

"मुखपुच्छपादेषु सर्वशुक्लो नीलोलोहितो वा लोहित एव वा स्यात्। एवं कारेण लोहितस्यैकवर्णद्विवर्णाभ्यां प्राशस्त्यमुच्यते। कृत्स्नं वर्ग छादयति स्वपरिमाणे नाधः-

करोति।"—मुँह, पूँछ और पैर सफेद, काले और लाल हों। केवल लाल या किन्हीं दो रंगों का मेल विशेष प्रशस्त है। झुंड में सर्वोपरि हो, डीलडौल में सर्वश्रेष्ठ हो।

"सर्वैरंगैः समन्वितो न पुनर्हीनांगोऽधिकांगो वा।"—सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण हो; हीन किंवा अधिक अंगोंवाला भी न हो।

"जीवाः प्राणवन्तो वत्साः प्रसूतिर्यस्याः सा जीववत्सा तस्याः गोः पुत्रः पयो बहुक्षीरं विद्यते यस्याः सा पयस्विनी तस्याः बहुक्षीरायाः।"—बछड़ा शक्तिशाली हो, उसकी माता खूब दुधैल और दीर्घजीवी बछड़ों की जननी हो।

"यूथे वर्गविषये रूपमस्यस्तीति रूपस्वी अतिशयेन रूपस्वी रूपस्वित्तमः।"—सारे झुंड में सबसे अधिक रूपवान् हो।

ऊपर के सूत्रों पर हरिहर-विरचित टीका में लिखा है—

"उन्नतस्कन्धककुदः ऋजुलांगूलभूषणः।
महाकटितटस्कन्धौ वैदूर्यमणिलोचनः॥"

साँड़ का कंधा और डील ऊँचे और विशाल हों। जाँघ बड़ी, पूँछ सीधी और आँखें वैदूर्यमणि के समान हों।

"प्रवालगर्भशृंगाग्रः सुदीर्घऋजुवालधिः।
नवाष्टदशसंख्यैस्तु तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः॥"

सींग की नोक मूँगा-जैसी हो; पूँछ लम्बी और सीधी हो; दाँत तेज हों और गिनती में आठ, नौ या दस हों।

"पृथुकर्णो महास्कन्धः सूक्ष्मरोमा च योभवेत्।"

कन्धा ऊँचा, कान लम्बे और रोएँ छोटे-छोटे हों।

"भूमौ कर्षति लांगूलं पुनश्च स्थूलवालधिः।"

पूँछ जमीन तक पहुँचती हो और उसके छोर पर घने बाल हो।

नील साँड़ विशेष रूप से अच्छे गिने जाते थे—

"चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारसवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पांडुरः।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स वृषो नील उच्यते॥"

नील साँड़ का रंग लाल होता है। उसके पैर, मुँह और पूँछ उजली होती है। नील साँड़ की दूसरी पहचान—शरीर का रंग लाल, मुँह और पूँछ में पीलापन, खुर और सींग में उजलापन।

ऊपर के अवतरणों से पता चलता है कि हमारे पूर्वज साँड़ों के चयन में पश्चिम के वर्त्तमान गोपालकों से कुछ कम सावधानता नहीं रखते थे। लेकिन श्राद्ध में उत्सर्ग होनेवाले साँड़ों के विषय मे धीरे-धीरे यह भाव कमता गया। पहले बीस-पचीस गाँवो के बीच कोई बड़ा आदमी मुश्किल से साँड़ छोड़ता थॉ। वृषोत्सर्ग-श्राद्ध देखने के लिये लोग झुंड बाँध-बाँधकर जाते थे। परन्तु आज साधारण-से-साधारण श्राद्ध में भी—जिसमें कठिनता से कुल चालीस-पचास रुपये खर्च किये जाते हैं—बड़ी निम्न श्रेणी का बछड़ा लाकर दाग दिया जाता है। फल यह हो रहा है कि प्रतिवर्ष हजारों दगे हुए बछड़ों (साँड़ो) को पकड़कर विधर्मी लोग ले जाते हैं और उनको वधिया करके हल में जोतते हैं। जो थोड़े बच जाते हैं, वे गाँव-गाँव में जाकर गो-जाति की नस्ल को नष्ट करते हैं। उनसे जोड़ खाने पर गाय के बछड़े बड़ी नीच श्रेणी के होते हैं। इस प्रकार दिनानुदिन गोवंश की नस्ल पतनोन्मुख हो रही है। अब देहात में कठिनता से सेर-भर दूध देनेवाली गाय मिलती है।

गाय से कुछ विशेष उपकार होते न देखकर लोगो ने भैंस पालना शुरू किया। गाय के पालन-पोषण में शोचनीय उपेक्षा की गई। अन्ततोगत्वा वे गायें भार हो गईं। दो-चार रुपये में भी बिकने लगीं। कसाइयो के हाथों में पड़कर बेहद मारी जाने लगी। आयात-निर्यात के आँकड़े देखने से पता लगता है कि जितनी गौएँ मांसार्थ वध करने के लिये विहार से बाहर जाती हैं उतनी कहीं से नहीं। कैसा घृणित व्यापार है!

इस प्रकार वृषोत्सर्ग ने गोवश की जितनी हानि की है उतनी कसाइयों ने भी नहीं की। निकृष्ट साँड़ ने गोवंश की नस्ल को एकदम बदल डाला। उधर मुसलमान लोगो को मुफ्त में हजारों बछड़े साल में बैल के लिये मिलने लगे। जब बिहार-प्रान्त बंगाल के साथ सम्मिलित था तब साँड़ के सम्बन्ध का एक मुकदमा हुआ था। कलकत्ता-हाइकोर्ट ने फैसला दिया कि श्राद्ध में छोड़े गये ये साँड़ किसी की सम्पत्ति नहीं हैं—जो जहाँ और जिस लिये चाहें, उन्हें ले जा सकते हैं। इतना बड़ा विरुद्ध नियम पास हो जाने पर भी साँड़ों का छोड़ा जाना कम न हुआ, उलटे दिन-दिन बढ़ता ही गया।

सभी प्रान्तों की अपेक्षा विहार गरीब है। यहाँ प्रथम श्रेणी के लोग अधिक हैं; मध्यम श्रेणी के कम और निम्न श्रेणी के सैकड़े नब्बे। यह गरीबी इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि साल-भर मे कठिनता से छ 'महीने भी एक जून भोजन

लोगों को मिलता है। फाका करने के अलावा लोग चिचोर, सितुआ, घोंघा, आम की गुठली, पानी का शाक आदि खाकर जीते हैं।

जब मनुष्यों की यहाँ यह हालत है तब पशुओं की क्या बात ! चारे-दाने के अभाव से पशुवंश विकलांग हो गये हैं। पंजाब के प्रसिद्ध हिन्दू नेता रायबहादुर लाला रामशरणदास जब दरभगा आये थे तब मुझसे उन्होंने कहा था कि आपके यहाँ की गायें तो बकरियों से भी गई-गुजरी हैं !

शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि के लिये सम्यक् रूप से चारा-दाना मिलना अत्यावश्यक है। किन्तु गरीबी के कारण बिहारी जनता अपने पशुओं को आधा पेट भी नहीं खिला सकती। वे अस्थि-पंजर-मात्रावशेष हो गये हैं। किसानों के अवलम्ब के बदले वे भार हो गये हैं। किसानों की बढ़ती हुई गरीबी की ज्वाला में ये पशु घृताहुति का काम रहे हैं !

सरकार ने हमारे प्रान्त के पशुधन के लिये पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार की विपरीत अवस्था रहने, गोपालन-विद्या के लुप्त हो जाने और गो-वध की परिपाटी जारी रहने पर भी हमारे प्रान्त में आज भी चार जगहों के गोवंश बड़े नामी हैं—शाहाबाद, सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर), मल्हनी (भागलपुर) और बछौर (दरभंगा)।

प्रश्न उठता है कि बिहार-सरकार ने इन जातियों के गोधन के विकास के लिये अभी तक क्या किया है। उत्तर में 'नहीं' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता !

पूसा, सबौर, सेपया, फुलवारी और काँके में सरकारी फार्म हैं, जहाँ गोवंश के सुधार के काम होते हैं। सेपया (जिला सारन) में सिर्फ मूड़ा-जाति की भैंस पाली जाती है। पूसा (दरभंगा) में पहले इम्पीरियल डेयरी थी। उस समय पंजाब से मँगाकर शाहीवाल (मौंटगमरी) जाति के गोवश का पालन और परिवर्द्धन होता रहा। पहले आयरशायरी विलायती साँड़ मँगाकर संकर-वंश पैदा किया गया ; परन्तु वह बे-काम साबित हुआ। फिर शुद्ध शाहीवाल का जनन-कार्य प्रारंभ हुआ। इतने में भूकम्प हुआ। वह फार्म पूसा से उठाकर, लाख विरोध के होते हुए भी, दिल्ली ले जाया गया। तब से हिसार के गोवंश का वर्द्धन वहाँ हो रहा है। काँके (राँची) में शाहीवाल और थारपाकर-वंशों के पशुओं की जनन-क्रिया जारी है। फुलवारी (पटना) में भी थारपाकर-वंश के पशु पाले जाते हैं। सबौर (भागलपुर) में भी अन्य फार्मों की तरह अन्य-प्रान्तीय गो-धन का लालन-पालन होता है।

इस तरह पुंखानुपुंख रूप से देखने पर मालूम होता है कि आदि-बिहारी गो-धन के जनन और संवर्द्धन के लिये सरकार ने अभी तक कुछ भी नहीं किया। बहुत पैसे खर्च कर, अन्य-प्रान्तीय पशु मँगाकर उनकी नस्ल का सुधार करने से बिहार के किसानो का क्या फायदा हुआ ? बिहार के कितने गाँवों में शाहीवाल, थारपाकर और हिसार के गाय-बैल काम आते हैं ? इस तरह तो सिर्फ बिहार के पैसे बरबाद हुए; उनसे बिहारी गृहस्थों का रंचमात्र भी उपकार न हुआ।

अन्य प्रान्तों के पशु-धन के सुधार-सम्बन्धी रचनात्मक कार्यों पर दृष्टि डालने से मालूम होगा कि बिहार को छोड़कर सभी प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने गो-धन के सुधार में लगी हुई हैं। इससे वहाँ के निवासियों को बहुत लाभ पहुँचा है।

हिसार का डेयरी-फार्म भारत में सबसे बड़ा है। पंजाब-सरकार उसपर साल में कई लाख रुपये खर्च करती है। उसने हिसार-जाति के गो-धन का बहुत-कुछ सुधार किया है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड गाँव-गाँव में शुद्धवंशवाले साँड़ छोड़े हुए है—बराबर मेला और प्रदर्शनी करके, गृहस्थो को इनाम देकर, उत्साहित करता है। तभी तो वहाँ के साधारण-से-साधारण किसान भी साल में हजार पाँच सौ रुपये के बछड़े बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

उसी प्रकार पंजाब के मौंटगमरी जिले में भी शाहीवाल जाति के गोवंश के सुधार के लिये पंजाब-सरकार, फौजी छावनी के डेयरी-फार्म के अतिरिक्त, बहुत-से फार्म स्थापित कर उनपर लाखो रुपये खर्च करती है। इसके अतिरिक्त वह सहायता-रूप में अन्य खानगी फार्मों को भी रुपये और जमीन देती है।

पंजाब की ही तरह युक्तप्रान्त में मथुरा और मध्यभारत में झाँसी के फार्म, बम्बई में गोरक्षक-मंडली, मद्रास में बँगलोर-फार्म आदि अपने यहाँ गोवंश का विकास करते हैं। काँकरेज, खेलारी गीर, थारपाकर, लालसिंधी, मालवी आदि गोवंशों की उन्नति के लिये वहाँ की प्रान्तीय सरकारें बड़ी सावधानता से काम करती हैं।

लेकिन बिहार-सरकार इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देती। बिहार के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर ने एक बार इन पंक्तियों के लेखक से कहा था—"बछौर-वंश का गोधन बिहार का गौरव है।" सुना था, इस गोवंश के सुधार की एक योजना बिहार-सरकार के सामने स्वीकृति के लिये पेश है जिसमें एक लाख रुपये खर्च करने की बात थी। दरभंगा-गोशाला ने भी बछौर-वंश के सुधार के निमित्त सरकार के पास सहायता के लिये लिखापढ़ी की, परन्तु नकारात्मक उत्तर मिला—कहा

गया कि वह स्कीम पूसा में चालू की जायगी। किन्तु, दरभंगा जिले के उत्तर-खंड में 'बछौर' इलाका है और जिले के पश्चिम खंड में पूसा। फिर यह स्कीम वहाँ कैसे चालू होगी? बछौर के वंश का सुधार बछौर ही में होना चाहिये, जैसा अन्य प्रान्तों में होता है। परन्तु, बिहार की सरकार तो उलटी गंगा बहाती है! अभीतक न तो पूसा में ही कुछ किया गया और न स्कीम ही काम में लाई गई। लोगों की यह धारणा सच-सी मालूम पड़ती है कि सरकार 'कमखर्च बालानशीं' पसन्द नही करती!

पशुओं की अच्छाई जलवायु की अपेक्षा भूमि की अवस्था पर विशेष निर्भर करती है। नीची भूमि, नदी के कछार, चूनादार और नमकदार समतल भूमि के पशु कद और डील-डौल में भरे-पूरे तथा सुन्दर होते हैं। नीची भूमि और नदी के कछार वाली गाय अधिक दूध देती है। उस जमीन में यदि चूने का भी भाग हो तो चूनादार समतल भूमि के बैल बड़े मजबूत, कष्टसहिष्णु और बलिष्ठ होते हैं। चूने से शरीर का तंतु बनता और हड्डी मोटी तथा मजबूत होती है। हरी घास पशुओं के लिये अमृत-तुल्य है। काफी पानी से सिर्फ हरी घास ही नही मिलती, बल्कि काफी पानी पीने से पशु का शरीर मोटा-ताजा होता और उसकी दूध देने की क्षमता बढ़ती है। अनुभव करके देखा गया है कि जिस गाय के आगे सारा दिन बाल्टी-भरा पानी रक्खा रहता है वह उस गाय से अधिक दूध देती है जिसको दिन-भर में सिर्फ एक या दो वार पानी पिलाया जाता है। आगे की पक्तियाँ पढ़ने के पूर्व ये बातें ध्यान में अवश्य रख लेनी चाहिये।

शाहाबादी गाय और बैल दुधार और बड़े बलिष्ठ होते हैं। आरा के बड़हरा थाने में गंगा नदी के किनारे की गायों में दूध देने की क्षमता बहुत है। शाहपुर थाने में भी ऐसी गाये मिलती हैं; क्योंकि यह थाना भी गंगातटस्थ है। सोन नदी के दोनों पार्श्वों के गॉवो में गाय और बैल अच्छे मिलते हैं। वहाँ की भूमि में चूने का अंश है, इसीलिये बैल वहॉ मजबूत मिलते हैं। कलकत्ता के व्यापारी इस इलाके से वर्ष में हजारों गाये चुनकर ले जाते हैं; इसलिये अच्छे पशुओं का मिलना अब दुष्प्राप्य-सा होता जा रहा है। वहॉ की अच्छी गाय का मूल्य १००) से १५०) रुपये तक होता है और अच्छे बैलो की जोड़ी का दाम तो चार-पॉच सौ रुपये तक होता है।

सीतामढ़ी की नस्ल के बैल बड़े ऊँचे-पूरे और लम्बे-तगड़े तथा कष्ट-सहिष्णु होते हैं। मिथिला की कमला नदी के किनारे के गॉवो में ये बैल मिलते हैं। उधर

'मुसहरनिया के बैल' नाम से यह गोवंश प्रसिद्ध है। सीतामढ़ी के मेले में ये बैल बहुत मिलते हैं। चार-पाँच सौ रुपये तक की जोड़ी खरीदकर लोग बहुत दूर-दूर ले जाते हैं। मुजफ्फरपुर जिले के बेलसंड थाने की बागमती नदी के दोनो पार्श्वों की गायें अच्छी दुधार होती हैं। उसी जिले में सुरसंड के बाजार के आसपास की गायें भी अच्छी होती हैं।

गंगा के दोआब में, पटना के आसपास, मोकामा आदि की गायें ऊँचे कद की बड़ी अच्छी होती हैं। पटना शहर में संकर-जाति का गोवंश बहुत मिलता है। उसकी कहानी इस प्रकार है—

पटना में आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व टेलर साहब कमिश्नर थे। उन्होने आस्ट्रेलिया से दो साँड़ मँगवाये थे। उन्ही के वंशज ये संकर-जाति के गोवंश हैं। ये 'टेलर ब्रीड' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी गाये अधिक दूध देती हैं; परन्तु मक्खन का भाग कम रहता है। कद में गायें छोटी और सुन्दर होती हैं; पर बैल काम के लायक नहीं होते।

मल्हनी-जाति का गोवंश भी बिहार में बहुत अच्छा है। वहाँ की गायें खूब दुधार होती हैं और बैल सुलक्षणों से सम्पन्न तथा श्रमसहिष्णु होते हैं। अच्छी जोड़ी दो-ढाई सौ रुपये तक में बिक जाती है। कोशी और उसकी सहायक नदियों से वहाँ की भूमि सींची जाती है, इससे हरी घास मिलने के कारण वहाँ के पशु पुष्ट रहते हैं। मल्हनी-जाति के बैल कोशी-तट के मेलो—सिंहेश्वरस्थान (मधेपुरा, भागलपुर) के मेले और सुपौल (भागलपुर) की हाटो—में मिलते हैं।

बछौर-जाति का गोवंश वास्तव में बिहार का गौरव है। इतनी उपेक्षा, पालन-पोषण में इतनी असावधानता और नस्ल-बरबादी का सिलसिला जारी रहते हुए भी यह गोवंश बिहार में सर्वश्रेष्ठ है। बछौर की जलवायु अच्छी है। वहाँ कमला नदी बहती है। भूमि में नमक और चूने का अंश काफी है। इसलिये चराई की कमी होने पर भी यह गोवंश आज भी आदर्श है। नियमित रूप से व्यवस्था-पूर्वक यदि गोवंश-सुधार का थोड़ा भी प्रयत्न किया जाता तो इस वंश के गोधन की टक्कर का गोवंश भारत ही क्या, विदेशो में भी कठिनता से मिलता। बछौर के बछड़े अत्यंत प्रसिद्ध हैं। यहाँ के बैल बड़े श्रम-सहिष्णु, मझोले कद के, साँवले रंग के और निहायत मजबूत होते हैं। अच्छी जोड़ी का दाम सात सौ रुपये तक जाता है। गायें यद्यपि कम दूध देती हैं, फिर भी सुधारे जाने पर अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। अब भी अधिक दूध देनेवाली गायें वहाँ मिलती हैं। वहाँ के बैलों की

पूँछ घुटनों तक लटकती है। वे जब पानी में घुसते हैं, पूँछ उठा लेते हैं। वे ज्यों-ज्यों पुराने होते हैं, उनकी हड्डी मजबूत होती जाती है। यह इलाका दरभंगा जिले के खजौली, मधुबनी और जयनगर थानों के गाँवों से बना हुआ है। यदि बछौर-वंश के गोधन के लिये थोड़ा भी उपाय बिहार सरकार करती, तो आज बिहार की किसानी का कायाकल्प हो जाता और दूध के अभाव से बिहार-निवासियों के स्वास्थ्य-धन पर भी भारी धक्का नहीं लगता। नीचे के आँकड़े देखने से आपको स्पष्ट मालूम हो जायगा कि बिहार की अवस्था कितनी भीषण है—

प्रान्त	गोधन (लाख)	दूध (सेर)	एक आदमी पीछे (छटाँक)	मनुष्य की आबादी (लाख)
अजमेर	१।	६४ लाख	सवा दो	४
आसाम	१२॥	१११८ ,,	पौने दो	८७
बंगाल	६२	५५६० ,,	आधा	४५७
बिहार-उड़ीसा	४४	३६०६ ,,	एक	२८०
बम्बई	३	१८४७ ,,	डेढ़	२८०
बर्मा	११	१००१ ,,	आधा	१५
मध्यप्रदेश	२५	२२५२ ,,	पौने दो	११७
कुर्ग	¾	२६ ,,	एक	२
दिल्ली	½	१५ ,,	दो	६६
मद्रास	४½	३७६४ ,,	आधा	५००
सरहद	२	१८७ ,,	दो	२५
पंजाब	१८	६६३२ ,,	पौने तीन	२३५
संयुक्तप्रांत	४७	४२०६ ,,	डेढ़	५३५

कैसी गिरी हुई दशा है बिहार की।

यह भी बात ठीक नहीं है कि गरीबी के कारण बिहार के गोधन का उद्धार हो ही नहीं सकता। हमारे यहाँ के किसान गोपालन के समान दिलचस्प और लाभदायक तथा सुखप्रद व्यवसाय को एकदम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं—जनन, पालन और गो-चिकित्सा-विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ हैं—बुरे साँड़ से अपनी गाय को पाल खिलाकर उसकी संतति को दिनानुदिन क्षीण बना रहे हैं। उन्होंने गो-जनन-विद्या को एकदम भुला दिया है। कैसे साँड़ से पाल खिलाना चाहिये—साँड़ और गाय में रक्त-संबन्ध (पिता, भाई, पितामह, पुत्र आदि का) नहीं होना

चाहिये—उनको एकान्त में पाल खिलाना चाहिये—इत्यादि आवश्यक बातें हमारे किसान जानते ही नही।

उसी प्रकार गो-परिपालन-विधि के विपय में भी हमारे किसान एकदम अनभिज्ञ हैं। करोड़ो मन बरसाती घास गल-पचकर सड़ जाती है। उसके उपयोग का कुछ भी उपाय वे नहीं करते। पाश्चात्य देशो में यदि इस प्रकार इतनी घास मिलती, तो वे उसे खत्ते में जमा देते और गर्मी में निकाल-निकालकर पशुओं को खिलाते, अथवा धूप और छाया में सुखाकर उसका पुआल (hay) तैयार कर लेते। हमारे किसान पुआल और घास समूची-समूची पशु के आगे रख देते हैं। पशु आधा खाता और आधा नष्ट करता है। यदि उसी को बारीक-बारीक काटकर सानी बनाकर देते तो चारा भी बचता और पशु भी पुष्ट होता। चावल का धोवन, तरकारी और फल का छिलका, मॉड़ आदि रोज हमारे घरो से उठाकर बाहर फेंक दिये जाते हैं। यदि ये ही चीजे संग्रहीत करके पशुओ को दी जायें, तो उनके लिये ये अमृत-तुल्य होगी। और, बिहार के मत्थे जो यह कलंक है कि बिहारी अपने पशुओं को अधपेटा खिलाते हैं, वह बहुत-कुछ धुल जाता। परन्तु इस ओर न लोगो का ध्यान ही है और न इसके लिये प्रचार ही किया जाता है।

गो-चिकित्सा में तो हमारे किसान बिलकुल कोरे हैं। अच्छे-अच्छे पशु लाखो की सख्या में महामारी से मर जाते हैं। किसान यह नुकसान तो बरदाश्त करते हैं, लेकिन पशु-चिकित्सा की पद्धति जानने की कोशिश नहीं करते। अपढ देहाती ग्वाले कुछ अनुभूत प्रयोग और दवाएँ जानते भी हैं, पर किसी को बताते नहीं, उनकी जिन्दगी के साथ ही वे प्रयोग भी लुप्त हो जाते हैं।

गावो यत्र प्रपीड्यन्ते, यत्र नार्यः निरादराः।
तत्र गच्छ दरिद्रे त्वं, बंधूनां यत्र विग्रहम्॥

विहार के लिये यह बड़ी विपम समस्या है।

ऊपर के ऑकड़े देखने से मालूम हो गया होगा कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा विहार के गोधन की संख्या विशेप गिरी तो नहीं है; परन्तु सिर्फ संख्या ही है, गुण कुछ नहीं। 'Quality is better than quantity.'

बिहारी पशुओ की नस्ल का सुधार, स्वच्छ पानी और चारे की व्यवस्था तथा चिकित्सा का प्रबन्ध—ये तीन जरूरी विपय हैं।

अर्जेंटाइन (दक्षिणी अमेरिका), कनाडा (उत्तरी अमेरिका) आदि देशों मे जब नस्ल के सुधार का काम जारी हुआ तब सभी निम्न श्रेणी के पशुओं का

वध कर दिया गया! थोड़े-से सुजातिवन्त पशु लाकर जनन और वर्द्धन की पद्धति से पशु-धन बढ़ाया गया।

लेकिन इस तरह का अमानुषिक कार्य इस धर्मप्राण और धर्मभीरु देश में नही हो सकता। इसलिये यहाँ निम्नांकित उपाय ही फलप्रद जान पड़ते हैं—

उत्पन्न होते ही समस्त नर-बछड़ो को बधिया कर देने का प्रबन्ध शीघ्रातिशीघ्र हो।

मैजिक लालटेन और सिनेमा द्वारा मितव्ययितापूर्वक चारे के बचाने, उसे खर्च करने तथा उसे परती जमीन में उपजाने के तरीके बताये जायँ।

गोमय की बिक्री के लिये बोर्ड रहे।

पशुपालन समवाय नीति पर चले।

बिहार में स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े जंगल हैं। गाँवो के सभी निम्न श्रेणी के पशुओं को एकत्र कर उन्हीं जंगलो में रखने की व्यवस्था की जाय तथा संयोग करने से वे रोक दिये जायें।

बाहर से अच्छे-अच्छे साँड़ और गाये मँगाकर प्रति गाँव में दस की संख्या तक रक्खे जायँ।

भैंस रखने की व्यवस्था पर कड़े प्रतिबंध लगाये जायें। हो सके तो टिकस लगा दिया जाय; क्योंकि गौ से भैंस दो-तीन-गुना अधिक खाती है। उसका पड़वा किसानो के लिये विशेष उपयोगी या किसी काम का नहीं होता। उसका दूध रोगकारक और मनुष्य की प्रकृति के प्रतिकूल गुणवाला होता है। काका कालेलकर तथा महात्मा गांधी ने भैंस पालने के विरुद्ध अनेक बार लिखा है।

मुरदार चमड़े के जूते का व्यवहार हो।

इस योजना को काम में लाने से, जो गाये जंगल में भी रक्खी जायेंगी, जननकार्य के अभाव में, संतति-विहीन हो जीवन बितावेंगी। चारे-दाने का काफी संग्रह होगा। भैंस के हट जाने से बिहारी किसान को जो दूध के लिये अलग और खेती के लिये अलग पशु पालना पड़ता है, वह बोझ एकदम हल्का हो जायगा। अगले दस वर्षों में ही बिहार प्राचीन काल के समान विशिष्ट गोधन से परिपूर्ण हो जायगा।

× × × ×

अब बिहार की गोशालाओं की वर्त्तमान दशा पर भी विचार कर लेना अत्यावश्यक है। यदि यहाँ की गोशालाएँ, जनता की सहानुभूतिपूर्ण सहायता से

समर्थ होकर, गोवंशवृद्धि के शुभ प्रयत्न में संलग्न हों, तो बिहार के अधोगति-प्राप्त गोधन का बहुलांश में कल्याण हो सकता है। जबतक बिहार-निवासी अपनी गोशालाओं की आर्थिक स्थिति को सन्तोषजनक बनाने में सच्चे हृदय से सहायक न होंगे, तबतक न तो गोवंश का भीषण ह्रास रुकेगा और न गोदुग्ध का अभाव दूर होगा। तब फिर यह भी कह देना उचित होगा कि ऐसी परिस्थिति में बिहार-निवासियों के शरीर और मस्तिष्क की उन्नति भी किसी प्रकार न हो सकेगी; क्योंकि इस पृथ्वी पर गो-दुग्ध ही वास्तविक अमृत है और भूतल के इस अमृत का पान करके ही किसी देश की जनता अमृत-सन्तान बन सकती है।

प्राचीन भारत में प्रायः प्रत्येक हिन्दू गोरक्षा, गोपालन और गो-सेवा पर यथोचित ध्यान देता था। कृषि-प्रधान देश होने के कारण, और कृषिकर्म में अधिकतर गाय-बैल का ही उपयोग होने के कारण, यहाँ के निवासी अपने गो-धन की रक्षा में विशेष तत्पर रहा करते थे। जब से इस देश में विदेशी जातियों का पदार्पण हुआ तभी से यहाँ के गो-धन पर संकट आ पड़ा। दिन-दिन गो-धन का ह्रास होने से जन-बल, बुद्धि-बल, धर्म-बल, क्षेत्र-बल और कृषि-सम्पदा का भी ह्रास होने लगा।

भारत एक प्रसिद्ध गो-भक्त देश है। भारतीय साहित्य में गो-जाति की महिमा का विपुल वर्णन है। यहाँ के प्राचीन हिन्दू-राजाओं के गो-दान, गो-पालन और गो-सेवा की कथाएँ हमारे साहित्य में भरी पड़ी हैं। राजा-प्रजा की ओर से गो-वंश-वृद्धि के सतत प्रयत्न होते रहते थे, इसलिये यहाँ सार्वजनिक गोशाला की कोई आवश्यकता न थी; क्योंकि प्रत्येक सद्गृहस्थ का घर 'पंचगव्य' से पवित्र था। यहाँ के राजा और धनी लोग भी बड़े यत्न से गोपालन करते थे। गोकुलपति नन्द और राजा विराट् के गो-धन तथा सूर्यवंशी राजा दिलीप की आदर्श गो-सेवा से कौन हिन्दू परिचित नहीं है ?

किन्तु, कालचक्र के अनुसार देश-दशा में ऐसा घोर परिवर्त्तन हुआ कि जिस देश का वायुमंडल गव्य पदार्थों के हवन से सुरभित रहता था, जहाँ गौओं द्वारा यज्ञादि कर्म के लिये हव्य सामग्री के सुलभ होने से समयानुकूल वृष्टि के कारण धन-धान्य का बाहुल्य रहता था, वहीं—उसी देश की भूमि पर—अबाध गति से गो-वध अथवा गो-हत्या होने के कारण गो-रक्त की धाराएँ बहने लगीं। जो गो-जाति अपने पसीने से सींचकर यहाँ की भूमि को उपजाऊ बनाती थी, उसीका अखंड रक्तप्रवाह इस भूखंड को ऊसर बनाने लगा। यह शोचनीय और

दयनीय दशा जब स्वदेशहितैषियों के लिये असह्य हो उठी तब सार्वजनिक गोशाला की कल्पना कार्यरूप में परिणत हुई।

बढ़ती हुई गो-हत्या और गो-पालन में हिन्दुओं की उदासीनता को ध्यान में रखकर कहते हैं कि आर्य-समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अनाथ गौओं की रक्षा के लिये पहले-पहल रेवाड़ी में गोशाला स्थापित की। कुछ लोगों का मत है कि स्वामी दयानन्द के भी बहुत पहले अहिंसा-भक्त जैनियों ने इस काम को शुरू किया था। और, वैष्णव-धर्म के समर्थक मारवाड़ियों ने भी गोशाला-संस्थापन का श्रीगणेश कर दिया था। इस मत के पोषक लोग ऐसी बहुत-सी गोशालाओं के नाम लेते हैं जो रेवाड़ी की गोशाला से बहुत प्राचीन कही जाती हैं। यथा अग्र, भिवानी आदि की।

जो हो, गोशाला-संस्थापन का सुझाव चाहे जिस किसी ने दिया हो, परन्तु जहाँ-जहाँ वैष्णव महाजनों का समावेश हुआ वहाँ-वहाँ शनैः-शनैः गोशालाएँ स्थापित होती गईं।

सम्प्रति भारतवर्ष में छोटी-बड़ी २१०० गोशालाएँ हैं, जिनके लिये साल में लगभग डेढ़ करोड़ रुपये खर्च होते हैं। इनकी चल-अचल सम्पत्ति का मूल्य कई करोड़ रुपये कूता जा सकता है। लाखों आदमी इनमें काम करते हैं।

इतनी महत्त्वपूर्ण संस्था होने पर भी समाज में गोशालाओं की कुछ भी धाक नहीं है! इसके दो कारण हैं—

[१] पुराने विचार के लोगों द्वारा इनका संचालन होता है।

[२] गो-रक्षा-विज्ञान-शास्त्र से इनके कार्यकर्त्ता अनभिज्ञ हैं।

यद्यपि बिहार-प्रान्त का क्षेत्र अपेक्षा-कृत छोटा है और साम्पत्तिक दृष्टि से भी यह गरीब है, तथापि गौओं के प्रति यहाँ का धार्मिक भाव उच्च है। साथ ही, यह कृषिप्रधान प्रान्त भी है। फलस्वरूप ८८ गोशालाएँ इस प्रान्त में स्थापित हैं। इनका वार्षिक खर्च ५ लाख के लगभग है। इनमें प्रतिवर्ष १३००० पशु पाले जाते हैं। यदि इनकी चल-अचल सम्पत्ति कूती जाय तो ५० लाख से अधिक की जायदाद होगी। इतना होने पर भी, अवैधानिक रूप से संचालित होने के कारण, इनमें दो-चार को छोड़, बाकी सब-की-सब आर्थिक यंत्रणा से प्रपीड़ित हैं! किसी की गायें चारा बिना अस्थि-पंजर-मात्रावशेप हैं, कोई जनता द्वारा भेजी हुई अनाथ गायों के लेने से इनकार करती है। तात्पर्य यह कि संचालन-नीति अदूरदर्शितापूर्ण होने के कारण इनकी उन्नति की गुंजायश कम है और इनकी दशा भी शोचनीय ही है।

ये गोशालाएँ उद्देश्य-सादृश्य होने पर भी अलग-अलग डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाया करती हैं—एक दूसरी की मिथ्या निन्दा में लगी रहती हैं। आपस में स्पर्द्धा भी खूब है। पर वह स्पर्द्धा ईर्ष्याद्वेषपूर्ण है, सद्भावपूर्ण अच्छी नीति की नहीं।

इन गोशालाओं में अधिकतर का संस्थापन स्वामी आलाराम संन्यासी, काशी के गोलोकवासी पंडित जगत्नारायण तथा पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने किया है। बिहार में सबसे पुरानी गोशाला दरभंगा की है। इसके संस्थापक मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह थे।

कई गोशालाओं के ऊपर कर्ज लदा है। पंद्रह गोशालाओं के सिवा किसीके कागज-पत्र ठीक नहीं हैं। वर्ष में लगभग १५०० पशु दाखिल होते हैं और सब मर जाते हैं! लगभग सभी गोशालाओं के मैनेजर गो-रक्षा-विज्ञान-शास्त्र में कोरे हैं।

गोशालाओं की आय का मुख्य आधार है व्यापार पर लगी हुई बित्ती। महाजन लोग बिक्री पर दो आने सैकड़ा बित्ती ग्राहकों से वसूल करते हैं। बित्ती की दर भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न रूपों में है। इस तरह वसूले हुए रुपये अपने बही-खाते में जमा कर महाजन लोग गोशाला को देते हैं। कुछ लोगों को सन्देह है कि वसूली हुई सारी रकम गोशाला को नहीं मिलती है। इसका रहस्य ईश्वर जाने!

देश के नेताओं और बड़े लोगों के उपदेशानुसार कई गोशालाओं ने दुग्ध-व्यवसाय तथा नस्ल सुधारने का काम जारी किया है। इससे भी उनकी आमदनी बढ़ी है। कई गोशालाओं के अधिकार में भू सम्पत्ति भी है। उससे भी उनको अच्छी आय हुआ करती है।

जिस प्रकार लोगों में धार्मिक भाव का ह्रास होता जा रहा है और जिस दर्जे के अपरिवर्त्तनवादी लोगों के हाथों में इन गोशालाओं का संचालन सूत्र है उसपर खयाल करते हुए इन गोरक्षिणी संस्थाओं का भविष्य अन्धकारमय मालूम होता है। हमारे देश की जनता गोशाला का कुछ भी महत्त्व नहीं समझती! देश की सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। राजा-महाराजों की भी इधर दिलचस्पी नहीं। ताल्लुकेदार और जमीन्दार भी उदासीन ही रहते हैं। ऊँचा ओहदावाले नौकरी-पेशा लोगों का तो इधर बिलकुल ध्यान नहीं। 'गोशाला' नाम से लोगों को मृतक संस्था का भान होता है। 'गोशाला' शब्द सुनते ही उच्चशिक्षा-प्राप्त बाबुओं और धनी-धोरी रईसों की नाक-भौं चढ़ जाती है। केवल व्यवसाय-परायण वैश्य-जाति ही अपनी बुद्धि और अर्थशक्ति के अनुसार गोशाला-संरक्षण



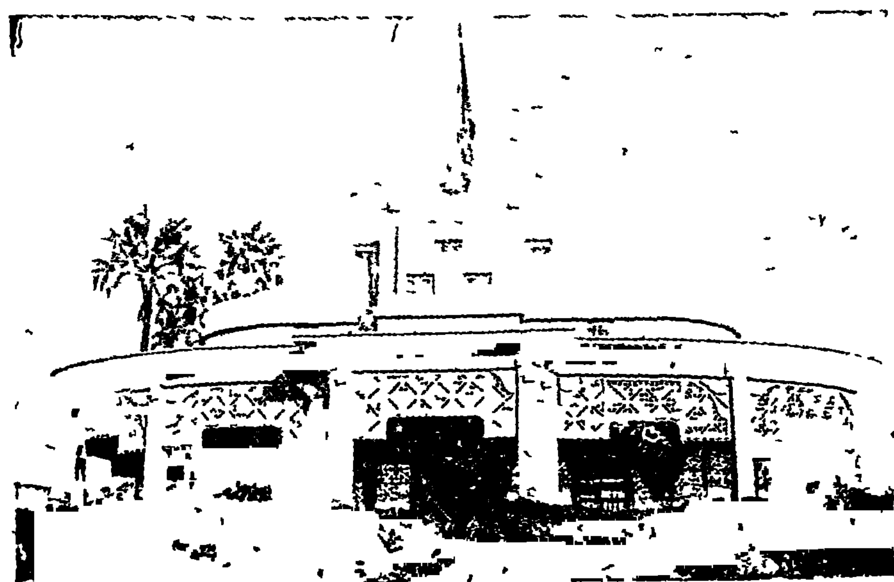
श्रीगोलेश्वरी-धेनु-मन्दिर का मध्य भाग



गोशाला-सोसाइटी के यशस्वी चेयरमैन
श्रीमान् ओझा मुकुन्द झा
(दरभंगा-नरेश के बहनोई)



गोशाला-सोसाइटी (दरभगा) का मुख्य गोपाल-द्वार



गोशाला-सोसाइटी (दरभगा) का गो-चिकित्सालय



में तत्पर है। यदि हमारे व्यापारी महाजन गोशालाओं की सुधि न लें तो फिर अनाथ गौओं का राम ही रखवार है !

बिहार की गोशालाओं को संगठित करने के लिये कई बार उद्योग हुए। आलाराम संन्यासी ने प्रथम प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल रहे। काशी के पंडित चुन्नीलाल मालवीय ने भी इसके लिये उद्योग किया। फलस्वरूप वंग-बिहार-गोशाला-सम्मेलन का प्रथमाधिवेशन, सन् १९२३ में, वैद्यनाथ-धाम में, श्री अमूल्यधन अद्दी के सभापतित्व में हुआ। दूसरे ही वर्ष उसका दूसरा अधिवेशन दरभंगा में श्री १०८ जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थ महाराज की अध्यक्षता में हुआ। तीसरा अधिवेशन मुँगेर में हुआ। पश्चात् गुटबन्दी के कारण सम्मेलन असफल रहा और उसका अन्त हो गया।

बिहार के ऐतिहासिक भूकंप के समय सन् १९३४ ई० में बम्बई की जीवदया-मंडली के यशस्वी सहकारी मंत्री श्रीजयन्तीलाल नारदलाल मानकर के उद्योग से दरभंगा में प्रथम बिहार-प्रान्तीय गोरक्षा-सम्मेलन, नवम्बर में, पूज्य मालवीयजी के सभापतित्व में, हुआ। दरभंगा-नरेश महाराजाधिराज सर कामेश्वरसिंह बहादुर ने उसका उद्घाटन किया। स्थायी समिति के सभापति निर्वाचित हुए मिथिलेश के अनुज राजाबहादुर विश्वेश्वरसिंहजी तथा मंत्री कुमार गंगानन्दसिंहजी। उस सम्मेलन में बिहार की समस्त गोशालाओं की स्थिति का निरीक्षण-परीक्षण किया गया। परन्तु कालान्तर में बिहार के गोशाला-संचालकों की अन्यमनस्कता के कारण उसकी कार्यवाही भी ढीली पड़ गई। इससे इस हिन्दू-प्रधान प्रान्त की गोभक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

सन् १९३१ ई० में दरभंगा की गोशाला ने अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई थी। उसी अवसर पर गोसाहित्यसम्मेलन का भी आयोजन हुआ था। कविवर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' सभापति हुए थे। स्वागताध्यक्ष कुमार गंगानन्द सिंह तथा स्वागत-मंत्री श्रीरामलोचनशरण बिहारी थे। प्रदर्शनी का विराट् आयोजन था। गो-सप्ताह धूमधाम से मनाया गया। परन्तु, जलवृष्टि के कारण बिहार की रामगढ़-कांग्रेस की तरह ही उसकी सफलता में बड़ी बाधा पड़ी।

बिहार-कौंसिल में कुमार गंगानन्दसिंहजी ने गोशाला-सुधार के लिये गोशाला-बिल पेश किया है। बिल पर जनता की राय ले ली गई है। देखें, क्या परिणाम होता है।

बिहार में निम्न-लिखित अठासी (८८) गोशालाएँ हैं—

स्थान-नाम	स्थापनकाल	पशु	आमद-खर्च	कोष
१ दरभंगा	सन् १८८१ ई०	१७००	३००००)	४५००००)
२ मधुबनी	१८८५	२५०	१००००)	१००००)
३ समस्तीपुर	१९०८	५०	२५००)	१०००)
४ रसियारी	दरभंगा की शाखाएँ			
५ रखवारी				
६ गंगवारा				
७ निगौल				
८ ताजपुर	१९०१	२०	२५०)	×
९ जयनगर	१९२८	२२५	५०००)	२१०००)
१० दलसिंगसराय	१९१०	१००	४०००)	×
११ मोहद्दीनगर	१९३०	१००	१५००)	×
१२ चुन्नी	१९२९	१००	५००)	×
१३ मधेपुर	१९१०	१००	१०००)	×
१४ रोसड़ा	१८९०	१००	२५००)	×
१५ कुशेश्वर	१९२०	५०	७००)	×
१६ मुजफ्फरपुर	१८९०	७००	२००००)	३०००००)
१७ हाजीपुर	१८८५	११०	१५००)	२०००)
१८ सीतामढ़ी	१८९३	५००	५०००)	६०००)
१९ लालगज	१८९२	४०	५००)	×
२० बैरगनिया	१९१२	१००	५०००)	×
२१ सुरसंड	१९२५	४०	१२०००)	×
२२ जनकपुररोड	१९२५	१००	१५००)	६०००)
२३ महनार	१९१०	१५०	३०००)	×
२४ छपरा	१९१०	३००	८०००)	१५०००)
२५ सीवान	१९१५	१००	२०००)	५०००)
२६ गोपालगंज	१९०९	५०	२०००)	×
२७ महाराजगज	१९१४	१२५	२०००)	×
२८ मोतिहारी	१९१२	२००	५०००)	१५०००)

स्थान-नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
२६ बेतिया	१६०६	२००	५०००)	१००००)
३० रक्सौल	१६१६	२५०	२०००)	५०००)
३१ सुगौली	१६२२	७०	१०००)	×
३२ मधुबन	१६२८	५०	५००)	६०००)
३३ मेहसी	१६११	३३	७००)	×
३४ बाराचकिया	१६१८	१००	२५००)	×
३५ रामगढ़वा	१६२८	१६०	५००)	×
३६ चनपटिया	१६१८	५०	५००)	×
३७ नरकटियागज	१६१७	१००	१०००)	×
३८ पटना-सिटी	१८८८	७००	२५०००)	२००००)
३६ बिहटा	१६२२	५०	७००)	×
४० मोकामा	१६१३	१५०	५०००)	५०००)
४१ बाढ़	१६१०	१५०	२०००)	४०००)
४२ राजगिरि	१६२१	२००	५००)	२०००)
४३ खुशरूपुर	१६१६	७०	७००)	५०००)
४४ बिहार-शरीफ	१६१६	२०	१५००)	२०००)
४५ आरा	१८६५	१५०	३०००)	४०००)
४६ सहसराम	१६१७	१५०	५०००)	५०००)
४७ जगदीशपुर	१६१०	५०	१०००)	५०००)
४८ बक्सर	१६१०	२७५	५०००)	७०००)
४६ गया	१८८६	३००	११०००)	५०००)
५० जहानाबाद	१८२५	१८०	३०००)	७०००)
५१ औरंगाबाद	१६१२	१००	२५००)	५०००)
५२ सोनाली	१६१७	१००	५००)	×
५३ नवादा	१६१५	१५०	२५००)	×
५४ भागलपुर	१८६५	७००	३००००)	६००००)
५५ नौगछिया	१६१८	३००	१०००)	२००००)
५६ सुपौल	१६१८	५०	५०००)	×
५७ निर्मली [दरभगा की शाखा]				

स्थान-नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
५८ मधेपुरा	१९०६	५०	१०००)	×
५९ बनगाँव	१९१२	५०	५०००)	×
६० बाँका	१९२१	१५०	१०००)	१००००)
६१ किसनगंज		३००	१५०००)	२००००)
६२ कटिहार	१९१६	३००	१००००)	१००००)
६३ मुँगेर	१८८८	२००	१००००)	२२०००)
६४ खगरिया	१८९१	६००	१५०००)	१००००)
६५ लक्खीसराय	१८९९	३०००	८००००)	१००००)
६६ तेघड़ा	१८९९	१५०	३०००)	२०००)
६७ बेगूसराय	१८८७	२००	३०००)	५०००)
६८ हवेली-खड़गपुर	१९१२	७५	२०००)	३००००)
६९ वैद्यनाथधाम	१८९८	२००	१००००)	१००००)
७० दुमका	१८९९	१००	५०००)	×
७१ मधुपुर	१८९८	५०	२५००)	५०००)
७२ राँची	१८९७	२५०	१५०००)	२००००)
७३ रंका	१९१३	१००	२५०००)	×
७४ गुमला	१९२१	५०	५००)	×
७५ पालकोट	१९२७	४०	५००)	×
७६ पलामू डालटेनगंज	१९०१	२००	१२०००)	×
७७ हजारीबाग [कलकत्ता-पिंजरापोल की शाखा]				
७८ कोदरमा	१९१५	५०	५००)	×
७९ बरही	१९१९	२०	५००)	×
८० कर्णपुर	१९१७	५०	६००)	×
८१ संभलपुर	१९०१	३००	५००००)	×
८२ पुरुलिया	१९००	४००	५०००)	×
८३ परमा	१९१९	४०	५००)	×
८४ बाराभूमि	१९२१	५०	५००)	×
८५ चाइबासा	१८९९	३००	१२०००)	×
८६ झरिया	१९०७	३००	१५०००)	×

स्थान-नाम	स्थापन-काल	पशु	आमद-खर्च	कोष
८७ जमदा	१९२१	५०	५००)	×
८८ सरंदा	१९२५	५०	५००)	×

ये सभी गोशालाएँ प्रतिवर्ष कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी को धूम-धाम से गोपाष्टमी-महोत्सव मनाती हैं। कहते हैं कि भगवान् गोपाल कृष्ण ने इसी दिन गो-चारण का श्रीगणेश किया था। गोपाष्टमी के उत्सव में केवल सभा होती है, कुछ व्याख्यान होते हैं, गायों का जलूस निकलता है, एक त्योहार-सा मनाया जाता है, किसी तरह सिर्फ रस्म पूरी की जाती है—कोई ठोस काम नहीं होता—गोशाला की उन्नति के लिये कोई नई स्कीम नहीं बनती; केवल मेला-तमाशा देखकर लोग घर चले जाते हैं, फिर साल-भर गोशाला की ओर कोई आँखें भी नहीं उठाता! गो-जाति की ऐसी उपेक्षा वास्तव में लज्जाजनक है!

गया की गोशाला साल में एक बार गया-जिला-गोरक्षा-सम्मेलन किया करती है, नेताओं और उपदेशकों के भाषणादि का प्रबन्ध करती है।

दरभंगा-गोशाला बराबर प्रचार-कार्य करती है। उसके तीन मैजिक लैंटर्न, एक सिनेमा और एक कीर्त्तन-मंडली है। उसके पास चार्टों का पूरा संग्रह है। उसके पुस्तकालय में गोरक्षा-संबन्धी काफी साहित्य है। शायद गोजाति-संबन्धी उतना साहित्य देश की किसी गोशाला के पास संग्रहीत नहीं है। प्रान्त-भर में उसका भवन विशाल, सुन्दर और दर्शनीय है। उसका कार्य-कलाप शृङ्खलाबद्ध है। वह सबसे अधिक गौओं का पालन करती है। उसने गो-साहित्य-विषयक पुस्तक-प्रकाशन का भी कार्यारम्भ किया है। उसके यहाँ से पहले 'जीवदया-गोपालन' नामक मासिक पत्र निकला करता था। आजकल 'गोधन' नामक मासिक पत्र निकलता है, जो हिन्दी-संसार में अपने विषय का एक ही पत्र है। पूज्य महामना मालवीयजी, डाक्टर मुंजे, देशपूज्य राजेन्द्र बाबू, लब्धकीर्त्ति कलाविद् रायकृष्णदासजी, महाकवि मैथिलीशरण गुप्त और बिहार के लाट साहब ने इसका निरीक्षण कर इसकी बड़ी प्रशंसा की है। कृषि-विभाग के डाइरेक्टर ने तो यहाँ तक लिखा है कि इस तरह की व्यवस्था हमने कहीं नहीं देखी। इसके सभापति दरभंगा-नरेश हैं। इसमें एक दर्शनीय गोपाल-मन्दिर भी है।

अन्य किसी गोशाला में नियमित रूप से प्रचार-कार्य नहीं होता है। अधिकांश गोशालाओं की अवस्था शोचनीय ही है। इनके सुधार के लिये निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देने की परम आवश्यकता है—

[१] केन्द्रीय गोचर-भूमि का होना अत्यावश्यक है, जहाँ बूढ़ी गौओं को एकत्र करके अर्थकष्टग्रस्त गोशालाओं के खर्च का बोझ हल्का किया जा सके।

[२] वार्षिक प्रान्तीय सम्मेलन हो, जहाँ गोशालाओ के कार्यकर्त्ता एकत्र होकर विचार-विनिमय किया करें।

[३] गौओ की नस्ल के सुधार का काम जारी किया जाय, ताकि पशुओं की विकलांगता दूर हो और वे विकृतांग होकर काटे जाने के बदले पाले-पोसे जाकर लाभदायक सिद्ध हों।

[४] व्याख्यान, कीर्त्तन, भजन, पुस्तक-प्रकाशन, चल-चित्रादि द्वारा गाँवों और नगरो में प्रचार-कार्य जारी किया जाय।

[५] गोरक्षा-विज्ञान-शास्त्र की शिक्षा का प्रबन्ध गोशाला के कार्यकर्त्ताओं के लिये किया जाय।

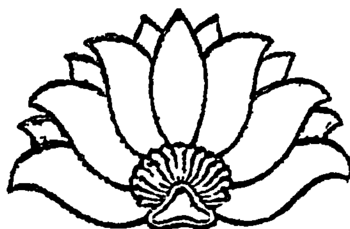
[६] आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से दुग्धालय की व्यवस्था हो।

[७] सामूहिक रूप से विधिवत् गोपालन तथा नस्ल के सुधारने का काम गाँवो में जारी किया जाय।

[८] पत्रकार और लेखक तथा कवि अपनी लेखनी से गोशालाओं की सहायता किया करें। पत्र-सम्पादक अपने खास स्तम्भ में गोशालाओ के प्रबन्धादि की आलोचना और जनता की सहानुभूति का आवाहन किया करें।

[९] जन्म, विवाह, उत्सव, श्राद्ध आदि अवसरो पर खास तौर से गौओं के निमित्त द्रव्यदान देने की प्रथा जारी की जाय। हिन्दू-गृहस्थ और गो-प्रेमी सज्जन गो ग्रास अथवा गो-अंश के महत्त्व का ध्यान रक्खे।

इस तरह के और भी बहुत-से सुझाव हो सकते हैं। यदि इनमें से एक-दो योजनाएँ भी कार्य-रूप में परिणत न हुईं, तो बिहार की अधिकांश गोशालाओं का जीवन संकटापन्न हो जायगा और बहुत संभव है कि उनका अस्तित्व तक मिट जाय, क्योकि गोशालाओ का सफलतापूर्वक संचालन आधुनिक शैली से ही हो सकता है।





बिहार—जैनियों की दृष्टि में

पंडित के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, 'जैनसिद्धान्तभास्कर'-सम्पादक, आरा

इस महत्त्व-पूर्ण विषय पर मैं दो दृष्टियों से विचार करूँगा—पौराणिक और ऐतिहासिक। जैनियों का विश्वास है कि वर्त्तमान काल में, भरतक्षेत्रान्तर्गत आर्य-खंड में, एक दूसरे से दीर्घकाल का अन्तर देकर, स्व-पर-कल्याणार्थ चौबीस महापुरुष अवतीर्ण हुए, जिन्हें जैनी लोग तीर्थङ्कर के नाम से सम्बोधित करते और पूजते हैं।

इन तीर्थङ्करों में उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्रीमल्लिनाथ, बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनि-सुव्रत, बाइसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ एवं चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रीमहावीर की जन्म-भूमि कहलाने का सौभाग्य इसी विहार-प्रान्त को है। मल्लिनाथ और नेमिनाथ की जन्मभूमि मिथिला, मुनिसुव्रत की राजगृह तथा महावीर की वैशाली है। इतना ही क्यों, चौबीस तीर्थङ्करों में बाइसवें श्रीनेमिनाथ और प्रथम श्रीऋषभदेव को छोड़कर शेष बाइस तीर्थङ्कर इसी विहार में मुक्त हुए हैं। इन बाइसों में बीस तीर्थ-ङ्करों ने वर्त्तमान हजारीबाग जिले के 'सम्मेद-शिखर' (Parshwanath Hill) नामक स्थान में मुक्ति-लाभ किया है, और शेष दो में महावीर ने 'पावा' में तथा वासुपूज्य ने 'चम्पा' में।

सम्मेद-शिखर, पावापुर और चम्पापुर के अतिरिक्त राजगृह, गुणावाँ,

गुलजारबाग नामक स्थानों को भी जैनी अपने अन्यान्य महापुरुषों का मुक्तिस्थान मानते आ रहे हैं।

सम्मेद शिखर, पावापुर, राजगृहादि स्थानों में जैनियों ने अतुल द्रव्य व्यय कर अनेक भव्य मन्दिर एव धर्मशालाएँ बनवाई हैं। प्रतिवर्ष, हजारों की संख्या में, जैनी समस्त भारतवर्ष से, यात्रार्थ वहाँ जाते हैं। जिस बिहार-प्रान्त में अपने परमपूज्य एक दो नहीं—बीस तीर्थङ्करों ने दिव्य तपस्या के द्वारा कर्मक्षय कर मोक्ष-लाभ किया है वह पावन प्रदेश जैनीमात्र के लिये कैसा आदरणीय एवं श्लाघ्य है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि एक श्रद्धालु जैनी के लिये इस बिहार का प्रत्येक कण, जो उनके तीर्थङ्करों एवं अन्यान्य महा-पुरुषों के चरणरज से स्पृष्ट हुआ है, शिरोधार्य तथा अभिनन्दनीय है। बल्कि इसकी विस्तृत कीर्त्ति-गाथा जैन-ग्रन्थों में बड़ी श्रद्धा से गाई गई है।

प्रथम तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेव इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। हिन्दू पुराणों के अनुसार ये स्वायम्भुव मनु की पाँचवीं पीढ़ी में हुए। इन्हें हिन्दू एवं बौद्ध[1] शास्त्रकार भी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और इस युग के प्रारंभ में जैनधर्म का स्थापक मानते हैं। हिन्दू अवतारों में ये आठवें माने गये हैं और संभवतः वेदों में भी इन्हीं का उल्लेख मिलता है। इन्ही ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र सम्राट् भरत के नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाता है।

बीसवे तीर्थङ्कर श्रीमुनिसुव्रतनाथ के काल में ही मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र एवं लक्ष्मण हुए थे। श्रीकृष्ण बाइसवे तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथ के समकालीन ही नहीं, बल्कि इनके भाई थे। अब कई विद्वान् भगवान् नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक व्यक्ति मानने लगे हैं। गुजरात में प्राप्त ईसवी-पूर्व लगभग ग्यारहवीं शताब्दी के एक ताम्रपत्र के आधार पर हिन्दू-विश्वविद्यालय (बनारस) के सुयोग्य प्रोफेसर डाक्टर प्राणनाथ विद्यालङ्कार तो स्पष्टतया इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति घोषित करते हैं, बल्कि उनका कहना है कि मोहोंजोदारो (सिन्ध) में उपलब्ध पाँच हजार वर्ष पूर्व की वस्तुओं में कई सील (मुहरे) भी है। इन सीलों में से कुछ में 'नमो जिनेश्वराय' साफ अंकित मिलता है[3]।

१—देखिये—भागवत ५। ४,५,६। २—देखिये—न्यायबिन्दु, अ० ३।
३—देखिये—'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली', भाग ७, न० २।

यद्यपि भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्व के तीर्थङ्करों के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये हमारे पास सबल ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी जैन-ग्रन्थों के कथन एवं आज से लगभग ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व के निर्मित अवशेष तथा शिलालेखादि से शेष तीर्थङ्करों के अस्तित्व का पता अवश्य चलता है। बल्कि कई विद्वान् रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में ही नहीं, यजुर्वेदादि सुप्राचीन वैदिक साहित्य में भी जैनधर्म एव श्रीनेमिनाथ आदि कतिपय तीर्थङ्करों का उल्लेख मानते हैं[3]।

आधुनिक खोज में जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के पूर्वगामी तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ को सभी इतिहासवेत्ता सम्मिलित रूप से ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार कर चुके हैं, जो भगवान् महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले हुए थे। अतएव, आधुनिक दृष्टि से, एक विशेष विश्वसनीय जैन-इतिहास का ईसवी-पूर्व नवम शताब्दी से प्रारंभ हुआ, यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है।

'जैनियों की दृष्टि में बिहार' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए मैं सर्वप्रथम अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर को ही लूँगा। इनका जन्म आज से २५३८ वर्ष पूर्व, चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के शुभ दिन, वर्त्तमान मुजफ्फरपुर जिले के 'बसाढ़' नामक स्थान में हुआ था, जिसका प्राचीन वैभवशाली नाम 'वैशाली' था। इनके श्रद्धेय पिता नृप सिद्धार्थ थे। ये काश्यपगोत्रीय इक्ष्वाकु अथवा नाथ या ज्ञात वंश के क्षत्रिय थे। इनका विवाह वैशाली के लिच्छवि-क्षत्रियों के प्रमुख नेता राजा चेटक की पुत्री प्रियकारिणी अथवा त्रिशला के साथ हुआ था। ऐसे सम्भ्रान्त राजवंश से वैवाहिक सम्बन्ध होना ही इनकी प्रतिष्ठा और गौरव का ज्वलन्त निदर्शन है। जैन-ग्रन्थों में नृप सिद्धार्थ नाथवंश के मुकुटमणि कहे गये हैं।

आधुनिक साहित्यान्वेषण से प्रकट हुआ है कि ज्ञात्रिक क्षत्रियों का निवास-स्थान प्रधानतया वैशाली (बसाढ़), कुंडग्राम एवं वणिय ग्रामों में था। साथ ही-साथ यह भी ज्ञात हुआ है कि नाथवंशीय क्षत्रिय कुंडग्राम से ऐशान्य दिशा में अवस्थित कोल्लाग में अधिक संख्या में रहते थे। वैशाली के बाहर निकट ही कुंड-

१—देखिये—कंकाली-टीलावाला मथुरा-जैनस्तूप। २—देखिये—खंडगिरि-उदय-गिरि-सम्बन्धी हाथी-गुफा का शिलालेख। ३—देखिये—'सक्षिप्त जैन इतिहास' (१ भाग) की प्रस्तावना और 'वेद-पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व'। ४—देखिये—उत्तर-पुराण, पृष्ठ ६०५।

ग्राम वर्त्तमान था, जो संभवत आजकल का 'वसुकुंड' गाँव है। जैन-ग्रन्थों के कथनानुसार भगवान् महावीर का जन्म यहीं हुआ था। कोई-कोई विद्वान् कोल्लाग को ही इनका जन्मस्थान बताते हैं। परन्तु यह बात दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों की आस्था के प्रतिकूल है।

नाथवंशीय क्षत्रिय वज्जिप्रदेशीय प्रजातन्त्रात्मक राजसंघ में सम्मिलित थे। कौटिल्य-अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि प्रजातन्त्र-राजसंघ में क्षत्रियकुलों के मुखियों की कौंसिल मुख्य-कार्य-कर्त्री थी और इस कौंसिल के सदस्यों का नामोल्लेख राजा के रूप में होता था[1]। यही कारण है कि भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ कुंडपुर के राजा कहलाते थे।

नाथवंशीय क्षत्रिय मुख्यतः जैनियो के तेईसवे तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। बाद जब भगवान् महावीर के दिव्य कर कमलों में जैनधर्म का शासन-सूत्र आया तब वे नियमानुसार उनके उपासक बन गये।

बौद्ध-ग्रन्थों में भगवान् महावीर 'निग्गंथनाथ पुत्त' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि उस जमाने में जैनसंघ इसी नाम से अधिक परिचित था। यह निर्विवाद बात है कि भगवान् महावीर के समय में वैशाली में जैनियों की संख्या अत्यधिक थी, बल्कि चीन के यात्री हुएनसंग (सन् ६३५ ई०) के भारतयात्रा-काल तक जैनियों की संख्या में वहाँ कमी नहीं हुई थी; क्योंकि उन्होंने अपने यात्रा-विवरण में स्पष्ट लिखा है कि वैशाली-राज्य का घेरा करीब एक हजार मील का था—वहाँ की जलवायु अनुकूल थी—लोगों का आचरण पवित्र और श्रेष्ठ था—लोग धर्मप्रेमी थे—विद्या की बड़ी प्रतिष्ठा थी और जैनी बहुत संख्या में मौजूद थे[3]।

तीस वर्ष की अवस्था में भगवान् महावीर ने संसार से विरक्त हो, अपने आत्मोत्कर्ष को साधने एवं संसार के जीवों को सन्मार्ग में लगाने के लिये, सम्पूर्ण राज-वैभव को ठुकराकर, जंगल का रास्ता लिया। दीन-दुःखियों की पुकार उनके उदार हृदय में घर कर गई और दुःखी जनता की सच्ची सेवा करने के लिये वे दृढप्रतिज्ञ हो गये।

१—देखिये—'कौटिल्य-अर्थशास्त्र' का मैसूर-संस्करण, पृष्ठ ४५५।

२—देखिये—मिसेज स्टिवेन्सन् का 'हार्ट आफ जैनिज्म' (लंडन)।

३—देखिये—'बंगाल-बिहार-उड़ीसा के प्राचीन जैन-स्मारक', पृष्ठ १३।

विशेष सिद्धि के लिये विशेष तपस्या की आवश्यकता होती है—यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इसीलिये महावीर को बारह वर्षों तक घोर तपश्चरण करना पड़ा; क्योंकि तपश्चरण ही आन्तरिक मल को छाँटकर आत्मा को शुद्ध, सुयोग्य एवं कार्य-क्षम बना सकता है।

इस दुर्द्धर तपश्चरण की कुछ घटनाओं का स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु, साथ-ही-साथ, इनके असाधारण धैर्य, अटल निश्चय, दृढ आत्म-विश्वास, अगाध साहस एवं लोकोत्तर क्षमा-शीलता को देखकर भक्ति से मस्तक झुक जाता है और मुख स्वयमेव स्तुति करने लग जाता है।

बारह वर्षों के उग्र तपश्चरणों के बाद, वैशाख शुक्ल दशमी को, जृम्भक गाँव के निकट, ऋजुकूला नदी के किनारे, साल वृक्ष के नीचे, केवलज्ञान अर्थात् सर्वज्ञत्वज्योति को ये प्राप्त हुए। इस प्रकार मुक्ति-मार्ग का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये जब ये सर्व प्रकार से उपयुक्त हुए तब जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित अपने विशिष्ट शुभ संकल्पानुसार इन्होंने लोकोद्धार के लिये अपना विहार (भ्रमण) प्रारम्भ किया।

संसारी जीवों को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिये लगभग ४२ वर्षों तक प्रायः समग्र भारत में अविश्रान्त रूप से इनका विहार होता रहा। खासकर दक्षिण एवं उत्तर-बिहार को यह लाभ प्राप्त करने का अधिक सौभाग्य है। विद्वानों का कहना है कि इस प्रदेश का 'बिहार' शुभ नाम महावीर एवं गौतम बुद्ध के विहार की ही चिरस्मृति है।

जहाँ पर महावीर का शुभागमन होता था वहाँ के पशु-पक्षी तक भी आकृष्ट होकर इनके निकट पहुँच जाते थे। इनके पास किसी प्रकार के भेद-भाव की गुंजायश नहीं थी। वास्तव में जिस धर्म में इस प्रकार की उदारता नहीं है वह विश्व-धर्म—सार्वभौमिक—होने का दावा नहीं कर सकता। भगवान् महावीर की महती सभा में हिंस्र जन्तु भी सौम्य बन जाते थे और उनकी स्वाभाविक शत्रुता भी मिट जाती थी।

महावीर अहिंसा के एक अप्रतिम अवतार ही थे। इस बात को स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी और कवीन्द्र रवीन्द्र-जैसे जैनेतर विद्वानों ने भी मुक्तकंठ से स्वीकृत किया है।

भगवान् महावीर ने अपने विहार में असंख्य प्राणियों के अज्ञानान्धकार

को दूर किया, उन्हें यथार्थ वस्तु-स्थिति का बोध कराया, तत्त्व को समझाया, भूलें दूर कीं, कमजोरियाँ हटाई, आत्मविश्वास बढ़ाया, कदाग्रह दूर किया, पाखंड को घटाया, मिथ्यात्व छुड़ाया, पतितो को उठाया, अत्याचारों को रोका, हिंसा का घोर विरोध किया, साम्यवाद को फैलाया और लोगों को स्वावलम्बी बनने का उपदेश दिया[1]।

ज्ञात होता है कि इनके विहार का प्रथम स्थान राजगृह के निकट विपुलाचल और वैभार पर्वत आदि पंच-पहाड़ियो का पुण्य प्रदेश था। उस समय राजगृह मे शिशुनागवंश का प्रतापी राजा श्रेणिक या बिम्बसार राज करता था। श्रेणिक ने भगवान् की परिषदो में प्रमुख भाग लिया और उनके प्रश्नों पर बहुत-से रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। श्रेणिक की रानी चेलना भी वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी, इसलिये वह रिश्ते में महावीर स्वामी की मौसी होती थी।

जैन-ग्रन्थो में राजा श्रेणिक भगवान् महावीर की सभाओं के प्रमुख श्रोता के रूप मे स्मरण किये गये हैं। हाँ, एक बात है—बौद्ध-ग्रन्थों में बिम्बसार गौतम बुद्ध के एक श्रद्धालु भक्त के रूप में वर्णित हुए हैं। प्रारंभावस्था में बिम्बसार का बुद्धानुयायी होना जैन-ग्रन्थ भी स्वीकार करते हैं। अतः बहुत संभव है कि बिम्बसार पहले गौतम बुद्ध के भक्त रहे हो और पीछे भगवान् महावीर की वजह से जैन-धर्म में दीक्षित हो गये हो।

एक दृष्टि से बिहार अगर जैन-धर्म का उद्गम-स्थान माना जाय, तो भी कोई ऐसा घोर विरोध नहीं दिखता, क्योंकि इस समय जैन-धर्म का जो कुछ मौलिक सिद्धान्त उपलब्ध है, वह अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के उपदेश का ही सार समझा जाता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इनका यह सिद्धान्त अपने पूर्ववर्त्ती शेष तेईस तीर्थङ्करो के सिद्धान्त की पुनरावृत्ति मात्र है।

जैनियो की यह दृढ श्रद्धा है कि अपने वन्दनीय चौबीस तीर्थङ्करो के मौलिक उपदेश में थोड़ा भी अन्तर कभी नहीं रहा है। ऐसी दशा में विज्ञ पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि जैनियो की दृष्टि मे बिहार कितना महत्त्वपूर्ण अग्रस्थान रखता है।

अब मैं यहाँ संक्षेप में इस बात का दिग्दर्शन करा देना चाहता हूँ कि भगवान् महावीर के उपरान्त इस बिहार में शासन करनेवाले भिन्न-भिन्न राजवंशों का जैन-धर्म से कहाँ तक सम्बन्ध रहा—

१—देखिये—'अनेकान्त'—वर्ष १, कि० १।

शिशुनागवंश—ईसवी-पूर्व छठी शताब्दी में मगध-राज्य भारत में सर्व-प्रधान था, बल्कि इस प्रमुख राज्य के परिचय से ही भारत का एक प्रामाणिक इतिहास प्रारम्भ होता है। उस समय यहाँ के शासन की बागडोर शिशुनागवंशी वीर क्षत्रियों के हाथों में थी। इस वंश के राजाओं ने ईसवी-पूर्व ६४५ से ईसवी-पूर्व ४८० तक यहाँ पर राज किया है। उत्तर-पुराण, आराधना कथा-कोष, श्रेणिक-चरित्र आदि जैन-ग्रन्थों से इस वंश के शासकों में पाँच जैन-धर्मावलम्बी सिद्ध होते हैं[1]—(१) उपश्रेणिक, (२) श्रेणिक (बिम्बसार), (३) कुणिक (अजातशत्रु), (४) दर्शक और (५) उदयन। उल्लिखित ग्रन्थों में ये सभी शासक धर्मात्मा, वीर एवं राजनीतिपटु कहे गये हैं।

इन राजाओं में खासकर श्रेणिक या बिम्बसार को जैन ग्रन्थों में प्रमुख स्थान प्राप्त है, यह बात मैं पहले ही लिख चुका हूँ। कुणिक या अजातशत्रु भी अपने समय का एक प्रख्यात प्रतापी राजा था। इसने बौद्ध-धर्म से असन्तुष्ट होकर बाद में जैन-धर्म को विशेष रूप से अपनाया था। मालूम होता है कि इसीलिये बौद्ध-ग्रन्थों में यह 'दुष्कर्मों का समर्थक एवं पोषक' कहा गया है। भगवान् महावीर का निर्वाण इसीके राज्य-काल में हुआ था।

परन्तु एक बात है। इस कुणिक या अजातशत्रु के राज्याधिकारी होते ही इसका व्यवहार अपने पिता श्रेणिक के प्रति बुरा होने लगा था। जैन-ग्रन्थ कहते हैं कि पूर्व वैर के कारण अजातशत्रु अपने पिता को काठ के पिजड़े में बन्द कर उसे मनमाना दुःख देने लगा था। किन्तु बौद्ध-ग्रन्थों से पता चलता है कि इसने यह बुरा कार्य देवदत्त नामक एक बौद्धसंघ-द्वेषी साधु के बहकाने से किया था।

नन्दवंश—सर विन्सेंट स्मिथ का कहना है कि नन्द राजा ब्राह्मण-धर्म के द्वेषी और जैन-धर्म के प्रेमी थे[2]। कैम्ब्रिज-हिस्ट्री भी इस बात का समर्थन करती है। नवनन्दों के मंत्री तो निःसन्देह जैन-धर्मानुयायी थे। महापद्म का मंत्री कल्पक था। इसीका पुत्र परवर्त्ती नन्द का मंत्री रहा। अन्तिम नन्द सकल्य अथवा घननन्द था। इसका मंत्री शकटार जैन-धर्मानुयायी था; जो अन्त में मुनि हो गया था[3]। इसके पुत्र स्थूलभद्र और श्रीयक थे। स्थूलभद्र जैन-मुनि हो गये थे और श्रीयक को मन्त्रि-पद मिला था[4]। इसीका अपर नाम संभवतः राक्षस था।

१—देखिये—विशेष परिचय के लिये 'संक्षिप्त जैन-इतिहास' भाग २, खंड २। २—देखिये—'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया'। ३—देखिये—'आराधना-कथाकोष, भाग ३, पृष्ठ ७८—८१। ४—देखिये—'हिस्ट्री एंड लिटरेचर ऑफ जैनिज्म'।

यद्यपि उस समय भारत मे घननन्द सवसे वड़ा राजा समझा जाता था, फिर भी इसमें इतनी योग्यता नही थी कि यह इतने विस्तृत राज्य को समुचित रीति से सॅभाल लेता। फलतः उधर कलिंग को ऐरवंश के एक राजा ने इससे छीन लिया; इधर चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने इसपर आक्रमण कर दिया। अन्त में ईसवी-पूर्व ३२६ में नन्दवंश की इतिश्री हो गई। सर स्मिथ के कथनानुसार इसने ही जैनियों के तीर्थ पंचपहाडी का निर्माण पटना में कराया था।

मौर्यवंश—जैन-साहित्य और शिलालेखों से मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त जैन-धर्म का परम भक्त प्रमाणित होता है, परन्तु इतिहास-लेखक दीर्घकाल तक इस बात पर विश्वास करने को तैयार नही हुए। अब इधर ऐतिहासिक विद्वानो ने बहुमत से चन्द्रगुप्त का जैन-धर्मानुयायी होना स्वीकार कर लिया है। इन विद्वानो में विन्सेंट ए० स्मिथ, ई० थामस, विल्सन, बी० लुई राइस, सम्पादक—इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन, जार्ज सी० एम्० वर्डवुड और स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल प्रमुख हैं[1]।

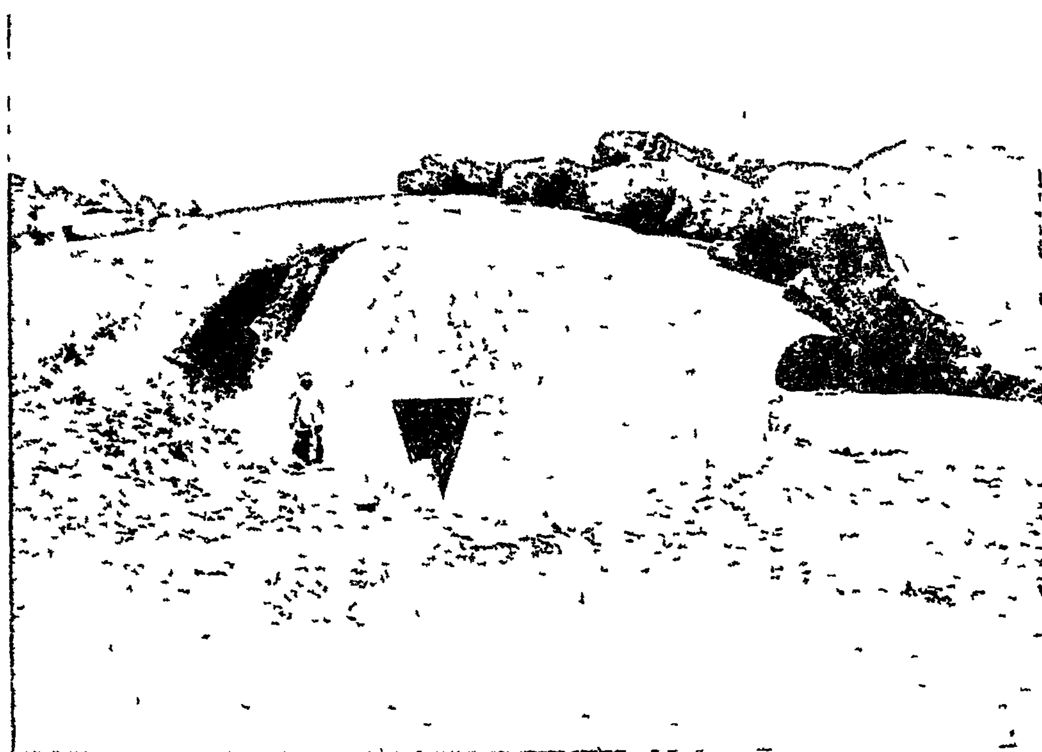
ईसा की पॉचवी शताब्दी तक के प्राचीन जैन-ग्रन्थो एवं बाद के शिलालेखो का कथन है कि जब उत्तर-भारत में बारह वर्षों का घोर दुर्भिक्ष पडा था तब चन्द्रगुप्त अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया और वर्त्तमान मैसूर-राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल में—जहॉ अब तक उसके नाम की यादगार है—मुनि के तौर पर रहकर अन्त में वही उपवासपूर्वक स्वर्गासीन हुआ। श्रवणबेलगोल की स्थानीय अनुश्रुति भी भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध जोड़ती है। इतना ही नहीं, अनुश्रुति-द्वारा श्रवणबेलगोल के साथ इन दोनो का भी सम्बन्ध जुड़ता है। श्रवणबेलगोल के दो पर्वतों में से छोटे का नाम 'चन्द्रगिरि' है, जो चन्द्रगुप्त नामक किसी महान् व्यक्ति का स्मृति-चिह्न है। इसी पर एक गुफा भी है जिसका नाम 'भद्रबाहु गुफा' है। इसी पर्वत पर एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर भी है, जिसका नाम 'चन्द्रगुप्तबस्ति' है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का उत्तराधिकारी बिन्दुसार भी परिशिष्टपर्व आदि जैन ग्रन्थो से जैन-धर्मावलम्बी सिद्ध होता है। जैन-ग्रन्थों में इसका दूसरा नाम सिंहसेन मिलता है। यह भी अपने श्रद्धेय पिता के समान ही बड़ा प्रतापी था। इसकी विजयों का पूर्ण वृत्तान्त उपलब्ध होने पर निस्सन्देह इसे भी चन्द्रगुप्त और अशोक-जैसे

१—देखिये—'मौर्य-साम्राज्य के जैनवीर', पृष्ठ ११८–१४८।



गुनेरी (गया) में पाई गई बुद्ध की प्रतिमा, जो कमलासन पर बैठी हुई है। चबूतरे और कमल-दल पर सात पंक्तियों का शिलालेख है। ऊपर की दो पंक्तियों मे महायान-मत का मंत्र है। नीचे की पंक्तियों मे लिखा है कि महेन्द्रपाल नामक राजा के समय (संवत् ९) वैशाख सुदी पंचमी को 'गुणचरित' मे यह अंजलि अर्पित की गई।



बराबर-पहाडी (गया) से आध मील दूर नागार्जुनी-पहाडी की तीन गुफाएँ, जिन्हे सम्राट अशोक के पोते महाराज दशरथ ने खुदाया था। इसका काल ईसा से २१४ वर्ष पूर्व समझा जाता है।



'बराबर' पहाड़ी (गया) में खोदी गई लोमस ऋषि और सुदामा की गुफाओं का साधारण दृश्य। ऐसी चार गुफाएँ सम्राट अशोक ने जैन आजीवकों के रहने के लिये बनवाई थीं, जिन्हें आजकल लोग 'सतघरवा' नाम से पुकारते हैं। पीछे गुप्त-कालीन राजा शार्दूल वर्मा ने इनमें हिन्दु-मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। इनका निर्माण-काल ईसवी सन् से २४५ साल पूर्व समझा जाता है।



'लोमस ऋपि' गुफा का द्वार, जिसे 'प्रवर-गिरिगुहा' भी कहते हैं। इसके भीतर दो कमरे हैं। एक की लम्बाई ३८ फीट ४ इंच और चौड़ाई १९ फीट ४ इंच है। दूसरे की चौड़ाई १४ फीट २ इंच और लम्बाई १७ फीट है। इसके अन्दर दो प्रशस्तियाँ संस्कृत में खुदी हुई हैं, जिनमें शार्दूलवर्मा और उसके पुत्र अनन्तवर्मा के नाम हैं।

सम्राटों की श्रेणी में अवश्य स्थान मिल सकता है। जैन-ग्रन्थ भी आचार्य चाणक्य को सम्राट् विन्दुसार का प्रधान मन्त्री प्रकट करते हैं।

विन्दुसार के स्वर्गस्थ होने पर ईसवी-पूर्व २७२ में इसका पुत्र अशोक राज्यारूढ़ हुआ। कई विद्वानो का मत है कि सम्राट् अशोक ने अपनी प्रशस्तियों में जो अहिंसा, सत्य, शील आदि गुणों पर जोर दिया उससे प्रतीत होता है कि वह स्वयं जैन-धर्मावलम्बी रहा हो तो आश्चर्य नहीं। प्रोफेसर कर्न का कहना है कि 'अहिंसा के विषय में अशोक के जो नियम हैं वे बौद्धों की अपेक्षा जैनियों के सिद्धान्तों से अधिक मिलते हैं।' जैन-ग्रन्थों में इसके जैन होने का प्रमाण स्पष्ट उपलब्ध है।

कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' में अशोक-द्वारा काश्मीर में जैन-धर्म का प्रचार किये जाने का वर्णन है।[2] यही बात अबुलफजल की 'आइन-ए-अकबरी' से भी विदित होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक पहले जैन-धर्म का उपासक था, पश्चात् बौद्ध हो गया।[3] इसका एक प्रमाण यह भी दिया जाता है कि अशोक के उन लेखो में—जिनमें उसके स्पष्टतः बौद्ध होने का कोई संकेत नहीं पाया जाता, वल्कि जैन-सिद्धान्तो के ही भावो का आधिक्य है—राजा का उपनाम 'देवानां पिय पियदसी' पाया जाता है। 'देवानां पिय' राज-पदवी विशेषतः जैन-ग्रन्थो मे ही पाई जाती है। श्वेताम्बरी 'उवाई' (औपपातिक) सूत्र-ग्रन्थो में यह पदवी जैन-राजा श्रेणिक (विम्बसार) और उसके पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) के नामो के साथ लगाई गई है। पर अशोक के वाइसवें वर्ष की 'भवरा' की प्रशस्ति मे, जिसमें उसके बौद्ध होने के स्पष्ट प्रमाण हैं, उसकी पदवी केवल 'पियदसि' पाई जाती है, 'देवानां पिय' नही। इसी वीच में वह जैन से बौद्ध हुआ होगा। पर आजकल वहुमत यही है कि अशोक बौद्ध था।

जैनियों की वंशावलियो और अन्य ग्रन्थो में उल्लेख है कि अशोक का पौत्र 'सम्प्रति' था, उसके गुरु सुहस्ति आचार्य थे और वह जैन-धर्म का बड़ा प्रतिपालक था। उसने 'पियदसि' के नाम से वहुत-सी प्रशस्तियाँ शिलाओं पर अंकित कराई थीं।

१—देखिये—'राजवलिकथे' (कन्नड)

२—"यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्। शुष्कलेऽत्र वितस्तात्रो तस्तार स्तूपमण्डले॥"—अध्याय १

३—देखिये—'अर्ली फेथ ऑफ अशोक'—थामस-कृत।

इस कथन के आधार पर प्रोफेसर पिशेल और मिस्टर मुखर्जी-जैसे विद्वानो का मत है कि जो शिला-प्रशस्तियाँ अब अशोक के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे सम्भवत' 'सम्प्रति' की लिखवाई होगी। पर सर विन्सेंट स्मिथ की राय इसके विरुद्ध है। वे उन सब लेखो को अशोक-द्वारा अंकित प्रमाणित करते हैं।

अशोक के समय में 'सम्प्रति' युवराज था। उसी ने अपने अधिकार से अशोक को राजकोष से बौद्ध-संघ को दान देने का निषेध कर दिया था। सम्राट् कुनाल के शासन में भी शासनसूत्र उसीके हाथ में था। दशरथ के समय में भी वही वास्तविक शासक रहा। यही कारण है कि बहुत-से ग्रन्थो में सम्प्रति को ही अशोक का उत्तराधिकारी लिख दिया है। जैन-साहित्य में सम्प्रति का वही स्थान है, जो बौद्ध-साहित्य में अशोक का। उसने अपने प्रिय धर्म को फैलाने के लिये बहुत प्रयत्न किया था।[1] परिशिष्ट-पर्व के कथनानुसार सम्प्रति ने अनार्य देशो में भी जैन-धर्म का प्रचार किया था। दान-शाला निर्माण आदि अनेक लोकोपकारक कार्य भी अपने जैन-धर्म के प्रचार में सम्प्रति के पर्याप्त सहायक हुए हैं।

वृहस्पतिमित्र को जीतकर मगध को वश में लानेवाला सम्राट् खारवेल भी कट्टर जैन-धर्मावलम्बी था। खारवेल ने जैन-धर्म की बहुत बड़ी सेवा की थी। हाथी-गुफावाले शिलालेख मे खारवेल को 'धर्मराज' एवं 'भिक्षुराज' कहा है। कलिंग के कुमारीपर्वत पर खारवेल और उसकी रानी ने अनेक मन्दिर तथा विहार बनवाये थे। खासकर सम्राट् के द्वारा निर्मित वहाँ की गुफाओ का मूल्य अत्यधिक है[2]।

इसके बाद के विहार में शासन करनेवाले गुप्त-वश आदि अन्यान्य राजवशो का जैन-धर्म से क्या सम्बन्ध रहा, इसका विचार करने से लेख का कलेवर विशेष बढ़ जायगा। किन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि राजगृह, पाटलिपुत्र आदि पुरातन स्थानों से जैन-धर्म का बहुत पुराना अभेद सम्बन्ध है।

१९३७ ई० के फरवरी महीने में, पटना-जकशन-स्टेशन से एक मील की दूरी पर, लोहनीपुर मुहल्ले में, दो दिगम्बर जैन-मूर्त्तियाँ, जमीन खोदते वक्त, मिली थीं। उनके संबन्ध में पुरातत्त्व के अनन्य मर्मज्ञ डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल

१—देखिये—सत्यकेतु विद्यालकार का 'मौर्य-साम्राज्य का इतिहास'।

२—देखिये—विशेष विवरण के लिये, 'सक्षिप्त जैन-इतिहास', भाग २।

का कहना है कि भारतवर्ष में आज तक की उपलब्ध मूर्त्तियों में ये सबसे प्राचीन हैं। वे इन मूर्त्तियो को ईसा के ३०० वर्ष पूर्व मौर्यकालीन मानते हैं।[1]

कुलुहा पहाड़ (हजारीबाग), श्रावक पहाड़ (गया), पचार पहाड़ (गया) आदि स्थानो की खोज की बड़ी आवश्यकता है। संभवतः इन स्थानों की खोज से कुछ नई बाते इतिहास को उपलब्ध हो। कुछ विद्वानो का तो खयाल है कि कुलुहा पहाड़ भगवान् शीतलनाथ तीर्थङ्कर की तपोभूमि है।[2]

१—देखिये—'जैन आटिक्वेरी'—भाग ३, न० १, पृष्ठ १७-१८।

२—देखिये—'दिगम्बर-जैन-डाइरेक्टरी'।





गृह-शिल्प

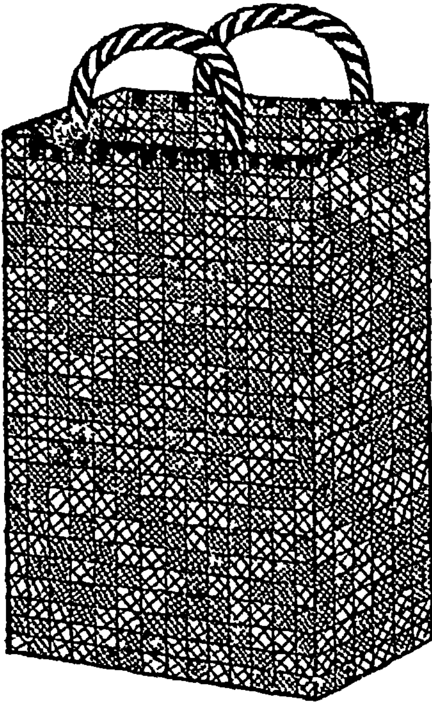
रायबहादुर भिखारीचरण पट्टनायक, बी० ए०, बी० एल्०, कटक (उडीसा)

भारत एक कृपिप्रधान देश है। विदेशी शासन के पूर्व यह धन-धान्यसम्पन्न था। खेती की पैदावार उस समय की आबादी के लिये यथेष्ट थी। उस समय की आबादी भी अधिक नहीं थी। यहाँ के लोगो की आवश्यकताएँ भी कम थीं। जो भी अभाव था उसकी पूर्त्ति सरलता से होती थी।

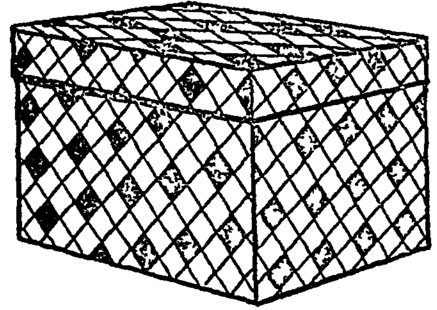
परन्तु आजकल की हालत दूसरी है। आबादी कई-गुना बढ़ गई है। लोगो की आवश्यकताएँ भी कई तरह से बढ़ गई हैं। लोगो की रुचि के साथ साथ अभ्यास भी बदल गया है। इसके सिवा सारे भारत के कई स्थानो में कृपि पर कई प्रकार की विपत्ति लगी रहती है। कही बाढ़ से चौपट, कहीं वर्षा न होने से सर्वनाश। अतएव, साधारण गृहस्थ, अपनी खेती पर भरोसा कर, साल-भर का जमा-खर्च ठीक नहीं रख सकता। ऐसी परिस्थिति में कृपि के साथ कुटीर-शिल्प का आश्रय लेना ही एकमात्र प्रतीकार है।

किसी समय भारत ने शिल्पोन्नति के विपय में शीर्प-स्थान अधिकृत-किया था। जब तक भारत अपने शिल्प-द्वारा विदेश से अर्थोपार्जन करता रहा, तब तक वह बहुत उन्नत रहा। प्रत्यक्ष रूप से यह देखने मे आता है कि जो देश आज शिल्प तथा व्यापार मे जितना ही उन्नत है वह उतना ही धनशाली, बलशाली, क्षमताशाली और प्रसिद्ध है। शिल्प के साथ वाणिज्य का सम्बन्ध हमेशा रहता है। शिल्प की उन्नति के साथ ही वाणिज्य की भी उन्नति स्वत होती है।

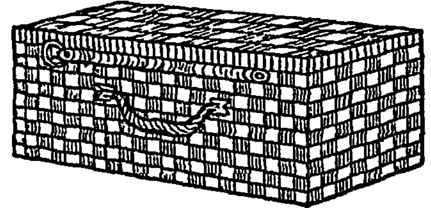
(लेख—पृष्ठ १६२-२००)



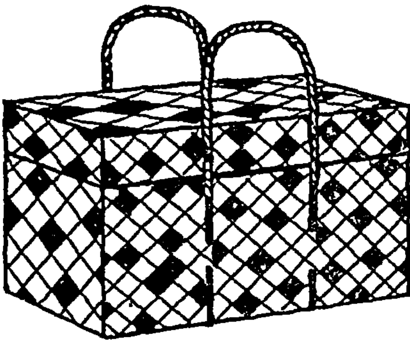
धान के पयाल का बना थैला



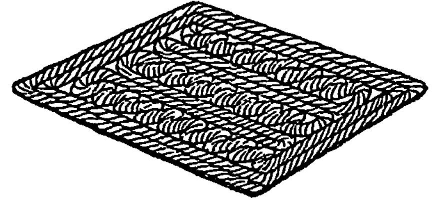
ताड के पत्ते का बक्स



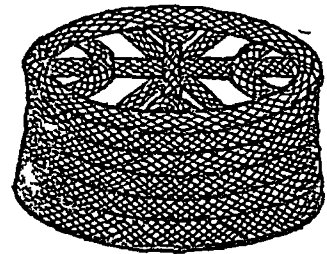
ताड के रेशे का सूटकेस



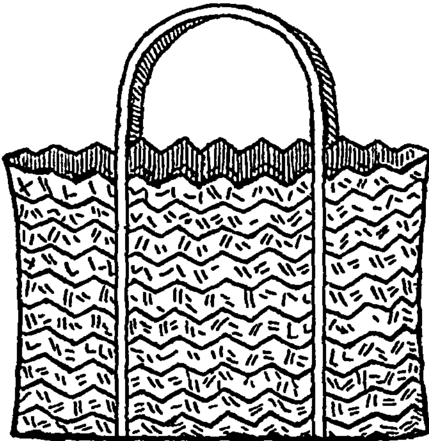
ताड़ के पत्ते का बना थैला



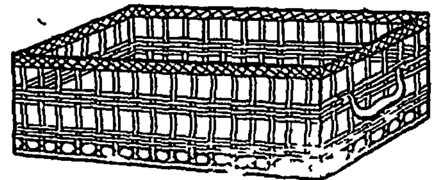
नारियल के रेशे का पायदाज



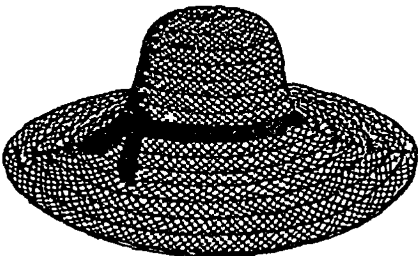
पयाल की बनी टोपी



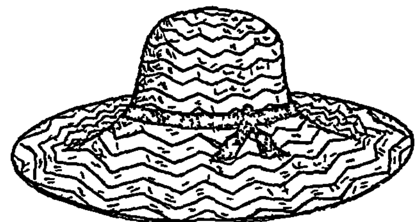
ताड़ के पत्ते का बना थैला



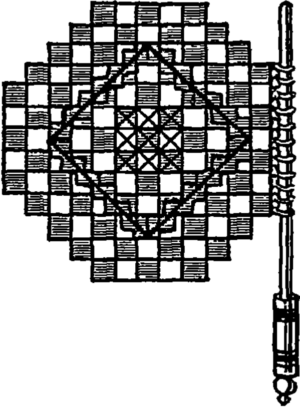
बाँस का बना आफिस-ट्रे



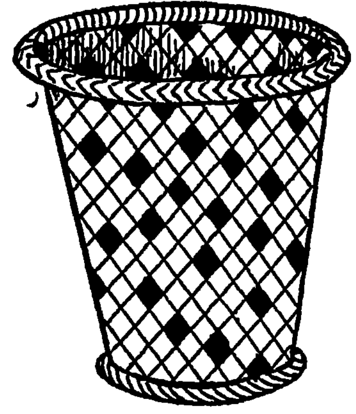
पयाल का बना टोप



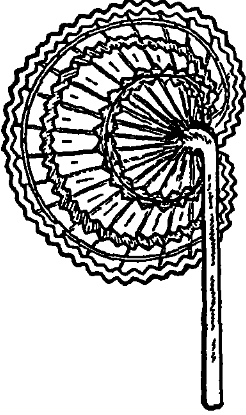
ताड के पत्ते का टोप



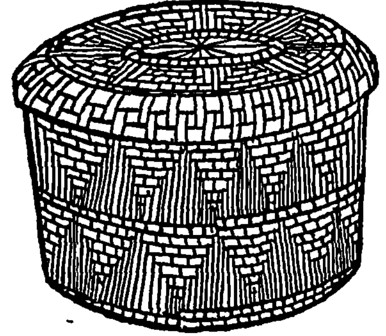
ताड के पत्ते का पखा



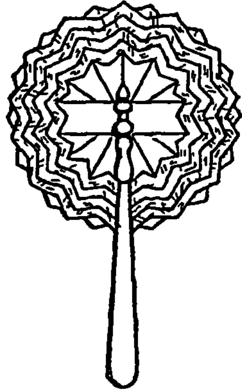
ताड के पत्ते की बनी टोकरी



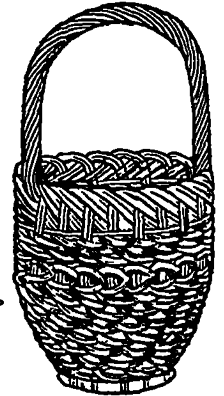
ताड के पत्ते का पखा



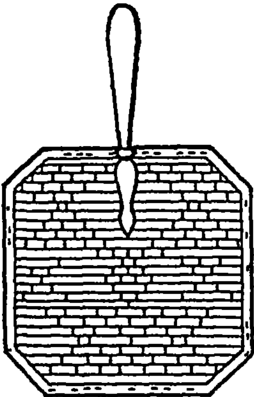
सीक की मजूषा



ताड के पत्ते का पखा



दुधई-लता को बनी डलिया



सीक का पंखा



दुधई-लता की बनी
एक प्रकार की टोकरी

शिल्पोन्नति के विना व्यापार-वृद्धि असम्भव है। व्यावसायिक अभ्युदय के लिये शिल्पकौशल का संरक्षण एवं संवर्द्धन अत्यन्त आवश्यक है। खासकर कृषि-प्रधान देश के हेतु तो गृहशिल्प सर्वाधिक लाभकारी है। गृहशिल्प की उन्नति से देशवासियों की आय तो वढ़ती ही है, अर्थलाभ के कारण आयु भी वढ़ती है—साथ ही, लोगों में सुरुचि का विकास होता है और कला-नैपुण्य दिन-दिन वढ़ता जाता है।

भारत के वीते हुए इतिहास पर दृष्टि डालकर विचार करने से मालूम होता है कि शिल्प में भारतवासियों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उनलोगों को शिल्प-कौशल का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। केवल संगठन और परिचालन के अभाव से, प्रोत्साहन और संरक्षण की कमी से, शिल्प के विषय में लोगों का अनुराग कम हो जाने से, शिल्प में भारतवासी गिर गये हैं। शिल्प की उन्नति न होने से भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी न होगी—न भारतवासी स्वतंत्र होकर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकते हैं। भारत को फिर से अपनी वह शक्ति नई करनी होगी। वास्तव में गृह-शिल्प की शक्ति से ही देश समृद्ध हो सकेगा। यही सवके लिये संभव और साध्य है।

किसी वड़े शिल्प का आरम्भ करने से पहले देश के छोटे-छोटे शिल्पों पर ध्यान देना चाहिये। जो शिल्प केवल व्यवहार के अभाव से मृतवत् हो गया है, पर विल्कुल नष्ट नहीं हुआ है, उसके प्रति ध्यान देने से शीघ्र सफलता मिल सकती है। सवसे पहले तो देश में शिल्प का वातावरण ठीक करना होगा।

आजकल के शिल्प को चार भागों में वाँट सकते हैं—(१) वृहत् शिल्प, (२) क्षुद्र शिल्प, (३) विना कल-कारखानावाला शिल्प और (४) कुटीर-शिल्प वा गृह-शिल्प। वृहत् शिल्प के लिये विराट् साधन-सामग्री आदि भी चाहिये—वड़ा कारखाना, वड़ी-वड़ी कलें, लम्बा-चौड़ा आफिस, वहुत-से कर्मचारी, काफी वड़ी पूँजी। क्षुद्र शिल्प के लिये उसी के अनुसार छोटे-छोटे सभी पदार्थों की आवश्यकता है। तृतीय श्रेणी के शिल्प के लिये भी एक छोटे कारखाने और कुछ कर्मचारियों तथा थोड़ी पूँजी की जरूरत पड़ती है। भारत के विभिन्न स्थानों में वृहत् शिल्प और क्षुद्र शिल्प का आरंभ हो चुका है। कई स्थानों में तृतीय श्रेणी के शिल्प के कारखाने भी खुल चुके हैं। किन्तु भारत की शिल्प-शक्ति को पुनर्ज्जीवित करने के लिये वह पर्याप्त नहीं है, उसके द्वारा भारत की आर्थिक उन्नति शीघ्र नहीं हो सकती। भारत के घर-घर में जव तक शिल्पकला की उन्नति न होगी, भारत की

आर्थिक अवस्था बदल नहीं सकती, और देश मे शिल्प का वातावरण तैयार करने के लिये कुटीर-शिल्प ही एकमात्र उपाय है।

कुटीर-शिल्प वह है जिसको प्रत्येक ग्रामवासी अपने क्षुद्र कुटीर में बैठकर—मजदूर न लगाकर, अपने ही परिवार की सहायता से—सरलता से कर सकता हो; अथवा गाँव में नष्ट होती हुई चीजों का संग्रह करके, उनकी उपयोगिता समझकर, अपने शारीरिक परिश्रम से, फुरसत के वक्त, कर सकता हो।

कुटीर-वासी यदि स्वयं किसान है तो अपने खेत में पैदा हुई बहुत-सी चीजों को अनावश्यक समझकर फेंक देता है, और कितने ही पदार्थों को अल्प मूल्य में बेच देता है। जिस शिल्प के द्वारा वह किसान, अपने हस्त-कौशल के सहारे, उन फेंक दिये जानेवाले पदार्थों से कुछ धन इकट्ठा कर सके और कम दाम में बेच दी जानेवाली चीजों से अधिक दाम पा सके, उसी को कुटीर-शिल्प कहते हैं।

कुटीर-शिल्प के लिये भारत प्रशस्त क्षेत्र है। भारत मे शिल्प के योग्य जितने पदार्थ पैदा होते हैं उतने और किसी देश में नहीं। भारत से नाना प्रकार का कच्चा माल विदेश चला जाता है। अनेक पदार्थ केवल नष्ट ही हो जाते हैं। जो कच्चा माल विदेश चला जाता है उसी से विदेशी लोग बहुमूल्य वस्तुएँ बनाकर भारत में भेजते हैं और उनकी बिक्री से प्राप्त अपार द्रव्य स्वदेश ले जाते हैं।

भारतवासी अपनी शिल्प-प्रवृत्ति खोकर निश्चेष्ट बैठे हुए हैं। प्रति गाँव मे, प्रति घर मे, बेकारो की संख्या बढ़ती जाती है। गाँव के किसान, खेती के काम के शेष होने पर, कितना समय निरर्थक खोते हैं, इसका ठिकाना नही। युवा मनुष्य पढ़-लिखकर—चाहे उच्च शिक्षावाले हो वा निम्न शिक्षावाले या अशिक्षित—नौकरी खोजते फिरते हैं। नौकरी भी सबको नही मिल सकती। तो भी नौकरी के काल्पनिक मोह में मुग्ध होकर अपना समय, शक्ति, बुद्धि, उत्साह और उद्यम खोकर अन्त में हताश एवं अकर्मण्य हो बैठ जाते हैं। यदि वे शिल्प के प्रति मनोयोग देते, और निरर्थक दुश्चिन्ता में जो समय खोते हैं उसको किसी उपयोगी पदार्थ का निर्माण करने मे लगाते, तो भारत का शिल्प बहुत उन्नत होता एवं देश की आर्थिक स्थिति सुधर जाती।

हमारे गाँवों की दुरवस्था की सीमा नहीं है। जिस ओर देखिये—गृह-कलह, निराशा, अशान्ति, असन्तोष, आलस्य, रोग, शोक, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध और असामयिक मृत्यु की भीषणता सर्वत्र व्याप्त है। शिक्षित लोग गाँव छोड़कर शहर मे भाग जाते हैं। हैजा, वसन्त (शीतला), मलेरिया, प्लेग और नाना

प्रकार के महामारी रोग गाँव-गाँव में चिरस्थायी हो गये हैं। उपयुक्त एवं पर्याप्त खाद्य न पाने से लोगों की प्रतिरोध-शक्ति कम हो जाती है, इसी से रोगों की वृद्धि होती है। जबतक लोगों के लिये उपयुक्त एवं यथेष्ट आहार की व्यवस्था न होगी तबतक अन्य सभी चेष्टाएँ व्यर्थ हैं। अतएव, जब भारतवासी स्वदेशी शिल्प के प्रति मनोयोग देंगे तब कहीं उपयुक्त आहार पा सकेंगे; हजारों बेकार मनुष्य काम में लग जायँगे; देश की नष्ट हुई शक्ति का उद्धार होगा; संसार में इसकी धाक जमने लगेगी।

यह बात सत्य है कि गाँववालों को फिर से शिल्प में प्रवृत्त कराने में कुछ कठिनाइयाँ होंगी; क्योंकि वे लोग बहुत दिनों से शिल्प को छोड़ और भूल चुके हैं। उनलोगो का शिल्प का अभ्यास छूट गया है। शिल्प के प्रति उनलोगों के मन में अभी श्रद्धा और विश्वास नही है, बल्कि अश्रद्धा और अविश्वास ही अधिक है। पहले तो उनलोगो का वह अविश्वास और अश्रद्धा दूर करना होगा। यह काम शिक्षितों को करना पड़ेगा। शिक्षित यदि मनोयोग देंगे तो यह कार्य सरलता से हो सकता है। शिक्षितों को यह ध्यान रखना चाहिये कि वे लोग इन्हीं अशिक्षितों के आंशिक अर्थ-साहाय्य से शिक्षित हुए हैं। अतएव उनका इनलोगो के प्रति यथेष्ट कर्त्तव्य और गुरुतर दायित्व है।

यह बात भी सत्य है कि शिक्षित-समाज के लिये अभी शिल्प का काम थोड़ा कठिन होगा। किन्तु दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये शिक्षितो को कुछ कष्ट स्वीकार करके शिल्प का अभ्यास करना पड़ेगा। केवल मनोयोग देने की देर है। यह काम उनलोगों के लिये कठिन न होगा। स्कूल से कालेज तक जिस प्रणाली से शिक्षा उनलोगों ने पाई है उससे उनलोगों के मस्तिष्क की परिचालना तो यथेष्ट हुई है, लेकिन हाथ-पैर और शरीर के अन्यान्य अंग-प्रत्यग की परिचालना बिल्कुल हुई ही नहीं है; वे लोग एक प्रकार से पंगु हो गये हैं। शिल्प के लिये फिर से उन-लोगों को अपनी अँगुलियों और आँखों की परिचालना सीखनी पड़ेगी। इसके लिये कुछ धैर्य की जरूरत है। केवल मस्तिष्क-परिचालन से ही इस काम मे पर्याप्त सफलता न मिलेगी।

अब समय ऐसा आ गया है कि शिक्षित युवक केवल मस्तिष्क-परिचालन से ही काम नहीं चला सकते। वे अपने अंग-प्रत्यंग को काम में लगाकर शरीर को भी उपयोगी बनावे। आज-कल हमारे देश में जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है, वह बालकों और युवकों को मस्तिष्क-परिचालन के सिवा दूसरे अंगों का परिचालन

नहीं सिखाती, बल्कि उनके अंगों के परिचालन में विशेष प्रतिबन्धक होती है। आनन्द की बात है कि अब इसे सभी लोग स्वीकार करते हैं।

यह बात अक्षरशः ठीक है कि आजकल की प्रचलित शिक्षा से हमारे युवक नौकरी के सिवा और किसी स्वावलम्बन-वृत्ति के लिये नितान्त अयोग्य हो जाते हैं। अतः शिक्षा-प्रणाली के आमूल परिवर्त्तन की अनिवार्य आवश्यकता है। बहुत-से अरुचिकर एवं अनुपयोगी विषय युवकों को केवल परीक्षा पास करने के लिये बाध्य होकर सीखने पड़ते हैं। परन्तु परीक्षा के बाद उन विषयों को भूलना ही पड़ता है। बेचारे यह भी नही जानते कि हमें ये विषय क्यों सिखाये जाते हैं। यहाँ तक कि शिक्षक भी यह बात नहीं जानते। कितने ही अनावश्यक विषयों के आयत्त करने में उनकी रुचि, शक्ति और प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वे विषय उनके भावी जीवन में किसी प्रयोजन के नही होते। अतः उनके बदले मे शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। इससे बालक-बालिकाओं को पढ़ने-लिखने के साथ-साथ शुरू से ही शिल्प के विषय में सोचने का मौका मिलेगा। बहुतों के मन में शिल्प के प्रति श्रद्धा और प्रवृत्ति पैदा होगी। स्कूल और कालेज छोड़ने के बाद अथवा नौकरी पाने से निराश होने पर किसी प्रकार का शिल्प-कार्य करने में उन्हें संकोच न होगा। अपने हाथ से काम करने में नही शर्मायेंगे। कुछ काल के बाद उनमें से कितने ही बड़े-बड़े शिल्पकार और व्यवसायी बन जायेंगे। आज शिल्प के प्रति शिक्षित-समाज में जो घृणा और अवज्ञा का भाव है, वह कल नहीं रहेगा।

शिक्षित-समाज में जब शिल्प या वाणिज्य का प्रश्न उठता है तब वे लोग सोचते हैं कि यथेष्ट मूलधन न होने से कोई शिल्प या वाणिज्य चल नहीं सकता और शिल्प से जो चीज तैयार होगी उसकी बिक्री के लिये जबतक उपयुक्त क्षेत्र या ग्राहक न होगा तबतक शिल्प के लिये परिश्रम करना निरर्थक है। किन्तु कुटीर-(गृह)-शिल्प के लिये पूँजी की विशेष चिन्ता करना बेकार है। बिना पूँजी के ही कुटीर-शिल्प का श्रीगणेश किया जा सकता है। बिक्री के योग्य यदि चीज तैयार होगी, तो बिक्री के लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। देश में या विदेश में, जो शिल्प की सेवा मे लगे हैं, उनके पास समस्त संसार के प्रत्येक मनुष्य के उपार्जित धन का कुछ-न-कुछ अंश जरूर पहुँचता है।

हमारे देश की गरीबी का खयाल करने पर यह बात ध्यान में आयेगी कि बिना खर्च के सभी गाँवों मे मिलनेवाले ताल-पत्र, खजूर-पत्र, घास, भूसा प्रभृति उपकरणों के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करना कितना आवश्यक

और लाभदायक है। मेरी यह परीक्षा उड़ीसा और उड़ीसा की देशी रियासतों के स्कूलों में प्रचलित हुई है। ताल-पत्र को वहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है; क्योंकि ताल-पत्र के द्वारा नाना प्रकार के गृह-शिल्प की शिक्षा हो सकती है।

हमारे वालक और वालिकाएँ वचपन से दस-पन्द्रह या वीस वर्ष तक का समय पढ़ने-लिखने में लगाते हैं; पर शिल्पकला के लिये कुछ भी परिश्रम नहीं करते। यदि पुस्तकी शिक्षा के साथ-साथ वे शिल्प-शिक्षा का भी अभ्यास करे तो उन्हें उसीके साथ-साथ समाज का अभाव, लोगों की रुचि, चीजों की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ, कच्चे पदार्थों के प्राप्ति-स्थान, भिन्न-भिन्न देशों के शिल्पों की उन्नति, लोगों की आर्थिक अवस्था और खरीद करने की शक्ति, विभिन्न स्थानों के वाजार आदि सभी विषयों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक होगा। यह न होने से शिल्प में दक्षता प्राप्त करना सहज नहीं है।

मैं कह आया हूँ कि गृह-शिल्प के लिये किसी प्रकार की पूँजी की जरूरत नहीं है। आरम्भ में कोई धन देगा भी नहीं। इस काम के लिये धन माँगना भी उचित नहीं। जवतक शिल्प में स्वयं दक्षता न प्राप्त हो तवतक किसी को धन खर्च करने के लिये उपदेश देना भी ठीक नहीं है। शिल्प में कर्त्तृत्व देखने से वहुत-से लोग स्वयं धन देने के लिये उत्सुक होंगे। इस प्रकार के वहुतेरे गृह-शिल्प हैं जिनका आरम्भ विना पैसे के सभी लोग कर सकते हैं और उनसे अर्थोपार्जन भी हो सकता है। हाँ, शिल्प में दक्षता प्राप्त करने के वाद रुपयों की आवश्यकता हो सकती है। पर उस समय रुपयों का अभाव न होगा। नीचे कुछ शिल्पकार्य दिये जाते हैं, जो विना पैसे के हो सकते हैं—

(१) ताल-पत्र से नाना प्रकार की टोकरियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के वैग, आसन, पंखे इत्यादि वन सकते हैं।

(२) सींक से भी उसी तरह नाना प्रकार के वहुत ही मनोहर सामान तैयार हो सकते हैं।

(३) केवड़े के पत्तों से छोटी-वड़ी वहुत ही मुलायम चटाइयाँ वन सकती हैं। केवड़े के सिर या पेड़ से भी वहुत प्रकार के सामान तैयार हो सकते हैं।

(४) फटे-चिटे साफ चीथड़ों और दरजी की दूकान की कतरनों से भी अनेक प्रकार की चीजें वन सकती हैं।

(५) रद्दी कागज से विविध प्रकार के पदार्थ वन सकते हैं, नया कागज तक वन सकता है।

और लाभदायक है। मेरी यह परीक्षा उड़ीसा और उड़ीसा की देशी रियासतों के स्कूलों में प्रचलित हुई है। ताल-पत्र को बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है; क्योंकि ताल-पत्र के द्वारा नाना प्रकार के गृह-शिल्प की शिक्षा हो सकती है।

हमारे बालक और बालिकाएँ बचपन से दस-पन्द्रह या बीस वर्ष तक का समय पढ़ने-लिखने में लगाते हैं; पर शिल्पकला के लिये कुछ भो परिश्रम नहीं करते। यदि पुस्तकी शिक्षा के साथ-साथ वे शिल्प-शिक्षा का भी अभ्यास करें तो उन्हें उसीके साथ-साथ समाज का अभाव, लोगों की रुचि, चीजों की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ, कच्चे पदार्थों के प्राप्ति-स्थान, भिन्न-भिन्न देशों के शिल्पों की उन्नति, लोगों की आर्थिक अवस्था और खरीद करने की शक्ति, विभिन्न स्थानों के बाजार आदि सभी विषयों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक होगा। यह न होने से शिल्प में दक्षता प्राप्त करना सहज नहीं है।

मैं कह आया हूँ कि गृह-शिल्प के लिये किसी प्रकार की पूँजी की जरूरत नहीं है। आरम्भ में कोई धन देगा भी नहीं। इस काम के लिये धन माँगना भी उचित नहीं। जबतक शिल्प में स्वयं दक्षता न प्राप्त हो तबतक किसी को धन खर्च करने के लिये उपदेश देना भी ठीक नहीं है। शिल्प में कर्त्तृत्व देखने से बहुत-से लोग स्वयं धन देने के लिये उत्सुक होंगे। इस प्रकार के बहुतेरे गृह-शिल्प हैं जिनका आरम्भ विना पैसे के सभी लोग कर सकते हैं और उनसे अर्थोपार्जन भी हो सकता है। हाँ, शिल्प में दक्षता प्राप्त करने के बाद रुपयों की आवश्यकता हो सकती है। पर उस समय रुपयों का अभाव न होगा। नीचे कुछ शिल्पकार्य दिये जाते हैं, जो विना पैसे के हो सकते हैं—

(१) ताल-पत्र से नाना प्रकार की टोकरियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के बैग, आसन, पंखे इत्यादि बन सकते हैं।

(२) सींक से भी उसी तरह नाना प्रकार के बहुत ही मनोहर सामान तैयार हो सकते हैं।

(३) केवड़े के पत्तों से छोटी-बड़ी बहुत ही मुलायम चटाइयाँ बन सकती हैं। केवड़े के सिर या चेड़ से भी बहुत प्रकार के सामान तैयार हो सकते हैं।

(४) फटे-चिटे साफ चीथड़ों और दरजी की दूकान की कतरनों से भी अनेक प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

(५) रद्दी कागज से विविध प्रकार के पदार्थ बन सकते हैं, नया कागज तक बन सकता है।

नही सिखाती, बल्कि उनके अंगों के परिचालन में विशेष प्रतिबन्धक होती है। आनन्द की बात है कि अब इसे सभी लोग स्वीकार करते हैं।

यह बात अक्षरशः ठीक है कि आजकल की प्रचलित शिक्षा से हमारे युवक नौकरी के सिवा और किसी स्वावलम्बन-वृत्ति के लिये नितान्त अयोग्य हो जाते हैं। अतः शिक्षा-प्रणाली के आमूल परिवर्त्तन की अनिवार्य आवश्यकता है। बहुत-से अरुचिकर एवं अनुपयोगी विषय युवकों को केवल परीक्षा पास करने के लिये बाध्य होकर सीखने पड़ते हैं। परन्तु परीक्षा के बाद उन विषयों को भूलना ही पड़ता है। बेचारे यह भी नही जानते कि हमें ये विषय क्यों सिखाये जाते हैं। यहाँ तक कि शिक्षक भी यह बात नही जानते। कितने ही अनावश्यक विषयों के आयत्त करने में उनकी रुचि, शक्ति और प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वे विषय उनके भावी जीवन में किसी प्रयोजन के नही होते। अतः उनके बदले में शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। इससे बालक-बालिकाओं को पढ़ने-लिखने के साथ-साथ शुरू से ही शिल्प के विषय में सोचने का मौका मिलेगा। बहुतों के मन में शिल्प के प्रति श्रद्धा और प्रवृत्ति पैदा होगी। स्कूल और कालेज छोड़ने के बाद अथवा नौकरी पाने से निराश होने पर किसी प्रकार का शिल्प-कार्य करने में उन्हें संकोच न होगा। अपने हाथ से काम करने में नही शर्मायेंगे। कुछ काल के बाद उनमें से कितने ही बड़े-बड़े शिल्पकार और व्यवसायी बन जायेंगे। आज शिल्प के प्रति शिक्षित-समाज में जो घृणा और अवज्ञा का भाव है, वह कल नहीं रहेगा।

शिक्षित-समाज में जब शिल्प या वाणिज्य का प्रश्न उठता है तब वे लोग सोचते हैं कि यथेष्ट मूलधन न होने से कोई शिल्प या वाणिज्य चल नहीं सकता और शिल्प से जो चीज तैयार होगी उसकी बिक्री के लिये जबतक उपयुक्त क्षेत्र या ग्राहक न होगा तबतक शिल्प के लिये परिश्रम करना निरर्थक है। किन्तु कुटार-(गृह)-शिल्प के लिये पूँजी की विशेष चिन्ता करना बेकार है। बिना पूँजी के ही कुटीर-शिल्प का श्रीगणेश किया जा सकता है। बिक्री के योग्य यदि चीज तैयार होगी, तो बिक्री के लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। देश मे या विदेश मे, जो शिल्प की सेवा मे लगे हैं, उनके पास समस्त संसार के प्रत्येक मनुष्य के उपार्जित धन का कुछ-न-कुछ अंश जरूर पहुँचता है।

हमारे देश की गरीबी का खयाल करने पर यह बात ध्यान में आयेगी कि बिना खर्च के सभी गाँवों मे मिलनेवाले ताल-पत्र, खजूर-पत्र, घास, भूसा प्रभृति उपकरणों के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करना कितना आवश्यक

और लाभदायक है। मेरी यह परीक्षा उड़ीसा और उड़ीसा की देशी रियासतों के स्कूलों में प्रचलित हुई है। ताल-पत्र को बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है; क्योंकि ताल-पत्र के द्वारा नाना प्रकार के गृह-शिल्प की शिक्षा हो सकती है।

हमारे बालक और बालिकाएँ बचपन से दस-पन्द्रह या बीस वर्ष तक का समय पढ़ने-लिखने में लगाते हैं; पर शिल्पकला के लिये कुछ भी परिश्रम नहीं करते। यदि पुस्तकी शिक्षा के साथ-साथ वे शिल्प-शिक्षा का भी अभ्यास करें तो उन्हें उसीके साथ-साथ समाज का अभाव, लोगों की रुचि, चीजों की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ, कच्चे पदार्थों के प्राप्ति-स्थान, भिन्न-भिन्न देशों के शिल्पों की उन्नति, लोगों की आर्थिक अवस्था और खरीद करने की शक्ति, विभिन्न स्थानों के बाजार आदि सभी विषयों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराना आवश्यक होगा। यह न होने से शिल्प में दक्षता प्राप्त करना सहज नहीं है।

मैं कह आया हूँ कि गृह-शिल्प के लिये किसी प्रकार की पूँजी की जरूरत नहीं है। आरम्भ में कोई धन देगा भी नहीं। इस काम के लिये धन माँगना भी उचित नहीं। जबतक शिल्प में स्वयं दक्षता न प्राप्त हो तबतक किसी को धन खर्च करने के लिये उपदेश देना भी ठीक नहीं है। शिल्प में कर्त्तृत्व देखने से बहुत-से लोग स्वयं धन देने के लिये उत्सुक होंगे। इस प्रकार के बहुतेरे गृह-शिल्प हैं जिनका आरम्भ विना पैसे के सभी लोग कर सकते हैं और उनसे अर्थोपार्जन भी हो सकता है। हाँ, शिल्प में दक्षता प्राप्त करने के बाद रुपयों की आवश्यकता हो सकती है। पर उस समय रुपयों का अभाव न होगा। नीचे कुछ शिल्पकार्य दिये जाते हैं, जो विना पैसे के हो सकते हैं—

(१) ताल-पत्र से नाना प्रकार की टोकरियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के बैग, आसन, पंखे इत्यादि बन सकते हैं।

(२) सींक से भी उसी तरह नाना प्रकार के बहुत ही मनोहर सामान तैयार हो सकते हैं।

(३) केवड़े के पत्तों से छोटी-बड़ी बहुत ही मुलायम चटाइयाँ बन सकती हैं। केवड़े के सिर या पेड़ से भी बहुत प्रकार के सामान तैयार हो सकते हैं।

(४) फटे-चिटे साफ चीथड़ों और दरजी की दूकान की कतरनों से भी अनेक प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

(५) रद्दी कागज से विविध प्रकार के पदार्थ बन सकते हैं, नया कागज तक बन सकता है।

नहीं सिखाती, बल्कि उनके अंगों के परिचालन में विशेष प्रतिबन्धक होती है। आनन्द की बात है कि अब इसे सभी लोग स्वीकार करते हैं।

यह बात अक्षरशः ठीक है कि आजकल की प्रचलित शिक्षा से हमारे युवक नौकरी के सिवा और किसी स्वावलम्बन-वृत्ति के लिये नितान्त अयोग्य हो जाते हैं। अतः शिक्षा-प्रणाली के आमूल परिवर्त्तन की अनिवार्य आवश्यकता है। बहुत-से अरुचिकर एवं अनुपयोगी विषय युवकों को केवल परीक्षा पास करने के लिये बाध्य होकर सीखने पड़ते हैं। परन्तु परीक्षा के बाद उन विषयों को भूलना ही पड़ता है। बेचारे यह भी नही जानते कि हमें ये विषय क्यों सिखाये जाते हैं। यहाँ तक कि शिक्षक भी यह बात नही जानते! कितने ही अनावश्यक विषयों के आयत्त करने में उनकी रुचि, शक्ति और प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वे विषय उनके भावी जीवन में किसी प्रयोजन के नही होते। अतः उनके बदले में शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। इससे बालक-बालिकाओं को पढ़ने-लिखने के साथ-साथ शुरू से ही शिल्प के विषय में सोचने का मौका मिलेगा। बहुतों के मन में शिल्प के प्रति श्रद्धा और प्रवृत्ति पैदा होगी। स्कूल और कालेज छोड़ने के बाद अथवा नौकरी पाने से निराश होने पर किसी प्रकार का शिल्प-कार्य करने में उन्हें संकोच न होगा। अपने हाथ से काम करने में नही शर्मायेंगे। कुछ काल के बाद उनमें से कितने ही बड़े-बड़े शिल्पकार और व्यवसायी बन जायँगे। आज शिल्प के प्रति शिक्षित-समाज में जो घृणा और अवज्ञा का भाव है, वह कल नहीं रहेगा।

शिक्षित-समाज में जब शिल्प या वाणिज्य का प्रश्न उठता है तब वे लोग सोचते हैं कि यथेष्ट मूलधन न होने से कोई शिल्प या वाणिज्य चल नहीं सकता और शिल्प से जो चीज तैयार होगी उसकी बिक्री के लिये जबतक उपयुक्त क्षेत्र या ग्राहक न होगा तबतक शिल्प के लिये परिश्रम करना निरर्थक है। किन्तु कुटीर-(गृह)-शिल्प के लिये पूँजी की विशेष चिन्ता करना बेकार है। बिना पूँजी के ही कुटीर-शिल्प का श्रीगणेश किया जा सकता है। बिक्री के योग्य यदि चीज तैयार होगी, तो बिक्री के लिये चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। देश में या विदेश मे, जो शिल्प की सेवा मे लगे हैं, उनके पास समस्त संसार के प्रत्येक मनुष्य के उपार्जित धन का कुछ-न-कुछ अंश जरूर पहुँचता है।

हमारे देश की गरीबी का खयाल करने पर यह बात ध्यान में आयेगी कि बिना खर्च के सभी गाँवों मे मिलनेवाले ताल-पत्र, खजूर-पत्र, घास, भूसा प्रभृति उपकरणों के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करना कितना आवश्यक

थोड़ा-बहुत उपार्जन करके सन्तुष्ट हो जायँ और बेशी कुछ उद्योग न करें। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में अभी जो शिल्प की अवस्था है उसकी उन्नति के लिये स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवक, ऊँच-नीच, धनी, दरिद्र, प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ-न-कुछ शिल्प-सम्बन्धी अभ्यास करना जरूरी है। बड़े शिल्प को सभी लोग नहीं कर सकते। थोड़े-से आरम्भ करना सबके लिये सहज और सम्भव है। प्रत्येक व्यक्ति जब नियमित रूप से मनोयोग-पूर्वक शिल्प का कुछ-न-कुछ काम करेगा तब थोड़े ही दिनो में देश में शिल्प का वातावरण ठीक हो जायगा। उसके बाद स्वभावतः लोग बड़े-बड़े शिल्पों के लिये अग्रसर होंगे।

हमारे देश में छोटे-बड़े सभी प्रकार के शिल्पों के साधन प्राप्त होने का सुभीता है। पहले छोटे-छोटे शिल्पों का आश्रय लेकर बड़े-बड़े शिल्पो के लिये क्रमशः प्रस्तुत होना पड़ेगा। बड़े-बड़े शिल्पों के लिये नाना उपकरण हमारे देश मे पैदा होते हैं। यहाँ के कच्चे माल विदेश जाकर शिल्प की सहायता से बहुमूल्य पदार्थों में परिणत हो जाते हैं। वे पदार्थ किस प्रकार यहाँ पर थोड़े खर्च में तैयार हो सकते हैं, इसके लिये प्रबन्ध और विचार करना पड़ेगा। कच्चा माल विदेश न भेजकर उसके बदले उत्कृष्ट शिल्प से तैयार माल ही विदेश भेजा जाय, इसकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। किस उपाय से विदेश से स्वदेश में अधिक रुपये आ सकेंगे, यह सोचना पड़ेगा।

यह बात सभी जानते हैं कि जिस देश के जितने अधिक रुपये बाहर चले जाते हैं, वह देश उतना ही अधिक दरिद्र होता है—जिस देश में जितने ही अधिक रुपये बाहर से आवेंगे, वह देश उतना ही अधिक धनी होगा; किन्तु केवल जानने और युक्ति-तर्क करने तथा केवल सोचने से ही धन नही आ सकता। शिक्षित लोग जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसे कार्य में परिणत न करने से उसका कुछ मूल्य नहीं। केवल कार्य ही देश की सम्पत्ति है। कार्य ही देश की आर्थिक अवस्था का परिवर्त्तन कर सकता है। अतः कार्य का सुमार्ग सोचना पड़ेगा। देश की शक्ति, पारिपार्श्विक अवस्था, कार्य की गुरुता और देशवासी की दक्षता आदि की ठीक-ठीक आलोचना करके अग्रसर होना होगा। ऐसा करने से सहज ही सफलता मिलेगी, स्वय धन का आगमन होगा।

कोई-कोई, विशेषतः शिक्षित लोग, ग्रामवासियों पर यह दोष लगाते हैं कि गाँववाले सभी आलसी होते हैं। वे लोग किसी का उपदेश नहीं सुनते हैं। जो करते आ रहे हैं, उसके सिवा और कुछ करने के लिये राजी नही होते हैं। वे

(६) मिट्टी से खिलौने, मूर्त्तियाँ, बरतन आदि चीजे बन सकती हैं।

(७) अंडी-रेशम पैदा करने के लिये कुछ भी पैसे की जरूरत नही पड़ती।

(८) पेड़ की छाल से रंग, रस्सी और अन्यान्य चीजे भी बन सकती हैं।

(६) अनाज के डठलों से बहुत प्रकार के सुन्दर पदार्थ बन सकते हैं। पुआल और भूसे से कागज, दफ्ती, स्याहीसोख आदि बन सकते हैं।

(१०) नाना प्रकार की लताओ और घासों से, जो सभी गाँवों में मिल सकती हैं, कितनी ही सुन्दर चीजें बनाई जा सकती हैं।

(११) नाना प्रकार के पत्तों और बेतो से भी बहुत-से पदार्थ बन सकते हैं।

(१२) बाँस और सरकंडे से भी बहुत प्रकार की चीजें बन सकती हैं।

इसी तरह और भी बहुत-सी चीजें हैं जिनसे नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। इन क्षुद्र पदार्थों से आरम्भ करके आगे शिल्प में बहुत उन्नति की जा सकती है। गाँव में बेकार बैठे हुए मनुष्यो के द्वारा यदि बहुत-से उत्कृष्ट पदार्थ प्रचुर परिमाण में बनवाकर देश-विदेश में चालान किये जायँ तो क्रमशः बड़े व्यवसाय की सृष्टि हो सकती है।

सबसे बढ़कर शिल्प का असल मूलधन है धैर्य और अध्यवसाय। एक दो चीजें बनाकर लोगों को यह नहीं सोचना चाहिये कि हमें इस विषय की कुशलता पूरी-पूरी प्राप्त हो चुकी। एक चीज बनाने के बाद आप उसी चीज को फिर जितनी बार बनावेंगे, वह उतना ही अधिक सुन्दर और रुचिकर होगी—साथ ही, हाथ की गति भी बढ़ने लगेगी।

शिल्प से शीघ्र धनोपार्जन की आशा नही की जा सकती। पर जितने कम समय में जितने ही अधिक सुन्दर पदार्थ बनाने की शक्ति बढ़ने लगेगी उतना ही अधिक धनोपार्जन हो सकता है।

अच्छे शिल्पी प्रायः लोगों की रुचि को ध्यान में रखकर ही कोई पदार्थ बनाते हैं। फिर भी बनाये हुए पदार्थ की सुन्दरता से ही लोग उसे खरीदने के लिये आकृष्ट होते हैं। बाजार कभी पदार्थों की सृष्टि नहीं करते। सुन्दर पदार्थ बनाने से न बाजार का अभाव होगा, न खरीदार का ही।

शिल्पकार के हाथ और आँख की विचक्षणता-वृद्धि के साथ-साथ नये-नये भाव, नूतन-नूतन पदार्थों का रूप और पदार्थ की नई-नई आकृतियाँ आप-से-आप उसके हृदय मे पैदा होती हैं।

मैं यह नहीं कहता कि हमारे देशवासी केवल छोटे-छोटे गृह-शिल्पों द्वारा



नालन्दा-विद्यापीठ

श्रीअवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, दैनिक 'हिन्दुस्तान', सहकारी-संपादक, नई दिल्ली

प्रथम प्रभात उदय तव गगने
प्रथम सामरव तव तपोवने
प्रथम प्रचारित तव वन भवने
ज्ञान धर्म कत काव्य काहिनी

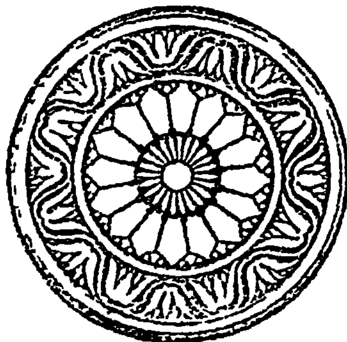
पुरातन भारत में नालन्दा-विद्यापीठ-सदृश विश्वविद्यालयों के अस्तित्व ने ही कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह कविता चरितार्थ की है। ज्ञान, धर्म और संस्कृति के कारण आर्यावर्त्त को विश्व का गुरु बनाने का श्रेय नालन्दा-जैसे विद्यापीठों को ही है। सुमात्रा, जावा, हिन्द्चीन, चीन, कोरिया, जापान, तुर्किस्तान, तिब्बत आदि देश यदि भारत-भूमि को आज भी समादर की दृष्टि से देखते हैं और भारत को अपनी धर्मभूमि मानते हैं तथा भारत की यात्रा करके अपने जन्म, को सार्थक करते हैं, तो इसका श्रेय नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, वलभी, उदन्तपुर आदि विद्या-केन्द्रों को ही प्राप्त है। भारत से बाहर महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का संदेश ले जानेवाले सहस्रों बौद्ध-भिक्षुओं का प्रवाह इन्हीं विद्यापीठों से प्रवाहित हुआ, जो मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व तक जारी रहा। इन विद्यापीठों में नालन्दा का अन्यतम स्थान है। इस युग में, जब हम भारतीय संस्कारों के आधार पर स्वाधीन शिक्षणालयों की स्थापना के लियें प्रयत्नशील हैं, नालन्दा का संस्मरण हमारे अन्दर नवीन स्फूर्त्ति और हमारे आदर्शों के अंदर नूतन चैतन्य उत्पन्न करेगा।

लोग अपने हित और स्वार्थ की बात भी नहीं समझते हैं। अपनी शोचनीय स्थिति से ऊपर उठने का उत्साह उनमें नहीं है।

भारतवर्ष में इस समय चारो ओर 'ग्रामोन्नति' नाम की एक हवा बह रही है। कितने प्रकार के संघ और कितनी ही समितियाँ बनाई जा चुकी हैं। उन्हींके असफल कार्यकर्त्ता प्रायः यह अभियोग लगाते हैं। किन्तु यह अभियोग ठीक नहीं है। न तो ग्रामवासी आलसी हैं और न निकम्मे। यदि कोई उनको किसी काम में लगा सके तो वे लोग उसमें जी-जान से जुट जायँगे। हाँ, उनलोगों को किसी काम में किस प्रकार भिड़ाना चाहिये, यह जानना जरूरी है। फिर तो वे लोग हाथ या गले में घड़ी न लगाये रहने पर भी ठीक घड़ी के काँटे पर काम करेंगे।

जो लोग स्कूल या कालेज में पढ़ते हैं या सरकारी आफिस में काम करते हैं वे लोग प्रतिदिन साढ़े दस बजे अपने कार्य में योग देते हैं। किन्तु रविवार को कुछ ही लोग बारह से पहले खाने के लिये तैयार होते हैं। परन्तु गाँव के किसान को, जेठ महीने की वर्षा के बाद, एक मुहूर्त्त भी कोई घर में बैठा न देखेगा। खेती के समय मे उनलोगो के लिये न रविवार है, न गुरुवार। खेती के बाद उनलोगो के लिये प्रतिदिन रविवार ही होता है। पर वे ही जब कही किसी कल कारखाने में काम करते हैं तब मिनट और सेकण्ड का मूल्य भी ठीक समझते हैं।

तब फिर वे शिक्षितो के परामर्श क्यो नही सुनते हैं? स्पष्ट उत्तर यह है कि उनलोगो का शिक्षितो पर विश्वास नही है। उनलोगो की धारणा है कि शिक्षित-समाज निकम्मा है। निकम्मे के मुँह से काम का उपदेश? फिर भी शिक्षित-समाज को तत्परता से कार्य करते हुए जिस दिन वे लोग देखेंगे, उसी दिन उनलोगो को विश्वास होगा। शिक्षित लोग जिस दिन उनलोगो के साथ मिलकर काम करेंगे, उनलोगो के लिये काम करेंगे, उसी दिन से वे लोग शिक्षितो के उपदेश सुनने लगेंगे—उनलोगो का अनुसरण भी करेंगे। देश की उन्नति का मार्ग उसी दिन खुलेगा, इसमे सन्देह नहीं है।





नालदा के एक स्तूप का पश्चिमी अंश, जिसमे ऊपर बुद्धदेव और नीचे तारा की मूर्त्ति है।



नालदा के सर्वप्रधान स्तूप की बगल की दीवार पर चूने और सिरमिट से बनी बुद्ध की मूर्त्ति

(पृष्ठ १०७ , २०१)

स्थान—नालन्दा के भग्नावशेष इस समय भी पटना जिले के बिहार-शरीफ सबडिवीजन में 'बड़गॉव' नामक ग्राम से तीन सौ फीट की दूरी पर पाये जाते हैं। 'बड़गॉव' राजगिरि से आठ मील दूर है। नालन्दा के अवशेषों के दर्शनोत्सुकों को ईस्ट-इंडियन-रेलवे (ई० आइ० आर०) की मेन-लाइन के बख्तियारपुर नामक जक्शन-स्टेशन से लाइट-रेलवे द्वारा जाना और नालन्दा स्टेशन पर उतरना चाहिये। यही से थोड़ी दूर पर बड़गॉव है जिसके पास नालन्दा के प्राचीन गौरव की स्मृति को जाग्रत करनेवाले अवशेष लोचन-गोचर होंगे।

इतिहास— इसका प्रारंभ एक सामान्य बौद्ध-विहार के रूप में हुआ, जिसमें अनेक स्थविर और भिक्षुगण निवास करते थे। बौद्ध-अनुश्रुति के अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध-आचार्य सारिपुत्र ने इसी स्थान पर अपने अस्सी हजार शिष्यो और अर्हतो के साथ निर्वाण-पद प्राप्त किया था। बौद्ध-विहार और संघाराम के रूप में नालंदा की कीर्त्ति भगवान् बुद्ध के जीवन-काल से ही प्रारंभ होती है।

सुविख्यात तिब्बती इतिहासवेत्ता तारानाथ के अनुसार सम्राट् अशोक ने यहॉ पर एक विशाल मंदिर और विहार बनवाया था। अशोक के प्रयत्नो से ही नालन्दा एक शिक्षाकेन्द्र के रूप में परिवर्त्तित होने लगा। सुविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने यहॉ अभिधर्म की शिक्षा के लिये एक सौ आठ शिक्षणालयों की स्थापना की। इसके बाद अनेक शतियो तक यह एक प्रमुख शिक्षाकेन्द्र के रूप में विकसित होता रहा। बाद को राजशक्ति का ध्यान भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ। सबसे पहले महाराज शक्रादित्य ने यहॉ अनेक भवनो का निर्माण किया। फिर उनके पीछे बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य ने भी इसकी उन्नति में बहुत सहायता पहुँचाई। बालादित्य प्रसिद्ध हूण-आक्रान्ता मिहिरकुल का समसामयिक और छठी शती में मगध का अधिपति था।

गुप्त-सम्राटो द्वारा सहायता प्राप्त कर नालन्दा ने बड़ी उन्नति की—यह विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय बन गया। अत अनेक चीनदेशीय तथा विदेशी विद्यार्थियो का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ। विदेशी विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में यहॉ पर ज्ञानोपासना के लिये आने लगे। यहॉ के शिक्षाप्राप्त विदेशी विद्यार्थियो मे कुछ के नाम अधोलिखित हैं—

[१] शर्मन् ह्यून-चिन = प्रकाशमति—सातवीं शती मे आया और तीन वर्ष तक यहॉ रहा।

[२] थौ-ही = श्रीदेव—इसने यहाँ पर महायान-संप्रदाय का अध्ययन किया।

[३] आर्यवर्मन्—यह कोरिया का एक छात्र था।

[४] एक कोरियन भिक्षु ६८८ ई० में यहाँ आया था।

[५] स्वी-हॉग—सातवी शती में आया और यहाँ आठ वर्ष तक रहा।

[६] ओ-कोग = धर्मदत्त—यहाँ तीन वर्ष तक रहा।

[७] इत्सिग = बुद्धकर्मा—इसने दस वर्ष तक नालन्दा में रहकर शिक्षा पाई।

[८] तोफॉग = चन्द्रदेव—यह नालन्दा के दर्शनार्थ आया था।

[९] तॉग-तॉग—महायान-सम्प्रदाय का था। नालंदा के दर्शन के लिये आया था।

[१०] ह्यूनसॉग—यहाँ दो वर्ष तक रहकर अध्ययन किया।

[११] ह्यून-सन—यह एक कोरियन भिक्षु था। यह प्रयाणवर्मा नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह भी नालन्दा-दर्शनार्थ आया था।

[१२] किंग-चू = शीलप्रभ—यहाँ रहकर इसने शब्दकोषों का अध्ययन किया।

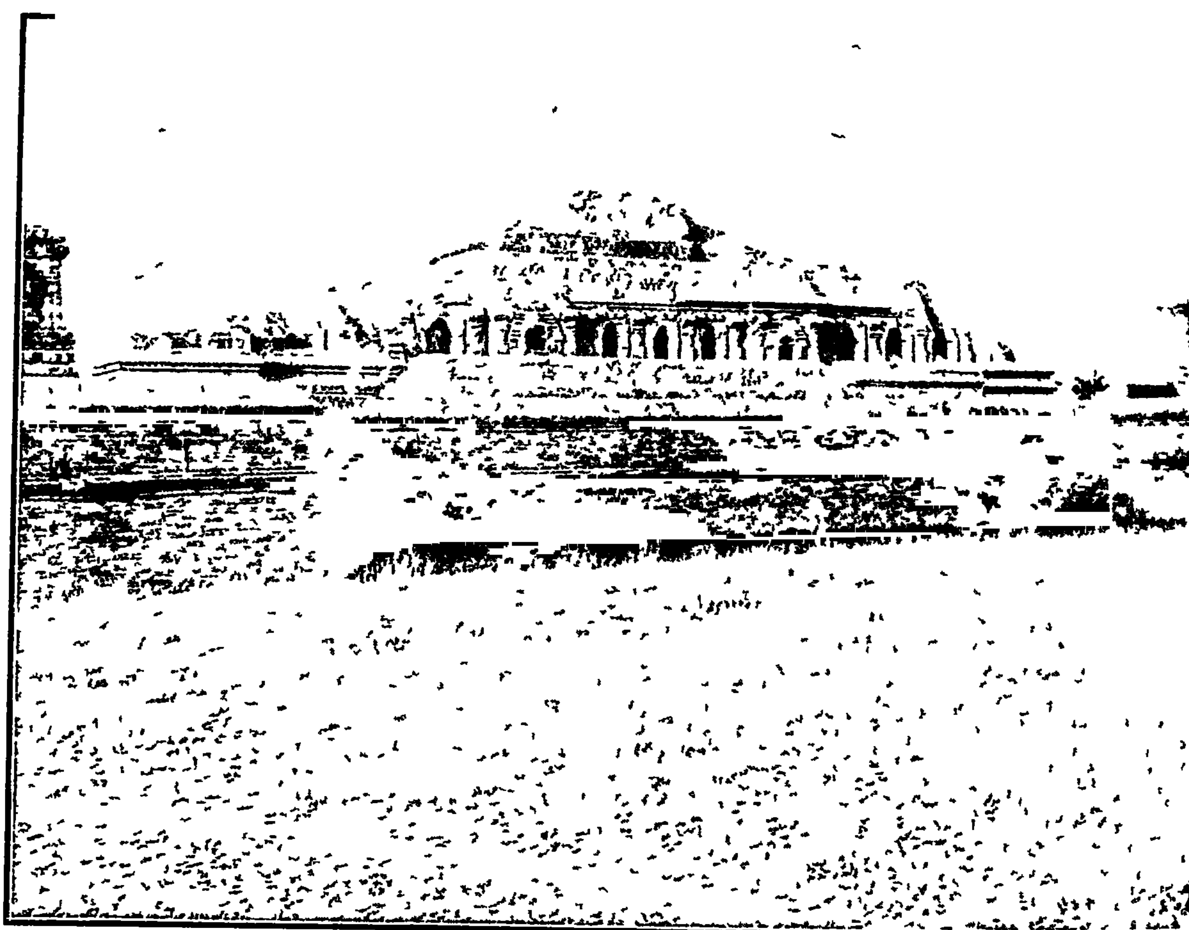
[१३] ह्यून-तात—यह दस साल तक रहकर पढ़ता रहा।

[१४] वान-होग = प्राज्ञदेव—यह भी यहाँ रहकर कोष का अध्ययन करता रहा।

इन दूरागत विद्यार्थियों द्वारा वर्णित विवरणों से ही नालन्दा की बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं।

संचालन—इसका संचालन अनेक राजाओं द्वारा दिये गये निरन्तर दान से होता था। राजाओं ने इसके संचालन के लिये सैकड़ों गॉवों की आमदनी इसके अधीन कर दी थी। ह्यूनसाँग के समय में इसके पास दो सौ गॉव थे। ग्रामो से ही आवश्यक सामग्री प्राप्त होती थी। प्रत्येक विद्यार्थी को नियमित परिमाण में भोज्य पदार्थ मिलते थे—१२० जम्बीर, २० पूग, महाशाली चावलों की एक थैली, तेल, मक्खन इत्यादि।

शिक्षा-क्रम—यहाँ केवल ऊँची शिक्षा ही दी जाती थी। एक अधिकारी-परीक्षा (द्वार-परीक्षा) ली जाती थी, जिसमे उत्तीर्ण होने के बाद ही विद्यार्थी

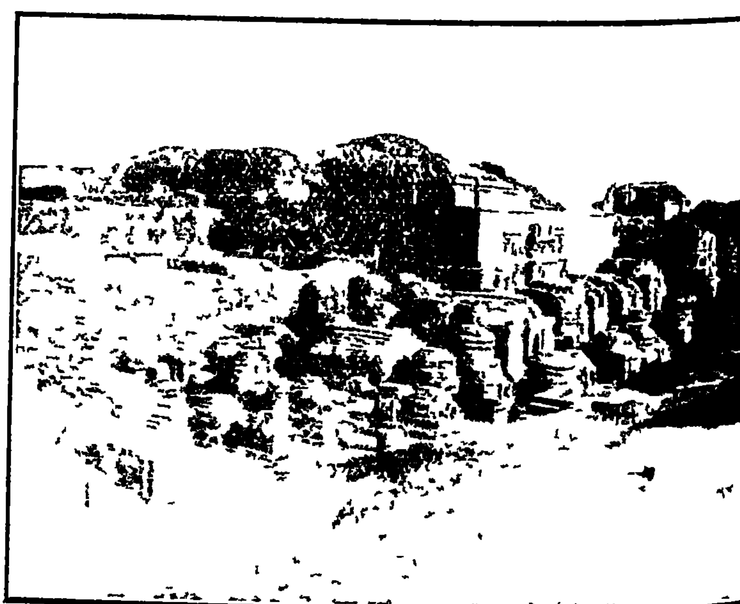


नालंदा के एक विशाल चैत्य का ध्वसावशेष (उत्तर की ओर का अ

(पृष्ठ १०७; २०१)



नालदा में प्राप्त, कमल पर अभय खडे हुए, बुद्ध की काँसे की ऊँचाई ११ इंच



नालदा के उपर्युक्त चैत्य का एक अंश और स्तूप का दृश्य

[२] थौ-ही = श्रीदेव—इसने यहाँ पर महायान-संप्रदाय का अध्ययन किया।

[३] आर्यवर्मन्—यह कोरिया का एक छात्र था।

[४] एक कोरियन भिक्षु ६८८ ई० में यहाँ आया था।

[५] ह्वी-हॉग—सातवी शती में आया और यहाँ आठ वर्ष तक रहा।

[६] ओ-कोग = धर्मदत्त—यहाँ तीन वर्ष तक रहा।

[७] इत्सिग = बुद्धकर्मा—इसने दस वर्ष तक नालन्दा में रहकर शिक्षा पाई।

[८] तोफॉग = चन्द्रदेव—यह नालन्दा के दर्शनार्थ आया था।

[९] तॉग-तॉग—महायान-सप्रदाय का था। नालंदा के दर्शन के लिये आया था।

[१०] ह्यूनसॉग—यहाँ दो वर्ष तक रहकर अध्ययन किया।

[११] ह्यून-सन—यह एक कोरियन भिक्षु था। यह प्रयाणवर्मा नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यह भी नालन्दा-दर्शनार्थ आया था।

[१२] किंग-चू = शीलप्रभ—यहाँ रहकर इसने शब्दकोषों का अध्ययन किया।

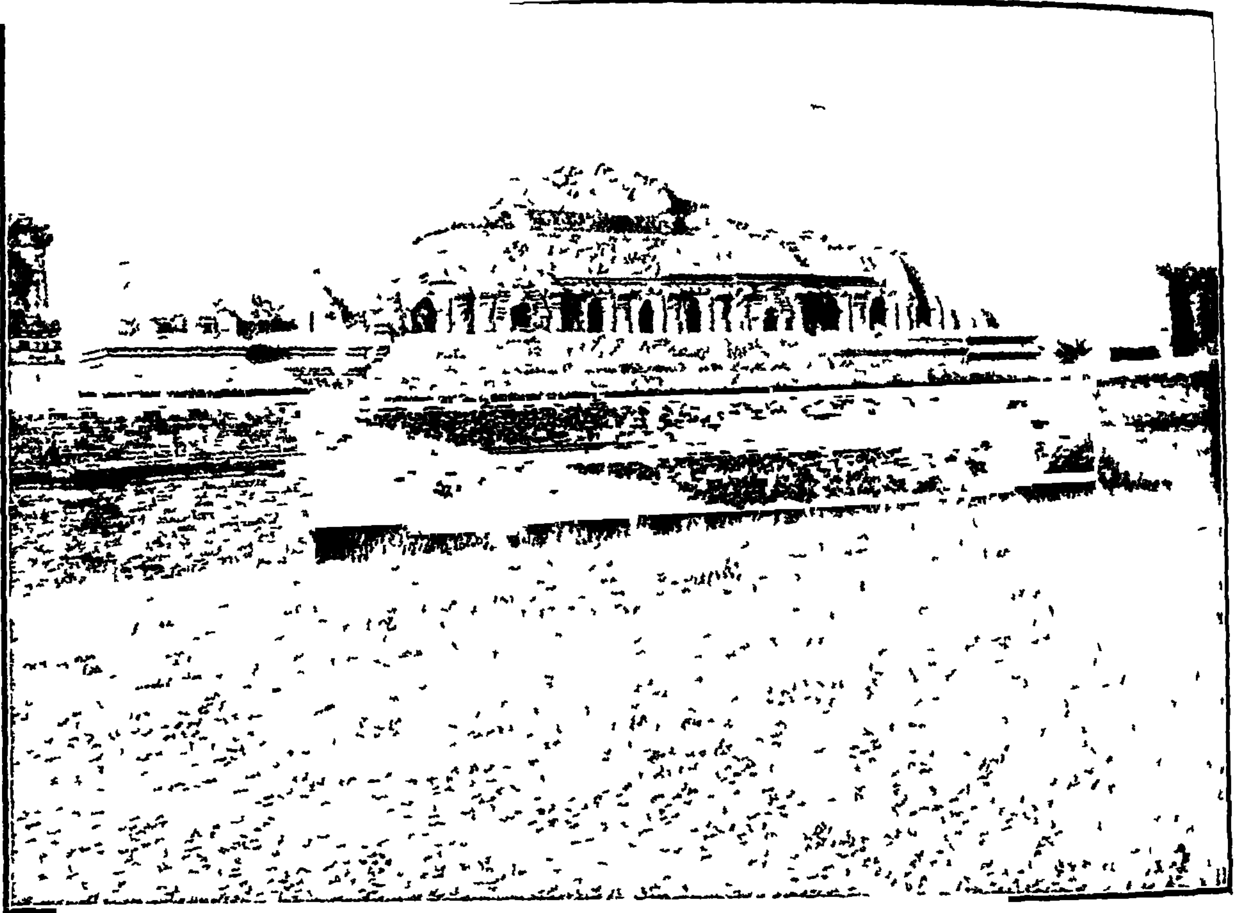
[१३] ह्यून-तात—यह दस साल तक रहकर पढ़ता रहा।

[१४] वान-हौंग = प्राज्ञदेव—यह भी यहाँ रहकर कोप का अध्ययन करता रहा।

इन दूरागत विद्यार्थियों द्वारा वर्णित विवरणों से ही नालन्दा की बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं।

संचालन—इसका संचालन अनेक राजाओं द्वारा दिये गये निरन्तर दान से होता था। राजाओं ने इसके संचालन के लिये सैकड़ो गॉवो की आमदनी इसके अधीन कर दी थी। ह्यूनसाँग के समय में इसके पास दो सौ गॉव थे। ग्रामो से ही आवश्यक सामग्री प्राप्त होती थी। प्रत्येक विद्यार्थी को नियमित परिमाण में भोज्य पदार्थ मिलते थे—१२० जम्बीर, २० पूग, महाशाली चावलो की एक थैली, तेल, मक्खन इत्यादि।

शिक्षा-क्रम—यहाँ केवल ऊँची शिक्षा ही दी जाती थी। एक अधिकारी-परीक्षा (द्वार-परीक्षा) ली जाती थी, जिसमें उत्तीर्ण होने के बाद ही विद्यार्थी



नालंदा के एक विशाल चैत्य का ध्वसावशेष (उत्तर की ओर का अंश)

(पृष्ठ १०७; २०१)

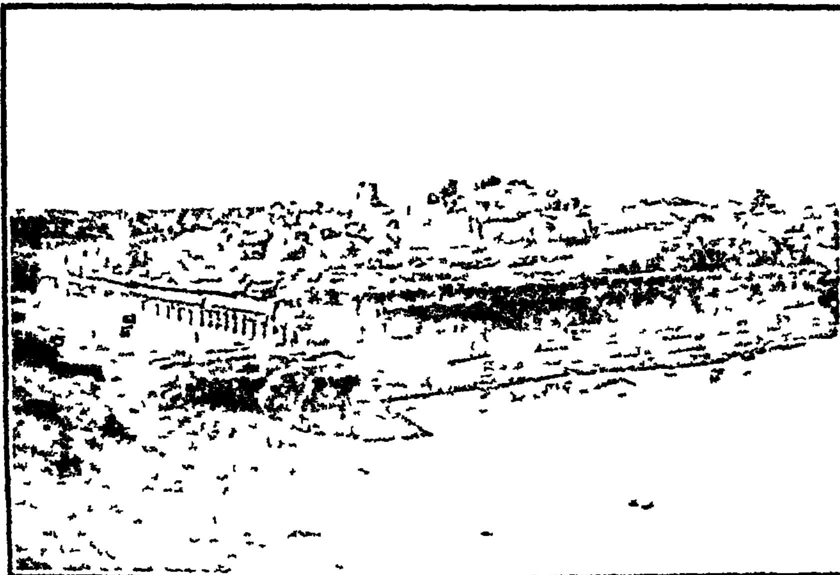


नालंदा में प्राप्त, कमल पर अभय मुद्रा में खड़े हुए, बुद्ध की काँसे की मूर्ति—ऊँचाई ११ इंच



नालंदा के उपर्युक्त चैत्य का एक अंश और स्तूप का दृश्य

जहाँ दस हजार विद्यार्थी निःशुल्क विद्याध्ययन करते थे; जिसकी ज्ञान-किरणें हिमालय की चोटियों और महासागर की तरंगों को लघकर सुदूर तिब्बत, चीन, स्याम और स्वर्णद्वीप तक प्रभा विकीर्ण करती थी; उस नालदा-विश्वविद्यालय के सर्वप्रधान विशाल स्तूप का ध्वंसावशेष! भगवान् बुद्ध ने तीन महीने तक जहाँ रहकर धर्मोपदेश किया था, उसी स्थान पर, उन्ही की स्मृति मे, यह स्तूप बनाया गया था।



नालन्दा-विश्वविद्यालय के विशाल प्रस्तर-मन्दिर का ध्वंसावशेष! इसकी लम्बाई ११८ फीट और चौड़ाई १०२ फीट है। इसका निर्माण-काल छठी-सातवीं शताब्दी के लगभग समझा जाता है। (पृष्ठ १००, २०१)

इसमें प्रविष्ट हो सकते थे। इस परीक्षा के लिये निम्नलिखित विपयो में उत्तीर्ण होना आवश्यक था—

[१] *व्याकरण*—इसके पाठ्य विषय में पॉच मुख्य ग्रंथ थे—प्रथम सिद्ध, दूसरा धातु। धातु में एक हजार श्लोक थे। तीसरा सूत्र, चौथा खिल। खिल—मंत्र अष्टधातु, मंड और उणादि—इन तीन विभागो में विभक्त होता था; इसमें कुल तीन हजार श्लोक थे। पॉचवॉ ग्रंथ वृत्तिसूत्त था, जो पाणिनीय अष्टाध्यायी के भाष्य का नाम था।

[२] *गद्य और पद्य*—इस परीक्षा मे विद्यार्थियों के लिये धारावाहिक रूप से संस्कृत में गद्य लिखना आना आवश्यक था। साथ ही, पद्य-रचना की योग्यता भी आवश्यक थी।

[३] *हेतु-विद्या*—इसमें 'न्याय-द्वार तर्कशास्त्र' नामक ग्रथ का अनुशीलन कर उसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक था।

[४] *अभिधा कोष* (Metaphysics)—यह परीक्षा द्वारपंडित नामक अधिकारी के द्वारा ली जाती थी। ह्यूनसॉग ने लिखा है कि यह अधिकारी-परीक्षा बहुत कठिन होती थी। इसमे अनुत्तीर्ण छात्रो की संख्या चालीस प्रतिशत से कम नहीं होती थी। इससे प्रतीत होता है कि नालंदा-विद्यापीठ के संचालको को अपने विद्यापीठ का स्टैंडर्ड ऊँचा रखने का बड़ा ध्यान रहता था।

विश्वविद्यालय मे कौन-से विपय मुख्यतया पढ़ाये जाते थे, इसका वृत्तान्त भी चीनी विद्यार्थियो के लेखो से मिलता है। बौद्ध-धर्म का ऊँचा-से-ऊँचा अध्ययन इस विद्यापीठ का मुख्य कार्य था। इसीलिये बौद्ध-धर्म के सभी प्रसिद्ध शास्त्र यहॉ पर पढ़ाये जाते थे। परन्तु केवल बौद्ध-धर्म के शास्त्र ही नहीं, अपितु अन्य विद्याओं के पढ़ाने का भी यहॉ समुचित प्रबन्ध था।

शिक्षा-प्रबन्ध—इत्सिंग के अनुसार इस विश्वविद्यालय में इस प्रकार के शिक्षक थे, जो सब सूत्रो और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। पॉच सौ ऐसे विद्वान् थे, जो तीस 'विद्यासंग्रहो' को पढ़ा सकते थे। दस ऐसे विद्वान् थे, जो पचास 'विद्यासंग्रहो' की व्याख्या कर सकते थे। इन्हीं दस विद्वानो में एक कुलपति आचार्य होता था। विद्यापीठ मे सौ ऐसी वेदियॉ थीं, जहॉ से शिक्षक लोग व्याख्यान दिया करते थे। ह्यूनसॉग के समय में शीलभद्र यहॉ का प्रधान आचार्य था। यह बंगाल का राजकुमार था; परन्तु इसने राज्य की आकाक्षा छोड़कर शिक्षा में ही अपना सपूर्ण जीवन लगा दिया था।

ह्यूनसाँग के कथनानुसार नालन्दा के अध्यापकों और छात्रों का पारस्परिक संबन्ध बड़ा घनिष्ठ होता था। विद्यार्थी अपने गुरुओं की सेवा करते थे। गुरु केवल विद्यादान ही नहीं करते थे, प्रत्युत छात्रों के चारित्र्य को भी उन्नत करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। नालन्दा के स्नातकों की उपाधि राज्य-द्वारा स्वीकृत की गई थी। उन्हें राज्य की ओर से काम मिलता था।

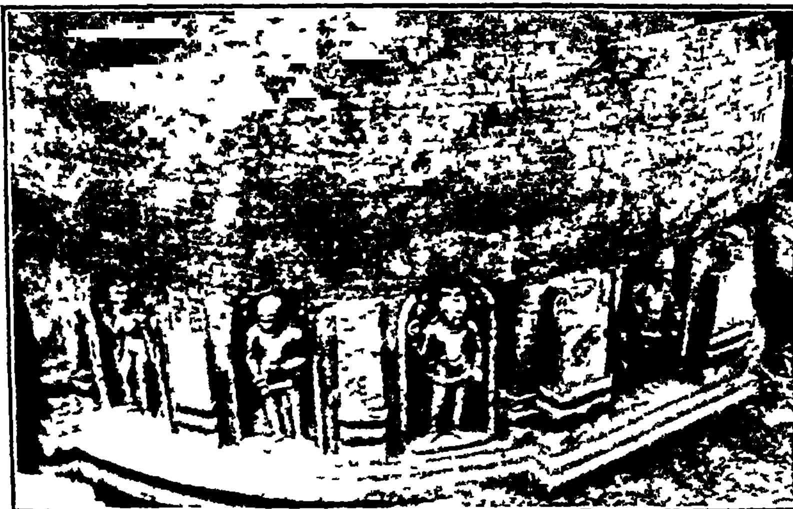
पुस्तकालय—नालंदा के 'धर्मगंज' नामक विभाग में तीन ग्रंथशालाएँ थीं। तीनों के भवन बड़े विशाल थे। उनमें असंख्य ग्रन्थों का दर्शनीय संग्रह था। ग्रंथों का वर्गीकरण, उनके सजाने की शैली, उनके विषय-विभाग का विवरण, उनके उपयोग के नियम आदि वहाँ की सुव्यवस्था के सूचक थे। समस्त ग्रन्थागार दिव्य धूप की मीठी सुरभि से आमोदित रहता था। ग्रंथों को देवोपम आदर प्रदान किया जाता था। बड़ी श्रद्धा और सावधानता से वे काम में लाये जाते थे। पुस्तकालय की स्वच्छता आदर्श थी।

वैभव—प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाँग ने इसके अपार वैभव के विषय में लिखा है—"इस विद्यापीठ के विशाल गगनारोही भवनों के ऊँचे बुर्ज और सुन्दर मीनार पर्वत की चोटियों की तरह शोभायमान हैं। इसकी वेधशालाएँ प्रातःकालिक वाष्प में विलीन रहती हैं। व्योमचुम्बी भवनों की खिड़कियों से मेघ और वायु द्वारा निरन्तर चित्रित किया जाता हुआ आकाश देखा जा सकता है। गवाक्षों (रोशनदानों) से सूर्य और चन्द्र के सम्मेलन का अपूर्व दृश्य दिखाई देता है। निर्मल पारदर्शी जलाशयों में नीलकमल और रक्तकमल अनुपम शोभा उत्पन्न करते हैं। सघन आम्रकुंजों की शीतल छाया का दृश्य और भी शान्त, सुन्दर और पावन है। उपाध्यायों के मकान एक ही प्रकार के चौमंजिले बनाये गये हैं। सीढ़ियाँ मोड़दार बनाई गई हैं। यह विशाल वैभव किसी भी जाति के लिये गौरव का कारण हो सकता है।"

अन्त—नालन्दा-विद्यापीठ से थोड़ी दूर पर विक्रमशिला नामक एक और विश्व-विद्यालय भी विकसित हो रहा था। पालवंशीय राजाओं के प्रवर्द्धमान वैभव, प्रताप और श्री के साथ-साथ विक्रमशिला की गौरव-गरिमा, सुकीर्त्ति और समृद्धि बढ़ती गई। पालवंशीय नृपतियों ने नालन्दा के स्थान पर विक्रमशिला को ही राजकीय विद्यापीठ बनाया और उसको उन्नत तथा समृद्ध बनाने में अपना संपूर्ण ध्यान लगाया। फलतः राजकीय सहानुभूति



राजगृह (पटना) का मनियार-मठ, जिसके नीचे के हिस्से में दीवार पर बनी चूना-सिरमिट की मूर्त्ति का निर्माण काल ३५० से ५०० ई० तक समझा जाता है। नीचे खजाना रखकर ऊपर मणिकार सर्प की स्थापना की गई थी, इसीसे इस मठ का नाम अन्तत. मनियार-मठ पडा।



मनियार-मठ (राजगृह) मे, निचले हिस्से मे दीवार पर की चूना-सिरमिट की मूर्त्तियाँ, जो बिहार की सबसे पुरानी मूर्त्तियाँ समझी जाती है—अफसोस ! ये नष्ट हो गईं !



मौर्यकालीन शासन-प्रणाली और आभ्यन्तरिक अवस्था

प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, मिथिला-कालेज, दरभंगा

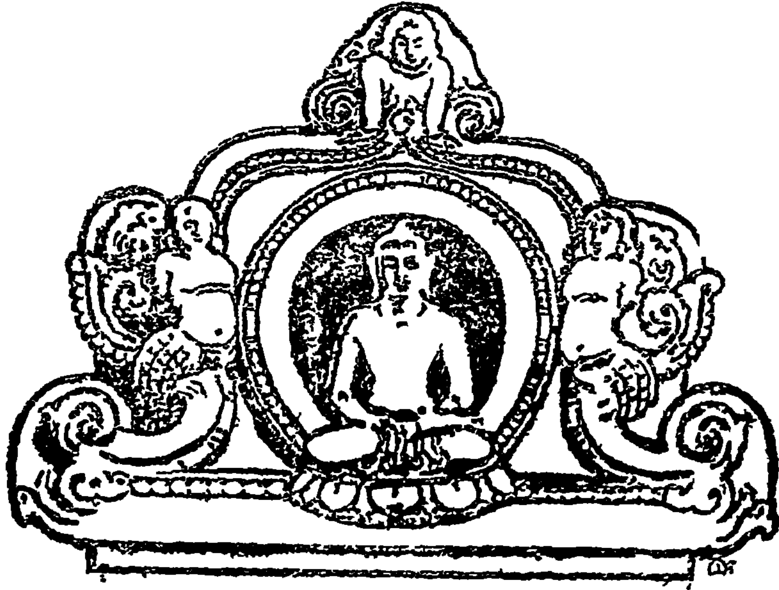
मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक का राज्यकाल भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णयुग समझा जाता है। चाणक्य-रचित 'अर्थशास्त्र' में चन्द्रगुप्त की शासन-प्रणाली और ग्रीकदूत मेगास्थनीज के ग्रन्थ में अशोक की राज्य-समृद्धि का जो परिचय मिलता है उससे सहज ही हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि आज से लगभग बाइस-तेइस सौ वर्ष पूर्व इस देश की आभ्यन्तरिक शासनप्रणाली कितनी उन्नत एवं सुव्यवस्थित थी।

उस समय के ऐतिहासिक विवरणों से पता चलता है कि शासनसंबन्धी विषयों में चन्द्रगुप्त स्वेच्छाचारी राजा के समान नहीं था। अपनी इच्छा से ही उसने शासन-व्यापार के संबन्ध में कितनी ही समितियों का संगठन करके उनके हाथ में शासन-क्षमता प्रदान की थी। राजधानी पाटलिपुत्र के शासन और उन्नति-साधन का भार एक समिति के ऊपर था। इस समिति से वर्त्तमानकाल की म्यूनिसिपल कौंसिल बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। पाटलिपुत्र को म्यूनिसिपल समिति में तीस सदस्य थे। यह समिति छ भागों मे विभक्त थी; प्रत्येक भाग मे पाँच-पाँच सदस्य थे। इस प्रकार ग्रामपंचायत-प्रथा का एक उन्नत संस्करण गठित करके उसके ऊपर चन्द्रगुप्त ने निम्नलिखित विषयों का भार अर्पित किया था—

शिल्पकला-संबन्धी विषयों की देखभाल का भार प्रथम विभाग के ऊपर था। श्रमजीवियों को किस हिसाब से पारिश्रमिक मिलना चाहिये—इसका

के अभाव में नालन्दा की प्रभा क्षीण होने लगी। तो भी नालन्दा बहुत समय तक विक्रमशिला के सामने प्रतियोगिता में टिका रहा—उन्नति-पथ पर डटा रहा।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की सम्मति में १० वी और ११ वीं शती तक नालन्दा एक शक्तिशाली विश्वविद्यालय था, जो न केवल विक्रमशिला की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा रहा, प्रत्युत अपने प्राचीन गौरव को भी अक्षुण्ण बनाये रहा। मुहम्मद बिन-बख्तियार खिलजी के बिहार और बंगाल पर आक्रमण के समय भी नालन्दा विद्यमान था। बख्तियार खिलजी के आक्रमणों ने ही इस विश्वविश्रुत शिक्षा-केन्द्र और संस्कृति-तीर्थ का अन्त किया। नालन्दा का विनाश भारत के इतिहास की एक रोमाञ्चकारिणी और दुःखप्रद घटना है।





सिकन्दर का लौटना

निर्धारण, उपयुक्त पारिश्रमिक प्राप्त करके वे यथोचित रूप में कार्य करें—इसका तत्त्वावधान, और कारीगर लोग उत्कृष्ट माल तैयार करें—इसका निरीक्षण, ये सब काम इस विभाग के जिम्मे थे। उस समय शिल्पी, कारीगर आदि एक प्रकार से राजा के ही कर्मचारी समझे जाते थे। यदि कोई व्यक्ति किसी कारीगर की आँख या उसके हाथ को नष्ट करके उसे अक्षम बना डालता, तो उसे प्राणदंड दिया जाता था।

प्रथम विभाग शिल्पकला

तत्कालीन मौर्य-साम्राज्य के साथ अनेक विदेशी राज्यों का संबन्ध था। कार्यवश अनेक विदेशी पाटलिपुत्र में आकर रहा करते थे। इसके सिवा विदेशी पर्यटक भी विभिन्न देशों से भ्रमण करते हुए यहाँ पहुँचते थे। द्वितीय विभाग के राज-कर्मचारी विशेष यत्न के साथ इन विदेशियों की खोज-खबर लिया करते थे। इतना ही नहीं, उनके लिये उपयुक्त वासस्थान एवं अनुचर आदि का भी प्रबन्ध कर दिया करते थे, और आवश्यक होने पर उनकी चिकित्सा की उत्तम व्यवस्था भी करते थे। किसी विदेशी की मृत्यु होने पर, यथारीति उसकी अन्त्येष्टिक्रिया संपन्न की जाती और इस विभाग के कर्मचारी उसके परित्यक्त द्रव्य आदि को बेचकर उसके उत्तराधिकारी के पास मूल्य भेज दिया करते थे।

दूसरा विभाग वैदेशिक

सरकार की जानकारी के लिये और कर-निर्धारण में सुविधा के खयाल से विशेष सावधानी एवं सुव्यवस्था के साथ इस विभाग द्वारा जन्म-मृत्यु की तालिका तैयार की जाती थी।

तीसरा विभाग जन्म-मृत्यु

व्यापार-वाणिज्य के पर्यवेक्षण का भार चतुर्थ विभाग के ऊपर था। उपयुक्त लाभ से वाणिज्य-वस्तुओं की बिक्री हो और सरकार द्वारा प्रवर्त्तित माप एवं परिमाण काम में लाये जायँ, इसकी ओर इस विभाग के कर्मचारियों का ध्यान विशेष रूप में रहता था। व्यवसायियों से एक निर्दिष्ट राजशुल्क लेकर व्यवसाय करने की अनुमति दी जाती थी। जो एकाधिक वस्तुओं का व्यवसाय करते थे उन्हें निर्दिष्ट शुल्क का दूना देना पड़ता था।

चौथा विभाग वाणिज्य-व्यापार

व्यवसायी नये और पुराने माल को अलग करके रक्खें, इसके लिये एक खास कानून बना हुआ था। जो व्यवसायी इस कानून का उल्लंघन करते थे उन्हें अर्थदंड दिया जाता था। नये और पुराने माल पर एक ही दर से कर नहीं लगता था।

पाँचवाँ विभाग

वाणिज्य द्रव्यादि की बिक्री से जो धन प्राप्त होता, उसका दशमांश राज-कर के रूप में देना पड़ता था। इस कर के वसूल करने का भार छठे

छठा विभाग

विभाग के ऊपर था। यदि कोई व्यवसायी सरकार को इस कर से वञ्चित करने के अपराध में पकड़ा जाता तो उसे प्राणदंड दिया जाता था।

केवल पाटलिपुत्र में ही नहीं, मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत तक्षशिला, उज्जयिनी आदि बड़े-बड़े नगरों में भी इस प्रकार की म्युनिसिपल समितियाँ थीं जिनको नगर के साधारण शासन एवं सुप्रबन्ध का भार सौंपा गया था।

इस प्रकार प्रत्येक विभाग के लिये भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य निर्धारित करके, म्युनिसिपल समिति के हाथ में समग्र राजधानी के साधारण शासन एवं प्रबन्ध का भार दिया गया था। बाजार, बन्दरगाह, मन्दिर आदि सार्वजनिक संस्थाएँ भी राजकर्मचारियों के तत्त्वावधान में थीं।

दूरवर्त्ती प्रदेशों का शासन कार्य परिचालित करने के लिये एक-एक राज-प्रतिनिधि नियुक्त किये गये थे। साधारणतः राजवंश के लोग ही राजप्रतिनिधि नियुक्त होते थे।

दूरवर्त्ती प्रदेशों के राजकर्मचारी किस रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, इसकी जानकारी के लिये संवादलेखक एवं संवादवाहक रक्खे जाते थे। वे कर्मचारियों के ऊपर लक्ष्य रक्खा करते थे और नगर या ग्राम में जहाँ जो कुछ संघटित होता, उसकी खबर सरकार को दिया करते थे। इनके सम्बन्ध में विशेष अनुसंधान करके प्राचीन ऐतिहासिक एरियन ने लिखा है कि ये कभी सत्य का अपलाप नहीं करते और उस समय मिथ्या-भाषण भारतवासियों के स्वभाव के विरुद्ध था।

अति प्राचीन काल से ही भारत का सैन्यबल चार भागों में विभक्त चला आता था—अश्वारोही, गजारोही, रथारोही और पैदल। चन्द्रगुप्त ने इन चार

सेनाविभाग

विभागों के अतिरिक्त और दो नये विभागों—नौ-सेनाविभाग एवं सैन्यसंग्रह-विभाग—की सृष्टि की थी। अपनी सेना में अनुशासन की रक्षा के लिये उसने केवल विधि-नियम ही नहीं बनाये थे, बल्कि उन नियमों के अनुसार यथोचित रूप में कार्य होने पर भी उसका पूरा ध्यान रहता था। इस प्रकार के अनुशासन के कारण ही उसका सैन्यबल दोर्दंड प्रतापशाली हो उठा था। इस

होती थी उसपर भी राजस्व वसूल किया जाता था। इसके लिये नियम यह था कि जो वस्तु जहाँ उत्पन्न या प्रस्तुत होती थी, वहाँ उसकी बिक्री नहीं हो सकती थी। कानून यह था कि बिक्री के माल को (धान्य और गाय आदि पशुओं को छोड़कर) नगर के सिंहद्वार के बीच मञ्चगृह के निकट लाकर मौजूद रखना पड़ता था और वहाँ बैठकर उसकी बिक्री करनी पड़ती थी। बिक्री हो जाने पर वहीं राज कर दे देना पड़ता था। बाहर से जो चीजें मँगाई जाती थीं उनके ऊपर सात प्रकार के कर थे। कुल मिलाकर सैकड़े २० रुपये के हिसाब से 'कर' देना पड़ता था। शाक, फलमूल आदि सहज ही नष्ट हो जानेवाली वस्तुओं पर एक-षष्ठांश या सैकड़े १६ रुपये के हिसाब से 'कर' लगता था। अन्य प्रकार की बहुत-सी वस्तुओं पर सैकड़े ४ से लेकर १० रुपये तक कर लगता था। मणि-माणिक्य आदि बहुमूल्य जवाहरात का जौहरी लोग जो मूल्य निश्चित कर देते थे उसीके ऊपर राज-कर लगाया जाता था। बिक्री के लिये जो सब चीजे लाई जाती थीं उनके ऊपर सरकारी मुहर लगा दी जाती थी।

प्रत्येक नगर में एक नागरक या नगराध्यक्ष हुआ करता था। उसे नगर में बाहर से आनेवाले और बाहर जानेवाले लोगों का हिसाब रखना पड़ता था।

मनुष्य-गणना

लोक-संख्या का निर्धारण करके उसे प्रत्येक अधिवासी के नाम, जाति, श्रेणी, उपाधि, व्यवसाय, आय, व्यय और पालतू जानवरों की एक तालिका तैयार करनी पड़ती थी। राजस्व-सम्बंधी नियमों का उल्लंघन करने पर अपराधी को अर्थदंड दिया जाता था। किन्तु जानबूझकर झूठ बोलनेवाले को चोरी के अपराध में सजा दी जाती थी!

प्रजावर्ग के मनोगत अभिप्राय की जानकारी के लिये राजा की ओर से

गुप्तचर-विभाग

अनेक गुप्तचर नियुक्त होते थे। इनकी कार्यप्रणाली के संबन्ध में भी कितने ही नियम और कानून बने हुए थे। राज-कार्यसाधन के लिये ये कोई भी दुष्कर्म विना किसी हिचक के कर सकते थे।

कृषकों को राजा के युद्ध-कार्य में कभी सहायता नहीं देनी पड़ती थी। यहाँ तक कि आक्रमणकारी और आक्रान्त दोनो पक्ष समान रूप में इनकी रक्षा करते थे। मेगस्थनीज ने लिखा है कि अनेक बार ऐसा देखा जाता था कि दोनों पक्षो में घनघोर संग्राम चल रहा है और पास में ही किसान निश्चिन्त होकर खेती का काम कर रहे हैं।

सैन्यबल की बदौलत ही चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक समस्त भारत की दिग्विजय करने में समर्थ हुआ था। इतना ही नहीं, इस सैन्यबल ने मेसिडन की सेना को भी परास्त किया था, और सेलिउकस के आक्रमण को व्यर्थ कर दिया था।

जिस सेना की सहायता से चन्द्रगुप्त ने राजसिंहासन एवं साम्राज्य प्राप्त किया था, सम्राट् होने के बाद उस सेना की संख्या में उसने बहुत-कुछ वृद्धि कर दी थी। प्राचीन प्रथानुसार उन्हें धनुर्वेद में सुशिक्षित होना पड़ता था। चन्द्रगुप्त ने शस्त्रास्त्रों का संग्रह भी यथेष्ट रूप में किया था। सैनिकों को नियमित रूप से पर्याप्त वेतन मिलता था। सरकार की ओर से उन्हें घोड़ा, अस्त्र-शस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक सामान दिये जाते थे। बिन्दुसार के समय में ८० हजार घुड़सवार, २ लाख पैदल सेना, ८ हजार रथ और ६ हजार रणहस्ती थे। चन्द्रगुप्त की वाहिनी भी इससे कम न होगी। इसके बाद अशोक ने सैन्यबल में वृद्धि की थी। उसकी सेना में घुडसवारों की संख्या ६ हजार, पैदल की संख्या ६ लाख और रणहस्तियों की संख्या ६ हजार थी। इसके सिवा उसकी सेना में बहु-संख्यक रथ भी थे।

सैन्यबल

प्रत्येक घुड़सवार के हाथ में दो बर्छे और एक ढाल रहती थी। पैदल सेना में प्रत्येक सैनिक के हाथ में एक चौड़ी धार वाली तलवार होती थी। इसके सिवा छोटे-छोटे बर्छे या धनुषवाण भी होते थे। धनुष को जमीन पर टेककर बायें पाँव द्वारा उसे दबाकर प्रचंड वेग से बाण छोड़ा जाता था।

अस्त्र-शस्त्र

रथ दो या चार घोड़ों द्वारा खींचे जाते थे। प्रत्येक रथ पर एक चालक के सिवा और भी दो योद्धा रहते थे। एक-एक हाथी के ऊपर महावत के सिवा और तीन धनुर्धारी सवार होते थे।

रथ और गज

राजस्व या कृषिविभाग के अध्यक्ष को जमीन का लगान निर्धारित करते समय इस बात की ओर भी लक्ष्य रखना पड़ता था कि जमीन की सिंचाई किस तरह हो सकती है। आम तौर से राजा उत्पन्न शस्य का एक-चतुर्थांश राज-कर के रूप में ग्रहण करता था। इसके सिवा सिंचाई के लिये जल-कर के रूप में भी कृषकों को राज-कर देना पड़ता था। इन सबके अलावा राजा आवश्यकतानुसार प्रजा से चंदा भी लिया करता था। इस प्रकार विभिन्न नामों और विभिन्न कारणों से प्रजा को अनेक प्रकार के कर देने पड़ते थे।

राजस्व

चहारदीवारी से घिरे हुए शहरों में पण्य वस्तुओं की बिक्री से जो आमदनी

करने के लिये दो षड्यंत्रों का उल्लेख किया गया है। एक दल विष-प्रयोग द्वारा उसकी हत्या करने की ताक मे लगा रहता था, दूसरा दल बहुत दूर से उसके सोने के कमरे तक एक सुरंग खोदकर उसमें छिपा रहता था।

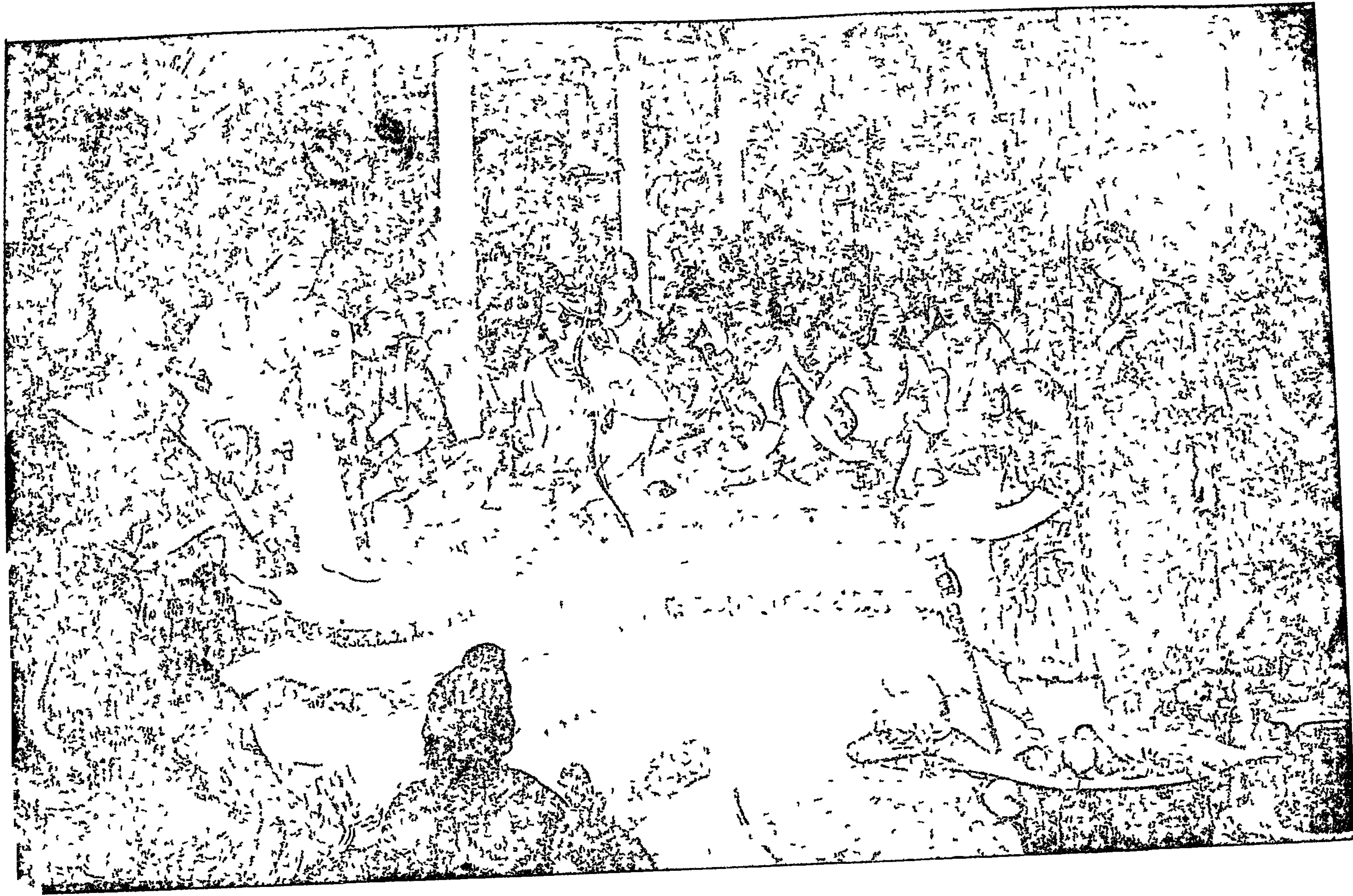
एक सुविस्तृत प्रमोद-उद्यान के मध्य में राजप्रासाद अवस्थित था। प्रधानतः लकड़ी का बना होने पर भी यह सौन्दर्य में उस समय ससार-भर में अद्वितीय समझा जाता था। स्तम्भों पर चित्रविचित्र सुनहले कारु-कार्य खचित होते थे। स्वर्ण-विनिर्मित द्राक्षालताओं से स्तम्भ परिवेष्ठित होते थे। उनके ऊपर चाँदी के बने पक्षी फल के लोभ से आकर बैठे हुए होते थे। प्रासाद के चारो तरफ स्थान-स्थान पर मछलियो से भरे हुए जलाशय और नाना प्रकार के पत्र-पुष्प-शोभित तरुराजि और लता-मंडप निर्मित थे।

राजप्रासाद

दरबार-घर ऐश्वर्य एवं विलासिता की मानों लीला-भूमि था। बड़े बड़े स्वर्णमय पान-पात्र, रत्नखचित कारुकार्य-शोभित आसन एव पात्राधार, ताँबे के बने हुए और मणिमुक्ता से अलकृत बड़े-बड़े पान-पात्र और चित्र-विचित्र बेलबूटादार वसन और गात्रावरण देखकर उनके चाकचिक्य से आँखें चौंधिया जाती थी। किसी विशेष अवसर पर राजा स्वर्णमुक्ता-खचित सुचिक्कण मलमल का कपड़ा पहनकर और मोतियो की झालरों से युक्त सोने की पालकी पर सवार होकर सर्वसाधारण के समक्ष उपस्थित होता था। यदि किसी समीपवर्ती स्थान पर जाना होता तो राजा साधारणतः घोड़े की सवारी करता था; किन्तु दूर की यात्रा करने पर सोने के हौदे से युक्त हाथी पर चढ़कर बाहर निकलता था। मल्लो का अस्त्र लेकर युद्ध करना राजदरबार का एक विशेष विनोद समझा जाता था। बीच-बीच में भेड़, बैल, भैंसे, हाथी और गैंड़े की लड़ाई भी प्रदर्शित होती थी। कुश्ती या मल्लयुद्ध का भी उस समय काफी प्रचार था। इस समय जिस प्रकार घुड़दौड़ होती है उसी तरह उस समय भी साँड़ो की दौड़ हुआ करती थी। घुड़दौड़ के लिये घोड़े भी रक्खे जाते थे। राजा आग्रह एवं उत्सुकता के साथ इन सब खेल-तमाशो में भाग लेता था। साँड़ो की दौड़ मे बीच में एक घोड़ा और दोनो तरफ दो साँड़ो को जोतकर गाड़ी खींची जाती थी।

दरबार

शिकार राजा का प्रधान व्यसन था। काफी धूमधाम के साथ राजा शिकार के लिये बाहर निकलता था। इस अवसर पर सुरक्षित आखेट-भूमि मे एक मचान तैयार किया जाता था, राजा उसपर बैठता था। वन के पशु



सैल्यूकस का आत्म-समर्पण

खदेड़कर मचान की ओर लाये जाते थे; तब राजा धनुषबाण लेकर उनका शिकार करता था। कभी-कभी राजा हाथी पर सवार होकर दुर्गम वन के अंदर भी शिकार करने जाता था। शिकार के समय भी राजा स्त्री-अगरक्षिकाओं द्वारा परिवेष्ठित होकर बाहर निकलता था; स्त्रियाँ शिकार का एक प्रधान अंग समझी जाती थीं। जिस मार्ग से राजा गमन करता था, उसके दोनों तरफ रस्सी का घेरा लगा हुआ होता था। उस रस्सी को लाँघकर कोई सड़क के दूसरी ओर जाने की चेष्टा करता तो उसे प्राणदंड दिया जाता था। सम्राट् अशोक के समय में यह राजकीय आखेट-प्रथा उठा दी गई थी।

शिकार

एरियन ने लिखा है कि उस समय सवारियों में विशेषतः ऊँट, घोड़े और गदहे का व्यवहार होता था। धनी लोग हाथी की सवारी भी किया करते थे। किन्तु हाथी का व्यवहार विशेषतः राजकार्य में ही होता था। हाथी, ऊँट या चार घोड़ों की गाड़ी पर सवार होकर बाहर निकलना विशेष धनीमानी व्यक्तियों को ही शोभा देता था। किन्तु घोड़े पर या एक घोड़े की गाड़ी पर चढ़कर सब लोग निकल सकते थे।

सवारी

राज्य की आभ्यन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था की रक्षा करने, सैन्यबल को सुशिक्षित एवं सुदक्ष बनाने तथा बाहरी और भीतरी शत्रु से राज्य की रक्षा करने के सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त ने जो नियम और कानून बनाये थे, उनसे हमें उच्च कोटि की सभ्यता का परिचय मिलता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अति अल्प वयस् में साम्राज्यलाभ किया था। उसने सिर्फ २४ वर्ष तक शासन किया। इतने थोड़े समय में एक सामान्य व्यक्ति द्वारा इतने बड़े साम्राज्य का स्थापन अवश्य ही आश्चर्य का विषय है।

अशोक के पूर्ववर्त्ती किसी हिन्दू राजा के ताम्रशासन या शिलालेख अबतक नहीं मिले हैं। किन्तु, पाटलिपुत्र, तक्षशिला, वैशाली प्रभृति प्राचीन नगरों के भू-भाग की यदि विशेष रूप से खोदाई हो तो संभव है कि उनके अंदर से हिन्दू-सभ्यता के निदर्शन-स्वरूप ऐसे कितने ही चिह्न उपलब्ध हों, जिन्हें देखकर वर्त्तमान सभ्य जगत् चकित एवं स्तम्भित हो जाय।



भारत के प्राचीन इतिहास में बिहार का राजनीतिक महत्त्व

पंडित नलिनविलोचन शर्मा, एम्० ए०, बी० ए० (ऑनर्स),

१

भारतवर्ष के प्राचीन राजनीतिक ऐतिह्य में बिहार का स्थान एकाधिक दृष्टि-कोणों से असामान्य महत्त्व का है। चूँकि ऐतिहासिक युग के प्रारम्भिक काल में दक्षिण-बिहार और उत्तर-बिहार का एक दूसरे से अलग राजनीतिक विकास हुआ है, इसलिये इस विषय का अध्ययन तदनुसार ही सुविधापूर्ण होगा।

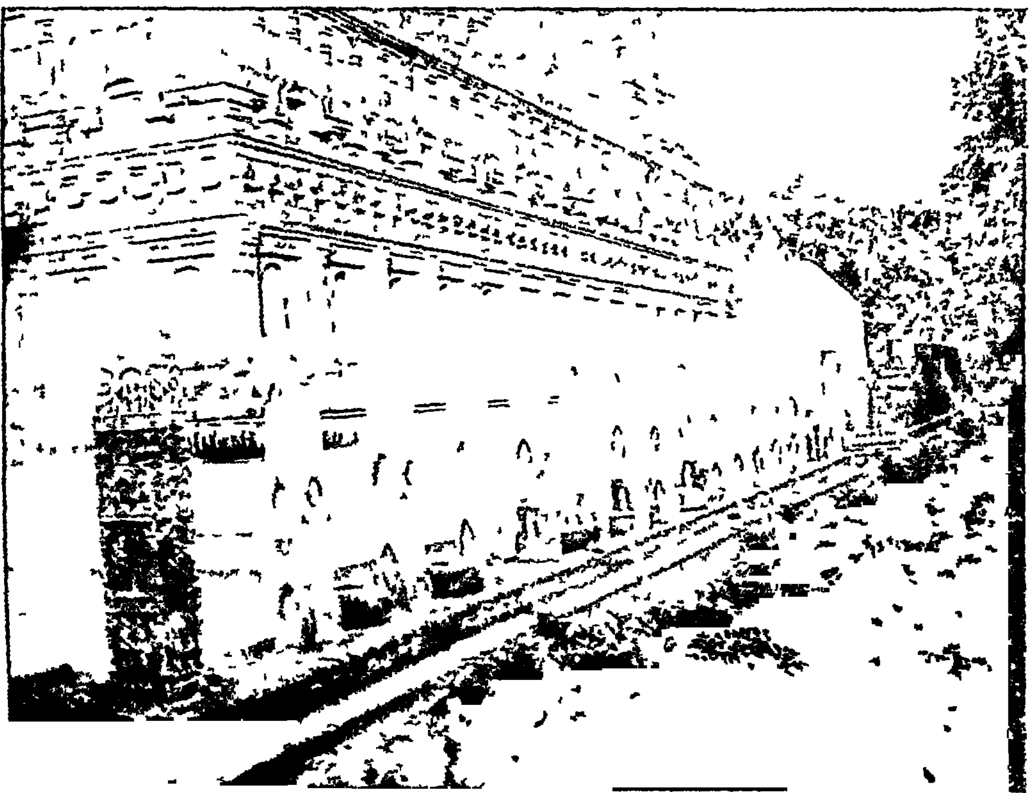
दक्षिण-बिहार में जिस मगध साम्राज्यवाद का उत्थान और पतन हुआ उसके पराक्रम और विस्तार का वैभव और आदर्शवाद का, दूसरा उदाहरण भारतीय इतिहास में तो निश्चय नहीं मिल सकता। दक्षिण-बिहार (मगध) को नन्दों की अजय्य वाहिनी का स्रोतस्थल होने का गौरव है जिसके पराक्रम के श्रवण-मात्र से विश्वविजयी सिकन्दर की सेना के हौसले पस्त हो गये और उसने भारत के सीमाप्रान्तों के आगे बढ़ने से कतई इनकार कर दिया। इसे चाणक्य राक्षस, कामन्दक-जैसे महामतिमान् नीतिज्ञों को और 'प्रतिज्ञा-दुर्बल' होने पर राजा तक को मृत्यु-दंड देने की हिम्मत रखनेवाले पुष्यमित्र-जैसे सेनापतियों को प्रसूत करने का श्रेय है। इसे महापद्मनन्द-जैसे 'एकराट्' एवं 'एकच्छत्र', सेल्यूकस-विजयी चन्द्रगुप्त-जैसे भारत की उत्तर-पश्चिमीय वैज्ञानिक सीमा के एकमात्र सफल निर्धारक, अशोक-जैसे सफल आदर्शवादी और समुद्रगुप्त-जैसे दिग्विजयी सम्राटों की राजधानी का प्रदेश होने का अभिमान है।

समासतः प्राचीन भारतवर्ष के मुख्यतम साम्राज्यों का दक्षिण-बिहार ही केन्द्र रहा है। नन्द, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, गुप्त[१] प्रभृति साम्राज्यों की दिल्ली यही था।

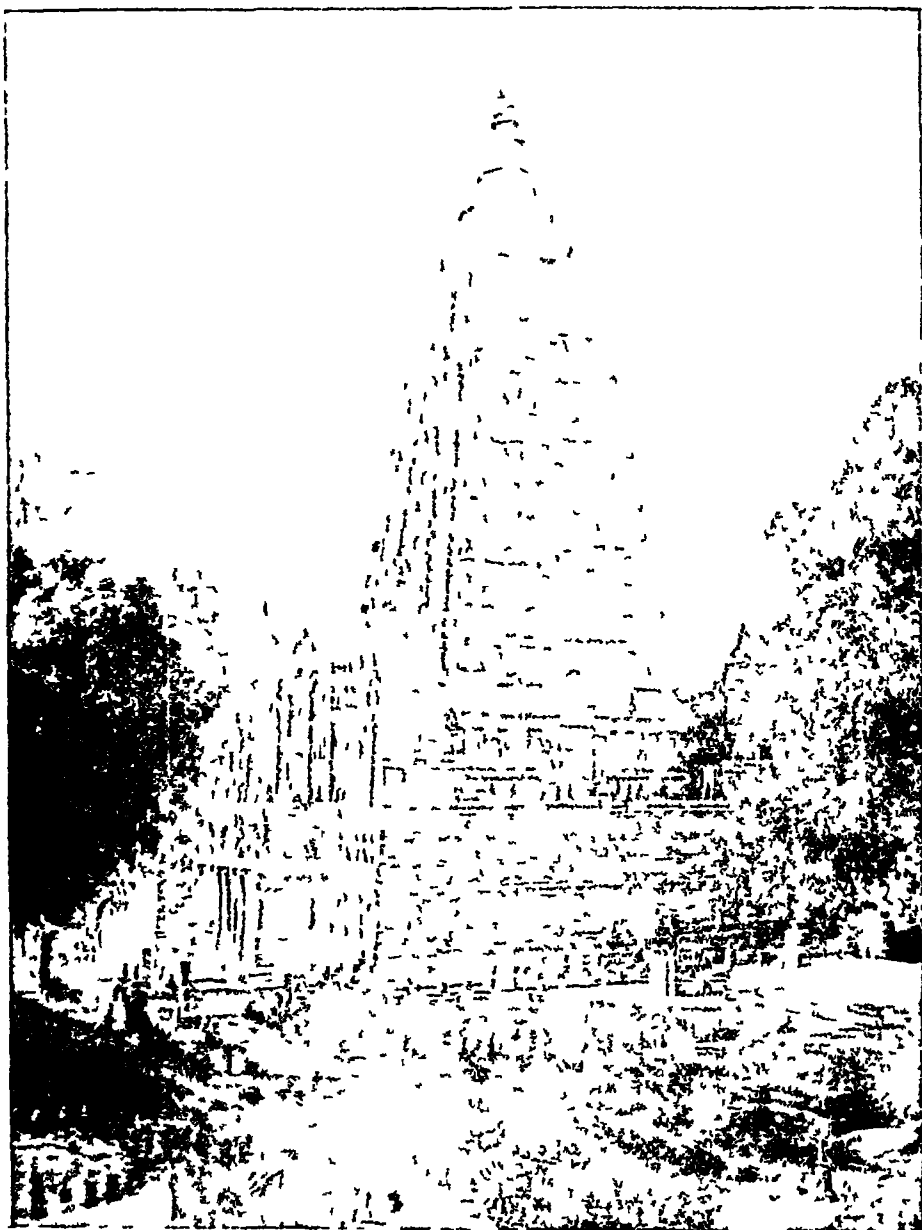
१—स्कन्दगुप्त को पीछे चलकर हूणों का सामना करने के लिये अपनी राजधानी



वर्त्तमान बोधिवृक्ष (गया) के नीचे बुद्ध की एक प्राचीन मूर्त्ति। इसी बोधिवृक्ष की डाल सम्राट् अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा लंका ले गये। राजा शशांक ने बोधिवृक्ष को उखाड़ फेंका। राजा हर्षवर्धन ने उसे फिर रोपा। वर्त्तमान बोधि-वृक्ष लंका से लाया गया है।



बोधगया के बौद्ध मन्दिर की 'रेलिंग' की अपूर्व कारीगरी।



बोध-गया का विशाल मन्दिर (गया), जिसे सम्राट् अशोक ने एक लाख स्वर्णमुद्रा व्यय करके बनवाया था और कई बार टूटते, गिरते, मरम्मत होते वर्त्तमान रूप में आज भी कायम है। ३३० ई० में लंका-नरेश ने इसका विस्तार किया। ६०० ई० में राजा शशांक ने इसे तोड़ डाला, बोधिवृक्ष उखड़वा डाला। हर्षवर्धन ने फिर मन्दिर बनवाया, बोधिवृक्ष लगाया। इस पर पाल-राजाओं की कृपा रही। बरमा-नरेश ने १२ वीं शताब्दी में इसकी मरम्मत कराई। मुसलमानी जमाने में इसके फिर बुरे दिन आये। वर्त्तमान मन्दिर का जीर्णोद्धार बरमा-निवासी बौद्धों के आन्दोलन और साहाय्य से १८८४ ई० में किया गया, जिसमें दो लाख रुपये खर्च हुए।

श्रीहेमचन्द्रराय चौधरी ने ठीक ही कहा है—"भारत के प्राचीन इतिहास में मगध ने वही काम कर दिखाया है जो नार्मनों से पहले के इंगलैंड में वेस्सेक्स ने और आधुनिक जर्मनी में प्रशा ने किया है।"[1]

इस छोटे-से प्रदेश के राजन्य आसमुद्रक्षितीश किस प्रकार हुए, मगध साम्राज्यवाद की नींव कब और कैसे पड़ी, इनका संक्षेप में दिग्दर्शन करा देना असमीचीन न होगा। एक बार प्रतिष्ठापित हो जाने पर, चाहे वह मौर्यों के हाथ में हो या शुंगों के, कण्वों के या गुप्तों के, इसका सातत्य बहुत दिनों तक बना रहा; अतः विकास के प्रारंभिक क्रम का ही निर्देश यहाँ पर्याप्त होगा।

२

दक्षिण बिहार का वास्तविक इतिहास बुद्ध के समय से ही आरंभ होता है। ऋग्वेद[2] का कीकट संभवतः मगध ही था। यास्क[3] कीकट को अनार्यों का देश कहता है; और भागवतपुराण-जैसे अपेक्षाकृत परवर्त्ती ग्रन्थ कीकट को मगध का पर्याय मानते हैं। जैसे—"बुद्धोनाम्नाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति।"[4]

वैदिक साहित्य में मगध का नाम पहले-पहल अथर्व वेद[5] में आया है। उस समय तो निस्संदेह मगध का महत्त्व उल्लेखनीय नहीं था। अस्तु, मगध पर शासन करनेवाले प्रथम राजवंश की स्थापना कुख्यात जरासन्ध के पिता बृहद्रथ ने की थी[6]। इस वंश का अन्त कदाचित् छठी शताब्दी ईसवी-पूर्व में हुआ होगा।

इस शताब्दी के प्रारंभ में वर्त्तमान राजनीतिक वस्तुस्थिति पर बौद्ध साहित्य द्वारा पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उस समय भारत में छोटे-छोटे कई गणतन्त्र अवशिष्ट थे; कई लघु राष्ट्र भी स्वतंत्र सत्ता रखते थे और अनेक अनार्य राज्यों का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु तत्कालीन राजनीतिक होड़ में केवल चार शक्तियाँ ही वस्तुतः महत्त्वपूर्ण थीं—कोसल, वत्स, अवन्ति और मगध। इन चारों के बुद्ध-समकालीन शासकों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—प्रसेनजित्, उदयन, प्रद्योत, बिम्बिसार और अजातशत्रु। इन चारों महत्त्वाकांक्षी शासकों में परस्पर संघर्ष होना अनिवार्य था। इसमें मगध को असाधारण सफलता प्राप्त हुई।

मगध की साम्राज्यवादी लिप्सा को बिम्बिसार के द्वारा ही सक्रिय रूप मिला। बिम्बिसार स्पष्टतः एक कर्मकुशल राजनीतिज्ञ था। उसने अपने राज्य के

अयोध्या हटानी पड़ी थी जैसा बौद्धों द्वारा दी गई उसकी उपाधि 'अयोध्या का विक्रमादित्य' से प्रतीत होता है।

१—Political History of India, Page 97. २—३, ५३, १४। ३—निरुक्त ६, ३२। ४—भागवत पुराण १, ३, २४। ५—५, २२, १४। ६—महाभारत १, ६३, ३०

विस्तार के लिये साम और दंड-नीति का सफल उपयोग किया। उसने गान्धार, अवन्ति आदि शक्तिशाली राष्ट्रों से मित्रता-पूर्ण संबन्ध स्थापित किये, मद्र[1], कोसल और वैशाली की राजकन्याओं से विवाह कर इन राष्ट्रों को भी अपने पक्ष में बनाये रक्खा। इस प्रकार उसने मगध के विस्तार के लिये पश्चिम और उत्तर दोनों ओर मार्ग साफ कर दिया। परन्तु इससे लाभ उठाने का काम उसके उत्तराधिकारी का था। स्वयं बिम्बिसार के राजत्वकाल में तो मगध का बहुत विस्तार नहीं हुआ यद्यपि आगे के लिये उसीने मार्ग को निर्दिष्ट और प्रशस्त किया था। प्रसेनजित् के पिता महाकोसल ने अपने मागध जामाता को दहेज के रूप मे काशी ग्राम का राजस्व दिया था[2]। साथ-ही-साथ पश्चिम और उत्तर के पार्श्ववर्त्ती राष्ट्रों को उपर्युक्त रीति से मिलाये रखने के कारण वह पूर्व में स्थित अङ्ग देश के विरुद्ध भी सफलतापूर्वक दंड-नीति का व्यवहार कर सका। बिम्बिसार ने अङ्ग को सशस्त्र आक्रमण द्वारा अधीनस्थ किया, इसका प्रमाण 'दीघनिकाय' के 'सोणदंडसुत्त' में मिलता है, जिसमें बिम्बिसार द्वारा सोणदंड नामक ब्राह्मण को चम्पानगरी का राजस्व दिये जाने का उल्लेख है, अङ्ग की अधीनस्थता का प्रमाण स्थविरावली, भगवतीसूत्र और निरयावलीसूत्र में भी पाया जाता है। अङ्ग की यह विजय एकदम हेय नहीं है। एक समय था जब मगध ही अङ्ग का अधीनस्थ था। पश्चिम में, विधुरपंडित जातक और महाभारत के शान्तिपर्व[3] के अनुसार, राजगृह और गया (अर्थात् मगध) अङ्ग के अङ्ग थे; और पूर्व में, महाभारत के सभापर्व[4] के अनुसार, वङ्ग भी अङ्ग में ही सम्मिलित था, अङ्ग और वङ्ग एक ही 'विषय' या राज्य थे, और 'चम्पा' भारत की छ महानगरियों मे एक थी। अस्तु।

बिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु अपने पिता की हत्या के बाद सिंहासनारूढ हुआ। कहा जाता है कि बिम्बिसार की हत्या के उपरान्त प्रसेनजित् की भगिनी कोसल देवी भी शोकातिशय्य से अपने पति की अनुगामिनी हुई[5]। मगध के तत्कालीन इतिहास से यह घटना असंबद्ध नहीं। प्रसेनजित् ने अपने पितृहन्ता भागिनेय को काशी का राजस्व देने से इनकार कर दिया। इसपर अजातशत्रु ने काशी पर आक्रमण किया। किन्तु वस्तुतः यह केवल मागध-साम्राज्यलिप्सा को खुल खेलने के लिये बहाना भर था। 'संयुक्तनिकाय[6]' में इस युद्ध का विस्तृत वर्णन है। पहली चढ़ाई में तो अजातशत्रु के ही हाथ दिन रहा। किन्तु दूसरी बार वृद्ध

१—पजाब मे। २—जातक नं० २३९, २८३, ४९२। ३—२९, ३५ ४—४४, ९। ५—जातक ४, ३४२। ६—१, ८४—८६।

प्रसेनजित् ने अपने बुद्धिबल से अजातशत्रु को ससैन्य कब्जे में कर लिया। बाद में, चाहे जिस कारण हो, अजातशत्रु को उसके मातुल ने सबहुमान मुक्त ही नहीं किया, किन्तु उसके साथ अपनी एक पुत्री का विवाह भी कर दिया। इस प्रकार अजातशत्रु ने काशी और कोसल तक अपने प्रभाव का विस्तार किया।

इसके अलावा अजातशत्रु ने वैशाली पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। 'महापरिनिब्बान सुत्तन्त' के आदि में हम अजातशत्रु के वज्जियों के गण पर भी आक्रमण करने की तैयारी का उल्लेख पाते हैं। सबसे पहली तैयारी तो गङ्गा के दक्षिण तट पर पाटलिपुत्र के दुर्ग का निर्माण ही थी, क्योंकि उस समय गङ्गा ही उभय प्रदेशों की विभाजक रेखा थी। यह काम 'वस्सकार' नामक एक ब्राह्मण को सौंपा गया था, जो भेदनीति-पटुता के कारण कौटिल्य का पुरखा कहा जाने का योग्य अधिकारी है। एक दिन अकस्मात् वह वज्जियों की राजधानी 'वैशाली' में भागा-भागा जा पहुँचा और वहाँ यह घोषणा कर दी कि वह किसी तरह अजातशत्रु के हाथ से निकल सका था, नहीं तो उसको जान की खैरियत नहीं थी। वज्जियों ने उसका स्वागत किया और वह उनकी शरण में रहने लगा। इस प्रकार वह तीन वर्षों तक जिस पत्तल में खाता था, उसीमें छेद करता रहा। जब उसने देखा कि उसके गुप्त रूप से किये गये निरन्तर मिथ्या-प्रचार से पारस्परिक विद्वेष की आग सुलग उठी है और गण की एकता का सूत्र जर्जर हो चला है, तब उसने अजातशत्रु को खबर कर दी। अजातशत्रु ने वैशाली पर धावा बोल दिया और उसने बड़ी आसानी से विजय-लाभ किया। कहते हैं, इसके बाद उसने वैशाली के अपने सम्बन्धियों पर नृशंस अत्याचार किये, यद्यपि संभव है कि यह वर्णन कुछ अतिरञ्जित हो।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि मगध की इस बढ़ती हुई शक्ति का सामना करने के लिये एक संगठित प्रयत्न हुआ था, यद्यपि उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। 'निरयावलीसुत्त' के अनुसार जब अजातशत्रु ने वैशाली पर चढ़ाई की थी तब उसके गणपति ने काशी और कोसल के अष्टादश गणराजों को इस अन्याय के विरुद्ध सम्मिलित मोर्चा लेने के लिये आमन्त्रित किया था। परन्तु जिस सरलता से अजातशत्रु ने वज्जियों को परास्त किया, उससे यही निष्कर्ष निकल सकता है कि या तो काशी-कोसल-वैशाली-धुरी कभी कार्य-रूप में परिणत ही नहीं हुई, या हुई भी तो मागध-शक्ति के सामने टिक न सकी।

अवन्तिराज प्रद्योत भी कम महत्त्वाकांक्षी नहीं था। 'मज्झिमनिकाय' में तो

मगध और अवन्ति के बोच युद्ध की तैयारियाँ होने का भी उल्लेख है। किन्तु संभवतः यह युद्ध हुआ नहीं, और अवन्ति को स्वायत्त करने का काम अजातशत्रु के वंशजों के लिये रह गया।

अजातशत्रु के पहले दो वंशजों—दर्शक और उदायिभद्र[1]—ने कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया। जिस प्रकार इनके पूर्ववर्त्तियों के समय मगध मत्स्यन्याय से इतनी वृद्धि को प्राप्त हुआ था उसी तरह अवन्ति भी आसपास के राज्यों को आत्मसात् कर अपने प्रतिद्वन्द्वी मगध से लोहा लेने के लिये उत्सुक था। इसका आभास तो अजातशत्रु के समय ही मिल चुका था, पर निर्णयात्मक संघर्ष उदायिभद्र के उत्तराधिकारी शिशुनाग के ही समय हुआ, जब निश्चित रूप से मगध का प्राधान्य स्थापित हुआ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय तक विन्ध्य के ऊपर समस्त उत्तर-भारतवर्ष मे केवल एक ही प्रधान शक्ति रह गई थी और वह मगध की थी।

इसके बाद वंशक्रम अत्यंत अस्पष्ट हो गया है; पर इतना कहा जा सकता है कि राजनीतिक दृष्टिकोण से इस बीच कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी थी।

अब नन्दों और मौर्यों का काल आता है। इनके पूर्ववर्त्ती शासकों के समय ही उत्तर-भारत मे मगध का प्रभुत्व व्याप्त हो चुका था। निश्चय ही इन्होंने यत्र तत्र, और विशेषतः सीमान्तों में, अपनी शक्ति का विस्तार दृढ किया, किन्तु हम इस प्रसंग में इनके द्वारा दक्षिण में मगध-साम्राज्य का जो पहली बार विस्तार हुआ उसी का उल्लेख कर सन्तोष करेंगे।

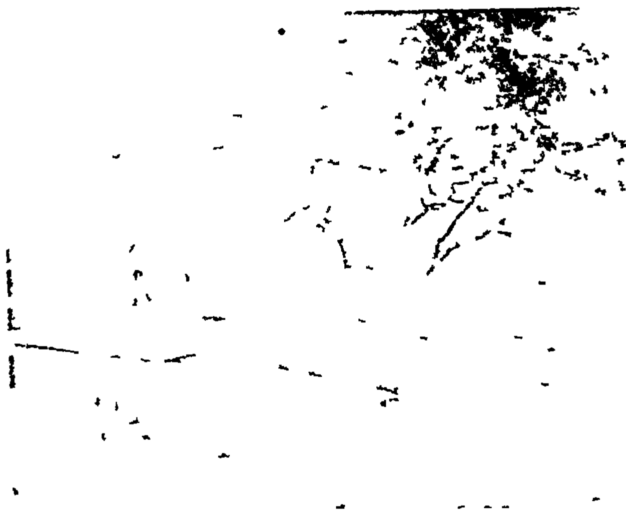
दक्षिण में मगध का आधिपत्य स्थापित करने का श्रेय किसे है, यह विषय विवाद से खाली नहीं है। हेमचन्द्रराय चौधरी[2] और कृष्णस्वामी ऐयङ्गर[3] चन्द्रगुप्त मौर्य के पक्ष में अपना मत देते हैं। विन्सेट स्मिथ[4] और जायसवाल[5] के मतानुसार चन्द्रगुप्त नन्दों के उत्पाटन, यूनानियों के शमन और अपने साम्राज्य के पुनःसंघटन में इतना व्यस्त रहा होगा कि उसे विन्ध्य के दक्षिण की ओर विजय-यात्रा करने का अवसर नहीं था; और अशोक के बारे मे यह सर्वविदित है कि उसने कलिङ्ग के सिवा और किसी प्रदेश को युद्ध मे विजित नहीं किया; इन कारणों से

१—हम यहाँ वंश क्रम-विषयक विवाद में नहीं पड़ेंगे। २—Political History of India. ३—The Mauryan Invasion of South India. ४—History of India. ५—'The Empire of Bindusar' in Journal of the Bihar & Orissa Research Society, और आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पम् की प्रस्तावना।

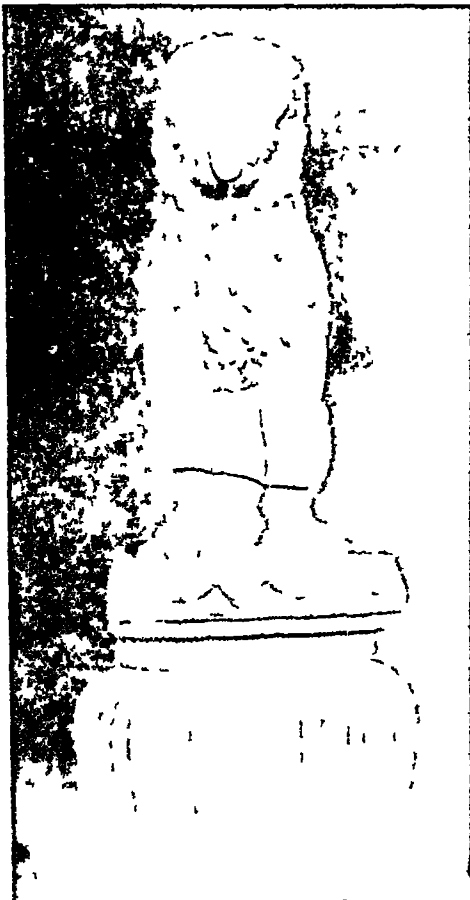


केसरिया (चम्पारन) का स्तूप, जो 'राजा बेन का डेवरा' भी कहलाता है। इसका निचला हिस्सा वैशाली का समकालीन है। ऊपर के हिस्से का समय पहली शताब्दी है।

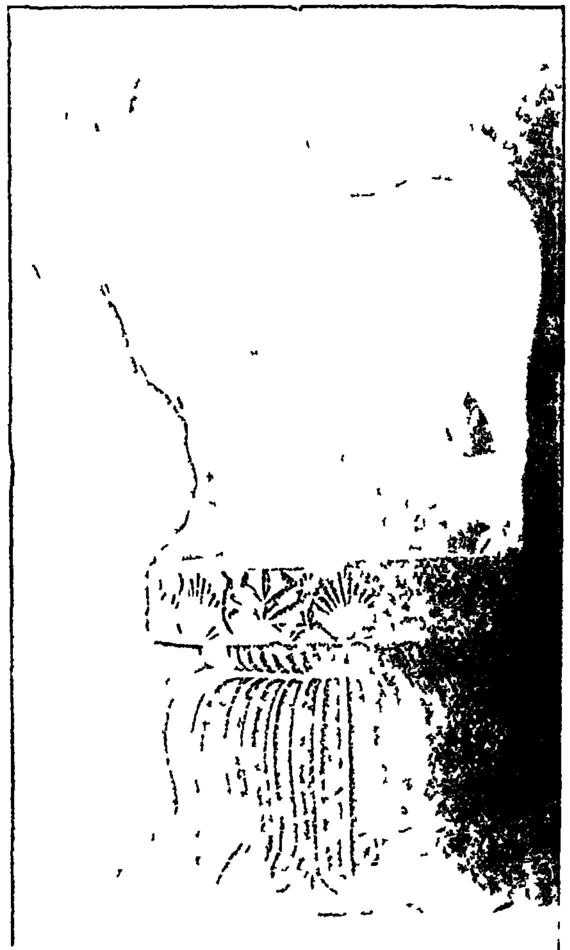
वौद्धस्तूप (केसरिया, चम्पारन)—भूकम्प (१५ जनवरी, सन् १९३४ ई०) के वाद।



रामपुरवा (चम्पारन) के दोनों अशोक-स्तम्भ, जिनमे एक पर सिंहमूर्त्ति और दूसरे पर साँड की मूर्त्ति थी। पहले स्तम्भ की लम्बाई ४४ फीट १०॥ इंच है और दूसरे की ४३ फीट ४ इंच है। दोनों स्तम्भ गिर कर दलदली भूमि में दबे हुए थे, जहाँ से पुरातत्त्व-विभाग ने निकाल कर उन्हें यहाँ सुरक्षित रक्खा है।



रामपुरवा (चम्पारन) के अशोक-स्तम्भ के सिरे पर की सिंहमूर्त्ति, जो लौरियानन्दनगढ की मूर्त्ति से बिलकुल मिलता है। सिंह की यह मूर्त्ति प्राचीन मूर्त्ति-निर्माण-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। समय ईसवी सन से २४३ वर्ष पूर्व।



रामपुरवा (चम्पारन) में प्राप्त दूसरे अशोकस्तम्भ के सिर पर की साँड की मूर्त्ति, जो ४ फीट ऊँची है। इसका निर्माणकाल भी ईसवी सन से २४३ वर्ष पूर्व ही है। यह मूर्त्ति अब कलकत्ता म्यूजियम में है।

वे बिन्दुसार को ही दक्षिण का विजेता मानते हैं। परन्तु हमारी सम्मति में इस नये सिद्धान्त के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं, जिनके अनुसार दक्षिण-विजय का श्रेय नन्दों को ही मिलना चाहिये। वाल्श[1] ने मुद्राशास्त्रीय तर्कों के आधार पर और डाक्टर शास्त्री[2] ने पुराणों, हिन्दू, बौद्ध और जैन-साहित्य तथा पुरातत्त्व के साक्ष्य पर इस सिद्धान्त का अभिनव प्रतिपादन किया है।

जहाँ तक साम्राज्य-विस्तार के सातत्य का प्रश्न है, इसके बाद इसकी तुलना का कोई सफल प्रयत्न भविष्य में मगध में ही क्यों, भारतवर्ष में नहीं हुआ। नन्दों और मौर्यों का राजत्व-काल मागध साम्राज्यवाद की ही नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय साम्राज्यवाद की पराकाष्ठा है, जिसका अतिक्रमण तो कभी नहीं हुआ; पर उसकी समता भी नहीं दीख पड़ती। मगध में शुङ्ग और कण्व-वंशों का स्थान इस प्रसंग में तुच्छ है। गुप्तों का प्रयत्न उल्लेखनीय है; किन्तु आखिर वह नन्दो और मौर्यों की सफलता की संक्षिप्त पुनरावृत्ति मात्र है। स्कन्दगुप्त को जिस दिन प्राचीन भारत की राजधानी पाटलिपुत्र का त्याग करना पड़ा था, उसके बाद मगध का राजनीतिक प्राधान्य तो लुप्त हुआ ही, साथ-ही-साथ समस्त भारत की राजनीति के दुर्दिन भी आसन्न थे।

३

भारतीय साम्राज्यवाद में मगध के अतुलनीय प्राधान्य का निर्देश मात्र कर हम उत्तर-बिहार के सर्वथा भिन्न प्रकार के राजनीतिक महत्त्व का आभास देने का यत्न करेंगे।

उत्तर-बिहार का इतिहास बहुत पुराना है। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के अनन्तर ही भारतीय राजनीति में उत्तर-पश्चिम भारत का प्राधान्य जाता रहा। फिर भी कौरवो के विशाल साम्राज्य का काफी बड़ा हिस्सा पांडु-वंशज परीक्षित और जनमेजय के अधीन अवश्य रहा होगा। परन्तु जनमेजय के परवर्त्ती शासक[3] स्पष्ट ही क्रमशः अधिकाधिक दुर्बल होते गये और अन्ततः 'क्षते क्षार' की तरह बाढ़, अकाल आदि प्राकृतिक उपद्रवों के कारण निचाक्षु को हस्तिनापुर से हटकर कौशाम्बी चला आना पड़ा था। इसके बाद तो उत्तर-पश्चिम के गौरवपूर्ण परिच्छेद

१—Journal of the Royal Asiatic Society. 1937. २—Journal of tl e Bihar & Orissa Research Society 1937. ३—जनमेजय—शतानीक—अश्वमेधदत्त—अधिसीमकृष्ण—निचाक्षु—कौशाम्बी का राजवश । ४—वृहदारण्यक उपनिषद् ३, ४९; Pargiter, Dynasties of the Kali age, p. 5.

का अन्त ही समझना चाहिये। आगामी युग में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हुआ विदेह के सुप्रसिद्ध राजा जनक का।

जातकों में—और, कहना नहीं होगा, रामायण में भी—विदेह की राजधानी मिथिला का वर्णन बहुधा मिलता है। 'सुरुचि' जातक के अनुसार मिथिला का विस्तार सात योजनो मे था और महाजनक-जातक में इस नगरी के वैभव का आकर्षक वर्णन है। जनक के अधीन 'विदेह'—आधिभौतिक और आध्यात्मिक, उभय दृष्टिकोणों से—असाधारण महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया था। बृहदारण्यक उपनिषद् मे जनक सम्राट् की उपाधि से विभूषित किये गये हैं। यद्यपि वैदिक वाङ्मय में सम्राट् का महत्त्व उनके यज्ञों की संख्या और उत्कर्ष पर ही निर्भर दिखलाया गया है, फिर भी यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि इस शब्द से राजनीतिक प्रभुत्व की भी स्पष्ट ध्वनि आती है। उदाहरणार्थ—बृहदारण्यक उपनिषद् और महाभारत में उल्लिखित वैदेह जनक और काशिराज प्रतर्दन के युद्ध।

इस गौरवान्वित वंश का अन्त कराल जनक के साथ हुआ जिसने, कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार, एक ब्राह्मणी पर कुदृष्टि डाली थी।

हमने उत्तर-बिहार के विषय में पहले ही कहा है कि भारत के इतिहास में उसका भी राजनीतिक महत्त्व है; परन्तु वह मगध के महत्त्व की तुलना में सर्वथा भिन्न प्रकार का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विदेह के राजा जनक, एक राजा की हैसियत से भी, नगण्य नहीं कहे जा सकते। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि साम्राज्यवादी शक्तियों के इतिहास मे उत्तर-बिहार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है, विशेषत. पार्श्ववर्त्ती मगध के इतिहास के सामने यह एकदम फीका पड़ जाता है।

परन्तु राजनीतिक महत्त्व का विवेचन किसी राष्ट्र की साम्राज्यवादी सफलता को ही दृष्टि मे रखकर नहीं किया जा सकता। राजनीति के विद्यार्थी की आँखो में नार्वे और स्वीडन जैसे लघु राष्ट्रों का भी अपना विशिष्ट स्थान है, और वह इसलिये कि अमेरिका और ब्रिटेन, रूस और जर्मन-जैसे पराक्रमी बृहत् राष्ट्रो की तुलना मे वहाँ राजनीति-सबंधी असाधारण मनुष्यतापूर्ण प्रयोग हुए हैं।

इसी कारण, उत्तर-बिहार का भी भारत के राजनीतिक इतिहास में एक विशिष्ट स्थान स्वीकृत होगा। अपने सारे वैभव और व्यापकता के बावजूद भी मागध साम्राज्यवाद एक दिन उसी प्रकार विनष्ट हो गया, जिस प्रकार उसीके कारण उत्तर-बिहार मे सफलतापूर्वक शासन-संचालन करनेवाली वज्जियों की

प्रयोगात्मक गणतन्त्र-प्रणाली। इसकी स्थापना कराल जनक के कुशासन की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी। उनकी शासन-प्रणाली में प्रजा के बीच समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व की जो भावना प्रारंभ में वर्त्तमान थी वह यदि अक्षुण्ण बनी रहती तो, जैसा बुद्ध ने 'दीघनिकाय' और 'महापरिनिब्बान सुत्तन्त' के अनुसार कहा था, उसे शत्रु कदापि पराजित नहीं कर सकते। किन्तु दुर्भाग्यवश, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, पारस्परिक विद्वेष के कारण उनके इस स्तुत्य राजनीतिक प्रयोग का मागध साम्राज्यवाद द्वारा विनाश संभव हुआ।

अल्पकालीन और छोटे पैमाने पर होने पर भी गतानुगतिकता के सर्वथा विरुद्ध किये जानेवाले एक प्रयोग को यहाँ आश्रय मिला, केवल इसी नाते भारत के राजनीतिक इतिहास में उत्तर-बिहार का स्थान उल्लेखनीय रहेगा।





नालन्दा-विश्वविद्यालय के पंडित

अध्यापक शंकरदेव विद्यालंकार, साहित्य-मनीषी, गुरुकुल-विद्यामंदिर, सूपा, गुजरात

नालन्दा-विश्व-विद्यालय में विद्वच्चक्रचूडामणि पंडितों का अपूर्व जमघट था। बड़े-बड़े उद्भट विद्वान् इस विश्वविद्यालय के ज्ञान-सागर में विराट् पोत के समान विराजमान थे। उनमें से कुछ तो महान् यशस्वी और विश्वविख्यात थे। उनकी कीर्त्ति देश-देशान्तर में फैली हुई थी। यथा—

[१] आर्यदेव

भिक्षु आर्यदेव को 'महाकाय' का विशेषण दिया गया है। आप नालंदा-विश्वविद्यालय के आरंभिक काल के एक अध्यापक थे। कहा जाता है कि नालंदा विहार की स्थापना में आपका भी बहुत हाथ था। आपकी विद्वत्ता का प्रमाण तिब्बत में विशेष है। संस्कृत-भाषा के आप महान् पंडित थे। तिब्बत में आपकी पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई हैं। श्रीतारानाथ-कृत 'बौद्धधर्म का इतिहास' नामक ग्रंथ में आपके जीवन का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। तारानाथ ने आपको 'देव' उपनाम से पुकारा है।

चीनी यात्री ह्यूनसॉग ने भी अपनी यात्रा-पुस्तक में आपका उल्लेख किया है—आपके साथ नागार्जुन के मिलाप का वर्णन लिखा है। आचार्य नागार्जुन ने जल से भरा हुआ एक पात्र आपके पास भेजा। आपने उसमें सुई डालकर उसको लौटा दिया। यह देखकर नागार्जुन ने कहा—"आर्यदेव कैसा ज्ञानी पुरुष है!" इसके बाद आपके साथ नागार्जुन का किसी धार्मिक विषय पर वाद-विवाद हुआ। उसमे आपकी पराजय हुई। प्रथा के अनुसार आपने नागार्जुन का शिष्य बनना स्वीकार किया—उनसे धार्मिक शिक्षा लेने लगे।

अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर आप मगध में

आये। यहाँ भिक्षु तिस्थक के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें आप विजयी हुए।

तारानाथ के कथनानुसार आप नालन्दा-विद्यापीठ के आचार्य थे। परन्तु प्रश्न यह है कि आपके समय में नालन्दा-विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था या नहीं। आप चन्द्रगुप्त के समकालीन थे। चौथी शताब्दी में जब चीनी पर्यटक फाहियान भारत-यात्रा करने आया तब नालन्दा-विश्वविद्यालय 'नाला' नामक स्थान में अपना प्रारंभिक विकास कर रहा था। यह हो सकता है कि आपके समय में यह विश्वविद्यालय प्रसिद्ध न हो पाया हो। आपने तीन पुस्तकों का निर्माण किया है—

(१) शातक-शास्त्रम्, (२) ब्रह्मप्रमाथन-युक्ति-हेतुसिद्धि, और (३) मध्यमाक-ब्रह्म-धात-नाम। अन्तिम ग्रन्थ जम्बूद्वीप के राजा के आज्ञानुसार नालन्दा में लिखा गया था। इसका भाषान्तर तिब्बती भाषा में उपाध्याय दिवाकर ने किया।

[२] कुलपति महास्थविर शीलभद्र

कुलपति शीलभद्र व्यवस्था-शक्ति के लिये विख्यात थे। ह्यूनसॉग ने अपने यात्रावर्णन में इनका वृत्तान्त लिखा है। ह्यूनसाँग इनका शिष्य था। उसने इनसे बौद्धदर्शनों तथा संस्कृतभाषा का अध्ययन किया था। ह्यूनसॉग 'बोधि-तत्त्व-विद्' कहा जाता है, तो फिर उसके गुरु के पांडित्य का तो कहना ही क्या! इत्सिंग ने भी अपनी प्रवास-पोथी में शीलभद्र का उल्लेख किया है।

शीलभद्र 'समतट' (पूर्व-बंगाल) के ब्राह्मण-वंशीय राजा के पाटवी कुमार थे। तीस वर्ष की उम्र में इन्होंने सारे भारतवर्ष की यात्रा कर ली थी। इसके बाद नालन्दा में आकर अन्तेवासी बनकर रहे। विद्यार्थि-अवस्था में ही इन्होंने एक विदेशी पंडित के साथ धार्मिक वाद-विवाद कर विजय प्राप्त की थी। इनकी इस विजय का समाचार राजगृह के राजा ने सुना। उसने इनको अपने यहाँ निमंत्रित किया। एक गाँव भी इनको दिया। पहले तो इन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने कहा—"बौद्ध-धर्म की ख्याति नष्ट और अधर्म की वृद्धि होती जा रही है। यदि आप यहाँ न आवेंगे तो बौद्ध-धर्म के विस्तार की आशा करना व्यर्थ है।" राजा की यह विनती सुनकर इन्होने नालन्दा में रहना स्वीकार किया।

इस संवाद से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि कैसी विकट परिस्थिति के समय इन्होंने नालन्दा-विद्यापीठ के संचालन का काम अपने हाथ में लिया था। इन्होंने किस सफलता से सारा कार्य किया, यह नालन्दा की उत्तरोत्तर उन्नति से विदित होता है।

चीनी यात्री ह्यूनसॉग करीब सन् ६३५ ई० में भारतवर्ष में आया था। उस समय इनकी आयु ५० वर्ष की होनी चाहिये। इस प्रकार इनका समय ई०-सन् ५८५ से ६४० तक माना जा सकता है।

ये प्रखर प्रमाणशास्त्री थे। इन्होंने बहुत-से ग्रन्थों का प्रणयन किया था जिनमे से केवल 'त्रिपिटक' ही तिब्बती भाषा में उपलब्ध होता है। यह पुस्तक 'आर्य-बुद्ध-भूमि-व्याख्यान' नाम से विख्यात है। इस पुस्तक का अनुवाद किसने किया, यह ज्ञात नही।

[३] धर्मपाल

धर्मपाल बहुत समय तक नालन्दा-विद्यापीठ के अध्यक्ष (Chancellor) रहे थे। ह्यूनसॉग और इत्सिग, दोनों यात्रियो ने इनका उल्लेख किया है। इन्होंने नालन्दा-विश्वविद्यालय से 'बोधितत्त्वविद्' की उपाधि प्राप्त की थी। बौद्ध-धर्म पर एक सुन्दर भाष्य लिखकर इन्होने धर्मऋण अदा किया था।

ये दक्षिण-भारत के रहनेवाले थे। इनकी जन्मभूमि कांचीपुरी थी। एक वार वहॉ के राजा ने इनको भोजन का निमंत्रण दिया। परन्तु, सायंकाल में राजा इनसे उदासीन हो गया। उसी रात्रि मे भिक्षु का वेश धारण कर ये घर से निकल पड़े। घूमते-घूमते नालन्दा पहुँचे। वहॉ भिक्षु-पद पर नियुक्त किये गये। वहॉ रहते हुए ही इन्होंने बौद्धशास्त्रो में प्रवीणता प्राप्त की। फलतः ये नालन्दा के अध्यक्ष बनाये गये। जिस समय ह्यूनसॉग भारतवर्ष मे आया, उसी समय इन्होंने अपनी जगह खाली करके अपना पद महास्थविर शीलभद्र को दे दिया। कौशाम्बी-मठ के पंडितों को इन्होंने धार्मिक वाद-विवाद में परास्त किया था।

महाकाय चन्द्रगोमेन-विरचित व्याकरण पर इन्होने एक टीका लिखी है, जो 'वर्ण-सूत्र-वर्ण-नाम' के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत में लिखे हुए बौद्ध-धर्म-विषयक इनके चार ग्रन्थ तिब्बत से प्राप्त हुए हैं—(१) आलम्बन-प्रत्यय-ध्यानशास्त्र-व्याकरण, (२) विद्यामंत्र-सिद्धि-शास्त्र-व्याख्या, (३) सतशास्त्र-वैपुल्य-व्याख्या, और (४) वाली-तत्त्व-सममाह।

[४] चन्द्रगोमेन

चन्द्रगोमेन बडे ही प्रखर पंडित थे। ये नालन्दा की अनेक प्रवृत्तियो के प्रेरक और ग्रन्थकर्त्ता-रूप मे इतिहास मे दृष्टिगोचर होते है। इनकी पुस्तकें लोकप्रिय है, जिनका प्राय तिब्बती भाषा मे अनुवाद हो चुका है। तारानाथ के विवरण में

तथा तिब्बती-भाषा की पुस्तक 'पाठासम-जांञ्ज' में इनका उल्लेख है। तिब्बती इनको 'ब्ला-वा-डज्-वसनेन' के नाम से पहचानते हैं।

ये वारेन्द्र (उत्तर-बंगाल) के एक क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न हुए थे। आचार्य स्थिरमति से इन्होंने 'सुत्त' और 'अभिधम्म' की शिक्षा ली थी। आचार्य अशोक ने इनको बौद्धधर्म का उपदेश किया था।

ये लंका और दक्षिण-भारत की यात्रा करते हुए नालन्दा आये थे। पहले जो भिक्षु के रूप में नहीं लिये गये, परन्तु पीछे इनको लेने के लिये तीन रथ भेजे गये। पहले रथ में चन्द्रगोमेन बैठे, दूसरे में बैठे चन्द्रकीर्त्ति और तीसरे में मंजुश्री (महायान-मतानुसार शारदादेवी) बैठीं। रथों के पीछे भिक्षु-दल पंक्ति बाँधकर खड़ा था। सारा जुलूस गाँव में से होकर मठ में गया।

जब ये दक्षिण-भारत में रहते थे तब इन्होने एक पांडित्यपूर्ण पुस्तक लिखी थी। नालन्दा आने पर इनको ज्ञात हुआ कि चन्द्रकीर्त्ति ने उससे भी अच्छी एक पुस्तक लिखी है। अत. इन्होने अपनी पुस्तक कुएँ में डाल दी। लोगों के बहुत कहने पर उक्त पुस्तक कुएँ से निकाली गई। अन्ततोगत्वा यह पुस्तक चन्द्रकीर्त्ति की पुस्तक से कहीं अधिक पांडित्यपूर्ण सिद्ध हुई।

इनका समय सन् ७०० ईसवी के करीब है। कहा जाता है कि ये हर्ष के पुत्र राजा शील के समकालीन थे। इन्होंने सब मिलाकर कोई साठ से अधिक बौद्धधर्म-विषयक पुस्तको का संस्कृत-भाषा में निर्माण किया है। तिब्बत में इनकी ख्याति वहाँ के दिग्गज विद्वान् दीपङ्कर और अभयङ्कर गुप्त के समान हुई। ये एक प्रचंड वैयाकरण भी थे। इनकी पुस्तकें आज भी तिब्बत मे प्रेम के साथ पढ़ी जाती हैं। इसका कारण यह है कि इनकी सब पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद हो चुका है। इनकी बहुत-सी पुस्तकें 'चीनी त्रिपिटक' नाम से प्रसिद्ध हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इनकी पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भिक्षुओं ने ही किया है। वास्तव में अपने समय के ये प्रकांड पंडित थे।

[५] सन्तरक्षित

आठवीं शताब्दी में तिब्बत में 'खी-सरोन-डा त्सान' नामक राजा राज करता था। यह राजा बौद्धधर्म का बहुत प्रेमी था। राज्य की ओर से धर्म-प्रचार करने के लिये यह बौद्ध-भिक्षुओं को रखता था। इसीने आचार्य सन्तरक्षित (शान्तरक्षित ?) को तिब्बत में सम्मानपूर्वक बुलाया।

राजा गोपाल के समय मे ये उत्पन्न हुए थे। कदाचित् ये भाहोर (बंगाल) के निवासी थे। तिब्बत जाने से पूर्व ये नालन्दा-विद्यापीठ मे अध्यापक थे। विद्यापीठ मे ये 'स्वतन्त्र माध्यमिक शाला' के अध्यक्ष थे। इनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि सुनकर ही तिब्बत के राजा ने इनको अपने यहाँ बुलाया था। जब ये तिब्बत पहुँचे, इनका स्वागत-सत्कार करने के लिये राज्य के कर्मचारी और सैनिक पंक्ति बाँधकर खड़े हुए थे। इनके पधारने पर उस दिन राज्य में दुन्दुभी बजाकर इनके आने की सूचना दी गई थी।

तिब्बत में इन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार किया और राजा की आज्ञा से ईसवी-सन् ७४६ मे 'संये' नामक एक विहार (मठ) भी स्थापित किया। उदन्तपुरी के विहार की तरह यह भी एक आदर्श विद्या-तीर्थ था। इसके आचार्य-पद पर सन्तरक्षित ही आसीन थे। तेरह वर्ष कार्य करने के उपरान्त, सन् ७६२ में, ये निर्वाण को प्राप्त हुए। ये भी 'बोधितत्त्वविद्' के नाम से प्रख्यात हैं। इन्होंने दो ग्रन्थ लिखे हैं—(१) वेद-न्याय-वृत्ति-विपान-सीतार्थ, (२) तत्त्व-समगुह-कारिका।

[६] पद्मसंभव

तिब्बत के राजा 'खी-सरोन-डा-त्सान' ने अपने धर्मगुरु सन्तरक्षित की सलाह से एक धुरन्धर पंडित को नालन्दा से बुलाया था. यह पंडित पद्मसंभव ही थे। तिब्बती साहित्य का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि ये काश्मीर के इन्दुबुद्धि नामक राजा के कुँवर थे। इनका विवाह लाहौर-वासिनी कुमारदेवी नामक कन्या से हुआ था।

पद्मसंभव भी नालन्दा-विद्यापीठ के ही स्नातक थे। जिस समय तिब्बत से इनके पास निमंत्रण आया, उस समय ये नालन्दा के तान्त्रिकवादी विभाग के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। सन् ७४७ ई० मे इन्होंने तिब्बत को प्रयाण किया।

तिब्बत में राजा और प्रजा दोनों ने ही इनका खूब सत्कार किया। ये भी तिब्बत पहुँचकर 'संये' मठ की व्यवस्था के कार्य में आचार्य संतरक्षित की सहायता करने लगे। इन्होंने ही तिब्बत में 'तान्त्रिकवाद' का प्रारंभ किया। उस समय नालन्दा और विक्रमशिला, दोनों ही विद्यापीठ, तान्त्रिक बौद्धधर्म के केन्द्रस्थल थे। तान्त्रिकवाद के मिल जाने पर बौद्धधर्म ने एक नवीन रूप धारण किया। तिब्बत में इसी तान्त्रिकवाद के कारण 'लामा-पथ' की नींव पड़ी।

तिब्बत मे चीनी भिक्षुओं और भारतीय भिक्षुओं में प्रायः परस्पर धार्मिक वाद-विवाद हो जाया करते थे। एक बार की बात है कि महायान 'हवाशाङ्ग' नामक

चीनी भिक्षु ने आचार्य संतरक्षित और पद्मसंभव का विरोध किया। इस समय पंडित कमलशील तिब्बत में ही विद्यमान थे। ह्वाशाङ्ग का कमलशील से शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें ह्वाशाङ्ग परास्त हुआ और उसको चीन की ओर लौटना पड़ा।

पद्मसंभव तांत्रिकवाद-संस्थापक के रूप में पूजे जाते हैं। इनके दायें हाथ में वज्र, बायें में मनुष्य की खोपड़ी और इनके दोनो ओर मांस तथा मदिरा अर्पित करती हुई दो पत्नियाँ खड़ी रहती हैं। इनकी मुर्त्ति तान्त्रिकवाद के सिद्धान्तानुसार सजाई जाती है। इन्होंने 'साम्य-पन्-कासीक' नामक पुस्तक बनाई है, जिसका अनुवाद भिक्षु आनदभद्र ने किया है।

[७] कमलशील

कमलशील भी तान्त्रिकवाद के बड़े प्रकांड पंडित थे। इनको भी तिब्बत के राजा ने अपने यहाँ निमंत्रित किया था। नालंदा के प्रख्यात अध्यापकों में से एक ये भी थे। ये सन्तरक्षित और पद्मसंभव के समकालीन थे (सन् ७२८—७६६)। विद्यापीठ में इनका खास अध्यापन-विषय तान्त्रिकवाद ही था। इन्होंने एक चीनी पंडित को वादविवाद में हराया था। इन्होंने पाँच पुस्तकों का प्रणयन किया है—(१) आर्य-सप्त-सतीक-प्रज्ञा-पारामित-टीका, (२) आर्य-वज्र-कचदिक-प्रज्ञा-पारामित-टीका, (३) प्रज्ञा-पारामित-ह्रदमय-नाम-टीका, (४) न्याय-विन्दु-पूर्वापर-समसीवत्य, और (५) तत्त्व-संग्रह।

[८] स्थिरमति

यात्री ह्वेनसाँग लिखता है कि स्थिरमति नालंदा में विद्यार्थी थे। पीछे इनको उपाध्याय और फिर आचार्य का पद भी प्राप्त हुआ। इत्सिंग का कहना है कि ये वल्लभीपुर (सौराष्ट्र) के रहनेवाले थे। इन्होंने अपने गुरु द्वारा शुरू किये हुए 'वत्तमाला स्तुति' नामक ग्रन्थ का भाषान्तर पूर्ण किया। ये प्रख्यात व्याकरणवेत्ता थे। संस्कृत-भाषा के अनेक ग्रन्थो का इन्होंने तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है। संस्कृत-व्याकरण की कलाप-शाखा के पुरस्कर्त्ता ये ही हैं।

तिब्बती ग्रन्थों के अनुशोलन से ज्ञात होता है कि ये नालंदा मे 'तारा-भट्टारीक'-(अर्थात् शास्त्रों के केन्द्र)-विभाग में काम करते थे। वहाँ इन्होंने पुंड-रीक-रचित 'आर्य-मंजुश्री-नाम-संगीत-टीका' नामक पुस्तक का अनुवाद किया। इन्होने आठ स्वतंत्र पुस्तकें भी लिखी हैं। तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिये इन्होंने बहुत प्रयत्न किया।

[९] बुद्धकीर्त्ति

ये नालन्दा के एक भिक्षु थे। इन्होंने मगध के महापंडित अभयङ्करगुप्त-कृत तांत्रिक पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया है। विक्रमशिला के महापंडित अभयङ्कर गुप्त के ये सहपाठी थे। अभयङ्कर गुप्त को 'वज्र-यानापत्ति-मंजरी' नामक पुस्तक लिखने में इन्होंने बहुत सहायता दी थी। इनका समय बारहवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल है।

[१०] कुमारश्री

ये भी नालंदा में ही रहा करते थे। इन्होंने संस्कृत-भाषा में बौद्धधर्म-विषयक ग्रन्थ लिखे हैं, उनका तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था।

[११] कर्णवति

इनको नालंदा से 'उपाध्याय' और 'पंडित' की पदवियाँ मिली थीं। ये वहाँ तिब्बती भाषा के अध्यापक थे। इन्होंने 'महायान-लक्षण-समुदाय' नामक ग्रन्थ का तिब्बती भाषा मे अनुवाद किया है।

[१२—१३] कर्णश्री और सूर्यध्वज

ये दोनों भिक्षु भी नालंदा-विद्यापीठ में काम करते थे। इन्होंने आचार्य 'बुद्धाञ्जनपाद' के बनाये हुए संस्कृत-ग्रन्थों का भाषान्तर किया है।

[१४] सुमतिसेन

आप नालंदा में बहुत समय तक रहे थे। आपने संस्कृत-भाषा मे 'कर्म-सिद्ध-टीका' नामक पुस्तक लिखी है, जिसका तिब्बती-अनुवाद भारतीय भिक्षु विशुद्धसिंह ने किया है।

इन सबके अतिरिक्त भी नालन्दा में बहुतेरे प्रसिद्ध पंडित थे। नालन्दा विद्वत्ता का गढ़ था। वहाँ के पंडितप्रवर कीर्त्ति और ज्ञान-गरिमा के सच्चे धनी थे।



संस्कृतकाव्यों में बिहार की चर्चा

श्रीबदरीनाथ झा, गवर्नमेंट-संस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर

वर्त्तमान 'बिहार-प्रदेश'—जो प्राचीन अंग, मगध, मिथिला और करूष नामक देशों के सम्मिश्रण से बना हुआ है—प्राचीन संस्कृत-साहित्य में, विशेषतः संस्कृत-काव्यों में, बहुत छानबीन करने पर भी, नहीं पाया जाता है। हाँ, 'विहार' शब्द बौद्धकाल में, बौद्धमतानुयायियों के देवालय-अर्थ में, व्यवहृत होने लगा था, जो निम्नाङ्कित उद्धरणों से स्पष्ट है—

"विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालये।" (मेदिनीकोश)

"चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो-जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।
विहारदेशं तमवाप्य मंडली-मकारयन् भूरि तुरङ्गमानपि॥"

(नैषधीय चरित, १ सर्ग)

"ततो मुनिस्तं प्रियमाल्यहारं वसन्तमासेनकृताभिहारम्।
निनाय भग्नप्रमदाविहारं विद्याविहाराभिमतं विहारम्॥"

(सौन्दरनन्द, ५ सर्ग)

यह प्रदेश, बुद्धदेव का लीलास्थल होने के कारण, बौद्धमन्दिरों से परिपूर्ण रहा होगा। इसीलिये इसका नाम 'बिहार' पड़ा। इस आधुनिकता को देखकर संस्कृतकवियों ने प्रायः इस संज्ञा की उपेक्षा की है। फिर भी इस प्रदेश के अवान्तर जिन देशों तथा स्थानों की चर्चा संस्कृत-काव्यो में मिलती है, उसीके आधार पर इस अल्पकाय लेख की कल्पना की गई है।

सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने 'आदिकाव्य' में कामाश्रम और अंग देश के विषय में लिखा है—

"अशरीरः कृतः कामः क्रोधाद्देवेश्वरेण ह।
अनङ्ग इतिविख्यातस्तदाप्रभृति राघव!॥

सचाङ्गविषयः श्रीमान् यत्राङ्गं स मुमोच ह।
तस्यायमाश्रमःपुण्य-स्तस्येमे मुनयः पुरा॥"
(वाल्मीकीय रामायण, बालकांड, २३ सर्ग

यह (कामाश्रम) स्थान, छपरा जिले के दक्षिण-पश्चिम कोण में, गङ्गा-सरयू-सङ्गम के निकट, कामवन में था। सम्प्रति नदी-सङ्गम के स्थान-परिवर्त्तन से सम्भवतः लुप्त हो गया है। और, अङ्गदेश—गङ्गा के दक्षिण, कलिङ्ग के उत्तर, वङ्ग से पश्चिम और मगध से पूरब—आजकल दक्षिण-मुँगेर, भागलपुर तथा सन्तालपरगना के नाम से प्रसिद्ध है।

कामाश्रम की चर्चा कविकुलगुरु कालिदास ने 'रघुवंश' में इस प्रकार की है—
"स्थाणुदग्धवपुषस्तपोवनं, प्राप्य दाशरथिरात्तकार्मुकः।
विग्रहेण मदनस्य चारुणा सोऽभवत् प्रतिनिधिर्नकर्मणा॥" (सर्ग ११)

लौकिक कविता में छन्द, अलङ्कार, रस, अर्थ, कल्पना आदि का सौन्दर्य आर्ष कविता से कहीं विलक्षण है, क्योंकि साहित्य का विकास क्रमिक होता गया है। 'रामायण-चम्पू' नामक ग्रन्थ में महाराज भोज ने कामाश्रम तथा अङ्गदेश का प्रसङ्ग यों उपस्थित किया है—

"अस्मिन् पुरा पुरभिदः परमेश्वरस्य
फालान्तरालनयनज्वलनान्मनोभूः।
सद्यः प्रपद्य शलभत्वममुञ्चदङ्गं,
तस्मादमुं जनपदं विदुरङ्गसञ्ज्ञम्॥" (रा. चं., बालकांड)

अब, यहाँ यह शङ्का उपस्थित हो सकती है कि कामाश्रम से अङ्गदेश बहुत दूर है, फिर एक ही जगह दोनों का उपादान क्यो? किन्तु कामदेव का सम्बन्ध दोनों में तुल्य है, इसलिये एक ही जगह दोनों का उपादान हो सकता है। अतएव इस श्लोक में समीपबोधक 'इदम्' शब्द से आश्रम का और दूरबोधक 'अदस्' शब्द से अङ्गदेश का उल्लेख किया गया है। अङ्गदेश तथा चम्पानगरी का उल्लेख दण्डिभट्ट ने भी 'दशकुमारचरित' में किया है—

"स किल × × चंडवर्मा अङ्गराजस्योद्धरणाय
अङ्गानभियास्यन् रुरोध चम्पाम्।" (पूर्वपीठिका, १ उच्छ्वास)
देव! अङ्गेषु गङ्गातटे बहिश्चम्पायाः अस्ति × × × मरीचिर्नाम महर्षिः।"
(पू० पी०, २ उच्छ्वास)

यह 'चम्पा' नगरी भागलपुर के निकट 'चम्पानगर' नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

गङ्गा के दक्षिणी तीर पर, मगध देश में, सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध वामनाश्रम की चर्चा भगवान् वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य रामायण में की है—

"एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धोह्यत्र महातपाः॥ (बालकांड, २५ सर्ग)

यह स्थान शाहाबाद जिले में, वर्त्तमान 'बक्सर' नगर के समीप, भग्नावशेष-रूप में, आज भी विराजमान है।

'रघुवंश' महाकाव्य में कालिदास ने इसका वर्णन यों किया है—

"वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः॥
आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्।
बद्धपल्लवपुटाञ्जलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम्॥ (११ सर्ग)

महाकवि मुरारि ने 'अनर्घराघव' नाटक में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"अहो विचित्रमिदमायतनं सिद्धाश्रमपदं नाम भगवतो गाधिनन्दनस्य।"

"इह वनेषु सकौतुकवामनो मुनिरपत्त तपांसि पुरातनः।
तमिव वामवलोक्य तपस्विनो नयनमद्य मनागुदमीमिलन्॥" (२ अङ्क)

'रावणवध' महाकाव्य में भट्टि कवि ने इसकी चर्चा इस प्रकार की है—

"अथालुलोके हुतधूमकेतु-शिखाऽञ्जनस्निग्धसमृद्धशाखम्।
तपोवनं प्राध्ययनाभिभूत-समुच्चरच्चारुपतत्रिशिञ्जम्॥" (२ सर्ग)

'रामायण-चम्पू' में इसका वर्णन निम्नलिखित शैली से किया गया है—

"प्रतिदिशमवदातैर्ब्रह्मभिर्ब्रह्मनिष्ठैः प्रशमितभवखेदैः सादरं सेव्यमाने।
वलिनियमनहेतोर्वामनः काननेऽस्मिन् वलिनियमपरः सन् ब्रह्मचारी चचार॥
ततः सिद्धाश्रमं प्रविश्य विश्वामित्रः सत्रमारभत।" (बालकांड)

इसी वामनाश्रम के पूरब तथा पश्चिम दिशा में 'मलद' और 'करूष' अवान्तर देश का वर्णन 'आदिकाव्य' में मिलता है—

"एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ।" (बा० कां०, २४ स०)

ये दोनों जनपद सम्प्रति मगध देश में मिल गये हैं। इसलिये इनकी ख्याति लुप्त-सी हो गई है। इसीमें ताटका राक्षसी का निवास-स्थान 'ताटकावन' था, जो

आज शाहाबाद जिले में, डुमराँव राजधानी से ८ कोस दूर, बड़कागाँव (तार) नाम से विख्यात है।

'दशकुमारचरित' में मगध देश और पुष्पपुरी का नाम पाया जाता है—

"अस्ति × × मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी।"

"मानसारः × × अक्लेशं मगधदेश प्रविवेश।" (पूर्व पीठिका, १ उच्छ्वास)

पुष्पपुर, कुसुमपुर, पाटलिपुत्र आदि वर्त्तमान 'पटना' ही के नाम हैं। कविवर विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' से भी स्पष्ट प्रतीत होता है—

"अन्विष्यन्ते च कुसुमपुरनिवासिनां नन्दामात्यसुहृदां निपुणतरं प्रचारगतयः।" (१ अङ्क)

"तृतीयोऽप्यमात्यराक्षसस्य द्वितीयमिव हृदय पुष्पपुरनिवासी मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम।" (१ अङ्क)

"जानात्येवामात्यो यथा चाणक्यहतकस्य विप्रिय कृत्वा नास्ति मे पुनः पाटलिपुत्रे प्रवेश इति।" (२ अङ्क)

पाटलिपुत्र की चर्चा भट्ट सोमदेव ने भी की है—

"अस्ति पाटलिकं नाम पुरं नन्दस्य भूपतेः।
तत्रास्ति चैको वर्षाख्यो विप्रस्तस्मादवाप्स्यथः॥
कृत्स्नां विद्यामतस्तत्र युवाभ्यां गम्यतामिति।"

(कथा-सरित्सागर, १ लम्बक, २ तरङ्ग)

"तदिदं दिव्यं नगर मायारचितं सपौरमतएव।
नाम्ना पाटलिपुत्रं क्षेत्रं लक्ष्मीसरस्वत्योः॥" (१ ल०, ३ त०)

इसी पाटलिपुत्रपुर का निर्देश कविराज गङ्गानन्द ने 'भृङ्गदूत' काव्य में किया है—

"द्रष्टव्या सा चटुलपटना राजधानी समानी
भूतव्यूहामरपतिपुरी किन्नरीगीतकीर्त्ति।"

इसी प्रकरण मे इन्होंने 'शोणभद्र' नद का भी उल्लेख किया है—

"गायन्तीनां मधुरमधुरं मागधीनां चमूनां,
दृष्ट्वा चेष्टां मधुकर नदं शोणसञ्ज्ञं समीया।"

महाकवि बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में शोणनद और उसके पश्चिमतट में प्रीतिकूट नामक ग्राम की चर्चा की है—

"अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य × × हिरण्यबाहु नामानं नदम्, यं जना शोण इति कथयन्ति।"

"चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूट नामानं निवासम्।" (१ उ०)

यद्यपि इस समय वहाँ 'प्रीतिकूट' ग्राम का पता नहीं है, फिर भी कुछ अन्वेषक सज्जनों का कहना है कि गङ्गा-शोण-संगम के निकट स्थित 'बीनगाँवाँ' नामक गाँव ही 'वाणग्राम' शब्द का अपभ्रंश है।

शोणनद, धर्मारण्य और गिरिव्रज का उपादान 'आदिकाव्य' में यों मिलता है—

"ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे।
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिता।" (बालकांड, ३१ सर्ग)

"ब्रह्मयोनिर्महानासीत् कुशोनाम महातपाः।
वैदर्भ्यां जनयामास चतुरः सदृशान् सुतान्॥
कुशाम्बं कुशनाभं च असूर्तरजसं वसुम्।
कुशाम्बस्तु महातेजाः कौशाम्बीमकरोत् पुरीम्॥
कुशनाभस्तु धर्मात्मा पुरं चक्रे महोदयम्।
असूर्तरजसो नाम धर्मारण्यं महामतिः॥
चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम्।
सुमागधी नदी रम्या मगधान् विश्रुताऽऽययौ॥"(बालकांड,३२ सर्ग)

'शोण' और 'सुमागधी' शोणभद्र का ही नामान्तर है। 'धर्मारण्य' गया नगर से ४ कोस दक्षिण में आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है। 'गिरिव्रज' वर्त्तमान राजगृह का ही पर्याय है—पर्वतश्रेणी से घिरे रहने के कारण इसका यह नाम पड़ा था। बहुत-से लोग मगधेश्वर जरासन्ध के कारागार 'राँची' को ही गिरिव्रज कहते हैं।

भदन्त अश्वघोषरचित 'बुद्धचरित' महाकाव्य में मगध-देशान्तर्गत च्यवनाश्रम आदि स्थानों का उल्लेख पाया जाता है—

"ततो मुहूर्त्तेऽभ्युदिते जगच्चक्षुषि भास्करे।
भार्गवस्याश्रमपदं स ददर्श नृणां वरः॥ (६ स०)

"स राजवत्सः पृथुपीनवक्षास्तौ हव्यमन्त्राधिकृतौ विहाय।
उत्तीर्य्य गङ्गां प्रचलत्तरङ्गां श्रीमद्गृहं राजगृहं विवेश॥

"शैलैः सुगुप्तं च विभूषितं च धृतं च पूतं च शिवैस्तपोदैः।
पञ्चाचलाङ्कं नगरं प्रपेदे शान्तः स्वयम्भूरिव नाकपृष्ठम्॥" (१० स०)

"ततः शमविहारस्य मुनेरिक्ष्वाकुचन्द्रमा ।
अराडस्याश्रमं भेजे वपुषा पूजयन्निव ॥
"ततो हित्वाऽऽश्रमं तस्य श्रेयोऽर्थी कृतनिश्चयः ।
भेजे गयस्य राजर्षेर्नगरीसञ्ज्ञमाश्रमम् ॥"
"स्नातो नैरञ्जनातीरादुत्ततार शनैः कृशः ।
भक्त्याऽवनतशाखाऽग्रैर्दत्तहस्तस्तटद्रुमैः ॥" (१२ स०)

"जाह्नवीमुत्तरङ्गीघनः काश्यपस्याश्रम चोरुविल्वाभिधानं गयायां ययौ ।"
"धर्मसञ्ज्ञाटवीसंस्थितान् सप्तसङ्ख्याशतांस्तापसान् निर्वृतान् सव्यधाच्छ्रीघनः ।"
"राजगेहाभिधे पत्तने बिम्बिसारं नृप बुद्धिसाराग्रजन्मानुमेयं विभुम् ।" (१७ स०)

"व्यवसायद्वितीयोऽथ शाद्वलास्तीर्णभूतलम् ।"
सोऽश्वत्थमूलं प्रययौ बोधाय कृतनिश्चयः ॥" (१२ सर्ग)

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि भार्गव च्यवन ऋषि का आश्रम, गया से पूर्वोत्तर दिशा में, 'गुरुपा' रेलवे स्टेशन के समीप, 'निमि' ग्राम में है। राजगृह (राजगेह), गया और धर्मारण्य आज भी प्रसिद्ध हैं। अराडाश्रम, नैरञ्जना नदी और काश्यपाश्रम का पता नहीं है कि इस समय किस नाम से प्रख्यात हैं। अश्वत्थवृक्ष बोधगया में था। इसके अतिरिक्त उसी के आसपास में क्षीरिकावन, नारद्ग्राम, कोतलग्राम, वेणुवन और न्यग्रोधवन का भी उल्लेख है, परन्तु प्राकृतिक परिवर्त्तन के कारण और प्राञ्जल इतिहास के अभाव में सम्प्रति मगध देश में उसका परिचय प्रायः किसीको नहीं है।

फिर उन्हीं के 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य में भी अराडाश्रम, उद्रकाश्रम, गया तथा गिरिव्रज की चर्चा यों की गई है—

"अथ मोक्षवादिनमराडमुपशममतिं तथोद्रकम् ।
तत्त्वकृतमतिरुपास्य जहावयमप्यमार्ग इतिमार्गकोविदः ॥"
"स विनीय काशिषु गयेषु बहुदिनमथो गिरिव्रजे ।
पित्र्यमपि परमकारुणिको नगरं ययावनुजिघृक्षया तदा ॥" (३ सर्ग)

इस समय उद्रकाश्रम भी लुप्त है।

मगध देश का उपादान 'नैषधीय चरित' महाकाव्य में भी देखा जाता है—

"तयाऽधिकुर्या रुचिरे चिरेप्सिता यथोत्सुकः सम्प्रति सम्प्रतीच्छति ।
अपाङ्गरङ्गस्थललास्यलम्पटाः कटाक्षधारास्तव कीकटाधिपः ॥" (१२ स०)

इस श्लोक में जो 'कीकट' शब्द है, वह 'मगध' देश का ही नामान्तर है।



कुम्हरार (पटना) मे खुदाई के बाद पाया गया, ईसा से तीन शताब्दी पहले का, मौर्यकालीन पाटलीपुत्र का, ध्वंसावशेष। इन गोल ढूहों पर पहले स्तम्भ खडे थे, जो विशाल सभा-मंडप की छत को धारण किये हुए थे। इन गोल ढूहो मे राख भरी थी, जिससे समझा गया कि आग के द्वारा इस विशाल भवन का नाश हुआ।

प्रचलित है, और इसीके आधार पर रघुवीर-कवि ने 'लक्ष्मीश्वरोपायन' में ऐसा ही प्रयोग किया है—

"देशाः सन्तु सहस्रशोऽपि मम तु स्वाभाविकप्रीतये,
श्रेयान् देशविशेष एष मिथिलानामा क्षमामंडले।"

'कथासरित्सागर' में 'वैदेह' शब्द से मिथिला का उपादान किया गया है—

"ददौ वैदेहदेशे च राज्यं गोपालकाय सः।
सत्कारहेतोर्नृपतिः श्वशुर्यायानुगच्छते॥"

(३ लम्बक, ५ तरङ्ग)

'भृङ्गदूत' में 'तीरभुक्ति' शब्द मिथिला देश का ही नामान्तर मानकर व्यवहृत है—

"गङ्गातीरावधिरधिगता यद्भुवो भृङ्ग भुक्ति-
र्नाम्ना सैव त्रिभुवनतले विश्रुता तीरभुक्तिः।"

मैंने भी अपने 'गुणेश्वरचरितचम्पू' में इसी अर्थ में मिथिला शब्द का प्रयोग किया है—

'अस्ति स्वस्तिसमस्तभूमिवलयश्रेयःप्रशस्तिश्रुता,
प्रत्यर्थिस्मयमन्थनप्तमिथिलानामाऽभिरामाकृतिः।
प्रेक्षाशालिविपश्चिदालिललितोत्सङ्गाऽभिषङ्गार्दिनी,
नीवृद्वृन्दमचर्चिकार्ऽचिततरश्रीस्तीरभुक्तिः सदा॥
आलिभ्यामिव पार्श्वयोः कुशिकजा-नारायणीभ्यां श्रिता,
रिङ्गत्तुङ्गतरङ्गबाहुभिरलं याऽऽलिङ्गिता गङ्गया।
कामं कण्टकिनोजडस्य वहतः स्वेदं भरच्छद्मना,
क्रोडे क्रीडति पीड्यमाननिविडव्रीडा मृडानीपितुः॥'

'आदिकाव्य' में मिथिलान्तर्गत 'विशाला' नगरी की चर्चा मिलती है—

"गङ्गातीरे निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्।"

(वा० कां०, ४४ स०)

"इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुसायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः॥
तेन चासीदिहस्थाने विशालेति पुरी कृता।"

(वा० कां०, ४७ स०)

'रामायण-चम्पू' में भी इस नगरी का नामोल्लेख पाया जाता है—

"अथ दाशरथिराकर्णितभागीरथीकथस्तां सरितं
विलङ्घ्य विशालां विलोक्य × × × अपृच्छत् ।" (बा० कां०)

फिर 'भृङ्गदूत' में भी 'विशाला' नगरी का उपादान है—

"सद्यस्तस्माद्द्रुतमनुसरेस्त्व विशालापथेन ।"

यह 'विशाला' नगरी, मुजफ्फरपुर नगर से दक्षिण-पश्चिम कोण में सात कोस की दूरी पर, 'बनिया-बसाढ़' नाम से आज भी प्रख्यात है। बौद्धकाल में यही 'वैशाली' नाम से प्रसिद्ध थी। भारत के इतिहास में प्रसिद्ध लिच्छिविवंश की, बहुत दिनों तक, यह राजधानी रह चुकी है।

यद्यपि 'विशाला' नाम की नगरी का वर्णन 'मेघदूत' में भी किया गया है; तथापि देशभेद के कारण उससे यह भिन्न है। इसी विशाला के आधार पर आज भी वह परगना 'बिसारा' कहा जाता है।

कुशप्लव की चर्चा करनेवाले आदिकवि ने 'रामायण' में कहा है—

"कुशप्लवं समासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ।" (बा० कां०, ४६ स०)

इस कुशप्लव वन के सम्बन्ध में 'चम्पूरामायण' का भी अधोलिखित उल्लेख है—

"तेषां जननी दितिः × × × शतमन्युशासनं पुत्रं लब्धुकामा
पत्युर्मारीचस्यवचना कुशप्लवे सुचिरं तपश्चचार ।" (बा० कां०)

यह कुशप्लव नाम का तपोवन विशाला नगरी के निकट पूर्वदिशा में वर्त्तमान था। सम्प्रति कालचक्र की प्रबलता से लुप्त हो गया है।

'भृङ्गदूत' काव्य में 'भैरवस्थान' का प्रसङ्ग इस प्रकार चलाया गया है—

"रम्यं धाम त्रिभुवनपतेर्भैरवस्याभ्युपेयाः ।"

यह स्थान मुजफ्फरपुर से दस कोस की दूरी पर, राजखंडग्राम में, इस समय भी वर्त्तमान है।

उसी 'भृङ्गदूत' में गांडीवेश्वर स्थान, ब्रह्मपुर, वाग्वती तथा कमला नदी का भी उपादान यों मिलता है—

"गच्छन्नच्छाञ्जननिभपुरो भृङ्ग तस्या नमस्यं,
विष्णुब्रह्मत्रिदशपतिभिर्दृष्टिगोशं महेशम् ।"
"तस्यादूरे त्रिभुवनपतेर्लोकनेत्राभिरामा,
बन्धो धीरव्रजनिवसतिर्ब्रह्मपूर्वा पुरी सा ।"

"यत्सान्निध्ये प्रवहति सदा वाग्वतीनाम सिन्धुः।"
"सा गम्भीरा सपदि कमलालोचनस्यातिथिःस्यात्।"

'गांडीवेश्वर महादेव' राजा जनक के दक्षिण द्वारपाल थे, जो इस समय भी दरभंगा जिले के 'जोगियारा' रेलवेस्टेशन के समीप, शिवनगर ग्राम में विराजमान हैं। 'ब्रह्मपुर' भी इसी जिले में, गौतमकुंड से पश्चिम, रत्नपुर के निकट, आज भी उसी नाम से, प्रसिद्ध है। 'वाग्वती' नदी दरभंगा होकर बहती है। 'कमला' नदी दरभङ्गा से दो कोस पूरब गौसाघाट होकर बहती है।

'कमला' नदी का वर्णन 'गुणेश्वरचरितचम्पू' में भी किया गया है—

'पीयूषाभपयस्विता कृशतनुर्दीर्घायता पावनी,
यस्या मध्यमलङ्करोति कमला यज्ञोपवीताकृतिः।"

दरभगा जिले के गौतमाश्रम अहल्या-स्थान का उल्लेख 'आदिकाव्य' में इस प्रकार है—

"गौतमस्य नरश्रेष्ठ- पूर्वमासीन्महात्मनः।
आश्रमो दिव्यसंकाशः सुरैरपि सुपूजितः॥"
"गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।
रामं सम्पूज्य विधिवत् तपस्तेपे महातपाः॥"
(बालकांड, ४८ सर्ग)

'रामायण-चम्पू' में भी इसकी चर्चा पाई जाती है—

"तस्मिन्नहल्यया गौतमेन च कृतमातिथ्यं विश्वामित्रः सराजपुत्रः प्रतिगृह्य मिथिलोपकण्ठभुवि जनकयजनभवनमभजत।" (बा० कां०)

'कमतौल' रेलवेस्टेशन से दक्षिण-पश्चिम कोण में एक कोस दूर गौतमाश्रम था। आज भी 'अहियारी' गाँव में अहल्यास्थान और उससे आध कोस की दूरी पर गौतमकुंड वर्त्तमान है।

एवं 'कोटीश्वर शिवस्थान' और 'सरिसव' ग्राम का वर्णन 'भृङ्गदूत' में मिलता है—

"स्फीताकारं वहलसुधया धाम कोटीश्वरस्य।"
"शोभाशालि प्रिय! सरिसवग्रामरत्नं परीयाः।"

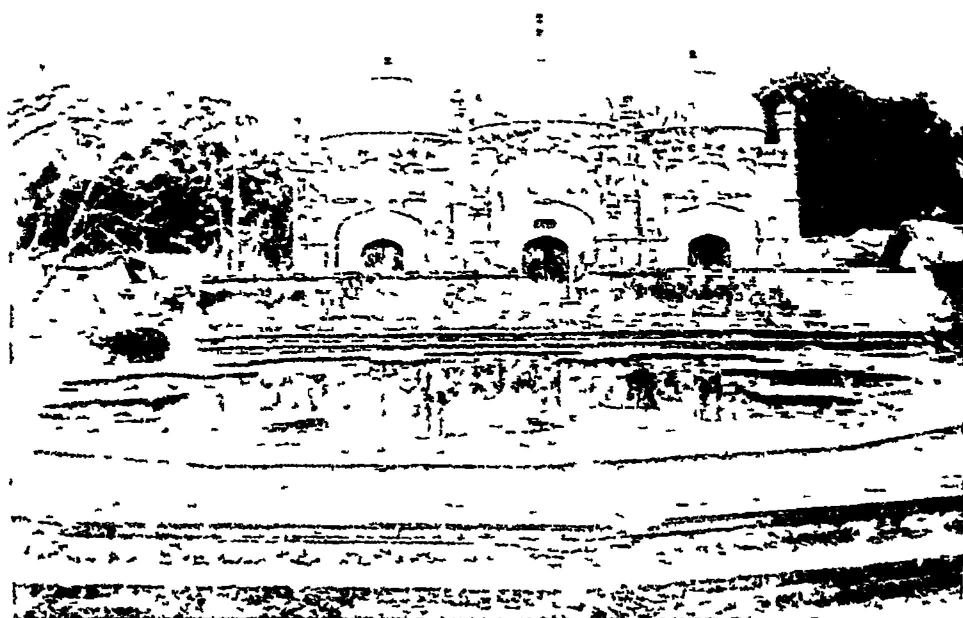
कोटीश्वर शिव का स्थान दरभंगा जिले के 'सकरी' रेलवे-स्टेशन से एक कोस पूरब 'बलिया' गाँव में 'भैरवस्थान' के नाम से प्रसिद्ध है। और, 'सरिसव'



प्राचीन पाटलिपुत्र के खँडहर की खुदाई (कुम्हरार, पटना)



पत्थर की बनी हुई, आसनबद्ध बुद्धदेव की, प्राचीन मूर्त्ति (जगदीशपुर, पटना)



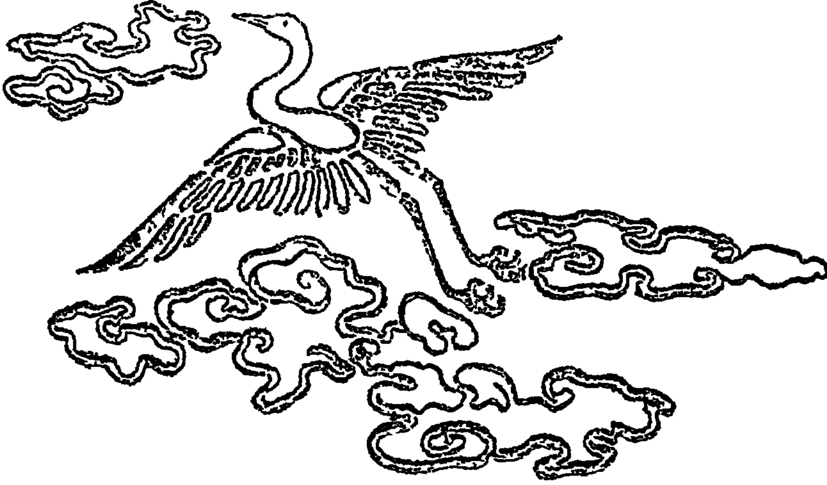
पटना सिटी की, मीर अशरफ की, मसजिद



मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थस्थान फुल्वारीशरीफ (पटना) की संगीमसजिद, जिसमें, कहा जाता है, हजरत मुहम्मद साहब की दाढ़ी का एक बाल स्मारक-स्वरूप रक्खा गया है ।

ग्राम पूर्वकाल में स्वनामधन्य महामहोपाध्याय भवनाथ मिश्र प्रभृति विद्वानों से तथा सम्प्रति महामहोपाध्याय डाक्टर श्रीगङ्गानाथ झा आदि पंडितों से विभूषित रहने के कारण सर्वथा प्रसिद्ध है।

अन्त मे सहृदय पाठक-वृन्द से यही प्रार्थना है कि 'यद्यपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते, अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः'—इस सूक्ति का अनुस्मरण करते हुए मेरी त्रुटियों का सम्माजन करने की कृपा करें।





बिहार का ऐतिहासिक महत्त्व

अध्यापक श्रीकृष्णचन्द्र मिश्र, बी० ए० (ऑनर्स), जिलास्कूल, मुँगेर

"Indeed Magadha saw the climax reached in Indian history. Magadha occupies that place in Indian history which Athens occupies in the history of Greece, and Wessex in the history of England "* —Pierre de Maillot

जराजर्जर व्यक्ति की युवावस्था की, भूलुठित एव पददलित पँखुरियों से उस पुष्प के पूर्व सौन्दर्य की, राख की राशि से भस्मीभूत वस्तु के पूर्व रूप की, ढूह और अस्तव्यस्त ईंटों से किसो भवन की भव्यता की यथार्थ कल्पना जितना दुष्कर है, उससे भी अधिक दुस्साध्य है भग्नावशेषाच्छादित आधुनिक बिहार को देखकर इसके ऐतिहासिक गौरव का सच्चा एवं पूर्ण चित्र अंकित करना। किन्तु प्राचीनता, विस्मृति, दारिद्र्य और ऐतिहासिक उदासीनता के आवरण से आवृत रहने पर भी बिहार का ऐतिहासिक महत्त्व सर्वत्र अपनी किरणें बिखेर ही देता है। गहनतम श्याम नीरद से आच्छादित रहने पर भी प्रभाकर अपनी प्रभा द्वारा पृथ्वी को प्रकाश प्रदान करते ही हैं।

भारत में नव प्रस्तर-युग के प्रवर्त्तक तथा मृत्तिका-पात्र के आदिस्रष्टा आदि-भाषा-भाषियों के भिन्न-भिन्न दलों को अपनी गोद मे आश्रय देनेवाली† और 'बक्सर'-स्थित कैलकोलिथिक (chalcolithic) युग की नगरी के भग्नावशेषो द्वारा ईसवी-पूर्व तृतीय सहस्राब्द या प्राक्-आर्य-काल की सभ्यता की ओर संकेत करनेवाली ‡

* Pierre de Maillot's—Aryan Advancement into Magadha—"A peep into Ancient Bihar"

† R K. Mukherji's "Hindu Civilisation"—P. 34.

‡ Dr. A. Banerji Shastri's "Indian Science Congress Handbook to Patna, 1933", PP.—19—23,

बिहार-भूमि का अति प्राचीनकाल का ऐतिहासिक गौरव तबतक अज्ञात-सा ही रहेगा जबतक बिहार-अकस्थित भूगर्भ से किसी 'महेंजोदड़ो' या 'हरप्पा' का उद्भव नहीं होता है।

वैदिक युग के बिहार का रूप भी विशेष स्पष्ट नहीं है। 'शतपथ ब्राह्मण'- में उल्लिखित माथव और उनके पुरोहित गौतम राहूगण का जाज्वल्यमान वैश्वानर-प्रज्वलित हुताशन का अनुसरण करते हुए सदानीरा नदी (गंडक) तक आकर बस जाना एक सच्ची घटना है। प्राचीनता की दृष्टि से वेद के बाद 'ब्राह्मण' का ही स्थान है। फिर भी ऋग्वेद मे उल्लिखित राहूगण और शतपथ-ब्राह्मण में उल्लिखित राहूगण यदि एक ही व्यक्ति हो तो ऋग्वेद-काल में ही आर्यों का बिहार के अन्तर्गत मिथिला में बस जाना निर्विवाद सत्य माना जा सकता है*। पुनश्च वैदिक ग्रन्थो में मगध और अंग के प्रति जिस घृणा-भाव का प्रदर्शन किया गया है उससे ऐसा कुछ बोध होता है कि या तो मगध और अंग की सभ्यता इतनी विकसित थी कि आर्यों की वहाँ कोई दाल नहीं गलती थी, या उन प्रान्तों में कुछ ऐसे निर्भीक अग्रगामी आर्य जा बसे थे जिनकी प्रगतिशीलता से अन्यान्य आर्यों को चिढ़ थी—ईर्ष्या थी। महान् व्यक्तियों के ईर्ष्यापात्र भी महान् ही होते हैं। तो, क्या अग तथा मगध अपनी सांस्कृतिक महत्ता के कारण ही सभ्य आर्यों के ईर्ष्यापात्र थे?

वेदकालीन बिहार से महाकाव्य-युग का बिहार (१४०० ई० पू० से १००० ई० पू०) अधिक स्पष्ट हो उठता है—अधिक प्रकाशमान भी। रामायण-कालीन बिहार के सामने सम्पूर्ण भारत नतमस्तक हो जाता है। इसी युग में बरसों या सदियों के अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप मिथिला को आर्यभारत का सर्वप्रमुख राज्य होने का श्रेय प्राप्त हुआ। उस युग के भारत के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति राजर्षि जनक मिथिला ही के राजा थे†। इनकी ख्याति भारत के कोने-कोने में फैली हुई थी। विद्या और ज्ञान की प्रधान केन्द्र-स्थली जनक की मिथिला सर्वत्र पूजित होती थी। दूर-दूर से विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली मिथिला बिहार ही की स्वनामधन्या सुता थी।‡

* Rai Bahadur Shyamnarain Singh's "History of Tirhut"—footnote in page 8.

† R. C. Dutta's "Civilisation in Ancient India". Vol. I. PP. 132-33

‡ श्रीदेवीभागवत, स्कध १, अध्याय १६ (श्रीशुकदेवस्य मिथिलागमनम्), शुक प्रति व्यासवचनम्, श्लोक संख्या ४५, ४६, ४७, ४८।

महाभारत-युग में भी कुछ दिनों तक सम्पूर्ण भारत बिहार की अद्वितीय राजनीतिक शक्ति का लोहा मानता रहा। तत्कालीन शीर्षस्थानीय योद्धाओं में अंग के राजा कर्ण भी एक थे। इनकी शक्ति पर दुर्योधन को बड़ा गर्व था। पांडवों को भी इनका भय था। दानवीरता में भी इनकी तुलना न थी। आज भी कर्ण की भुजशक्ति और दानशीलता का स्मरण कर हिन्दूभारत पुलकित हो उठता है।

यदि कर्ण की वदान्यता का सम्पूर्ण भारत ऋणी था, तो नतमस्तक था सम्पूर्ण भारत मगध-सम्राट् जरासंध की राजशक्ति के सामने। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और युद्ध से जर्जरीभूत, शतश' खंडों में विभक्त, भारत को 'एकच्छत्र' के नीचे लाने का प्रथम—और कुछ काल के लिये सफल—प्रयास करनेवाले सम्राट् जरासन्ध * बिहार के ही वीर पुत्र थे। यदि यह कहा जाय कि युधिष्ठिर की छत्रच्छाया में अखिलभारतीय साम्राज्य की स्थापना के लिये योगेश्वर श्रीकृष्ण जरासन्ध के ऋणी † थे, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

यह तो हुआ पूर्व-ऐतिहासिक युग के बिहार का राजकीय महत्त्व। ऐतिहासिक युग ‡ के बिहार का स्मरण आते ही याद आ जाती हैं 'दिनकर' की ये पंक्तियाँ—

"जगती पर छाया करती थी
कभी हमारी भुजा विशाल
बार-बार झुकते थे पद पर
ग्रीक, यवन के उन्नत भाल" +

वस्तुत ज्यों-ज्यों भारत का इतिहास अधिक प्रकाश मे आने लगता है, त्यों-त्यों बिहार की राजकीय महत्ता भी विश्वविश्रुत होने लगती है। बिहार की ही वह प्रचंड सामरिक शक्ति थी जिसने यूनान की विश्वविजयिनी सेना को प्रकम्पित किया—त्रस्त किया—भारतविजय की आकांक्षा त्यागकर स्वदेश लौटने को बाध्य किया—विश्वविजयी सिकन्दर का भी मोह दूर किया।

यही नहीं, सिकन्दर द्वारा अधिकृत भारत को ग्रीकों के दासत्व-बन्धन

* "The Glories of Magadha" P 44

† चमूपति, एम्० ए०-रचित—"योगेश्वर कृष्ण"।

‡ भारतीय इतिहास का पूर्ण ऐतिहासिक युग ईस्वी-पूर्व छठी सदी से माना जाता है।

+ 'पाटलिपुत्र की गगा'-शीर्षक कविता से।



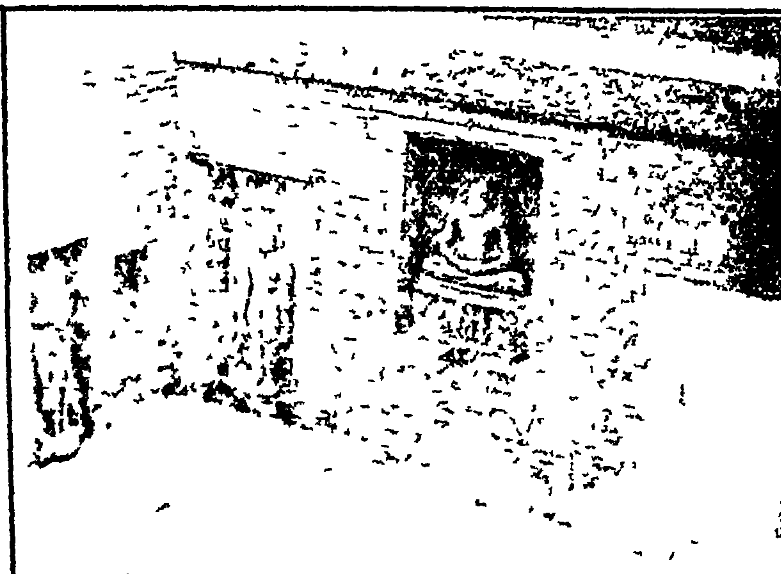
गृद्ध्रकूट पर्वत (राजगृह), जिसकी गुफा मे बुद्धदेव शिष्यो के साथ रहते थे और जिसके
कितने ही उत्कृष्ट धार्मिक प्रवचन दिये थे। ऊपर—गृद्ध्रकूट पर प्राप्त बुद्ध की मूर्त्तियाँ और [illegible]



सोनभंडार - गुफा, राजगृह (पटना)। तीसरी या चौथी शताब्दी मे, 'वैभार'-पर्वत के नीचे, आचार्य रत्नम् मुनि वैरदेव ने, तपस्वियो के निर्वाण लाभ के लिये, इस गुफा का निर्माण कराया। यह ३४ फीट लम्बी और १७ फीट चौडी है। इसकी बगल मे एक और गुफा थी, जो अब नष्ट हो गई है।



सोनभंडार-गुफा का भीतरी दृश्य। दरवाजे से भीतर घुसते ही एक लेख खुदा हुआ मिलता है, जिससे उपर्युक्त बातो का पता चलता है। इसके अन्दर की जैन-मूर्त्ति हाल की रक्खी हुई है।



'वैभार'-पर्वत (राजगृह) पर एक नष्टप्राय दिगम्बर जैन-मन्दिर की कुछ मूर्त्तियाँ।

से मुक्त करने का—विजयी सिकन्दर के सर्वश्रेष्ठ सेनापति सेल्यूकस को पूर्णरूप से पराजित करने का—श्रेय एक बिहारी युवक को ही है। यह युवक वही चन्द्रगुप्त मौर्य था, जिसका स्थापित किया हुआ साम्राज्य भारतवर्ष के शक्तिशाली तथा विस्तृत साम्राज्य का पहला दृष्टान्त * है।

अतः सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकता प्रदान करने का—सिकन्दर की मृत्यु के बाद शुरू होनेवाले भारतीय इतिहास के नव महान् युग की सबसे प्रमुख घटना को सम्पादित करने का—श्रेय बिहार को ही है। चन्द्रगुप्त-(मौर्य)-कालीन हिन्दू-साम्राज्य की शक्ति सुशासन द्वारा प्रदत्त धनजन-संरक्षण की सुविधा, अखंड शान्ति, सिंचाई और कृषि की उन्नतावस्था—एक ऐसा सुखद चित्र है, जिसका स्मरण प्रत्येक भारतीय यथार्थ गर्व के साथ कर सकता है।

छिन्न-भिन्न भारत को एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध करनेवाले चन्द्रगुप्त (मौर्य) का पौत्र सम्राट् अशोक अपनी महत्ता के कारण भारतवर्ष के इतिहास में ही नहीं—विश्व के इतिहास में भी अद्वितीय है। भारत में आर्यों के आने के समय से लेकर आजतक भारतवर्ष में कोई ऐसा सम्राट् नहीं हुआ जो अशोक की महत्ता की बराबरी कर सके। भारत के किसी भी सम्राट् को इस तरह की विश्व-व्यापिनी कीर्त्ति प्राप्त नहीं हो सकी, और न किसी ने इस तरह सत्य-गुण-प्रसार के अदम्य उत्साह द्वारा संसार के इतिहास पर इतना प्रभाव ही डाला है †। बिहार ही ने विश्व को अशोक के रूप में एक मात्र ऐसा सम्राट् प्रदान किया है जिसने कलिंग-विजय के बाद लड़ाई छोड़ दी, विजयोल्लास की घड़ियों में ही युद्ध के नर-संहारक रूप के दर्शन किये, सैनिक वेश में ही संन्यास के तत्त्व को समझा, विजयश्री के आलिङ्गन के समय ही रणविजय को ठुकराकर 'धम्म-विजय' को अपनाया !

"इतिहास के पृष्ठ रँगनेवाले संसार के हजारों और लाखों सम्राटों, राज-राजेश्वरों, महाराजाधिराजों और श्रीमानों के नामों में केवल अशोक का नाम ही अतुलित प्रभा से देदीप्यमान है। 'वोल्गा' नदी से जापान तक आज भी उसी के नाम का आदर होता है। चीन, तिब्बत तथा भारतवर्ष ने भी उसकी महत्ता की परम्परा को स्थिर रक्खा है। कान्स्टेटाइन या शार्लमैन के नाम जाननेवालों से अशोक के नाम को आदर के साथ स्मरण करनेवालों की संख्या आज भी कहीं अधिक है।"

* पंडित जवाहरलाल नेहरू—'विश्व-इतिहास की झलक'।

†R. C. Dutta's "Civilisation in Ancient India." Vol. II, Bk. IV., P 2

ऐसे नृपश्रेष्ठ की जननी बिहार-भूमि के ऐतिहासिक महत्त्व की तुलना विश्व के किस भूखड से की जाय ?

मौर्य-साम्राज्य का पतन हुआ (ई० पू० १८३), किन्तु बिहार का गौरव बहुलांश में अक्षुण्ण ही रहा। ऐतिहासिक युग में चक्रवर्त्तित्वसूचक अश्वमेध यज्ञ सर्वप्रथम बिहार-भूमि में ही बिहार के सम्राट् पुष्यमित्र (ई० पू० १८३—१७० ई० पू०) द्वारा सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। किसमें सामर्थ्य था जो प्रतापी पुष्यमित्र के अश्व को रोक रक्खे ? सम्पूर्ण पश्चिम भारत को विजित करती हुई यवन-राज मिनान्दर (Menandar) की विजय-वाहिनी बिहार-साम्राज्य की सीमा पर आ उपस्थित हुई। किन्तु बिहार की सेना के सामने इसको भी वही दशा हुई जो सदियो पूर्व सेल्यूकस की सेना की हुई थी। इस ग्रीक को भी बिहार-विजय की अभिलाषा अपूर्ण ही रही ! श्लाघ्य थी बिहार की वह सैनिक शक्ति !

केवल एकतंत्र शासन या साम्राज्य-संस्थापन के लिये ही नहीं, प्रत्युत गण-तंत्रशासन और संघशासन के लिये भी इतिहास में बिहार अमर रहेगा। प्रोफेसर मनोरजनप्रसाद सिंह एम० ए० के शब्दों में—

"जब जग मे थी राजतंत्र की घटा घिरी काली-काली।
तब भी इस प्राचीन भूमि में प्रजातंत्र की थी लाली॥"*

वस्तुतः जनक-शासित विदेह का एकतंत्र राज्य बुद्ध के समय एक प्रसिद्ध जनतत्र राज्य गिना जाता था †। गणतंत्र-राष्ट्र वैशाली के लिच्छवियों को गणतंत्र-प्रणाली के इतिहास में गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त है। फ्रांस के विद्रोहियो के समता-स्वतंत्रता-भ्रातृत्व-प्रचार के दो सहस्र वर्ष से भी पहले, समता-प्रचारक इस्लाम के उद्भव से सदियों पूर्व, ईसा के जन्मग्रहण से सैकड़ो वर्ष पहले और भगवान् बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति के भी पहले से वैशाली की जनता स्वशासन का उप-भोग करती थी। ‡

बुद्ध के समय में वैशाली के इस गणतंत्र राज्य की गणना शक्तिशाली राज्यों में होती थी। प्रजातंत्र को सफल बनानेवाली सब शक्तियो और गुणों से युक्त यह गणतत्र राज्य परमज्ञानी बुद्ध से भी प्रशंसित हुआ था। इस प्रकार हम देखते

* 'वैशाली के आँगन में'-शीर्षक कविता से।

† R. K. Mukherji's "Hindu Civilisation", Page 201.

‡ वैशाली की शासन-प्रणाली के विशेष विवरण के लिये देखिये—
Dr. K. P. Jayaswal's "Hindu Polity".



चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

हैं कि इस सुदूर प्राचीन काल में भी बिहार के एक भाग पर, केवल जनता के कल्याण और देश की सुख-समृद्धि के लिये, जनता-द्वारा ही जनता का शासन होता था। शासन की यह पद्धति एकमात्र बिहार में ही स्थापित थी।

मौर्यों के पतन और गुप्तों के उदय के बीच का समय भारतीय इतिहास में 'अंधकार-युग' के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में, मौर्यों के साम्राज्य सूर्य के अस्त होते ही, भारत में सर्वत्र अन्धकार फैल गया—राजनीतिक एकता नष्ट हो गई—अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ—विदेशियों के भी आक्रमण जारी रहे। संक्षेप में, अन्धकार में जितने दुर्गुण पनप सकते हैं, पनप उठे। भारतीय साम्राज्य-वाद की जननी बिहार-भूमि के लिये यह दृश्य असह्य हो उठा। इसने स्वर्णाभ उषा का आह्वान किया। गणराष्ट्र वैशाली का दामन पकड़कर * चन्द्रगुप्त-प्रथम गुप्तवंश की शक्ति, साम्राज्य एवं गौरव का संस्थापक हो सका।

अन्धकार दूर हुआ। बिहार में गुप्तसूर्य चमक उठा। बिहार का दिग्विजयी सम्राट् समुद्रगुप्त, भारत-विजय के लिये—भारत को एक छत्रच्छाया के नीचे लाने के लिये—सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध करने के लिये—पाटलिपुत्र से निकल पड़ा। कोसल, महाकान्तार, केरल आदि राज्यों को पराजित करनेवाला—रुद्रदेव, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति नाग इत्यादि आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को राज्यच्युत करनेवाला—बंगाल, नैपाल, कामरूप, कर्तृपुर, मालव इत्यादि राष्ट्रों और जातियों का 'कर' तथा सम्मान प्राप्त करनेवाला समुद्रगुप्त पाटलिपुत्र के ही सिंहासन को सुशोभित करता था। सम्पूर्ण भारत-राष्ट्र एक बार फिर बिहार के पादपद्मों पर नतमस्तक हुआ। इसीलिये तो कवि 'दिनकर' उत्सुकता-पूर्वक 'पाटलिपुत्र की गंगा' से पूछ उठते हैं—

"तुझे याद है? चढ़े पदों पर
कितने जय-सुमनों के हार
कितनी बार समुद्रगुप्त ने
धोई है तुझमें तलवार
"तेरे तीरों पर दिग्विजयी
नृप के कितने उड़े निशान
कितने चक्रवर्त्तियों ने हैं
किये कूल पर अवभृथ-स्नान"

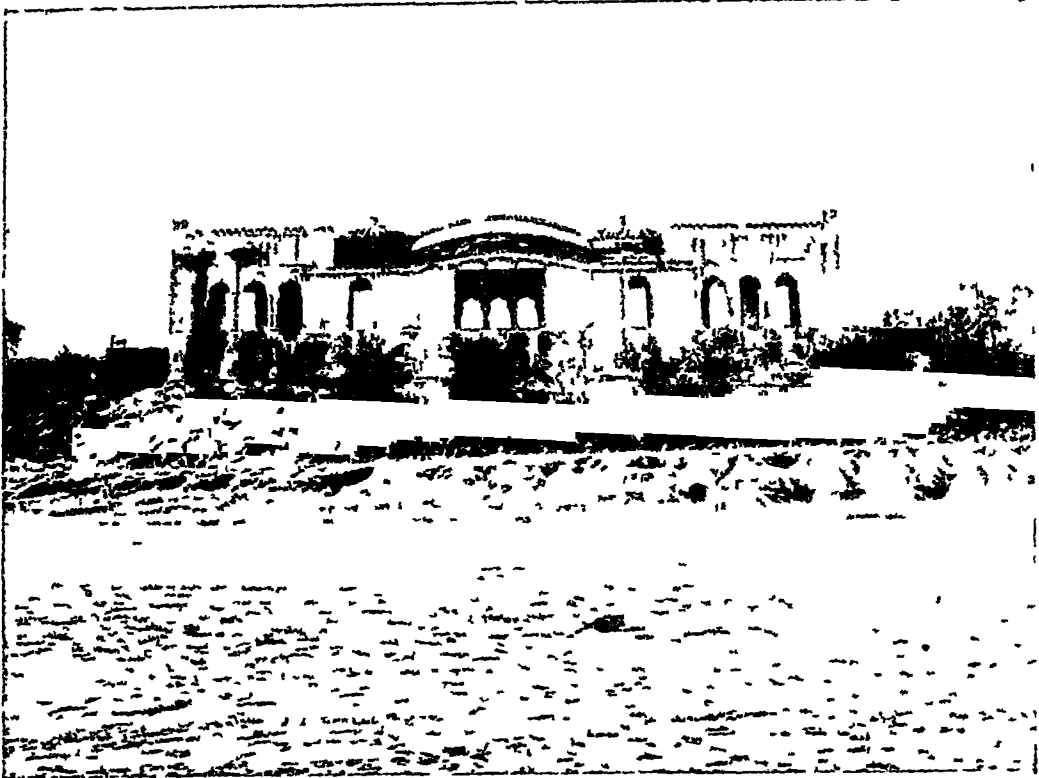
*गुप्तवंश के संस्थापक 'चन्द्रगुप्त प्रथम' का ब्याह वैशाली की 'कुमारदेवी' के साथ हुआ था। यही वैवाहिक सम्बन्ध था इसकी शक्ति की जड़ या मूल कारण।

गुप्त-साम्राज्य की राजधानी स्थानान्तरित हुई। पाटलिपुत्र पदच्युत हुआ। बिहार की राजकीय कीर्त्ति सो सी गई। सदियों की सुषुप्ति के बाद मुगल-काल में बिहार ने फिर एक अँगड़ाई ली। बिहारी वीर शेरशाह की तलवार के सामने मुगल-साम्राज्य की सेना न ठहर सकी। उसके रणकौशल के आगे मुगल-सम्राट हुमायूँ को नीचा देखना पड़ा। एक छोटे जागीरदार का उपेक्षित पुत्र होने पर भी शेर-शाह ने अपने भुजबल से दिल्ली का सिंहासन अधिकृत कर सम्पूर्ण उत्तर-भारत को अपनी छत्रच्छाया मे ले लिया—केवल इसीलिये उसने ऐतिहासिक अमरता नही पाई है, बल्कि राज्य की सुव्यवस्था के लिये भी। शासन सौकर्य के लिये साम्राज्य का विभाजन, मुद्रा-सुधार, वृक्षच्छाया-समन्वित राजपथों और कूपों तथा पान्थ-शालाओं का निर्माण, सैनिक अनुशासन, धार्मिक सहिष्णुता आदि गुणों के कारण भी शेरशाह भारत के श्रेष्ठ मुसलमान-शासकों में गिना जाता है। शासन-व्यवस्था मे महान् अकबर का पथप्रदर्शक होने का श्रेय उस महत्त्वाकांक्षी वीर शेरशाह* को ही है, जिसका जन्मस्थान बिहार है।

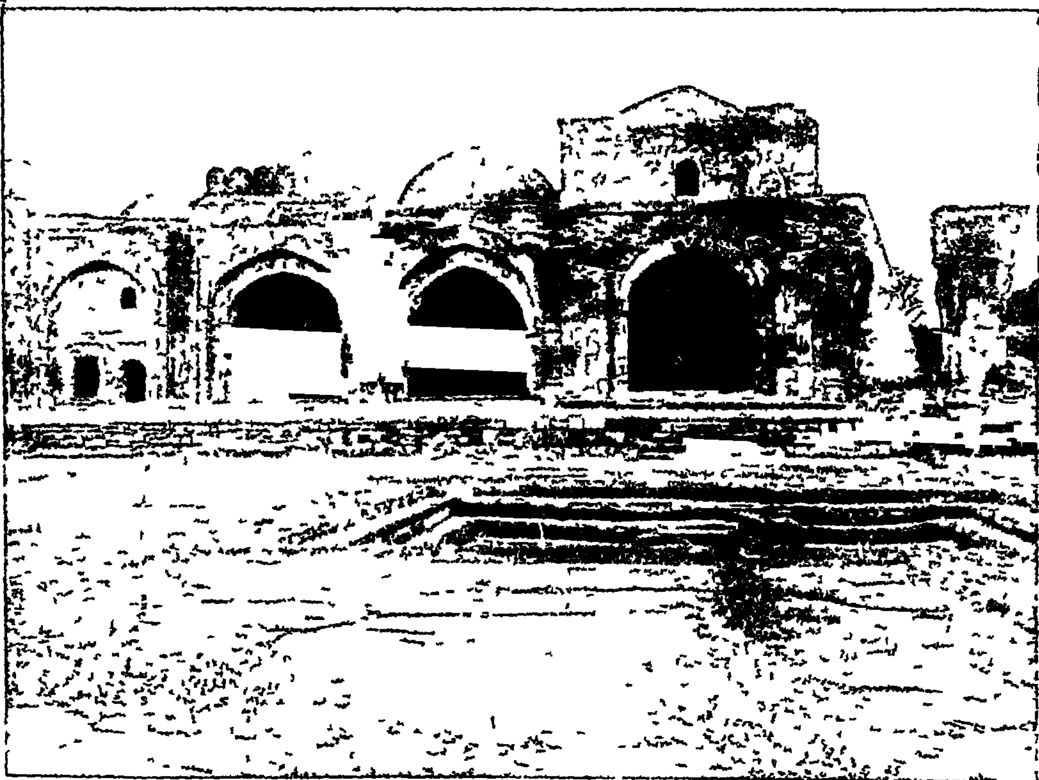
मुगल-काल में अपनी सामरिक स्थिति एव प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण बिहार के पूर्वाञ्चल में स्थित 'राजमहल' को बरसों बंगाल की राजधानी रहने का श्रेय प्राप्त हुआ। मुगल-सेनानी मानसिंह तथा शाहजादा शुजा का निवासस्थान होने के कारण मुगल-काल में 'राजमहल' को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ तो 'राजमहल' का इतिहास अभिन्न रूप से ग्रथित है। इतिहासप्रसिद्ध डाक्टर बाउटन बिहार के इसी जंगल-प्रान्त में समाधिस्थ हैं। सक्षेप मे, अनेक वर्षों तक बंगाल-शासन-सूत्र का संचालन करनेवाला 'राजमहल' बिहार ही की गोद में है।

पुनश्च, ईस्ट इंडिया कम्पनी के अत्याचारों का प्रतिवाद करने का साहस मीरकासिम को, साम्राज्यवाद की जननी तथा गणतन्त्र की पोषिका बिहार-भूमि में ही, प्राप्त हो सका। सन् १८५७ ई० के सैनिक विद्रोह के नायकों में प्रसिद्ध अमर-सिंह और कुँअरसिंह बिहार ही के मस्त लाल थे। शत्रुओं की गोली लग जाने से अपनी भुजा को ही काटकर पुण्यसलिला गंगा में बहा देनेवाले रण बाँकुरा कुँअर-सिंह ही आधुनिक बिहार के अन्तिम वीर थे। दक्षिण अफ्रिका के अँग्रेज-बोअर-युद्ध में अपनी अपूर्व बहादुरी से अँगरेजों और बोअरों को चकित-स्तम्भित करके

* V. A. Smith's 'History of India'.



राजमहल (संतालपरगना) का 'सगी दालान', जिसे सम्राट शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहजादा सूजा ने सन् १६५० ई० के लगभग बनवाया था। गंगा के किनारे यह इमारत बड़ी ही खूबसूरत, खुली और हवादार है। कोई-कोई इसे राजा मानसिंह का बनवाया हुआ भी मानते हैं।

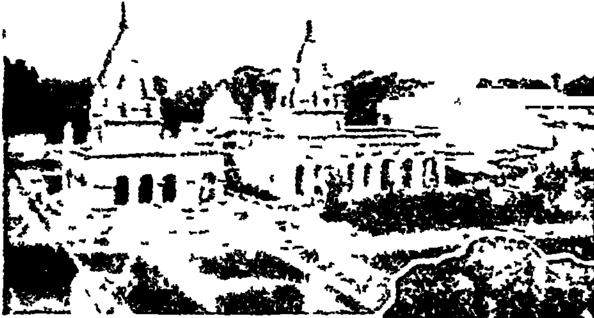


राजमहल (संतालपरगना) के निकट हदफ की नामी मसजिद, जो रचना-कौशल की दृष्टि से बिहार-प्रान्त की बड़ी-बड़ी मसजिदो से भी बढ़ीचढ़ी है। इस मसजिद को राजा मानसिंह ने बनवाया था। (पृष्ठ ९५, २४८)

१—२ हजारीबाग के श्वेताम्बर-जैन-मन्दिर के दो दृश्य।

३—'मधुवन' (हजारीबाग) की एक झाँकी।

४—दिगम्बर-जैन-मदिर, पारसनाथ (हजारीबाग)



१



३



२

४



भारत-सरकार द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित होनेवाले राजपूत किसान 'प्रभुसिंह' की जन्मभूमि भी बिहार ही है।

इस कांग्रेस-युग के इतिहास में भी बिहार का मस्तक उन्नत ही है और आगे भी रहेगा। मनसा-वाचा-कर्मणा महात्मा गान्धी का अनुयायी होने का श्रेय भारत-रत्न देशपूज्य श्रीराजेन्द्रप्रसादजी को ही प्राप्त है, जो वर्त्तमान बिहार की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। आपने एकाधिक बार भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का सभापतित्व करके देश की राजनीति-नौका को मँझधार में फँसने से बचाया है। कांग्रेस-समाजवादी-दल के प्राण श्रीजयप्रकाशनारायणजी भी बिहार ही के 'जवाहरलाल' हैं।

किन्तु, केवल राजनीतिक महत्त्व ही के कारण नहीं, धार्मिक महत्त्व के कारण भी, विश्व के इतिहास में बिहार अमर रहेगा—अनुपम रहेगा। जिनके ज्ञान के सामने भारतवर्ष के ब्राह्मणों का भी मस्तक नत हो जाता था, जिनके सभा-पंडित याज्ञवल्क्य ने आर्यावर्त्त के धुरन्धर पंडितों को भी परास्त किया, जिनकी प्रेरणा से शुक्लयजुर्वेद की रचना का श्रीगणेश हुआ, जो उपनिषदों के भी प्रथम प्रवर्त्तक माने जाते हैं, वे राजर्षि जनक * इसी बिहार की वसुन्धरा के गौरवालंकार हैं। प्रथम दर्शनशास्त्र सांख्य के रचयिता कपिल के लिये भी अखिल विश्व बिहार ही का ऋणी रहेगा।

बिहार ही की गोद में था वह बोधिवृक्ष, जिसकी शान्तिदायिनी छाया में राजकुमार सिद्धार्थ † को दिव्य ज्ञान का स्वर्गीय आलोक मिला था। सच्चे गुरु के लिये, ज्ञान-ज्योति की प्राप्ति के लिये, वन-वन भटकते हुए गौतम को बिहार ही में 'आलार-कामाल' और 'उद्रक रामपुत्र' ‡ जैसे गुरु मिले; और यहीं पर उन्हें बोध-गया में वह अलौकिक ज्ञान-प्रकाश मिला जिसके द्वारा उन्होंने भारत में एक अभूतपूर्व धार्मिक क्रान्ति उपस्थित की, और समग्र विश्व को वह चिर-अभिलषित शान्ति और अहिंसा का सन्देश दिया जिसके कारण आज भी उनकी गणना विश्व के दो सर्वश्रेष्ठ धर्म-प्रवर्त्तकों में होती है +।

* R. C. Dutta's "Civilisation in Ancient India". Vol I ,PP. 133–36.

† तिब्बत की एक अनुश्रुति, बुद्ध के पिता शुद्धोदन की स्त्रियों—माया और प्रजावती—को, लिच्छवि-राजकुमारी ही बताती है—"Kshatriya Tribes". P. 15.

‡ Mrs. Rhys David's "Gotama, the Man". PP. 22–25.

+ "The Story of Indian Civilisation".

बौद्धजगत् में, बुद्ध के बाद, सर्व्वोच्च स्थान प्राप्त करनेवाले 'तिस्सा मोगली-पुत्त' और 'उपगुप्त' को रत्नगर्भा विहार ने ही उत्पन्न किया है। यही नहीं, बिहारोत्पन्न सर्वश्रेष्ठ 'बौद्धसम्राट् अशोक' ने ही 'स्थानीय मत' (local sect) की स्थिति से उठाकर बौद्धधर्म को विश्वधर्म बनाने की सफल चेष्टा की। बिहार से अनेक धर्मोपदेशक केवल भारतवर्ष के ही भिन्न-भिन्न प्रदेशों में नहीं, प्रत्युत तत्कालीन पाश्चात्य जगत् के राष्ट्रों में भी ❀ बौद्धधर्मप्रचार के लिये भेजे गये थे। बिहार के ही उपदेशकों ने लङ्का में बोधिवृक्ष की शाखा स्थापित की और चीन में भी जाकर बौद्धधर्म का प्रसार किया।

बिहार के ही विद्वानों † ने समय-समय पर चीन मे बौद्धधर्म का सुधार किया और 'लामा'-पद की सृष्टि की। बौद्धधर्म को सुसंबद्ध, सुसंस्कृत और परिमार्जित करने के लिये बिहार में एकाधिक बौद्धसभाएँ हुईं। महायान-धर्म के आदि-प्रवर्त्तक अश्वघोष विहारी ही थे। वस्तुतः बौद्ध इतिहास में बिहार का स्थान सर्वोच्च है।

जैन-इतिहास में भी बिहार का सर्वप्रथम स्थान आता है। अति प्राचीन काल मे ही 'चम्पा' ‡ को जैनधर्म का केन्द्र होने का श्रेय प्राप्त था। सुधर्मन्, जम्बू, प्रभव, स्वयम्भव, वासुपूज्य, महावीर, वर्द्धमान इत्यादि अनेक तीर्थङ्करों के साथ चम्पा का इतिहास अभिन्न रूप से सम्बद्ध + है।

आठवीं सदी ई०-पू० के जैन-तीर्थङ्कर 'पार्श्वनाथ' की मृत्यु विहार ही की शान्तिदायिनी गोद मे × हुई। जैनो के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर वर्द्धमान बिहार-स्थित वैशाली में ही उत्पन्न हुए थे। बिहार-भूमि के ज्ञान-स्तन-पान से ही इन्हें जैनधर्म को पुनरुज्जीवित तथा सुप्रसारित करने की शक्ति मिली थी। सौवीर,

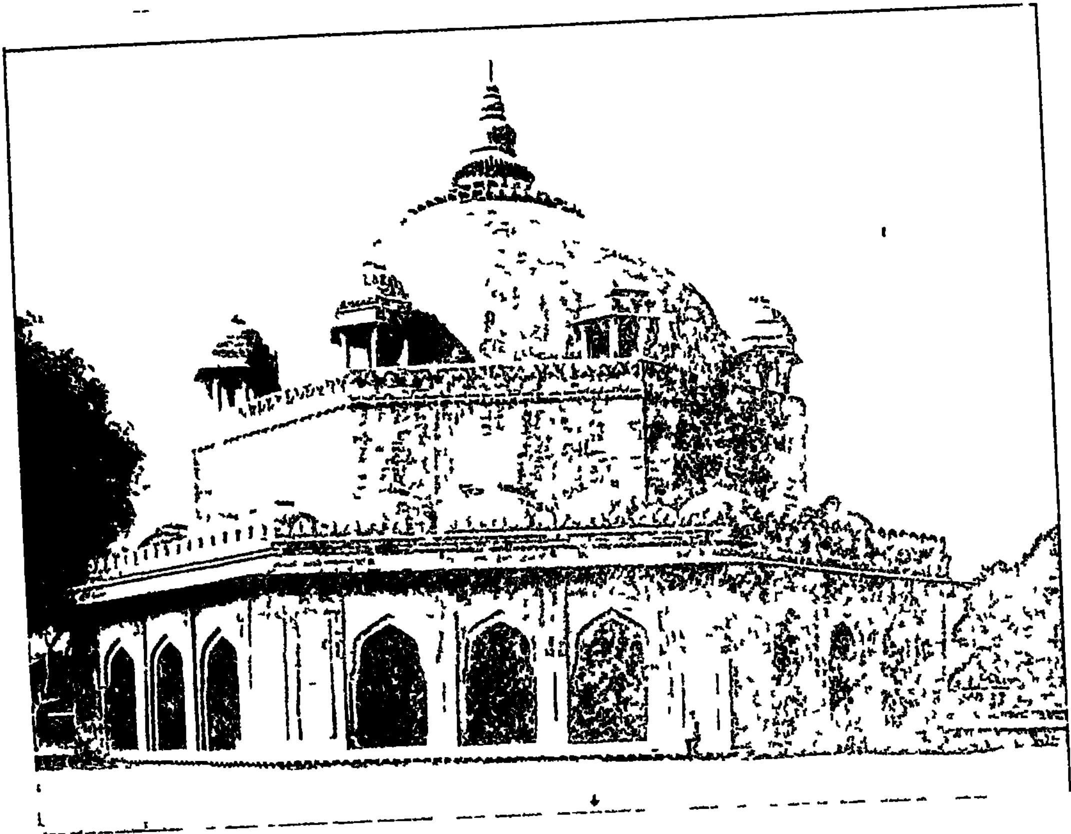
❀ Dr. V. A. Smith's "The Oxford History of Early India".

† Dr. Levi in his "Ancient India" observes, "In the seventh century, Indian Buddhism conquers yet another field for Indian culture"—another field referred to here is Tibet also, vide, "Glories of Magadha". PP. 123 & 129.

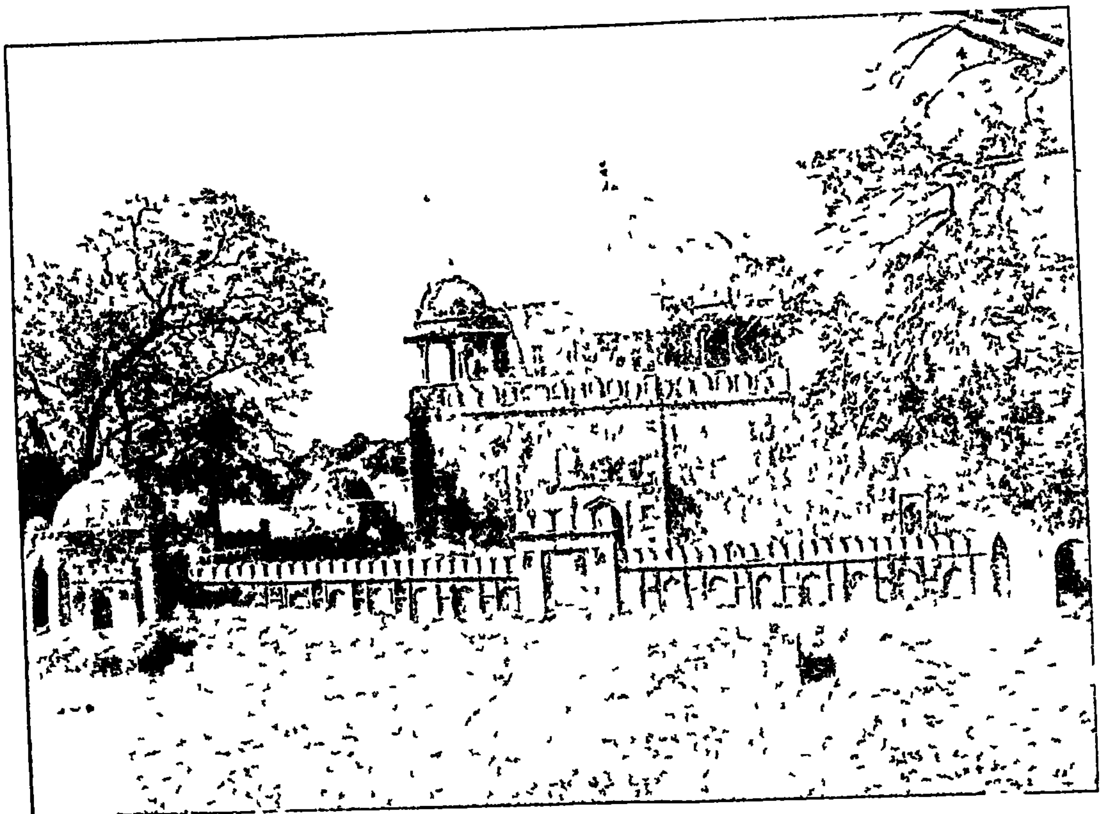
‡ भागलपुर के समीप स्थित चम्पानगर ही उस समय की 'चम्पा' है।

+ R. K Mukherji's "Hindu Civilisation". P. 236., & Hem-Chandra's "Parishista Parvan". Canto IV.

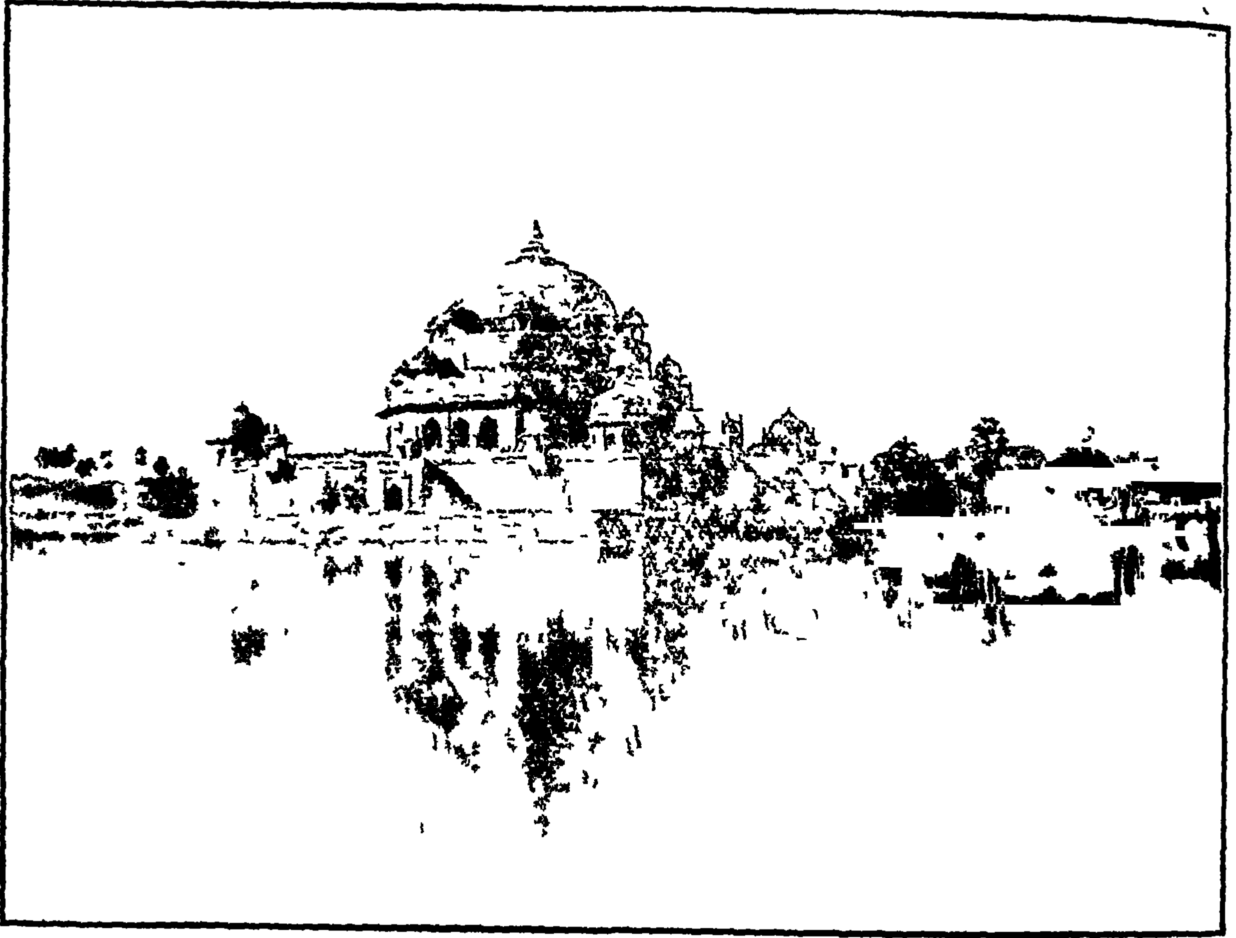
× Ditto ,, ,, P. 228.



सहसराम (शाहाबाद) का 'हसन खाँ सूरी' का मकबरा। इस मकबरे को शेरशाह ने १५३९-४५ ई० मे बनवाया था।



सहसराम (शाहाबाद) का 'हब्बास खाँ' का मकबरा।



सहसराम (शाहाबाद) का शेरशाह का मकबरा, जो पठान-स्थापत्यकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। शेरशाह ने अपनी जिन्दगी में ही इसका निर्माण शुरू किया, जो सन् १५४५ ई० में पूरा हुआ। एक विशाल पक्के सरोवर के मध्य में यह बना है, जिसमें एक पहाड़ी झरने से पानी आता है। इसका सरोवर में बनाया जाना और अन्य कई विशेषताएँ हिन्दू-प्रभाव के सूचक है।

वत्स और अवन्ति में जैनधर्म के प्रचार का श्रेय वैशाली-पति 'चेतक' की पुत्रियों को ही है, जिन्होंने अपने प्रभाव-द्वारा राजा को भी जैनधर्म मे दीक्षित कराया ॐ। निर्युक्ति के भाष्यकार भद्रबाहु तथा जैनधर्मग्रन्थों के संकलनकर्त्ता स्थूलभद्र बिहार ही के थे। †

'आजीविका'-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक 'मक्खली गोशाल' की कर्मभूमि, और शायद जन्मभूमि भी, यही बिहार-भूमि थी। सर्वप्रथम ये महावीर वर्द्धमान ही के शिष्य थे और अन्त में उनसे अलग होकर इन्होंने एक 'आजीविका' नाम का अलग सम्प्रदाय कायम किया। ‡

सिक्खों के इतिहास में भी बिहार का स्थान पूजास्पद माना गया है। उनके गौरवशाली दसवें गुरु, कलियुगी अर्जुन श्रीगुरुगोविन्दसिंह ने बिहार ही की राजधानी 'पटना' में जन्मग्रहण किया। आज भी उस स्थल पर एक प्राचीन मन्दिर स्थित है, जो सिक्खो का गुरुद्वारा और तीर्थस्थान होने के कारण भारतप्रसिद्ध है।

किन्तु बिहार के ऐतिहासिक महत्त्व का हमारा ज्ञान अपूर्ण ही रह जायगा, यदि हम संक्षेप + में भी बिहार की प्राचीन कला, वाङ्मय, व्यवसाय इत्यादि का वर्णन न करें।

संसार के विश्वविद्यालयों के इतिहास में विश्वविश्रुत, नालन्दा, विक्रमशिला तथा उद्दन्तपुरी के नाम स्वर्णवर्णाङ्कित रहेंगे। बौद्धधर्म, वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्सा, तंत्र और सांख्य की शिक्षा का केन्द्र नालन्दा ही था। सुदूर चीन के विद्यार्थी भी 卐 दुर्गम पर्वत-पथों को पार कर नालन्दा पहुँचते थे—अपनी ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिये!

चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के अमूल्य रत्न विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने ही विश्व को वह 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' प्रदान किया जो मौर्ययुग के समस्त

ॐ R K Mukherji's 'Hindu Civilisation'—P 236.

† जयचन्द्र विद्यालंकार—"भारतीय इतिहास की रूपरेखा", खंड २, पृष्ठ ६६३.

‡ R K Mukherji's "Hindu Civilisation"—P. 223.

+ संक्षेपातिसंक्षेप में इसीलिये कि इन विषयों पर इस स्मारकग्रन्थ में स्वतंत्र लेख होंगे।

卐 चीन के ह्यानचीन ह्वानसांग, इत्सिंग, आर्यवर्मन् (कोरिया के), चेहोंग, ओकोंग, बुद्धकर्म, ताओफेंग इत्यादि अनेक विद्वान् चीन और कोरिया से यहाँ अध्ययन करने के लिये आये थे। Vide "Glories of Magadha" P. 128 (Footnote)

वाङ्मय मे सबसे अधिक महत्त्व की कृति है। इसी ज्ञानी राजनीतिज्ञ ने भारत में उस शासन-व्यवस्था को स्थापित कराया, जिसका—विशेषतः नगरशासनप्रणाली का—अनुकरण कर इस बीसवीं सदी का भी कोई सभ्य राष्ट्र यथार्थ गौरव का अनुभव करेगा।

सर्वप्रथम मगध ने ही सम्राट् अशोक के शिलालेखो की भाषा के रूप में सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्रभाषा देने की चेष्टा की। कनिष्क को नागार्जुन-जैसे विद्वान् मगध की राजधानी पाटलिपुत्र मे ही मिले थे। विद्वद्वर पाणिनि और पिङ्गल, वररुचि और पतजलि ❀ ने विहार ही के अंक को अलंकृत किया था। वैज्ञानिक ज्योतिपशास्त्र के जन्मदाता आर्यभट्ट ने विहार ही में जन्मग्रहण किया था। पौराणिक आख्यानों में वर्णित च्यवन, दधीचि, शृङ्गी, कपिल, गौतम, विश्वामित्र आदि ऋपि-मुनियो के आश्रम भी विहार ही में थे।

यदि मध्ययुग में गोवर्द्धनाचार्य, वाचस्पति मिश्र, विद्यापति, मंडनमिश्र आदि के समान यशोधन विद्वान् विहार में हो चुके हैं, तो आधुनिक विहार में भी महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, विद्यामहोदधि काशीप्रसाद जायसवाल, डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, त्रिपिटकाचार्य श्रीराहुल सांकृत्यायन आदि के समान विद्वान् हुए हैं और हैं, जिनकी ख्याति देश-देशान्तर मे फैली हुई है।

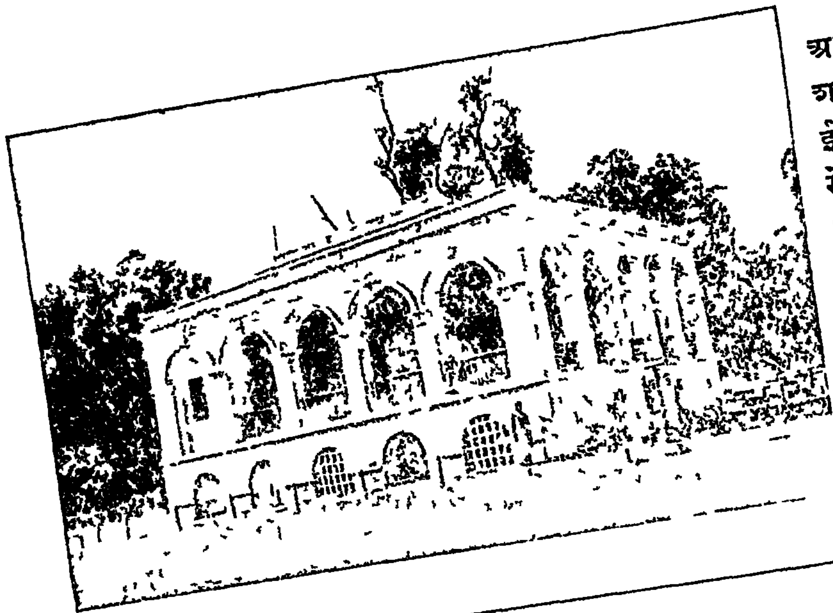
किन्तु रत्नगर्भा विहार-भूमि केवल नर-रत्नो की ही नहीं, नारी-रत्नो की भी खान है। सती-सीमन्तिनी सीता, प्रातःस्मरणीय पंचकन्याओं में परिगणित अहल्या, चम्पा † की राजकुमारी और जैनधर्म की सर्वप्रथम भिक्षुणी चन्दना, मैत्रेयी, गार्गी, लक्ष्मी (लखिमा) देवी, मंडन मिश्र की धर्मपत्नी 'शारदादेवी' आदि विहार ही की पुत्रियाँ थीं। लका जाकर बौद्धधर्म का प्रचार करनेवाली 'संघमित्रा' विहार ही की आदर्श महिला थी।

प्राचीन युग में व्यवसाय और व्यापार मे भी विहार किसी से पीछे नहीं था। विशेपतः व्यापारिक केन्द्र होने के कारण ही 'चम्पा' की गिनती बुद्धकालीन भारत की छ प्रधान नगरियों में होती थी। गगातटस्थ चम्पा (भागलपुर) से विशालकाय नौकाएँ निर्यात वस्तुओं को लेकर सुदूर स्वर्णभूमि या वृहत्तर भारत को जाती थीं। ‡

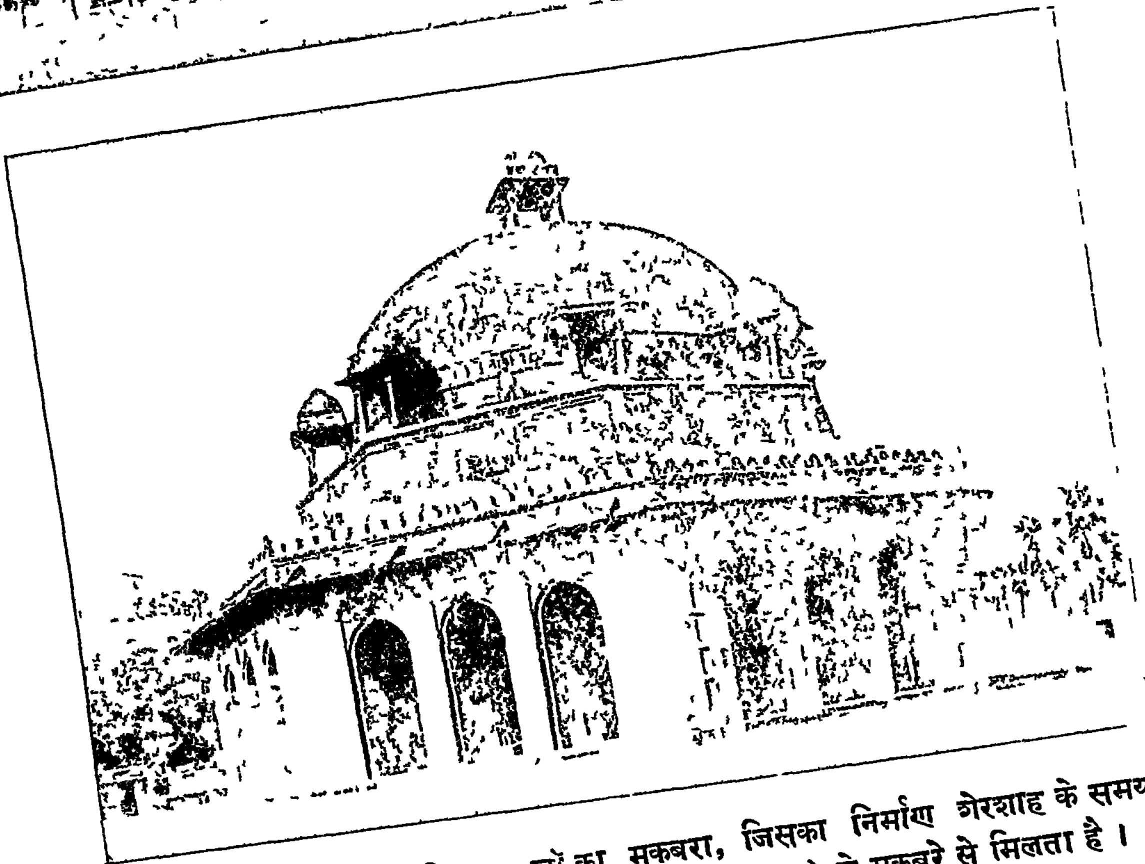
❀ J. N. Sammadar's "Glories of Magadh"—P. 3.

† R. K. Mukherji's "Hindu Civilisation"—P. 236.

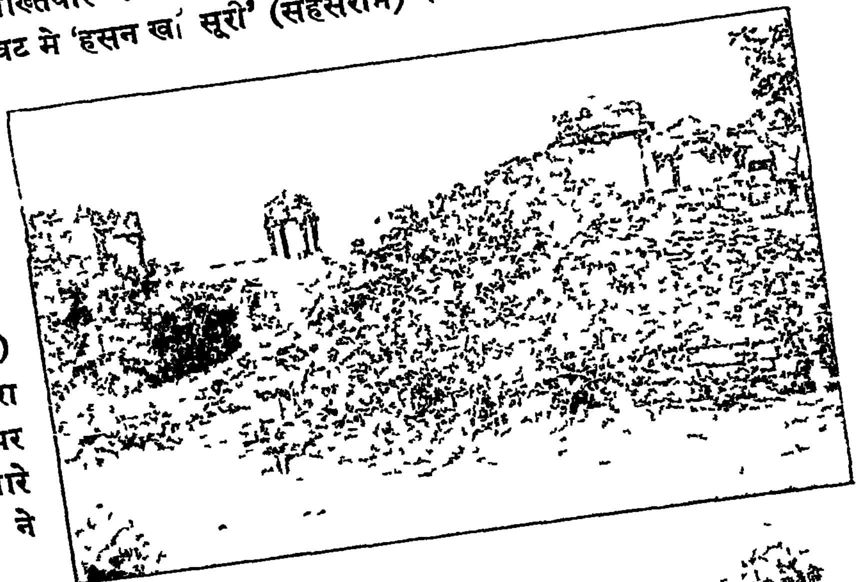
‡ R. K. Mukherji's "A History of Indian Shipping & Maritime Activity." Page 30.



आरा-हाउस (आरा, शाहाबाद)—सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह मे बिहारी वीर बाबू कुँवर सिंह के जीवन से सम्बद्ध ।



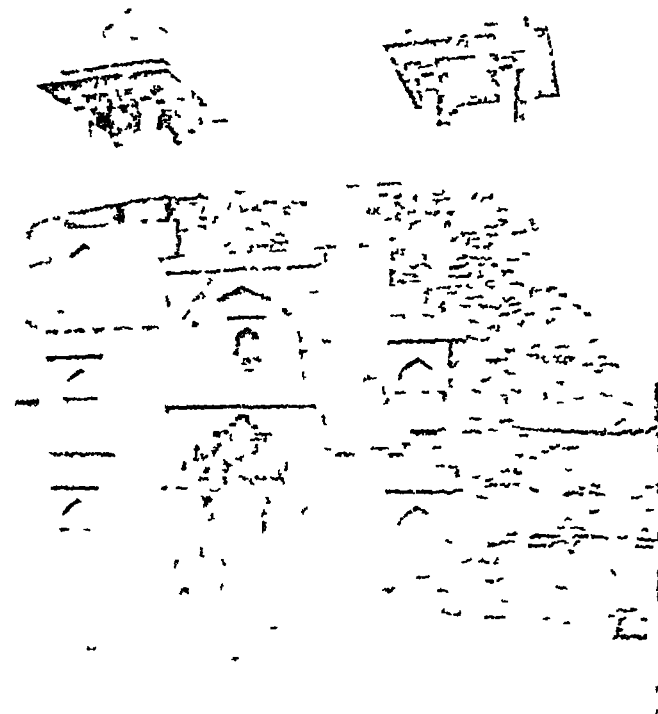
चैनपुर (शाहाबाद) का बख्तियार खाँ का मकबरा, जिसका निर्माण शेरशाह के समय मे हुआ था और जो बनावट मे 'हसन खाँ सूरी' (सहसराम) के मकबरे से मिलता है ।



शेरगढ़ (शाहाबाद) का किला, जो कुदरा स्टेशन से १९ मील पर दुर्गावती नदी के किनारे है। इसे भी शेरशाह ने ही बनवाया था ।



सहसराम (शाहाबाद) का अलावल खाँ का मक़बरा। 'अलावल खाँ' शेरशाह का सेनापति था। कहा जाता है, शेरशाह ने अपना मकबरा बनाने का काम इसीके सुपुर्द किया था; किन्तु इसने उस मकबरे के लिये लाये गये अच्छे पत्थर अपने इस मकबरे में लगा लिये। शेरशाह यह जानकर नाराज हुआ और गालियाँ दीं। आज भी इस मकबरे में जाना गाली में शुमार किया जाता है।



'अलावल खाँ' के मकबरे (सहसराम, शाहाबाद) का फाटक। भीतर का दृश्य। इसका निर्माण-काल सन् १५३९-४५ समझा जाता है।

मौर्य-युग में तो बिहार का व्यापार और भी विस्तृत एवं उन्नत था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से ही स्पष्ट है कि उस समय बिहार का व्यापार ताम्रपर्णी, पांड्यकवाट, पारलौहित्य, स्वर्णभूमि, सुवर्णकुड्य तथा अलाक्सान्द्रिया के साथ चलता था। माप-तोल का निश्चित मान शायद पहले-पहल मगध के नन्दों * ने ही चलाया था। राष्ट्र की अर्थनीति में भी नन्दों ने कई नई बातों का सूत्रपात किया था। नन्दों ने ही पहले-पहल पत्थर, पेड़, चमड़ा, गोंद आदि के व्यापार पर चुंगी लगाई थी। † मौर्य-युग में ही पहले-पहल राज्य की तरफ से खाने खुदवाने और कारखाने चलाने की प्रथा चलाई गई।

यंत्रविद्या, गृहनिर्माणकला, मूर्त्तितक्षण या स्थापत्यकला में भी बिहार का स्थान कुछ कम ऊँचा न था। बक्सर की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं (terra-cotta) की कारीगरी सुमेर या सिन्ध—और कुछ तो प्राक्-सुमेर और ईजियन सभ्यता—की कारीगरी का समकक्ष है। "बिहार में कुछ पुराने जमाने के भग्नावशेष मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि मौर्ययुग के पहले भी वहाँ एक तरह का शीशा—काँच बनाया जाता था +।" महाशिलाकटक और रथमूसल-जैसे संहारक युद्ध-अस्त्रों का व्यवहार—और इसीलिये निर्माण भी—सबसे पहले बिहार ही में, वैशाली के विरुद्ध, बिहार ही के अजातशत्रु द्वारा किया गया था ×।

उस प्राचीन युग के बिहार के इंजीनियर बड़े-बड़े बाँध बाँध सकते थे, उच्चात्युच्च गढ़ी (edifice) बना सकते थे, विशालकाय प्रस्तर-स्तम्भों को दूर-दूर तक ले जा सकते थे और दे सकते थे उनपर इस तरह का पालिश (polish) कि सदियों बाद आज भी वे दर्पण की तरह चमकीले और चिकने दीखते हैं। बिहार की कारीगरी के अद्भुत नमूने—वे अशोकस्तम्भ—आज भी जगतीतल पर बिहार की प्राचीन कारीगरी को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

दुर्भाग्यवश बिहार की स्थापत्यकला के बहुत कम नमूने बचे हुए हैं। जो कुछ प्राप्य हैं, उन्हें कलाविद् डाक्टर फरगुसन पाँच भागों में बाँटते हैं—स्तम्भ, स्तूप, वेष्टिनी, चैत्य तथा विहार। अशोकस्तम्भ चुनार के पत्थर से बने हैं। लौरिया

* जयचन्द्र विद्यालंकार-कृत "भारतीय इतिहास की रूपरेखा"—खंड १, पृष्ठ ५८

† " " " "

+ पंडित जवाहरलाल नेहरू—'विश्व इतिहास की झलक', खंड १

× Hoernle's "Uvasgadaso"—II App., P. 59.

(चम्पारन) का अशोक-स्तम्भ आज भी विहार की स्तम्भ-निर्माण-कला का ज्वलन्त उदाहरण है। राजगृह मे 'जरासंध की बैठक' विहार को स्तूप-निर्माण-कला का अवशेष दृष्टान्त है। संसार की प्राचीनतम वेष्ठिनियो में बोधगया की वेष्ठिनी भी एक है, जिसे डॉक्टर फरगुसन हिन्दुओं की प्राचीन स्थापत्यकला का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानते हैं। विहार ही मे वह चैत्य था, जिसमें बौद्धो की पहली सभा हुई थी। गया के 'बराबर' पहाड़ में आज भी कई कलापूर्ण गुहाएँ हैं, पहाड़ काटकर चैत्य बनाये गये हैं। विहारो का तो विहार में बाहुल्य ही था। बौद्ध-जगत् का सर्वश्रेष्ठ 'विहार' नालन्दा में ही था*। अतः जिस विहार में डाक्टर फरगुसन-द्वारा वर्णित पाँचो तरह के नमूने प्राप्त हैं, जहाँ कारीगरो को कष्ट देना एक भारी अपराध समझा जाता था, उस विहार की मूर्त्तितक्षण-कला वस्तुत' सर्वमान्य होगी †।

गृह-निर्माण-कला में भी विहार की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। पाटलिपुत्र में ही था अशोक का ‡ वह राजप्रासाद, जिसे विदेशो यात्री मानवेतर रचना समझते थे, जिसके सामने सुसा और इकेटना के राजप्रासाद भी फीके थे। तभी तो विहार के कारीगरो के लिये दूर-दूर के राजा अपना दूत भेजते थे।

चिकित्सा-विद्या में भी विहार एक तरह से अग्रणी था। विहार ही का था वह 'जीवक', जो बुद्ध का चिकित्सक नियुक्त किया गया था। यही जीवक बौद्धसंघ का भी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक था। मगध-सम्राट् बिम्बिसार को नासूर (नाडी-व्रण) से मुक्त करनेवाला, उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का पांडुरोग से पिंड छुड़ानेवाला, बनारस के एक सौदागर के पुत्र को चीरफाड़ द्वारा आँत के असाध्य रोग से बचानेवाला यही जीवक था। संसार को सार्वजनिक औषधालय प्रदान करनेवाले मगध-सम्राट् अशोक ही थे। विहार के चिकित्सक मित्रराष्ट्रों में जाकर काम किया करते थे। विहार ही मे शल्यचिकित्सा—शरीरविज्ञान की जानकारी के लिये अंगप्रत्यंग चीरने की क्रिया (vivisection ×)—सफलतापूर्वक सम्पादित होती थी।

* R C. Dutta's "Civilisation in Ancient India", Vol II, P 76

† पटना की दो यक्ष-मूर्त्तियाँ, तथा दीदारगज (पटना) की चमरवाहिनी स्त्री की मूर्त्ति, विहार की मूर्त्तिकला के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं।

‡ "अशोक ने पत्थर की रचना को खूब प्रोत्साहित किया और उसके बाद उनका रिवाज खूब चल गया।"—पं० जवाहरलाल नेहरू (विश्व-इतिहास की झलक)।

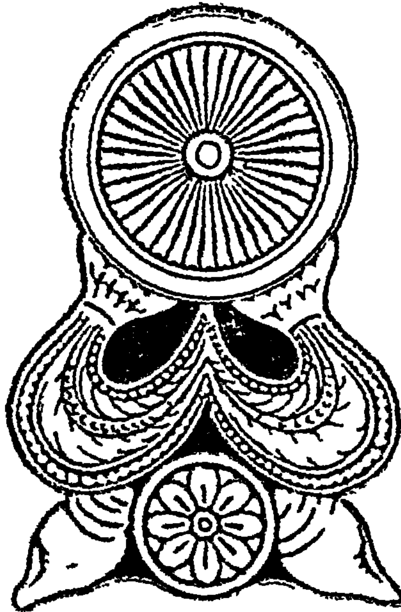
× Sammadar's "Glories of Magadha." P. 4

उपनिवेश-स्थापन के लिये भी विहार को श्रेय प्राप्त है। अति प्राचीन काल में ही चम्पा के निवासियों ने कोचीन चीन (Cochin China) में एक उपनिवेश स्थापित किया था *। खोतन प्रदेश में, जो भारतवर्ष के कम्बोज और चीन के कानसू प्रान्त के बीच में था, अशोक के समय में, और यथासम्भव अशोक की ही प्रेरणा से, एक आर्य-उपनिवेश का संस्थापन हुआ था †। नैपाल की राजधानी 'पत्तन' या 'ललितपत्तन' अशोक की ही वसाई हुई है। अशोक की पुत्री चारुमति स्वयं नैपाल में जा वसी थी और अपने पति देवपाल के नाम से उसने वहाँ 'देवपत्तन' वसाया था। लङ्का को भारतीय संस्कृति में रँगने का श्रेय महेन्द्र और संघमित्रा को ही है।

संक्षेप में, यही है विहार के ऐतिहासिक महत्त्व का दिग्दर्शन मात्र। बिहार का इतिहास वास्तव मे भारत के इतिहास का तीन-चौथाई अंश है। विहार, अपने अनुपम ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही, निष्पक्ष विद्वानों-द्वारा, ग्रीक-इतिहास का 'एथेन्स' या इंगलैंड के इतिहास का 'वेस्सेक्स' कहा गया है।

* Rhys David's "Buddhist India"—P. 35.

† जयचन्द्र विद्यालकार—'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', खंड २, पृष्ठ ५७० ।





बाल-साहित्य के निर्माण में बिहार का हाथ

श्रीव्रजनन्दन सहाय, 'ब्रजवल्लभ', आरा

हिन्दी में बाल-साहित्य के निर्माण का श्रीगणेश भारतेन्दु-युग से पूर्व प्रायः नहीं हुआ था। बाल-साहित्य से हमारा तात्पर्य है बालोपयोगी साहित्य। हिन्दी में बालोपयोगी साहित्य की रचना का आरम्भ उस समय हुआ जिस समय से देश में हिन्दी-भाषा-द्वारा बालको की प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। पहले इस देश में संस्कृत और फारसी द्वारा ही आरम्भिक शिक्षा दी जाती थी। 'अमरकोष' और 'खालकबारी' से ही बालको का पाठारम्भ होता था। संस्कृत-भाषा केवल ब्राह्मणों की पैतृक सम्पत्ति थी। क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ आदि जातियों के बालक मकतब या मदरसे में ही पहले-पहल खली छूते थे या पट्टी पूजते थे। यह बहुत दिन पहले की बात है। उस समय हिन्दी-भाषा तथा नागरी-लिपि का प्रचार उतना नहीं था जितना आज है। उस समय हिन्दी की जगह पर ब्रजभाषा ही का नाम उजागर था।

ब्रजभाषा का युग बीतने पर जब खडी बोली—वर्त्तमान हिन्दी—का युग आया तब भी बाल-साहित्य की रचना का श्रीगणेश न हुआ, क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा में हिन्दी का कोई स्थान न था। उन दिनों यह दशा थी कि लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' तथा गोस्वामी तुलसीदास की 'रामायण'—वह भी हाथ की लिखी हुई अथवा लीथो में छपी—पढ़ लेने की योग्यता रखनेवाला 'अच्छा हिन्दी जाननेवाला' समझा जाता था! उच्च-शिक्षा-प्राप्त लोग तो हिन्दी पढना लिखना और हिन्दी-भाषा एवं देवनागराक्षर में पत्र-व्यवहार करना अपना अपमान

समझते थे। सरकारी कचहरियों में फारसी-लिपि और उर्दू-भाषा का बोलबाला था। किन्तु उस समय भी बिहार में कैथीलिपि का प्रचार था। यह लिपि एक प्रकार से शिरोरेखा-हीन देवनागरी ही है अथवा देवनागरी का ही विकृत रूप है। बिहार के लोग बहुत दिनों से चिट्ठीपत्री में इस लिपि का व्यवहार करते आ रहे थे। जमींदारी के कागज-पत्र इसी लिपि मे लिखे जाते थे। गाँवों में आज भी ये दोनों बातें देखी जाती हैं; पर अब नागरी लिपि का अधिकाधिक प्रचार होता जा रहा है। जब बिहार में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये हिन्दी-भाषा का व्यवहार होने लगा तब पहले-पहल कैथी-लिपि में ही पाठ्यपुस्तकें छपी थीं। कैथी की पोथियाँ बचपन में पढ़ चुकनेवाले कितने ही शिक्षित वयोवृद्ध सज्जन बिहार में वर्त्तमान हैं। पुस्तकालयों में कैथी की उन पुरानी पोथियो का सग्रह होना चाहिये; क्योंकि उनके साथ हिन्दीभाषा के इतिहास का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

जिन दिनों बिहार की यह स्थिति थी उन्हीं दिनों हिन्दी-भाषा के सौभाग्य से, श्रीगंगा तट पर, अविनाशी विश्वनाथपुरी काशी में, एक ऐसा 'इन्दु' (चन्द्र) उदित हुआ (भारतेन्दु) जिसकी करकौमुदी के स्पर्श से हिन्दी-कुमुदिनी पूर्णतया विकसित हो उठी और उसका सुखद सौरभ दिगन्तव्यापी हो गया। इसके प्रभाव से भारत में जहाँ-तहाँ हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन-भवन स्थापित हुए। उनमे प्रधान थे—वेङ्कटेश्वर यंत्रालय (बम्बई), भारतजीवन प्रेस (काशी), खड्गविलास प्रेस (पटना)। लखनऊवाले मुन्शी नवलकिशोर का छापाखाना तो सन् १८५८ ई० (संवत् १६१५ वि०) में ही खुल चुका था। हाँ, बनारस का 'लाजरस प्रेस' भी इस दिशा में कुछ काम करता था। किन्तु इन प्रेसो की दृष्टि बालोपयोगी साहित्य की ओर नहीं गई थी। जहाँ तक हमें स्मरण है, राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की किताबें प्रायः इसी लाजरस प्रेस में छपती थी।

भारतेन्दुजी का ध्यान तो बालोपयोगी साहित्य की ओर गया ही नहीं; क्योंकि इनका लक्ष्य उच्च था, अतएव ये सदा उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण करते रहे—चाहे वह गद्य हो या पद्य।

हाँ, राजा शिवप्रसाद की लेखनी से बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकें प्रस्तुत हुई थीं; किन्तु उनमें मौलिकता अधिक नहीं थी। उनका झुकाव उर्दू की ओर अधिक होने से उनकी भाषा से लोग सन्तुष्ट नहीं थे। पर अच्छी पुस्तकों के अभाव में उन्हीं की किताबें जहाँ-तहाँ पाठशालाओं में पढ़ाई जाती थीं।

हमको याद है कि बचपन में हमने उनका बनाया हुआ 'आलसियों को कोड़ा'

तथा 'गुटका' पढ़ा था। यह गुट का कई भागों में था। किसी भाग में 'रामायण' तथा 'प्रेमसागर' से सामग्रीसग्रह किया गया था, किसी भाग में 'वामा-मनरंजन' तथा 'शकुन्तला' से।

राजा शिवप्रसाद का रचना काल विक्रम-संवत् १९११ से और भारतेन्दु का संवत् १९२५ से शुरू होता है। इससे पता लगता है कि भारतेन्दुजी से कुछ वर्ष पूर्व ही राजासाहब हिन्दी में बालोपयोगी पाठ्यपुस्तके रचने लग गये थे। युक्तप्रान्त के साथ-साथ बिहारप्रान्त में भी राजासाहब की ही पाठ्यपुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। राजासाहब का रचना-काल संवत् १९११ है, जो सन् १८५४ ई० के बराबर है। इस प्रकार यह निश्चित है कि सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह की अशान्ति के बाद ही बिहार में हिन्दी-भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ हुआ और पाठ्यपुस्तको के रूप में राजा शिवप्रसाद की ही पुस्तकें व्यवहृत होने लगीं। पहले-पहल खड़ी बोली में अनेक पाठ्यपुस्तकें लिखकर राजासाहब ने ही शिक्षा-विभाग में हिन्दी को स्थापित किया। शिक्षा-विभाग के उच्चाधिकारी और हिन्दी के उन्नायकों मे अगुआ होने के कारण राजासाहब की पुस्तकें सर्वत्र प्रचलित हो गईं। उनकी कुछ पुस्तकों के नाम ये हैं—वर्णमाला, बालबोध, विद्यांकुर, वामा-मनरंजन, हिन्दी-व्याकरण, भूगोल-हस्तामलक, इतिहास-तिमिर-नाशक, गुटका, स्वयंबोध उर्दू, बच्चो का इनाम, राजा भोज का सपना इत्यादि। हमारी समझ में यही हिन्दी का आरम्भिक बालसाहित्य है। आरम्भ मे लगभग पन्द्रह-बीस वर्षों तक बिहार की हिन्दी-शालाओं में इन्हीं पाठ्यपुस्तकों द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा सम्पन्न होती रही।

माननीय भूदेव मुखोपाध्याय सन् १८७७ ईसवी में स्कूलों के इन्सपेक्टर होकर पटना आये। बंगाल-बिहार-उड़ीसा के कुल इकीस जिलों की शिक्षा का प्रबन्ध उन्हें सौंपा गया था। वे बालकों के सच्चे बन्धु और हिन्दी के कट्टर समर्थक तथा विद्यार्थियों के निःस्वार्थ शुभचिन्तक थे। उनके विषय में उस समय के एक बिहारी कवि ने लिखा था—

"श्री बाबू भूदेव मुकुरजी, जाहिर सकल जहाना।
बंग-बिहार-उड़ीसा सब मिलि करत जासु गुन-गाना॥
जिन इसकूल इनिसपेक्टर औ डैरेक्टर ह्वै होई।
सुस्त अयोग्य भारतिन नामहिं काम प्रगटि निज धोई॥

हिन्दी संसकिरत की उन्नति बहु प्रकार जिन कीनी।
डेढ़ लाख मुद्रा यहि कारण खास कोष से दीनी।
जे 'शिक्षा-विधि-परस्ताव' अरु इतिहासादि घनेरे।
पुस्तक बिरचि कीन भारत में भले काज बहुतेरे ॥"

उस समय की पाठ्यपुस्तकों से असंतुष्ट होकर भूदेव बाबू ने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के पास रिपोर्ट की कि पाठ्यपुस्तकों में पूर्ण सुधार होना चाहिये। उत्तर में कहा गया कि अच्छी पुस्तकें कहाँ से आवेंगी। भूदेव बाबू ने लिखा कि हिन्दी एक जीवित भाषा है—इसकी मृत्यु कभी हो ही नहीं सकती—इसका भार हमपर छोड़ दिया जाय—हम हिन्दी के प्रचार का पूरा प्रबन्ध कर देंगे और प्राञ्जल भाषा में पाठ्यपुस्तकें तैयार करा लेंगे।

डाइरेक्टर ने भूदेव बाबू के प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया। उन्हींके उद्योग से पटने से सर्वप्रथम बालोपयोगी उत्तम पुस्तको के प्रणयन, प्रकाशन तथा प्रचार का श्रीगणेश हुआ।

जिस समय भूदेव बाबू बिहार में आये उस समय यहाँ की कचहरियों में फारसी-अक्षर प्रचलित थे। उन्हींके उद्योग से सरकार ने नागरीलिपि प्रचलित की। कुछ दकियानूसी लोगों ने थोड़ा विरोध भी किया, जिसके उत्तर में भूदेव बाबू ने दो-टूक बात कह दी—"बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राजा की भाषा अँगरेजी सीखें और मुसलमानों के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राजा की भाषा अँगरेजी सीखें। यही उचित है।' इसी स्पष्टोक्ति के कारण बिहार के लोग उनकी प्रशंसा में कई गीत बनाकर गाने लगे। हिन्दी-भाषा के वे अनन्य पृष्ठपोषक और संरक्षक थे। अपनी एक पुस्तक में उन्होंने साफ-साफ कह दिया है—"भारत में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें हिन्दी ही सबसे प्रधान है। वह पहले के मुसलमान-बादशाहों और कवियो की कृपा से एक प्रकार देश भर में व्याप्त हो रही है। इसलिये अनुमान किया जा सकता है कि उसीके सहारे किसी समय सारे भारत की भाषा एक हो जायगी। भारत में अधिकांश लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं। इसलिये भारतवासियो की बैठक में अँगरेजी, फारसी का व्यवहार न होकर हिन्दी में बातचीत होनी चाहिये। साधारण पत्र-व्यवहार भी हिन्दी ही में होना चाहिये। हमारे पड़ोसी या इष्ट-मित्र—चाहे वे मुसलमान, कृस्तान, बौद्ध आदि कोई भी हों—सब सहज में हिन्दी समझ सकते हैं।"

इस प्रकार, समय अनुकूल था। 'जैसी हो होतव्यता, वैसो मिले सहाय'। भूदेव बाबू के सहायक हुए पटना-निवासी मुंशी राधालाल माथुर (जो उस समय स्कूल के डिपटी थे, और इनके वंशज आज भी पटना सिटी में रहते हैं), छपरा-निवासी श्रीभगवानप्रसाद (जो पीछे सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला' के नाम से श्री अयोध्या के एक प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा हुए और जिनका उस समय स्कूल-विभाग से सम्बन्ध था) तथा शिक्षा-विभाग के ही मुशी सोहन लाल। इन लोगों की लिखी हुई बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकों के मुद्रण, प्रकाशन तथा प्रचार का भार खड्गविलास प्रेस (पटना) के स्वामी महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह और उनके मैनेजर बाबू साहबप्रसादसिंह ने लिया। यह खड्गविलास प्रेस भी भूदेव बाबू ने ही स्थापित किया था। पहले इसका नाम बुधोदय प्रेस था। बाबू रामदीनसिंह को भूदेव बाबू ने यह प्रेस दे डाला।

हम कह चुके हैं कि बिहार मे पहले पाठ्यपुस्तकें कैथी-अक्षरों में छपती थीं। किन्तु सबसे पहले भूदेव बाबू के ही उद्योग से स्कूलो में पढ़ाई जानेवाली पोथियाँ नागरी-अक्षरो में छपने लगीं। बाबू रामदीनसिंह ने भी उनके प्रयत्न में पूर्ण सहयोग दिया। आज तक हमारे पास कई पुस्तकें कैथी अक्षरो में छपी तथा उस समय के लीथो (पत्थर) छापे की हैं।

उपर्युक्त माथुर महोदय को 'शब्दकोश' (राधा-कोष) लिखने के लिये पुरस्कार मिला था। इन्होंने 'भाषा-बोधिनी' चार भागो मे लिखी थी। सब पाठशालाओ मे आदि से मिड्ल तक यही बोधिनी' पढ़ाई जाती थी।

सन् १८७७ ई० मे भूदेव बाबू के बिहार में पधारने के पूर्व ही, १८७५ ई० से, 'बिहार-बन्धु' पंडित केशवराम भट्ट के सम्पादकत्व मे आ गया था। भट्टजी ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-कृत 'बोधोदय' का हिन्दी-अनुवाद 'विद्या की नेव (नींव)' नाम से किया और भूदेव बाबू की पुस्तक 'हिन्दुस्तान का इतिहास' का भी हिन्दी-अनुवाद किया तथा एक 'हिन्दी-व्याकरण' भी लिखा।

श्रीभगवानप्रसादजी ने 'तन-मन की स्वच्छता', 'शरीर-पालन' आदि कई पाठ्यपुस्तकें लिखीं। राय सोहन लाल ने भी एक बालोपयोगी पाठ्यपुस्तक लिखी—'वायु-विद्या' और मयनपुरा (पटना) के निवासी मुशी रामप्रकाश लाल ने 'भू-तत्त्व-प्रदीप' तैयार किया। ये पुस्तकें बहुत दिनों तक बिहार की हिन्दी-पाठशालाओं मे पढ़ाई जाती रहीं।

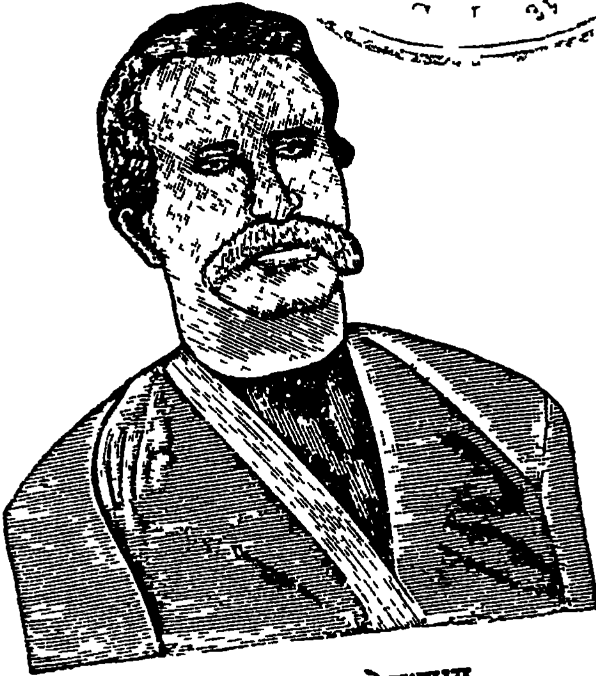
पर इस काम मे सबसे अधिक हाथ बाबू रामदीनसिंह ने बँटाया। इनके



राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र



स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय



स्वर्गीय बाबू रामदीनसिंह



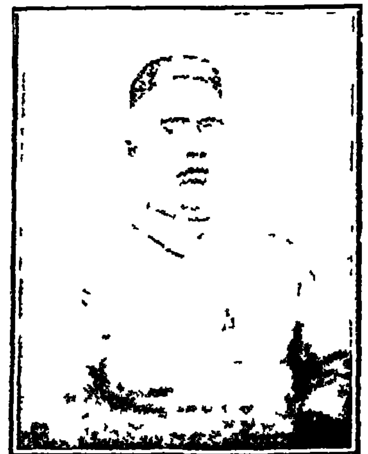
भूमिहार-ब्राह्मण-कालेज (मुजफ्फपुर) के संस्थापक
स्वर्गीय लंगटसिंह, धरहरा (मुजफ्फरपुर)
(पृ० १४५)



बाबू हरिहरशरण
संस्थापक राजेन्द्र-कॉलेज, छपरा
(पृ० १४५)



बिहार-नेशनल कालेज (पटना) के संस्थापक
स्व. बाबू शालग्रामसिंह, कुकुहरिया (शाहाबाद)
(पृ० १४५)



स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन खत्री
(पृ० ६७६)

प्रधान ग्रन्थ क्षेत्र-तत्त्व, गणित-बत्तीसी, हिन्दी-साहित्य, साहित्य-भूषण तथा बाल-बोध थे। बाबू साहबप्रसादसिंह का 'भाषा-सार' अपने समय की एक अपूर्व पाठ्य-पुस्तक था। इसकी ख्याति देश में ही नहीं, वरन् विदेश में भी थी; क्योंकि इसकी आलोचना इंगलैंड के समाचारपत्र 'होमवर्ड' तथा 'ओवरलैंड-मेल' में निकली थी। हमारे पिताजी (स्वर्गीय श्रीशिवनन्दनसहायजी) ने भी स्कूलों के लिये एक 'बंगाल का इतिहास' लिखा था। इन सब बालोपयोगी पुस्तकों की भाषा सुबोध, रोचक तथा प्राञ्जल थी। इन पुस्तकों में अधिकांश खड्गविलास प्रेस में ही छपी थीं। 'खड़ी बोली' को प्राणप्रतिष्ठा करनेवाले मुजफ्फरपुर-निवासी बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने भी अँगरेजी व्याकरण की रीति पर एक 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा था। यह पुस्तक उसी साल लिखी गई थी जिस साल भूदेव बाबू का बिहार में शुभागमन हुआ। 'यह भी स्कूलों में पढ़ाई जाती थी।' बाबू अयोध्याप्रसादजी ने भी बंगाल-बिहार के लाट साहब के पास एक प्रार्थनापत्र (मेमोरियल) भेजा था कि प्राइमरी और मिडिल परीक्षा की पाठ्यपुस्तकें केवल देवनागरी-अक्षरों में ही छापी जायँ। इसके लिये आप बर्दवान के महाराज के पास एक डेपुटेशन भी ले गये थे।

हिन्दी की प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के सम्बन्ध में भूदेव बाबू का प्रयास सफल हुआ। इस प्रकार बिहार-प्रान्त के बालकों और विद्यार्थियों में हिन्दी-भाषा का पूरा प्रचार हुआ। छात्रवर्ग अपनी मातृभाषा में विधिवत् शिक्षा पाने लगा। बिहार की शिक्षण-संस्थाओं में अपना अधिकांश जीवन बितानेवाले साहित्याचार्य अम्बिकादत्त व्यास ने भी बिहार के हिन्दी पढ़नेवाले छात्रों को अपना प्रसिद्ध पाठ्यपुस्तक 'साहित्य-नवनीत' द्वारा बहुत लाभ पहुँचाया। यह पुस्तक बहुत दिनों तक यहाँ स्वीकृत पाठ्य थी।

आरम्भ में खड्गविलास प्रेस का प्रधान ध्येय था बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन। उस समय के शिक्षा-विभाग के लेखकों के सहयोग से उसे इस क्षेत्र में पूर्ण सफलता भी मिली। उस समय दूसरा कोई भी प्रेस इस क्षेत्र में उसकी समता करनेवाला नहीं था। उसने ही सबसे पहले विद्यार्थियों के मनोविनोद और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों का शिक्षा-दीक्षा के लिये 'विद्या-विनोद' नामक पत्र तथा 'शिक्षा' नामक पत्रिका निकाली था। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि बालोपयोगी पुस्तकों के प्रकाशन की ओर सर्वप्रथम ध्यान गया बिहार ही का। और, इस क्षेत्र में बिहार का प्रयास बहुत सफल एवं प्रशंसनीय हुआ। बिहार में बाल-

साहित्य निर्माण की जो आधुनिक प्रगति है उसका आरम्भ होने से पहले उपर्युक्त पुस्तकें ही प्रारम्भिक शिक्षा की आधार-शिला रहीं।

देश के सौभाग्य से बाल-साहित्य के आकाश में सहसा एक दीप्तिमान् सूर्य उदित हुए—श्रीरामलोचनशरण। इन्होंने बाल-साहित्य के क्षेत्र में युगान्तर उत्पन्न कर दिया। इनकी रचना इतनी मनोहर, आकर्षक और बालोपयोगी हुई कि अन्यान्य प्रान्तों मे भी इनकी शैली का अनुकरण होने लगा।

सन् १९१५ ई० में श्रीरामलोचनशरणजी ने लहेरियासराय (दरभंगा) में 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना की। इसके पहले भी इनकी लिखी कई पाठ्यपुस्तकें छप चुकी थी, पर 'भंडार' के स्थापित हो जाने पर इनकी लेखनी से नई शैली और मनोवैज्ञानिक पद्धति की पाठ्यपुस्तके निकलने लगीं, जिनकी भाषा परिष्कृत और प्रामाणिक थी। आज तक इन्होंने सैकड़ों पाठ्यपुस्तकें निकाल डाली हैं, जो साहित्य, व्याकरण, निबन्धरचना, इतिहास, भूगोल, गणित, स्वास्थ्य-विज्ञान आदि विषयों पर बड़े मार्मिक एवं सरल ढंग से लिखी गई हैं। पाठ्यपुस्तकों के सिवा इन्होंने सैकड़ों सुन्दर बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जो विविध ज्ञानवर्द्धक विषयों पर सिद्धहस्त लेखकों द्वारा सुरुचिपूर्ण शैली मे लिखी गई हैं और जिनकी छपाई-सफाई, सजावट तथा चित्रावली हिन्दी-संसार मे अपने रंग-ढंग की अकेली है। 'पुस्तक-भंडार' की पुस्तक-सूची देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरणजी बालकों ही की नींद सोते हैं और उन्हीं की नींद जागते हैं। बालोपयोगी पुस्तकों की रचना छोड़कर और कोई विषय उनके सामने रहता ही नहीं।

हिन्दी-भाषी बालकों के लिये सचित्र मासिकपत्र 'बालक' निकालकर इन्होंने बाल-साहित्य के क्षेत्र मे क्रान्ति की एक नई लहर उठा दी। बाल-साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने का सर्वाधिक श्रेय 'बालक' को ही है। भारत के कोने-कोने में इनके 'बालक' का नाम गूँज रहा है। विदेशों के हिन्दी-प्रेमियों में भी 'बालक' का खासा प्रचार है। आज कौन ऐसा हिन्दी जाननेवाला है जो 'बालक' से परिचित न हो? 'बालक' गत पन्द्रह वर्षों से आदर्श बाल-साहित्य की सृष्टि करता आ रहा है। जिस बालक ने एक बार 'बालक' को देख लिया वह चातकवत् इसके लिये लालायित रहता है और इसे पाकर अवश्य तृप्त हो जाता है। यह कहना, हमारे विचार से, अत्युक्ति न होगा कि 'बालक' के जोड़ का कोई पत्र, बालकों के हित का, कहीं से, प्रकाशित नहीं होता है। हिन्दी-संसार के अधिकारी

विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से इस बात की सराहना की है। बिहार को यह गौरव प्रदान करने का श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को ही है।

बालोपयोगी पुस्तकों के प्रणयन तथा प्रकाशन में शाहाबाद (आरा) जिले के निवासी श्रीरामदहिन मिश्रजी का भी श्रम सराहनीय है। बहुत थोड़े दिनों में इन्होंने बहुत-कुछ कर दिखाया और बालकों तथा किशोरों को बहुत-कुछ लाभ पहुँचाया। इनकी बाल-शिक्षा समिति (पटना) से भी अनेकानेक उत्तम, रोचक तथा उपयोगी पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और होती जा रही हैं। प्रौढ साहित्य का प्रकाशन भी इनका प्रशंसनीय है। इनकी पुस्तकों के 'गेट अप' भी 'अपटु-डेट' होते हैं। पुस्तकों को सुन्दर तथा शुद्ध छापने की इनकी भी चेष्टा रहती है। हिन्दी के मुहावरों का कोश निकालकर इन्होंने विद्यार्थियों को जो सहायता पहुँचाई है उसका तो बखान ही नहीं किया जा सकता। आजकल सचित्र मासिक-पत्र 'किशोर' का सम्पादन और प्रकाशन कर विद्यार्थि-समाज में इन्होंने हलचल मचा दी है। बालकों और किशोरों के हितार्थ अच्छी-अच्छी बहुतेरी पुस्तकें लिख-लिखाकर प्रकाशित करने में इन्होंने भी बिहार का गौरव बढ़ाया है।

बिहार के बाल-साहित्य-निर्माताओं में उपर्युक्त साहित्यसेवियों के अतिरिक्त उनके निम्नलिखित सहायक लेखकों और कवियों के भी नाम उल्लेखनीय हैं—लेखकों में श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीहरिमोहन झा एम० ए०, श्रीकमलनारायण झा 'कमलेश', श्रीजगदीशनारायण, श्रीरामलोचन शर्मा 'कंटक' एम० ए० इत्यादि और कवियों में श्री 'दिनकर', श्रीआरसीप्रसाद सिंह, श्री 'केसरी', श्रीहंसकुमार तिवारी, स्वर्गीय श्रीराघवप्रसाद सिंह आदि।

श्रीरामलोचनशरणजी की लिखी हुई 'मनोहर पोथी' ने बालवर्ग के हृदय और मस्तिष्क पर जादू फेर दिया है। बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल इससे उत्तम आरम्भिक पोथी हिन्दी में है ही नहीं।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी-संसार में बालसाहित्य की जो प्रगति अब तक हुई है, उसमें बिहार का पर्याप्त भाग है। हिन्दी के बाल-साहित्य की प्रगतिशीलता में सहायक होने के लिये बिहार आज जो कुछ प्रयत्न कर रहा है वह सर्वथा महत्त्वपूर्ण है।



प्रवासी बिहारी

श्रीब्रह्मदत्त-भवानीदयाल, जेकब्स (डरबन), नेटाल, दक्षिण अफ्रिका

वृहत्तर भारत को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन वृहत्तर भारत का अनुमान करने के लिये अनेक द्वीपों और महाद्वीपों में पाये जानेवाले भारतीय शिल्प के महत्त्वपूर्ण निदर्शन प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मेक्सिको (अमेरिका) तक में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्राचीन चिह्न वर्तमान हैं, जिनके आधार पर विद्वानों ने निश्चय किया है कि कोलम्बस से बहुत पहले ही भारतीयों ने अमेरिका का पता पाकर वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर दिया था। एशिया महाखंड के अनेक स्थानों और द्वीपों में तो भारतीय शिल्प-कौशल के असंख्य उत्कृष्ट नमूने आज भी पाये जाते हैं जिनसे भारतीयों के साहसिकतापूर्ण अभियान और उपनिवेश-स्थापन का स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होता है।

किन्तु, बिहार को ही इस बात का गौरव प्राप्त है कि उसके सपूतों ने प्राचीन वृहत्तर भारत का निर्माण किया था। सुवर्णभूमि (बर्मा, स्याम, मलय, हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा इत्यादि) की यात्रा करनेवाले विदेह के राजकुमार महाजनक की कथा इतिहासप्रसिद्ध है।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायियों में सबसे प्रसिद्ध और प्रतापी महाराज अशोक हुए, जिन्होंने न केवल पाटलिपुत्र में सिंहासनारूढ़ होकर एक वृहत् भारतीय साम्राज्य की बुनियाद डाली, बल्कि स्वदेश से बाहर भी 'वृहत्तर भारत' (Greater India) के रूप में सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना की। बिहार से ही आर्य-संस्कृति का सन्देश जापान, चीन, बर्मा, मलय, जावा, सुमात्रा, बाली, लम्बक, स्याम, कम्बोडिया, सिंहल आदि देशों में पहुँचा था।

आजकल के साम्राज्यवादियों की भाँति बिहारियों ने तोप और तलवार

के ज़ोर से किसी देश और राष्ट्र की स्वाधीनता का अपहरण नहीं किया—उनका रक्त-शोषण नहीं किया। किन्तु उन्हें आर्य-संस्कृति की दीक्षा देकर एक ऐसे वृहत्तर भारत का निर्माण किया जिसका युगयुगान्तर तक भारत के साथ सम्बन्ध रहा है और आज भी उस स्नेह-सम्बन्ध की स्मृति अवशिष्ट है।

उस युग में केवल ऐसे ही आदमी बिहार से बाहर गये थे, जो सर्वगुण-निधान विद्वान थे, सात्त्विक वृत्ति के धर्माचार्य थे, धुरन्धर राजनीतिज्ञ थे, वाणिज्यकुशल वैश्य थे। वह बिहार का स्वर्ण-युग था।

किन्तु अर्वाचीन विशाल भारत का निर्माण दूसरे ही ढंग से हुआ है। जब संसार से गुलामी की प्रथा उठा दी गई तब ईसवी सन १८३४ से उसका पुनर्जन्म हिन्दुस्तान में हुआ—शर्तबन्द कुलीप्रथा (Indentured Labour System) के रूप में। भारत से मोरिशस, नटाल, ट्रिनिडाड, डेमरारा, जमैका, ग्रनेडा, सुरीनाम, फिजी आदि उपनिवेशों को केवल मजदूर ही भेजे जाने लगे; और वह भी दासता की कठोर बेड़ी में बाँधकर। यह प्रथा भारत के लिये कलंक स्वरूप थी—इससे संसार में भारत की बड़ी अपकीर्त्ति फैली।

दूसरे थे श्रीबद्री। दोनों का ही अब देहान्त हो गया है। दोनों की ही ओर से मुझे बहुत मदद मिली थी। इनके-जैसे ही भाइयो के द्वारा मेरा उत्तर और दक्षिण के भारतीयों से गाढ़ा परिचय हुआ। मै उनका वकील ही भर नही, बल्कि भाई बनकर रहा।"

दक्षिण अफ्रिका में, सन् १८९९ में, जो अँगरेज-बोअर-युद्ध हुआ था, उसमे भी एक बिहारी ने अपनी वीरता का परिचय देकर ससार को चकित कर दिया था। इस बिहारी वीर का नाम था 'प्रभुसिह' और यह भी आरा (शाहाबाद) जिले का रहनेवाला राजपूत था। इसके सम्बन्ध में मेरे पूज्य पिता स्वामी भवानीदयालजी संन्यासी ने अपनी आत्म-कथा—'प्रवासी की कहानी'—मे लिखा है—

"उस समय बोअर-सेना ने ऐसा धावा बोला कि नटाल के लेडीस्मिथ नगर तक पहुँचकर जबरदस्त घेरा डाल दिया। वहाँ घिरी हुई अँगरेजी सेना की ऐसी दुर्दशा हुई कि उसे घोड़े, गधे और कुत्ते तक खाने के लिये बाध्य होना पड़ा। लेडीस्मिथ की अँगरेजी फौज के साथ आरा जिले के प्रभुसिह नामक एक हिन्दुस्थानी भी थे। उन्होंने अपनी वीरता का ऐसा परिचय दिया कि उसे देख-सुनकर सारा अफ्रिका दंग रह गया। लेडीस्मिथ नगर के पास ही 'अम्बुलवाना नाम की एक पहाड़ी है। बोअर-सेना ने उसीके ऊपर अपना 'लाङ्गटॉम' नामक भयंकर तोपखाना लगा रक्खा था। वहाँ से जब गोले दगते तो सारे नगर मे हाहाकार मच जाता। उस समय एक ऐसे बहादुर आदमी की जरूरत थी जो जान हथेली पर लिये, एक ऐसी ऊँची जगह पर खड़ा रहे, जहाँ से बोअर-तोप मे पलीता लगते ही वह उसकी सूचना झंडी दिखाकर अँगरेज-सेना और नागरिकों को दे दे, और इस प्रकार सावधान करके उनके प्राण बचा दे। उस समय किसी भी अँगरेज-बहादुर की हिम्मत न हुई कि वह इस काम के लिये आगे बढ़े; लेकिन वीर प्रभुसिह जान पर खेलने को तैयार हो गये। इस काम पर तैनात होकर वह रात-दिन चौकस रहते और तोप में पलीता लगते ही झंडो के इशारे अँगरेजी फौज और लेडीस्मिथ के निवासियों को सूचित कर देते। अन्त में जनरल बूलर ने जाकर बोअर-घेरे को तोड़ा और अँगरेजी सेना की रक्षा की। प्रभुसिंह की इस ऐतिहासिक वीरता का बदला उन्हें केवल यह मिला कि उनकी शर्त्तबन्दी की बाकी मीयाद पूरी कर दी गइ। डरबन के टाउन-हॉल की एक सभा में उनकी कुछ शब्दों मे प्रशंसा भी कर दी गई और थोड़े-से रुपये इकट्ठा करके उन्हे दे दिये गये। इस सभा में महात्मा गांधी भी उपस्थित थे और भारत के तत्कालीन बड़े लाट (लार्ड कर्जन) ने प्रभुसिंह

की बहादुरी के पुरस्कार-स्वरूप एक चोगा भेजा था। यह तो हुआ; पर अँगरेज इतिहासकारों ने बोअर-युद्ध के इतिहास में प्रभुसिंह और उनकी वीरता का उल्लेख करके अपनी कीर्त्ति का उज्ज्वल पृष्ठ बिगाड़ना उचित नहीं समझा !"

नवीन वृहत्तर भारत के निर्माण में जिन बिहारियों ने थोड़ा-बहुत भाग लिया है उनमें मेरे पूज्य पिता स्वामी भवानीदयाल संन्यासी और मेरी स्वर्गीया माता श्रीमती जगरानी देवी का भी विशेष स्थान है।

अपने माता-पिता की बड़ाई में कुछ कहना उचित नहीं, किन्तु उनके कार्यों का उल्लेख किये बिना यह विषय अधूरा ही रह जायगा।

सुप्रसिद्ध भारत-हितैषी और लंडन के इंडियन ओवरसीज एसोसिएशन के मंत्री श्रीपोलक साहब के शब्दों में मेरी माता "एक देशानुरागिणी और वीर महिला तथा भारतमाता की सच्ची दुहिता थीं।"

परलोक-गत दीनबन्धु एंड्रूज ने यहाँ तक लिखा था—"वे उन महिलाओं में एक थीं जिनका आचरण कष्ट-सहन के द्वारा निर्मित और विकसित होता है। वे सदा दरिद्र नर-नारियों की ही चिन्ता किया करती थीं और उनकी सेवा करने को सदा समुद्यत रहती थीं। सबसे बड़ी प्रसन्नता उन्हें तब होती थी जब वे दरिद्र बालकों को पढ़ाती थीं और उनकी सेवा करती थीं। यह जानना आवश्यक है कि दक्षिण अफ्रिका में बहुत-से भारतीय, जो पहले नियम-बद्ध मजदूर थे, अभी तक अभाव, अज्ञान और आपत्ति में फँसे हुए हैं। उनका मातृ-हृदय उनलोगों की शोचनीय दशा देखकर द्रवित हो जाता था और उनकी दुःखद स्थिति को दूर करने की वे सदा चेष्टा किया करती थीं। अपने इस कर्मक्षेत्र में ही वे सदा के लिये निद्रित हो गईं।"

सन् १६१३ ई० के दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह मे भाग लेकर मेरी माता ने अपने प्रान्त बिहार को गौरवान्वित किया था। उन्हें तीन मास तक कठिन कारावास का दंड भोगना पड़ा था। प्रयाग के प्रसिद्ध हिन्दी-मासिक 'चाँद' के 'प्रवासी-अङ्क' में उनका संक्षिप्त परिचय यों छपा था—

"सुदूर विदेशों में जिन पुण्यश्लोक आत्माओं ने भारतमाता के पवित्र गौरव की रक्षा और उसकी विपद्ग्रस्त सन्तानों की सेवा और सहायता के लिये आत्म-बलिदान किया है, स्वर्गीया जगरानी देवी उनकी चूड़ामणि थीं। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह-संग्राम में इन्होंने अपनी अलौकिक वीरता एवं अपूर्व तेजस्विता का परिचय देकर भारतीय मातृजाति का मुख उज्ज्वल किया था। इनके उज्ज्वल

देशानुराग को देखकर भारत के अनन्य प्रेमी श्रीयुत एंड्रूज परिमुग्ध हो गये थे और उन्होंने इनके विषय में लिखा था—'ये दरिद्र और दलित के लिये ही जीवित रही तथा उन्ही की सेवा में इन्होंने प्राणोत्सर्ग किया (she lived and died for the oppressed)'। सेवा-धर्म की ये प्रतिमा थीं और इनका हृदय वात्सल्य-रस से ओतप्रोत रहता था।"

मेरे पिताजी ने भी विदेशों मे बिहार का बराबर मुखोज्ज्वल किया है। बिहार की सर्वोत्तम विभूति और भारत के पिछले राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के शब्दों मे "हम बिहारियों को इसका गौरव है कि स्वामी भवानीदयाल हमारे ही प्रदेश (बिहार) के है और भारतीय होते हुए भी अपने प्रान्त को नही भूले हैं।"

दीनबन्धु एंड्रूज साहब ने लिखा था—"उन्होंने केवल दक्षिण अफ्रिका-प्रवासियों की ही नही, जहाँ वे गत २६ वर्षों से प्रवास करते हैं, किन्तु संसार के अन्य भागों में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों की भी महान् सेवा की है।"

दक्षिण-अफ्रिका मे भारत-सरकार के भूतपूर्व प्रतिनिधि कुँवर सर महाराज-सिंह के कथनानुसार—"स्वामीजी एक उच्च चरित्र के, नम्र स्वभाव के और त्याग-भावनावाले ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रशंसा से परे हैं। उनमे महान् योग्यता और अनुभव है। न केवल दक्षिण-अफ्रिका ही, बल्कि संसार के अन्य भागों के भी प्रवासी भारतीयों की सेवा करते रहने के कारण भारत मे उनका नाम प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया जाता है।"

बिहार के हिन्दी-साहित्यसेवी श्रीशिवपूजनसहाय ने लिखा था—"स्वामीजी की सेवा केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं; सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ स्तुत्य हैं। आपके आदर्श जीवन की यह चौमुखी प्रगति वास्तव मे अतुलनीय है। उन्होंने अपनी मुक्ति के लिये सन्यास नहीं ग्रहण किया, स्वदेशबंधुओं की मुक्ति के लिये ही सांसारिक सुखों का त्याग किया—चाहे वे स्वदेश-बंधु स्वदेश मे बसते हों या विदेश में, भारत में हों या भूमंडल के विभिन्न भागों मे।"

बृहत्तर भारत के इतिहास मे स्वामी भवानीदयाल का नाम अमर रहेगा और उनके साथ ही उनकी पितृभूमि—बिहार का भी। अब स्वामीजी ने अजमेर के 'आदर्श नगर' मे एक 'प्रवासी-भवन' बनाकर रहने का निश्चय कर लिया है; किन्तु वे चाहे भारत के किसी प्रान्त मे रहे अथवा संसार के किसी भी भूभाग में, बिहार के साथ उनका अटूट सम्बन्ध है और वह सदा बना रहेगा।



कुँवर सर महाराजसिंह (पृ० २६८)



बाऍं ओर से बैठे हुए—श्रीरामलोचनशरणजी, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, श्रीशिवपूजन सहाय
खडे—श्रीशरणजी के साथ श्रीउपेन्द्रमहारथी; स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के साथ
श्रीअच्युतानन्द दत्त ; श्रीशिवपूजन सहाय के साथ अनीसुर्रहमान



श्रीनरेन्द्रनाथदास विद्यालंकार
दरभंगा—(पृष्ठ ५५३)



श्रीशिवनन्दनसहाय, बी ए
(धरहरवा, मुजफ्फरपुर)



श्रीपीताम्बर झा
[पृष्ठ ६७१ ड)]



श्रीभोलालाल दास, बी ए, एल्-एल्-बी.
(दरभंगा)—पृष्ठ ५५३

नटाल और मोरिशस, डमरारा और ट्रिनिडाड, सुरीनाम और फिजी, जमैका और बर्मा में प्रवासी बिहारियों की काफी संख्या है। वे वहाँ कुली-कबाड़ी के रूप में गये सही, किन्तु आज उन्होंने पर्याप्त सम्पत्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।

मोरिशस में माननीय आर० गजाधर सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। वे वहाँ की कौंसिल के सदस्य हैं। प्रथम श्रेणी के जमींदार और सम्पन्न किसान भी हैं। वहाँ के सार्वजनिक क्षेत्र में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। वे बिहारी हैं। गया-जिले के रहनेवाले हैं। प्रसिद्ध पूँजीपति हैं।

मोरिशस के तीन लाख हिन्दुस्तानियों मे बिहारियों की बहुत बड़ी संख्या है। उनमे कितने ही उच्चशिक्षाप्राप्त और धनी व्यवसायी हैं।

ट्रिनिडाड के रेवरेंड सी० डी० लाला वहाँ की कौंसिल के मेम्बर हैं। बिहार के ही निवासी हैं। उनके पिता आरा-जिले से ही वहाँ गये थे और मिशनरियों के पंजे मे फँसकर ईसाई हो गये थे।

फिजी की कौंसिल के वर्त्तमान सदस्य श्रीचतुरसिंह के पिता भी आरा-जिले के ही निवासी थे। फिजी-द्वीप में और भी कितने ही बिहारी हैं, जो बड़े प्रभावशाली, सुशिक्षित और धनाढ्य व्यापारी हैं।

आज उपनिवेशों में बिहारियों के कितने ही वंशज कौंसिल के मेम्बर हैं, पूँजीपति व्यापारी हैं, वकील हैं, बैरिस्टर हैं, डाक्टर है, एडिटर हैं, प्रोफेसर हैं और नवीन वृहत्तर भारत के निर्माण में काफी हिस्सा ले रहे हैं। इस लेख में उन सबका परिचय देना असम्भव है; किन्तु दुःख की बात यही है कि उनमें से अधिकांश अपने बिहार को भूल गये और भूल रहे हैं। भारत से उनका सम्बन्ध दिन-दिन इतनी दूर होता जा रहा है कि शायद दो-चार पुश्तों के बाद उनको बिहार का नाम भी याद न रह जायगा!

बर्मा-प्रान्त भारत के निकट ही है। कुछ ही दिन पहले वह भारत का ही एक अंश था, पर अब भारत का अंगच्छेद करके वह पृथक् कर दिया गया! फिर भी जो भारतीय वहाँ बस गये हैं उनके लिये वहाँ कोई खास खतरा नहीं है। बिहार की प्रसिद्ध रियासत 'डुमराँव' के भूतपूर्व दीवान स्वर्गीय जयप्रकाशलालजी के सुपुत्र रायबहादुर हरिहरप्रसादसिंह (हरीजी) के उद्योग से बर्मा में बहुत-से बिहारी जा बसे हैं। श्रीहरीजी भी अब प्रायः वहीं रहा करते हैं। किन्तु सुदूरवर्त्ती उपनिवेशों मे जा बसनेवाले बिहारियों की अवस्था बिलकुल भिन्न है—बिहार से बहुत दूर आ बसने के कारण उनका भविष्य चिन्ताजनक है!

गुजरातियों ने अपना सम्बन्ध स्वदेश से बना रक्खा है; किन्तु बिहारियों, मद्रासियो और युक्तप्रान्तवासियों ने अपने प्रान्त और अपने देश से नेह-नाता तोड़ डाला है !

उपनिवेशों में सभी हिन्दी-भाषा-भाषी 'कलकतिया' नाम से पुकारे जाते हैं—यद्यपि कलकत्ता से उनका उतना ही सम्बन्ध है जितना किसी मराठी का बम्बई से। किन्तु कलकत्ता से जहाज पर सवार होकर टापुओं मे आने के कारण सभी हिन्दी-भाषाभाषी 'कलकतिया' बन गये हैं ! इसी प्रकार तमिल, तेलगु, मलयालम्, कनाड़ी आदि दक्षिणभारतीय भाषाओं के बोलनेवाले 'मद्राजी' कहे जाने लगे और गुजराती तथा मराठी भाषाओं के बोलनेवाले 'बम्बैया'। इसलिये हिन्दी-भाषियों मे बिहारियों का पता लगाना कठिन होता है।

कुछ भी हो, इस समय संसार के भिन्न-भिन्न देशों और उपनिवेशों में बहुत-से बिहारी भी जा बसे हैं, जिन्हे हम प्रवासी बिहारी के नाम से पुकारते हैं। उन्होंने केवल एक ही सदी में कल्पनातीत उन्नति कर ली है। उनमे कई तो ऐसे अमूल्य रत्न हैं, जिनपर बिहार साभिमान सिर ऊँचा कर सकता है।

ध्यान रहे कि प्रवासी बिहारी विदेशों मे भी बिहार के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। इनके आचार, विचार और व्यवहार को देखकर ही संसार के लोग बिहार के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाते हैं। अतएव ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि ये प्रवासी बिहारी महान् बिहार के सुयोग्य प्रतिनिधि सिद्ध हो और संसार मे बिहार की कीर्त्ति-पताका फहराते रहे। भारतीय बिहारियो को चाहिये कि वे अपने प्रवासी भाइयों को कभी न भूले और उन्हे अपने प्रेम की शृखला मे सदा आबद्ध रक्खें।





वैशाली के लिच्छवि

पंडित गिरिधारी लाल शर्मा गर्ग, बी० ए० (ऑनर्स); पटना-सिटी

स्वनामधन्य इतिहासकार विंसेंट स्मिथ की धारणा है कि वैशाली के लिच्छवियों का रक्त-सम्बन्ध तिब्बतियों से था ※। उनके प्रतिपादित सिद्धान्त के दो आधार हैं। उनका कहना है, लिच्छवियों में यह प्रथा थी कि वे अपने मृतकों को यों ही जंगल में फेंक दिया करते थे, और यह प्रथा तिब्बत में आज भी प्रचलित है। दूसरा आधार लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली है, जिसके सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि तिब्बत में प्रचलित न्याय-प्रणाली से उसकी बहुत-कुछ समानता है।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवालजी ने इन दोनों तर्कों का सफलतापूर्वक खंडन कर दिया है। स्मिथ के कथन का आधार चीन देश में प्रचलित यह प्राचीन दंत-कथा है कि महात्मा बुद्ध ने वैशाली में बहुत-से वृक्षों के नीचे एक श्मशान या मृतक स्थान देखा था और उस मृतक-स्थान के सम्बंध में ऋषियों ने उनसे कहा था—"उस स्थान पर लोगों के मृत शरीर पक्षियों के खाने के लिये फेंक दिये जाते हैं, और, आप जैसा देख रहे हैं, वहाँ लोग मृतकों की सफेद हड्डियाँ चुन-चुनकर ढेर लगाते है। वहाँ लोग मृतकों की दाह-क्रिया भी करते हैं और उनकी हड्डियों के ढेर भी लगाते है। वे वृक्षों में शव लटका भी देते हैं। जो लोग निहत होते हैं, अथवा अपने सम्बंधियों के द्वारा मार डाले जाते हैं, वे वहाँ गाड़ भी दिये जाते है। कारण, उनके सम्बधियों को भय रहता है कि कहीं ये लोग फिर से जीवित न हो जायँ। और, कुछ शव वहाँ यों ही छोड़ दिये जाते हैं—इसलिये कि सभव हो तो वे फिर लौटकर अपने घर आ जायँ।" †

※ इंडियन एंटीक्वेरी, १९०३, पृ० २३३—३५

† Romantic Legend of Sakya Buddha.

यही वह वाक्य है, जिसके आधार पर स्मिथ साहब ले उड़े कि लिच्छवियों का मूल तिब्बती है। परन्तु, यह वाक्य ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में निर्विवाद-रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि यह वाक्य एक ऐसी दंतकथा से लिया गया है, जो बुद्ध के समय के लगभग एक हजार वर्ष बाद की है।

थोड़ी देर के लिये यदि हम इस वाक्य को इसी रूप मे मान भी लें, तो भी कोई हर्ज नही। इस वाक्य मे एक साधारण श्मशान का ही तो वर्णन है। हिन्दूधर्मशास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि कुछ अवस्थाओं मे शव जलाया नही जाता—या तो वह गाड़ दिया जाता है या यों ही फेंक दिया जाता है।

संस्कृतनाटको तथा कथानको मे ऐसी कथाएँ है कि प्राचीन काल में लोगों को श्मशान में फाँसी दी जाती थी। और, अबतक ऐसा रिवाज है—लोग इस आशा से शव को यो ही फेक देते हैं कि कदाचित् वह जी उठे।

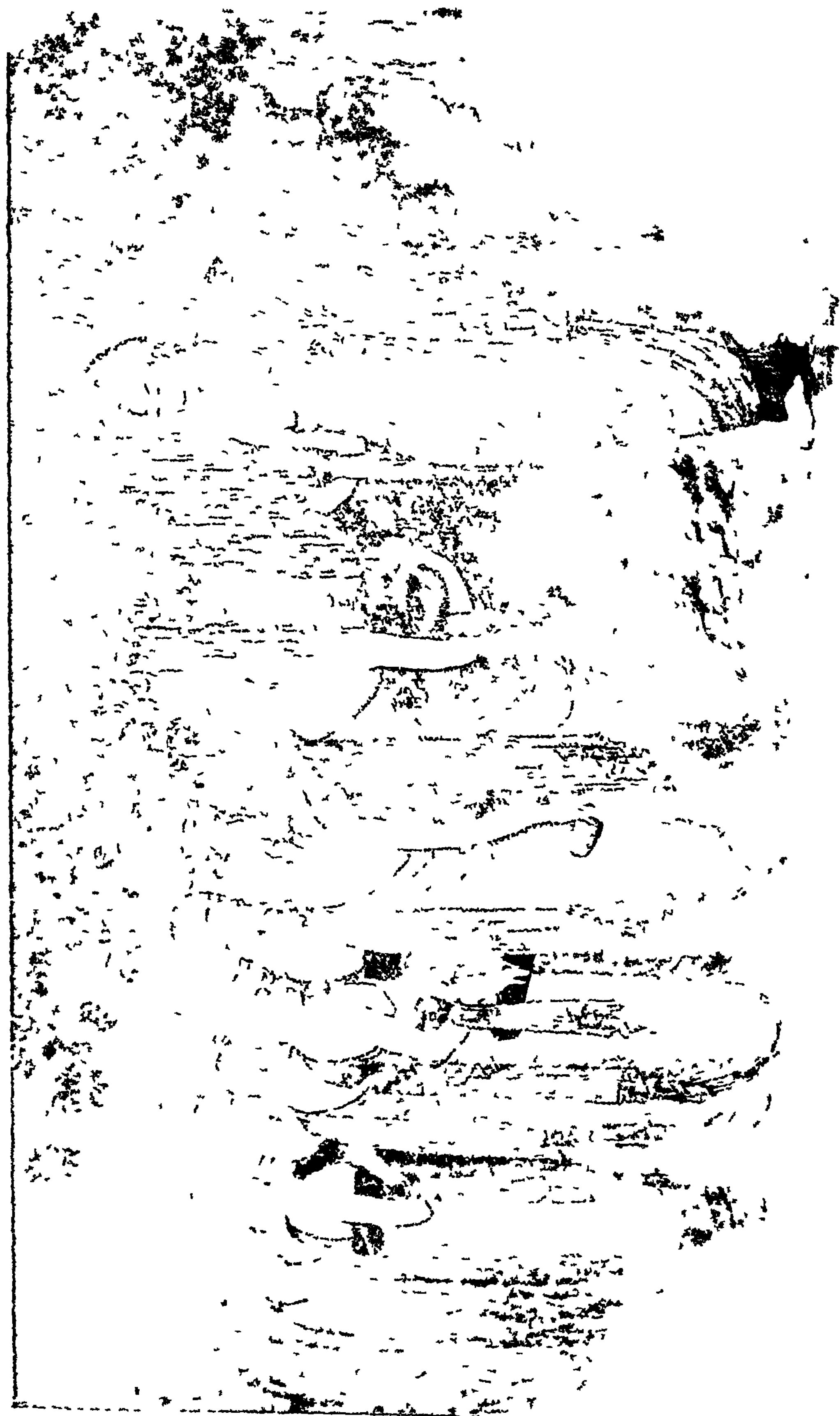
अब दूसरा तर्क स्मिथ का यह है कि दोनो की न्याय-प्रणाली मे बहुत अधिक समानता है। परन्तु यह तर्क भी अधिक देर ठहरता दिखाई नही देता। लिच्छवियो की शासन-प्रणाली महाभारत मे बतलाई गई 'गण' की न्याय-प्रणाली से बहुत मिलती-जुलती है। लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली के आधार वे ही नियम हैं, जो गणों में प्रचलित थे।

यूनानी इतिहासज्ञ टॉलेमी का दूसरा ही मत है। उसका कहना है—"ऐसा मालूम होता है कि लिच्छवि लोग भारतवर्ष मे 'निसिविस' से आये जो भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर में प्राचीन 'एरिया' (आधुनिक 'हिरात') का एक प्रधान नगर था।"

कुछ आधुनिक विद्वानो का कहना है कि मनुस्मृति मे * लिच्छवि के स्थान पर 'निच्छवि' शब्द आया है, जो टॉलेमी के 'निसिविस' से कुछ मिलता-जुलता-सा है। टॉलेमी यह भी लिखता है कि भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर मे 'निसेई' अथवा 'निसिवि' नाम की एक जाति उस समय बसती थी। मेगास्थनीज ने भी 'नेसेई' नाम की एक जाति का वर्णन अपने भ्रमण-वृत्तान्त मे किया है। यह शब्द भी 'निच्छवि' वा 'लिच्छवि' से मिलता-जुलता-सा है। अत॰ कुछ इतिहासज्ञ तो इस निष्कर्ष पर निश्चयात्मक-रूप से पहुँच गये है कि लिच्छवियों का रक्त-सम्बन्ध किसी विदेशी जाति से था।

परन्तु, उनकी यह धारणा नितान्त भ्रमात्मक है। लिच्छवि लोग राष्ट्रीय दृष्टि

* झल्लोमल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छविरेव च।—मनु०



से भारतवासी ही थे। विदेह और लिच्छवि दोनों एक ही राष्ट्रीय नाम 'वृजि' से प्रसिद्ध थे। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते है कि लिच्छवि और विदेह दोनों ही जातियाँ या तो एक ही राष्ट्र की दो शाखाएँ थीं या एक ही जाति की। 'शतपथ ब्राह्मण' (१. ४. १. १०.) में स्पष्ट उल्लेख है कि वैदिक विदेहों ने उत्तरी विहार में उपनिवेश स्थापित किया था। यदि विदेह लोगों को हम शुद्ध हिन्दू (आर्य) मानने को तैयार हैं, तो फिर कोई ऐसा कारण नहीं दीख पड़ता कि उन्हीं के राष्ट्र या जाति की दूसरी शाखा को हम वर्वर मान लें। अंगुत्तर-निकाय में लिच्छवियों के संबन्ध में भी अन्यान्य क्षत्रिय शासकों की भाँति 'अभिषित्त' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सिगाल-जातक से सिद्ध है कि ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी में लिच्छवि लोग बहुत प्रसिद्ध और उच्चकुल के गिने जाते थे। 'जातक' पाली भाषा का बहुत प्राचीन ग्रंथ है। रीज डेविड्स साहब के मतानुसार जातक-कथाओं का रचना-काल ईसा के पूर्व की तीसरी या चौथी शताब्दी है। शृगाल-जातक के उस अंश का यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा, जिसमें लिच्छवियों का प्रसंग है—

"वेसालिवासिको एको नहापितो एकदिवसं राजनिवेसने कम्मं कातुं गच्छन्त। अत्तनो पुत्तं गहेत्वा गतो। सो पुत्तो तत्थ एकं लिच्छविकुमारिकं दिस्वा किलेसवसेन परिबद्धचित्तो हुत्वा पितरा सद्धिं राजनिवेसना निक्खमित्वा—एत कुमारिकं लभमानो जीविस्सामि, अलभमानस्स मे एत्थ एव मरण इति। आहारुपच्छेदं कत्वा भवकं परिसज्जित्वा निपज्जि। अथ नं पिता उपसंकमित्वा तात, हीनजच्चो त्वं नहापितपुत्तो, लिच्छविकुमारिका खत्तियधीता जातिसम्पन्ना, न सा तुम्ह अनुच्छविका। अञ्ञं ते जातिगोत्तेहि सदिस कुमारिकं आनेस्सामीति—आह! सो पितु कथं न गण्हाति। अथ न माता, भाता, भगिनि सब्बेपि आजातका चेव मित्तसुहज्जा च सन्निपतित्वा सञ्ञपेन्तापि सञ्ञापेतुं नासक्खिसु। सो तत्थ एव जीवितक्खयं पापुणि।"

अर्थात्—वैशाली का रहनेवाला एक नाई, एक दफा, राजा के महल में हजामत बनाने के लिये, अपने पुत्र के साथ, गया। उसका पुत्र वहाँ एक सुन्दरी लिच्छवि-कुमारी को देखकर उसपर प्रेमासक्त हो गया। राजप्रासाद से पिता के साथ जब वह बाहर निकला तब अपने पिता से कहने लगा—"यदि वह लिच्छवि-कुमारिका मुझे मिलेगी तो मै जीऊँगा, नही तो अपने प्राण त्याग दूँगा।" यह कहकर वह आहार छोड़कर सो गया। तब उसका पिता समझाने लगा—"तात!

तुम हीनजाति के—नाई के—लड़के हो, और वह लिच्छवि-कुमारिका क्षत्रिय-कन्या तथा उच्च कुल की है। वह तुम्हारे योग्य नहीं। तुम्हारे लिये कोई दूसरी कुमारी ढूँढ़ देंगे, जो जातिकुल मे तुम्हारे अनुरूप होगी।" इसी तरह माता, भ्राता, भगिनी इत्यादि सभी समझाकर थक गये, किन्तु उसने एक की भी न सुनी। बिना अन्नजल के उसने प्राण त्याग दिये।

समस्त बौद्ध-साहित्य में लिच्छवियों को एकस्वर से उत्तम क्षत्रिय कहा है। बौद्धग्रन्थो मे उनकी बड़ी महिमा गाई गई है। बौद्धधर्म के इतिहास में इस जाति का बड़ा नाम है। लिखा है—बुद्ध के निर्वाण के बाद उनकी अस्थियो के आठ भाग किये गये। बुद्ध का निर्वाण-काल ईसा के पूर्व ४८७ मे निश्चित किया गया है। जब अस्थियों का विभाजन होने लगा तब लिच्छवियों ने भी अपना दूत कुशीनगर भेजा और उसके द्वारा कहलवाया कि भगवान् बुद्ध क्षत्रिय थे और हमलोग भी क्षत्रिय हैं, इसलिये हमलोगो को भी बुद्ध की अस्थियों का एक भाग मिलना चाहिये।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि वही लिच्छवि-जाति, जो मनुस्मृति मे व्रात्य * गिनी गई है, यहाँ क्षत्रिय होने का दावा करती है।

जायसवाल महोदय का कहना है—"लिच्छवि शब्द 'लिच्छु' से निकला है। अर्थात् वे लोग 'लिच्छु' के अनुयायी या वशज थे। संस्कृत में इस शब्द का रूप 'लिक्षु' होगा। 'लिक्ष' शब्द का अर्थ है चिह्न, और 'लिक्षु' शब्द उसीसे सम्बद्ध है। उनका यह नाम संभवतः उनकी आकृति के किसी विशेष चिह्न के कारण पड़ा होगा। 'लक्ष्मण' शब्द इस बात का एक दूसरा उदाहरण है। बिहार और दुआब मे अब तक लोगों का नाम 'लच्छू' होता है, जो इसी बात का सूचक है कि जिस व्यक्ति के शरीर पर कोई बड़ा काला या नीला चिह्न होता है, प्रायः उसका यह नाम पड़ जाता है।"†

कुछ शिलालेखों से पता लगता है कि लिच्छवि सूर्यवंशी थे। प्राचीन मगध का शिशुनाग-वंश ही पहला राजवंश है, जिसके विषय में ऐतिहासिक प्रमाण काफी

* झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥

हिन्दूशास्त्रों में व्रात्य वह कहा गया है जो संस्कार, और प्रधानतया यज्ञोपवीत-संस्कार, न करने से जातिच्युत हो गया हो।

† Hindu Polity.

तौर पर मिलते हैं। ईसवी सन् के पूर्व की छठी शताब्दी में, इस वंश का पाँचवाँ राजा बिम्बिसार हुआ। उसने शिशुनागवंश की ख्याति खूब बढ़ाई। नवीन राजगृह की नींव उसीने डाली और अंग देश को जीतकर अपने राज्य मे मिलाया। उसने दो विवाह किये—एक तो कोशल देश की राजकन्या से और दूसरा लिच्छवियों की राजकन्या से। सर्वप्रथम लिच्छवियों का जिक्र हमें इसी संबंध में मिलता है। बिम्बिसार की दूसरी रानी—अर्थात् लिच्छवियों की राजकन्या—के गर्भ से बौद्ध-इतिहास-प्रसिद्ध अजातशत्रु (कुनिक) का जन्म हुआ। कहते हैं कि यह अजातशत्रु अपने पिता को मारकर राज्य का स्वामी बन बैठा। उस समय शिशुनाग-वंश का शासन राजगृह, अंग और मगध पर था। अजातशत्रु ने लिच्छवियों का देश—आधुनिक तिरहुत—भी जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया। बौद्धग्रन्थों मे उल्लेख है कि अजातशत्रु ने भगवान् बुद्ध के सम्मुख अपने समस्त पापो को स्वीकृत कर लिया था और उसके लिये प्रायश्चित्त भी किया था। अन्त मे वह तथागत का शिष्य हो गया। प्रसिद्ध जैन-तीर्थङ्कर 'महावीर' की माता भी लिच्छवि-वंश की थी।

इस समय के बाद करीब आठ सौ वर्षो तक—ईसा के पूर्व ५०० वर्षों से ईसा के बाद ३०० वर्षों तक—लिच्छवि-वंशवालों का जिक्र इतिहास में बिलकुल नहीं मिलता; ईसवी सन् की चौथी शताब्दी में वे एकाएक फिर इतिहास में दिखाई पड़ते है। ईसवी सन् ३०८ के लगभग गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने लिच्छवि-वंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह किया। यह विवाह राजनीतिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का था। सच पूछिये तो इस विवाह से गुप्तवंश के भाग्य खुल गये।

ऐसा मालूम होता है कि जिस समय यह विवाह हुआ उस समय मगध का आधिपत्य लिच्छवियो के हाथ में था। हर्ष-संवत् १५३ (ई० सन् ७५९) के एक लेख से इनका राज्य पुष्पपुर (पटना) में भी होना प्रकट होता है। चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के विवाह-संबंध से वह राजशक्ति, जो अबतक लिच्छवियों के हाथ में थी, चन्द्रगुप्त (प्रथम) के हाथ मे चली गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विवाह-सम्बंध द्वारा चन्द्रगुप्त (प्रथम) एक छोटे जागीरदार से बढ़कर 'महाराजाधिराज' हो गया।

इस अनुमान का एक कारण है। चन्द्रगुप्त (प्रथम) के समय के एक प्रकार के (विवाह-सूचक) सिक्के मिलते हैं। इनपर एक तरफ चन्द्रगुप्त (प्रथम) और उसकी रानी कुमारदेवी दोनों खड़े हैं। इनके निकट ही इनके नाम भी लिखे हैं। दूसरी तरफ भी सिंह पर बैठी हुई अम्बिका देवी का चित्र अंकित है और पास

ही 'लिच्छवियः' लिखा है। समुद्रगुप्त तथा अन्य गुप्तवंशी राजा भी बड़े अभिमान के साथ अपनेको 'लिच्छविदौहित्र' लिखते पाये जाते हैं।

इन बातो से तो यही अनुमान होता है कि लिच्छवि-वंश के संबंध को गुप्तवंशी राजा बड़े सौभाग्य की बात समझते थे। तभी तो समुद्रगुप्त और उसके वंशजो ने चन्द्रगुप्त के इस सबंध को बड़े गर्व के साथ प्रकट किया है। इसमें तो कोई शक नही कि उस समय भी लिच्छवि-वंश प्राचीन और श्रेष्ठतम राजवंशों मे गिना जाता था।

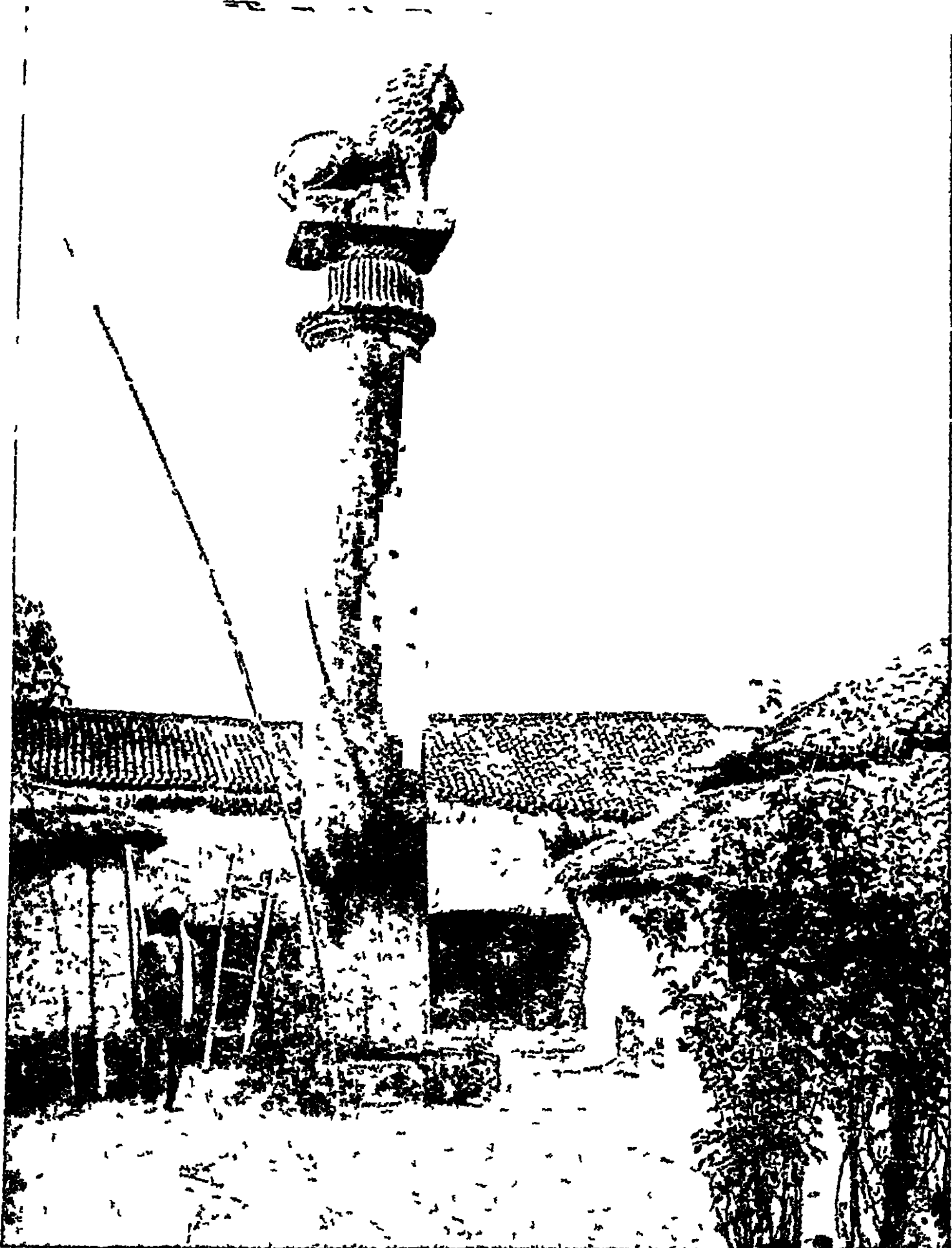
इसके अनन्तर फिर ई० सन् ६३५ के लगभग इस वश के राजाओं के राज्य का पूर्वी नैपाल में होना पाया जाता है। परन्तु, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि ये नैपालवाले राजा वैशालीवाली शाखा के ही थे, या उसी वंश की किसी अन्य शाखा के। कुछ इतिहासज्ञो का अनुमान है कि लिच्छवि-वंश की नैपालवाली शाखा ने ई० सन् १११ से अपना सवत् भी प्रचलित किया था। जिस समय ये लिच्छवि पूर्वी नैपाल पर राज करते थे, उसी समय पश्चिमी नैपाल पर ठाकुरी-वंश के राजाओ का प्रभुत्व था। यह भी पता लगता है कि इन दोनो कुलो का प्रभाव कभी घटता और कभी बढ़ता रहा।

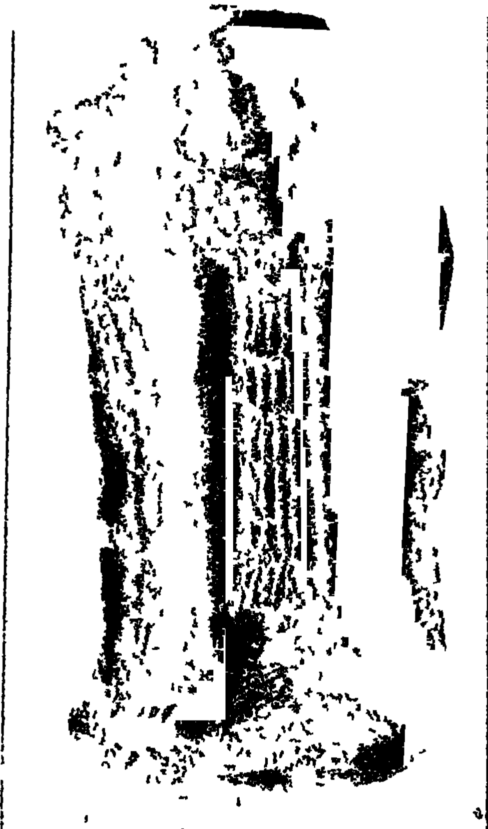
काठमांडू (नैपाल) मे पशुपति के मन्दिर के पश्चिमीय द्वार के सामने एक नन्दी रक्खा हुआ है। इसी के समीप हर्ष-संवत् १५३ (वि० सं० ८१६) का लेख लगा है*। यह राजा जयदेव (परचक्रकाम) के समय का है।

इस शिलालेख से पता लगता है कि लिच्छवि-जाति नैपाल में इतनी शक्ति सम्पन्न हो गई थी और उन्नति के इतने ऊँचे शिखर पर पहुँच गई थी कि वह वहाँ सूर्यवंश की एक शाखा समझी जाने लगी थी। शिलालेख मे राजाओं की वंशावली इस प्रकार दी गई है—

"सूर्यवंश मे मनु आदि के बाद राजा दशरथ हुआ। उससे नवाँ राजा लिच्छवि था। उसके वश मे राजा सुपुष्प हुआ। इसका जन्मस्थान पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) था। इसके बाद चौबीसवाँ राजा जयदेव हुआ। इसकी बारहवीं पीढ़ी में राजा वृषदेव हुआ। यह बुद्ध का भक्त था। इसके बाद क्रमश: शकरदेव, धर्मदेव, मानदेव, महीदेव और वसन्तदेव राजा हुए। इनके बाद फिर क्रमशः उदयदेव, नरेन्द्रदेव, शिवदेव (द्वितीय) के नाम लिखे हैं। इस शिवदेव (द्वितीय)

* इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ९, पृष्ठ १७८।





'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) मे प्राप्त—मिट्टी की, पकाई हुई, मूर्त्ति का, कमर के नीचे का, हिस्सा।

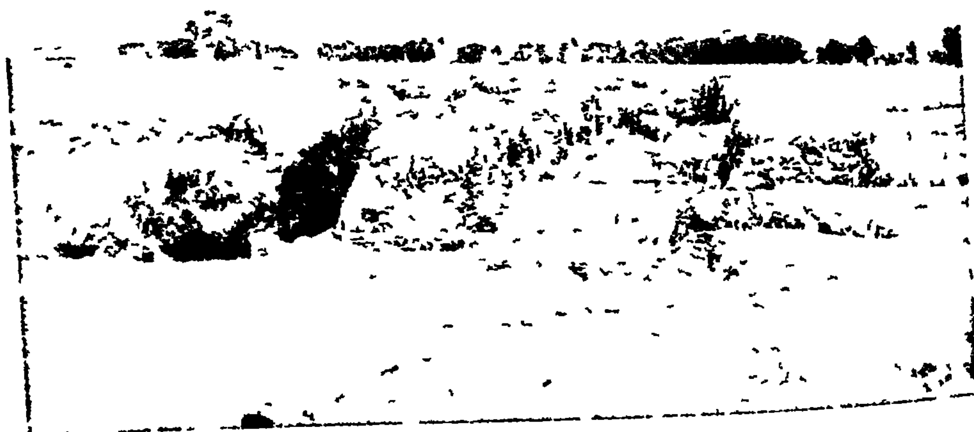


वैशाली (मुजफ्फरपुर) मे प्राप्त—मिट्टी की, पकाई हुई, मूर्त्ति का सिर।

'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) के निकट 'कोल्हुआ' नामक गाँव का अशोक-स्तम्भ, जिसे अब लोग 'भीम की लाठी' कहकर पुकारते है। इसकी ऊँचाई ३६ फीट और नीचे की गोलाई ४९.८ इंच से शुरू होकर ऊपर ३८.७ इंच मे खतम हुई है। ऊपर सिंह की सजीव-सी मूर्त्ति है, जिसका रुख उत्तर की ओर है। इसे अशोक ने, अपने राज्य के २१ वे वर्ष मे, अपनी बुद्धतीर्थयात्रा के सिलसिले में, बनवाया था।



वैशाली (मुजफ्फरपुर) के चारों ओर, शायद नगर-रक्षा के लिये, बनाई गई खाई, जिसकी चौड़ाई २०० फीट तक की थी, किन्तु अब चौड़ाई सिर्फ १५० फीट रह गई है, जिसमें अधिकतर खेती होती है।



भारत के प्राचीनतम प्रजातंत्र-राज्य 'वैशाली' (मुजफ्फरपुर) का भग्नावशेष, जो लगभग एक मील के घेरे में है। यहीं बुद्ध ने अपने निर्वाण की भविष्यवाणी की थी, और यहीं बौद्धधर्म की द्वितीय 'संहति' बैठी थी। साधारणत यह 'राजा विशाल का गढ़' के नाम से प्रसिद्ध है।

का विवाह मौखरी-राजा भोगवर्मा की कन्या वत्सदेवी से हुआ था। यह वत्सदेवी मगध देश के राजा आदित्यसेन की नवासी थी। इसीके गर्भ से जयदेव उत्पन्न हुआ। इसकी उपाधि 'परचक्रकाम' थी। इसने गौड़, ओड्र, कलिंग और कोशल के राजा हर्षदेव की कन्या राज्यमती से विवाह किया था। यह हर्षदेव भगदत्त के वंश में था।"

इसके बाद अनेक राजा इस वंश में हुए।

गुप्तवंशी राजाओं के समय से, विशेषकर भारतवर्ष में, लिच्छवि-वंश का क्या हाल हुआ, यह अतीत के गर्भ में छिपा पड़ा है। गुप्तकाल में, हिन्दूधर्म के पुनरुज्जीवन के साथ-ही-साथ, हिन्दुओं की प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का भी पुनरुद्धार अवश्य हुआ होगा। कदाचित् इसी समय वैशाली के प्राचीन लिच्छवि-वंश ने भी बौद्धधर्म को छोड़कर हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया। और, यही कारण है कि प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाँग अपनी भारतयात्रा के वर्णन मे लिखता है—

"ईसा की सातवीं शताब्दी में वैशाली में बौद्धधर्म अपनी क्षीण दशा में था और हिन्दूधर्म का प्रचार बढ़ रहा था।"

वैशाली का वर्णन करते हुए उसने आगे लिखा है—"इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग पाँच हजार 'ली' है।..... विरोधी और बौद्ध दोनों मिलजुलकर रहते हैं। कई सौ संघाराम यहाँ है। परन्तु सब-के-सब खँड़हर हो गये है।.... वैशाली का प्रधान नगर अत्यन्त अधिक उजाड़ है। इसका क्षेत्रफल ६० से ७० 'ली' तक और राजमहल का विस्तार ४ या ५ 'ली' के घेरे मे है। बहुत थोड़े-से लोग इसमें निवास करते है।"

ह्वेनसाँग से करीब तीन सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान भी वैशाली आया था। उसने वैशाली का वर्णन करते हुए लिखा है—"......... वैशाली नगर के उत्तर एक महावन कूटागार विहार है—बुद्धदेव का निवासस्थान है— आनन्द का अर्द्धाङ्गस्तूप है। नगर में अम्बपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्धदेव का स्तूप बनवाया—अबतक वैसा ही है। नगर के दक्षिण तीन 'ली' पर अम्बपाली वेश्या का बाग है जिसे उसने बुद्धदेव को दान दिया कि वे उसमें रहे। बुद्धदेव परिनिर्वाण के लिये जब सब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले तब दाहिनी ओर वैशाली नगर को देखकर शिष्यों से कहा, यह मेरी अन्तिम विदा है। पीछे लोगों ने वह स्तूप बनवाया ....।"

ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर आजतक, प्राचीन वर्णव्यवस्था में

धार्मिक और सामाजिक तथा राजनीतिक भेदों के आधार पर, इतने परिवर्त्तन हुए हैं कि इस समय भारतवर्ष मे लिच्छवि-वंश का कोई चिह्न भी बाकी नहीं है।

परन्तु लिच्छवि-वंश अपनी एक अमर कीर्त्ति छोड़ गया है। पश्चिमवाले आज प्रजातंत्र और गण-शासन की रट लगाया करते हैं। वे अपनेको इन महान् सिद्धान्तो का जन्मदाता समझते हैं! लेकिन उन्हें पता नही कि आज से कई हजार वर्ष पहले विहार की 'वैशाली' में प्रजातन्त्र का जीता-जागता ढाँचा मौजूद था। तब शायद उन्होंने इन सिद्धान्तों का स्वप्न भी न देखा होगा।

'जातक' में स्पष्ट रूप से लिखा है—"वेसालि नगरे गणराजकुलानां अभि सेक पोक्खरणीम्"—लिच्छवियों को गणशासक अर्थात् प्रजातंत्री कहा है।

'अट्ठ-कथा' में लिच्छवियों की राज्यव्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है। उसमे तीन मुख्य अधिकारियों—राजा, उपराज और सेनापति—का उल्लेख है। इससे भी पहले के एक ग्रथ मे एक चौथे अधिकारी का भी उल्लेख है जो 'भांडागारिक' कहलाता था। इन्ही चारो का सर्वप्रधान शासनकारी मंडल होता था।

'जातक' मे यह भी लिखा है कि राजधानी 'वैशाली' नगरी मे थी और उसमें तीन प्रकार के वधन होते थे। शासन (रज्जम्) अधिवासियों के हाथों में था, जिनकी संख्या ७७०७ थी और जिनमें से प्रत्येक शासक (राजानम्) होने का अधिकारी होता था। उन्हीं लोगो में से राजा, उपराजा, सेनापति तथा भांडागारिक का चुनाव होता था।❀

राजा ही सर्वप्रधान न्यायकर्त्ता भी होता था। न्याय-विभाग में एक वैतनिक मत्री होता था, जो बाहरी या दूसरे देश का भी हो सकता था। नागरिकों की स्वतत्रता का बहुत ध्यान रक्खा जाता था। मुकदमो की आरभिक जाँच-पड़ताल करने के लिये न्यायाधीशों (विनिच्चय-महामात्त) का एक स्वतंत्र न्यायालय होता था। इसी मे दीवानी तथा साधारण फौजदारी के मुकदमे भी सुने जाते थे। सर्व प्रधान न्यायालय या हाइकोर्ट के न्यायाधीश 'सूत्तधर' कहलाते थे। लेकिन इन सब के ऊपर एक कौसिल और भी होती थी, जिसमे आठ न्यायकर्त्ता होते थे। इस कौंसिल को 'अट्टकुलक' कहते थे। अपराधी को अधिकार होता था अपील करने का।

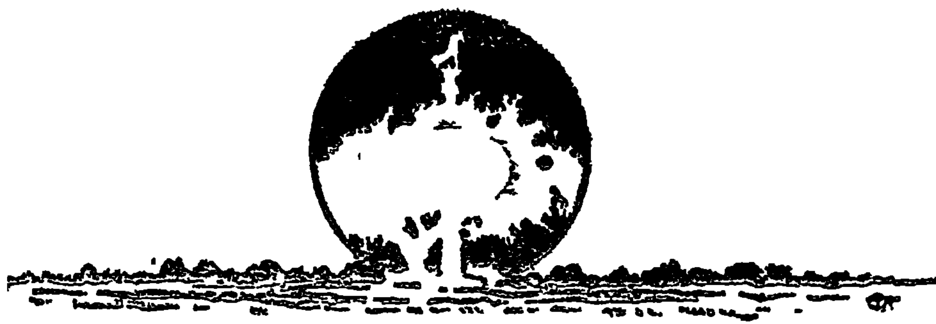
❀"तत्थ निच्चकाल रज्ज कारेत्वा वसंतानं एव राजून सत्तसहस्सानि सत्तसतानि सत्त च। राजानो होंति तत्तका, ये व उपराजानो तत्तका सेनापतिनो तत्तका, तत्तका भडागारिको।" —जातक

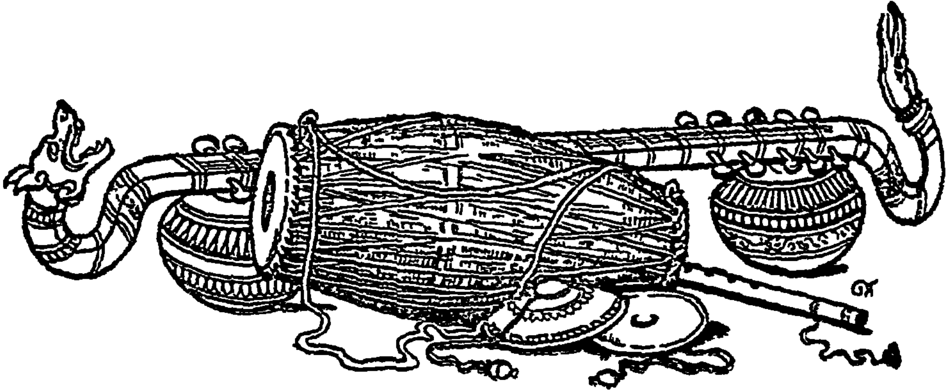
बौद्धग्रंथों और लेखो से पता लगता है कि विदेहों और लिच्छवियों ने मिलकर एक 'संयुक्त संघ (लीग) ' की स्थापना की थी। दोनों मिलकर 'संवज्जी' कहलाते थे, जिसका तात्पर्य है आपस में संयुक्त वज्जी लोग। ❀

यही नहीं, एक जैन-लेख से तो पता लगता है कि एक बार लिच्छवियों का इसी प्रकार का मेल उनके पड़ोसी मल्लों के साथ भी हुआ था। इस संयुक्त कौंसिल में अठारह सदस्य थे, जिनमें नौ 'लेच्छकी' और नौ 'मल्लकी' थे। इस कौंसिल के सदस्य 'राजा' कहे जाते थे। डाक्टर जैकोबी ने इन सदस्यों को 'अठारह संयुक्त राजा' कहा है। कहते हैं, यह संयुक्त कौंसिल ई० पू० ५४५ या ५२७ तक बनी रही थी। कुछ प्राचीन ग्रंथों से यह भी मालूम होता है कि इस कौसिल का कोशल के राजा से भी किसी प्रकार का राजनीतिक समझौता या मेल था। +

❀ Buddhist India, Page 22.

+ Hindu Polity.





बिहार और संगीत-कला

श्रीमुरारिप्रसाद ऐडवोकेट, पटना-हाइकोर्ट

संगीत

'संगीत' शब्द का अर्थ है एक सङ्ग होकर गाना बजाना (सम्=एक साथ+गीतं=गाया गया)। 'संगीतरत्नाकर' कहता है—"गीतं वाद्य तथा नृत्य त्रयः सगीतमुच्यते"—अर्थात् गाना, बजाना और नाचना, तीनों मिलकर संगीत कहलाते है। और, यत: नृत्य के साथ अभिनय (भाव बताना) एक अविच्छिन्न अग रहता है, इसलिये कोई-कोई लास्य—भाव बताने या अभिनय करने—को भी चौथा साथी मानते हैं—"केचित् लास्यं चतुथकं।"

इस देश में गवैयो के अभ्यास-समय (रेयाज या Practice) को छोड और कोई ऐसा समय नही जब उनका गाना लय के साथ न होता हो, और अभ्यास करने के समय भी कभी-कभी तबला या मृदंग बजता है।

संगीत का पूरा दृश्य नटो और नर्त्तकियों के नाचने में मिलता है—गाना, नाचना, वाद्य बजाना, भाव बताना, सब एक साथ होते हैं।

अँगरेजी या योरप की भाषा मे जो शब्द 'संगीत' के लिये व्यवहृत होता है—'म्युजिक' (Music), वह भारतीय संगीत का यथार्थ पर्यायवाचक नहीं होता; क्योंकि योरप में म्युजिक केवल कंठगान (Vocal Music) को कहते हैं, और नृत्य (Dance) से इसकी पृथक् गणना होती है, तथा तालवाद्य को भी एक प्रकार से पृथक् ही मानते हैं।

संगीत-पद्धति

भारतवर्ष में संगीत की दो पद्धतियाँ (Systems) हैं—एक तो उत्तरभारत की पद्धति, जिसको 'हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति' कहते हैं और दूसरी दक्षिण की

पद्धति, जिसको 'कर्णाटकी पद्धति' कहते हैं। उत्तर-भारतवर्ष मे बिहार, युक्तप्रान्त, आगरा, दिल्ली, पंजाब, काश्मीर, राजपूताना, बम्बई और बंगाल सम्मिलित हैं। इसलिये, यद्यपि बिहार का हिस्सा हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचार और प्रसार में बहुत अधिक रहा है, तथापि बिहार की पद्धति हिन्दुस्तानी पद्धति से अलग वस्तु नहीं है।

बिहार का प्रदेश

इस समय बिहार-प्रान्त का क्षेत्र जितना संकुचित है, प्राचीन समय में बिहार का प्रदेश उतना संकुचित नहीं था। वाल्मीकीय रामायण के समय में तो बिहार और उससे भी पूर्व तक के प्रदेश महाराज दशरथ और श्रीमहाराज रामचन्द्र के राज्य के अन्तर्गत थे; केवल विदेह (मिथिला) मे महाराज जनक का राज्य था। मुगल बादशाहों के राजत्वकाल में भी बिहार युक्तप्रान्त से पृथक् नहीं था। जब अँगरेजी राज्य शुरू हुआ, तब भी बिहार और संयुक्तप्रान्त—कम-से-कम बनारस की कमिश्नरी (बनारस, गाजीपुर, बलिया और जौनपुर के जिले)—एक साथ थे।

यदि इस समय के बिहार और बनारस की कमिश्नरी को हम एक साथ मान लें, तो स्पष्ट हो जायगा कि जो इस समय हिन्दुस्तानी-संगीत पद्धति कहलाती है, उसका तीन-चौथाई अंग बिहारी है। और, बिहार की संगीत-पद्धति के भीतर मैथिली संगीत-पद्धति का बहुत बड़ा हिस्सा है।

मैथिली संगीत-पद्धति

इस पद्धति का प्रचार बहुत प्राचीन समय से चला आता है। मिथिला मे संगीत पर कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे गये, जिनमे लोचन कवि की 'रागतरंगिणी' तो प्रकाशित है, और सब अप्रकाशित हैं। मिथिला में सगीतविद्या पर सिंघ-भूपाल ने चौदहवीं शताब्दी में 'संगीत-रत्नाकर-व्याख्या' नामक ग्रन्थ लिखा। उसके बाद सोलहवीं शताब्दी मे पंडित जगद्धर ने 'सगीत सर्वस्व' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। जगद्धर के पीछे खड्गराम और कल्लीराम ने 'लच्छिराघव' नामक ग्रन्थ की रचना की; उनके पीछे सत्रहवीं शताब्दी के समीप—मिथिला के राजा महीनाथ ठाकुर के राजत्वकाल मे—लोचन कवि ने उपर्युक्त 'राग-तरङ्गिणी' लिखी, और एक दूसरा ग्रन्थ 'संगीतसग्रह' भी लिखा जिसका उल्लेख उन्होंने 'रागतरङ्गिणी' में ही किया है। 'लच्छिराघव' मिथिला के राजा शिवसिंह के राजत्वकाल के आसपास में लिखा गया। राजा शिवसिंह के समय मे ही जगत्प्रसिद्ध कवि एवं स्वनामधन्य सगीता-

चार्य विद्यापति ठाकुर हुए थे। राजा महीनाथ ठाकुर के छोटे भ्राता 'रागतरङ्गिणी' में 'ध्वनिसिन्धु' की उपाधि से विभूषित हैं, जिससे वे भी संगीत के एक आचार्य सूचित होते हैं।

संगीतोत्पत्ति

संगीत के मुख्य आधार तो स्वर हैं और संगीत के स्वर साधारण ध्वनियों (Sounds) से पृथक् हैं। जितनी ध्वनियाँ होती हैं, सब संगीत के स्वर नहीं कही जा सकतीं। जो प्राणवायु नाक से खीची जाती है या जो अपानवायु छोड़ी जाती है, योगी लोग तो उसको भी स्वर कहते हैं; किन्तु वे संगीत के स्वर नहीं हैं। संगीत का स्वर तो वह ध्वनि है, जो एक विशिष्ट ऊँचाई (Pitch) पर कुछ नियमित समय तक एक-सा (Uniformly, Continuously) गूँजती रहे—अर्थात् जिसमे स्थिरता (Duration) हो। जिसमे कुछ स्थिरता नही है, वह ध्वनि संगीत का स्वर नही हो सकती।

स्वरता का ज्ञान

प्राचीन समय मे पहले-पहल संगीत के स्वर—स्थिर ध्वनि (Durated Sound)—का ज्ञान कब हुआ और किस तरह हुआ, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। प्राचीन शस्त्रो मे धनुष एक प्रसिद्ध शस्त्र था, जो अब भी पाया जाता है, और धनुष का टंकार 'संगीत-स्वर' का विशिष्ट नमूना है; और इन टंकारों से केवल स्वरता का ही ज्ञान नहीं होता है, किन्तु स्वरो की ऊँचाई और नीचाई का भी पता लगता है। धनुष जितना बड़ा होगा, उसका रोदा (प्रत्यंचा, String) उतना ही मोटा और लम्बा होगा तथा उसकी ध्वनि भी नीची और गंभीर (Low and deep) होगी। और, क्रमशः, धनुष जितना छोटा और तदनुसार रोदा जितना पतला होगा, उसके टंकार की ध्वनि उतनी ही पतली और ऊँची होगी।

जब किसी आदमी को हम दूर से पुकारते हैं, जैसे—"रामरतन हो!!!" तब अन्तवाली जो 'हो' ध्वनि निकलती है, वह स्थिर ध्वनि होती है। दो वर्त्तनों के टक्कर लगने से जो एक ध्वनि होती है, वह भी स्थिर ध्वनि (Durated Sound) है। इसी तरह, जंगलो मे सूखे हुए बाँस मे भौरों के द्वारा किये गये छेद के ऊपर से, अथवा दो वृक्षों के बीच मे फैली हुई सूखी लता के ऊपर से, हवा के झोंके चलने पर जो ध्वनि पैदा होती है वह भी स्थिर ध्वनि है—जितने जोर से बाँस के

छेद के ऊपर होकर अथवा लता पर से हवा चलती है, क्रमशः उतनी ऊँची ध्वनि भी होती है। इन्हीं सामग्रियों में से किसी एक या एक से अधिक से स्वरता का ज्ञान पहले-पहल हुआ।

अनुमान यह होता है कि धनुष के टंकार से और लताओं के ऊपर लगनेवाले हवा के झोंके से जो ध्वनि हुई, उससे तंत्रवाद्य (Stringed instrument) 'एकतारा' का और उससे आगे बढ़कर वीणा का ज्ञान और प्रचार हुआ; और बाँस के छेद से निकलनेवाली ध्वनि से वंशी (बाँसुरी) का ज्ञान और प्रचार हुआ।

स्वरता का ज्ञान होने पर जो कंठगान शुरू हुआ वह भी आदि में बहुत ही मौलिक—अर्थात् एक और दो सुरों का, ऊँचे-नीचे स्थानों का, हुआ। उसीसे बढ़कर पीछे और भी स्थानों का ज्ञान हुआ। क्रमशः इन स्थानों के नाम पड़ते गये। अन्त में आकर स्वरों के आधुनिक नाम पड़े।

वैदिक गान

इस समय स्वरों के विषय मे क्रमशः ज्ञानवृद्धि और उनके नामकरण का तथा एक स्वर-मंडल (आधुनिक सप्तक) के कायम होने का पता, 'सामगान' और सामवेद पर लिखी हुई प्रातिशाख्यों और शिक्षाओं से, लगता है।

आदि में सामगान दो ही स्वरो में, प्रत्युत दो स्थानो पर ही, होता था—एक ऊँचा स्थान, जिसको 'उदात्त कहते थे (जिस शब्द का अर्थ भी ऊँचा ही है) और दूसरा अनुदात्त (ऊँचा नहीं, नीचा)। व्याकरणाचार्य पाणिनि ने कहा है—"उच्चैरुदात्तः नीचैरनुदात्तः।" इन दो उदात्त-अनुदात्त स्थानों पर गान होते-होते, क्रमशः कंठस्वर की शक्तिवृद्धि और प्रसार (Strength and development of the Voice) के होते-होते, और भी स्थानों एवं स्वरों का ज्ञान होता गया तथा उन स्थानों के नाम पड़ते गये—एक समय में क्रुष्ट, उदात्त, अनुदात्त और मन्द्र नाम पड़े जो इस समय के संगीत के पंचम, शुद्ध, मध्यम, षड्ज और निषाद स्वर कहे जा सकते हैं।

आदि में गाना ऊँचे से नीचे की ओर होता था। बहुत दिनों तक वैसा ही चला आया। क्रुष्ट स्वर सबसे ऊँचा था और मन्द्र सबसे नीचा।

देखा जाता है कि उदात्त और अनुदात्त के बीच में जो अन्तर (Space) है, वह एक बड़ा अन्तर है। पीछे आकर उसी अन्तर में दो और सुरों के स्थान

पकड़े गये—उनका नाम भी रक्खा गया, जिससे छ नाम पड़े। एक तो क्रुष्ट रहा, जो अन्तिम ऊँचा स्थान था। दूसरा रहा मन्द्र, जो सबसे नीचा स्थान था। क्रुष्ट के नीचे जो उदात्त प्रथम या आदि स्वर था उसका नाम प्रथम ही रक्खा गया। उसके नीचे इस समय का गांधार स्वर पड़ता है, जिसका नाम द्वितीय पड़ा; और उसके नीचे जो ऋषभ है उसका नाम तृतीय पड़ा। जो पहले का अनुदात्त स्वर—आधुनिक षड्ज स्वर—था, उसका नाम चतुर्थ पड़ा। वे छ नाम क्रमशः यों हुए—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र (प, म, ग, री, सा, नी)। हाँ, आगे बढ़ने पर एक और स्थान पकड़ा गया, जिसका नाम अतिस्वारीय या अतिस्वार्य पड़ा। इस प्रकार पूरा सप्तक या स्वरमंडल कायम हुआ।

ऊपर दिये हुए सात नाम—क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य (प, म, ग, री, सा, नी, ध) ऋक्प्रातिशाख्य तथा राग विबोध में पाये जाते हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में स्वरों की क्रमशः वृद्धि और उनके नामकरण का किसी ग्रन्थ मे पता नही मिलता। इससे यह मालूम होता है कि प्राचीन लौकिक पद्धति ने—जो आगे बढ़कर हिन्दुस्तानी पद्धति हुई—वैदिक स्वर-मंडल को ही अपना लिया (Adopted); किन्तु लौकिक पद्धति में जो 'षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद' नाम पाये जाते हैं और उनका क्रम नीचे से ऊपर को देखा जाता है, यह कब कायम हुआ, इसका ठीक पता नही लगता। लौकिक पद्धति पर जो आदिग्रन्थ इस समय पाया जाता है, वह भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है; उसीमें ये क्रम और नाम पाये जाते हैं।

आधुनिक संगीत की जन्मभूमि

जहाँतक पता चलता है, आदि-गान सामगान ही है। उसीके क्रमशः बढ़ने का पता लगता है। ऋषि लोग अपने दैनिक पूजा-होम के समय या बडे-बड़े यज्ञों में सामगान किया करते थे। कही-कही एक ही समय मे पाँच-सात ऋषि एकत्र होकर सामगान करते थे। उस गान मे भाग लेनेवालों का नामकरण हुआ—प्रणेता, प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्त्ता। गान के जिन अशों को वे लोग पृथक्-पृथक् गाते थे, उनके नाम हुए—प्रणव, प्रस्ताव, उद्गीत और प्रत्याहार। प्रणव तो ॐकार का उच्चारणमात्र था और प्रत्याहार का एक अंश 'निधन' था, जो इस समय का 'न्यास स्वर' कहा जा सकता है।

ऋषियों के उपरान्त राजा लोग भी अश्वमेधादि यज्ञ किया करते थे, जिनमें ऋषि लोग प्रायः आचार्य होते और सामगान करते थे। उन यज्ञों में ऋषि, राजगण, वैश्यगण और सेवा के लिये शूद्रगण भी उपस्थित रहते थे। वहाँ सब लोग सामगान सुनते थे।

प्राचीन समय में गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ गान-विद्या का अध्ययन और अभ्यास करते थे। किन्तु इनलोगों के विषय में कहा जाता है कि ये लोग स्वर्ग में ही गान करते थे। इस लोक में प्राचीन राजाओं के दरबारों में उनके सूत, मागध और बन्दीजन के अतिरिक्त नर्त्तकों और नर्त्तकियों की जमात भी रहती थी। सामगान से जो कुछ विद्यालाभ होता था उसका प्रचार और यज्ञों से बाहर जनता में और राजगायक-गायिका-मंडली में भी हुआ। यही लौकिक गान बढ़ते-बढ़ते आजकल की संगीत-पद्धति कहलाता है।

सामगान के नियम बहुत क्लिष्ट और कठिन थे। उन नियमों से जकड़ा हुआ वह गान बहुत विस्तृत न हुआ। लेकिन लौकिक गान उन नियमों से बँधा हुआ नहीं था; इसलिये यह अधिक विस्तृत हुआ और आगे चलकर इसमें अपने नये नियम बने।

वैदिक गान में बिहार की सहायता

बिहार का प्रदेश बहुत प्राचीन है। इस प्रदेश के अन्तर्गत गौतम, भृगु, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य आदि कई महर्षियों के आश्रम थे, जिन आश्रमों में वैदिक यज्ञ और गान सतत हुआ करते थे। सबके ऊपर राजर्षि महाराज जनक विदेह का नगर और आश्रम था, जहाँ बड़े-बड़े महर्षियों और देवर्षियों की सभाएँ हुआ करती थीं—जहाँ महर्षि-मंडलियाँ ज्ञानोपदेश ग्रहण करने के लिये जाया करती थीं। वैदिक गान में एक-दो ऋषियों के बनाये हुए कोई एक-दो मन्त्र नहीं गाये जाते थे, प्रत्युत ऋग्वेद के मंत्रसमूह गाया जाया करते थे और उन्हीं मन्त्रों का समूह सामवेद है।

सामगान में किस ऋषि और किस प्रदेश ने कितना भाग लिया, इसकी कोई निश्चित गणना नहीं है; किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सामगान की उन्नति और प्रसार मे बिहार-प्रदेश का भाग सामान्य नहीं रहा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने, जो संस्कृतविद्या के मुख्य केन्द्र मिथिला के ही निवासी थे, संगीत-विद्या के अध्ययन और संगीत की उपासना को मुक्ति-मार्ग का अल्प-प्रयास साधन

कहा है। यथा—"वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः। तालज्ञश्चाप्रयासेन मुक्तिमार्गंनिगच्छति।

बिहार में संगीत के स्वर इत्यादि

बिहार में संगीत के स्वरों का वैसा ही प्रयोग होता है, जैसा हिन्दुस्तानी पद्धति मे। यहाँ साधारणतः सात नामों के बारह स्वरों का प्रयोग होता है, जिनके नाम हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इनके छोटे नाम हैं—स, री, ग, म, प, ध, नी। इनमें से षड्ज और पंचम सदा शुद्ध या अचल माने जाते हैं—अर्थात् इनमें कोमल और तीव्र (उतरी और चढ़ी) भेद नहीं लिये जाते हैं। बाकी पाँच 'री, ग, म, ध, नी' के तीव्र और कोमल दो प्रकार (भेद) माने जाते हैं। इस समय स, प, तीव्र री, तीव्र ग, तीव्र ध, तीव्र नी और कोमल म को शुद्ध स्वर कहते हैं तथा कोमल री, ग, ध, नी और तीव्र मध्यम (मं) को विकृत कहते हैं।

स, री, ग, म, प, ध, नी—इन सात स्वरों के सीधे क्रम-समूह को सप्तक कहते हैं; जिस समूह का नाम वैदिक गान में स्वरमंडल था। प्राचीन समय में, जैसा पहले कहा जा चुका है, इन स्वरों का क्रम ऊपर से नीचे की ओर था। आधुनिक समय मे इनका क्रम 'स' से ऊपर की ओर 'नी' तक लिया जाता है और 'नी' से ऊपर जाकर फिर 'स, री, ग, म, प, ध, 'नी' नीचेवाला ही क्रम चलता है। ऐसे-ऐसे तीन सप्तक कठगान (Vocal Music) मे लिये जाते हैं। सबसे नीचेवाले सप्तक को मन्द्रसप्तक कहते हैं—बीचवाले को मध्यसप्तक और ऊपरवाले को तारसप्तक। हमारे यहाँ मन्द्रसप्तक के 'स' सुर की कोई एक निश्चित ऊँचाई (Standard Pitch) सबके लिये नहीं रक्खी गई है; हरएक गानेवाला अपने कंठ की सबसे नीची ध्वनि को—मन्द्रसप्तक का 'स'—लेता है और उसीके अनुसार अन्य स्वरों की ऊँचाई रखता है तथा उसीके अनुसार तम्बूरा इत्यादि के तारों को मिलाता है। यह बात प्राचीन समय से मानी जाती चली आई है, और जो अब शब्दविज्ञान की नाप से सही पाया गया है, वह यह है कि मन्द्र सप्तक के 'स, री, ग, म' इत्यादि स्वरों से क्रमशः मध्यसप्तक के 'स, री, ग, म' इत्यादि स्वर ऊँचाई (Pitch) में दुगने और मध्यसप्तकवालों से तार-सप्तकवाले भी ऊँचाई में दुगने हैं।

संगीत के सात स्वर अपनी-अपनी जगह पर सदा से निश्चित हैं। इनकी

जगहों को किसीने बनाया नहीं। जो जगह इनकी प्रकृति (Nature) में कायम है, उसीको क्रमशः लोगों ने पकड़ा (Detected), और उनके नाम देते चले गये।

इन सात स्वरो की सात जगहो की नाप हमारे यहाँ श्रुति-द्वारा निश्चित की गई थी। 'श्रुति' शब्द का अर्थ है—वह जो सुनी जाय, वह ध्वनि जो साफ और पृथक् सुन पड़े। स्वरो के बीच में ऐसी साफ-साफ और अलग-अलग सुनी और पहचानी जाने लायक दो-दो, तीन-तीन, चार-चार श्रुतियाँ मानी जाती थी और उनको 'स्वरान्तर' कहते थे। यथा—'स' और 'री' के बीच में तीन श्रुतियों का अन्तर, 'री' और 'ग' के बीच में दो का, 'ग' और 'म' के बीच में चार का, 'म' और 'प' के बीच में भी चार का, 'प' और 'ध' के बीच में तीन का, 'ध' और 'नी' के बीच में दो का, 'नी' और ऊपरवाले 'स' के बीच में चार का; और इसी हिसाब से स्वर चार श्रुतियो, तीन श्रुतियो और दो श्रुतियों के कहे जाते थे। ऐसी श्रुतियाँ बाईस मानी जाती थीं। उनके बाईस नाम थे और हैं। उन्हीं बाईस में से सात श्रुतियो पर ये सात स्वर क्रमश- पड़ते थे।

श्रुतियाँ केवल साफ सुनने योग्य ध्वनि ही मानी जाती थीं। उनका कोई ठहराव (Duration) नहीं लिया जाता था। जब श्रुतियाँ ठहरा दी जायँ (Durated), तब वे ही स्वर हो जायँगी।

सात स्वरों का आपस में स्वाभाविक (Natural) सम्बन्ध है, जिसको सवादित्व (Concordance) कहते हैं। 'स' और 'प'–जो आपस में (परस्पर) पाँचवें (Fifths) पड़ते हैं—'पूर्ण संवादी' (Major Concordants) कहलाते हैं। इसी तरीके पर 'ऋ' और 'ध', 'ग' और 'नी' इत्यादि पाँचवें-पाँचवें (Fifths) 'पूर्ण संवादी' कहलाते हैं। 'स' और 'म'—जो आपस में चौथे (Fourths) हैं—और उसी तरीके पर 'री प, ग ध, म नी, प, स' चौथे-चौथे (Fourths) 'न्यून संवादी (Minor Concordants) कहलाते हैं। परस्पर तीसरे (Thirds)—यथा स ग, री म, ग, प इत्यादि—'अनुवादी' (Assonants) कहलाते हैं। दो बगलवाले सुर—यथा 'स, री' या 'स, नी'—'परस्पर-विवादी' (Disconcordants) माने जाते हैं।

राग-रागिणी पुत्र-भार्या इत्यादि

सात स्वरों के भिन्न-भिन्न प्रकार के समूह (Group) होते हैं। ये समूह कोई पूरे सात स्वरों के (सपूर्ण), कोई पाँच स्वरों के औडव, कोई छ स्वरो के

षाडव होते हैं। इन समूहों के स्वरों को विशिष्ट रूपों में सजाने से भिन्न-भिन्न चित्ताकर्षक स्वर-स्वरूप बनते हैं। इन्हीं स्वर-स्वरूपो को साधारणतः 'राग' (Melody Types या Melody Groups) कहते हैं। ऐसे-ऐसे स्वर-स्वरूप गिनती में बहुत हो जाते हैं। उनको आपस में भिन्न-भिन्न समूहो में विभक्त करके किसी को 'राग' नाम दिया गया, किसी को रागिणी और किसी को पुत्र और भार्या।

प्राचीन—अर्थात् भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के—समय में राग, रागिणी, पुत्र, भार्या का विभाग नही था। पीछे आकर, ईसवी सन् की सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी में, श्री दामोदर मिश्र ने छ राग कायम किये तथा एक-एक राग की पाँच-पाँच रागिणियाँ और उनके आठ-आठ पुत्र और आठ-आठ पुत्रवधुएँ। रागों को पुरुष माना और रागिणियो को उनकी स्त्रियाँ। भैरव, मालकोष, हिंडोल, दीपक, मेघ और श्री—ये राग कहे गये। इन्हीं छ की रागिणियाँ और पुत्रभार्याएँ कायम हुईं। इतना ही नहीं, राग-रागिणियो के रूप भी मनुष्यो अथवा देवताओ के समान उन्होंने निश्चित किये। यथा—भैरव राग के वर्णन मे लिखा—उसके माथे पर गंगा, ललाट में चाँद, तीन आँखे, गले में सर्पों की माला, गजचर्म ओढ़े हुए, हाथ में त्रिशूल और नरमुंडो की माला पहने हुए हे। यह रूपवर्णन भगवान् शकर का है। इसी तरह अन्य राग-रागिणियो के भी रूपो का वर्णन किया है। यह रूप वर्णन कहाँ तक बुद्धिग्राह्य है, कहा नहीं जा सकता।

ठाट

पीछे आकर राग श्रेणीबद्ध किये गये। उनमें गाये जानेवाले (उनमें प्रयुक्त किये जानेवाले) स्वरो के अनुसार; उस श्रेणी का नाम पड़ा ठाट—अर्थात् जिन राग-रागिणियों में एक ही प्रकार के स्वर लगाये जाते हैं उन सबको एक श्रेणी या ठाट में रक्खा। यथा—एक राग 'कल्याण' है, जिसमे 'स, प' अचल और बाकी पाँच सुर तीव्र हैं। कल्याण के अतिरिक्त भूपाली, हिंडोल, शंकरा आदि और भी राग हैं जिनमे सब सुर तीव्र ही लगते हैं। इन रागो को कल्याण-ठाट का राग कहते हैं और इस समय ऐसे दस ठाट माने जाते है।

मियाँ के राग

किसो विशेष कारणवश, तानसेन ने, स्वामीजी को अनुमति और सहायता से, कई नये राग बनाये, जो इस समय 'मियाँ के राग' कहे जाते हैं। यथा—

मियाँ का मल्लार, मियाँ की टोड़ी, मियाँ का सारंग, मियाँ का कान्धरा इत्यादि। मियाँ का कान्धरा बादशाह अकबर को बहुत पसन्द था। शाही दरबार में यह अधिकतर गाया जाता था; इसीलिये लोग इसको 'दरबारी कान्धरा' भी कहने लगे—इस समय भी यही नाम प्रसिद्ध है।

ग्रह, न्यास, अंश

राग-रागिणियों के गाने-बजाने में कई प्रसिद्ध नियम हैं—अर्थात् किस सुर से राग का गाना शुरू होगा (ग्रह स्वर), किस सुर पर गाना समाप्त होगा (न्यास स्वर), किस सप्तक में राग अधिकतर गाया जायगा—स्थान, उस राग का मुख्य या वादी स्वर (जीव, अंश, स्वर) कौन है—संवादी स्वर कौन है—इत्यादि नियम बने हुए हैं। इन्हीं नियमों के अनुसार जब राग-रागिणी का गान होगा तभी एक राग-रागिणी दूसरी राग-रागिणी से पृथक् मालूम होगी। राग रागिणी आदि का यथार्थ रूप यही है, जिसको स्वर-स्वरूप भी कहते हैं। ग्रह-स्वर और वादी-संवादी स्वर के बदल देने से राग-रागिणी का गाने का रूप भी बदल जाता है।*

बिहार-(हिन्दुस्तानी)-संगीत के गीत

पहले कहा गया है कि आदि-गान वैदिक सामगान था, जिससे आगे चलकर लौकिक गान उत्पन्न हुआ। लौकिक गान में भी इस समय कभी-कभी मन्दिर आदि में थोड़ा सामगान हो जाता है। वेदमन्त्रों का छन्द अनुष्टुप् था और है; किन्तु उनके बाद महर्षि वाल्मीकि ने पहले-पहल श्लोक का उच्चारण किया और रामायण के समान वृहद् ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में लिखा। उनका यह पहला श्लोक—"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः, यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम-मोहितम्"—परम प्रसिद्ध है, जिसके कारण वे आदिकवि कहलाते हैं। और, जब श्लोक बने तब वे ही श्लोक गाये जाने लगे। उन श्लोकों का गान छन्द-गान कहा गया। यह बात प्रसिद्ध है कि स्वयं आदिकवि ने ही रामायण को गीत-बद्ध करके भगवान् रामचन्द्र के दोनों पुत्रों—कुश और लव—को सिखाया।

* स्वर, श्रुति, राग आदि का इससे अधिक वर्णन जिनको जानना हो वे मेरी लिखी हुई 'संगीत-प्रवेशिका' (द्वितीय और तृतीय भाग) देखें, या उर्दू में लिखी हुई 'मुआरिफुल-नगमात' या श्रीमान् विष्णुनारायण भातखंडे की प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति की क्रमिक मालिकाएँ' देखें। —लेखक

उनलोगों ने अयोध्या जाकर वह गान नगरों में और भगवान् रामचन्द्र की सभा में सुनाया।

छन्द-गान

संस्कृत के श्लोक भिन्न-भिन्न छन्दों के बनने लगे। प्राचीन समय से गाने के साथ मृदङ्ग और मृदङ्ग से निकले हुए दूसरे तालवाद्य बजते चले आते हैं। इसलिये जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न मात्राओं के श्लोक बनने लगे; वैसे-ही-वैसे, उनके साथ-साथ, मृदङ्ग के भी भिन्न-भिन्न मात्राओं के पद बनते गये, जिन्हें इन दिनों 'पखावज की थपिया' कहते हैं। इसी तौर पर मृदङ्ग आदि तालवाद्य में भी भिन्न भिन्न लय अथवा ताल कायम होते गये। लयों की वृद्धि इसी प्रकार हुई।*

प्रबन्ध-गान

संस्कृत के श्लोक चार पदों के हुआ करते थे, जिन्हें आजकल 'तुक' कहते हैं। बाद कविवर जयदेव ने 'गीत गोविन्द' बनाया, जिसमें प्रायः सब श्लोक आठ पदों के हैं, और उस गीतगोविन्द को 'प्रबन्ध' कहा। यथा—"वाग्देवता चरितचित्रितचित्तसद्मा'............. ....करोति जयदेवकविः प्रबन्धम्।" उसके बाद मैथिल-कोकिल कविवर विद्यापति ठाकुर ने अपनी पदावलियाँ बनाईं। मीराबाई, महात्मा सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि ने भजन बनाये, जो सब प्रबन्ध-ही प्रबन्ध थे। ये गाये जाने लगे। इसी गान का नाम प्रबन्ध-गान पड़ा।

जिस समय अमीर खुसरो हिन्दुस्तान में आये, उस समय यहाँ प्रबन्ध का गान प्रचलित था। बिहार में, बहुत प्राचीन समय से, विद्यापति ठाकुर के 'नाचारी' नाम के—भगवान् शिव की स्तुति के—भजन प्रसिद्ध हैं और इस समय भी गाये जाते हैं। उनका और उनके नाचारी भजनों का उल्लेख अबुलफजल की लिखी हुई 'आईनेअकबरी' में भी मिलता है।

तराना

अमीर खुसरो, सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समय में (१२६५ से १३१६

* मेरी लिखी हुई 'संगीतप्रवेशिका' के द्वितीय भाग के अन्त में कई संस्कृत छन्दों के सूत्र और उनकी मात्राएँ पृथक्-पृथक् गिनती करके दिखलाई गई हैं। उन छन्दों के अनुरूप जो संगीत के लयों के नाम होते हैं वे भी बतला दिये गये हैं—यथा, चौताला, इकताला, तिताला, झपताला, तीव्रा शूल, या शूरफाक्ता आदि। 'संस्कृतरत्नाकर' में भी बहुत-से छन्द लिपिबद्ध हैं। —लेखक

ईसवी के बीच) आये। उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत को सीखा और साधा; किन्तु उस वक्त तक उन्हें संस्कृत और हिन्दी की अभिज्ञता नहीं प्राप्त हुई थी। उस समय के प्रचलित प्रबन्धादिक गान के शब्दों के शुद्धतापूर्वक समझने और उच्चारण करने में कदाचित् उनको अधिक कठिनाई पड़ी, इसलिये उन्होंने कई अर्थहीन शब्द—यथा तोम्, तानूम, तना, दिरदिर इत्यादि कई-एक बोल (शब्द)—बना लिये और उन्हीं बोलों में राग-रागिणियों के गीत बनाये। यथा—"दिरदिर तानुम् तदेर्ना तनन" इत्यादि। इन गीतों का नाम उन्होंने 'तराना' रक्खा। फारसी भाषा में 'तराना' गान ही को कहते हैं। यथा—काबुल का तराना, कोयल का तराना इत्यादि। ये तराने अबतक गाये जाते हैं। अमीर खुसरो के बाद और लोगों ने भी बहुत-से तराने बनाये।

कौल

अमीर खुसरो ने 'कौल' नाम का एक तरह का मजहबी (धार्मिक) गीत भी बनाया। इन गीतों के गानेवाले 'कव्वाल' कहलाये। इन गीतों के गानेवाले अबतक वर्त्तमान हैं। धार्मिक स्थानों में, धार्मिक उत्सवों के अवसर पर, विशेषतः मुसलमान फकीरों के उर्स के समय, यह गाना गाया जाता है। यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि अमीर खुसरो के समय में आजकल का राग-रागिणी और पुत्र-भार्या का विभाग—जो 'संगीत-दर्पण' में दिया हुआ है—प्रचलित हुआ था या नहीं।

धुरपद

कहा जाता है कि गवालियर के राजा मानतनवार ने ध्रुवपद (ध्रुपद) के गान चलाये। यह भी कहा जाता है कि उस समय के प्रसिद्ध संगीताचार्य 'नायक बैजू' (प्रसिद्ध बैजू बावरा) राजा मानतनवार के दरबार में रहते थे। हो सकता है कि ध्रुपदों का गान बैजू बावरा ने ही चलाया हो और नाम राजा मानतनवार का हुआ हो।

मुगल-बादशाह अकबर के समय में तन्ना मिश्र (प्रसिद्ध तानसेन) बहुत नामी गायक हुए। वे मथुरा के योगी 'स्वामी हरिदास' के शिष्यों में थे। जहाँ तक उनके बनाये हुए गीतों से पता चलता है, वे प्रायः ध्रुपद ही गाते थे। संभवतः वे अपने गुरु स्वामी हरिदास की बनाई हुई होरियाँ भी गाते रहे होंगे। ये होरियाँ भी एक प्रकार का ध्रुपद ही हैं।

होरी

स्वामी हरिदास होरी-गान के उद्भावक और प्रणेता कहे जाते हैं।

ध्रुपद चार पदों या तुकों के होते हैं जिनको स्थायी, सचारी, अन्तरा और आभोग कहते हैं। ये ध्रुपद प्रायः चौताले की लय में गाये जाते हैं, यद्यपि और और लयों में भी ध्रुपद गाये जाते हैं। होरी—अर्थात् ध्रुपद की चाल की होरी—एक विशिष्ट लय या ताल में गाई जाती है, जिसको 'धमार' कहते हैं।

फाग या फगुआ

धमार की होरी के उपरान्त एक गीत 'फगुआ' या 'फाग की होली' कहलाता है, जो कई लयों में गाया जाता है। कहा जाता है कि यह फाग की होली और होली का गान व्रज-मंडल (मथुरा-वृन्दावन) से प्रचलित हुआ। परन्तु व्रज की होली 'डफ की होली' कही जाती है, जिसको होली के मौसम में लोग डफ बजाकर गाया करते हैं और वह गाने में बहुत सुगम तथा सीधी होती है। किन्तु बिहार में जो फाग की होली गाई जाती है, वह उस डफ की होली से भिन्न और प्रकृष्ट होती है तथा भिन्न-भिन्न राग-रागिणियों और तालों में तान आदि अलंकारों से युक्त गाई जाती है। ये फाग की होलियाँ यद्यपि इस समय अन्य प्रदेशों में भी गाई जाती हैं तथापि ये बिहार-प्रान्त से चले हुए गीत और मुख्यतः बिहार, बनारस तथा गाजीपुर में गाये जाते हैं—इन गीतों की भाषा या बोल बिहारी है।

स्वामी हरिदास की होरियाँ प्रायः ध्रुपदों के समान चार तुकों वाली—बल्कि अधिकतर दो ही तुकों वाली, अर्थात् स्थायी-अन्तरा वाली—होती थीं। किन्तु बिहार के प्रसिद्ध बेतिया राज्य के अधिपति महाराज नवलकिशोर सिंह ने छ पदों की बहुत-सी होरियाँ बनाईं—उनको गाया और गवाया भी। छ पदोंवाली वे होरियाँ काशी के संगीत-गुरु श्री छोटे रामदास को और काशी के अन्य संगीत-प्रेमियों को याद हैं— वे लोग उन्हें गाते भी हैं। मैंने महाराज नवलकिशोर सिंह की बनाई कई होरियाँ श्री छोटे रामदासजी से सुनी हैं।

सादरा

ध्रुपदों और होरियों के पीछे किसी समय में, एक प्रकार के छोटे ध्रुपद भी बने और गाये जाने लगे, जिनको 'सादरा' कहते हैं, और ये झपताले की लय में गाये जाते हैं। ये सादरे कब बने और इन्हें किसने बनाया, इसका ठीक पता नहीं चलता। किन्तु बिहार में—खासकर पटना, छपरा और दरभंगा में—सादरे गाये जाते हैं।

सरगम

बिहार में— प्रधानतः सारन, चम्पारन, पटना, गया आदि जिलों में—एक गाना गाया जाता है, जिसको 'सरगम' कहते हैं। इन सरगमों में कोई गीत के शब्द नहीं रहते, सिर्फ स्वरों के नाम रहते हैं और वे ही स्वर स्थायी अन्तरा में बँधी हुई लय में गाये जाते हैं। ये 'सरगम' दो प्रकार के होते हैं—एक 'सुर सरगम' जिनमें स्वरों के नाम गीत में दिये हुए रहते हैं और वे अपने ही नामों के सुरों में राग-रागिणी की चाल के अनुसार गाये जाते हैं; दूसरे 'बोल सरगम' होते हैं जिनमें गीत के बोल में तो सुरों ही के नाम रहते हैं, किन्तु वे स्वर सब अपने नाम के सुरों में ही नहीं गाये जाते— अर्थात्, अगर गीत के बोल मे 'ग, म, धा' इत्यादि हैं तो यह जरूरी नहीं है कि ये 'ग और म' आदि 'ग और म' सुरों में ही कहे जायँ; राग-रागिणी की चाल का ध्यान रखते हुए ये दूसरे सुर में भी कहे जा सकते हैं।

बरगम

एक प्रकार के सरगम और भी होते हैं जिनको बरगम कहते हैं। उनका नियम यह है कि जिस लय में वे बँधे रहते हैं, उस लय की एक आवृत्ति में सरगम के बारह बोल आते हैं। ये बरगम कम गाये जाते हैं। किन्तु मैंने छपरा में स्वर्गवासी श्री यदुवीर मिश्र और पकड़ीवाले स्वर्गीय श्री महावीर मिश्र से कई बरगम सुने थे। इन बरगमों के बनानेवाले बेतिया (चम्पारन) के स्वर्गवासी श्री दुखित मलिक कहे जाते थे।

ख्याल

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में, १४०१—१४४० के बीच में, जौनपुर के (जो बिहार के अन्तर्गत था) सुलतान हुसैन शरकी ने 'ख्याल' गान की प्रणाली की उद्भावना की। दरभंगा-राज के संगीत के प्रोफेसर मेरे उस्ताद स्वर्गीय अजीमबख्श खाँ कहते थे कि तानसेन के गोबरहारबानी के और स्वामी हरिदास के डागुरबानी के ध्रुपदों के अनुकरण-स्वरूप ये 'ख्याल'-गीत बने और प्राचीन ख्याल एक प्रकार के छोटे ध्रुपद ही होते थे। ध्रुपद-गान और ख्याल-गान मे फर्क यह था कि ध्रुपदों के गाने मे तान आदि अलकारों की आज्ञा नहीं थी, सिर्फ छोटी-छोटी मीड-गमक की तान और बोल-तान के गाने की अनुमति थी, तथा रागों के रूप बहुत शुद्ध और लय बहुत गभीर होती थी। इसके विपरीत ख्यालों के गाने मे तान, पलटे,

प्रसिद्ध गीत है। छपरा मे एक गीत 'पूरबी' नाम का गाया जाता है, जिसके उद्भावक सारन (छपरा) जिले के पकड़ी गाँव के रहनेवाले श्री महावीर मिश्र थे। उनके समय मे इस गीत का नाम 'बिरहिनी' था। उनकी बिरहिनी की धुन फगुआ, कजरी, बारहमासा इत्यादि की एक मिश्रित ध्वनि थी, किन्तु उसकी छटा अलग ही थी। उनके मुँह से यह बिरहिनी सुनने मे ऐसी मनोहारिणी प्रतीत होती थी कि उसका वर्णन शब्दों द्वारा नही हो सकता। श्री महावीर मलिक ने सारन जिले के दहाती गीत 'जँतसार' को, जिसे औरते जाँत (चक्की) पीसने के समय गाती है, साफ-सुथरा करके इस 'बिरहिनी' मे मिला लिया था।

चैत या चैती

बिहार में एक प्रकार का अपना खास गीत है जिसको 'चैत' या 'चैती' कहते है। यह गीत चैत के महीने में गाया जाता है, जैसे फगुआ या फाग फागुन के महीने में। शाहाबाद और पटना जिलों मे इस गीत का बहुत प्रचार है, और यह वहीं का गीत है, यद्यपि फगुआ और चैत दोनों ही बनारस में भी खूब गाये जाते हैं तथा वहाँ से बाहर आसपास की और जगहों मे भी।

सोहर या सोहिला

जब किसी के घर मे लड़का-लड़की का जन्म होता है, उस अवसर पर स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं। उस समय जो गानेवाली तवायफ या गानेवाले कत्थक या नटवा बुलाये जाते है, वे लोग भी इसे गाते है। खोजा और पँवरिया भी आकर सोहर गाते है।

कजरी

'कजरी' गीत भी सावन के महीने मे बिहार मे खूब गाया जाता है। कजरी प्रथमत मिर्जापुर से और तत्पश्चात् बनारस से निकली और फैली। बनारस में अब भी कजली के दगल हुआ करते हैं।

उपर्युक्त गीतो के अतिरिक्त स्थान-स्थान में और भी कई प्रकार के छोटे-मोटे गीत प्राय गाये जाते हैं। झूमर आदि औरते गाती हैं। आरा-छपरा जिलों में चाँचर, बिरहा और घाँटो प्रसिद्ध गीत हैं। ढोलक-झाल पर गाया जानेवाला 'चैत' ही घाँटो है।

बिहार के संगीत-केन्द्र और गीतों के बनाने-गानेवाले

बिहार में—और मै सगीत के ससर्ग में बनारस-कमिश्नरी के जिलों को भी बिहार में लेता हूँ—संगीत के मुख्य केन्द्र समयानुसार दरभंगा, चम्पारन,

सारन, पटना, शाहाबाद, गया और काशी चले आये हैं। काशी (बनारस) तो प्राचीन समय से आजतक संगीत का केन्द्र चला आता है और है भी।

दरभंगा

दरभंगा—अर्थात् तिरहुत में, जिसको मिथिला कहते हैं—सिंहभूपाल, जगद्धर, समिति, वितृष्णा, जयत, हरिहर मल्लिक, खड्गराम, कल्लीराम, मिथिला के राजा शिवसिंह, विद्यापति ठाकुर और उनकी पुत्रवधू चन्द्रकला, कविवर गोविन्द दास, नरपति ठाकुर (महाराज महिनाथ ठाकुर के छोटे भाई जो पीछे महाराज हुए), लोचन कवि आदि के समय से लेकर आजतक संगीत का केन्द्र रहा और है। महाराज नरपति ठाकुर का वर्णन लोचन कवि ने 'धुनिगानसिन्धु' कहकर किया है।

इधर पचास वर्षों के भीतर, स्वर्गवासी मिथिलेश महाराज सर लक्ष्मीश्वर सिंह के समय में, 'दरभंगा' संगीत और संगीतज्ञों का महान् केन्द्र था। उस समय में खंडारवाणी के ध्रुपद गानेवाले स्वर्गवासी श्रीकामता मल्लिक, शुद्ध ध्रुपद गानेवाले स्व० श्री क्षितिपाल मल्लिक और उनके भाई श्री राजितरामजी (वर्त्तमान), स्वरोदय (सरोद बजानेवाले स्व० उस्ताद मुरादअली खाँ, सुरसिंगार बजानेवाले स्व० उस्ताद असगरअली खाँ, ख्याल गानेवाले (प्रसिद्ध जोड़ी) स्व० उस्ताद अजीमबख्श खाँ और मौलाबख्श खाँ तथा मृदङ्ग बजानेवाले स्व० भैयालालजी (जो प्रसिद्ध मृदङ्गाचार्य कोदऊ सिंहजी के नाती थे) देश-प्रसिद्ध संगीताचार्य थे। इसी समय में भक्ति-रस के ललित पदों की रचना करनेवाले और भजन गानेवाले सन्त श्रीलक्ष्मीनाथ गोसाईं बड़े प्रसिद्ध हुए। इनकी कई पुस्तकें सकरपुरा-(मुंगेर)-निवासी रायबहादुर उदितनारायणसिंह ने प्रकाशित कराई हैं।

श्रीमान् महाराज लक्ष्मीश्वरसिंहजी भी स्वयं सितार अच्छे सुर में बजाते थे और थोड़ा-थोड़ा सुरीला गाना भी गाते थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् स्वर्गीय मिथिलेश महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंहजी के समय में भी उक्त सब संगीताचार्य बहुत काल तक जीवित रहे; किन्तु अब सबका स्वर्गवास हो गया—केवल श्रीराजितरामजी और उस्ताद अजीमबख्श खाँ के बड़े पुत्र प्रोफेसर अब्दुलगनी खाँ, जो अपने कलाविद् पिता के समान ही संगीतज्ञ-विद्वान् हैं, और श्रीराजितरामजी के पुत्र श्रीरामचतुरजी, जो स्वयं बड़े अच्छे गानेवाले हैं, वर्त्तमान मिथिलेश के प्रिय अनुज श्रीमान् राजा बहादुर विश्वेश्वर सिंहजी की सेवा में रहते हैं।

उस्ताद अजीमबख्श खाँ की शिष्या श्रीमती बेनजीर बाई, जिनकी संगीत-विद्या की अच्छी तालीम हुई थी और जो ख्याल बहुत अच्छा गाती थीं, अबतक दरभंगा-राज की गायिका के पद पर वर्त्तमान हैं; यद्यपि अब सिन ज्यादा होने से संगीत का अभ्यास कम हो गया है, तथापि वर्त्तमान महाराजाधिराज के दरबार मे उनकी बड़ी इज्जत है। वर्त्तमान मिथिला-नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज सर कामेश्वरसिंह बहादुर तथा उनके अनुज राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर को भी संगीत से प्रेम है।

दरभंगा जिले के अन्तर्गत मधुबनी के बाबू तन्त्रधारीसिंह—उपनाम 'कन्हैया साहब'—सगीत के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने ध्रुपदों का अच्छा संग्रह किया था। स्वयं भी ध्रुपद बनाया था और कई गवैयों को ध्रुपद गाने की तालीम दी थी। कहा जाता है कि उन्होंने संगीत-विद्या पर एक पुस्तक भी लिखी थी, लेकिन उस पुस्तक का पता नही लग रहा है। उन्हीं के योग्य पुत्र स्वनामधन्य राजर्षि बाबू चन्द्रधारीसिंह—उपनाम 'हेमकर साहब'—भी संगीत के एक ही मर्मज्ञ और प्रेमी हैं। इन्हीं की दानवीरता से मिथिला-कालेज की उन्नति हुई है।

दरभगा-शहर में प्रसिद्ध रईस स्वर्गवासी रायबहादुर महामायाप्रसाद सिह (प्रसिद्ध मन्नू बाबू) संगीत-विद्या के विद्वान्, अभ्यासी और संगीतज्ञों के प्रतिपोषक थे। हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे। उन्होंने 'शिव-संगीत' नामक ग्रंथ * का अध्ययन अच्छी तरह किया था। कहा करते थे कि शिव-मत के अनुसार छ रागों में से प्रत्येक की छ-छ रागिणियाँ हैं—'संगीत-दर्पण' ने पाँच-ही-पाँच रागिणियाँ क्यों लिखीं?

आईन-ए-अकबरी में भी छ रागों की छ-छ रागिणियाँ लिखी हैं और उनके नाम भी दिये हैं, कदाचित् अबुलफजल साहब ने 'शिवसंगीत' के अनुसार ही ऐसा लिखा और कदाचित् उनका संगीत के विषय पर जो अध्याय है, वह शिव-मत के अनुसार ही है।

दरभंगा-राजवंश के महाराजकुमार स्वर्गवासी गोपीश्वरसिंह (उपनाम सुन्दर बाबू) ने—जो महाराज सर लक्ष्मीश्वरसिंह और सर रमेश्वरसिंह के

* मैंने शिव-संगीत उनसे लेकर पढ़ना चाहा था; किन्तु उनकी कोठी शहर से बाहर होने के कारण मैं जब वहाँ गया तब पुस्तक कोठी में नहीं थी, और अब उनके स्वर्गवास के बाद उस पुस्तक का पता नहीं लगता।

अपने चचा थे—भगवती की स्तुति में एक भजन की पुस्तक बनाई थी। उन्होंने भजनों के गाने की राग-रागिणी भी उस पुस्तक में बताई थी। उनके सबसे बड़े भाई, जो महाराज महेश्वरसिंह से छोटे थे और जिनका नाम महाराजकुमार गुणेश्वरसिंह (किशोर बाबू) था, संस्कृत-भाषा और संगीत-शास्त्र के परम पंडित थे। इनके पुत्र बाबू ललितेश्वरसिंह भी सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ और कवि थे।

श्रीराजितरामजी ने 'भक्तविनोद' और उसी में 'राग-रत्नाकर' नाम की एक पुस्तिका लिखी है, जिसमें राग-ताल-युक्त भजनों और राग-रागिणियों का वर्णन किया है। यह पुस्तक सन् १६३७ ई० में दरभंगा-राज-प्रेस से छपकर प्रकाशित हुई। श्रीराजितरामजी के पिता निहाल मल्लिक, पितामह कन्हैया मल्लिक और प्रपितामह कर्त्ताराम मल्लिक राजा माधवसिंह के समय से दरभंगा-राज की सेवा मे रहते आये। यह घराना ध्रुपदियों का है, यद्यपि ये लोग होरी और ख्याल भी गाया करते थे। इस समय श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर के दरबार में संगीत-विद्या के विशारद श्रीरामेश्वर पाठक सितार बजानेवाले वर्त्तमान हैं; सितार में गत और विलम्बित दोनों ही अच्छा बजाते हैं। लयदारी में उनके जोड़ के बहुत कम लोग निकलेगे। श्रीमान् राजा बहादुर स्वयं भी बहुत अच्छा हारमोनियम बजाते हैं और गया के भारत-प्रसिद्ध हारमोनियम-उस्ताद श्रीसोनीजी से आपने यह कला सीखी थी।

दरभंगा जिले के 'रुपौली'-ग्रामवासी जमीन्दार बाबू यमुनाप्रसाद चौधरी उत्तर-बिहार के सर्वश्रेष्ठ पखावजी समझे जाते हैं। इनके गुरु हैं अयोध्या के महात्मा ठाकुरदासजी, जो बड़े ही प्रसिद्ध पखावजी हैं। 'अमता'-निवासी श्री विष्णुदेव मल्लिक भी प्रसिद्ध मृदंगाचार्य है।

'बन्दा' गाँव के निवासी और लहेरियासराय के 'साहित्य-संगीत-विद्यालय' के संस्थापक एवं प्रधान आचार्य श्रीजानकीप्रसाद राय तिरहुत-डिवीजन के सबसे बड़े हारमोनियम-मास्टर हैं। आप 'सरगम' और 'गत' की धुन बजाने में परम प्रवीण हैं। 'ख्याल' और 'ठुमरी' गाने में आपकी बड़ी प्रसिद्धि है। गया नगर के उस्ताद सोनीजी से आपने हारमोनियम सीखा था। जयपुर (राजपूताना) के निवासी प्रोफेसर अबदुल मजीद खाँ और उनके भाई अबदुल हक खाँ 'ख्याल' के बहुत अच्छे गायक थे। दोनों भाई एक साल तक दरभंगा-नरेश श्री रमेश्वरसिहजी के दरबार में थे और इनके कारण मिथिलेश का संगीतानुराग

वहुत वढ़ गया था। प्रोफेसर अबदुल मजीद खॉ से आपने 'ख्याल' गाना सीखा था। आपके गॉव के पंडित रामपाल चौधरी तबला खूब बजाते हैं।

'घटहो' गॉव के स्वर्गीय पंडित रूपकान्तजी अपने समय के सर्वप्रधान संगीत-शास्त्री थे और अनेक साज-बाज बजाते थे। आप बड़े स्वाधीनचेता और बेजोड़ कलावन्त थे।

आजकल 'पंचोभ' गॉव के पंडित रामचन्द्र झा मिथिला के नामी गवैयों मे हैं। बिहार-भर मे इनकी कला-निपुणता की प्रसिद्धि है। बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर और श्रीनगर के कुमार कालिकानन्दसिंह के दरबार से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। गढ़-बनैली के कुमार रमानन्दसिंह बहादुर के दरबार में भी इनका बड़ा मान था। इन्हीं के गॉव के इनके शिष्य पंडित जटाधरजी भी अच्छे गवैया हैं—आप दरभंगा-नरेश के दरबार में रहा करते थे, अब घर पर हैं—आपके शिष्यों मे स्वर्गीय नचारी चौधरी अच्छे गवैया हो चुके हैं, जिनके सुपुत्र दिनेश्वर झा भी गान-विद्या में बड़े कुशल हैं।

वर्त्तमान मिथिलेश के ममेरे भाई श्रीदयानाथ झा संगीत के अच्छे जानकार हैं। सैदपुर के जमीन्दार श्रीगंगाप्रसाद पांडेय इसराज बजाने में पारंगत और अच्छे संगीत-मर्मज्ञ हैं। गवैयों मे 'जजुआर' के निवासी पंडित रामदेव झा भी प्रसिद्ध हैं। 'टभका'-निवासी पंडित सत्यनारायण चौधरी और 'महुली'-निवासी पंडित वासुदेव राय 'ख्याल' के बड़े अच्छे गायक हैं।

मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर मे, पूर्व समय मे, श्री बॉके मल्लिक अच्छे संगीतज्ञ विद्वान् थे। पहले वे केवल गवैया थे, पीछे सारङ्गी भी बजाने लगे। उनके भतीजा श्रीछत्र मल्लिक भी अच्छे गवैया थे, जिन्होने संगीत की शिक्षा एक प्रसिद्ध मुसलमान गवैया छड्डे खॉ से पाई थी। छत्र मल्लिक के भतीजा श्री कुञ्ज मल्लिक अबतक श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर (दरभंगा) की सेवा में हैं। किसी समय ये सारङ्गी अच्छा बजाते थे; किन्तु अब अभ्यास छूट गया है।

मुजफ्फरपुर मे लखनऊ के प्रसिद्ध सारंगी बजानेवाले हसनबख्श खॉं साहब के छोटे पुत्र 'मँझले उस्तादजी' आकर बस गये थे। वहीं इनका स्वर्गवास हुआ। ये भी सारङ्गी बहुत अच्छा बजाते थे, किन्तु तवायफों के साथ नहीं।

हसनबख्श खॉं लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में मुलाजिम थे। उनकी सारङ्गी से नवाब साहब इतना प्रसन्न रहते थे कि उनके साथ साथ





सगीताचार्य श्रीमुरारिप्रसाद,
ऐडवोकेट, पटना-हाइकोर्ट
(पृष्ठ २८०)

☞ सगीताचार्य श्रीमिथिलाप्रसादसिह
(फुलेना बाबू)
रईस, मँझौल (मुँगेर)
(पृष्ठ ३१०)

☞ मृदंगाचार्य श्रीशत्रुञ्जयप्रसाद सिह
रईस, जमिरा (शाहाबाद)
(पृष्ठ ३०४)



(पृष्ठ ३०१)



संगीतज्ञ श्रीउमाशंकरप्रसाद,
वी एस-सी , रईस, मुजफ्फरपुर



संगीताचार्य स्वर्गीय रायबहादुर लक्ष्मीनारायण सिंह, पँचगछिया (भागलपुर)--पृष्ठ ३१२

उनकी सारङ्गी भी एक दूसरी पालकी पर दरबार में आती-जाती थी!

उस समय में सारङ्गी बजानेवाले दो उस्ताद लखनऊ और दिल्ली मे मशहूर थे—गया-शहर के गोपाली मल्लिक और नेपाल के श्री तमाखूजी। हैदर-बख्श खाँ और गोपाली मल्लिक सारंगी में 'जोड़' (वीणा-सितार के ऐसा राग-रागिणी-आलाप) इत्यादि बजाते थे। हसनबख्श खाँ और तमाखूजी 'सैर' (जिसको आजकल ठुमरी, दादरा, गजल आदि का बाज, रंगीन बाज, कहते हैं) बजाते थे। उपर्युक्त मँझले उस्ताद ख्याल की चाल पर राग-रागिणी का बाज भी बजाते थे। युक्तप्रान्त के आजमगढ़ जिले के रहनेवाले श्री देवीदत्त मल्लिक ने, जो छपरा में रहते थे, गया में गोपाली मल्लिक से जोड़ बजाना और नेपाल जाकर तमाखूजी से सैर बजाना सीखा था। वे अपने समय में सारंगी में जोड़ और सैर दोनों ऐसा बजाते थे कि उनका कोई जोड़ नहीं था। तमाखूजी के एक शिष्य तुल्ली मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले थे और पटना मे रहते थे। उनका देहान्त आज से प्राय: चालीस वर्ष पूर्व हो गया।

मुजफ्फरपुर शहर में स्वर्गीय बाबू बलदेव साहु और उनके छोटे भाई बाबू गजाधरप्रसाद साहु संगीत-विद्या के बड़े प्रेमी थे। बाबू गजाधरप्रसाद साहु हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे। बाबू बलदेव साहु के बड़े पुत्र बाबू जगन्नाथप्रसाद साहु और बाबू गजाधरप्रसाद साहु के पुत्र बाबू कालीप्रसाद साहु दोनों चचेरे भाई हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते हैं। बाबू बलदेवप्रसाद साहु और बाबू गजाधरप्रसाद साहु की सेवा में जोतसिंहजी पखावजी, जो प्रसिद्ध पखावजी श्री कोदऊ सिंहजी के शिष्य थे, बराबर रहे और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। जोतसिंहजी पखावज बजाने के अतिरिक्त ठुमरी बहुत अच्छा गाते थे।

रईसों में उपर्युक्त बाबू जगन्नाथप्रसाद और बाबू कालीप्रसाद के अलावा रायबहादुर नन्दनलालजी के वंशधर श्रीउमाशंकरप्रसाद बी. एस सी (श्री बचा बाबू) संगीत के अनन्य प्रेमी और वास्तविक मर्मज्ञ हैं। मुजफ्फरपुर मे, सन् १९३७ ई० मे, जो अखिलभारतवर्षीय संगीत-सम्मेलन हुआ था, उसके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता बचा बाबू ही थे। आप ध्रुपद बहुत अच्छा गाते हैं।

चम्पारन

चम्पारन जिले के अन्तर्गत 'बेतिया' राजधानी में, सौ-सवा सौ वर्ष हुए, दुखित मल्लिक एक प्रसिद्ध हिन्दू गवैया हुए थे। उनके वंश मे अबतक गान विद्या का ज्ञान और अभ्यास चला आता है। वे ध्रुपद, तराना, सरगम, बरगम बहुत

अच्छा गाते थे और संगीत-विद्या का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। उन्होंने अच्छे-अच्छे ध्रुपद, सरगम और बरगम बनाये भी थे; किन्तु कोई पुस्तक नहीं लिखी।

वेतिया के स्वर्गीय महाराज नवलकिशोरसिंह भी स्वयं बहुत अच्छे संगीतज्ञ और संगीताभ्यासी थे। आपने छ-छ पदों की होरियाँ भी बनाई थीं। आप ध्रुपद और होरी अच्छी तरह गाते थे। भगवती की स्तुति मे भजनों की एक पुस्तक भी राग-रागिणी के साथ आपने बनाई थी। महाराज आनन्दकिशोरसिंह बहादुर भी संगीत-शास्त्र के पंडित थे। आपके बनाये हुए गीत और भजन आजतक गाये जाते हैं। प्रसिद्ध दानी महाराज राजेन्द्रकिशोरसिंह भी अनन्य संगीत-प्रेमी थे। उनके दरबार मे अनेक गुणी-गवैया आश्रित थे।

वेतिया से पाँच-छ कोस दक्खिन 'मिश्रटोला' ग्राम के श्रीजगदीशनारायण दीक्षित हारमोनियम बजाने मे बहुत मशहूर हैं, गवैया भी उच्चकोटि के हैं, कविता भी करते हैं; सारा जिला इन्हे जानता है। इनके बाद रढ़िया के रहनेवाले पंडित राजवंशी तिवारी का नाम याद आता है, जिन्होंने कई पुस्तके भी लिखी हैं। गहिरी-निवासी श्रीरघुनाथ ठाकुर भी एक संगीत-सम्बन्धी उत्तम पुस्तक लिख रहे हैं—आप कवि और गायक दोनों हैं। इन सबके सिवा पंडित जगन्नाथ तिवारी, जगदीशनारायण, रूपाराम, नरसिंहजी और महन्त शंकरगिरि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। चम्पारन के संगीतानुरागी इन्हे जानते हैं।

शाहाबाद (आरा)

जिस समय वेतिया में दुखित मल्लिक हुए थे, उसी के आसपास । जिले के अन्तर्गत डुमराँव-रियासत में बच्चू मल्लिक (प्रकाश' कवि) । राधाप्रसादसिंह के परम कृपापात्र थे। ये भी उक्त दुखित मल्लिक ही के संगीतज्ञ विद्वान् और अभ्यासी थे। इन्होंने 'सुर-प्रकाश' नामक पुस्तक रची जो छप चुकी है। इनके बनाये हुए बहुत-से गीत हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'संगीताचार्य' की उपाधि दी थी। इन्हीं के वंश में पहले 'घनाजी' एक प्रसिद्ध । और संगीताचार्य हुए थे, जिनकी चीजें आजतक आरा-शहर और श जिले के लोग गाते हैं। आरा-निवासी श्री प्रताप मिश्र, जो वहाँ के संगीत-लय में शिक्षक हैं और स्वयं भी अच्छे गुणी हैं, घना जी की और बच्चू मल्लिक की बनाई हुई बहुत-सी अच्छी चीजें जानते और गाते हैं।



बनैली राज्याधीश कुमार श्यामानन्द सिंह, चम्पानगर ड्यौढ़ी



श्रीरामेश्वर पाठक (दरभंगाराज्याश्रित)





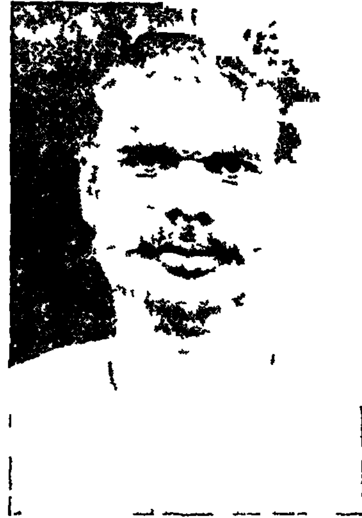
गीतमर्मज्ञ श्री श्यामनारायण राय, बी. ए., एस. डी. ओ, दरभंगा



१ श्री रामचतुर मल्लिक (दरभंगाराज्याश्रित)
२ प्रोफेसर अब्दुल ग़नी खाँ (दरभंगाराज्याश्रित)



संगीतज्ञ श्रीराजितरामजी



दरभंगा के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ
श्रीजानकी राय



बाबू देवदयाल सिंह हारमोनियम-मास्टर



उदीयमान संगीतज्ञ श्रीवासुदेवजी

स्वर्गीय सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह ('प्यारे' कवि) बड़े विख्यात संगीत-मर्मज्ञ थे। गाने-बजाने की कला के नामी शौकीन थे। आपके बनाये हुए बहुत-से सरस गीत आपकी ग्रंथावली में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके दरबार में बहुत-से गुणी, गायक और कलावन्त बराबर रहते थे। आपके रचे हुए अनूठे गीतों मे अनेक राग-रागिणियों और विविध ताल-स्वरों का अपूर्व समावेश है तथा उनकी स्वरलिपियाँ भी उनके साथ ही प्रकाशित हैं।

इस समय आरा-शहर में जमिरा के धनी-मानी जमीन्दार श्री शत्रुञ्जयप्रसाद सिंह (श्रीलल्लनजी) पखावज बहुत अच्छा बजाते हैं। आप ७५ से ज्यादा स्वर्णपदक और ५० से ज्यादा रजतपदक पा चुके हैं। इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ के अखिलभारतवर्षीय सगीत-सम्मेलनों में आपने पखावज बजाकर सर्वोपरि नाम पैदा किया है। आपके उत्साह से आरा-नगर में संगीत की खासी चर्चा रहती है। अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों से आपकी घनिष्ठता है।

आरा नगर में श्रीरघुनन्दन मल्लिक भी निपुण संगीतज्ञ हैं। सूर्यपुरा के पास 'धनगाई' गाँव के निवासी हैं। यह सारा गाँव गायनाचार्य मल्लिकों की ही मशहूर बस्ती है। यहाँ कितने ही प्रसिद्ध गायक और वादक हो चुके हैं, जो बिहार के कई राज-दरबारों में सम्मानपूर्वक आश्रय पाते रहे। आज भी यहाँ कई अच्छे संगीतज्ञ मल्लिक हैं।

उपर्युक्त 'धना'जी और बच्चू मल्लिक इसी 'धनगाई' गाँव के निवासी थे। धनाजी का पूरा नाम था श्रीधनारङ्ग दूबे और पिता का नाम तिलक दूबे—आप श्रीमानिकचन्द दूबे और अनूपचन्द दूबे के शिष्य थे—पहले डुमराँव के राजदरबार में रहते थे, पीछे सूर्यपुराधीश के दरबार में आकर वहीं जीवन व्यतीत किया—आपके बनाये हुए पद बड़े कठिन और गूढ़ तथा भावपूर्ण हैं—आप साहित्यमर्मज्ञ भी थे, कृष्णभक्त थे, रचित ग्रंथ 'कृष्णरामायण' प्रकाशित हो चुका है। आप ही के भाई पदारथ दूबे के पुत्र थे उक्त बच्चू दूबे (प्रकाश कवि), जिन्होंने मानिकचन्द दूबे से संगीत-शिक्षा पाई थी; किन्तु इन बच्चू मल्लिक को सरस्वती ने अपूर्व शक्ति दी थी; क्योंकि ये संगीत-शास्त्र के सभी प्रकार के गीत आशातीत सफलता के साथ गा सकते थे और अनेक ऐसे गीत बना चुके थे जिनमें स्पर्शवर्णों का सर्वथा अभाव था—इनके निरौष्ठिक गीत बड़े विशद भावों से पूर्ण और भक्तिरसगर्भित हैं—ये अंत काल तक डुमराँव-नरेश के ही आश्रित रहे—इनके प्रधान शिष्य 'रेपुरा' (जिला बलिया) के निवासी पंडित शिवदीन पाठक श्रीनगर-

(पूर्णिया)-नरेश के दरबार में आजीवन गायक रहे—इनके दूसरे शिष्य भी उसी ग्राम के निवासी पंडित विश्वनाथ पाठक थे, जो पचगछिया (भागलपुर) के रईस रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह के दरबार मे रहते थे।

धनगाईं के एक मल्लिक श्रीसहदेव दूबे गान-विद्या में बड़े प्रवीण हैं और स्वनामधन्य हिन्दी-साहित्यसेवी सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसादसिंहजी एम. ए के दरबार में रहते हैं तथा रियासत के हाइस्कूल में संगीत-शिक्षण का काम भी करते हैं—इनके ग्रेजुएट सुपुत्र भी संगीत-विशारद हैं। जान पड़ता है, जैसे—पटना जिले के 'नेउरा' ग्राम में उच्च अँगरेजी-शिक्षा की तूती बोलती है वैसे ही शाहाबाद जिले के 'धनगाईं' गाँव में भी उच्च संगीत-कला का बोलबाला है। इसी गाँव के पूर्वोक्त श्रीरघुनन्दन मल्लिक ने आरा-नगर में बरसों से एक सगीत संघ स्थापित कर रक्खा है, जिसकी उत्तरोत्तर उन्नति का श्रेय उपर्युक्त श्रीशत्रुञ्जय-प्रसादसिंह को है। श्रीरघुनन्दन मल्लिक सितार, तबला और जलतरग बजाने में बड़े सिद्धहस्त हैं।

श्रीशत्रुञ्जयप्रसादसिंह (लल्लनजी) के स्वर्गीय पिता बाबू हितनारायण सिंह भी संगीत के अच्छे मर्मज्ञ थे—ध्रुपद गाने में प्रसिद्ध थे और बलिया जिले के 'रेपुरा'-निवासी पंडित देवकीनन्दन पाठक के शिष्य थे। पाठकजी अभी जीवित हैं और नैपाल-राज्य के किसी कर्नल के यहाँ धनकुट्टा नामक स्थान में रहते हैं—आप 'मऊ' (आजमगढ़) के मृदङ्गाचार्य मदनमोहनजी के सर्वश्रेष्ठ शिष्य हैं; आप भारतप्रसिद्ध पखावजी हैं; आपकी धर्मनिष्ठा और भगवद्भक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है। लल्लनजी को अपने पिताजी से ही मृदङ्गवादन की शिक्षा मिली थी और पाठकजी से भी—उनके समान लब्धकीर्त्ति संगीतज्ञ विरले ही हैं।

ब्रह्मपुर-निवासी पंडित रामप्रसाद पांडेय पहले रायबहादुर श्यामनन्दन-सहाय एम. एल. ए. (बाघी, मुजफ्फरपुर) के दरबार में थे और अब उक्त लल्लनजी के दरबार मे हैं। आप अच्छे गवैया हैं। आपके चचा पंडित रामयत्न पांडेय धम्मार गाने में बड़े दक्ष थे। आपके दूसरे चचा पंडित शिवप्रसाद पांडेय सितार के सच्चे गुणी थे और गिद्धौर-नरेश के आश्रित थे। ब्रह्मपुर के ही पंडित राम-प्रताप पांडेय भी 'ध्रुपद' और 'ख्याल' गाने में काफी नाम कमा चुके हैं—इनके पिता पंडित हरिसहाय पांडेय भी सगीत-विद्या के अच्छे विद्वान् थे।

उपर्युक्त बाबू हितनारायणसिंहजी ३२ वर्ष की उम्र से ७३ वर्ष की बड़ी उम्र तक केवल संगीत की ही धुन में मस्त रहे। आपको कम-से-कम तीन-चार सौ

प्रकार के विचित्र-राग-रागिणी-युक्त ध्रुपद याद थे। आपके शिष्यों में प्रोफेसर चन्द्रशेखर पाठक बहुत अच्छा निकले, जिन्होंने कई संगीत-समारोहों में आपका और अपना नाम उजागर किया। आपके असल उस्ताद थे खाँ साहब तसद्दुक हुसेन, जिन्होंने लखनऊ के नवाबी दरबार से निकलकर नेपाल-नरेश के यहाँ से होते हुए 'आरा' नगर में अपना अड्डा जमाया था। वे पचीस-तीस साल तक आरा नगर में रहे और सन् १६२२ में ६ जनवरी को आरा में ही स्वर्गगामी हुए। उन दिनों कलकत्ता और दिल्ली के बीच उनके जोड़ का कोई गवैया न था। बाबू साहब ने ध्रुपद और मृदंग में उनसे विशेष शक्ति और स्फूर्त्ति प्राप्त की थी।

जगनपुर-निवासी श्रीदेवदयालसिंहजी हारमोनियम के बड़े अच्छे उस्ताद हैं। लखनऊ के रेडियो-विभाग ने आपको ब्राडकास्टिंग के लिये बुलाया था।

रामपुर (चौसा) के बाबू श्यामनारायण राय, बी० ए०, बी० एल०, प्राचीन और अर्वाचीन संगीत तथा वाद्यकला के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आप कलकत्ता, दिल्ली और बनारस के संगीतज्ञों के समक्ष प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। तबला और हारमोनियम बजाने में आपके समकक्ष बहुत ही कम लोग मिलेंगे। ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी और दादरा गाने में आप अपनी कला का विशेष चमत्कार दिखलाते हैं।

'आरा'-नगर के दो और स्वर्गीय रईस भी संगीत के बड़े पक्के अनुरागी थे—बाबू रामकुमार अग्रवाल और बाबू भगवत सहाय वकील (कूजनप्रसाद); इन दोनों रईसों ने उक्त खाँ साहब के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त किया था। कूजनप्रसादजी तो सितार के ऐसे रसिक थे कि रात में नित्य नियमपूर्वक सितार बजा लेने के बाद ही शयन करते थे। बाबू रामकुमार बड़े शौकीन तबीयत के रईस, जमीन्दार और बैंकर थे तथा संगीतज्ञों के सम्मान-सत्कार में उनकी विशेष प्रवृत्ति थी।

सारन (छपरा)

सारन जिले में छपरा-शहर संगीत का केन्द्र रहा है। जिले का प्रधान नगर यही है। आजकल भी इस शहर में ग्वालियर तक के गवैये आया करते हैं। बिहार-भर में सबसे सुन्दर थियेटर-रंगमंच की सुव्यवस्था होने से यहाँ के नागरिकों में संगीत का अच्छा अनुराग है। सारन जिले की प्रसिद्ध रियासत 'हथुआ' की राजधानी में, वर्त्तमान महाराज के पिता-पितामह के समय में, संगीत का अच्छा प्रचार था। दरभंगा के स्वर्गगामी उस्ताद मुरादअली खाँ और असगर अली खाँ पहले हथुआ-रियासत में ही मुलाजिम थे और वहीं से दरभंगा आये थे। यहाँ पर पं० उदितन मिश्र और योगेन्द्र मिश्र, दो भाई, अच्छे गानेवाले थे।

छपरा-शहर में श्रीरघुवर मिश्र और उनके छोटे भाई श्रीयदुवर मिश्र संगीत-विद्या के अच्छे पंडित और गुणी गायक थे। श्रीरघुवर मिश्र तो पीछे बिल्कुल बहरा हो गये, किन्तु श्रीयदुवर मिश्र अन्त समय तक गाते रहे—सरगम, बरगम, तराना, और विशेषतः टप्पा बहुत अच्छा गाते थे।

श्रीरघुवर मिश्र के पुत्र श्रीहाकिम मिश्र गवैया तो नहीं हुए, किन्तु सारङ्गी बजाने में परम प्रवीण और सुदक्ष हुए। आपने बहुत यश-अर्जन किया। आपके बारे में यह कहावत प्रचलित थी कि जिसको आपने 'आ' करना सिखा दिया, एक लहरा बता दिया, वह अपनी दाल रोटी की चिन्ता से मुक्त हो गया।

श्रीहाकिम मिश्र ने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी संगीत शिक्षा दी। उनकी सिखाई हुई कई गायिकाएँ—बद्रेमनीर, सरजू, रसूलन आदि—छपरा में नामी गानेवाली हो गई हैं। कई अच्छे-अच्छे सारङ्गी बजानेवालो को भी उन्होने तालीम दी थी, किन्तु सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह थी कि उन्होने किसी तवायफ के साथ सारङ्गी नहीं बजाई। कई बार, अवसर-विशेष पर, उन्होंने प्रसिद्ध गवैयो के साथ सारङ्गी बजाई और बहुत प्रशंसा प्राप्त की।

छपरा-शहर में सबसे अधिक नाम पकड़ी-निवासी श्रीमहावीर मिश्र का हुआ। वे खूब गाते और नाचते भी थे। किन्तु नाचने में नटों के ऐसा भाव नहीं बताते थे। परन्तु भाव न बताने पर भी उनके गाने का ऐसा निराला ढंग था कि गाने में ही भाव बताना हो जाता था। वे सरगम, बरगम, तराना और ध्रुपद अच्छा गाते थे। किन्तु सबसे अच्छा गाते थे बिरहिनी धुन के गीत और चलती हुई ठुमरी—चार-चार लयों में।

दरभंगा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह महावीर मल्लिक के बिरहिनी-गीतो के बड़े प्रेमी थे। उनके दस-पाँच गीतो को आपने याद भी किया था। महावीर मल्लिक की बिरहिनी-धुन छपरा से बाहर काशी तक लोग गाते-बजाते थे। उनकी बिरहिनी का अनुकरण काशी के लोगो ने ठुमरियो में भी किया, और बिरहिनी-ठुमरियाँ बनाई गईं।

छपरा की गायिकाएँ आजकल जो पूरबी गीत गाती हैं और छपरा से बाहर की भी गायिकाएँ जिन्हें गाती हैं, वे पूरबी गीत भी श्रीमहावीर मल्लिक की बिरहिनी से ही निकले—उनके भी उस्ताद वे ही हैं।

छपरा-शहर मे स्वर्गवासी बाबू लाड़िलीशरणजो मुख्तार संगीत-विद्या के अच्छे पंडित थे। गान विद्या मे कई आदमियों को उन्होने शिक्षा दी थी।

इस समय भी छपरा में श्रीमहेन्द्र मिश्र वर्त्तमान हैं, जो स्वयं अच्छा गाते हैं। आपने बहुत-से पूरबी गीत, फगुआ के गीत, कजरियाँ, चैत और दूसरे-दूसरे गीत बनाये हैं, जो छपरा में और छपरा से बाहर भी गाये जाते हैं।

'हरदिया' गाँव के निवासी श्रीध्रुवदेव सहाय, एम्० ए०—काशी के सुप्रसिद्ध ध्रुपदाचार्य और पखावजी स्वर्गीय भोलानाथ पाठक के शिष्य हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय के मृदङ्गाचार्य पंडित मन्नूजी औदीच्य भी आपके संगीत-गुरु हैं। आपने लगातार नौ बरसों तक मृदङ्ग-वादन की कला सीखी है। औदीच्यजी की पुस्तक 'तालदीपिका' के तीन भागों (तबला-प्रकरण) के प्रकाशन में आपका विशेष हाथ रहा है। आप स्वयं भी एक गवेषणापूर्ण संगीत-ग्रंथ लिख रहे हैं।

'केवानी' ग्राम के निवासी श्रीशिवेन्द्र दीक्षित, बी० ए०—हिन्दू-विश्वविद्यालय के गायनाचार्य पंडित शिवप्रसाद त्रिपाठी के शिष्य हैं। उक्त पाठकजी और औदीच्यजी से भी आपने संगीत-कला सीखी है। आप ध्रुपद गाने में अत्यन्त निपुण हैं। महामना मालवीयजी और आचार्य ध्रुव भी आपके मधुर कंठ और कला-कुशलता से तृप्त होकर आपकी प्रशंसा कर चुके हैं। आप 'विजय' नामक साप्ताहिक पत्र (छपरा) के सम्पादक थे, जिसमे प्रायः संगीत की चर्चा और सामग्री रहती थी।

पटना

अनेक सम्राटों, बादशाहों और नवाबों की राजधानी रहने के कारण पटना-शहर बहुत प्राचीन समय से संगीत का प्रसिद्ध केन्द्र रहता चला आया है; किन्तु इस समय पटना मे कोई रससिद्ध गायक या गायिका नहीं है। सन् १८१३ ई० में* पटना के प्रसिद्ध संगीतज्ञ रईस मुहम्मद रजा साहब ने, हिन्दुस्तानी राग-रागिणियों का, उनकी गान-प्रणाली के अनुसार मेल मिलाकर, एक नया श्रेणी-ग्रथन किया, जिसको राग-रागिणियों का 'ठाट' कहते हैं और जिसका वर्णन पहले हो चुका है। सितार मे भी ऐसी ही ठाटबन्दी की जाती है। पूर्वकाल मे जब छोटी सारङ्गी (टोंटा) बजती थी, जिसमें कुल ग्यारह या तेरह तरब रहते थे, तब उसमें भी इसी तरह ठाट बजाया जाता था।

मुहम्मद रजा ने एक पुस्तक 'नगमात आसफी' लिखी थी, जिसका उल्लेख एच० ए० पौपले (H. A. Popley) की 'म्युजिक आफ इंडिया' मे और फॉक्स स्ट्रांगवे (Fox Stranguay) की 'म्युजिक आफ हिन्दुस्तान' (Music of

* H. A. Popley's 'Music of India'.

Hindustan) में पाया जाता है। किन्तु पटना मे खोजने पर भी यह किताब नही मिलती।

अँगरेजी की एक पुस्तक मे मैंने यह भी देखा है कि मुगल-दरबार के प्रसिद्ध संगीताचार्य मियाँ तानसेन भी पटना के रहनेवाले थे; किन्तु अभी यह प्रमाण-सिद्ध नहीं है। इतना तो मैंने भी सुना है कि मियाँ तानसेन एक बार हैदराबाद (दक्षिण) गये थे और वहीं से लौटते समय कुछ दिनों तक पटना में रहे थे।

जो हो, पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों के भीतर पटना संगीत का बहुत ही बड़ा केन्द्र रहा। यहाँ हरदत्त मिश्र (मशहूर हरदत्त गुरु) बहुत यशस्वी संगीतज्ञ थे—वे गाना और नाचना दोनो की तालीम दिया करते थे। दूसरे थे श्री शिवसहायजी, जो अपने समय के प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले हो चुके हैं। हरदत्त गुरु के तो कोई वंशधर या शिष्य अब नहीं हैं; किन्तु शिवसहायजी के भतीजा श्री शम्भू मिश्र भी नामी सारङ्गी बजानेवाले हो गये हैं और शम्भूजी के पुत्र श्री सरजूप्रसाद मिश्र इस समय काशी में प्रसिद्ध सारङ्गी बजानेवाले हैं।

रईसों में स्वर्गवासी सुलतान नवाब (मशहूर सुलतान साहब) संगीत के बड़े प्रेमी थे, थोड़ा-बहुत गाते भी थे। रईसो में ही प्यारे नवाब साहब भी, जिनका देहान्त हुए करीब चौदह-पन्द्रह वर्ष के हुआ होगा, संगीत-विद्या के महान् पंडित थे। ये तानसेन के वंशधरों के शिष्य थे। गिद्धौरवाले उस्ताद मुहम्मद अली खाँ के साथ (जो तानसेन के नवासों के वंश में थे,) इनका बहुत सत्सङ्ग रहा करता था। अपने समय मे ये बहुत ऊँचे दर्जे के सितार बजानेवाले थे। बड़े-बड़े संगीतज्ञों की मंडली में, यहाँ तक कि स्वनामधन्य वीणावादक बन्दे अली खाँ के मुकाबले मे भी, सितार बजा चुके थे। ये सर्व-सम्मति से प्रवीण गुणी माने गये।

सारङ्गी बजानेवालों में बहादुर खाँ, जिनका स्वर्गवास हाल ही में हुआ है, बहुत नामी संगीतज्ञ थे। एक तो वे सारङ्गी बहुत सुर में बजाते थे, दूसरे उनके हाथ की तरकीबें ऐसी सुन्दर थी कि उनका मुकाबला सुप्रसिद्ध ठुमरी गानेवाले उस्ताद मोइजुद्दीन खाँ के गले में ही पाया जाता था।

उस्ताद बहादुर खाँ विशेषतः ठुमरी गाने के शिक्षक थे। उनके शिष्यों में इस समय लखनऊ में उस्ताद मुमताज अच्छे सारङ्गी बजानेवाले हैं। बहादुर खाँ के इकलौते पुत्र यद्यपि अभी पन्द्रह-सोलह वर्ष के हैं, सारङ्गी अच्छा बजाते हैं।

पटना शहर मे तबला बजानेवाले भी अच्छे-अच्छे हो गये हैं, जिनमें

कन्हई गुरु, उस्ताद अली कद्र, उस्ताद मुबारक अली (जग्गन) मशहूर थे। इनलोगों का स्वर्गवास हुए प्रायः चालीस वर्ष हुए होंगे।

उस्ताद अली कद्र ठेका बहुत अच्छा बजाते थे—यहाँ तक कि उनका ठेका सुनकर लखनऊ के नामी उस्ताद मुन्ने खाँ (लखनऊ के खलीफा के पुत्र) ने भरी सभा में यह कहा था कि 'बेटा, तू तो मेरे ही घर का सिक्खेकार है, लेकिन जो तेरे हाथ में है, वह मेरे हाथ में भी नहीं है।"

इन उस्तादों के वंशधरों में या इनकी शिष्य-परम्परा में अब कोई वर्त्तमान नहीं है। सिर्फ उस्ताद अली कद्र के पुत्र मशहूर 'ढड्डनजी' ही इस समय पटना के प्रसिद्ध तबलचियों में हैं; किन्तु अपने पिता के ऐसे नही हैं।

गया

बिहार में गया-शहर भी संगीत का एक मुख्य अड्डा और अखाड़ा था। इस शहर में तीर्थगुरु (पंडा) ढेंड़ीजी के समय मे इसरार बहुत आला दर्जे का बजता था। ढेंड़ीजी पटना के मशहूर नवाब 'प्यारे साहब' के समकालीन थे। ये स्वयं इसरार उसी दर्जे का बजाते थे जिस दर्जे का नवाब साहब सितार।

ढेंड़ीजी के समकालीन एक प्रसिद्ध उस्ताद श्रीहनुमानदासजी अबतक वर्त्तमान हैं। संगीत-विद्या के ये महान् पंडित हैं। कुछ-कुछ संगीत की शिक्षा अबतक देते है, किन्तु अब बहुत बूढ़े हो गये हैं। इन्हीं के सुपुत्र श्रीसोनीसिंहजी स्वनामधन्य हारमोनियम-मास्टर थे।

ढेंड़ीजी के समय का चला हुआ इसरार अबतक प्रसिद्ध इसरार-वादक श्री चंडिका दुबे के हाथ मे है। दुबेजी गया जिले के 'पवई' गाँव के रहनेवाले हैं। 'पवई' में कई अच्छे गवैये भी हैं।

उस्ताद हनुमानदासजी के शिष्यों मे पंडा माधवलाल कटरियार और उस्तादजी के अपने पुत्र श्री शोणीजी (सोनीसिंह) थे। ये दोनों ही हारमोनियम बहुत अच्छा बजाते थे। दोनों का स्वर्गवास हो गया। श्रीसोनीजी तो हारमोनियम बजाने में समस्त भारतवर्ष मे प्रसिद्ध थे। केवल प्रसिद्ध ही नहीं, अद्वितीय थे। ये इसराज बजाने में भी परम सिद्धहस्त थे। ठुमरी गाने में इन्हे कमाल हासिल था। हारमोनियम मे इन्होंने कितनी ही नई-नई धुन और गत पैदा की थी। इन्होंने ही हारमोनियम में 'आलाप' और 'जोड़' बजाने की अपूर्व कला का आविष्कार किया था और इस दृष्टि से तो ये सर्वथा अतुलनीय थे।

गया ही में प्रसिद्ध सारंगी बजानेवाले गोपाली मल्लिक थे, जिनका उल्लेख मुजफ्फरपुर के संगीतज्ञों के साथ हो चुका है। गया जिले की प्रसिद्ध रियासत 'टेकारी' के दरबार में भी बहुत-से अच्छे गवैये रहा करते थे।

गया जिले के 'अरवल' कस्बे मे, स्वर्गीय सोनीसिंहजी के शिष्य, श्रीवासुदेवनारायण वर्मा श्रीवास्तव हैं, जो अनेक राग-रागिणियों के बहुत ही अच्छे जानकार हैं। वहीं के रौनियार-वैश्य श्री शिवनन्दन साहजी भी राग-रागिणियों के रहस्य के सच्चे समझदार है। ये दोनों वास्तविक संगीत-मर्मज्ञ हैं।

उक्त सोनीसिंहजी के गया-नगर-निवासी शिष्यो में हारमोनियम बजाने वाले पाँच व्यक्तियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं— श्री गोविन्दलाल नकफूफा, शंकरलाल परबतिया, नारायणलाल परबतिया, दादू बाबू और स्वयं सोनीजी के सुपुत्र गोपालसिंहजी, जो अच्छे गायक भी हैं। गया के पंडा-समाज (गयावाल लोगों) में गाने-बजाने का अनुराग विशेष रूप से है, इसलिये उनमें कई अच्छे उस्ताद हैं।

मुंगेर

मुंगेर जिले के अन्तर्गत 'गिद्धौर' रियासत का दरबार बहुत दिनों से संगीत का विख्यात केन्द्र रहा है। स्वर्गवासी महाराज और उनके भाई रावसाहब संगीत के अच्छे विद्वान् थे। उस्ताद मुहम्मद अली खाँ, जो तानसेन की कन्याओं के वश मे से थे, अपने देहान्त के समय तक, इसी दरबार मे रहे। ये रबाब बजाते थे और सेनी-घराने (तानसेन-वंश) के संगीतज्ञ विद्वान् थे। इनको ध्रुपद और होरियाँ बहुत अच्छी और प्रामाणिक याद थी, जिनमे से बहुतों को लखनऊ के स्वर्गवासी राजा नवाब अली खाँ ने, इनसे गवा-गवाकर, उनकी स्वर-लिपियाँ तैयार करके, अपनी किताब 'मोआरीफुल नगमात' के हिन्दी-सस्करण में दिया था।

मुगेर जिले के मँझौल गाँव के सुप्रतिष्ठित जमीन्दार श्रीफुलेना बाबू भी अच्छे सगीतज्ञ हैं। आप भी श्रीसोनीसिंहजी के शिष्यों मे हैं और हारमोनियम बहुत सुन्दर बजाते हैं। खास मुंगेर-शहर मे भी बहुत-से लब्धकीर्त्ति गायक और वादक हो चुके हैं तथा अब भी कई वर्त्तमान हैं।

'विसप'-ग्रामवासी श्रीयुगलकिशोरसिंह 'ख्याल' के बड़े ही अच्छे गायक हैं और तबला बजाने मे उस्ताद हैं। आप ब्रह्मचारीजी के शिष्य हैं। इन्हीं ब्रह्मचारीजी के एक शिष्य 'अगुवानी' गाँव में हैं—श्री लक्ष्मीकांतसिंह, जो 'ख्याल' और 'ठुमरी' के विशेषज्ञ गायक हैं तथा इनका संगीत-शिक्षालय भागलपुर जिले

के 'मीरजान हाट' नामक स्थान में है। अगुवानी के ही निवासी हैं श्री उचित-नारायणसिंह, जो 'गजल' और 'ख्याल' के बड़े सिद्ध गायक हैं तथा तबला बजाने की कला में भी निपुण हैं। इसी जिले में तबला-बजवैया दो सज्जन और भी प्रसिद्ध हैं—दामोदर सिंह और दामोदर राउत। खड्गपुर के पंडित नारायणप्रसाद झा भी ध्रुपद, ठुमरी और ख्याल के कुशल गवैया हैं—आप लोदीपुर के महंतजी के शिष्य हैं। श्रीपुर के अध्यापक ज्वालाप्रसादसिंह बाँसुरी बहुत मधुर बजाते हैं और सुप्रसिद्ध बदरी कत्थक के शिष्य हैं—इनको संगीत-सम्बन्धी कई पदक और 'कप' मिल चुके हैं—आधुनिक गीतों की लय-धुन बाँधने में इनको कमाल हासिल है।

भागलपुर

भागलपुर जिले के अन्तर्गत, सुपौल-सबडिवीजन के इलाके में, एक रियासत पँचगछिया है, जिसके मालिक स्वर्गवासी रायबहादुर लक्ष्मीनारायणसिंह संगीत के सुप्रसिद्ध विद्वान् थे। भारतवर्ष के सुकीर्त्तिशाली संगीतज्ञों में उनकी गणना होती थी। वे संगीत की शिक्षा भी लोगों को देते थे। वे अपनी प्रौढ़ा-वस्था में मृदङ्ग अच्छा बजाते थे। अन्तिम समय तक हारमोनियम बजाने में वे अपने हाथ की सफाई दिखाकर लोगो को चकित कर देते थे। अनेक देशमान्य संगीतज्ञ उनके मित्र थे। उनके पूर्वज लोग भी इस विद्या के अनुरागी एवं अभिज्ञ थे।

रायबहादुर-द्वारा शिक्षित मगनरामजी गवैया, दो-एक सितारिया और उसी दरबार के शिक्षित अथवा सत्सङ्गी वासुदेव दुबे पखावजी वर्त्तमान हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है, दरभंगा-राज के श्री रामेश्वर पाठक भी रायबहादुर के संग बहुत दिन रह चुके हैं। भ्रमरपुर गाँव के सत्यनारायण झा प्रसिद्ध संगीतज्ञ और तबला बजाने में अद्वितीय थे। पँचगछिया-दरबार तथा अन्य जगहों में रहकर इन्होने बहुतों को तबला बजाना सिखाया था। इनको मरे अभी चार-पाँच वर्ष ही हुए हैं।

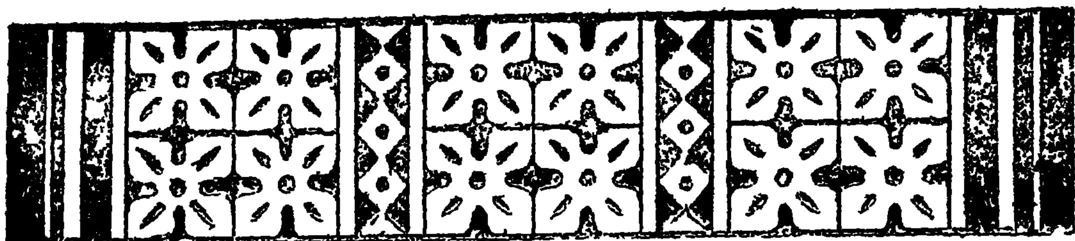
रायबहादुर के बड़े पुत्र श्रीअमरेन्द्रनारायणसिंह एम्० ए० (हीरा साहब) भी संगीत के अच्छे विद्वान् थे और हारमोनियम अच्छा बजाते थे। पँचगछिया के पंडित रघू झा बड़े अच्छे गायक हैं और वहीं के हरिनन्दनजी तबला बजाने में बड़े नामी हैं। भागलपुर-नगर में भी, जहाँ धनिकों और रईसो का बड़ा घना समाज है, कई कुशल संगीतज्ञ और उत्साही संगीतानुरागी हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट देखने में आता है कि बिहार में आज भी गाने-बजाने-वाले गुणियो और कलावन्तो की उतनी कमी नहीं है जितनी इस युग में होनी चाहिये, क्योकि इस युग में भारतीय संगीत के सच्चे स्वरूप के प्रेमी बहुत ही कम रह गये हैं, इसलिये संगीतज्ञो को आश्रय एवं प्रोत्साहन प्रदान करनेवाले अब रह ही नही गये—जो हैं भी वे इसे केवल दो घड़ी के मन-बहलाव का सामान समझते हैं, सर्वोच्च कला के रूप में इसे नहीं अपनाते। कब तक यह शोचनीय स्थिति बनी रहेगी, कौन कह सकता है ?



卐

स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी



आचार्य द्विवेदीजी के पत्र

इंडियन प्रेस (प्रयाग) के स्वर्गीय स्वामी स्वनामधन्य बाबू चिन्तामणि घोष ने जब—प्रायः १६०३ ई० में—काशी-नागरी प्रचारिणी सभा से 'सरस्वती' के प्रकाशन का भार अपने ऊपर ले लिया, तब पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में 'सरस्वती' खूब सजधज के साथ निकलने लगी।

एक उत्साही बंगाली सज्जन का हिन्दी के प्रति ऐसा अनुपम अनुराग और हिन्दी-प्रचार की ओर ऐसी अतुलित प्रवृत्ति देखकर हिन्दी-लेखकों का उत्साह दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ चला। 'सरस्वती' में अच्छे-अच्छे लेख छपने लगे; किन्तु ग्राहकों की संख्या थोड़ी होने से प्रकाशक को साल-साल बहुत घाटा लगा, जिससे उनका 'सरस्वती'-प्रकाशन के लिये खर्च करने का साहस घटने लगा।

आखिर उन्होंने 'सरस्वती' में सूचना दी कि 'सरस्वती' के प्रकाशन में प्रेस को अत्यधिक घाटा सहना पड़ा है, इसलिये यदि इस वर्ष भी ग्राहकों की संख्या न बढ़ी तो अगले साल से 'सरस्वती' नहीं छपेगी; लाचार होकर हमें 'सरस्वती' का प्रकाशन बन्द करना पड़ेगा।

'सरस्वती' में इस आशय की सूचना देखकर बिहार के गौरवस्तम्भ, साहित्य के परमानुरागी, श्रीनगर (पुर्नियाँ) के अधिप, राजा कमलानन्दसिंह को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी घड़ी मुझे आज्ञा दी—"इंडियन प्रेस के मालिक को मेरी ओर से एक पत्र लिख दीजिये कि 'सरस्वती' के प्रकाशन में अब से जो घाटा लगेगा उसकी पूर्त्ति मैं करूँगा। 'सरस्वती' बन्द न की जाय।" इत्यादि।

राजा साहब का यह पत्र पाकर चिन्तामणि बाबू बड़े विस्मित हुए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि मध्यदेश के अनेक राजा-महाराजों में से किसी का ध्यान

अभी तक 'सरस्वती'-संरक्षण की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है, परन्तु बिहार के पुर्नियाँ जिले में एक ऐसे हिन्दी-प्रेमी, सरस्वती-सेवक, साहित्यरसिक लक्ष्मीवान् विद्यमान हैं जो हमें इस प्रकार ढाढ़स देकर अपनी उदारता दिखला रहे हैं।

उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी से उस पत्र का हिन्दी में यों उत्तर लिखवाया—"सरस्वती को जीवित रखने के लिये आपने जो साहाय्य देने की बात कहकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है, इसके लिये अनेक धन्यवाद। आपकी उदारताभरी बातों से प्रोत्साहित होकर हम अब घाटा सहते पर भी उसे बन्द नहीं करेंगे। 'सरस्वती'-संचालन के लिये अभी आपसे आर्थिक सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। हम आपसे इतनी ही सहायता चाहते हैं कि 'सरस्वती' की ग्राहक-संख्या आप जहाँ तक बढ़ा सकें, बढ़ाने की कृपा करें।"

इसपर राजा साहब ने अपनी रियासत में 'सरस्वती' के सैकड़ों ग्राहक कायम कर दिये और उनके नाम 'सरस्वती'-सम्पादक के पास लिख भेजे।

राजा साहब और द्विवेदीजी के बीच तभी से पत्र-व्यवहार होने लगा। मैं उन दिनों राजा साहब की सेवा में नियुक्त था। राजा साहब के साहित्य-विभाग का प्राइवेट सेक्रेटरी मैं ही था। राजा साहब की ओर से मुझे जब-तब द्विवेदीजी को पत्र लिखना पड़ता था। कभी-कभी मैं अपनी ओर से भी उन्हें कुछ लिख दिया करता था। फिर तो उनका स्नेह मुझपर इतना बढ़ गया कि वे मुझको अपने एक हार्दिक मित्र तथा छोटे भाई के बराबर समझने लगे।

हम दोनों मे पत्र-व्यवहार की घनिष्ठता दिन-दिन बढ़ने लगी। पत्र का तत्काल समीचीन उत्तर देने में द्विवेदीजी एक ही थे। उनके हाथ की लिखी सैकड़ों चिट्ठियाँ मेरे पास आई होंगी, जिनमें कुछ तो अरक्षितरूप में रहकर खो गई, जिसका मुझे आन्तरिक दुःख है। तब मैं नहीं जानता था कि किसी दिन द्विवेदीजी के पत्र का महत्त्व इतना बढ़ जायगा कि वह आदर्श समझा जाकर साहित्य-सेवियों के लिये एक अनुपम रत्न का काम देगा।

जब उनके दिवंगत होने पर 'सरस्वती' मे उनके पत्रो के छपने की बात सुनी, तब मैं फाइलो में उनके पत्र ढूँढ़ने लगा। काठ के बक्स में दीमक लग जाने से उनके अनेक पत्र तो नष्ट हो गये; दुष्ट दीमकों ने उनके कुछ पत्रों को बिलकुल चट कर डाला; कुछ पत्रों की इबारत को आंशिक रूप से खाकर उसे अपाठ्य कर दिया। दीमकों के ग्रास से जो कुछ बचे हुए मिले, उन्हें मैंने साहित्य प्रेमियों के

मनोविनोदार्थ प्रकाशित करा देना ही उचित समझा। आशा करता हूँ कि द्विवेदीजी के हाथ के लिखे इन पत्रों को पढ़कर हिन्दी-साहित्य-रसिक जनों को एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। पत्र अविकल रूप में उद्धृत किये गये हैं, पंक्तियाँ भी ज्यों-की-त्यों रक्खी गई हैं।

—जनार्दन झा 'जनसीदन'

[१]

झाँसी,
६-१-०३

महाशय,

आपका कृपापत्र आया—जीवनचरित *
भी मिला—उसके छापने का हम यथासमय
विचार करेंगे—इसे आप किसके नाम
से प्रकाशित कराना चाहते है—इसमें
कुछ फेरफार की ज़रूरत होगी—

आपने हमारे विषय में जो
कुछ लिखा उसके लिये हम आपको
धन्यवाद देते है—

बहुत अच्छा; आप अपनी
कविता और अपना लेख भेजिए।
कृपा होगी—

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२]

कानपुर,
१२-२-०३

प्रिय पण्डितजी—प्रणाम.

शिक्षा-शतक की तो समाप्ति
हो गई—अब 'पश्चात्ताप'
की बेला है—कृपा करके

*मैने राजा कमलानन्दसिंह साहब की जीवनी लिखकर भेजी थी, जिसे सुधारकर 'सरस्वती'-सम्पादक को अपने नाम से छापने का अधिकार दिया था। द्विवेदीजी ने उसे जून, १९०३ की 'सरस्वती' मे प्रकाशित किया था।—ज० झा

उसे भी शीघ्र ही समाप्त करके
भेज दीजिए तो छपना शुरू हो जाय—

आशा है, अब श्रीमान्
राजा साहब बखूबी आराम
हो गये होंगे और सब काम-काज
करने लगे होंगे—

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३]

झाँसी,
२४-२-०३

प्रिय महाशय,

आपका अत्यन्त स्नेहसूचक पत्र आया—आपने जो कुछ हमारी प्रशंसा की उसके हम पात्र नहीं—यह आपके स्नेह—आपकी कृपा ही का फल है जो आप हमै ऐसा समझते है.

'सरस्वती' की जो भूलैं आपने दिखाईं उनके लिए हम कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देते हैं—आपकी दिखाई हुई अनेक भूलैं ठीक हैं—परन्तु पत्र द्वारा उन सबका विवेचन हमसे नहीं हो सकता—होने की आवश्यकता भी तादृश नहीं है—हमारे सदृश अल्पज्ञों से यदि भूलै हों तो कोई आश्चर्य की भी बात नहीं.

हिन्दी का कोई सर्वसम्मत व्याकरण नहीं है। व्याकरण के बनानेवाले हमारे-आपके सदृश ही सामान्य जन थे। अतः हिन्दी-लेखप्रणाली में किसके किए हुए नियम माने जायँ? किया का बहुवचन किये ठीक ही है। परन्तु

(पृष्ठ २)

स्वर स्वतन्त्र हैं; व्यञ्जन अस्वतन्त्र—

इसलिए उच्चारण के अनुसार यदि किए भी लिखा जाय तो हो सकता है। हम तो दोनों लिखते है—जैसा जहाँ कलम से निकल जाय.

हिन्दी लिखने में उर्दू-फारसी के शब्द आवैं तो हम कोई हानि नहीं समझते—कोई-कोई उर्दू के शब्द अधिक बोलचाल में आते रहने के कारण अधिक सरल और अधिक बलपूर्ण हो गए है—सम्मति से सलाह ही अधिक सरल है—धूल में मिला देने की अपेक्षा खाक में मिला देना कहने ही में अधिक बल है.

अपना मत हमने आपकी आज्ञा के अनुसार लिख दिया—सम्भव है, आपका ही मत ठीक हो—सबके विचार पृथक्-पृथक् हुआ करते है.

जैसी कृपा है, वैसी ही बनाए रखिएगा, यही प्रार्थना है.

आपका—

महावीरप्रसादद्विवेदी

[४]

झाँसी,

२३—३—०३

प्रिय महाशय,

२० तारीख का आपका कृपापत्र आया। राजा साहब का पत्र पढ़कर हमारा चित्त क्षुब्ध हो उठा। इसमें कोई सन्देह नही। परन्तु हमारा क्षोभ हृदय के भीतर ही रहा। उससे हमने किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं होने दिया। उसका उत्तर जो हमने राजा साहब को भेजा उसके पाँच-चार दिन पीछे हमने उनका जीवनचरित समाप्त किया—उसमें उस क्षोभ का लवलेश भी आपको न मिलैगा।

हम राजा साहब की उदारता और उनके भाषाप्रेम पर मोहित हैं। अतएव यदि वे हमको उससे भी सख्त पत्र लिखते तो भी हम सिवाय विनय के और कुछ न कहते। यदि और कोई होता तो हम उसके पत्र का जवाब भर्तृहरि के उस श्लोक से देते जिसका चतुर्थ चरण है—

मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम सुतरामेष राजन् गतोऽस्मि

परन्तु ऐसा करना हमारे शील के खिलाफ है। धन-

(पृष्ठ २)

वानों में कितने पुरुष साहित्य-प्रेमी हैं? एक ही दो। उनको कटुवचन कहना हमारा धर्म्म नहीं है।

फ्रांस में दो कवि हो गये हैं। वे ११ वर्ष तक एक दूसरे से नहीं मिले। परन्तु पत्र द्वारा ही उनका प्रगाढ़ स्नेह हो गया। यहाँ तक कि दोनों ने मिलकर पुस्तकें तक लिखीं। हमने समझा कि हमारा और राजा साहब का इतना पत्र-व्यवहार हो चुका है कि हम उनको उस कविता के विषय में लिख सकते हैं—हमको यह भासित हुआ कि वे उस कविता से प्रसन्न होंगे। यदि वे, जैसा आप अब लिखते हैं, सचमुच उसके देखने के लिए उत्कण्ठित हैं तो हम नहीं समझते, क्यों उन्होंने हमको उस प्रकार की कड़ी चिट्ठी लिखी। वह कविता अश्लील है, अतएव हम उसे राजा साहब के पास भेजने का साहस तबतक नहीं कर सकते जबतक वे स्वयं हमको उसके लिए यथोचित रीति पर न लिखें। उसकी नकल करने में हमें दो-तीन दिन लगेंगे। उसमें कोई २०० पंक्तियाँ हैं।

नायिका-भेद और इस प्रकार की कविता

(पृष्ठ ३)

सब कोई अपने घर में पढ़ सकता है। परन्तु, नायिका-भेद का सर्वसाधारण में प्रचार अच्छा नहीं। हम इसके प्रतिकूल हैं। इसपर एक चित्र भी 'सरस्वती' में निकलेगा। इस प्रकार की पुस्तकों के कर्त्ताओं को पुरस्कार देने में भी हानि नहीं। परन्तु सर्वसाधारण को इसका ज्ञान न होना चाहिए कि अमुक-अमुक को अमुक-अमुक पुस्तक के लिए यह मिला। पर हमारा मत है—मन्दमति तो हम हई हैं; परन्तु इसमें हमारा क्या जोर—अपनी-अपनी समझ तो है—

उस कविता * को राजा साहब के पास भेजने में हमने कोई हानि नहीं समझी। यदि राजा साहब या आपने वात्सायन, जयदेव," डल्लन, बाइरन आदि के ग्रन्थ देखे हैं तो विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। इनसे ;बड़ा ऋषि, भक्त और कवि कोई इस समय नहीं है।

रवीन्द्र बाबू की ग्रन्थावली हमको कल तक मिल जायगी—उसके लिए श्रीमान् राजा साहब से हमारा हार्दिक धन्यवाद कहिएगा। राजा साहब का प्रसाद समझकर हम इन पुस्तकों को अत्यन्त प्रेम से पढ़ैंगे और सदैव पास रक्खैंगे। "प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि"।

(पृष्ठ ४)

हमारी तो आपसे यही प्रार्थना थी कि आप भारतमित्र को कुछ न लिखिए। अपना लेख पढ़कर वह यह समझैगा कि हमी ने लिखा है और हमै

* द्विवेदीजी ने 'सुहागरात' शीर्षक की अपनी बनाई एक कविता राजा साहब [...]ीति से भेजी थी जिसे पढ़कर उनके मन में कुछ क्षोभ हुआ। वह कविता [...] अविकल रूप मे मेरे पास सुरक्षित है। —ज० झा

फिर गालियाँ मिलेंगी। परन्तु यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो छपने दीजिए।

कोई १ महीना हुआ होगा हमने आपको एक कार्ड लिखकर पूछा था कि "साम्ब कमलानन्दम्"* में प० अम्बिकादत्त व्यास का कहीं कोई जिकर क्यों नहीं है। क्या वह कार्ड आपको नहीं मिला? इसका उत्तर अब कृपा करके भेजिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[५]

झाँसी
४—६—०३

प्रिय महोदय,

आपका १३ ता० का कृपापत्र आया। हमने आपको कल पोस्टकार्ड भेजा है। श्रीमान् के पत्र का उत्तर भी दिया है। उससे आपको सरस्वती के समाचार विदित हुए होंगे। हम आपको और श्रीमान् राजा साहब को धन्यवाद दे चुके हैं और फिर भी देते हैं। 'सरस्वती' का जारी रहना कम से कम अगले वर्ष तक निश्चय रहा। श्रीमान् राजा साहब को हमलोग अभी और कोई कष्ट नहीं देना चाहते। हाँ, यदि उनके कोई परिचित, सुहृद् इत्यादिकों में से कोई ऐसे हों जो हिन्दी से प्रेम रखते हों तो उनके लिए 'सरस्वती' की कापियाँ मँगा करके उसे सहायता

* इस नाम का एक काव्य संस्कृत में सोती-सलेमपुर (दरभंगा)-वासी पं० श्रीकान्त मिश्र ने राजा साहब के सम्बन्ध में लिखा था, जो छपा हुआ है, जिसके लिए राजा साहब ने चार हजार पुरस्कार दिया था। —ज० भा

(पृष्ठ २)

दे सकते हैं।

आपकी कविता में वे शब्द—
जिनके बारे में आपने लिखा है
हम बदल देंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[६]

झाँसी,
८ सितम्बर, ०३

प्रिय महाशय,

आपका कृपाप्लावित पत्र आया। परमानन्द हुआ। हमारी प्रशंसा में आपने जो इतनी बड़ी भूमिका बाँधी है उसकी क्या आवश्यकता थी। पत्र द्वारा हमारा आपका विशेष परिचय हो गया है। अतएव प्रशंसात्मक लौकिकाचार अच्छा नहीं लगता।

'सरस्वती' के जिन शब्दों या वाक्यों पर आपने शंका की थी उनका स्मरण तक हमको नहीं। उस बात ही का विस्मरण हुए बहुत दिन हुए। यह एक अत्यन्त क्षुद्र बात थी। भला इसपर हम क्यों अप्रसन्न होने लगे। हम जानते हैं कि मनुष्य मात्र भूल करते हैं तो क्या हम उनसे बाहर हैं? हम इन बातों का बुरा नहीं मानते।

आप यदि मनोरञ्जक और उपयोगी कवितायें और लेख 'सरस्वती' के लिए भेजेंगे तो हम उनको सहर्ष और सधन्यवाद छापेंगे। 'सरस्वती' के स्वामी उसे अगले वर्ष से बन्द

(पृष्ठ २)

करना चाहते हैं। परन्तु हमारी······इस बात का

निश्चय नहीं हुआ। ग्राहकों की संख्या भी सवाई बढ़ी है, व्यय भी इस साल बहुत ही कम हुआ है, परन्तु आरम्भ से लगाकर आज तक उनको बहुत व्यय हुआ है। इसी लिए जारी रखते वे घबराते हैं। अगर 'सरस्वती' जीवित रही और हम उसे लिखते रहे तो लेख इत्यादि छपैंगे, नहीं तो सब धरे ही रह जायँगे। हमारे पास न मालूम कितने पड़े हैं। 'सरस्वती' जारी रहने से हम आपके लेख अवश्यमेव छापैंगे। आप लिखने का अभ्यास बनाए रहिए। आप तो विद्वान् हैं; अभ्यास से निपट मूढ़ विख्यात लेखक हो जाते हैं।

संस्कृत के जिस ग्रन्थ * का आप अनुवाद कर रहे हैं, कीजिए। समाप्त होने पर हम उसे देखैंगे। आपकी कृति को देखना ही क्या है, आपके पत्र की रचना ही देखकर हमको आनन्द आता है, ग्रन्थ देखकर तो और भी अधिक प्रमोद होगा।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[७]

झाँसी
२४-६-०३

प्रिय महोदय,

कृपापत्र आया। श्रीमान् की उदारता ने तो हमारे हृदय पर बड़ा ही असर पैदा किया है।

* मैं उन दिनों मैथिल महाकवि विद्यापति ठाकुर के 'पुरुष-परीक्षा' ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कर रहा था। उसी के विषय में मैंने द्विवेदीजी को लिखा था। समय पाकर मेरा वह अनूदित ग्रन्थ पुस्तक-भंडार और विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय) के अध्यक्ष बाबू रामलोचनशरण ने प्रकाशित कर अपने साहित्यानुराग का परिचय दिया। —ज० भा

हम यही ईश्वर से प्रार्थी हैं कि आपकी यह नवीन चिन्ता शीघ्र ही दूर हो जावै।

श्रीमान् ने बड़ी ही कृपा की जो 'सरस्वती' के लिए लेख लिखे। दीनबन्धु बाबू का चरित शीघ्र ही भिजवाइए—फोटो समेत। आप 'सरस्वती' में छपने को जो लेख भेजै उनकी सरलता पर अधिक ध्यान रक्खैं। 'सरस्वती' की भाषा के काठिन्य के विषय में बहुत शिकायतैं आती हैं।

यह पता आपको कैसे मिला कि हमारे के······पुत्र भी हैं—न हमारे पुत्र न पुत्री।

हम अपने वंश में कूलद्रुम हो रहे हैं। वृद्धा माता और स्त्री के सिवाय हमारा और कोई निकट सम्बन्धी अथवा कुटुम्बी नहीं।

(पृष्ठ २)

श्रीमान् को देने लायक हमारे पास अपनी फोटो नहीं—तैयार कराके किसी समय हम भेंट करैंगे। हमारा चित्र श्रीमान् ने अपने पास रखने योग्य समझा, इसलिए हम आपके कृतज्ञ हैं, यह हमारे लिए गौरव की बात है।

हमने आपको धन-सम्बन्धी सहायता के विषय में जो 'सरस्वती' का अपील लिखने को कहा था उसे लिखने को मना किया और लेख लिखने को नहीं मना किया, और जो आप जितने ही लिखैंगे उतना ही अधिक हम आपको धन्यवाद देंगे। वे दो कविताएँ जो आपने भेजी हैं उनका शेष भाग भी कृपा करके भेज दीजिए। "सहायता" से हमारा अभिप्राय धन-सम्बन्धी सहायता से है।

हमको यह जानकर बहुत सन्तोष और प्रसन्नता होती है कि आप 'सरस्वती' के ग्राहक बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी ही दया बनाए रखिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[८]

झाँसी,
१२-११-०३

प्रिय महाशय,

आपका कृपापत्र और निमन्त्रण-पत्र दोनों प्राप्त हुए—ईश्वर करै आपका यह सदनुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो—आपके श्रीमान् की उदारता का परिचय हमको मिल चुका है—क्यों न ऐसे अच्छे काम में वे सहायता दे—

हमको बाबू नरनाथ झा की कविता छापने में उजर नहीं है। परन्तु ७०० कुण्डलियों के लिए सात वर्ष नहीं तो ५ वर्ष अवश्य चाहिए—ऐसी बड़ी पुस्तक अलग पुस्तकाकार ही छपनी चाहिए—आपका शिक्षाशतक छप रहा है—इसी महीने में निकलैगा। कृपा करके शेष भी शीघ्र ही भेज दीजिए। और पश्चात्ताप वाली कविता भी समग्र भेजिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[९]

झाँसी,
२८-१२-०३

प्रिय महाशय,

कृपापत्र आया। गङ्गालहरी की

एक प्रति बाबू नरनाथ झा को जाती है। स्टाम्प भेजने की जरूरत न थी।

अगर १० कुंडलिया भी एक बार में छपी तो १०० के लिए १० महीने चाहिए। रहिमनविलास आज दो वर्ष से छप रहा है तो भी समाप्ति नहीं हुई। उसके समाप्त होने पर हम बाबू साहब की कुंडलियों को छापने का विचार करेंगे।

आपके और श्रीमान् के हम परम कृतज्ञ हैं। जबतक आपकी और श्रीमान् की सहायता पूरी-पूरी न होगी तब तक 'सरस्वती' दीर्घायु भी न होगी।

'सरस्वती' के लेखों के विषय में आपने जो लिखा उसकी हम यथासाध्य परिपालना करेंगे।

आशा है, अब आप पहले से अच्छे होंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१०]

दौलतपुर,
१८-१-०४

प्रियवर,

कृपापत्र मिला—आज से आप हमको Juhi (जुही) Cawnpur (कानपुर) के पते से पत्र भेजिएगा—

शिक्षाशतक के शेषांश की पहुँच हम भेज चुके हैं—बहुत अच्छा, आप यथावकाश प्रार्थनाशतक वगैरह को समाप्त कीजिएगा—कोई जल्दी नहीं—तब तक शिक्षा को छपने दीजिए—

दीनबन्धु का चरित छप गया—हम प्रूफ देख चुके—परन्तु हमको उसके लिखने का तर्ज पसद नहीं।

आपने हमारे विषय में राजासाहब को क्यों तकलीफ दी—ऐसा करने के लिए हमने तो आपसे प्रार्थना नहीं की—हमको जो जानते है या हमपर जिनका स्नेह है हम उनकी केवल कृपा के

(पृष्ठ २)

भिखारी है। तृणादपि लघुस्तूलः इत्यादि का स्मरण हमको हमेशा रहता है—इसलिए हमने याचकवृत्ति नहीं स्वीकार की—परन्तु ईश्वर की लीला समझ में नहीं आती—यदि ऐसा ही समय आया तो जिनका सालाना हिसाब रहता है और जिनको राज्यसम्बन्धी कम झमेले रहते हैं, पहले उन्हीं से याचना करैंगे—यों तो ब्राह्मण जन्म से भी और परम्परा से भी भिखारी हैं। परन्तु ब्राह्मण के एक भी लक्षण हममें नहीं। अतः किस बल पर हम प्रतिग्रह का साहस करैं—धृष्टता माफ कीजिए—

भवदीय—

महावीरप्रसाद

[११]

२—x—०४

प्रिय पंडितजी,

कृपापत्र आया। २२ ता० का लिखा हुआ कल मिला। हम श्रीमान् की कृपा, श्रीमान् की प्रीति, के भूखे, नहीं ऋणी हैं—नये पुराने का हमको जरा भर भी ख़याल नहीं। जो कुछ वे भेजैंगे उसे हम प्रेमोपहार ❀ समझकर

❀ राजा साहब ने द्विवेदीजी को लिखा था कि आपके 'सरस्वती'-सम्पादन की मनोहरता से प्रसन्न होकर हम आपको कुछ पुरस्कार देना चाहते हैं। इसपर द्विवेदीजी ने

अनमोल और अलभ्य मानेंगे। मैशीन को पैक (बन्द) करके भेजिएगा। दूर का मामला है। रेलवाले ज़िम्मेवारी भी वैसे नहीं लेते। नुकसान का डर रहता है।

और सब कुशल है।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१२]

३१—७—०४

दौलतपुर। डाकघर; भोजपुर। रायबरेली

प्रियवर,

कृपापत्र आया—कविता भी मिली—शिक्षा-शतक का शेषांश भी भेजिए जिसमें हम उसे लगातार छापते जायँ—बन्द न करना पड़े। कविता बहुत अच्छी है—रसालपञ्चक को भी किसी समय प्रकाशित कर देंगे—पश्चात्तापशतक को आप थोड़ा ही सा भेजकर चुप हो गये—क्यों?

अभी हम कई एक महीना यहाँ रहेंगे—अनन्तर कानपुर जाने का विचार है—२ महीने घर पर रहना काफी होगा—यहाँ देहात में दिल नहीं लगता—आम की फसल भी गई—

हम आपके राजा साहब और आपकी कृपा रूपी सहायता के हमेशा इच्छुक रहते हैं। उसके लिए समय और आवश्यकता क्या?

दीनबन्धु का चरित शायद अगस्त में छप जाय—तसवीर नहीं मिली—

भवदीय
महावीर

लिखा था कि द्रव्य के अतिरिक्त कोई ऐसी चीज भेजिये जिसका हम नित्य उपयोग करें और जिससे हमें दैहिक और मानसिक सुख मिले। तब राजा साहब ने उन्हें एक कीमती बाइसिकिल (जो अपने लिये मँगवाई थी) भेजी और एक बँगला-काव्य-ग्रन्थावली।

—ज० झा

[१३]

६—६—०४

जुही, कानपुर,

प्रियवर,

कृपापत्र आया—हमारे लिए आपको अभ्यर्थना की जरा भी ज़रूरत नहीं थी। ज़रूरत है प्रेम-पूजा की—उसीसे आप हमको कृतकृत्य करते रहिए—

श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंहजी जो हिन्दी के सुलेखकों को साहाय्य देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं सो उनकी उदारता और कृपा है—श्रीमान् होकर भी जिसने अपनी मातृभाषा-निःसहाय हिन्दी पर दया-दृष्टि न की उसकी श्री की शोभा ही क्या? हमारी आन्तरिक इच्छा रहती है कि हम अपने इष्टमित्र और कृपालु सज्जनों को अपना स्मरण पत्र द्वारा कराया करें—परन्तु राजा साहब को हम बारबार अकारण पत्र भेजकर उनके काम में विघ्न नहीं डालना चाहते।

याञ्चा बहुत बुरी वस्तु है। जब तक हाथ-पैर चलता है, हम इससे बचना चाहते हैं—

त्यजन्त्यसून् शर्म च मानिनो वरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्।

जिनका हमपर प्रेम अथवा कृपा है उनसे इसके विपरीत व्रत का व्यवहार करने से, डर लगता है, कि

(पृष्ठ २)

कहीं वह कृपा भी उनकी हवा न हो जाय।

श्रीमान् समर्थ हैं—अगर वे 'सरस्वती' के लिए कुछ भी पूजा-सामग्री भेजेंगे तो वह उन्हें स्वीकार करेगी और यथोचित रीति पर उसकी

सूचना भी आप देंगी—हम अपने क्षुद्र जीवन के लिए उनको कष्ट नहीं देना चाहते—

हमारी सब पुस्तकें अनेक बक्सों में बंद पड़ी हैं—यहाँ वर्ष दो वर्ष रहने का विचार है—मकान तलाश कर रहे है—मिल जाने पर आपको लिखेंगे—अभी हमको यह भी नहीं याद कि रामचरितेन्दुप्रकाश हमको मिला है या नहीं और हमने उसकी समालोचना लिख ली है या नहीं।

ईश्वर करे, आप सदैव प्रसन्न और स्वास्थ्यसम्पन्न रहें।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[१४]

जुही, कानपुर,
२०-९-०४

श्रीमान् कविशिरोमणि पण्डित जनार्दन झा को बहुविध प्रणाम। विनय सुनिए। आपका अद्भुत पत्र आया। पढ़कर चित्त पर ऐसा आतंक जमा कि हम उसका वर्णन नहीं कर सकते। पुराणों में लिखा है कि देवता जब किसी पर प्रसन्न होते थे तब 'वरंब्रूहि' कहते थे। ठीक वैसे ही आपने हमसे 'वरं ब्रूहि' का प्रश्न किया है। इससे अधिक श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंह की उदारता, गुण-ग्राहकता और सामर्थ्य का और क्या उदाहरण हो सकता है। आपके उदाहरण से कर्ण, बलि और दधीचि आदि की कथा सब सच जान पड़ती है।

राजा साहब के लिए क्या कहना यशस्कर होगा, य. बतलाने में हम असमर्थ हैं। श्रीमान् की प्रतिष्ठा, कीर्ति और ख्याति अनन्य, अपरिमेय और दिग्व्यापिनी हैं, उनकी रचना हमारी समझ में है ही नहीं, उसकी किस तरह

वृद्धि होगी, या कौन काय करने से वृद्धि होगी, यह बतलाना हमारे सामर्थ्य के सर्वदा बाहर है।

'सरस्वती' पर यदि कोई प्रसन्न होगा तो दो बातों से होगा—उसकी छपाई, सफाई, कागज इत्यादि पर या उसके लेखों पर। पहली बात का श्रेय छापनेवालों का है, जो 'सरस्वती' के मालिकों के आदमी है। दूसरी बात का भार हमपर है। जब हमने 'सरस्वती' का अधिकार अपने हाथ में लिया था तब

(पृष्ठ २)

उसकी दशा हीन—बहुत ही हीन—थी। पर अब वह बात नहीं। अब उसका प्रचार तब से करीब-करीब दूना हो गया है। इसलिए उसकी अर्थकृच्छ्रता जाती रही है। उसके मालिक आत्मावलम्बी हैं और ऐसे निर्धन भी नहीं हैं। जब 'सरस्वती' अच्छी हालत में न थी तब भी उन्होंने दूसरों की सहायता धन्यवाद पूर्वक अस्वीकार कर दी। हाँ, १००—५० कापी 'सरस्वती' की यदि कोई लेकर अपनी गुणज्ञता दिखलाता तो कोई बात न थी। इस बात की सूचना हमने आपको भी दे दी थी। परन्तु शायद आप भूल गये होंगे।

रही हमारी बात। सो इस विषय में भी हमारी प्रार्थना सुनिए। महाराजा गायकवाड, ठाकुर साहब गोंडल, महाराजा योधपुर ने सम्पादकों और लेखकों को हजारों रुपये से मदद की है। जसवन्तजसोभूषण के लिए तो सुनते हैं, लाखों मिले हैं। यह उस तरफ की बात हुई। आपकी तरफ हिन्दी-लेखकों को उत्साहित करने में आपके श्रीमान् ही अनन्वयालङ्कार के उदाहरण-स्वरूप हैं। यह हिन्दी के लिए गौरव की बात है और श्रीमान् की उदारता की और गुणज्ञता की परिचायक है। व्यासजी के लिए आपने जो कुछ किया वह शायद ही किसीने किया होगा। श्रीमान् सम्पत्ति का सद्व्यय करना जानते हैं। किसीने ठीक कहा है—

अनुभवत ददत वित्तं मान्यान् मानयत सज्जनान् भजत।
अति-परुष - पवन - विलुलित - दीपशिखा - चञ्चला लक्ष्मीः॥

(पृष्ठ ३)

किसी लेखक या ग्रन्थकार की जो सहायता की जाती है वह प्रायः उसे उत्साहित करने के लिए की जाती है। सो हम यों ही उत्साहित हो रहे हैं। आपके श्रीमान् की हमपर कृपा-दृष्टि है, यह हमारे लिए सबसे अधिक उत्साह-वर्द्धक बात है। गत एप्रिल महीने तक हम एक ऐसे पद का उपभोग करते रहे जिसमें खूब द्रव्य-प्राप्ति भी थी और प्रभुत्व भी था। अब यद्यपि हम उससे अलग हो गये हैं तो भी आपके आशीर्वाद और श्रीमान् राजा साहेब के जैसे महोदयों के कृपा-कटाक्ष से हमको इस समय भी इतनी प्राप्ति है कि उसके दशांश के लिए भी सैकड़ों अँगरेजी-पढ़े अर्जियाँ लिए इधर-उधर घूमा करते हैं। कुछ चिट्ठियाँ हम आपको भेजते हैं, यह दो ही चार महीने के बीच की हैं। ये सभी राजाओं और राजाधिकारियों की हैं। इनसे आपको विदित हो जायगा कि इस तुच्छ जन पर आपके श्रीमान् ही की तरह और श्रीमानों की भी कृपा है। इन चिट्ठियों में एक और चिट्ठी भी आपको मिलेगी, जिससे आपको मालूम होगा कि जिस रेलवे में हम नौकर थे उसके एजेण्ट ने प्रसन्न होकर अभी इसी महीने ६०० रु० हमें इनाम देने का हुक्म दिया है। इन सब चिट्ठियों को कृपा करके वापस कर दीजिएगा।

यह सब लिखने का यह मतलब है कि परमेश्वर किसी प्रकार भोजन-वस्त्र हमें दिये जाता है। परन्तु आपके श्रीमान् राजा हैं, हम ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण को लेने में क्या इनकार हो सकता है। दान और प्रतिगृह दो ही तो उसके प्रधान काम हैं।

(पृष्ठ ४)

लेकिन खास हमारे लिए अभी सहायता अपेक्षित नहीं। यदि श्रीमान् की यह इच्छा हो कि लोग जानें कि वे हिन्दी के कहाँतक सहायक हैं, उसके उत्कर्ष-साधन में कहाँतक यत्नवान् हैं, उसके लिखनेवालों के कहाँतक उत्साह-वर्द्धक हैं, तो अपने और 'सरस्वती' के सम्पादक के गौरव का पूरा विचार करके 'सरस्वती' के लेखों पर प्रसन्न होने

का सूचक, जो चाहें भेज दें। तद्विषयक एक लेख 'सरस्वती' में निकल जायगा। हाँ, यदि आपकी सहायता की सूचना देना अनुचित समझा जायगा, तो वह रुपया हम 'सरस्वती' के मालिकों को भेज देंगे। उसके परिवर्त्तन में श्रीमान् को सरस्वती की यथासंख्य कापियाँ मिला करैंगी और हमसे उससे कुछ सम्बन्ध न रहैगा।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१५]

जुही, कानपुर
२०—१०—१६०४

प्रिय पंडितवर,

आपका स्नेह संवलित पत्र आया। आपने हमारी प्रशंसा लिखकर हमको लज्जित किया। हमारे पहले पत्र में आत्मश्लाघा का कुछ कालुष्य रहा हो तो आप क्षमा करैं।

हमारी यही × × अभिलाषा है कि आपके श्रीमान् के यहाँ सदैव भीडभाड रहै × × व काम-काज की अधिकता रहै और सदैव नये-नये उत्सवों का अनुष्ठान होता रहै। इन कारणों से यदि हमको पत्र लिखने के लिए श्रीमान् को समय न मिलै तो विषाद के बदले हमैं उलटा हर्ष ही होगा।

शिक्षाशतक छपने गया। अब लगातार उसका प्रकाशन होता रहैगा, 'पश्चात्ताप' को भी पूरा कीजिए। पर श्रीमान् राजासाहब का पत्र हमारे पास आने तक ठहरिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[१६]

जुही, कानपुर
८—११—०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

२ नवम्बर से ६ नवम्बर तक हम अवध की हडाहा राजधानी में थे। वहीं आपकी वापस की हुई

पुस्तकें मिलीं—उनके विषय में हम आपको कल लिख चुके हैं। परन्तु यहाँ पर पुनर्वार धन्यवाद देते हैं। पुस्तकों को सुनने और उचित सलाह देने के लिए श्रीमान् से भी हमारी तरफ से × × × × प्रकाशन कीजिए। हड़ाहा तक × × × श × × ना हुआ है × × यह बात जानकर हमको बड़ा आनंद हुआ—

हम समझते थे कि श्रीमान् राजा साहब कुछ और समझकर हमारी सहायता करना चाहते थे। यदि वे दशहरे के आनंद के उपलक्ष्य में हमको कुछ देना चाहते हैं तो हमें लेने में कुछ उजर नहीं हो सकता। अपने आनंद के उपलक्ष्य में या हमारे ऊपर जो श्रीमान् की कृपा या प्रीति है उसके उपलक्ष्य में वे जो चाहें दे सकते हैं। उसमें पूछने की क्या जरूरत। आपने एक दफा हमको एक पुस्तक भेजी। उसे हमने सादर स्वीकार किया। एक दफा श्रीमान् ने हमको कुछ आम भेजे। उनको भी हमने धन्यवादपूर्वक ग्रहण किया। परन्तु हमारी प्रार्थना है कि दशहरे के उपलक्ष्य में हमको द्रव्य न भेजा जाय। कोई चीज भेज दी जाय, जो हमारे पास बनी रहे और श्रीमान् की कृपा, उदारता या प्रेम का स्मरण कराती रहे। हमारी बाइसिकिल * खराब हो रही है। हम एक नई बाइसिकिल मँगाने के लिए कलकत्ते को लिखनेवाले थे कि आपका पत्र आया × × × × × ×

* राजा साहब ने एक बाइसिकिल ३६०) रुपये कीमत की, जो शुरू-शुरू ईजाद हुई थी, अपने लिये मँगवाई थी। वह ज्यों-त्यों बहुत दिनों तक रक्खी रही। राजा साहब ने पुरस्कार-स्वरूप द्विवेदीजी के पास वही भेज दी थी। परन्तु द्विवेदीजी ने उसे पुराने फैशन की कहकर ग्रहण किया। अबकी बार राजा साहब ने कलकत्ते से नये फैशन की बाइसिकिल १८१) में खरीद कर उनके पास भेज दी और पुरानी भेजी हुई बाइसिकिल पर जो उनके मन में असतोष था, उसे दूर कर दिया। —ज० झा

× × × × ×

× & Co × × ×

× × Size × उपलब्ध में भेज दें। इससे श्रीमान् की भी आज्ञा का पालन हो जायगा और हमको लेने में कुछ उजर भी न होगा।

जिस समय हमको द्रव्य अपेक्षित होगा या कोई पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए सहायता दरकार होगी उस समय हम श्रीमान् को सकोच छोड़कर लिखेंगे। यह आप श्रीमान् से कह दीजिएगा।

भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[१७]

जुही, कानपुर

२०—११—०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

कृपापत्र आया। वृन्दावन जाते समय आप अवश्य दर्शन दीजिए। हमारा इरादा अभी यहीं रहने का है।

बाइसिकिल के मूल्य की सीमा निर्दिष्ट हो चुकी है। इसलिए हम मैकर का नाम इत्यादि बताने की तादृश आवश्यकता नहीं समझते। उतने में जहाँ, जिस देश और जिस मैकर की मीडियम साइज मिल सकै, भेजिए। हम उसे श्रीमान् का प्रेमोपहार समझ बड़े आदर और सम्मान से रक्खेंगे।

और × जहाँ तक हल्की, नफ़ीस और मजबूत हो × है। उसके साथ उसकी सामग्री लैम्प, पूचर थे (?) × जो अन्य चीजें रहती हैं वे सब रहें तो और भी अच्छा हो।

यदि मैकर, नमूना या नाप इत्यादि जानना या देखना हो तो × × Thomson Co. Calcutta के सूचीपत्र में देख

लीजिएगा। न हो तो एक कार्ड भेजकर मँगा लीजिएगा। इस विषय में हम और कुछ लिखकर आपको अधिक कष्ट देना नहीं चाहते।

भवदीय—

म० प्र० द्वि०

[१८]

× × ×

प्रिय पंडितजी,

कृपापत्र आया। आज्ञानुसार हमने बाबू कालीप्रसाद सिंह को कुमारसंभवसार की एक कापी भेज दी है। हमारे कुटुम्बीय लेग से तो बच गये—परन्तु घोर विस्फोटक रोग से हमारी दो भांजियाँ × × × यहाँ × × × × × × × ×

(दूसरा पृष्ठ)

× है—

कलकत्ते पहुँचकर हमको पत्र × × × —मारफत हम दो एक Gra × × × ords मँगावैं-सूची देख × × × × मगर अच्छे नहीं आये × × × प्रार्थनाशतक भेजिए-हम छापने × × रहे हैं—आशा है, आप × ×

श्रीमदीय

म० प्र०

[१६]

कानपुर

१२-१२-०४

प्रिय पंडितजी, प्रणाम।

कृपापत्र आया। परमानन्द हुआ। आपका हमपर बड़ा प्रेम है। हम आपके ऋणी हैं। हम आपकी इस कृपा के पात्र तो

नहीं। परन्तु यह आपकी उदारता है जो आप हमसे इतना स्नेह-भाव रखते है। आपने 'सरस्वती' के लेखों के विषय में जो लिखा वह हमारे लिये बहुत उत्साहजनक है। कभी-कभी हमारे दोषों की भी हमको सूचना देते रहिए।

छ महीने ही घर से अलग रहना आप बहुत समझते हैं। शायद आप सस्त्रीक वहाँ नहीं हैं। हम तो तीन-तीन वर्ष घर का मुँह नहीं देखते रहे हैं। श्रीमान् आपको अपनी दृष्टि से दूर नहीं करना चाहते, यह तो आपके लिए सौभाग्य की बात है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[२०]

कानपुर
२०-१२-०४

प्रिय पण्डितजी,

आपका लम्बा पत्र आया। उसमें आपने अच्छी कविता की। अजी इन बातों को छोड़िए और ×भावों को धता बताइए। हमारे आपके बीच

× × × ×

इसीसे घर का वियोग दुःसह नहीं होता था। स्त्री ही तो घर है। आपकी दशा विपरीत है। आपको चाहिए कि आप अपने तरफ की रूढ़ि को तोड़कर सकुटुम्ब रहना शुरू करें। देखिए, इस तरफ लोगों ने ऐसा ही करना आरंभ कर दिया है। और आराम भी इसी में है।

भवदीय
महावीरप्र०

[२१]

जुही, कानपुर

× × ×

प्रिय पंडितजी, प्रणाम,

कृपापत्र मिला। खुशी हुई। पंडित × का लिखना सब सच निकला × × × × × भी हो जाय तो हो जाय। हम तो यथासंभव समय को व्यर्थ न खोने की कोशिश करते है। और × तरह शाम त × × कर लेते हैं। इसीमें हमारा स्वार्थ और परार्थ × × की सब शर्तें मंजूर हैं। × × ×

× × × ×

आपकी × × उसके

खिलाफ × × ×

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२२]

कानपुर,

१३-१-०५

प्रणाम!

४ ता० का कृपाकार्ड कल आया। बहुत दिन में पहुँचा। परमेश्वर करे श्रीमान् शीघ्र ही सर्वतोभाव से नीरोग हो जायँ और पूर्ववत् प्राबल्य प्राप्त कर लें।

ऐसे मैनेजरों का देशी रियासतों में न होना ही अच्छा है। श्रीमान् ने

यह काम जो अपने कनिष्ठ को देना चाहा है, वह बहुत अच्छा किया है।

और सब प्रकार कुशल है। कृपा बनाए रखिए।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[२३]

कानपुर,
१२-५-०५

प्रिय पडितजी,

कृपापत्र आया। हमारे घर के आदमी हमारे यहाँ कानपुर नहीं आये, वहीं काल की डाढ़ के बीच पडे हैं। एक हमारी भाँजी के देवी निकली हैं, इसीसे वे न बाहर रहने गये न यहाँ आये। हमने उनकी फिकर अब छोड़ दी है। यद्भवतु तद्भवतु।

आपकी चिठ्ठी को पढ़कर असीम खेद हुआ। पर सन्तोष इतना ही है कि आप अपने कर्त्तव्य से नहीं चूके। प्रायः समापन्न विपत्तिकाले धियोपि पुंसां मलिनी भवन्ति।

कोई क्या कर सकता है। पर जब

(पृष्ठ २)

समझदार आदमी अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट होते हैं तब कुछ करते नही बन पड़ता। आज कल हमारे इस प्रकार के स्वदेशियों की जो दशा है, उसे देखकर दया और घृणा दोनों का आविर्भाव होता है। ईश्वर उनको सद्बुद्धि दे॥ किमधिकेन।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२४]

कानपुर
६—२—०६

प्रियवर महाशय,

प्रणाम। कृपाकार्ड × × × श्रीमान् के नीरोग होने का वृत्तान्त सुनकर परमानंद हुआ × × × × × × × नव × × × बना है × × × × दर में × × × × ×

अहमिहापि वसन्नपि तावकः
त्वमपि तत्र वसन्नपि मामकः etc.

बहुत अच्छा, 'प्रार्थना' छापना शुरू कर देंगे।

आज्ञानुसार वाल्ट × × × को हम लिखे देते हैं। परंतु उनका पता हमें ठीक ठीक मालूम नहीं × × × पत्र न पहुँचे। ठीक कारवाई आप ही × × × होगी। आप लिख दीजिये कि वह × × हमारे पास भेज दें और × × × श्रीमान् की और आपकी कुशलता के हम आकांक्षी हैं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२५]

कानपुर
२-४-०६

प्रिय महाशय,

प्रणामानन्तर विदित हो कि कल कलकत्ते से एक मैशीन हमारे पास आ गई और अच्छी हालत में वह हमको मिल गई। इस कृपा के

लिए हम श्रीमान् के चिरकृतज्ञ रहेंगे। श्रीमान् की उदारता और कृपा के सद्भाव तो सदैव ही से हमारे हृत्पटल में अङ्कित हैं, पर अब वे हमारी आँखों को भी मूर्त्तिमान् दिखाई देंगे—इस दयादृष्टि में इतनी विशेषता है। श्रीमान् नीरोग रहें और चिरायु हों, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

भवदीय
महावीरप्रसाद

[२६]

कानपुर
३-४-०६

प्रिय पण्डितजी,

कृपापत्र आया। मैशीन भी आ गई। दूसरा पत्र पढ़ लीजिए और यदि जरूरत हो तो श्रीमान् को भी सुना दीजिए। हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। आपको धन्यवाद दें तो क्या और न दें तो क्या, धन्यवाद एक कोरी नाचीज़ चीज़ है। बात यह है कि हम एक क्या दो मैशीन ले सकते हैं, पर आपने तो यह अयाचित कृपा हमपर दिखलाई। उसे ग्रहण करने से इनकार करना हमने उचित न समझा। इसी कारण से हमको एक प्रकार की ग्लानि हुई कि जो वस्तु हम स्वयं लेने को समर्थ हैं उसके लिए मित्रों को कष्ट क्यों हमने दिया। अस्तु, मामला निर्विघ्न समाप्ति को पहुँच गया। इसका यश अकेले आप ही को है।

आपके पत्र को पढ़कर हमें बेहद रंज हुआ सच तो यह है कि सेवा वास्तव में बहुत ही निन्द्य है।

हमने तो कोई २३ वर्ष इस वृत्ति में काटे। आपको तो शायद अभी इतने दिन न हुए हों। इससे यदि

(पृष्ठ २)

और कोई आपका जरिया जीविका का न हो तो जहाँ तक हो सकै बने रहिए और श्रीमान् की शुभकामना करते रहिए और यथासाध्य सदुपदेश भी देते रहिए।

आपकी कविता का गंभीर भाव अब हमारी समझ में आया। आशा है श्रीमान् ने भी उसका गूढ़ाशय समझ लिया होगा। रियासतों की हालत बड़ी खराब हो रही है। जिनके पास पृथ्वी है वे आलसी हो रहे हैं। उनसे उसका प्रबन्ध नहीं बन पड़ता। पर जिनमें वह शक्ति है उनके पास डब्बल भर भी जमीन नहीं। ईश्वर की गति तो देखिए। यदि हमारे प्रभु अँगरेज आपही इस देश को छोड़ कर इंगलैंड जाने लगैं और जहाज पर सवार हो जायँ तो हमको विश्वास है कि हम अकर्मण्य हिन्दुस्तानियों को एडन को तार भेजना पड़े कि आप लौट आइए, हमपर चाहे जैसा शासन कीजिए, हम चूँ नहीं करैंगे—आपके विना हमारा एक दिन भी सुख से नहीं कट सकैगा।

हमारा जो सद्भाव आपकी तरफ है उसमें कभी जरा भी न्यूनता नहीं हो सकती—इसका आप विश्वास रखिए—

"वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तूनि"

भवदीय
महावीर

[२७]

कानपुर,
८-४-०६

प्रियवर,

आपका कृपापत्र आया। अत्यानन्द हुआ।

जब तक आप श्रीनगर में है तब तक वैसा लेख लिखने की हम सलाह नहीं दे सकते; क्योंकि जो कुछ आप लिखेंगे उसका सम्बन्ध राजा साहब की रियासत से लोग लगावेंगे—और जिसके आश्रय में आदमी रहै उसके प्रतिकूल कुछ लिखना या उसकी भूलें आम में जाहिर करना शुभचिन्तक सेवक का धर्म्म नहीं। जहाँ हम अभी तक

(पृष्ठ २)

नौकर थे वहाँ की सैकड़ों बातें हमारी नज़र में ऐसी आईं कि लोगों के हज़ार कहने पर भी हमने उनको प्रकाशित करना उचित न समझा—यद्यपि उनके प्रकाशन से बहुत आदमियों को लाभ पहुँचता।

परन्तु यदि राजा साहब को कोई इन्कार न हो तो आप लिख सकते हैं। छपाने के पहले लेख आप दिखा लीजिएगा। और तो रियासतों की दशा छिपी नहीं, सबपर जाहिर है, राजा प्रजा दोनों पर।

श्रीमदीय—
महावीरप्रसाद

[२८]

दौलतपुर, डा० भोजपुर, रायबरेली।
१५—४—०६

प्रिय पण्डितजी,

कृपापत्र यहाँ मिला। हमारी वृद्ध माता बीमार हैं। उन्हीं को देखने आये। २–४ दिन में कानपुर वापस जायेंगे।

भट्टाचार्य्यजी के चरित की सामग्री उनके पुत्र ने भेजी थी। उसमें पिता का

नाम नहीं था। इससे हमने भी पूछने की परवा नहीं×—वैसे ही रहने दिया।

आपके उस पत्र का वह वाक्य हमारे ध्यान में नहीं रहा, इससे वैसी गलती हुई। अब ऐसा न होगा। क्षमा कीजिए—

श्रीमान् ने बाइसिकल के बारे में एक बहुत ही शालीनता-सूचक पत्र हमको भेजा है। आपने तो देखा ही होगा। देना और नम्रता दिखाना सबका काम नहीं। हम श्रीमान् के सौजन्य पर मुग्ध हैं। इसी से हमने बाइसिकल की समालोचना भर कर दी है—

(पृष्ठ २)

उपहार की वस्तु की समालोचना ही क्या। वह तो सिर के बल लेना चाहिए। पर श्रीमान् ने पूछा कि वह कैसी है, इसलिए उसकी त्रुटियाँ हमने लिख दीं। हमको आशा है, हमारा सद्भाव देखकर श्रीमान् उसका विचार न करेंगे। लेकिन Walter Locke को एक फटकार भेजनी चाहिए। उसने बड़ी बेपरवाही से मरम्मत की है। अगर यहाँ उसके ऐब ठीक न हुए, तो शायद हमें भी उसे कलकत्ते या लाहौर भेजना पड़े।

प्रार्थनाशतक को पूरा कीजिए—

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२६]

कानपुर,
८—६—०६

बहुविध प्रणाम।

कृपापत्र आया। सचमुच ही गङ्गातट पर भ्रमण करना बहुत ही सुखकर और शान्तिदायक होता है—

विशेषकर इस ऋतु में। हमारा भी घर गङ्गातट पर है। दो चार दिन में वहीं जाने और सायङ्काल तट पर बिताने का इरादा है। प्रार्थना के लिए अनेक धन्यवाद। बहुत दिन में आपने इस कविता को पूर्ण किया। आशा है 'सरस्वती' के पाठक इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[३०]

कानपुर,
१०—६—०६

बहुविध प्रणाम,

आपकी भेजी हुई श्रती-धारादिनिर्णय नामक चार पुस्तकें मिलीं। अनेक धन्यवाद। शतक का उत्तरार्द्ध देख लिया। बहुत उत्तम है। तबीयत लगे तो और भी कुछ लिखिए।

विनत
महावीर

[३१]

कानपुर,
१३-६-०६

प्रिय पंडितजी,

११ ता० का कृपाकार्ड आया। २१ जून को घर जाने का इरादा है।

प्रार्थना-शतक का संशोधन आने पर कर दिया जायगा। वीराङ्गना काव्य के लिए हम श्रीमान् के बहुत कृतज्ञ हैं। जान पड़ता है, श्रीमान् ने यह अनुवाद जल्दी में किया है! यदि श्रीमान् कोई गद्य लेख भी किसी अच्छे विषय पर भेजें तो कृपा हो।

विनत

महावीरप्रसाद

[३२]

दौलतपुर,

३—७—०६

प्रिय पंडितजी,

कृपाकार्ड मिला। यहाँ आये हमें कई दिन हुए। रोज सायङ्काल गङ्गातट पर व्यतीत होता है। पानी खूब बरस रहा है। आम खाने का बड़ा आनन्द है। आशा है, आप भी सुख से कालयापन करते होंगे। प्रार्थना का पूर्वार्द्ध मिल गया। आज्ञानुसार परिवर्तन ज़रूर कर देंगे। ज़रा वृहत् लेख का नाम तो बतलाइए। 'सरस्वती' के लिए तो छोटे ही छोटे लेख अच्छे होंगे जिसमें एक लेख एक ही अङ्क में—या अधिक से अधिक दो में—समाप्त हो जाय। श्रीमान् को ईश्वर शीघ्र नीरोग करे।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[३३]

दौलतपुर,

२१—७—०६

प्रिय पंडितवर

प्रणाम । एलेक्शन पर जो कविता आपने भेजी, बड़ी मज़ेदार है। यह राजनैतिक विषय है। इससे 'सरस्वती' के नियमों के अनुसार इसके प्रकाशन में हम अक्षम हैं। इसे किसी और पत्र में छपवाइए; पर छपवाइए ज़रूर । पाँच-चार दिन से हम अस्वस्थ हैं। कई फोडे हो गये हैं। एक के कारण चल-फिर तक नहीं सकते।

भवदीय

म० प्र०

[३४]

×××र, रायबरेली

२२—७—०६

प्रिय पंडितजी,

१८ ता० का कृपापत्र मिला। अबतक हमारे फोडे अच्छे नहीं हुए। न मालूम क्या सबब है। शायद रुधिर दूषित हो गया है—

कविता हम कल ही वापस कर चुके। पत्र भी आपको लिख चुके हैं। उसका प्रकाशित होना 'सरस्वती' के नियमों के प्रतिकूल है। आशा है श्रीमान् क्षमा करेंगे।

गङ्गाजी आजकल खूब बहा××
हमारे गाँव में एक बहुत अच्छा प××

है। वहीं पर कई एक मन्दिर भी हैं। सायङ्काल हम भी वहीं जाते रहे हैं और एकान्त में बैठकर कभी कभी जगन्नाथ-लहरी के कोई-कोई श्लोक पढ़कर दोहराते-तिहराते रहे हैं। पर ५-७ दिन से जाना न हुआ। चलने में तकलीफ होती है।

× × ×

[३५]

दौलतपुर। डाकघर, भोजपुर। रायबरेली।
२२-७-०६

प्रिय पंडितजी,

हम आजकल अपने जन्मग्राम आये हुए हैं। आपके उधर भी बहुत आम होता है और हमारे इधर भी। हम लुईकुने के अनुयायी हैं। फलों के हम भक्त हैं। इस लिए कुछ दिन के लिए हम यहाँ आम खाने चले आये हैं। ७ अगस्त तक कानपुर वापस जायँगे।

आपका पत्र कल मिला। बहुत अच्छा; उत्तरार्द्ध आ जाने पर हम आपकी प्रार्थना प्रकाशित करना आरम्भ करेंगे। माफ कीजिए, आपके पहले २५ पद्य जितने सरस है उतने दूसरे २५ नहीं हैं। व्यग्रता में शायद इनको आपने लिखा होगा।

(पृष्ठ २)

आपके घर की बीमारी का हाल सुनकर रंज हुआ। ईश्वर आपके कुटुम्बियों को सदैव नीरोग रक्खै।

प्रसन्नता और अप्रसन्नता के विषय में आपने जो लिखा उसका उत्तर हम इस पत्र में देना उचित नहीं समझते। हम सिर्फ आपको—(१) "दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैः"—अथवा—(२) "अस्मान्

विचित्र वपुषश्चिरपृष्ठलग्नान्'' का स्मरण दिलाकर ही चुप रहते हैं।

हमारे पास एक ग्रामोफोन है। पर उसके रेकार्ड्स चूड़ियाँ) अच्छी नहीं। उनके गीत हमें पसंद नहीं। यदि आप किसी ऐसी सड़क पर घूमने जायँ जहाँ ग्रामोफोन की कोई बड़ी दूकान हो तो दो चार रेकार्ड्स सुनिएगा और जो आपको पसंद हों उनका नाम, नम्बर और यदि संभव हो तो पूरा गीत हमें लिखिएगा तो हम मँगा लेंगे। रेकार्ड्स हिन्दी, उर्दू या संस्कृत के हों; ७ इंचवाले। उर्दू में थियेटर की कोई अच्छी-अच्छी गजलें हों तो हम ले लेंगे। संस्कृत

(पृष्ठ ३)

में (१) "बाल्ये दुःखातिरेकात्", (२) "वेदानुद्धरते", (३) "नमस्ते पतितजनभयहारी" हमारे पास हैं। अधिक कष्ट न उठाइएगा। बड़ी ज़रूरत नहीं है।

श्रीमदीय

महावीरप्रसाद

[३६]

जुही, कानपुर

१३—६—०६

× ×जी,

आपकी बीमारी का हाल सुनकर सख़्त रंज हुआ। इधर आपके स्वास्थ्य का यह हाल रहा ×

× जलमग्न। इन दैवी विपत्तियों को सिवा

× सहने के और क्या चारा हो सकता है—

× में बूड़े के समाचार सुनकर चित्त विकल

× आज स्वयं आपके ऊपर की यह आपत्ति

× जानकर यत्परोनास्ति मनस्ताप हुआ।

× का घर बिल्कुल ही जलमग्न हो गया

× गया—अथवा पानी उतर जाने से

× रहने लायक हो गया है—लाखों आदमी

× के हो गये—इन निरन्न निरावास
× × अब ईश्वर ही रक्षा करे तो वे × ×
× हैं—ईश्वर ने तो दे × ×
× ×
प्रेरणा से अकाल कभी × ×
उधर श्रीमान् की भी तबीयत अच्छी ×
इसका भी अफसोस है, क्या कारण ×
युवावस्था में श्रीमान् को इतना ×
आ गया। ईश्वर श्रीमान् को शीघ्र ×
करे। 'सरस्वती' के कई लेख आपने ×
यह हमारे लिए बड़े उत्साह की बात है ×
होता है। 'सरस्वती' में हम अच्छे लेख ×
का यत्न करते हैं—पर क्या करें लि ×
की विशेष कृपा विना हमारा यत्न × ×
होगा—आप सदृश मित्रों के आ × ×
साहाय्य से जो कुछ हो जाता है उसी को हम
गनीमत समझते हैं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[२७]

कानपुर
ता० ७—१२—०६

प्रिय पंडितजी,

२७ का पत्र मिला। हम ××
छतरपुर चले गये थे। इससे उत्तर
में विलंब हुआ। "माधवनी" की
बात से बड़ा कुतूहल हुआ।

आपने खूब कहा। मेडल हमारे
लिए सर्वथा अयोग्य बात है।
हम दिन भर यों ही कलम रगड़ा करते

हैं। हम श्रीमान् की कृपा ही को हजार मेडल समझते हैं। मेडल देने का अभिप्राय शायद श्रीमान् का यह है कि लेखकों को उत्साह मिलै। हमै पहले ही से श्रीमान् ने काफी तौर पर उत्साहित कर दिया है। हमको छोड़कर और लोगों में से जिसका लेख श्रीमान् को पसंद हो उसे मेडल मिलना चाहिए। एडिटर को मेडल देना यों भी सुननेवालों के कान को खटकैगा। आप अपने लेख में यह कह सकते हैं कि किन कारणों से मेडल लेना × × अनुचित समझा। मेडल कलकत्ते में आप ही बनवाइये। उसके एक तरफ पानेवाले का नाम और "१६०५ की 'सरस्वती' में सबसे अच्छा लेख लिखने के उपलक्ष्य में" या ऐसा ही और कोई वाक्य रहै। दूसरी तरफ श्रीमान् का मोनोग्राम इत्यादि।

यदि आपको यह पत्र मकान पर मिलै तो इसका आशय आप श्रीमान् को लिख भेजिएगा या इसीको भेज दीजिएगा।

श्रीमदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३८]

जुही, कानपुर
×—×—०६

प्रणाम,

कृपापत्र के लिए धन्यवाद। अच्छा, आपके यहाँ एक और भगवती पधारीं—कहीं हमलोगों का ऐसा हाल आपके यहाँ तो नहीं—शादी-ब्याह में विशेष कष्ट और खर्च तो नहीं होता?

८—१० दिन हुए हम प्रयाग गये थे। वहाँ खानेपीने में व्यतिक्रम हुआ। इससे ज्वर आ गया। तब से तबीयत खराब रहती है। अब कलकत्ते जाने को जी नहीं चाहता। ××× जायँगे तो आपको पहले से सूचना देंगे × × × × × रेलवे स्टेशन के पास होंगे तो मिलने के लिए × × × कर लौटेंगे।

•

श्रीमान् कविकुलचन्द्र × × × के सर्वथा योग्य हैं " × × × × जनेन"

हम देखते हैं श्री × × किताब पर किताब अर्पण करते चले जा रहे हैं। हमने आजतक श्रीमान् की इस तरह की कोई सेवा नहीं की। श्रीमान् अपने चित्त में इस कारण कहीं हमसे उदासीन न × × ×। 'स्वाधीनता' महीने दो महीने में छपकर तैयार हो जायगी। यदि उसे श्रीमान् को अर्पण करते × × × × नाम और यश विशेष हो तो हम × × और हर्षपूर्वक उसे अर्पण कर दें। आप श्रीमान् के पास जब वापस जायँ तब उनकी चित्तवृत्ति की आहट लेकर हमें लिखिएगा। कृपापूर्वक क्या आप बतला सकते है कि कौन कौन पुस्तकें और किस किस ने श्रीमान् को अर्पण की हैं। हमें याद पड़ता है कि दो एक किताबें तो बहुत ही × × × अर्पण हुई हैं।

श्रीमान् ऐसी × × समर्पण क्यों मंजूर करते हैं। मालूम × × × × समर्पणकर्त्ता लोग पहले से × × × × अनुमति नहीं लेते ?

विनयावनत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[३९]

जुही, कानपुर
१५-२-०७

प्रियवर पंडितजी,

११ ता० का आपका कृपापत्र मिला। × × ×
हम अपने को परम भाग्यवान् समझते हैं कि जो आप और श्रीमान् राजा साहब हम पर इतनी कृपा करते हैं।

आप किस प्रकार का ×× अब ×× बनाते × × × × की कृपा × × × से प्रार्थना कीजिए कि कुछ समय के लिये ही बाहर जरूर चले जायँ। ऐसे समय में वहाँ रहना अच्छा नहीं।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[४०]

दौलतपुर
७-३-०७

अनेक प्रणाम।

कृपापत्र मिला। वृत्त विदित हुआ। प्रार्थनाशतक के विषय में हम ज़रूर अपराधी हैं। उसे और राजा साहब की एक कविता को अपनी ही चीज समझकर हमने अभी तक नहीं छापा। जहाँ हमारे अनेक लेख बरसों से पड़े हैं वहाँ उन्हें भी हमने डाल रक्खा। औरों के छापते रहे, क्योंकि औरों के मिजाज सँभालने की अधिक ज़रूरत समझी। "दशरथ के

प्रति कैकेयी" तो हमने मार्च में छपने भेज दिया। प्रार्थनाशतक भी अब महीने दो महीने में शुरू करेंगे। कोई परिवर्त्तन दरकार नहीं। एक-आध जगह था सो पहले ही हो गया है। ११ मार्च को कानपुर के लिए प्रस्थान है।

भवदीय
महावीर

[४१]

जुही, कानपुर
१२-३-०७

बहुविध प्रणाम।

कृपाकार्ड मिला। आपके पत्र का उत्तर हम दे चुके हैं। बड़ी कृपा है जो 'स्वाधीनता' आप श्रीमान् को सुना रहे हैं। दूसरे पत्र में सविस्तर समाचार भेजने का जो आपने वादा किया है सो शीघ्र पूरा कीजिए। स्वाधीनता इसी महीने छप चुकेगी।

भवदीय—
महावीरप्रसाद

[४२]

कानपुर
२८—३—०७

प्रियवर,

प्रणाम। कृपापत्र मिला। श्रीमान् 'स्वाधीनता' का समर्पण स्वीकार करते हैं, यह हमारा अहोभाग्य है।

हमने देखा कि ×गाली लोग तक श्रीमान् को पुस्तकें समर्पण करते हैं और हमपर क्या सारी हिन्दी

भाषा पर श्रीमान् की इतनी कृपा है, अतएव यदि हम उनकी इस कृपा—इस साहित्यप्रेम का—बदला एक आध पुस्तक समर्पण करके उन्हें न दें तो हमपर कृतघ्नता का दोष आता है—यही हमारा मुख्य अभिप्राय है—

पुरस्कार की बात न पूछिए। श्रीमान् को अपने मान-सम्भ्रम की तरफ देखना चाहिए—हमारे नहीं। हमें यदि वे अपनी कृपा का पात्र बनाना चाहेंगे तो हमें बनना ही पडेगा, क्योंकि वैसा न होने से श्रीमान् को क्या कम दुःख होगा? भाई बात यह है—

वसु यच्छतु वा न वा नरेशो
यदि कर्णोऽपि च भारतीं करोतु

(पृष्ठ २)

यदि श्रीमान् 'राजारानी' का संशोधन हमसे करावेंगे तो हम क्या इनकार कर सकेंगे?

क्या यह भी संभव है? करना ही पडेगा—हम खुशी से करेंगे। हमने सम्पत्तिशास्त्र लिखना शुरू किया है। उसे कुछ दिन के लिए बंद कर देंगे। राजारानी की कापी की सतरें दूर दूर हों, हाशिया भी हो, और लिपि साफ हो तो अच्छा, जिसमें संशोधन में सुभीता हो। साथ मूल पुस्तक भी भेजी जाय। कितनी बड़ी पुस्तक है? शब्द भी ज़रा दूर दूर हों तो और अच्छा हो—

आपने स्वाधीनता की भाषा को पसन्द किया, यह सुनकर हमें परम सन्तोष हुआ। यह हमारे लिए बडे उत्साह की बात है—

स्वाधीनता छप गई। भूमिका छप रही है। समर्पणपत्र लिखकर हम परसों तक छपने भेजेंगे। चिट्ठी देखते ही आप राजा साहब का पूरा नाम लिख भेजिए। कुमार कमलानन्द सिंह ठीक है न? आपकी अस्वस्थता और आपके बहनोई के घर जलने का हाल सुनकर दुःख हुआ। हमें आप अपने दुःख से दुखी समझिए—

विनत—
महावीरप्रसाद

[४३]

कानपुर
६—११—०७

प्रियवर पंडितजी,

आज ×वह आपको एक पत्र भेज चुके हैं। ×सरे पहर आपका २ नवंबर का पत्र आया। पढ़कर विषम परिताप हुआ। परमेश्वर श्रीमान् को सब संकटों से मुक्त करके शीघ्र ही नीरुज करे। जब तक श्रीमान् का स्वास्थ्य विशेष न सुधर जाय, कृपा करके दूसरे तीसरे दिन एक कार्ड डाल दिया कीजिए। चित्त बहुत क्षुब्ध हो रहा है। हमने यदि कोई किसी जन्म पुण्य किया हो तो हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उसके बल से श्रीमान् के नीरोग होने में वह थोड़ा बहुत साहाय्य पहुँचावे—

(उसपार भी)

विनीत
महावीरप्रसाद

आपकी तरह हम भी आज ३ दिन से ज्वर की हरारत से तंग हैं। आज कुछ ओषधि भी × ली है। मौसिम बहुत ही बुरा है। बहुत सँभलकर रहने पर भी ज्वर आये बिना नहीं रहता।

महावीर

[४४]

जुही, कानपुर
१५—११—०७

प्रियवर पंडितजी,

१२ नवम्बर का कृपापत्र मिला।

नवम्बर की 'सरस्वती' को निकले १०—१२ दिन हुए। न मालूम क्यों श्रीमान् को नहीं मिली। कहीं खो तो नहीं गई।

३—४ दिन हुए एक पत्र और एक सचित्र "स्वाधीनता" श्रीमान् को मुँगेर के पते से भेजी है। आशा है, वहाँ से वह श्रीनगर भेज दी गई होगी और श्रीमान् को मिल गई होगी।

श्रीमान् की तबीयत का हाल कृपा करके देते जाइए। हमें विश्वास है, आप सर्वथा हमारे हितचिन्तक हैं। हमसे अधिक आपको हमारा खयाल है।

विनीत
महावीर

[४५]

जुही, कानपुर
२७—११—०७

प्रियवर पण्डितजी,

ई० आई० आर० में हड़ताल होने के कारण आपका १८ नवंबर का कृपापत्र हमें २५ को मिला। पढ़कर कृतार्थ हुए। स्वाधीनता की एक कापी आज हम आपको भेजते हैं। कृपा करके पहुँच लिखिएगा। यदि आपको इसमें कोई ऐसी त्रुटियाँ मिलें जिनके कारण भावार्थ समझने में बाधा आती हो तो कृपा करके, सूचित कीजिएगा। इसका दूसरा संस्करण भी निकलनेवाला है। उसमें उनका संशोधन हो जायगा। पहले संस्करण की ५०० कापियों में, सप्रेजी

लिखते हैं, थोड़ी ही रह गई हैं। इससे १००० कापियाँ और इसकी छापी जायँगी।

(पृष्ठ २)

श्रीमान् के नाम का संयोग इसके साथ हो जाने से बुरी चीज भी अच्छी हो गई जान पड़ती है। श्रीमान् को इसकी खबर दे दीजिएगा।

आपकी इस अनन्य कृपा के लिए हम चिरऋणी रहेंगे। जहाँ मगलमय 'जनार्दन' हैं वहाँ विघ्न-बाधाओं का नाम न लीजिए।

आपने अपने यहाँ की विवाह-प्रथा की जो बातें लिखीं वे हमारे लिए बिलकुल ही नई हैं। परन्तु इस प्रथा के कारण बहुत कुछ असुविधायें ज़रूर होती होंगी। इसमें परिवर्त्तन दरकार मालूम होता है। कन्या के लिए वर बहुत देख सुनकर और अनेक आगे-पीछे की बातों का विचार करके निश्चित करना चाहिये।

छोटी चिट्ठी लिखने के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। हमारा 'सम्पत्तिशास्त्र' समाप्तप्राय है। तीन चार परिच्छेद लिखना बाकी है। उसीमें हम अपना अधिक समय लगाते हैं।

विनीत

महावीरप्रसाद

[४६]

जुही, कानपुर

६—१२—१९०७

प्रियवर पंडितजी,

सादर प्रणामानन्तर निवेदन। आपका श्रीनगर से भेजा हुआ पत्र यथासमय

मिला था। उसका उत्तर हम मुंगेर के पते से भेज चुके हैं। आशा है मिल गया ×।

आज आपका ७ दिसम्बर का × मिला। साथ ही ४०० रुपये के नोट भी ×। आज्ञानुसार श्रीमान् को नोटों की पहुँच हमने अलग भेजी है। वह पत्र भी इसी के साथ पोस्ट करेंगे। इस विषय में आपको क्या कहकर हम धन्यवाद दें हम नहीं जानते। श्रीमान् के तो हम कृतज्ञ हैं ही, पर आपके भी हम थोडे कृतज्ञ नहीं। क्योंकि आप ही इस कृपाकार्य के प्रेरक हैं। आपकी इस निरपेक्ष कृपा ने हमारे हृदय पर बहुत बड़ा असर किया है। यदि राजेमहाराजों के सदस्य और प्रेरक आप जैसे महानुभाव और सुजनशिरोमणि हों तो न मालूम कितनों का दुखदरिद्र दूर हो जाय। श्रीमान् की इस कृपा ने हमें बहुत कुछ उत्साह दिया है। पर इसका यश सर्वथा आप ही को है। × × हमने अखबारों में पढ़ा है कि मुंगेर में

× × × ×

× के पुत्र इसीसे मर गये। इस दशा में आपलोगों को वहाँ अधिक दिन तक रहना नहीं चाहिए। पूर्णिमा के पहले ही आप और श्रीमान् देहात चले जायँ तो अच्छा। ऐसे अवसर में स्थानत्याग करना ही मुनासिब है।

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[४७]

दौलतपुर, डाकघर भोजपुर, रायबरेली

ता० ३०—६—०८

प्रिय पंडितजी,

१६ ता० का कृपापत्र मिला। आजकल हम अपने मकान पर हैं। अभी महीना पन्द्रह रोज यहीं रहने का विचार है।

श्रीमान् राजा साहब ने जो कुछ फरमाया उसके लिए हमारा कृतज्ञता-प्रकाशन उनपर प्रकट कर दीजिएगा।

झालरापाटन के महाराज बड़े ही विद्यारसिक हैं और उनके दीवान पं० परमानन्द चतुर्वेदी भी उन्हीं की तरह विद्याव्यसनी हैं। महाराजा साहब ने अपनी राजधानी में

(पृष्ठ २)

एक विशाल पुस्तकालय अपने विद्वान् दीवान के नाम से खोला है। हजार बारह सौ की पुस्तकें उसमें हर महीने नई मँगाई जाती हैं। बहुत अच्छा, सम्पत्तिशास्त्र छप जाने पर और महाराज के पास पहुँच जाने पर आपको सूचना देंगे।

उस चित्र को जाने दीजिए, और चित्रों में से जिसपर आपका जी चाहे फुरसत मिलने पर कविता भेजिएगा। आपसे सहायता की हमें बहुत कुछ आशा है।

अच्छी बात है, "वक्तव्य" की नकल

कर लीजिए। उत्तम तो तब होता जब श्रीमान् उसे छपा डालते। और एक आध कापी हमें भी भेज देते। पब्लिक के लिए नहीं, प्राइवेट तौर पर छपाने से हानि न थी। आपकी नकल पूरी हो जाय तो हमें खबर दीजिएगा।

भवदीय

महावीरप्रसाद

[४८]

जुही, कानपुर

३—८—०८

प्रियवर पण्डितजी महाशय,

२७ का कृपापत्र मिला। 'सरस्वती' की पुरानी जिल्दें प्रेस में एक भी नहीं रह गईं। कई लोगों ने हमें लिखा, पर नहीं मिलीं। हमारा इरादा प्रयाग जाने का है। वहाँ जाकर हम खुद ढूँढ़ेंगे और जो दूसरा तीसरा भाग फालतू मिला तो फौरन श्रीमान् को भेज देंगे।

आपको बुखार आ गया, यह सुनकर दुःख हुआ। आशा है, अब आप प्रकृतिस्थ होंगे।

विनीत

महावीरप्रसाद

[४६]

जुही, कानपुर

३१—१—०६

प्रणाम,

कृपापत्र मिला। हमारी तबीयत अभी तक नहीं सुधरी। कोई डेढ

वर्ष सख्त मेहनत करके सम्पत्तिशास्त्र लिखा। उसी का यह फल है। और कोई फल तो दूर रहा, यही पहले मिला। दिमाग़ ख़राब हो रहा है। रात को नींद नहीं आती। डाक्टरों ने कहा है, कुछ काम न करो, खूब हँसो, खेलो, गावो, बजावो। पर यहाँ जंगल में ये बातें कहाँ। कभी-कभी ग्रामोफोन बजाकर मनोरंजन किया करते हैं।

श्रीमान् की कन्या का पाणिग्रहण सुनकर बड़ी खुशी हुई। ईश्वर करे

(पृष्ठ २)

जोडी चिरायु रहे, खूब आनन्द से रहे।

बहुत ही अच्छा किया जो श्रीमान् ने 'देवनागर' की सहायता की। श्रीमान् की उदारता की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। क्या ही अच्छा होता जो श्रीमान् हैदराबाद या बरौदा की तरह किसी बड़े राज्य के अधीश्वर होते। पं० उमापतिदत्त को हमने कोई पुस्तक अभी क्या शायद कभी नहीं भेजी। उनके योग्य हमारे पास ऐसी पुस्तक है ही कौन। जो पुस्तकें कलकत्ते वालों को देखने को मिल सकती हैं वे हम अरण्यवासियों के लिए दुर्लभ हैं। उनका पत्र हमारे पास आया था। उन्होंने लेख आदि से सहायता माँगी थी। उसका हमने उत्तर तो अवश्य दिया था। पुस्तक कोई नहीं मिली। आप

(पृष्ठ ३)

श्रीमान् से पूछकर पुस्तक का नाम

बतलाइए। हिन्दीभाषा की उत्पत्ति और विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा जो इंडियन प्रेस ने कुछ समय हुआ छापी थीं वे आपने देखी ही होंगी। यदि उनसे मतलब हो तो हम तत्काल भेजें। वह बहुत ही छोटी और तुच्छ पुस्तकें हैं, इसीसे हमने श्रीमान् को नहीं भेजीं। पर औरों को भी नहीं भेजीं। यह संभव नहीं कि कोई पुस्तक श्रीमान् के पढ़ने योग्य हो और हम न भेजें। ये दोनों पुस्तकें हम आपके पास श्रीमान् के लिए भेजते हैं। पहुँच लिखिएगा।

'सरस्वती' जान-बूझकर इस महीने में देरी से निकाली गई है। उसका मूल्य ४)

(पृष्ठ ४)

कर दिया गया है। इससे ग्राहकों के उत्तर की अपेक्षा थी। कई दिन से वह भी जा रही है। इंडियन प्रेस को आज हम मुलायम नहीं सख्त चिट्ठी लिखते हैं कि क्यों अभी तक श्रीमान् को नहीं भेजी गई।

'कविताकलाप' के लिए कविता जिस छन्द में चाहिए कीजिए। १५ पद्य से अधिक न हों। पर खूब सरस और सरल हों। नमूने की कविता होनी चाहिए। बोलचाल की भाषा ठीक होगी। पर जो आपको पसन्द हो। 'मोहिनी' को जाने दीजिए, आप कृपा करके ४ चित्रों पर लिखिए (१) कृष्णविरहिणी राधिका, (२) गङ्गावतरण, (३) परशुराम, (४) अहल्या। पिछले २ चित्र इसके साथ भेजते हैं। कविता के साथ लौटा

दीजिएगा। गङ्गावतरण 'सरस्वती' में छप चुका है। उसपर किशोरीलाल गोस्वामी की कविता भी छप चुकी है। चित्र आपने देखा होगा। रविवर्मा के अँगरेजी चरित में कृष्णविरहिणी राधिका का चित्र चरित्र है। एक स्त्री शोक में बैठी है। सखी उसकी पास है। उसीपर लिखिए।

विनत
महा०

[५०]

दौलतपुर
६—२—०६

प्रियवर पंडितजी,

कृपाकार्ड मिला। यह जानकर खुशी हुई कि आप अब नीरोग हैं। हमारा वही हाल है। होली के लिए घर आये हैं। १०—५ दिन में कानपुर लौट जायँगे। वहाँ से २-२ मास के लिए विश्रामार्थ अलमोड़ा था हरद्वार जाने का विचार है। आपके लेख में आज्ञानुसार आवश्यकता होने पर उचित संशोधन कर दिया जायगा। आप खातिरजमा रखें। यथावकाश अन्यान्य उपयोगी लेख भेजने की कृपा करें।

विनीत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५१]

बनारस,
१—३—०६

प्रणाम।

कृपाकार्ड मिला। आपकी तबीयत पहले से अच्छी है, यह जानकर

खुशी हुई। आपने जो नुस्खे भेजे तदर्थ धन्यवाद। भग से हमें स्वाभाविक नफ़रत है। उसके नशे से और भी नींद नहीं आती। यहाँ जलवायु बदलने आये थे। पर भीड़-भड़क्का इतना अधिक है कि और नहीं रह सकते। परसों कानपुर लौट जायँगे। एक महीने तक कुछ दिन के लिए अलमोड़ा जाने का विचार हैं। आपका लेख शीघ्र निकालने की चेष्टा करेंगे।

विनत
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५२]

इंडियन प्रेस,
प्रयाग,
१८-१२-१९०६

प्रणाम,

बहुत दिनों से आपके कुशल समाचार नहीं मिले। आशा है आप प्रसन्न और स्वस्थ हैं। हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं। उन्निद्र रोग पीछा नहीं छोड़ता। जनवरी से कुछ समय के लिए 'सरस्वती' से छुट्टी लेने का विचार है। डाक्टरों की राय है कि हमारे लिए पूर्ण रीति से विश्राम लेना बहुत ज़रूरी है।

कहिए इस समय आप कहाँ हैं—क्या करते हैं। जीविका का क्या प्रबन्ध है?

(पृष्ठ २)

पौराणिक वृत्ति से जी तो नहीं ऊबा? एक बार आपने कहा था कि हम कहीं किसी रजवाड़े में

आपके लिए प्रबन्ध कर दें। रजवाड़ों की नौकरी कैसी होती है, इसका तो आपको अनुभव हो ही चुका है। हमारी राय में यदि आप कुछ काम करना चाहें तो इंडियन प्रेस में करें। प्रबन्ध हम कर देंगे। आप इधरउधर की दौड़धूप से बचेंगे। आराम से एक जगह रहेंगे। काम सिर्फ १० बजे से ५ बजे तक करना पड़ेगा। काम भी ऐसा जो आप पसन्द करेंगे। अर्थात् सरस्वती-सम्बन्धी कुछ काम तथा हिन्दी और संस्कृत में प्रेस का और भी कुछ काम जो मिले। इसके सिवा यदि आप घर पर भी कुछ काम करना पसन्द करेंगे तो यथासंभव उसका भी प्रबन्ध हो जायगा। उसका पुरस्कार आपको अलग मिलेगा। प्रेस के मालिक बड़े ही उदाराशय, सज्जन, दयालु और उत्साही हैं। आपको किसी तरह का कष्ट न होगा। कहिए कितने वेतन पर आप यहाँ आना पसन्द करेंगे। हमारी सलाह है कि आप जरूर यहाँ आवें। आप यहाँ रहकर खुश होंगे। यह मौका बहुत दिन में हाथ आया है। पत्रोत्तर c/o Post-Master, Mirzapur. के पते से भेजिएगा।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५३]

मिर्जापुर
२७—१२—०६

कृपापत्र मिला। × × × × यह सुनकर दुःख हुआ। आशा है कि आपकी अर्थकृच्छ्रता शीघ्र दूर हो जायगी।

हम आपके लिए अभी आरंभ में × मासिक वेतन का प्रबन्ध करने की कोशिश करेंगे। × × × × आपके काम × ×

× × प्रेस के मालिक × ×
× × आपकी तरक्की कर × ×
× और करते जायँगे। कुछ काम

(पृष्ठ २)

× ×, बहुत करके मिल × ×
× × की पुस्तकें भी छप × ×
× × देखना पड़ता है। संस्कृतपुराणादि का सार भी यदाकदा हिन्दी में शायद आपको लिखना पड़े। आप इतनी संस्कृत जानते हैं न ? इस प्रश्न की धृष्टता क्षमा की जाय × × × व्याकरण आपका देखा × है न ? बँगला × आप अच्छी जानते होंगे × ? × जी × तनी जानते हैं; शीघ्र उत्तर ×

(पृष्ठ ३)

उत्तर × हम आपको एक पत्र ×। आप उसे लेकर प्रयाग चले × × ×

स्वास्थ्य हमारा बहुत खराब है। ×से कुछ समय के लिए 'सरस्वती' से छुट्टी लेने का विचार है।

× × द्विवेदी

जनवरी तक यहाँ × फिर
कानपुर जायँगे।

[५४]

जुही, कानपुर
८-१-१०

प्रणाम,

२ जनवरी का आपका कृपापत्र मिला। आपकी संस्कृत कविता बड़ी ही मनोहारिणी है—आपकी सरटी-फिकेट हमने इंडियन प्रेस को

भेज दी है। आप फौरन प्रयाग चले जाइये। हमने प्रेस के मालिक को लिख दिया है और खुद सब बातें कह भी आये हैं। पहुँचते ही आपको जगह मिल जायगी। मिर्जापुर से हम आपको प्रयाग जाने के लिये लिख चुके हैं।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५५]

जुही, कानपुर,
१३-२-१०

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। 'राजर्षि' को छपने दीजिए। देखने की कोई वैसी ज़रूरत नहीं। मैं बहुत ही थोड़ा बँगला जानता हूँ। स्वास्थ्य की वर्त्तमान अवस्था में कापी देखने से तकलीफ भी होगी। अतः क्षमा कीजिए।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५६]

जुही, कानपुर
११-४-१०

प्रणाम।

कृपापत्र मिला। इसी बृहस्पति या शुक्रवार को सुबह हम प्रयाग आवेंगे। बारह बजे तक प्रेस में ठहरेंगे। दर्शन

दीजिएगा। बड़े बाबू को सूचना दे दीजिएगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५७]

मिर्ज़ापुर,
२०-४-१०

प्रणाम।

राजा साहब का शरीरान्त-वृत्तान्त सुनकर बड़ा रंज हुआ। हिन्दी के वे बड़े भारी हित-चिन्तक और सहायक थे।

हमारे ऊपर तो उनकी विशेष रूप से कृपा थी। उनके स्थान की पूर्त्ति होना असंभव-सा जान पड़ता है।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

[५८]

जुही, कानपुर,
×—५—१०

प्रणाम।

आशा है आपकी तबीयत अब अच्छी होगी।

आप निस्सन्देह, निर्भय और निश्चल भाव से काम किये जाइये। बड़े बाबू के हृदय की महत्ता, उनकी सुजनता, उनकी न्यायशीलता, आश्रित जनों पर उनकी कृपा पर विश्वास

रखिए। सब काम बनता ही चला
जायगा। बिगड़ने का डर नहीं।

भवदीय
महावीरप्रसाद द्विवेदी

[५६]

जुही, कानपुर
१६-३-११

प्रणाम,

आपको आधिव्याधियों में फँसा हुआ सुनकर बड़ा दुःख हुआ। परमेश्वर करे आपकी सारी चिन्तायें शीघ्र ही दूर हों। × × की कोई अच्छी दवा कीजिए। इससे शरीर भी काम का नहीं रह जाता। हमें भी कभी कभी × × हो जाता है। आपकी दशा प्रायः हमारी-सी है। बहनोई के मर जाने से ह × × × अपनी × बहन और उसके तीन बच्चों × × × न करना पड़ता है। आप पर भी × × × बोझ है। घबराइए नहीं। × × × × × सामने × × चुपचाप उनका मुकाबला कीजिए। × × × संभव के × उस × क के विषय × × × × युक्ति सचमुच ही × × अच्छी है। × × के × × × × × ×

[६०]

कमर्शल प्रेस, कानपुर
४-११-२८

सादर प्रणाम।

बहुत मुद्दत के बाद आपका पत्र मिला। पुराना स्नेह नया हो उठा। परमानन्द हुआ। बड़ी कृपा की जो मेरा स्मरण किया।

आपके कुटुम्ब का हाल मालूम हुआ। ईश्वर करे आप और आपके पुत्र-कलत्र प्रसन्न रहें। आपही की तरह मैं भी मकान पर कृषक हो गया हूँ। पर अवर्षण के कारण इस वर्ष यहाँ दुर्भिक्ष सा है।

शरीर मेरा अत्यन्त जीर्ण है। कुछ समय से फिर उन्निद्र रोग हो गया है। निर्बलता की तो सीमा ही नहीं। यहाँ चिकित्सार्थ आया हूँ। एक मास शायद रहना पड़े।

स्नेहभाजन

म० प्र० द्विवेदी

[६१]

दौलतपुर × + ।

१२ फरवरी, १९३०

श्रीमत्सु सादरं प्रणतयः सन्तु

चिरकाल बीत जाने पर आपका × × कार्ड मिला। यह जानकर अत्यानन्द ×आ कि आप अच्छी तरह हैं और अपने आत्मजों को उच्च शिक्षा देने के विचार में हैं। बड़े बेटे को ज़रूर एम. ए. में दाखिल कराइए।

मैं बहुत वृद्ध और बहुत कमज़ोर होता जा रहा हूँ। चलने-फिरने और लिखने-पढ़ने की शक्ति बहुत ही कम रह गई है। केवल दूध पीकर संयम के बल से शरीररक्षा कर रहा हूँ। टका-पैसा जो कुछ था हिन्दूविश्वविद्यालय आदि को दान देकर महाप्रस्थान की तैयारी में हूँ। पूर्ववत् मुझपर कृपा बनी रहे।

विनयावनत

महावीर प्र० द्विवेदी—

[६२]

दौलतपुर (रायबरेली)
५—३—३१

श्रीमान् पंडित जी को प्रणाम!।

१ मार्च का पो० का० मिला। आप कासश्वास से तंग रहते हैं, यह सुनकर दुःख हुआ। भाई, यह वार्धक्य व्याधियों का घर है। मेरी उन्निद्रता फिर उभड़ी है। बहुत कष्ट दे रही है।

मैं अब लिखने-पढ़ने योग्य नहीं रहा। बरसों से कुछ नहीं लिखा। बहुत तंग किये जाने पर ही कभी दस-पाँच सतर खींच खाँच देता हूँ। मौका मिलने पर आपकी आज्ञा का ज़रूर पालन करूँगा। खेद है, आपने कभी पहले उसकी याद नहीं दिलाई।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

[६३]

Daulatpur (Rae Bareli)
1-1-33.

dear Pandit Jee,

Many thanks for your P. C. half in Sanskrita and half English. Whenever I hear from you I feel greatly ighted.

Like your ownself I am somehow dragging on my and infirm body, suffering from various ailments.

I wish your son Hari Mohan a happy and prosperous . I trust he would soon be able to secure a suitable ployment.

With best wishes for the new year.

Yours Sincerely,
M. P. Dwivedi.

[६४]

दौलतपुर
रायबरेली
१-८-३३

नमोनमः,

पोस्टकार्ड मिला। पुस्तक भी मिली। धन्यवाद—कृतज्ञतानिवेदन।

आपके चिरंजीवी प्रोफेसर नियुक्त हो गये, यह सुनकर अत्यानन्द हुआ। उनकी शिक्षाप्राप्ति और आपका व्ययभारवहन सफल हो गये। ईश्वर करे उनकी दिन पर दिन उन्नति होती रहे।

काशी और प्रयाग में तो आपकी तरफ से कई लोग आये थे। एक महाशय तो काशी में राय कृष्णदास के यहाँ मेरे पास ही ठहरे थे। वहाँ आपके दर्शन न हुए, इसका रंज ज़रूर रहा।

आपकी कविता-पुस्तक देखकर सारी पुरानी बातें नई हो गई। अन्योक्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। कुतूहल में आलोचनायें भी खूब चुभती हुई हैं।

वार्धक्य का फल मैं भी भोग रहा हूँ। बस नहीं। उससे विरले ही पुण्य-पुरुष बच सकते हैं।

आपका म० प्र० द्विवेदी



बिहार का वन-वैभव

श्रीयोगेन्द्रनाथ सिंह, डिविजनल फॉरेस्ट ऑफिसर, चाइबासा (सिंहभूमि)

एक समय था, जब सारी पृथ्वी जंगल से भरी पड़ी थी। भारत में तो अनेक प्रसिद्ध जंगल थे। जंगलो में राक्षस रहते थे। दंडकारण्य में राक्षसों को मारकर रामचन्द्रजी ने कीर्त्ति प्राप्त की थी। अतः जंगल के नाम से ही भय उत्पन्न होता था। कुछ तो विश्वास-मात्र था और कुछ सच भी कि अभाग्यवश यदि कोई जंगल में घुस जाय तो फिर निकल नहीं सकता। यदि राक्षसों और विकराल जंतुओ के पंजों से निकल भी जाय तो उस घोर वन में, जहाँ सूर्य की किरणे भी नहीं समाती, रास्ता कहाँ? देश की जन-संख्या उन दिनो कम थी। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई, जंगल काटकर लोग खेत और बस्ती बनाते गये। जंगल साफ करना मिहनत का काम था, बड़ी नामवरी थी। जिसने जंगल काटा, जमीन उसी की हो गई।

वर्त्तमान समय में पृथ्वी के बहुत-से बीहड़ जंगल कट गये हैं। यहाँ तक कि जिस अंश तक जंगल बचे रहने चाहिये, उससे बहुत कम बचे हैं। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि किसी भी देश में, उसकी भलाई के लिये, ८० प्रतिशत भाग में आबादी और २० प्रतिशत भाग में जंगल जरूर होना चाहिये।

बिहार में ३ प्रतिशत भाग में ही जंगल बचा हुआ है। इसके विपरीत, आसाम मे सैकड़े ३८ भाग जंगल है, मध्यप्रान्त में २०, मद्रास और बंबई सूबो में १२, और बर्मा में ६७। आजकल जंगल साधारणतः जंगल ही समझा जाता है। सब लोग जंगल का महत्त्व नहीं समझते। जंगल में राक्षस तो अब नहीं हैं, पर भयंकर बाघ, भालू इत्यादि हिंस्र जंतु अब भी हैं। लोगो का खयाल है कि

जंगल रहने से मलेरिया-बुखार होता है, जंगल से कोई लाभ नहीं, इसे काटकर साफ ही कर देना चाहिये; लकड़ी वगैरह जंगल से जरूर आती है, पर यह तो आयेगी ही; पहाड़ो पर जंगल ही तो भरे पड़े हैं। क्या जल निकालने से समुद्र खाली हो जाता है?

लेकिन यह गलत खयाल है। जंगलों से अनेक लाभ हैं। आगे की बातें पढ़ने से यह साफ जाहिर होगा। ईश्वर की सृष्टि में कोई चीज बेकार नहीं है।

खासकर बिहार में वन-वैभव की जानकारी और भी कम है। एक कारण यह है कि बिहार का वन-समूह दूरस्थ (सिंहभूमि जिले में) होने के कारण अज्ञात दशा में पड़ा है। इस प्रान्त की घनी आबादी गंगा के दोनो ओर की उर्वर भूमि पर है। बड़े-बड़े शहर इसी तरफ हैं। पर इस तरफ जंगल नहीं हैं।

बहुत लोगों ने तो असली जंगल देखा भी नहीं है। जंगल की बातें वे इसी लिये नहीं समझते। सोचते हैं—हम तो सुखी हैं, हमारे खेतो में फसल कितनी अच्छी होती है, शायद जंगल न होने से ही ऐसा होता है। हाँ, वर्षा कभी कम होती है, कभी ज्यादा। कभी धान की फसल मारी जाती है। कभी गंगा, सोन, गंडक में इतनी बाढ़ आती है कि गाँव-के-गाँव बह जाते हैं। यह दुःख तो है, पर यह ईश्वर की मर्जी है।

यदि ऐसे लोगों को समझाइये कि वर्षा और बाढ़ का सम्बन्ध जंगल से है, तो ये हँसते हैं, कहते हैं—क्या बकते हो, कहाँ पंजाब और हिमालय के जंगल, कहाँ पटना और सारन की बाढ़। जंगल क्या जादू है कि बाढ़ को रोक देगा या नीले आसमान से पानी बरसा देगा। तुम तो होमियोपैथी की बातें करने लगे कि हरद्वार की गंगा में एक बूँद दवा डाल दो और पटना में पी लो तो जड़ रोग भी दूर हो जाय।

यही साधारण विश्वास और यही तर्क है। जंगल नष्ट करने से जो हानि होती है, या उसके संरक्षण से जो लाभ होता है—दोनो परिणामों के सबटन में समय लगता है। हमारे पास इस तरह के सबूत नहीं हैं कि घी में आँच लगे तो पिघल जाय और सर्दी लगे तो जम जाय। हमें तो जंगल के लाभ वैसे ही साबित करने पड़ते हैं जैसे पृथ्वी की गोलाई। जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि देखो पृथ्वी गोल है, चपटी नहीं, वैसे ही हम सीधी तरह यह नहीं कह सकते कि जंगल काट देने से खराबी होगी और बचाकर रखने से लाभ।

'छोटानागपुर' बिहार का प्रधान वन-प्रदेश है। सिंहभूमि जिले का नम्बर पहला है। इसके बाद पलामू, हजारीबाग और मानभूमि जिले हैं। राँची जिले में जंगल की बड़ी बरबादी की गई है। कुछ दिन हुए, बिहार के एक बड़े पुरुष, जिनके ऊपर जनता के सुख-दुःख की जिम्मेवारी है, राँची आये। समझा था, 'राँची' छोटानागपुर का आंतरिक भाग है और छोटानागपुर में जंगल-ही-जंगल हैं—राँची जिले में तो घोर वन होगा। खैर, उन्होंने खूँटी और मुरहु का दौरा किया। लोहरदगा और गुमला देखा। मुरी गये। जहाँ गये वहीं नंगी पहाड़ियों ने चीर-हरण की कथा सुनाई। तब उनकी आँखें खुलीं। और, मार्के की बात तो यह कि ये सज्जन भी छोटानागपुर के एक इलाके के निवासी हैं!

गंगा के उस पार बेतिया (चम्पारन) में १०२ वर्गमील में जंगल है। बेतिया-राज्य से इसका प्रबन्ध होता है। सरकारी वन-विभाग कुछ वैज्ञानिक विषयों में सलाह देता है।

बिहार-प्रान्त में जंगल प्रायः ६५०० वर्गमील में है। इसमें से केवल २००० वर्गमील जंगल सरकारी वन-विभाग द्वारा वैज्ञानिक रीति से संचालित एवं संरक्षित है। बाकी ७००० वर्गमील से ऊपर जमींदारों के हाथ में है। ये उसका सदुपयोग नहीं करते, काटते हैं, खराब करते हैं, अंधाधुंध बेचते हैं; गायें घंटे-घंटे दूहते हैं और दूध न दें तो डंडे मारते हैं!

हजारीबाग जिले में रामगढ़ का जंगल १६० वर्गमील में है। इसका प्रबन्ध कुछ अच्छा है; पर सरकारी जंगलों-जैसा नहीं।

सरकारी जंगल कितने और कहाँ हैं, निम्नलिखित आँकड़ों से यह विदित होगा—

जिला					जंगल (वर्गमील में)
सिंहभूमि	...	...	...	...	१०३२
संताल-परगना	...	...	...	...	२६२
पलामू	...	...	...	...	२४६
हजारीबाग	...	...	...	...	६४
मानभूमि	...	...	...	...	१४
गया	...	...	...	...	११
राँची	...	...	...	...	७

इसके अतिरिक्त प्रायः ४०० वर्गमील जमींदारी जंगल—प्रधानतः राँची जिले और दालभूम में—सरकारी प्रबन्ध में है। कुछ जमींदारों ने ४५ वर्ष के लिये अपने जंगलो के बचाव और आर्थिक लाभ के निमित्त, शर्त्तनामों के साथ, जंगलों को गवर्नमेंट के सुपुर्द कर दिया है। इन्हें वर्गमील-पीछे ४०) सालाना किराया मिलता है और मुनाफे का आधा। घाटे में इनका साझा नहीं। सारा खर्च सरकार का होता है। इसमें सरकार को घाटा है; क्योंकि जमींदारी जंगलों की अवस्था बुरी है।

पर, इन जंगलों को राष्ट्रीय दृष्टि से बचाना आवश्यक है, खर्च कुछ भी हो। फिर भी, क्षणिक लाभ के प्रलोभन में, बहुत-से जमीन्दार, इन (उक्त) शर्तों पर भी, सरकार को जंगल का प्रबन्ध करने नहीं देते।

सरकारी जंगल कुछ ऐसे भी हैं जो वन-विभाग के जिम्मे न रहकर जिला-कलक्टरों की निगरानी में हैं। उनकी तफसील यह है—

जिला	जंगल (वर्गमील में)
संताल-परगना	१४३
सिहभूमि	६१
शाहाबाद	५०
हजारीबाग	२०
पलामू	१५

जंगल से प्राप्त पदार्थ

बिहार-प्रान्त के जंगल अधिकतर पहाड़ों पर ही हैं। इनमें साल या सखुआ प्रधान वृक्ष हैं। सिंहभूमि की मिट्टी इसके लिये बहुत अच्छी है। आठ-नौ फीट की गोलाई के वृक्ष तो मामूली तरह से मिलते हैं। कहीं-कहीं १५ फीट की गोलाई तक के साल-वृक्ष पाये जाते हैं। सिंहभूमि से रेलवे-लाइन के सलीपर और मोटे गोले बहुत चालान होते हैं। सिहभूमि के पोराहाट इलाके में, और पलामू के जंगलों में, साल के साथ बाँस भी बहुत मिलते हैं। बाँस से कागज बनता है; इसलिये बाँस की माँग दिन-दिन बढ़ रही है।

हाल ही में सोन के तट पर, शाहाबाद जिले में, 'डिहरी' (डालमिया-नगर) में कागज का एक कारखाना खुला है। इसमें पलामू के जंगलों से बाँस आता है। कोयल नदी में बाँस को तैराकर जंगल से डिहरी के नजदीक तक सोन में लाते हैं। वहाँ से फिर रेल पर लादकर दूर-दूर पच्छिम के शहरों में बाँस जाता है।

प्रकाश की ओर—

महाश्रमण गौतम बोधिवृक्ष के समीप पहुँच रहे हैं। महावन के सभी
जीव-जन्तु उनके दिव्य आलोक से मुग्ध हैं।

चित्रकार—श्रीउपेन्द्र महारथी

[पुस्तक-भंडार के 'चित्र-संग्रह से']

इसके अतिरिक्त प्राय: ४०० वर्गमील जमींदारी जंगल—प्रधानत राँची जिले और दालभूम में—सरकारी प्रबन्ध में है। कुछ जमींदारों ने ४५ वर्ष के लिये, अपने जंगलो के बचाव और आर्थिक लाभ के निमित्त, शर्त्तनामो के साथ, जंगलो को गवर्नमेंट के सुपुर्द कर दिया है। इन्हें वर्गमील-पीछे ४०) सालाना किराया मिलता है और मुनाफे का आधा। घाटे मे इनका साझा नहीं। सारा खर्च सरकार का होता है। इसमें सरकार को घाटा है; क्योकि जमींदारी जंगलों की अवस्था बुरी है।

पर, इन जंगलो को राष्ट्रीय दृष्टि से बचाना आवश्यक है, खर्च कुछ भी हो। फिर भी, क्षणिक लाभ के प्रलोभन में, बहुत-से जमीन्दार, इन (उक्त) शर्तों पर भी, सरकार को जंगल का प्रबन्ध करने नहीं देते।

सरकारी जंगल कुछ ऐसे भी हैं जो वन-विभाग के जिम्मे न रहकर जिला-कलक्टरो की निगरानी में हैं। उनकी तफसील यह है—

जिला	जंगल (वर्गमील में)
सताल-परगना	१४३
सिहभूमि	६५
शाहाबाद	५०
हजारीबाग	२०
पलामू	१५

जंगल से प्राप्त पदार्थ

बिहार-प्रान्त के जंगल अधिकतर पहाड़ो पर ही हैं। इनमे साल या सखुआ प्रधान वृक्ष है। सिहभूमि की मिट्टी इसके लिये बहुत अच्छी है। आठ-नौ फीट गोलाई के वृक्ष तो मामूली तरह से मिलते हैं। कहीं-कहीं १५ फीट की गोलाई के साल-वृक्ष पाये जाते हैं। सिंहभूमि से रेलवे-लाइन के सलीपर और मोटे बहुत चालान होते हैं। सिहभूमि के पोराहाट इलाके मे, और पलामू के जंगलों में साल के साथ बॉस भी बहुत मिलते हैं। बॉस से कागज बनता है; इसलिये इसकी माँग दिन-दिन बढ़ रही है।

हाल ही मे सोन के तट पर, शाहाबाद जिले में, डिहरी (डालमिया नगर) मे कागज का एक कारखाना खुला है। इसमें पलामू के जंगलो से बॉस आते हैं। कोयल नदी मे बॉस को तैराकर जंगल से डिहरी के नजदीक तक लाते हैं। वहाँ से फिर रेल पर लादकर दूर-दूर पच्छिम के शहरो मे बॉस जाते हैं।



सिंहभूमि के कोलहान इलाके में 'सबाई' या 'साबे' घास बहुत होती है। अधिकतर यह प्राकृतिक है; पर कुछ बोकर भी उपजाई जाती है। इसकी भी खपत खासकर कागज बनाने में होती है। इसकी रस्सी भी बनती है। रानीगंज (बंगाल) के कागज के कारखाने में अधिकतर 'सबाई' घास की ही खपत होती है।

आसन, पियासाल या पैसार, गम्हार, धौ, करम इत्यादि और भी कई तरह की उपयोगी लकड़ियाँ बिहार के वनों में मिलती हैं। लकड़ी के अतिरिक्त विविध प्रकार के फूल-फल, जड़ी-बूटी इत्यादि वस्तुएँ इन जंगलों में मिलती हैं। आँवला, हरा, बहेरा, चिरैता, अनन्तमूल, सत्तमूल, कुरची, गुड़च, कत्थ, धुना, लाह, बीड़ी बनाने के लिये केंद के पत्ते, दवा बनाने की छाले इत्यादि पदार्थ भी मिलते हैं। जंगल के नजदीक रहनेवाले कन्द-मूल खोदकर खाते हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध

आप सोचते होंगे, जंगल का विज्ञान से क्या संबंध? पेड़ खड़े हैं, काट लो, जंगल फिर अपने-आप उत्पन्न हो जायगा। पर इस तरीके से जंगल केवल कुछ दिनों तक ही रह सकता है, सब दिन नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से हम वन-समूह को मूलधन मानते हैं। मूलधन बैंक में रखिये या कारोबार में लगाइये तो व्याज या लाभ के रूप में इसकी वृद्धि होती है। सम्पत्ति-शास्त्र कहता है कि व्याज या मुनाफे के रुपये आप भले ही खर्च करें, पर मूलधन को न घटाइये; बल्कि कुछ इसकी भी वृद्धि करते रहिये। हमारे जंगल के वृक्ष भी बढ़ते हैं। हरएक पेड़ रोज कुछ-न-कुछ बड़ा होता है। हम यदि इस वृद्धि को प्रति वर्ष काट लिया करें और पेड़ को जैसा-का-तैसा छोड़ दें, तो हम केवल मुनाफा लेंगे, मूलधन नहीं। यही मुनाफा किस तरह निकाला जाय, यहीं पर विज्ञान काम आता है; क्योंकि हर पेड़ को छीलकर उसकी बढ़ती नहीं निकाल सकते। इसके लिये हम पेड़ों की गिनती करते हैं—कितनी तरह के पेड़ हैं, कितने हैं, कितनी मुटाई है आदि। इसके साथ-साथ, खास-खास जगहों में, हमारे अनुसन्धानक्षेत्र भी हैं, जहाँ वृक्षों के उत्पत्ति-काल से लेकर अगले १०० वर्ष तक, हर तीसरे साल नाप होती है। इससे यह पता चलता है कि अमुक जाति का वृक्ष एक वर्ष में कितना बढ़ता है। यह वृद्धि-परिमाण और वृक्षों की पूरी संख्या जानकर हम हिसाब लगा सकते हैं कि हमारे इस खास जंगल में एक वर्ष में कितने क्युबिक-फीट की लकड़ी व्याज या मुनाफे के रूप में पैदा होती है। इस क्युबिक-फीट को हम वृक्षों की संख्या में

परिणत करते हैं, जिसके द्वारा हम यह कह सकते हैं कि इतने पेड इस नाप के हमारे जंगल में इस साल नये हुए। इतने पेड़ों को हम काट सकते हैं और जंगल ज्यों-का-त्यो बना रहेगा। पर इन पेड़ो के काटने की भी विधि है। उदाहरणतः, यदि दस पेड़ घने हैं तो उनके बीच से दो निकाल लेने में कोई खराबी नहीं, बल्कि फैलने के लिये ज्यादा जगह मिलने से जो पेड़ खड़े रहेंगे वे और भी जोर से बढ़ेंगे—या हो सकता है कि एक पेड़ के नीचे बहुत-से छोटे-छोटे पौधे हो गये हों, पर छाया के कारण बढ़ने नहीं पाते, ऐसी अवस्था में उस बड़े पेड को काटकर छोटे की हम भलाई करेंगे। पर जहाँ अकेला पेड़ है, उसके आसपास खाली जगह है—न बड़े पेड़ हैं न छोटे पौधे ही, उस पेड़ को हम कभी न काटेंगे। इस पेड से बीज गिरेंगे, पौधे होंगे, और खाली जगह धीरे-धीरे भर जायगी। इसी विधि से हम वार्षिक आय निकालते हैं। वन-नीति की हमें कड़ी आज्ञा है कि वार्षिक आय से तिल-मात्र भी अधिक न ले और जो लें वह भी इस प्रकार से कि जंगल की उन्नति होती रहे, अवनति न होने पावे। जबतक हमें इस बात का निश्चय न हो जाय कि जिस पेड़ को हम काटना चाहते हैं उसकी जगह वैसा ही या उससे भी अच्छा पेड़ पैदा कर देंगे, तबतक उस पेड़ को काटने का हमें हक नहीं।

इससे आप समझ सकते हैं कि वन-रक्षा का यह अर्थ नहीं कि जंगल काटिये मत, उसको बचाये रखिये, बल्कि सरकारी जंगलो में कटाई हम बहुत करते हैं। कितनी ही मोटी लकड़ियाँ, कितने ही रेल के सलीपर, कितने ही बल्ले हमारे सरकारी जंगलो से बराबर बिकते हैं, फिर भी जंगल जैसा-का-तैसा रहता है। इसके विपरीत जमीदारी जंगलों को देखिये। थोड़ी लकड़ी ही हर साल मिलती है, वह भी पतली और घटिया; पर जंगल की हालत हर रोज खराब होती जाती है। सारा भेद प्रबन्ध में है। सुप्रबन्ध से वन की सम्पत्ति संरक्षित रहती है और कुप्रबन्ध से वन-वैभव विनष्ट हो जाता है। अच्छी व्यवस्था से अन्य लाभों के साथ-साथ, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, वार्षिक आय भी अच्छी होती है।

वन-संरक्षण की कार्यप्रणाली

जब किसी जंगल का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया जाता है, तब सबसे पहले कार्य-प्रणाली बनाई जाती है। जंगल की पूरी तरह जाँच की जाती है—मिट्टी कैसी है, पत्थर किस किस्म के हैं, वृक्ष-लता, पौधे आदि किस जाति के हैं, जमीन पहाड़ी है या समतल, पहाड़ी है तो कितनी ऊँची—किधर का रुख है, ज्यादा माँग किस

नाप की लकड़ी की है और कहाँ है। जंगल की मिट्टी और पत्थर यदि अनुकूल न हुए तो वृक्ष अधिक मोटे न हो सकेंगे। बहुत दिन छोड़ने से भीतर-भीतर हौले होने लगेंगे या सड़ने लगेंगे। प्रवन्ध की प्रणाली इन्हीं बातों पर निर्भर रहती है। मान लीजिये, जंगल कम है और आसपास बहुत गॉव हैं—जैसे, हजारीवाग जिले में कोडरमा का जंगल। किसानों को हल बनाने की लकड़ी चाहिये, घर और मचान बनाने के लिये वल्ले, और जलाने की लकड़ी। ऐसी दशा में मॉग ज्यादा होगी। हम ऐसा प्रवन्ध करेंगे कि साल के वृक्ष ३ से ४ फीट की मोटाई तक के मिलें जिनसे सारा काम निकल जाय। अनुसन्धान से हमें पता है कि इतने मोटे साल के पेड़ औसत ४० वर्ष में होते हैं। इसलिये हम ४० वर्ष की अवधि निश्चित करेंगे। इसका अर्थ यह है कि जंगल का जो भाग आज काटा गया वह फिर ४० वर्ष के पहले नहीं काटा जायगा। जंगल को हम ४० भाग में बाँट देंगे और एक-एक भाग को एक-एक वर्ष लेंगे। इस भाग को अँगरेजी में 'कूप' कहते हैं। कूप को वेचने के पहले उसमें कुछ पेड़ों पर अलकतरे का दाग देकर और नम्बर लिखकर छोड़ देते हैं। ये पेड़ इसलिये छोड़े जाते हैं कि खाली जमीन बीज के द्वारा क्रमशः पौधों से भर जाय। एकड़-पीछे करीब ८ पेड़ छोड़े जाते हैं। कूप नीलाम कर दिया जाता है। ठीकेदार को ये नम्बर वाले पेड़ छोड़कर बाकी सब काट डालना पड़ता है। काटने का नियम यह है कि पेड़ कट जाने पर उसका खूँटा (खुत्थ या स्थाणु) छः इंच से अधिक जमीन से ऊँचा न रहे। ऐसे खूँटो से फिर पौधे निकलते हैं। यदि खूँटे ऊँचे रहे तो पौधे पतले और कमजोर होंगे, उनसे आगामी वृक्ष अच्छे न होंगे। इस नियम पर इसी लिये वडा ध्यान रक्खा जाता है। गॉव वाले साधारणतः पेड़ को वडी ऊँचाई पर काटते हैं। वे जानते नही कि इसके द्वारा वे क्या हानि कर रहे हैं, या जानते भी हैं तो कोई फिक्र नही करते। इससे जंगल की वरबादी वहुत ज्यादा होती है।

'कूप' नम्बर १ कट जाने पर आगामी वर्ष कूप नम्बर २ काटा जाता है; इसी तरह ४० वे वर्ष में कूप नम्बर ४०। इधर ४० वर्षों में कूप नम्बर १ में पौधे वढ़कर ४० वर्ष के हो गये रहेंगे, करीब ३ से ४ फीट तक मोटे। इसलिये कूप नम्बर ४० के वाद हम कूप नम्बर १ में फिर आवेंगे। इसी तरह काम हमेशा होता रहेगा।

कूप कट जाने के वाद एक खूँटे से कई पौधे निकलते हैं। यदि सव छोड़ दिये जायँ तो कोई पेड़ अच्छा नही होगा; क्योंकि सबको एक ही जड़ से खाना-

पानी मिलता है—जो कुछ मिलता है उसी में सबको बाँटकर गुजर करना पड़ता है, और जगह की कमी से आपस में लड़ाई होती है। आप तो जानते हैं कि मक्के के पौधे बहुत नजदीक-नजदीक हों तो भुट्टे अच्छे नहीं लगते। इसी लिये पौधे क्रमशः काटे जाते हैं और अंत में खूँटा-पीछे एक छोड़ दिया जाता है।

'कूप' कटते ही घास-लता इत्यादि इतने जोरों से बढ़ती हैं कि साल और अन्य कीमती पौधे ढक जाते हैं। यदि इन्हें हम यो ही छोड़ दें तो मुख्य पौधे के मरने का डर है। इस लिये हमें घास-लता आदि काटकर अपने उपयोगी पौधों की सहायता करनी पड़ती है। सारांश यह है कि वन भी एक खेती है। जितनी मिहनत और देखभाल किसान को करनी पड़ती है उतनी ही हमें भी।

सिंहभूमि का जंगल—धालभूम और कोल्हान का कुछ भाग छोड़कर—अधिकतर गाँवों से दूर है। आसपास की आबादी बहुत कम है। वहाँ यदि हम ३ से ४ फीट तक की लकड़ी काटे तो कोई लेनेवाला नहीं। इन बल्लो को जंगल से गाँवो और शहरो में लाने में खर्च इतना अधिक है कि परता नहीं बैठता। इस लिये यहाँ खूब मोटी लकड़ी पैदा की जाती है, छ फीट मोटाई से ऊपर। इन मोटे पेड़ों से रेल के सलीपर, सिल्ली, धरन इत्यादि चीजे बनती हैं। इन जंगलों में १२० वर्ष की अवधि है, अर्थात् आज जो पौधा पनपा या लगाया गया वह १२० वर्ष के बाद काटा जायगा।

बाँस के लिये भिन्न प्रबन्ध-प्रणाली है। इसी तरह सबाई-घास, लाह, रस्य इत्यादि के लिये अलग-अलग नियम हैं।

वन-विभाग की संस्था

बिहार-सरकार के वन-विभाग के सर्वोच्च अफसर 'कंजरवेटर ऑफ फॉरेस्ट' कहलाते हैं। वे राँची में रहते हैं। सारा प्रान्त उन्हीं का इलाका है। उनके इलाके को 'सर्किल' कहते हैं। 'सर्किल' का विभाग 'डिवीजन' में हुए है। 'डिवीजन' के जिम्मेदार अफसर को 'डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफिसर' कहते हैं। बिहार में अभी आठ डिवीजन हैं—

डिवीजन का नाम	किस जिले में है	हेडक्वार्टर
दालभूम	सिंहभूमि	चाइबासा
पोराहाट	"	"
चाइबासा	"	"

कोल्हान	सिंहभूमि	चाइबासा
सारंडा	"	"
पलामू	पलामू	डालटनगंज
संताल-परगना	संताल-परगना	दुमका
रिसर्च और वर्किंङ्ग प्लैन्स (सम्मिलित)	बिहार-प्रान्त	राँची

राँची और सिंहभूमि जिले के कुछ जमींदारी जंगलों के प्रबन्ध के लिये राँची में एक अफसर रहते हैं, जिनका ओहदा 'डिवीजनल फॉरेस्ट ऑफिसर' का ही है; पर गवर्नमेंट ने अभी डिवीजन नहीं बनाया। इन्हें 'प्राइवेट स्टेट्स फॉरेस्ट आफिसर' कहते हैं।

'डिवीजन' का फिर विभाग 'रेंज' में हुआ है। रेंज के जिम्मेदार अधिकतर 'रेंजर' होते हैं। 'रेंज' के नीचे 'बीट' होता है जिसके जिम्मेदार 'डिप्टीरेंजर' या 'फारेस्टर' रहते हैं। सबके नीचे 'सब-बीट' है जिसमें 'फॉरेस्ट गार्ड' होते हैं।

शिक्षा

वन-विज्ञान की शिक्षा देहरादून में दी जाती है। अफसरों के लिये एक कॉलेज है, रेंजरों के लिये दूसरा कॉलेज। दोनों में दो-दो साल की पढ़ाई होती है। फारेस्टरों की शिक्षा फारेस्ट-स्कूल में होती है जो क्योंझर स्टेट (उड़ीसा) के अन्तर्गत चम्पूआ में है। फॉरेस्ट-गार्डों की शिक्षा सिंहभूमि में होती है।

आर्थिक हिसाब

१६३६—४० साल में, अर्थात् अप्रैल १६३६ से मार्च १६४० तक, वन-विभाग की आय ७,७३,३१४) थी और खर्च ४,६५,६५६) तथा बचत १,७७,६५८)। इसके अतिरिक्त करीब २,३१,०००) की लकड़ी इत्यादि जंगल के पड़ोसी गाँववालो को मुफ्त बाँटी गई। इस रकम को भी आय में ही गिनना चाहिये—यदि महाजनी हिसाब किया जाय तो। पर जंगल के दूसरे लाभ इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि आर्थिक लाभ को गौण समझना चाहिये।

जंगल के लाभ

जंगल के साधारण लाभ सभी जानते हैं। जंगल से लकड़ी इत्यादि विविध प्रकार के उपयोगी पदार्थ मिलते हैं, जिनके विना हमारा काम नहीं चल सकता।

हजारों-लाखों आदमी रोजगार पाते हैं। बहुत-से लोग 'कूप' में लकड़ी काटकर ठीकेदारों से पैसे पाते हैं। कुछ लोग जंगल से लकड़ी खरीदकर बाजारों में बेचते हैं और मुनाफा उठाते हैं। कुछ लोग लकड़ी की कंघी, खिलौने इत्यादि बनाकर बेचते हैं। कुछ लोग 'सबाई'-घास काटते हैं और रस्सी बनाते हैं। कुछ लोग लाह (चपड़ा) जमा करते हैं। कुछ लोग काष्ठौषधों का पता लगाते हैं। कुछ तसर के कीड़े लगा रेशम पैदा करते हैं। कुछ लोग कथ बनाते हैं। इसी तरह अधिकांश स्त्री-पुरुष किसी-न-किसी काम में लगे रहते हैं। जंगल में काम अधिकतर ऐसे समय मे होता है जब किसानो को खेती से फुर्सत होती है। जंगल के इलाकों में अकाल कभी नही सुना जाता। खाने के भी बहुतेरे फल इत्यादि मिलते हैं—जैसे चिरौंजी, बेर, केंद, महुआ, करौंद, मकोय कंद-मूल आदि।

जंगल का असर वृष्टि पर भी है, यह तो साधारणतः सभी जानते हैं। वनहीन प्रदेश 'सहारा'-मरुस्थल या राजपूताना के रेगिस्तान के समान हो जाते हैं। जंगल के पत्तो से पानी सूखकर हवा में मिलता है, इसलिये जंगल के ऊपर की हवा सर्द रहती है। बादल जंगल के ऊपर आते हैं तो पानी बनकर बरस जाते हैं। मरुभूमि या वन-हीन प्रदेश के ऊपर से बादल यों ही गुजर जाते हैं।

पर, वृष्टि के कारण अनेक हैं। जंगल उन कारणो में केवल एक है। पटना, शाहाबाद, सारन आदि जिलों में जंगल न होने पर भी वृष्टि होती है—यद्यपि छोटानागपुर से कम, और छोटानागपुर की तरह बराबर थोड़ा-थोड़ा करके नहीं, पर केवल बरसात में ही और मूसलधार।

जंगल का सबसे बड़ा काम वर्षा-जल का संरक्षण है। दो पहाडों का मानसिक चित्र खींचिये—एक वृक्ष-हीन नग्न, दूसरा वृक्ष-पल्लवों से पूर्णतः आच्छादित। उस नग्न पहाड पर वर्षा की बूँदे गोलाबारी की तरह सीधी आ पडती हैं—इनको कोई रुकावट नहीं। बौछार से मिट्टी कटती है और धुल-धुलकर नीचे गिरती है। यहाँ की मिट्टी धूप से सूखकर कड़ी हुई रहती है; इसलिये पानी इसमें समाता भी नहीं। पानी ज्यों-ज्यों नीचे उतरता है, इसका जोर और भी बढ़ता जाता है, जैसे आपने पत्थर को लुढ़कते देखा होगा। मिट्टी, बालू, पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े, सभी पानी के साथ बहकर नीचे आते हैं और पहाड़-तले खेतों में जमा होकर उनकी उर्वरता कम करते हैं। थोड़ी ही देर में वर्षा का सारा जल उतरकर नालों मे बह जाता है। पानी के जोर से जमीन कटकर खाई बन जाती है और सदा के लिये बेकाम हो जाती है।

मध्य प्रान्त में, इटावा के निकट, वन-हीन क्षेत्र में, इसी तरह खाई बन रही थी। उपजाऊ खेत तो चौपट हो ही रहे थे, इटावा शहर के भी कटकर खाई बन जाने का भय था। कहते हैं, वर्षा होते ही कीच और मटियाले पानी की प्रलयंकर धारा इन खाइयों में बहने लगती थी। चरते हुए ऊँट भी बह जाते थे! वर्षा के एक घंटे के बाद ही जल की एक बूँद भी देखने को नही मिलती थी। इस भयंकर अवस्था को रोकने के लिये जंगल लगाया गया। वृक्ष की जड़ों ने हाथ की उँगलियों की तरह मिट्टी बाँध ली और धीरे-धीरे खाई बनना बंद हुआ। बाढ़ का कारण यही है कि वन-हीन पहाड़ों और क्षेत्रों से एकाएक पानी बहकर सैकड़ों—हजारों नालों में, फिर नदियों में, जाता है जिससे नदियाँ उमड़ उठती हैं।

अब वनाच्छादित पर्वत को लीजिये। इस पहाड़ पर बूँदें पहले पत्तों पर पड़ती हैं जिससे इनका जोर टूट जाता है। पत्तों से टपककर पानी जमीन पर आता है। यहाँ की जमीन पर सूखे पत्ते, सूखी लकड़ी के टुकड़े, झाड़ियाँ, घास, पौधे इत्यादि रहते हैं। ये पानी के नीचे बहने में वाधा देते हैं। यहाँ की मिट्टी छाया में रहने से नर्म और हल्की होती है तथा वर्षा का पानी सोखती है। इसके अलावा इसमें चूहे, खरहे, तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े, बिल बनाकर रहते हैं। इन बिलों में भी पानी घुस जाता है। इस तरह वर्षा का आधे से अधिक जल जमीन में समा जाता है और आधा से कम ही पहाड़ से नीचे उतरता है। उतरता भी है इतना धीरे-धीरे कि मिट्टी को नहीं काट सकता। जो पानी जमीन में समा गया [व]ह पीछे झरना बनकर निकलता है। वनों में छोटे-छोटे नाले भी गर्मी में चलते [र]हते हैं। इनमें झरनो से पानी आता है; किन्तु उजाड़ इलाके में वर्षा के बाद [ही] नदी-नाले सूख जाते हैं।

इस वर्णन से आप जंगल के निम्न-लिखित लाभ समझ सकते हैं—

[१] जंगल नदियों में बाढ़ नहीं आने देता।

[२] झरनों और इनके द्वारा नदी-नालों-झीलों में जल-संरक्षण करता है।

[३] पहाड़ के नीचे के खेतों को बालू-पत्थर से भरने से बचाता है। [सिं]चाई के लिये पानी बचाकर रखता है।

[४] पहाड़ी इलाकों में उपजाऊ मिट्टी को धुलकर बह जाने से बचाता है। [ज़]मीन को कटकर खाई बनने से भी वचाता है।

[५] जंगल के कारण वर्षा अधिक होती है।

जहाँ जंगल की बरबादी हुई है—जैसे धालभूम, मानभूमि, राँची इत्यादि—

वहाँ वर्षा होते ही नदियाँ भर जाती हैं; परन्तु इतनी अधिक वर्षा होने पर भी नवम्बर-दिसम्बर में ही नालों में एक बूँद जल नहीं रहता। सिचाई की बात तो छोड़ ही दीजिये, पशुओं को पीने के लिये भी जल नहीं मिलता। एक आखिरी पानी न हो तो धान मर जाता है। इसके विपरीत, सिंहभूमि के वनाच्छादित भागों को देखिये। वहाँ नाले जल्द नहीं भरते, साल-भर उनमें पानी बहता रहता है।

वन से ढका हुआ पर्वत या पार्वत्य प्रदेश उस बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश है जो अपनी कमाई का एकांश बचाकर रखता है कि दुःसमय में काम दे। वृक्षहीन उजाड़ पहाड़ उस बुद्धिहीन मनुष्य की तरह है जिसने कमाया, खाया, साफ कर दिया, और पीछे रुक्ख होकर दुःख भोगा।

आप कहेंगे, विहार के समतल भागों में—पटना इत्यादि जिलों में—जंगल नहीं हैं; फिर भी कोई बुराई नहीं दीखती। इसका कारण यह है कि वहाँ की जमीन अधिक ऊँची-नीची न होने से पानी वहने नही पाता, अधिकतर वहीं सूख जाता है। जंगल की खास जरूरत पहाड़ी इलाकों में है। वहाँ के लिये वन ही मानो प्राणदाता हैं।

पर समतल प्रदेश भी बाढ़ से बरी नहीं हैं। गंगा में बाढ़ इसलिये आती है कि पंजाब के हिमालय-प्रदेश में जंगल का नाश हो गया है। छोटानागपुर में जंगल नष्ट होने से बंगाल और उड़ीसा में बाढ़ आती है। इसलिये समतल भूमि वासी यह न समझें कि जंगल की अच्छाई-बुराई से उनका कुछ मतलब नहीं या वन-रक्षा में उनका कोई दायित्व नहीं। जबतक पहाड़ी इलाकों में जंगल का बचाव नहीं किया जायगा, तबतक बाढ़ नहीं रुक सकती; बल्कि दिन-दिन इसकी विनाशिनी शक्ति बढ़ती ही जायगी।

जमीन्दारी जंगल

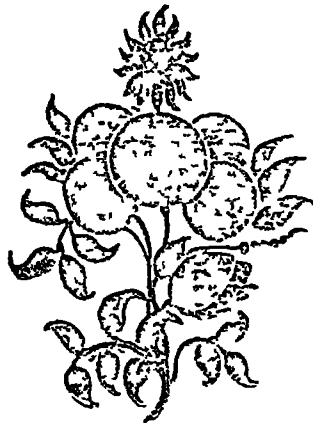
विहार के जमींदारों के हाथ में बहुत-से जंगल हैं। यह जंगल-धन खूब बरबाद हो रहा है। रुपयों की जरूरत हुई, जंगल बेच दिया, चाहे जंगल का हाल कुछ भी हो। एक ही जगह हर साल कटाई होती है। पौधों के बढ़ने का समय नहीं मिलता। काटने का कोई नियम नहीं। रैयत लोग भी जमीन्दार की अनुमति से या विना अनुमति के भी, अंधाधुंध काटते हैं।

जंगल एक ऐसा व्यवसाय है, जो गवर्नमेंट के सिवा दूसरे से नहीं हो सकता। आज का लगाया पौधा ४० वर्ष में बल्ला देगा और १२० वर्ष में

मोटी सिल्ली। कौन ऐसा व्यक्ति है जो इतने दिन आगे के लिये खर्च या फिक्र करेगा? केवल गवर्नमेंट ही इतनी दूरदर्शिता से काम ले सकती है। और देशों में—स्विट्जरलैंड, फिनलैंड आदि में—जमींदारी या खानगी जंगलों पर भी गवर्नमेंट का ही अधिकार है। विना सरकारी अनुमति के कोई अपना जंगल नहीं काट सकता। यहाँ लोग कहते हैं, चीज मेरी है, मैं चाहे जो करूँ, सरकार बोलनेवाली कौन? यह तो ठीक है; पर जहाँ आपकी कार्यवाहियों से दूसरों की हानि हो वहाँ सरकार को निस्संदेह दखल देने का अधिकार है। आप अपने लहराते हुए गेहूँ के खेत में घोड़ा छोड़ दीजिये, बकरियों से चरा दीजिये, रौंदकर मिट्टी में मिला दीजिये; नुकसान आपका होगा। शहर के बीच आपका घर हो, उसपर अधिकार आपका है, उसकी मरम्मत कीजिये या न कीजिये, उसे बेचिये या किराये पर दीजिये; पर उसमें आग लगाने का अधिकार आपको नहीं है। जंगल की बरबादी करना उस घर में आग लगाने के बराबर है।

हम यह नहीं कहते कि दुनिया फिर जंगल से भर दी जाय, या खेती बढ़ाने के लिये जंगल कहीं भी काटा ही न जाय। जहाँ जंगल काटने से अच्छा खेत बन सकता है वहाँ काटिये। पर जंगल काटकर छोड़ देना और मीलों मरुभूमि बना देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

जमीन को किसी-न-किसी काम में लगाना चाहिये। जो जमीन जंगल के सिवा किसी काम के लायक नहीं वहाँ जंगल क्यों न छोड़ा जाय? बिहार-प्रान्त में आज जितने जंगल बचे हुए हैं वे अधिकतर पहाड़ों पर या पहाड़ी इलाकों में हैं, जहाँ की जमीन आप और किसी काम में नहीं ला सकते। इसलिये हम सभी का धर्म है कि जंगल की रक्षा में सहायक हों।





पावापुरी

प्रोफेसर बेनीमाधव अग्रवाल, एम्० ए०, राजेन्द्र-कालेज, छपरा

बिहार के परमपवित्र एवं परमप्रसिद्ध स्थानों में 'पावापुरी' तीर्थ का नाम सादर उल्लेखनीय है। जैनो के अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने, आज से २४६८ साल पहले, इसी पवित्र भूमि में, निर्वाण प्राप्त किया था और यहीं उनका दाह-संस्कार भी हुआ था। अतएव पावापुरी जैनों का एक प्रधान तीर्थ है और प्रतिवर्ष कार्त्तिक में यहाँ बड़े समारोह से जैन लोग धार्मिक उत्सव मनाते हैं। किन्तु जिस प्रकार महात्मा महावीर का उच्च और उदार संदेश केवल जैनों के लिये ही नहीं, वरन् मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये है, उसी प्रकार 'पावापुरी' तीर्थ भी केवल जैन-मतावलंबियो के लिये ही नहीं, वरन् समस्त मनुष्यजाति के लिये महत्त्व रखता है।

पावापुरी (अपापापुरी), पटना जिले में, राजगृह के पास, एक ग्राम है—पटना से ५८ मील दूर—पटना-राँची-सड़क पर स्थित। उसके समीप ही, लगभग ८ मील दूर, 'बिहार-शरीफ' नगर है। पावापुरी तक रेलवे-लाइन नहीं है, पर मोटर का रास्ता है। यात्रियो को बिहार-लाइट-रेलवे के 'बिहारशरीफ' स्टेशन पर या साउथ-बिहार-रेलवे के 'नवादा' स्टेशन पर उतरकर मोटर (या टमटम) द्वारा पावापुरी तक जाना पड़ता है। सड़क अच्छी है और मोटरे भी बिना दिक्कत के तथा सस्ते किराये पर मिल जाती हैं।

यद्यपि जैनधर्म अति प्राचीन है, फिर भी उसके इतिहास में महावीर स्वामी का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है कि हम यदि इस प्रेरक और सुधारक महात्मा को उसका संस्थापक, प्रकाशक अथवा उद्धारक कहें, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। बिहार-प्रान्त को ही सौभाग्य प्राप्त है इस महापुरुष की जन्मभूमि और लीलाभूमि होने का।

एक धनी और कुलीन क्षत्रिय-वंश में, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, इनका जन्म कुंडग्राम वा कुंडनगर में हुआ था। इनके पिता 'सिद्धार्थ' कुंडनगर के प्रधान थे। इनकी माता 'त्रिशला' वैशाली के एक शासक 'चेतक' की बहिन थीं। जब से ये अपनी माता की कुक्षि में आये, इनके परिवार में नाना प्रकार की उन्नति और समृद्धि होने लगी। इसी से बालक का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया।

बचपन ही से वर्द्धमान की रुचि धर्म, दर्शन और तपस्या की तरफ थी। माता-पिता की आज्ञा से इन्होंने यशोदा नाम की देवी से विवाह किया। इनके एक कन्या भी हुई—'प्रियदर्शना'। माता-पिता की मृत्यु के बाद, तीस साल की अवस्था में, इन्होंने गृहत्याग किया, और वैराग्य धारण कर सत्ज्ञान की खोज में निकल पड़े। बारह वर्ष तक घोर तपस्या और कष्ट-सहन के बाद इनको दिव्य ज्ञान—कैवल्य—प्राप्त हुआ। इन्होंने अपनी इन्द्रियों और परिस्थितियों पर विजय पाई, इसीसे ये 'महावीर' अथवा 'जिन' कहलाये।

इसके अनंतर तीस साल तक ये भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करते और 'केवल-ज्ञान' का उपदेश लोगों को देते रहे। इनके उपदेशों में अहिंसा, तप और संयम की प्रधानता है। सच पूछिये तो संसार के किसी भी धर्म-संस्थापक ने जीव-दया के सिद्धान्त को उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया जितना इस भारतीय सन्त ने। भारतीय जीवन एवं विचार-धारा पर इस उद्दीपनामयी विभूति का कितना गंभीर और अमिट प्रभाव पड़ा है, इसका अनुमान हम जैनों की संख्या से नहीं कर सकते। लाखों भारतवासी ऐसे हैं जो अपनेको जैन नहीं कहते, परन्तु अहिंसा-धर्म की उपासना उनके जीवन का एक प्रधान अंग है।

७२ साल की अवस्था में, कार्त्तिक की अमावस्या को, पावापुरी में, जैनेन्द्र महावीर ने मुक्ति पाई। प्राणिमात्र पर दया करनेवाले, अहिंसा के दृढव्रती महावीर स्वामी का मुक्तिधाम होने के कारण 'पावापुरी' तीर्थ जैनों तथा अन्य भारतवासियों के लिये विशेष महत्त्व रखता है।

पावापुरी के तीन स्थान विशेषतया उल्लेखनीय हैं—समवसरण-मंदिर, ग्राम-मंदिर और जलमंदिर। पहला 'समवसरण-मंदिर' जहाँ बना हुआ है वहाँ, कहा जाता है, भगवान् महावीर ने लोगों को अपना अन्तिम उपदेश दिया था।

दूसरा 'ग्राम-मन्दिर' या 'गाँवमंदिर', विशालता में, पावापुरी के सब मंदिरों और भवनों में प्रथम है, तथा सौन्दर्य में भी श्रेष्ठ है। जहाँ यह मंदिर बना हुआ है वहाँ भगवान् महावीर ने, राजा हस्तिपाल की लेख-शाला में, प्राण-



पावापुरी

प्रोफेसर बेनीमाधव अग्रवाल, एम्० ए०, राजेन्द्र-कालेज, छपरा

बिहार के परमपवित्र एवं परमप्रसिद्ध स्थानों में 'पावापुरी' तीर्थ का नाम सादर उल्लेखनीय है। जैनों के अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने, आज से २४६८ साल पहले, इसी पवित्र भूमि में, निर्वाण प्राप्त किया था और यहीं उनका दाह-संस्कार भी हुआ था। अतएव पावापुरी जैनों का एक प्रधान तीर्थ है और प्रतिवर्ष कार्त्तिक में यहाँ बड़े समारोह से जैन लोग धार्मिक उत्सव मनाते हैं। किन्तु जिस प्रकार महात्मा महावीर का उच्च और उदार संदेश केवल जैनों के लिये ही नहीं, वरन् मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये है, उसी प्रकार 'पावापुरी' तीर्थ भी केवल जैन-मतावलंबियों के लिये ही नहीं, वरन् समस्त मनुष्यजाति के लिये महत्त्व रखता है।

पावापुरी (अपापापुरी), पटना जिले में, राजगृह के पास, एक ग्राम है—पटना से ५८ मील दूर—पटना-राँची-सडक पर स्थित। उसके समीप ही, लगभग ८ मील दूर, 'बिहार शरीफ' नगर है। पावापुरी तक रेलवे-लाइन नहीं है, पर मोटर का रास्ता है। यात्रियों को बिहार-लाइट-रेलवे के 'बिहारशरीफ' स्टेशन पर या साउथ-बिहार-रेलवे के 'नवादा' स्टेशन पर उतरकर मोटर (या टमटम) द्वारा पावापुरी तक जाना पड़ता है। सड़क अच्छी है और मोटरें भी बिना दिक्कत के तथा सस्ते किराये पर मिल जाती हैं।

यद्यपि जैनधर्म अति प्राचीन है, फिर भी उसके इतिहास में महावीर स्वामी का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है कि हम यदि उस प्रेरक और सुधारक महात्मा को उसका संस्थापक, प्रकाशक अथवा उद्धारक कहें, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। बिहार-प्रान्त को ही सौभाग्य प्राप्त है उस महापुरुष की जन्मभूमि और लीलाक्षेत्र होने का।

एक धनी और कुलीन क्षत्रिय-वंश में, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, इनका जन्म कुंडग्राम वा कुंडनगर में हुआ था। इनके पिता 'सिद्धार्थ' कुंडनगर के प्रधान थे। इनकी माता 'त्रिशला' वैशाली के एक शासक 'चेतक' की बहिन थीं। जब से ये अपनी माता की कुक्षि में आये, इनके परिवार में नाना प्रकार की उन्नति और समृद्धि होने लगी। इसी से बालक का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया।

बचपन ही से वर्द्धमान की रुचि धर्म, दर्शन और तपस्या की तरफ़ थी। माता-पिता की आज्ञा से इन्होंने यशोदा नाम की देवी से विवाह किया। इनके एक कन्या भी हुई—'प्रियदर्शना'। माता-पिता की मृत्यु के बाद, तीस साल की अवस्था में, इन्होंने गृहत्याग किया, और वैराग्य धारण कर सत्‌ज्ञान की खोज में निकल पड़े। बारह वर्ष तक घोर तपस्या और कष्ट-सहन के बाद इनको दिव्य ज्ञान—कैवल्य—प्राप्त हुआ। इन्होने अपनी इन्द्रियों और परिस्थितियो पर विजय पाई, इसीसे ये 'महावीर' अथवा 'जिन' कहलाये।

इसके अनंतर तीस साल तक ये भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करते और 'केवल-ज्ञान' का उपदेश लोगों को देते रहे। इनके उपदेशो में अहिंसा, तप और संयम की प्रधानता है। सच पूछिये तो संसार के किसी भी धर्म-संस्थापक ने जीव-दया के सिद्धान्त को उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया जितना इस भारतीय सन्त ने। भारतीय जीवन एवं विचार-धारा पर इस उद्दीपनामयी विभूति का कितना गंभीर और अमिट प्रभाव पड़ा है, इसका अनुमान हम जैनों की संख्या से नहीं कर सकते। लाखों भारतवासी ऐसे हैं जो अपनेको जैन नहीं कहते, परन्तु अहिंसा-धर्म की उपासना उनके जीवन का एक प्रधान अंग है।

७२ साल की अवस्था में, कार्त्तिक की अमावस्या को, पावापुरी में, जैनेन्द्र महावीर ने मुक्ति पाई। प्राणिमात्र पर दया करनेवाले, अहिंसा के दृढव्रती महावीर स्वामी का मुक्तिधाम होने के कारण 'पावापुरी' तीर्थ जैनों तथा अन्य भारतवासियों के लिये विशेष महत्त्व रखता है।

पावापुरी के तीन स्थान विशेषतया उल्लेखनीय हैं—समवसरण-मंदिर, ग्राम-मंदिर और जलमंदिर। पहला 'समवसरण-मंदिर' जहाँ बना हुआ है वहाँ, कहा जाता है, भगवान् महावीर ने लोगों को अपना अन्तिम उपदेश दिया था।

दूसरा 'ग्राम-मन्दिर' या 'गाँवमंदिर', विशालता में, पावापुरी के सब मंदिरों और भवनों में प्रथम है, तथा सौन्दर्य में भी श्रेष्ठ है। जहाँ यह मंदिर बना हुआ है वहाँ भगवान् महावीर ने, राजा हस्तिपाल की लेख-शाला में, प्राण-

त्याग किया था। कहते हैं कि यहाँ पर एक मंदिर भगवान् महावीर के बड़े भाई महाराज नन्दिवर्द्धन ने बनवाया था। लेकिन वर्त्तमान मंदिर उतना पुराना नहीं जान पड़ता। मंदिर के प्रशस्ति-लेख से ज्ञात होता है कि शाहजहाँ के राज्य-काल में, 'बिहार'-नगर के श्वेताम्बरी-संघ ने, सन् १६४१ ईसवी में, इस मंदिर का पुनर्निर्माण, आचार्य जिनराज सूरि की अध्यक्षता में, करवाया था। मंदिर अति सुन्दर और भव्य है। इसके समीप अच्छी धर्मशालाएँ भी हैं। समवसरण-मंदिर तथा ग्राम-मंदिर हिन्दूशैली के बने हैं।

तीसरा 'जलमंदिर' पावापुरी की सबसे अधिक मार्के की इमारत है। यह मंदिर उस स्थान पर बना है जहाँ अर्हत् महावीर का दाह-संस्कार किया गया था। लगभग एक मील के घेरे में स्वच्छ जल का सरोवर है—कमलों और हृष्ट-पुष्ट मछलियों से भरा हुआ। उसीके बीच यह मंदिर अत्यन्त सुन्दर बना हुआ है। घाट से मंदिर तक जाने के लिये पत्थर का एक अच्छा पुल है, जिसकी लम्बाई ६०० फीट है।

जल-मंदिर की बनावट विमान के सदृश है। वहाँ पूजा के लिये भगवान् महावीर की चरण-पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं। कहते हैं, भगवान् के अन्तिम संस्कार के समय इतने लोग उपस्थित थे कि जब उन्होंने श्मशान का भस्म एक-एक चुटकी-भर उठा लिया तब इतना बड़ा गड़हा जमीन में हो गया कि वहाँ सरोवर बन गया।

अनुपम शोभा है उस स्मरणीय स्थल और भवन की। मंदिर, उसकी सीढ़ियाँ, प्रवेशद्वार और चबूतरे का चिकना सफेद संगमर्मर; उसकी कलापूर्ण सुन्दर बनावट, सरोवर के प्रफुल्ल कमल; चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे ताड़ के वृक्षों की कतारें, दूर पर राजगृह की रम्य पर्वतमाला—सब वास्तव में मनोहर हैं। जल-मंदिर और गाँव-मंदिर के दरवाजे तथा पूजा के सब सामान चाँदी के बने हैं।

इन मंदिरों के अतिरिक्त पावापुरी में दिगंबरी जैनों का एक मंदिर और धर्मशाला है। श्वेतांबरी जैनों की तो कई सुन्दर और विशाल धर्मशालाएँ हैं तथा एक दीनशाला भी है—सब जैनों की धार्मिकता और दानशीलता की देन। इनमें नवरत्न-धर्मशाला, गाँव-मंदिर-धर्मशाला, गुलाबकुमारी नाहर-धर्मशाला, मुर्शिदाबाद-धर्मशाला उल्लेखनीय हैं। यात्रियों के आराम का प्रबंध योग्यता और दूरदर्शिता के साथ किया जाता है। उन्हें चारपाई, बिस्तर, बर्तन आदि धर्मशाला की तरफ से मिल जाते हैं। पानी, रोशनी और सफाई का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। यत्र-तत्र दीवारों पर आवश्यक निर्देश एवं सुवाक्य लिखे हुए हैं।

वर्षों से इन श्वेतांबरी मंदिरों और धर्मशालाओं का प्रबंध 'बिहार' नगर के प्रसिद्ध सुचन्ती-परिवार के हाथ में है। आजकल रायसाहब लक्ष्मीचंद सुचन्ती पावापुरी के अवैतनिक प्रबन्धक (मैनेजर) हैं। वे अत्यन्त कार्यकुशल और मिलनसार सज्जन हैं। उनके समय में पावापुरी की काफी उन्नति हुई है। सन् १६३४ के भयंकर भूकम्प से पावापुरी के भवनों को नुकसान पहुँचा था; परन्तु जैनों की दानशीलता एवं संचालकों की बुद्धिमत्ता के कारण यह हानि भी उन्नति का कारण बन गई। रायसाहब सदैव लोगों को—चाहे वे जैन हों या और कोई—'पुरी'-दर्शन कराने के लिये तत्पर ही नहीं, वरन् व्यग्र रहा करते हैं।

भारत के अन्यान्य विख्यात जैन-तीर्थों की तरह 'पावापुरी' भी जैन-संप्रदाय की धार्मिकता, कलाप्रेम, दानशीलता एवं सुप्रबंध का उल्लेखनीय उदाहरण है। साथ-ही-साथ इसकी कीर्त्ति का आधार इतिहास की स्मरणीय घटनाएँ भी हैं। पावापुरी का मुक्त और पवित्र वातावरण सहसा 'शान्तिनिकेतन' की याद दिलाता है। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के शब्दों में यहाँ की शान्ति में एक स्फूर्त्ति है, प्रेरणा है—यहाँ आकर मनुष्य थोड़ी देर के लिये संसार की दुःख-चिन्ता और कोलाहल को भूल जाता है तथा एक अद्भुत आध्यात्मिक चैतन्य का अनुभव करने लगता है।

खुला हुआ मैदान, हरे-भरे खेत, ताड़ के वृक्षों की श्रेणियाँ, राजगृह की पहाड़ियाँ—इस प्राकृतिक शोभा के बीच बसा हुआ यह पावन तीर्थ; संसार के एक सर्वश्रेष्ठ महात्मा की स्मृति से अनुप्राणित यहाँ के रमणीय मंदिर; सेवाभाव और कार्यकुशलता से संचालित यहाँ की धर्मशालाएँ—वास्तव में ये सब पावापुरी को एक अनुपम स्थान बनाये हुए हैं।

पावापुरी में प्रत्येक श्रद्धालुहृदय के लिये ये वस्तुएँ सुलभ हैं—धार्मिक प्रेरणा, आध्यात्मिक स्फूर्त्ति, मानसिक शान्ति और विश्राम की सुव्यवस्था। वहाँ नहीं है पंडों का गुट्ट और धर्म के नाम पर व्यापार। संसार के भीषण स्वार्थ-संघर्ष, रक्तपात एवं बहुरूपिणी हिंसा से त्रस्त और क्लान्त व्यक्ति आज भी इस पावापुरी में जाकर उस अतिमानुषी विभूति की प्रेरणा का अनुभव कर सकते हैं, जिसने इस जगतीतल पर विश्वप्रेम और जीवदया का वह अमृत बरसाया था, जिसकी आज मानवजाति को करुण आवश्यकता है।

ऐसा परम पुनीत सुरम्य स्थल विहार-प्रान्त में ही है, यह हमारे लिये गौरव और अभिमान तथा उत्तरदायित्व का विषय है।



विहार के हिन्दी-पत्र और हिन्दी-लेखक

श्रीगोपालराम गहमरी, 'जासूस'-सम्पादक ; काशी

विहार मेरी जन्मभूमि का सीवाना है। 'गहमर' (जिला गाजीपुर) और 'चौमा' (जिला शाहाबाद) के बीच में 'कर्मनाशा' नदी बहती है। यही कर्मनाशा युक्तप्रदेश और विहार को अलग करती है। मेरे जन्मस्थान 'बारा' से डेढ़ मील के बाद ही विहार शुरू होता है। मेरा जन्म युक्तप्रदेश के पूर्वीय सीमान्त पर होने पर भी मेरी माता का जन्म विहार ही के 'चौसा' गाँव में हुआ था। इस तरह मैं विहार के जलवायु का भी उतना ही ऋणी हूँ जितना युक्तप्रदेश का।

मैं सन् १८७६ ई० मे मिडूल-वर्नाक्युलर मे उत्तीर्ण होने पर सन् १८८३ई० मे पटना-नार्मल-स्कूल मे शिक्षा पाने गया था। इस नाते भी मेरी आधी शिक्षा विहार मे हुई। उस समय बाँकीपुर (पटना) मे खड्गविलास प्रेस मझौली के राजा खड्गबहादुरमल्ल की विमल सुयश-पताका फहरा रहा था। उन्हीं दिनों इस प्रेस के स्वामी अनन्य सदुद्योगी बाबू रामदीन सिंह का दर्शन मिला था।

बाबू रामदीन सिंह हिन्दी के परमोत्साही प्रकाशक और हिन्दी-सुलेखकों के सम्मानदाता थे। बाबू साहबप्रसाद सिंह के हाथ मे प्रेस का सब भार देकर वे हिन्दी-सुलेखकों की खोज मे घूमा करते थे, और जहाँ हिन्दी के विद्वान् पाते वहाँ पहुँचकर उनकी सेवा करते, उनसे कुछ लिखवाते और उनको आर्थिक सहायता देकर उनका उत्साह बढ़ाते थे। इसी प्रकरण में वे काशी पहुँचकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के यहाँ भी पधारे थे। उन दिनों भारतेन्दु की विरदावली भारत भर में व्याप्त थी। उन्होंने भारतेन्दुजी की सब पुस्तकों का प्रकाशन-स्वत्व लेकर उनकी कीर्ति और उनका साहित्य चिरस्थायी करने का उद्योग किया था।

मैं पटना-नार्मल-स्कूल में पढ़ता ही था कि सन् १८८४ ई० मे बाबू रामदीन सिंह ने भारतेन्दु की 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' का वृहदाकार मे प्रकाशन आरम्भ कर

दिया था। उस 'कला' की बधाई में विहार के बड़े-बड़े कवियों ने अपनी काव्य-शक्ति का परिचय दिया था। मुँगेर के पंडित कन्हाईलाल मिश्र, पटना-कालेज के पंडित छोटूराम त्रिपाठी, दरभंगा के पंडित भुवनेश्वर मिश्र, भागलपुर के साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास आदि बड़े-बड़े कवियों की बधाइयाँ मिली थीं। "य नई उनई हरिचन्दकला"—समस्या की पूर्ति में एक बड़ी पुस्तक तैयार हो गई थी।

उन दिनों साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास हिन्दी का व्याकरण 'साहित्य-सूत्रधार' के नाम से लिख रहे थे। पटना-कालेज के कालीप्रसाद त्रिपाठी ने 'रामकथा' नाम से रामायण की अनोखी रचना की थी। पं० बिहारीलाल चौबे ने साहित्य का अनुपम ग्रन्थ 'बिहारी-तुलसी-भूषण-बोध' लिखा था। ये नार्मल-स्कूल (पटना) में हमलोगों की पाठ्यपुस्तकें थीं। बाबू रामदीन सिंह ने उन्हीं दिनों हिन्दी का 'भाषा-प्रभाकर' नामक व्याकरण प्रकाशित किया था, जो पादरी एथरिंगटन के 'भाषा-भास्कर' और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'हिन्दी-व्याकरण' के बाद बड़ा मान्य ग्रंथ था। उन दिनों साहित्य के जो अनुपम ग्रन्थ हमलोगों को पढ़ने को मिलते थे उनका तो अब दर्शन भी नहीं मिलता।

उन दिनों पटना से 'बिहार-बन्धु' साप्ताहिक निकलता था जिसके कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता बिहारशरीफ के पं० केशवराम भट्ट के वंश के लोग थे। जिन दिनों की बात मैं कहता हूँ उन दिनों पं० केशवराम भट्ट के लिखे हिन्दी के दो चुटीले नाटक बिहार-बन्धु प्रेस से निकल चुके थे—'सज्जाद सुम्बुल' और 'शमशाद सौसन'। पंडित केशवराम भट्ट के बाद 'बिहार-बन्धु' पं० लक्ष्मीनाथ भट्ट लिखते थे। मैं उन दिनों भी पढ़ता ही था। चार वर्ष तक पटना में सन् १८८८ ई० तक मैं रहा था। उन्हीं दिनों सन् १८८४ में भारतेन्दु का आगमन बलिया नगर में हिन्दी के प्रेमी मुंशी चेथरूलाल डिपुटीकलक्टर के आग्रह से हुआ था। उसके बाद साहित्याचार्य पं० अम्बिादत्त व्यास छपरा से पटना अक्सर आते और अपने व्याख्यानामृत-पान से सबको तृप्त करते रहते थे।

उन दिनो दानापुर में आर्य-समाज का बड़ा जोर था। राँची के बाबू बालकृष्ण सहाय वकील दानापुर में आर्य-समाज के स्तम्भ थे। 'आर्यावर्त्त', जो राँची से पं० रुद्रदत्तजी के सम्पादकत्व में निकला था, दानापुर से प्रकाशित होने लगा था। पं० अम्बिकादत्त व्यास ने आर्य-समाज की बहती हुई विशाल धारा के सामने बड़े उद्योग से सनातनधर्म की मर्यादा रक्खी थी। कई बार दोनों समाजो

मे टक्कर हुई, और एक बार तो मुजफ्फरपुर में एक बडी महती सभा मे व्यासजी को यहाँ तक कहना पड़ा था कि आर्य-समाज मेरी दक्षिण भुजा है। इसपर आर्य-समाज के सब पत्रो मे यह तार छप गया था कि व्यासजी आर्य-समाजी हो गये।

आर्यसमाज और सनातनधर्म का यह बहस-मुबाहसा उन दिनो विहार में बड़े अच्छे ढंग से ऐसा चल रहा था कि दोनों उन्नत दशा को प्राप्त होते जाते थे। दोनों का परस्पर उत्साह बढ़ता जाता था। दोनों में वैमनस्य तनक भी न था। दोनों अपने मार्ग पर गम्भीरता से पग उठाते हुए बढ़ते चले जा रहे थे। सनातन-धर्म के पंडित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य और आर्यसमाज के पं० रुद्रदत्त शर्मा विहार मे इस लगन के कार्यकर्त्ता और प्रचारक थे कि बाहर के होने पर भी ये लोग इस कार्य में विहार के ही समझे जाने योग्य थे।

सन् १८८० से सन् १९०० ई० तक बीस वर्षों मे आर्यसमाज का खूब जोर विहार मे बढ़ा। बडे-बडे धुरन्धर विद्वान् वक्ताओं का विहार में समागम हुआ। उन दिनों सर्वत्र आर्यसमाज का बड़ा जोर था। युक्तप्रान्त में भी उसका प्रचार बढ़ा हुआ था। पंजाब मे बडा प्राबल्य था। आर्यसमाज में महाराजा-जोधपुर की इतनी श्रद्धा थी कि उन्होने देश-भर में विज्ञापन दिया कि 'आर्य-समाज में स्वामी दयानन्द के बाद उनके समान या लगभग कौन महाशय हैं, इसका निर्णय होने पर उनको बडा पुरस्कार दिया जायगा।' उस समय पडित रुद्रदत्तजी का ही नाम अधिक लोगों ने लिया था। स्वामी भास्करानन्द को अधिक मत मिलने से उनको ही पुरस्कार दिया गया। उसके बाद यह विज्ञापन निकला कि 'वेद में मास खाने का विधान है, इसका मंडन किया जाय।' श्रीयुत मान्यवर पं० भीमसेन शर्मा का पत्र उस समय 'आर्य-सिद्धान्त' था, जो फिर 'ब्राह्मण-सर्वस्व' होकर अबतक अपनी कीर्त्ति-पताका फहरा रहा है।

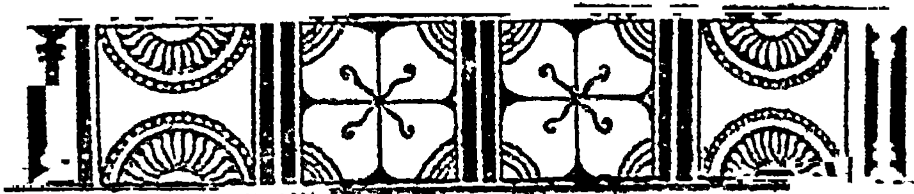
उन दिनों बॉकीपुर (पटना) से 'क्षत्रिय-पत्रिका,' 'विहार-बन्धु,' 'चैतन्य-चन्द्रिका' और 'प्रजाबन्धु,' बेतिया से 'चम्पारण-चन्द्रिका,' दरभंगा से 'मिथिला-मिहिर' *, मुजफ्फरपुर से 'तिरहुत-समाचार' *; छपरा से 'नारद' *, गया से 'लक्ष्मी' और 'गृहस्थ' *, रॉची से 'आर्यावर्त्त'; पूर्णिया से 'पूर्णिया-समाचार'; भागलपुर से 'पीयूष-प्रवाह', 'मोतीचूर' और 'कमला', बगहा (चम्पारण) से 'विद्या-धर्म-दीपिका', बाढ़ से 'तेली-समाचार'; आरा से 'ग्वाली-समाचार' मैंने निकलते हुए देखे और पढ़े थे।

* ऐसे निशानवाले पत्र आजतक निकल रहे हैं।

उन दिनों बिहार के लेखकों में रायसाहब पं. गोविन्दप्रसाद, पं. चन्द्रशेखरधर मिश्र, पं० जीवानन्द शर्मा, बाबू जैनेन्द्रकिशोर, मान्यवर पं० सकलनारायण शर्मा तीर्थत्रय, पं० अक्षयवट मिश्र, बाबू गोकुलानन्द वर्मा, श्रीयशोदानन्द अखौरी, पं० महावीरप्रसाद मिश्र, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा आदि से मेरा परिचय था। उसके बाद की पीढ़ी में बहुत-सी हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं का जन्म बिहार में हुआ। अच्छे-अच्छे लेखक भी हुए। पं० लक्ष्मीनाथ भट्ट के बाद पं० हरदेव भट्ट 'बिहार-बन्धु' के अधिकारी हुए। 'बिहार-बन्धु' के सम्पादन के लिये सन् १६०६ में मेरे झोपड़े में आकर वे मुझे भी बुला ले गये। मैंने भी दो वर्ष 'बिहार-बन्धु' की सेवा की थी। पंडित हरदेव भट्ट, पंडित पुरुषोत्तम भट्ट 'बिहार-बन्धु' के उद्योगी प्रवर्त्तक थे। उसके बाद भाई काशीप्रसाद जायसवाल ने पटना से 'पाटलीपुत्र' नामक बड़ा प्रभावशाली पत्र निकाला था। उसके सहायक सम्पादकों में पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा (आरा) और मेरे लघुभ्राता बाबू महावीरप्रसाद गहमरी भी थे।

बिहार में पहले भी अच्छे-अच्छे सुविज्ञ हिन्दी-सुलेखक हो गये हैं—बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री, बाबू शिवनन्दनसहाय, पं० रामावतार शर्मा, पं० विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि', श्रीदामोदरसहाय 'कविकिंकर', पं० चन्द्रशेखर शास्त्री, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि। इन दिनों भी श्रीयुत ब्रजनन्दनसहाय, श्रीरामलोचनशरणजी, बेनीपुरीजी, पं० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्रीदेवव्रत शास्त्री, पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', श्री 'दिनकर' जी, श्रीआरसीप्रसाद सिंह, बाबू शिवपूजनसहाय आदि सुलेखक हिन्दी की सेवा में दत्तचित्त हैं। लहेरियासराय का 'बालक' केवल बालक ही नहीं, बड़े पुरुषार्थियों और सयानों को भी सीखने की बहुत सामग्री देता हुआ, हर महीने, साहित्योद्यान में अच्छे-अच्छे मकरन्ददायी कुसुम खिला रहा है। पटना से 'आरती' और 'किशोर' नामक दो उत्तम मासिक पत्र, 'नवशक्ति' और 'योगी' नामक दो सुन्दर साप्ताहिक निकल रहे हैं तथा 'राष्ट्रवाणी' और 'आर्यावर्त्त' नामक श्रेष्ठ दैनिक भी। बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन बिहार में एक सजीव संस्था है। 'पुस्तक-भंडार' उत्तमोत्तम पुस्तकों के प्रकाशन-द्वारा हिन्दी की सराहनीय सेवा कर रहा है। सब तरह से इस समय बिहार साहित्य के क्षेत्र में प्रगति के पथ पर है।





अखिल भारतीय चरखा-संघ की बिहार-शाखा

पंडित रमावल्लभ चतुर्वेदी, मलयपुर, मुंगेर

कहते हैं, १२ वर्ष पर घूरे का भाग भी फिरता है। घूरे का, मालूम नहीं, फिरता है या नहीं; पर खादी का फिरा है। १२ न सही १५० वर्ष बाद सही। भारत का भाग्य फिरे, इसके लिये खादी का भाग्य फिरना जरूरी था भी। भारत की दुर्दशा का सूत्रपात तभी से शुरू है जब से खादी के सूत्र का पतन। देश के दुर्दिन मे जब अकलवाले, होशवाले और जोशवाले सभी अपनी गिरी हालत देखते, समझते और दुखी होते थे, पर कुछ कर नही पाते थे, तब ऐसे समय ऐसे नेता की जरूरत थी जो उसे उद्धार की राह पर चलावे। सौभाग्य से उसी समय गांधीजी राष्ट्र की रंगभूमि में क्रियाशीलता के साथ आये और १५० वर्ष पहले भारत का भाग्यसूत्र जहॉ से टूटा था उसे वहीं पकडा। यह कहते संकोच नहीं होता कि तब से भारत का भाग्य-चक्र जिस तेजी से घूम रहा है, अगर उसमें बाधा न पड़ी तो सफलता बहुत पास है।

सन् १९२१ मे गांधीजी ने असहयोग-आन्दोलन छेडा था। उसका एक अंग चरखा और खादी भी था। बढती हुई राष्ट्रीयता की लहर मे उसके नाम का प्रचार तो कम-से-कम देश के कोने-कोने मे हो ही गया और इधर-उधर चरखे की घन-घन धुन पडने लगी। उस समय खादी के काम को चलाने के लिये कोई सुसंगठित प्रबन्ध नहीं था। प्रायः कांग्रेस-कमिटियाँ और आश्रम ही इस विधान के प्रयोगालय थे।

खादी के काम को सुव्यवस्था के साथ चलाने के लिये कोकनद-कांग्रेस ने १९२३ मे एक खादी-बोर्ड बनाया। पर उससे भी काम मे सुविधा नहीं हुई, क्योंकि बोर्ड भी कांग्रेस का एक विभाग ही था और उसे हर छोटी-मोटी बात के लिये कांग्रेस की मंजूरी की जरूरत होती थी। इससे काम मे रुकावट होती थी। इसलिये

सन् १९२५ में २५ सितम्बर को अखिलभारतीय कांग्रेस-कमिटी ने अपनी बैठक (पटना) में 'अखिलभारतीय चरखा-संघ' का विधान स्वीकार किया। इस महत्त्वपूर्ण संस्था को जन्म देने का गौरव बिहार की भूमि को ही है। तब से अखिलभारतीय चरखा-संघ 'कांग्रेस की आदेश-प्राप्त (Chartered) संस्था' के रूप में खादी के सुधार, विकास और प्रचार का काम करता आ रहा है।

चरखा-संघ कांग्रेस का एक अंग होते हुए भी अपनी सीमा में स्वतन्त्र है। संघ को कांग्रेस से पूरा स्थानीय स्वशासनाधिकार (Autonomy) प्राप्त है। संघ को अपने काम में काफी सफलता मिली है; पर करने को तो अभी बहुत काम बाकी हैं।

अगर चरखा-संघ को कांग्रेस से अलग मान लें तो महामहिम कांग्रेस के बाद भारत की सबसे बड़ी संस्था यही हो सकती है। अपने सदस्यों, कार्यकर्त्ताओं, कातने-बुनने और तरह-तरह के दूसरे काम करनेवाले कलाविदों की संख्या-बहुलता के कारण भारत की जनता से सबसे अधिक संपर्क इसी संस्था का है। अगर खादी का व्यवहार करनेवालों की संख्या भी इसमें जोड़ दी जाय, तो यह दावा और बढ़ जायगा। भारत के सात लाख गाँवों में से, १९३८ ई० में, १३२६३ गाँवों में चरखा-संघ का काम हुआ था; और २८१८८० कत्तिनों, १८६३२ बुनकरों और ५०९६ दूसरे कलाविदों से संघ का संपर्क हुआ, जिन्हें कुल ३२९१०८१) रुपये मजूरी के दिये गये।

चरखा-संघ की, दातव्य-संस्था-कानून के अनुसार, रजिस्ट्री हो चुकी है। इसका प्रबन्ध आजीवन और निर्वाचित सदस्यों का ट्रस्टी-मंडल करता है जिसके प्रधान स्वयं गांधीजी हैं। प्रत्येक प्रान्त के प्रबन्ध के लिये एजेंट जिम्मेदार हैं। एजेंटों के नीचे प्रान्त की शाखा के मंत्री हैं। बिहार-प्रान्त में भी अखिलभारतीय चरखा-संघ की शाखा है। यहाँ के एजेंट स्वनामधन्य राजेन्द्र बाबू हैं और मंत्री श्रीलक्ष्मीनारायणजी, जिनकी प्रशंसा और जिनका परिचय बिहार का खादी-कार्य ही है।

असहयोग-आन्दोलन से पहले दूसरे प्रांतों के किसी-न-किसी भाग में चरखा कुछ-न-कुछ चल ही रहा था, पर बिहार में प्रायः बिलकुल बन्द ही हो गया था। दरभंगा जिले में, और खासकर उसके मधुबनी सबडिवीजन में, मैथिल ब्राह्मणों के घर की स्त्रियों में, जनेऊ के लिये, तकली पर बहुत महीन सूत कातने की प्रथा अभी रुकी नहीं थी, और कोकटी-कपास की भी कताई चल ही रही थी। इसलिये खादी के प्रारंभिक कार्यकर्त्ताओं ने इस क्षेत्र को ही पहले चुना। अब बिहार के

खादी-कार्य का पचास प्रतिशत दरभंगा जिले और मधुबनी सबडिवीजन में ही हो रहा है। इसी लिये प्रधान कार्यालय, जो पहले मुजफ्फरपुर में था, काम की सुविधा के लिये, मधुबनी में लाया गया है। आज-कल प्रधान कार्यालय में कार्यालय के सिवा केन्द्र-भंडार, रँगाई-विभाग, छपाई-विभाग, कागज-विभाग, करघा-विभाग और बढ़ई-विभाग है। उत्पत्ति का स्थानीय केन्द्र भी यही है।

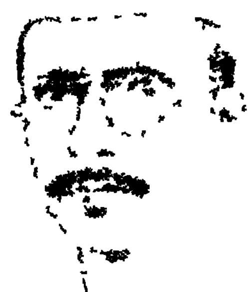
केन्द्र-भंडार—मधुबनी के आसपास के सभी केन्द्रों की तैयार खादी केन्द्र-भंडार में आती है और वहाँ दाम लगाकर भिन्न-भिन्न बिक्री-भंडारों को भेजी जाती है। पहले रेशमी खादी भी यहीं से सब जगह भेजी जाती थी, पर खर्च घटाने के विचार से अब रेशमी खादी का केन्द्र भागलपुर—जहाँ रेशमी माल काफी तैयार होता है—कर दिया गया है। बिहार की बनी और बाहर की भी तरह-तरह की खादी का बारह-मासी प्रदर्शनी है 'केन्द्र-भंडार'।

छपाईविभाग—इसमें खादी की रंग-बिरंगी छींटों और दूसरी तरह के कपड़ों की छपाई होती है। (हाथ से) फुहारे की छपाई (Spray printing) भी यहाँ होती है। बिजली-डिजाइन के कपड़े के लिये यहाँ हाथ से ही सूत की छपाई होती है।

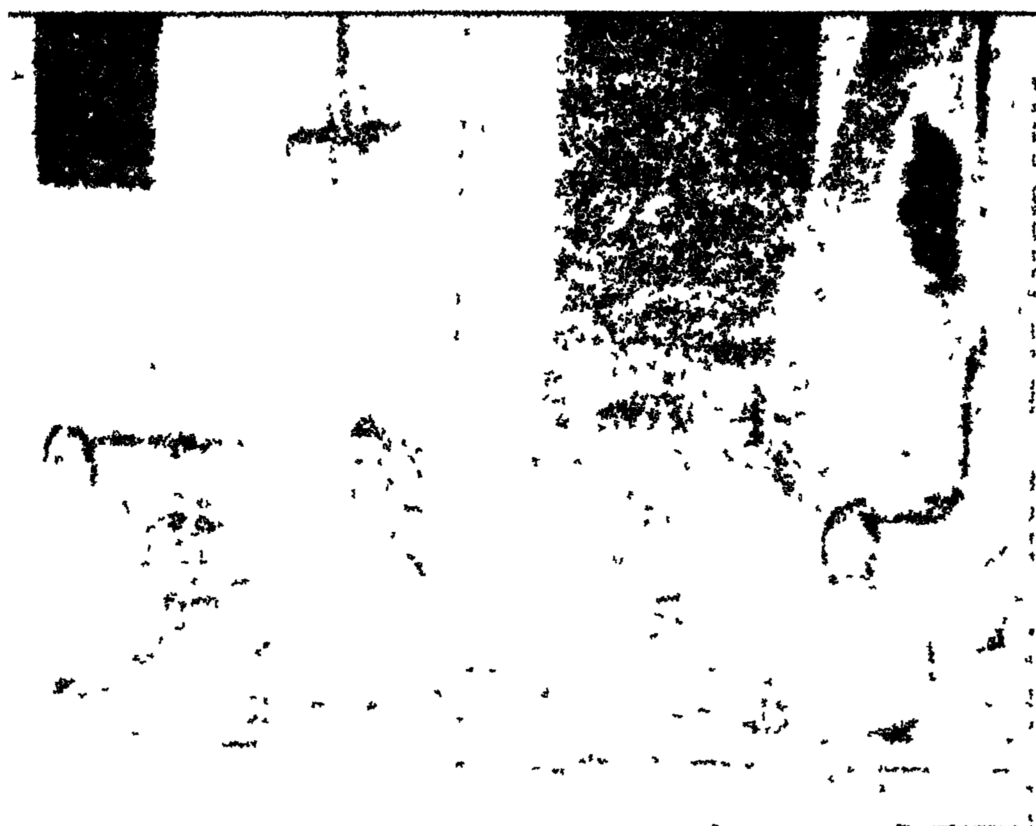
कागज-विभाग—इसमें हाथ से कागज बनाने का प्रयोग होता है। धान के बेकार पुआल से सुन्दर कागज बनाने का प्रयोग यहाँ सफलता-पूर्वक हुआ है। चरखा-संघ में काम आनेवाले सभी कागज यहीं बनते हैं, मासिक 'खादी-सेवक' का कागज भी। छानने का कागज (Filter paper) अच्छा तैयार हुआ है। पटना के साइन्स कालेज की लेबोरेटरी के लिये सरकार ने उसे खरीदा है। इसकी कीमत लड़ाई के पहले की दर से आधी है।

रँगाई-विभाग—इसमें खादी को तरह-तरह के रंगों में रँगने की क्रिया होती है। पहले तो हर नाद के नीचे रंग गरम करने के लिये चूल्हा रहता था; पर अब एक 'बॉयलर' (Boiler) से भाफ लेकर सभी नादों का रंग गरम किया जाता है। इससे काम की सुविधा बढ़ गई है। पुलिस की वर्दी के लिये बिहार-सरकार ने जितनी खादी ली, सबकी रँगाई यहीं हुई है। कई तरह के देशी रंग इस विभाग में बनाये गये हैं।

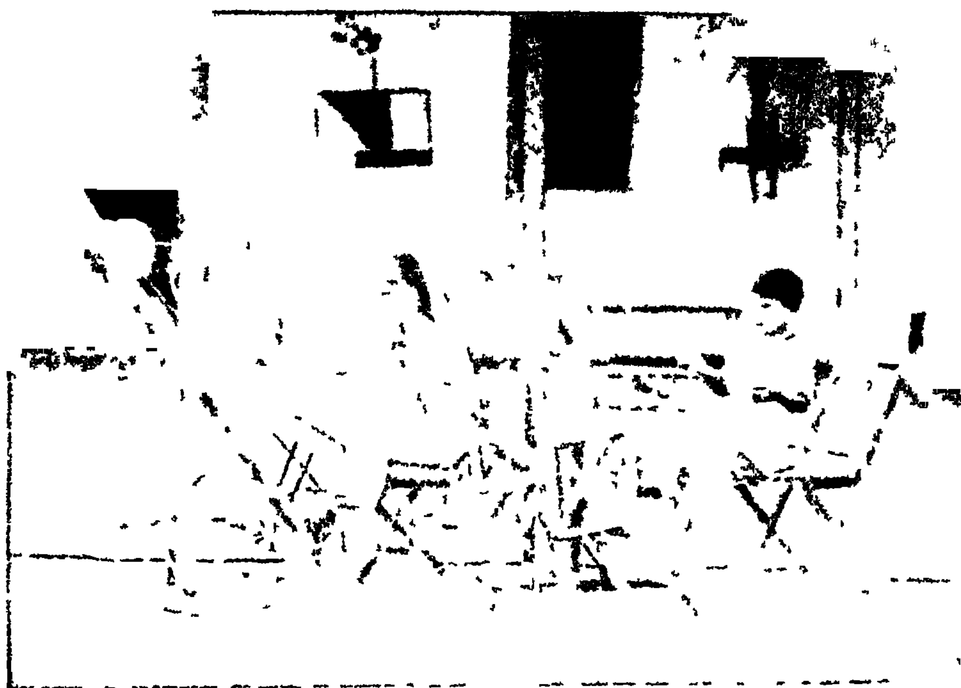
बढ़ई-विभाग—इसमें खादी के काम के सभी औजार बनाये जाते हैं। औजारों को और अच्छा बनाने के प्रयोग भी इस विभाग में होते हैं और सफलता के साथ उनका उपयोग किया जाता है। सूत गिनने और मजबूती नापने के कई



बिहार-चर्खा-संघ के प्रधान मंत्री
श्रीलक्ष्मीनारायणजी



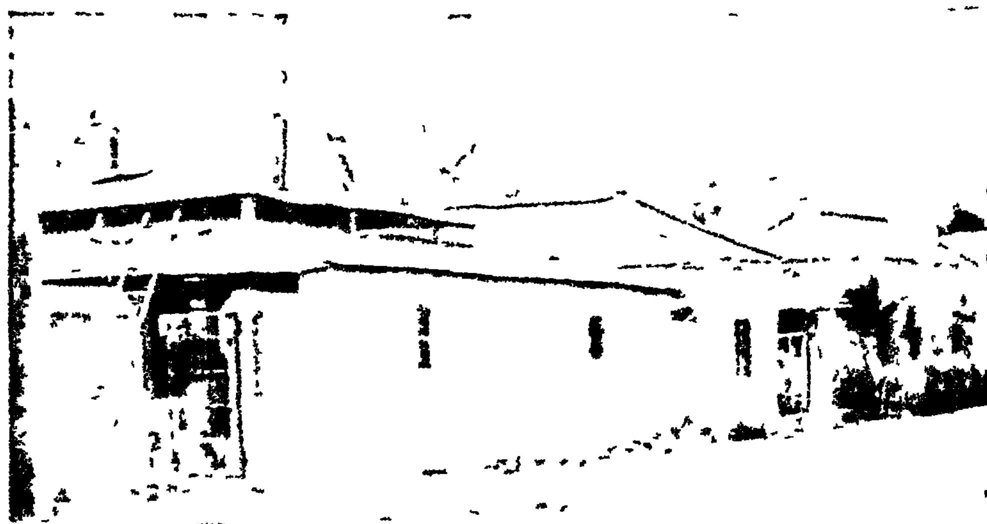
महिला[illegible] नवीन ढंग के चर्खे चला रही हैं



सिमरी-शिक्षण-केन्द्र में 'मगन-चर्खा' का प्रयोग



सिमरी-शिक्षण केन्द्र में दो आधुनिक चर्खे



सुन्दर यन्त्र यहाँ बनाये गये हैं। नकशादार (Gaccurd) कपड़े बनाने का यन्त्र यहीं के कार्यकर्त्ता श्रीगोपी महतो जी ने बनवाया है। सूत बटने का यन्त्र भी यहीं बनाया गया है।

बुनाई-विभाग—इसमें ऊनी, सूती, रेशमी और नकशादार कपड़े बनाने के कितने ही प्रयोग होते हैं और सफल प्रयोग गाँव के कारीगरों को सिखाये जाते हैं। खादी की सुन्दर जीन यहाँ तैयार की गई है।

जब से खादी-आन्दोलन शुरू हुआ है, राष्ट्रीयता की लहर की न्यूनाधिकता का असर उसपर भी पड़ता आया है। पर सब कुछ होते हुए भी खादी की गति आगे की ओर बढ़ रही है और प्रायः हर साल, पिछले साल से, बिक्री या उत्पत्ति—किसी-न-किसी दिशा में, अधिक काम होता आया है।

सन् १६३८ ई० में बिहार के १५२७ गाँवों में चरखा-संघ का काम हुआ। उन गाँवों में ५६८८६ कत्तिनों ने चरखा-संघ से ३४६७८६) रुपये पाये। इसी साल १८६४ बुनकरों तथा ओटने-धुनने-रँगनेवाले १२०७ कारीगरों ने क्रम से ६४०५४) और २३३०८) रुपये पाये। सन् १६३६ में १६३८ से कम सूत काता गया; क्योंकि बढ़ती हुई उत्पत्ति के अनुसार जनता की माँग खादी के लिये नहीं थी, इसलिये कत्तिनों को सन् १६३८ से कम मजूरी दी गई; पर बुनकरों तथा दूसरे कारीगरों को सन् १६३८ से अधिक मजूरी बाँटी गई। सन् १६३६ में बुनकरों को १३७६३७) और दूसरे कारीगरों को ४१८५१) रुपये बाँटे गये। ये आँकड़े देश-प्रेमियों और दानशील व्यक्तियों का ध्यान खादी की ओर खींचने की कोशिश करते हैं।

सन् १६३६ में बिहार-चरखा-संघ के ४६३ कार्यकर्त्ता थे, जिन्हें सहायता-रूप में ६०६३०) रुपये दिये गये। तब से अबतक खादी का विस्तार बहुत बढ़ गया है और कार्यकर्त्ता भी बढ़े हैं।

खादी हमारे गाँवों की आर्थिक भलाई ही नहीं करती, बल्कि उनकी हर-एक समस्या सुलझाती है। गाँववालों को यह आत्मनिर्भर, निर्भीक और परिश्रमी बनाती है। उनमें मिलकर काम करने की भावना जगाती है। खादी हिन्दू, मुस्लिम, ब्राह्मण, अछूत, सबको एक नजर से देखती है और जहाँ-जहाँ खादी-कार्य हुआ है, ऐसी भावना का उदय काफी हुआ है।

चरखा-संघ का उद्देश्य है गरीबों को अन्न-वस्त्र देकर उनका संस्कार शुद्ध करना। देश में अनेक दातव्य संस्थाएँ हैं; पर उनका उद्देश्य गरीबों को केवल कुछ भोजन-वस्त्र देना ही है। इससे गरीबों की कुछ जरूरतें तो जरूर पूरी हो जाती हैं, पर

उनकी भावना ऊँची नहीं होती। गरीबों में भिखारीपन बढ़ जाता है। चरखा-संघ भी गरीबों को दान ही देता है, पर दान के रूप में नहीं—गरीबों से कुछ काम लेकर उनकी मिहनत की मजूरी के रूप में उन्हें देता है। इससे उपकृत गरीब अपनेको किसी का उपकृत या भिखारी नहीं समझता और उसे अपनी मिहनत का भरोसा होने लगता है। इस तरह से वह अपनी मिहनत की कमाई खाने की आदत भी सीख लेता है।

चरखा-संघ में ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि जो गरीब कताई के पहले बुरी हालत में थे, अब अपने दूसरे गरीब भाई-बहनों की सहायता करते हैं। ऐसे उदाहरणों में बेलाही (दरभंगा) की श्रीमती देवकी देवी भी हैं। देवीजी ५५ वर्ष की विधवा ब्राह्मणी हैं। उनके शब्दों में ही, उन्हें, १५ वर्ष पहले, बहुत कष्ट था, पर 'कांग्रेस' * ने उनकी लाज बचा ली। देवीजी ने अपनी कताई की कमाई कुछ-कुछ बचाकर, उससे अपने गाँव के चमारों के लिये कुँआ खुदवा उनका भयंकर जलकष्ट दूर किया है।

देवकी देवी के उदाहरण से दानशील व्यक्तियों की आँख खुलनी चाहिये और उन्हें खादी खरीदकर गरीबों को अन्न देकर जिलाना ही नहीं, उनकी मनुष्यता भी बचानी चाहिये। और, इस तरह, खादी लेकर, दुहरा—किन्तु गुप्तदान का—पुण्य कमाना चाहिये।

खादी लोगों में सामूहिकता का कैसे उदय करती है, इसका एक उदाहरण देखने की चीज है। दरभंगा जिले में 'सौराठ' एक गाँव है। यहाँ मैथिल ब्राह्मणों का एक प्रसिद्ध सामाजिक मेला (सभा) होता है। इस गाँव में मैथिल ब्राह्मण ही अधिक हैं। पहले यहाँ के युवक ताश, शतरंज और नशे में अपना समय गँवाया करते थे। आज से कुछ वर्ष पहले उन्होंने चरखा अपनाया। अब सब लोग इकट्ठे होकर नित्य चरखा चला कुछ पैसे कमा लेते हैं। यही नहीं, उनकी अपनी एक गोष्ठी (Club) है, जहाँ वे कताई के तरह-तरह के प्रयोग करते हैं। इसके सिवा गाँव की भलाई की बहुत-सी आलोचना करते हैं और गाँव की सफाई भी किया करते हैं।

१९३८ में अखिलभारतीय चरखा-संघ ने अच्छी कताई की मजूरी प्रति-दिन (८ घंटे) तीन आने की दर से देने का निश्चय किया, जिससे कत्तिनों को निर्वाह के लायक मजूरी मिल जाय। यह निश्चय १९३९ में काम में लाया गया।

* देहाती 'संघ' को ही कांग्रेस कहते हैं।

इस निश्चय से खादी का दाम बढ़ना जरूरी था और वह बढ़ा भी। तब बहुतों को आशंका थी कि इससे खादी-प्रचार में रुकावट होगी। पर इससे खादी की बिक्री घटी नहीं, बढ़ी ही है। १६३८ से ३६ में सारे हिन्दुस्तान में १८·३ प्रति सैकड़ा खादी अधिक बिकी। यही नहीं, मजूरी बढ़ाने के बाद और कुछ पहले के 'बिहार के बिक्री के आँकड़े' से यह पता चलेगा कि मजूरी बढ़ाने का प्रभाव खादी-प्रचार पर कैसा पड़ा—

मजूरी बढ़ने के पहले की बिक्री—	मजूरी बढ़ने के बाद की बिक्री
सन् १६३२—२१६२३५॥=)।	१६३६—३२२४८७॥–)
" १६३३—२४३४६१–)	१६३७—५१६६८७॥≡)॥
" १६३४—२७१८७३।≡)॥।	१६३८—७०३६३८॥।)
" १६३५—३३०४६०।–)॥।	१६३६—६५३७३५)
	१६४०—११४३३८१)

इससे यह तो मालूम होता ही है कि खादी के मँहगी होने का बहाना वही करते हैं जिन्हें खादी पहनना ही नहीं है। कताई की मजूरी बढ़ाने से लाभ कई हुए हैं। एक तो यही कि सूत का सुधार करते समय उसमें मजबूती और समानता लाने की ओर कत्तिनों का ध्यान और दिलचस्पी बढ़ी है और सूत में बहुत सुधार हुआ है। दूसरे, खादी के कारीगरों में—जो पहले स्वयं खादी नहीं पहनते थे—खादी पहनने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है, और दिन-दिन यह प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। १६३८ में खादी के कारीगरों ने जहाँ १०७४११) की खादी अपने लिये ली थी, वहाँ १६३६ मे १७२७२५) की खादी ली।

हिन्दुस्तान में उचित मजूरी देकर हाथ से कते-बुने सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े को—गांधीजी के अनुसार—'खादी' कहते हैं। ऐसी तीनों तरह की खादी बिहार में बनती हैं। सूती खादी तो बारीक-से-बारीक—ऐसी कि जिसका मुकाबला दुनिया-भर का बारीक-से-बारीक कपड़ा नहीं कर सकता—बिहार में बनती है। तीन सौ नम्बर का बहुत ही बारीक सूत बिहार की कत्तिनें कातती हैं। रामगढ-कांग्रेस-प्रदर्शनी में बिहार की श्रीमती देवसुन्दरीदेवी के काते हुए ३०० नंबर के सूत की खादी दिखाई गई थी। पर अब तो सात बहनें ३०० नंबर का सूत कात रही हैं, जिनमें श्रीमती सुमित्रा देवी और कमली देवी प्रमुख हैं। श्रीमती फूलमणिदेवी हाथ से ऐसी सुन्दर धुनाई करती हैं कि धुनी हुई रुई अगर अखबार पर रक्खी जाय तो आप रुई के नीचे के अक्षर मजे में पढ़ सकते हैं।

रेशमी—रेशमी खादी भी भागलपुर-केन्द्र मे तैयार हो रही है। भागलपुर

का प्रसिद्ध तसर तो बाजारू व्यापारी लोगों ने एकदम नष्ट कर दिया था। अब भी बाजारू भागलपुरी कपड़ा परदेशी तागे से बनता है। चरखा-संघ ने भागलपुरी उद्योग को फिर से जिलाने की सफल कोशिश की है।

ऊनी—चंपारन जिले के मधुबनी स्थान में चरखा-कलाशाला मे श्रीमथुरादास पुरुषोत्तम की निगरानी में ऊनी माल की कताई का प्रयोग सफलतापूर्वक हो रहा है। यहाँ का कता ऊन प्रधानकार्यालय के बुनाई-विभाग मे बहुत सुन्दर बुना जाता है। मथुरादास भाई के यहाँ कम्बल भी सुन्दर और मुलायम बनते हैं, जिनकी कताई से लेकर मलीदागरी तक यहीं होती है।

गया जिले के 'जमोर'स्थान मे सघ का दरी-कालीन-विभाग है। यहाँ दरी और सूती तथा ऊनी सुन्दर-सुन्दर कालीनें बनती है। रामगढ़-कांग्रेस की सभी छोटी-बड़ी हर तरह की दरी-कालीनें यहीं बनी थीं।

मिमरी (दरभगा) और मधुबनी (चंपारन) में क्रम से सर्वश्री रामदेव ठाकुर और मथुरादास भाई की अधीनता मे शिक्षण-केन्द्र है, जहाँ कार्यकर्त्ताओं ओर कारीगरों को कताई, धुनाई और औजारों के सुधारने की शास्त्र-विहित शिक्षा दी जाती है। यहाँ के सीखे हुए कार्यकर्त्ता केन्द्रों में कत्तिनों को काम सिखाते हैं और उनके काम का सुधार भी करते हैं। इससे खादी मे बहुत सुधार हुआ है।

बहुत-से आलोचक चरखा-संघ को पूँजीवादी संस्था कहते हैं। हमारे स्वनामधन्य क्रांतिकारी श्रीमानवेन्द्रनाथ राय तो इसे 'ईस्ट-इंडिया कंपनी' कहते हैं! पर यह सब आलोचना करने के पहले सबको चरखा-संघ की नीति और कार्य अच्छी तरह जान लेना चाहिये। चरखा-संघ गरीब कारीगरों की भलाई करनेवाली संस्था है। इससे उसका साल-भर का मुनाफा उन्हीं का (कारीगरों का) होना ही चाहिये। और, सचमुच, यह मुनाफा उन्हीं को मिलता भी है।

चरखा-संघ का एक 'कत्तिन-सेवा-कोष' है। इस कोष मे संघ का साल-भर का मुनाफा जाता है और वह कत्तिनों की शिक्षा, स्वास्थ्य और संस्कृति के लिये ही खर्च किया जाता है, या किसी अनिवार्य आवश्यकता पर उस रुपये से उनकी और तरह की भी मदद की जाती है।

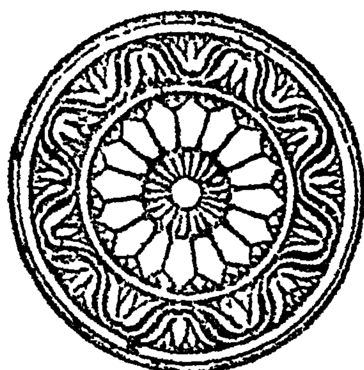
चरखा-संघ बिहार मे क्या कर रहा है, यह लिखकर बताने से अच्छा है कि आपको यह कार्य ही दिखाया जाय। इसलिये चरखा-संघ आपको अपने केंद्रों में आमन्त्रित करता है कि आप आकर उसके कार्यों की जाँच करें। मुझे पूरा भरोसा है कि अपनी आँखों देखने पर आप निश्चय ही संघ के कार्यों की उपयोगिता के कायल हो जायँगे।

चरखा-संघ के पास जो थोड़े रुपये हैं उनसे उसने जितना बड़ा काम किया है, वह सब उदार, देशभक्त और विवेकी लोगों के विचार करने तथा संघ की प्रशंसा करने की बात है। लेकिन कोरी प्रशंसा का मूल्य ही क्या, यदि आपने उस कार्य में सहायता नहीं दी। इसलिये पहली बात तो यह है कि आप अपने जरूरत के कपड़े ज्यादा-से-ज्यादा या सभी केवल चरखा-संघ की खादी के ही लें। इससे गरीबों का, अपनी मिहनत से, गुजर हो सकेगा। ध्यान रखिये, चरखा-संघ की खादी पहनकर आप अपने कपड़े की जरूरत ही नहीं पूरी करते हैं, बल्कि गरीबों के लिये कुछ दान भी देते हैं।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि चरखा-संघ की ही खादी क्यों, तो वह इसी लिये कि इस खादी के लिये दिया गया पैसा-पैसा गरीबों के हितार्थ ही होता है। दूसरे, यह बात निस्संकोच कही जा सकती है (कम-से-कम बिहार-प्रांत में तो जरूर ही) कि चरखा-संघ को छोड़कर दूसरी जगह की खादी चरखे के सूत की शुद्ध खादी नही है।

बहुत-से लोगों को यह भी शंका है कि चरखे से क्या देश के कपड़े की सभी जरूरतें पूरी हो सकती हैं? मैं कहूँगा, जरूर। चरखा-संघ को तो नित्य नई कत्तिनों को मना करना पड़ता है कि तुम्हारा सूत हम नही लेंगे। इसके सिवा पुरानी कत्तिनों को भी यदा-कदा कम कातने के लिये कहा जाता है; क्योकि खादी की खपत उत्पत्ति के अनुपात से बहुत कम है।

संघ को अपने कार्य-विस्तार में बहुत कठिनाई रुपयो के अभाव में होती है। अतः धनीमानी लोगों को अपने दान से संघ की पूँजी बढ़ानी चाहिये। और कुछ नही, तो कम-से-कम अधिक-से-अधिक मात्रा में खादी ही खरीदकर गरीबो का—दरिद्रनारायण का—आशीर्वाद तो सबको लेना ही चाहिये।





बिहार के मैथिली-साहित्यसेवी

श्रीकुलानन्द दास 'नन्दन', मातृमन्दिर पुस्तकालय, बेलाराही (दरभंगा)

The chief glory of every people arises from its authors.
—Dr. Johnson

पुण्यभूमि मिथिला सदा से संस्कृत-विद्या का ही विख्यात केन्द्र रहा है। प्राचीन काल मे तो विद्वान् चलित भाषा में बोलना तक एक प्रकार से पाप ही समझते थे। चलित भाषा निम्न श्रेणी के जनसमुदाय की भाषा समझी जाती थी। इसलिये मैथिल विद्वान् प्राय. चलित भाषा मे न लिखकर संस्कृत भाषा में ही ग्रंथ-रचना करते थे। हाँ, नाटको मे कभी-कभी स्त्री-पात्रियो और अधम पात्रों के कथोपकथन में लोकभाषा का प्रयोग करते थे। किन्तु बौद्धो ने चलित भाषा को ही अपनाया। यही कारण है कि प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं मे बौद्धों के अनेक ग्रंथ पाये जाते हैं। आठवीं और बारहवीं शतियो के बीच बौद्ध भिक्षुओं ने कुछ पद्यों की रचना की, जिनका सग्रह 'सिद्धगान' के नाम से प्रसिद्ध है। भाषा-तत्त्व-वेत्ताओं (Linguists) ने इन पद्यो की भाषा को मैथिली माना है।

तेरहवीं शती में कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णन-रत्नाकर' और चौदहवीं शती के कवि-कोकिल विद्यापति के 'कीर्त्तिलता' ग्रंथो की भाषा से इन बौद्ध भिक्षुओं के पद्यों की भाषा की तुलना करने पर साफ मालूम पड़ता है कि ये पद्य जिस भाषा मे रचे गये हैं वह मैथिली का ही प्राचीन स्वरूप है। नीचे के कुछ उद्धरणों से पाठक समझ सकेंगे कि मैथिली-साहित्य का आठवीं शती से ही श्रीगणेश होता है, और इस प्रकार यह अति प्राचीन भाषा है।

"जह मन-पवन न सञ्चरइ, रवि शशि नाह पवेश।
तहि बढ़ चित्त विशाम कर, सरहे कहिअ उवेश॥"

—सिद्ध सरहपाद (८ वीं शती)

"दशमि दुआरत चिह्न देखइआ, आइल गराहक अपणे बहिआ ।
चउशठि पड़िये देइ पसारा, पइठल गराहक नाहि निसारा ॥"

—सिद्ध विरूपा (९ वीं शती)

"एकें अपूर्व विश्वकर्मा जे निर्म्मउलि जाक मुख क शोभा देखि पद्म जल प्रवेश कएल, ऑंखि क शोभा देखि हरिण वन गेल, केश क शोभा देखि चमरी पलायन कएल, दाँत क शोभा देखि दालिवें हृदय विदीर्ण कएल, अधर क शोभा देखि प्रवाल द्वीपान्तर गेल, कान क शोभा देखि बौद्ध ध्यानस्थित भेल, कंठ क शोभा देखि कंबु समुद्रप्रवेश कएल, स्तन क शोभा देखि चक्रवाक उच्छन्न भेल, बाँहुँ क शोभा देखि पङ्कक मृणाल पंकनिमग्न भेल, जंघयुगल क शोभा देखि स्थलकमले निकुञ्जआश्रय कएल । एवम्विध रत्नालङ्कारयुक्त त्रिभुवनमोहिनी देखू ।"

—'वर्णन-रत्नाकर' (१३ वीं शती)

"बालचन्द विज्जावइ भासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा ।
ओ परमेश्वर हरसिर सोहइ, ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ ॥"

—'कीर्तिलता' (१४ वीं शती)

मैथिली-साहित्य-सेवियों के सम्बन्ध में यदि वर्षों परिश्रमपूर्वक खोज (Research) की जाय, तो कुछ लिखा जा सकेगा । हम तो यहाँ खोज के लिये एक तालिकामात्र तैयार कर देने का प्रयास कर रहे हैं ।

कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर—महाकवि विद्यापति ठाकुर के प्रपितामह-भ्राता थे । निवास-स्थान 'सौराठ' (दरभंगा) । समय तेरहवीं सदी । मैथिली भाषा मे 'वर्णन-रत्नाकर' अपूर्व ग्रंथरत्न । मैथिली भाषा का यही सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है । कहते हैं, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री अन्वेषण-कार्यवश नैपाल गये थे । वहीं उन्हें इस ग्रंथ का पता मिला । बहुत द्रव्य व्यय कर वे इसका एक चित्रपट (फोटो-कापी) अपने साथ हिन्दुस्तान ले आये, और 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' को दिया । इसके बाद महाराजा सर रमेश्वर सिंह बहादुर इसकी एक प्रतिलिपि तैयार करवाकर राज-लाइब्रेरी (दरभंगा) में ले आये । आपका लिखा 'धूर्त्त-समागम' नामक संस्कृत-काव्य-ग्रंथ नैपाल-राज-पुस्तकालय में मिला है । संस्कृत में भी आपकी अगाध विद्वत्ता थी ।

महामहोपाध्याय उमापति उपाध्याय—(देखिये पृष्ठ १०, पंक्ति ८) । कोई-कोई आपको 'मङ्गरौनी'-(दरभंगा)-वासी बतलाते हैं । आपका 'पारिजात-

हरण' नाटक मुख्यत संस्कृत और प्राकृत में लिखा गया है। इसके गीत मैथिली मे ही हैं। लोकभाषा-सम्बद्ध नाटक-रचना के आप प्रथम प्रवर्त्तक थे। एतद्देशीय आपके परवर्त्ती नाटककारो ने आप ही के निर्द्धारित किये हुए मार्ग का अवलम्बन किया है। आपके समय के सम्बन्ध में मतभेद है। किसी-किसी का मत है कि आप हरिसिंहदेव के द्वारपंडित थे और मैथिल-पञ्जी-प्रबन्ध आप ही की देखरेख में निर्मित हुआ था। हरिसिंहदेव के समय के सम्बन्ध मे एक प्रामाणिक श्लोक है—

वस्वग्निबाहुशशिसम्मितशाकवर्षे।
पौषस्य शुक्लदशमी क्षितिसूनुवारे॥
त्यक्त्वा सुपट्टनपुरीं हरिसिंह देवो।
दुर्दैव-दर्शितपथो गिरिमाविवेश॥

अर्थात्—"(मुसलमान सूबेदार द्वारा पराजित होकर) हरिसिंह देव १२४८ शाके (१३२६ ई०) पौष सुदी दशमी मंगल को अपनी राजधानी सुपट्टनपुर छोड़कर पर्वतवासी हुए।"

इससे उमापति का समय १३ वीं शती का एकदम आदिभाग मालूम होता है। डॉक्टर ग्रियर्सन और डॉक्टर उमेश मिश्र आपका समय १४ वीं शती बतलाते हैं। स्वर्गीय पंडित चेतनाथ झा आपको मिथिलेश राघवसिंह का समसामयिक, १७ वीं शती के आदि-भाग का, कहते हैं। किन्तु मिथिला की प्रसिद्धि आपको बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के 'भपटियाही' स्टेशन के समीप 'सप्तरी' परगना (नैपाल) में 'मकमानी' के राजा हरिहरदेव का आश्रित बतलाती है। आपने भी 'पारिजात-हरण' मे लिखा है—

सू०—'आदिष्टोस्मि यवनवनच्छेदन करालकरवालेन हिन्दूपति श्रीहरिहरदेवेन'........ इत्यादि।

आपके 'उषा-हरण' में भी एक पद्य है—

"सुकवि उमापति <u>हरि</u> होए परसन मान होएत समधाने।
सकल नृपनि पति <u>हिन्दूपति</u> जिउ पट-महिषी विरमाने॥"

यहाँ ऊपर के संस्कृत-वाक्य के 'हरिहर' का छोटा रूप 'हरि' और 'हिन्दूपति' दोनों ज्यों-के-त्यों मैथिली पद्य मे आये हैं। फिर मैथिली पद्य की जो भाषा है उसकी, उसी काल के कविशेखराचार्य के 'वर्णन-रत्नाकर' ग्रंथ की भाषा से तुलना करने पर साफ मालूम होता है कि यह उस समय की भाषा कथमपि नहीं

हो सकती। दूसरा प्रमाण यह मिलता है कि किसी निमंत्रण-पत्र के उत्तर में आपने लिखा था—

"एकठा नाव नदी मरखाहि, हम अति बूढ़ चढ़ब नहि ताहि।
गोकुलनाथ कहै छथि जेह, हमरो सम्मति जानब सेह॥"

महामहोपाध्याय गोकुलनाथ झा का समय १७ वीं शती के अन्त से १८ वीं शती के आरम्भ तक माना गया है। उस समय आप अपनेको बहुत वृद्ध बतलाते हैं। इसलिये, इससे भी साबित होता है कि आप १७ वीं शती के आदि-भाग में रहे हों। विद्वानों को इसपर प्रकाश डालना चाहिये।

कवि-कोकिल विद्यापति ठाकुर—(देखिये पृष्ठ ६ के अंत में)। आपका आदि-निवास-स्थान 'सौराठ' (दरभंगा) था। राजा शिवसिंह ने आपको 'बिसपी' ग्राम पुरस्कार में दिया और तब से आप वहीं रहने लगे। मैथिली भाषा का साहित्य-भांडार भरनेवालों में आपका विशिष्ट स्थान है। आपने ही इस भाषा को अमरत्व प्रदान किया। आप ही मैथिली के प्राण हैं। आपकी पदावली पर मिथिला और मैथिली को गर्व है। आपके बाद मैथिली, बॅगला और हिन्दी के कई कवि ऐसे हुए हैं जो आपकी कविताओं से पूर्ण प्रभावित हैं। 'बंगभाषार इतिहास' नामक ग्रंथ में रायसाहब श्री दिनेशचंद्र सेन लिखते हैं—"आमादेर अनेकगुलि प्रथमश्रेणीर कवि विद्यापतिर शिष्य। विद्यापतिर शिष्यत्व आमादेर नूतन कथा नहे।" कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी लिखा है— "His (Vidyapati's) poems and songs were one of the earliest delights that stirred my youthful imagination." स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने भी लिखा है—"प्रथम मुसलमान आक्रमणेर प्रबल स्रोते हिन्दूदिगेर धर्म-कर्म एक प्रकार लोप पाइया आसे। मैथिल पंडितेरा नाना ग्रन्थ रचना करिया आबार हिन्दू-समाज के पुनर्गठित करिबार चेष्टा करेन। विद्यापति एइ सकल मैथिल पंडितदिगेर मध्ये एक जन प्रधान। ये समये मुसलमानेरा कुरुक्षेत्र, वृन्दावन, प्रयाग, एमन कि काशीपर्य्यन्त लोप करिया तुलिया छिल, सेइ समय विद्यापति प्रादुर्भूत हइया नाना ग्रन्थ लिखिया अनेक तीर्थेर पुनःसंस्थापन ओ अनेक हिन्दूसत्कर्मेर पुनःप्रचलन करेन।"

—'कीर्त्तिलता' की भूमिका

आप संस्कृत के भी महान् विद्वान और कवि थे। संस्कृत में आपके कई ग्रंथ हैं। मैथिली में आपकी 'पदावली' अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक है। उसका सटीक

मस्करण तथा 'महाकवि विद्यापति' विशाल ग्रंथ 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुआ है। मुजफ्फरपुर जिले के 'वाजितपुर' गाँव में आपकी चिता पर एक विशाल 'शिवमन्दिर' अब भी विद्यमान है। आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में कहा जाता है—

'विद्यापतिक आयु अवसान, कातिक धवल त्रयोदसि जान।'

महामहोपाध्याय महेश ठाकुर—(देखिये पृष्ठ ११) आप खंडवला-कुलमूलक श्रोत्रिय-कुल-भूषण थे। आपके पिता का नाम चन्द्रपति ठाकुर था। अकबर से जो मिथिला-राज्य आपको मिला था उसकी बाईसवीं पीढ़ी में वर्त्तमान मिथिलेश हैं। आप भगवान् के और मैथिली के बड़े भक्त थे। मैथिली में आपके रचे अनेक पद्य हैं, किन्तु अद्यापि अप्रकाशित !

कवि देवानन्द शर्मा—आपके संस्कृत-मैथिली-मिश्रित 'उपाहरण' नाटक का पता कवि चन्दा झा के लेख से लगता है। समय १६ वीं शती।

महामहोपाध्याय गोविन्ददास झा—मैथिली भाषा के आप एक उद्भट और प्रतिभाशाली महाकवि हो गये हैं। 'गोविन्द-गीतावली' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित है।* वाइस-चान्सलर अमरनाथ झा द्वारा सम्पादित यही पुस्तक 'मैथिली-साहित्य' नामक पत्र (दरभंगा-राज प्रेस) में भी प्रकाशित हुई थी, जो अब पुस्तकाकार में सुलभ है। आप कात्यायन-गोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पं० कृष्णदास झा था। आपका निवास-स्थान लोहना (दरभंगा) था। कहा जाता है कि संस्कृत-विद्यापीठ आप ही की स्मृति में महाराज रमेश्वरसिंह ने लोहना में बनवाया है। आपके वंशज अब भी धर्मपुर, ममौल, भटमिसरी आदि ग्रामों में मौजूद हैं। आप विद्यापति को अपना काव्य-गुरु मानते थे। समय १७ वीं शती। (देखिये पृष्ठ १६ के अंत में)।

पंडित रामदास झा—आप गोविन्ददास झा के सौतेले भाई थे। उनको आप अपना काव्यगुरु मानते थे, जैसा आपने अपने 'आनन्द-विजय' नाटक की प्रस्तावना में लिखा है। यह नाटक राजप्रेस (दरभंगा) से तथा श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' द्वारा सुसम्पादित होकर वैशाली प्रेस (मुजफ्फरपुर) से प्रकाशित हो चुका है। (देखिये पृष्ठ २०, पंक्ति ३)।

लोचन कवि—(देखिये पृष्ठ १३ के आरम्भ में)। मिथिलेश महिनाथ

* स्वर्गीय चेतनाथ झा ने एक जगह चर्चा की है कि आपकी रचना "कृष्णलीला" भी है। किन्तु मुझे इसका पता नहीं है।

ठाकुर के अनुज कुमर नरपति ठाकुर की आज्ञा से आपने संगीत-विषयक एक उत्तम ग्रंथ 'रागतरङ्गिणी' लिखा। उसमें एक जगह आपने लिखा है—

"किञ्चित् समाहृत्य कुतश्चिदन्यत् स्वयं च सम्पाद्य पद्प्रबन्धान्'
वितन्यते लोचननामधेय-द्विजेन सा रागतरङ्गिणीयम् ॥"

पंडित रमापति उपाध्याय—(दे० पृ० १८ का मध्य)। आप पलिवार-मूलक वत्सगोत्रीय मैथिल ब्राह्मण थे। संस्कृत, प्राकृत और मैथिली पर आपका पूर्ण आधिपत्य था, जो आपके 'रुक्मिणीहरण' नाटक का मनन करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। आप मैथिली के सफल कवि थे। आपका नाटक अभी तक अप्रकाशित है !

लाल कवि—मङ्गरौनी-(दरभंगा)-निवासी थे। मैथिली के बड़े सफल कवि थे। मिथिलाधीश महाराज नरेन्द्रसिंह के दरबारी कवि थे। आपके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं—'गौरीस्वयंवर' तथा 'कन्दर्पीघाट की लड़ाई'। पहला अभी तक अप्रकाशित है। दूसरा डाक्टर ग्रियर्सन प्रकाशित करा चुके हैं। समय १७ वीं शती।

हरिनाथ उपाध्याय—आपने भी 'पारिजातहरण' नाटक लिखा है।

नन्दीपति—मिथिलेश माधव सिंह के समय में थे। आपकी लिखी 'कृष्णकेलिमाला' नाटिका उपलब्ध है, जिसमें दी हुई आपकी वंशावली से ज्ञात होता है कि आपके पूर्व की छठी पीढ़ी में 'शिवदत्त' नाम के एक कवि थे, जिन्होंने 'पारिजातहरण' नामक अपर नाटक लिखा था।

रत्नपाणि—(प्रसिद्ध नाम 'बबुरैया झा') मैथिली में 'धर्म-सुबोधिनी' आपने लिखी। (देखिये पृष्ठ १७, पंक्ति ३)।

कविरत्न भानुनाथ (भाना झा)—'पिलखवार'-(दरभंगा)-निवासी थे। पिता का नाम महामहोपाध्याय दीनबन्धु (नेनन) उपाध्याय था। महाराज महेश्वरसिंह के दरबारी कवि थे। 'प्रभावती-हरण' नाटक के रचयिता हैं। समय १६ वीं शती।

कवि जयानन्द दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। भागीरथपुर - निवासी। मैथिली के बड़े विशिष्ट कवि। 'रुक्माङ्गद' नाटक। १६ वीं शती।

कान्हाराम दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। लदहो-(दरभंगा)-निवासी। 'गौरी-परिणय' तथा 'सीता-स्वयंवर' दो नाटक उपलब्ध हैं, किन्तु अमुद्रित हैं ! १६ वीं शती।

महामहोपाध्याय हर्षनाथ झा—आपके पुत्र पं० ऋद्धिनाथ झा और जामाता डाक्टर सर गङ्गानाथ झा हैं। मैथिली में आपके चार नाटक हैं। (दे० पृ० १६, पंक्ति १३)।

भोलन (उपनाम 'मनवोध') कवि—'भराम'-(दरभंगा)-ग्राम-निवासी। 'कृष्ण-जन्म' पद्य-ग्रंथ है—डाक्टर उमेश मिश्र द्वारा सुसम्पादित, 'पुस्तक-भंडार' द्वारा प्रकाशित।

चन्द्रमणि झा (चन्दा झा)—(दे० पृ० २५, पं० ३)। आपके निम्नांकित मैथिली-ग्रंथ उपलब्ध हैं—(१) पुरुष-परीक्षा, (२) मिथिला-भाषा-रामायण, (३) महेशवानी-संग्रह, (४) चन्द्र-पद्यावली, (५) अहल्या-चरित्र नाटक, (६) गीत-सप्तशती, (७) गीत-सुधा। इनमे दूसरा ग्रन्थ परम रोचक तथा चित्ताकर्षक है। यह राज-प्रेस (दरभंगा) से प्रकाशित है। आप मिथिला के तुलसीदास थे। पहला ग्रंथ विद्यापति के उसी नाम के संस्कृत-ग्रंथ का मैथिली-अनुवाद है। विद्यापति के पदो के सबसे बड़े मर्मज्ञ मिथिला मे आप ही थे। डाक्टर ग्रियर्सन और नगेन्द्रनाथ गुप्त को आपने ही विद्यापति-पदावली समझाई थी, जिसके लिये उनलोगो ने कृतज्ञता प्रकट की है।

फतूर कवि—गोपालपुर परगने मे 'शाहपुर' ग्राम (दरभंगा) के निवासी आशुकवि थे। कविता बड़ी मनोहारिणी होती थी। १८७४ ई० के दुर्भिक्ष का वर्णन बड़े ललित पद्यो मे किया है। ये पद्य अमुद्रित हैं।

नन्दी दास—नवादा-(दरभंगा)-निवासी कर्ण कायस्थ। 'व्रजपरिक्रमा' ग्रंथ अप्रकाशित है।

नित्यानन्द दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। कन्हौली-(झंझारपुर, दरभगा)-निवासी। विशिष्ट गणितज्ञ। मुद्रित गणित-ग्रंथ 'अङ्कविलास'।

मनमोहन दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। राधारमण के विशेष भक्त। संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान्। महाकवि जयदेव-कृत 'गीत-गोविन्द' का पद्यमय मैथिली-अनुवाद 'तिलकमोहन-विलास'।

लक्ष्मीनाथ गोसाईं—'परसरमा'-(भागलपुर)-निवासी सिद्ध योगिराज थे। 'गीतावली' के रचयिता। यह मुद्रित है, किन्तु अप्राप्य है!

कवि गंगा दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। महाभारत के विराट् पर्व का अनुवाद मिथिला-भाषा मे। फुटकर पद्य भी बहुत मिलते हैं।

महंत साहबराम दास—सुप्रसिद्ध 'पचा ' मठ (दरभंगा) के प्रतिष्ठापक तथा मूलपुरुष। जन्म-स्थान कुसुमौल (दरभंगा) मैथिल ब्राह्मण। कहते हैं कि आप किसी कारण पटना के नवाब के कारागार में बन्द थे। वहाँ से नित्य अलक्षित रूप से स्नान-पूजा के लिये गंगा जाया करते थे। किसी तरह नवाब को इसकी खबर लगी। स्नान के समय उन्होंने वहाँ पहुँचकर कोठरी में दो ताले लगा दिये, और वहीं बैठ गये। यह देखकर आप ईश्वर-भजन के पद गाने लगे। गान समाप्त होते-होते आप-से-आप कोठरी का दरवाजा खुल गया और आप नित्य की भाँति गंगा की ओर चल पड़े। यह अपूर्व चमत्कार देखकर नवाब ने आपको बहुत सम्मान के साथ घर पहुँचवा दिया। आपके भजनो का संग्रह 'गीतावली' के नाम से प्रकाशित है।

लालदास—मैथिल कर्ण कायस्थ। 'खड़ौआ'-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली भाषा के अगाध विद्वान्। संस्कृत और फारसी के भी अच्छे ज्ञाता। रचित ग्रंथ उपलब्ध—(१) प्रतिव्रताचार, (२) स्त्री-शिक्षा, (३) शम्भु-विनोद, (४) चंडी-चरित, (५) जानकी-रामायण, (६) गणेश-खंड, (७) रमेश्वर-चरित रामायण, (८) लक्ष्मीश्वर-चरित रामायण, (९) रमेश्वर-चरित, (१०) लक्ष्मीश्वर-चरित, (११) गंगाचरित, (१२) विरुदावली, (१३) दुर्गा-सप्तशती, (१४) हरितालिका-व्रतकथा, (१५) वैधव्यभञ्जिनी, (१६) सत्यनारायण-व्रत-कथा, (१७) कुलदेवता-स्थापन-विधि, (१८) अनुष्ठानीय सुन्दर-कांड रामायण, (१९) सावित्री-सत्यवान नाटक, (२०) तंत्रोक्त मिथिला-माहात्म्य। 'अनुष्ठानीय सुन्दर-कांड रामायण' की प्रस्तावना में आपके पुत्र श्री वनखंडी दासजी ने लिखा है कि इनकी बनाई हुई सातो कांड रामायण अप्रकाशित है; द्रव्याभाव से केवल अनुष्ठानीय सुन्दर-कांड ही—जिसकी बहुत माँग थी—छप सका।

महामहोपाध्याय मुरलीधर झा—जन्म १८६९ ई०। पिता का नाम पं० चानन झा। 'भराम' (दरभंगा) के निवासी थे, किन्तु सदैव अपने ननिहाल—बछौड़ परगने के श्यामसीधप ग्राम—में रहे। आपका व्युत्पत्ति-कौशल विलक्षण तथा वक्तृता देने की शक्ति अद्भुत थी। मैथिल ज्योतिषियों में सर्वप्रथम 'महामहोपाध्याय'-उपाधिधारी आप ही हुए। मैथिली के अनन्य भक्त थे। रचित ग्रंथ (१) 'अर्जुन-तपस्या' उपन्यास, (२) हितोपदेश, (३) मैथिली व्याकरण। ६० वर्ष की अवस्था में मृत्यु—६ दिसम्बर, १९२९ ई०। (दे० पृ० २३)।

जीवन झा—समस्तीपुर (दरभंगा) के समीप 'हरिपुर-बड़ेता'-ग्राम-वासी पंडित घोघाई झा के सुपुत्र थे। काशी-नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह के आश्रित थे। मैथिली भाषा में पाँच नाटक उपलब्ध हैं—(१) पुनर्जन्म, (२) सामवती पुनर्जन्म, (३) नर्मदासागर सट्टक, (४) मैथिली सट्टक, (५) सुन्दर संयोग। अन्तिम नाटक की भूमिका का अन्तिम वाक्य है—"इति प्रथम ज्येष्ठ कृष्ण ५, भौम, सं० १९६१।"

वैयाकरणकेसरी महामहोपाध्याय परमेश्वर झा—(दे० पृ० २२, पं० १२)। दरभंगा-राज-संस्कृत-पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। मैथिली ग्रंथ—मिथिला-तत्त्व-विमर्श, सीमन्तिनी-आख्यायिका, सदाचार-पद्धति (कायस्थ-सदाचार), महिषासुरवध नाटक।

बाबू तुलापतिसिंह साहब—दरभंगा-राज-वंश के खड़ौरे बबुआन थे। रचित मैथिलीग्रंथ—(१) गुलिस्ताँ (अनुवाद), (२) दुर्गा-सप्तशती, (३) मदनराज-चरित।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी—पंडित नन्दलाल झा बख्शी के सुपुत्र थे। पहले स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवती साहबा के द्वार-पंडित थे। फिर मुजफ्फरपुर के धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज की प्रोफेसरी से अवकाश ग्रहण कर पटियाला-नरेश के द्वार-पंडित थे। अन्त में काशीवास। मैथिली-ग्रंथ—(१) गीतागीत-विलास, (२) मिथिला-भाषामय इतिहास, (३) व्याकरण, (४) अमरकोष (टीका)।—(दे० पृ० २२, पं० ७)।

रासबिहारीलाल दास—भच्छी-(दरभंगा)-निवासी मैथिल कर्णकायस्थ दुलारसिंह दास के सुपुत्र थे। 'सुमति' उपन्यास बड़ा ही रोचक है। 'मिथिला-दर्पण' पुस्तक हिन्दी में लिखी है, जो मिथिला के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालती है।

त्रिलोचन झा—बेनिया-(चम्पारन)-निवासी। काशी के मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज के प्रोफेसर थे। मैथिली ग्रंथ—(१) श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद, (२) शकुन्तलोपाख्यान, (३) महाभारत (अनुवाद)।

बाबू गुणवन्तलाल दास—कर्ण कायस्थ। भच्छी-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली ग्रंथ—नलोपाख्यान, कृष्णावतार क मूल-कारण-कथा, मैथिली दुर्गासप्तशती,

सुदर्शनोपाख्यान, गोरी-परिणय, गङ्गालहरी, गजग्राह-उद्धार, सत्यनारायणव्रत-कथा, कृषि-प्रबोध, सुकन्योपाख्यान, कुमारि-भोजन-विषय, कामिनी-विलास इत्यादि।

कुछ और मैथिली-साहित्यसेवी और उनके ग्रंथ—

शिवानन्द चौधरी—भारत क इतिहास, कपालकुंडला। अनूप मिश्र—हितोपदेश (मित्रलाभ-पर्यन्त), नारद-विवाह। गंगाधर मिश्र—सत्यव्रतोपाख्यान, सुकन्योपाख्यान। काशीनाथ झा—सर्पयज्ञकाव्य, वृद्ध-विवाह (प्रथम ओ दोसर खंड), राजपूत-जीवन-संध्या, युगलाङ्गुरीय, मायाशंकर। गोकुलानन्द—मान-चरित नाटक। बचे झा—सखुआ-(भागलपुर)-निवासी; दुर्गा-सप्तशती (आल्हा-छन्द में)। हल्ली झा—दुर्गा-सप्तशती (पद्यानुवाद), मैथिली व्याकरण। जनार्दन झा—ठाढ़ी-(दरभंगा)-निवासी; जानकी-परिणय। जगदीश झा—रामचरितामृत। महेन्द्रनारायण झा—शिशु-रामायण, बँगला के 'राधारानी' उपन्यास का अनुवाद। चेतनाथ झा—महरैल-(दरभंगा)-निवासी; जगन्नाथपुरी-यात्रा, गोनू-विनोद (२ भागों में), डाक-वचनामृत (४ भाग); राम-जन्मचरित। यदुनाथ मिश्र—चन्द्रकला-कुसुमायुध नाटक। हरिनारायण झा—'सुदर्शनोपाख्यान' उपन्यास। जनार्दन झा—'प्रेमलता' उपन्यास। पुलकित मिश्र—नवटोली-(दरभंगा)-निवासी; 'मोहिनी-मोहन' उपन्यास। चन्द्रशेखर झा—हरिनगर-(दरभंगा)-निवासी; मिथिला-सुमति-समागम। विद्यासिन्धु वैद्यनाथ मिश्र—दरभंगा-राज-ज्योतिषी रघुनाथ मिश्र के सुपुत्र; बसैठ-(दरभंगा)-निवासी; मिथिला-भाषा-व्याकरण, मैथिली-हिन्दी-कोष (अपूर्ण)। मुकुन्द झा—फुलसरा-(पूर्णिया)-निवासी; कुमारी-तपोव्रत अथवा गिरिजोद्वाह। शशिनाथ झा—कलिधर्म-प्रकाशिका (नाटिका)। मनमोहन मिश्र—अहल्योपाख्यान। शिवानन्द चौधरी—रूपसपुर-(पूर्णिया)-निवासी; भारत क इतिहास। जगदीश झा—बरुआरी-(भागलपुर)-निवासी; रामायण (सातो कांड)। शशिपाल झा—मानेचौक (मुजफ्फरपुर), 'दुर्गासप्तशती' (आल्हा-छन्द में), इसकी भाषा मैथिली के बदले हिन्दी है, मिथिला-गणित पाटी। जनार्दन झा—पचगछिया (भागलपुर) ; 'सुमुखी' उपन्यास। पुण्यानन्द झा—मिथिला-दर्पण। हलधर झा—मैथिली-व्याकरण। गणेशदत्त पाठक—मैथिली-व्याकरण। हरिकान्त झा—कोइलख (दरभंगा); मिथिला-शब्द-कोष (अपूर्ण)। सदाशिव झा—पञ्चभाषा-प्रकाश (अपूर्ण कोष); इसमें मैथिली शब्दों के अँगरेजी, संस्कृत, हिन्दी तथा बँगला के पर्यायवाची शब्द हैं। जनार्दन

मिश्र—सवौर (भागलपुर); भारत क इतिहास। जगमोहन झा—डंगाहरिपुर (दरभंगा); मैथिल चारुचर्चा। जीवछ मिश्र—'विचित्र रहस्य' और 'रामेश्वर' उपन्यास। निर्भयलाल चौधरी—मैथिल कर्ण कायस्थ, तारालाही-(दरभंगा)-निवासी, भजनामृत-तरंगिणी। परमेश्वरी दत्त—इजोत-(दरभंगा)-निवासी कवि, मैथिल कर्ण कायस्थ; गौरी-विलाप (पद्य-ग्रंथ)। मुकुन्दलाल दास—मैथिल कर्ण कायस्थ; डखराम-(दरभंगा)-निवासी कवि; दरभंगा-राज-वंशावली (छन्दोबद्ध), दरभंगा-राजप्रेस से प्रकाशित। धरणी दास—मैथिल कर्ण कायस्थ; रेवासी-पकड़ी (मुजफ्फरपुर) निवासी योगी; काया-परिचय (आध्यात्मिक ग्रंथ)। आदिनाथ झा—महरैल-(दरभंगा)-निवासी; भगवती-भक्त कवि; गीतों का संग्रह 'आदिनाथ-भजनावली' (मुद्रित) मुकुन्द झा—चनौर (दरभंगा), अमरकोष, गीता-गीत-विलास। गणेशदत्त ठाकुर—ज्योतिष।

लोचन-कवि-कृत 'रागतरङ्गिणी' में निम्नाङ्कित कवियों के भी नाम हैं। किन्तु इनकी रचना और इनमें अधिकांश के वासस्थान का कुछ पता नहीं। यहाँ सिर्फ नाम इसलिये दिये जाते हैं कि मैथिली-सेवी इनके विषय में खोज करें—कवि जयकृष्ण, भूपतिसिंह, श्रीनिवास, कवि भवानीनाथ, राजा लक्ष्मीनारायण, धरणीधर, कवि मुकुन्दी, गदाधर, मधुसूदन, कुमर भीषम, विद्यापति क पुत्रवधू चन्द्रकला, कवि चतुर्भुज, कवि हरिदास, कंसनारायण, जीवनाथ, राजा लखनचन्द, गङ्गादास, कवि श्यामसुन्दर, अमृतकर, यशोधर, कवि रत्न, चन्द्र कवि प्राचीन, अमृतकर, प्रीतिनाथ, कवि भीष्म, कवि रंजन, दुर्गादत्त।

'मिथिला-गीत-संग्रह' मे इन कवियों के भी नाम हैं—सुवंशलाल, दत्त कवि, सुकविदास, तुलाराम, माधवदास, शंकर, सूरदास, दुखरन, कुलपति, सीताराम, यदुनाथ, चन्द्रनाथ, करनाट, शंभुदास, परमानन्द, रामनाथ, मोदनाथ, सनाथ, जयनाथ, ब्रजुजन, धैरजपति, रंकमणि, बुद्धिलाल, दुरमिल, जलधर, रुद्रनाथ, कवि वासुकी, कृष्ण कवि, धनपति, वंशी, भञ्जन, चिरञ्जीव, मँगनीराम, दत्तगणक, धर्मेश्वर, मोतीलाल, अग्रदास, लोकनाथ, मधुकर, हृदय दास, यदुवर दास इत्यादि।

वर्त्तमान काल के मैथिली-साहित्यसेवी

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा—जन्म आश्विन कृष्ण सन १२७६ फसली। ४-६ वर्ष की अवस्था तक अपने ननिहाल 'गन्धवारि' (दरभंगा) में ही रहे। राज-स्कूल (दरभंगा) से सन् १८८६ ई० में इंट्रेंस पास किया।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय से एफ० ए०, बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ पास कीं और तीनों में सर्वप्रथम रहे। दरभंगा-राज-पुस्तकालय का अध्यक्ष रहते हुए पंडित चित्रधर मिश्र से मीमांसा का अध्ययन किया। मेयोर-सेंट्रल-कॉलेज (प्रयाग) में सन् १६०२ ई० में प्रोफेसर नियुक्त हुए। १६०५ ई० में इलाहाबाद-युनिवर्सिटी के 'फेलो' और १६०६ ई० में वहाँ के सिंडिकेट के मेम्बर चुने गये—इसी वर्ष 'डाक्टर ऑफ लेटर्स' और १६१० ई० में 'महामहोपाध्याय' तथा १६४१ में 'सर' की उपाधियाँ मिलीं। १६१८ ई० में कौंसिल ऑफ स्टेट के सरकारी सदस्य चुने गये। १६२३, १६२६ तथा १६२६ ई० में, तीन बार, प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर निर्वाचित हुए। संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी में अनेक ग्रंथ रचे हैं। मैथिली-पुस्तक 'वेदान्त-दीपक' मैथिली-साहित्य-परिषद् (दरभंगा) से प्रकाशित है। पाँच पुत्ररत्न और पाँच कन्याएँ हैं। 'योग्य पिता के योग्य पुत्र' प्रोफेसर अमरनाथ झा हैं, जो प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर हैं।

कविवर मुंशी श्रीरघुनन्दन दास—मैथिल कर्ण कायस्थ। सखवाड़-(दरभंगा)-निवासी। मिथिला-भाषा के प्रथमश्रेणी के विद्वान्। फारसी तथा संस्कृत के भी विशेष ज्ञाता। मैथिलीग्रंथ—मिथिला नाटक, उत्तररामचरित (नाटक), हरितालिका-व्रत-कथा, दूताङ्गदव्यायोग (रूपक) मैथिली-बाल-शिक्षा, सुभद्रा-हरण (महाकाव्य), पावसप्रमोद (हिन्दी में), भर्तृहरि-निर्वेद (हिन्दी में)—आदि।

डाक्टर उमेश मिश्र, काव्यतीर्थ—गजहड़ा-(दरभंगा)-निवासी महा-महोपाध्याय जयदेव मिश्र के सुयोग्य सुपुत्र। प्रयाग-विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के प्रधान अध्यक्ष। विद्यार्थि-जीवन से ही आपने मातृभाषा मैथिली की स्तुत्य सेवा की है। सन् १६३३ ई० में मैथिली-साहित्य-परिषद की घोघड़रिया-(दरभंगा)-वाली सभा के अध्यक्ष-पद से बड़ा ही गवेषणा-पूर्ण भाषण किया था; इसका मनन करने से मालूम होता है कि भाषा-शास्त्र का आपका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है; मैथिली-साहित्य का तो यह छोटा-मोटा इतिहास ही है। रचित मैथिली ग्रंथ—गद्यकुसुममाला, गद्य-कुसुमाञ्जलि, साहित्य-दर्पण (अनुवाद), शङ्कर मिश्र (जीवनी), भवभूति (जीवनी), मैथिली-वर्णमाला क परिचय, नलो-पाख्यान, यक्ष-पांडव-संवाद आदि।

श्रीबदरीनाथ झा 'कविशेखर'—सरिसब-(दरभंगा)-निवासी हैं। मुजफ्फरपुर-संस्कृत-कालेज में साहित्य के प्रोफेसर हैं। विख्यात सुकवि हैं।

'सुलोचना-परिणय' नामक सर्वाङ्गसुन्दर महाकाव्य लिखकर मैथिली-साहित्य का असीम उपकार किया है। संस्कृत-महाकाव्य 'राधा-परिणय' आपकी अद्भुत कवित्वशक्ति का परिचायक है।

श्रीगंगापति सिंह, बी० ए०—पचही-मधेपुर-(दरभंगा)-निवासी। दरभंगा-राजवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध। कलकत्ता-युनिवर्सिटी मे हिन्दी और मैथिली के लेक्चरर थे। हिन्दी के भी सुपरिचित लेखक हैं। मैथिली में 'बालव्याकरण' तथा 'रचना-निबन्ध' प्रकाशित हैं। और भी अनेक मैथिली-पुस्तकें हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं। आपके निबन्ध प्राचीन खोजो से परिपूर्ण रहते हैं। मिथिला में प्रचलित किंवदन्तियो एवं दन्तकथाओ का विशाल संग्रह तैयार किया है। विनोदप्रिय सहृदय व्यक्ति हैं।

महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्र—(दे० पृ० ३७, पं० ५)। भारत-प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् हैं। विद्यापति के पदसंग्रह का सुन्दर सम्पादन किया है।

श्रीरामभद्र झा, एम्० ए०—राजपूताना के अलवर-स्टेट मे चीफ जस्टिस थे। मैथिली के सुविदित साहित्यसेवी हैं। आपकी गद्य-पद्य-रचना से मैथिली की गौरव-वृद्धि हुई है।

श्रीबबुआजी मिश्र—कोइलख-(दरभंगा)-निवासी। कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे मैथिली के लेक्चरर हैं और मैथिली के प्राचीन साहित्यिकों में हैं। ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् है।

श्रीसीताराम झा—चौगमा - (दरभंगा)-निवासी प्रसिद्ध आशुकवि हैं। कविता अत्यन्त रोचक और हृदय-ग्राहिणी होती है। काशी के एक संस्कृत-विद्यालय मे ज्योतिष के प्रधान अध्यापक हैं। मैथिली-रचनाएँ—मैथिली सूक्ति-सुधा, पटुआ-चरित्र, भूकम्प-वर्णन, अलंकार-दर्पण, शिक्षा-सुधा, मैथिली-छंदो-ऽलंकार-मंजूषा इत्यादि। ज्योतिष के बीसियों ग्रंथ लिखे हैं। प्रतिभा मुग्धकर है। वर्त्तमान मैथिली के कविरत्न कहे जाते हैं।

श्रीबलदेव मिश्र—(दे० पृ० ३७ के अंत मे)। राज-पुस्तकालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष हैं। सुप्रसिद्ध 'वररुचि' और 'हलायुध' तथा 'चाणक्य' का मैथिलत्व बड़ी खोज के साथ सिद्ध किया है। भक्ति-विषयक बहुत-से पद्य मैथिली में रचे हैं। प्राचीन संस्कृत-विद्वानो की जीवन-कथाओं के विशेषज्ञ माने जाते हैं। लोचन कविकृत 'रागतरंगिणी' तथा 'चन्द्रपद्यावली' का सुन्दर सम्पादन किया है। सदाचारी लब्धप्रतिष्ठ राजाश्रित विद्वान् हैं।

श्रीभुवनेश्वर सिंह साहब 'भुवन'—मुजफ्फरपुर-निवासी प्रतिष्ठित रईस; मैथिली भाषा के सुलेखक, सुकवि और सुरुचिसम्पन्न पत्र-सम्पादक हैं। दरभंगा-राजवंश से अत्यन्त समीप सम्बन्ध है। मैथिली कविताओं का संग्रह 'आषाढ़' प्रकाशित है। 'आनन्द-विजय' नाटिका का सुन्दर सटिप्पण सम्पादन किया है। आपके सम्पादकत्व में 'विभूति' नाम की मैथिली मासिक पत्रिका खूब चली थी। 'लेखमाला', 'विद्यापति', 'वैशाली' आदि हिन्दी-मासिकों के सम्पादन से हिन्दी-संसार में आप प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी कविताएँ मैथिली की सुन्दर सम्पत्ति हैं। हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक, कवि और पत्रकार हैं।

श्रीजनार्दन झा 'जनसीदन'—कुमर-बाजितपुर (मुजफ्फरपुर)-निवासी हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के पुरातन यशस्वी सेवकों में हैं। दरभंगा-राज्य के प्रसिद्ध पत्र 'मिथिला-मिहिर' के सम्पादक रह चुके हैं। मैथिली में सुन्दर कविताएँ रचते और पठनीय निबन्ध लिखते हैं। बिहार के प्राचीन साहित्यिकों में ऊँचा स्थान है।

श्रीकुशेश्वर कुमर—कुमर-बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी ज्योतिष के विख्यात विद्वान् हैं। मातृभाषानुराग प्रशंसनीय है। आपके सम्पादकत्व में मैथिली की विख्यात पत्रिका 'मिथिला' बड़ी सज-धज से निकली थी। स्त्री-कर्त्तव्य-शिक्षा और शिक्षा-सोपान—दो मैथिली-ग्रंथ प्रकाशित हैं। बहुत-से संस्कृत-ग्रंथों का सम्पादन किया है। मैथिली की कविता बड़ी परिमार्जित होती है।

कुमार श्रीगंगानन्द सिंह, एम्. ए., एम्. एल. सी.—श्रीनगर-राज्य (पुर्णिया) के अधिपति स्वर्गीय दानवीर साहित्यसरोज राजा कमलानन्द सिंह के सुयोग्य सुपुत्र हैं। इस समय वर्त्तमान दरभंगा-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। अँगरेजी, हिन्दी और मैथिली के उद्भट लेखक हैं। 'मैथिली-नाटक-साहित्य' पर आपका विद्वत्तापूर्ण निबंध एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित है। आपका प्रकाशित मैथिली उपन्यास 'अगिलही' अपने ढंग का अनूठा है। 'विवाह' नामक कहानी की पुस्तक भी प्रकाशित है। आपके मैथिली-निबंधों की सूची काफी बड़ी है। आपसे मैथिली-साहित्य को बहुत बड़ी आशा है।

पंडित जीवनाथ राय, बी. ए.—बीरसायर-(दरभंगा)-निवासी। जिला-स्कूल (दरभंगा) के हेडपण्डित हैं। मैथिली के अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं। 'मैथिली की लेख-शैली' नामक शैली-सम्बन्धी ग्रंथ 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुआ है। मैथिली-लिपि के चिर-विदित प्रचारकों में हैं। लेख-शैली परिमार्जित है।

श्रीभोलालाल दास, बी. ए. एल्-एल्. बी.—कसरौर-(दरभंगा)-निवासी कायस्थ। वर्त्तमान मैथिली-साहित्य के उन्नायकों में अग्रगण्य। मैथिली-साहित्य परिषद् (दरभंगा) के प्राणस्वरूप। आपके सम्पादकत्व मे 'मिथिला' और 'भारती' नामक मैथिली मासिक पत्रिकाएँ निकल चुकी हैं। मैथिली का प्रामाणिक व्याकरण 'व्याकरण-प्रमोद' लिखा है। दर्जनों मैथिली-पुस्तकों का सम्पादन किया है। कुछ मैथिली-कविताएँ भी लिखी हैं, बड़ी ओजस्विनी। राष्ट्रभाषा हिन्दी के भी प्रसिद्ध लेखक हैं। मैथिली के अनन्य अनुरागी।

श्रीदीनबन्धु झा—इसहपुर-(दरभंगा)-निवासी। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपका 'मैथिली-भाषा-विद्योतन' नामक मैथिली व्याकरण अद्वितीय है। किसी अन्य भाषा में संस्कृत व्याकरण की शैली पर ऐसा सूत्र-वृत्त्यात्मक ग्रंथ शायद ही लिखा गया होगा। मैथिली के शब्द-कोष का भी वृहत् संग्रह किया है। मैथिली भाषा के प्रामाणिक आचार्य हैं।

प्रोफेसर श्रीअमरनाथ झा, एम. ए.—स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गंगानाथ झा के सुपुत्र हैं। अँगरेजी भाषा के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चान्सलर हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रभावशाली सुवक्ता एवं सुलेखक हैं। मातृभाषा मैथिली के बड़े प्रेमी हैं। मैथिली कवि गोविन्ददास की शृंगार-भजनावली का सुन्दर संकलन और सम्पादन किया है। हर्षनाथ-ग्रंथावली भी आप ही के सम्पादकत्व मे निकली है। मैथिली भाषा को आपपर गर्व है।

प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम. ए.—कुमर-बाजितपुर- (मुजफ्फरपुर)-निवासी श्री 'जनसीदन'जी के सुयोग्य पुत्र। बी. एन्. कालेज (पटना) के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं। अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। हास्यरस के बेजोड़ लेखक हैं। मैथिली उपन्यास 'कन्यादान' अपने ढंग का अकेला है। मैथिली के गल्प-लेखकों में अग्रगण्य हैं। संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी में बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। मैथिली में 'द्विरागमन' उपन्यास लिख रहे हैं।

डाक्टर सुधाकर झा, एम्. ए., पी-एच. डी.—प्रेमनगर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी। पटना-विश्वविद्यालय मे मैथिली के प्रौढ विद्वान् हैं। मैथिली भाषा पर आपने सुन्दर 'थीसिस' (निबंध) लिखा है। मैथिली भाषा का वृहत् प्रामाणिक कोष लिख रहे हैं।

श्री सुभद्र झा, एम्. ए.—नागदह-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली के,

पटना-विश्वविद्यालय की ओर से, रिसर्च-स्कॉलर रह चुके हैं। मैथिली में कुछ उपन्यास भी लिखे हैं जो अप्रकाशित हैं। 'मैथिली लिपि और ध्वनि' नामक वृहत्काय 'थीसिस' लिख रहे हैं। आप तीव्र आलोचक हैं।

श्रीअच्युतानन्द दत्त—भलुआही-(भागलपुर)-निवासी कर्णकायस्थ। हिन्दी के भारतप्रसिद्ध बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालक' के सहकारी सम्पादक हैं। मैथिली भाषा के उद्भट सेवक हैं। 'रघुवंश' का पद्यात्मक अनुवाद पाठ्यग्रन्थों में है। 'महाभारत' का भी मैथिली में पद्यबद्ध अनुवाद कर चुके हैं। 'बताहि' और 'सत्यहरिश्चन्द्र' नामक मैथिली-खंडकाव्य हाल ही में लिखे हैं। हास्यरस के भी आप मँजे हुए लेखक हैं। मैथिली में आपके अनेक प्रकाशित लेख संग्रहणीय हैं। हिन्दी के आप अधिकारी विद्वान् हैं। हिन्दी में आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। हिन्दी साहित्य और संस्कृत-साहित्य के मर्मज्ञ हैं।

श्रीपुलकितलाल दास 'मधुर'—बमनगामा-(भागलपुर)-निवासी कर्ण कायस्थ। मैथिली के सुकवि और सुलेखक हैं। मातृभाषानुराग आपमें कूट-कूटकर भरा है। प्रसिद्ध मैथिली-रचनाएँ—केतकी (खंडकाव्य), लोपामुद्रा (उपाख्यान)। स्फुट लेख और कविताएँ बहुत-सी हैं।

श्रीकालीकुमार दास 'कुमर'—भक्षी-(दरभंगा)-निवासी कर्ण कायस्थ। मैथिली के सुपरिचित लेखक हैं। मिथिलेश की धौत-परीक्षा में उत्तीर्ण हैं। स्त्री-साहित्य पर मैथिली में कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'कामिनी-जीवन' प्रसिद्ध है। कविता अत्यन्त रोचक होती है। कविता-पुस्तक 'मैथिली-गीतांजलि' और बालोपयोगी गद्य-पुस्तक 'बच्चा खेलाइ अछि' प्रकाशित हैं।

श्रीलक्ष्मीपति सिंह, बी. ए.—मधेपुर-(दरभंगा)-निवासी। दरभंगा-राजवंश के हैं। मैथिली के उत्साही सेवकों में हैं। 'मैथिली-शिक्षक' पुस्तक में हिन्दी के द्वारा मैथिली की शिक्षा-पद्धति बतलाई है। सचित्र मासिक 'मैथिल-बन्धु' (अजमेर)के संयुक्त सम्पादक हैं। मैथिली तथा हिन्दी में निबन्ध और कविताएँ खूब लिखते हैं।

श्रीहरिनन्दन ठाकुर 'सरोज'—भक्षी-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली के लोकप्रिय गल्प-लेखक हैं। 'माधवी-माधव' मैथिली-उपन्यास बड़ा ही रोचक है। 'विद्यापति' नाटक बहुत सुन्दर है। 'गल्प-संग्रह' काफी बड़ा है।

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी'—पूर्वोक्त सहकारी 'बालक'-सम्पादक श्रीयुत

अच्युतानन्द दत्त के अनुज हैं। मैथिली के उदीयमान साहित्य-सेवियों में अति कार्यशील हैं। 'मैथिली मेघदूत' प्रकाशित है। हास्यरस के प्रहसन एवं गल्प सुन्दर लिखते हैं। मैथिली मे निबन्ध भी खूब लिखे हैं। मैथिली हरिवंश, मृच्छकटिक (अनुवादित नाटक) आदि मैथिली ग्रंथ और माघ-महाकाव्य का हिन्दी-पद्यानुवाद अप्रकाशित हैं। हिन्दी मे आपकी कई बालोपयोगी पुस्तके छप चुकी हैं।

श्रीकपिलेश्वर झा शास्त्री—फुलपरास-(दरभंगा)-निवासी। साप्ताहिक 'मिथिला-मिहिर' (दरभंगा) के सम्पादक वर्षों रह चुके हैं।

श्रीरमानाथ झा, एम्. ए., बी. एल्., काव्यतीर्थ—उजान-(दरभंगा)-निवासी। 'मैथिली-साहित्य-पत्र' का सम्पादन कर मैथिली मे अनेक सुसम्पादित पुस्तकें प्रकाशित की हैं। 'उदयन-चरित' उपाख्यान प्रकाशित है। विद्यापति-साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अपनी खास शैली है। निबन्ध खोज-भरे होते हैं। सुसम्पन्न दरभंगा-राज-लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष हैं।

श्रीजयनारायण मल्लिक, एम्. ए. (डबल), काव्यतीर्थ—मैथिली-कविता, छायावाद के ढंग की, बड़ी रोचक होती है। गल्प भी सुन्दर लिखते हैं। मैथिली के सर्वमान्य लेखकों में हैं।

श्रीवेदानन्द झा—कोइलख-(दरभंगा)-निवासी। काशी में रहते हैं। मैथिली-कविता बड़ी हृदय-ग्राहिणी होती है। 'काव्य-कौमुदी' नामक मैथिली का अलङ्कारशास्त्र 'मिथिला-मिहिर' मे क्रमशः प्रकाशित हुआ है। कई बँगला-उपन्यासों का मैथिली में अनुवाद किया है।

श्रीशशिनाथ चौधरी बी० ए०, बी० एड०—दरभंगा-(मिश्रटोला)-निवासी हैं। मैथिली के निबन्धकार, कहानी-लेखक और आलोचक हैं। मैथिली में मिथिला का इतिहास 'मिथिला-दर्पण' प्रकाशित है। सौन्दर्यशास्त्र, सौन्दर्य-विज्ञान, बुद्धदेव आदि हिन्दी-पुस्तकें लिखी हैं।

श्रीसुरेन्द्र झा 'सुमन' साहित्याचार्य—बल्लीपुर-(दरभंगा)-निवासी हैं। मैथिली कविताएँ और कहानियाँ खूब लिखते हैं। सम्प्रति 'मिथिला-मिहिर' के सम्पादक हैं। अपनी कलापूर्ण सम्पादन-शैली से 'मिहिर' की काया पलट दी है। 'मिहिर' को प्रगतिशील साप्ताहिक बनाने का श्रेय आप ही को है।

श्रीवैदेही झा—बनगाँव-(भागलपुर)-निवासी। मैथिली-व्याकरण प्रकाशित है। 'वैदेही-वनवास' का मैथिली-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। 'मैथिली में गीतगोविन्द का अनुवाद' अप्रकाशित है। कविता और निबन्ध सुन्दर लिखते हैं।

श्रीभुवनेश्वर झा—वल्लीपुर-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली के प्राचीन सेवकों में हैं। आपके कवित्वपूर्ण गीत लोक-प्रचलित हैं। मैथिली योगवाशिष्ठ-सार, स्वर्णपरीक्षा (नाटक), कृष्णचरितावली (पद्य) प्रसिद्ध मैथिलीग्रंथ हैं।

श्रीबलदेव मिश्र, ज्योतिषाचार्य—बनगाँव - (भागलपुर) - निवासी। मैथिली के उच्चकोटि के लेखक और आलोचक हैं। समालोचनात्मक मैथिली-ग्रंथ 'रामायण-शिक्षा' प्रकाशित है।

श्रीदुःखमोचन झा—(दे० पृ० ३६, पं० १०)। आपका मैथिली-प्रेम अनन्य है। आलोचना, यात्रा, गल्प इत्यादि बड़ी मँजी शैली में लिखते हैं। 'उदयनाचार्य की जीवनी' मैथिली में लिखी है।

श्रीयदुनाथ झा 'यदुवर'—मुरहो-(भागलपुर)-निवासी। मैथिली के अच्छे कवि हैं।

श्रीधनुषधारी दास 'मैथिलो वाचस्पति'—कहुआ-(दरभंगा)-निवासी। कर्ण कायस्थ। 'मिथिला-मित्र' (भागलपुर) के सम्पादक रह चुके हैं। 'विहारी-सतसई' का मैथिली-पद्यानुवाद 'मैथिली में बिहारी' नाम से प्रकाशित है। मैथिली के सुपरिचित सेवकों में हैं। हिन्दी में 'प्रजा' नामक साप्ताहिक दरभंगा से निकाला था।

श्रीभीमेश्वरसिंह तथा श्रीजलेश्वरसिंह—दोनों पूर्वोक्त श्री 'भुवन' जी के अनुज हैं। मैथिली में गल्पें बहुत अच्छी लिखते हैं।

श्रीनन्दकिशोरलाल दास—छतनेश्वर-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली में अनेक सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। 'मिथिला का इतिहास' अभी अपूर्ण है।

श्रीउपेन्द्र ठाकुर 'मोहन'—चतरिया - (दरभंगा) - निवासी। नवीन मैथिली - कवियों में बड़े लोकप्रिय हैं। कविताओं में आधुनिकता का गहरा रंग होता है। वेदनामयी कविताएँ बड़ी मधुर होती हैं। मैथिली के विशुद्ध पद्य-लेखक हैं।

श्रीदामोदरलाल दास—बरहेता - (दरभंगा) - निवासी। 'शकुन्तला' (खंडकाव्य) मनोरंजक है। हास्य-रस की कविताएँ बड़ी अच्छी होती हैं। हास्यरस की महिलोपयोगी पुस्तक 'प्रेम-पत्रावली' बहुत अच्छी लिखी है। और भी कई छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हैं।

श्रीश्यामानन्दन झा—लालगंज - (दरभंगा) - निवासी। संस्कृत के



सुकवि हैं। मैथिली में बहुत-सी अच्छी-अच्छी कविताएँ लिखी हैं। मैथिली में अलंकारशास्त्र-सम्बन्धी सुन्दर ग्रंथ लिखा है, जिसका कुछ अंश 'भारती' में प्रकाशित हो चुका है।

श्रीनरेन्द्रनाथ दास विद्यालंकार—सखवाड़-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली के सुपरिचित सेवकों में हैं। 'विद्यापति-काव्यालोक' अत्युत्तम समालोचनात्मक ग्रंथ हिन्दी में लिखा है। गोविन्ददास पर वैसी ही सूक्ष्मदर्शितापूर्ण समालोचना अभी अप्रकाशित ही है। प्रतिभाशाली समालोचक हैं। मैथिली की प्राचीन कविताओं के अच्छे मर्मज्ञ हैं।

श्रीकाशीनाथ झा 'किरण'—धर्मपुर-(दरभंगा)-निवासी। मैथिली के सुन्दर गल्प-लेखक हैं। 'चन्द्रग्रहण' पुस्तिका प्रकाशित है। कविता और निबन्ध भी लिखते हैं। 'मिथिला-मोद' (काशी) के अनामक सम्पादक हैं।

श्रीगौरीशङ्कर झा—उजान-(दरभंगा)-निवासी। 'भर्तृहरि-निर्वेद' (खडकाव्य) प्रकाशित है। 'मेघनादवध' (बँगला) का अंशानुवाद भी प्रकाशित है।

श्रीवैद्यनाथ मिश्र 'वैदेह'—तरौनी-(दरभंगा)-निवासी। बौद्धधर्म की दीक्षा लेने के कारण 'नागार्जुन' नाम से प्रसिद्ध हैं। अब 'यात्री' नाम से मैथिली कविता लिखते हैं, जो बड़ी हृदय-ग्राहिणी होती है।

श्रीकपिलेश्वर मिश्र वैयाकरणशिरोमणि—(दे० पृ० ४०, पं० ६)।

श्रीहीरालाल झा 'हेम'—भ्रमरपुर-(भागलपुर)-वासी। 'मिथिला-भाषा-व्याकरण' लिखा है।

श्री श्रीमन्तलाल दास, बी० एस्० सी०—बेलारही-(दरभंगा)-निवासी कायस्थ। विज्ञान, ज्योतिष, गणित इत्यादि के अच्छे ज्ञाता हैं। रचनाएँ मैथिली में प्रकाशित होती थीं। कुछ अच्छे उपन्यास भी लिखे हैं जो अभी छपे नहीं। पटना-कॉलिजियट स्कूल में विज्ञान के अध्यापक हैं। संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं।

श्रीईशनाथ झा—नवटोल-(दरभंगा)-वासी। मैथिली में अनूदित 'शकुन्तला' (नाटक) प्रकाशित है। दूसरा नाटक 'चीनी क लड्डू' भी प्रकाशित है। रचना मनोरंजक होती है।

श्रीनेत्रनाथ झा, एम्० ए०—उजान-(दरभंगा)-वासी। अपना ने

प्रसिद्ध कवि स्व० माइकेल मधुसूदन दत्त की शैली के चतुर्दशपदी एवं अमिताक्षर छन्द को मैथिली में प्रवर्त्तित किया है। 'कीचकवध' काव्य उसी ढंग का है।

श्रीदीनानाथ झा, एम्० ए०—नवटोल-(दरभंगा) - वासी। 'वेकफिल्ड क पादरी' (मैथिली-उपन्यास) अनुवादित उपन्यासों में श्रेष्ठ है।

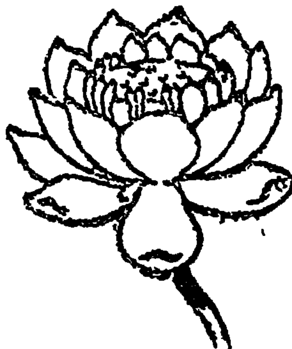
श्रीदुर्गाधर झा—उजान-(दरभंगा)-वासी। सांख्य-शास्त्र-सम्बन्धी सुन्दर निबन्ध-ग्रंथ प्रकाशित है।

श्रीजीवनाथ झा—इसहपुर-(दरभंगा)-निवासी पंडित श्रीदीनबन्धु झा के पुत्र हैं। मैथिली के सुयोग्य गद्य-पद्य-लेखक हैं। विद्यापति पर एक खंडकाव्य और शंकरमिश्र पर एकाङ्की नाटक लिखा है।

श्रीकाशीकान्त मिश्र 'मधुप'—कोर्थु-(दरभंगा)-निवासी। 'मैथिली-रस-मंजरी' साप्ताहिक 'मिथिला-मिहिर' में प्रकाशित हुई है। 'सतीसुकन्या' (खंडकाव्य)। अनेक स्फुट कविताएँ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक मैथिली-साहित्य-सेवी हैं, जिनके परिचय स्थानाभाव से यहाँ नही दिये जा सके। कुछ के नाम और निवास-स्थान आगे दिये जाते हैं—श्री ऋद्धिनाथ झा—उजान (दरभंगा)। श्री गणेश झा—लालगंज (दरभंगा)। श्री आनन्द झा—सिहवाड़ (दरभंगा)। श्री जगदीश मिश्र—सहवाजपुर (मुजफ्फरपुर)। श्री यदुनन्दन शर्मा—शुभंकरपुर (दरभंगा)। श्री रामनिरेषण मिश्र—बल्लीपुर (दरभंगा)। श्री काशीनाथ ठाकुर—भक्षी (दरभंगा)। श्री काशीनाथ झा—धर्मपुर (दरभंगा)। श्री महावीर झा 'वीर'—उजान(दरभंगा)। श्री जीवनाथ झा—हाटी (दरभंगा)। श्री यदुनन्दन दास 'यदुनाथ'—गंगापुर (दरभंगा)। श्री राजदेव झा—भखराइन (दरभंगा)।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट विदित होगा कि भारतवर्ष की प्रान्तीय भाषाओं में मैथिली-भाषा का साहित्य कितना उन्नत और सम्पन्न है। उसका प्राचीन साहित्य जैसा समृद्ध है, वैसा ही अर्वाचीन साहित्य भी प्रगतिशील है।





'सारन' जिले में प्राचीन बौद्धकाल के स्थल

श्रीरघुवीरनारायण, बी० ए०; छपरा-निवासी; प्राइवेट-सेक्रेटरी, बनैली-राज्य

उत्तर-बिहार में, तिरहुत-कमिश्नरी में, सारन (छपरा) जिला है।

सन् १९२४ ई० में मैं लम्बी छुट्टी लेकर छपरा आया। एक दिन अपने घर की प्राचीन पाण्डुलिपियों को, जिन्हें मेरे पूर्वजों ने सुरक्षित रक्खा था, देखने लगा। अचानक फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक मुझे मिली, जिसे मुंशी दिगम्बरलाल ने—जो मेरे दादा के बड़े भाई थे—अपने हाथ से उतारा था। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के शासन-काल में मुंशी दिगम्बरलाल परगना कसमर के कानूनगो 'तरफ-सारंग-विहार' थे। एक दूसरे कानूनगो बाबू लक्ष्मणसिंह और भी इस परगने में थे, जो 'तरफ दान-योगिराज' कहलाते थे। दिगम्बरलाल का इलाका सोनपुर से डुमरी या शीतलपुर तक था। और, शीतलपुर से संठा तक का इलाका बाबू लक्ष्मणसिंह का था।

इन लोगों की पदवी में जो 'सारंग-विहार' और 'दान-योगिराज' शब्द आये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि ये दोनों स्थल बौद्धकाल के दो प्राचीन संस्मारक थे, जिनके नाम में मुसलमान अमलदारों ने या ईस्ट-इंडिया-कम्पनीवालों ने भी कोई परिवर्त्तन नहीं किया था।

बस, मैं इसकी खोज में लग गया। कई वर्षों के बाद मैं यह पता लगा सका कि सारंग-विहार का डीह*, मही नदी के किनारे, डुमरी गाँव में, जो नयागाँव के निकट है, मौजूद है। वहाँ के लोग इस खँडहर को 'सारंग-डीह' या 'सारन-डीह' के नाम से पुकारते हैं। उस डीह को एक सज्जन खुदवा रहे थे। उसमें से भगवान बुद्ध की संगमरमर की एक मूर्त्ति निकली, बहुत ही सुन्दर। हजारों वर्ष निकल गये, वह मूर्त्ति ज्यों-की-त्यों है। उस गाँव के लोग उस मूर्त्ति को भ्रमवश भगवान् विष्णु मानकर एक मन्दिर में प्रतिष्ठित कर पूजते हैं!

* डीह = ढूह = ऊँचा टीला।

उस मूर्त्ति में भगवान् बुद्ध की योग-मुद्रा है। मूर्त्ति के प्रस्तर-आसन पर पाली-भाषा में कुछ लिखा हुआ है, जो अभी तक पढ़ा नहीं गया है; पर जिसके पढ़वाने की कोशिश मैं कर रहा हूँ। इस अनुसन्धान के सम्बन्ध में पटना के अँगरेजी दैनिक 'सर्चलाइट' में एक लेख मैं लिख चुका हूँ।

अब रहा 'दान-योगिराज' के स्मारक-चिह्न का शोध करना। चीनी यात्री हु-यंग-सांग जब गाजीपुर से शाहाबाद होता हुआ वैशाली की ओर चला, तब गंगा के उत्तरी किनारे पर उसने नारायण-देव का मंदिर देखा था। यह मंदिर जरूर सारन जिले में था। जेनरल कनिंघम ने अन्दाज किया है कि हु-यंग-सांग अवश्य रिविलगंज के नजदीक गंगा के पार आया होगा।

रिविलगंज में गौतम ऋषि के प्राचीन आश्रम का होना माना जाता है। गौतम का ही अपभ्रंश 'गोदना' कहा जाता है। उस घाट को 'गोदना-सेमरिया-घाट' भी कहते हैं। इसी चिह्न के आधार पर कनिंघम का अन्दाज था कि हु-यंग-सांग ने यहीं वैशाली जाने के लिये गंगा-पार किया होगा। कनिंघम का शायद यह खयाल था कि गौतम के नाम पर ही लोगों ने इसे गौतम ऋषि का आश्रम कहना शुरू कर दिया होगा। मगर यह कनिंघम की गलती है। यही कारण है कि वे नारायण-देव के मंदिर का पता न लगा सके।

मिस्टर कारलाइल ने भी कनिघम की खोज को आधार मानकर काम करना आरम्भ किया, इसलिये उनका परिश्रम भी निष्फल हुआ।

हु-यंग-सांग के लिखने के मुताबिक तीन स्मारक-चिह्न थे। एक था नारायण-देव का मन्दिर। उसके करीब तीन कोस पूरब एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने नर-मांसाहारी दुष्टों को अपनी शरण में लेकर बौद्धधर्म में दीक्षित किया था। इसको कनिघम 'सारन-स्तूप' कहते थे। परन्तु बौद्धग्रन्थों से ज्ञात होता है कि 'सारन दद्-चैत्य' वैशाली में था या वैशाली के आसपास था, जिसका जिक्र भगवान् बुद्ध ने स्वयं किया है। मेरा अन्दाज है कि यही चैत्य या विहार मुसलमानी अमलदारी में 'दान-योगिराज' कहकर पुकारा गया, जिसका जिक्र फारसी की उपर्युक्त पांडुलिपि में है।

इस 'दान-योगिराज' का पता लगाने के लिये नारायणदेव के मन्दिर के प्राचीन स्थान को खोज निकालना आवश्यक है। जिस समय मैं इस खोज में लगा हुआ था उसी समय कोठिया-नराँव (सारन) के निवासी मित्रवर बाबू मथुराप्रसाद सिंह (पोस्टमास्टर, बनैली, पूर्णिया) ने मुझे बतलाया कि उनकी बस्ती

में, जो गंगा-तट पर है, एक बड़ा पुराना डीह है, जिसपर एक प्राचीन देवता 'नारायण ठाकुर' नाम से पूजे जाते हैं। विदित होता है कि पहले यहाँ नारायण-देव का मन्दिर था, जिसकी सुन्दर बनावट के सम्बन्ध में हुयेन-सांग ने वर्णन किया है; लेकिन जो अब गिरकर डीह और खँडहर के रूप में वर्त्तमान है। उनसे यह भी मालूम हुआ कि वहाँ की एक विधवा ने उस डीह पर नारायण ठाकुर का एक मन्दिर बनवा दिया है।

उस डीह से उत्तर एक दूसरा बड़ा डीह है। कोठिया-नरॉव के थोड़ी दूर पूरब एक बस्ती 'बोद्धा-छपरा' है। यह बस्ती गंगा के कटाव में पड़ गई थी।

कोठिवा-नरॉव में ही एक पुराना टूटा पुल भी है, जिसे आज तक 'बोद्धा का पुल' कहते हैं। कोठिआ-नरॉव के 'घाट का नाम 'चपर-घाट' (चपल या चपला) है। इससे सिद्ध होता है कि बुद्धदेव के समय का प्रसिद्ध चपला-चैत्य, जिसके बारे में 'डाक्टर ह्वे' (Dr. Huey) ने अन्दाज किया था कि छपरा शहर के तेलपा मुहल्ले के आसपास था, यही है। वह स्थान कोठिया-नरॉव और बोद्धा-छपरा के निकट ही कहीं था; क्योंकि छपरा शहर 'चिरान छपरा' कहलाता है। यह विदित है कि एक पुरानी असभ्य जाति, जो 'चेरो' वा 'चेरन' के नाम से विख्यात थी, सारन के इस हिस्से पर किसी काल में शासन करती थी और चेरों की राजधानी थी 'चिरान'।

डाक्टर ह्वे (Dr. Huey) की धारणा थी कि बौद्धकाल का 'चपला चैत्य' छपरा शहर के पूरबी हिस्से में था। वे पता नहीं लगा सके थे कि 'बोद्धा-छपरा', जो शायद बौद्धकाल में कोठिया-नरॉव तक कहा जाता था, गंगा के किनारे संठा के समीप वर्त्तमान था, और चपला-चैत्य का स्थल कहीं कोठिया-नरॉव या बोद्धा-छपरा के निकट ही पाया जायगा। बौद्धकाल का 'चपला' बोद्धा-छपरा से ज्ञात होता है। वहाँ के घाट का नाम 'चपर-घाट' भी 'चपला-चैत्य' के नाम से ही सम्बद्ध है। मालूम होता है, हुयेन-सांग इसी प्राचीन घाट पर गंगा-पार कर उतरा था और अपने सामने नारायणदेव के सुरम्य मन्दिर को देखा था, जिसका स्थल अभी तक 'नारायण ठाकुर का थान' नाम से विख्यात है, और जिसको कारलाइल तथा कनिंघम सिविलगंज की ओर खोज रहे थे, पर पा न सके।

नारायणदेव के मन्दिर का पता लगाने के पहले यह याद रखना होगा कि नारायणदेव के लगभग एक मील उत्तर एक विशाल डीह है। वह यदि 'चपला-चैत्य' का डीह है तो अनेकानेक ग्रन्थों के अनुसार वैशाली नगर भी इससे बहुत दूर

नहीं था। चूँकि बौद्धग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वैशाली की सीमा पार करने के बाद चपला-चैत्य कुछ ही दूर पर था, इसलिये यह सिद्ध होता है कि इस जगह से पूरब और उत्तर दो-चार कोस पर ही वैशाली नगर था।

आगे चलकर यह सिद्ध किया जायगा कि वैशाली नगर 'बनिया-बसाढ़' (मुजफ्फरपुर) से लेकर 'हरदिया-चौंर' ❀(सारन) में नयागाँव और डुमरी के उत्तर तक फैला हुआ था, जिसके अबतक बहुत-से अवशिष्ट चिह्न हैं।

अब नारायणदेव के डीह से पूरब आगे चलकर उस स्थान का पता लगाना है जहाँ पहले एक स्तूप और एक अशोक-स्तंभ खड़ा था—यह बताते हुए कि इसी स्थल पर भगवान् बुद्ध ने कुछ नर-राक्षसों को अपनी शरण में ले लिया था। यह अन्दाज किया जाता है कि फारसी-पांडुलिपि में 'दान-योगिराज' इसी स्थान को कहा है; क्योंकि योगिराज बुद्ध ने इसी स्थल पर उन नरमांसाहारियों को ब्रह्म-ज्ञान का दान किया था। कनिंघम इसको 'सारन-स्तूप' कहते थे; क्योंकि बुद्ध ने यहाँ नर-राक्षसों को 'शरण' दिया था। पहले कहा भी जा चुका है कि बुद्धदेव भी स्वयं एक 'सारन-दद्-चैत्य' का जिक्र किये हुए हैं। शायद इसी चैत्य के खराब होने के पश्चात् उस स्थान पर उक्त स्तूप और स्तम्भ कायम किये गये थे। यह स्तूप नारायणदेव के मन्दिर से लगभग तीन कोस पूरब था। इससे अनुमान होता है कि दिघवारा या शीतलपुर के आसपास इसका स्थल पड़ेगा। यह बात मुझे मालूम भी हुई है कि शीतलपुर और बेला गाँवों के बीच की किसी बस्ती में गड़ा हुआ एक प्राचीन स्तंभ है। स्तंभ के सन्निकट ही एक प्राचीन डीह भी है।

अब, इसके बाद, 'द्रोण' या 'कुंभ' स्तूप का पता लगाना होगा। कुंभ-स्तूप सारन-स्तूप से करीब दस कोस दक्खिण-पूर्व कोने पर था। शायद यह स्तूप पटना जिले की ओर, दानापुर के पास कहीं देहात में, पाया जायगा; क्योंकि हुयंग-साँग ने लिखा है कि इस स्तूप को देखने के बाद गंगा पार कर वह वैशाली आया था।

वैशाली के स्थल की खोज करने पर बौद्धग्रन्थों में यह लिखा मिलता है कि 'चपला-चैत्य' वैशाली की सीमा से कुछ ही दूरी पर था। और, यह भी लिखा पाया जाता है कि 'पावा'—जहाँ एक सोनार ने भगवान् बुद्ध को भोजन का निमंत्रण दिया था और जहाँ भोजन के बाद ही बुद्ध की वह भयानक बीमारी शुरू हुई जिसने इन्हें शरीर-परिवर्त्तन के लिये बाध्य किया—कोसल देश में था और वैशाली नगर पावा से दूर नहीं था।

❀ चौंर = पानी से भरा हुआ विस्तृत मैदान।

यह तो विदित ही है कि 'सारन' जिला, प्राचीन काल में, कोसल देश की अति पूर्वीय सीमा था। अतएव जब 'चपला-चैत्य' का निश्चित चिह्न सारन जिले में पाया जाता है तब तो 'पावा' का स्थान भी निश्चित रूप से इसी जिले में पाया जायगा।

मैं जब महापंडित राहुल सांकृत्यायन से पटना मे मिला था, मैंने उनसे कहा था कि जो चिह्न मुझे सारन जिले में मिले हैं उनसे मुझे ज्ञात होता है कि वैशाली नगर मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गाँव से सारन जिले के हरदिया चौर में 'चिलावे' और 'ककरा' गाँवों से कुछ दक्षिण तक अर्थात् नयागाँव और दुमरी के उत्तर तक फैला हुआ था, तब उन्होंने तुरत कहा कि उस युग में गंडक नदी का प्रधान स्रोत वर्त्तमान काल के समान नहीं था—इस समय जो मही नदी की धारा है, जिसे 'गंडकी' भी कहते हैं, पुराने समय में वही गंडक नदी की धारा थी।

मेरा अनुमान सच निकला; क्योंकि वैशाली के असंख्य चिह्न बसाढ़ के दक्षिण सारन जिले में पाये जाते हैं। हुयंग-सॉग ने भी दो वैशालियों का जिक्र किया है। ज्ञात होता है कि एक नन्दिवर्द्धन के समय की वैशाली है जो सारन जिले में है, और दूसरी प्राचीन काल की वैशाली है जो मुजफ्फरपुर जिले में थी।

एक दिन मैं चिलावें और ककरा की ओर कुछ मित्रों के साथ टहलने गया था। उस समय एक विशेष स्थान को दिखलाते हुए एक ने कहा कि यह स्थान 'भिमल' या 'विमल'-चौरा कहलाता है—कुछ दिन पहले तक यहाँ एक स्तूप और ध्वस्त मकानों के अवशिष्ट चिह्न वर्त्तमान थे। यह सुनकर हुयंग-सॉग का वैशाली-वर्णन याद आ गया। उसने लिखा है कि एक संघाराम था, जहाँ कई बौद्ध चेले पढ़ा करते थे और उसी के आसपास थोड़ी ही दूर पर एक स्तूप था जहाँ तथागत ने विमल-कीर्त्ति-सूत्र पढ़कर लोगों को समझाया था।

वह टूटा हुआ संघाराम आज तक चिलावें-मठ के नाम से मशहूर है, जिसपर अब 'अतीथ' जाति के लोग बसे हुए हैं। इसका असल नाम 'चेलावन' है जो गवर्नमेंट के सेट्लमेंट-रेकर्ड में भी दर्ज है। मालूम होता है कि बौद्ध भिक्षु यहाँ पढ़ा करते थे और जब हुयंग-सॉग आया था तब उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। इसी के निकट वह स्तूप था जो आज तक विमल-चौरा कहलाता है। इस स्तूप से पृथक एक स्तूप और भी था, जहाँ 'सारि-पुत्त' को पूर्ण ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति

हुई थी। वह स्थान भी आज तक कायम है। हरदिया-चौंर में जैसे और चिह्न मिलते हैं वैसे ही इसके चिह्न भी हैं। आज भी उसी स्थान को शिवपुर-मठ के नाम से पुकारते हैं।

सारन जिले में बहुत-से प्राचीन मठ हैं जहाँ अब अतीथ लोग रहते हैं। मालूम होता है कि ये सब प्राचीन बौद्ध मठ थे, जो समय के प्रवाह में टूट गये और अब उनके ध्वंसावशेष के ऊपर अतीथों की बस्ती बसी हुई है। आज तक ये बस्तियाँ बहुत ऊँचे स्थान पर हैं, जहाँ बाढ़ के दिनों में भी पानी नहीं पहुँच सकता।

हु-यंग-साँग के मुताबिक राजा के महल और उसके घेरों से यह 'चेला-वन-संघाराम' (चिलावें-मठ) केवल एक मील के करीब उत्तर-पश्चिम था। इस कारण, जब चेलावन (चिलावें) और विमल-कीर्त्ति-सूत्र वाले स्तूप की जगहें आज तक विमल-चौरा के नाम से प्रसिद्ध हैं तब महल के स्थान का पता लगा लेना केवल नाप-जोख का काम है।

चेलावन-संघाराम से एक मील से भी कुछ कम ही दूर दूसरा स्तूप था, जहाँ विमलकीर्त्ति का मकान था। यह भी आज तक कायम है। इसका पुराना खँड़हर वर्त्तमान है। कोई इसे 'मठ-शंकर' कहते हैं और कुछ कहते हैं कि मुसलमानी अमलदारी में कोई अमीर-उमरा यहाँ रहते थे। मालूम होता है कि जगद्गुरु शंकराचार्य ने इस स्थान पर बौद्धधर्म को पराजित कर हिन्दू-धर्म की पताका उड़ाने के लिये एक संस्था कायम कर दी थी। इसी कारण पुराने आदमी इसे आज तक मठ-शंकर कहते हैं।

इससे थोड़ी ही दूर 'हु-यंग-साँग' के कथनानुसार एक विहार या चैत्य था, जो बिलकुल पत्थर या कंकड़ का बना हुआ था। यह स्थल आज तक कंकड़ा-मठ के नाम से मशहूर है। लोग कहते हैं, यह बिलकुल कंकड़ का बना हुआ था। इसी मठ से, हु-यंग-सॉग के कथनानुसार, विमल-कीर्त्ति ने, जो वैशाली का रहनेवाला था, अपनी बीमारी की अवस्था में ही, बौद्धधर्म पर भाषण किया था। इसी कंकड़ा-मठ के निकट, हु-यंग-सॉग के कथनानुसार, विमल-कीर्त्ति के पुत्र 'रत्नाकर' का मकान था और उसके समीप ही एक दूसरा स्तूप था, जो 'अम्बापाली' के मकान का स्थान था। इसी मकान में बुद्ध की काकी और शाक्यवंश की अन्य भिक्षुणियों ने निर्वाण प्राप्त किया था।

रत्नाकर के मकान का स्थान अब एक खेत में पड़ता है जिसे देहाती लोग

'बघवा-चौरा' कहते हैं। वह कंकड़ा-मठ के ठीक दक्षिण है। और, बघवा-चौरा के पास ही पश्चिम की ओर एक खँड़हर है, जिसके देखने से मालूम होता है कि चार-पाँच सौ वर्ष पहले यहाँ कोई सुरम्य मकान कायम था। यही अम्बापाली का मकान था।

चीनी यात्री फा-ही-यान ने अपने वर्णन में लिखा है कि अम्बापाली वाला मकान या विहार, जो वैशाली शहर में था, उसके समय में भी, वैसी ही खूबसूरती के साथ खड़ा था जैसे पहले रहा होगा। इस खँड़हर पर अब शनिग्रह की पूजा होती है। यह विदित है कि अम्बापाली मगध के राजा बिम्बिसार की दासता (पालिता) थी। इससे ज्ञात होता है कि राजा बिम्बिसार के, अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथों, मारे जाने के बाद वह वैशाली भाग आई और बौद्धधर्म में दीक्षित हुई।

राजा बिम्बिसार की सैनिक पदवी 'सेनिया' थी। संभव है कि वैशाली मे बस जाने के बाद अम्बापाली ने अपने मृत प्रेमी बिम्बिसार की पूजा प्रारंभ कर दी हो। हजारों वर्ष बीत जाने के बाद शायद उसी 'सेनिया' का अपभ्रंश 'शनि' हो गया।

चिलावे-मठ और कंकड़ा-मठ के बीच एक झील है जिसे लोग आज 'काठखार' कहते हैं। इस झील का दक्षिणी भाग 'बिझारी'-नाला कहा जाता है, जो वैशाली का अपभ्रंश मालूम होता है। और, ककरा से पूरब बढ़ने पर इसी काठखार का नाम 'महुरा' पड़ जाता है, जो हरदिया-चौर होकर मही नदी मे सोनपुर के निकट गिरता है। इससे साफ ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में काठखार और वैशाली-झील, खेती की सुविधा के लिये, नहर के रूप मे काटकर सोनपुर तक बढ़ा दी गई थी। इसी वजह से इसका नाम 'मौर्या नाला' पडा जिसका अपभ्रंश 'महुरा नाला' है। प्राचीन इतिहास देखने से भी विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने किसानो की सुविधा के लिये बहुत-से नाले और नहरें बनवाई थीं। इसी काठखार-झील के किनारे, नाप-जोख करने से, पुराने वैशाली नगर के राजमहल का पता लग सकता है। कारण, यह राजमहल और राजग्राम, फा-ही-यान और हुयेन-सॉग के कथनानुसार, उसी जमाने में बिल्कुल टूट-फूट गया था, और इस समय देखने से बिल्कुल मामूली खेत मालूम होता है।

बौद्धग्रन्थों में लिखा हुआ है कि वैशाली के उत्तर एक घना जंगल था,

जिसके दक्षिणी ओर पर एक 'दह' (ह्रद) था और उसी के किनारे कोटागार-शाला थी, जिसमें भगवान् बुद्ध वैशाली जाने पर प्रायः ठहरा करते थे। मालूम होता है, उसी कोटागार के नजदीक से और उसी 'ह्रद' से यह काठखार-झील खोदी गई थी। स्पष्ट विदित होता है कि 'कोटागार' से 'काठखार' का कोई सम्बन्ध अवश्य है।

उपर्युक्त वेला-वन-संघाराम से एक मील के भीतर ही, उत्तर-दिशा में, एक स्तूप था जहाँ भगवान् बुद्ध कुशीनगर जाते समय ठहर गये थे। यह स्थान, चिलावें-मठ से थोड़ी दूर उत्तर, 'हरदा-ब्रह्मचौरा' नाम से प्रसिद्ध है। इससे थोड़ी ही दूर उत्तर-पश्चिम एक स्तूप था, जहाँ से भगवान् बुद्ध ने वैशाली नगर के अन्तिम दर्शन किये थे। उससे भी थोड़ी दूर दक्षिण, वैशाली नगर से बाहर, एक विहार था, जिसके सामने एक स्तूप था। यही अम्बापाली के उस आम्रवन का चिह्नस्थान है जिसे उसने भगवान् बुद्ध को दान में दे दिया था। इस आम्रवन के भी एक ओर एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपने चचेरा भाई आनन्द से अपनी आनेवाली मृत्यु के बारे में कहा था। बौद्धग्रन्थों से मालूम होता है कि इस स्थान का नाम 'बेलूगामक' था। आजतक बेला गाँव उसी स्थान पर स्थित है।

बेला से थोड़ी दूर पर एक स्तूप था जहाँ हजार-पुत्रों ने अपनी माँ को पहचाना और अस्त्र-शस्त्र डाल दिये। यह आज तक 'कपरफोड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। 'कपर' को पहले 'चपर' कहते होंगे और चपर 'चापालय' का टूटा रूप है, जहाँ चाप डाल दिया गया था, और 'फोड़ा' निश्चय ही 'पुर' वा 'पुरा' का अपभ्रंश है।

उक्त स्थान से थोड़ी ही दूर पर एक स्तूप था, जहाँ भगवान् बुद्ध व्यायाम के खयाल से टहलते थे और उनके चरण का चिह्न हुयंग-सॉग के समय तक वर्त्तमान था। ज्ञात होता है कि यह चिह्न 'देवती' गाँव में था, जहाँ आजतक एक पत्थर 'सुदर्शन-चक्र' के नाम से पूजा जाता है। हुयंग-सॉग के जीवन-चरित से, जिसे 'हवाई ली' (Hwui Lie) ने लिखा है, मालूम होता है कि पटना में भी एक ऐसा ही पत्थर था जिसपर भगवान् बुद्ध के चरण का निशान था। उस पत्थर में भी, हवाई-ली लिखता है, कमल और चक्र बने हुए थे। आश्चर्य नहीं कि देवती वाले पत्थर पर भी चक्र का चिह्न होने के कारण ही लोगों ने उसे सुदर्शन-चक्र समझकर पूजना शुरू कर दिया हो।

देवती गॉंव में एक बहुत बड़ा पुराना तालाब है। और भी अनेकानेक पुराने चिह्न हैं जिनसे यह साफ जाहिर होता है कि यह एक प्राचीन बौद्धस्थान है। यह भी हरदिया-चौंर ही में पड़ता है। इस चरण-चिह्नवाले पत्थर से भी उपर्युक्त सभी स्थानों की दूरी उतनी ही पड़ती है जितनी हुयंग-सॉंग ने लिखी है।

देवती से कुछ दूर पूरब एक पुराना खॅंड़हर था जहॉं बुद्धदेव के धर्म-प्रचार करने के लिये एक विशाल उपदेश-मंदिर (Turretted preaching hall) था, जिसमें भगवान् ने स्वयं अपने मुख से 'सामन्त-मुख-धारिणी' और दूसरे सूत्रों का उच्चारण किया था। मेरे विचार से यह स्थान, कोटागारशाला और फा-ही-यान का 'डबल गैलरीवाला विहार' (Double-galleried Vihar)—सब एक ही हैं। वह स्थान आजतक 'बॉंड़ा-डीह' के नाम से, चिलावें और ककरा के उत्तर, हरदिया-चौंर में मशहूर है। हुयंग-सॉंग ने लिखा है कि इस खॅंड़हर से एक उज्ज्वल-ज्योति-शिखा निकला करती थी। एक हजार वर्ष से ज्यादा समय निकल गया, पर आज भी लोग कहते हैं कि 'बॉंड़ा-डीह' से जब-तब रोशनी देख पड़ती है—खासकर होली के समय संवत् जलाने की रात में।

बॉंड़ा-डीह के पूरब एक बड़ा चिह्न 'दह' या झील का है। यही 'दह' बौद्ध ग्रन्थों में 'मर्कटा-ह्रद' के नाम से मशहूर है। इसी 'ह्रद' के कारण आजतक शायद उस चौंर का नाम हरदिया-चौंर है। उस चौंर में, चिलावें के उत्तर, जो 'ब्रह्म' पूजे जाते हैं उनको लोग आजतक 'हरदा ब्रह्म' कहते हैं।

बौद्धग्रन्थों से विदित होता है कि 'मर्कटा-ह्रद' बन्दरों का बनाया हुआ नहीं था, बल्कि वैशाली-निवासी 'मर्कट' नामक एक नागरिक ने यह झील खुदवाई थी। मालूम होता है, यह 'ह्रद' वैशाली के महावन से सटा हुआ दक्षिण-भाग में था। चूँकि हुयंग-सॉंग ने लिखा है कि इस ह्रद के एक ओर एक बन्दर का आकार बनाया हुआ था, इसलिये विदित होता है कि पुराने समय में 'बॉंड़ा-डीह' को लोग शायद 'बनरा-डीह' कहते थे, जिससे बिगड़कर यह आज 'बॉंड़ा-डीह' हो गया है।

वैशाली से करीब छ: कोस उत्तर-पच्छिम एक बड़ा स्तूप था। इसी स्थान से लिच्छवि और वज्जि सरदारों को भगवान् बुद्ध ने अपना कमण्डलु देकर लौटा दिया था। वे भगवान् बुद्ध के कुशीनारा जाते समय उनका पीछा नहीं छोड़ते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भगवान् वहॉं शरीर-त्याग करने जा रहे हैं। उनके बहुत हठ करने पर भगवान् बुद्ध ने एक बड़ी नहर, बहुत दूर से, अपनी अलौकिक दैविक शक्ति से, बहवा दी थी। यह नहर अब भी नाले के रूप में बहुत दूर तक

सारन जिले में बहती है। इसका नाम आज भी 'बौधा-धार' है। उक्त स्तूप का स्थल शायद अजनी-सिक्टी गाँव में था, जहाँ आज भी एक पुराना तालाब और एक बड़ा टीला (डीह) मौजूद है। यह बौधा-धार के निकट ही है।

अन्त में फा-ही-यान और हु-यंग-साँग दोनों यात्रियों ने उस विहार का जिक्र किया है जहाँ राजा नन्दिवर्द्धन के समय में बौद्ध भिक्षुओं के बौद्धसंघ का दूसरा अधिवेशन (Second Buddhist Council of Buddhist Monks) हुआ था। दोनों यात्रियों के इस स्थल के वर्णन में भिन्नता है; किन्तु फा-ही-यान का वर्णन ठीक और साफ है। वह लिखता है कि जिस जगह भगवान् बुद्ध ने आनन्द से अपनी आगामी मृत्यु के बारे में कहा, उससे इस संघसभा (Council) का स्थल केवल एक मील पूरब था। पहले कहा जा चुका है कि 'बेलूगामक' वह स्थान था जहाँ बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बारे में पहले-पहल आनन्द से कहा था और वही बेलूगामक आजकल 'बेला' नाम से प्रसिद्ध है। बेला से एक मील पूरब एक बहुत प्राचीन एवं विशाल मठ का एक स्थान है, जिसे लोग आजकल पियरा-मठ कहते हैं। यही द्वितीय बौद्धसंघ की बैठक का स्थल होगा; क्योंकि फा-ही-यान के कथनानुसार 'बेलूगामक' से वह संघ का स्थल एक ही मील के लगभग था। बौद्ध ग्रंथो में लिखा हुआ है कि इसका नाम 'कुसुमपुरी विहार' था। इससे स्पष्ट है कि इसका बाहरी रंग कुसुम के फूल-सा पीला होगा, जिससे यह आजतक पियरा-मठ कहलाता है।

बेला, देवती, चिलावें और ककरा के बीच इतने मठ और डीह हैं कि साफ विदित होता है, ये सब पुराने बौद्धस्थल हैं। हु-यंग-साँग ने अपने विवरण (Records) में लिखा है कि वैशाली में बहुत-से तालाब, झीलें और अनेकानेक ध्वस्त स्थल थे। ये सब चिह्न सारन जिले के इस हिस्से में आज तक जीर्णशीर्ण अवस्था में अवशिष्ट हैं। इससे यह भी साफ जाहिर है कि महाराज नन्दिवर्द्धन की, जिन्होंने वैशाली में दूसरी राजधानी बनाई थी, हरदिया-चौंर के इसी हिस्से में राजधानी थी। इसका कारण स्पष्ट है। यह हिस्सा, पाटलिपुत्र के एकदम सामने, गंगा के उत्तरी तट के पास, है।

आशा है, बिहार के हजारों विद्यार्थी, पुरातत्त्व की खोज में जिनकी दिलचस्पी है, स्वतंत्र रूप से, इस खोज को आगे बढ़ायेंगे।



कविवर हलधरदास

श्री अच्युतानन्द दत्त, सहकारी 'बालक'-सम्पादक

प्राचीन काल से लेकर आज तक हिन्दी-साहित्य के विभिन्न अंगो के निर्माण में विहार का प्रधान हाथ रहा है। यही क्यों, यदि हम महापंडित राहुल सांकृत्यायन के शोधों के अनुसार बौद्ध-सिद्धों के दोहों और गान की भाषा को हिन्दी मानें तो प्राचीन हिन्दी-साहित्य की जन्मभूमि भी विहार को ही मानना पड़ेगा, क्योंकि उन बौद्ध भिक्षुओं के सदियों बाद हिन्दी के आदिकवि चन्द-बरदाई का आविर्भाव हुआ था। अस्तु।

हिन्दी-साहित्य में एक विचित्रता है। उसमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र पहले ही उगे और अस्तमित हुए; परन्तु आकाश (!) का आविर्भाव उन सबसे पीछे हुआ! माननीय मिश्रबन्धुओं का ऐसा ही मत है, परन्तु इन मान्य भ्राताओं की दृष्टि उस नीहारिका-पुंज पर नहीं गई जिसकी आभा से हिन्दी के वे सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र मंडल प्रभान्वित हुए थे। हमें यह सूचित करते हर्ष होता है कि उस नीहारिका-पुंज का जन्मस्थान भी विहार ही था। वह नीहारिका-पुंज 'विद्यापति' के रूप में प्रकट हुआ था।

यह कहने की धृष्टता हम इसलिये करते हैं कि विद्यापति की भाषा को बंगालियों ने 'ब्रजबूलि' (ब्रजभाषा) कहा है। यद्यपि विद्यापति और गोविन्ददास की भाषा मैथिली है, तथापि वह प्राचीन हिन्दी-साहित्य की भाषा के अतिनिकट है, इसीसे आज कुछ भाषातत्त्वविद् मैथिली को भी हिन्दी का एक उपभेद मानते हैं। इसपर कुछ मैथिल विद्वानों की राय है कि मैथिली हिन्दी का एक उपभेद नहीं; वरन बंगला, मराठी, उड़िया इत्यादि की भाँति स्वतंत्र भाषा है। हमारा मत है कि इसमें विवाद का स्थल नहीं है और न हिन्दी तथा मैथिली के मूल रूपों के अन्वेषण की ही आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दुस्तान भर में बोली जानेवाली सभी भाषाओं

को 'हिन्दी' ही मानना चाहिये। केवल मैथिली ही क्यों—बँगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तामिल, तेलगु इत्यादि सभी भाषाएँ हिन्दी की ही शाखा-प्रशाखाएँ मानी जायँ। हिन्दी-भाषा के दायरे को संकुचित करना उसकी महत्ता को घटाना है।

यद्यपि हमारा यह कथन कुछ अवैज्ञानिक-सा जँचता है और भाषा-विज्ञान के मर्मज्ञ इसकी खिल्ली उड़ाये विना नहीं रह सकते, तथापि है यह कठोर सत्य। भला, जो भाषा बंगाल, आसाम, उड़ीसा, सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र इत्यादि की भाषाओं से अपना सम्पर्क रखना नहीं चाहती और उनको नहीं अपनाती उसे भाषा-क्षेत्र में सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व करने का—'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी' कहलाने का—क्या अधिकार है? यदि वह ऐसा नहीं कर सकती, तो उसके लिये मैथिली, मगही या भोजपुरी को ही अपनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है।

हाँ, अब हम अपने विषय पर आते हैं। सोलहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती तक का समय मोटामोटी हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल कहलाता है। इतने लम्बे अरसे में रामचरितमानस, सूरसागर, रामचन्द्रिका इत्यादि कुछ ही ग्रंथ ऐसे लिखे जा सके जिनसे सर्वसाधारण का उपकार साधित हो सका है। शेष प्रायः अन्य सभी राज-दरबार को प्रसन्न करने के लिये और रसिक विलासियों के मनो-विनोदार्थ रस, छन्द और अलंकार पर ही, एक दूसरे की नकल पर, ग्रन्थ लिख-लिखकर पिष्टपेषण कर गये हैं।

उसी रीति-काल में—जब पीयूषवर्ष बिहारीलाल जयपुर-नरेश जयसिंह को 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु' का मजा चखा रहे थे, जब दक्षिण में भूषण 'जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को' कह-कहकर शिव-अवतार शिवाजी को उत्साहित कर रहे थे और जब महामति मतिराम 'ज्यों-ज्यों नेरे ह्वै' निहारते थे उनको अपनी कविता में 'त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई' देख पड़ती थी—बिहार के अंधे 'हलधर दास' ने भगवान् कृष्ण की आज्ञा से उनके मित्र (सुदामा) का चरित-गान करना आरंभ किया था, जिसको सुन-सुनकर लोगों का विश्वास अटल हो गया कि सुदामा की तरह हमारे दारिद्र्य का भी अंत होगा। आश्चर्य तो यह है कि साहित्य की उतनी बड़ी सेवा पर न तो 'सरोज'-कार ही की आँख गई, न 'विनोद'-कार की ही। और तो और, 'कौमुदी' में भी त्रिपाठीजी उसकी झलक न देख सके। इतना ही क्यों, इन 'विनोद,' 'सरोज' इत्यादि अन्वेषणग्रन्थों में बिहार के शताधिक सत्कवियों और सुलेखकों के नाम छूट गये हैं, और जो थोड़े-बहुत सौभाग्यवश

उल्लिखित हुए हैं उनके भी ऊटपटांग परिचय दिये गये हैं। ऐसा करने से हिन्दी-साहित्य का सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास प्रस्तुत नहीं हो सकता।

यहाँ हम हिन्दी-भाषा के चिर-उपेक्षित कवि 'हलधर दासजी' के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। आपका 'सुदामा-चरित' हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय है।

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के अन्तर्गत बिसौरा परगने मे पद्मौल नाम का एक गाँव है। कहते हैं कि इस गाँव को एक वैश्य महाजन पद्मसाह ने बसाया था। पहले इस गाँव में पाँच सौ घर श्रीवास्तव्य कायस्थो के थे। उस गाँव के कायस्थ बादशाही जमाने में बड़े-बड़े पदों पर रहकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। कविवर 'हलधर दास' का जन्म उसी गाँव में एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न कायस्थ-परिवार मे हुआ था। संयोग ऐसा हुआ कि बचपन में ही आपके माँ-बाप मर गये।

बचपन ही से आपको फारसी और संस्कृत की शिक्षा दी गई। आप अपनी दादी से सुनी हुई कहानियों को हिन्दी के छोटे-छोटे सरल पद्यो में बनाकर लिख लिया करते और उन्हें अपने साथियो को सुनाया करते थे। कुछ वयस्क होने पर पुराण, शास्त्र और व्याकरण भी थोड़ा-बहुत पढ़ने लगे; परन्तु अभी तक आपमें विद्या का पूरा विकास नहीं हो पाया था।

महाभारत में लिखा है कि जो अत्यन्त मेधावी होता है उसकी चार मे एक गति जरूर होती है। वह या तो अल्पायु होता है या निस्संतान रहकर दुःख भोगता है अथवा दरिद्र होता है वा चिररोगी हो जाता है। इसी अटल नियम का शिकार हमारे बालक हलधर दास को भी हो जाना पड़ा। आप एक बार शीतला से आक्रान्त हो गये। उसकी जलन से घबराकर आप अवसर पा घर के अन्दर चावल के कोठिले मे जा छिपे। लोगों ने आपकी बहुत खोज-ढूँढ की, आप न मिले। घर-भर में कुहराम मच गया। इतने में आपके घर की एक दासी उसी कोठिले के पास गई। हलधर दास उसीमे पडे कराह रहे थे। दासी डरकर भाग गई, और बाहर आकर सब वृत्तान्त लोगों से कहा। लोगों ने उस कोठिले से बालक हलधर को निकाला। आपकी दोनों आँखें शीतला से मारी गईं। कुछ दिनों में आप अच्छे तो हुए, परन्तु अंधे हो गये। लोग आपको 'सूर हलधर' कहने लगे।

अंधा होने पर आप भगवान श्रीकृष्ण के शरणापन्न हुए। गाँव के बालकों को बुलाकर आप हरिकीर्त्तन कराते और स्वयं भी हरिकीर्त्तन के सुन्दर-सुन्दर पद

बनाकर गाते-गवाते थे। धीरे-धीरे आपकी गिनती प्रेमी भक्तों में होने लगी। यों आपका नाम चारों ओर फैल गया।

एक बार उस गाँव के लोग जगन्नाथ-धाम को रवाना हुए। पहले रेलगाड़ी नहीं थी। रास्ते में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। जो जगन्नाथजी के दर्शनों के लिये विदा होता, उसके घरवाले उसके लौटने की कम आशा रखते थे और विदाई के समय तो वह करुण दृश्य उपस्थित हो जाता कि पत्थर भी मोम की तरह पिघल जाय! बहुत-से लोग तो बीच राह से ही लौट आते थे और उनकी बड़ी भद्द उड़ती थी। कहने का अभिप्राय यह है कि उस समय आज की तरह जगन्नाथजी की यात्रा सहज नहीं थी और जो जगन्नाथजी के दर्शन कर लौट आता, समाज में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा होती।

'सूर हलधर' ने भी गाँव के लोगों के साथ जगन्नाथजी जाने की इच्छा प्रकट की। पहले तो आपको अंधा होने के कारण लोगों ने साथ ले चलने में आपत्ति प्रकट की, परन्तु विशेष आग्रह देखकर आपको भी साथ ले लिया।

मार्ग में आपने एक स्वप्न देखा कि दिव्य वस्त्राभरण-विभूषित वेणुवादन-तत्पर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द प्रकट हुए और मन्द-मन्द मुसकुराते हुए आपको आदेश देते हुए कहने लगे—"हे हलधर, तुम मेरे पूर्ण भक्त हो और साथ ही कवि भी। आज से तुमको हरिलीला के गूढ़ रहस्य स्वयमेव ज्ञात हो जायँगे—तुम पूर्ण पंडित बन जाओगे। कलियुग के कवियो ने मेरी लीला का तो सविस्तर वर्णन किया है, परन्तु तुम यहाँ से घर लौट जाओ और मेरे मित्र सुदामाजी के चरित्र का सविस्तर वर्णन करो। तुम इसमें सफल हो जाओगे। मेरे अभिन्न भगवान् भूत-भावन चन्द्रचूड शिवजी का स्मरण किया करो। तुम पूर्ण योगी और इच्छामृत्यु बन जाओगे। तुम चाहो तो तुम्हारी आँखे आज ही की तरह कायम रह जायँ।"

हलधरजी भगवान् की उस अलौकिक रूप-राशि में निमग्न हो गये और जैसे बालक ध्रुव को विष्णु के पाञ्चजन्य शंख के स्पर्श-मात्र से सम्पूर्ण वेद-वेदांगों का ज्ञान हो गया था, वैसे ही आपमें भी सभी विद्याओं का विकास हो गया। आप बड़ी दीनता से बोले—"नाथ, आपने मुझ दीन पर कृपा की। मैं कृतकृत्य हो गया। आपने मुझ अधम को उबारकर अपना 'पतित-पावन' नाम सार्थक कर लिया। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। किन्तु, नाथ! जिन आँखो से आपको देख लिया, फिर उन आँखो से असार संसार को क्या देखूँ? अतएव आप ऐसी कृपा कीजिये कि अपने अन्तःकरण में आपको बराबर देखता रहूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये। हलधर जाग उठे और 'सुदामाचरित' की रचना करने लगे। अब आपको जगन्नाथदर्शनों की आवश्यकता न रही और आप घर लौट आये।

इस घटना का वर्णन आपने 'सुदामाचरित' के आरंभ में यों किया है—

अवचक ही प्रभु स्वप्न में, टेरि सुनायो वेनु।
जागु - जागु रे हलधरा, चन्द्रचूड़ - पद - रेनु॥
चन्द्रचूड़ - पद - जपन करु, जग सपना को ऐन।
और कछुक तू कान धरु, सुधा - सरिस मो वैन॥
कलऊ के कविगन अमित, बरने चरित अनन्त।
कहँ लगि सुजस बखानऊँ, सबै सलोने सन्त॥
तू चरित्र मम मित्र को, करु प्रसिद्ध संसार।
जासु चाहुरी प्रेम सों, हम कीन्ही आहार॥
उठे ततच्छन शब्द सुनि, लगे करन गुनगान।
प्रथमै इहै उचारि गुरु, पूरन ब्रह्म समान॥

'सुदामा-चरित' की रचना होने लगी। आप प्रतिदिन एक-एक छन्द बनाने लगे और आपके मित्र मुंशी रामलालजी उन पद्यों को लिख रखने लगे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुंशीजी से लिखने में यदि भूल हो जाती तो हलधर दासजी चट उसे सुधारकर लिखवाया करते थे। मुंशीजी को आपकी प्रतिभा और पांडित्य पर आश्चर्य हुआ करता था। इस प्रकार एक वर्ष में यह 'सुदामाचरित' पूरा हो गया। लोगों में इसका प्रचार भी थोड़े ही दिनों मे हो गया।

चूँकि भगवान् कृष्ण ने आपको शिवभक्त बनने का आदेश दिया था, इससे आप विश्वनाथ शिव के पूर्ण भक्त बन गये। आपका रचा संस्कृत मे 'शिव-स्तोत्र' इस बात का प्रमाण है। आप अनन्य भक्त होते हुए भी स्मार्त्त मत का अवलम्बन कर अन्य देव-देवियों की निन्दा के पक्ष-पाती न थे। आपके 'सुदामाचरित' से यह बात स्पष्ट है।

पद्मौल गाँव मे आपके स्थापित नर्मदेश्वरनाथ महादेव हैं जो 'हलधरेश्वर' भी कहे जाते हैं। आपका यह स्मारक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

जो कोई आपके सामने कुछ अशुद्ध लिखता, आप झट उसे बतला दिया करते थे। इससे कुछ लड़के आपसे चिढ़ गये और आपकी अनुपस्थिति में आपके बिछौने पर उन लड़कों ने कांटा रख दिया। आप बाहर से आते ही बौरा मे

बोले—"इस काँटे को बिछावन पर से हटा दो और मुझे अंधा जानकर मेरे साथ शरारत करनेवाले उन लड़कों से कह दो कि आज से उनके कुल में कोई विद्वान् न होगा। बड़ों से हँसी करने का यही फल है।"

कहा जाता है कि भक्तवर हलधर दास के शाप का प्रभाव आजतक उन वंशों में विद्यमान है।

आप घर के सुखी थे। आपके बड़े भाई ही आपके अभिभावक रहे। आप दरिद्रों के साथ बड़ी सहानुभूति रखते थे और समय-समय पर उनकी सहायता करते थे। बड़े भाई साहब बराबर इस यत्न में रहते थे कि हलधर दास को किसी तरह का कष्ट न होने पावे।

आपने आजन्म ब्रह्मचर्य से रहने का प्रण कर लिया था। बड़े भाई ने आपके विवाह के लिये बहुत जोर दिया। आपके इष्ट-मित्रों ने भी समझाया कि धृतराष्ट्र भी अंधे ही थे, फिर भी उन्होंने विवाह किया था; वंश की रक्षा के लिये दार-परिग्रह आवश्यक है। परन्तु, आप अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे; बोले—"प्रतिज्ञा से च्युत होना नरक का मार्ग है। मैं भगवान् के सामने ब्रह्मचर्य से रहने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। भीष्म ने, गुरु परशुराम के कहने पर भी, अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध विवाह नहीं किया था; फिर भी उनको गुरु-अपमान का पाप नहीं लगा। अब रही वंशवृद्धि की बात। मेरा वंश 'सुदामाचरित' से ही 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' कायम रहेगा। भगवान् कृष्ण मेरा उद्धार कर चुके हैं, इसलिये पिंड पाने की अभिलाषा मुझको नहीं है। आपलोग मेरी चिन्ता छोड़ दीजिये।"

विवश होकर सब चुप रह गये। आपका विवाह नहीं हुआ। आपने आजन्म कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत निबाहा। इस घटना से आपके चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

हलधर दासजी १०१ वर्ष की आयु तक जीते रहे। फिर आपने जीते-जी समाधि ले ली। पद्मौल में वह समाधि अब तक है। एक बार मुंशी मजलिस सहाय इस समाधि को खुदवाने लगे। उसमें से एक माला और एक खड़ाऊँ निकली। परन्तु मुंशीजी की जीभ मुँह से बाहर निकल आई और उनके प्राणों की नौबत आ गई। हलधरेश्वर महादेवजी की आराधना से वे स्वस्थ हो सके थे। यह घटना प्रमाणित करती है कि हलधर दासजी कितने बड़े योगी थे।

हलधर दासजी के जन्ममरण-काल का पता नहीं है; पर अपने 'सुदामा-चरित' की समाप्ति के काल का यों उल्लेख किया है—

सहस रस रस बिसद, कुसुमाकर सुदि पंचदस।
सम्पूरन पोथी नवीन दीनउद्धरन प्रेम-रस॥

इस पद्यांश में सन् १०६६ का उल्लेख हुआ है। इस सन् का चलन बंगाल और बिहार मे है, जो प्राय' हिजरी-सन् का समकालीन है। इसका नाम फसली है, जो ईसवी-सन् से ५९२ वर्ष छोटा है। अब सन् १०६६ मे ५९२ जोड़ दिया जाय तो सन् १६५८ ई० होता है। यही 'सुदामाचरित' की समाप्ति का काल है। हिन्दी में यह समय रीतिकाल के अन्तर्गत है। उस काल में, जब शृंगार रस का समुद्र उमड़ रहा था, 'सुदामाचरित' के समान सरस प्रबन्ध-काव्य की रचना करना कवि के लिये कम महत्त्व की बात नहीं है।

कवि को 'सुदामाचरित' बहुत प्रिय था। इसको वह अपना वंश चलाने वाला समझता था। उसके शब्दों में यह ग्रन्थ-रत्न 'दीन-उद्धरण' और 'प्रेमरस' है। हिन्दी-साहित्य में यही एक उसकी रचना * है। इसलिये मैं भी इसपर कुछ विशेष रूप से कहना चाहता हूँ।

'सुदामाचरित' में कुल ३६५ छप्पय हैं। छप्पय वह छन्द है जिसमें छ चरण होते हैं—चार चरण रोला छन्द के और दो चरण उल्लाला छन्द के। कवि ने स्वतंत्र प्रकृति के कारण, महाकवियों की तरह, कहीं-कहीं एकाध मात्रा घटा या बढ़ा दी है। नये-नये शब्दों के निर्माण और उनके प्रयोग में भी कवि ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। 'सुदामाचरित' की रचना का कारण पाँच दोहों में कहा गया है, जो यथास्थान उद्धृत है।

इस ग्रन्थ मे सुदामा की भयंकर दरिद्रता, उनकी पत्नी [जिसको कवि ने 'स्वकीया' से 'सुक्रिय' बना दिया है] का पातिव्रत्य और प्रेरणा, धन की महिमा, पत्नी की प्रेरणा से सुदामा का द्वारका जाना, कृष्ण-सुदामा का मिलन, चाउर-भक्षण, कृष्ण-पत्नियों का हास-विलास, कृष्ण-कृत सुदामा के आदर-मान से देव-मण्डली मे चिन्ता, कृष्ण की कृपा से सुदामा का राजा होना आदि विषय बड़े ही रोचक ढग से वर्णित है। साथ ही नगर-वर्णन, वर्षा-वर्णन, दशावतार-वर्णन भी प्रसंगवश आ ही गये हैं। संक्षेप मे यो कहना पड़ता है कि जहाँ नरोत्तमदास का सुदामाचरित कुछ ही साहित्य-प्रेमियों तक सीमित है वहाँ हलधर दास के सुदामा-चरित का प्रचार उत्तर-बिहार मे घर-घर है। मैंने आँखों देखा है कि लोग [illegible]

* यह ग्रन्थ मोटे अक्षरों में खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर, पटना) में छपा था, पर अब अप्राप्य हो रहा है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति मेरे पास है। —लेखक

श्रद्धा से गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस का पाठ करते हैं उसी श्रद्धा से हलधर दासजी के सुदामाचरित का भी पारायण किया करते हैं। उत्तर-विहार में लोकप्रियता की दृष्टि से रामचरितमानस के बाद इसी ग्रन्थ-रत्न का नम्बर है।

अच्छा, पहले सुदामाजी के दारिद्र्य का वर्णन कवि के शब्दों में सुन लीजिये—

विप्र सुदामा एक दीन होते पुहुमी पर।
निर्धन निपट निकाज जनम ते परम दुखी नर॥
बसनहीन कोपीन एक सोऊ बल्कल के।
दुर्बल दसा मलीन मूँज मेषल विहल के॥
टूटी मढ़ी पुरान में बरखा हिम आतप सहत।
खट प्रकार दुरलभ सदा कन्द मूल फल भखि रहत॥

साथ ही, सुदामा की पत्नी का भी चित्र देखते चलिये। आप देखियेगा कि बेचारी पद्मिनी किस तरह दरिद्रता की रात में दुःख के पाले से विकल हो रही है—

सुकिय सुदामा-नारि कन्त की सदा अधीनी।
भूषन बसन मलीन नयन कज्जल बिनु दीनी॥
बिनु परिमल तन तपत तेल बिनु चिकुर मलिन सन।
मानों मधुप-समाज दीन हारे मधु बिनु तन॥
दुख-तुषार निसि मलिन मन परत होत अति बेकला।
तौं पति-रवि सेवा सुमुखि आलस करे न विहुला॥

यद्यपि इस दरिद्र दम्पती पर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़े हैं, फिर भी उनका मन-मधुकर भगवान् के पद-पद्मों में आसक्त है—

उनछ कर्म करि कन्त कन्तिनी दिवस गँवावत।
बहुत काल तिय कहे कनिक भिच्छा करि लावत॥
विद्यावारिधि भक्तिइन्दु पै दीन बने हैं।
निर्विवेक विधि पदुमनाल में कट घने हैं॥
यदपि मीन मन दम्पती परेउ जाल सम दुख बिहुन।
तदपि ललक नित मिलन को विमल वारि श्रीपतिचरन॥

अब इस दरिद्र दम्पती का वार्त्तालाप भी जरा सुन लीजिये। किस प्रकार धन-प्राप्ति के उपाय पर दोनों प्रेमियों में प्रेम-कलह हो रहा है। पद्य सरल और सरस हैं,

इसलिये उनके अर्थ देने की जरूरत नहीं है। अच्छा तो सुनिये, सुकवि क्या कहती हैं—

एक समय दुख-भरी नारि कन्तहि समुझावे।
सुनहु कन्त मम विनय दीनता अधिक सतावे॥
बिनु उद्यम सन्तुष्ट आतमा सुन्यौ न साईं।
बिनु हरि-भक्ति न मुक्ति काहु त्रिभुवन में पाई॥
कनिक भीख से नाहिं धन अधिक मान आदर न रह।
जौं महेस त्रिभुवनधनी तौं भिखारि संसार कह॥

अब सुदामा का उत्तर भी सुन लीजिये—

धन कारन हरिभजन छाड़ि कै जाउँ नृपतिपुर।
सुरपदवी लै शुक्र शुक्र पुनि भयउ दैत्यगुरु॥
चिन्तामनि पद चिन्त्य चिन्तनो अपर कहा धन।
धन - कारन हरि द्वारपाल जलचर-चारन-तन॥
धर्म रहे निर्धन रहे धनिक भये नहिं धर्म रहु।
इहै दसा तिय मानि सुख चरन-सरन गोविन्द गहु॥

विदुषी पत्नी कब चुप होनेवाली थीं ? फिर समझाया—

धन-बल वेद पुरान ग्रन्थ मत श्रुति कीन्हो है।
धन-बल विविध प्रकार दान विप्रन्हि दीन्हो है॥
धन-बल यज्ञ-समूह सारि सुरपति-पदवी लह।
धन-बल गोपुर-पिंड-दान ते पितर त्रिपित रह॥
धन-बल धनिक जगत्र में, बहु दुख-संकट ते बचे।
धन बिनु पिय वारिधि-जगत धर्मसेतु कैसे रचे॥

लाचार सुदामा पूछते हैं कि धन कैसे मिलेगा। इसका उत्तर भी उनकी पत्नी देती है—

जेहि उपाय धन मिलै कन्त नर लहै परम सुख।
करन कहौं सो कियो नाथ अब बढ़ै दुगुन दुख॥
एक उपाय सुखेन नाथ हित हृदय गुन्यौ है।
द्वारावति में कृष्णराय के धनिक बन्यो है॥
आजु सबै राजा जगत कहत महाराजा उन्हैं।
तिन्हहिं जाय पिय जाँचिये परम सीलसागर सुनैं॥

भगवान् कृष्ण सुदामा के बालसंगी थे। आज राजा हुए तो क्या, उनके सभी चरित सुदामाजी जानते हैं। बोले—

कृष्णराय को सील कन्तिनी तुम न सुनी है।
नंदराय जसुमती पालि कैं सीस धुनी है॥
बृज गोपी निज नाथ जानि कुल-कानि गँवायो।
तेहि वियोगिनी कियो कूबरी-कन्त कहायो॥
प्राननाथ जानत रहे, बृजबासी उत्तम क्रिया।
तेहि त्यागत नहि बार भौ, कौन सील उनमें प्रिया॥

परन्तु पत्नी ने क्या कोदो देकर पढ़ा था जो इसका उत्तर न देतीं? देखिये, श्रीकृष्ण पर आरोपित दोषों का निराकरण किस ढंग से कर रही हैं—

दया हेतु ब्रज तजेउ बंदि बसुदेव छुड़ायौ।
जदुकुल छप्पन कोटि कमल कहँ भानु कहायौ॥
जो बृजबधू रहस्य-केलि में कान्ह भुलाते।
तो दस अष्ट सहस्र छूटि कैसे घर जाते॥
नृपकन्या सोलह सहस रहीं बिकल तेहि सरन दिय।
दयासिन्धु गोबिन्द गुनि तुमहुँ द्वारका जाहु पिय॥

अब सुदामाजी अपनी पत्नी के कायल हो गये और—

जब समुझाई नारि नाह तंडुल तब लीन्हौ।
'शुक्लाम्बर शशि' वरण भाखि मारग पग दीन्हौ॥
चले जाहि पै अधिक सोच हिरदय मो आनें।
कृष्णराय नृपराज दीन केहि बिधि पहिचानें॥
तदपि जाइहौ देखिहौं प्रिया प्रसंसेउ बहुत बिधि।
जो मों पर कछु रीझिहैं तौ तो जानिहौ सीलनिधि॥

सुदामाजी विद्यावारिधि हैं। फिर भी उनकी पत्नी ने उन्हें अच्छी राह सुझाई है। इससे जान पड़ता है कि कवि के हृदय में स्त्रियों के लिये कितना ऊँचा स्थान था। उस रीतिकाल में—जिसमें स्त्रियों के नखशिख का खुला वर्णन केवल शृंगार के उद्दीपन के लिये किया जाता था—स्त्री का ऐसा महत्त्वपूर्ण चित्र उरेहना किसी भी कवि के लिये कम महत्त्व की बात नहीं है।

बीच में द्वारका के विशाल वैभव का बहुत लम्बा वर्णन छूट जाता है। सुदामाजी कृष्ण के द्वार पर पहुँच जाते हैं। द्वारपाल उनके मुँह से यह सुनकर

अचरज में पड़ गया है कि वे कृष्ण के सहपाठी मित्र हैं। उसे चकित देख सुदामाजी कहते हैं—

हौं भिखारि ससार दीन दुर्बल दुर्दस हौं।
उनछ कर्म के करनहार दारिद के बस हौं॥
विप्र सुदामा नाम कृष्ण हैं मित्र हमारे।
मित्र-मिलन हो द्वारपाल आये हरि-द्वारे॥
अब एतनी विनती सुनौ, अहो पवरि तुम चतुर नर।
कहो जाय गोपाल ते खड़ो सुदामा द्वार पर॥

अब कृष्ण-सुदामा के मिलन का प्रसंग देखिये—

सुनत सुदामा नाम नाथ सुभ घडी गुन्यौ है।
बहुत दिनन पर आजु मित्र-आगमन सुन्यौ है॥
कर बीरी करपूर पान कर ते डारी है।
रही न सुधि पट पीत पानही पगु छारी है॥
रही लटपटी पाग सिर, सोउ न सके बनाइकै।
तजि भूषन ऐसेहि चलै, मिलै सुदामहि धाइकै॥
सजल नयन गोपाल मित्र के पायँ गहे हैं।
अंकमालिका देत बहुरि उर लाय रहे हैं॥
दोउ मित्र के नेत्र नीर ढरकन लागे हैं।
द्वारावति के लोग देखि धीरज त्यागे हैं॥
जौं यादव समुझावते महाराज धीरज धरैं।
तौं अधीर होते अधिक बिलखि बिलखि अंकम भरैं॥
जब ऊधो अक्रूर आदि यादव समुझायो।
तब गोपाल तजि अंकमाल भुज कंध चढायो॥
कुसल बूझते चले जहाँ रुकमिनी-भवन है।
हरि-वधूटियाँ हँसैं कहैं यह दीन कवन है॥
बहुत वधू हँसि हँसि कहैं जौं यह प्रभु की रीत है।
तौं सुनियत कुब्जा रमन अरु माली के मीत हैं॥
दहिन कमल कर लिये कनक झारी हरिवामा।
वाम कमल कर ते पखारती चरन सुदामा॥

जासु चरन-रज धरत ध्यान मुनि जन्म गँवायो।
जाकी गति नहि शिव विरंचि पन्नगपति पायो॥
जेहि सुर सदा पुकारते जगदम्बा जगतारिणी।
तिन्हें आजु सुर देखते भिक्षुक-चरण-पखारिणी॥

इस पद मे 'पखारिणी' शब्द पर ध्यान दीजिये। कवि ने स्वतंत्रता से पखारनेवाली के अर्थ में इसका प्रयोग किया है। पूर्वी शब्दो का प्रयोग तो इस कवि के लिये स्वाभाविक ही है।

अब तंडुल या वाहुरी के भक्षण का प्रसंग पढ़कर आनंद लूटिये। भगवान् कृष्ण अपने मित्र से मित्राणी का संदेश माँगते हैं। मित्र महोदय सकुचकर कहते हैं कि वह बेचारी दुखिया आपके लिये क्या संदेश भेजे? इसपर भगवान् का विनोद सुनिये—

दोउ मित्र हम गुरु दयाल ते पढ़े सरल मत।
रहे वसत इक संग सर्वदा निपट कपटगत।
हम ते कबहुँ न मित्र जीव कीन्ही चतुराई।
अब कदापि कछु शयन-सेज पर सखी सिखाई॥
तनिक ढिठाई होइ परचौ, मित्र छमा सो कीजिये।
दीन आपुनो जानिकैं, सखी-सँदेसो दीजिये॥
जौं प्रबोध दइ मित्र दीन ते मित्र नृपतिवर।
तौ पुनि तजी न लाज वाहुरी लई न निजकर॥
प्रभु देख्यौ मम मित्र लाज ते धरत न आगे।
लई मोटरी ऐंचि काँख ते खोलन लागे॥
अधिक लजाने विप्र तब, कह्यौ त्रिया मति छोट री।
जिन दीनी मम साथ कै, भर्म गँवावन मोटरी॥

यहाँ स्त्री से चिढ़कर सुदामा से 'प्रिया' के बदले 'त्रिया' कहलाना भी प्रसंगानुकूल बहुत ही समुचित है। हाँ, तो आगे चलिये—

लै गोपाल इक मुठी वाहुरी मुख डारी है।
अधिक स्वाद के चखे सखी-यश अनुसारी है।
बहुरि दूसरी मुठी बाहुरी भखे गुसाईं।
दुगुनो स्वाद सुगंध दूसरी बार जनाई॥

चपरि लई पुनि तीसरी, असन करन चाह्यौ हरी।
तुरत हाथ श्रीनाथ के, लपकि पाटवेषी धरी॥
हटकि रहे हरि हस हसनी कहा करी है।
सुभग स्वाद में कहा कंतिनी बाँह धरी है॥
हो दयाल, दुइ मुठी बाहुरी यह खायो है।
दुइ ही ते द्विज दीन लोक दोनों पायो है॥
पुनिक तीसरी खाइकै, लोक तीसरो दीजिये।
हम सबको लै कन्त जू, बसोबास कहँ कीजिये॥
हो सुन्दरि सुभमती प्रेम तुम सखी न जानी।
देत मित्र पै तीन लोक संका कस आनी॥
इन फरुही ते आजु प्रिया अस तृप्त भये हम।
तीन लोक दै दीन मित्र करते मघवा सम॥
हौं लै सकल सहेलियाँ, लघु अनुचर कहलावते।
सखी-सहित श्रीमित्र-पद, सेवत ही सुख पावते॥

हे जीवन-सहचरियो, हमारा तो विचार है कि—

अमिअ बसै ससि माहिं अग्निभोगी खग भाखैं।
भक्त कहैं सुरलोक माहिं किन्नर सुर चाखैं॥
कोउ कहै अस नागलोक में बसत अमिअ-रस।
रसिक भाखते सदा अधर-पल्लव-कामिनि बस॥
गुंजि गुंजि मधुकर कहै, मो अमरित सुरतरु लसै।
हम जानत है कंतिनी, सखी-बाहुरी में बसै॥

केवल रुक्मिणी आदि रानियों के ही नहीं, वरन् देवताओं के मन में भी खलबली मची हुई है कि अब क्या होगा। कवि के शब्दों में ही सुनिये—

विधि है मुग्ध विचार सोच मन महँ कीन्हो है।
आजु किधौं मम नाथ दान मोहू दीन्हो है॥
ओढ़ि पीत पट छीरसिन्धु महँ रहे गुसाईं।
आजु किधौं द्विज दीन दान मोहूँ को पाई॥
दहलि-दहलि सुरगन कहैं, हम छपाहिं काके सरन।
द्विज खवाइ लघु बाहुरी, सबै चाह चेरो करन॥

अमरनगर ते अमिअ साजि सुरबधू चली है।
इत नाचे सुरनटी जात तेहि बीच मिली है॥
इन पूछे तुम किते जाहु सुरबधू सयानी।
उन भाखी लिये अमिअ पूजिबे हरि जगदानी॥
बहुरि कह्यौ इन सपथ दै, लेइ अमरित घर जाहु री।
जो चाहहु हरि पूजिबो, तो ढूँढ़ौ कछु बाहुरी॥

इतना ही नहीं, स्वयं भगवान् को अब अन्य प्रकार के भोजनो में स्वाद नहीं मिल रहा है। इसपर सत्यावती या सत्यभामा की चुटकियाँ भी बड़ी मार्मिक हैं। इनका रस भी चखते चलिये—

भोजन करत कृपाल नाथ बोले मृदुबानी।
महा अचंभौ एक आज लागत है रानी॥
जब ते बाहुरी सखी-हाथ की हम खाई है।
तब ते जानत मधुर मोद में करुआई है॥
मुसुकानी सत्यावती, कह्यौ अहीरिन को सही।
कै फरुही मृदु मोद सम, कै पियूष जानत मही॥

सत्यभामा ने तो यहाँ तक कहा—

'आजु सुभद्रहि देत कन्त करते न खुटाई'।

इसपर भगवान् ने कहा—

'मित्र निकट में आपुनो निरमल नाम नटी सुनौ'।

सत्यभामा कहती हैं—

क्यों न होंहि हम नटी नाथ मम नट कहलायो।
कालिन्दी-तट नाचि नाचि बृजबधू रिझायो॥

और आगे कहती हैं कि इनपर रामावतार के समय से ही स्त्रियों की नजर लग रही है। स्त्रियाँ इनको वश में करने के लिये कौन-कौन टोटके नहीं करतीं! सुनो—

जदपि भीलनी रही टोनही तदपि न संसौ।
रूपगर्विता जनकनन्दिनी रही असंसौ॥
जौ भिलनी मत ठानि दुर्ग टोनो अनुसार्यौ।
तौं कमला ते नेह नाथ कबहू न बिसार्यौ॥
अब की बार हौ सौतिनी अस परबल टोनो लहै।
फरुही-फरुही रटत पिय सखी-पास जानौ चहै॥

सचमुच सखी को भगवान् नहीं भूले। उनको विपुल ऐश्वर्य देकर उनके पास पहुँचे। देखिये—

अर्ध निसा गत होत रैन सोये नर-नारी।
सिल्पराय को संग लाइकै चले बिहारी।
पहुँचि मित्र के नगर बिस्वकर्महिं समुझायो।
छिनक एक महँ कनककोट मनिमहल बनायो॥
सकल लोक की संपदा तुरत आनि मंदिर भरी।
श्रीगोपाल टेरन लगे जागु जागु सखि सुन्दरी॥

सखी चौंक उठीं। सामने अपने आराध्य देव को खड़ा देखा। हाथ जोड़कर कहने लगीं—

हो गोपाल करुनानिधान करतार गोसाईं।
तुम ही ते गज गीध व्याध गनिका गति पाई॥
रजहिं न दर्प महेस-सीस चढ़ि ससि सरवर कर।
कृपानिधान सुजान हरन जब लसत ताहि पर॥
रजहूँ ते हम नीच तिय नाथ नाथ-दृग-सहसधर।
अपनो विरुद बढ़ावनो सखी कहत राजाधिवर॥

जब भगवान् ने विदा माँगी तब उनकी सखी कहती हैं—

दृग फूटे तब दरस नाथ छूटे मम दृग ते।
हते व्याध तन प्रीति नाहिं टूटे उन मृग ते॥
जो प्रभु चरन-सरोज पेखते सखी सोहाहीं।
तो कैसे हम कहहिं नाथ मो गृह ते जाहीं॥
प्रभु इच्छा जो ऐसई मो ते कहा बसाइहैं।
मो विहंग पद-विटप रखि नाथ द्वारका जाइहैं॥

अब, सुदामा द्वारका से विदा हुए हैं। पास एक कौड़ी भी नहीं है। द्वारका के लोग कृष्ण की इस निष्ठुरता पर चकित हैं।

भखि फरुही प्रभु जगत द्रव्य ले द्विज गृह पूरे।
लूटे जाहि कुबेर रुद्र जब खात धतूरे॥
द्वारावति के लोग जानते निठुर गोसाईं।
हेम-छेम कन कियो दीन प्रति दृगनि छिपाई॥

सबै कहैं जत दीन जन इते आइ निर्धन गले।
सबै धनिक ह्वै संचरैं एई दीन निर्धन चले॥

इधर सुदामा कृष्णजी के शील पर मुग्ध हो उनकी बड़ाई करते चले जा रहे हैं—

जेते धन संवूह तेतई सील बड़ाई।
जेते राजमहत्त्व मेरु तेते नवताई॥
हमते उन तो अधिक प्रीति सों भाव जनाई।
और कहा जो लघु सँदेस फरुही उन पाई॥
तैसइ ज्ञानविचच्छिणी महाराज की रानियाँ।
तौं जपि जपि सब बस भये सकल भूत के ज्ञानियाँ॥

फिर घर की सुधि आई; पर पास एक कौड़ी भी न देखकर लगे अपना क्रोध भगवान् ही पर झाड़ने—

धन सर्वस ले जिन भिखारि बलि-पीठ नपायौ।
तिन्हैं कन्तिनी महाराज दानी ठहरायौ॥
जिन भूखे में जूठ भीलनी नहि बाँची है।
तिन्हैं, जाँचनो कह्यौ, कन्तिनी मति काँची है॥
जे लालच ते कनक के कनकमृगा पाछे परै।
ते कनिका भरि कनक दे कब काहू को उपकरै॥

खैर, क्या करते ? इसी तरह बकते-झकते सुदामाजी अपने गाँव के पास पहुँचे तो—

चले दीन चिन्ता बिहाइ निज पुर अमरे हैं।
मनिमंदिर सौवर्न धाम तत देखि परे हैं॥
जह देखे तहँ धवल धाम है कनक अटारी।
रत्न लाल विद्रुम प्रवाल भूपित नरनारी॥
फहराती चामर धुजा लगी माल मुक्तावली।
करि करिनी की भीर महँ रनित सब्द घंटावली॥

अरे, फिर द्वारका ही पहुँच गये क्या ? पर—

अस मति गति मम हरी नाथ जो कहि न परत हैं।
द्वारावति में बहुरि आनिकैं निलज करत हैं॥

नहि कोउ करहिं प्रमान दीन को गैल भुलान्यौ।
सबै कहैंगे दीन मीत सुख देखि लुभान्यौ॥
पुनि बोले नहि द्वारिका भूले हम संका करैं।
यह तो देखियत नगर में नृप सुदाम डंका परैं॥

यह राजा सुदामा कौन है? इसने मेरी झोपड़ी उजड़वा दी, तो क्या मेरी स्त्री भी ले ली? धर्मात्मा राजा तो ऐसा नहीं करता। पर—

नृप को कहा बिचार पांडु से महा बिचारी।
मृग ही के भ्रम बिप्र बिप्रनी हत्यौ प्रचारी॥
गज-भ्रम ते सर माँह सब्दभेदी सर मार्यौ।
ते सर कठिन कराल तीन मूरति संहार्यौ॥
परसुराम जननी हती जासु ज्ञान गुन अजर ते।
अस विचार पूर्वहि छुट्यौ, नृप सुदाम तो अपर ते॥

परन्तु, अब स्त्री के लिये किसके पास फरियाद पहुँचाई जाय? राजा के विरुद्ध यहाँ कौन सुनेगा? देवलोक मे भी जाने से कठिनाइयाँ हैं। सुदामा का तर्क-वितर्क सुनिये—

निज दुख बिधि ते उचित भाखिबो जगत कहत है।
उनहूँ को कत कोटि टकटकी लगी रहत है॥
मीत हमारे निठुर नारि को बिरह न जानैं।
बिरह समय उन अस्वमेध मंगल मख ठानैं॥

× ×

सिव लइ आक धतूर मातु लीन्हीं बिकलाई।
हम गरीब केहि पास जाइकै बिपति सुनावैं।
तीन ठौर तीनों अगाध गोचर कबि गावैं॥

× ×

सर्व देव ते निर्भरोस हम दीन भये हैं।
काहु देव नहि बिप्र दीन को बाहु लये हैं॥
उद्दालक-सी होति नारि तो सोच न होते।
भिच्छुक ही सी होति तऊ कबहूँ नहिं रोते॥
मम तिय रही पतिव्रता निसि ससि छबि अँधियार में।
अस तिय बिनु पिय जीवनो धृग जीवन संसार में॥

ऐसा सोचकर सुदामाजी जंगल को चले। इतने में उनकी पत्नी की दृष्टि उनपर पड़ी। वे अब दीन न थीं—महारानी थीं। आरती सजकर सहेलियों के साथ स्वामी की अगवानी करने चलीं। यह देखकर सुदामा सोचते हैं—

रानी सखी-समाज पेखि द्विज को भरम्यौ मति।
इहाँ कहाँ उडुगन समेत आवत रजनीपति॥
सची किधौं सुरवधू साथ नभ ते सँचरी है।
रती किधौं निज पतिहिं जोहती भूलि परी है॥
समुझि कह्यौ पीछे पुनिक पुराचीन सो भारती।
यह नवीन सोभा लसत नृप सुदाम-रानी हुती॥

दोनों में योग्यतापूर्ण वार्त्तालाप हुआ है। वह स्थल बहुत ही मनोरंजक है। उसमें अनेक चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ हैं। किन्तु विस्तार-भय से उसे छोड़ना पड़ता है। सुदामा ने अपनी पत्नी को पहचान लिया है। सब बातें मालूम होने पर राजभवन में आ गये, और कृतकृत्य हो युगल दम्पती भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करते हैं—

हो काली फनि के मयूर, मधुकर मधुवन के।
संजीवन ब्रज के, उदार पारस निर्धन के॥
हौं पामर द्विज पर्‌यौ भूलि अज्ञान मोहवन।
अनजाने में बिग नाथ सौं कियो कछुक सन॥
अब साँचे अनुमानेऊ भृगु-अघ-दोष-छमा करन।
भजु रे मूढ़मन हलधरा कृष्णचरन संकट-हरन॥
हो नवीन नीरद-सरीर सिर काकपच्छ-धर।
मोरपच्छ सोभासमेत मुरली बिचित्र कर॥
दई दीन को महाराजगी देस-देस की।
भक्तिसुधा की हमें प्यास नहि आस ओस की॥
अब साँचे पहिचानेऊ महाराज औढर-ढरन।
भजु रे मूढ़मन हलधरा कृष्णचरन संकट-हरन॥

बस, सुदामाचरित की कविता की बानगी हम दिखला चुके। विज्ञ पाठक देखें कि हलधर दासजी केवल इसी एक ग्रंथ से महाकवि न सही—कवि कहलाने के भी अधिकारी हैं वा नहीं। मैंने समालोचना नहीं लिखी है जिसमें इनकी कविता के गुण-दोषों की पूरी समीक्षा की जाती। हमने हिन्दी-संसार के सामने कविवर हलधर दास के जीवनवृत्त और इनकी कविता का संक्षिप्त परिचय-मात्र दे दिया है।



बिहार का वैभव

पंडित कपिलेश्वर मिश्र, वैयाकरणशिरोमणि

जिससे किसी वस्तु के गौरव की वृद्धि हो, यश का विस्तार हो, गुण का कीर्त्तन हो, सौन्दर्य का उत्कर्ष हो और महत्त्व की चर्चा हो, वही उसका वैभव है। बिहार के भी कुछ वैभव ऐसे हैं जिनसे उसकी गुरुता, कीर्त्ति, कुशलता, शोभा और महत्ता की बड़ी ख्याति है। इस लेख में ऐसे ही वैभवों का वर्णन है। उस वर्णन को सम्पन्न एवं आकर्षक बनाने के लिये प्राचीन ग्रंथों के सुलभ प्रमाणों के साथ-साथ कहीं-कहीं लोकविश्रुत किवदन्तियों का भी आश्रय लेना पड़ा है। अपनी पुरातन सभ्यता और संस्कृति का अभिमान रखनेवाले श्रद्धालु राष्ट्रभक्तों के लिये तो प्राचीन प्रमाण सर्वमान्य और आदरणीय हैं ही, किवदन्तियों को भी हम सर्वथा निराधार नहीं कह सकते। अनुसन्धानशील ऐतिहासिकों के लिये कभी-कभी किंवदन्तियाँ भी महत्त्व-प्रसविनी सिद्ध होती हैं। इस दृष्टि से हमने उन्हें तिरस्करणीय न समझ संग्रहणीय ही समझा है। आशा है, विचार-शील पाठक अपनी सारग्राहिणी बुद्धि से इस लेख का उपयोग करेंगे।

पहले बिहार-प्रदेश का यह रूप न था, जो आज हम देखते हैं। इसके अनेक भाग थे और वे तीरभुक्ति (तिरहुत=मिथिला), अङ्ग, मगध, कीकट, कारूष इत्यादि नाम से प्रसिद्ध थे।

तीरभुक्ति (मिथिला)

शतपथब्राह्मण के अनुसार, नदियों की बहुलता से, यह भूमि दलदल-सी थी। अग्निदेव ने इसको सुखाकर कठोर बनाया। केवल कोसल की पूर्वी सीमा पर बहनेवाली 'सदानीरा' (गंडकी) जलमय रह सकी। अग्निदेव की आज्ञा से माधव और रहूगण (गोतम) सदानीरा के पूरबवाले भाग में जा बसे, जिसका

नाम 'त्रिदेह' या 'तीरभुक्ति' था। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नदियों की अधिकता से दलदल बनी हुई भूमि पर जब ऋषियों ने नदियों के किनारे अगणित यज्ञ किये, तब असंख्य होम होने से इस भूमि में कठोरता आ गई। इसी कारण इस भूमि का नाम तीरभुक्ति (तिरहुत) हुआ। मिथिला और विदेह के नाम से तो यह प्रदेश पीछे प्रसिद्ध हुआ।

भविष्यपुराण के अनुसार अयोध्या के महाराज मनु के पुत्र 'निमि' इस यज्ञभूमि में पदार्पण कर असंख्य यज्ञों और ऋषियों के दर्शनों से अपनेको कृतार्थ समझते थे। उनके पुत्र 'मिथि' ने अपने बाहु-बल से यहाँ एक नगर बसाया, जो 'मिथिला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुरी-निर्माता होने के कारण 'मिथि' का दूसरा नाम 'जनक' भी पड़ा। यथा—

निमेःपुत्रस्तु तत्रैव मिथिर्नाम महान्स्मृतः।
प्रथमं भुजबलैर्येन तैरहूतस्य पार्श्वतः॥
निर्मित स्वीयनाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम्।
पुरीजननसामर्थ्याज्जनकः स च कीर्तितः॥

—(भविष्यपुराण)

राजाऽभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्म्मणा
निमिः परमधर्म्मात्मा सर्वतत्त्ववतां वरः।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः॥

—(वाल्मीकीय रामायण)

यज्ञाभिलाषी निमि का निमन्त्रण अस्वीकृत कर जब वसिष्ठ इन्द्र के पुरोहित हो स्वर्ग चले गये, तब वसिष्ठ की अनुपस्थिति में भृगु आदि मुनियों की सहायता से निमि ने यज्ञ-सम्पादन किया। इस काम से वसिष्ठ को स्वर्ग से लौटने पर बहुत क्रोध हुआ और निमि को 'विदेह' हो जाने का शाप दिया। वसिष्ठ के इस काम से सब जगह हाहाकार मच गया। प्रजा घबरा गई। तब ऋषियों ने अराजकता के डर से निमि को मथ डाला, उससे जो उत्पन्न हुए उनका नाम 'मिथिल' या 'विदेह' पड़ा। ये 'जनक' नाम से भी प्रसिद्ध हुए।

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥

—(श्रीमद्भागवत)

निमि की उन्नीसवीं पीढ़ी में राजर्षि 'सीरध्वज जनक' हुए, ये जीवन्मुक्त थे।

वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा।
विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः॥

—देवीभागवत, स्कन्ध ६

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि॥

—(श्रीमद्भागवत)

इससे साफ झलकता है कि महाराज जनक ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था कि उनके पार्श्ववर्त्ती गृहस्थ भी सुख-दुःख से मुक्त थे।

जब व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने अपने पिता से तपश्चर्या के लिये आज्ञा माँगी, तब व्यास जी ने योगिराग जनक का दृष्टान्त देकर अपने ही घर में रहकर तपस्या करने के लिये अनुरोध किया। इस बात से शुकदेवजी को सन्तुष्ट न देखकर व्यासजी ने उन्हें राजर्षि जनक के यहाँ उपदेश-ग्रहण करने के लिये जाने की आज्ञा दी।

वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लङ्घ्य महामतिः। हिमालयं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति॥
प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमम्। प्रजाश्च सुखिताः सर्वाःसदाचाराः सुसंस्थिताः।

—(देवीभागवत)

मिथिला पहुँचकर जनक के द्वारपाल की विद्वत्ता से शुकदेवजी चकित हो गये। 'किं सुखं, किं दुःखम्' इत्यादि द्वारपाल के प्रश्नों के समीचीन उत्तर दिये बिना वे भीतर न जा सके। शुकदेवजी का स्वरूप बड़ा ही तेजस्वी था। वे बहुत बड़े ज्ञानी थे। उनका अपने यहाँ आना सुनकर जनक बहुत प्रसन्न हुए। जनक ने उनके विश्राम के लिये सब उचित प्रबन्ध कर दिया और उनके योगी होने की परीक्षा के लिये उनके पास अत्यन्त सुन्दरी दासियाँ भेजीं।

गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः।
ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः॥

—(देवीभागवत)

जनक के इस काम से शुकदेवजी चकित हो गये। साथ ही, अपना अपमान समझकर दुःखी भी हुए। वे उन दासियों को मातृवत् समझकर योग में लीन हो गये।

दासियों के मुख से ये सब बातें सुनकर महाराज जनक प्रसन्न हो अपने



गिरियक (पटना) की पहाडी पर एक स्तूप



गिरियक (पटना) की पहाडी के शिखर पर ईंटो का प्राचीन स्तूप (दूर का दृश्य)



ऊपर—खुदाई के बाद मनियार-मठ (राजगृह) का साधारण दृश्य। नीचे—खुदाई में पाये गये मिट्टी के पा



गुरु, पुरोहित, मन्त्री आदि के साथ शुकदेवजी के पास आये। जनक के सब अभिप्राय और अपने सब प्रश्नों के समुचित उत्तर सुन-समझकर शुकदेवजी का सारा सन्देह दूर हो गया। जनक का शिष्यत्व-स्वीकार कर वे अपने आश्रम को लौटे।

स्वयं भगवान् कृष्ण भी ज्ञान-चर्चा के लिये जनक के पास आये थे। इसीसे उस समय के यहाँ के आध्यात्मिक ज्ञान और महत्त्व का पूरा पता चलता है। पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, रामायण इत्यादि ग्रन्थो में इन्हीं सब कारणों से मिथिला को ज्ञानभूमि कहा है।

मिथिला के धर्मव्याध का महत्त्वपूर्ण उल्लेख महाभारत में पाया जाता है। इनकी ज्ञान-चर्चा आज भी मिथिला में प्रसिद्ध है। इन्होंने एक क्रोधी ब्राह्मण को गृह-तपस्या की शिक्षा देकर गृहस्थ बनाया था।

आनन्दरामायण के अनुसार रावण ने सर्वत्र त्रिलोक-सुन्दरी लक्ष्मी-रूपा पद्मा के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर उनके पिता से उनकी याचना की। इस प्रार्थना के अस्वीकृत होने पर रावण ने जब उनके पिता को मारकर उनको पकड़ना चाहा तब वे अग्नि में प्रवेश कर गई। अग्नि-प्रवेश के बाद वे रत्न-रूप में परिणत हो गई। यह देखकर रावण बड़ा चकित हुआ। उसने कुवेर को भी जीतकर उनके सब अमूल्य रत्न आत्मसात् किये थे; किन्तु ऐसा अपूर्व रत्न अपने जीवन में उसने कभी देखा न था। उस अद्वितीय रत्न को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अपने यहाँ लाकर पूजा की पेटी में रक्खा।

दूसरे दिन मन्दोदरी को दिखलाने के लिये जब पेटी खोली गई, उसमें अत्यन्त विकराल सहस्रमुखी पद्मा को देखकर रावण बहुत त्रस्त हो गया! पद्मा ने उस समय रावण से कहा—"तुमने यहाँ लाकर मुझे बहुत अपमानित किया है। जहाँ पाप का लेश न हो उस पवित्र भूमि में मुझे अभी ले जाकर मिट्टी के नीचे रख आओ, नहीं तो अपना सर्वनाश ही समझो। आज से हजारों वर्ष बाद उसी पवित्र भूमि से उत्पन्न होकर मैं ही तुम्हारे सर्वनाश का कारण होऊँगी। जब उस भूमि से कोई उत्पन्न हो तब तुम समझना कि अब शीघ्र ही मेरा सर्वनाश अवश्यम्भावी है।"

उस समय एकमात्र मिथिला ही ऐसी भूमि मिली, जहाँ पाप का लेश भी न था। यहीं लाकर उस लक्ष्मी-रत्न को रावण ने मिट्टी के नीचे स्थापित किया। इस भूमि को कलुषित करने के लिये रावण ने कोई उपाय उठा न रक्खा; यहाँ तक कि

ऋषियों के रक्त से परिपूर्ण घड़ा भी यहीं लाकर गाड़ा, जिससे भविष्य में इस पुण्यभूमि से किसी ऐसी शक्ति की उत्पत्ति न हो जो उसके सर्वनाश का कारण हो सके। किन्तु भावी होकर ही रहती है। अन्त में इसी पुण्यभूमि से उत्पन्न होकर जगज्जननी जानकी ने रावण का सर्वनाश किया।

सीता का-सा स्वयंवर आजतक संसार में दूसरा न हुआ। जिस शिव धनुष का उठाना अत्यन्त कोमल बालिका सीता के बाँये हाथ का खेल था, उसके उठाने में त्रिलोक-विजयी रावण, वाणासुर आदि को भी मुँह की खानी पड़ी; औरों की तो बात ही क्या, क्षत्रियों के धूमकेतु परशुराम को भी इसी भूमि में नीचा देखना पड़ा।

मिथिला का परिमाण नाना प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार है—

गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तगं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तीरभुक्त्यभिधः स तु॥
—(शक्तिसंगमतन्त्र)

यह 'चम्पारण्य' कौशिकी नदी के तीर पर था—

"गण्डकी कौशिकी चैव तयोर्मध्ये वरस्थलम्।"
—(स्कन्द पुराण)

कौशिकीन्तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशद्व्यायामः परिकीर्त्तितः॥
गङ्गाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवत वनम्।
विस्तारः षोडश प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन।
मिथिला नाम नगरी तत्रास्ते लोकविश्रुता॥
—(वृहद्विष्णुपुराण)

अर्थात् गंडकी से कोशिकी और गङ्गा से हिमालय तक लोक-प्रसिद्ध 'मिथिला' नगरी है। देवीभागवत (स्कन्ध ६) में इसकी प्रशंसा इस तरह की गई है—

एव निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत्
नगरी निर्मिता तेन गङ्गातीरे मनोहरा।
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता
धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता॥

धार्मिक दृष्टि से भी मिथिला की विशेषता अनेक पुराण, इतिहास और तन्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार मिलती है—

यथाऽयोध्यापुरी नित्या मिथिलाऽपि तथा स्मृता।
सर्वैश्वर्य्यगुणैर्वापि नायोध्यातः पृथङ्मता॥
तत्र यात्रा महापुण्या सर्वकामसमृद्धिनी।
इयं तु मिथिला पुण्या स्वयं रामस्वरूपिणी॥
मिथिला सर्वतः पुण्या सुराणामपि दुर्लभा।
अतस्तीर्थेषु सर्वेषु मिथिला पूज्यते सदा॥
मायापुर्यादिकाः प्रोक्ताः सामान्येन विमुक्तिदाः।
यैषा तु मिथिला राजन् विष्णुसायुज्यकारिणी॥
—(बृहद्विष्णुपुराण)

'यामलसारोद्धार' में शिव-जनक-संवाद—

वैकुण्ठगानपुरस्कृत्य लोकाल्लँक्ष्मीरवातरत्।
वैकुण्ठस्तु निजांशेन मिथिलाभूमिमाविशत्॥
अतोनिवासभूमिस्ते सर्वस्थानाद्विशिष्यते।
वैकुण्ठाच्च कला न्यूना दृश्यते मिथिला मया॥
मिथिलावासमासाद्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
देहान्ते राघवं प्राप्य तद्भक्तैःसह मोदते॥
—(बृहद्विष्णुपुराण)

यहाँ के बहुत-से तीर्थों के नाम रामायण, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थों में मिलते हैं—

वैदेहोपवनस्यान्ते दिश्यैशान्यां मनोहरम्।
विशालं सरसस्तीरे गौरीमन्दिरमुत्तमम्॥
वैदेही वाटिका तत्र नानापुष्पसुगुम्फिता।
रचिता मालिकन्याभिः सर्वर्तु सुखदा शुभा॥
प्रभाते प्रत्यहं तत्र गत्वा स्नात्वालिभिःसह।
गौरीमपूजयत्सीता मात्राज्ञप्ता सुभक्तितः॥
—(अगस्त्यरामायण)

यह 'गिरिजा-स्थान' मिथिला में बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। दरभंगा जिले में कमतौल स्टेशन के पास 'फुलहर' गाँव मे है। यहाँ विदेह-वाटिका के ईशान कोन मे सरोवर के तट पर आज भी गौरी का मन्दिर है। यही प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी माता से आज्ञा लेकर सीता सखियों के साथ भक्तिपूर्वक गौरी की पूजा

करती थीं, जिसका वर्णन उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर तुलसीदासजी ने भी 'रामचरितमानस' (बालकांड—'फुलवारी') में किया है।

मिथिला को शस्यश्यामला और तीर्थ समझकर अनेक ऋषि-मुनि वहाँ अपना-अपना आश्रम बनाकर तपस्या करते थे। इनमें योगिराज याज्ञवल्क्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। शतपथब्राह्मण से साफ पता चलता है कि याज्ञवल्क्य मिथिला के ही निवासी थे। उस समय के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् यही थे। विदेह की राजसभा में कुरु, पाञ्चाल आदि देशों के बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मणों का समुदाय रहता था। उसमें रूम, चीन, जावा, सुमात्रा, मलाया, तिब्बत, स्याम आदि देशों के अनेक विद्वान् भी थे। उसमें समय-समय पर विद्वानों में शास्त्रार्थ (तर्क-वितर्क) हुआ करता था। उसमें याज्ञवल्क्य ने अन्यान्य देशों के विख्यात विद्वानों को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

शतपथब्राह्मण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक समय महाराज जनक ने सर्वश्रेष्ठ विद्वान् के लिये स्वर्णश्रृङ्ग, रौप्यखुर और बहुमूल्य वस्त्रालंकृत एक सहस्र गायें देने की घोषणा की;' किन्तु बहुत शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तर के बाद सर्वसम्मति से वे गौएँ याज्ञवल्क्य ही को दी गईं।

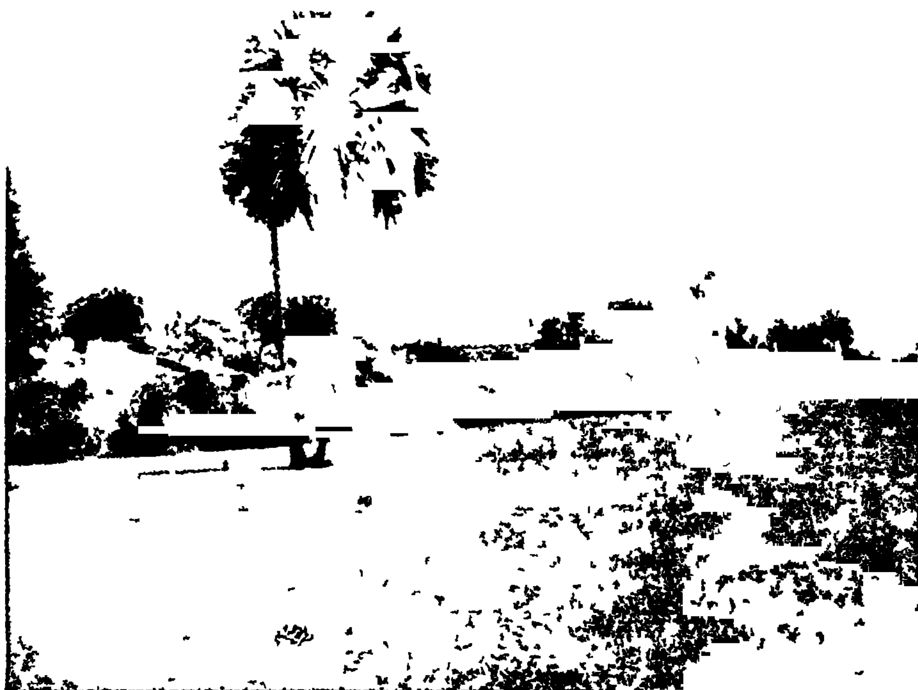
शुक्लयजुर्वेद के सम्पादन का श्रेय भी मिथिला को ही प्राप्त हुआ था। कुरु, पाञ्चाल आदि देशों के आर्यों को भी मिथिला के सामने सिर झुकाना पड़ता था। बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय ४) से जान पड़ता है कि मिथिला में केवल पुरुषों तक ही विद्वत्ता सीमित न थी, गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्मवादिनी विदुषियाँ भी उस युग में मिथिला की शोभा बढ़ा रही थीं। और, उसके बाद भी बहुत-सी विदुषी स्त्रियाँ मिथिला को अलंकृत कर गईं। इनमें सरस्वती देवी, लखिमा देवी और विहासा देवी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकला देवी तो 'महामहोपाध्याय' पद से भी विभूषित थीं। महाराज शिवसिंह की रानी लखिमा देवी के अतिरिक्त एक अन्य 'महामहोपाध्याय लखिमा देवी' भी हो चुकी हैं, जो एक महिला की अग्निपरीक्षा में मध्यस्थ हुई थीं। सरस्वती देवी और विहासा देवी की पाण्डित्य-प्रखरता भी मिथिला में प्रसिद्ध है।

दरभंगा जिले के 'भरवड़ा' परगने में 'खिरोई' नदी के निकट 'ब्रह्मपुर' गाँव मे न्यायदर्शन के प्रवर्त्तक गौतमऋषि का आश्रम है। उसके दक्षिण-पश्चिम कोने में 'गौतमकुंड' है, 'जिसके पास ही 'अहियारी' गाँव में 'अहल्याकुंड' विद्यमान है।

बुलन्दीवाग (पटना) की खुदाई मे निकले हुए मौर्यकालीन (ईसा से तीन शताब्दी पहले की) कठघरे की पाँत (पच्छिम से पूरब)



बुलंदीवाग (पटना) मे मिली—मिट्टी की, पकाई हुई, नारी-मूर्त्ति, जिसके दाहिने कान में बड़ा-सा झुमका है।



मॉंझी (सारन) के पुराने गढ़ का भग्नावशेष। इसकी एक ईंट पर जो लेख मिला है, उससे पता चलता है कि यह गढ़ छठी शताब्दि में, गुप्तकाल में, वर्त्तमान था। जनश्रुति है, इस किले में कोई मल्लाह (मॉंझी) राजा रहता था।



आसीद्ब्रह्मपुरी नाम्ना मिथिलायां विराजिता।
तस्यां लसति धर्म्मात्मा गौतमो नाम तापसः॥
अहल्या नाम तत्पत्नी पतिभक्ता प्रियंवदा।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सासीत्सर्वाङ्गसुन्दरी॥

—(स्कन्दपुराण)

गौतमस्याश्रमे याम्ये पातालोत्थितपाथसि।
स्नात्वा कुण्डे नमेद्भक्त्या ययुः पाठफलं लभेत्॥

—(वृहद्विष्णुपुराण)

गौतमाश्रम से कुछ ही दूर 'विभांडक' मुनि का आश्रम है, जिसका नाम इस समय 'जगवन' (योगिवन) है—

विभाण्डको महायोगी दक्षिणे निवसत्यसौ।
गौतमस्याश्रमात्पुण्याद्याम्यपश्चिमकोणके॥

—(वृहद्विष्णुपुराण)

मिथिला शब्द ही से यह प्रतीत होता है कि केवल अध्यात्म-विद्या में ही नहीं, शस्त्र और शास्त्र दोनों में इसका समान अधिकार था।

अन्तोर्बहिश्च सर्वत्र मथ्यन्ते रिपवः सदा।
मिथिला नाम सा ज्ञेया जनकैश्च कृता मही॥

—(पराशर-मैत्रेय-संवाद)

अर्थात्—भीतर और बाहर, सब जगह, सब समय, जहाँ पर शत्रुओं का मथन हो, वही जनक-निर्मित मिथिला है।

वाल्मीकीय रामायण में विश्वामित्र से महाराज जनक कहते हैं—

कस्यचित्त्वथकालस्य सांकाश्यादागतःपुरा।
सुधन्वा वीर्य्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः॥
स च मे प्रेषयामास शैव धनुरनुत्तमम्।
सीतां च कन्यां पद्माक्षीं मह्यं वै दीयतामिति॥
तस्याप्रदानान्महर्षे युद्धमासीन्मया सह।
स हतो विमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे॥
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम्।
सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम्॥

अर्थात्—मिथिला पर घेरा डालनेवाले राजा सुधन्वा ने मेरे पास शिवधनुष

भेज दिया और दबाव डालकर पद्माची सीता की याचना की। उसके न देने से मेरे साथ युद्ध हुआ। उस युद्ध में वे मारे गये। हे मुनिश्रेष्ठ! राजा सुधन्वा को मारकर मैंने सांकाश्य में अपने वीर भ्राता कुशध्वज का अभिषेक किया।

इससे साफ झलकता है कि महाराज जनक विषय-विरागी होते हुए भी राज-काज अथवा सांसारिक कर्त्तव्य से विमुख नहीं थे। इसी लिये वे राजर्षि, योगी, जीवन्मुक्त, विदेह इत्यादि विविध उपाधियों से विभूषित थे। तुलसीदासजी ने कहा है—

"योग-भोग महँ राखेउ गोई, राम विलोकत प्रगटेउ सोई।"

उसके बाद भी मिथिला में एक से-एक अद्वितीय विद्वान् हो गये हैं, जिनकी कीर्त्ति देशव्यापी है। महामहोपाध्याय रघुनन्दन राय की वदान्यता अनुपम है, जिन्होंने दिल्लीश्वर अकबर की सभा में सब विद्वानों को परास्त कर मिथिला का राज्य पाया था और फिर हाथी के हलके के साथ यहाँ आकर गुरु-दक्षिणा में अपने गुरु महामहोपाध्याय महेश ठाकुर को सारा राज्य दे दिया था। हाथी के हलके के साथ यहाँ उनके आने के सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है—

"आयाते रघुनन्दने गजघटाघण्टारवः श्रूयते।"

घोर संकट के समय नास्तिकों से वैदिक धर्म को बचाने का श्रेय विद्वद्वर कुमारिल भट्ट को है, जिनके मैथिल होने का प्रमाण 'किरणावली' की भूमिका और 'न्यायकणिका' में मिलता है। महाराष्ट्र के यशस्वी विद्वान् श्रीआपटे और श्री-रामचन्द्र काले भी यह बात स्वीकार करते हैं।

आधुनिक काल में भी मिथिला की राजधानी 'दरभंगा'-नगरी में मिथिलेश का राजप्रासाद, गोशाला और 'पुस्तक-भंडार' दर्शनीय वैभव हैं।

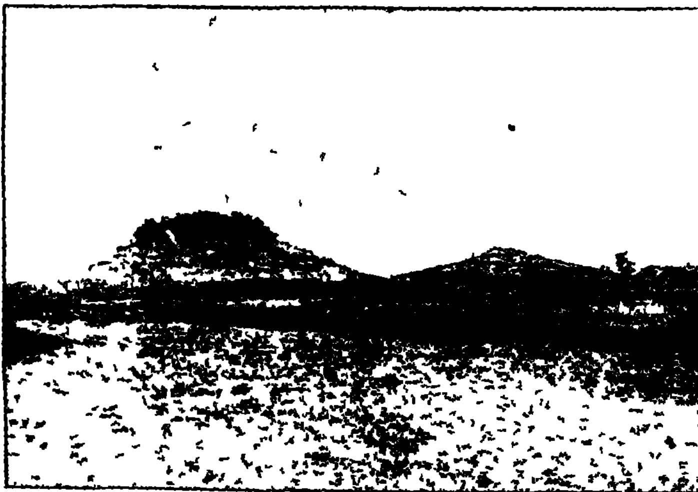
वैशाली

उत्तर बिहार में, मुजफ्फरपुर से दक्षिण-पश्चिम, सात कोस की दूरी पर, गण्डकी के बायें किनारे, 'बसाढ़' बहुत प्राचीन स्थान है। अलम्बुषा के गर्भ से उत्पन्न सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु के पुत्र 'विशाल' ने इस नगरी ('विशाला') का निर्माण किया था। इसका 'वैशाली' नाम बहुत पुराना है। वाल्मीकीय रामायण (सर्ग ४७) में मिलता है—

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्रः पुत्रः परमधार्मिकः
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः।
तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता॥

.. –

लौरिया-नन्दनगढ़ (चम्पारन) का ईंटों का बना ८० फीट ऊँचा स्तूप, जो सात बीघे जमीन को घेरे हुए है। मि० स्मिथ के अनुसार यह स्तूप बुद्धदेव की अस्थि पर बनाया गया स्मारक है, और मि० ब्लोच के अनुसार यह किसी प्राचीन राजधानी का ध्वंसावशेष है।



लौरिया-नन्दनगढ़ (चम्पारन) की वैदिक समाधि-भूमि। इसका समय ईसवी सन् से ५००—६०० वर्ष पहले का माना जाता है। इसके खोदने पर मनुष्य की हड्डियाँ और खोपड़ियाँ मिली हैं। चाँदी और सोने की कुछ वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं।



लौरिया-नन्दनगढ (चम्पारन) मे वैदिक समाधिभूमि के टीले से निकली हुई, स्वर्णपत्र पर अंकित पृथ्वी-माता की मूर्त्ति।



राजा विक्रमादित्य और राजा भोज की राजधानी 'उज्जयिनी' को, बहुत विस्तृत होने के कारण, लोग 'विशाला' भी कहते थे। किन्तु मिथिला की यह 'विशाला' पुरी उससे भी कहीं बड़ी और पुरानी थी। इसी नगरी में जैनियों के चौबीसवें तीर्थङ्कर 'महावीर' का जन्म हुआ था। इस नगरी से गौतम बुद्ध को बहुत ही प्रेम था। कई बार गौतम बुद्ध ने यहाँ आकर अपने उपदेशों से लोगो को तृप्त किया था। यहाँ के लोग भी उनके बहुत भक्त थे।

'वैशाली' का विस्तार हिमालय तक था। तेरह सौ वर्ष पहले चीनी यात्री युवानच्वांग यहाँ आया था। उसके अनुसार उस समय इसका घेरा २० मील का था। नगर के निकट उत्तर की ओर एक 'महावन' था। उसमें देव-विमान के आकार का 'कूटागारशाला' नामक एक दोमंजिला विहार था, जिसमें भगवान् बुद्ध रहते थे।

'वैशाली' लिच्छवि-वंशी क्षत्रियो की राजधानी थी। ये लोग बड़े वैभव-शाली और प्रतापी थे। इनकी गणतंत्र-शासन-प्रणाली अतुलनीय थी। यहाँ सात हजार सात सौ राजा थे। यहाँ का शासन एक संघ द्वारा होता था। अब 'वैशाली' का खँड़हर मात्र रह गया है।

अङ्ग

दक्षिण बिहार में आधुनिक भागलपुर और मुङ्गेर जिले प्राचीन अङ्ग देश हैं। महाभारतीय युद्ध के समय यहाँ के राजा कर्ण थे। इनकी वीरता और वदान्यता जगत्प्रसिद्ध है। मुङ्गेर के दुर्ग में इनका चौरा (चत्वर) आज भी अतीत का स्मरण दिला रहा है, जहाँ ये प्रतिदिन सवा मन स्वर्ण दान किया करते थे।

भागलपुर से कुछ दूर, कहलगाँव के पास, गंगा-तट पर, 'विक्रमशिला-' महाविद्यालय का ध्वंसावशेष है। नालन्दा-विश्वविद्यालय के बाद इसी का नम्बर आता है। यहाँ चीन, जापान, तिब्बत, स्याम आदि सुदूरवर्त्ती देशों के छात्र शिक्षा पाने आते थे।

सारन और चम्पारन

सारन (छपरा) और चम्पारन (मोतीहारी) जिले पहले जंगल से भरे थे; इस कारण इनका पहला नाम सारङ्गारण्य और चम्पकारण्य था; सारन और चम्पारन इन्ही के अपभ्रंश जान पड़ते हैं। चम्पारण्य विदेह-भूमि के निकट

था। इसलिये उससे इसका घनिष्ठ सम्पर्क था। इसी तपोवन में बहुत-से ब्रह्मज्ञानी ऋषि और बौद्ध भिक्षु साधना करते थे। कुछ बौद्ध स्तूप अब भी वहाँ विद्यमान हैं। लौरिया-नन्दन ग्राम में सम्राट् अशोक का स्तम्भ है, जिसपर उनके अहिंसात्मक धर्मोपदेश-वाक्य अंकित हैं। महात्मा गांधी ने भी पहले-पहल 'अहिंसात्मक सत्याग्रह' का शंख चम्पारन में ही फूंका था। सारन जिले में भी कई प्राचीन ऐतिहासिक स्थल और तीर्थ के चिह्न अवशिष्ट हैं।*

मगध

'मगध' और 'कीकट' शब्द वेदों में पाये जाते हैं। ऋग्वेद में जो कीकट है वही अथर्ववेद में मगध है। भाष्यकार यास्क ने इसको अनार्यभूमि कहा है—

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गच्छेत्पुनः संस्कारमर्हति॥

वायुपुराण के अनुसार मगध में गया, पुनपुन नदी, च्यवन मुनि का आश्रम, राजगृह-वन इत्यादि कुछ इने-गिने स्थान ही पुण्यभूमि हैं। अथर्ववेद में 'व्रात्य' कहकर मगधवासियों की निन्दा की गई है। 'भविष्य-ब्रह्मखंड' नामक पौराणिक ग्रन्थ में लिखा है—"मगध की उत्तरी सीमा पर गंडकी नदी बहती है, जहाँ हरिहरनाथ महादेव विराजमान हैं। पश्चिम में 'चारल गाँव' भोज देश की सीमा पर वर्त्तमान है। पूर्वसीमा पर गङ्गा और दक्षिण में सूर्यपुर है। कलि में यहाँ के मनुष्य आचार-हीन होंगे।"



गुनेरी (गया) मे मूर्त्तिकला के कुछ उत्कृष्ट नमूने, संगतराशी के बारीक काम, बीच मे बुद्धदेव की प्रतिमा।
गुनेरी, शेरघाटी से, सात मील पर एक गाँव है। ये मध्ययुग की कृतियाँ है।

कुर्कीहार (गया) मे पाई गई काँसे की अनेक मूर्त्तियाँ

था। जैन-ग्रन्थों में 'कुशागारपुर' या 'कोपागारपुर' नाम भी मिलते हैं। राजा विम्बिसार के सदा यहाँ रहने से इसका नाम 'राजगृह' हुआ। यहाँ का 'ऋष्यशृङ्ग-कुड' तीर्थ समझा जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि मलमास में सब देवता राजगृह चले जाते हैं, इसलिये उस समय वहाँ यात्रियों की वडी भीड रहती है।

मगध के विशाल वैभव की चर्चा सारी दुनिया मे फैल गई थी। कहते हैं कि उसी से आकृष्ट होकर सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी। किन्तु मगध-सम्राट् चन्द्रगुप्त के रणकौशल को देखकर विजयी सिकन्दर की भी हिम्मत पस्त हो गई। सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध-साम्राज्य का नाम प्राच्यराज्य था। पालवंश के प्रथम राजा गोपाल के समय मे मगध 'विहार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धर्मपाल के वंशज विक्रमशील ने मगध की दूसरी राजधानी वनाई थी, जो विक्रमशिला के नाम प्रसिद्ध हुई।

मगध का इतिहास वास्तव मे भारतवर्ष का इतिहास है। मगधराज जरासन्ध ने अनेक वार स्वय भगवान् कृष्ण से भी लोहा लिया था। ऐतिहासिक युग मे भी मगध मे वडे-बड़े साम्राज्य स्थापित हुए। किन्तु केवल नंगी तलवारों को नचाकर या भालों को चमकाकर साम्राज्य-विस्तार करना ही किसी देश का महत्त्व नहीं है। उसके साथ ही वहाँ की राजनीति, विद्वत्ता और ज्ञानचर्चा भी महत्त्वपूर्ण होनी चाहिये। संसार मे भारत का सिर ऊँचा करनेवाला नालन्दा-विश्वविद्यालय इसी मगध-भूमि का अलङ्कार था। ससार के राजनीतिज्ञमडल के आचार्य 'चाणक्य' (कौटिल्य) इसी मगध-भूमि को सुशोभित करते थे। संसार-प्रसिद्ध अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न पाणिनि की परीक्षा इसी मगध की प्रधान नगरी पाटलिपुत्र मे हुई थी। इसी भूमि मे आचार्यवर्य 'वर्ष' से इनकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई थी।

अस्ति पाटलिकं नाम पुरं नन्दस्य भूपतेः।
तत्रास्ति चैको वर्षाख्यो विप्रस्तस्मादतःप्स्यथः।
इरस्नोविद्यामतस्तत्र युवाभ्यां गम्यतामिति॥

—(कथासरित्सागर, १ लम्वक, २ तरग)

विहार के नगरो में इस समय; 'पटना' सबसे चढ़कर है। यह नगर वहुत ही प्राचीन है। इसको मगध का शिरोमुकुट कहना भी अत्युक्ति नहीं है। पाटलिपुत्र, पुष्पपुर, कुसुमपुर आदि इसके अनेक प्राचीन नाम हैं। इस समय यह समस्त विहार की राजधानी है। यह सुयोग इसको पहली ही वार नहीं मिला है। वहुत समय तक



आर्यभट्ट

था। जैन-ग्रन्थों में 'कुशागारपुर' या 'कोपागारपुर' नाम भी मिलते हैं। राजा बिम्बिसार के सदा यहाँ रहने से इसका नाम 'राजगृह' हुआ। यहाँ का 'ऋष्यशृङ्ग-कुंड' तीर्थ समझा जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि मलमास में सब देवता राजगृह चले जाते हैं, इसलिये उस समय वहाँ यात्रियों की बड़ी भीड़ रहती है।

मगध के विशाल वैभव की चर्चा सारी दुनिया में फैल गई थी। कहते हैं कि उसी से आकृष्ट होकर सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी। किन्तु मगध-सम्राट् चन्द्रगुप्त के रणकौशल को देखकर विजयी सिकन्दर की भी हिम्मत पस्त हो गई। सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध-साम्राज्य का नाम प्राच्यराज्य था। पालवंश के प्रथम राजा गोपाल के समय मे मगध 'विहार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

धर्मपाल के वशज विक्रमशील ने मगध की दूसरी राजधानो वनाई थी, जो विक्रमशिला के नाम प्रसिद्ध हुई।

मगध का इतिहास वास्तव मे भारतवर्ष का इतिहास है। मगधराज जरासन्ध ने अनेक वार स्वयं भगवान् कृष्ण से भी लोहा लिया था। ऐतिहासिक युग मे भी मगध मे वड़े-वड़े साम्राज्य स्थापित हुए। किन्तु केवल नंगी तलवारो को नचाकर या भालो को चमकाकर साम्राज्य-विस्तार करना ही किसी देश का महत्त्व नहीं है। उसके साथ ही वहाँ की राजनीति, विद्वत्ता और ज्ञानचर्चा भी महत्त्वपूर्ण होनी चाहिये। संसार मे भारत का सिर ऊँचा करनेवाला नालन्दा-विश्वविद्यालय इसी मगध-भूमि का अलङ्कार था। संसार के राजनीतिज्ञमंडल के आचार्य 'चाणक्य' (कौटिल्य) इसी मगध-भूमि को सुशोभित करते थे। संसार-प्रसिद्ध अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न पाणिनि की परीक्षा इसी मगध की प्रधान नगरी पाटलिपुत्र मे हुई थी। इसी भूमि मे आचार्यवर्य 'वर्ष' से इनकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई थी।

अस्ति पाटलिकं नाम पुरं नन्दस्य भूपतेः।
तत्रास्ति चैको वर्षाख्यो विप्रस्तस्मादनःप्स्यथः।
इतस्तोनिधामतस्तत्र युवाभ्यां गम्यतामिति॥

—(कथासरित्सागर, १ लम्बक, २ तरंग)

विहार के नगरो में इस समय 'पटना' सबसे वढ़कर है। यह नगर वहुत ही प्राचीन है। इसको मगध का शिरोमुकुट कहना भी अत्युक्ति नहीं है। पाटलिपुत्र, पुष्पपुर, कुसुमपुर आदि इसके अनेक प्राचीन नाम हैं। इस समय यह समस्त बिहार की राजधानी है। यह सुयोग इसको पहली ही बार नही मिला है। वहुत समय तक



आर्यभट्ट



गुरु गोविन्द सिंह

इसको भारत-साम्राज्य की राजधानी बनने का भी सौभाग्य प्राप्त था। कभी इसका प्रताप-सूर्य सारे संसार में चमकता था। इसने अनेक महान् राज्यों का उदय और अस्त देखा है। अपने बुद्धि-विभव से सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का सिद्धान्त निश्चित करनेवाले 'आर्यभट्ट' यहीं के थे। अपनी कठोर शास्ति से अत्याचारियों का दमन करनेवाले दसवें सिक्ख-गुरु वीरशिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह को जन्म देनेवाली यही वीरप्रसविनी नगरी है। दक्षप्रजापति के यज्ञकुंड में शरीर-त्याग करनेवाली 'सती' की देह को कन्धे पर लेकर जब शोकविह्वल शंकर उन्मत्तवत् परिभ्रमण करने लगे थे तब सती का 'पट' यहीं गिरा था। आज भी 'पटनदेवी' का मंदिर बहुत प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है। 'पटना' नाम का उसीसे सम्पर्क जान पड़ता है। मिट्टी के नीचे से खोदकर निकाली हुई पुराने जमाने की बहुत-सी चीजें इस नगरी की प्राचीन कीर्त्ति की याद दिला रही हैं।

पटना जिले के 'मनेर' (मणिगढ़) गाँव में वार्त्तिककार कात्यायनजी का जन्म हुआ था। आज भी वहाँ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में कात्यायनी देवी का मन्दिर विद्यमान है। उन्हीं की आराधना से जन्म होने के कारण इनका नाम कात्यायन पड़ा था।

आरा [शाहाबाद]

वर्त्तमान आरा या शाहाबाद जिले का ही पुराना नाम कारूष है। यह स्थान बहुत ही प्राचीन और ऐतिहासिक है। यह ऋषियों की तपस्थली, वीरों की रणस्थली, ताडका-मारीच आदि राक्षसों की क्रीडास्थली है। वैवस्वत मनु के पुत्र करूष के नाम पर यह भूखंड कारूष कहलाया। रामायण में गङ्गातट पर इसका अवस्थान लिखा है। पहले यह प्रदेश अरण्यमय था। ताडका राक्षसी यहाँ रहती थी। महर्षि विश्वामित्र जब ताडकावध के लिये राम और लक्ष्मण को साथ लेकर गङ्गा और सरयू के संगम पर आये तब दूसरे दिन सवेरे नित्यकृत्य समाप्त कर नौका पर चढ़ गङ्गा के दक्षिण पार चले। राह में उन्होंने घोर जंगल देखा। रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से पूछा—महामुने! इस वन का क्या नाम है? इसपर विश्वामित्र ने कहा—

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्म्मितौ॥

—(वाल्मी०, बाल० २४ सर्ग)

अर्थात् प्राचीन समय में यहाँ 'मलद' और 'करूप' नाम के दो देव-निर्मित जनपद थे।

सुन्द की स्त्री ताडका और उसके पुत्र मारीच ने इन दोनों देशों का ध्वस किया था, यह सुनकर राम और लक्ष्मण ताडका को मारकर महात्मा वामन के आश्रम में पधारे। रामचन्द्र के प्रति विश्वामित्र की उक्ति—

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धोऽह्यत्र महात्मनः ॥

—(वाल्मी०)

यह सिद्धाश्रम बक्सर के पास गंगातट पर अब भी प्रसिद्ध है।

'आरा' अरण्य का अपभ्रंश है। उसका दूसरा पुराना नाम एकचक्रापुरी भी कहते हैं। लाक्षागृह से निकलकर पांडवों ने व्यासजी की आज्ञा से इसी पुरी मे एक ब्राह्मण के घर आश्रय लिया था। इसके समीपवर्त्ती अरण्य में रहनेवाले बकासुर को मारकर भीम ने यहाँ की जनता का उद्धार किया था। 'आरा' नगर से एक कोस दक्षिण, नहर के किनारे, 'बकरी' गाँव में अब भी एक बहुत ऊँचा टीला है, जिसे वहाँ के लोग 'बकासुर का गढ़' कहते हैं।*

आरा के रेलवे-स्टेशन के पास डुमराँव के महाराज के बगीचे में एक विशाल प्रस्तर-मूर्त्ति है जिसको वहाँ के लोग बाणासुर की मूर्त्ति बतलाते हैं। आरा से चार-पाँच कोस पच्छिम मसाढ़ गाँव मे एक बहुत विस्तृत तालाब है जिसे लोग बाणासुर की कन्या उषा का पोखरा कहते हैं। उसके पास के मिट्टी के टीले से अनेक शिवलिङ्ग निकले हैं, जो आसपास के गाँवो मे मौजूद हैं। लोगों का अनुमान है कि परम शिवभक्त बाणासुर की राजधानी (शोणितपुर) यहीं थी।

'आरा' के विषय में कुछ लोगों का यह भी कहना है कि पुराण-प्रसिद्ध राजा मयूरध्वज ने धर्म-परीक्षा में अपने पुत्र को यहाँ 'आरा' से चीरा था, इसी लिये इसका नाम 'आरा' हुआ। किन्तु छपरा में भी मयूरध्वज की राजधानी का चिह्न है। वहाँ भी इस प्रकार की किवदन्ती है। वह स्थान 'चीराँद छपरा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सन्देह नहीं कि आरा और छपरा के भूभाग मे उनका राज्य था। इसके अतिरिक्त एक और भी पुराण-प्रसिद्ध मयूरध्वज हो गये हैं, जिनका राज्य मुरादाबाद (युक्तप्रांत) के पास होने का अनुमान किया जाता है।

इसी जिले में वह प्रसिद्ध 'भोजपुर' परगना है, जिसके विषय में लोग कहा

* 'आरा-पुरातत्त्व' (पं० सकलनारायण शर्मा)—आरा ना० प्र० सभा।

करते हैं कि उज्जयिनी के विद्या-प्रेमी राजा भोज के वंशज 'गया' श्राद्ध करने आये थे और रास्ते में यहाँ के जंगल में उनलोगों ने कुत्ते-खरगोश और चूहे-बिल्ली को आपस में लड़ते देखा, जो लड़ते-लड़ते मर गये, किन्तु आखिरी दम तक उनकी हिम्मत न टूटी। यह देख इस भूमि को क्षत्रियोचित वीरभूमि समझकर उन लोगो ने सेना के साथ यहीं पड़ाव डाला। तब से इस भूभाग का नाम भोजपुर पड़ा। इन्हीं उज्जैन क्षत्रियों के वंशज राजा रुद्रप्रतापनारायण ने भोजपुर गाँव बसाकर वहाँ 'नवरत्न' नाम का महल बनवाया, जिसका भव्य भग्नावशेष अद्यापि वर्त्तमान है।

इसी उज्जैन-वंश के वीर-पुङ्गव योद्धा थे जगदीशपुर के बाबू कुँवर सिंह, जिन्होंने सिपाही-विद्रोह में उपर्युक्त स्वभाव का परिचय दिया था। कहते हैं कि इनके पूर्वजों के यहाँ मधु साहु नाम के एक कोषाध्यक्ष थे। यह वही समृद्धिशाली मधु साहु हैं, जिन्होने शेरशाह को हुमायूँ से लड़ने के लिये धन दिया था। इतिहास-प्रसिद्ध हेमू इसी वंश के साहसी सुपूत थे। इस वंश की एक शाखा मुजफ्फरपुर जिले के 'राधाउर' गाँव में है, जिसमें श्रीरामलोचनशरण बिहारी का जन्म है।

सन् १६२३ ई० में अपने पिता से रुष्ट होकर शाहजहाँ ने बिहार में आकर जहाँ खीमा डाला था उसी ढाई बीघे जमीन का नाम 'शाहाबाद' हुआ। पुराने सरकारी नक्शे में भी 'आरा' नगर की उस जगह का वही नाम दर्ज है। पीछे वही जिले के नाम से मशहूर हुआ।

मुसलमानी साम्राज्य के आरम्भ-काल में इस जिले की गिनती अवधप्रान्त में थी। उस समय अवध की सीमा सोन नदी के पास तक थी। अब भी वहाँ एक गाँव 'सरौधा' है, जो 'सरहद्दे अवध' का विकृत रूप है।

यह जिला मगध के अंतर्गत न होते हुए भी मुसलमानी राज्य-काल के पहले मगध-साम्राज्य के अधीन था। इसलिये इसकी गिनती बिहार में होने लगी।

जो हो, बक्सर इस जिले में बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। इसका पहला नाम 'वेदगर्भ' था, क्योंकि सृष्टि के आदि में सबसे पहले यहीं वेद का प्रकाश हुआ था। यहाँ गंगातट पर विश्वामित्र और रामचन्द्रजी की स्थापित की हुई शिव-पिंडी है तथा सेंट्रल जेल के पास पूर्वोक्त वामनाश्रम (सिद्धाश्रम) के स्मारक-स्वरूप वामनेश्वर महादेव हैं।

बक्सर-सबडिवीजन में 'रघुनाथपुर' और 'ब्रह्मपुर' उल्लेखनीय स्थान हैं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी घूमते-घूमते रघुनाथपुर आकर ठहरे थे।

इस गाँव का पहला नाम 'वेलयात' था, गोसाईंजी ने नया (रघुनाथपुर) नाम-करण किया। इस गाँव से एक कोस उत्तर 'ब्रह्मपुर' गाँव में पश्चिम द्वार का एक विशाल शिव-मन्दिर है जैसा और कहीं भी नहीं देखने में आता। परम्परा से ऐसी किंवदन्ती है कि ब्रह्माजी का स्थापित यह शिवलिङ्ग है। कहते हैं कि कासिम अली नामक किसी मुसलमान शासनाधिकारी ने जब मंदिर तोड़ना चाहा, तब गंभीर गर्जन-सहित उसका द्वार पश्चिम तरफ फिर गया, जिसे देख डरकर वह भाग गया। जो हो, इस मन्दिर का भीतरी भाग अत्यन्त प्रशस्त है तथा शिवलिङ्ग भी विशाल है। फागुन और वैसाख की शिवरात्रि पर यहाँ बहुत बडा मेला हुआ करता है, जो बिहार-भर मे प्रसिद्ध है। ब्रह्मपुर के पास ही 'काँट' गाँव है। वहाँ भी तुलसीदासजी पधारे थे। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने इन गाँवो को बलिया जिले में लिखा है, पर ये शाहाबाद मे ही हैं।

आदर्श सती 'महंती' नाम की ब्राह्मणी इसी जिले की थी, जो कामातुर हैहयवंशी राजा भूपतिदेव से बलात् शरीर-स्पर्श होने के कारण अनुताप से स्वयं जलकर मर गई। 'बिहिया'-स्टेशन (ई० आइ० आर०) के पास जंगल मे 'महथिन दाई' का मंदिर अब भी विद्यमान है, जो बड़ा सिद्ध स्थान माना जाता है।

इस जिले का 'रोहतासगढ़'-किला भी बहुत प्रसिद्ध है। यह दुर्ग पहाड़ (विन्ध्य-श्रेणी) पर है, जो समुद्र-तल से १४९० फीट ऊँचा है। कहा जाता है कि सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने इसका निर्माण करवाया था। लोग इसका व्यास चौदह कोस का बतलाते हैं। इसके आसपास की जङ्गली जातियों—चेरो, खरवार, ओराँव आदि—का कहना है कि हमलोग सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। वे कहा करते हैं कि १५३९ ई० में शेरशाह ने हुमायूँ से लड़ते समय यहाँ के क्षत्रिय राजा से अपने परिवार की रक्षा के लिये इस किले में शरण माँगी थी और इसी व्याज से इस किले पर दखल जमाया था।

इस जिले का ससराम शहर भी ऐतिहासिक स्थान है। वहाँ चन्दनपीड़ की पहाड़ी गुफा 'चिराग-दीन' में अशोक की आज्ञा खुदी है, जिसमें महात्मा बुद्ध के निर्वाण की तिथि आदि भी अंकित है। वहाँ एक बहुत बड़े पक्के तालाब में शेरशाह का दर्शनीय मकबरा (समाधि-मंदिर) है। ससराम से थोड़ी दूर पर एक पहाडी गुफा मे गुप्तेश्वरनाथ महादेव हैं। शिवपुराण मे इनका वर्णन आता है। लगभग आध मील तक पहाड़ की एक तग सुरंग मे अँधेरी राह चलने पर इनके दर्शन होते हैं। बहुत दूर-दूर से इनके दर्शनार्थी आते हैं।



शेरशाह

आरा नगर में सन् १८५७ ई० के सैनिक विद्रोह के कुछ स्मारक चिह्न हैं, जिन्हें देखने के लिये सन् १९१२ ई० में, दिल्ली में राज्याभिषेक हो जाने के बाद, स्वयं सम्राट् पंचम जार्ज पधारे थे। यहाँ जैनियों के अनेक बड़े-बड़े मंदिर भी हैं जिनके दर्शनों के लिये दूर-दूर से जैनी तीर्थयात्री आते हैं।

इस जिले के 'भभुआ' सबडिवीजन और परगना चैनपुर में 'श्री हरसू ब्रह्म' का स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन है। ये बड़े तेजस्वी ब्रह्म हैं। इनकी महिमा के विषय में हिन्दी के प्रख्यात लेखक स्वर्गीय प्रोफेसर रामदास गौड़ एम० ए० ने बहुत-कुछ लिखा है। मिर्जापुर, बनारस, गाजीपुर, जौनपुर, बलिया आदि युक्तप्रान्तीय पूर्वी जिलों के लोग भी यहाँ आकर अपना विश्वास और मनोरथ सफल करते हैं।

परिशिष्ट

बिहार नदीमातृक देश है। इसलिये यहाँ के अधिकांश भूभाग में उर्वरा-शक्ति अधिक है। इस प्रान्त की भूमि पश्चिमी प्रान्तों की अपेक्षा अधिक शस्य-श्यामला है। यहाँ असंख्य प्रकार के उत्तम धान पैदा होते हैं। यहाँ के फलों में आम और लीची विशेष प्रसिद्ध हैं। जलफलों में मखाना अत्युत्तम फल है; बिहार छोड़कर इसकी उपज संसार में और कहीं नहीं होती।

बिहार में बहुत-से बड़े-बड़े मेले होते हैं। पूर्णियाँ जिले में मेलों की संख्या सबसे बढ़कर है। वहाँ बरसात-भर एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान में मेला लगा करता है। किन्तु सारन (छपरा) जिले का सोनपुर का मेला सबसे प्रसिद्ध है। इसका नाम 'हरिहरक्षेत्र' है। गंगा और गंडक के संगम पर हरिहरनाथ महादेव का मन्दिर है। पुराण के अनुसार गजग्राह का युद्ध यहीं हुआ था। यह एक प्रधान तीर्थ समझा जाता है। पुराणों के सिवा रामायण आदि ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। यहाँ कार्त्तिक-पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला लगता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष के श्रीमान्, साधु-संन्यासी, व्यापारी और दर्शक यहाँ जुटते हैं। यह 'छतर का मेला' कहलाता है। बिजली-बत्ती और पानी के नल तथा सड़कों का प्रबन्ध रहता है। लगभग एक महीने तक बड़ी चहल-पहल और धूमधाम रहती है। संसार में इस मेले का दूसरा स्थान है। सोनपुर का रेलवे-प्लाटफार्म भी दुनिया में सबसे बड़ा कहा जाता है।

बिहार में खनिज पदार्थों और उद्योगधंधे के साधनों का भी बाहुल्य है। 'जमशेदपुर' (तातानगर) का लोहे का कारखाना समस्त एशिया में प्रसिद्ध

और भारत में अद्वितीय है। शाहाबाद जिले के 'डिहरी' नामक स्थान में, सोन नदी के किनारे, 'डालमिया-नगर' बहुत बड़ा उद्योग-केन्द्र बन गया है। ताता के कारखाने की तरह यह कारखाना भी विहार का वैभव बढ़ानेवाला है।

महात्मा गांधी के चरखा-खादी-आन्दोलन मे भी विहार का मिथिला-प्रान्त विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। अखिलभारतीय चरखासंघ की विहार-शाखा का प्रधान केन्द्र मधुवनी (दरभंगा) मे है, जहाँ मिथिला के हस्तशिल्प और कुटीर-शिल्प का वैभव देखते ही बनता है। दरभंगा जिले के कथवार-विष्णुपुर ग्राम के जयगोविन्द मिश्र की माता नागरि देवी ने २५० नम्बर का सर्वोत्तम सूत कातकर हरिपुरा-कांग्रेस मे सबसे प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। उक्त महाशय की पत्नी श्रीमती वागीश्वरी देवी ने तो रामगढ़-कांग्रेस में ४५० नम्बर का सूत कातकर सबको चकित कर दिया था। महात्मा गान्धी ने इन सूतों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स्पष्ट कहा था कि अभी तक इस तरह के बारीक सूतों से कपड़े तैयार करने के लिये किसी यन्त्र का निर्माण नहीं हुआ है। मिथिला में आज भी बहुत बारीक और सुन्दर जनेऊ बनता है जिसका एक जोड़ा हरे चने की ढेंढ़ी के छिलके में अँट जाता है।

भारत की प्रसिद्ध वस्तुओं में शेरशाह का 'ग्रैंडट्रंक रोड' नामक राजपथ भी है, जिसका बहुत बड़ा भाग विहार के दक्षिणी खंड में पड़ता है। किंवदन्ती है कि सम्राट् अशोक-निर्म्मित राजपथ का ही बृहत्संस्कार कर शेरशाह इस महान् कीर्त्ति का भागी हुआ।

विहार के वैभव-स्वरूप, हिन्दू-जाति के लोकमान्य नेता, दरभंगा के स्वर्गीय महाराज रमेश्वरसिंह बहादुर, हरद्वार में गंगा-नहर का बाँध कटवाकर, गङ्गा के रुके हुए प्रवाह को फिर से भगीरथ-खात मे लाकर, 'अपर भगीरथ' कहलाये।

मिथिला का पञ्जी-प्रबन्ध भी विहार का एक प्राचीन वैभव है। मिथिला में शिवसिंह और हरिसिंहदेव बडे यशस्वी राजा हो गये हैं। विद्यापति इन्हीं शिवसिंह के सभा-पंडित थे। मिथिला में इनकी अनेक कीर्त्तियाँ हैं। इनका खुदवाया हुआ एक कोस का एक विराट पोखर (सरोवर) है जो 'घोडदौड़' या 'रजोखर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध की एक कहावत है—

"पोखरि रजोखरि, और सब पोखरा , राजा शिवसिंह, और सब छोकरा "

हरिसिंहदेव के शासनकाल में ही एक यज्ञ हुआ था, जिसमें प्रत्येक मैथिल ब्राह्मण और मैथिल कर्ण-कायस्थ का पूरा वंश-परिचय लिखा गया था, और



रोहतासगड (शाहाबाद) के क़िले के राजमहलो का साधारण दृश्य

रोहतासगड (शाहाबाड) के पुराने किले मे दरबार का कमरा



६०० फीट ऊँची पहाडी पर, भभुआ (शाहाबाद) मे ७ मील दूर, रामगढ के निकट गुप्तकालीन मुन्डेश्वरी मन्दिर का भग्नावशेष, जिसकी अवस्थिति एक शिला-लेख के अनुसार ६३५ ई० तक की सिद्ध है।



मुन्देश्वरी-मन्दिर (शाहाबाद) में पाये गये शिलाखड मे खोदी हुई एक मूर्त्ति जिसकी सुन्दर रचना अतीव मनोमुग्धकर है।

वही पञ्जी-प्रबन्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से, हरएक मैथिल ब्राह्मण और कायस्थ का, छ सौ वर्ष से लेकर आजतक, पूरा वंश-परिचय लिखने का व्यवस्था-क्रम चला आ रहा है। इस वंश-विवरण का आठ वर्ष अध्ययन कर 'पंजीकार' बनते हैं। जब पंजीकार लाल रोशनाई से 'सिद्धान्त' लिखकर अपना हस्ताक्षर कर देते हैं, तभी विवाह होता है। इस तरह की परम्परागत वैवाहिक व्यवस्था और कहीं भी नहीं पाई जाती।

इस तरह बिहार के वैभव-सूचक अनेक विषय हैं, जिनसे बिहार के प्राचीन गौरव का स्पष्ट आभास मिलता है।





सरोज-सौरभ

[राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' के साहित्यिक संस्मरण]

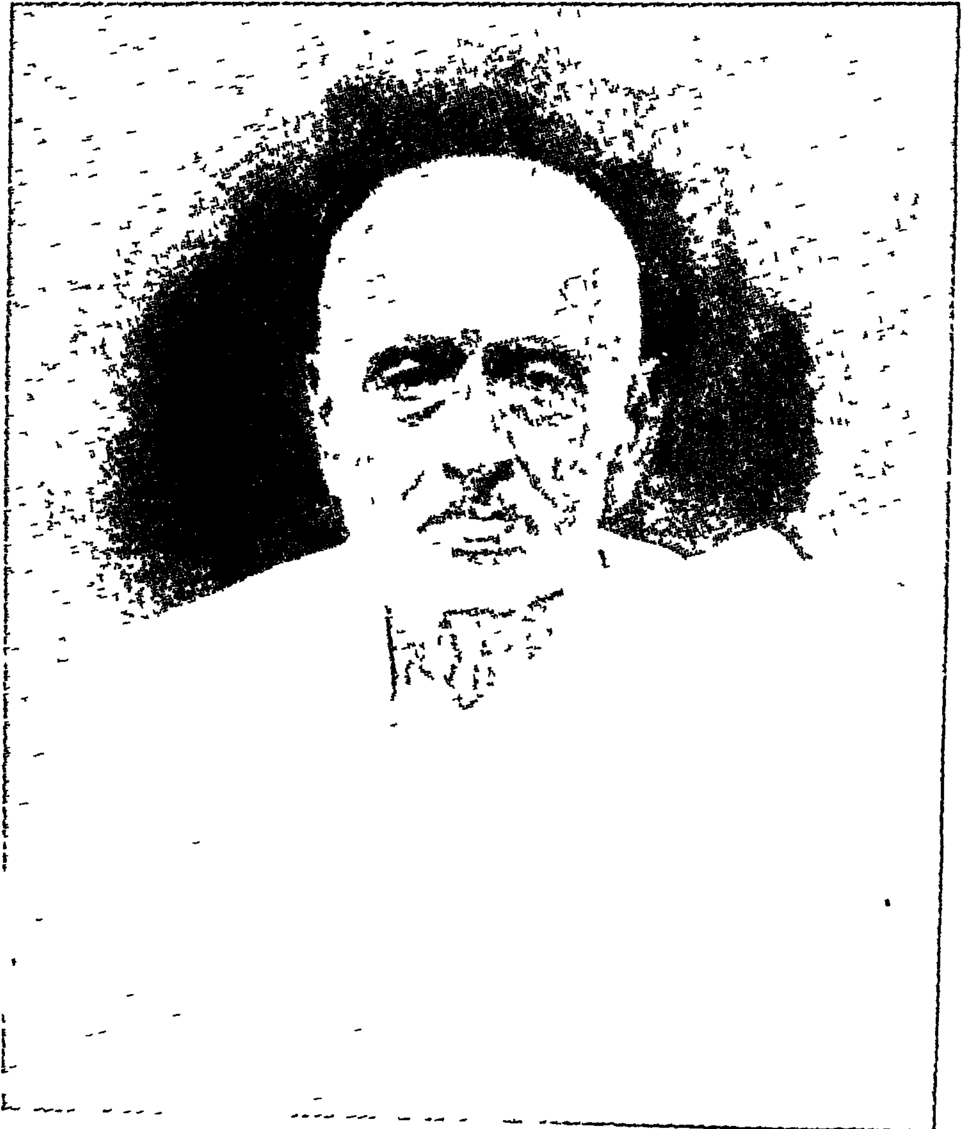
पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन'

सरस अभंग राग-रंग सों सने ही रहैं,
सुजस बखानैं कवि जाके गुन ओज को।
सुमन असेष में विसेष अनुमानि जाहि,
विबुध चढ़ावैं सीस गहि मन मौज को॥
कोमल न जासों 'जनसीदन' जहान बीच,
कमला दिखावै कृपा जापै रोज रोज को।
ताप कों हरनवारो सीतल करनवारो,
फैलि रह्यो चारों ओर 'सौरभ सरोज' को॥

उपोद्घात

जब मेरी उम्र २७ वर्ष की थी, तब मैं जैंतपुर (मुजफ्फरपुर) के महन्त चौधरी रघुनाथदासजी की छत्रछाया में रहकर सुख से समय बिता रहा था। उन्हीं दिनों, सन् १८६८ ई० में, कानपुर से पंडित मनोहरलाल शर्मा के सम्पादकत्व में 'रसिकमित्र' नामक समस्यापूर्त्ति का एक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा था। उसमें समस्याएँ दी जाती थीं। कवि उनकी पूर्त्तियाँ करके भेजते थे। पूर्त्तियाँ छपती थीं। सम्पादक महोदय कवितानुरागी राजा-रईसों के मनोविनोदार्थ 'रसिकमित्र' उनके पास भेजते थे। वे भी चन्दा दिया करते थे।

उसी समय कानपुर से राय देवीप्रसादजी साहब ('पूर्ण' कवि) की निरीक्षकता में 'रसिक-वाटिका' नामक समस्यापूर्त्ति-सम्बन्धी एक मासिक पत्रिका और भी निकलने लगी थी। परन्तु 'रसिकमित्र' का प्रचार इतना बढ़ गया था



प० श्रीजनार्दन झा 'जनसीदन'
[द्विवेदी-युग के बिहार के प्रतिनिधि लेखक]



श्री 'जनसीदन'जी के सुपुत्र प्रोफेसर श्रीहरिमोहन झा, एम्० ए०

कि भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों के कवि तथा कतिपय विदेशस्थ कवि भी अपनी पूर्त्तियाँ उसमें भेजते थे। समय-समय पर समस्या-पूर्त्तियों की समालोचना भी निकलती रहती थी।

जैंतपुर के महन्तजी के पास भी 'रसिकमित्र' आता था। वहाँ के मिडिल इंग्लिश स्कूल के कोई-कोई शिक्षक भी उसमें अपनी पूर्त्तियाँ भेजा करते थे। एक दिन महन्तजी ने वह मासिक पत्र मुझको देखने दिया और कहा कि इसमें जो समस्या छपी है, उसकी पूर्त्ति करके सम्पादक के पास भेज दीजिये। मैं उनकी आज्ञा मानकर उस पत्र को अपने वासस्थान पर ले गया। देखा कि श्रीनगर (पूर्णियाँ) के राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' की तथा उनके आश्रित कवियों की पूर्त्तियाँ भी उसमें छपी हैं। मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ कि मैथिल-समाज में एक ऐसे भी धनी-मानी महान् कवितानुरागी पुरुष हैं, जो स्वयं कविता करते हैं और कवियों के आश्रयदाता भी हैं। राजा साहब का नाम उसी समय मेरे हृत्पट पर अङ्कित हो गया और मैंने उनसे मिलने का मन में संकल्प कर लिया।

स्वर्गीय पंडित जीवनाथ ठाकुर, जो स्व० पं० देवीकान्त ठाकुर के पिता और अथरी-निवासी पं० मुक्तिनाथ ठाकुर के छोटे भाई थे, एक बार महन्तजी से मिलने आये थे। मेरी ही कोठरी में ठहरे और महीनों वहाँ रह गये। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। तन्त्रशास्त्र में आपकी विशेष प्रगति थी। आपने 'रसिकमित्र' में छपी समस्या को संस्कृत-पद में परिवर्त्तित करके संस्कृत-पद्य में उसकी पूर्त्ति की थी। श्लोक आप शीघ्र बना लेते थे। आपने महन्तजी को अपनी पूर्त्ति सुनाई और उसकी व्याख्या की। सुनकर महन्तजी तथा उनके आश्रित विद्वान् बड़े प्रसन्न हुए। चलने के समय महन्तजी ने आपकी अच्छी बिदाई की।

'रसिकमित्र' के जिस अङ्क में मुझे राजा साहब का परिचय मिला था, उसमें समस्या थी 'गाय कै' जिसकी पूर्त्ति मैंने दो कवित्तों में की थी—

भारतप्रसिद्ध बुधि विद्या गुन आग जामें,
रसिक-सुमित्र सर सोहै सरसाय कै।
सरस कबित्त जलपूरन बिराजि रह्यौ,
सुकबि अनेक हंस जामें रहैं छाय कै॥
बिकच बिलोकि एक 'साहित-सरोज' तामें,
गुंजत मलिन्द मन मेरो हरषाय कै।

धन्य रसिकेस हैं दिनेस 'जनसीदन' जू,*
कुकवि हिये को तम दीन्हों बिलगाय कै ॥१॥
जाती तजि कन्त को न दासिन बुलाती जऊँ,
ननदी रिसाती रहि जाती है चुपाय कै।
हीय हुलसाती ना सकाती 'जनसीदन' त्यों,
सखिन समाज हूँ सों रहति छिपाय कै।
मैन - मदमाती अंग - अंग उमगाती रस-
बचन सुनाती सकुचाती मुसुकाय कै।
धन्य जग जाहि ऐसी प्रेमरंग - राती सटि,
सोवै या हिमन्त राती छाती सों लगाय कै ॥२॥

जब ये दोनों कवित्त 'रसिकमित्र' मे छपकर राजा साहब की नजर से गुजरे, वे बड़े प्रसन्न हुए—यह उनके प्राइवेट सेक्रेटरी के हाथ की लिखी धन्यवाद-सूचक चिट्ठी से मुझे ज्ञात हुआ।

प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के अवसर पर श्रीनगर में पहलवान लोग जुटते थे, कुश्तियाँ होती थीं। दंगल देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते थे। जैंतपुर के पहलवान भी वहाँ जाते थे और कुश्ती मे विजय प्राप्त करके अच्छा पुरस्कार पाते थे। उनलोगो के मुँह से राजा साहब की तारीफ सुनकर मेरा मन उनसे मिलने के लिये और भी उत्कंठित हो उठा।

आखिर मैंने महन्तजी से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर श्रीनगर जाने का संकल्प किया। मेरा इरादा पहले बनैली जाने का हुआ, क्योंकि इसके पूर्व मैं यह भी सुन चुका था कि बनैली (रामनगर) के प्रसिद्ध राजा पद्मानन्द सिंह भी बड़े उदार हैं और कवियो का अच्छा सम्मान करते हैं।

मैं छुट्टी लेकर रामनगर गया। बरसात का आरम्भकाल (आषाढ़) था। धर्मशाला में जाकर ठहरा। मेरे आने की खबर राजा पद्मानन्द सिंह को दी गई। उन्होंने दूसरे दिन सवेरे मुझे बुला भेजा। मैं उनसे जाकर मिला। जो कवित्त उनकी तारीफ में बनाकर मैं ले गया था, उन्हें सुनाया। बहुत प्रसन्न हुए। मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना परिचय दिया। जैंतपुर के महन्तजी के विषय मे

* 'रसिकमित्र' के सम्पादक पं० मनोहरलाल शर्मा कविता में अपना उपनाम 'रसिकेश' लिखा करते थे।—ज० झा

(लेख—पृष्ठ ४७०)



१



२



३

१
श्रीनगर (पूर्णिया) के अधिपति
साहित्य-सरोज
स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंहजी

२
राजा कमलानन्द सिंहजी के अनुज
स्व० कुमार कालिकानन्द सिंहजी

३
वर्त्तमान श्रीनगराधीश
कुमार गंगानन्द सिंह, एम० ए०



बाईं ओर—स्वर्गीय महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह, दरभंगा
दाहिनी ओर—स्व० रायबहादुर रामानुग्रहनारायण सिंह, बदलपुरा

उन्होंने बहुत-सी बातें पूछीं। मैंने सबका उचित उत्तर दिया। उन्हें यह जानकर विशेष हर्ष हुआ कि मैथिल-समाज का एक नवयुवक ब्रजभाषा में ऐसा अच्छा कवित्त बनाता है। मैंने जो कवित्त सुनाये थे, उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

जानै सब कोऊ रामनगर - नरेस ऐसो,
दूसरो न कोऊ नृप दीन - दुःखहारी है।
आज लौं न देख्यौ निज नैनहू न कानों सुन्यौ,
आपके समान जग दूजो उपकारी है।
कहै 'जनसीदन' बेहाल जाहि देखैं ताहि,
करहि निहाल दया दीह उर धारी है।
कोऊ सरनागत ह्वै अरज लगावै ताकी,
विपद रहै ना कवि - कीरति प्रचारी है ॥१॥
होती गगधार तो समाती यह जटा बीच,
जानि ना परति गति स्वच्छता सजी की है।
कोऊ गंधसार में घनेरो घनसार घोरि,
लेपन बनाय भेजि कीन्ही भक्ति जी की है।
कैधौं मुकुता को पुंज मानि या हिमालय को,
पंक्ति राजहंसन की जुटी सो छटा नीकी है।
आयो कछु ज्ञान में न ध्यान करि जान्यौ सिव,
कीरति बनैली - पति पद्मानन्दजी की है ॥२॥

मेरी कविता सुनकर राजा साहब और दरबार के पंडित तथा कवि बड़े प्रसन्न हुए। राजा साहब उसी दिन पुर्नियाँ जानेवाले थे। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने मुझे उनके साथ पुर्नियाँ चलने की सूचना दी। किन्तु मेरा तो श्रीनगर जाना भी जरूरी था। इसलिये मैंने उनसे यह वादा किया कि कुछ दिनों के बाद फिर राजा साहब की सेवा में हाजिर होऊँगा। इस प्रस्ताव को उन्होंने स्वीकार कर लिया।

रामनगर से श्रीनगर छ मील दूर है। सड़क अच्छी है। साँझ होते-होते अपने नौकर के साथ पैदल ही चलकर वहाँ पहुँच गया। उसी समय राजा कमलानन्द सिंह साहब अपने सहचरों के साथ टहलने के लिये फाटक से बाहर हुए थे। मैंने आगे बढ़कर उन्हें आशीर्वाद दिया। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना नाम बतलाया और जैतपुर से आने की बात कही। उन्होंने झट पहचान

लिया और जमादार को हुक्म दिया कि मुझे तहसीलदार के पास ले जाकर ठहरावे तथा खाने-पीने का प्रबन्ध कर दे।

तहसीलदार मैथिल ब्राह्मण थे। नाम था उनका विश्वनाथ झा। श्रीनगर के समीप ही किसी गाँव के रहनेवाले थे। बड़े हँसमुख और उदार थे। उन्होंने एक कोठरी मे चारपाई रखवाकर मेरे रहने की सारी सल्तनत कर दी। वे मुझे मैथिल ब्राह्मण और हिन्दी का कवि जानकर बड़े खुश हुए। उनके मुँह से यह सुना कि साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास भी यहाँ आये हुए हैं, रात के दरबार में नित्य कविता की अविरल धारा बहती है, राजा साहब के दरबार मे तीन-चार कवि नियुक्त हैं जो प्राय नित्य अपनी बनाई कविता राजा साहब को सुनाते हैं। यह सब जानकर बड़ा हर्ष हुआ।

रात के आठ बजे दरबार में मेरी बुलाहट हुई। राजा साहब की प्रशंसा के कवित्त बनाकर मैं लाया था, साथ लेता गया। राजा साहब से भेंट तो हो ही चुकी थी। उनके सामने जिस पंक्ति मे कवि और पडित बैठे थे, मैं भी बैठा। कुछ देर तक इधर-उधर की बात होने के बाद दरबारी कवि यज्ञराजजी ने मुझसे कहा कि अपनी बनाई कविता सरकार को सुनाने के लिये लाये हों तो पढ़कर सुनाइये। मैंने लिखित कवित्त जेब से निकालकर श्रीमान् को सुनाना आरम्भ किया। उनमे से कुछ ये हैं—

बिद्या में गनेस सुखभोग में सुरेस,
रिद्धिवृद्धि में धनेस धीरता में अवधेस हों।
बानी-कृत कौसल में सेष त्यों दिनेस तीखे
तेज में, सुकीरति - कला में कुमुदेस हों॥
सान्ति - सुख-भोग में रमेस 'जनसीदन'' जू,
ज्ञान - गुरुता में नृप जनक जनेस हों।
विबुध-सभा में सुरपूज्य कविमंडली में,
सुकबि-प्रससित श्रीनगर - नरेस हों॥१॥
कोऊ मृगअंक, कोऊ बारिधि को पंक मानै,
मिटै नाहि पाप को कलंक उर धारो है।
कोऊ कहै रोहिनी-दृगंजन की रेख लागी,
जानै जन कोऊ भूमि-छाया छापि डारो है॥

कोऊ कछु मानै अनुमान्यौ 'जनसीदन' जो
'साहित-सरोज' दूजे भोज सों उचारो है।
सुजस तिहारो देखि अजस अमित्रन को,
छिप्यो जाय चन्द माँहि सोई वह कारो है ॥२॥

(सवैया)

साधन सिद्धि चहौ सुखबृद्धि, समृद्धि चहौ जो चहौ दुख छीजै।
धर्म चहौ, सुभकर्म चहौ, नित सर्म चहौ, कविता-रस पीजै ॥
त्यों 'जनसीदन' मान चहौ, गुन ज्ञान चहौ, जग में जस लीजै।
श्रीकमलानँद सिंह महीपहि सेइ मनोरथ पूरन कीजै ॥३॥
दीनन को दुख दूर करैं प्रभु, को हमसों बढ़ि दीन जहान।
विप्रन को उपकार करैं यदि हैं हम मैथिल विप्र महान ॥
जो सरनागत पै करुना बढ़ि हौं सरनागत सीलनिधान।
त्रान करैं 'जनसीदन' को जग धर्म न जीवन-दान समान ॥४॥

इसी अवसर पर सुनाया हुआ एक कवित्त इस लेख के आरंभ में है।

कविता सुनकर राजा साहब तथा दरबारी कवि और पंडित बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन व्यासजी किसी कारण-वश दरबार में नहीं आ सके थे। दूसरे दिन मैंने उनके वासस्थान पर जाकर उनके दर्शन किये और अपनी कुछ नई-पुरानी कविताएँ उन्हें सुनाईं। उन्होंने प्रसन्नता का भाव प्रकट करते हुए पूछा कि साहित्य का अध्ययन तुमने कहाँ किया। मैंने कहा—साहित्य की पुस्तकें मँगाकर स्वयं पढ़ी हैं, किसी गुरु से साहित्य-ग्रन्थ पढ़ने का अब तक अवसर नहीं मिला है। इसपर उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा—तुम्हारी सूझ अच्छी है, किसी अच्छे साहित्यज्ञ के पास कुछ दिन रहकर शिक्षा ग्रहण करोगे तो तुम अच्छे कवियों में गिने जा सकोगे।

इतना कहकर उन्होंने कुछ आम खाने का आग्रह किया। उनके पास ढेर-के-ढेर आम पड़े थे। मुझे कुछ सकुचाते देखकर कहा—अच्छा, अगर अकेले खाने में तुम्हें कुछ संकोच होता है, तो लो, पहले मैं ही आरम्भ करता हूँ। उनकी आज्ञा के अनुसार उनके विद्यार्थी ने मेरे आगे भी अच्छे-अच्छे आम रख दिये। मैं उन दिनों आम कुछ अधिक खाता था। इससे व्यासजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने विद्यार्थी को और लाने का संकेत किया। विद्यार्थी ने दस-बीस आम और भी लाकर रख दिये। मैंने यथेष्ट आम खाये। व्यासजी ने मिथिला में आम की विशेषता पर एक संस्कृत-पद्य पढ़ा, जो मुझे याद नहीं है। भाव यही था

कि जिस मिथिला के जड वृक्ष रसाल के फल में इतना सरस माधुर्य भरा है, उसके मनुष्यों में कितना माधुर्य और सरसता होगी।

आम खाने के अनन्तर व्यासजी ने अपने हाथ से मुझे दो बीडे पान के देकर अपना सौजन्य दिखलाया। मैंने उस आदर-सूचक पान को बडी श्रद्धा और भक्ति से ग्रहण किया।

दूसरे दिन के दरबार में राजा साहब ने कुछ समस्याएँ पूर्त्ति करने को दीं—(१) मारकीन छीन वाहि नैनसुख दीजिये, (२) कानन तें निकरि दुकानन पसरिगो, (३) जोतसी जो हैं तो नेक सगुन विचारिये, (४) साँवरे वदन पर भाँवरे भरत है, (५) बार-हि-बार उछालत निम्बू।

पाँचवीं समस्या राजा साहब के मौसेरे भाई की दी हुई थी। मैंने उसी समय सबकी पूर्त्ति की—

बसन खरीदे मिस चली है सहेली संग,
मन मनमोहन सों मिलन पतीजिये।
आवत विहारी को बिलोकि सखि बोली तहाँ,
कब सों खडी है झट दाम कर लीजिये।
रावरी प्रतीति करि ल्याई यहाँ एती दूर,
सुनिये बजाज बहु मोल मत कीजिये।
बिलम लगाइए न, राखिए, न लैहौं यह,
मार कीन छीन याहि नैनसुख दीजिये ॥१॥
काहे यों अकेली वन बीच सखि बैठी यहाँ,
खबरि न देह की है, नीबीहू ससरि गो।
हाँफति हो बोलति न मोसों 'जनसीदन' क्यों,
चलति न भौन देखु घोसहू निकरि गो।
नजरि लगी है कहूँ काहू की डरी हो, सुधि
देह की न, मेरी कही बातहू बिसरि गो।
तेरो नाम लै लै कान्ह बाँसुरी बजावै यह
कानन तै निकरि दुकानन पसरि गो ॥२॥
सोचति किते हो बैठि औघट अकेली अरी,
बोलति न काहे नीर नैन कोर भरि गो।

लेती हौ जम्हाई 'जनसीदन' क्यों बार-बार,
सिथिल भई है देह बारहू बिथरि गो॥
दन्त दाबि ओठ, कर ओट कै छिपाओ गाल,
हमसों बताती क्यों न हाल तो उभरिगो।
कानन में कान्ह सों मिली तू यह बात आज
कानन ते निकरि दुकानन पसरि गो॥३॥
पख है अँधेरो, भई साँझ 'जनसीदन' ह्याँ,
पथिक हमारे घर आतिथ सकारिये।
आये बहु दूर चलि थकित भये है आप,
ठहरि भले ही स्रम दूर करि डारिये।
ननद जिठानी गई रूसि कै पड़ोसी घर,
इत मैं अकेली बात मेरी मत टारिये।
पाँय परि पूछौ कब ऐहै घर कन्त मेरो,
जोतसी जो हैं तो नेक सगुन बिचारिये॥४॥
जा दिन सों नजर लगाई 'जनसीदन' वे,
ता दिन सों मेरे उर कल ना परत है।
भावत न भौन, चित चंचल चकोर यह
वाको मुखचंद बिन देखे हहरत है॥
जतन घनेरे करि हारी पै न [illegible],
प्रेमरस लोभी मन [illegible] है।
चंचल हमारो [illegible] से
साँवरे [illegible] पर [illegible] हैं॥५॥

(सवैया)

कंचुकी पीन पयोधर पै [illegible] लीन्हीं है [illegible] ज्यों तनि तम्बू।
बेसरि में [illegible] मनो फल जम्बू॥
ताकति है तिरछे '[illegible]' [illegible] सुशोभित कंठ [illegible]।
ताहि दिखाय लगाय हिये हरि [illegible] ॥६॥

राजा साहब ने मेरी समस्या-पूर्तियाँ सुनकर प्रसन्नता प्रकट की। [illegible] में जितने पंडित और कवि थे, मेरी प्रशंसा करने लगे। पहले-पहल [illegible] राज-दरबार में विद्वानों के सम्मुख मुझे कवित्त पढ़ने का अवसर [illegible]

राज-दरबार की नीति-रीति-व्यवस्था से अनभिज्ञ रहने पर भी मैं प्रशंसा-भाजन बना, यह क्या कम सौभाग्य की बात थी।

दरबार में उस समय सलेमपुर (दरभंगा) के वैयाकरण श्रीकान्त मिश्र, कोइलख के प्रसिद्ध पंडित खुद्दी झा, तिलाठी (उत्तर-भागलपुर) के ज्योतिषी परमेश्वरीदत्त मिश्र, पचाढ़ी के वैदिक वासुदेव ठाकुर, सुलतानपुर जिले के नोनरा-ग्रामवासी यज्ञराज कवि और पुर्नियाँ जिले के मनियारी-ग्रामवासी कवीश्वर जयगोविन्द महाराज नियुक्त थे। राजा साहब का नाम सुनकर कितने ही पंडित और कवि नित्य आते-जाते थे।

राजा साहब जैसे साहित्य-सेवी और काव्य के अनुरागी थे, वैसे ही उनके छोटे भाई कुमार कालिकानन्द सिंह संगीत के ज्ञाता और प्रेमी थे। उन्होंने एक नामी सितारिया शिवदीन पाठक और उनके बड़े भाई कमलदीन पाठक गवैया को अपने यहाँ नियुक्त कर लिया था। रात मे सात-आठ बजे से दस बजे तक एक तरफ साहित्य की चर्चा होती थी और दूसरी तरफ संगीत की मधुर ध्वनि से कमरे में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता था।

नित्य नये-नये गुणी लोग आते और अपने गुण से दोनों भाइयों को रिझाते तथा दरबार की शोभा बढ़ाते थे। कुछ दिन वे रहकर यथायोग्य सम्मानित हो श्रीनगर का यश गाते हुए अपने घर जाते थे।

साहित्याचार्य शतावधानी पंडित अम्बिकादत्त व्यास राजा साहब के प्रीत्यर्थ नायिका-भेद का एक ग्रन्थ 'सुकवि-सरोज-विकास' बनाकर लाये थे, जिसमें नायक-नायिका आदि के लक्षण तो संस्कृत-सूत्र मे थे और उनकी व्याख्या हिन्दी में तथा उदाहरण व्रजभाषा के कवित्त-सवैयो मे दिये थे। वह ग्रन्थ उन्होंने राजा साहब को समर्पित किया। खेद है कि वह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हो पाया।

राजा साहब जब भागलपुर-जिला-स्कूल मे अँगरेजी पढ़ते थे तब उस स्कूल में व्यासजी संस्कृत के हेडपंडित थे। व्यासजी मे उनकी सच्ची गुरुभक्ति थी। दूसरे, साहित्य के नाते उनमें विशेष अनुराग था। राजा साहब ने 'सुकविसरोजविकास' के पुरस्कार में व्यासजी को दो हजार रुपये नकद, बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण तथा एक हाथी दिया। व्यासजी अतीव प्रसन्न होकर गये। उस समय तक उनको उतनी बड़ी विदाई किसी राजधानी से नहीं मिली थी। यह उन्होंने अपनी कविता मे, जो उन्होंने सम्मानित होने के बाद सुनाई थी, स्पष्ट रूप से लिखा है—

(कवित्त)

कीन्हों भलो मान सिरीनगर-नरेसुर ने,
देखिबे को भीर भरि गई चहुँघा मगै।
बसन अभूषन अदूषन दै अंग-अंग,
संग दीने चोपदार लखि हियरा पगै।
ऊँचे गजराज पै चढ़ाय कै बिदाई दीन्ही,
चलतै 'सुकबि' हिय संसय यहै जगै।
मति धों बघेला, कै बुँदेला कै चँदेला जानि,
कहूँ तैं चहूँघा पै सलामी दगिबै लगै ॥१॥

(सवैया)

तू जयसिंह सो है महाराज बिहारी सो व्यास लह्यौ सुख सारो।
दूसरो तू छत्रसाल अहै, 'सुकवी' तों सभा महँ लाल निहारो।
श्रीकमलानँद सिंह सुनो, जस आपको चारहू ओर पसारो।
तू सिवराज अहै मिथिला को औ भूषन अम्बिकादत्त तिहारो ॥२॥
है गुनगाहक और गुनी, इन दोउन दुर्लभ लोग कहै है।
जो पै कहीं गुनगाहक होंहि तो आप गुनी तहँ खोजन जैहैं।
भागन तें 'सुकवी' कों मिले तुम तोऊ हहा हम और लजैहै।
आप इतो गुन देखि दियो गुनगाहकता पै कहा हम दैहैं ॥३॥

(कवित्त)

चूमि रह्यौ भूमि लौं दिगन्तन को कन्त बन्यौ,
चाँदनी अलिङ्गै अजहू न हिय हारो है।
अमरबधून अंगरागन लपटि रह्यौ,
रगरत छीरधि तरगन निहारो है।
सुकबि सुनो तो कमलानँद जू महाराज,
याने गुनी-गनन गरूर गहि गारो है।
कुलटा सुनी ही तिय उलटा पुलट देख्यौ,
नायक कुलट एक सुजस तिहारो है ॥४॥
बरबस दौरि कै दबावत है जाय जाय,
और और भूपन की कीरति कुमारी है।

दसहूँ दिसान अबलान कों अलिंगन कै,
चूमत चमकि चन्द-किरन फतारी है।
परम नवेली अलबेली मेरी कविता हू,
सुकवि ज्यों मन्त्र मारि बस करि डारी है।
ऊधम अपारी अब नाहिन सहा री जात,
सुजस तिहारो भयो भारी बिभचारी है ॥५॥

व्यासजी जब श्रीनगर से विदा हुए, तब राजा साहब अपनी समस्त पंडित मंडली के साथ पुर्नियाँ तक पहुँचाने गये। मैं भी उनके साथ चला। सब लोग राजा साहब की मधुबनी वाली कोठी मे ठहरे।

पुर्नियाँ के रईसों ने जब व्यासजी के आने की बात सुनी, सबने बड़े उल्लास के साथ आ-आकर व्यासजी के दर्शन किये। सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि व्यासजी का अवधान हो। एक निश्चित तिथि को सायंकाल सब लोग डाक-बँगले मे एकत्र हुए। व्यासजी के साथ राजा साहब और हमलोग भी अवधान देखने के लिये वहाँ गये। सात बजे से अवधान शुरू हुआ। एक साथ कई विषयों का अवधान हुआ। अवधान मे सिर्फ एक घंटा लगा होगा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, निम्नलिखित विषय अवधान के लिये चुने गये थे—

(१) संस्कृत-श्लोक की समस्या-पूर्त्ति, (२) हिन्दी-सवैया-छन्द की समस्यापूर्त्ति, (३) निर्दिष्ट विषय पर सरस्वती-यन्त्र, अर्थात् अनुष्टुप् छन्द के आठ-आठ अक्षरों के चार कोष्ठ बनाकर उँगली रक्खे हुए कोष्ठ मे तुरन्त अक्षर-न्यास करके श्लोक रचना, (४) निर्दिष्ट संख्याओं का जोड़, (५) निर्दिष्ट अङ्क का गुना, (६) व्यवकलन अर्थात् अङ्क मे अङ्क घटाने का प्रश्न, (७) ताश दिखलाया जाना (उसे स्मरण रखना), (८) घंटानाद।

प्राय. ये ही आठ अवधान हुए थे। नियम यह था कि पहली आवृत्ति मे आठों प्रश्नो का एक चतुर्थांश उनसे कहा गया, जिसकी पूर्त्ति उन्होंने की। इसी प्रकार चार आवृत्तियों में सब प्रश्नो के उत्तर देकर अन्त मे उन्होंने एक साथ किये हुए अवधानो को पृथक्-पृथक् सुना दिया।

सभास्थ सभी लोग उनकी स्मरणशक्ति पर चकित हो गये और सब लोग एक स्वर से उनकी प्रशंसा करने लगे। अन्त में राजा साहब की ओर से पान-इलायची बँट जाने के अनन्तर सभा विसर्जित हुई।

इस प्रकार अपने अवधान से पुर्नियाँ के सभ्य समाज को चकित पुलकित

करके व्यासजी बनारस चले गये। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा कि भागलपुर होकर घर जाना।

उन दिनों कौशिकी नदी में पुल नहीं बना था। पुर्नियाँ से फारबीसगंज होकर अचला-घाट तक रेलगाड़ी गई थी। उस पार का नाम कनमाघाट था। कौशिकी की प्रखर धारा में डोंगी पर सवार होकर यात्री इस पार से उस पार और उस पार से इस पार जाते-आते थे। असाढ़ में कौशिकी के प्रवाह का वेग कितना उत्तुङ्ग और भयङ्कर होता है, यह मुझे बिलकुल मालूम न था। शायद व्यासजी को यह ज्ञात था, इसीसे उन्होंने मुझे भागलपुर होकर जाने का आदेश किया था।

दूसरे दिन मैंने भी राजा साहब से बिदा होने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने मुझे ऊँचे दरजे के भाषा-कवि की जो बिदाई नियत थी वह दी और चलते समय कहा—हमारे यहाँ शारदीय पूजा में विशेष उत्सव होता है, अवकाश हो तो यहाँ आ जाइयेगा।

मैं राजा साहब के सौजन्य, सद्व्यवहार और उदारता से अत्यन्त प्रसन्न होकर चला। राजा पद्मानन्दसिंह बहादुर तबतक पुर्नियाँ में ही ठहरे थे। वहाँ पहुँचकर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी से मैंने भेट की। वे मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। मेरे ठहरने और खाने-पीने का सारा प्रबन्ध ठीक कर दिया और कहा कि कल सवेरे राजा साहब से भेंट होगी।

दूसरे दिन जब राजा साहब दरबार में बैठे, मेरी बुलाहट हुई। मैं पहले ही से तैयार था। ९ बजे दरबार में हाजिर हो गया। राजा साहब को आशीर्वाद देकर, जिधर बैठने का संकेत हुआ, बैठा। राजा साहब ने कहा—अच्छा, हम कुछ समस्याएँ देते हैं, उनकी पूर्त्ति अभी करके सुनाइये।

दरबारी लोग मेरे मुँह की ओर देखने लगे और यह कहकर मेरा उत्साह बढ़ाने लगे कि शीघ्र समस्या-पूर्त्ति करके हुजूर के आदेश का पालन कीजिये। समस्याएँ निम्नलिखित थीं—(१) मोर-पच्छधर हैं सो मोर पच्छकर हैं; (२) आधा सिन्धु बीच, आधा बसत नटावा-घर, दोऊ मिल कहा होत कहा नाम धरिये; (३) वाह-वाह कहिहौं; (४) केहि कारन पर्वत पच्छ कटायो।

मैंने पहली समस्या की पूर्त्ति तुरन्त कर डाली। पूर्त्ति तो साधारण हुई, परन्तु राजा साहब तथा दरबारी लोग उसे सुनकर वाह-वाह करने लगे। राजा साहब ने तो कई वार मुझसे पढ़वाकर सुना।

विप्र पच्छकर हैं सो दैत्य-पच्छहर हैं,
जो दैत्य-पच्छहर हैं सो देव-रच्छकर हैं।
जो देव-रच्छकर हैं सो सैल-संगधर हैं,
जो सैल-संगधर हैं सो नन्द-मोदकर हैं।
जो नन्द-मोदकर हैं सो चन्द-मन्दकर हैं,
जो चन्द-मन्दकर हैं सो मोर पच्छकर हैं।
जो मोर पच्छकर हैं सो मोर-पच्छधर हैं,
जो मोर-पच्छधर हैं सो मोर पच्छकर हैं ॥१॥

शेष दो समस्याओं की पूर्त्तियाँ मैं वासस्थान से कर लाया और दिन के ५ बजे राजा साहब को सुनाया। सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने एक मुसाहब से मेरी समस्यापूर्त्तियों को लिख लेने के लिये कहा—

आधा तिहि नाम को प्रसिद्ध 'हरि' सिन्धु बीच,
रहत सदा ही सो प्रतीत मन गहिये।
आधा नाम 'ताल' सो नटावा-घर पाइयत,
दोऊ मिलि होत गिरि ऊपर सो लहिये।
ताको नाम जानै 'हरिताल' जनसीदनजू,
राखत पसारी, पद चौथे अनुसरिये
आधा सिन्धु बीच आधा बसत नटावा-घर,
दोऊ मिलि यही होत यही नाम धरिये ॥२॥

काहे करो रार इत आयकै कलिन्दी-तीर,
बालक न हौ जो रिस रोकि बात सहिहौं।
माँगौ दधिदान, क्यों गुमान करौ एतो कान्ह,
होती बटपारी अब ब्रज में न बसिहौ।
चाहौ 'जनसीदन' जो मों सो कछु लेन आज,
नाचि कै रिझाओ मोहि, साँचे सुख लहिहौ।
पैहौ मुँहमाँगा दान, तभी तुम सुनो कान्ह,
गान सुनि तेरो जब वाह-वाह कहिहौ ॥३॥

धन्य जटायु भये जग में, जिन जानकी-कारन प्रान गँवायो।
धन्य समीर-तनै कपि जो, बिन पंख समद्र को पार है आयो।

लंक जराय सिया-सुधि लै, 'जनसीदन' राम को दुःख दुरायो।
हौं लहि पंख कियो न कछु, एहि कारन पर्वत पच्छ कटायो ॥४॥

समस्यापूर्त्ति सुनकर राजा साहब बड़े खुश हुए। बार-बार मेरी तारीफ की। प्राइवेट सेक्रेटरी से कह दिया कि वे मेरे रहने का सब प्रबन्ध ठीक कर दें।

बाहर आकर उन्होंने मुझसे कहा कि आपको एक रुपया रोज भोजन के लिये मिलेगा। खाने-पीने का इन्तजाम आप स्वयं कर लेंगे। हाँ, जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कहियेगा।

दूसरे दिन के दरबार में मैं फिर उपस्थित हुआ। राजा साहब की आज्ञा के अनुसार कुछ अपनी और कुछ अन्य कवियों की कविताएँ पढ़ी। दरबार में जो साहित्य-प्रेमी थे, सब मेरी प्रशंसा करने लगे।

एक दिन मैंने राजा साहब के समक्ष अपने जाने का जिक्र किया। दरबारी लोग कहने लगे—"कुछ दिन यहाँ रहकर अपनी कविता से सरकार का मनोरंजन कीजिये। जाने में इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं? सरकार आपकी कविता से प्रसन्न हैं।"

राजा साहब के ड्योढ़ी-सुपरिंटेंडेंट बाबू तीर्थमणि झा (मँगरौनी-निवासी) ने मुझे बुलाकर कहा—"आप यहाँ कुछ दिन और रह जाइये। राजा साहब की आपके ऊपर बड़ी कृपा है। आप यहाँ नौकरी करना चाहें तो हम सरकार से कहकर आपको बहाल करवा दें। आपको यहाँ रहने में कोई कष्ट होता हो तो कहिये, हम आपके आराम का सारा प्रबन्ध कर दें। कम-से-कम एक महीना भी तो यहाँ रहिये। कुछ रुपये की जरूरत हो तो वह भी मिल जा सकता है।"

किन्तु मेरे अदृष्ट-योग में वहाँ का रहना नहीं लिखा था।

आखिर उन्होंने राह-खर्च कहकर कुछ रुपये दिये और कहा कि राजा साहब से तो आपको पूरी बिदाई तब मिलती जब आप उनकी मर्जी से जाते।

मैंने उनको धन्यवाद देकर वहाँ से प्रस्थान किया। पुर्नियाँ स्टेशन आकर सोचा—भागलपुर होकर जाने में एक तो रेलवे-महसूल ज्यादा लगेगा, दूसरे देर से घर पहुँचूँगा। इतना बड़ा द्राविडी प्राणायाम कौन करे? कौशिकी पार उतरकर शीघ्र घर पहुँच जाऊँगा। इसलिये कनमाघाट का ही टिकट कटाया। साथ एक नौकर भी था।

जब कौशिकी के किनारे गाड़ी से उतरा, घाट पर कई डोंगियाँ लगी थीं। उत्तुङ्ग तरङ्गें देखकर होश उड़ गये। सुना कि कई नावें डूब चुकी हैं। तो भी कितने

ही यात्री उस पार जाने को तैयार थे। मडुकिया गाँव के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी यदुनाथ झा कूचविहार (बंगाल) से अपने विद्यार्थी के साथ आ रहे थे। कुछ देर बाद एक साथ सात-आठ नावें खुलीं। हरेक नाव पर २५—२५ यात्री सवार थे। सबके पीछेवाली डोंगी पर मैं और उपर्युक्त ज्योतिषीजी तथा अन्यान्य यात्री आरूढ़ हुए।

जब कौशिकी की बीच धार में डोंगी पहुँची, तब तो सबकी छाती दहल उठी। ताड-बराबर तरङ्गे ऊपर उठती थीं और फिर उतना ही नीचे गिरती थीं। मन मे होता था, इस बार नाव कौशिकी के गर्भ में विलीन हो जायगी। सब लोग 'जय कौशिकी महारानी की' पुकार करने लगे। ज्योतिषीजी चंडी-पाठ करने लगे। मैं भी अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगा। लेकिन यह आशा न थी कि हमलोग उस पार पहुँच सकेंगे। जो नावें आगे निकल चुकी थीं, पता नहीं चलता था कि कौन बची और कौन जलमग्न हुई। मल्लाह लोग जान हथेली पर लिये, हमलोगों को धीरज बँधाते, नाव खेते आगे बढ़ रहे थे।

जब हमारी नाव किसी तरह बीच धारा से निकल गई, तब सबकी जान में जान आई और सब अपना पुनर्जन्म समझ कौशिकी महारानी का जय-जयकार करने लगे। राम-राम करके हमलोग किनारे लगे। सब नावें सकुशल किनारे पहुँच गईं।

कौशिकी की प्रखर धारा देखकर मुझे स्मरण हो आया कि त्रिकालदर्शी व्यासजी ने भागलपुर होकर जाने का आदेश क्यों किया था। उन्हीं के आशीर्वाद से डूबते-डूबते जान बची।

कनमाघाट से मैंने दरभंगा का टिकट कटाया। दरभंगा से ६—७ कोस आग्नेय कोण में हमारे श्वसुर पंडित नचारी झा का आवासस्थान (बहेड़ी) था। वहाँ जाने का विचार पहले ही कर लिया था। उन दिनों मेरी सहधर्मिणी अपने मायके में ही थीं। उन्हें वहाँ से अपने घर ले जाना जरूरी था। दरभंगा से एक्के पर मैं बहेडी पहुँचा। वहाँ आठ-दस दिन रहा। वहाँ से स्त्री के विदा होने की तिथि का निश्चय कराकर अपने घर गया।

कुछ दिन बीतने के बाद श्रीनगर से एक पत्र आया। वह राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू नरनाथ झा के हाथ का लिखा था। उसमें उन्होंने मुझसे पूछा था कि शारदी पूजा में मैं वहाँ जा सकूँगा या नहीं।

कलश-स्थापन से दो दिन पहले ही मैं श्रीनगर-ड्योढ़ी पहुँचा। राजा कमलानन्दसिंह मुझे उपस्थित देखकर बड़े प्रसन्न हुए।



भगवान् बुद्ध और सुजाता

भगवान् बुद्ध को सुजाता भक्ति-भाव से खीर अर्पित कर रही है।

चित्रकार—श्रीउपेन्द्र महारथी

[पुस्तक-भंडार के 'चित्र-संग्रह से']

नवरात्र में वहाँ हर साल की तरह उत्सव हुआ। गुनी-गवैये जो हर साल आते थे, आये। कुश्ती भी पाँच-सात जोड़े अच्छे पहलवानों की हुई। राजा साहब का यश सुनकर पंजाब से ३—४ जोड़े नामी पहलवान आये हुए थे।

उत्सव सकुशल समाप्त हो गया। समागत लोग अपने-अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। जिन्हें जो मिलने का नियम था, मिल गया। जब मैं जाने को उद्यत हुआ, राजा साहब ने मुझसे अपने मौसेरे भाई बाबू नरनाथ झा द्वारा पुछवाया कि मेरे यहाँ यदि इनको रहना स्वीकार हो तो जो वेतन कवियों को यहाँ मिलता है, इन्हें भी मिलेगा। विशेषता इनमें यह है कि ये मैथिल हैं, इसलिये इनके भोजन का प्रबन्ध मेरे रसोई-घर में ही हो जायगा। इन्हें अलग रसोई बनाने का झंझट नहीं उठाना पड़ेगा।

मैंने उनके आदेश को स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने जब मेरी स्वीकृति की बात सुनी, बड़े प्रसन्न हुए। नवरात्र के दान-विभाग से मुझे ५०) रुपये घर पर भेज देने के लिये दिलवा दिये गये। मैं राजा साहब की सेवा में स्थायी रूप से रहने लगा।

राजा साहब का परिचय

जन्म-स्थान और पूर्वज

मिथिला के पूर्व-भाग में पुर्नियाँ जिले के अन्तर्गत बनैली-राजधानी की एक शाखा 'श्रीनगर' नाम से प्रसिद्ध है। वहीं राजा साहब का जन्म हुआ था।

राजा साहब के प्रपितामह राजा दुलारसिंह ने सर्वप्रथम बनैली-राजधानी का स्थापन किया था। वे यजुर्वेदीय वत्सगोत्र मैथिल ब्राह्मण थे। उन्होंने बनैली में निवास करके सर्वत्र अपना यश फैलाया। सारे बिहार-प्रदेश में उनका प्रताप प्रचंड मार्त्तण्ड की भाँति उद्दीप्त था। जिस समय नैपाल के सीमास्थित मोरङ्ग-प्रदेश के लिये नैपालियों और अँगरेजों के बीच विरोधाग्नि प्रज्वलित हुई, उस समय उन्होने अँगरेजों की बड़ी सहायता की। उन्हीं के सुप्रबन्ध, दूरदर्शिता और नीतिकौशल से अति शीघ्र सीमा-बन्दी हो गई। यदि वे उस समय गवर्नमेंट की सहायता नहीं करते तो प्रायः सन्धि न होकर युद्ध अनिवार्य हो जाता, जिससे दोनों पक्षों की बड़ी हानि होती। उनके इस साहाय्य और कौशल के उपलक्ष में भारत-सरकार ने १८११ ई० में उन्हें राजा-बहादुर की उपाधि दी। तब से वे राजा दुलारसिंह बहादुर कहलाने लगे। सरकार की दयादृष्टि से उनके ऐश्वर्य की दिन-दिन वृद्धि होने लगी।

राजा दुलारसिंह के दो पुत्र हुए—वेदानन्दसिंह और रुद्रानन्दसिंह। दोनों सौतेले भाई थे। पिता के परलोकवासी होने पर कुछ दिन तक दोनों भाइयों मे प्रेमभाव बना रहा। तदनन्तर हृदय का भाव बदल जाने से राज्य आधा-आध बँट गया। दोनो भाई अपना-अपना अंश लेकर अलग हो गये।

राजा वेदानन्दसिंह के एकमात्र पुत्र लीलानन्दसिह हुए। वे बडे दानी थे। राजा वेदानन्दसिह भी हिन्दी के अच्छे लेखक थे। उनका बनाया हुआ वैद्यक-ग्रन्थ 'वेदानन्द-विनोद' प्रसिद्ध है।

राजा रुद्रानन्दसिंह अल्पायु हुए। उनकी पाँच सन्तानों में एकमात्र राजा श्रीनन्दसिंह बच गये। इनके शुभचिन्तकों ने इन्हें स्वतंत्र रूप से अन्यत्र निवास करने की सम्मति दी। इसलिये उनलोगो ने वहाँ से कुछ दूर हटकर एक नगर बसाया, अच्छे-अच्छे महल बनवाये। वहीं अल्पवयस्क श्रीनन्दसिंह को ले गये। वह नगर श्रीनन्दसिंह के नाम से बसाया गया, अतएव उसका नाम 'श्रीनगर' रक्खा गया।

राजा श्रीनन्दसिंह को यह संसार छोड़े ६० वर्ष के लगभग हो गये। परन्तु उनका कीर्त्तिकलाप अब भी विद्यमान है। उन्होने बडी योग्यता से राज किया और अनेक लोकोपकारी कार्य किये। उन्हें अपने सुख-दु ख का उतना ध्यान नहीं रहता था जितना अपनी प्रजा के सुख-दु:ख का। वे ३४ वर्ष की आयु में ही इस संसार से चल बसे।

राजा श्रीनन्दसिंह की तीसरी धर्मपत्नी (रानी जगरमा देवी) से दो पुत्र हुए—एक कमलानन्द सिह, दूसरे कालिकानन्द सिंह।

जन्म-काल और बाल्यावस्था

राजा कमलानन्दसिंह का जन्म संवत् १९३३ में जेठ शुक्ल षष्ठी सोमवार (१८७६ ई० में २६ मई) को हुआ था। जब वे ५ वर्ष के हुए, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। उनकी माता बड़ी विदुषी और कर्त्तव्यपरायणा थीं। उन्होने पतिविहीन होने पर धैर्य धारण करके शीघ्र ही पुत्र की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

छठे वर्ष में उनका अक्षरारम्भ कराया गया। लिखने-पढ़ने का थोडा अभ्यास हो जाने पर वे चाणक्यनीति और अमरकोष के श्लोको का थोडा-थोडा अभ्यास करने लगे। इसके साथ ही उनको उर्दू-भाषा की भी कुछ-कुछ शिक्षा दी जाने लगी। ९ वर्ष की उम्र तक वे राजभवन में ही शिक्षा पाते रहे। उसके बाद उनको अँगरेजी पढ़ाने के लिये एक शिक्षक नियुक्त किये गये। उन्होंने एक वर्ष

तक अँगरेजी पढ़ी। अँगरेजी का कुछ बोध हो जाने पर पुर्नियाँ-जिला-स्कूल में उनका नाम लिखाया गया। वहाँ उन्होंने दो वर्ष तक पढ़ा। बारहवें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत हुआ।

बाबू मन्मथनाथ मुकुर्जी बी. एल.—एक विद्वान् बंगाली सज्जन—उनके अभिभावक नियुक्त हुए। उनकी संरक्षकता में पढ़ने के लिये वे भागलपुर गये। वहाँ जिला-स्कूल में उन्होंने नाम लिखवाया। फारसी का कुछ बोध उन्हें पहले ही से था; परन्तु उसमें उनकी विशेष रुचि न थी। इसलिये उन्होंने पढ़ने में द्वितीय भाषा संस्कृत ली। जब वे वहाँ पढ़ते थे, जिला-स्कूल के हेडपंडित साहित्याचार्य अम्बिकादत्त व्यास थे। व्यासजी की काव्यरचना और हृदय-हारिणी वक्तृता सुनकर उनको हिन्दी-काव्य का ज्ञान प्राप्त करने का अनुराग हुआ। यह अभिलाषा उन्होंने अपने अभिभावक बाबू मन्मथनाथ से प्रकट की। वे महाशय हिन्दी-काव्य के रसास्वादन से सर्वथा अपरिचित थे। इसलिये वे उनके इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। उन्होंने राजा साहब को बँगला-काव्य पढ़ने का परामर्श दिया। वे उनकी सम्मति के अनुसार बँगला-काव्य पढ़ने लगे। बंकिम बाबू, माइकेल मधुसूदन दत्त, रमेशचन्द्र दत्त तथा अन्यान्य वङ्गीय ग्रन्थकारों की सारी पुस्तकें पढ़ डालीं। थोड़े ही दिनों में बँगला-काव्य के मर्म को भली भाँति समझ गये।

१६ वर्ष की उम्र में राजा साहब प्रवेशिका-कक्षा (Entrance) में पहुँचे। परीक्षा का समय समीप आते देख पढ़ने में अत्यधिक परिश्रम करने लगे, जिसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। स्वास्थ्य बिगड़ जाने से परीक्षा न दे सके। सिर के दर्द से दिन-रात बेचैन रहने लगे। अनेक उपचार करने पर भी सिर-दर्द से निवृत्ति न हुई। इसलिये सिविल-सर्जन की राय से जलवायु बदलने के लिये शीत-प्रधान प्रदेश में घूमने जाना पड़ा।

दो वर्ष तक पहाड़ी प्रदेशों में भ्रमण करने से उनको विशेष लाभ हुआ। शिरोरोग निवृत्त होने के साथ-साथ अनेक महात्माओं और विद्वानों के दर्शन हुए तथा अनेक प्रकार की शिक्षाएँ भी मिलीं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भिन्न-भिन्न आचार-व्यवहार और रस्म-रिवाज देखकर उन्हें बहुदर्शिता भी प्राप्त हुई। तबतक उनका राज्य 'कोर्ट आफ वार्ड्स्' अर्थात् सरकारी प्रबन्धकर्त्ताओं के अधीन था।

१८९१ ई० में सरकार ने राज्य का अधिकार उन्हें सौंप दिया। किन्तु वे उस समय भी पूर्ण रूप से वयस्क नहीं हुए थे। इसलिये उनकी विदुषी माता ने राज्य-रक्षा का भार अपने हाथ में लिया और भली भाँति राज-काज देखने लगीं;

राज्य-शासन में इन्हें समय-समय पर पुर्नियाँ के कलक्टर से सहायता मिलती थी।

राजा साहब की आगे पढ़ने की इच्छा थी, परन्तु रियासत का प्रबन्ध माता के हाथ में जाने से उन्हें भी उसमें यथासाध्य साहाय्य देना पड़ता था। इसलिये बरबस स्कूल छोड़ना पड़ा। स्कूल छोड दिया, परन्तु विद्याध्ययन का व्यासङ्ग नहीं छोड़ा। घर पर रहते हुए भी हिन्दी, बँगला और अँगरेजी ग्रन्थों का अध्ययन करके अपनी बहुज्ञता बढ़ाते रहे। थोड़े ही दिनों मे उन्होंने हिन्दी-साहित्य मे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

कुछ दिन बाद उन्हें अपने राज्य-शासन का पूरा अधिकार मिल गया। तब से राजकाज मे उनका अधिक समय जाने लगा। तब भी वे अपने प्रिय विषय साहित्य को कभी न भूले; उसकी सेवा के लिये कुछ समय निकाल ही लेते थे।

साहित्य-सेवन के साथ ही उन्हें आखेट और कुश्ती का भी कम शौक न था। जब बालिग हुए, कौशिकी के किनारे, नैपाल-राज्य की सीमा के समीप, अपने राज्य में तथा नैपाल के जंगल में, जाड़े के मौसम मे प्राय. प्रतिवर्ष, शिकार खेलने जाते थे। बन्दूक चलाने मे बड़े सिद्धहस्त थे। निशाना शायद कभी खाली नहीं जाता था। उनका नाम सुनकर एक दफा मुक्तागाछी (मैमनसिंह) के जमींदार राजा जगतकिशोराचार्य और गोबरडाँगा (बंगाल) के जमींदार ज्ञानदा बाबू उनके साथ शिकार खेलने आये थे। उनसे सत्कृत होकर वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। तब से उन लोगों मे मित्रता हो गई।

नित्य नियम-पूर्वक वे व्यायाम करते थे। कुश्ती लड़ने और पहलवानो को कुश्ती लडाकर देखने के भी वे बड़े शौकीन थे। कई पहलवानो को नौकर रख लिया था, जिनमे एक का नाम मजहर हुसेन था।

साहित्यिक जीवन

राजा साहब का साहित्यानुराग दिन-दिन बढ़ता गया। ब्रजभाषा मे दो-एक पद्यो की रचना तो आप नित्य ही करते थे। इसके अतिरिक्त सर्वप्रथम उन्होने बङ्किम बाबू के बँगला उपन्यास 'आनन्द-मठ' का अनुवाद हिन्दी-भाषा में किया, जिसका संशोधन पडित अम्बिकादत्त व्यास ने किया था और बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस ने उसे प्रकाशित किया था।

पडित श्रीकान्त मिश्र ने, जो उनके दरबार में चिरकाल से नियुक्त थे, उनसे अनुमति लेकर, 'साम्बकमलानन्दकुलरत्न' ❀ नामक एक सस्कृत-काव्य रचा,

❀ देखिये—पृष्ठ ३८ की अंतिम और ३६ की चौथी पंक्ति तथा पृष्ठ ३२० की टिप्पणी।

जिसे राजा साहब ने छपवा डाला। यह काव्य ललित पद्यों में १५ सर्गों का है। इसमें राजा साहब के पितृवंश तथा मातृवंश का वर्णन है।

पंडित अम्बिकादत्त व्यास से उनको हिन्दी-साहित्य में विशेष साहाय्य मिलता था। देश के दौर्भाग्य से १९०० ई० में व्यासजी का काशी में देहान्त हो गया। इसलिये 'सुकवि-सरोज-विकास' * ग्रन्थ राजा साहब की लाइब्रेरी † में अपूर्ण ही पड़ा रह गया। राजा साहब की इच्छा स्वयं उसे पूरा करके प्रकाशित करने की थी; परन्तु वे भी असमय में ही कालकवलित हो गये! इस कारण वह अधूरा ही रह गया और प्रकाशित भी न हो सका। हाँ, उनके चिरजीवी पुत्र सर्व-गुण-सम्पन्न कुमार गङ्गानन्द सिंह साहब, एम्. ए., उसकी पूर्त्ति चाहें तो कर सकते हैं—ये भी काव्य-रसिक, कविता के मर्मज्ञ तथा निपुण निबन्ध-लेखक हैं।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के किसी ‡ अङ्क में 'श्रीमान् राजा कमलानन्द सिंह' शीर्षक लेख में लिखा है—"जब हम १९०० ई० में काशी जाकर व्यासजी से मिले थे, तब व्यासजी ने उस पुस्तक की भूमिका बड़े प्रेम से पढ़कर हमें सुनाई थी। उस भूमिका में अनेक प्राचीन कवियों की बातें थीं। सारी भूमिका पद्यमय थी।"

व्यासजी पर राजा साहब की कितनी भक्ति और कैसा प्रेम था, यह उनके तथा उनके आश्रित कवियों के द्वारा रचित 'शोकप्रकाश' (व्यासजी की मृत्यु के बाद लिखी गई पुस्तक) से ज्ञात हो सकता है। राजा साहब को जिस दिन व्यासजी के देहान्त की खबर मिली उस दिन उन्होंने अन्न-जल-ग्रहण नहीं किया। रोते-रोते उनकी आँखे सूज गई। यह आँखों-देखी बात है। हमलोग उन्हें आश्वासन देते-देते थक गये, परन्तु उनके मन में धैर्य न होता था। आजकल का शायद ही कोई राजा-महाराज कवियों और विद्वानों में ऐसा गहरा प्रेम रखनेवाला मिलेगा।

राजा साहब केवल आँसू बहाकर ही चुप न बैठे। उन्होने स्वर्गीय व्यासजी की निःसहाय पत्नी और थोड़ी उम्र के बालक के निर्वाह के लिये २००) रुपये

* पंडित अम्बिकादत्त व्यास कविता में अपना उपनाम 'सुकवि' और राजा कमलानन्द सिंह 'सरोज' लिखते थे। इसीसे उस ग्रन्थ का नाम 'सुकवि-सरोज-विकास' रक्खा गया था।

† दैवदुर्विपाकवश सन् १९३२ ई० में वह लाइब्रेरी भीषण अग्निकाण्ड में भस्म हो गई जिससे अमूल्य साहित्य-संग्रह स्वाहा हो गया!!!

‡ भाग ४, संख्या ६, पृष्ठ १९१ से १९८ तक; जून १९०३ ई०

वार्षिक नियत कर दिया, और जबतक राजा साहब जीवित रहे, बराबर उनके पास भेजते रहे।

व्यासजी का एकमात्र पुत्र राधाकुमार जब कभी अपना दु ख राजा साहब को सूचित करता था तब वे उसे अपने छोटे भाई के समान समझ उसे आश्वासन देते थे और यथासाध्य उसके दु ख दूर करते थे। राधाकुमार भी अपने पिता की भाँति मेधावी और अनेक-गुण-सम्पन्न हो चला था, पर वह भी दैवदुर्योग से अल्पायु—२१ वर्ष की उम्र का—होकर संसार से चल बसा। उसका एकमात्र पुत्र है—अत्यन्त विनीत और विचारवान्। काशी (मानमन्दिर) मे रहता है। व्यासजी के रचित ग्रन्थों की बिक्री से साल मे जो कुछ आय हो जाती है, उसीसे परिवार-पोषण होता है।

इलाहाबाद की कमिश्नरी मे एक जिला फतेहपुर है। उसमें गङ्गा के किनारे एक प्रसिद्ध गाँव 'असनी' है। वहाँ व्रजभाषा के अनेक विख्यात कवि हो गये हैं। नरहरि (जो सम्राट् अकबर के दरबार मे थे), हरिनाथ (जिनके लिये यह कहावत मशहूर है कि 'दान पाय दो ही बढ़े के हरि के हरिनाथ'), ठाकुर आदि नामी कवि वहीं के निवासी थे। वहीं के रहनेवाले 'सेवक' कवि का बनाया हुआ 'वाग्विलास' (नायिका-भेद का ग्रन्थ) लुप्त-सा हो गया था। राजा साहब ने उसे बड़े प्रयत्न से, बहुत द्रव्य खर्च करके, ढूँढ निकाला। व्यासजी से सशोधित कराकर उसे छपवाया। उसके प्रकाशन-काल में व्यासजी बीमार थे, इस कारण वे उसका पूर्णरूप से संशोधन न कर सके। कहीं-कहीं टिप्पणी-मात्र कुछ कर दी। राजा साहब को हिन्दी-साहित्य से कितना प्रेम था, यह उनके इस अदम्य उत्साह से जाना जा सकता है।

अयोध्या के महाराज (सर प्रतापनारायणसिह बहादुर) के दरबार मे प्राचीन ढर्रे के एक कवि थे। नाम था उनका 'कवीश्वर लछिराम' (ब्रह्मभट्ट)। राजा कमलानन्द सिह अपनी माता के साथ तीर्थ-भ्रमण करते हुए अयोध्या पहुँचे। लछिराम उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उनसे कहा कि हम आपके नाम पर 'कमलानन्द-कल्पतरु' नामक एक अलङ्कार-ग्रन्थ लिख रहे हैं, उसे आपके करकमलो मे समर्पित करेंगे, यह आप स्वीकार करे।

राजा साहब ने उनकी अभ्यर्थना को स्वीकार कर लिया। इस ग्रन्थ के नाम मे 'कल्पतरु' शब्द ध्यान में रखने योग्य है। कवीश्वरजी का मनोरथ सफल हुआ, ग्रन्थ का नाम सार्थक हुआ।

लछिरामजी उस पुस्तक को लेकर देवी-पूजा के उत्सव पर श्रीनगर आये। उनके शिष्य यज्ञराज कवि राजा साहब के दरबार में पहले ही से नियुक्त थे। वे अपने गुरु महाराज को साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुए। कवित्तमय आलंकारिक 'कल्पतरु' राजा साहब को समर्पित करके कवीश्वरजी सफल-मनोरथ हुए। अयोध्या-नरेश के दरबार में प्रतिष्ठा पाये हुए वृद्ध कवि का राजा साहब ने अच्छा सम्मान किया। उनके रचित ग्रन्थ के कुछ कवित्त भी उनके मुख से सुन लिये। ग्रन्थ की कल्पतरुता राजा साहब के हाथ आकर कविजी के लिये सार्थक हुई। राजा साहब ने कवीश्वरजी को १५००) रुपये और बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर अपनी कल्पतरुता का परिचय दिया। राजा साहब की इच्छा उस ग्रन्थ को छपवाने की थी; किन्तु उनकी असामयिक मृत्यु से वह नहीं छप सका।

राजा साहब की गुणग्राहिता की प्रशंसा सुनकर कितने ही कवि और विद्वान् उनसे मिलने आते थे और उनकी गुणज्ञता तथा उनके स-सम्मान दान से सन्तुष्ट होकर जाते थे।

एक समय बंगलोर-(मैसोर)-निवासी भिमोरी रामशास्त्री शतावधानी ने श्रीनगर आकर अपने अनेक अवधानों से राजा साहब को चकित और अतिशय प्रसन्न किया था।

आरा (शाहाबाद) जिले के बिलौंटी-ग्रामवासी (स्व०) पंडित विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' अपने छोटे भाई पंडित शिवनन्दन त्रिपाठी के साथ राजा साहब को निज-निर्मित 'रणधीर प्रेममोहिनी' नाटक का संस्कृत-अनुवाद समर्पित करने के लिये आये। राजा साहब ने उनके अनुवाद को सादर ग्रहण करके उन्हें पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया।

इस सदी के शुरू में जब 'सरस्वती' निकलने लगी और उसके प्रकाशन में दो साल पूरा घाटा सहना पड़ा, तब राजा साहब उसकी पूर्त्ति करने के लिये तैयार हो गये—१०० ग्राहक 'सरस्वती' के बढ़ा दिये ॐ। उनकी कविता 'सरस्वती' में जब-तब छपती थी। अपने लेखों द्वारा भी 'सरस्वती' की सेवा-सहायता किया करते थे।

कानपुर से निकलनेवाले 'रसिक-मित्र' (समस्या-पूर्त्ति-विषयक मासिक पत्र) में राजा साहब बराबर अपनी पूर्त्तियाँ भेजा करते थे। कवि-समाज ने उनकी कविता से प्रसन्न होकर उनको 'साहित्यसरोज' की पदवी प्रदान की थी। साहित्य-

ॐ देखिये पृष्ठ ३१३—१४

सम्बन्धी कई मासिक पत्रों के संरक्षक होने के कारण कवि-मंडली की ओर से उनको 'द्वितीय भोज' की उपाधि मिली थी। भारत-धर्म-महामंडल (काशी) ने उनकी साहित्य-सेवा से प्रसन्न होकर उनको 'कविकुलचन्द्र' की उपाधि से अलंकृत किया था।

दरभंगा-नरेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह वहादुर का देहान्त होने पर उनके शोक मे राजा साहव ने 'मिथिला-चन्द्रास्त' नामक एक छोटी-सी पुस्तक छपवाकर अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट की थी। उसमे राजा साहव के तथा उनके आश्रितों के वनाये शोक-सूचक भापा-पद्य हैं।

सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्याभिपेक के उत्सव में राजा साहव ने 'एडवर्ड-वत्तीसी' पद्यों मे लिखकर छपवाई थी। उसके अन्त में एक दोहा अँगरेजी में उन्हीं का वनाया हुआ है—

कौरोनेशन डे टुडे, लेट अस कम एड सिंग।
प्रे टु गौड ऑलमाइटी, लौंग लिव दि किंग॥

राजा साहव की माता ने १६०२ ई० में कार्त्तिक-व्रत का उद्यापन किया था। मिथिला के प्राय सभी प्रसिद्ध पंडितों को निमन्त्रण-पत्र भेजा था। सैकड़ों विद्वान् उपस्थित हुए थे। पंडितों में शास्त्रार्थ छिड़ा। मध्यस्थ माने गये दरवारी पंडित श्रीकान्त मिश्र * और पंडित खुद्दी झा † तथा दो-एक और भी आमन्त्रित पंडितो मे श्रेष्ठ। नैयायिक अपूछ झा न्याय के शास्त्रार्थ मे विजयी हुए। राजा साहव ने उन्हें सम्मान-सूचक एक स्वर्णपदक दिया। ‡

एक वार काशी में महाराष्ट्रीय कीर्त्तनकार श्री रामचन्द्र ववा का कीर्त्तन सुनकर राजा साहव अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु दो-एक दिन के कीर्त्तन से उनकी तृप्ति नहीं हुई। इसलिये उन्हें अपने यहाँ (श्रीनगर) वुलाकर महीनों रोज-रोज कीर्त्तन सुना, उनको हजारो रुपये नकद और वहुमूल्य वस्त्र-भूपण दिये तथा 'कीर्त्तनाचार्य' पद से अङ्कित एक स्वर्णपदक भी दिया। इतना देने पर भी राजा-साहव को सन्तोप न हुआ। वे रामचन्द्र ववा का कीर्त्तन सुनने के इतने अनुरागी थे कि शारदी पूजा के महोत्सव में प्रतिवर्प आने के लिये उन्हें एक सनद दी थी। उसमें दस दिन तक कीर्त्तन करने के उपलक्ष्य मे २००) नकद, अलावा

* देखिये पृष्ठ ३८ के अन्त में।

† देखिये पृष्ठ २४ के मध्य में।

‡ देखिये पृष्ठ २६ के अन्त में।

भोजन-वस्त्र और आने-जाने का मार्गव्यय देने की भी बात लिखी गई थी। उस सनद को पाकर कीर्त्तनाचार्य बड़े प्रसन्न हुए और जबतक वे जीवित रहे, प्रतिवर्ष नवरात्र में श्रीनगर आकर कीर्त्तन * करते थे। जिस साल किसी कारण से वे स्वयं नहीं आ सकते थे, उस साल उनके सुयोग्य पुत्र श्रीयुत गङ्गाधर बवा श्रीनगर में उपस्थित होते थे। सुना है, अब वे गवालियर-स्टेट में नियुक्त हो गये हैं।

काशी के प्रसिद्ध कवि बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' बी. ए. भी राजा साहब से मिलने के लिये दो-तीन बार श्रीनगर आये। उनका काव्यानुराग तथा गुण-ग्राहिता देखकर रत्नाकरजी बड़े प्रसन्न हुए। रत्नाकरजी ने अँगरेजी में कल्पित अक्षरों द्वारा लिखे हुए लेख पढ़ने का चमत्कार राजा साहब के छोटे भाई कुमार कालिकानन्द सिंह को दिखलाकर चकित कर दिया था। कुमार साहब ऐसे मेधावी थे कि रत्नाकरजी के चमत्कार का अनुभव करके स्वयं भी कल्पित अक्षरों के लेख पढ़ने और लोगों को विस्मित करने लगे। एक बार उन्होंने बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर से अँगरेजी में कल्पित अक्षरों के द्वारा लेख लिखवाकर पढ़ दिया, जो देख उक्त राजा साहब को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। इस विषय में कुमार साहब ने मुझे मैथिली भाषा में एक पत्र लिखा था। उसे मैं यहाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उद्धृत करता हूँ—

सुहृद् कविवर श्रीजनसीदन, २६ मई, १६०३

अहाँक पत्र पहुँचल। अहाँक माता क समाचार बुझल। पत्रोत्तर में हमरा विलम्ब भेल। तकर कारण जे हमरा माथ में दर्द नौ दिन धरि बड़े कष्ट देलक। तदुत्तर कर्णवेध, अक्षरारम्भ क कार्य में पड़ि गेलहुँ। काल्हि कार्य सम्पन्न भेल कुशलपूर्वक। अक्षरारम्भ चम्पानगर क कनिष्ठ कुमार करौलथिन। दुनू भाई आएल रहथि। ई हाल विस्तर रूपें भेंटैं कहब। अहाँ अपना गाम और माता क समाचार विशेष रूपें लिखब। हमरा लोकनि कुशल-पूर्वक छी। चम्पानगर क कुमार क सोझा टूटा गुप्त लेख पढ़ल। कैक ठाम अशुद्ध छलैन्ह से देखा देलिऐन्ह। मुदा करू की, सरस नहिं। और हाल पश्चात् लिखब। इति—

कालिकानन्द सिंह

* कीर्त्तन में जो प्रासङ्गिक सुभाषित श्लोक श्री रामचन्द्र बवा के मुख से निकलते थे, उन्हें राजा साहब का सकेत पाकर मैं नोट कर लेता था। दूसरे दिन उनके पास जाकर वे सब श्लोक लिख लाता था। श्लोकों की संख्या पाँच सौ से ऊपर हो गई थी।—ज० झा

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'स्वाधीनता' नामक एक उत्तम पुस्तक (अँगरेजी 'लिवर्टी' का हिन्दी-अनुवाद) राजा साहब को समर्पित की थी। उन्होंने स्वयं श्रीनगर न आकर समर्पण-वाक्य-सहित तथा राजा साहब के चित्र से विभूषित पूरी पुस्तक डाक के जरिये भेज दी थी। राजा साहब ने ५००) रुपये के नोट चुपचाप वीमा कराकर उनको भेज दिये।

नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) को उन्होंने दो हजार रुपये दिये थे। सभा की प्रार्थना पर 'ट्रस्टी' का पद भी ग्रहण किया। अपनी राजधानी (श्रीनगर) में एक 'हिन्दी-साहित्य-प्रचारक-समिति' भी स्थापित की थी। हिन्दी के सुलेखकों का उत्साह बढ़ाने के लिये समय-समय पर उन्हें द्रव्य की सहायता देते थे।

जो विद्यार्थी द्रव्य के अभाव से पढ़ने के निमित्त काशी जाने मे असमर्थ होकर उनकी शरण में आता था, उसे वे खर्च देकर पढ़ने के लिये काशी भेजते थे। ऐसे विद्यार्थी कृतविद्य होकर काशी से घर आते थे।

हिन्दी के सिवा अँगरेजी, संस्कृत और उर्दू के भी वे ज्ञाता थे। बँगला-साहित्य में तो उनकी पूर्ण योग्यता थी। 'आनन्द-मठ' का अनुवाद तो उनका छप चुका है, 'राजारानी' (बँगला-नाटक) का अनुवाद प्राय: अबतक नहीं छपा है। सबसे अधिक प्रशंसा की वात तो यह थी कि वे हिन्दी के सुलेखक और आशुकवि थे।

राजपूताना से एक वार दो चारण-कवि आये थे। उन्होंने राजा साहब को डिंगल-भाषा की कविता सुनाई। सुनकर और उसका भाव समझकर राजा साहब बड़े प्रसन्न हुए। उनसे कविता सुनने के लिये अपने यहाँ उन्हें महीनो टिका रक्खा और चलने के समय उनकी पूरी विदाई करके उन्हें प्रसन्न किया।

राजा साहब का नाम सुनकर भगवन्त, वालदत्त, अजान, सुजान, शिवहर्ष आदि अनेक हिन्दी-कवि उनसे मिलने आये और सभी प्रसन्न होकर वापस गये। सभी ने उनकी कवित्व-शक्ति और काव्यमर्मज्ञता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

राजा साहब के एकमात्र अनुज कुमार कालिकानन्द सिंह अब इस संसार में नहीं हैं। वे अँगरेजी, बँगला, संस्कृत और हिन्दी के वेत्ता थे। शिल्पकला और संगीत में तो बड़े ही प्रवीण थे। कविता करने की शक्ति रखते हुए भी वे काव्य की रचना तो नहीं करते थे, किन्तु काव्य के पूरे रसिक और मर्मज्ञ थे। बड़े उदार और दयालु थे। बाघ का शिकार करने में अपने बड़े भाई के अनुकल्प

ही थे। परन्तु दया उनमें इतनी थी कि सहसा किसी जीव पर अस्त्र-प्रहार नहीं करते थे। आश्रितों की रक्षा करना अपना परम धर्म समझते थे। बड़े हँसमुख और मधुरभाषी थे।

राजा साहब की निरभिमानिता

आत्मगौरव उनके रोम-रोम में भरा था, परन्तु अभिमानी न थे। जो लोग मिलने आते थे, उनका यथायोग्य सम्मान करते थे। सबसे मीठी बातें करते थे। अपने बुद्धिबल या धन का उनको जरा भी घमंड न था। साधारण-से-साधारण लोगों के साथ बातचीत करने में भी अपना अपमान नहीं समझते थे। गुरुजनों के प्रति उनकी नम्रता सराहनीय थी। पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने जब उनकी तारीफ में कविता सुनाई तब उन्होंने एक सवैया रचकर व्यासजी को सुनाया, जिससे उनके हृदय की कोमलता, सरसता और विनय का भाव स्पष्ट झलकता है—

घोर अगम्य गभीर जलासय ऐसे कुदेस में बास है रोज को।
पास में भेक समाज सदा तब कैसे बढ़ाय सकौ गुन ओज को॥
नेक दया कमला की रहै तिहि सों नित फूलि करौं मन मौज को।
जो सुकबी न बिराजते तो कहो कौन सराहते आज 'सरोज' को॥

राजा साहब की दयालुता और क्षमाशीलता—

जो कोई दुखिया उनकी शरण में आकर अपना दुःख सुनाता था, उसका वे यथासाध्य अवश्य उपकार करते थे। दूसरे का दु.ख देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। जो कोई अतिथि आता था, उसका उचित स्वागत-सम्मान होता था। कोई याचक विमुख न जाता था।

एक समय की बात है। पूर्वोक्त पंडित विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' ने, किसी प्रकार का संकट आ पड़ने पर, सहायता के लिये राजा साहब को पत्र लिखा। उन्होंने तुरन्त त्रिपाठीजी के सहायतार्थ रुपये भेज दिये। संकट-मुक्त होने पर पंडितजी ने उनको अनेकानेक धन्यवाद दिये।

एक बार पौषी पूर्णिमा को राजमाता साहबा कौशिकी-स्नान करने गई थीं। उनके साथ राजा साहब और हमलोग भी गये थे। कौशिकी के किनारे साधारण-सा जंगल था, जिसमें हिरन और बनैले सूअर रहते थे। राजमाता तो स्नान करके ड्योढ़ी चली गई। जो लोग खासकर उनकी सेवा में रहनेवाले थे, वे भी चले गये। ड्योढ़ी वहाँ से छ-सात कोस दूर थी। राजा साहब शिकार खेलने के

लिये रह गये। हमलोग, जो गिनती में दस-बारह व्यक्ति उनके अनुयायी थे, उनके साथ रहे। हाथी की सवारी थी। राजा साहब शाम को एक दवा खाते थे। दवा की शीशी रखने के लिये मुझे दी गई। मैंने जेब में शीशी रख ली।

एक जगह हमलोग पानी पीने के लिये हाथी से उतरे। उतरते समय शायद शीशी जेब से गिर पड़ी। जब शाम को उन्होंने दवा की शीशी माँगी, मैंने जेब में हाथ डाला, शीशी का कहीं पता नहीं ! मैं तो अवाक् हो रहा। वे समझ गये कि शीशी कहीं गिर पड़ी है। उन्होंने हँसते हुए कहा—'दवा का खो जाना शुभ लक्षण है। उसके लिये आप सोच न कीजिये। हम अब बिना दवा खाये ही अच्छे हो जायँगे।'

इस प्रकार उन्होंने अपनी क्षमा-शीलता दिखाकर मुझे अनुगृहीत किया।

जब मैं शुरू-शुरू श्रीनगर-दरबार में बहाल हुआ था, बाबू नरनाथ झा छुट्टी लेकर किसी काम से घर गये थे। राजा साहब की आज्ञा से वे अपना चार्ज मुझे दे गये। आलमारियों की कुंजियों का गुच्छा मेरे जिम्मे कर गये। एक दिन कुँए पर स्नान करते समय वह गुच्छा वहीं छूट गया। दूसरा आदमी वहाँ स्नान करने आया तो यह जानकर कि ये चाबियाँ सरकारी हैं, राजा साहब को दे आया।

कुछ देर बाद राजा साहब ने मुझे आलमारी से कोई चीज निकालने को कहा। चाबी तो मैं बराबर कमर में रखता था; टटोलकर देखा, गुच्छा नदारद ! मुँह सूख गया। तमाम खोजा, नहीं मिला। कुँए पर जाकर ढूँढा, कहीं पता नहीं।

मुझे इस प्रकार व्यग्र देखकर राजा साहब ने बुलाया और कहा कि कार्त्तवीर्य * को कुछ कबूलिये तो चाबी मिल जा सकती है। मैंने कहा—क्या कबूलूँ ? बोले—बस, दो रुपये की मिठाई। मैंने कहा, एवमस्तु।

राजा साहब ने तबतक मेरी चारपाई के नीचे किसी के द्वारा गुच्छा रखवा दिया। थोड़ी देर बाद कहा कि एक बार जाकर फिर अपनी कोठरी में ढूँढ़िये, शायद कहीं रक्खी हो। मैंने जाते ही देखा कि गुच्छा चारपाई के नीचे पड़ा है। समझ गया कि यह सब कौतुक राजा साहब का है।

चाबी लेकर मुसकुराता हुआ राजा साहब के पास पहुँचा। उन्होंने हँस कर पूछा—क्या चाबी मिल गई ? मैंने गुच्छा दिखला दिया। उनके पास जितने लोग बैठे थे, सब कार्त्तवीर्य के प्रभाव की प्रशंसा करने लगे।

* पुराणों में लिखा है कि योगिराज राजा कार्त्तवीर्य का स्मरण करने से खोई चीज मिल जाती है। इन राजा की राजधानी नर्मदा के किनारे माहिष्मती नगरी में थी।—स०

---- इतने में रसोई-परसी-जाने की खबर आई। राजा साहब के साथ हमलोग भोजन करने गये। उन्होंने कहा—कार्त्तवीर्य को दो रुपये की मिठाई कबूल करने पर 'जनसीदन' को चाबी मिल गई है; इसलिये एक आदमी खजांची से दो रुपये लेकर जल्दी हलवाई की दूकान से जलेबी ले आवे।

एक आदमी दौड़ा गया और गरमागरम जलेबियाँ खरीद लाया। सबकी पत्तलों पर जलेबियाँ परसी गईं। तरह-तरह के विनोद होने लगे। कोई कहता, भगवान करें कि फिर इनकी चाबी खो जाय तो हमलोगों को मिठाई मिले। इसी प्रकार लोग चुहल करने लगे। मैं चुप सबकी बातें सुनता रहा। मेरा कुछ लज्जित-सा भाव देखकर राजा साहब ने इस प्रसंग को दबा दिया। राजा-महाराजों में अब ऐसी परिहास-प्रियता कहाँ देखने में आती है?

मुझमें अनेक दोष रहते हुए भी राजा साहब ने मेरे कामों से प्रसन्न होकर अपने हाथ से यह सर्टिफिकेट लिखकर मुझे दिया था—

श्रीनगर—पुर्नियाँ

१२ नोअम्बर १६०४ ई०

पंडित श्रीजनार्दन झा (जनसीदन) मेरे यहाँ १६०० ई० से नौकर हुए और आजतक मेरे यहाँ नौकर हैं। इनके रहने से बहुत उपकार हुआ है; क्योंकि एक सङ्ग कवि, वैयाकरण, लेखक और मोसाहब का काम इनके रखने से चलता है। ज्योतिषी का काम भी ये अच्छी तरह कर सकते हैं और मेरे यहाँ कभी-कभी किया करते हैं। ये भाषा और संस्कृत के अच्छे कवि हैं। आशु कविता भी किया करते हैं। मुझे इनसे राजकीय कार्यों में सलाह भी मिला करती है। ये परिश्रमी अत्यन्त हैं। मेरे यहाँ नित्य ७—८ घंटे काम करके भी अपना काम किया करते हैं। ये मेरे परम विश्वासी हैं। इनका स्वभाव इतना अच्छा है कि इतने दिन यहाँ पर इनको रहते हुआ है, परन्तु इनको किसी पर अथवा इनपर किसी को रंज होते नहीं देखा है। यदि मुझे एक भी नौकर रखने की शक्ति रहेगी तो मैं सदा इनको अपने पास नौकर रक्खूँगा; क्योंकि ये मेरे ८—६ नौकरों का काम अकेले किया करते हैं। जब कभी ये घर जाते हैं, तब मुझे बड़ा परिश्रम उठाना पड़ता है। इन चार वर्षों के काम से प्रसन्न होकर मैंने यह सर्टिफिकेट दिया है कि इनको भविष्य में काम आवे। इति।

श्रीकमलानन्द सिंह



विहार के मल्ल

कविवर श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर', बी० ए० 'ऑनर्स'

वयं चैव महाराज जरासन्धभयात्तदा।
मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम्॥

—(महाभारत, जरासन्ध-वध पर्व, अध्याय १४)

दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) के राजा युधिष्ठिर द्वारकानिवासी राजा श्रीकृष्ण के मन्त्र से राजसूय यज्ञ करके अपरिमित कीर्त्ति के भागी होना चाहते थे। सभी देशों के राजाओं ने अधीनता स्वीकार कर ली थी और अपने 'कर' भेज दिये थे, केवल मगध का राजा जरासन्ध ही ऐसा था जिससे 'कर' मॉगने की हिम्मत भी नहीं की जा सकती थी। शायद यह भी सोचा जा रहा था कि राजा जरासन्ध को सूचित किये विना ही यज्ञ सपन्न कर लिया जाय।

लेकिन श्रीकृष्ण मगधराज के पराक्रम को जानते थे, और भारतवर्ष-भर मे उसकी जो धाक थी उसे देखते हुए जरासन्ध को भुला देना भी कठिन था*। फिर श्रीकृष्ण खुद भी उससे खार खाते थे और उसी के भय से मथुरापुरी छोड़ कर द्वारका मे जा बसे थे। उनका दृढ मत था कि संग्राम करके तो उसे देव और असुर भी नहीं जीत सकते थे।†

जरासन्ध अपने समय का अद्वितीय मल्ल था और उसे पराजित करने के

* न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले।
राजसूयस्त्वयाऽऽवाप्तुमेषा राजन्मतिर्मम॥

† न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः।
प्राणयुद्धेन जेतव्यः स इत्युपलभामहे।

—महाभारत, जरासन्ध-वध पर्व (युधिष्ठिर के प्रति श्रीकृष्ण-वचन)

लिये इसी फनवाले किसी पहलवान की जरूरत थी। बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चय हुआ कि अपनी जान हथेली पर लेकर भीम ही जरासन्ध से युद्ध करे।

महाभारतकार ने जरासन्ध और भीम के मल्लयुद्ध का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। अखाड़े में उतरते ही जरासन्ध ने किरीट उतारकर अपने बालों को बाँध लिया। खम ठोकने पर उसका शरीर कस्त (कश ?) से फूल उठा और वह उद्वेलित समुद्र की भाँति उछलने लगा। भीम और जरासन्ध ने पहले एक दूसरे के कन्धों पर भुजाएँ डालकर बार-बार मारना और फिर अंगों से अंगों को रगड़ना शुरू किया। इसके अनन्तर चित्रहस्त आदि दावँ करके वे कक्षा-बन्धन करने लगे। उनके मस्तक जब परस्पर टकराते थे तब चिनगारियाँ उड़ने लगती थीं।

जरासन्ध के अखाड़े की प्रसिद्धि सारे संसार में थी और उससे भिड़ने में कृतान्त मल्ल भी भय खाते थे। पुराणेतिहास के अन्दर राजा जरासन्ध बिहार का अग्रणी मल्ल है और उसकी स्थापित परम्परा उस प्रदेश में अब तक अक्षुण्ण चली जा रही है।

मल्लयुद्ध में महाभारत के सुप्रसिद्ध दानवीर बाँके-बहादुर अंगराज कर्ण का भी नाम कम प्रसिद्ध नहीं है। उसने प्राग्ज्योतिषपुर (कामाख्या-आसाम) के राजा भगदत्त की कन्या भानुमती के स्वयंवर में मगधराज जरासंध को मल्लयुद्ध में ही पछाड़ा था।

मिथिला के राजा सुमति जनक का भी अखाड़ा उन दिनों बहुत प्रसिद्ध था। भगवान् कृष्ण के बड़े भाई बलरामजी की पद्धति पर ही यह अखाड़ा बना था, और तात्कालिक मिथिला-नरेश ने उन्हीं बलरामजी से मल्लयुद्ध और गदायुद्ध की शिक्षा पाई थी।

इतिहासाभाव से हमें यह पता नहीं कि जरासन्ध के बाद से बिहार अथवा भारतवर्ष में कौन-कौन नामी पहलवान * हुए, लेकिन गाँवों में मल्ल-विद्या-विषयक

* यों तो मल्लों की श्रेणी में रावण, हनुमान्, बलराम, कंस, भीम, मुष्टिक, चाणूर आदि के नाम गिनाये जाते हैं; पर श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम श्लोक के प्रथम चरण (धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः) के अंतिम शब्द से मालूम होता है कि प्राचीन भारत में मल्लविद्या का बहुत प्रचार था; क्योंकि जितने वीर योद्धा कुरुक्षेत्र में जुटे थे, सब-के-सब व्यायामशील और हृष्टपुष्टाङ्ग थे। भारत की 'युयुत्सु'-कला ही आज जापान में 'जुजुत्सु'-रूप में विद्यमान है।

—सम्पादक

जो कथाएँ प्रचलित हैं उनसे साफ जाहिर होता है कि यहाँ मल्लों का क्रम टूटा नहीं, बराबर चलता ही रहा है।

जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह योद्धा के साथ-साथ बहुत बड़े मल्ल भी थे, और कहते हैं कि अखाड़े से लौटने पर दोपहर तक उनका दरबार धूप मे ही चलता था और तबतक दरबार मे ही चार-चार छ-छ मल्ल उनके बदन में सरसों के तेल की मालिश करते रहते थे।

मगध और मिथिला दोनों ही मल्लों की खान रहे हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि इधर आकर बलरामीय परम्परा के स्थान पर जरासन्धीय परम्परा मिथिला मे ही आन बसी है और अभी हाल तक यहाँ ऐसे-ऐसे पहलवान होते रहे हैं जिनके बल के सामने भीमकाय गजराज भी मात थे।

शंकरदत्त झा मिथिला के ही निवासी थे जो दुम पकड़कर घुटनों की चोट से हाथी को बैठा देते थे। कहते हैं, एक बार नैपाल-नरेश ने इन्हें अपने पाले हुए शेर से भिडा दिया। इन्होंने शेर के मुँह मे हाथ डालकर उसकी जीभ बाहर खींच ली। इस क्रिया में शेर ने इनके हाथ का कुछ मास चबा डाला, लेकिन जीभ बाहर निकल जाने पर वह खुद भी मर गया। इसी वीरता के पुरस्कार मे इनको कुछ गाँव दिये गये थे जो आज भी इनके वंशधरों के उपभोग मे हैं।

मिथिलेश महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह से परवरिश पानेवाले एक दूसरे व्यक्ति शिवनन्दन झा भी अपने समय के विकट मल्ल थे। कहते हैं कि उनके शरीर मे भी एक हाथी का बल था। उनके दो लड़कों—सत्यनारायण और जगदीश—की गणना आज भी देश के अच्छे पहलवानों मे की जाती है। उनके प्रथम पुत्र उदितनारायण का नाम आज के पहलवान करुणापूर्वक लेते हैं और कहते हैं कि वह अगर जीवित रहता तो आज देश मे उसका जोड नहीं मिलता और गामा की जगह शायद उसे ही मिली होती। बीस साल की उठती जवानी में ही, मिथिला में क्या, दरभंगा-नरेश के बाहरी पहलवानों मे भी, उससे हाथ मिलानेवाला कोई नहीं था। कहते हैं कि उसकी उमड़ती हुई वीरता से सहमे हुए किसी बाहरी पहलवान की कुत्सित क्रिया ने ही कापुरुषतापूर्वक उसकी जान ली।

जब महुआर (दरभगा) मे शिवनन्दन झा की जवानी ढल रही थी, उन्हीं दिनों चिहुँटा (मुजफ्फरपुर) के एक नौजवान जमींदार बाबू मथुराप्रसाद सिंह पहलवानी के हुनर सीख रहे थे। मथुरा बाबू अभी जीवित हैं और आज भी दूर देहातो के लोग उनके दर्शन करने प्रायः आते ही रहते हैं। एकडंगा (बाढ़,

पटना) के पोखन सिंह और चिहुँटा के मथुराप्रसाद सिंह समसामयिक रहे होंगे। मथुरा बाबू की पहलवानी कुल दस-बारह बरसों तक कायम रही। एक मार्मिक दुःखद प्रसंग के कारण उन्होंने मल्ल-विद्या की साधना छोड़ दी और पहलवानी से झल्लाकर चुप बैठ गये। बल के उभाड़ के समय उन्होंने प्रान्त से बाहर जा-जाकर बनारस, प्रयाग और लाहौर में दंगल मारे और गौरव के साथ घर लौटे। मुजफ्फरपुर के कलक्टर के तत्त्वावधान में उनकी कुश्ती प्रसिद्ध मल्ल 'सिद्दीक' से हुई, जिसे उन्होंने हाथ छूते ही पट्ट-छाप पर खींच लिया।

उन्हीं दिनों किसी बली प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में वे दरभंगा पहुँचे और राज में पलनेवाले पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा। उस समय वर्त्तमान तिरहुत-चैम्पियन सुखदेव झा के पिता बोतल झा अपनी पूरी जवानी पर थे, लेकिन उन्होंने मथुरा बाबू से लड़ने से इनकार कर दिया। अतः महाराज की ओर से मथुरा सिंह को यह लिखित प्रमाण-पत्र दिया गया कि यहाँ आपसे लड़ने लायक कोई पहलवान नहीं है।

सन् १९११ में मथुरा बाबू ने गामा से मुलाकात की और उससे कुश्ती चाही; लेकिन गामा ने कुश्ती नहीं की, और उनसे मित्रतापूर्वक मिलकर अलग हो गया। ढाक, पट्ट, पट्ट-छाप और बाजूबन्द मथुरा बाबू के प्रिय दावँ थे और प्रायः इन्ही दावों के प्रयोग से वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ा करते थे। प्रसिद्ध पंजाबी पहलवान झपसू को भी उन्होंने पट्ट-छाप पर ही मारा था।

मथुरा बाबू को मैंने देखा है। अब तो वे बहुत ही बूढ़े हो गये हैं, लेकिन आज भी उनके बदन में डेढ़-दो मन से कम हड्डियाँ न होंगी। पुरानी बातें बहुत सुनाते हैं; नये पहलवानों को देखकर हँस देते हैं। कहते हैं, इनमें पुराने हुनर नहीं रहे। सुखदेव की बहुत तारीफ करते हैं और कहते हैं कि उसने अपनी पूरी हिफाजत नहीं की, नहीं तो आज उसके जोड़ का पहलवान शायद खोजने पर ही मिलता।

दावँ-पेच की कला के साथ-साथ मथुरा बाबू में बल भी अपार था। जमींदारी के झगड़े में एक बार बलहा (पूर्णियाँ) में बन्दूकवाले बाबुओं से उनका सामना हो गया। हाथी की पीठ पर से बन्दूक चला और मथुरा बाबू की टाँग में उसका निशाना लगा। गोली खाकर वे क्रोध से गरज उठे और दाहिने हाथ से हाथी की पूँछ खींचकर बायें हाथ से एक ऐसी लाठी जमाई कि हाथी वहीं-का-वहीं बैठ गया और उन्होंने गजारूढ बाबू साहब के हाथ से बन्दूक छीन

लिया। एक दूसरे हाथी की सूँड़ में उन्होंने ऐसी चोट दी कि वह भाग खड़ा हुआ। अपने समय में वे बड़े ही सरल और संयमी पहलवान रहे।

प्रमुखता के विचार से मथुरा बाबू के बाद जिन पहलवान का नंबर आता है उनका नाम पोखन सिंह है। वे एकडगा (बाढ़, पटना) के निवासी राजपूत हैं। पहलवानी करते उन्हें ५० वर्ष हो गये, लेकिन ७४ वर्ष की उम्र मे आज भी उनका दावा है कि अगर ४० दिनों तक उन्हें पहलवानी खूराक मिल जाय तो वे गामा के साथ सफल कुश्ती कर सकते हैं। १६२६ ई० मे गामा को उन्होंने खुला चैलेंज भी दिया था, लेकिन उससे कुश्ती हुई नहीं। देश के कोने-कोने मे घूमकर उन्होंने कुश्ती की है और प्रायः सर्वत्र ही गौरव प्राप्त किया है।

हिन्दू-सगठन के दिनो मे वे महामना मालवीयजी और दानवीर बिडलाजी के परम प्रिय पहलवान थे। इनलोगों की प्रेरणा से उन्होंने कलकत्ता और बनारस में कई अखाड़े भी खोले थे। नवजवानों को कुश्ती लड़ाना और डडे-पट्टे सिखाना, बरसों उनका यही काम रहा। कहते हैं, कलकत्ता के हिन्दू—विशेपत मारवाडी—युवकों मे आज जो निर्भीकता देखने को मिलती है उसका बहुत-कुछ श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिये। बिहार के किसी भी पहलवान ने, प्रान्त से बाहर जाकर, वह नाम नहीं पैदा किया जो उन्होंने। देश के सभी प्रमुख दंगलो मे उन्हें निमत्रण दिया जाता था, और इस सिलसिले मे वे कई बार पेशावर से ढाका तक की यात्राएँ कर चुके हैं।

इन्दौर के एक दगल का हाल उन्होंने कहा है, जो बडा ही मनोरंजक है। वहाँ इन्दौर-नरेश की ओर से एक ऐसा दगल आयोजित किया गया, जिसमे १४००० पहलवान इकट्ठे हुए थे, और जो लगातार ३० दिनो तक चलता रहा। प्रतिदिन सौ जोडो के हिसाब से उसमे तीन हजार पहलवानों ने कुश्ती की। अखाड़ा अबीर से भरा गया था और उसमें केसर घोलकर छिड़काव किया जाता था। इस दंगल मे उनकी कुश्ती कई नामी पहलवानो के साथ हुई थी। उन्हें बहुत सुयश और इनाम मिला।

उन्होंने अपनी जिन्दगी मे सैकड़ो नामी पहलवानों से कुश्ती की है। उनसे लड़नेवाले नामी पहलवानो मे कुछ के नाम ये हैं—नब्बा (पंजाब), गुलमू (गुलाम का भाई), सुभान (स्यालकोट), करीम (गया), ताज खॉं,* तिनकौड़ी

* यह पहलवान ईरान का था और 'एशिया का चैम्पियन' होने की गरज से देश-देशान्तर में कुश्ती करने निकला था। बाढ (पटना) में मिस्टर टॉपलिश के सामने पोखन सिंह ने ताज खॉं को ५ मिनट में फेंक दिया। —ले०

चौबे (मथुरा), हाशिम (लखनऊ), छोटा आगा (दिल्ली), गामू (बड़ोदा), रमजानी नट (पानीपत) और गूजन (बनारस) ।

बड़ा सैयद कानपुरिया से पोखन सिंह की कुश्ती रामनगर (बनारस) में सम्राट् पंचम जार्ज के सामने हुई थी, जिसमें बाजी पोखन सिंह की रही। वे बहुत ही गुणवन्त पहलवान हैं। उनका दावा है कि सारे भारतवर्ष में एक भी ऐसा दावँ नहीं है जिसे वे भली भाँति न जानते हों।

छपरा के सूचित सिंह भी देश के नामी पहलवान हो गये हैं। जब गुलाम, कल्लू और रहीम—तीनों भाई दुनिया में नाम मार रहे थे, सूचित सिंह भी अपनी पूरी जवानी पर थे। गुलाम और कल्लू अपने समय के सर्वश्रेष्ठ पहलवान थे—इनसे हाथ मिलानेवालों की संख्या बहुत ही कम थी। आज का नामी पहलवान हमीदा इन्हीं भाइयों में से एक (रहीम) का लड़का है। गुलाम ने किंकर सिंह (लाहौर) को इन्दौर में पछाड़ा था।

सूचित सिंह ने गया (बिहार) में गुलाम से कुश्ती की; लेकिन पछड़ गये। फिर कलकत्ता में उनकी कुश्ती कल्लू पहलवान से हुई, जिसमें वे मिट्टी पर नीचे आ गये। कल्लू ने खफ्फा-दावँ लगाकर उनको चित करना चाहा, लेकिन कर न सका। मालूम होता है, इस दावँ से उनके किसी मर्म-स्थान पर अनुचित दबाव पड़ गया था; क्योंकि अखाड़े से लौटने पर दो दिनों के बाद ही वे मर गये।

शाहाबाद जिले के जीवित पहलवानों में कई पुराने और प्रसिद्ध पहलवानों के नाम उल्लेखनीय हैं। सूर्यपुरा-दरबार के अँगरापिटाठ-(पीरो-थाना)-निवासी सहदेवचन्द दो-दो हजार की बाजी के दंगल जीत चुके हैं। सूर्यपुरा के स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंहजी स्वयं पहलवान थे और पहलवानी के ऐसे मशहूर शौकीन थे कि अपने दरबार में अच्छे-अच्छे कुश्तवान बराबर रखते थे। उनके दरबार के नामी पहलवान लाट चौबे अब वृद्ध हो गये हैं। उसी प्रकार चौगाई के प्रतिष्ठित जमीन्दार बाबू रघुनन्दनप्रसाद सिंह को भी स्वयं अखाड़े की धूल मलने का बड़ा शौक था और उनके दरबार में गउसपुर-निवासी श्री पाँड़ बहुत अच्छे पहलवान थे। सलेमपुर के बँगला दुबे तो शाहाबाद के पहलवानों में बड़े ही प्रतिष्ठित हैं। वे अब कलकत्ता में रहकर बुढ़ापे में भी अपने दर्शनीय शरीर की रोटी खा रहे हैं। ओयना-सोनबरसा का निवासी बिल्लर अहीर भी कलकत्ता में ही पहलवानी की कमाई खाता है। उसके दोनों गुरु—नवरंगा-

नैनीजोर के निवासी भूमिहार-ब्राह्मण वसुधर ठाकुर और ओयना-सोनवरसा के ही वलेश्वर मिश्र—इस समय बड़े अखाड़िया पहलवान माने जाते हैं।

समहुती-निवासी स्वर्गीय जमीन्दार वाबू वक्षा सिंह शाहाबाद के पहलवानों के प्रसिद्ध आश्रयदाता थे और स्वयं भी अच्छे मल्ल थे। उनका गुरु—कोरीराम-मकोढी (रामगढ़-थाना) का निवासी मोतीलाल ग्वाला—वृद्धावस्था के निकट होने पर भी कुश्ती के करतव दिखाने में उस्ताद है। ईसरपुरा (नटवार-थाना) का चल्हकू ग्वाला और धनगाई (सूर्यपुरा) का भिखारी ग्वाला, दोनों ही, अपनी जाति की स्वाभाविक शारीरिक शक्ति के प्रवल प्रतिनिधि हैं। जमुआँव (पीरो-थाना) के शिवसरन पाठक को भी ईश्वर ने मस्त भैंसे का-सा शरीर दिया है, जो अखाड़े में चट्टान की तरह दीख पड़ता है। उपर्युक्त सलेमपुर के व्यास दुवे और डुमराँव के भूमिहार-ब्राह्मण छत्रपति राय भी शाहाबाद के पहलवानों में अपनी कला और शक्ति के लिये बहुत विख्यात हैं। कलकत्ता-निवासी शाहाबादी पहलवानों में वम्हवार (पीरो-थाना) का शीतल अहीर भी बड़ा नामी है जो वहाँ कई दंगल मार चुका है। इस जिले के उत्तर-खंड में, जो गंगा-तट के समीप है, कई अच्छे शक्तिशाली पहलवान हैं। गंगा-तट के गाँवों में अनेक घराने ऐसे हैं जिनमें परम्परागत रीति से पहलवानी की कला का अचल अनुराग पाया जाता है—हर घर में व्यायामशील युवक और प्रौढ पुरुष देखने में आते हैं—गंगातट पर अखाड़ों की भरमार है।

आजकल विहार में सवसे अधिक प्रसिद्ध मल्ल छपरा जिले के वावू वशी सिंह हैं। वे भूमिहार-ब्राह्मण हैं। तगड़ा वदन के वहुत ग्रांडील जवान हैं। ताकत के लिहाज से उनकी गिनती देश के प्रथम श्रेणी के पहलवानो में की जाती है। लेकिन आरभ ही से अच्छे उस्तादों की संगति न होने के कारण दावँ-पेच में वे उतने दक्ष नहीं हैं। मशहूर पहलवान 'खयाली' से, जिसने 'अदालत' को पछाड़-कर वडा नाम कमाया था, उनकी कुश्ती इलाहाबाद के दंगल में हुई थी, लेकिन कुश्ती साफ न हो सकी, दोनों मल्ल वरावर पर ही छुड़ा दिये गये।

वंशी सिह प्राय: कलकत्ता मे रहते हैं। वहीं के दंगलो से देश मे उनके नाम की प्रसिद्धि हुई है। वहीं के एक विशाल दंगल में उन्होंने गामा को चैलेंज दिया, लेकिन उसने कुश्ती लडना कवूल नहीं किया। तव से वे उसके पीछे पडे हुए थे, लेकिन वह यह कहकर कुश्ती टालता रहा कि वे पहले इमामवख्श से लड़ लें। आखिर बम्बई में वे इमाम से पछड़ गये।

हाँ, कलकत्ता के दंगलों में उन्होने कई नामी मल्लों को पछाड़ा है। वहाँ उनकी आखिरी कुश्ती पूरन सिह (पंजाबी) से हुई; लेकिन फैसला न हो सका। उनके नीचे जाते ही दोनो तरफ के जवानो में मार-पीट शुरू हो गई। कहते हैं, किसी तरफ के एक जवान का खून भी हो गया। जो हो, उनकी कुश्ती गोरखपुर के नामी पहलवान तप्पे से भी हुई थी, लेकिन समयाभाव के कारण तप्पे को वे चित न कर सके, कुश्ती बराबर पर छुड़ा दी गई।

मथुरा के भूतेश्वर अखाड़े के पहलवान हिन्दुस्तान मे हमेशा ही नामी रहे हैं। इसी अखाड़े के 'छोटा रतन' ने अपनी जवानी मे रीवाँ के दंगल में गामा को पटका था। इसी अखाड़े के चन्द्रसेन पहलवान ने गामा के प्रधान शिष्य 'जाली' (लाहौर) को तीन घंटे लड़कर पछाड़ा था। आजकल इस अखाड़े के धुर्रे चौबे और काला पहाड़ बड़े नामी मल्ल गिने जाते हैं। उपर्युक्त वंशी सिह की कुश्ती काला पहाड़ और हमीदा से होनेवाली थी।

वंशी सिंह के बाद जिन्होंने मल्ल-विद्या में सबसे अधिक नाम पैदा किया है वे हैं सुखदेव झा*। दुःख है कि इनकी पहलवानी अब उखड़ रही है। इसके लिये ये चिन्तित भी नहीं दीखते। इनका रंग साफ, कद लम्बा और शरीर वजनदार है। लँगोट बाँधकर अखाड़े में उतरने पर इनकी शोभा देखते ही बनती है। दानवी शरीर में सुन्दरता कूट-कूटकर भरी हुई है। अखाड़े में खड़ा होते ही ये जनता के प्रिय पहलवान हो जाते हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा ही मधुर है। ऐसा कोई भी दंगल मैंने नहीं देखा जिसमें जनता की शुभकामना इनके साथ न रही हो। मथुरा के उठते शेर चुन्नी चौबे के साथ कुश्ती में जब इन्हें दम आने लगा तब जनता ने घबराकर बड़े जोर का शोर मचाया और कुश्ती बराबर पर छुड़वाकर इन्हें अखाड़े से उतार लिया। गत बीस वर्षों से ये दंगलों में भाग लेते रहे हैं। प्रायः सर्वत्र ही इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रक्खा है।

इनके पिता बोतल झा भी बड़े नामी पहलवान थे। उनका कद और उनकी ऊँचाई मशहूर थी। सिमरिया-घाट (मुँगेर) के मेले में दूर से ही जिसकी गरदन सबसे ऊँची दीख पड़ती थी, लोग उसे बोतल झा समझ लेते थे, और यह पहचान ठीक सी थी। झपसू पहलवान ने बुढ़ापे में उनको पटक दिया था। सुखदेव झा ने इक्कीस वर्ष की उम्र में ही अपने बाप का बदला लिया—झपसू को पटक दिया। कुछ दिन हुए, चम्पारन जिले की बेतिया-राजधानी में सुखदेव की कुश्ती करनैल

* 'बालक' (वर्ष ३, कार्तिक, संवत् १९८५) मे इनकी सचित्र जीवनी छप चुकी है।

सिंह (कुरुक्षेत्र) से हुई थी, जिसमें सात मिनट के अन्दर ही करनैल सिंह चित हो गये।

सुखदेव तिरहुत के चैम्पियन गिने जाते हैं। ये मिथिला के अत्यन्त प्रिय पहलवान हैं। जिस प्रकार गामा सभी नये पहलवानों की ईर्ष्या का लक्ष्य हो रहा है उसी प्रकार इनसे लड़ने को भी बहुत-से उठते जवान उभड़ते ही रहते हैं। लेकिन ईश्वरेच्छा से अभी इनकी इज्जत बनी हुई है। बालकृष्ण नैपाली, गुलाम मुहम्मद (गया), बस्सू मुलतानी, सरवन सिंह (पटियाला), शाबू (कोल्हापुर), अलीदत्ता पंजाबी, उत्तम सिंह मुजफ्फरपुरी, गुलाम हैदर अमृतसरी, केरसिंह (पटियाला), रामकिसुन सिंह और जागा गोप (छपरा) के साथ कुश्ती लड़कर ये विजयी हो चुके हैं।

छपरा जिले के जागा गोप, लोहा सिंह, रामलखन सिंह और सभा सिंह बहुत अच्छे पहलवान हैं। जागा और लोहा के शरीर की बनावट देखते ही बनती है। फेकन चौधरी, शकूर, उस्मान, गफ्फार और अब्दुल्ला (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर); अधिकलाल गोप और महावीर चौबे तथा रामभरोससिंह (मुँगेर), जगदीश और सत्यनारायण (दरभंगा)—इनकी गिनती बढ़िया पहलवानो में होती है। महावीर चौबे और गफ्फार उठते पहलवान हैं और उम्मीद की जाती है कि ये लोग अच्छा नाम पैदा करेंगे। बंशीसिंह की मंडली में भी कई पहलवान बहुत ताकतवर समझे जाते हैं।

लेकिन सब कुछ होते हुए भी अभी तक तिरहुत का भीम मंगल गोप (मुजफ्फरपुर) ही है। उसकी उम्र ४० के आसपास होगी। ऊँचाई लगभग छ फीट तथा शरीर भरा-पूरा और सुडौल है। जो लोग उसके बल को जानते हैं वे उससे भिडने में कॉप जाते हैं। बेतिया के दंगल मे पजाब के नामी पहलवान 'बगा' को उसने सिर्फ एक मिनट में आसमान दिखा दिया। सीतामढ़ी के दंगल में—जिसमे जागा, अदालत और सुखदेव भी थे—उसकी कुश्ती लोहा सिह से हुई। अखाड़े में दोनो की जोडी देखने ही लायक थी। दोनो दो सुपुष्ट गजराजो की भॉति झूम रहे थे। उनके आपस मे टकराने पर ऐसा लगता था मानो दो भैंसे टकरा रहे हो। लेकिन सात-आठ मिनट में ही लोहा सिह गिर गया और हॉफने लगा। आखिर जागा की सिफारिश से कुश्ती बराबर जोड़ पर छुड़ा दी गई। अखाड़े से उतरने पर लोहा सिह ने कहा—"मंगला तिरहुत का भीम है और इसे पछाड़नेवाला पहलवान इस अखाड़े में कोई नहीं है।"

भागलपुर जिले के अमरपुर-निवासी पुलकित मिश्र इस समय बिहपुर-थाना-इलाके के बड़े नामी पहलवान हैं। बौंसी, गोनूधाम और पूर्णिया (गुलाब-बाग) के मेलों तथा गढ़-बनैली में इन्होंने कई दंगल मारे हैं। लाठी चलाने की कला में भी इन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। ये मैथिल ब्राह्मण हैं, और बड़ा ही सुडौल शरीर पाया है।

गुजरे हुए पहलवानों में मगध के भत्तूमल ('मल' की पदवी 'मल्ल' से ही निकली है) और उसके लड़के वजीरमल का बड़ा नाम है। इनलोगों ने बाहर जाकर कुश्ती नहीं की; लेकिन ताकत में सचमुच भीम थे। वजीरमल की कुश्ती बहुत कम लोगों से हो पाई थी; क्योंकि अक्सर अखाड़े में खड़े होने पर वजीर की आँखो की गहरी लाली और उसके अंगों का आशातीत उभाड़ देखकर प्रतिद्वन्द्वी पहलवान भाग जाते थे। और, यही हाल शाहाबाद जिले के करनपुरा-निवासी हाथीराय नट का था। लँगोट बाँधकर जब गरदन पर अखाड़े की धूल लगाता था तब अपने नाम को अक्षरशः सार्थक कर देता था—भयंकर दैत्य-सा रूप देखकर लड़नेवाले पहलवान कदरा जाते थे। उनवाँस (बक्सर-थाना) के राम-आदित अहीर का शरीर भी ध्वजा के समान ऊँचा था। पहलवानो के दल में वह मंदिर-कलस की तरह दीख पड़ता था। उसका शारीरिक सौन्दर्य देखने ही योग्य था। शरीर के अनुपात से ईश्वर ने उसे बल भी पूरा दिया था।

बड़हिया (मुंगेर) के श्यामकिशोर सिह, द्वारका सिंह और जित्तू सिंह भी अपने समय के नामी पहलवान थे और मल्लो के बीच इनका काफी आदर था। बहेलिया-बिघा (टिकारी, गया) के सींता जाट का 'कालाजंग'-दावँ हिन्दुस्तान-भर में मशहूर था और उसने इसके प्रयोग से बड़े-बड़े मल्लों को पछाड़ा था। गया का जंगू पहलवान भी बड़ा नामी था और उसके 'पट, घिस्सा और सवारी' से प्रतिद्वन्द्वी पहलवान बहुत घबराया करते थे। टिकारी (गया) के राजा रंगबहादुर सिंह का एक दूसरा पहलवान करीम भी बहुत प्रसिद्ध था, और वह भी देश में घूम-घूमकर कुश्तियाँ लड़ा था। वैद्यनाथ-धाम (देवघर) के सरदार पंडा की कुश्ती गुलाम से हुई थी, जो जोड़ पर छूटी। ढाला झा और बौधा धोबी (दरभंगा) भी बहुत अच्छे पहलवान थे। ढाला झा तो अब भी जीवित हैं; लेकिन इधर दंगलों में आते इन्हें नहीं देखा है; ये लड़ने के फन में बहुत होशियार माने जाते हैं। दरभंगा के ही सूरज और

मूँगा नट अपने समय में दावँ-पेच के लिये बहुत मशहूर थे। बड़हिया-(मुंगेर)-निवासी अम्बिका सिंह और द्वारका सिंह के बल का पता किसी को न लगा। भत्तूमल कहता था कि इन दोनों भाइयों से पार पाना कठिन है।

शाहाबाद जिले में जगदीशपुर-राजवंश के बाबू ज्वालाप्रसाद सिंह (दिलीपपुर-देवढी) बड़े मस्त पहलवान थे। हाथी की पूँछ पकड़ लेते थे तो वह एक डग भी आगे नहीं बढ सकता था। ये तबला बजाने में भी पक्के उस्ताद थे। दिलीपपुर के ही भुआल गुसाईं और टिलन खलीफा भी अपने समय के बेजोड पहलवान थे, जिनकी पीठ कभी कहीं लगी ही नहीं। बेलहरी (नावानगर-थाना) के निवासी रामजी दुबे सूर्यपुरा के राजा साहब के दरबार मे रहते थे। उनका शरीर इतना भारी था कि लोहे की मजबूत खाट पर ही सोते थे। यही हाल बड़का-सिंघनपुरा (डुमराँव-थाना) के विवेखी ओझा का था। इनका शरीर भी अकेला ही एक बैलगाड़ी का बोझ था। कहते हैं कि शरीर की सुगठित बनावट मे उनवाँस का रामचरित्र अहीर और मझौआ का रामस्वरूप सिंह दोनो बेजोड़ थे। दोनों ने कितने ही दंगल मारे, कहीं भी इनकी पीठ मे धूल न लगी। रामस्वरूप सिंह आरा मे पुलिस का सिपाही था और रामचरित्र बक्सर-थाना का चौकीदार। रामस्वरूप सिंह बावन जिलों के पुलिस-पहलवानों के दंगल मे विजयी हुआ था। रामचरित्र की आवाज ठीक साँड़ के समान थी और वह लाठी चलाने में अपना सानी नहीं रखता था। गिरहबाज कबूतर की तरह उसके गठीले बदन मे फुर्ती थी। उसी का सगा छोटा भाई राम-आदित था, जिसका नाम पहले आ चुका है और जो खुत्थ की तरह अटल रहकर अपनी भुजाओं पर बड़े-बडे लडाके भेड़ों की लगातार टक्करें आडता था।

गया जिले में तिलोक सिंह टिकारी-राज का पहलवान था। कहते हैं, उसका आकार भीमकाय दानव का-सा था। पोखन सिंह से सुना है कि वह दस सेर चावल नाश्ते में फाँक जाता था और उसके दोनो जून के भोजन—चावल, दाल और आटा—की तौल छ पसेरी (तीस सेर) होती थी। इतना खाकर भी वह टिकारी से पटना तक डाक लेकर रोज आता-जाता था।

बड़हिया (मुंगेर) के एक बहुत ही जबरदस्त पहलवान बाबू रामकिशोर सिंह का नाम छूटा जा रहा है। वे प्रायः लाख मे एक थे। बिहार में जब जोड़ न मिला, तब वे प्रतिद्वन्द्वी की तलाश में मथुरा पहुँचे, लेकिन वहाँ भी उनसे

लड़ने को कोई तैयार न हुआ, और पूर्वोक्त उदितनारायण की तरह ही शायद उन्हें भी अपनी जान गँवानी पड़ी।

हमारे प्रदेश में, सभी क्षेत्रों में, गुण वा गुणियों के संरक्षकों (Patrons) का अभाव है। नहीं तो यहाँ एक की क्या चर्चा, अनेक गामा पैदा होकर बिला चुके हैं। रामकिशोर सिंह और उदितनारायण-जैसे अगड़धत पहलवान आकर चले गये, मगर ये लोग वे करतब न दिखला सके जिनके लिये इनका जन्म हुआ था। ऐसे ही कितने गुणी 'बिन खिले मुरझा गये'।

भारतवर्ष में मथुरा एक ऐसी जगह है जहाँ मल्लों की संख्या सबसे अधिक है और सचमुच मथुरा को मल्लपुरी ही कहना चाहिये। अत्यन्त प्राचीन काल से ही उसकी यह उपाधि उपयुक्त है। यहाँ दो मशहूर अखाड़े हैं—चौबे का अखाड़ा और भूतेश्वर का अखाड़ा। इन दोनो अखाड़ो से बड़े-बड़े पहलवान निकलते रहे हैं, जिन्होंने अपने देश का मस्तक ऊँचा किया है। मथुरा के बाद पंजाब का नम्बर आता है। आज गामा, हमीदा, इमामबख्श आदि के कारण पंजाब ही मल्ल-विद्या में अग्रणी गिना जा रहा है। पहले भी पंजाब ने कल्लू, गुलाम, रहीम और किंकर-जैसे दर्जनों पहलवान पैदा किये थे। बिहार का नम्बर इन दोनो जगहों के बाद आता है; लेकिन सूबा-भर में कहीं भी संगठित अखाड़ो के न रहने के कारण पहलवानी का हुनर यहाँ पूरे उभार से खिल नहीं रहा है। वंशी सिंह को ही लीजिये। अगर यहाँ कोई संगठित अखाड़ा रहा होता, अथवा किसी सर्वमान्य उस्ताद की संगति उदीयमान मल्लो को प्राप्त रही होती, तो आज वंशी सिंह भारत का नाम बढ़ानेवाला पहलवान गिना जाता—किन्तु अलं विलापेन !!

पहलवानों का प्रधान भोजन दूध, घी और बादाम है। कुछ पहलवान मांस को भी प्रधानता देते हैं। पंजाब के पहलवान अखनी (मांस का शोरबा या अर्क) खूब पीते हैं। हिन्दुओं और सिक्खों के यहाँ फलों की भी चलन है। लेकिन मथुरा के चौबे तो मोदक-प्रिय ठहरे। उनके यहाँ रबड़ी, मलाई, लड्डू और हलवे पर सबसे अधिक चोट है; दूध में घी डालकर भी पीते हैं; भंग और बादाम पीना भी प्रायः उनके लिये जरूरी होता है। विश्वविख्यात भारतीय मल्ल 'गामा' भी अखनी अधिक पीता है। दूध और घी का सम्मिलित पेय भी उसे बहुत पसन्द है। बंगाली मल्ल गोबर बाबू दस-पन्द्रह रुपयो के फलों का शर्बत पी जाते हैं।

किन्तु बिहार के पहलवान अखनी नहीं पीते; क्योंकि यहाँ उसकी चलन

नहीं है। रोटी खाते हैं और कच्चा दूध पीते हैं। फलों की प्राप्ति भी उन्हें संयोग से ही होती है। सब मिलाकर दूध, घी और रोटी उनका प्रधान आहार है। मिथिला के पहलवान मांस-मछली भी खाते हैं। कहते हैं, बोतल झा भी बड़े खाऊ थे; प्रायः सात-सात सेर मांस आसानी से खा जाते थे, भोर में ढाई सेर जलेबियाँ खाकर दोपहर के भोजन के लिये भूखे रहते थे। उनके पुत्र सुखदेव झा भी एक सेर बादाम, आध सेर मिसरी, छ सेर दूध और एक सेर पिस्ता केवल जलपान करते थे। एक सेर आटा, दो सेर मांस, आध सेर घी और एक सेर मलाई इनका कलेवा था। प्रतिदिन दो बार जलपान और एक बार भोजन का नियम था। पर अब तो इनकी शारीरिक स्थिति सन्तोषप्रद नहीं है।

दूध और रोटी बहुत अच्छे खाद्य हैं; लेकिन अखनी का पेय पहलवानों के लिये आवश्यक समझा जाना चाहिये। दूध पीनेवाले मल्लों का बदन समुचित नियन्त्रण मे नहीं रह पाता और प्राय' बे-सिलसिला फैलकर कुरूप हो जाता है। जो मल्ल मांस खाते हैं उन्हें तो अखनी पीने मे कोई उज्र होना ही न चाहिये।

बिहार में पहले पट और बाँह-बल्ली के दावँ बहुत चालू थे। लेकिन पोखन सिंह, मथुरा बाबू, दरभंगा-राज के अखाड़े और टिकारी-राज में पलनेवाले पहलवानों के जरिये अब प्रायः सभी दावँ यहाँ प्रचलित हो गये हैं। मैंने देखा है कि दिहात के अखाड़ों में भी कम-से-कम सौ दावँ चालू हैं।

पहलवानी एक विचित्र हुनर है। इसमें न तो शरीर की विशालता प्रधान है, न ताकत और न दावँ। सबके बीच उचित सामंजस्य की प्राप्ति जिसे हो जाती है वही अच्छा पहलवान निकलता है। छोटे कद के अदालत नट (गोरखपुर) को देखिये कि वह कैसा चतुर मल्ल है।





बिहार के पुस्तकालय और संग्रहालय

श्रीजयकान्त मिश्र, 'ज्योतिश्री'-सम्पादक, सहकारी 'आर्यावर्त्त'-सम्पादक; सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर)

प्राचीन काल में बिहार अपने विद्याव्यसन के लिये बहुत प्रसिद्ध था। इसके उत्तरी भाग 'मिथिला' को तो इतिहासकारों ने 'सरस्वती-विद्यापीठ' के नाम से ही पुकारा है। प्राचीन मिथिला के प्रत्येक ग्राम में एक विद्यालय और उसी के भवन में एक पुस्तकालय था। उन दिनों मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था। पुस्तकें हाथ से ही लिखी जाती थीं। पुस्तकालयों में रक्खी गई पुस्तकों से विद्यार्थी अपने पाठ नकल कर लिया करते थे। पंडितों के घर इसी तरह की हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालय थे। ब्राह्मणों का मुख्य कार्य अध्ययन और अध्यापन था, जिसके साथ गरीबी का भाव आरंभ से ही जुड़ा हुआ था। यह आर्य-संस्कृति की ही विशेषता है कि उसमें ज्ञान और दारिद्र्य का सम्मान कभी समृद्धि से कम न रहा। मिथिला के ब्राह्मणों की सम्पत्ति उनकी पुस्तकें ही थीं।

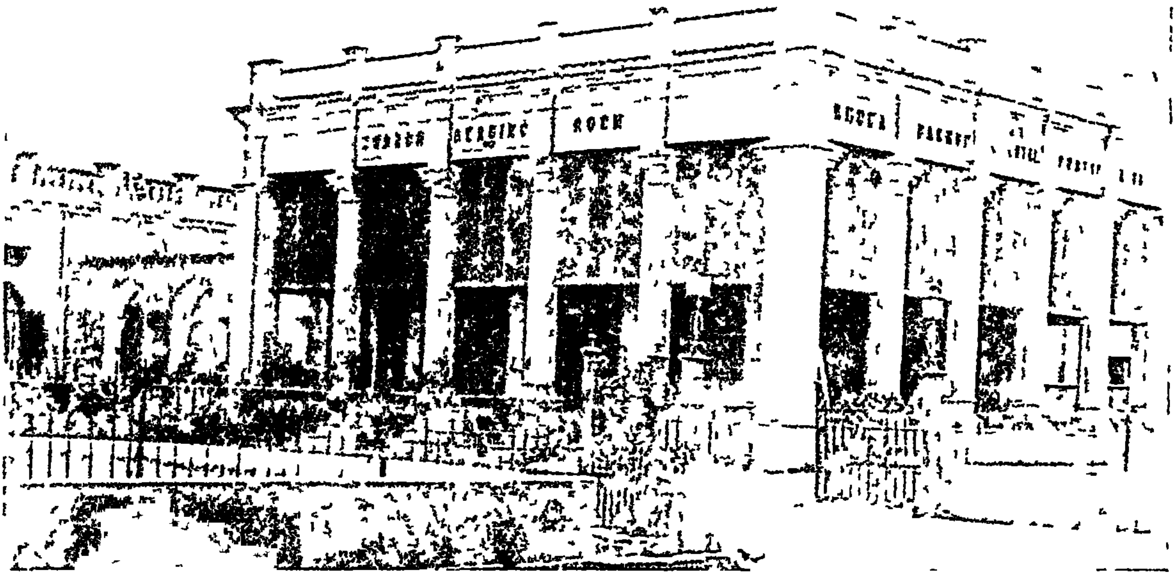
बिहार के नालंदा और विक्रमशिला नामक विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में लाखों पुस्तकें थीं, जिन्हें विदेशी आक्रमणकारियों ने नष्ट कर डाला। इन विशाल ग्रन्थागारों की ख्याति देश-देशान्तर में फैली हुई थी। इतिहासों में भी इनका महत्त्वपूर्ण उल्लेख पाया जाता है।

देश के अशान्ति-युग और अव्यवस्था-काल में जनता का जीवन अस्तव्यस्त होने तथा समाज की स्थिति अनिश्चित रहने के कारण बहुत-से पुराने पुस्तकालय नष्ट हो गये। आक्रमणकारी विदेशियों द्वारा अनेक ग्रन्थागार अग्नि की भेंट चढ़ा दिये गये—पुस्तकें जलाकर स्नानागार का पानी गरम करने की कहानी प्रसिद्ध ही है। देश की उस अव्यवस्थित दशा में छोटे-मोटे बचे-खुचे पुस्तकालय भी बिखर गये, जिनकी छिट-फुट पुस्तकें गाँवों और शहरों के पुराने घरानों में यत्रतत्र आज भी पाई जाती हैं।

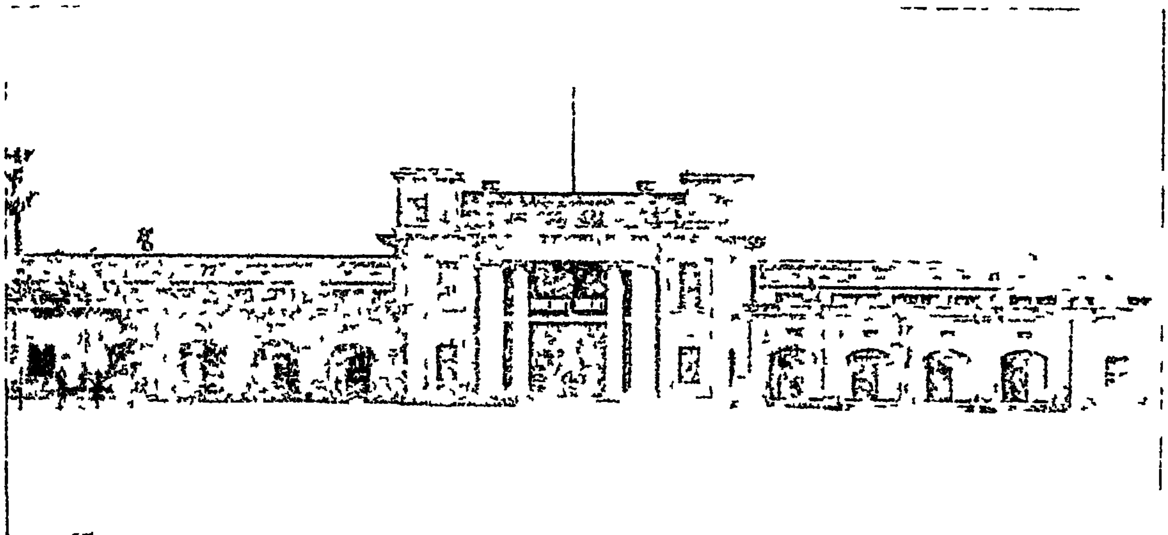
अँगरेजी राज में छापे की कला आई। लेखन-कला विदा हुई। बेचारे लिपि-विशारद बेकार हो गये। किन्तु पुस्तकें सुलभ हो गईं। ज्ञान का द्वार सबके लिये खुल गया। क्रमश: पुस्तकों की संख्या बढ़ती चली। स्वभावत: पुस्तकालयों की भी सख्यावृद्धि होने लगी।

पुरानी बातें गत हुईं। इन दिनों भी विहार मे ऐसे पुस्तकालय हैं, जो भारत-भर मे प्रसिद्ध हैं। कुछ पुस्तकालय तो आदर्श हैं।

खुदाबख्श खाँ की ओरियंटल लाइब्रेरी (पटना)—भारत की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों मे इसका एक खास स्थान है, यों तो यह संसार की प्रसिद्ध लाइब्रेरियों में गिनी जाने योग्य है। यह मुसलमानी साहित्य का एक अनुपम भाडार है। इसके संस्थापक खाँ-बहादुर खुदाबख्श खाँ छपरा (सारन) जिले के निवासी और पटना मे सरकारी वकील थे। उनके पितामह मरते समय ३०० हस्तलिखित ग्रन्थ छोड़ गये थे। उनके पिता ने भी १२०० हस्त-लिखित ग्रन्थों का संग्रह किया था। इन्हीं डेढ़ हजार ग्रन्थों से इस लाइब्रेरी का जन्म हुआ। कहा जाता है कि उनके पिता ने मरते समय अपने संग्रहालय के ग्रन्थों से एक लाइब्रेरी खोलने की राय दी थी। अत: वे आजीवन अपने पिता की आज्ञा का पालन करने मे लगे रहे। वकालत से उनकी अच्छी आमदनी थी, जिसे वे अधिकतर पुस्तकों के संग्रह करने में व्यय किया करते थे। सन् १६०८ ई० मे वे स्वर्गवासी हो गये। किन्तु उनकी यह उज्ज्वल कीर्त्ति आज भी उनके पवित्र नाम और अखंड विद्याप्रेम को अमर बना रही है। यह विहार-प्रान्त का एक अमूल्य अलंकार है। इसकी इमारत में प्राय: एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। फर्श संगमर्मर का है। दीवारे रँगी हुई हैं। इसकी सम्पत्ति सब मिलाकर प्राय: नव लाख रुपये की है। खुदाबख्श खाँ ने सन् १८६१ ई० मे ही इसको ट्रस्टियो (संरक्षकों) के हवाले कर दिया था। ट्रस्टियो के अधिकारपत्र मे उन्होंने यह शर्त्त भी लगा दी है कि लाइब्रेरी की कोई भी पुस्तक कहीं बाहर ले जाने के लिये किसी को न दी जाय। उनके जीवन-काल में ही लंदन के 'ब्रिटिश म्यूजियम' के अधिकारियों ने काफी रुपयो का लोभ दिखाकर इसे खरीदना चाहा था; पर उन्होंने स्वीकार नही किया। इस पुस्तकालय को देखकर स्वर्गीय सम्राट् पंचम जॉर्ज, भूतपूर्व सम्राट् अष्टम एडवर्ड (जब प्रिंस आफ वेल्स थे), लार्ड कर्जन आदि भी मुग्ध हो चुके हैं। इसमें कई ऐसे प्राचीन हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थ हैं जो बड़े-बड़े राज्य निछावर करने पर भी कहीं नही मिल सकते। इसमे लगभग



ओरियटल (खुदाबख्श खाँ) लाइब्रेरी, पटना—पृष्ठ ५१२



पटना-युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी—पृष्ठ ५१५



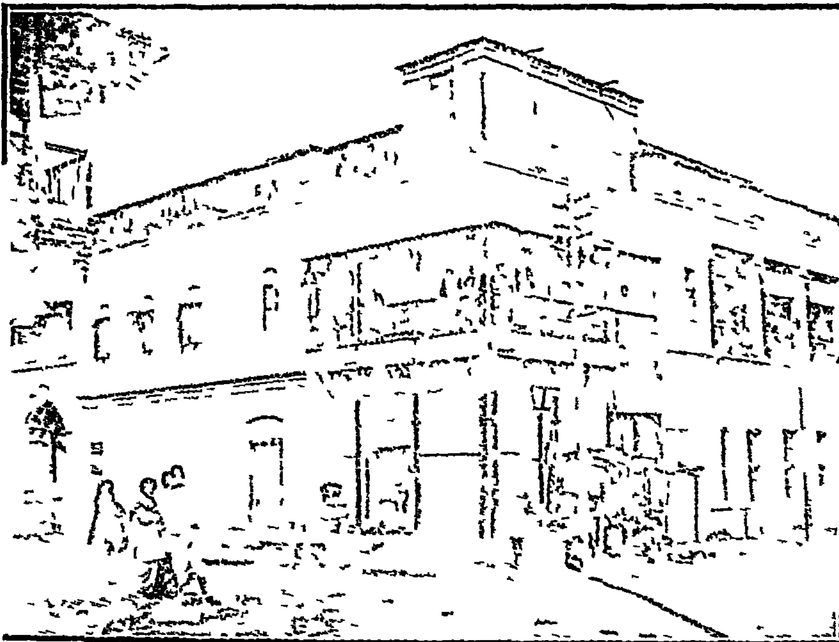
बिहार-हितैषी पुस्तकालय, मंगलतालाब, पटना सिटी—पृष्ठ ५१७

दरभगा-राज-लाइब्रेरी
पृष्ठ—५१९





श्रीराधिका सिंह-
इन्स्टीट्यूट-लाइब्रेरी
पटना
पृष्ठ ५१४



श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय
गया
पृष्ठ ५१८

पाँच हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। अरबी और फारसी के छपे हुए ग्रन्थों की संख्या चार हजार है। लगभग एक लाख रुपये की लागत के मुद्रित अँगरेजी ग्रन्थ भी हैं। सभी ग्रंथ बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण ही हैं। साधारण पुस्तकों के संग्रह पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये यह संग्रहालय बड़े लाभ की वस्तु है। आरम्भ में ग्रन्थों की खोज और संग्रह करने के लिये खाँ-बहादुर ने 'मुहम्मद मकी' नामक एक विद्या-प्रेमी सज्जन को नियुक्त किया था। 'मकी साहब' सचमुच ही पुस्तकों के शिकारी थे। अठारह साल वे देश-देशान्तर में घूम-घूमकर ग्रन्थों का पता लगाते और संग्रह करते रहे। वे भारत के सिवा सीरिया, अरब, मिस्र, फारस आदि देशों से भी ग्रंथ-संग्रह कर लाये थे। उनके सम्बन्ध में 'मिस्टर वी० सी० स्कॉट ओकौनर' ने अपने ग्रन्थ 'ऐन ईस्टर्न लायब्रेरी' (An Eastern Library) में जो कुछ लिखा है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—"खुदाबख्श-खाँ अपने निकटवर्त्ती एक राजकुमार के यहाँ से एक योग्य पुस्तक-संग्रहकर्त्ता को फुसला लाये थे और साथ ही उन्होंने एक अरब को भी नौकर रक्खा था, जिसने अठारह वर्षों तक कैरो, दमिश्क, बीरूत, अरब, मिस्र, फारस आदि महानगरों और देशों में भ्रमण कर पुस्तकों का संग्रह किया था।" इसके अतिरिक्त खाँ-बहादुर स्वयं भी विज्ञापन प्रकाशित करते रहते थे कि जिसके पास कोई हस्तलिखित उत्तम ग्रन्थ हो, वह उसे लेकर आवे; यहाँ उसको ग्रन्थ के उचित मूल्य के सिवा मार्ग-व्यय भी दिया जायगा। इस तरह भी उन्होंने बहुत-से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया। कहा जाता है कि अपनी मृत्यु के समय तक उन्होंने साढ़े तीन हजार प्राचीन ग्रन्थ संग्रह कर लिये थे। कुछ उदार सज्जनों ने तो उनके अविरल विद्या-प्रेम पर मुग्ध होकर बहुत-से प्राचीन ग्रन्थ उपहार-स्वरूप भी दिये थे। उन्होंने साठ हजार रुपये खर्च कर इंगलैंड का एक पूरा संग्रहालय ही नीलाम में खरीद लिया था। उन्हें स्पेन के शंडोवा-विश्वविद्यालय से भी कई प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हाथ लग गये थे। दक्षिण-हैदराबाद-हाइकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश रहते हुए भी उन्होंने बहुत-से प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह किया था। वे दिन-रात ग्रंथ-संग्रह की चिन्ता में ही लीन रहते थे। धुन पक्की थी, लगन सच्ची; इसलिये लाइब्रेरी भी अद्वितीय हुई। इसमें एक ग्रन्थ तो स्वयं सम्राट् जहाँगीर का लिखा हुआ है, जिसमें उन्होंने खुद ही अपनी जीवनी लिखी है। यह ग्रन्थ सम्राट् ने गोलकुंडा के बादशाह को भेंट में दिया था। एक ग्रन्थ और है, जो

कुस्तुनतुनियाँ मे—सोलहवीं सदी के अन्त में—लिखा गया था। समस्त संसार मे इस ग्रन्थ की यही एक प्रति है। कई ग्रन्थ ऐसे हैं, जो सुनहले अक्षरों में लिखे हुए हैं; बहुतों मे तो सुनहले चित्र भी हैं। ऐसे ग्रन्थों मे कुरान, हफ्तावदे-काशी, 'जामी' का सुप्रसिद्ध उपन्यास-ग्रन्थ 'युसुफ-जुलेखा' और दीवान-मिर्जा कामरान (जहाँगीर और शाहजहाँ के आत्म-चरित) मुख्य हैं। अरबी-फारसी मे लिखे हुए अतीव प्राचीन एव अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं। जगत्प्रसिद्ध 'शाहनामा' की वह प्रति भी है, जिसे काबुल और काश्मीर के शासक अलीमर्दान खाँ ने सम्राट् शाहजहाँ को भेंट की थी। एक प्रति 'तारीखे-खान्दाने-तैमूरिया' की है, जिसमे १३३ चित्रित पृष्ठ हैं, जिन्हें अकबर के समय के तीस सुप्रसिद्ध चित्रकारों ने अंकित किया था। इतना ही नहीं, ग्रन्थों के सिवा कई पुराने सुनहले चित्र भी हैं—एक-से-एक बढ़कर। ये किसी समय मुसलमान बादशाहों और नवाबों की चित्रशालाओं को सुशोभित कर चुके हैं। महाराज रणजीत सिंह के चित्र-संग्रह मे से भी कई चित्र यहाँ मौजूद हैं। भारत के सिवा विदेशों के प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र भी इसमे संगृहीत हैं। इतिहास-प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह का शिकारी चित्र देखने ही योग्य है। यह संग्रहालय सब तरह से अनूठा है।

श्रीमती राधिकासिंह इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी (पटना)—इसके जन्मदाता हैं पटना-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस-चांसलर डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह, जो भारतप्रसिद्ध पत्रकार, सुवक्ता और सुलेखक हैं। आपने अपनी सहधर्मिणी स्वर्गीया श्रीमती राधिका देवी के स्मारक-स्वरूप इसकी स्थापना की है। इसके भवन के बनवाने और सजाने मे लगभग एक लाख रुपये खर्च हुए हैं। सन् १९२४ ई० (फरवरी) में बिहार-उडीसा के तात्कालिक गवर्नर 'सर हेनरी ह्वीलर' ने इसके भवन का उद्घाटन किया था। संगृहीत पुस्तको का दाम लगभग दो लाख रुपये कहा जाता है। बिहार-सरकार ने हाल ही इस पुस्तकालय को आठ हजार रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया है। सन् १९३२ ई० मे, पटना-विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-भाषण मे, पटना-हाइकोर्ट के चीफ-जस्टिस 'सर कर्टनी टेलर' (स्वर्गीय) ने इसे 'सार्वजनिक साहित्य का शानदार पुस्तकालय' (Splendid Library of General Literature) कहा था। इसके साथ एकान्त अध्ययनालय और अनुसंधानालय तथा सार्वजनिक वाचनालय और समाचार-पत्रालय भी सम्बद्ध हैं। समाचार-पत्रालय मे देश-विदेश के अनेक

मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों की फाइलें सुरक्षित हैं। इसका 'उल्लेख-विभाग' (Reference Section) अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उसमें कई विश्वकोष, शब्दकोष, ज्ञानकोष, पुस्तक-सूची और विभिन्न विषयों के उल्लेखनीय ग्रन्थो का संग्रह है। ग्रन्थों की कुल संख्या लगभग बीस हजार है। सर्वसाधारण के लाभ के लिये इसमें हिन्दी की भी बहुतेरी पुस्तके हैं। इसकी प्रबन्धशैली प्रशंसनीय है। इसके जन्मदाता की निजी लाइब्रेरी भी देखने ही योग्य है और अपने ढंग की अकेली भी। उसमें अखबारों की कतरनों का विराट् संग्रह आश्चर्यजनक है।

पटना-युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी (पटना)— इसमें तीन विभाग हैं— साधारण पुस्तकालय, बेली-मेमोरियल संग्रहालय (The Bayley Memorial Collection) और बनैली-अर्थशास्त्रीय पुस्तकालय। प्रथम साधारण विभाग में छ हजार रुपये हर साल खर्च किये जाते हैं; इसमें इस समय लगभग अठारह हजार ग्रन्थ हैं। द्वितीय बेली-मेमोरियल में लगभग दस हजार; इसकी स्थापना बिहार-उड़ीसा के सर्वप्रथम लेफ्टिनेट गवर्नर 'सर चार्ल्स बेली' की स्मृति में हुई थी। यह सर्वसाधारण के काम में आ सकता है। सन् १९२३ के सितम्बर में बिहार-उड़ीसा की सरकार ने इसे पचास हजार रुपये दिये थे। फिर सन् १९२४ ई० में पटना युनिवर्सिटी के बेली-मेमोरियल-ट्रस्ट से ४६०४९) रुपये मिले थे। दरभंगा और हथुआ के महाराजों और बेतिया की महारानी ने दस-दस हजार रुपये दिये। गिद्धौर के महाराज ने चार हजार, अमावाँ के राजा ने चार हजार, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर ने दो हजार, बिहार के भूतपूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर 'एडवर्ड गेट' ने एक हजार और पंचेतगढ़ (छोटानागपुर) के राजा ज्योतिःप्रसादसिंह देव ने भी एक हजार रुपये प्रदान किये थे। इस तरह एक फंड कायम किया गया, जिससे इन दिनों पटना-युनिवर्सिटी को ४२५२॥) की वार्षिक आय है और उसीसे इस विभाग की अभिवृद्धि होती जा रही है। सन् १९३१ ई० से इस विभाग के लिये ग्रंथों का खरीदना जारी है। संभव है, यदि यही सिलसिला जारी रहा तो, यह विभाग बिहार के लिये गौरव की एक वस्तु हो जायगा। तृतीय विभाग के लिये, सन् १९२० ई० में, बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर बी. ए. (स्वर्गीय) ने पटना-विश्वविद्यालय को पाँच हजार रुपये दान दिये थे, जिनसे अर्थशास्त्र-सम्बंधी ग्रंथ खरीदे गये। इस विभाग की देखभाल युनिवर्सिटी द्वारा मनोनीत दो बोर्डों के सदस्य करते हैं। युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी में हिन्दी की पुस्तकों और पत्रपत्रिकाओं का भी उपयोगी संग्रह है।

बिहार-उड़ीसा-रिसर्च - सोसाइटी - लाइब्रेरी (पटना)— इसकी स्थापना सन् १९१५ ई० में हुई थी। इसके संस्थापकों में स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल प्रमुख थे। इसका भवन अत्यन्त सुन्दर है। इसमे वहुत-से वहुमूल्य हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथ सगृहीत हैं। प्रान्तीय सरकार प्रति वर्ष एक हजार रुपये इसे दिया करती है। सन् १९२० ई० से यह सोसाइटी मिथिला और उड़ीसा के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करती आ रही है। मिथिला मे जितने प्राचीन ग्रन्थों का पता चला है, सबकी वर्णनात्मक सूची दो पोथों मे छपी है। इनके सिवा तिब्बत से प्राप्त हस्तलिखित बौद्ध ग्रन्थों के ७०० वोझे (वडल) भी यहाँ मौजूद है। तिब्बत से उक्त दुष्प्राप्य ग्रन्थों के लाने का श्रेय त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन को ही है। इन्हीं ग्रंथो के आधार पर अब हिन्दी-कविता का आदिकाल आठवीं शताब्दी निश्चित हुआ है।

पटना-कालेज लाइब्रेरी—यह उसी भवन मे है, जो सत्रहवीं शताब्दी में 'डचों की कोठी' था। इसमे लगभग २७ हजार ग्रन्थ हैं। सरकार हर साल ५५००) रुपये इसे देती है। पटना में पहला हाइस्कूल सन् १८३५ ई० मे खुला और वही सन् १८६३ ई० मे कालेज के रूप मे परिणत हो गया। इसलिये उसी समय से इसमे पुस्तकों का संग्रह होता रहा। इसमे हिन्दी की नई-पुरानी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की पर्याप्त संख्या है।

साइंस कालेज-लाइब्रेरी (पटना) इसकी स्थापना सन १९२७ ई० मे हुई। इसके पुस्तकालय मे लगभग एक हजार ग्रन्थ हैं। अधिकांश पुस्तके विज्ञान सम्बन्धी ही हैं। हिन्दी की वैज्ञानिक पुस्तकों का केवल चुनिन्दा संग्रह है।

विहार-नेशनल-(वी० एन०)-कालेज-लाइब्रेरी (पटना)—सन् १८८९ ई० में इसकी स्थापना हुई। इसके पुस्तकालय मे साढ़े सात हजार से अधिक ग्रन्थ हैं। विभिन्न भाषाओ की पत्र-पत्रिकाएँ लगभग साढ़े इक्कीस हजार हैं। इसमे हिन्दी की पुरानी और नई पुस्तके तथा पत्रिकाएँ भी हजारों की संख्या मे हैं।

इंजीनियरिंग-कालेज-लाइब्रेरी (पटना)— इसमे व्यावहारिक विषयों की करीव ढाई हजार पुस्तके है। शिल्प-कौशल-सम्बन्धी ग्रन्थों और सामयिक पत्र-पत्रिकाओ के खरीदने के लिये सरकार हर साल इसे एक हजार रुपये देती है। इसमे हिन्दी की एतद्विषयक पुस्तके अत्यल्प है।

मेडिकल-कालेज-लाइब्रेरी (पटना)—इसमें लगभग दो हजार ग्रन्थ हैं। सरकार इसे प्रति वर्ष ढाई हजार रुपये देती है। हिन्दी में चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के होते हुए भी इसमें उनकी पर्याप्त संख्या नहीं है।

टी० एन० जुबली-कालेज-लाइब्रेरी (भागलपुर)—इसमें बीस हजार से भी अधिक पुस्तकों का संग्रह है जिसमें अँगरेजी, संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकें सबसे अधिक हैं। रेफरेन्स-बुक के अलावा पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें भी काफी संख्या में हैं।

जी० बी० बी० कालेज-लाइब्रेरी (मुजफ्फरपुर)—इसमें संस्कृत और इतिहास की अँगरेजी पुस्तकें सबसे अधिक हैं। संस्कृत-कालेज का पुस्तकालय सम्मिलित कर लेने पर लगभग बीस हजार पुस्तकें यहाँ हैं। पत्र-पत्रिकाओं की रक्षा का भी प्रबन्ध है। हिन्दी का ग्रन्थ-संग्रह उपयोगी है।

बिहार-यंगमेंस-इंस्टीट्यूट-लाइब्रेरी (पटना)—इसमें साहित्य, दर्शन, धर्म आदि विषयों के ६००० ग्रन्थ हैं। स्वनामधन्य महात्मा श्रीरूपकलाजी के शिष्यों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का संग्रह इसी पुस्तकालय को दे दिया। इसलिये इसमें हिन्दी की भक्ति साहित्य-सम्बन्धी, दार्शनिक और धार्मिक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह और स्वर्गीय मिस्टर ई० ए० हॉर्न ने भी इसे कई बहुमूल्य ग्रन्थ-रत्न प्रदान किये हैं। नवयुवकों के लिये विशेष लाभदायक, विविध भाषाओं और विषयों के, बहुत-से अच्छे ग्रन्थ हैं। इसका अपना स्वतंत्र भवन भी है।

बिहार हितैषी पुस्तकालय—(पटना)—स्वर्गीय रायसाहब नारायण प्रसाद ने, सन् १८८३ ई० में, इसकी स्थापना की थी। पटना-सिटी में मंगल-तालाब पर, इसका भवन स्थित है, जिसमें ७००० ग्रन्थ हैं। सिटी-म्युनिसिपैलिटी से इसे हर साल तीन सौ रुपये ग्रन्थ-संग्रह के निमित्त और तीन सौ रुपये चलता-फिरता पुस्तकालय के खर्च के निमित्त मिलते हैं। इसमें कई विभाग हैं। यह बिहार के प्रगतिशील पुस्तकालयों में है। सजीव संस्था होने से भविष्य उज्ज्वल है।

महेश्वर-पब्लिक-लाइब्रेरी (पटना)— सन् १९२८ ई० में, सेठ पुरुषोत्तम प्रसाद ने, अपने पिता स्वर्गीय सेठ महेश्वरप्रसाद के स्मारक-रूप में, इसकी स्थापना की थी। इन दिनों यह सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में है। इसमें लगभग आठ हजार ग्रन्थ हैं। हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बहुसंख्यक हैं। व्यवस्था बड़ी अच्छी है। वाचनालय में हिन्दी के सामयिक पत्रों का बड़ा सुन्दर संग्रह है।

सुहृद्-परिषद् एवं हेमचन्द्र-लाइब्रेरी (पटना)—इसके प्राय सभी ग्रन्थ बँगला-भाषा में है। बँगला के बहुत-से बहुमूल्य ग्रन्थों के प्रथम सस्करण मौजूद है। ग्रन्थों की संख्या लगभग छ हजार है। कुछ हिन्दी-प्रेमी भी इससे लाभ उठाते हैं।

'मानुक'-संग्रहालय—पटना के सुप्रसिद्ध बारिस्टर मिस्टर पी० सी० मानुक ने चालीस वर्षो मे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का जो संग्रह किया है वह दर्शनीय और प्रशंसनीय है। इनके इस संग्रहालय मे मुगल-काल के बहुत-से बहुमूल्य चित्र मौजूद है। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने इस संग्रहालय को 'संसार के सुन्दर संग्रहालयों में एक' लिखा है। इसमे राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, दारा शिकोह, जेबुन्निसा आदि इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के भी प्राचीन चित्र है। ऐतिहासिक और कलापूर्ण चित्रों तथा अलभ्य ग्रंथों का यह अनुपम भांडार है।

'जालान'-संग्रहालय—पटना-सिटी के सुप्रसिद्ध कलाविद् रईस रायबहादुर राधाकृष्ण जालान के संग्रहालय मे भी दुर्लभ ग्रन्थों और मुगल-काल के चित्रों का अच्छा संग्रह है। यह कलामंदिर भी अपने ढंग का अकेला ही है।

बिहार-व्यवस्थापिका सभा की लाइब्रेरी (पटना)—इसकी स्थापना सन् १९१२ ई० में हुई। सिर्फ व्यवस्थापिका सभा (कौंसिल) के सदस्य ही इससे लाभ उठा सकते हैं। इसके ग्रन्थों की सख्या लगभग पन्द्रह हजार है। हिन्दी के लिये इसमे स्थान कहाँ!

श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया)—बिहार के पुस्तकालयो मे इसका प्रमुख स्थान है। इसके सस्थापक है गया के सुप्रतिष्ठित रईस बाबू सूर्यप्रसादजी महाजन। यह उनके पिता स्वर्गीय बाबू मन्नूलालजी के स्मारक के रूप मे है। इसके सजाने मे बाबूसाहब ने हजारो रुपये खर्च किये हैं। इसके विशाल भवन का उद्घाटन, महामना पडित मदनमोहनजी मालवीय के कर-कमलो से, सन् १९१४ ई० की २६ वीं मई को, हुआ था। इसे चलाने के लिये तीन हजार दो सौ रुपये की सालाना आमदनी दे दी गई है। इसमे संस्कृत और हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन ग्रंथो का अभिनन्दनीय सग्रह है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी, बँगला आदि भाषाओ की छपी हुई पुस्तको की संख्या १५२३६ है। हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ १७२४ हैं। संस्कृत के १३७३ ग्रन्थ हैं। इनके सिवा इसके सग्रह-विभाग मे पुराने चित्रो, मूर्त्तियों, शिलालेखो, ताम्रपत्रो और प्राचीन सिक्को की भरमार है।

लेख—पृष्ठ— ५१८

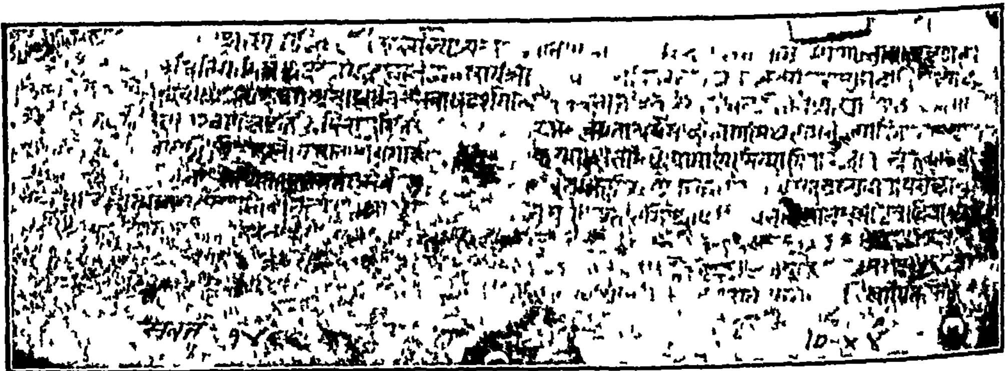
'किस्सा शाह रिजवाँ' नामक फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक का चित्र, जिसमें पहाड़ी जंगल के अन्दर एक घुड़सवार शिकारी, भाले से, हिरन का शिकार कर रहा है। यह सन् १०८९ हिजरी का अंकित किया हुआ चित्र है—२७१ वर्ष का पुराना। श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

'न्याय-सार-पंजिका' नामक प्राचीन संस्कृत-ग्रंथ का एक पृष्ठ, जो संवत् १५२४ वि० में भाद्र-शुक्ल १४ (शनिवार) को लिखा गया था—४७४ वर्ष पूर्व। यह भी श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) में सुरक्षित है।

بسم الله الرحمن الرحيم

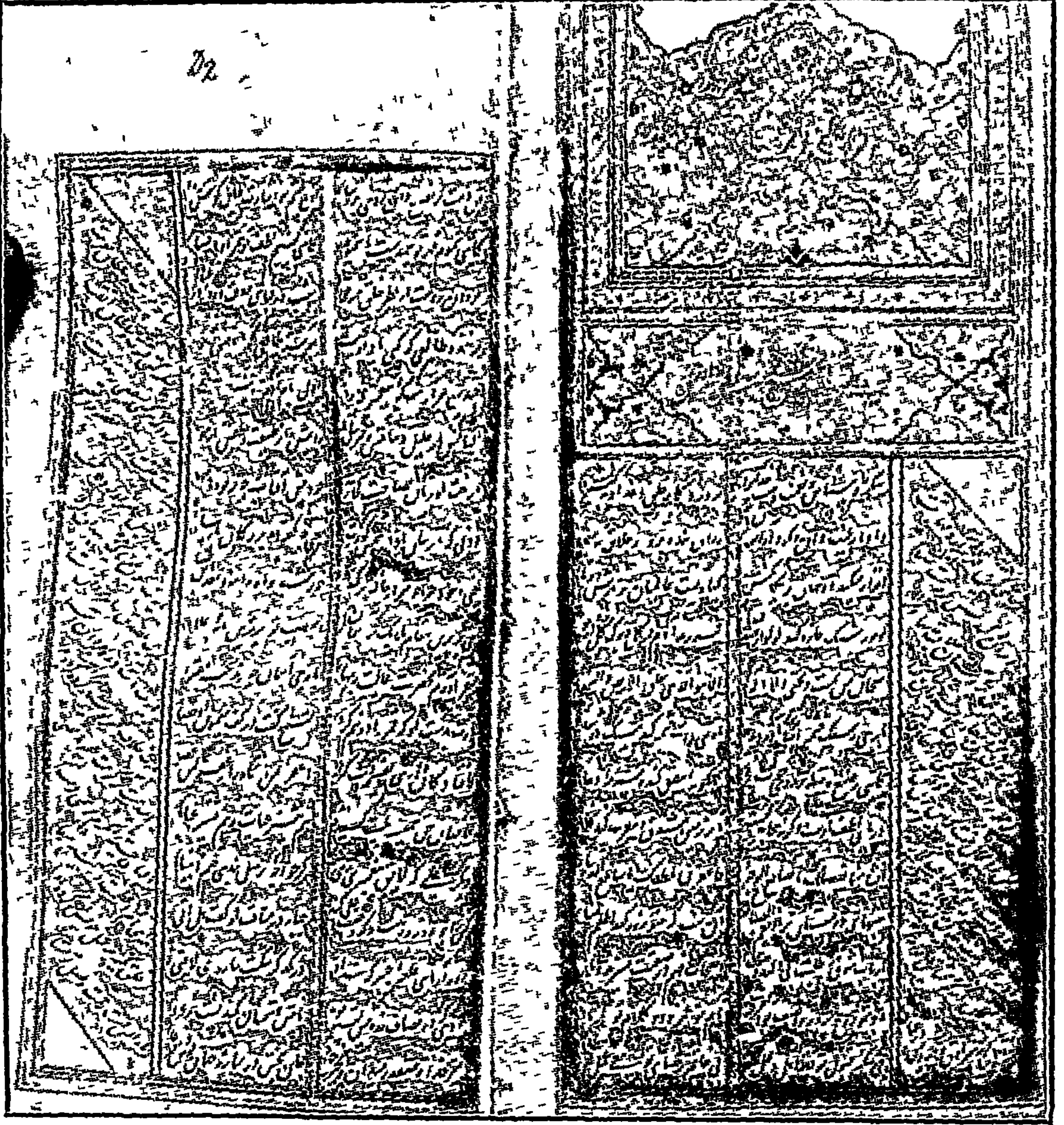
श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया), में सुरक्षित 'पज-सुरा-कुरान' का एक पृष्ठ
हाथ की सुन्दर लिखावट के साथ बेलबूटे और फूल-पत्तियों की सजावट देखकर दंग रह जाना पड़ता है

[लेख—पृष्ठ ५१८]



विक्रम-संवत् १४६६ की लिखी हुई एक पोथी का पृष्ठ, जो श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय के हस्तलिपि विभाग में सुरक्षित है

लेख—पृष्ठ ५१८



'कुल्लियात शेख सादी' नामक फारसी के प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ का एक हस्तलिखित पृष्ठ। इसमे भी लिखनेवाले के हाथ की सफाई काबिल-तारीफ है। बारीक नक्काशी बहुत सुन्दर है। यह पुस्तक सन् १०११ हिजरी मे लिखी गई थी—आज से ३४९ वर्ष पहले, इस समय १३६० हिजरी है। यह भी श्रीमन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) मे सुरक्षित है।

संगृहीत वस्तुओं में दो बड़े ही अमूल्य रत्न हैं—(१) भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति, जिसमें पाली-भाषा में लेख अंकित है और जो एक हजार वर्ष की पुरानी है। (२) पलामू की लड़ाई का दृश्य कपड़े पर चित्रित है; कपड़ा २८ फीट ५ इंच लम्बा है और १० फीट १ इंच चौड़ा। यह लड़ाई पलामू के राजा और औरंगजेब के सेनापति के बीच हुई थी—इसके संबंध में एक लेख बिहार-उड़ीसा-रिसर्च-सोसाइटी के मुखपत्र में छप चुका है।*

सुहृद्-संघ-पुस्तकालय (मुजफ्फरपुर)—यह अपने सुयोग्य मंत्री श्री नीतीश्वर प्रसाद सिंह के सतत और सजग प्रयत्न से, गत पाँच-छ बरसों से, प्रशंसनीय जन-सेवा कर रहा है। प्रतिवर्ष इसका वार्पिकोत्सव बड़े समारोह से होता है। बिहार की कांग्रेसी सरकार के समय में इसको आर्थिक सहायता भी मिली थी। अपनी जमीन में इसका छोटा-सा सुन्दर भवन भी बन गया है। इसके उद्योगी मंत्री के उत्साह से इसकी दिन-दिन उन्नति हो रही है और भविष्य इसका बड़ा उज्ज्वल है। बिहार के साहित्यिक आन्दोलनों में यह प्रमुख भाग लेता है। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यालय पहले मुजफ्फरपुर में ही था। उसी के पुस्तकालय की बची-खुची पुस्तकों से इसका श्रीगणेश हुआ। किन्तु अब यह साहित्यचर्चा का केन्द्र बन गया है। इसमें हिन्दी की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के संरक्षण और वितरण की बहुत ही अच्छी व्यवस्था है। इसने नवयुवकों में अच्छी जागृति पैदा की है।

राज-लाइब्रेरी (दरभंगा)—यह बिहार का एक विशाल पुस्तकालय है। इसमें अँगरेजी, संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के असंख्य ग्रन्थ हैं। बहुत-से अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं। मिथिला-नरेश सदा से विद्वान् होते आये हैं। आजतक जितने महाराज मिथिला की गद्दी पर बैठे हैं; सबने संस्कृत, हिन्दी और मैथिली के हस्तलिखित ग्रन्थों का दर्शनीय संग्रह किया है। इसका नवीन विशाल भवन अत्यन्त रमणीय उद्यान के मध्य स्थित है। श्रीमान् मिथिलेश की खास अनुमति बिना कोई भी व्यक्ति इससे लाभ नहीं उठा सकता! महामहोपाध्याय डॉक्टर सर गंगानाथ झा अपने जीवन के आरंभिक काल में इसी पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। अँगरेजी के मूल्यवान् प्रामाणिक ग्रन्थों का यहाँ अपूर्व संग्रह है। लाखों रुपये

* इस पुस्तकालय का सुविस्तृत सचित्र परिचय 'बालक' (वर्ष ११ अंक ४, अप्रैल, १९३७) में छप चुका है। —सम्पादक

की ग्रन्थराशि देख चकित रहना पड़ता है। यह सर्वथा दरभंगा-राज्य की महत्ता के अनुरूप ही है।

श्रीराजराजेश्वरी-पुस्तकालय (सूर्यपुरा, शाहाबाद)—इसके संरक्षक हैं सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, एम० ए०, जिनके स्वर्गीय पूज्य पिता राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह का यह स्मारक है। इसमें स्वर्गीय राजा साहब के समय से लेकर आजतक के संग्रहीत ग्रन्थों का समुदाय है। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू-फारसी, बँगला और अँगरेजी की बहुत-सी पुरानी और अलभ्य पुस्तकें इसमें भरी हैं। वर्त्तमान राजा साहब ने भी नवीन साहित्य से इसको सम्पन्न किया है, उन्हीं के अविरल साहित्यानुराग से इसकी अनुदिन वृद्धि हो रही है।

श्रीनगर-(पूर्णिया)-राज-लाइब्रेरी—यह पुस्तकालय अपने अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों के लिये प्रसिद्ध था; किन्तु सन् १९३२ ई० मे अचानक आग लगने से जलकर भस्म हो गया। इसके संस्थापक थे 'अभिनव भोज' स्वर्गीय राजा कमलानन्द सिंह, जो कवियों के आश्रयदाता के रूप में विख्यात थे। पुरस्कार के लोभ से बहुत-से कवि अपनी रचनाएँ इन्हें अर्पित करते थे, जिन्हें ये पुस्तकालय में रखते जाते थे। इनके सिवा अँगरेजी और हिन्दी की कई हजार मुद्रित पुस्तकें इसमें थीं। शुरू से सन् १९३२ तक की हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ इसमें सुरक्षित थीं। कहा जाता है कि इसमे संग्रहीत पुस्तकों का मूल्य कई लाख रुपये था। किन्तु अब श्रीनगर-राज्य के स्वामी श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंह का अपना खास पुस्तकालय भी दर्शनीय है, जिसमे चुनी हुई उत्तमोत्तम पुस्तकों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ, अखबारों की कतरनें, चिट्ठियाँ आदि बड़े ही सुन्दर ढंग से संगृहीत हैं।

लक्ष्मीश्वर-पब्लिक-लाइब्रेरी (दरभंगा)—इसमें हिन्दी और अँगरेजी के हजारों ग्रन्थ संगृहीत हैं। स्वर्गीय मिथिला-नरेश महाराज सर लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर की धर्मपत्नी महारानी लक्ष्मीवती साहबा ने इसकी स्थापना की है। इसका भवन एवं उद्यान अत्यन्त सुन्दर है। अँगरेजी और हिन्दी की सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की सुरक्षित फाइलों के लिये यह विशेष प्रसिद्ध है। इसकी आर्थिक अवस्था और सुव्यवस्था सर्वथा सन्तोषजनक है।

नागरी-प्रचारक पुस्तकालय (नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा)—यह बिहार का बड़ा पुराना और प्रसिद्ध पुस्तकालय है। इसमे अनेक प्राचीन अप्राप्य ग्रन्थ और हिन्दी की बहुमूल्य पत्र-पत्रिकाएँ संगृहीत हैं। पुरानी पत्र-पत्रिकाओं

को सुरक्षित फाइलें रिसर्च-स्कालरों के बड़े काम की हैं। इसकी स्थापना सन् १६०१ ई० में १२ अक्टूबर को हुई थी। संस्थापकों में पंडित सकलनारायण पांडेय, बाबू जयबहादुर, बाबू रामकृष्ण दास, बाबू देवकुमार जैन, बाबू जैनेन्द्र-किशोर जैन और रायसाहब हरसू प्रसाद सिंह के नाम स्मरणीय हैं। सभा के सर्व-प्रथम सभापति हुए वैद्यराज पंडित बालगोविन्द तिवारी। सन् १६१६ में सभा के उद्योग से ही कैथी लिपि की जगह बिहार की कचहरियों और सरकारी दफ्तरों में देवनागरी लिपि का प्रचार हुआ। इसमें पुस्तकों की संख्या ७००० है। हस्तलिखित संस्कृत-हिन्दी-पुस्तकों की संख्या २०० से ज्यादा है। शाहाबाद-जिला-बोर्ड से ४८०) और म्युनिसिपैलिटी से ६०) सालाना मिलता है। उपर्युक्त बाबू रामकृष्ण दास ने सभा को जो मकान दान दिया था, उससे २६४) वार्षिक भाड़ा आता है। बिहार-सरकार ने सभा को दो बीघे जमीन और ३०००) रुपये दिये थे। आरा के धनी-मानी रईस और उपर्युक्त बाबू जयबहादुर के अनुज बाबू अमीरचन्दजी ने ५०००) का दान सभा को दिया था। इन रुपयों से पुस्तकालय और वाचनालय के लिये भव्य भवन बन चुका है। भवन की स्कीम ५००००) की है। भवन अभी अधूरा ही है। सभा ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। जैसे—मैथिलकोकिल विद्यापति, मेगास्थनीज की भारत-यात्रा, सिक्खगुरुओं की जीवनी, नवरस, हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकाश, गत पचास वर्षों का हिन्दी का इतिहास इत्यादि। महाकवि 'हरिऔध' को अभिनन्दन-ग्रंथ अर्पित करके सभा ने सम्मानित किया था। अगले साल देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी को भी एक सर्वाङ्गसुन्दर अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करेगी। सभा के पुस्तकालय से अनुसन्धानकर्त्ता साहित्य-सेवियों को लाभ उठाना चाहिये।

बिहार-प्रादेशिक-हिन्दी-साहित्य - सम्मेलन - पुस्तकालय (पटना)—यह पटना के कदमकुँआ मुहल्ले में 'सम्मेलन' के विशाल भवन में ही है। इसमें बहुत-से प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ और अनेक नई-पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें हैं। हस्तलिखित पुस्तकों और प्राचीन चित्रों का भी संग्रह है। कितनी ही अप्राप्य पुस्तकें भी इसमें हैं। संग्रहालय की सामग्री का संकलन हो रहा है।

विद्यापति-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह 'पुस्तक-भंडार' का ग्रन्थागार है। सन् १६२६ ई० में श्रीरामलोचनशरणजी बिहारी ने इसका नाम-करण और संस्थापन किया था। इसमें लगभग दस हजार पुस्तकों का संग्रह है। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या इससे भी अधिक है। अँगरेजी और हिन्दी के अनेक बहु-

मूल्य ग्रंथ इसकी शोभा वढाते हैं। इसमें विहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के भी शिक्षा-विभाग की विविध विषयों की हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों का पर्याप्त संग्रह है। हिन्दी की अनेक दुष्प्राप्य पुस्तकें इसमें सगृहीत हैं। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं के लिये विहार के सभी पुस्तकालयों से यह धनी है। अभी यह 'पुस्तक-भंडार' के भवन मे ही स्थित है, किन्तु इसके स्वतंत्र भवन का निर्माण निकट भविष्य में ही होनेवाला है। तव यह साहित्यिक अनुसन्धान करनेवालों को विशेष आकृष्ट करेगा।

ओरियंटल लाइब्रेरी (जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा)—इसके दो नाम हैं—अँगरेजी मे 'दि सेंट्रल जैन ओरिएंटल लाइब्रेरी' और हिन्दी मे 'श्रीजैन-सिद्धान्त-भवन'। सन् १९११ ई० में १ जून को इसकी स्थापना हुई थी। इसके संस्थापक थे आरा-निवासी स्वनामधन्य रईस स्वर्गीय दानवीर श्रीदेवकुमारजी जैन। वे वड़े धर्मनिष्ठ और विद्याप्रेमी थे। काशी मे जैन-महाविद्यालय स्थापित करने के लिये प्रभुघाट मे स्थित अपना विशाल भवन उन्होंने सहर्ष दे दिया था, जिसमे आज भी वह सस्था चल रही है। इस जैन-सिद्धान्त-भवन के सचालन के लिये भी उन्होंने अपनी जमीन्दारी से डेढ़ हजार रुपये वार्षिक आय का एक अंश अलग निकाल दिया है। उनके सुपुत्र श्रीनिर्मलकुमारजी जैन ने सन् १९२४ ई० मे लगभग तीस हजार रुपये व्यय करके इसके लिये एक सुन्दर भवन वनवा दिया। इसके पहले यह एक विशाल जैनमन्दिर मे था। वर्त्तमान नवीन भवन दोतल्ला है। इसके प्रवेशद्वार के ऊपर सरस्वती की एक दर्शनीय मूर्त्ति वनी हुई है। वाचनालय मे पाँच सौ पाठकों के लिये वैठने का प्रशस्त स्थान है और उसी मे एक ओर उपर्युक्त सस्थापक महोदय का तैलचित्र (३ फुट लम्वा, २७ इंच चौडा) लगा हुआ है। तीस वडी-वड़ी आलमारियो मे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगु, बँगला, कन्नड, अँगरेजी आदि प्राच्य एवं पाश्चात्य भाषाओं के उत्तमोत्तम ग्रथ सुरक्षित हैं। इसके मत्री स्वयं श्रीमान् वावू निर्मलकुमारजी जैन हैं और पुस्तकालयाध्यक्ष है सस्कृत, प्राकृत, कन्नड, मराठी आदि भाषाओं के ज्ञाता तथा जैनपुरातत्त्व के विशेषज्ञ श्रीमान् पडित के० भुजवली शास्त्री विद्याभूषण, ये कर्णाटक के निवासी हैं। इसमें तालपत्र पर लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थो की सख्या १८७९ है। इनके पत्र चार अगुल चौड़े और डेढ़-दो वालिश्त लम्वे हैं, कोई-कोई डेढ़ हाथ तक लम्वे। पुराने कागज पर हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या ४४९९ है। इनमें एक जैन-रामायण दर्शनीय वस्तु है—पतला चमकदार कागज,

पृष्ठ-पृष्ठ में प्रसंगानुकूल बहुरंगे चित्र। 'सीता की अग्निपरीक्षा'-सम्बन्धी इसके दो चित्र सन् १९१२—१३ में 'सरस्वती' (प्रयाग) में प्रकाशित हुए थे। मुद्रित ग्रंथों की संख्या ७५२५ है। सन् १९४० के जून तक कुल ग्रन्थसंख्या १२९०३ है। एक छोटे-से कार्ड पर लिखा हुआ 'भक्तामरस्तोत्र' दर्शनीय पदार्थ है—वसंत-तिलका-छंद में ४८ पद्य हैं, जो आसानी से पढ़े जा सकते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' भी एक कार्ड पर ही लिखा हुआ है जिसमें ३५७ सूत्र हैं। चमेली के पत्ते, सरसों, तिल और चावल के दाने पर लिखी सूक्ष्म लिपियाँ विशेष दर्शनीय हैं। सवत् ११८९ के लिखे हुए 'आवश्यक सूत्र' का केवल एक ही (अन्तिम) पृष्ठ (तालपत्र) है, जो अत्यंत प्राचीन होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। जैन-पुराणों के अनुसार, सैकड़ों रुपये व्यय करके, बहुत-से बड़े-बड़े रंगीन चित्र तैयार कराये गये हैं जो देखने ही योग्य हैं। यथा—सोलह स्वप्न, समवशरण, पावापुरी, महाराज चन्द्रगुप्त, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, संसारवृक्ष आदि। इनके सिवा सिक्के, नोट, स्टाम्प आदि का संग्रह भी अवलोकनीय है। भारत के सुप्रसिद्ध पुस्तकालयों की पुस्तक-सूचियाँ और जैनतीर्थों की फोटो-तसवीरें भी संगृहीत हैं। सर्वथा दर्शनीय संग्रहालय है।

मिथिला-कालेज-लाइब्रेरी (दरभंगा)—इसमें पाँच हजार पुस्तकें हैं। हिन्दी की पुस्तकें लगभग एक हजार हैं। बिहार-महिला-विद्यापीठ (मझौलिया, दरभंगा) के संस्थापक श्रीरामनन्दन मिश्र ने मझौलिया के मगन-आश्रम का पुस्तकालय इसी में सम्मिलित कर दिया है। और भी कई सज्जनो ने पुस्तकें दी हैं। दिन-दिन संग्रह बढ़ता ही जाता है।

पटना-म्यूजियम—यह बिहार का दर्शनीय सरकारी संग्रहालय है। इसे लोग अजायब-घर भी कहते हैं। पटना-गया-रोड पर मुगल-राजपूत-शैली में बनी हुई इसकी खूबसूरत इमारत का उद्घाटन सन् १९२९ ई० में हुआ था। कहा जाता है कि ब्रिटिश भारत मे दूसरे किसी म्यूजियम की इमारत इतनी सुन्दर नहीं बनी है। इसकी इमारत बनने से पहले इसकी चीजे पटना-हाइकोर्ट की दो-चार कोठरियो मे कई साल रक्खी रहीं। अब सारी नई इमारत सुसज्जित है। इसमें मौर्यकालीन कला की सुन्दर कृतियाँ, मौर्यकाल से भी पहले की वस्तुएँ, गुप्तकालीन अङ्कित स्तंभखंड, मौर्यकालीन रथों के पहिये, मध्य-युग की मूर्त्तियाँ आदि संगृहीत है। राजपूत, मुगल और पठान राजा-महाराजाओ और बादशाहो के सिक्के

वस्तुतः दर्शनीय हैं। बड़े-बड़े हाकिमों और अँगरेज अफसरों की हस्तलिपियाँ, कुछ चीनी और जापानी तथा भारतीय चित्र, अन्यान्य रंग-विरंगी वस्तुएँ भी दर्शनीय हैं। मौर्य-सम्राटों के छत्र (छाता) के टुकड़े और उनके राजप्रासाद के खंभों में लगी हुई सोने की अँगूठी लत्तियों की लच्छियाँ भी संगृहीत हैं। वास्तव मे यह म्यूजियम विहार का गौरव है। रिसर्च-स्कॉलरों के लिये इसमें काफी मसाला है।

श्रीवागीश्वरी-पुस्तकालय—यह 'उनवाँस' ग्राम में है। डाकघर—इटाढ़ी, रेलवे-स्टेशन—वक्सर, जिला—शाहाबाद। सन् १९२१ ई० में श्रीरामनवमी की शुभ तिथि को, श्रीशिवपूजनसहाय ने, अपने पूज्य स्वर्गीय पिता मुंशी वागीश्वरी-दयाल की स्मृति मे, इसकी स्थापना की थी। इसमे तीन हजार पुस्तकें, दो हजार मासिक पत्र-पत्रिकाएँ, पाँच हजार साहित्यिक चिट्ठियाँ और दो सौ चुने हुए चित्र संगृहीत हैं। संस्थाओं के कार्य-विवरण, सभाओं के भाषण, पुस्तकों के सूचीपत्र, डाक के देशी-विदेशी टिकट, पत्र-पत्रिकाओं के आवरण (रैपर) आदि सब मिलकर एक हजार हैं। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भी फाइलें हैं। कतरनों के बावन बंडल हैं। अर्थाभाव से आजतक स्वतंत्र भवन नहीं बना है। स्थानाभाव के कारण बहुतेरी चीजें विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) को श्रीवागीश्वरी-स्मारक-संग्रह के रूप मे दे दी गई हैं।

शर्मा-लाइब्रेरी (राजेन्द्र-कालेज), छपरा—यह स्वर्गीय महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के नाम पर उन्हीं की स्मृति मे स्थापित है। सन् १९३८ मे कालेज के साथ ही इसकी स्थापना हुई। इसमें अँगरेजी, संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की विविध विषयक आठ हजार पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ हैं। केवल हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ दो हजार हैं। संग्रह का सतत प्रयत्न होता रहता है।

श्रीसनातनधर्म-हिन्दी-पुस्तकालय (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर)—यह बड़ा पुराना और सुप्रतिष्ठित पुस्तकालय है। इसका स्वतंत्र पक्का भवन बड़ा सुन्दर और प्रशस्त है। इसके मंत्री डाक्टर रामाशीष ठाकुर बड़े उत्साही और उद्योगी हैं। इसमें कई हजार हिन्दी-पुस्तकें हैं। वाचनालय मे पत्र-पत्रिकाएँ पर्याप्त हैं। प्रति वर्ष उत्सव और जयन्तियाँ नियमित रूप से मनाई जाती हैं। यहाँ एक सब-डिवीजनल लाइब्रेरी-एसोसिएशन भी कायम हुआ है, जो पुस्तकालयों की उन्नति और पुस्तकों के संग्रह में विशेष दत्तचित है।

श्रीकमला-स्मारक-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह स्वर्गीय श्रीमती कमला नेहरू की स्मृति में स्थापित है। नवयुवकों के उत्साह से अच्छा काम हो रहा है। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध है। स्वतंत्र भवन-निर्माण का प्रयत्न हो रहा है। बड़े-बड़े नेता और साहित्यसेवी इसे देखकर सन्तोष प्रकट कर चुके हैं। उन्नतिशील संस्था है।

श्रीसरस्वती-पुस्तकालय (लहेरियासराय)—यह श्रीशैलेन्द्रमोहन झा नामक दशवर्षीय बालक के सगुत्साह का फल है। सन् १९३९ ई० के सितम्बर में प्रसिद्ध कांग्रेस-कर्मी श्रीनारायणदास ने इसका उद्घाटन किया। पुस्तकों की संख्या सात सौ के लगभग है। इसकी ओर से समय-समय पर साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक महोत्सव और शोक-सभाएँ भी की जाती हैं। उन्नतिशील है।

श्रीगान्धी-आश्रम-पुस्तकालय (मलखाचक, दिघवारा, सारन)—यह राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ-काल से ही चल रहा है। एक सुन्दर दोतल्ला भवन है। अँगरेजी और हिन्दी की राजनीतिक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें सुरक्षित हैं। कई बार राजनीतिक आन्दोलन में यह बहुत-कुछ खो चुका है। इसमें कभी पुलिस का अड्डा था। इसके संस्थापक श्रीरामविनोद सिंह प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता हैं। उनके अनुज स्वनामधन्य विद्वान् हिन्दी-लेखक डाक्टर सत्यनारायण, पी-एच० डी०, इसके वर्त्तमान संरक्षक हैं और वही इसका सदुपयोग करते हैं। इन्होंने इसमें बहुत-सी नई पुस्तकों का भी संग्रह करना शुरू किया है, जिससे यह 'अप-टु-डेट' बनता जा रहा है।

श्रीनन्दन-स्मारक-पुस्तकालय (छपरा)—जिलाबोर्ड के भूतपूर्व (स्व०) चेयरमैन की स्मृति मे स्थापित है। स्वतंत्र नया भवन वन गया है। हथुआ-नरेश ने पॉच हजार रुपये की सहायता दी है और रेडियो का एक सेट भी। भवन में बिजली भी लग गई है। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के रखने और बॉटने का बढिया इन्तजाम है।

सरस्वती-पुस्तकालय (पूर्णिया सिटी)—यह बारह बरसों से जनता की सेवा कर रहा है। एक हजार से अधिक पुस्तकें और पत्रिकाएँ हैं। एक सेट रेडियो भी है। उन्नतिपरायण है।

भगवान-पुस्तकालय (भागलपुर)—यह पुरानी संस्था है। निजी पक्का भवन है। इसकी ओर से पहले तुलसीकृत रामायण की परीक्षाएँ प्रचलित थीं। अब केवल वाचनालय का सचालन होता है। पुरानी चीजों का कुछ सग्रह अब भी बचा है। श्रीभगवान् चौबे का स्मारक है।

वैदिक पुस्तकालय (पुनपुन, पटना)—सन् १६३६ से स्थापित है। इसका नया भवन बन रहा है। वैदिक साहित्य का संग्रह और प्रचार इसका मुख्य लक्ष्य है। आर्यसमाजी सज्जनों की सहानुभूति और सहायता से उन्नति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। किसी खास विषय की पुस्तकों का संग्रह और प्रचार करनेवाले पुस्तकालयों का भी कम महत्त्व नहीं है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक आदि विषयों के ग्रथसंग्रह का स्वतत्र लक्ष्य सर्वथा स्तुत्य है। पर ऐसे पुस्तकालय बहुत ही कम देख पडते हैं।

बिहार-विद्यापीठ-पुस्तकालय (सदाकत-आश्रम, दीघा, पटना)—इसमें से बहुत-सी चीजें समय-समय पर पुलिस उठा ले गई जिससे अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ लुप्त हो गईं। फिर भी इसमे पिछले बीस-इक्कीस बरसों के राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले साहित्य का बडा सुन्दर संग्रह है। राजनीतिक और आर्थिक विषयों की पुस्तकें ही अधिक हैं। स्वदेश-दशा दर्शन के साधनों का संग्रह विशेष रूप से है। राष्ट्र की जागृति के इतिहास मे काम देनेवाली कई चीजे हैं।

श्री अन्नपूर्णा-पुस्तकालय (हिलसा, पटना)—विक्रम-संवत् १६६२ में श्रीवसन्तपंचमी (मंगलवार) को इसकी स्थापना हुई। पहले इसका नाम सरस्वती-पुस्तकालय था। सन् १६३८ ई० में पहली दिसम्बर को स्थानीय जमींदार और रईस श्रीराम बाबू की धर्मपत्नी श्रीमती अन्नपूर्णा देवी के नाम पर इसका

नया नामकरण हुआ। इसमें लगभग दो हजार पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ हैं। एक भ्रमणशील विभाग भी है जिसके द्वारा आसपास के करीब तीस गाँवो में पुस्तकें पहुँचाई जाती हैं। ज्ञान-विस्तार का सुकार्य उत्साहपूर्वक होता है। अपनी जमीन में मकान है।

श्रीराजेन्द्र-पुस्तकालय—यह पटना जिले के 'सेवदह' ग्राम में, श्रीराजेन्द्र-साहित्य-महाविद्यालय के संरक्षण में, है। इसका डाकघर 'बिरजूमिलकी' है। सन् १९३७ ई० में २५ जुलाई को देशपूज्य भारत-रत्न डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के नाम पर महाविद्यालय खुला और उसी के साथ पुस्तकालय भी। इसके दो विभाग हैं—एक है गाँवों में शिक्षा-प्रचार के निमित्त, दूसरा है केवल विद्यालय के छात्रो के लिये। एक छोटा-सा भवन भी बन गया है; पर कर्मक्षेत्र विस्तृत होने से स्थान-संकोच बहुत खलता है।

श्रीशिवबालक-पुस्तकालय—यह 'बम्हवार' ग्राम (डा० दिलीपपुर, जि० शाहाबाद) में है। सन् १९१६ ई० में श्रीकृष्णजन्माष्टमी को मुन्शी कालिका प्रसाद ने अपने पूज्य स्वर्गीय पिता मुन्शी शिवबालकलाल की स्मृति में स्थापित किया था। इसमें हिन्दी और संस्कृत की डेढ़ हजार पुस्तके तथा पाँच सौ पत्र-पत्रिकाएँ हैं। डेढ़ सौ सुन्दर चित्र और मानचित्र तथा व्यंग्यचित्र हैं। पंचांग, जंत्री और सूचीपत्र भी डेढ़ सौ हैं। मुन्शी कालिकाप्रसाद ने अयोध्या-नरेश के दुष्प्राप्य 'रसकुसुमाकर' ग्रंथ की नकल अपने हाथ से पूरी कर ली थी, वह भी है। काशी-नरेश के छन्दोबद्ध वृहत् महाभारत से उन्होंने सारी भगवद्गीता भी उतार ली थी, वह भी सुरक्षित है। उन्होने प्राचीन व्रजभाषा-साहित्य का अच्छा संग्रह किया था। अब उनके दिवंगत होने पर उनके सुपुत्र श्रीविन्ध्येश्वरी-सिद्धेश्वरीप्रसाद ने उनके स्मारक के रूप में आठ सौ पुरानी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) को अर्पित कर दी हैं।

बाल-हिन्दी-पुस्तकालय (आरा)—यह हिन्दी-प्रेमी नवयुवकों के उत्साह से, सन् १९११ ई० के लगभग, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के कर-कमलो द्वारा, स्थापित हुआ था। इसके कार्यकर्त्ता राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित हुए जिसके परिणाम-स्वरूप यह कई बार जब्त हुआ और महीनो बन्द रहा। इसमें बहुत-सी पुरानी चीजे थी, पर अस्तव्यस्त हो गईं। इसका स्वतंत्र भवन बन गया है, पर अधूरा है। इसके कार्यकर्त्ता देश-सेवा के विभिन्न कार्यक्षेत्रो में बिखर गये हैं। फिर भी सजीव संस्था है।

जिला-हाइस्कूलों के पुस्तकालय—सरकारी जिला-स्कूलों के पुस्तकालय भी कम महत्त्व के नहीं हैं। उनमें अँगरेजी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बँगला आदि भाषाओं की बहुत-सी ऐसी पुस्तकें हैं जो अन्यत्र कहीं कठिनता से मिल सकेंगी। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, छपरा, आरा, गया, राँची, हजारीबाग आदि स्थानों के जिला-स्कूल में हिन्दी की ऐसी अनेक पुस्तकों का पता लगा है जो किसी हिन्दी-पुस्तकालय में भी नहीं हैं। सरकारी स्कूलों के सिवा अन्य हाइस्कूल भी कितने ऐसे पुराने हैं कि उनके पुस्तकालय में बहुत-सी ला-पता किताबें पड़ी हुई हैं; सिर्फ खोज करनेवालों की कमी है। इसी प्रकार कहीं-कहीं मिड्ल स्कूलों और प्राइमरी स्कूलों के भी पुस्तकालय बहुत अच्छी अवस्था में हैं।

राजाओं के पुस्तकालय—दरभंगा-राज्य के प्रधान पुस्तकालय का वर्णन पहले किया जा चुका है। श्रीनगर और सूर्यपुरा के राज-पुस्तकालयों की भी चर्चा हो चुकी है। किन्तु बेतिया, हथुआ, टिकारी, अमावाँ, डुमराँव, रामनगर, रामगढ़, शिवहर, गढ़-बनैली (चम्पानगर) आदि प्रसिद्ध रियासतों में जो राजकीय पुस्तकालय हैं उनमें अनेक अलभ्य एवं मूल्यवान् ग्रंथ विद्यमान हैं। कितने ही हस्त लिखित ग्रंथ भी हैं, जिनमें उन दरबारों के आश्रित कवियों की रचनाएँ मिल सकती हैं। बेतिया, हथुआ, टिकारी, डुमराँव और बनैली के राज-पुस्तकालयों में ऐसी सामग्री के बहुतायत से मिलने की संभावना है। हर्ष का विषय है कि बेतिया-राज के देशभक्त मैनेजर श्रीविपिनविहारी वर्मा बारिस्टर के उद्योग से अब राजपुस्तकालय ने नवीन कलेवर धारण कर सार्वजनिक रूप ग्रहण कर लिया है। यदि सभी रियासतों के अधीश्वर अपनी प्रजा के हित के लिये ऐसी ही उदारता दिखावें तो हरएक राजधानी में ज्ञान की ज्योति जगमगा उठे।

घरेलू पुस्तकालय—बहुत-से रईस, वकील, साहित्यसेवी आदि अपने घरों में निजी पुस्तकालय रक्खे हुए हैं। ऐसे पुस्तकालयों की संख्या सार्वजनिक पुस्तकालयों से कदाचित् कम न होगी। ऐसे घरू पुस्तकालयों के कुछ स्वामियों ने अपने ग्रंथागार का कोई एक नाम भी रख लिया है। सुनने में आता है कि कुरसेला (पूर्णिया) के सुप्रतिष्ठित जमीन्दार और हिन्दी-प्रेमी रईस रायबहादुर रघुवंशनारायणसिंह के पास हिन्दी-पुस्तकों का अत्यन्त सुन्दर और सुसम्पन्न संग्रह है। कृष्णगढ़ (सुलतानगंज, भागलपुर) के कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर का गंगा-पुस्तकालय भी उत्तम ग्रंथरत्नों से सुसज्जित है। मुजफ्फरपुर के साहित्यानुरागी रईस श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' का वैशाली-पुस्तकालय तो अपने ढँग का अकेला है।

वह सचमुच शुद्ध साहित्यिक संग्रहालय है। उसमें संगृहीत वस्तुओं की रक्षा बड़ी लगन और सुव्यवस्था के साथ की जाती है। कहते हैं कि 'भुवन' जी के पितृव्य के पुस्तकालय (आनन्दपुर–देवढ़ी, दरभंगा) में प्राचीन ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह है। मुँगेर नगर के कुछ धनी रईसों को पुस्तक-संग्रह का बड़ा शौक है और उनके घरेलू पुस्तकालय वास्तव में दर्शनीय हैं। बरारी (भागलपुर) का समृद्धिशाली ठाकुर-परिवार भी विद्याव्यसनी और कलाप्रेमी होने के कारण ग्रन्थसंग्रह का विशेष अनुरागी है। दिलीपपुर (शाहाबाद) के रईस महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकरप्रसादसिंह के पास बड़ा पुराना ग्रन्थभांडार है जिसे वे अपने पूर्वजों की संचित की हुई सर्वोत्तम निधि—सच्ची पैतृक सम्पत्ति—मानते हैं। उस भांडार से कई पुराने ग्रंथ और चित्र उन्होंने बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में भी दिये हैं। मिथिला-कालेज को पचास हजार रुपये दान देनेवाले दानवीर बाबू चन्द्रधारी सिंहजी का निजी पुस्तक-संग्रहालय भी बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि उसमें हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थो का द्रष्टव्य संग्रह है। इसी प्रकार कितने ही वकील-मुख्तार अपनी कानूनी किताबों के साथ कुछ मनोरंजक साहित्य का भी संग्रह रखते हैं। बिहार में ऐसा कोई नगर नहीं जहाँ दो-चार अच्छे हिन्दी-प्रेमी वकील या कानूनदाँ न हों। उनके घरेलू पुस्तकालय में सिर्फ चुनी-चुनाई हिन्दी-पुस्तकें ही रहती हैं। गीताप्रेस (गोरखपुर) ने कितने ही घरों में धार्मिक पुस्तकालय खुलवा दिये हैं। साहित्य-सेवियों के घर में पुस्तकालय होना तो स्वाभाविक है। आरा-निवासी बाबू व्रजनन्दनसहाय का निजी हिन्दी-पुस्तकालय अनुसन्धानपरायण साहित्यिकों के लिये एक आकर्षण है। उसमें कितनी ही ऐसी पुरानी चीजें हैं जो अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ हैं। महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा के घर में जो सरस्वती-पुस्तकालय है उसमें संस्कृत-ग्रंथों का अभिनन्दनीय संग्रह है। भलुआही-(भागलपुर)-निवासी श्रीअच्युतानन्द दत्त (सहकारी 'बालक'-सम्पादक) द्वारा सन् १९१९ ई० में स्थापित घरेलू पुस्तकालय (इन्दिरा-पुस्तकालय) में भी संस्कृत, बँगला और हिन्दी के प्राचीन ग्रंथों का बड़ा ही अनमोल संग्रह है। ऐसे-ऐसे छिपे संग्रहालयों का सदुपयोग होने से ही साहित्य की श्रीवृद्धि होगी।

पुस्तकालय-आन्दोलन—बिहार में पुस्तकालयों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है। गत पाँच बरसो में कई अच्छे पुस्तकालय खुल गये हैं। साप्ताहिक

'नवशक्ति' ने पुस्तकालय-आन्दोलन को प्रगतिशील बनाने के लिये अपना स्वतंत्र एक पृष्ठ नियमित रूप से सुरक्षित कर दिया। यदि उसकी हर साल की फाइल सिलसिले से देखी जाय तो बिहार के पुस्तकालयों का इतिहास स्पष्ट दृष्टिगोचर हो सकता है। पुस्तकालयों के प्रति जनता मे अनुराग, विश्वास और उत्साह उत्पन्न करने मे 'नवशक्ति' सतत सचेष्ट है और इस दिशा मे उसकी सेवाएँ सचमुच अभिनन्दनीय हैं। पुस्तकालय-सम्बन्धी जागृति का अधिकांश श्रेय उसी को है।

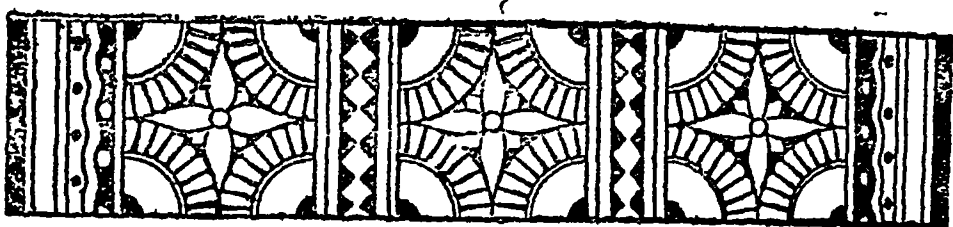
सरकारी सहायता का प्रोत्साहन—कांग्रेसी मन्त्रिमंडल के शासन-काल में निरक्षरता-निवारण और ग्रामोद्धार के जो आन्दोलन चालू हुए उनसे भी बिहार मे पुस्तकालयो को बडी प्रगति मिली। कितने ही ग्रामीण और नागरिक पुस्तकालयों को कांग्रेसी सरकार ने आर्थिक सहायता देकर सजीव एवं सुदृढ़ बनाया। 'पुस्तक-भंडार' द्वारा प्रकाशित विविध लोकोपयोगी विषयो की एक-एक पैसेवाली एक सौ पुस्तिकाओं के वितरण से सरकार ने कई पुस्तकालयो को प्रोत्साहन प्रदान किया। देखादेखी जिला-बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों ने भी पुस्तकालयों की यथाशक्ति सहायता करने मे दिलचस्पी दिखाई। इससे कितने ही पुस्तकालयों को प्रेरणा मिली और बहुतों का अस्तित्व स्थिर हो गया।

जिला-पुस्तकालय-संघ—इस नाम की कुछ संस्थाएँ प्रान्त के कुछ जिलो में कायम हो गई हैं। जैसे—पटना, दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि। इन संघों द्वारा जिला-भर के पुस्तकालयो के संगठन और संचालन मे नवजीवन का संचार होने की आशा और संभावना है। जिला-साहित्य-सम्मेलन, थाना-साहित्य-सम्मेलन, साहित्य-परिषद्, साहित्य-संघ आदि संस्थाएँ भी कई स्थानो मे स्थापित होकर अपनी सजीवता के लक्षण प्रदर्शित कर रही हैं। इनके उद्योग से नगरों और ग्रामों की जनता मे साहित्यिक अभिरुचि का विकास क्रमशः हो रहा है तथा पुस्तकालयों और वाचनालयों के रूप मे उसके प्रमाण भी मिल रहे हैं।

अन्यान्य उल्लेखनीय पुस्तकालय—[१] पटना नगर और जिले के कुछ पुस्तकालय—सेक्रेटरिएट लाइब्रेरी; थियोसाफिकल लाइब्रेरी, बाँकीपुर, ऐडवोकेट्स लाइब्रेरी, हाइकोर्ट, इंडियन इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी, दानापुर, आर्यसमाज पुस्तकालय, दानापुर; युवक-संघ-पुस्तकालय, रवाइच, सरस्वती-पुस्तकालय, अकौना, पुनपुन; युवक-हितैषी पुस्तकालय, बाहरी-धवलपुरा; वेणी-पुस्तकालय, तारणपुर, पुनपुन; श्रीहिन्दी-पुस्तकालय, सिलाव; बिहार-हिन्दी-पुस्तकालय, बिहारशरीफ, नागरी-प्रचारक-पुस्तकालय, बाढ़। [२] गया नगर और जिले में—पब्लिक

लाइब्रेरी; अरवल का हिन्दी-पुस्तकालय; औरंगाबाद का सार्वजनिक पुस्तकालय; नवयुवक-पुस्तकालय, दरियापुर, वारसलीगंज; दाऊदनगर का हिन्दी-पुस्तकालय। [३] शाहाबाद जिले में—नवजीवन-पुस्तकालय, भभुआ; सरस्वती-पुस्तकालय, बक्सर; सरस्वती-पुस्तकालय, डुमराँव; हिन्दी-पुस्तकालय, ससराम; सनातनधर्म-वर्द्धक पुस्तकालय, अन्धारी; श्रीउमेद-पुस्तकालय, सेमरिया; हिन्दी-पुस्तकालय, गजियापुर; हरप्रसाद दास जैन पब्लिक लाइब्रेरी, आरा। [४] मुजफ्फरपुर नगर और मुफस्सिल में—टाउन-हॉल-लाइब्रेरी; आर्यकुमार-पुस्तकालय, अजीजपुर; सेवक-सदन-पुस्तकालय, करनौती; कुशेश्वर-पुस्तकालय, घघरी। [५] चम्पारन जिले में—प्रकाश-पुस्तकालय, सोवैया, केसरिया; राजेन्द्र-पुस्तकालय, छतौनी और भितहा; श्रीगंगाधर-पुस्तकालय, धनकुटवा; नवयुवक-पुस्तकालय, मोतीहारी; प्रताप-पुस्तकालय, बेतिया; हिन्दी-पुस्तकालय, मेहसी; हिन्दी-भवन, नरकटियागंज। [६] दरभंगा जिले में—मॉडर्न लाइब्रेरी, लहेरियासराय; नवयुवक-मित्र पुस्तकालय, सिंघिया; सुभाष-भारती-भवन-पुस्तकालय, रामपुर; हितैषी-पुस्तकालय, हसनपुर; इंडियन क्लब लाइब्रेरी, समस्तीपुर; श्रीमुक्तेश्वर-पुस्तकालय, बेहटा, बेनीपट्टी। [७] भागलपुर नगर और जिले में—गणेश-पुस्तकालय, खोसला लाइब्रेरी; श्रीराम-पुस्तकालय, गोपालपुर; जगन्नाथ-पुस्तकालय, अरसी; मारवाड़ी-पुस्तकालय, कहलगाँव; हिन्दी-पुस्तकालय, सुलतानगंज। [८] मुंगेर जिले में—झाझा रेलवे पुस्तकालय; चित्तरंजन-पुस्तकालय, लक्खीसराय, इंडियन रेलवे इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी, जमालपुर; आनन्द-पुस्तकालय, बीहट; राष्ट्रीय पुस्तकालय, नौगाई; हिन्दी-पुस्तकालय, खड़गपुर; साहित्य-सदन, उज्ञाव। [९] पूर्णिया जिले में—श्रीकाली-पुस्तकालय, बलिया, रुपौली; हिन्दी-पुस्तकालय, कटिहार; साहित्य-मंदिर, धमदाहा; हिन्दी-भवन, अररिया; हिन्दी-सेवासदन, किशनगंज। [१०] सन्ताल-परगना जिले में—मारवाड़ी-पुस्तकालय, दुमका, सार्वजनिक लाइब्रेरी, देवघर; वैद्यनाथधाम-गुरुकुल-पुस्तकालय, देवघर; हिन्दी-हितैषी पुस्तकालय, गोड्डा।

जहाँ तक पता लग सका है, विवरण दिया है। बड़ी कठिनाई से सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। चेष्टा करने पर भी यथेष्ट सामग्री न मिल सकी। कहीं भ्रम हो, छूट हो, अभाव हो, जैसा बहुत संभव है, तो पाठक मेरी कठिनाइयों का अनुमान कर सन्तोष कर लें। प्रस्तुत सामग्री से ही लेख का मुख्य उद्देश्य सिद्ध है।



हिन्दी-गद्य-निर्माण में बिहार का हाथ

पंडित सुरेन्द्र झा 'सुमन', साहित्याचार्य, 'मिथिला-मिहिर'-सम्पादक, दरभंगा

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'

विद्वानों की योग्यता की कसौटी गद्य-रचना है। पद्य कृत्रिम होता है, गद्य स्वाभाविक। पद्य मे, छंदों की आड में, कभी-कभी निरङ्कुशता से भी काम ले लिया जाता है; परन्तु गद्य में तो विन्दु-विसर्ग-मात्र की त्रुटि भी अक्षम्य है।

फिर भी, बिहार की साहित्यिक प्रतिभा, सदा से, गद्य की कसौटी पर खरी उतरती आई है। सुप्रसिद्ध संस्कृत-गद्य-ग्रंथ 'कादम्बरी' के रचयिता 'वाणभट्ट' बिहार ही के रत्न थे। उनके समान ललित अलंकृत गद्य का लेखक प्राय' किसी भी भाषा में मिलना कठिन है। 'कादम्बरी' का सुधा-धवल गद्य-प्रासाद आज भी ताजमहल की भाँति दर्शनीय है—अनुपम चमत्कारपूर्ण एवं निष्कलङ्क सौन्दर्य का प्रतीक है।

संस्कृत के सिद्धहस्त गद्य-लेखक दार्शनिक-प्रवर वाचस्पति मिश्र की प्रौढ लेखनी से प्रसूत वाग्वैदग्ध्यपूर्ण रचना का रसास्वादन उनके भाष्य-ग्रन्थों में किया जा सकता है। इतिहास-प्रसिद्ध कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी संस्कृत-गद्य-साहित्य का एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। 'पञ्चतन्त्र' के प्रसिद्ध कथाकार और 'हितोपदेश' के मूल संग्रहकर्त्ता विष्णुशर्मा भी बिहारी थे। बाल-सुलभ सरल गद्य लिखने में इन्हें आश्चर्यजनक निपुणता प्राप्त थी। इस तरह संस्कृत-साहित्य के गद्य-निर्माण में भी बिहार का प्रमुख स्थान रहता आया है।

प्राकृत-प्रसूत 'पाली' में भी जो गद्यात्मक जातक-ग्रन्थ मिलते हैं, वे बिहार में ही लिखे गये थे। आगे चलकर भी, जिस समय प्राकृत से उद्भूत प्रान्तीय भाषा-शिशुओं का कंठ कठिनता से फूट पाया था, एक-आध छंद सुनाने के अतिरिक्त भारत की कोई परवर्त्ती भाषा तुतलाकर भी गद्य बोलना नहीं सीख पाई थी, बिहार के एक कोने में, मिथिला के शान्त वातावरण में, आज से सात सौ वर्ष पूर्व,

महाकवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर 'वर्णन-रत्नाकर'-जैसा पांडित्यपूर्ण गद्य-ग्रन्थ मैथिली में लिख चुके थे। ये महाकवि सुप्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति के पितामह-भ्राता थे। सौभाग्य से उक्त पुस्तक की ताल-पत्र पर लिखी प्रति नैपाल से प्राप्त कर कलकत्ता की 'एशियाटिक सोसाइटी' ने हाल ही प्रकाशित की है। इस तरह वर्त्तमान प्रान्तीय भाषाओं के गद्य-निर्माण में भी बिहार का नाम निस्सन्देह अग्रगण्य है।

साधारणतः प्राचीन साहित्य पद्य-प्रधान है, आधुनिक गद्य-प्रधान। संसार की सभी भाषाओं के इतिहास में प्रायः यही विकास-क्रम देखा जाता है। यदि मुद्रण-कला के आविष्कार से पुस्तक-प्रकाशन सुलभ न होता तो जो गद्य आज महासागर के रूप में लहरा रहा है, छोटी तलैया के रूप में ही उपलब्ध हो पाता। इसीसे आधुनिक हिन्दी के गद्य-साहित्य का विकास (देवनागरी की) मुद्रण-कला के उदय के साथ चलता है।

हिन्दी-गद्य का अरुणोदय

[सन् १८०० ई०—१८५० ई०]

हिन्दी-गद्य का प्रथम प्रभात बिहार के क्षितिज पर ही हुआ। एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित पंडित सदलमिश्र-रचित 'चन्द्रावती' परिष्कृत हिन्दी-गद्य का पहला ग्रन्थ है*। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सर्व-

*परिष्कृत हिन्दी-गद्य का पहला ग्रंथ है रामप्रसाद निरंजनी का लिखा हुआ 'भाषा योगवाशिष्ठ' जो संवत् १७९८ (सन् १७४१ ई०) में ही लिखा जा चुका था। इसके विषय में आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—"निरंजनी ने गद्यग्रंथ बहुत साफ-सुथरी खड़ी बोली में लिखा। ग्रंथ को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि मुंशी सदासुख और लल्लूलाल से ६२ वर्ष पहले खड़ी बोली का गद्य अच्छे परिमार्जित रूप में पुस्तकें आदि लिखने में व्यवहृत होता था। अबतक पाई गई पुस्तकों में 'योगवासिष्ठ' ही सबसे पुराना है जिसमें गद्य अपने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है।" यह निरंजनी महाशय पंजाबी थे। इनके अतिरिक्त मुन्शी सदासुखलाल (उपनाम 'सुखसागर') ने भी सदलमिश्र से पहले ही श्रीमद्भागवत का हिन्दी-अनुवाद किया था, जो 'सुखसागर' नाम से बहुत प्रसिद्ध है, जिसकी भाषा 'साफ-सुथरी 'खड़ी बोली' है, जिसमें 'शुद्ध तद्भव और तत्सम शब्द हैं' और 'विदेशी शब्द एक भी नहीं आया है'। आचार्य शुक्लजी ने स्पष्ट और यथार्थ लिखा है—"जिस समय फोर्ट विलियम कालेज की ओर से उर्दू और हिन्दी गद्य की पुस्तकें लिखाने की व्यवस्था हुई उसके पहले हिन्दी खड़ी बोली में गद्य की कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं।"—सम्पादक

प्रथम अध्यक्ष पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने अपने भाषण मे कहा था-'विहार को अपने सदल मिश्र का गर्व है।' उसी आसन से कहे गये राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह के शब्द इस प्रकार हैं-'हम विहारियों के लिये यह गौरव की बात है कि हिन्दी के सर्वप्रथम गद्य-लेखक हमारे ही प्रान्त के निवासी थे, हिन्दी का इतिहास उनके पक्ष में न्याय करने को तैयार है।' पुन: उसी पद से प्रकट किये गये बाबू शिवनंदन सहाय के उद्‌गार भी सुनिये—"सदलमिश्र तथा लल्लूलालजी के सम-सामयिक एवं साथी होने पर भी सदलमिश्र की भाषा लल्लूलालजी की भाषा से कहीं प्रौढ तथा परिमार्जित है और साहित्य का लालित्य भी इनमें विशेष पाया जाता है।"*

उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल था। अँगरेजी शिक्षा की ज्योति फैलने लग गई थी। देशी भाषाओं के नक्षत्र जग रहे थे। व्रजभाषा शृंगारपूर्ण अवश्य थी, पर पद्य के परदे से ही झाँक रही थी। खड़ी बोली का गद्योदय हो रहा था। फोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) की वर्नाक्युलर-सोसाइटी के अधिकारियों ने पाठ्य पुस्तकों के लिये गद्य-निर्माण की आवश्यकता समझी। पं० सदल मिश्र और पं० लल्लूलाल को हिन्दी-गद्य-ग्रंथ तैयार करने का भार सौंपा गया। सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' के आधार पर 'चंद्रावती'† और लल्लूलाल ने श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर 'प्रेमसागर' की रचना की। इन दोनों की भाषा पर यदि विवेचनात्मक दृष्टि डाली जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि लल्लूलालजी की भाषा पर जहाँ व्रजभाषा की छाप है, वहाँ सदलमिश्र की भाषा कुछ-कुछ पुरानी शैली की होने पर भी आज-कल की परिष्कृत हिन्दी के बहुत निकट पहुँची हुई है और उससे आँखे बराबर कर सकती है।‡ उदाहरणार्थ दोनों के गद्य की बानगी नीचे दी जाती है—

लल्लूलाल—"जिस समय घन जो गरजता था सोई तो धौंसा बजता था और वर्ण-वर्ण की घटा घिर आई थी सोई शूरवीर रावत थे तिनके बीच

* 'बिहार के कथाकार' नामक लेख इसी ग्रंथ में अन्यत्र प्रकाशित है। उसके आरम्भिक अंश में पंडित सदलमिश्र के विषय में विशेष विवरण पढ़िये।—सम्पादक

† यह ग्रंथ विक्रम-संवत् १८६० (सन् १८०३ ई०) में लिखा गया था।—सम्पादक

‡ "लल्लूलाल के प्रेमसागर से सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुन्दर है। प्रेमसागर में भिन्न-भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। सदलमिश्र में यह बात नहीं है।"—श्यामसुन्दरदास

बिजली की दमक शस्त्र की सी चमकती थी, बगपाँत ठौर-ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी।"

सदल मिश्र—"उस वन में व्याघ्र और सिंह के भय से वह अकेली कमल के समान चंचल नेत्रवाली व्याकुल हो ऊँचे स्वर से रो-रो कहने लगी कि अरे विधना तैंने यह क्या किया और बिछुरी हुई हिरनी के समान चारों ओर देखने लगी।"

इंशाअल्ला खाँ और मुन्शी सदासुख लाल सरकारी क्षेत्र से बाहर ही रहकर गद्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। तो भी उक्त दोनों गद्यकारों के समान ही ये दोनों भी गद्यशैली के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। खाँ साहब की भाषा यद्यपि मँजी हुई और मुहावरेदार है तथापि उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का पूर्णतया बहिष्कार किया है; उनकी भाषा पर उर्दू की छाप है। और, मुन्शीजी की शैली पंडिताऊ है तथा उसमें कितने ही संस्कृत-शब्दो का रूप विकृत कर दिया गया है। किन्तु इन दोनो की तुलना में भी, विचारपूर्वक देखने पर, पं० सदल मिश्र की भाषा का शब्द-संगठन और वाक्य-विन्यास आधुनिक हिन्दी के निकटतम है। बाबू श्यामसुन्दर दास और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दीगद्य के प्रतिष्ठापक उपर्युक्त चार लेखको मे सदासुख लाल और सदल मिश्र की भाषा को ही 'अधिक उपयुक्त' माना है तथा उसमें 'आधुनिक हिन्दी का पूरा-पूरा आभास' पाया है।

हिन्दी-गद्य का प्रारम्भिक युग मंदगामी था। सदल मिश्र आदि के बाद हिन्दी-भाषी प्रान्तों में पद्य की बहुल रचना होते हुए भी गद्य-रचना की स्वल्पता ही थी। फिर भी बिहार में गद्य-निर्माण का काम चालू था। यहाँ के मिशनरी पादरियो ने, धर्म-प्रचार के निमित्त, हिन्दी का आश्रय लिया। १८०६ ई० में इंजिल का अनुवाद 'नये धर्म के नियम' नाम से छपा। सन् १८१८ ई० में बाइबिल का हिन्दी-अनुवाद पूरा होकर प्रकाशित हुआ। इन पादरियों के प्रचार-केन्द्र थे मुँगेर* और भागलपुर। इनलोगों का 'प्रधान अड्डा' था सिरामपुर (बंगाल)। इनका यह हिन्दी-गद्य-निर्माण, प्रचार-मूलक होने पर भी, सर्वथा श्लाघ्य माना जायगा और बिहारी ही नहीं, अन्यप्रान्तवासी भी इसके लिये इनके कृतज्ञ रहेंगे।

* मुँगेर के पादरी जॉन साहब कविता भी करते थे, हिन्दी में उनकी 'मुक्ति-मुक्तावली' प्रकाशित है। देखिये बि० प्रा० हिं० सा० स० का प्रथम भाषण। —संपादक

हिन्दी-गद्य का सुप्रभात

[सन् १८५०—१६०० ई०]

उन्नीसवीं सदी का मध्य-भाग हिन्दी-गद्य की उन्नति की दृष्टि से विशेष महत्त्व का नहीं प्रतीत होता। कचहरियों में उर्दू की प्रधानता थी। पाठ्य पुस्तकों में भी अरबी-फारसी के शब्दों के बोझ से हिन्दी दबी पडी थी। इस दिशा में राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' भाषा-सुधार का प्रयत्न कर रहे थे। पर हिन्दी के पक्षपाती होते हुए भी वे उर्दू का मोह न छोड़ सके। सन् सत्तावन के गदर से एक साल पहले वे युक्तप्रांत के शिक्षा-विभाग मे इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए थे। उन्हीं की लिखी पाठ्य पुस्तकें लगभग बीस बरसों तक बिहार के स्कूलों में भी चलती रहीं। पिनकाट साहब की लिखी 'बालदीपक' नामक पाठ्य-पुस्तक भी, जो चार भागों में खड्गविलास प्रेस (पटना) से निकली थी, बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। किन्तु जब भूदेव मुखोपाध्याय के उद्योग से बिहार मे पाठ्य पुस्तकों की रचना होने लगी तब बिहार के शिक्षाक्रम में भी परिमार्जित हिन्दी-गद्य की पुस्तकों का साहाय्य प्राप्त होने लगा।

इस क्षेत्र में भूदेव मुखोपाध्याय के प्रयत्न चिरस्मरणीय हैं। शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर के पद पर वे बिहार मे १८७१ के लगभग आये। हिन्दी की दुर्दशा पर उनकी दृष्टि गई। उनके सत्प्रयत्न से विशुद्ध बोलचाल की हिन्दी मे गद्य-ग्रंथ लिखे जाने लगे। फलस्वरूप राजा शिवप्रसाद की उर्दू-मिश्रित पुस्तकों के बदले बिहार में शुद्ध हिन्दी की पाठ्य-पुस्तको का निर्माण धड़ल्ले से होने लगा। सन् १८८० में भूदेव बाबू की प्रेरणा से 'बिहार-दर्पण' नाम की पुस्तक बाबू रामदीन सिंह ने प्रस्तुत की, जिसमें बिहार के तेइस महापुरुषो की जीवनियाँ हैं। उसी समय, बिहार मे हिन्दी की प्राणप्रतिष्ठा करनेवाले पं० केशवराम भट्ट (बिहारशरीफ-निवासी) ने 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा, जिसको प्रामाणिक मानकर हिन्दी-ग्रंथो का प्रणयन होने लगा। गणपति सिंह ने 'भूगोल', बंगाली विद्वान् गोविन्द बाबू ने 'पुरावृत्त-सार', लक्ष्मण-लाल ने 'क्षेत्रमिति', रामप्रकाश लाल ने 'भूतत्त्व-प्रदीप', सीतारामशरण भगवान-प्रसाद (श्रीरूपकलाजी) ने 'शरीर-पालन' और 'तन-मन की स्वच्छता', श्याम-बिहारी लाल ने 'देशी लेखा-जोखा', सञ्जीवन लाल ने 'ज्यामिति' आदि विविध विषयो की पाठ्य पुस्तकें गद्य में लिखीं। १८७३ ई० में मुन्शी राधालाल ने 'शब्दकोष' तैयार किया जो सरकार-द्वारा प्रशंसित एवं पुरस्कृत हुआ। यह कोष

और उपर्युक्त भट्टजी का व्याकरण—दोनों पुस्तकें हिन्दी में अपने विषय की पहली, सबसे पहली, पोथी हैं। इसी तरह साहबप्रसाद सिंह ने 'भाषा-सार' नाम की पुस्तक लिखी, जिसका सर्वत्र आदर हुआ। बाद तो पं० बलदेव राम की 'विज्ञान-शिक्षा' एवं 'नीति-प्रवाह' तथा बाबू गोकर्ण सिंह की 'विज्ञान-सोपान' आदि पुस्तकें खूब चलीं। इस प्रकार थोड़े ही दिनों के प्रयास से, शिक्षा के क्षेत्र में, बिहार ने हिन्दी के पैर जमा दिये। खेद है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ (हिन्दी-साहित्य का इतिहास) में इस प्रसंग की चर्चा तक नहीं की है। युक्तप्रान्त में राजा शिवप्रसाद और पंजाब में बाबू नवीनचन्द्र सेन द्वारा किये गये शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के साथ भूदेव बाबू तथा उनके समय के लेखकों की सेवा का उल्लेख न करके शुक्लजी ने बिहार की उपेक्षा की है। यदि वे 'सरस्वती'* में भूदेव बाबू की जीवनी पढ़ गये होते तो कदापि ऐसी उपेक्षा न करते।

जो हो, उसी समय, १८७३ ई० में, 'बिहारबंधु' नाम का हिन्दी-पत्र निकला, जिसके द्वारा लगातार तीस बरसों तक पं० केशवराम भट्ट ने हिन्दी की शैली परिमार्जित करने का अथक प्रयत्न किया। जो पौधा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में 'सरस्वती' ने उगाया उसका बीज पचीस साल पहले ही भट्टजी ने बोया, सींचा और पनपाया था। भट्टजी बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। वे 'भारतेन्दु के साथ हिन्दी की उन्नति में योग देनेवालों में विशेष उल्लेख योग्य हैं'। हरिश्चन्द्र की 'कला' उन दिनों हिन्दी-साहित्य-गगन को उद्भासित कर रही थी। भारतेन्दु की 'कला' की ओर साहित्यिक चकोरों के सतृष्ण लोचन लगे हुए थे। उस समय बिहार ने हिन्दी की आराधना में स्पृहणीय तत्परता दिखाई। इस साहित्यिक जागृति के परिणाम-स्वरूप बिहार के कोने-कोने से पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगीं। 'भारत-रत्न', 'हरिश्चन्द्र-कला', 'पीयूष-प्रवाह', 'सारन-सरोज', 'चम्पारन-चंद्रिका', 'क्षत्रिय-पत्रिका', 'खत्री-हितैषी' आदि पत्र कार्यक्षेत्र में उतरकर गद्य-निर्माण में जुट पड़े। इनमें 'कला', 'प्रवाह' और 'चन्द्रिका' तथा 'पत्रिका' का गद्य ही आदर्श मानने योग्य है।

हरिश्चन्द्र-काल की साहित्यिक प्रगति में बिहार का योग-दान

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी का गद्य-पद्य बाबू हरिश्चन्द्र की प्रचेष्टा से अनुप्राणित हुआ। दो दशकों में ही भारतेन्दु ने गद्य-पद्य की धारा पलट दी—

* देखिये—'सरस्वती', भाग १३, अंक ८, (अगस्त, १९१२), पृष्ठ ४१८ में हिन्दीहितैषी स्वर्गीय श्रीभूदेव मुखोपाध्यायजी, सी० आई० ई०। —ले०

युगान्तर उपस्थित कर दिया—हिन्दी-वाटिका में नव वसन्त वसा दिया यह समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'हरिश्चन्द्र-युग' कहा जाता है।

वाबू हरिश्चन्द्र के इस साहित्योत्थान के महायज्ञ मे विहारी लेखकों क होतृवर्ग भी सम्मिलित रहा। वाबू रामदीन सिंह के द्वारा न केवल भारतेन् की रचनाओं के प्रकाशन का सर्वप्रथम श्रेय विहार को मिला, अपि विहारी लेखकों के सहयोग से हिन्दी के उत्थान का संकल्प भी बहुत अंशों में पूर हुआ। पं० केशवराम भट्ट ने नाटक, निवन्ध, व्याकरण, आलोचना एव पत्र सम्पादन के द्वारा भारतेन्दु-युग मे विहार को सदा अग्रसर रक्खा। पं० विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि' भारतेन्दु के प्रिय मित्रों मे थे। इन्होंने भी उस समय साहित्य के निर्माण में पूरा भाग लिया। ये उद्भट वैयाकरण, दार्शनिक, पत्रकार, सुवक्ता सुकवि और नाटककार थे। महाकवि भास और कालिदास के कई संस्कृत-नाटकों और काव्यों का भी इन्होंने हिन्दी-अनुवाद किया। 'महा अंधेर नगरी' इनका एक उत्तम हास्य-प्रधान नाटक है। इनकी सस्कृत-सपुटित शैली वडी प्राञ्जल होती थी। ये वहुभाषाभिज्ञ और संस्कृत के भी उत्कृष्ट कवि थे। इनके अप्रकाशित 'प्रेम-साम्राज्यादर्श नाटक मे संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी आदि भाषाओं का सफल प्रयोग देखकर चकित रह जाना पड़ता है। काशी के भारतेन्दु-कालीन हिन्दी-साप्ताहिक 'भारत-जीवन' इन्हीं की प्रेरणा से निकला था और उसमे ये वरावर गद्य-पद्य लिखा करते थे। भारतेन्दु की 'कविवचनसुधा' पत्रिका में भी इनकी अनेक गद्य-पद्य-रचनाएँ छपी हैं। सस्कृत की प्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' का हिन्दी-अनुवाद भारतेन्दु ने अधूरा छोड़ दिया था, उसे इन्होंने ही पूरा किया था। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दशम अधिवेशन (पटना) के स्वागताध्यक्ष के पद से इन्होंने जो अपना मुद्रित भाषण पढ़ा था, वह इनके पांडित्य और परिष्कृत गद्य का सुन्दर नमूना है। इनकी गद्यरचनाएँ वहुत उच्च कोटि की हैं।

विहार के वयोवृद्ध साहित्यसेवी चम्पारन-निवासी प० चंद्रशेखरधर मिश्र ने हरिश्चन्द्रजी के जीवनकाल में ही संयुक्तप्रान्त के पूर्वी और विहार के पश्चिमी जिलों मे अपने खर्च से घूम-घूमकर अनेक भारतेन्दु-सभाएँ और साहित्यिक संस्थाएँ स्थापित की थीं। आपके द्वारा हिन्दी की ढाई सौ संस्थाएँ उन दिनो स्थापित हुई थीं। इसमें आपने अपनी जमीन्दारी से हजारो रुपये खर्च किये थे। भारतेन्दुजी से इस विषय में आपको पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था और आप कई बार उनसे मिलकर हिन्दी-प्रचार के विषय में परामर्श कर चुके थे। ईश्वर की दया से आप

अभी तक वर्त्तमान हैं। इस समय ८४ वर्ष की अवस्था में काशी-वास कर रहे हैं। आप कुशल चिकित्सक ही नही, साहित्य के यशस्वी आराधक भी हैं। पद्य-प्रणेता ही नहीं, गद्य-रचयिता भी हैं। आप बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष-पद को गौरवान्वित कर चुके हैं। आपके गद्य में भी कवित्व का आनन्द मिलता है। भाषा-शुद्धि के आप परम पक्षपाती हैं। वर्णोच्चारण-विधि पर आपने जो विचार-धारा उपस्थित की, 'ष' एवं 'ख' के उच्चारण-साम्य पर जो प्रमाण इकट्ठे किये, वे आज भी माननीय हैं। आप भारतेन्दु-युग में ही 'विद्या-धर्मदीपिका' नाम की शिक्षाप्रद मासिक पत्रिका निकालकर हिन्दी-हितार्थ निःशुल्क बाँटा करते थे। आपके द्वारा आविष्कृत 'उदुम्बर-सार' नामक महोषधि से अपरिमित लोकोपकार हुआ है। आपका 'आरोग्यप्रकाश' ग्रन्थ बड़ा लोक-हितकर है। संस्कृत के आप सुन्दर कवि एवं विद्वान् हैं।

आपके बाद आरा-निवासी श्री यशोदानन्दन अखौरी भी हरिश्चन्द्र-कालीन लेखकों में प्रसिद्ध हैं। इन्होने 'भारत-मित्र' के सम्पादन-विभाग एवं व्यवस्था-विभाग में ही अपने जीवन का अधिकांश बहुमूल्य समय व्यतीत किया था। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पूर्णिया) के प्रधान-पद से इन्होंने जो गवेषणापूर्ण भाषण किया था, और विभक्ति-सम्बंध मे 'राम-खुदैया' नीति की जो आलोचना की थी, वह आज भी कानों में गूँज रही है। इनके लेख अन्वेषणपूर्ण, प्रामाणिक, ज्ञानवर्द्धक और चित्ताकर्षक होते थे। श्री शारदाचरण मित्र के एक-लिपि-विस्तार-परिषद् के मुखपत्र 'देवनागर' का भी इन्होंने सम्पादन किया था। इनकी गद्यरचनाएँ बहुत परिमार्जित शैली में हैं। इनका उक्त भाषण बिहार की साहित्य-सेवा की महत्ता सिद्ध करनेवाला है।

हरिश्चन्द्र-कालीन हिन्दी-गद्य-लेखकों में आरा के बाबू शिवनन्दन सहाय का नाम विख्यात है। आप हिन्दी के कट्टर पक्षपाती एवं आदर्श जीवनी-साहित्य के निर्माता थे। आपने 'तुलसीदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सीतारामशरण भगवान प्रसाद और सिक्ख-गुरुओं की जीवनियाँ' लिखकर नये मनोवैज्ञानिक और आलोचनात्मक ढंग से विस्तृत जीवन-चरित लिखने की परम्परा चलाई और साहित्य में जीवनियो की उपयोगिता सिद्ध की। आपकी लिखी हुई 'गत पचास वर्षों में बिहार में हिन्दी की प्रगति' नामक पुस्तक आरा की ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित है, जो बिहार की हिन्दी-सेवा और साहित्य-साधना पर पूरा प्रकाश डालती है। आप संस्कृत-संपुटित शैली का प्रयोग करते हुए भी हिन्दी-उर्दू के भेद को

दूर करने के पक्षपाती थे। नीचे के उद्धरण से आपकी शैली और विचारधारा का परिचय मिल सकता है—

"जैसे पतित-पावनी कलकल-नादिनी परम सुखदायिनी पवित्र सलिला गंगा हिमालय की गहर-गुहा से गंगोत्री की राह बहिर्मुखी होकर मार्गस्थ भिन्न-भिन्न स्थानों में और भिन्न-भिन्न समयों पर भाँति-भाँति की मनोहर छवि धारण करती, कहीं चौड़ी, कहीं पतली, कहीं सीधी, कहीं टेढ़ी धारा से प्रवाहित होती, यमुना आदि बड़ी और छोटी सहायक नदियों को अंक में लगाती और जहाँ-तहाँ निज-अंगोद्भव नहरों की बहार दिखलाती, वंगप्रदेश में गंगासागर के समीप द्विधारा-प्रवाहिणी होकर जलनिधि में प्रवेश करती है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा संस्कृत की गभीर गुफा से प्राकृत द्वारा समुद्भूत होकर समय-समय पर परिवर्तित छटा प्रदर्शित करती, ठौर-ठौर विविध नामों से विख्यात होती और अनेक प्रादेशिक तथा प्रान्तिक भाषाओं को अपने में सम्मिलित करती, परिपक्वता-सागर की समीपवर्त्तिनी होने पर, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी दो प्रत्यक्ष स्वरूपों में शोभायमान हो रही है, जो दोनों वस्तुत एक ही हैं—यदि आग्रह तथा पक्षपात की दृष्टि से नहीं देखी जायँ।"

दरभंगा-निवासी पं० भुवनेश्वर मिश्र भी इस काल के बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। आप भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। आपके यहाँ आकर भारतेन्दु आतिथ्य ग्रहण कर चुके हैं। आपने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की। आपका 'घराऊ घटना' मौलिक उपन्यास गृहस्थ-जीवन का सजीव चित्र है। इसकी भाषा फड़कती हुई और शैली चित्त लुभानेवाली है।

भूतपूर्व सूर्यपुराधीश राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह से भी भारतेन्दुजी की घनी मैत्री थी। भारतेन्दुजी सूर्यपुरा-दरबार मे पधारे थे और उनका यथेष्ट सत्कार भी हुआ था। राजा साहब ने कवीन्द्र रवीन्द्र के 'चित्रांगदा' नाटक का अनुवाद तत्सम ललित गद्य मे किया है। आप कवित्वपूर्ण सुपुष्ट गद्य के सिद्धहस्त लेखक थे। नाटककार और सुकवि भी थे। आपकी सचित्र ग्रन्थावली हिन्दी मे एक दर्शनीय ग्रंथ है।

इसी समय धर्म-समाज-विद्यालय (मुजफ्फरपुर) के अध्यापक पं० गोपीनाथ कुमर ने सरल हिन्दी-गद्य में 'रामचरितेन्दु-प्रकाश' नामक सुन्दर ग्रंथ लिखकर प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ विशुद्ध हिन्दी का नमूना है। इसमें एक भी विदेशी शब्द नहीं आने पाया है।



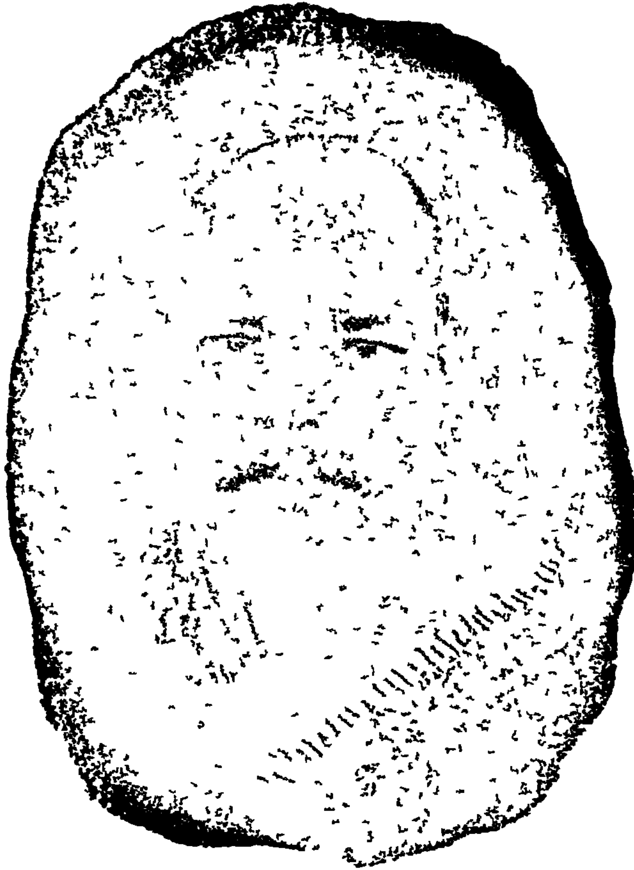
☞स्वर्गीय बाबू शिवनन्दन सहाय
आरा-निवासी

स्वर्गीय पं० विजयानन्द त्रिपाठी☞
(शाहाबाद)



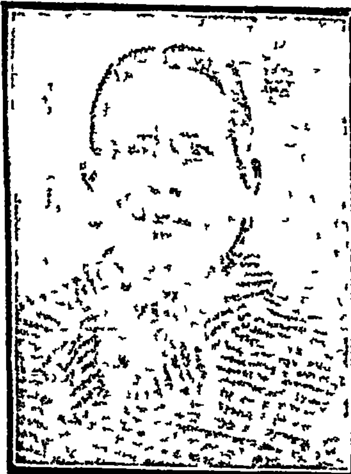
(पृष्ठ ५३९)

(पृष्ठ ५३८)



(पृष्ठ ५४४)

(पृष्ठ ५४३)



स्व० साहित्याचार्य प० रामावतार
शर्मा, एम० ए०, महामहोपाध्याय
छपरा
(पृष्ठ १४५, ५४२)

स्वर्गीय प्रो० अक्षयवट मिश्र
'विप्रचन्द्र', डुमराँव (शाहाबाद)☞

☞स्वर्गीय पं० जगन्नाथप्रसाद
चतुर्वेदी; मलयपुर (मुँगेर)





पृष्ठ ५७६

(भागलपुर-जिला-निवासी)
पंडित लक्ष्मीकान्त झा, आइ०सी०एस०



पृष्ठ ७७४

सारन-जिला-निवासी
डाक्टर सत्यनारायण,
पी-एच० डी०



श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु'
एम० ए० (पूर्णिया)
(पृष्ठ ५५७)

भागलपुर-जिला-निवासी
साहित्याचार्य 'मग'



प्रोफेसर माहेश्वरी सिंह
'महेश', एम० ए० (भागलपुर)



इसी युग में दिलीपपुर (शाहाबाद) के रईस महाराजकुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह 'ईश' ने 'धर्म-प्रदर्शनी' नामक एक अपूर्व गद्यग्रन्थ लिखा था, जो सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर छपकर सम्राट् को समर्पित हुआ था। ऐसा विद्वत्तापूर्ण धर्मनीति-ग्रन्थ आज भी हिन्दी में कोई नहीं है।

आरा के शौकीन रईस बाबू जैनेन्द्रकिशोर ने 'कमलिनी', 'मनोरमा', 'सुलोचना', 'सोमा सती', 'चुड़ैल', 'परख' आदि कई गद्य-पुस्तकें लिखी थीं, जो छपने के उपरान्त बहुत लोकप्रिय हुई। भारतेन्दु ने जिस प्रकार अनेक नाटक लिखकर उनके अभिनय-द्वारा हिन्दी-प्रचार को उत्तेजन दिया था, उसी प्रकार इन्होंने भी कई नाटक लिखकर तथा अपने द्रव्य से नाटक-मंडली खोलकर जनता में साहित्यानुराग उत्पन्न किया था। ये आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापकों में थे। गद्य-रचना के समान कविता करने में भी बड़े कुशल थे।

इसके अतिरिक्त डुमराँव-निवासी पं० नकछेदी तिवारी ('अजान' कवि), दीनदयाल सिह, लालदास (दरभंगा), मटुकपुर-(शाहाबाद)-निवासी मुन्शी व्रजविहारीलाल आदि भी भारतेन्दु के समय में ही सुन्दर गद्य-रचना कर गये हैं। तिवारीजी की 'कविकीर्त्तिकलानिधि' और मुन्शीजी की 'बालबोध' आदि पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनसे उनकी स्वच्छ गद्यशैली की सुघराई प्रकट होती है।

यही नहीं, इस युग में साहित्य-सेवा की भावना झोपड़ी से महल तक अपना प्रभाव दिखा रही थी। दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वर सिह साहब के राज्य-काल में भी हिन्दी के कई गद्य-ग्रंथ लिखे गये। मैथिली के साथ हिन्दी के भी विकास में यहाँ से अच्छी सहायता मिली। इसी प्रकार गिद्धौर, बनैली, श्रीनगर, टेकारी, सूर्यपुरा, बेतिया, हथुआ, डुमरॉव आदि रियासतों के दरबारों से भी हिन्दी-साहित्य के विकास में बड़ी सहायता मिली। बेतिया, डुमराँव, सूर्यपुरा आदि से भारतेन्दुजी का साहित्यिक सम्बन्ध बराबर बना रहा।

हाँ, महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की चर्चा के विना भारतेन्दु-काल में बिहार-द्वारा की गई हिन्दी-सेवा अधूरी रह जायगी। वे 'भारतेन्दु के सहयोगियों में' थे। उनके 'बिहार-दर्पण' नामक गद्यग्रन्थ को भारतेन्दु ने 'हिन्दी में अपने विषय और ढंग का सबसे पहला ग्रन्थ' कहा था। उन्होंने न केवल भारतेन्दु की रचनाओ को प्रकाश में लाने की स्तुत्य योजना की, अपितु अनेक पत्र-पुस्तकों का प्रकाशन कर अपनेको हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय बना डाला। उनकी भाषा प्रौढ़ तथा सर्वबोधगम्य होती थी। इसका प्रमाण उनका

'विहार-दर्पण' प्रत्यक्ष है, जिसके दो संस्करण, उनके जीवन-काल में ही, दो-तीन साल के अन्दर ही, हुए थे—उस युग में भी ! उन्होंने सच्ची लगन के साथ कर्त्तव्य-पालन करके अपनेको भारतेन्दु का अभिन्न एवं अनन्य मित्र प्रमाणित कर दिया। भारतेन्दु के अस्त हो जाने के बाद अनेक वर्षों तक भारतेन्दु की साहित्यिक कीर्त्ति को अमर बनाने के प्रयत्न मे दत्तचित्त रहे।

इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध है कि २०वीं शताब्दी के पूर्वकाल में विहार ने हिन्दी-गद्य-निर्माण मे जो योग-दान किया वह आदर एव गौरव की वस्तु है। अन्य प्रान्तों की तुलना मे इसकी सेवा अद्वितीय है, इस बात को कोई अस्वीकृत नहीं कर सकता।

द्विवेदी-युग में विहार की साहित्यिक प्रगति

बीसवीं सदी के आरम्भ तक हिन्दी के प्रति लोक-रुचि जागृत हो चुकी थी। सन् १६०० ई० में इंडियन प्रेस (प्रयाग) से 'सरस्वती' निकली। सौभाग्यवश १६०३ ई० से उसका सम्पादन-सूत्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के यशस्वी हाथों में आया। फलस्वरूप 'सरस्वती' के उद्योग एवं सहयोग से हिन्दी-साहित्य का रुद्ध प्रवाह शत-शत धाराओं मे फूट निकला। आचार्य द्विवेदीजी की अमृतमयी रससिद्ध लेखनी ने हिन्दी के गद्य-पद्य-क्षेत्रों में अभिनव क्रान्ति उपस्थित कर दी। हिन्दी गद्य मे सजीवता, सुकरता, सुष्ठुता, सुरुचि और सामयिकता लाने मे द्विवेदीजी ने अथक और अकथ परिश्रम किया, जिसमे उन्हें उल्लेखनीय सफलता भी मिली। लगातार १५ बरसो तक वे गद्य-शैली के सँवारने मे ही लगे रहे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे यह समय 'द्विवेदी-युग' के नाम से विख्यात हुआ। सदासुखलाल, सदल मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, केशवराम भट्ट, रामदीनसिंह, प्रताप-नारायण मिश्र, प्रेमघनजी, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास आदि की सींची और सजाई हुई हिन्दी-गद्य-वाटिका इस समय लहलहा उठी। पर इस नव-वसन्त के आह्वान मे विहार भी अग्रदूत का काम कर रहा था।

राजा कमलानंदसिंह❀ द्विवेदी-युग के सर्वप्रथम विहारी लेखक थे, जिनके साथ 'सरस्वती' और द्विवेदीजी का यावज्जीवन बहुत ही घनिष्ठ सम्पर्क रहा।

❀ एक लेख आपके संस्मरण के रूप में इसी ग्रथ में अन्यत्र छपा है। दूसरा लेख 'आचार्य द्विवेदीजी के पत्र' नाम से भी इसी में है। दोनों के पढ़ने से स्पष्ट मालूम हो जायगा कि द्विवेदीजी से आपका कैसा घना सम्बन्ध था। —सम्पादक

आपने वंग-साहित्य-सम्राट् वंकिम बाबू के सर्वतोऽधिक प्रसिद्ध 'आनन्द-मठ' उपन्यास का सुन्दर अनुवाद किया था। आपकी गद्य-रचनाएँ 'सरस्वती' में भी प्रायः छपती थीं।

द्विवेदी-युग के दूसरे सर्वश्रेष्ठ बिहारी लेखक थे साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा। ये मौलिक विचारो के विद्वान् गद्य-लेखक थे। जब कभी इनके लेख निकलते, 'सरस्वती' गम्भीराशया हो जाती। उसी प्रकार 'सरस्वती में छपे महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा के दार्शनिक निबंध हिन्दी-संसार के लिये वरदान-स्वरूप होते थे। बिहार के गौरवालंकार इन दोनों साहित्य-महारथियों से द्विवेदीजी आग्रह-पूर्वक लेख लिखवाते थे।

पं० सकलनारायण शर्मा, जिनकी व्याकरण-कसौटी पर कसी भाषा खरा सोने के समान दमकती और कीमती होती है, इस युग के धुरन्धर बिहारी लेखक हैं। आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान, सुवक्ता और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार तथा व्याख्याता हैं। हिन्दी-गद्य-निर्माताओ में आपका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि आप 'सरस्वती' में लेख नही लिखा करते थे, तथापि उसके क्षेत्र से बाहर रहकर भी वही काम कर रहे थे जो 'सरस्वती' करती थी, अर्थात् व्याकरण-संगत भाषा लिखने की परिपाटी स्थापित करने में आपकी समर्थ लेखनी बड़ी सावधानता के साथ तत्पर थी। आपका एक-एक लेख भापा-तत्त्व तथा शब्दशास्त्र-विचार की दृष्टि से परमोज्ज्वल रत्न है। 'शिक्षा' के सम्पादन-द्वारा आपने हिन्दी की गद्यशैली के परिष्कार का काम लगातार पचीस-तीस बरसो तक किया। आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना कर नागरी-लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का भी प्रशंसनीय प्रयत्न किया। आज बीस-बाइस बरसों से आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत-व्याख्याता हैं।

द्विवेदी-युग में द्विवेदीजी के विशेष स्नेहभाजन लेखकों का भी एक स्वतंत्र मंडल था। उन द्विवेदी-मंडल के विशिष्ट लेखको में बिहार के कृतविद्य साहित्यसेवी प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचंद्र' भी थे, जो अपने सरस लेखों से सदा 'सरस्वती' के पाठको को आह्लादित करते रहते थे। विविध विषयों पर आलंकारिक भाषा में इनके लेख बड़े रोचक और प्रसादगुणपूर्ण होते थे। जिस समय द्विवेदीजी की लेखनी से इनके लेखों की भेट भी नहीं हुई थी, उस समय भी ये उत्कृष्ट गद्यरचना में पारंगत थे। जिस साल (१९०३ ई० में) द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार-ग्रहण किया उसी साल इनकी एक पुस्तक भारतमित्र प्रेस (कलकत्ता) से प्रकाशित

हुई थी। वह पंडितराज जगन्नाथ के 'भामिनीविलास' का हिन्दी-पद्यानुवाद (भामिनीविलास-प्रतिबिम्ब) है। उसकी भूमिका से इनके गद्य का नमूना यहाँ दिया जाता है—" "सत्कवियों मे दिल्लीश्वर-सभा-सम्मानित पडितराज जगन्नाथ अन्तिम कवि थे। इनके बाद ऐसा विलक्षण उद्दंड कवि कोई न हुआ। इनके काव्य मे शब्दमाधुर्य, पदलालित्य, भावगाम्भीर्य, सरस यमक अनुप्रास ऐसे उत्तम होते हैं कि श्रवण मात्र ही से साधारण विद्वान् का भी हृदय आनन्दोद्रेक-परवश हो जाता है। जब हमने इनके बनाये हुए भामिनीविलास को देखा तो चित्त मे अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न हुआ। पर दुःख हुआ कि हा! इसके अनुपम सुख को केवल संस्कृत ही के कवि लूटते है। बिचारे हिन्दीभाषा के रसिक कवि इस सुख से सर्वदा वंचित हो रहे हैं। इस कारण यह अत्युत्तम ग्रंथ हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध छन्दो मे अनुवाद किया।" फिर सन् १६०५ ई० मे प्रकाशित अपने 'आनन्द-कुसुमोद्यान' के समर्पण मे लिखते है—"रसिकशिरोमणे! यह आनन्दकुसुमोद्यान आप ही के विराजने के लिये लगाया गया है। इसमे अनेक प्रकार की लहलहाती लोनी-लोनी लताएँ तथा सुन्दर सुहावने वृक्ष शोभित है। यहाँ आइये, विराजिये, कविताकुसुमों की सुगन्ध लीजिये, और विप्रचन्द्र-कोकिल का कलरव सुनकर आनन्दित हूजिये।"

पं० जनार्दन झा 'जनसीदन' ने निरन्तर न केवल पद्य से, अपितु मौलिक गद्य-रचनाओ और अनुवादों से भी, हिन्दी का भाडार भरने में पूरा हाथ बँटाया। बँगला की अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों का इन्होंने हिन्दी अनुवाद किया। ये भी द्विवेदीजी के परमप्रिय लेखकों मे थे। 'सरस्वती' मे सदा लिखा करते थे। इनका गद्य बडा मजु मनोहर है।

प० गिरीन्द्रमोहन मिश्र एम. ए बी. एल. का नाम भी इस युग की साहित्य-सेवा के इतिहास मे उल्लेखनीय रहेगा; क्योकि उन दिनों कचहरियो की फारसी-अरबी प्रधान भाषा के विरुद्ध इनकी प्रखर लेखनी ने जबरदस्त आन्दोलन किया था। ये भी 'सरस्वती' मे लिखते थे।

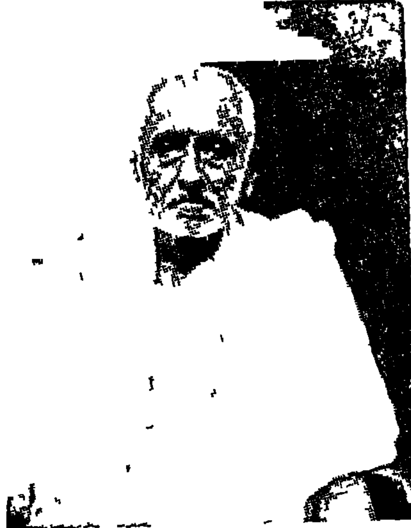
इसी समय विनोद-भरी रचना-प्रणाली, चोखी शैली एवं मँजी भाषा के लिये प्रसिद्ध प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी तेजस्वी नक्षत्र की भाँति विहार के साहित्याकाश मे उदित हुए। ये भी प० सकलनारायण शर्मा की भाँति द्विवेदीजी के क्षेत्र से पृथक् ही गद्य की चुहल-भरी शैली की सृष्टि मे प्रवृत्त थे। ये द्विवेदी-दल के प्रतिद्वन्द्वी पक्ष के अग्रगण्य मल्ल थे। व्यापार-सम्बन्ध से कलकत्ता-प्रवासी होने के कारण बाबू



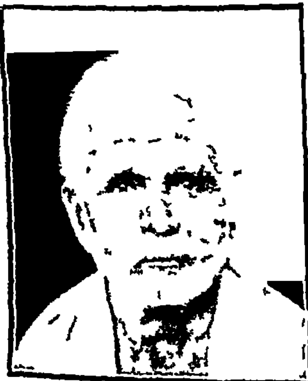
रत्नमाला- चम्पारन -निवासी
वैद्यरत्न चिकित्सकचूड़ामणि
पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र
(५२८,५५६,५६१,६१३)



आरा-निवासी, महामहोपाध्याय
पं० सकलनारायण शर्मा
व्याख्याता – कलकत्ता-विश्वविद्यालय
(पृष्ठ ४७, ५४३)



पं० जनार्दन झा 'जनसीदन'
(कुमरबाजितपुर, मुजफ्फरपुर)
(१,३१३,४७०,५४४,५६०)



प्रो० रामदास राय (गाजीपुर)
भूतपूर्व हिन्दी-अध्यापक
मुजफ्फरपुर-कालेज

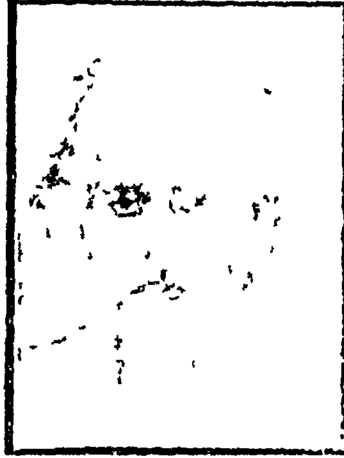


भूतपूर्व 'लक्ष्मी-सम्पादक
रायसाहब लक्ष्मीनारायण लाल
औरंगाबाद (गया)



प्रो० देवदत्त त्रिपाठी
भूतपूर्व संस्कृताध्यापक
पटना-कालेज
दिलीपपुर (शाहाबाद)

विहारशरीफ - निवासी
'विहारबन्धु -सम्पादक
स्व प. केशवराम भट्ट
(पृ० ५३७)





स्व० यशोदानन्दन अखौरी (शाहाबाद) पृ० ५३६



व.ᐟ स्व० पं० जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ
(पृ० ५६०)



सारन-जिला-निवासी
स्व० दामोदरसहाय कविकिंकर' (पृ० ३३२)

बालमुकुन्द गुप्त से इनका सतत संसर्ग रहा। गुप्तजी की प्रेरणा से ये अहर्निश तात्कालिक गद्यशैली की परख में दत्तचित्त रहते थे। इनकी गद्य-परीक्षा की कसौटी पर कौन न कसा गया! इन्होंने स्वयं द्विवेदीजी की आलोचना कर हिन्दी-संसार को चौंका दिया। द्विवेदीजी की लिखी लेखमाला 'कालिदास की निरङ्कुशता' के उत्तर में इन्होंने जो आलोचनात्मक लेखमाला 'भारत-मित्र' में लिखी वह समस्त हिन्दीजगत् में बड़े चाव से पढ़ी गई, और पीछे पुस्तकाकार मे 'निरंकुशता-निदर्शन' नाम से छपी भी। अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली के कारण ये 'हास्यरसावतार' कहे जाने लगे। अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के द्वादश अधिवेशन (लाहौर) के अध्यक्ष-पद से किया गया इनका भाषण हिन्दी-गद्य-शैली के सुधार और निखार पर तथ्यपूर्ण परामर्श देनेवाला है।

इस युग में बाबू व्रजनंदन सहाय 'व्रजवल्लभ' ने बड़ी सफलता से उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण किया। उन दिनों हिन्दी में भावपूर्ण मौलिक उपन्यासों की बड़ी कमी थी। बँगला के उपन्यासों के अनुवादों का ही बाहुल्य था। 'सौन्दर्योपासक' और 'लालचीन' द्वारा आपने इस कमी की पूर्त्ति की। 'सरस्वती' में भी प्रायः आपकी गद्यपद्यमयी रचनाएँ छपी थीं। 'विस्मृत सम्राट' और 'विश्वदर्शन' आपके नये मौलिक उपन्यास हैं। आप गद्यकाव्य के सफल रचयिता हैं। मनोभावों का हृदयग्राही चित्रण करने के कारण ही आपके उपन्यास समादृत हुए हैं। 'मैथिल कोकिल विद्यापति' नाम की आलोचना-पुस्तक लिखकर सबसे पहले आपने ही सप्रमाण सिद्ध किया कि महाकवि विद्यापति ठाकुर विहार के थे, बंगाल के नहीं। हिन्दीक्षेत्र में विद्यापति की सादर प्रतिष्ठा करके आपने साहित्य की चिरस्थायी सेवा की है। आपकी भाषा बड़ी ही अलङ्कार-पूर्ण और काव्यमयी है।

उपन्यास-क्षेत्र में अपनी एक ही रचना से सर्वप्रिय बननेवालों में दरभंगा के बाबू अवधनारायण का नाम भी चिरस्मरणीय रहेगा। 'विमाता' की करुण कथा, उसकी सरल शैली एवं मर्मस्पर्शी चरित्र-चित्रण ने ही हिन्दी में आपको आदरणीय स्थान दिलाया है। 'सरस्वती' ने इसकी आलोचना करते हुए इसे 'कभी न मुर्झानेवाला फूल' कहा था। आपने इधर कहानियाँ भी लिखी हैं। आपकी भाषा निराडम्बर, सहज एवं सुहावनी होती है। आपका नया उपन्यास 'सेकंड-हैंड लेडी' शीघ्र छपनेवाला है।

'विहारी'-सम्पादक श्रीगोकुलानन्द प्रसाद वर्मा और छपरा-निवासी पंडित जीवानन्द शर्मा इस युग में विहार के अच्छे पत्रकार हुए। वर्माजी ने 'आत्मविद्या'

और 'प्रेमाभक्ति' तथा 'सत्संग' का भी सम्पादन किया था। कमला-सरस्वती, पवित्र जीवन, मोती, गार्हस्थ्य जीवन आदि उनके गद्य-ग्रंथ हैं। शर्माजी ने 'श्रीकमला' और 'प्रजाबन्धु' द्वारा इस प्रान्त की और हिन्दी-संसार की बड़ी सेवा की। आप बड़े विख्यात कथावाचक थे। गायक, कवि, नाटककार और हिन्दी-प्रचारक के रूप मे आप विशेप सुपरिचित थे।

इस युग मे पटना के नामी वारिस्टर डॉक्टर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल की सेवाएँ भी स्तुत्य एवं बहुमूल्य हैं। आपकी जन्मभूमि मिर्जापुर मे थी, पर यावज्जीवन विहार ही आपकी कर्मभूमि रहा। आपके अनेक लेख 'सरस्वती' में छपे हैं। आप द्विवेदीजी के श्रद्धालु शिष्य लेखकों में अपनेको मानते थे। आप इतिहास और पुरातत्त्व के ठोस विद्वान् थे। आपकी भाषा मे बड़ी सादगी है। आपके गद्य-लेख बड़े सुचिन्तित और संयत होते थे।

आरा के पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा विलक्षण प्रतिभाशाली लेखक थे। जिस प्रकार युक्तप्रान्त मे श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की पैनी लेखनी 'प्रताप' के सम्पादकीय स्तंभो के द्वारा भाषा के गौरव की वृद्धि करती रही, उसी प्रकार शर्माजी की चुटीली लेखनी 'मनोरंजन' और 'हिन्दू-पञ्च' के द्वारा भाषा मे सरसता का संचार करती रही। एक आलोचक के शब्दों मे—"शर्माजी की लेखनी सवेग धारा की तरह बहती जाती थी और कागज पर नीलम की बूँदें बिछती जाती थीं।" 'मनोरंजन, लक्ष्मी, धर्माभ्युदय, पाटलिपुत्र, विद्या, शिक्षा, साहित्यपत्रिका, हिन्दू-पञ्च' आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन में अपनी सफलता दिखाकर आप लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रकार कहलाये। अनेक मौलिक ग्रंथों एवं अनूदित उपन्यासों तथा कहानियो द्वारा आपने हिन्दी का भांडार भरने मे अपना जीवन खपा दिया। आप समुज्ज्वल नक्षत्र की भाँति हिन्दी-जगत् को सहसा आलोकित करते आये और देखते-देखते विलीन हो गये। फिर भी, अपने अल्प जीवन-काल मे ही, अपनी सुन्दर कृतियों की जो छाप आप छोड़ गये हैं, वह अमिट है। शिवपूजन सहाय-जैसे साहित्यसेवी के गुरु-पद पर आसीन होने का जिसे महत्त्व मिला, उस अमर साहित्यिक का कीर्त्तिस्तम्भ अशोकस्तम्भ की भाँति गर्वोन्नत है।

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री का नाम इस युग में चिरस्मरणीय है। उन्होने जैसे 'शारदा' द्वारा संस्कृत की सेवा की, वैसे ही मौलिक पुस्तकों एवं धार्मिक ग्रंथों के अनुवादो द्वारा हिन्दी की भी। वे विद्वद्वर पंडित रामावतार शर्मा के सहपाठी और गुरुभाई थे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और श्रीमद्वाल्मीकीय

रामायण की विशुद्ध टीकाएँ लिखकर आपने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर अपने असाधारण अधिकार का परिचय दिया है।

पं० जगदीश्वरीप्रसाद ओझा इस युग के अनुभवी लेखक हैं। आपके लेख हिन्दी-प्रचार से अधिक सम्बद्ध थे।

पं० रामदहिन मिश्र भी इसी युग के लेखक हैं। वे 'सरस्वती' में बहुधा लिखा करते थे। उनका 'मेघदूत-विमर्श' एक रमणीय आलोचनात्मक गद्य-ग्रंथ है। उनका वास्तविक रचना-नैपुण्य बाल-साहित्य के निर्माण में आगे चलकर प्रकट हुआ।

'मिथिला-मिहिर' के भूतपूर्व सम्पादक पं० योगानन्द कुमर की सेवा भी भुलाने योग्य नहीं है। इन्होंने लगातार कई वर्षों तक अपने विचारपूर्ण लेखों के द्वारा हिंदी की श्लाघ्य सेवा की।

एतदतिरिक्त और भी बहुत-से लेखक इस युग में हुए, जिन्होंने हिन्दी के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काफी काम किया, और जिनमें से कई ने 'सरस्वती' के द्वारा भी अपना रचना-कौशल प्रदर्शित किया। यथा—श्रीदामोदरसहाय 'कविकिंकर', श्रीपारसनाथ सिंह एम० ए०, श्रीपीरमुहम्मद मूनिस, श्रीयुगलकिशोर अखौरी, श्रीसुपार्श्वदास गुप्त एम० ए०, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा एम० ए०, श्रीईश्वरदास जालान एम० ए०, श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह इत्यादि।

इस प्रसङ्ग में यह कहना आवश्यक है कि हिन्दी-संसार में उस समय दो गद्य-धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं—एक द्विवेदीजी की, दूसरी प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू देवकीनन्दन खत्री की। द्विवेदीजी गम्भीर और आलोचनात्मक तथा सार्व-कालिक साहित्य का निर्माण कर रहे थे और देवकीनन्दनजी रोचक कथा-साहित्य की सृष्टि। सच पूछिये तो उनकी 'चंद्रकांता' ने वह काम किया जो सैकड़ों हिन्दी-प्रचारक मिलकर नहीं कर सकते थे। जो लोग हिंदी की तरफ आँख उठाकर देखते तक नहीं थे, उन्हें केवल 'चंद्रकान्ता' पढ़ने के लोभ से विवश हो हिन्दी सीखनी पड़ी। हिन्दी में यह एक ऐसा उपन्यास निकला, जिसको पढ़ते-पढ़ते लोग भूख-प्यास भूल जाते थे और एक भाग समाप्त होने पर दूसरे भाग के लिये तार भेजते थे। अगर द्विवेदीजी साहित्य के विकास के लिये कीर्त्तिशाली हैं तो खत्रीजी हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिये यशोभागी हैं। साधारणतः लोग इस बात से कम परिचित हैं कि खत्रीजी बिहार के ही लाल हैं। संवत् १६१८ (सन् १७६१ ई०) में इनका जन्म मुजफ्फरपुर जिले में हुआ था। दस वर्ष की अवस्था के बाद ये टेकारी (गया) चले गये और चौवीस वर्ष की अवस्था तक वहीं के दरबार में रहे, जहाँ

से काशी-नरेश की सेवा में पहुँचने का सूत्र मिला। तीस वर्ष की अवस्था में, सन् १८९१ ई० में, बनारस राज्य और मिर्जापुर के जंगलों में ठीकेदारी करते हुए, इन्हें उपन्यास-रचना की प्रेरणा और प्रवृत्ति हुई। इनकी लोक-प्रियता का अशभागी विहार भी है।

वर्त्तमान काल में विहार की गद्य-गंगा

विहार के उर्वर साहित्यक्षेत्र में हिन्दी-गद्य का जो अखंड प्रवाह सन् १९११ से १९३० तक प्रवाहित हुआ है, उसकी उपमा गंगा से दी जा सकती है। भारतेन्दु की यह भागीरथी, उनके समकालीन साहित्य-रसिकों की रचना-कालिन्दी के संयोग से विस्तृत होती हुई, द्विवेदीजी की 'सरस्वती' के व्यक्त प्रवाह से हिन्दी-साहित्य को तीर्थराज बना गई। फिर आगे बढ़कर, विहार मे आकर—शोण, सरयू, गंडक, कोशी आदि के समान विविध विहारी लेखकों के सहयोग-समावेश से—पुष्टतर होती चली गई।

किन्तु, जिनकी लेखनी का प्रवाह अजस्र रूप से गंगा की मध्य-धारा के समान प्रवाहित होता रहा है, वे हैं विहार के द्विवेदी श्रीरामलोचनशरणजो। 'बालक' के यशोधन सम्पादक, अगणित पाठ्य पुस्तकों के निर्माता, सैकड़ों साहित्यिक ग्रन्थों के सम्पादक, आधुनिक हिन्दी-व्याकरण के परिष्कर्त्ता, बाल-शिक्षण-विज्ञान के अनुभवी आचार्य, प्रारंभिक शिक्षा-क्रम में आरोह-विधि के आविष्कर्त्ता श्रीशरणजी का नाम हिन्दी-संसार का बच्चा-बच्चा जानता है।

शरणजी की भाषा की छाप, ज्ञात या अज्ञात रूप से, विहार के अनेक नवयुवक लेखकों की रचना में स्पष्ट रूप से झलकती है। जिनकी एक-एक पुस्तक, लक्ष-लक्ष की संख्या मे, विहार के कोने-कोने में, पाठ्य सामग्री बनकर प्रचलित हो रही हो, वह भी प्राय. तीस वर्षों तक, चाहे उसपर सरकारी मुहर हो या नहीं—और ऐसी पुस्तकें एक-दो नहीं, पचासों हैं, उनके प्रभाव का परिधि-विस्तार मापना साधारण काम नहीं।

आपने प्रारम्भिक शिक्षण-पद्धति को सुगम बनाने के लिये जिस स्वाभाविक शैली का सृजन किया है उसका अनुकरण केवल विहार मे ही नहीं, अन्य प्रान्तों मे भी हो रहा है। विहार की क्या बात, अन्य प्रान्तों के लेखक भी, आपके आदर्श पर, आप ही की विधि का अनुसरण करते हुए, पाठ्य पुस्तकों का प्रणयन करते हुए दिखाई देते हैं। अपनी स्वतंत्र मनोवैज्ञानिक सत्ता रखनेवाली गद्य-शैली के प्रवर्त्तक के रूप में आपकी यह सफलता विहार के लिये गौरव की वस्तु है।

आपकी भाषा विशुद्ध, व्याकरण-मर्यादित, वागाडम्बर-रहित एवं टकसाली होती है। वाक्य-विन्यास ऐसा चुस्त-दुरुस्त कि एक शब्द भी इधर-उधर नहीं किया जा सकता। कठिन और दुरूह शैली से, कटुता और अश्लीलता से, आपका कोई नाता नहीं। चंचलता और कल्पना-प्रवणता को आपने कभी अपनी रचना में स्थान नहीं दिया। आपकी भाषा में प्रवाह है, उफान नहीं; वेग है, आवर्त्त नहीं; शुभ्रता है, विविध रंगों का सम्मिश्रण नहीं।

आप बाल-मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं। इसीलिये बाल-साहित्य के निर्माण में आपको सबसे अधिक सफलता मिली है। कोमल मस्तिष्क वाले बालकों को कठिन-से-कठिन विषय हृदयंगम कराने की कला में आप इतने प्रवीण हैं कि अपनी चटपटी शैली के द्वारा बीहड़ विषय को भी हस्तामलकवत् बना देते हैं। इस फन में आपको कमाल हासिल है।

आपकी लेखनी की सबसे बड़ी विजय यह है कि आरम्भ ही से आपने जिस सर्वजन-सुलभ गद्यशैली का सूत्रपात किया, वही आज देशव्यापिनी भाषा के लिये उपयुक्त समझी जा रही है। वास्तविक राष्ट्रभाषा का निखरा हुआ रूप आपकी गद्यशैली में पाया जाता है। बिहार की गद्यगंगा को प्रशस्त प्रवाह-क्षेत्र देने में आपने भगीरथ प्रयत्न किया है।

आपकी गद्यशैली की सर्वजनोपयोगिता समझकर ही आलंकारिक भाषा लिखनेवाले भी उसी की ओर आकृष्ट होते दीख पड़ते हैं। 'गांधी-टोपी' में 'राम-रहीम' के शिल्पी की वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और 'विभूति' का लेखक 'देहाती दुनिया' में उसी सरलता की ओर उन्मुख दृष्टिगोचर होता है। भाषा द्वारा जनता के अन्तस्तल तक पहुँचने का मार्ग-प्रदर्शन करने में ही आपकी सफलता का श्रेय है।

त्रिपथगा गंगा की तरह हिन्दी-गद्य-गंगा की भी तीन धाराएँ फूटी हुई परिलक्षित होती हैं। एक तो सरल गद्य की वह धारा, जिसमें अवगाहन करने के अधिकारी साधारण जन भी होते हैं। अनुदिन लेखकों का ध्यान, अधिकाधिक मात्रा में, इसी तरफ आकृष्ट होता जाता है। दूसरी गम्भीर गद्य की वह धारा है, जिसकी तरङ्ग-भङ्गियों में अवगाहन करनेवाले निष्णात पाठक ही हुआ करते हैं। साधारण पाठक दूर से उसके चंचल प्रवाह को देखकर चमत्कृत होता है; पर उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं करता। तीसरी धारा सरल एवं गम्भीर गद्य-स्रोतों की मिश्रित धारा है। इस वर्ग के लेखकों में जब साहित्य का लालित्य-प्रदर्शन

करने की प्रवृत्ति होती है, पाठकों की हृदय-भूमि को रस-लहरी से . . .
करने की धुन समाती है, तब वे गम्भीर स्रोत को प्रगति देते हैं। पर जिस
उन्हें जन-वर्ग के साथ तादात्म्य स्थापित करने की स्पृहा होती है, विराट्
समुदाय के मस्तिष्क को विकसित करने की इच्छा होती है, उस समय वे सरल
गद्य की धारा प्रवाहित करते हैं।

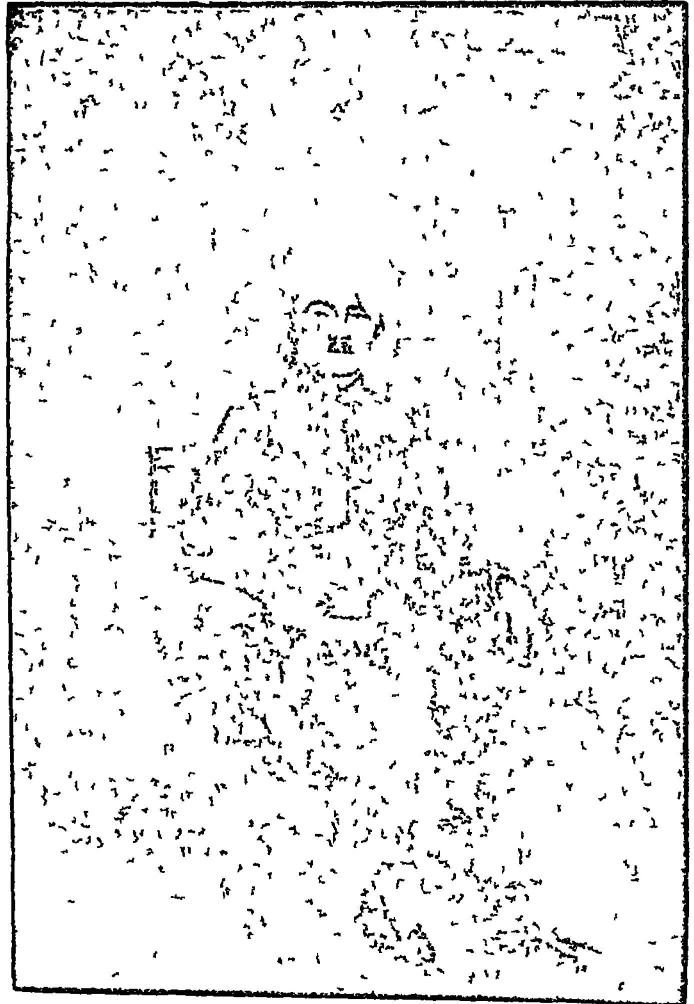
उपरि-कथित तीनों शैलियों में हम पहली के परिपोषकों की चर्चा पहले करेंगे। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरीजी इसके प्रथम प्रगतिशील लेखक हैं। अपनी चुभती शैली और फड़कती भाषा के लिये वे अपने ढंग के एक ही लेखक हैं। उनकी खास अपनी शैली है, जो बिना नाम-मुहर के भी चमकती रहती है। यदि वे अपनी चीज छिपाना भी चाहें तो छिप नहीं सकती। उनकी शैली बोलती है, उनके विराम-चिह्न बोलते हैं। उनकी मुहावरेदार भाषा में जो लोच और लहर है, वह बिहार की सीमा के बाहर भी बहुत कम देख पड़ती है।

प्रोफेसर जनार्दन झा 'द्विज' एम. ए. की साहित्य-सेवा से हिन्दी की समृद्धि-वृद्धि हुई है। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा जिधर प्रधावित हुई, चमत्कार प्रकट करती गई। आपकी करुणरसार्द्र कहानियों में सरल शैली की ही प्रधानता है। आपके भाव चाहे जितने गहरे और मर्मस्पर्शी हों, पर भाषा दुर्बोध नहीं होने पाती। जहाँ आप गद्यकाव्य की छटा दिखलाते हैं वहाँ भी सारल्य का ही प्राबल्य रहता है। आपकी भाषा मे वही ओजस्विता और प्रासादिकता है जो आपकी वाणी—वक्तृत्वशक्ति—मे।

प्रोफेसर हरिमोहन झा की रचना मौलिक विचारों से परिपूर्ण होते हुए भी सरल और आकर्षक होती है। इनकी तेजस्विनी लेखनी बालोपयोगी सरल विषय से लेकर दर्शन-जैसे कठिन विषय तक अबाध गति से चलती है। इनकी रचना में विनोद और परिहास का पुट बड़ा सुन्दर रहता है। अत्यन्त गहन विषय को भी खुलासा तौर से समझाने की इनमें अद्भुत क्षमता है। इसी प्रकार बाबू अच्युतानंद दत्तजी की भाषा भी स्वच्छता और सरलता का नमूना होती है। गम्भीर गवेषणात्मक निबंध से लेकर हास्यरस की रचनाओं तक में ये अपनी स्वाभाविक सरल शैली नहीं छोड़ते। झाजी और दत्तजी दोनों ही शरणजी की शैली के सफल अनुयायी हैं। श्रीअवधनारायण, बाबू गंगापति सिंह बी. ए., पं० कमलनारायण झा 'कमलेश', पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', पं० रामलोचन शर्मा 'कंटक', पं० शशिनाथ चौधरी आदि भी 'शरण'-शैली के अनुगामी हैं।

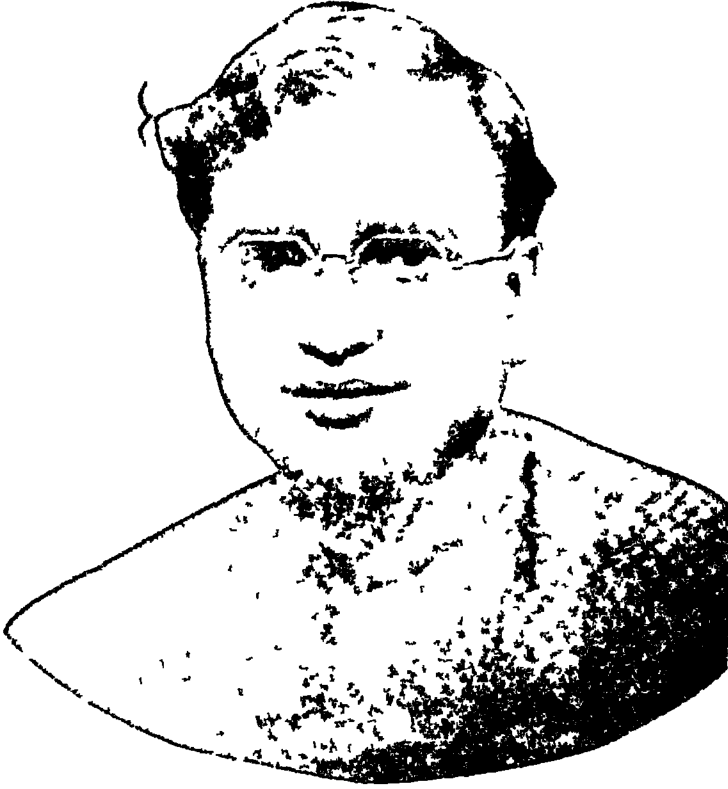


श्रीव्रजनन्दन सहायजी 'व्रजवल्लभ'
(आरा-निवासी)



श्रीमान् सूर्यपुराधीश राजा
राधिकारमणप्रसादसिंह,
एम्० ए०

(पृ० ५५०–५१)



श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

'किशोर'-सम्पादक पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ की रुचिर रचनाओं में भी सरल भाषा का ही प्रवाह है, जिसमें बच्चे और प्रौढ सभी अवगाहन कर सकते हैं। .

'नवशक्ति' और 'राष्ट्रवाणी' के ख्यातनामा सम्पादक श्री देवव्रत शास्त्री की भाषा भी साफ-सुथरी और सुलझी हुई होती है। आपकी गद्यशैली में राष्ट्रीयता का ओज और लोकरुचि को स्फूर्त्ति देनेवाला तेज होता है।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एम. ए. का नाम अग्रगण्य है। संस्कृत के अलंकरणो एवं उर्दू-फारसी के सेहरो से सजी-सजाई आपकी भाषा बिजली की तरह चकाचौंध डालती है। आपके 'रामरहीम' का गद्य, साहित्य के संग्रहालय का, जाज्वल्यमान रत्न है। आपकी शैली में अद्भुत आकर्षण और दिल को फड़का देनेवाली चुहलबाजी है। 'गल्पकुसुमावली' और 'नवजीवन-प्रेमलहरी' में आपने जिस सुसंस्कृत एवं विशद हिन्दीगद्य का मनोज्ञ रूप प्रदर्शित किया था, उसकी रंगीन रश्मि अब यत्रतत्र ही आपकी रचना में बॉकी झॉकी दिखाती है। इधर आप हिन्दीगद्य में उर्दू-फारसी के भावद्योतक शब्दों और मुहावरो को बड़ी सफाई और सफलता के साथ खपाने लगे हैं। आपकी इस प्रवृत्ति से हिन्दीगद्य की व्यापकता और मधुरिमा कहॉ तक बढ़ेगी, यह तो भविष्य ही बतलावेगा। किन्तु इसमें अत्युक्ति नही कि आप यथार्थतः विचक्षण शब्द-शिल्पी हैं।

कुमार गंगानन्द सिंह एम. ए. भी सरल-गम्भीर शैली के विद्वान् लेखक हैं। किन्तु आपका ध्यान शब्दों की अपेक्षा भावो पर अधिक रहता है।

'कर्मवीर'-सम्पादक पं० माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दो में 'मालतीमाला की तरह गद्यमाला पिरोनेवाले साहित्यिक' प्रोफेसर शिवपूजन सहाय हैं, जिनकी गम्भीर गद्य-रचना-शैली प्राञ्जल होती है। भद्दी-से-भद्दी रचना भी आपके हाथ में पड़कर आपकी लेखनी से कट-छॅटकर निखर उठती है। मिट्टी को छूकर सोना बनाना आप ही का काम है।

पं० जगदीश झा 'विमल' भी इस वर्ग के विख्यात लेखक हैं। इनका गद्य सरल और गंभीर दोनो प्रकार का है। इनमें भी शब्दालंकार और भावगाम्भीर्य की विशेषताएॅ प्रायः पाई जाती हैं।

गम्भीर गद्य-लेखकों मे उदग्र प्रतिभाशाली पं० नंदकिशोर तिवारी बी. ए. का नाम गौरव के साथ लिया जायगा। आप महारथी, चॉद, भविष्य, कर्मयोगी, सुधा

आदि प्रथितयशा पत्र-पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन करके पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपके लिखे हुए सम्पादकीय लेख आपकी प्रगतिशील विचार-धारा के परिचायक हैं।

पं० दिनेशदत्त झा बी. ए. हिन्दी-संसार के अनुभवी पत्रकार हैं। आपके गम्भीराशय विशुद्ध गद्य से सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' लगभग पन्द्रह-बीस वर्षों तक उपकृत रहा। इस समय आप पटना के सुन्दर दैनिक 'आर्यावर्त्त' के प्रधान सम्पादक हैं। आपका गद्य भारतीय संस्कृति का भावोद्रेक करता है।

मासिक 'विश्वमित्र' के भूतपूर्व सफल सम्पादक प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र की गम्भीर लेखन-शैली से हिन्दीसंसार पूर्ण परिचित है। आपका गद्य उदात्त-भावपूर्ण शब्दयोजना से अलंकृत होता है। उसके प्रत्येक वाक्यविन्यास में उत्साहोत्तेजन का बल रहता है।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एम० ए० वस्तुतः गम्भीर विचारपूर्ण गद्य के अत्युत्कृष्ट लेखक हैं। आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शिष्य ही नहीं, उनकी अभिव्यंजना-शैली के प्रतिनिधि भी हैं। आपके साहित्यिक निबंधों और मार्मिकतापूर्ण आलोचनाओं में आचार्य शुक्लजी की दिव्यात्मा बोलती है। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' आपका बड़ा ही अनूठा गद्य-ग्रंथ है।

प० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एम० ए० की साधु गद्य-रचनाओं ने भक्ति-साहित्य और सन्त-साहित्य का मर्मोद्घाटन करने मे अभूतपूर्व भावुकता एवं सहृदयता प्रदर्शित की है। आप 'कल्याण' (गीता प्रेस) के सम्पादक-मंडल के पुण्यश्लोक सदस्य हैं। यदि सुधांशुजी विहार के रामचन्द्र शुक्ल हैं, तो माधवजी विहार के वियोगी हरि हैं।

तीसरी शैली की गद्य-धारा के प्रधान कर्णधारो में श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' एवं महापंडित राहुल सांकृत्यायन के नाम अग्रगण्य हैं। 'वियोगी'जी के गद्य में कविकल्पना का चमत्कार ठौर-ठौर बड़ा मनोरम मिलता है। इन्होने कहानियों एवं संस्मरणों में कहीं गम्भीर और कहीं सरल शैली की छटा दिखाई है। और, राहुलजी ने तो कुछ ही वर्षों में हिन्दी का भांडार इस प्रकार सुसम्पन्न कर दिया है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उनके दर्जनो सुन्दर और उपादेय गद्य-ग्रंथ प्रकाशित होकर यथेष्ट लोकप्रियता सम्पादित कर चुके हैं।

'दिनकर'जी कवि-रूप में प्रकाशमान हैं। पर जहाँ-कहीं गम्भीर या सहज गद्य लिखा है वहाँ अपने नाम के अनुरूप चमक रहे हैं।

प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीअनूपलाल मंडल की भाषा भी कहीं गम्भीर और कहीं सरल होती है। श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' की गद्यशैली भी यथोचित प्रसंग के अनुकूल बड़ी मनभावनी होती है। इनकी गद्य-गरिमा 'वैशाली' के प्रांगण में चमक चुकी है।

श्रीजयकिशोरनारायण सिंह में ललित साहित्य की रचना की आश्चर्यजनक प्रतिभा है। आपके कलामंडित निबन्ध सचमुच साहित्य की अक्षय्य सम्पत्ति हैं। आपके गद्य में आपकी कवित्व-शक्ति का सहयोग मणिकाञ्चन-संयोग के सदृश आह्लादकर प्रतीत होता है।

कविवर 'आरसी' जी की गद्य-रचना भी मनोहारिणी होती है। उनकी चितचोर कहानियाँ बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी जाती हैं। उनका गद्य सुस्वादु और चित्तप्रसादक होता है।

गोपालसिंह 'नैपाली' का कविहृदय गद्य का हीरक-हार पहने देख पड़ता है। इनका गद्य बड़ा स्निग्ध, शीतल, सुरुचिवर्द्धक और शोभन होता है।

श्रीभोलालाल दास, बी० ए०, बी०-एल० ने गम्भीर गद्य भी लिखा है, सरल भी। 'अक्षरों की लड़ाई'-सरीखी नये ढंग की पुस्तक में सरसता और सरलता पूरी सफाई से दिखाई है।

'विद्यापति-साहित्य' के स्वाध्यायी आलोचक श्रीनरेन्द्रनाथ दास भी इसी शैली के लेखक हैं। इनका 'विद्यापति-काव्यालोक' कमनीय गद्य-ग्रन्थ है।

इनके अतिरिक्त बिहार में और भी उच्च कोटि के गद्यकार हैं जिनकी शैली बड़ी निर्मल, मधुर, प्रसन्न और आलोकप्रद होती है। यथा—डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए०, प्रोफेसर धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री एम० ए०, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद साहित्याचार्य साहित्यरत्न एम० ए०, प्रोफेसर महेश्वरीप्रसाद सिंह 'महेश' एम० ए०, श्रीरामावतार शर्मा एम० ए० बी० एल०, श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, साहित्याचार्य मग, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद', श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीगोवर्द्धन-लाल गुप्त एम० ए० बी० एल०, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीहंसकुमार तिवारी, श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर', श्रीराधारमण शास्त्री, प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़ एम० ए० इत्यादि। इनमें डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर धर्मेन्द्र शास्त्री बड़े विद्वान समालोचक और अन्वेषक हैं। दोनों के गद्य-ग्रन्थ प्रकाशित और प्रचारित

आदि प्रथितयशा पत्र-पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक सम्पादन करके पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपके लिखे हुए सम्पादकीय लेख आपकी प्रगतिशील विचार धारा के परिचायक हैं।

पं० दिनेशदत्त झा बी. ए. हिन्दी-संसार के अनुभवी पत्रकार हैं। आपके गम्भीराशय विशुद्ध गद्य से सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' लगभग पन्द्रह-बीस वर्षों तक उपकृत रहा। इस समय आप पटना के सुन्दर दैनिक 'आर्यावर्त्त' के प्रधान सम्पादक हैं। आपका गद्य भारतीय संस्कृति का भावोद्रेक करता है।

मासिक 'विश्वमित्र' के भूतपूर्व सफल सम्पादक प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र की गम्भीर लेखन-शैली से हिन्दीससार पूर्ण परिचित है। आपका गद्य उदात्त-भावपूर्ण शब्दयोजना से अलंकृत होता है। उसके प्रत्येक वाक्यविन्यास में उत्साहोत्तेजन का बल रहता है।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एम० ए० वस्तुत. गम्भीर विचारपूर्ण गद्य के अत्युत्कृष्ट लेखक हैं। आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शिष्य ही नहीं, उनकी अभिव्यंजना-शैली के प्रतिनिधि भी हैं। आपके साहित्यिक निबंधों और मार्मिकतापूर्ण आलोचनाओं मे आचार्य शुक्लजी की दिव्यात्मा बोलती है। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' आपका बड़ा ही अनूठा गद्य-ग्रंथ है।

पं० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' एम० ए० की साधु गद्य-रचनाओं ने भक्ति-साहित्य और सन्त-साहित्य का मर्मोद्घाटन करने मे अभूतपूर्व भावुकता एव सहृदयता प्रदर्शित की है। आप 'कल्याण' (गीता प्रेस) के सम्पादक-मडल के पुण्यश्लोक सदस्य हैं। यदि सुधांशुजी विहार के रामचन्द्र शुक्ल हैं, तो माधवजी विहार के वियोगी हरि हैं।

तीसरी शैली की गद्य-धारा के प्रधान कर्णधारो में श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' एवं महापंडित राहुल सांकृत्यायन के नाम अग्रगण्य हैं। 'वियोगी'जी के गद्य में कविकल्पना का चमत्कार ठौर-ठौर बड़ा मनोरम मिलता है। इन्होंने कहानियों एवं संस्मरणो में कहीं गम्भीर और कहीं सरल शैली की छटा दिखाई है। और, राहुलजी ने तो कुछ ही वर्षों मे हिन्दी का भांडार इस प्रकार सुसम्पन्न कर दिया है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे उनकी यह सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। उनके दर्जनों सुन्दर और उपादेय गद्य-ग्रंथ प्रकाशित होकर यथेष्ट लोकप्रियता सम्पादित कर चुके हैं।

'दिनकर'जी कवि-रूप में प्रकाशमान हैं। पर जहाँ-कहीं गम्भीर या सहज गद्य लिखा है वहाँ अपने नाम के अनुरूप चमक रहे हैं।

प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीअनूपलाल मंडल की भाषा भी कहीं गम्भीर और कहीं सरल होती है। श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन' की गद्यशैली भी यथोचित प्रसंग के अनुकूल बड़ी मनभावनी होती है। इनकी गद्य-गरिमा 'वैशाली' के प्रांगण में चमक चुकी है।

श्रीजयकिशोरनारायण सिंह में ललित साहित्य की रचना की आश्चर्यजनक प्रतिभा है। आपके कलामंडित निबन्ध सचमुच साहित्य की अक्षय्य सम्पत्ति हैं। आपके गद्य में आपकी कवित्व-शक्ति का सहयोग मणिकाञ्चन-संयोग के सदृश आह्लादकर प्रतीत होता है।

कविवर 'आरसी' जी की गद्य-रचना भी मनोहारिणी होती है। उनकी चितचोर कहानियाँ बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी जाती हैं। उनका गद्य सुस्वादु और चित्तप्रसादक होता है।

गोपालसिंह 'नैपाली' का कविहृदय गद्य का हीरक-हार पहने देख पड़ता है। इनका गद्य बड़ा स्निग्ध, शीतल, सुरुचिवर्द्धक और शोभन होता है।

श्रीभोलालाल दास, बी० ए०, बी०-एल० ने गम्भीर गद्य भी लिखा है, सरल भी। 'अक्षरों की लड़ाई'-सरीखी नये ढंग की पुस्तक में सरसता और सरलता पूरी सफाई से दिखाई है।

'विद्यापति-साहित्य' के स्वाध्यायी आलोचक श्रीनरेन्द्रनाथ दास भी इसी शैली के लेखक हैं। इनका 'विद्यापति-काव्यालोक' कमनीय गद्य-ग्रन्थ है।

इनके अतिरिक्त बिहार मे और भी उच्च कोटि के गद्यकार हैं जिनकी शैली बड़ी निर्मल, मधुर, प्रसन्न और आलोकप्रद होती है। यथा—डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र एम० ए०, प्रोफेसर धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री एम० ए०, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद साहित्याचार्य साहित्यरत्न एम० ए०, प्रोफेसर महेश्वरीप्रसाद सिंह 'महेश' एम० ए०, श्रीरामावतार शर्मा एम० ए० बी० एल०, श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, साहित्याचार्य सग, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद', श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीगोवर्द्धन-लाल गुप्त एम० ए० बी० एल०, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, श्रीहंसकुमार तिवारी, श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर', श्रीराधारमण शास्त्री, प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़ एम० ए० इत्यादि। इनमें डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर धर्मेन्द्र शास्त्री बड़े विद्वान समालोचक और अन्वेषक हैं। दोनों के गद्य-ग्रन्थ प्रकाशित और प्रचारित

होकर हिन्दी-प्रेमियों-द्वारा सम्मानित हो चुके हैं। महेशजी और रामावतारजी प्रभावशाली गद्य-लेखक हैं। दुर्गाशंकरजी और 'मग'जी गद्यकाव्य और कहानी में वड़ी रसज्ञता दिखाते हैं। रामधारी वावू और दीक्षितजी विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों मे हैं और गद्यक्षेत्र में वरसों कीर्त्ति कमा चुके हैं। गुप्तजी सुप्रतिष्ठित निवन्धकार हैं। जानकीवल्लभजी समालोचना, कहानी और निबंध के सिद्धहस्त लेखक हैं—साथ ही, संस्कृत के वहुत ही अच्छे विद्वान् और कवि भी। तिवारीजी भी कवि होने के साथ-साथ निवधकार और समालोचक हैं। 'नटवर' जी का गद्य वडा चटकीला-भडकीला होता है और उसमें चुलवुलाहट काफी रहती है। राधारमणजी की कहानियाँ साहित्यिक आनन्द देती हैं। गौडजी का एकांकी नाटक वड़ा सुन्दर वन पडा है। हर तरह से और हर तरफ से गद्य की उन्नति और परिपुष्टि तथा सजावट का ही प्रयत्न हो रहा है। विहार के गद्यकारों का यह सामूहिक प्रयत्न उज्ज्वल भविष्य के सामीप्य का सूचक है।

वर्त्तमान समय के विहारी गद्य-लेखको मे सारन (छपरा) जिले के डॉक्टर सत्यनारायण, पी-एच्० डी० का नाम अपूर्व ज्योति के साथ जाज्वल्यमान दृष्टिगत होता है। आपके समान वहुज्ञ एवं वहुश्रुत लेखक पर विहार को गर्व होना स्वाभाविक है। आपने सर्वथा नूतन गद्य-रचना-प्रणाली का सूत्रपात किया है। आपकी हृदयहारिणी गद्य शैली हिन्दी-पाठकों के लिये अद्भुत आकर्षण की वस्तु है। 'अपराजित अवीसीनिया', 'आवारे की योरप-यात्रा', 'युद्ध-यात्रा', 'रोमांचक रूस मे', 'हवाई युद्ध', 'लड़ाई के मोर्चे पर', 'उन्नीस सौ चालीस' आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं, जो हिन्दी-संसार में अपने विषय और अपनी शैली का कोई जोड नहीं रखतीं। विलकुल नया विषय, नई वर्णन-शैली, नई कल्पना, नई सूझ। अव आप बँगला-भाषा में अपनी हिन्दी-पुस्तको को स्वयं ही लिखकर प्रकाशित करा रहे हैं। बँगला की प्रसिद्ध पत्रिका 'शनिवारेर चिट्ठी' (कलकत्ता) के सम्पादक ने उसके एक अंक (जनवरी, १६४१) में आपके विषय मे जो कुछ लिखा है, उसका यथार्थ अनुवाद हम नीचे दे रहे है। हिन्दी-पत्र-सम्पादक क्या इस प्रतिभा-सम्पन्न बिहारी लेखक के विषय मे इस तरह दिल खोलकर कभी लिख सकेंगे?—

"श्रीसत्यनारायण अबंगाली भारतवासी हैं। जर्मनी के फ्रांकफोर्ट-विश्वविद्यालय से आपने 'डाक्टरेट' की उपाधि पाई है। आपके विषय थे अर्थनीति और राष्ट्रनीति। ऐसे विचित्र और अभिज्ञता-सम्पन्न मनुष्य भारत में वहुत थोड़े ही देखे गये हैं। इस समय आपकी अवस्था तीस से अधिक नहीं है। इसी अल्प

वयस में आपने भारत, अफ्रिका का उत्तरी भाग और सारा योरप छान डाला है—वह भी खाली हाथ! भारत की कई प्रान्तीय तथा योरप की अनेक भाषाओं पर आपका अधिकार उन स्थानों के निवासियों-सा है। रूस में रूसी और जर्मनी में जर्मन के रूप में आप अपनेको प्रकट करने में समर्थ हुए थे। इन दिनों आप बंगाल में ही हैं। बातचीत, वेशभूषा से हम आपको अबंगाली कह ही नहीं सकते। विभिन्न देशों की भाषाएँ और संस्कृतियाँ अपनाने में आप बड़े पटु हैं, इनमें आपको आश्चर्यजनक सफलता मिली है। अपने घुमक्कड़ जीवन के आरम्भ में आपने अपने गुरु से जो तीन बहुमूल्य शिक्षाएँ प्राप्त की थीं उनका पालन आप आज तक करते आ रहे हैं। उन्हीं शिक्षाओं के फलस्वरूप आपने अपने जीवन में खूब ही जानकारी पाई है। उन शिक्षाओं का सारांश है—'पृथ्वी के देशों और मनुष्यों को जानने के लिये जिस ओर आँखे जायँ, निकल पड़ो; उस देश के मनुष्यों के बीच अपनेको खपा दो; यदि वहाँ की भाषा का ज्ञान न हो तो इशारे से या किसी तरह उनके संग बोलने की चेष्टा करो; उनलोगों की तरह उन्हीं के बीच बैठ आहार करो।' वस्तुतः यही आदर्श अपनाकर आपने अनेक देशों का सच्चा परिचय प्राप्त किया है। रूस और जर्मनी की आन्तरिक स्थिति का सच्चा परिचय इस प्रकार किसी ने पाया है, हम नहीं कह सकते। साधारण भ्रमणकारियों के समान ट्रेन, मोटर, होटल और विलास के साथ, गाइडबुकों में वर्णित प्रसिद्ध स्थानों को छूकर ही, आपने अपना कर्त्तव्य समाप्त नहीं कर लिया, बल्कि बहुत आत्मत्याग और दुःख झेलने के उपरान्त प्रत्येक देश के मर्म का स्पर्श करने में आप समर्थ हो सके हैं। जर्मनी के युवक-आन्दोलन में आपने स्वयं विशेष रूप से योगदान किया था। यहाँ की सोशल डेमोक्रेटिक-पार्टी के आप मेम्बर थे। हिटलर के अभ्युदय-काल में नेशनल, सोशल और सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टियो के बीच जो संघर्ष हुआ था, उसे देखने का आपको सुयोग मिला था। रूस का प्रथम परिचय आपने मैक्सिम गोर्की की सहायता से पाया। वहाँ की वर्णमाला से गोर्की ने ही आपका परिचय कराया। गोर्की की सहायता से ही आपने 'सोवियट' की राष्ट्र-नीति और उसका आदर्श समझा। इटली-अबीसीनिया-युद्ध के समय योरप की एक प्रसिद्ध समाचार-एजेन्सी के प्रथम श्रेणी के संवाद-दाता की हैसियत से आप अबीसीनिया गये। व्यक्तिगत रूप से आपने अबीसीनिया के पक्ष में योगदान किया; वहाँ के भारतवासियों के उद्धार में सहायता पहुँचाई। सन् १९३६ में स्वदेश लौटकर, तीन वर्षों के अन्दर, योरप और इटली-अबीसीनिया-युद्ध के विषय में

आपने हिन्दी में दस पुस्तकें लिखीं और उन्हें प्रकाशित करवाया। हाल में वंगभाषा में आपकी 'रोमांचक रशियाय' नामक पुस्तक निकली है। इसे पढ़ने पर कवि-हृदय का सूक्ष्म और अपूर्व परिचय मिलता है। रवीन्द्रनाथ ने पुस्तक पढ़कर आश्चर्य प्रकट किया है। हमलोग वंगभाषा में आपको पाकर अनेक आशाएँ करते हैं। इन दिनों आप 'दिशेहारा योरपे' नामक पुस्तक लिखने मे व्यस्त हैं। इसके एक-दो अध्याय 'शनिवारेर चिट्ठी' में भी प्रकाशित होंगे। इसके अतिरिक्त योरप के अनुभवों के विषय में आपकी रचनाएँ भी हम प्रकाशित करेंगे।"

नये ढंग की गद्य-शैली में कलापूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण रचना करनेवाले एक दूसरे विहारी लेखक भी हैं, जिनका शुभ नाम है पंडित लक्ष्मीकान्त झा, एम. ए.। आप 'आइ. सी. एस.' हैं और वेकन, एडिसन, चेस्टर्टन, गार्डिनर आदि जगत्प्रसिद्ध अँगरेजी-लेखकों की शैली पर आपने हिन्दी मे कई ऐसे मनोहर निबंध रचे हैं, जिनमें आपकी प्रतिभा की प्रभा देखकर स्वभावत: गौरव का अनुभव होता है। आपकी ऐसी रचनाओं का एक संग्रह, 'मैंने कहा' नाम से, प्रयाग के लीडर प्रेस से निकला है। यद्यपि अब आप शासक-वर्ग मे चले गये, तथापि हिन्दी को आपसे वड़ी-वड़ी आशाएँ हैं।

उदीयमान साहित्यिकों में सुपरिचित कहानीकार एवं व्यंग्यविनोद-लेखक श्रीराधाकृष्णजी, हास्यरस के रसिक लेखक श्रीसरयू पंडा गौड़, गद्य-पद्य के उत्साही लेखक साहित्याचार्य श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', श्रीतारकेश्वर प्रसाद वर्मा, श्रीमोहनलाल गुप्त, श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव, श्रीराधाकृष्णप्रसाद, श्रीवन्धु, श्रीनगेन्द्र कुमर बी० ए०, श्रीजयकान्त मिश्र, श्रीउमाशंकर, श्रीलक्ष्मीपति सिंह, श्रीराकेश, श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी', श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त, श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग' बी० ए०, श्रीशुकदेवनारायण आदि प्रतिभावान् लेखकों की सुघड़ लेखनी से हिन्दी गद्य का जो शृंगार हो रहा है, वह विहार के लिये बहुत ही आशाप्रद है।

इस तरह विहार में हिन्दी-गद्य-निर्माण की जो चेष्टाएँ हुई हैं और हो रही हैं, उन्हें देखकर बहुलांश में सन्तोष ही होता है। आशा है, विहार में हिन्दी-गद्य निर्माण का कार्य दिन-दिन प्रगतिशील होता जायगा। और, विहार की गद्य-गंगा में अवगाहन कर हिन्दी-संसार मानसिक शीतलता प्राप्त करेगा।



बिहार के कथाकार

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव; समस्तीपुर (दरभंगा)※

साहित्य में कथाओं का बड़ा महत्त्व है। मानव-जीवन और मानव-हृदय के साथ कथा-साहित्य का अभिन्न सम्बन्ध है। इस युग में कथा-साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। किन्तु सभी युगों में मानव-हृदय को आकृष्ट करने के लिये कथाओं का ही उपयोग किया गया है। मानव-जाति के सबसे पुराने ग्रंथ 'ऋग्वेद' में भी मूल रूप में कथाएँ हैं। मानव-विकास के साथ-साथ कथा-साहित्य का भी विकास हुआ। संस्कृत-साहित्य में तो कथाएँ भरी पड़ी हैं। हिन्दी में पद्यबद्ध कथाएँ कई हैं और पुराने गद्य में भी कुछ हैं; पर वर्त्तमान गद्य में बहुत दिनों तक गिनी-चुनी कहानियाँ ही रहीं। आधुनिक गद्य के आदि-कथाकरों—सदासुखलाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और लल्लूलाल—में सदल मिश्र बिहार के ही थे। इस प्रकार बिहार आधुनिक हिन्दी-गद्य के आदि-काल से ही कथा की सृष्टि में हाथ बँटाता आ रहा है।

पंडित सदल मिश्र † आरा नगर के मिश्रटोला मुहल्ले के रहनेवाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। अपनी विद्वत्ता के कारण सरकार-द्वारा आप आरा से

※ आप स्वयं भी बिहार के एक होनहार कथाकार हैं। आप उन कथाकारों में हैं जो कल्पना के यान पर उड़ते नहीं, बल्कि अपने ही इर्दगिर्द के चित्रों को सूक्ष्म नेत्रों से देखकर कागज पर उतारते हैं। इसीलिये आपकी कहानी केवल कहानी ही नहीं, जीवन की बोलती तसवीर बन जाती है। सरिता, समाज की चिता, पराया पाप, चुंबक, देशभक्त, होमशिखा आदि कहानी-संग्रह हैं। आप नाटककार और अभिनेता भी हैं। आपके लिखे नाटक—करुण पुकार, अतीत भारत, ठंढी आग आदि—रंगमंच पर सफलता से अभिनीत होने योग्य हैं। —सम्पादक

† विक्रम-संवत् १८२५ से संवत् १९०१ तक। रचना-काल संवत् १८६०।

पटना बुलाये गये और वहाँ से फोर्ट-विलियम-कालेज (कलकत्ता) में भेजे गये। आपकी भाषा प्रौढ और परिमार्जित है; उसमें वह शिथिलता या अस्थिरता नहीं है जो लल्लूलाल के 'प्रेम-सागर' में है।*

बाबू श्यामसुन्दर दासजी आपके विषय में लिखते हैं—"मेरी समझ में लल्लूलाल कोई बड़े विद्वान् नहीं थे। किन्तु सदल मिश्र पंडित थे और इन्होंने अपनी शक्ति पर भरोसा करके रचना की। इस दृष्टि से इनका आसन लल्लूलाल से ऊँचा है। भाव-प्रकाश की सुन्दर और आकर्षक पद्धति, भाषा की परिपक्वता, शुद्धता, सजीवता और वृत्त का निर्वाह, उसकी क्रम-बद्धता जैसी इनकी है, वैसी इनके समकालीनों की नहीं। इन्होंने मुहावरों का सुन्दर उपयोग किया है और तुकान्त के लटके से अपनेको बचाया है। इनका 'नासिकेतोपाख्यान' कथा साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है—"एक साथ गद्य की परम्परा चलानेवाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिन्दी का पूरा पूरा आभास मुंशी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। लल्लूलाल के समान सदल मिश्र की भाषा में न तो ब्रज-भाषा के रूपों की वैसी भरमार है और न परंपरागत काव्यभाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँतक हो सका है, खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है।"

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक कथाकार बाबू देवकीनंदन खत्री का जन्म भी बिहार में ही—मालीनगर (मुजफ्फरपुर) में—हुआ था। उनकी बाल्यावस्था उत्तर-बिहार में और युवावस्था दक्षिण-बिहार के टिकारी दरबार में बीती थी। वहीं से काशीनरेश के दरबार में पहुँचने का सूत्र मिला, जहाँ उपन्यास लिखने लगे।

* "यदि लल्लूलाल भी सदल मिश्र की भाँति भाषा को स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने देते तो सम्भव है उनकी प्राचीनता इतनी न खटकती और कुछ दोषों का परिमार्जन भी अवश्य हो जाता। सदल मिश्र की भाषा व्यावहारिक है। उसमें न तो ब्रजभाषा का अनुकरण है और न तुकान्त का लटका। मुहावरों का सुन्दर उपयोग कर सके हैं। भाव-प्रकाश की पद्धति सुन्दर और आकर्षक है। कहीं-कहीं इनकी रचना आशा से अधिक संस्कृत—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समीप पहुँचती—दिखाई पड़ती है। इसमें साहित्य की अच्छी झलक है। भाव-व्यंजना में भी कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती।"

—(हिन्दी-गद्य-शैली का विकास)

हिन्दी के स्वनामधन्य मौलिक कथाकार पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के आरंभिक साहित्यिक जीवन का बहुत बड़ा भाग बिहार में ही कटा है। आपके औपन्यासिक जीवन का आरंभ बिहार के आरा शहर में ही हुआ था। सेठ नारायणदास के कृष्ण-मंदिर मे लगातार कई साल आप प्रधान पुजारी रहे। आपके ६५ उपन्यासों में शुरू के दो चार बिहार मे ही लिखे गये और आपके एकमात्र सुपुत्र पंडित छबीलेलाल गोस्वामी का, जो स्वयं बड़े प्रसिद्ध गल्प लेखक हैं, बिहार के आरा नगर में ही जन्म हुआ था। इस प्रकार आपकी कृति और कीर्त्ति की जन्मभूमि बिहार ही है।

बिहार के प्राचीन कथाकारों में पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र (चम्पारन) और पंडित भुवनेश्वर मिश्र (दरभंगा) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम मिश्रजी के लिखे कई उपन्यास एक अग्निकांड में स्वाहा हो गये, जैसा बाबू श्यामसुन्दर दासजी ने 'हिन्दी-कोविदरत्नमाला' में लिखा है; और द्वितीय मिश्रजी का 'घराऊ घटना' उपन्यास लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित होकर हिन्दी-संसार में काफी प्रसिद्ध हो चुका है। हिन्दी के पुराने मौलिक उपन्यासों में 'घराऊ घटना' आरम्भिक काल का उपन्यास माना जाता है।

आरा-निवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोर जैन और पंडित सकलनारायण शर्मा ने भी उस समय मौलिक उपन्यास लिखे थे, जब हिन्दी में मौलिक उपन्यासो की संख्या उँगलियों पर गिन लेने योग्य थी। 'प्रमिला' और 'सुलोचना' जैन महाशय के दो उपन्यास प्रकाशित हैं ; आपने कई धार्मिक कहानियाँ और नाटक भी लिखे थे। शर्माजी का उपन्यास 'अपराजिता' नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) से प्रकाशित है।

आरा-निवासी बाबू व्रजनन्दन सहाय बिहार के परम यशस्वी कथाकार हैं। आपके सम्बन्ध मे आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—"काव्य-कोटि मे आनेवाले भाव-प्रधान उपन्यास, जिनमे भावो या मनोविकारों की प्रगल्भ और वेगवती व्यंजना का लक्ष्य प्रधान हो—चरित्र-चित्रण या घटनावैचित्र्य का लक्ष्य नहीं, हिन्दी मे न देख, बाबू व्रजनन्दनसहाय ने दो उपन्यास इस ढंग के प्रस्तुत किये— सौन्दर्योपासक' और 'राधाकान्त' (संवत् १९६९)।"

बाबू व्रजनन्दनसहाय का स्थान हिन्दी के कथा-साहित्य में बहुत ऊँचा है। आपने उपन्यास-लेखकों को एक नई दिशा सुझाई। एक आलोचक के शब्दों में "जो प्रभविष्णुता वक्ता की वाणी मे रहती है वही इनकी शैली मे है। लेखक अपनी कला से पाठक को इतना वशीभूत कर लेता है कि वह उसके संकेतों पर

एक भाव-तरंग से दूसरी भाव-तरंग पर डूबता-उतराता फिरता है।" आपके 'सौन्दर्योपासक' की आलोचना करते हुए कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने द्विवेदी-युग की 'सरस्वती' में लिखा था—"यदि बँगला के उपन्यासों के साथ किसी हिन्दी-उपन्यास को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो इसी को।"

'लालचीन' और 'विश्वदर्शन' भी आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आपकी मधुर भाषा उपन्यास-पाठक के चित्त को आकृष्ट कर लेती है। भाव-विस्तार और अनल्प कल्पना तथा शब्दसौष्ठव देखते ही बनता है। वर्णन की विशदता में सूक्तियाँ भी खूब रंग लाती हैं।

पंडित जनार्दन झा 'जनसीदन' (मुजफ्फरपुर) ने कथा-साहित्य को वृद्धिङ्गत करने में बहुत प्रयास किया है। महाकवि विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा' नामक कहानी की पोथी का आपने संस्कृत से हिन्दी में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। आपके द्वारा अनुवादित कई बँगला-उपन्यास प्रयाग के इंडियन प्रेस से हिन्दी में निकले हैं। प्रोफेसर पंडित अक्षयवट मिश्र ने भी कई बँगला-उपन्यासों के अनुवाद किये हैं, जो खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित हैं।

बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा (भागलपुर), पंडित जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ (छपरा), रायसाहब लक्ष्मीनारायणलाल (गया) और शाहपुर पट्टी (शाहाबाद) के पंडित पारसनाथ त्रिपाठी अपने समय के अच्छे कथाकार थे। इन चारों में रायसाहब अभी जीवित हैं। आप ही 'लक्ष्मी' निकालते थे और अब भी 'गृहस्थ' निकालते हैं। वर्माजी भक्तिपरक धार्मिक कथाएँ लिखा करते थे। शर्माजी कथाकार के अतिरिक्त सफल कथावाचक भी थे। इनलोगों की कहानियाँ प्रेमाभक्ति, सत्संग, श्रीकमला आदि पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों में पड़ी हैं। त्रिपाठीजी की कहानियाँ इन्दु, लक्ष्मी, पाटलिपुत्र, मनोरंजन आदि पत्रों में प्रायः निकला करती थीं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में बिहार के प्रतिभाशाली गल्प-लेखक पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने कथासाहित्य की वृद्धि में बड़े उत्साह से योग दिया। आप स्वनामधन्य पंडित सदल मिश्र के वंशधरों में थे। बँगला, गुजराती, मराठी, अँगरेजी आदि भाषाओं से अनुवादित करके आपने हिन्दी के कथा-साहित्य को कई अच्छी पुस्तकें दीं। आप सिद्धहस्त अनुवादक और लब्धकीर्त्ति सम्पादक थे। आपकी लिखी सीता, शकुंतला, सती पार्वती, रामचरित्र आदि पौराणिक कथा पुस्तकें उच्चकोटि की वस्तु हैं। आपके 'मागधी-कुसुम' आदि उपन्यास बड़े ललित

एवं मनोरंजक हैं। इन्दु, लक्ष्मी, मर्यादा, मनोरंजन, चैतन्यचंद्रिका, शिक्षा, धर्माभ्युदय आदि पत्रों में आपकी कई कहानियाँ छप चुकी हैं। हास्यरस की कहानियाँ भी मतवाला, मौजी, गोलमाल, हिन्दूपंच आदि विनोदी पत्रों में छपी थीं। आप कुशल अभिनेता, सुवक्ता और आशु पद्यकार भी थे। लगभग बीस बरसों तक अनवरत साहित्यसेवा करके आप अकस्मात् चल बसे। फिर भी इतना अधिक लिखा और ऐसा सुन्दर लिखा कि आपकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित होने पर एक विशाल पोथा बन जायगा, मगर साहित्य में एक अनमोल चीज आ जायगी।

उक्त शर्माजी के एक मित्र आरा-निवासी बाबू रामप्रसाद गुप्त भी बड़े होनहार कथाकार थे। युवावस्था में ही उनका देहान्त हो गया; पर उनका 'महाराष्ट्र-प्रभात' नामक वीररसात्मक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है, जिससे उनकी ओजस्विनी लेखनी की शक्ति का आभास मिलता है। उनकी प्रतिभा कथासाहित्य की सृष्टि के उपयुक्त थी; किन्तु ईश्वरेच्छा बलीयसी!

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम भाग बिहार के कथा-साहित्य के लिये बड़ा शुभ रहा। इसी भाग में राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एम. ए. और बाबू शिवपूजनसहाय का जन्म हुआ—क्रमशः सन् १८९१ और सन् १८९३ ई० में। बिहार का आधुनिक कथा-साहित्य इन्हीं दो सज्जनों से आरम्भ होता है। आधुनिकता का समावेश इन्हीं की रचनाओं में पाया जाता है। और, आज का जो अति आधुनिक कथा-साहित्य बिहार में है, उसको उत्तेजना देने का श्रेय इन्हीं लेखकों को प्राप्त है। दोनो का रचना-काल क्रमशः १९०९ और १९११ से शुरू होता है। उस समय की कहानियाँ इनके संग्रहो में संकलित हैं।

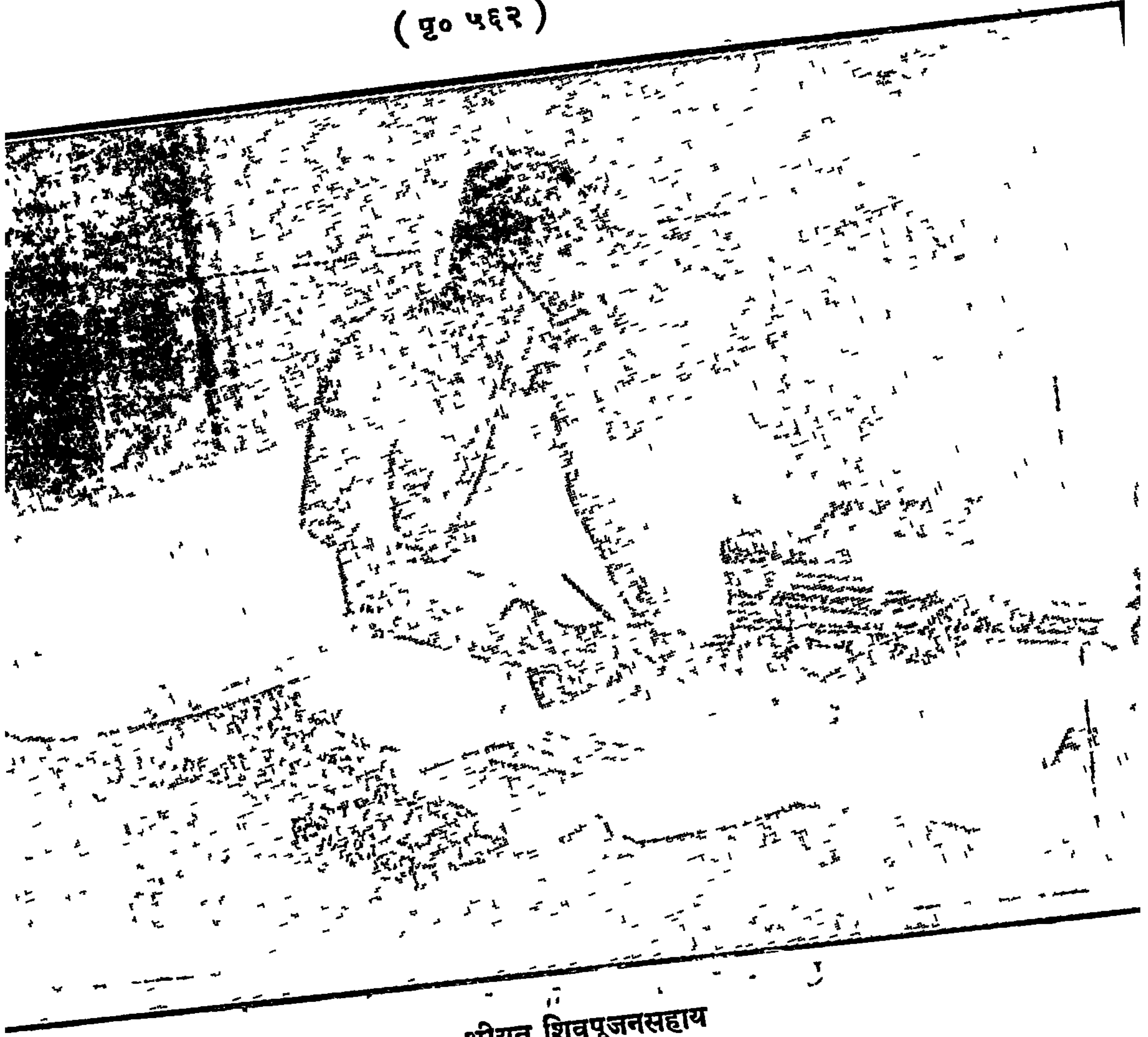
राजा साहब हिन्दी के कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। आपका अध्ययन गहरा है। अतएव आपकी रचनाएँ प्रौढ होती हैं। संस्कृत, फारसी और बँगला के आप अच्छे जानकार हैं। आपकी अपनी शैली बेजोड़ है। भाषा झरने की तरह प्रखर है। आपकी कहानियों में यथार्थवाद (Realism) की मात्रा काफी है; वे बहुत भावपूर्ण और आकर्षक होती हैं; उनसे आपकी भावुकता और मनोविज्ञान के सूक्ष्म अध्ययन का पता लगता है। 'गल्पकुसुमावली', 'गांधीटोपी' और 'सावनी समा' आपकी कहानियो के तीन सुन्दर संग्रह हैं। आपके दो प्रसिद्ध उपन्यास—'राम-रहीम' और 'पुरुष-नारी' हिन्दी-साहित्य की अनमोल निधियाँ हैं। 'नवजीवन (प्रेमलहरी)' और 'तरंग' आपके दो कथात्मक गद्यकाव्य हैं। 'राम-रहीम' में आपने समाज की जिस ज्वलन्त समस्या को संसार के सामने

उपस्थित किया है वह वास्तव में एक शाश्वत—किन्तु जटिल—समस्या है। हिन्दू समाज का ऐसा चित्ताकर्षक व्यंग्यात्मक चित्र ऐसी सजीव भाषा में शायद ही किसी उपन्यास मे मिलेगा। 'पुरुष और नारी' मे पुरुषजाति की दुर्बलता और नारी की अजेय शक्ति के संघर्ष का बड़ा ही विश्लेषणात्मक और मर्मस्पर्शी वर्णन है। भाषा, भाव, कल्पना, कथावस्तु आदि की दृष्टि से यह पहले उपन्यास से कहीं ज्यादा निखरा हुआ है इन उपन्यासों में ही नहीं, उनके कहानी संग्रहो और गद्यकाव्यों में भी राजा साहब की हृदयग्राहिणी भाषा पढ़कर चित्त चकित हो उठता है। सूक्तियों की तो आपकी रचना मे इतनी अधिकता है कि उनके संग्रह से एक अलग पुस्तक बन सकती है। आपके बारे मे एक विद्वान् समालोचक ने ठीक लिखा है—"जीवन के गहन क्षणों को परख इस कलाकार को है और उन्हें वह सजीव रसवन्ती भाषा मे अंकित कर सकता है। इस प्रकार के अनेक सौन्दर्यस्थल यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। जीवन के सघर्ष से ऊबकर हम इन निकुंजों में विचरण कर अपनी व्यथा को हल्का कर सकते हैं। शब्दों के चुनाव में ये लेखक विशेष पटु हैं। चुन-चुनकर बड़े परिश्रम से महल बनाते हैं। हाथी दाँत पर जिस सावधानी से काम किया जाता है, वही सावधानी राजा साहब भाषा के साथ बरतते हैं। रूपकात्मक शैली के तो आप धनी हैं। साथ ही अपने विचारों को सूक्तिरूप मे व्यक्त करने मे भी आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषा में लय-सुर है और है संगीत की मनमोहकता।"

प्रोफेसर शिवपूजनसहायजी साहित्य के सच्चे उपासक हैं। गद्य-लेखकों में आपका अच्छा स्थान है। 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के लेखक पडित कृष्णशंकर शुक्ल एम ए. के शब्दो में—"जितनो सफलता से गद्य का प्रयोग आप कर लेते हैं, उतनी कम लेखकों मे मिलती है। 'देहाती दुनिया' अपने ढंग की हिन्दी-साहित्य में अनोखी है।" आपकी अलंकार-युक्त भाषा और गंभीर शैली देखकर कोई नहीं कह सकता कि आप हास्यरस की भी उतनी ही अच्छी चीज लिखते होंगे। पाक्षिक 'जागरण' (काशी) के 'क्षणभर' और साप्ताहिक 'मतवाला' (कलकत्ता) की 'चलती चक्की' तथा 'मतवाले की बहक' के आप ही लेखक थे। 'देहाती दुनिया' (उपन्यास) और 'विभूति' (कहानी-सग्रह) आपकी बहुत ही प्रिय कृतियाँ हैं, जो 'पुस्तक-भडार' से ही प्रकाशित हुई हैं। आपकी अधिकांश रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

पडित जगदीश झा 'विमल' (भागलपुर) बहुत अरसे से कहानी और

(पृ० ५६२)



श्रीयुत शिवपूजनसहाय

(पृ० ५१३)



पुस्तक-भंडार के ख्यातनामा चित्रकार श्रीउपेन्द्र महारथी

उपन्यास लिखते आ रहे हैं। कथा-साहित्य की सृष्टि करने में आपने प्रशंसनीय उत्साह दिखाया है। आपकी कहानियाँ और आपके उपन्यास पर्याप्त रीति से लोकप्रिय हैं। 'आशा पर पानी, केसर, माया' आदि आपकी अनेक रचनाओं को हिन्दी-पाठकों ने खूब पसन्द किया और अपनाया है।

सुप्रसिद्ध उपन्यास 'विमाता' के लेखक दरभंगा-निवासी श्री अवधनारायण बिहार के एक 'छिपे रुस्तम' कथाकार हैं। एक आलोचक के शब्दों में—"आपकी अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई, क्योंकि कुछ शिष्यों ने ढोल बजाकर आपका विज्ञापन नहीं किया।" 'विमाता' सचमुच बहुत ही उच्च कोटि का बन पड़ा है। जितनी करुणा इसमें भरी है उतनी कम स्थानों पर मिलेगी। विषय भी इसका सदा नवीन रहनेवाला है। यह 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित है। इसके चार-पाँच संस्करण हो चुके हैं। 'झलक' आपकी कारुणिक कहानियों का प्रकाशित संग्रह है। दैन्य का, दारिद्र्य का, चित्रण आप अच्छा करते हैं। आप इन दिनों समस्तीपुर के अदालत में सिरिश्तेदार हैं।

पंडित नन्दकिशोर तिवारी, बी. ए. (शाहाबाद) की प्रबल प्रखर लेखनी कथा-साहित्य की सृष्टि करने में खूब समर्थ है; किन्तु आप लिखते ही बहुत कम हैं। आपकी भावुकता और वेगवती भाषा, आपकी मधुर कल्पना और प्रसन्न शैली, सब कुछ अनूठा है। 'मरण का त्योहार हे सखि' इसका उदाहरण है। 'स्मृतिकुञ्ज' आपका अत्यंत सुन्दर उपन्यास है। वह अकेला ही आपका यश अक्षुण्ण रक्खेगा। यदि आप लिखना जारी रखते तो कथा-साहित्य का बड़ा उपकार होता।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रथम प्रहर में आते हैं श्रीजनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', श्रीसरयू पंडा गौड़, श्रीत्रिवेणीप्रसाद, श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'। इनके आस-पास ही या आगे-पीछे प्रोफेसर कन्हैयालालजी, प्रोफेसर ललितकिशोर सिंह, प्रोफेसर विश्वमोहनकुमार सिंह, प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र, श्रीअनूपलाल मंडल, श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह आदि दीख पड़ते हैं।

प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम. ए., मानव-हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों का स्पर्श करनेवाले, बड़े भावुक कथाकार हैं। आप उच्च कोटि के कवि, वक्ता, समालोचक और गायक भी हैं। करुण कातर भावनाओं में डूबी हुई आपकी

लेखनी मनोव्यथाओं की हृत्तंत्री छेड़ने मे परम पटु है। एक आलोचक का कथन है—"जीवन के जिन-जिन क्षेत्रों मे पीडा तथा वेदना के नग्न तांडव हुआ करते हैं, वहीं 'द्विज' जी को कहानियों की सामग्री मिलती है। 'द्विज' जी आवरण हटाकर भीतरी दृश्य सम्मुख उपस्थित करते हैं। उनकी प्रत्येक कहानी एक छोटा-सा उपन्यास है।" आपकी कलामडित कहानियों के कई सुन्दर संग्रह निकल चुके हैं। जैसे—किसलय, मल्लिका, मृदुदल, मधुमयी आदि। 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' आपकी समालोचनात्मक कृति है और कथासाहित्य-सम्बन्धी स्वतंत्र आलोचना की प्राथमिक पुस्तक है।

श्रीरामवृक्ष वेनीपुरी से हिन्दी-जगत् खूब परिचित है। आज का जो प्रगतिशील कथा-साहित्य है, उसे पनपाने का श्रेय आपको भी है। आप एक अग्रगामी विचार के निर्भीक लेखक हैं, प्रभावशाली वक्ता हैं, यशस्वी पत्रकार हैं, और हैं साहित्य तथा राजनीति के वीच की कड़ी। विहार के राजनीतिक क्षेत्र मे भी आपका वड़ा आदरणीय स्थान है। आपने एक स्वच्छन्द कवि का हृदय पाया है। हिन्दी के कथासाहित्य को आपकी तेजस्विनी लेखनी ने कई उत्तम पुस्तकें दी हैं। वालको और युवको के योग्य जो कथासाहित्य आपने निर्मित किया है वह वडा उत्साहवर्द्धक, प्रेरणामूलक और स्फूर्त्तिदायक है। आपकी भाषा वड़ी सरल और मुहावरेदार होती है, जोरदार और जानदार तो होती ही है। 'लाल तारा' मे आपकी प्रतिभा का अपूर्व विकास दीखता है। आपकी कहानियों की शैली 'उग्र' की शैली का आभास कराती है। किन्तु 'उग्र' की शैली से अधिक सयम आपकी शैली मे दीख पड़ती है। आप क्षुधित, पीड़ित, दलित और शोपित की गीली आवाज को अपनी कहानियों के रेकर्ड मे वन्द करते हैं। आपकी रचनाओ मे ग्रामीणो और श्रमजीवियों को विशेप स्थान मिला है। आप जनता के लिये ही लिखते हैं। इस कारण आपकी रचनाएँ लोक-समाज में वहुत पसंद की जाती हैं। आपका प्रसिद्ध उपन्यास है 'पतितों के देश मे'। विहार के इस क्रान्तिकारी कथाकार के उर्वर मस्तिष्क से भविष्य मे अभी वहुत-कुछ आशा लगी हुई है।

श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' हिन्दी-संसार के प्रतिष्ठित साहित्यिको मे हैं। आपने कविता, कहानी, उपन्यास, सस्मरण, आलोचना, निवन्ध, सभी कुछ लिखे हैं और बड़ी खूवी से लिखे हैं। आप वड़े सहृदय और अनुभवी कथाकार हैं। कथा-साहित्य को आपकी देन है—रेखा, रजकण और भाई वहन। आपकी कहानियों मे कवित्व का आनन्द भी मिलता है।

श्री सरयू पंडा गौड़ (जगदीशपुर, शाहाबाद) हास्यरस की चीजें अच्छी लिख लेते हैं। 'लेखक की बीबो', 'मिस्टर तिवारी का टेलीफोन काल', 'भूली हुई कहानियाँ,' और 'वेदना' आपकी अच्छी रचनाएँ हैं। कहीं-कहीं आपकी कहानियो में बहुत-से ठेठ देहाती शब्द बड़े उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त दीख पड़ते हैं। आपके विनोद कभी-कभी कथानक को बड़ा सरस बना देते हैं।

आरा-निवासी, 'बालकेसरी'-संपादक, श्री त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, ने भी कुछ कहानियाँ और 'विसर्जन' नामक एक मनोहर उपन्यास लिखा है। इस समय आप बालोपयोगी कथा-साहित्य की रचना में प्रवृत्त हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', एम. ए. (पूर्णिया) मननशील विचारक, गंभीर समालोचक और उत्कृष्ट निबंध-लेखक हैं। किन्तु आपने पहले कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। 'रसरंग' और 'गुलाब की कलियाँ' आपकी सरस कहानियों के दो रमणीय संग्रह प्रकाशित हैं। आपकी भाषा में शब्दालंकार और अर्थालंकार की अच्छी बहार है। शब्दयोजना का चमत्कार और रसपरिप्लावित भावों की मनोहरता आपकी कहानियों की विशेषताएँ हैं।

मासिक 'आरती' के संपादक पंडित प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (शाहाबाद) अपने बाल्यकाल से ही लिखते आ रहे हैं। आपके साहित्यिक जीवन के विकास में आपके पूज्य पिता स्वर्गीय पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री का बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'पतझड़, पाप और पुण्य, लालिमा, तलाक, जेल-यात्रा और दो दिन की दुनिया' लिखकर आपने कथा-साहित्य को सिंगारा है। आप एक अनुभवी संपादक भी हैं; किन्तु जीवन की बाधाएँ आपको आगे बढ़ने नहीं देतीं। 'मैं फिर आऊँगी'-जैसी कहानी लिखकर आपने कहानी-कला के अध्ययन का सूक्ष्म परिचय दिया है। आपके कई उपन्यास और कहानी-संग्रह अभी तक अप्रकाशित हैं। आपकी सुलझी हुई भाषा बड़ी साफ-सुथरी और प्रवाहमयी होती है।

प्रोफेसर कन्हैयालालजी और प्रोफेसर ललितकिशोरसिंह भी अच्छे कथाकार हैं। कन्हैयाजी का कहानी-संग्रह 'चित्रकथा' छपरा के 'वाणीमन्दिर' से प्रकाशित है। ललित बाबू की कहानियाँ पत्रिकाओं में कभी-कभी देख पड़ती हैं। इनकी कहानियो को प्रेमचन्दजी बहुत पसन्द करते थे। उनके सम्पादन-काल में इनकी कहानियाँ 'हंस' और 'जागरण' में बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं।

श्रीविश्वमोहनजी में कथाकार की बड़ी अच्छी प्रतिभा है। आपका एक उपन्यास धारावाहिक रूप से साप्ताहिक 'जागरण' में प्रेमचन्दजी ने प्रकाशित किया

था, इधर पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो चुका है। अब आप कथा-साहित्य की ओर से विरक्त हो गये हैं। हिन्दी के लिये यह बड़ी शोचनीय बात है कि बहुतेरे कहानी-लेखक एक बार झलक दिखाकर हमेशा के लिये गुम हो जाते हैं। आप मिथिला-कालेज (दरभंगा) के प्रिन्सिपल हैं।

भागलपुर-निवासी प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र अपनी स्वतंत्र शैली के विलक्षण कथाकार हैं। आपकी 'प्यास' बहुत ही आकर्षक रचना है। इसके अतिरिक्त आपने कई कहानियाँ ठेठ हिन्दी मे लिखी हैं। 'मणि गोस्वामी' नाटक भी लिखा है। आपमे भी कथा-साहित्य की सृष्टि करने का अद्भुत कौशल है; पर हिन्दी का दुर्भाग्य है कि आप-जैसे सुयोग्य लेखक उदासीन हैं।

श्रीअनूपलाल मंडल (पूर्णिया) बड़ी सच्ची लगन के और बहुत ही पक्की धुन के कथाकार हैं। एकान्त भाव से केवल लिखा करते हैं। इस समय हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में आपका स्थान है। अनेक वर्षों से आप कथा-साहित्य का भंडार भरते आ रहे हैं। आप ही सर्वप्रथम बिहारी कथाकार हैं जिनके उपन्यास (मीमांसा) का फिल्म (बहूरानी) बनाया गया है। बिहारियों के लिये यह गौरव की बात है कि उनमें एक ऐसा कथाकार भी मौजूद है जो फिल्म-कम्पनी को आकृष्ट कर सका। समाज की वेदी पर, सविता, निर्वासिता, साकी, रूपरेखा, ज्योतिर्मयी, मीमांसा, गरीबी के दिन, ज्वाला, वे अभागे, अभिशाप, दर्द की तस्वीरें आदि आपके मौलिक उपन्यास प्रकाशित होकर हिन्दी-संसार मे काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं। आपके उपन्यास हिन्दी के कथा-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपके समान स्वावलम्बी कथाकार हिन्दी-संसार मे इने-गिने हैं। यदि आप चिन्तामुक्त होकर स्वेच्छानुसार लिख पाते तो बिहार का बड़ा नाम होता और हिन्दी का कथा-साहित्य भी आपके निश्चिन्त मस्तिष्क की पूँजी पाकर धनी बनता।

दिलीपपुर-(शाहाबाद)-निवासी महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह एक धुनी साहित्य-सेवी हैं। बराबर कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। 'ज्वालामुखी' (गद्यकाव्य) से आपकी बड़ी प्रसिद्धि हुई, जो काशी के सरस्वती प्रेस ('हंस'-कार्यालय) से प्रकाशित है। 'हृदय की ओर' आपका सामाजिक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका है। उसमें विचारो का अन्तर्द्वन्द्व और मनोभावो का संघर्ष बड़ी निपुणता से चित्रित है। आपकी नई रचना 'भूख की ज्वाला' उपर्युक्त 'हंस'-कार्यालय से प्रकाशित हुई है, जो वास्तव मे एक गद्यकाव्य ही है; पर कथानक के रूप में प्रस्तुत की गई है। आपकी कई भावपूर्ण कहानियाँ सामयिक पत्रो में छप

चुकी हैं। आप भी राजनीतिक आन्दोलन के चक्कर में पड़कर साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन बनाये हुए हैं। यह चिन्त्य विषय है।

इसी प्रसग में दो-चार उल्लेखनीय कथाकारों की चर्चा कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। श्रीबनारसीप्रसाद भोजपुरी (शाहाबाद) ने 'समाज का पाप' नामक एक सामाजिक उपन्यास लिखा है और 'मैदाने जंग' एक ऐतिहासिक। आपकी हास्यरसात्मक रचनाएँ बड़ी चटपटी होती हैं। कई पत्रो के सम्पादकीय विभाग में काम करके अब आप आरा के 'बालकेसरी' के सम्पादन-विभाग में काम कर रहे हैं। डुमरॉव-निवासी श्रीशंकरचरण श्रीवास्तव की कहानियों से भविष्य के लिये बड़ी आशा बँधी थी, पर वे अकाल-काल-कवलित हो गये। डुमरॉव के श्रीगुप्तेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव भी कुछ दिन उदीयमान कथाकार होने की आशा दिखाकर मौन हो गये। 'कसौटी' के लेखक श्रीविश्वनाथ सिह शर्मा भी मौन ही बैठे हुए हैं।

वर्त्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध के द्वितीय प्रहर में बिहार के कथासाहित्य को कुछ ऐसे कुशल कथाकार मिले हैं, जिनके विषय में यह कहना अत्युक्ति नहीं कि भविष्य इन्हीं का है। दूसरी दशाब्दी इनके शुभ जन्म से गौरवान्वित हुई है और इनकी प्रगतिशील रचनाओ से हिन्दी के कथासाहित्य की शोभावृद्धि भी हुई है। इनमें से कई की लेखनी ने नवयुवको की प्रवृत्तियो और अनुभूतियो में संजीवनी डालने का सफल प्रयास किया है।

ऐसे ही गौरवशाली कथाकारो में राँची के श्रीराधाकृष्णजी हैं। बिहार के सफल कहानी-लेखकों में आप अग्रगण्य हैं। गंभीर भावपूर्ण और तरल हास्य-मय दोनों प्रकार की रचनाओं पर आपका समान रूप से असाधारण अधिकार है। 'सजला' आपकी कहानियो का संग्रह है। परिस्थितियाँ आपको सदा सताती रहीं। सांसारिक कठिनाइयो के कारण साधारण शिक्षा पाकर भी अपने स्वाध्याय-बल से आपने अच्छा कौशल अर्जित किया है। चरित्र-चित्रण में आपकी लेखनी कमाल करती है। आपकी सैकड़ो कहानियाँ अप्रकाशित हैं। 'घोष-बोस-बनर्जी-चटर्जी' नाम से आप व्यंग्य-विनोद-पूर्ण कहानियाँ लिखते हैं, जो हिन्दी में अपने ढँग की बिल्कुल नई चीज हैं। कथा-रचना के अभ्यास में आपकी साधना खूब सफल हुई है। आपकी भाषा सुबोध, शैली मँजी हुई और कल्पना गहरी पैठवाली है। यदि आप सारा समय कथा-साहित्य को दे सकते तो हिन्दी निहाल हो जाती।

दूसरे गौरवास्पद कथाकार हैं श्री वीरेश्वर सिंह, एम्० ए०, एल्० एल्० बी० (शाहाबाद)। आप साधारण विषय पर भी खूबी के साथ अभिनव कलापूर्ण कहानी लिख सकते हैं, और यही आपकी विशेषता है। 'उँगली का घाव' आपकी उत्कृष्ट कहानियों का वडा मनोरम संग्रह है। हिन्दी को सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान आपकी मौसी हैं। साहित्यिक वातावरण में पनपने के कारण ही आप ऐसी सुन्दर सुकुमार प्रतिभा के धनी हुए हैं। इन दिनो आप मुजफ्फरनगर (युक्तप्रान्त) मे वकालत करते हैं। आप हिन्दो के कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि करने में यदि तत्पर हो जायँ तो निश्चय ही हिन्दी का कथा-कोप एक अभूतपूर्व ज्योति से आलोकित हो उठे।

आरा के अध्यापक वृन्दावनविहारी भी भावपूर्ण और कलात्मक कहानियाँ लिखते हैं। 'मधुवन' आपकी कहानियों का सग्रह है और 'आकांक्षा' एक छोटा उपन्यास। पारिवारिक झंझटो से आपकी प्रतिभा को आगे वढने का सुअवसर नहीं मिलता।

श्री आरसीप्रसाद सिंह (दरभंगा) कवि के नाते हिन्दी की दुनिया में विख्यात हो चुके है। इधर आपने अनेक सुन्दर कहानियाँ भी लिखी है और वड़ी खूबी से लिखी हैं। आपके कहने का ढँग वहुत सुन्दर होता है। आपकी कहानियों में कविता का माधुर्य है। कहानियाँ आपकी वडी होती हैं, पर होती हैं मंजुल और मनोज्ञ। आपकी कहानियाँ पाठक के हृदय में मोठी गुदगुदो पैदा करती हैं। पाठक की हृत्तंत्री के छेडने मे आपके रसज्ञ-रंजन भाव वडे शोख और चुहलवाज होते हैं। आपकी कल्पना के मणिमय प्राङ्गण में जव कवि-प्रतिभा के साथ यौवनोच्छ्वास की छेड़खानियाँ चलती हैं तव भाषा की चुलवुलाहट पाठकों को मुग्ध कर छोड़ती है। आपकी कहानियो के रूप का निखार और हृदय का विकास दिन-दिन सलोना और सुहावना होता जायगा, ऐसे लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं।

प्रोफेसर केसरीकिशोर शरण, एम्० ए०, वी० एल्० (राजेन्द्र-कालेज, छपरा) ने 'मरीचिका' नामक एक सुन्दर उपन्यास लिखा है। कुछ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी आपने लिखी हैं। हिन्दी के अमर कथाकार प्रेमचन्द की रचनाओं की समीक्षा आपने 'चाँद' मे धारावाहिक लेख लिखकर की थी, जो अव पुस्तकाकार में निकलनेवाली है।

श्री लक्ष्मीकांत झा, आइ० सी० एस्०, भागलपुर जिले के हैं। उन्होंने

हिन्दी में चेस्टर्टन आदि के ढँग पर अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। अपने ढँग के आप अकेला हैं। 'मैंने कहा' आपकी कमनीय कहानियों का अवलोकनीय संग्रह लीडर प्रेस (प्रयाग) से निकला है। आप उच्च कोटि के निबन्ध भी बड़े सुन्दर लिखते हैं। काशी के दैनिक 'आज' और पाक्षिक 'जागरण' में छपे आपके कई निबंध बड़े लोकप्रिय सिद्ध हुए।

उच्चकोटि के साहित्यिक निबंध लिखने में श्रीजयकिशोरनारायण सिंह (मुजफ्फरपुर) की पहुँच और सूझ बड़ी अच्छी है। किन्तु उससे भी अच्छी उनमें कथाकार की प्रतिभा है। वे हिन्दी की आधुनिक कविता-धारा के प्रतिनिधि-कवियों में हैं; पर उनकी कला-प्राण रचनाओं के देखने से जान पड़ता है कि वे चाहें तो प्रतिनिधि-कथाकारों में भी आदरणीय स्थान अधिकृत कर सकते हैं। मगर हैं पूरे मनमौजी!

पटना-कालेज के अँगरेजी-साहित्य के प्रोफेसर श्री दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम्० ए०, (चम्पारन), बिहार के उत्तम श्रेणी के कहानीकारों में हैं। मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखने में आप बड़े दक्ष हैं। आपकी कहानियों में आधुनिकता का पूर्ण समावेश है। 'सजन रइहो कि जइयो, मेरी सिगरेट, वह मुस्कुराई थी' आदि प्रगतिशील कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। आपकी लिखी आलोचनाएँ भी मनोवैज्ञानिक ही होती हैं। आप आधुनिक काव्यधारा के एक सहृदय सुकवि हैं।

श्री बदरीनारायण लाल (मुजफ्फरपुर) बड़े ही सरस और भावुक साहित्यिक हैं। 'प्रायश्चित्त' आपका एक सुन्दर सामाजिक उपन्यास है। मुजफ्फरपुर जिले के ही श्री नवलकिशोर गौड़, एम्० ए० (प्रोफेसर, बी० एन० कालेज, पटना) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ और एकांकी नाटक लिखने में बड़े प्रवीण हैं। और, वहीं के श्री रेवतीरमणजी दिल पकड़नेवाली चुटीली कहानियाँ लिखने में खासे अभ्यस्त हैं। ये एक अच्छे गायक-कवि हैं। इनकी कहानियों में कवि का हृदय बोलता है। 'अपर्णा' इनकी कहानियों का संग्रह है और 'रागिणी' उपन्यास।

श्री हंसकुमार तिवारी (भागलपुर) की प्रतिभा चौमुखी है। कहानी, उपन्यास, कविता, आलोचना—आपने सबको गले लगाया है। आपका अध्ययन गहरा है। आपने साहित्यिक निबंध की रचना में भी सफलता प्रदर्शित की है। आपकी रचनाएँ प्रौढ होती हैं। चेखव, गोर्की आदि रूसी लेखकों की कुछ कहानियों का आपने हिन्दी-रूपान्तर भी किया है। आपने स्वयं भी कई सुन्दर

मौलिक कहानियाँ लिखी हैं। विपम आर्थिक अवस्था ने आपकी प्रतिभा को पर्याप्त अवकाश नहीं दिया। 'बिजली', 'छाया' और 'किशोर' का आपने योग्यता से सम्पादन किया है। आपकी कविताएँ इस युग के सुरुचि-प्रिय पाठकों के लिये आकर्पण की वस्तु होती हैं। आपकी रचनाओं का संग्रह जब प्रकाशित होगा, साहित्य की कान्ति बढ़ा देगा।

श्री द्वारकाप्रसाद (लोहरदगा, राँची) सहज स्वाभाविक कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'स्वयंसेवक, भटका साथी, परियों की कहानियाँ' आदि किशोरोपयोगी संग्रह आपकी प्रतिभा के परिचायक हैं।

श्री राधाकृष्णप्रसाद (आरा) नवयुवक कथाकारों की टोली में अग्रदूत की भाँति अगली पाँती पर नायकत्व का झंडा लिये खड़े हैं। आपकी कहानियाँ 'सादगी और सुन्दरता' का नमूना हैं। छोटी-छबीली कहानियाँ, फालतू एक शब्द भी नहीं, भरती का एक वाक्य नहीं, जीवन के मर्म-पक्ष को छूनेवाली कल्पना, पाठक के हृदय और मस्तिष्क को दोनों हाथों पर गेंद की तरह संतुलन के साथ उछालनेवाली भावना-लहरी, अकृत्रिम कृपक-कन्या की-सी भोली भाली भाषा, दुधमुँहे बच्चे की मुस्कान-जैसी मनभावनी शैली। 'देवता', 'विभेद' और 'अन्तर की बात'—तीन कहानी-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, और अभी एक सौ छपी कहानियाँ संग्रह-रूप में प्रकाशित होने की बाट जोह रही हैं, एक नूतन उपन्यास भी प्रकाश की प्रतीक्षा में है। आप कालेज की उच्च कक्षा के छात्र हैं अभी, पर भविष्य के कथा-साहित्य-क्षेत्र की उर्वरता आपकी सुपुष्ट प्रतिभा के कणों के लिये उत्सुक जान पड़ती है। बँगला के कथा-साहित्य-सागर का आपने तन्मयता से मन्थन किया है। आपके पूर्ण विकास का युग बिहार का प्रभापूर्ण स्वर्णयुग होगा, इसमे सन्देह नहीं।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा के सुपुत्र पंडित नलिन विलोचन शर्मा, एम्० ए०, एक मर्मज्ञ आलोचक और तलस्पर्शी कथाकार हैं। इनकी शैली इनकी अपनी चीज है। साधारण पाठक को इनकी कहानियाँ कठिन प्रतीत होंगी, भाव में और भाषा मे भी। इनकी चीजें उच्चकोटि की होती हैं। कहानी-कला की 'टेकनीक' इनकी कहानियों में प्रचुर मात्रा मे है। परिष्कृत मस्तिष्क और विद्याविलासी मनोवृत्ति के पाठक इनकी कहानियो के साथ अपने हृदय का सुर खूब मिला सकते है।

मुजफ्फरपुर के बाबू राजेश्वरप्रसादनारायण सिह, बी० ए०, बड़ी मस्ती-भरी

कहानियाँ लिखते हैं। 'आजादी की कुर्बानियाँ' आपकी प्रसिद्ध मस्तानी रचना है। आपके स्वाध्याय का गाम्भीर्य आपकी रचनाओं से व्यक्त होता है।

शाहाबाद के श्रीकमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, बिहार के कीर्त्तिशाली कथाकारों में हैं। 'पगडंडी', 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' आदि कहानियाँ बहुत ही दिलचस्प हुई हैं।

गया जिले के श्री जानकीवल्लभ शास्त्री संस्कृत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान होते हुए भी हिन्दी के मार्मिक आलोचक, रससिद्ध कवि और भावुक कथाकार हैं। आप वस्तुतः एक विशुद्ध साहित्य-सेवी हैं। आपके पांडित्यपूर्ण साहित्यिक लेख आपकी गहन अध्ययनशीलता और मननशीलता की सूचना देते हैं। आपकी ललित संस्कृत-कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। 'कानन' आपकी हिन्दी-कहानियों का अनूठा संग्रह है। आपकी कहानियों में भाव-प्रवणता और भाषा में कवित्व की छटा होती है।

गया जिले के ही श्रीकामताप्रसाद सिंह एक विकासोन्मुख कहानीकार हैं। आपकी कहानियाँ प्रफुल्ल और कलापूर्ण होती हैं।

भागलपुर की अस्तंगत पत्रिका 'बीसवीं सदी' के संपादक श्रीतारकेश्वर प्रसाद ने कई अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। 'गाँव की जमीन पर' आपका एक रोचक उपन्यास है। पूर्वोक्त प्रख्यात कथाकार पंडित जगदीश झा 'विमल' के सुपुत्र श्रीपीताम्बर झा एक भावुक कहानीकार हैं। आपने नये ढंग की कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कहानियों का संग्रह 'रसविन्दु' प्रकाशित है।

इन सबके अतिरिक्त अभी और कितने ही कहानी-लेखक बिहार में हैं। यथासम्भव हमने प्रमुख लेखकों के विषय में ही लिखने का प्रयास किया है। समालोचनात्मक दृष्टि से हमने किसी को नहीं देखा, संक्षिप्त परिचय मात्र देना लक्ष्य था। पटना-सिटी के पंडित गिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी० ए० (ऑनर्स) की लिखी हुई 'कहानी-कला' नामक नई पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है, जो बिहार में इस तरह का पहला प्रयत्न होने के कारण इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है।

हाँ, कहानी-लेखिकाओं का भी प्रादुर्भाव बिहार में हुआ है। प्रथम बिहारी महिला कथाकार श्रीमती शैलकुमारी देवी का जन्म १८६५ ई० में हुआ। आप ही के उद्योग से, सन् १६१७ में, छपरा शहर में, 'महिला-समिति' की स्थापना हुई और मासिक 'महिला-दर्पण' आपकी ही देखरेख में निकला। 'उमासुंदरी' आपका एक रोचक उपन्यास 'चाँद'-कार्यालय (इलाहाबाद) से प्रकाशित हुआ था।

दूसरी कहानी-लेखिका हैं श्रीमती शारदाकुमारी देवी। आपका जन्म सन् १८६८ में, मुजफ्फरपुर में, हुआ। आप व्याह के कुछ ही वर्ष बाद विधवा हो गईं! तब से बराबर साहित्य, समाज और देश की सेवा कर रही हैं। सन् १६३७ में आप 'एम० एल० ए०' चुनी गईं। हिन्दी और अँगरेजी के सिवा आप बँगला, गुजराती और मराठी भी जानती हैं। 'महिला-दर्पण' की आप भी बहुत दिनों तक सम्पादिका रहीं। १६२६ ई० में आपकी कहानियों का संग्रह 'गल्प-विनोद' उपर्युक्त चाद-कार्यालय से प्रकाशित हुआ।

इनके अतिरिक्त और भी कई कहानी-लेखिकाएँ हैं—श्रीमती अन्नपूर्णाकुमारी सिंह, श्रीमती विमला देवी 'रमा', विदुषी सुशीला देवी सामंत, श्रीमती प्रकाशवती श्रीवास्तव, श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती विद्यावती एम्० ए०, श्रीमती तारा देवी, सुश्री शकुन्तला देवी साहित्यालंकार, कुमारी सुशीला सिंह और ललिता देवी 'लता'। इन सबकी रचनाएँ पत्रों में प्राय निकलती रहती हैं।

आशा है, हिन्दी के कथा-साहित्य को समृद्धिशाली बनाने मे बिहार अपना हिस्सा पूरा करेगा और उसके इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे हमारे सभी कथाकार सहायक होंगे। तथास्तु।





बिहार की हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएँ

श्रीराधाकृष्णप्रसाद; आरा (शाहाबाद)

समाचार-पत्रों का आज हमारे जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज के इस वैज्ञानिक युग में समाचार-पत्रों का महत्त्व निर्विवाद सर्वोपरि है। सुबह होते ही आज का शिक्षित-समाज समाचार-पत्रों की ओर टूट पड़ता है। संसार की हलचलें, तेजी-मन्दी के भाव, और न जाने कितनी बातें जानने को हम नित्य उत्सुक रहते हैं। नये समाचार जानने की उत्कंठा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

हिन्दी के समाचार-पत्र अब बहुत पिछड़े नहीं हैं। देश की किसी भी प्रान्तीय भाषा के पत्रों से हिन्दी के समाचार-पत्र अधिक प्रगतिशील हैं। राष्ट्रीयता की भावना को देशव्यापी बनाने में हिन्दी के पत्रों ने सबसे अधिक प्रयास किया है; आज भी कर रहे हैं। 'आज, भारत, हिन्दुस्तान, विश्वमित्र और राष्ट्रवाणी'-जैसे दैनिक तथा 'आज, प्रताप, सैनिक, नवशक्ति, देश-दूत, भारत, विश्वमित्र एवं अर्जुन'-जैसे साप्ताहिक तथा 'विशाल-भारत, हंस, सुधा, माधुरी, सरस्वती, वीणा, विश्वमित्र और विश्ववाणी'-जैसी मासिक पत्रिकाएँ हिन्दी को आज प्राप्त हैं। हिन्दी की यह प्रगति निस्सन्देह आशावर्द्धक एवं संतोषप्रद है। यद्यपि अभी हिन्दी-संसार की जनता यथेष्ट उदार नहीं बनी है और न हमारे पाठकों का मानसिक धरातल ही उतना ऊँचा हुआ है; तथापि हम पूर्णतया निराश भी नहीं हैं। हिन्दी का अधिकांश पाठक-समुदाय उस श्रेणी का है जो सदा रोटी की समस्या में उलझ रहा है—उसके पास इतने पैसे नहीं कि वह रोज अखबार खरीद सके। जो धनी-समाज से आते हैं वे अधिकतर अँगरेजी पत्रों के प्रेमी और समर्थक होते हैं। इस कारण हिन्दी-पत्रों का समुचित विकास नहीं हो पाता। फिर भी उनके सुदिन बहुत दूर नहीं हैं।

बिहार प्रायः पत्रों के लिये मरुभूमि कहा जाता रहा है—यद्यपि आज उस मरुभूमि में दो-चार ठौर शाद्वलभूमि भी लहलहाती दीख पड़ती है। इस प्रान्त में पत्र अधिक दिन तक नहीं टिकते, जल्द ही मुरझा जाते हैं। क्यों? 'गंगा' सूख गई; 'बिजली' की ज्योति बादल में समा गई; 'आरती' भी टिमटिमा रही है। कारण क्या? मेरी दृष्टि में मुख्यत. इसके तीन कारण हैं—(१) सम्पादन और प्रकाशन की अव्यवस्था, (२) प्रान्तवासियों की उदासीनता, और (३) पूँजी की कमी। इन्हीं तीन कारणों से बिहार के पत्र अल्पायु होते हैं। स्थिर चित्त से विचार करने पर मालूम होगा कि हिन्दी-संसार के अनेक पत्र इन्हीं तीन कारणों से ज्यादा दिन न चल सके या निकलने के कुछ ही दिन बाद बन्द हो गये। बिहार मे भी वही होता रहा।

किन्तु बिहार को अब 'पत्रों के लिये मरुभूमि' कहना ठीक नहीं। बिहार का मासिक 'बालक' आज पन्द्रह बरसों से, नियमित रूप से, निकलकर यह चुनौती दे रहा है कि यह धारणा गलत है। 'बालक' जैसा पत्र पाकर हिन्दी ही क्यों, संसार की कोई भी भाषा गौरव का अनुभव कर सकती है। 'नवशक्ति' हिन्दी के उन दो-चार साप्ताहिको में है, जो अपने लेखकों को पुरस्कार भी देते हैं। 'योगी, किसान, किशोर, आरती' आदि बिहारी पत्रो को हिन्दी मे आदरणीय स्थान प्राप्त है। 'राष्ट्रवाणी' और 'आर्यावर्त्त'—दो-दो सुन्दर दैनिक पत्रो के संचालन की निश्चित व्यवस्था हो जाने से यह स्पष्ट विदित हो रहा है कि प्रान्त क्रमश' सजग हो रहा है। सचमुच, हमारा बिहार अब जाग चुका है। यद्यपि इसकी चाल अभी धीमी है, तथापि दृढ़ता के साथ यह हमे संतोष के पथ पर ला रही है। हम अपने घर की चीजों का मूल्य आँक सकें, ईश्वर हममें ऐसी शक्ति दे। अब, हम प्रान्त के प्रत्येक जिले से निकले हुए हिन्दी-पत्रो का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं। यथाशक्ति और यथासम्भव इन परिचयों को प्रामाणिक बनाने के लिये सभी उपलब्ध साधनो का सदुपयोग किया गया है—यद्यपि छान-बीन के साधनों की कमी हिन्दी में बहुत खटकनेवाली है।

पटना-जिला

सन् १८७२ ई० में पंडित केशवराम भट्ट तथा पंडित मदनमोहन भट्ट के सदुद्योग से 'बिहार-बंधु' नामक साप्ताहिक पत्र बिहार-शरीफ से निकला। यही बिहार का पहला हिन्दी-पत्र था। १८७२ से ७३ तक पंडित केशवराम भट्ट के सहपाठी मुंशी

हसन अली इसके संपादक रहे। १८७४ में इसका छापाखाना पटना चला आया। १८७५ से पंडित केशवराम भट्ट स्वयं इसका सम्पादन करने लगे। इसमें अधिकांश लेख उन्हीं के रहते थे। पर सन् १८७६ ई० में पंडित मदनमोहन भट्ट के अनुरोध से पंडित दामोदर शास्त्री सप्रे ने इसका सम्पादन अपने हाथों में लिया। सप्रेजी पहले बिहार-शरीफ के हाइ-स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। ये काव्य-मर्मज्ञ विद्वान् थे। चूँकि 'बिहार-बंधु' का खास अपना प्रेस था, बाँकीपुर (पटना) में इसका दफ्तर था; इसलिये लगातार ३४ बरसो तक यह निर्विघ्न चलता रहा। सन् १६०५ ई० में इसके अध्यक्ष और संचालक पंडित लक्ष्मीनाथ भट्ट की मृत्यु हो गई। उनके बाद पंडित केशवराम भट्ट भी चल बसे। अतः कुछ ही समय बाद इसका प्रकाशन बंद हो गया। बिहार में हिन्दी-प्रचार का बहुत-कुछ श्रेय इसी को है। इसके पुराने अंकों की खोज और रक्षा होनी चाहिये।

उन्हीं दिनों पटना-नार्मल-स्कूल के शिक्षक मुन्शी हसन अली ने 'मोती-चूर' नामक एक मासिक पत्र निकाला, जो कुछ दिनों के बाद बन्द हो गया। पटना-नार्मल-स्कूल के हेडमास्टर रायसाहब सोहनलाल भी 'हिन्दी-गजट' का सम्पादन करते थे। पीछे 'गजट' पटना से कलकत्ता चला गया और अन्त में वहीं बन्द हो गया। जान पड़ता है, उक्त मुन्शी हसन अली वही हैं, जो आरम्भ में 'बिहार-बन्धु' के सम्पादक थे। जो हो, उन दिनों बिहार में हिन्दी के प्रति लोगों का अनुराग दिन-दिन बढ़ रहा था। इस बात के लक्षण स्पष्ट हैं। सन् १८८० ई० में पटना-कालेजियट-स्कूल के शिक्षक पंडित बदरीनाथ के सम्पादकत्व में 'विद्या-विनोद' मासिक पत्र निकला। पर प्रायः दो वर्षों के बाद यह भी बन्द हो गया। किन्तु सिलसिला टूटा नहीं। सन् १८८३ ई० में खड्गविलास प्रेस (बाँकीपुर) से 'भाषा-प्रकाश' और सन् १८६० ई० के लगभग 'द्विज-पत्रिका' निकली। ये दोनों मासिक थे। इसी समय बाँकीपुर से एक दैनिक पत्र 'सर्व-हितैषी', बाबू महावीरप्रसाद के सम्पादकत्व में, निकलने लगा। यह भी अधिक दिन जीवित न रह सका। किन्तु यही इस प्रान्त का सबसे पहला हिन्दी-दैनिक था। शायद हिन्दी-संसार में कालाकाँकर-नरेश के 'हिन्दोस्थान' के बाद यही दूसरा दैनिक था।

खड्गविलास प्रेस की स्थापना सन् १८८० ई० में बाँकीपुर (पटना) में हुई थी। कहा जाता है कि पहले इस छापाखाने का नाम था 'बोधोदय प्रेस', जिसे शिक्षा-विभाग के प्रधान अध्यक्ष बाबू भूदेव मुखोपाध्याय ने महाराज-कुमार ७

रामदीन सिंह को दे डाला और इन्होंने इसे यह नया नाम दिया। फिर एक साल बाद ही इन्होंने अपने सम्पादकत्व में 'क्षत्रिय-पत्रिका' निकाली। हिन्दू-कुल-सूर्य उदयपुराधीश महाराणा सज्जन सिंह बहादुर ने तीन हजार रुपये देकर इस पत्रिका की सहायता की थी। मझौली-नरेश लाल खडग-बहादुर मल्ल की भी इसपर विशेष कृपा रहती थी; क्योंकि उन्हीं के नाम पर प्रेस खुला था। अतः यह पत्रिका बहुत दिनों तक चलती रही। केवल यही एक पत्रिका नहीं, कई पत्र-पत्रिकाएँ कर्मवीर बाबू रामदीन सिंह के संरक्षण में पलती रहीं। उन दिनों पंडित प्रतापनारायण मिश्र के सम्पादकत्व में कानपुर से मासिक 'ब्राह्मण' निकलता था; बाबू साहब ने उसकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता देखकर, सन् १८६७ ई० में, उसका स्वत्व खरीद लिया। साथ-साथ वह भी चलने लगा। एक तीसरी पत्रिका और भी थी, जो सन् १८८७ ई० से ही निकल रही थी—'हरिश्चन्द्रकला'। यह तीस-पैंतीस बरसों तक चलती रही। और, बीच में, सन् १८६२ ई० में, पूर्वोक्त 'विद्या-विनोद' भी पुनः जीवित हो उठा था। यह चौथा मासिक भी इसी प्रेस से निकलता रहा। कैसा अदम्य उत्साह था! कैसी सच्ची लगन थी!

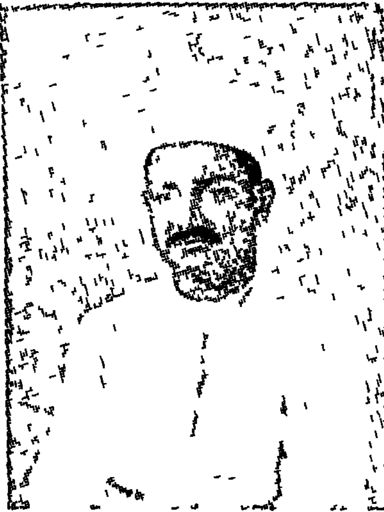
उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम प्रहर में बिहार में हिन्दी-पत्र पत्रिकाओं की खासी धूम और चहल-पहल रही। सन् १८६७ ई० में, पटना के बिहार-नेशनल (बी० एन०) कालेज के छात्रों के उत्साह से, 'पटना-कवि-समाज' की स्थापना हुई। इस समाज ने अपनी मुख-पत्रिका 'समस्या-पूर्त्ति' निकाली। आरा-निवासी बाबू ब्रजनन्दन सहाय इसके सम्पादक हुए। अपने समय में यह बहुत लोकप्रिय थी। देश के सभी भागों से कविजन इसमें पूर्त्तियाँ भेजते थे। स्वनामधन्य बाबा सुमेरदास की पूर्त्तियाँ भी इसमें छपती थीं। किन्तु इतनी पत्र-पत्रिकाओं से भी उन दिनों लोगों की साहित्यिक भूख मिटती न थी। इसी लिये सन् १८६७ ई० में ही, खड्गविलास प्रेस से, पाँचवीं मासिक पत्रिका 'शिक्षा' निकली, जो बाद साप्ताहिक होकर अन्त में फिर मासिक हुई। यह लगभग चालीस वर्षों तक हिन्दी-सेवा कर सन् १९३५-३६ के लगभग समाधिस्थ हुई। इसकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। बिहार के दीर्घजीवी पत्रों में इसका बड़ा ऊँचा स्थान है। इसके सम्पादक थे पंडित सकलनारायण शर्मा तीर्थत्रय (अब महामहोपाध्याय), जो आजकल कलकत्ता-विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता हैं। शिक्षा के सम्पादकों में बाबू ब्रजनन्दन सहाय, थिकेट साहब, पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा, पंडित दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी, पंडित पारसनाथ त्रिपाठी और प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र के भी नाम गिनाये



चाँद, महारथी, सुधा, कर्मयोगी,
भविष्य आदि के सम्पादक
पं० नन्दकिशोर तिवारी, बी० ए०



पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार
दैनिक 'विश्वमित्र'-सम्पादक
बम्बई



श्रीदेवव्रत शास्त्री
('नवशक्ति'–'राष्ट्रवाणी'–सम्पादक)



'योगी'-सम्पादक
श्रीव्रजशंकरजी



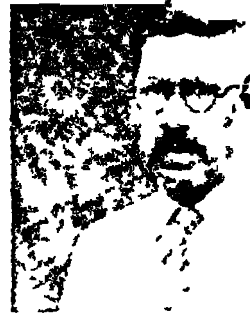
मासिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) के भूतपूर्व सम्पादक—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल० (चन्द्रधारी-मिथिला कालेज, दरभंगा)।



दैनिक 'राष्ट्रबन्धु' (कलकत्ता)
और मासिक 'जन्मभूमि'
(पटना) के भूतपूर्व सम्पादक
श्रीविश्वनाथसिंह शर्मा



प्रोफेसर अमरनाथ झा एम० ए०
(वाइसचान्सलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय)



प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा एम० एस् सी०
(हिन्दू-विश्वविद्यालय)



प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०
(साइन्स-कालेज, पटना)



प्रिन्सिपल विश्वमोहनकुमार सिंह
(चन्द्रधारी-मिथिला-कालेज, दरभंगा)



प्रो० धर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए०
पटना-कालेज



प्रो० केसरीकिशोरशरण, एम० ए०,
बी० एल०, राजेन्द्र-कालेज (छपरा)

जाते हैं; परन्तु प्रधानता पंडित सकलनारायणजी की ही रही—यद्यपि इन सबका सहयोग पंडितजी को प्राप्त था।

पटना के पुराने पत्रों में 'खत्री-हितैषी', 'भारत-रत्न', पं० विनयानन्द त्रिपाठी-सम्पादित मासिक 'उद्योग', पं० कृष्णचैतन्य गोस्वामी-सम्पादित मासिक 'चैतन्य-चन्द्रिका', बाबू गोकुलानन्द प्रसाद वर्मा-सम्पादित दैनिक 'बिहारी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। त्रिपाठीजी के 'उद्योग' और गोस्वामीजी की 'चन्द्रिका' में साहित्यिक गुणों की अधिकता थी। ये दोनों सचित्र मासिक थे।

पटना के नामी बारिस्टर और विद्वान् हिन्दी-लेखक श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल के सम्पादकत्व में, सन् १९१४ ई० के मध्य में, साप्ताहिक 'पाटलिपुत्र' निकला। जायसवालजी छ महीने तक इसे सुसम्पादित मासिक पत्र की तरह निकालते रहे। यह हथुआ-राज्य का पत्र था। राज्य के संरक्षण में यह बहुत बरसों तक चलता रहा। जायसवालजी के अलग होने पर इसके संपादक हुए पटना-निवासी बाबू सोनासिंह चौधरी, जिनके सुयोग्य सहकारियों में पंडित पारसनाथ त्रिपाठी और रामानन्द द्विवेदी मुख्य थे। त्रिपाठीजी शाहाबादी थे और द्विवेदीजी मिर्जापुरी। चौधरीजी के विनोदी स्वभाव से इन सहकारियों का खासा मेल था। पत्र बहुत सुन्दर निकलता था। एक विशेषांक तो ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर निकला था कि आजतक वैसा विशेषांक किसी साप्ताहिक का न देखा गया।

देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद के सम्पादकत्व में, सन् १९१९ ई० में, पटना से साप्ताहिक 'देश' निकला। उक्त 'बिहारी' के बन्द हो जाने से प्रान्त में जो सूनापन छाया हुआ था, वह दूर हुआ। हिन्दी-संसार में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। पीछे आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ, इसके सम्पादक हुए। पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित और पंडित पारसनाथ त्रिपाठी भी इसके सम्पादकीय विभाग में खूब काम कर चुके हैं। यह करीब दस साल तक प्रान्त में राष्ट्रीय भावों का निर्भीकता-पूर्वक प्रचार करता रहा। अन्त में यह भी आर्थिक और राजनीतिक संकटो का शिकार हो गया। सन् १९४० ई० में, पं० रामचन्द्र त्रिवेदी के सम्पादकत्व में, इसी नाम का साप्ताहिक फिर निकला; किन्तु मुश्किल से एक ही साल चल सका।

राष्ट्रीय 'देश' के बाद, ही महात्मा गान्धी के 'यंग इंडिया' का हिन्दी-रूपान्तर-स्वरूप, पटना से 'तरुण भारत' साप्ताहिक निकला था, जिसके संपादक थे वही उपर्युक्त 'देश' वाले पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित और उनके सहकारी थे श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी। चौधरी-टोला (पटना) के सुप्रतिष्ठित रईस श्रीमान् लाल बाबू इसके

जन्मदाता और संचालक थे। लाल बाबू और उनके इस पत्र ने राष्ट्रीय आन्दोलन को उत्तेजन देने में खूब हाथ बटाया। किन्तु राष्ट्र-भक्त लाल बाबू के देहान्त के बाद इसका सम्पादकत्व पंडित बटुकदेव शर्मा के हाथ लगा, जिन्होंने इसकी पूर्वार्जित कीर्त्ति को मन्द कर दिया—देशपूज्य राजेन्द्र बाबू को लगातार जली कटी सुनाकर। राजेन्द्र बाबू सहिष्णुता की उस कठोर अग्नि-परीक्षा मे आश्चर्यजनक रीति से उत्तीर्ण हुए। अंत में यह पत्र अपयश का भारी बोझ लादे मौत के घाट उतरा।

सन् १६२६—२७ में, बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-सभा और अखिलभारतीय हिन्दू महासभा के भूतपूर्व मंत्री तथा बिहार की कांग्रेसी सरकार के भूतपूर्व पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बाबू जगतनारायण लाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, के सम्पादकत्व में पटना से ही साप्ताहिक 'महावीर' निकला था। सन् १६३१—३२ मे, सत्याग्रह आन्दोलन के समय, यह बन्द हुआ। कुछ दिन यह अच्छे ढंग से चला, पर राजनीतिक आन्दोलन में सम्पादक के अत्यन्त व्यस्त होने से अन्त में बहुत शिथिल हो गया।

सन् १६२८ ई० में श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी के सम्पादकत्व में पटना से सचित्र मासिक 'युवक' निकला। यह अपने साथ नई सजधज, नई रोशनी, नई विचार धारा और नई उमंगें लेकर आया। काफी लोकप्रिय हुआ। किन्तु एक ही साल के बाद सरकार ने इसका प्रकाशन रोक दिया। ऐसा सामयिकतापूर्ण और युगानुकूल नवीनताओं से संवलित कोई मासिक पत्र पटना से नहीं निकला था—यही अपने रंग-ढंग का सबसे पहला मासिक था, और आज भी इसकी जगह खाली ही है।

पटना नगर की साहित्यिक चेष्टाओ का प्रभाव जिले के कस्बो पर भी पड़ा। पटना के पड़ोसी शहर दानापुर से बिहार के आर्य-समाज का मुखपत्र 'आर्यावर्त्त' पहले-पहल पंडित रुद्रदत्तजी के सम्पादकत्व मे निकला। पीछे क्रमशः बाबू ब्रह्मानन्द और राँची के वकील बाबू बालकृष्ण सहाय के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता रहा। अन्त मे यह स्वामी भवानीदयाल संन्यासी के सम्पादकत्व मे साप्ताहिक रूप से निकलकर बद हो गया। आजकल दानापुर से पाक्षिक 'साथी' निकलता है; पर यह समय का नियमित साथी नहीं है।

जिले के सब-डिवीजन 'बाढ़' से 'तेली-समाचार' और खास पटना से 'क्षत्रिय समाचार' नामक सामाजिक मासिक पत्र भी कुछ समय तक निकलते रहे। 'तेली-समाचार' इस सदीकी दूसरी दशाब्दी (६१२ ई०) में बाबू कालीप्रसाददास के सम्पादकत्व में निकला था। इस सदी की चौथी दशाब्दी ने पटना में कई अच्छे

पत्रों को जन्म दिया, जिनसे प्रान्त में खासी साहित्यिक जागृति फैली और हिन्दी-पाठकों में एक नूतन चैतन्य दीख पड़ने लगा। ऐसे पत्रों में सबसे पहले साप्ताहिक 'योगी' का नाम आता है। सारन जिले के प्रतिष्ठित जमीन्दार, कौंसिल-मेम्बर और कांग्रेस-भक्त बाबू नारायणप्रसाद सिंह ने, सन् १९३३ में, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी के सम्पादकत्व में 'योगी' निकाला। पीछे बेनीपुरीजी के अलग होने पर इसके सम्पादक हुए श्रीव्रजशंकरजी। आप वसंतपुर (सारन) के निवासी बड़े उत्साही और कर्मठ नवयुवक हैं। आरम्भ से ही आप 'योगी' की आन्तरिक व्यवस्था में दत्तचित्त रहे। फिर सम्पादन-भार-ग्रहण करके आपने उसे बहुत आगे बढ़ाया। आप ही की लगन से वह हिन्दी के अच्छे साप्ताहिकों में गिने जाने योग्य हुआ है। आपने उसके कई उत्तम विशेषांक निकाले, और सदैव उसके कलेवर का परिष्कार करते रहते हैं।

बिहार के हिन्दी-क्षेत्र की ऊसर जमीन जोतने में 'योगी' को जूझते देखकर भी देवव्रतजी ने दुस्साहस करने के लिये साहस समेटा और बिहार-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के कर्णधारों के उद्योग एवं सहयोग से सन् १९३४ में 'नवशक्ति' साप्ताहिक निकाल ही डाला। 'नवशक्ति'-सम्पादक श्रीदेवव्रतजी शास्त्री हिन्दी के एक श्रेष्ठ पत्रकार हैं। चम्पारन जिले के निवासी, काशी-विद्यापीठ के विद्यार्थी, प्रतापी विद्यार्थीजी को आँच में तपे हुए, अपने प्रान्त की परिस्थिति से पूर्ण परिचित और पत्र-संचालन की कठिनाइयों के अनुभवी शास्त्रीजी ने 'नवशक्ति' को हिन्दी के गिने-चुने साप्ताहिकों की कोटि में बिठाकर ही छोड़ा। 'योगी' प्रति शुक्रवार को और 'नवशक्ति' प्रति शनिवार को नियमित रूप से प्रकाशित होती है। यह राष्ट्रीय पत्रिका अपनी स्तुत्य सेवाओं से बिहार का गौरव बढ़ा रही है।

पटना के प्रसिद्ध पुस्तक-व्यवसायी बर्मन-कम्पनी ने अपने युनिवर्सिटी प्रेस से, श्री ललितकुमार सिंह 'नटवर' के सम्पादकत्व में, सन् १९३५ में, 'आलोक' नामक सिनेमा-साप्ताहिक निकाला। पत्र काफी लोकप्रिय हुआ; किन्तु अपने स्वत्वाधिकारियों की इच्छा के आगे उसे सिर झुकाना पड़ा—डेढ़ साल के अन्दर ही अनन्त अन्धकार में समाना पड़ा। पर शीघ्र ही वह अन्धकार की घटा चीरकर 'बिजली' बन निकला। इसी प्रेस से, सन् १९३६—३७ में, श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' के सम्पादकत्व में, साहित्यिक साप्ताहिक पत्रिका 'बिजली' प्रकट हुई—अपने ढंग की अनोखी। प्रायः सभी नवयुवक लेखकों का सहयोग इसे मिला। 'मुक्त' जी के बाद पंडित हंसकुमार तिवारी इसके सम्पादक हुए। किन्तु विकट

परिस्थितियों से विवश होकर इसे भी महाशून्य मे विलीन होना पड़ा। पर 'बिजली' के आकाश के आवरण में छिपने पर भी पटना के साहित्य-क्षेत्र में अंधकार का अधिकार न हुआ। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से त्रैमासिक 'साहित्य' जगमगाता निकल पड़ा। हिन्दी-साहित्याकाश के दो देदीप्यमान नक्षत्र इसके सम्पादक थे—श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', एम० ए० और श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०। उस समय ये दोनों सज्जन देवघर के गोवर्द्धन-साहित्य-विद्यापीठ के कर्णधार थे। इससे सम्पादन कार्य मे असुविधा होने लगी। तब आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने काम सँभाला। इसके निबन्ध बहुत ऊँचे दर्जे के होते थे। इसकी आलोचनाएँ पांडित्यपूर्ण होती थीं। किन्तु गम्भीर साहित्यिक होने के कारण जनता की हल्की रुचि पर इसका सिक्का न जम सका। चार-पाँच अंकों के बाद विश्राम ही लेना पड़ा।

सन् १९३८ मे, साम्यवादी दल के 'जन-साहित्य-संघ' (पटना) की ओर से, 'जनता' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकली। इसके सम्पादक हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी। समाजवादी विचार की यह प्रगतिशील पत्रिका दलितों, पीड़ितों और शोषितों की आवाज बुलन्द करके एक अभिनव क्रान्ति का आवाहन करने में समर्थ हुई। १९३९ के किसान-आन्दोलन को आगे बढ़ाने का श्रेय इसी को है। इसकी तीव्र आलोचनाओं के कारण सरकार की वक्र दृष्टि इसपर पड़ी। अधिकारिवर्ग का कोपभाजन होकर इसे अपना कार्यक्षेत्र सूना छोड़ जाना पड़ा।

उन्हीं दिनों बिहार-लैंडहोल्डर्स-एसोसिएशन (पटना) की ओर से एक साधारण साप्ताहिक 'जीवन' निकला था। यह जमीन्दारों का पत्र था। युग-प्रभाव से जनप्रिय न हो सका। कुछ ही दिनों बाद बेचारा 'जीवन' निर्जीव हो गया।

'इंडियन नेशन' प्रेस (पटना) से कुछ दिनों तक दैनिक 'जनक' निकलता रहा। यह पूरा विदेह था।

हाँ, बिहार-सरकार का कृषि-विभाग दस साल से जो मासिक 'किसान' निकाल रहा है, जिसमें किसानों के हित की बहुत-सी उपयोगी बातें रहती हैं, वह वस्तुत. बड़ा लाभदायक पत्र है। शुरू मे उसके त्रैमासिक रूप के सम्पादक थे बिहार कौंसिल के उस समय के अध्यक्ष माननीय बाबू रजनधारी सिंह। इन दिनों संपादक हैं बिहार के वयोवृद्ध पत्रकार श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह। आप सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) के निवासी हैं। आप अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन



ीअवधनारायण लाल (दरभंगा) पृष्ठ ५६३



ुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीराधाकृष्णजी
(राँची)



आरा-निवासी प्रसिद्ध कहानी-लेखक
श्रीराधाकृष्णप्रसाद



सा० र० श्रीअनूपलाल मंडल (पूर्णिया)



श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (शाहाबाद)



श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव
(समस्तीपुर)



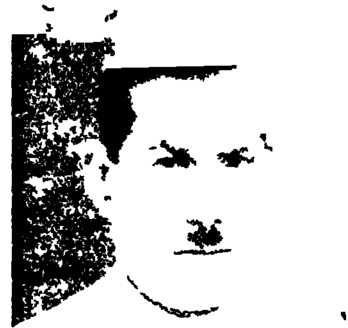
श्रीयुगलकिशोर शास्त्री (मुंगेर) 'प्रताप'-सम्पादक



सुरेन्द्र झा 'सुमन' मिथिलामिहिर-सम्पादक



श्रीदिनेशदत्त झा, (भागलपुर) दैनिक 'आर्यावर्त्त'-सम्पादक



श्रीत्रिवेणी प्रसाद बी ए 'बालकेसरी'-सम्पादक, आ



श्रीसुरेश्वर पाठक विद्यालंकार मुंगेर 'प्रभाकर'-सम्पादक



श्रीनवलकिशोर धवल 'मुंगेर-समाचार'-सम्पादक

(प्रयाग) के उपमंत्री और उसकी 'सम्मेलन-पत्रिका' के सम्पादक रह चुके हैं। 'हरिश्चन्द्र-कला' के भी कुछ दिन सम्पादक रहे। 'शिक्षा' की भी सेवा की है।

बिहार-कोआपरेटिव-फेडरेशन (सहयोग-संघ) से चार साल से 'गॉव' प्रति मास निकलता है। इसके संपादक हैं रायसाहब मथुराप्रसाद, बी० ए०, और पहले थे श्रीदीपनारायण सिंह, बी० ए०, एम० एल० ए०। इसमें ग्रामीणों के योग्य अच्छे-अच्छे लेख रहते हैं। इसका कार्यालय पटना-गया-रोड पर पटना में है।

इधर कुछ दिनों से, बिहार-सरकार के पब्लिसिटी-डिपार्टमेंट की ओर से, सचित्र साप्ताहिक 'देहात' निकलता है। इसके संपादक हैं बाबू विश्वनाथप्रसाद वर्मा, जो पहले बिहार के ॲंगरेजी-दैनिक 'इंडियन नेशन' के सम्पादकीय विभाग में थे। अपने ढंग का यह अच्छा पत्र है। इसके द्वारा वर्त्तमान विश्वव्यापी युद्ध के प्रामाणिक समाचार सरल भाषा में देहाती जनता तक पहुँचाये जाते हैं।

बिहार-सरकार की निरक्षरता-निवारण-समिति की ओर से भी 'रोशनी' नामक पाक्षिक पत्रिका निकलती है। इसके संपादकों में प्रमुख हैं प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए० (त्रितय) और प्रो० कृपानाथ मिश्र, एम० ए०। नागरी और फारसी लिपियों में एक ही तरह के विषय छपते हैं। भाषा बहुत ही सरल रहती है—दोनों लिपियों में एक-सी।

दो अस्तंगत मासिकों को हम नहीं भूल सकते—बिहारशरीफ का 'नालन्दा' और पटना की 'जन्मभूमि'। प्रथम का जन्म सन् १६३५–३६ में हुआ। प्रोफेसर रत्नचन्द्र छत्रपति, एम० ए०, साहित्यरत्न, और पं० छेदीलाल झा सम्पादक थे। दूसरी पत्रिका १६३८ में निकली थी। सम्पादक थे श्रीविश्वनाथसिंह शर्मा। छत्रपतिजी बिहार-शरीफ के निवासी हैं और झा जी भी। शर्माजी मुजफ्फरपुर जिले के हैं। शर्माजी इसके पहले कलकत्ता से दैनिक 'राष्ट्रबंधु' निकाल चुके हैं। उक्त दोनों मासिक शुद्ध साहित्यिक थे। 'नालन्दा' को तो एक-डेढ़ साल टिकने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, पर 'जन्मभूमि' दो-तीन मास ही बाँकी झाँकी दिखाकर अपनी लीला समाप्त कर गई।

सन् १६३८ में ही, बाल-शिक्षा-समिति (बाँकीपुर) से, पंडित रामदहिन मिश्र के सम्पादकत्व में, किशोरोपयोगी सचित्र मासिक 'किशोर' निकला। इसके सहकारी संपादक हुए पंडित हंसकुमार तिवारी। दो-ढाई साल के बाद तिवारीजी अब अलग हो गये। 'किशोर' की गणना अच्छे पत्रों में है। इसके जन्म से पत्र-प्रकाशन-क्षेत्र में बिहार की प्रतिष्ठा और भी बढ़ी है।

बिहार के गौरव-स्वरूप तीन पत्र इधर पटना से और निकले हैं—एक मासिक 'आरती' और दो दैनिक—'राष्ट्रवाणी' तथा 'आर्यावर्त्त'। प० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' ने सन् १६४० में 'आरती' को प्रकाशित करके बिहार को एक नई चीज दी है। हिन्दी के यशस्वी लेखक और कवि तथा 'विशालभारत' के भूतपूर्व संपादक श्रीसच्चिदानन्द-हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का सहयोग 'आरती' को प्राप्त है। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका है, किन्तु भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओं पर भी सम्पादकीय विचारों द्वारा प्रकाश डाला जाता है। 'आरती' के जगमगाते रहने से ही बिहार की लाली रहेगी। बिहार के प्रत्येक हिन्दीप्रेमी को इसे स्नेहसिक्त करना चाहिये।

'राष्ट्रवाणी' को जन्म देने का श्रेय इसके संपादक श्रीदेवव्रतजी को है, जो पूर्वोक्त 'नवशक्ति' के भी प्राणदाता हैं। बिहार एक दैनिक पत्र का अभाव अनुभव कर रहा था। 'नवशक्ति' भी कुछ दिनों तक दैनिक रूप में निकली थी, किन्तु अर्थाभाव के कारण आगे न बढ़ सकी। 'नवशक्ति' के भवन की नींव भी राष्ट्रधन पंडित जवाहरलाल नेहरू के हाथों पड चुकी है, पर उसका निर्माण भी अर्थाभाव ही के कारण रुका हुआ है। यह बात भी बिहारियों को ध्यान मे रखनी चाहिये। किन्तु देवव्रतजी की लगन और धुन इतनी पक्की है कि 'राष्ट्रवाणी' चलाकर और 'नवशक्ति'-भवन बनवा कर ही कल करेंगे। उनकी 'राष्ट्रवाणी' का उद्घाटन देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी ने किया है, इसलिये यशोधन कर-कमलों की रोपी हुई लता दिन-दिन लहलहाती और ऊँचा चढ़ती जायगी। इसके अतिरिक्त 'राष्ट्रवाणी' जिस गति से लोकप्रियता-सम्पादन कर रही है वह निश्चय ही उसे सफलता की चोटी पर पहुँचाकर रहेगी।

'इडियन नेशन प्रेस' से निकलनेवाले, श्रीमान् मिथिलेश द्वारा संरक्षित, 'आर्यावर्त्त' की तो बात ही निराली है। दरभंगा-राज्य की छत्रच्छाया मे उसको कभी अर्थसन्ताप नहीं सता सकता। उसके सुयोग्य प्रधान सम्पादक हैं पंडित दिनेशदत्त झा, बी. ए, जो हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ दैनिक 'आज' (काशी) के सम्पादकीय विभाग में बरसो रहकर पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। आप भागलपुर जिले के निवासी हैं। आपके सहकारी हैं श्रीललिताप्रसादजी, बिहारशरीफ निवासी, जो बहुत दिनो तक कलकत्ता के राष्ट्रीय दैनिक 'स्वतत्र' के सम्पादकीय विभाग मे काम कर चुके है। ऐसे मँजे हाथो में पड़ने से ही उसका रूप स्वच्छ कान्ति पा सका है। उसका दाम सिर्फ एक पैसा है। यह भी दरभंगा-राज्य के

संरक्षण का प्रताप है और श्रीमन्त मिथिलेश का सहज औदार्य भी। इससे वह बहुत लोकरंजक प्रमाणित हो रहा है।

बिहार में दो अँगरेजी दैनिक भी हैं—'इंडियन नेशन और 'सर्चलाइट'। पहला मिथिलेश-संरक्षित है। दूसरा पुराना राष्ट्रीय पत्र है। इस दूसरे के सम्पादक श्रीमुरलीमनोहरप्रसादजी बड़े सुयोग्य और अनुभवी पत्रकार हैं। इस दूसरे के कार्यालय से ही पिछले राष्ट्रीय आन्दोलन में इसी के नाम का हिन्दी-दैनिक (सर्चलाइट—हिन्दी-सप्लिमेंट) निकलता था। पहले के कार्यालय से उपर्युक्त दैनिक 'आर्यावर्त्त' निकल रहा है। अँगरेजी और हिन्दी के ये चारों दैनिक तन-मन-धन से बिहार की सेवा कर रहे हैं। इनकी सेवा से बिहार का जो उपकार हो रहा है उससे आशा बँधती है कि बिहार अब दिन-दिन उन्नति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होता चला जायगा। तथास्तु।

शाहाबाद

आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा की त्रैमासिक 'नागरी-हितैषिणी पत्रिका' ही इस जिले की सबसे पहली पत्रिका है, जो बीसवीं सदी के आरम्भिक प्रहर में ही प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक थे हिन्दी और संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सकलनारायण शर्मा। श्रीजैनेन्द्रकिशोर जैन, बाबू शिवनन्दन सहाय, बाबू व्रजनन्दन सहाय आदि के सहयोग से यह बरसों चलती रही। अन्त में इसका नाम 'साहित्य-पत्रिका' हो गया और इस नाम से यह मासिक रूप में प्रकट हुई। इसके सम्पादक हुए सभा के प्रधान मंत्री और हिन्दी के विख्यात लेखक बाबू व्रजनन्दन सहाय। पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, बाबू अवधविहारीशरण एम० ए० बी० एल०, बाबू रघुनाथ प्रसाद मुख्तार, बाबू कृष्णजी सहाय आदि हिन्दी-लेखकों के सहयोग से कई साल निकलकर यह भी बन्द हो गई।

दूसरा सचित्र मासिक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने सन् १९१२ ई० में निकाला—'मनोरंजन'। यह अपने समय का बड़ा लोकप्रिय पत्र था। शुद्ध साहित्यिक था। सम्पादनशैली में सामयिकता थी। हिन्दी-पत्रों में यह अपना एक स्थान छोड़ गया है। यद्यपि यह तीन ही वर्ष तक निकला, तथापि यह नये ढंग का एक बहुत ही सुसज्जित और सुन्दर मासिक पत्र था। तृतीय बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति बाबू शिवनन्दनसहाय के शब्दों में—"मनोरंजन' खूब सजधज कर निकलता था और अपने सुन्दर लेखों से मन को रंजित किया करता था।" इसके दो महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्क भी निकले थे।

'मनोरंजन' के बन्द होने पर कुछ दिनों तक उक्त 'साहित्य पत्रिका' आँसू पोंछती रही। यह भी १९२० के लगभग बन्द हो गई।

सन् १९२० में आरा से साप्ताहिक 'राम' निकला। इसके सम्पादक हुए श्रीहरिहरप्रसाद मुख्तार और फिर पंडित रामप्रीत शर्मा 'विशारद'। लगभग तीन वर्ष निकलकर यह भी बन्द हुआ। कुछ दिन यह मासिक रूप मे भी चला था। सहयोग-समिति और कृषि पर इसका विशेष ध्यान रहता था।

आरा से निकलनेवाला 'जैनसिद्धान्त-भास्कर' हिन्दी में अपने ढंग का अकेला त्रैमासिक है। ओरियंटल जैन-लाइब्रेरी के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री के० भुजबली शास्त्री इसका सम्पादन करते हैं। जैन-धर्म-सम्बन्धी खोज-भरे लेख इसमें रहते हैं। यह सन् १९१४—१५ से बराबर निकल रहा है।

आरा से ही निकलनेवाला 'हितैषी' भी एक साधारण साप्ताहिक पत्र है। इसके संपादक हैं श्रीवैद्यनाथप्रसादजी। अधिकतर इसमे देहातियों और स्कूल के विद्यार्थियों के काम की चीजें छपती हैं। नीलामी अदालती इश्तहार भी छपा करते हैं।

आरा से प्रकाशित होनेवाले सचित्र मासिक 'मारवाड़ी-सुधार' की गिनती अच्छे पत्रों में होती थी। श्रीहरद्वारप्रसाद जालान और श्रीनवरंगलाल तुलसान तथा श्रीदुर्गाप्रसाद पोद्दार नामक तीन उत्साही मारवाड़ी युवकों के प्रयत्न से, 'मारवाडी-सुधार-समिति' के मुखपत्र के रूप में, इसका जन्म सन् १९२१ ई० में हुआ। इसके सम्पादक हुए बाबू शिवपूजनसहाय। पत्र के सम्बन्ध मे उपर्युक्त बाबू शिवनन्दन सहाय ने अपने उसी भाषण मे कहा था—"मारवाड़ी-सुधार' की छपाई-सफाई सराहनीय है। लेख भी उत्तम और लाभदायक हैं।" यह कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, कानपुर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, रानीगंज, झरिया आदि नगरों के धनाढ्य मारवाड़ियों की आर्थिक सहायता से प्रकाशित होता था। जब 'अखिलभारतवर्षीय मारवाडी-अग्रवाल-महासभा' की ओर से उसका मुखपत्र 'मारवाडी-अग्रवाल' कलकत्ता से निकलने लगा तब पूरे दो वर्ष तक निकालकर यह पत्र बन्द कर दिया गया। यह सामाजिक होते हुए भी साहित्यिक था।

पंडित पारसनाथ त्रिपाठी, जो किसी समय पटना के 'पाटलिपुत्र' के सम्पादक-मंडल में थे, सन् १९३७ में आरा से साप्ताहिक रूप में 'पाटलिपुत्र' निकालने लगे। पत्र अच्छा निकला; पर प्राय' एक वर्ष निकलकर, त्रिपाठीजी की असामयिक मृत्यु के कारण, जो मोटर की दुर्घटना से हुई थी, बन्द हो गया।

त्रिपाठीजी एक कर्मठ पुरुष थे। यदि वे जीवित रहते तो उनका 'पाटलिपुत्र' आज बिहार के एक अस्तङ्गत सर्वोत्तम साप्ताहिक पत्र का स्मारक बना रहता।

सन् १९३७ के दिसम्बर में आरा में बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पन्द्रहवाँ अधिवेशन हुआ। उसी अवसर पर साप्ताहिक 'स्वाधीन भारत' का जन्म हुआ। इसके संपादक हुए श्रीरामायणप्रसाद, एम० एल० ए०, और श्रीबनारसी प्रसाद भोजपुरी। इसका सम्पादन अच्छे ढँग से होता था। इसके संचालन के लिये 'भारत-प्रिंटिङ्ग वर्क्स लिमिटेड' की स्थापना हुई थी। लगभग दो साल यह जीवित रहा। राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रधान सम्पादक के फँस जाने से प्रेस के अधिकारियों ने इसे नामशेष कर दिया।

सन् १९३९ में श्रीकृष्णमोहन वर्मा ने आरा से 'अग्रदूत' नामक एक प्रगतिशील सुसम्पादित साप्ताहिक निकाला। किन्तु, अर्थाभाव के कारण, चार ही अंक निकालकर, इसका प्रकाशन बन्द करना पड़ा। यह बहुत ही सुन्दर निकला था।

आरा से, अप्रैल १९४१ से, 'बाल-केसरी' नामक एक सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र बालोपयोगी मासिक पत्र निकल रहा है। आरा के सुपरिचित स्वर्गीय हिन्दी-लेखक श्री जैनेन्द्रकिशोर जैन के सुपुत्र श्री देवेन्द्रकिशोर जैन अपने 'सरस्वती-प्रिंटिङ्ग वर्क्स' नामक प्रेस से इसे निकालते हैं। इसके सम्पादक हैं अनुभवी पत्रकार और लेखक श्रीत्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, जो 'चाँद' और 'कर्मयोगी' (प्रयाग) के सम्पादकीय विभाग में बहुत दिनों तक रह चुके हैं। पत्र का संपादन और प्रकाशन सुन्दर ढँग से होता है। भविष्य आशाप्रद है।

गया

इस जिले से कई अच्छे पत्र निकले। किन्तु स्थायी कोई न रहा। सबसे पहली मासिक पत्रिका 'लक्ष्मी-उपदेश-लहरी' है। सबसे अधिक उल्लेखनीय यही है। औरंगाबाद के रायसाहब लक्ष्मीनारायणलाल इसके जन्मदाता हैं। सन् १९०३ में औरंगाबाद (गया) से यह निकली। कुछ साल बाद इसीका नाम केवल 'लक्ष्मी' हो गया और यह गया शहर के लक्ष्मी प्रेस से निकलने लगी। इस नाम से यह सन् १९२०-२१ तक निकलती रही। हिन्दी-संसार में इसने अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। बिहार की यही एकमात्र पत्रिका समझी जाती रही। इसके कई सम्पादक हुए, जिनमें स्वयं रायसाहब के अतिरिक्त बाबू गोरेलाल, कविवर लाला भगवान दीन', पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा और रायसाहब के सुपुत्र बाबू रामानुग्रहनारायण-

लाल, बी० ए०, बी० एल०, विख्यात हैं। 'लक्ष्मी' के बन्द होने के बाद ही रायसाहब ने 'गृहस्थ' नामक कृषि-सम्बन्धी साप्ताहिक निकाला। कुछ दिन यह मासिक रूप में भी निकला। पीछे साप्ताहिक रूप में बरसों चला। लक्ष्मी प्रेस के मैनेजर श्री बाबूलाल गुप्त भी इसके सम्पादक हुए थे और उनके सुपुत्र श्री द्वारकाप्रसाद गुप्त इसमें बिहार के साहित्य-सेवियों का परिचयात्मक विवरण धारावाहिक रूप से लिखा करते थे। यह हाल ही मे बन्द हुआ है।

बीसवीं सदी के आरम्भ मे जमोर (गया) से 'हरिश्चन्द्र-कौमुदी', गया से 'उपन्यास-कुसुमाजलि' और 'साहित्य माला' नामक पत्रिकाएँ निकलीं। प्रथम दो तो अल्पायु हुईं, किन्तु 'साहित्य-माला' कुछ समय बाद तक चलती रही। इसके बाद गया के प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता बाबू रामसहायलाल ने शिक्षाप्रद 'विद्या' नामक मासिक पत्रिका निकाली। इसके संपादक थे अखौरी शिवनंदनप्रसाद और पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। यह भी कुछ साल बाद बन्द हो गई। 'हसुआ' ग्राम से श्रीगोपीचंदलाल ने भी सन् १९१६ मे 'माहुरी-मयंक' नामक एक जातीय पत्र निकाला था। वे स्वयं ही इसके सम्पादक भी थे। यह कई साल तक अनियमित रूप से चलता रहा। इसके कई विशेपांक भी निकले थे।

देव (गया) के राजा राणा जगन्नाथबख्शसिंह की प्रेरणा से तीसरी दशाब्दी मे 'कृष्ण' नामक एक सुन्दर मासिक पत्र निकला। इसके सम्पादक हुए आज के 'माधुरी'-संपादक लखनऊ-निवासी पंडित रूपनारायण पांडेय। किन्तु दुर्भाग्यवश राजा साहब का अचानक देहान्त हो गया। इसलिये सिर्फ एक ही अंक निकल सका। इसके लिये खुला हुआ छापाखाना भी तहसनहस हो गया।

इस जिले के करमा-भगवान ग्राम के निवासी कुमार बदरीनारायण सिंह के उद्योग से, गया के क्रान्तिकारी युवक श्री श्याम बरथवार के सम्पादकत्व में 'चिनगारी' नाम की सुन्दर साप्ताहिक पत्रिका सन् १९३८ मे निकली थी। समाजवाद के सिद्धान्त का प्रचार करनेवाली पत्रिका थी। इसलिये अधिक जीने न पाई। इसकी सम्पादनशैली मे बड़ी ओजस्विता और तेजस्विता थी।

गया के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' के सम्पादकत्व में 'बिहार' और 'त्रिलोचन' नामक साप्ताहिक पत्र निकले थे, 'वियोगी' जी से इनका भी वियोग हो गया। उनके हटते ही इनको भी कर्मक्षेत्र हटना पड़ा। 'वियोगी' जी सुरुचिशील पत्रकार भी हैं।

भागलपुर

'पीयूष-प्रवाह' नामक मासिक पत्र, सन् १८८४ में, भागलपुर से निकला था। यही पत्र, १८८३ में, 'वैष्णव-पत्रिका' के नाम से निकलता था। यही भागलपुर का सबसे पहला पत्र है। 'पीयूष-प्रवाह' का सम्पादन पंडित अम्बिकादत्त व्यास करते थे। व्यासजी वहाँ जिला-स्कूल में हेडपंडित थे। उनकी बदली होने के बाद यह पत्र बन्द हो गया। सन् १८८४ में ही 'भारतपंचामृत' नामक मासिक पत्र भी भागलपुर से ही निकला था, पर चला नहीं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में 'आत्मविद्या' और 'श्रीकमला' नामक दो मासिक पत्रिकाएँ भागलपुर से निकलीं। 'श्रीकमला' का संपादन छपरा-निवासी पंडित जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ करते थे। यह सचित्र और सुसम्पादित निकलती थी। ये दोनो पत्रिकाएँ कुछ साल तक निकलकर बन्द हो गईं। किन्तु 'आत्मविद्या' के सम्पादक श्रीगोकुलानन्दप्रसाद वर्मा ने फिर 'प्रेमाभक्ति' और 'सत्संग' नामक दो धार्मिक पत्र निकाले थे। ये दोनों पत्र नियमित नहीं थे। वर्मा जी नामी पत्रकार थे।

भागलपुर जिले को ही 'गंगा' के समान उच्च कोटि की साहित्यिक मासिक पत्रिका के जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह सन् १९३० में, बनैली-राज्याधीश श्रीमान् कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर के संरक्षण और पंडित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ के संचालन तथा पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त-शास्त्री के सम्पादकत्व में, सुलतानगंज से निकली थी। इसके विशेषांक हिन्दी-साहित्य-भांडार के अमूल्य रत्न हैं—वेदांक, गंगांक, विज्ञानांक, पुरातत्त्वांक, चरितांक इत्यादि विशेषांक हिन्दी-संसार में बहुत विख्यात हो चुके हैं। इसके संपादकों में श्री शिवपूजनसहाय और पंडित गौरीनाथ झा भी थे। अन्त में साहित्याचार्य 'मग' भी इसके सम्पादक-मंडल में सम्मिलित हुए। पाँच-छ साल निकलने के बाद यह बन्द हो गई। इसकी जगह 'हलधर' ने ले ली। पंडित गौरीनाथ झा के सम्पादकत्व में, सन् १९३६ से, साप्ताहिक 'हलधर' निकल रहा है। 'मग'जी इसके सम्पादन-विभाग में हैं।

दो अन्य सुन्दर मासिक पत्रिकाएँ भी भागलपुर से निकलकर बन्द हो गईं। एक 'बीसवीं सदी', जो सन् १९३८ में निकली। इसके संपादकों में थे श्रीतारकेश्वरप्रसाद, श्रीसत्येन्द्र अग्रवाल और श्रीमाहेश्वरीसिंह 'महेश' एम० ए०।

यह काफी प्रगतिशील थी। स्वच्छ रूप था। पाठ्यसामग्री सामयिक होती थी। किन्तु यह पूरे दो वर्ष भी न चल सकी। और, दूसरी थी 'छाया', जो पंडित हंसकुमार तिवारी के सम्पादकत्व मे निकली। यह सिनेमा की, सुसंस्कृत रुचि की, कलामयी, अप-टु-डेट पत्रिका थी।

भागलपुर से ही पंडित अशर्फी शुक्ल ने 'शान्ति' नामक दैनिक पत्रिका निकाली थी, जो कुछ दिनों वाद क्रमश द्विदैनिक और अर्द्धसाप्ताहिक तथा साप्ताहिक रूप में निकलकर वन्द हो गई। प० जनार्दन मिश्र 'परमेश' का मासिक 'सुप्रभात' भी इसी गति को प्राप्त हुआ।

मुँगेर

'देश-सेवक' और 'मुँगेर-समाचार' इस जिले के दो पुराने पत्र थे। 'देश सेवक' एक अच्छा साप्ताहिक था। इसके सुयोग्य सम्पादक पं० श्रीकृष्ण मिश्र ने अच्छे ढँग से इसे चलाया। किन्तु यह भी टिक न सका। हाँ, यहाँ का 'प्रभाकर' विहार का एक सुंदर साप्ताहिक है। सन् १६३७ से, पंडित सुरेश्वर विद्यालंकार के सम्पादकत्व में, प्रभाकर प्रेस से, निकल रहा है। इसकी गणना विहार के अच्छे पत्रों मे है। इसके कई अच्छे विशेषांक भी निकले हैं। वेगूसराय के श्रीराम प्रेस से श्रीहृदयनारायण अग्रवाल के सम्पादकत्व मे सन् १६२६ से १६३१ ई० तक साप्ताहिक 'प्रकाश' भी निकला था।

मुजफ्फरपुर

वीसवीं सदी के प्रारम्भ में मुजफ्फरपुर के वोस प्रेस में 'तिरहुत-समाचार' का जन्म हुआ। श्रीसिद्धेश्वरप्रसाद शर्मा (स्वर्गीय) इसके सम्पादक थे; आजकल पंडित राधाकान्त झा हैं। यह साप्ताहिक पत्र तैंतीस वरसो से निकलता आ रहा है। इधर श्रीभुवनेश्वरसिह 'भुवन' और श्रीमोहनलाल गुप्त के सहयोग से इसकी काफी तरक्की हुई है। 'भुवन' जी इसको विशुद्ध साहित्यिक पत्र वना रहे हैं। इसके कई उत्तम संग्रहणीय विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। यही इस जिले का सबसे पहला और पुराना पत्र है। दूसरा पुराना पत्र है 'सत्ययुग'—जिसका मुजफ्फरपुर में ही जन्म हुआ था। यह एक सुन्दर मासिक पत्र था। इसके संपादक थे शिकारपुर (चम्पारन)-निवासी पांडेय जगन्नाथ प्रसाद, दर्शनकेसरी, एम० ए०। हिन्दीजगत् के सुपरिचित श्रीहेमचन्द्र जोशी और पंडित नन्दकुमारदेव शर्मा भी इसके सम्पादकीय विभाग में थे। खड़ी बोली की कविता के कट्टर समर्थक और प्रवर्तक वावू अयोध्या

प्रसाद खत्री के वंशधरों ने इसे निकाला था, पर अधिक दिन चला न सके। इसमें स्वामी सत्यदेव परिव्राजक बहुत लिखा करते थे।

मुजफ्फरपुर से कई पत्र निकले और बन्द हुए। उनमें वैद्यराज पंडित शिवचन्द्र शर्मा का 'आयुर्वेद-प्रदीप' विशेष उल्लेखनीय है। यह सुन्दर मासिक पत्र था। 'आर्य-बाल-हितैषी', 'भूमिहार-ब्राह्मण-पत्रिका', 'रौनियार-हितैषी', 'कायस्थ-कौमुदी', 'मध्यदेशीय वणिक-पत्रिका' इत्यादि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। 'कायस्थ-कौमुदी' के सम्पादक थे उक्त श्रीगोकुलानन्दजी। किन्तु ये सभी पत्र जातीय अथवा सामाजिक थे, इसलिये अपने सीमित क्षेत्र में अपना काम कर चले गये। 'भूमिहार-ब्राह्मण पत्रिका' लगभग पन्द्रह-बीस बरसों तक भूमिहार-ब्राह्मण प्रेस से निकलती रही। इसके सम्पादक थे श्रीयोगेश्वरप्रसादसिंह, बी० ए०, बी० एल०।

लगभग सन् १९३१ ई० में दरभंगा-राजवंश के श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन' ने 'लेखमाला' नामक त्रैमासिक पत्रिका निकाली। इसका 'विद्यापति-अंक' एक अच्छा विशेषांक था। इसी को कुछ साल के बाद 'भुवन' जी ने मासिक रूप में 'वैशाली' नाम से निकाला। यह सुसम्पादित और साहित्यिक पत्रिका थी। मुजफ्फरपुर से 'वैशाली' के समान सुन्दर मासिक पत्रिका आजतक न निकली। इसका संपादन स्वयं 'भुवन' जी करते थे। उन्होंने मुजफ्फरपुर के अपने मकान में वैशाली प्रेस भी खोल लिया था। 'वैशाली' की गणना हिन्दी की श्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में होती थी।

बिहार के प्रसिद्ध कवि और अभिनेता श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर' के सम्पादकत्व में मुजफ्फरपुर से ही 'आशा' नामक साप्ताहिक पत्रिका अच्छी निकली थी। किन्तु इससे भी निराशा ही मिली, कुछ दिन पहुनाई कर गई।

किसानों के नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा संचालित और श्रीयमुना कार्यी द्वारा सम्पादित 'लोकसंग्रह' मुजफ्फरपुर का एक उत्तम साप्ताहिक पत्र था। इसके सम्पादकीय विभाग मे श्रीबेनीपुरीजी भी थे। हिन्दी के सुसम्पादित साप्ताहिकों में इसकी गिनती होती थी। पहले इसका जन्म पटना में हुआ था—सन् १९२७—२८ में। शुरू मे लगभग एक साल के बाद यह बन्द हो गया और फिर कुछ दिनो बाद मुजफ्फरपुर से निकला। सन् १९३४ के भीषण भूकम्प के बाद इसका अंत हुआ।

सन् १९३८ में मुजफ्फरपुर से श्रीमथुराप्रसाद दीक्षित के सम्पादकत्व में साप्ताहिक 'नवयुवक' निकला। एक साल से कुछ अधिक समय तक चला। पत्र

होनहार था, पर बन्द हो गया। दीक्षितजी अनुभवी पत्रकार हैं, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों ने अनुभव को भी धोखा दिया।

सन् १९४१ से विष्णुपुर (सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर) से पंडित जयकान्त मिश्र जी 'ज्योति'श्री' नामक एक सुन्दर मासिक पत्रिका निकालने लगे हैं। यह एक प्रगतिशील पत्रिका है। इसकी शैली काफी अच्छी है। यदि यह जीवित रही तो बिहार मे साहित्यिक रुचि का विकास करने में सहायक हो सकेगी। इसी साल 'मुकुल' नामक सचित्र त्रैमासिक पत्र भी मुजफ्फरपुर से निकला है, जिसके सम्पादक हैं श्रीहरिहरनाथ सहाय 'मधुप'। यह बड़ा सुन्दर साहित्यिक पत्र है।

सारन

'सारन-सरोज' इस जिले का सबसे प्राचीन पत्र है, जो सन् १८८८ ई० में मासिक रूप में छपरा से निकला था। इसके संपादकों में पंडित अम्बिकादत्त व्यास और श्रीभवानीचरण मुखोपाध्याय का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार छपरा-निवासी पंडित कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय के पूर्वज ही इसके जन्मदाता थे। पंडित अवधविहारीशरण मिश्र इसके मैनेजर थे। आपने पत्र के चलाने मे पूरा सहयोग दिया। लगभग तीन वर्ष तक निकलकर यह बन्द हुआ। हाँ, छपरा से निकलनेवाला साप्ताहिक 'नारद' भी इस जिले के पुराने पत्रों मे है। सन् १९०५ ई० (मार्च) मे इसका पहला अंक निकला था। दरभंगा के 'मिथिलामिहिर' की तरह प्रारम्भ में यह भी मासिक था। अब यह साप्ताहिक है। 'तिरहुत-समाचार' और 'पूर्णिया-समाचार' की तरह इसमे भी अदालती नीलामी इश्तहार छपते हैं। यही इसके दीर्घ जीवन का सहारा है।

छपरा से निकलनेवाला महिलोपयोगी मासिक पत्र 'महिला-दर्पण' इस प्रान्त का सबसे पहला स्त्रीशिक्षासम्बन्धी पत्र था। इसकी सम्पादिका थीं श्रीमती शारदा देवी। प्रायः चार साल तक निकलकर यह बन्द हो गया।

साप्ताहिक 'विजय' सन् १९३७-३८ मे श्रीशिवेन्द्र दीक्षित, बी० ए०, के सम्पादकत्व में छपरा से निकला। साल-भर बाद इसने भी समाधि ले ली। दीक्षितजी बड़े अच्छे संगीतज्ञ हैं। इसलिये इसमें यदाकदा संगीत-चर्चा भी छपती थी। चौतरिया के साहित्यानुरागी जमीन्दार बाबू भगवतीप्रसाद सिंह 'शूर' ने इसमें धारावाहिक रूप से महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के संस्मरण लिखे थे।

चम्पारन

'चम्पारन-हितकारी' इस जिले के प्राचीन पत्रों में है। सन् १८८४ ई० में

इसका जन्म हुआ था। यह एक साप्ताहिक पत्र था, पीछे पाक्षिक हो गया। इसके संपादक थे पंडित शक्तिनाथ झा। ये बेतिया-राज के पुरोहित थे।

रत्नमाला-बगहा-निवासी पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र अपने गाँव (रत्नमाला) से ही 'विद्या-धर्म-दीपिका' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका सन् १८८८ ई० से निकालने लगे। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि मिश्रजी हिन्दी-प्रेमवश अपनी पत्रिका मुफ्त बाँटते थे। केवल हिन्दी-प्रचार ही इस पत्रिका का प्रमुख लक्ष्य था। कई साल तक निकलने के बाद इसका प्रकाशन स्थगित हुआ।

सन् १८६० ई० में दरभंगा-निवासी पंडित भुवनेश्वर मिश्र ने बेतिया-राजधानी से 'चम्पारन-चन्द्रिका' नामक मासिक पत्रिका निकाली थी। पंडित बलराम मिश्र भी इसके सम्पादक हुए थे। पं० व्रजवंशीलाल मिश्र प्रबंधक थे।

सन् १६०७ से १६१० तक बेतिया के मिशनरी पादरियों ने 'सत्यसंवाद' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। पत्र का मुख्य उद्देश्य था इसाई-धर्म का प्रचार।

कुसुमाञ्जलि प्रेस (मोतीहारी) से दो पत्र निकले थे—बाबू हरवंशसहाय, बी० ए० के सम्पादकत्व में 'कुसुमाञ्जलि' नामक मासिक और पंडित आनन्दविहारी के सम्पादकत्व में 'निर्भय' नामक साप्ताहिक। दोनों अल्पायु हुए। फिर 'आदर्श' नामक मासिक पत्र सन् १६२४ में मोतीहारी से निकला। कुछ ही महीनो बाद यह भी बन्द हो गया। बहुत दिनों के बाद, अन्त में, 'किसान-सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र, मोतीहारी से ही, श्रीरामधारीप्रसाद 'विशारद' के सम्पादकत्व में, सन् १६३६ में निकला। श्रीरामधारी बाबू प्रसिद्ध साहित्यसेवी हैं, और कांग्रेस के नामी कार्य-कर्त्ता भी। किन्तु छ मास निकलकर यह भी बन्द हुआ।

बेतिया से इधर तीन पत्र निकले, तीनो साप्ताहिक—'मस्ताना', 'अंकुश' और 'चम्पारन'। 'मस्ताना' के सम्पादक थे श्री कपिलेश्वरप्रसाद 'कपिल'। यह मनोरंजक पत्र था। 'अंकुश' भी जोशीला था। पर तीनो एक ही गति को प्राप्त हुए।

दरभंगा

इस जिले का सर्वप्रथम पत्र 'मिथिला मिहिर', सन् १६०८ ई० में, दरभंगा के राज प्रेस से, महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंह बहादुर की प्रेरणा से, निकला। पडित विष्णुकान्त झा, बी० ए०, इसके सम्पादक हुए। पहले यह मासिक रूप में निकलता था, पीछे साप्ताहिक हो गया; आज भी साप्ताहिक ही है। पंडित विष्णुकान्त झा के बाद क्रमशः पडित जनार्दन झा 'जनसीदन', पडित योगानन्द

कुमर, पंडित कपिलेश्वर झा शास्त्री इसके सम्पादक हुए। इन दिनों साहित्याचार्य पंडित सुरेन्द्र झा 'सुमन' इसके संपादक हैं। इसमे मैथिली भाषा की भी रचनाएँ छपती हैं। 'सुमन' जी के सम्पादकत्व मे इसका कलेवर बदल गया है। उन्होंने इसका कायाकल्प कर डाला है। इसका 'मिथिलांक' सन् १९३६ में बहुत ही सुन्दर निकला था। विशेष अवसरों पर इसके विशेषांक प्राय निकला करते हैं।

'पत्र-पत्रिकाओं के लिये बिहार मरुस्थल है'—यह कलंक सबसे पहले लहेरियासराय (दरभंगा) के 'बालक' ने ही मिटाया। 'बालक' का जन्म सन् १९२६ ई० में वसतपंचमी को हुआ। इसके जन्मदाता हैं 'पुस्तक-भडार' और विद्यापति प्रेस के सस्थापक और सचालक रायसाहब श्री रामलोचनशरणजी बिहारी। इसके भूतपूर्व सपादकों मे श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीशिवपूजनसहाय, पडित पारसनाथ त्रिपाठी (स्वर्गीय) आदि मुख्य हैं। इन दिनों इसके सपादक श्रीरामलोचनशरण और सहकारी सपादक श्रीअच्युतानन्द दत्त है। इसकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठ बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्रों मे होती है। हिन्दी के सभी पत्रों और विद्वानो ने मुक्त कठ से इसको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी पत्र कहा है। हिन्दी के अनेक आधुनिक लेखकों और कवियो के जन्म देने का सौभाग्य इसे प्राप्त है। इसके एक दर्जन उत्तमोत्तम विशेषांक हिन्दीसंसार मे विख्यात हो चुके है। बिहार, उडीसा, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, बम्बई-प्रान्त, सिन्धप्रान्त, अलवर-राज्य आदि के शिक्षाविभागो द्वारा यह स्वीकृत है। विदेशों के प्रवासी भारतवासियों मे भी इसका काफी प्रचार है। इसके आदि-सम्पादक श्रीबेनीपुरीजी हैं।

सन् १९३९ मे 'होनहार' नामक सचित्र मासिक पत्र भी 'पुस्तक-भडार' से ही निकला था। इसके भी सम्पादक थे श्रीरामलोचनशरणजी। इसका एक उर्दू-सस्करण भी निकलता था। दानापुर-निवासी मौलवी अनीसुर्रहमान भी संयुक्त सम्पादक थे। यह छ महीने तक निकालकर बन्द कर दिया गया। यह भी बिहार की कांग्रेसी सरकार के युग मे बहुत लोकप्रिय हुआ।

बहुत दिन पहले, गत तीसरी दशाब्दी मे, मधुबनी से श्रीचन्द्रमा राय शर्मा के सम्पादकत्व मे 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला था। वह मठाधीश महन्तो के अधिकारो का सरक्षक और समर्थक था। इसलिये कुछ ही दिनो का मेहमान रहा।

मधुबनी से निकलनेवाला 'खादी-सेवक' बिहार-चर्खा-संघ का मासिक मुख पत्र था। यह हाथ के बने स्वदेशी कागज पर छपता था। अपने ढंग का यह हिन्दी

में अकेला था। मोकामा-(पटना)-निवासी श्रीकामेश्वर शर्मा 'कमल' इसके प्रथम सम्पादक हुए। दूसरे साल से इसका सम्पादन मुजफ्फरपुर-निवासी श्रीरमाचरणजी करने लगे। तीन साल तक निकलकर जुलाई १६४१ में यह बन्द हो गया।

दरभंगा से निकलनेवाला 'कायस्थ-हितैषी' एक जातीय पत्र था। यह कुछ ही समय तक चला। 'रौनियार-वैश्य' भी एक जातीय पत्र है, जो बहुत दिनो से श्री रामलोचनशरणजी बिहारी की संरक्षकता और श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त 'किशोर' के सम्पादकत्व में निकलता आ रहा है।

'प्रजा' और 'सेवक' नामक दो साप्ताहिक सन् १६३७—३८ में दरभंगा से निकले थे। पहले के सम्पादक थे श्रीधनुषधारीदास और दूसरे के श्रीयदुनन्दन शर्मा। दोनों अपने सूतिका-गृह में ही दम तोड़ गये।

दरभंगा-गोशाला के व्यवस्थापक श्रीधर्मलाल सिंह ने 'जीवदया और गोपालन' नामक मासिक पत्र सन् १६३६—३७ में निकाला था, जो अब केवल 'गोपालन' नाम से निकलता है। यह अपने विषय का बड़ा उपयोगी पत्र है।

पूर्णिया

पूर्णिया जिला बंगाल की पश्चिमी सीमा के निकट होने के कारण बँगला-भाषा से प्रभावित है। 'पूर्णिया-समाचार' और 'पूर्णिया-दर्पण' इस जिले के पुराने पत्र हैं। 'पूर्णिया-समाचार' तो अब भी जीवित है। इसका आधा अंश बँगला-भाषा से अधिकृत है। यह अति सामान्य साप्ताहिक है। हाँ, पूर्णिया से ही प्रकाशित होने वाला 'राष्ट्र-संदेश' एक सुन्दर साप्ताहिक है। पहले इसके संपादक थे श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एम. ए., जो इसके जन्मदाता और उन्नायक हैं। बाद श्रीदेवनारायण कुँवर, 'किसलय', साहित्यालंकार, संपादक हुए। अब श्रीप्रताप साहित्यालंकार संपादक हैं। स्थानीय पत्र होते हुए भी देशव्यापी दृष्टिवाला पत्र है। पूर्णिया जिले के साहित्यसेवियों का परिचय प्रायः इसमें प्रकाशित होता रहता है। साहित्यिक रुचि का एक छोटा-सा सुसम्पादित पत्र है।

छोटानागपुर

पहले राँची से 'आर्यावर्त्त' निकला था; किन्तु कुछ दिनों तक चलकर बन्द हो गया। श्री ईश्वरीप्रसाद सिंह के सम्पादकत्व में 'झारखंड' नामक एक छोटा मासिक पत्र भी निकला था; किन्तु वह भी अब न रहा। मासिक पत्रिका 'विद्या' भी अच्छी निकली थी; पर चली नहीं।

'मोमिन' नामक एक मजहबी पत्र निकला था—सन् १९२६ में हजारीबाग से। जोश दिखलाकर वह भी गायब हो गया।

पंडित रामावतार शर्मा, एम. ए, बी. एल, ने डालटनगंज (पलामू) से 'किसान' नामक एक उपयोगी पत्र निकाला था। किन्तु वह भी अल्पजीवी हुआ।

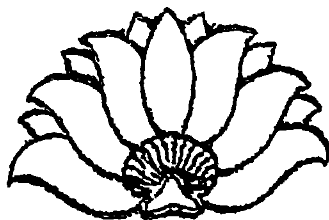
× × × ×

इन सब पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त विहार के कालेजों और कई हाइस्कूलों से भी मासिक और त्रैमासिक रूप में पत्र निकलते हैं, जिनमें अँगरेजी आदि भाषाओं के साथ हिन्दी-भाषा की रचनाएँ भी अच्छी छपती हैं। ये पत्र सदा नियमित रूप से सुन्दरता के साथ प्रकाशित होते हैं।

संक्षेप में यहाँ विहार की हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं पर कुछ प्रकाश डाला गया है। सम्भव है, कुछ पत्र-पत्रिकाओं के नाम छूट भी गये हों। कुछ के कालनिर्णय में भी भ्रान्ति की सम्भावना है। फिर भी यथाशक्ति अनुसंधान करके यह लेख तैयार किया गया है। यह केवल एक आधार-शिला है। इसपर आगे के अन्वेषक भड़कीली इमारत खड़ी कर सकते हैं।

विहार के पत्रों की दशा कैसी शोचनीय रही है, यह बात किसी से छिपी नहीं। किन्तु यह भी अब किसी से छिपा न रहा कि विहार में दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों की जड़ धीरे-धीरे पाताल में जा रही है। कुछ तो ऐसे बद्धमूल हो गये हैं कि उनके अस्तित्व के विषय में किसी को कभी कोई शंका हो ही नहीं सकती। ईश्वर की दया से इन्हीं पत्रों के कारण प्रान्त में साहित्यिक जागृति भी फैल रही है। अतएव पत्रों की दिशा में भविष्य आशाजनक है।

अन्त में हम विहार के पाठकों से सविनय अनुरोध करेंगे कि वे विहार की पत्र-पत्रिकाओं को—अपने घर की चीजों को—अपनायें, प्रोत्साहन दें, यथासम्भव सहायता दें, और यदि इसके लिये थोड़ा त्याग भी करना पड़े तो मुँह न मोड़ें।





बिहार की आधुनिक काव्य-साधना

[एक विश्लेषणात्मक अध्ययन]

अध्यापक रामखेलावन पांडेय, बी० ए०; पटना-कालेजिएट

साहित्य अजस्र प्रवाहिनी सरिता है; अन्य धाराएँ और उपधाराएँ उसे सबल और प्रगतिशील बनाती हैं। किसी नई धारा के संयोग से उसके पूर्व निश्चित पथ और गति में व्यवधान उपस्थित होता है और पूर्व धारा को परिवर्त्तित परिस्थिति के अनुरूप अपना रूप ग्रहण करना पड़ता है। सबल धाराएँ उसका मार्ग पलट देती हैं और क्षीण तथा अक्षम धाराएँ उसे प्रदान करती हैं सबलता और संवेदनशीलता। इस प्रकार धाराओं और उपधाराओं—दोनों—का सरिता के गत्यात्मक जीवन में प्रमुख स्थान है। अतः सरिता के सम्यक् ज्ञान के लिये उसके उद्भव और लय—आदि और अवसान—का तारतम्य-पूर्वक ज्ञान उचित होगा।

साहित्य पूर्ण इकाई है। इसका अंश मात्र देखनेवाला इसकी सम्पूर्णता एवं विस्तार का निरूपण नहीं कर सकेगा। इस स्थान पर कुछ मेरी चेष्टा भी ऐसी ही ज्ञात होगी; क्योंकि इस निबंध के लघु कलेवर में सम्पूर्ण साहित्यिक धारा के दर्शन न कर काल-स्थान-विशेष के कवियों की काव्यगत प्रवृत्तियों की थाह लेना चाह रहा हूँ। साधारण मोह की अनुभूति जो मेरे भीतर है, उसका अचेतन अनुभव इन पंक्तियों में मिलेगा—ऐसा मनस्तत्त्व के विज्ञ पाठक कह सकेंगे; पर बूँद में सागर की विशालता का चित्र है, इस न्याय के बल पर ही यह साधारण अध्ययन उपस्थित कर रहा हूँ।

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि—सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्या—ने जिस रूप में इसे अभिव्यक्ति दी, उसका अवलम्बन कर हिन्दी-काव्य में जिन नवीन प्रवृत्तियों का आकर्षण हुआ उनमें से मुख्य हैं—रहस्य-भावना,

सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एवं रागात्मक औत्सुक्य, तथा मानव का मानव-रूप में ग्रहण करने की सद्भावना। इन प्रवृत्तियों के मूल में रागात्मक संधि होने के कारण मुख्यतया काव्य आत्माभिव्यक्ति का माध्यम लेकर आगे बढ़ा। अभिव्यञ्जना की आधारभूत भित्ति के रूप में प्रतीक-पद्धति का प्राधान्य रहा—यह पश्चिम के अनुकरण का रूप मात्र नहीं अपितु स्वतंत्र चेतना का परिचायक।

हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में 'रहस्य' शब्द का आश्रय ग्रहण कर 'आत्मा परमात्मा के सम्बध-चिन्तन के अर्थ में' रूढ़ि की सीमा में पदार्पण कर चुका है, अतः इस शब्द के प्रयोग में भय स्वाभाविक ही है। 'रहस्य-भावना' का प्रयोग इस स्थान में इसके प्रचलित और रूढ अर्थ में नहीं हुआ है। वस्तु की वास्तविकता भी रहस्य मूलक होती है। जबतक किसी वस्तु से पूर्ण परिचय नहीं रहता तबतक उसकी वास्तविकता भी रहस्य है। अतः रहस्य-भावना का सम्बंध मन के उस आन्तरिक क्षोभ से है, जिसके कारण वह वस्तु एवं भाव-विशेष के तल को छूने का प्रयास करता है। रहस्य-भावना से मेरा तात्पर्य वर्णन की उस पद्धति से नहीं जिसका आधार लेकर हिन्दी के अनेकानेक समालोचकों ने रहस्यवाद और छायावाद के विवाद में श्रम व्यर्थ नष्ट किया है। यह दृष्टिकोण का परिचायक है—विषय के प्रति जागरूक होने का लक्षण है।

जल - तरंग-सा रहकर भी
तेरा न पा सका प्रकृत पता
हे सुन्दर ! हे कर्मवीर !!
हे भैरव !!! तू है कौन बता ?—'वियोगी'

आदि अंत तक घूम गये तुम
मिलता कहीं सवेरा है !
निशि तो सदा अँधेरी ही है
दिन भी यहाँ अँधेरा है !—'प्रभात'

सम्भव है, समालोचक-प्रवर इन पंक्तियों में 'बाल की खाल उधेड़ना' कहावत को चरितार्थ करनेवाली नीति का अवलम्बन कर आत्मा-परमात्मा के अविच्छिन्न योग-सूत्र की थाह पा ले, वैसे लोगों से मुझे कुछ कहना नहीं। बस, इतनी बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इन कवियों में वस्तुओं के प्रति रहस्यात्मक दृष्टिकोण रहा है। रहस्य और विस्मय का सम्बंध अविच्छिन्न है। इन पंक्तियों में विस्मय का स्पष्ट आभास मिलता है, अतः इनमें रहस्य-भावना की प्रतीति भ्रम

नहीं, बल्कि शुद्ध तथ्य है। रहस्यवाद को केवल 'आत्मा-परमात्मा-सम्बंधी अनुभूति' की परिधि में बाँध देना इसे अति संकुचित, संकीर्ण और साम्प्रदायिक बनाना है।

वर्णनात्मक काव्य-पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में जिस 'रोमांटिक' प्रणाली का—श्रीमनोरंजनप्रसाद के अनुसार 'रोमांचक' प्रणाली कहना उचित होगा—प्रचार हिन्दी में हुआ, उसकी मूलभित्ति सौन्दर्य है। मुझे सौन्दर्य न कह 'सौन्दर्य के प्रति बौद्धिक एवं रागात्मक औत्सुक्य' कहना चाहिये; क्योंकि वर्णनात्मक काव्य-पद्धति में भी सौन्दर्य कम समादृत नहीं। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि काव्य में विषय प्रमुख स्थान नहीं रखता; काव्य की कला और पूर्ण परिणति कवि की तीव्र अनुभूति और उसके दृष्टिकोण में है। विषय का काव्य में अत्यन्त गौण स्थान है। कवि की इस उत्सुकता के कारण उन्हें सौन्दर्यानुभूति सर्वत्र होने लगी। सौन्दर्य केवल परम्परागत उपमानों का ही प्रतीकत्व न करता रहा, बल्कि स्वतंत्र-चेता हो नवीन मार्ग पर चला। तात्पर्य यह कि सौन्दर्य केवल संस्कार (Pattern) ही न रहा; इसमें प्राण-शक्ति एवं उत्तेजना भी मिली। 'क्लासिकल' (Classical, सांस्कृतिक) एवं रोमांटिक (Romantic) में विरोध वस्तुतः नियम-बद्धता एवं उसके त्याग के रूप में प्रकट हुआ।

सौन्दर्य को—इसके वर्त्तमान रूप में—समझने के लिये स्थूल जगत् से ऊपर उठना पड़ेगा। सौन्दर्य भावात्मक और संश्लेषणात्मक है। इस प्रकार सौन्दर्य वाह्य का विषय कम किन्तु अंतर का विषय अधिक हो उठता है। सौन्दर्य का चाहनेवाला सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन कर तज्जनित आनंद की उपलब्धि करता है। सौन्दर्य के प्रति यह जागरूकता निम्नोद्धृत पंक्तियो में स्पष्टतः दीखती है—

काली, अँधियारी रजनी में अरी चाँदनी, खिल निर्मल
चाँदी से धो डाल कलुष-सा इस रजनी का सारा मल
चमक उठे कण-कण जगती का निर्मल जल, थल, नभमंडल
मेरी दुनिया हो चाँदी की, चाँदी-सी ही हो उज्ज्वल।—'नेपाली'

मधु-यामिनी अंचल-ओट में सोई थी
बालिका-जूही उमंग-भरी
विधु-रंजित ओस-कणों से भरी
थी बिछी वन-स्वप्न-सी दूब हरी
मृदु चाँदनी बीच थी खेल रही

वन-फूलों से शून्य में इन्द्र-परी
कविता वन शैल-महाकवि के
उर से मैं तभी अनजान झरी।—'दिनकर'

सौन्दर्य की आन्तरिक भावना के अन्तर से दोनों कवियों के दृष्टिकोण में भेद आ गया है। नेपाली के लिये सौन्दर्य उत्तेजक (Inspirer) है। 'दिनकर' की दृष्टि पूर्णतः सौन्दर्यानुभूति-पूर्ण है। वह सौन्दर्य-लोक की कल्पना करता है, नहीं; अपितु सौन्दर्य कल्पना-लोक की प्रेरणा देता है। सौन्दर्य का पुरातन किन्तु चिरनवीन आधार यहाँ मिलेगा—

हे रमणी, चिर-तरुणी नारी
मैं अनंत - सौन्दर्य - पिपासी
तुम सुन्दर हो, सुन्दरतम हो
मैं आकुल, उद्भ्रांत, विलासी
महावासना की ज्वाला ले
मैं धू-धू करने आया हूँ
और तुम्हारा रूप अमृत है
यौवन अमर, प्रणय अविनासी।—'आरसी'

रीतिकालीन कवियों की वासना और नये युग के कवि की 'महावासना' में प्राकृतिक एवं प्रकृति का विभेद है। जहाँ रीति - कालीन कवि संस्कार (Pattern) और परम्परा में काव्य की वासना चरितार्थ करते थे, वहाँ यह कवि तारुण्य के सूक्ष्म भाव में ही अपनी रागात्मिका वृत्ति का सहयोग पाता है। सौन्दर्य गत वैयक्तिक भावना का समान रूप इन कवियो मे नहीं, किन्तु इतना सत्य है कि सौन्दर्य के प्रति प्रत्येक मे बौद्धिक एव रागात्मक औत्सुक्य वर्तमान है। सौन्दर्य इनके लिये पदार्थनिष्ठ नहीं अपितु अधिकरण-निष्ठ है। 'केसरी' मे भी यही सौन्दर्य-भावना है—

देखे हैं मैंने फूल, किन्तु उनकी छवि में वह बात नहीं
चाहिये नाम कुछ और, अरे! यह हँसी नहीं, मुसकान नहीं

सौन्दर्य के प्रति जागरूकता केवल प्रकृति के उपकरणो एवं नारी की वासना में ही प्रकट नहीं हुई, बल्कि भाव-पक्ष के अतिरिक्त कला-पक्ष मे भी इसकी अवतारणा हुई। शब्द-सौन्दर्य और नाद-सौन्दर्य के शिल्पी यहाँ मुख्यतया 'द्विज',

'दिनकर' और 'आरसी' हैं। भाषा की स्वाभाविक गति का सौन्दर्य 'द्विज' को इन पंक्तियों में देखने योग्य है—

'करो विचलित मुझको मत, देव !
दिखाकर कुछ देने का चाव'
साधना की वेदी पर बैठ
पूजने दो यह 'अमर अभाव'
इसीमें हो तुम, हूँ मैं, और
इसीमें भरा तुम्हारा प्यार।

इसमें एक-एक शब्द नपे-तुले हैं; शब्दों की स्वाभाविक गति में बहता हुआ छंद प्रवाहित हो रहा है। 'दिनकर' में भी यह स्वाभाविक गति यथास्थान प्राप्य है—

अब और सिद्धि क्या मूल्यवान
मैं चौंक उठी सहसा अधीर
फट गया गहन मन का प्रमाद
आ लगा वह्नि का प्रखर तीर
उठ विकल धूम के बीच दौड़
बोलूँ जबतक 'ठहरो किशोर'
तबतक स्व-सिद्धि को शिखा जान
था चला गया साधक कठोर

नादशक्ति का जितना सफल प्रदर्शन 'आरसी' की कविताओं में हुआ है वैसा कठिनता से अन्यत्र मिलेगा। ज्ञात होता है, कवि को शब्दों की झंकार बड़ी प्यारी है, अतः कहीं-कहीं शब्द-अर्थ के मेल का ध्यान छोड़ केवल नाद-शक्ति के द्वारा ही अपने मनोभाव प्रकट करता है। शब्द-चेतना (Word-consciousness) उसमें अधिक मात्रा में है। उसकी कविता नाद-प्रधान है, उसने चुन-चुनकर ऐसे शब्द रक्खे हैं जिनमे ध्वनि का सौन्दर्य ही परिलक्षित होता है और उसकी सरसता अत्यंत व्यापक रूप मे है। इस कथन का कदापि यह अर्थ नहीं कि उसकी कविताओं में अर्थ-संगति का अभाव है, बल्कि प्रधानता है नाद-सौन्दर्य को—

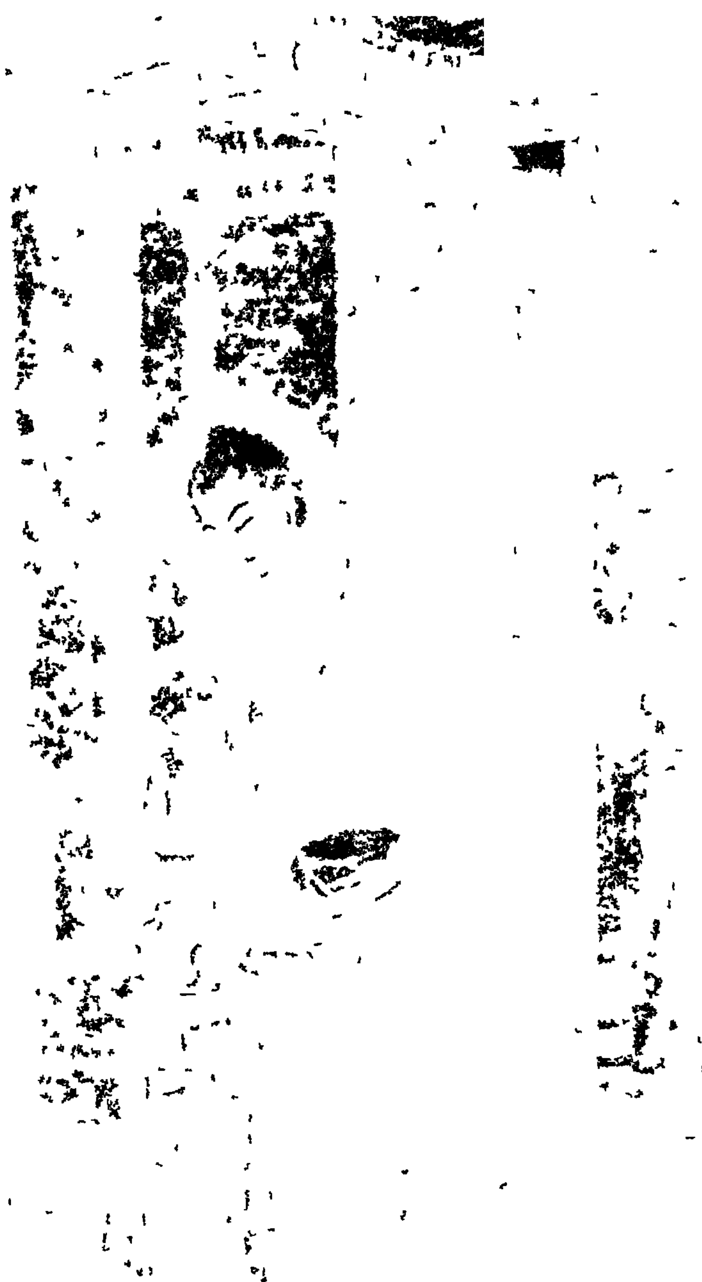
पूर्णिमे, कलना तुम्हारे
कंकणों की वेणु - श्वासी
व्योम उर मेरा विपुल, तुम
शारदीया पूर्णिमा - सी —'आरसी'

अथवा—

हर-हर-हर ! हहर-हहर !!
हाहाकार, वज्रपात, क्रंदन-ध्वनि
लघुतर कितने ही नगण्य
अन्य शिखरों की
इति ही नहीं, सत्ता कहाँ ?
सारी 'तुषार-हार-मंडित गिरि-चोटियाँ
सो गईं धरातल पर सदा के लिये
महायात्रा-पथिक-सी श्रांत, क्लांत
नगाधीश, गर्व्वोन्नत !
कहाँ गया गौरव का मणि-मुकुट ? —'आरसी'

युग की प्रवृत्तियों के अनुकूल मानव की मानवीय वृत्ति को प्रमुख स्थान आज की कविता मे मिला। 'क्लासिकल' कविता मे मनुष्य मानव नहीं, केवल साधन था आदर्श की अभिव्यक्ति का, इस सासारिक व्यवस्था मे मनुष्य का कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं था। व्यक्ति के इस वैयक्तिक महत्त्व के मूल्यांकन और आदर्श के द्वंद्व ने आदर्श और यथार्थ का विरोध उपस्थित किया। आदर्श के कारण मनुष्य की कल्पना अति मानवीय रूप मे की जाती है और यथार्थ मे पूर्ण मानव रूप में—उसमे गुण भी हैं और दोष भी। मानव के प्रति मानवीय भावना के उदय के साथ दलित और पतित के प्रति हार्दिक और बौद्धिक सहानुभूति का श्रीगणेश काव्य में हुआ—

'दूध दूध !' ओ वत्स ! मंदिरों में
बहरे पाषाण यहाँ हैं !
'दूध दूध !' तारे, बोलो, इन
बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?
'दूध दूध !' फिर 'दूध' अरे
क्या याद दूध की खो न सकोगे ?
'दूध दूध' मरकर भी क्या तुम
बिना दूध के सो न सकोगे ?
हटो व्योम के मेघ पंथ से
स्वर्ग लूटने हम आते हैं



भगवान् बुद्ध और राहुल

'महाश्रमण तुम्हारी छाया सुखद है।'

—राहुल

चित्रकार—श्रीउपेन्द्र महारथी

[पुस्तक-भंडार के 'चित्र-संग्रह से']

'दूध-दूध !' ओ वत्स ! तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।—'दिनकर'

इन पंक्तियों में प्रताड़ित, लांछित और पीड़ित मानवता के प्रति केवल मौखिक तथा बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं, बल्कि हृदय की सारी वृत्तियो का एकीकरण भी है।

क्या समझो, है पीडा कितनी इन पाँवों के छालों में
मिलकर देखो जननी के हित भस्म रमाने वालों में
बच्चे करुणा-पूर्ण दृष्टि से अपनी माँ को देख रहे
जननी की आँखें अटकी हैं कब से अपने लालों में। —'नेपाली'

आज अमावस की रजनी में
दीपक का भी नाम नहीं
कहाँ जायँ, क्या करें, माघ की
विकट शीत है बेध रही

दानों के मुहताज बनें
रहने का भी न ठिकाना है
भग्न भवन के पास बैठकर
आज मसान जगाना है। —'मनोरंजन'

सौन्दर्य की ऐकान्तिक सौन्दर्य-भावना मानवता के यथार्थ कुत्सित रूप के साथ अपना मेल नही देखती। सम्भव है, दृष्टिकोण के एकान्त भाव के कारण किसी कवि को इस कुत्सितता में भी सौन्दर्य दीख पड़े, किन्तु अधिकांश अवस्थाओ मे ऐसा सम्भाव्य नहीं है। काव्य में यथार्थ से पलायन का सिद्धान्त (Escapist Theory) इसी प्रवाह के कारण आया। इस प्रकार कवियो के अतर में सौन्दर्य-भावना एवं मानवीय भावना का द्वंद्व चलता रहा। 'क्रोसे' (Croce) के अनुयायियो के लिये यह द्वंद्व सत्य नहीं। कारण, उनके लिये सौन्दर्य-भावना के अतिरिक्त और किसी भावना का स्थान मन में प्रधानता-सहित नही है। अंतर की वासनाएँ उमड़ती ही हैं, उमड़ेगी ही, अतः सौन्दर्य और मानवीय भावनाओ का संघर्ष होता है और उसका व्यक्तीकरण उनकी (भावनाओ की) तीव्रता के रूप में होता है। एक ही विषय विभिन्न कवियों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित करेगा; क्योंकि वैयक्तिक मानस की संतुलनशक्ति एवं अन्य मानसिक शक्तियो से इसका संबंध है।

सौन्दर्य में आकर्षण-शक्ति है, प्रभावित करने की शक्ति है। सौन्दर्य प्रिय स्वभावत. उसके प्रति आकृष्ट है, और इधर मानवता की पुकार। किसे सुने ? किसकी अनसुनी करे ? भीतर का यह द्वंद्व चलता है। क्रांति-द्रष्टा हो कवि या सौन्दर्य-प्रेमी, दोनों के सामने यह समस्या आती है, आवेगी ही, समाधान इसका चाहे जिस रूप मे हो, प्रश्न का अस्तित्व मिट नहीं सकता। 'दिनकर' और 'आरसी' दोनों के अन्तर में यह द्वंद्व चलता है, किंतु उद्वेग की सापेक्षिक मात्रा के कारण दोनों का समाधान भिन्न है। 'दिनकर' का सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण इन पंक्तियों मे फूट पडता है—

एक चाह कवि की, यह देखूँ—
छिपकर कभी मालिनी के तट
किस प्रकार चलती मुनि-बाला
यौवनवती लिये कटि पर घट
झाँकूँ उस माधवी-कुञ्ज में
जो बन रहा स्वर्ग कानन में
प्रथम परस की जहाँ लालिमा
सिहर उठी तरुणी-आनन में

किन्तु सौन्दर्य का यह मोह उसे रोक नहीं पाता। जग का आर्त्तनाद, उफ, पीडितो की पुकार रह-रहकर उसके कानो पर आघात करती है—

रणित विषम रागिनी मरण की
आज विकट हिंसा उत्सव में

यह पुकार, यह ध्वंसक रागिनी उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। उसके पाँव रुकते नहीं, वह चिल्ला उठता है—

फेंकता हूँ, लो तोड़-मरोड़
अरी निष्ठुरे! बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव हुंकार

यही समस्या 'आरसी' के सामने भी आती है। सौन्दर्य और मानवता दोनों में किसे अपनाये, किसे त्यागे ? वह सौन्दर्य—वासनापूर्ण नारी-सौन्दर्य—का वरण करता है। मानवता की पुकार उसे रोक रखने मे क्षम नहीं, सौन्दर्य की शक्ति उसे आविष्ट कर लेती है—

दीनों को मैंने देखा है
मैं सुनता हूँ जग का क्रंदन
नवयुग को करता आमंत्रित
करता मैं विप्लव का वंदन

और शोषितों का करुणामय
हाहाकार सुना है मैंने
चिता बुझाई है निःश्वासों
से, अंगार चुना है मैंने

किन्तु—

प्रेम चाहता हूँ मैं तुमसे
हे सुहासिनी, हे चिर-कामिनि

देवालय में जो न झुका सिर
तुम्हें देखकर अवनत है
जिस भुज-बल से काल काँपता
वही तुम्हारे पद में रत है

वज्र - हृदय जो महाप्रलय में
भी न कभी हो सकता कातर
एक तुम्हारे भृकुटि-त्रास से
व्याकुल है मर्माहत है

कवियो की यह सौन्दर्य-साधना क्रमशः शक्ति-साधना से आक्रांत होती जा रही है। सौन्दर्य-भावना की यह उदार प्रतिक्रिया है, सौन्दर्य-भावना की अति संकीर्णता के प्रति कवि का अदमनीय विद्रोह है। वास्तव में सौन्दर्य सदा गत्यात्मक है, अगति-मूलक इसे मानना भ्रमपूर्ण और अवास्तविक है। शक्ति की साधना तरुण कवि 'हरेन्द्र' में देखें—

टूट पड़ेगा भीम नाद कर
जिस दिन नीला वृहत् गगन
तरुण हास से पूर्ण रहेगा
उस दिन भी यह कवि-जीवन

रामदयाल पांडेय भी इसी शक्ति का साधक है—

सिन्धु का प्रति विन्दु लघुतम
सिन्धु से कुछ भी नहीं कम
व्यक्त जिसका नृत्य घन में
जो नहीं अँटता गगन में
तप्त मरु का क्षुद्रतम कण
बाँधकर आकाश का तन
रेणु को पर्याप्ति देकर
क्षितिज को अव्याप्ति देकर
गा रहा यह एक ही सुर, 'मैं नहीं हूँ दीन'

वर्त्तमान की बाते करता मैं आधुनिकता मे ही उलझा रह गया, और उसकी चर्चा ही करना भूल गया जो आधुनिक तो नहीं है, किन्तु अतीत की परिधि के भीतर भी नहीं। हिन्दी-काव्य मे करुणा की जो भावगम्य धारा प्रवाहित हुई थी, जिसकी पूर्ण परिणति 'महादेवी' मे लक्षित होती है, उसमे यहाँ की किसी वेगवती धारा ने योग नहीं दिया है—ऐसी बात नहीं। करुणा की उस धारा को चाहे हम विकृत मानस की प्रतिक्रिया, प्रगति का विरोधी अथवा जो जी मे आवे मानें, किन्तु इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि एक समय हिन्दी-काव्य में उससे बढकर और कोई दूसरी वेगवती धारा न थी और उसने अपने रस-सिञ्चन द्वारा आधुनिक प्रवृत्तियो के लिये क्षेत्र तैयार किया। भवभूति का 'करुणावाद' अस्वीकृत करने पर भी उसकी सबलता और क्षमता मे अविश्वास करना मनोवैज्ञानिक भ्रम है। 'द्विज' की कविताओं में व्यथा मूर्त्तिमती हो उठती है। उस वेदना मे प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं, आकांक्षा नहीं। वेदना श्रेय है, अभाव गेय है। वेदना उसके लिये अभिशाप नहीं, वरदान है—

यह शीतल संताप, किसी
पावन तप का है पुण्य प्रसाद
भरा हुआ है इसी सिसकने में
समस्त जीवन - आह्लाद

वेदना उसकी चिर-संगिनी—प्रेयसी—बन बैठती है और कवि गा उठता है-

अयि अमर शान्ति की जननि जलन
अक्षय तेरा शृंगार रहे

जीवन - धन - स्मृति - सा अमिट
निरंतर तेरा - मेरा प्यार रहे

अभाव ही व्यथा है ; फिर जिसका अभाव भाव की सम्पूर्ण भावना का अतिक्रमण कर स्वयं अपने लिये रहस्य बन जाता है, उसकी व्यथा को क्या कहा जाय। इसी को लक्ष्य कर किसी उर्दू-कवि ने लिखा था—

मुनहसर मरने पै हो जिसकी उमीद
नाउमेदी उसकी देखा चाहिये

उसी व्यथा की अभिव्यक्ति 'द्विज' की इन पंक्तियों का लक्ष्य है, उद्देश्य है—

कैसी आग भरी है
रोती आशा की इन आहों में !
चिनगारियाँ खेलतीं हिलमिल
लपटों के सँग चाहों में !
जाकर कहाँ रहूँ ? है मेरा
अपना अब संसार कहाँ ?
रौंद दिया जाता हूँ, जब
जा पड़ता जिनकी राहों में !

'जाकर कहाँ रहूँ ?' में कितनी व्यथा, कितनी विवशता है ! वेदना की वही टीस, वही जलन 'प्रभात' मे जगती है। इस जलन मे मिठास है, विष अमृत हो गया है; और वह गा उठता है—

लोटूँगा उस निर्जन पथ की
धूलों में—सुख पाऊँगा
दीपक ले पद - चिह्नों को
खोजूँगा—अलख जगाऊँगा

वेदना कवि को कितनी प्यारी है, यह यहाँ देखने योग्य है—

अयि वेदने ! हृदय में भीषण
प्रलय मचाने वाली
कूक पिकी - सी प्रिय उजड़े
जीवन की डाली - डाली
देख न खाली हो जाये
तेरे सुहाग की प्याली

अयि ज्वालाओं की रानी !
मिट जाय न तेरी लाली
अमर रहे तेरा असीम यह
पूर्ण प्रेम सुकुमार
भरती जा इस जीवन में
अपनी मदिरा की धार !

+ + + + +

संक्षेप में आधुनिक काव्य-साधना के साधक विहारी कवियों की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन मात्र मैंने यहाँ कराया है। जिन कवियों के उद्धरण मैंने उपस्थित किये हैं उनके अतिरिक्त भी कई प्रतिभासम्पन्न कवि विहार मे हैं। इस निबंध के लघु कलेवर मे सभी का आलोचनात्मक अध्ययन उपस्थित करना सम्भव न था, अत' विशिष्ट प्रवृत्तियों के दिग्दर्शन मात्र से सतोप-लाभ करना चाहता हूँ।

जिन कवियों की चर्चा की गई है उनकी कविताओं का भी पूर्ण विश्लेपण उपस्थित नहीं किया जा सका है, केवल प्रवृत्तियों का विश्लेपणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उन कवियों की कविताओं से उद्धरण मात्र दे दिये गये हैं। जिनकी कविताओं के उद्धरण इस निबंध मे आये हैं उनके अतिरिक्त श्रीजयकिशोर नारायण सिंह, श्री हंसकुमार तिवारी, श्री मोहनलाल गुप्त, श्री 'रमण' आदि भी भावुक कवि हैं। इनकी कविताओं ने मुझे रिझाया है। श्रीजयकिशोरनारायण सिंह कृत 'मेघदूत' के कुछ छन्दो का अनुवाद, श्रीमोहनलाल गुप्त की 'लहर', तथा श्री रमण की 'अन्तरदीप' आदि कविताएँ मुझे हृदयग्राहिणी प्रतीत हुईं। मैंने बारबार इन्हें पढ़ा है। और, गुनगुनाया भी हूँ। श्रीविमल, कैरव, भुवन, अरविन्द, माधव, सुजन, दिवाकर आदि कवियों ने भी पर्याप्त ख्याति पाई है। इनकी कविताएँ भी काव्यक्षेत्र को रसार्द्र बनाने मे सहायक हुई हैं।





बिहार के साहित्य की एक झाँकी

रायसाहब पंडित सिद्धिनाथ मिश्र, बी. ए., एल. टी., एफ. पी. यू ; पटना

भारतवर्ष में सदा से बिहार गौरव का क्षेत्र और संस्कृत-साहित्य के महारथियों की पुण्यभूमि रहा है। साहित्य-चर्चा यहाँ के विद्वानों की दिनचर्या थी। साहित्य-समृद्धि के लिये यहाँ के आचार्यों ने विश्व भूमंडल के जिज्ञासु छात्रों को भिन्न-भिन्न शास्त्रीय विषयो की शिक्षा-दीक्षा देकर सफलमनोरथ किया। बिहार के नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयो मे धुरन्धर विद्वानों का जमघट था। मिथिला के गाँव-गाँव और घर-घर में संस्कृत-साहित्य का अध्ययनाध्यापन होता रहता था, और अब भी यत्किञ्चित् है। पर अब तो संस्कृत-साहित्य बिहार ही से क्यों, सारे भारतवर्ष से विदा होने पर है ! हम देवार्चना तक में शुद्ध संस्कृत-शब्दों का उच्चारण नही कर पाते हैं ! संकल्प में भी शुद्धता का अभाव होता जा रहा है !

किसी जाति की उन्नति और उसकी भाषा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा के उत्कर्ष और अपकर्ष पर ही उसकी उन्नति और अवनति अवलम्बित है। भाषा ही संस्कृति का निर्माण करती है। जिस समय इस आर्यभूमि की भाषा देववाणी संस्कृत थी—भाषा ही नही, बल्कि मातृभाषा भी—उस समय इन्द्र भी इसपर तरसते थे, देवता भी नर-रूप धारण कर यहाँ विचरते थे, भगवान् भी मनुष्य-रूप में यहाँ लीला करने आते थे। पर आज हमने अपनी भाषा भुला दी—संस्कृत ही नही, संस्कृति भी लुटा दी। हमारे ही अलौकिक संस्कृत-ग्रन्थो की गवेषणापूर्वक विशद व्याख्या कर आज जर्मन अपनेको विज्ञान का ज्ञाता मानते हैं। हमारे

ही संस्कृत-ग्रन्थों के सूत्रों और मन्त्रों की विवेचना कर संसार के कतिपय देश अपनेको विद्याविशारद मान बैठे हैं। हमारे ही मनु और याज्ञवल्क्य ने उन्हें विधानाचार्य बनाया है। हमारे ही चाणक्य के नीतिशास्त्र का अनुवाद कर वे लोग राजनीति-वेत्ता होने का दम भरते हैं।

पर दुःख है कि हम अपने साहित्य का गौरव भूल गये हैं। संस्कृत साहित्य के पुनरुद्धार की ओर भी लोगों की अभिरुचि नहीं दीखती। संस्कृत-भाषा के प्रचार क्षेत्र की परिधि संकुचित कर दी गई है। इसके प्रचार के लिये सरकार भी विशेष यत्न या व्यय नहीं करती। धनी-मानी सज्जनों की भी दृष्टि इसकी ओर नहीं है। पुराने समय मे राजा-रईसों के दरबार में भी संस्कृत-प्रचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था; पर आज तो सब दूसरे ही रंग में रँग गये हैं। हमारे प्रान्त मे केवल दरभंगा के महाराजाधिराज को संस्कृत से प्रम है। इस दरबार के द्वारा सदियों से संस्कृत-सेवा होती आ रही है। पर इतनी ही सेवा को हम यथेष्ट नहीं मान सकते।

सच पूछा जाय तो संस्कृत ही हिन्दी की जननी है। संस्कृत के पश्चात् प्राकृत के उपरान्त हिन्दी की सृष्टि हुई। हिन्दी ही आज भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हो रही है। अधिकांश भारतवासी इसी भाषा मे अपने मनोगत भावों को व्यक्त करते हैं। भारत में सर्वजनप्रिय अन्त प्रान्तीय भाषा यही है।

बहुत पुरानी बात है। सन् १९०८ के अक्टूबर मे बड़ोदा-राजधानी मे महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन हुआ था। लेफटिनेट कर्नल कन्होवा रणछोड़दास कीर्त्तिकर उसके सभापति थे। उस समय बड़ोदा-नरेश के दीवान थे बंग-साहित्यमहारथी श्रीरमेशचन्द्र दत्त (आर सी. दत्त)। बड़ोदा-नरेश का हिन्दीप्रेम तो प्रसिद्ध ही है, उनके दीवान दत्त महोदय ने भी उक्त सम्मेलन मे अपना हिन्दीप्रेम प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया था। सम्मेलन मे एक प्रस्ताव पास हुआ था कि हिन्दी को समस्त भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिये। इतना ही नहीं, इस प्रस्ताव को विशेष महत्त्व देने के लिये सम्मेलन का एक विशेषाधिवेशन शीघ्र ही (२६ अक्तूबर को) किया गया था, जिसके सभापति थे विद्वद्वर डाक्टर भाडारकर। इसी विशेषाधिवेशन मे उक्त दीवान साहब (दत्त महोदय) ने अपनी प्रस्तावना मे हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा होने के योग्य बताया था। बम्बई-हाइकोर्ट के नामी वकील श्रीमाधव राव बोडस ने तो अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान से यह भी सिद्ध कर दिया कि समस्त भारत की एक लिपि होने के योग्य देवनागरी ही है—भारत की प्रत्येक भाषा इसी लिपि मे लिखी जानी चाहिये। फिर बम्बई के सुविख्यात विद्वान् रावबहादुर

चिन्तामणि वैद्य ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की एक भाषा हिन्दी ही होनी चाहिये। उन्होंने इस बात को भली भाँति सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि भारत की अन्यान्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी ही इस योग्य है कि उसको राष्ट्रीय भाषा का पद दिया जाय। उनका व्याख्यान हिन्दी में ही हुआ था।

बिहार ने आरम्भ से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के अभ्युत्थान में योगदान किया है। उसकी हिन्दी-साहित्य-सेवा सराहनीय है। अन्य प्रान्तों की नाईं वह भी इस विषय में अपनेको गौरवान्वित मानता है। बिहार के महाकवि मैथिल-कोकिल विद्यापति को हिन्दी-साहित्य-कानन में सुप्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। हिन्दी-संसार में इनकी पदावलियाँ अमर हैं। आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व ही इन्होंने लोकभाषा में काव्यरचना की थी। गद्य-निर्माण में भी बिहार का प्रधान हाथ रहा है। आरा-निवासी पं० सदल मिश्र का हमें गर्व है। इन्हीं के जिले (शाहाबाद) के कविराज चन्दनराम बन्दीजन अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। चन्दनराम के पिता साहबराम को किसी दरबार में कवियों को परास्त करने से 'कविराजाधिराज' की उपाधि मिली थी। साहबराम ने 'रस-दीपिका' आदि तीन काव्यग्रंथ बनाये थे। कहते हैं कि हिन्दी-कवि कालिदास के पुत्र उदयनाथ कबिन्द ने अमेठी-नरेश से चन्दनराम को 'कविराज' की उपाधि दिलाई थी। पदमाकर, बेनी, दत्त, भंजन आदि कवियों से चन्दनराम की मैत्री थी। डुमराँव, मझौली, बलरामपुर आदि राज-दरबारो से इनको आर्थिक लाभ था। इनका जन्म संवत् १७९६ में हुआ था और निधन संवत् १८७० में। अन्तिम समय में इन्होंने 'नामार्णव' और 'अनेकार्थ' नामक दो कविता-पुस्तकें बनाई थीं। अपने समय में बिहार के कविरत्न थे चन्दनराम। इनका घर आरा-सबडिवीजन के अम्बागाँव में था।

चन्दनराम से भी पहले, सारन जिले के इसुआपुर-निवासी, भक्तवर शंकर-दास बड़े सिद्ध महात्मा और कवि हो चुके हैं। इनका जन्म संवत् १७२६ के लगभग हुआ था। संवत् १८०६ में अस्सी वर्ष की आयु में इनका गंगालाभ हुआ था। ये नित्य-गंगास्नान के अनन्य अनुरागी और अभ्यासी थे। इसी के प्रभाव से इनका कुष्ठरोग छूट गया था। गंगा, यमुना आदि पुण्यसलिला नदियो के माहात्म्य का वर्णन इन्होंने अपनी कविताओं मे बड़े अच्छे ढंग से किया है। इनके शिवा-शिव-सम्बन्धी पद बड़े अनूठे हैं। इनके ग्रंथ 'राममाला' में एक सौ आठ खंड हैं और प्रत्येक खड में एक सौ आठ भजन हैं। कवित्त-सवैया आदि छन्दों में इनकी बहुत-सी भक्तिप्रधान कविताएँ हैं। इनके पुत्र जीवाराम भी अच्छे भजनानन्दी

और कवि हुए। जीवाराम अपने पदों में अपना उपनाम 'युगलप्रिया' रखते थे। युगलप्रियाजी ने 'रसिक-प्रकाश-भक्तमाल' नामक ग्रंथ लिखा है। उसी ग्रंथ में भक्त शंकर की जीवनी प्रकाशित है।

गया जिले के पंडित नाथ पाठक और पटना जिले के हितनारायणसिंह बिहार के पुराने कवियों मे बहुत नामी थे। पाठकजी मुहम्मदपुर (जहानाबाद) के निवासी थे एव बाबू साहब तारणपुर (पुनपुन) के। पाठकजी का पुत्र लक्ष्मीनारायण अहीरों के लड़कों की संगति मे पड़कर विद्याविमुख हो गया था—दिन-रात बिरहा, आल्हा, बारहमासा आदि गाने मे ही लीन रहता, कभी पढने मे चित्त न देता। विवश होकर पाठकजी ने समस्त 'सारस्वत' ग्रंथ को भाषा-छन्दों में बना डाला, जिसे लक्ष्मीनारायण बडे चाव से याद कर गया और इस प्रकार विद्याविहीन कुलबोरन कहलाने से बचा। पाठकजी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे और टेकारी दरबार में महाराज मित्रजित्‌सिंह के आश्रित थे। सवत् १८४० मे ये सुरधाम सिधारे। इनके देहान्त के बीस वर्ष बाद संवत् १८६० में हितनारायणसिंह का जन्म हुआ था। आप बड़े परोपकारी, साहसी, समाज सुधारक और आदर्शचरित्र पुरुष थे। आपने जनता के हितार्थ नित्य के व्यवहार मे लाभ पहुँचानेवाले सैकड़ों उपदेशप्रद दोहे बनाये थे।

सारन जिले के चिरान-छपरा-निवासी हरि कवि ने 'बिहारी-सतसई' की 'हरि प्रकाश' टीका लिखी थी, जिसकी उत्तमता के विषय मे उन्होंने स्वय आत्म विश्वास-पूर्वक लिखा है—"फेरि बिहारी पढ़न को पड़े न काहू पास, ऐसी टीका करत है हरि कवि हरिप्रकास।" यह टीका आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। इसी जिले के बगौरा-निवासी महात्मा हरिहरप्रसाद ने तुलसीकृत सभी प्रधान ग्रंथों की टीका की थी। भक्तप्रवर श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी 'रूपकला' इसी जिले के थे, जिनकी लिखी हुई एक दर्जन से अधिक पुस्तकें छप चुकी हैं। नाभादास-कृत 'भक्तमाल' की टीका विस्तृत रूप में इन्होने लिखी है, जिसका नाम है 'भक्तिसुधास्वाद'। ये पहुँचे हुए प्रेममार्गी महात्मा थे।

मुजफ्फरपुर के 'रूपस'-ग्राम-निवासी शिवरामसिह ने तुलसीकृत रामायण के किष्किन्धाकांड मात्र की टीका 'मानसतत्त्वबोधिनी' बनाई थी, जो छपकर नौ सौ पृष्ठो मे तैयार हुई थी। यह खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित है। खड्गविलास प्रेस के सबसे पहला मैनेजर बाबू साहबप्रसादसिह इसी 'रूपस' ग्राम के निवासी थे। वे पॅवार छत्री थे। उन्होंने दो भागो मे 'हिन्दी-कविता की एक

उत्तम पुस्तक' (काव्यकला) तैयार करके छपवाई थी, जिसमें ब्रजभापा की समस्या-पूर्त्तियाँ छपी थीं। माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयजी की कविताएँ भी उसमें छपी हैं। मॉझा (सारन) के बाबू श्रीधरशाही, दाऊदनगर (गया) के मुन्शी जवाहर-लाल, दिलीपपुर (शाहाबाद) के बाबू नर्मदेश्वरप्रसादसिंह 'ईश' आदि बिहारी कवियों की कविताएँ उसमें मिलती हैं। उन्होंने 'भाषासार' नामक पुस्तक भी दो ही भागों में तैयार कर प्रकाशित की थी, जो उन दिनों बिहार के शिक्षाविभाग में पाठ्य पुस्तक थी। उनकी लिखी हुई स्त्री-शिक्षा, गणित-बत्तीसी, गुरु-गणित-शतक, पहाड़ाप्रकाश, भाषातत्त्वबोध आदि पुस्तकें भी उस समय बहुत प्रचलित थीं। सज्जनविलास, मानसपाठान्तर, मयंकसंग्रह, सुताप्रबोध आदि उनकी पुस्तकें भी छपी हुई हैं। उन्होंने हिन्दी की बरसों चिरस्मरणीय सेवा की। सन् १९०१ ई० में २९ अगस्त को उनका शरीरपात हुआ था।

शाहाबाद जिले के डुमरॉव-निवासी पं० नकछेदी तिवारी 'अजान' कवि की सेवाएँ भी चिरस्मरणीय हैं। 'काशी के भारतजीवन प्रेस में जितने पुराने काव्यग्रथ छपे थे, प्रायः सब इन्हीं के दिये हुए थे। इस कार्य में किसी प्रान्त का कोई पुरुष इनकी समता नहीं कर सकता।' इन्होंने डुमरॉव और सूर्यपुरा के राज-पुस्तकालयों तथा अन्यान्य स्थानों से खोज-ढूँढ़कर प्राचीन हिन्दीकवियों के अप्रकाशित काव्यग्रंथों की अनेक पांडुलिपियाँ भारतजीवन प्रेस को प्रकाश-नार्थ दी थीं। दिलीपपुर के उक्त 'ईश' कवि ने भी इन्हें 'मुबारक' कवि की दो अप्रकाशित पुस्तकें दी थीं—'अलक शतक' और 'तिल-शतक'। इस प्रकार इन्होंने अनेक हस्तलिखित काव्यग्रंथों का उद्धार-निस्तार किया। इनके द्वारा संग्रहीत और सम्पादित अनेक प्राचीन कविता-पुस्तकें काशी के उक्त प्रेस से निकल चुकी हैं। गुजरात के हिन्दीकवि गोविन्द-गिल्लाभाई के साथ मिलकर इन्होंने बलभद्र-कृत 'नखशिख' को शोधा और छपवाया था, जो १८९४ ई० में निकला था। बीसवीं सदी की प्रथम दशाब्दी तक इनके द्वारा संकलित ग्रंथों का प्रकाशन बराबर होता रहा। इनसे बिहार को बड़ा भारी साहित्यिक गौरव मिला है।

बिहार के श्रीनगर, बनैली, दरभंगा, हथुआ, डुमरॉव, सूर्यपुरा, बेतिया, टेकारी आदि राज्यों के स्वामियों ने जो हिन्दी-साहित्य के अभ्युदय में योगदान किया है वह साहित्य के इतिहास में बड़े गौरव का अध्याय है। इन नरेशों के अतिरिक्त, अन्य देशों और प्रदेशों के रहनेवाले बहुत-से सज्जनों ने, साहित्यसेवा के लिये बिहार को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाकर, हिन्दी-संसार में बिहार का जो

मुख उज्ज्वल किया, वह भी प्रशंसात्मक शब्दों में सहर्ष स्मरण करने योग्य है। डाक्टर ग्रियर्सन बरसों बिहार में रहे थे। दरभंगा, पटना, गया आदि जिलों में शासनाधिकारी रहकर भी इन्होंने अनेक प्रकार के साहित्यिक कार्य किये। इनकी हिन्दी-सम्बन्धिनी साहित्यिक रचनाओं की जन्मभूमि बिहार ही है। इनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'बिहार पीजेंट लाइफ', जो सन् १८८३ ई० में बंगाल सरकार की ओर से प्रकाशित हुआ था। इस अपूर्व ग्रंथ में बिहार के गाँवों में प्रचलित कहावतों, शब्दों और व्यवहारोपयोगी वस्तुओं के विवरणात्मक परिचयों का दर्शनीय सग्रह है। इस अद्वितीय ग्रथ के आधार पर बिहार के सम्बन्ध मे एक अभूतपूर्व हिन्दीग्रंथ तैयार किया जा सकता है। पटना के कमिश्नर ओल्डहम साहब भी हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अपने कई भाषणो मे हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा कहा था। वे हिन्दी मे शुद्ध भाषण कर सकते थे। उनके शासनकाल मे यहाँ की हिन्दी-संस्थाओं का बड़ा हितसाधन हुआ था। पटना ट्रेनिग-कालेज के प्रिन्सिपल थिकेट साहब तो हिन्दी के सच्चे प्रेमी ही थे। प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र से इन्होंने हिन्दी सीखी थी। 'शिक्षा' का सम्पादन भी इन्होंने किया था। इनके द्वारा हिन्दी के कई बिहारी लेखको को बड़ा सहारा मिला था। इसी प्रकार युक्तप्रदेशवासी पं० अम्बिकादत्त व्यास, डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी आदि धुरन्धर साहित्य-सेवियो का भी साहित्यिक कर्मक्षेत्र बिहार ही रहा है। व्यासजी दरभंगा, मुजफ्फरपुर, छपरा, भागलपुर, पटना आदि नगरो मे जिला-स्कूल के हेडपंडित और संस्कृताध्यापक तथा कालेज के प्रोफेसर रहकर बरसो बिहार मे साहित्यसेवा कर चुके थे। श्रीनगर और दरभंगा के नरेशों ने आपका बड़ा सम्मान भी किया था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की चौथी दशाब्दी मे भागलपुर से आपने 'पीयूष-प्रवाह' नामक मासिक पत्र निकाला था, जिसके द्वारा बिहार में साहित्यिक अभिरुचि एवं जागृति का प्रसार हुआ। आपका सबसे बड़ा काम है 'बिहार-संस्कृत-संजीवन-समाज' की स्थापना, जो आज भी आपका गुणगान करा रहा है। जायसवालजी तो बिलकुल बिहार के ही हो गये थे। उनका सारा जीवन इसी प्रान्त मे बीता। उनकी साहित्यिक कृतियाँ यहीं प्रसूत हुई थीं। आज भी उनकी कन्या श्रीमती धर्मशीलादेवी पटना हाइकोर्ट मे ही बारिस्टरी करती हैं। गोस्वामीजी ने प्रौढावस्था तक आरा-नगर में रहकर साहित्यसेवा की थी। इन्होने ही बिहार मे सबसे पहला सार्वजनिक पुस्तकालय आरा में खोला था—सन् १८८८ ई० मे १ अप्रैल को, जिसका नाम था

'देशहितैषी आर्यभाषा-पुस्तकालय'। यो तो महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह भी बलिया जिले के 'रेपुरा'-ग्रामवासी थे, जहाँ उनका जन्म विक्रम-संवत् १६१२ में पौष शुक्ल चतुर्दशी रविवार को हुआ था। किन्तु उन्होंने बिहार को ही अपना घर बना लिया और अपनी साहित्यसेवा से आजीवन बिहार का ही मस्तक ऊँचा करते रहे। आज भी उनके सुयोग्य वंशधर बिहार की सेवा में ही संलग्न हैं। सन् १६०३ ई० में १३ मई बुधवार को उनका गंगातट पर देहावसान हुआ था। उनके समान पुरुषार्थी साहित्यहितैषी उस समय कोई न था।

. बिहार में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, और हैं भी, जिनका हिन्दी को उन्नत और परिमार्जित तथा परिष्कृत करने में विशेष हाथ रहा है, और आज भी है। इनमें पंडित केशवराम भट्ट, महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह, श्रीशिवनन्दन सहाय, पं० विजयानन्द त्रिपाठी, पं० भुवनेश्वर मिश्र, पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र, श्रीयशोदानन्दन अखौरी, पं० रामावतार शर्मा (महामहोपाध्याय), पंडित सकलनारायण शर्मा, बाबू व्रजनन्दन सहाय, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीरामलोचनशरण बिहारी, श्रीकालिकाप्रसाद, पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र, श्रीकालिकासिंह, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह आदि अग्रगण्य हैं।

भट्टजी ने बिहार का सर्वप्रथम साप्ताहिक 'बिहारबन्धु' निकालकर इस प्रान्त में हिन्दी का खूब प्रचार किया। आपने 'शमशाद सौसन' और 'सज्जादसम्बुल' नाम के दो हिन्दी-नाटक भी लिखे। बाबू रामदीनसिंह ने खड्गविलास प्रेस के द्वारा हिन्दी की अतुलनीय सेवा की। उनके 'बिहारदर्पण' ग्रंथ पर सम्मति देते हुए भारतेन्दुजी ने लिखा था—"यह अपने चाल की हिन्दी भाषा में पहिली पुस्तक है। ऐसे ग्रन्थ देशी भाषा में जितने बनैं भाषा का कोष विशेष पुष्ट होता जायगा। हमको आशा है कि कभी वह शुभ दिन भी आवैंगे जब हम पश्चिमोत्तर देश * के विषय में भी ऐसा ग्रंथ देखैंगे।" बाबू शिवनन्दन सहाय ने प्रामाणिक रीति से बड़ी-बड़ी जीवनियाँ लिखकर हिन्दी में सबसे पहले जीवनी-साहित्य-निर्माण की मनोवैज्ञानिक शैली प्रचलित की। पं० विजयानन्दजी भारतेन्दु के साथियों में थे। आपकी बहुभाषाभिज्ञता विस्मयजनक थी। पं० भुवनेश्वर मिश्र अपने समय के यशस्वी कथाकार और पत्रकार थे। ये भी भारतेन्दु के मित्रों में थे। पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र भी भारतेन्दु के सहयोगियों में हैं। आप अस्सी की सीमा

* उस समय युक्तप्रान्त का नाम 'पश्चिमोत्तर देश' ही प्रसिद्ध था।—लेखक

लाँघकर भी बड़े कार्यक्षम और स्वस्थ-सबल हैं। आजकल आप 'आत्मकथा' लिख रहे हैं, जो साहित्य की एक अमूल्य निधि होगी। अखौरीजी दार्शनिक विचार के धार्मिक लेख तथा गम्भीर साहित्यिक निबन्ध लिखने में बड़े प्रवीण थे।

पं० रामावतारजी तो भारत के विद्वद्रत्नों मे अपनी प्रभा छिटका गये। उनके कारण आज भी बिहार का सिर ऊँचा है। वे अपने समय मे तो विद्वन्मंडली के सिरमौर थे ही, आज भी उनका नाम विद्वत्ता के गौरव-शिखर पर अकेला चमक रहा है। बिहार के हिन्दी-लेखकों मे सर्वप्रथम वही अखिलभारतीय सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (जबलपुर) के सभापति हुए थे। प० सकलनारायणजी ने आरा मे नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित कर बिहार मे हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का पर्याप्त प्रसार किया। इन्होंने 'शिक्षा' के सम्पादन द्वारा भाषा के रूप की स्थिरता निश्चित करने मे श्लाघ्य उद्योग किया। बाबू व्रजनन्दन सहाय ने ललित भाषा मे ललित साहित्य की सृष्टि करके बिहार के लेखक-मंडल को गौरव मडित कर दिया। आपकी भाषा के लालित्य और प्रेम की दार्शनिक व्याख्या पर मुग्ध होकर छतरपुर (बुन्देलखंड) के साहित्यानुरागी नरेश (स्वर्गीय महाराज) ने आपको अपनी राजधानी में सादर बुलाकर सम्मानित किया था। प० ईश्वरी प्रसादजी को भी बनैली-नरेश राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर ने एक हजार मुद्राएँ देकर समादृत किया था। इनकी लेखनी में गजब की बिजली थी। भारत की प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के तो पंडित थे ही, संस्कृत और उर्दू तथा अँगरेजी भाषाएँ लिखने मे भी इनकी लेखनी कमाल करती थी। इनकी हास्यरसमयी कविताओं का सग्रह 'चनाचबेना' नाम से प्रकाशित हो चुका है, जिससे इनकी कवित्वशक्ति का भी आभास मिलता है। इन्होंने अपना जीवन साहित्यमय बना लिया था। इनके कारण अन्य प्रान्तों में भी बिहार की साहित्यसेवा का सम्मान हुआ। श्रीचतुर्वेदीजी तो हास्यरसावतार ही थे। लाहौर के अखिलभारतीय द्वादश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तथा सोनपुर के प्रथम बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति-पद से आपने जो भाषण किये थे, वे अपने ढंग के निराले हैं। उन भाषणों में भाषा की शुद्धता और स्वच्छता तथा अनुप्रास की बहार देखते ही बनती है। प्रयाग के षष्ठ अखिलभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में आपने जो 'अनुप्रास-अन्वेषण' नामक विनोदपूर्ण निबन्ध पढ़ सुनाया था उसमें स्वाभाविक रीति से बहती हुई अनुप्रास की धारा सहृदय साहित्यिको के अवगाहन करने योग्य है।

श्रीरामलोचनशरणजी तो हिन्दी के उन उन्नायकों मे हैं, जिन्होने साहित्य

के उन्नयन में अपना सारा जीवन खपा दिया है। बिहार के हिन्दी-प्रकाशन-क्षेत्र में आपने युगान्तर उपस्थित कर दिया। आपने लगभग पाँच सौ हिन्दी के उत्तम साहित्यिक एवं पाठ्य ग्रन्थ समयानुकूल सजधज के साथ प्रकाशित किये, जिनकी भाषा और शैली प्रामाणिक एवं अनुकरणीय मानी जाने लगी। पाठ्य ग्रन्थों के निर्माण में आप नवयुग के प्रवर्त्तक हैं। आपकी बोधगम्य भाषा का स्वाभाविक प्रवाह और आपकी मनोवैज्ञानिक विषय-प्रतिपादनशैली का चमत्कार सचमुच अद्भुत है। आपकी लेखनी ने केवल बिहार के शिक्षा-विभाग में ही विजय नहीं पाई है, बल्कि युक्तप्रान्त और मध्यप्रदेश तथा पंजाब के शिक्षा-विभाग में भी आदर पाया है। दक्षिण भारत तथा देशी राज्यों के हिन्दी-संसार में भी आपकी पाठ्य पुस्तकों ने धाक जमाई है। आपका 'बालक' तो पन्द्रह बरसों से नवयुवकोपयोगी उत्कृष्ट साहित्य तैयार कर रहा है।

श्रीकालिकाप्रसादजी बिहार के अध्यापक-वर्ग में बड़े प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तित्व के अधिकारी थे। उनकी सदाचारिता की बड़ी धाक थी। शुद्ध भाषा लिखने के विचार से वे प्रमाण माने जाते थे। और, शास्त्रीजी तो स्वाभिमान की मूर्त्ति थे। संस्कृत और हिन्दी पर विलक्षण प्रभुत्व था आपका*। संस्कृतज्ञ हिन्दी-लेखकों की रचनाओं में त्रुटियाँ देखकर आप मुस्कुराहट के साथ विनोदपूर्ण आलोचना सुनाया करते थे। मिश्रजी भी हिन्दी को सँवारने-सिंगारने में एक ही थे। उनकी अलंकृत भाषा बड़ी लच्छेदार होती थी। काशी-'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में एक समालोचक ने उनके विषय में लिखा था—"द्विवेदीयुग के गद्यकारों में प्रोफेसर अक्षयवट मिश्रजी का आदरणीय स्थान है। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से आप समय-समय पर विविध विषयों पर निबंध लिखते रहे। निबंधों की भाषा में बड़ी सफाई है। मिश्रजी संस्कृत-साहित्य के विद्वान् हैं, अतएव इनके शब्दों और वाक्यों पर संस्कृत का पूरा प्रभाव है। इनकी भाषा को देखकर स्वर्गीय पंडित गोविन्दनारायण मिश्र की याद आ जाती है। मिश्रजी छोटे-छोटे वाक्यों-वाली चलती भाषा भी लिखते हैं। परन्तु भाषा-सुन्दरी को सजाकर निकालनेवाली पुरानी परिपाटी आप नहीं छोड़ते। मिश्रजी की विनोदप्रियता देख भारतेन्दु के दिनों की याद आ जाती है।" इनकी आत्मकथा (आत्मचरित चम्पू†) हिन्दी

* श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी-भाषानुवाद काशी से प्रकाशित है।—ले०

† 'पुस्तक-भंडार' से 'आत्मचरितचम्पू' और 'लेखमणिमाला' दो पुस्तकें मिश्रजी की निकली हुई हैं।—लेखक

में एक अनूठी पुस्तक है। ये व्रजभाषा के प्राचीन कवियों के जोड़ की कविता करते थे और अपनी संस्कृत-कविता में भी इन्होंने बड़ी सफलता से व्रजभाषा छन्दों का प्रयोग किया था। इनके संस्कृत के दोहे बड़े अनूठे बन पड़े हैं।

श्रीकालिकासिंह का 'गीताभाष्य' हिन्दी मे अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ है। आप रायसाहब थे। आदर्श हेडमास्टर होने के साथ-साथ आप निष्णात शिक्षण शास्त्री भी थे। प्रोफेसर झा बड़े प्रसन्नवदन और मित्रव्यसनी साहित्यसेवी थे। उनके लिखे दोनों ग्रंथ ('भारतीय शासनपद्धति' और 'सम्पत्ति-शास्त्र') हिन्दी में अपने ढंग के सर्वप्रथम माने गये थे। अर्थशास्त्र और इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले उनके लेख बड़े प्रामाणिक समझे जाते थे। मन्द मुस्कान उनकी चिरसंगिनी थी।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह तो भाषा-भगवती के अनन्य आराधक हैं। आपकी भाषा का राजसी ठाट बड़ा आकर्षक है। भाषा की नक्काशी आपसे कोई सीखे। पहले आपकी भाषा को लोग 'रवीन्द्री हिन्दी' कहा करते थे। अब इधर आपने एक नई लोचदार शैली अपनाई है। राजकाज मे व्यस्त रहते हुए भी आपको स्वान्तःसुखाय साहित्यसेवा करने का व्यसन-सा लग गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त साहित्य-सेवियों की साहित्य-साधना से विहार की यथेष्ट गौरववृद्धि हुई है।

विहार के विद्वान् लेखकों में देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी सर्वश्रेष्ठ हैं। यह उचित और स्वाभाविक भी है। आपके महान् व्यक्तित्व का प्रभाव विहार के साहित्यजगत् पर भी पड़ा है। राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत सर्वजनानुमोदित भाषा लिखने मे आप बड़े यशस्वी हैं। राष्ट्रभाषा-सम्मेलन के आप तीन-तीन बार अध्यक्ष हो चुके हैं—कोकनाडा, काशी और कलकत्ता। तीनों भाषण मनन करने योग्य हैं। इस साल मुजफ्फरपुर के संस्कृत-कानवोकेशन मे आपका दीक्षान्त भाषण हिन्दी मे हुआ है। यह संस्कृत-कालेज के इतिहास मे सबसे पहली घटना है। आपका वह वृहद्‌भाषण ग्रंथरूप में मुद्रित हो रहा है।

विहार के राष्ट्रीय विचारवाले ओजस्वी लेखकों में आचार्य बदरीनाथ श्रीदेवव्रत शास्त्री, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, दिनेशदत्त झा, श्रीव्रजशंकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये पत्र कुशल भी हैं। आचार्यजी 'भारतमित्र' और 'देश' का सम्पादन कर चुके शास्त्रीजी 'नवशक्ति' और 'राष्ट्रवाणी' द्वारा अपनी पत्रकार-कला-कुशलता का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे हैं। बेनीपुरीजी की लेखनी मे जादू है। उनकी भावनाओं



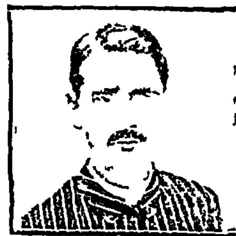
हलगाँव-(भागलपुर)-निवासी
प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, एम० ए०
(पृ० ६१६)



निमेज (शाहाबाद)-निवासी
स्वर्गीय साहित्याचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री (पृ० ५४६)
(पृष्ठ ५४६, ५६०, ५८२ ☞



कालिकाप्रसादजी, बी० ए०, बी० टी०
(गया)—पृ० ६१५



स्व० जटाधरप्रसाद शर्मा 'विकल'
कुमरबाजितपुर (मुजफ्फरपुर)



आरा-निवासी
स्वर्गीय पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

(पृ० ६१७)



रायसाहब रामशरण उपाध्याय
(हेडमास्टर, पटना-ट्रेनिङ्ग-स्कूल)

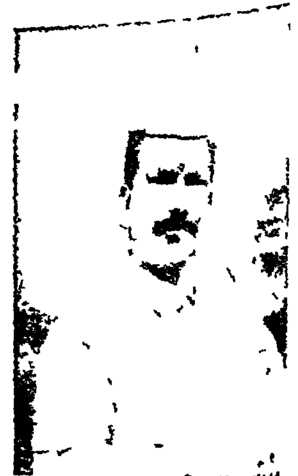


(पृ० ६१६)

रायबहादुर बेचूनारायण, पटना (पृ० ७०६)



स्व० रायसाहब श्रीकालिकासिंह, बी० ए०, बी० टी०
(सारन-जिला-निवासी)



पं० जीवनाथ राय, बी० ए०,
(हेडपंडित, दरभंगा जिला स्कूल)

में अभिनव क्रान्ति की लहर है। अबतक वे पाँच-छ अच्छे पत्रों का सम्पादन कर चुके। उनके द्वारा सम्पादित पत्र सुरक्षित रखने योग्य होते हैं। मिश्रजी भी सफल सम्पादक हैं। मासिक 'विश्वमित्र' आपके सम्पादकत्व में अपना उत्कर्ष दिखा चुका है। बेनीपुरीजी और मिश्रजी अच्छे वक्ता भी हैं। झा जी एकान्तप्रिय अनुभवी पत्रकार हैं। इनका दैनिक 'आर्यावर्त्त' इनके राष्ट्रीय विचारों का भार-वहन करने में बहुत सकुचाता है। ब्रजशंकरजी बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से 'योगी' का संचालन और सम्पादन करते हैं। उसमें आपके राष्ट्रीय भाव निर्भीकतापूर्ण स्पष्टोक्तियों में व्यक्त होते हैं।

बिहार के अन्य पत्रकारों में पं० नन्दकिशोर तिवारी, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार, पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', ठाकुर राजकिशोर सिंह, श्रीपारसनाथ सिंह, श्रीसाहित्याचार्य 'मग', श्रीरामजीवन शर्मा, श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन', श्रीसुरेन्द्र झा 'सुमन', श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्रीललितकुमार सिंह 'नटवर', श्रीललिताप्रसाद, श्रीहंसकुमार तिवारी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें कई ऐसे हैं जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से प्रान्त की गौरव-वृद्धि की है—कुछ तो आज भी कर रहे हैं। श्रीकान्तजी साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में (अब बम्बई के दैनिक 'विश्वमित्र' में), मुक्तजी 'आरती' में, भुवनजी 'तिरहुत-समाचार' में, सुमनजी 'मिथिला मिहिर' में और दत्तजी 'बालक' में अपना जौहर दिखा रहे हैं—भुवनजी ने 'वैशाली' में भी खूब दिखाया था।

प्रोफेसर शिवपूजनसहाय ने भी बिहार के गौरव को बढ़ाया है। आपकी टकसाली हिन्दी और मँजी भाषा तथा आपके अलंकार-पूर्ण वाक्य पाठकों के हृदय को अपनी ओर खींच लेते हैं। जी चाहता है, आपकी रचना बराबर पढ़ें। आप द्विवेदी-अभिनंदन ग्रंथ का सम्पादन कर चुके हैं।

हमारे यहाँ समीक्षात्मक साहित्य तैयार करनेवाले भी हैं—ठाकुर लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु', प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, अध्यापक रामखेलावन पांडेय, प्रोफेसर दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी, प्रोफेसर केसरीकिशोर शरण, श्रीनरेन्द्रनाथ दास विद्यालंकार आदि सफल समीक्षक हैं। सुधांशुजी ने 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', द्विजजी को 'प्रेमचन्द की उपन्यासकला', मिश्रजी ने 'विद्यापति', ब्रह्मचारीजी ने 'प्रियप्रवास' और विद्यालंकारजी ने 'विद्यापति-काव्यालोक' लिखकर अपनी समीक्षण-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

हमारे प्रान्त के कवियों में 'वियोगी', 'विमल', 'द्विज', 'कैरव', 'नटवर', 'प्रभात', 'दिनकर', 'आरसी', 'केसरी', 'मनोरंजन', 'माधव', 'नेपाली', 'सुहृद', 'रमण', 'मोहन', 'दिवाकर', 'किसलय', हंसकुमार आदि हिन्दी-जगत में विशेष विख्यात हैं। साहित्याचार्य श्रीजयकिशोरनारायण सिंह भी इस प्रान्त के बहुत प्रसिद्ध कवि हैं। और, श्रीजानकीवल्लभ शास्त्रीजी भी। संस्कृत-साहित्य में इन दोनो की अच्छी पैठ है; दोनों को प्रतिभा प्रशंसनीय है।

हास्यरस के विहारी लेखकों में श्रीसरयू पंडा गौड़ (शाहाबाद) और श्रीहरेश्वरदत्त मिमिकमैन (छपरा) तथा श्रीराधाकृष्ण (राँची) वडे प्रसिद्ध हैं। पंडाजी और मिमिकमैन की सरस रचनाओं से सब परिचित हैं। राधाकृष्णजी 'घोष-वोस-वनर्जी-चटर्जी' गुप्त नाम से लिखते हैं, इसलिये उनकी इस कला से वहुत कम लोग परिचित हैं। किन्तु उनकी रचनाएँ वास्तव मे इस कला की प्रफुल्लता प्रकट करती हैं। पंडाजी और मिमिकमैन के देहाती चित्रण खासे विनोदपूर्ण होते हैं।

विहार में हिन्दी-प्रचार करने में तथा हिन्दी-साहित्य का भांडार भरने में 'पुस्तक-भंडार' ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। इस संस्था के सस्थापक और संचालक श्रीरामलोचनशरण विहारी के प्रवल प्रयास से विहार हिन्दी के सेवा क्षेत्र में विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। जवतक ये कार्यक्षेत्र मे नहीं आये थे तबतक विहार इस क्षेत्र में नगण्य था। इन्होंने अपनी पुस्तकों की सर्वाङ्ग-सुन्दरता से विहार के नाम को इस क्षेत्र में चमका दिया। इनकी सुवोध शैली से हिन्दी की सरलता खूब वढ़ी है और भापा की शुद्धता के विचार मे इन्होंने बहुत अधिक मनोयोग दिया है। नये प्रकार की शिक्षण-पद्धति निकालने मे इनको अपूर्व सफलता मिली है। इनके द्वारा सम्पादित और सरक्षित 'वालक' हिन्दी जगत् में वड़ा ही लोकप्रिय है। हिन्दी-संसार के वालको मे हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का अधिकांश श्रेय 'वालक' ही को है। 'बालक' ने विहार के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो में भी अनेक होनहार लेखक पैदा किये हैं।

पटना की 'बाल-शिक्षा-समिति' की हिन्दी-सेवा भी प्रशंसनीय है। उसके संस्थापक और सचालक पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ स्वयं हिन्दी के विद्वान लेखक हैं। अव आप भी प्रतिवर्ष नई-नई सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें निकालकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आपके सम्पादकत्व मे 'किशोर' नामक सचित्र मासिक पत्र भी चार साल से निकल रहा है। शिक्षा और साहित्य से सम्बन्ध

रखनेवाली आपकी कई पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। आपके साहित्यिक प्रकाशन-विभाग का नाम ग्रंथमाला-कार्यालय है।

'बिहारबन्धु' के बाद खड्गविलास प्रेस (पटना) को भी बिहार में हिन्दी-प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। इसी के प्रयत्नों से बिहार के लोगों में साहित्यानुराग उत्पन्न हुआ था। पर इस समय यह केवल पाठ्यपुस्तकों पर ही ध्यान रखता है। किन्तु इसके पुराने प्रकाशित साहित्यिक ग्रन्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

पटना की हिन्दी-प्रचारिणी सभा और मुजफ्फरपुर का 'सुहृद्-संघ' दोनों इस समय साहित्यसेवा के क्षेत्र में बहुत प्रगतिशील हैं। छपरा, मुँगेर आदि नगरों में साहित्य-परिषदों द्वारा अच्छी साहित्यिक जागृति हो रही है। पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, छपरा, दरभंगा आदि नगरों के कालेजों में भी साहित्य-परिषदों के विशेष उत्सव प्रायः प्रति वर्ष बड़े समारोह से हुआ करते हैं, जिनके कारण साहित्यिक प्रगति के पथ पर बिहार को बड़ा उत्तेजन मिला करता है। प्रान्त के सभी भागों में पुस्तकालयो की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है। इनमें कितने ही पुस्तकालयों के वार्षिकोत्सव प्रायः हुआ करते हैं, जिनसे साहित्यिक चर्चा बराबर जारी रहती है। स्कूलों, कालेजों और पुस्तकालयों में साहित्यिक जयन्तियाँ भी अब नियमित रूप से मनाई जाने लगी हैं। इन सब प्रयत्नों का सामूहिक प्रभाव बिहार के साहित्यिक जागरण में बड़ा सहायक सिद्ध हो रहा है।

बिहार के पत्र-संसार में 'नवशक्ति' का स्थान सर्वोपरि है। बिहार के कोने-कोने में इसका प्रचार है। इसके सुयोग्य सम्पादक श्रीदेवव्रतजी बड़े अध्यवसायी, कर्मशील और कार्यदक्ष हैं। दैनिक 'राष्ट्रवाणी' का प्रकाशन उन्हीं के उद्योग और उत्साह का फल है। 'योगी' और 'प्रभाकर' भी इस प्रान्त में हिन्दी की चर्चा फैलाने में सफल हुए हैं। ये दोनों भी अपने प्रान्त को अग्रसर करते रहने में तत्पर हैं। हिन्दी के सुपाठ्य पत्रों में इनकी गणना होती है।

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समान प्रान्तीय साहित्यिक संस्थाएँ देश में बहुत कम हैं। हर्ष का विषय है कि उसके वर्त्तमान प्रधान मंत्री पं० छविनाथ पांडेय, बी. ए., एल-एल. बी., के मंत्रित्व में इधर पाँच-सात वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को आशातीत सफलता मिली है। आप मिर्जापुर (युक्तप्रान्त) के निवासी हैं; पर पिछले अनेक बरसो से आपका प्रधान कर्मक्षेत्र बिहार ही है। सम्मेलन को आप-सरीखे साहित्यानुरागी और कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा प्रभावशाली व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी। आपने सम्मेलन को सजीव संस्था बना दिया

है। आपकी देखरेख में सम्मेलन का जो विशाल भव्य भवन पटना में बना है, वह बिहार के लिये गौरववर्द्धक है। उस भवन में आपने पुस्तकालय, वाचनालय और सग्रहालय भी स्थापित कर दिया है। आपने बडी लगन से सम्मेलन की सच्ची सेवा की है। उसकी उन्नति करने में आपने काफी परिश्रम भी किया है। आप ही के उद्योग से सम्मेलन का त्रैमासिक मुखपत्र 'साहित्य' निकला था, जो बिहार के हिन्दी-हितैपियों की उदासीनता से एक-डेढ़ ही साल चल सका। इस सम्मेलन के कारण बिहार में हिन्दी-साहित्य की उन्नति के विविध प्रयत्न हो रहे हैं। इसकी स्थापना संवत् १९७६–७७ में हरिहरक्षेत्र (सोनपुर) में हुई थी। तब से आजतक इसके सत्रह-अठारह अधिवेशन हो चुके हैं। इन अधिवेशनों में स्वागताध्यक्षों और सभापतियों के जो भाषण हुए हैं, उनसे भी बिहार की साहित्य सेवा का महत्त्व भली भाँति आँका जा सकता है।

बिहार के होनहार नवयुवक लेखकों में श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी. ए. (ऑनर्स); श्रीशुकदेवनारायण, श्रीराधाकृष्णप्रसाद, श्रीशशिनाथ तिवारी, बी. ए. (ऑनर्स); श्रीमनोरंजनप्रसाद श्रीवास्तव, श्रीचन्द्रिकाप्रसादसिंह, बी. ए. (ऑनर्स); श्रीनलिनविलोचन शर्मा, एम ए आदि के नाम स्मरण रखने योग्य हैं। इनकी रचनाएँ प्राय· बिहार और बाहर के पत्रों में दीख पडती हैं। 'गर्ग' जी अपने लेखों के लिये बिल्कुल नये-नये विषयों का चुनाव करने में बडे निपुण हैं। शुकदेवजी भी प्राणिशास्त्र के विद्यार्थी की भाँति पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में हमेशा नई-नई विचित्र बातें बतलाकर पाठकों का मनोरंजन किया करते हैं। राधाकृष्णजी की कहानियाँ हृदय के साथ दूध-मिसरी की तरह घुल-मिल जाती हैं। इन सब लेखकों का भावी संसार बड़ा मनोरम जान पड़ता है।

सन्तोष की बात है कि बिहार के कालेजों में हिन्दी की नियमित पढाई होने लगी है। पटना-विश्वविद्यालय में भी अब एम ए तक हिन्दी की पढाई हो रही है। बिहार के कालेजों में हिन्दी के सुयोग्य अध्यापक नियुक्त हैं। उनमें कई नामी भी साहित्यसेवी हैं। जैसे—पटना-कालेज में डाक्टर ईश्वरदत्त, प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद, प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और प्रोफेसर जगन्नाथराय शर्मा, बी० एन० कालेज (पटना) में डाक्टर जनार्दन मिश्र और प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़, दरभंगा के मिथिला कालेज में प्रोफेसर जगन्नाथप्रसाद मिश्र, मुजफ्फरपुर के कालेज में प्रोफेसर रामदीन पांडेय, भागलपुर के कालेज में प्रोफेसर माहेश्वरीसिंह 'महेश', छपरा के राजेन्द्र-कालेज में प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' और प्रोफेसर

शिवपूजन सहाय। इसके अतिरिक्त कुछ बड़े कालेजों के प्रिन्सिपल भी हिन्दी के हितैषी और सुलेखक हैं। जैसे—पटना-कालेज के डाक्टर हरिचाँद शास्त्री, मिथिला-कालेज के श्रीविश्वमोहनकुमारसिंह तथा राजेन्द्र-कालेज के श्रीमनोरंजन-प्रसादसिंह। शास्त्रीजी तो हिन्दी के अनुरागी और समर्थक हैं ही, पिछले दोनो प्रिन्सिपल हिन्दी के प्रसिद्ध सुलेखक भी हैं। इन कारणों से उच्च श्रेणी के शिक्षित एवं सभ्य समाज में हिन्दी के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न होता जा रहा है। इसका परिणाम बहुत अच्छा हो रहा है। इससे कितने ही उदीयमान नवयुवक साहित्य-क्षेत्र में क्रमशः पदार्पण करते जा रहे हैं। देवघर (वैद्यनाथधाम) का गोवर्द्धन-साहित्य-महाविद्यालय भी साहित्य-रसिक नवयुवकों की टोली तैयार करने में प्रवृत्त है। इस प्रकार बिहार के साहित्य की झाँकी देखकर हृदय में स्वभावतः आनन्द-संचार होता है।





विहार के प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-साहित्यसेवी

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी'; भलुआहो (भागलपुर)

विहार के दो इतिहासवेत्ता विद्वानों ने अपनी अपूर्व खोज से हिन्दी-साहित्य के इतिहास की व्यापकता का क्षेत्र चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व तक विस्तृत कर दिया है। पहले आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक के हिन्दी-साहित्य का इतिहास संदिग्ध और अंधकारमय था। तेरहवीं शताब्दी के महाकवि चन्दवरदाई से ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास का आरम्भ माना जाता था। उसके पहले के दो-चार-दस कवियों का बहुत ही धुँधला पता मिलता था। किन्तु पटना-निवासी पुरातत्त्वज्ञ वारिस्टर श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल (स्वर्गीय) और छपरा-निवासी त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अब सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास का सूत्र लगातार सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही मिलता है। इन दोनों विहारी विद्वानो के मतानुसार अत्यन्त प्राचीन हिन्दी का नमूना पिछली सातवीं शताब्दी से ही मिलता है। श्रीसांकृत्यायनजी ने तिब्बत के साहित्यिक अभियान में जिन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों का अनुसंधान और संग्रह किया है उनसे साफ पता लग गया है कि आज से वारह-तेरह सौ वर्ष पूर्व ही विहार के तात्कालिक बौद्ध कवियो ने प्राचीन हिन्दी मे अच्छी कविता की थी।

'मिश्रबंधु-विनोद' के चौथे भाग मे माननीय मिश्रबंधुओं ने लिखा है—"२४ नाथ कवियों के विवरण *त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन* ने १९८९ (सवत्) की 'गंगा' पत्रिका में निकाला है। इनमें से बहुतेरे आठवीं, नवीं, दसवीं

आदि परम प्राचीन शताब्दियों के हिन्दी-कवि कहे गये हैं। उनके ग्रंथ बहुधा तंजौर (मद्रास-प्रान्त) में हैं। कवियों की प्राचीनता बहुत महत्ता-युक्त है, और दृढ़ आधारों पर अवलम्बित जान पड़ती है। ' सांकृत्यायन महाशय की खोजे कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, सो प्रकट ही है।......इन नाथ कवियों के समय प्रमाणित होने से हिन्दी-साहित्य का आरम्भ-काल संवत् ८०० तक सिद्ध हो जाता है। हाल ही में *प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता बाबू काशीप्रसाद जायसवाल* ने संवत् ६६३ में राजा होनेवाले महाराजा हर्ष के समकालीन *बाण कवि* के ग्रंथ में प्राकृत के साथ भाषा का भी चलन पाया है। इस भाषा शब्द से हिन्दी-भाषा का प्रयोजन निकलता है,—सो हिन्दी-भाषा की प्राचीनता उस काल तक पहुँचती है।"

ध्यान रहे कि बाण कवि (बाणभट्ट) बिहार-प्रान्त के ही निवासी थे, और, प्राचीन हिन्दी का सबसे पहला कवि भी बिहार का ही था। उसका नाम था 'सरहपा सिद्ध'। राहुल बाबा के आधार पर मिश्रबंधुओं ने उसका समय संवत् ८०० लिखा है—उसके सोलह ग्रंथों के नाम भी लिखे हैं—यह भी लिखा है कि उस कवि के दूसरे नाम 'राहुलभद्र' और 'सरोजभद्र' भी हैं, तथा वह *नालन्दा-विश्वविद्यालय* का भिक्षु था—इतना ही नहीं, उसके उक्त सोलहो काव्य-ग्रंथ भी *मगही भाषा* में थे, जो भोटिया में अनुवादित हुए हैं। मगही भाषा दक्षिण-बिहार की भाषा आज भी है। जिस कवि के सब-के-सब ग्रन्थ मगही भाषा में हैं वह निश्चय ही मगह (दक्षिण-बिहार) का रहनेवाला था। उसके उपर्युक्त दोनो नाम भी इस बात के साक्षी हैं कि वह बौद्धधर्म के केन्द्र (बिहार) का निवासी था।

श्रीराहुलजी की खोज ही के बल पर मिश्रबंधुओं ने अनेक बौद्ध कवियों का विवरण 'मिश्रबन्धु-विनोद' (भाग ४) में दिया है। वे प्रत्यक्ष ही बिहार के कवि प्रमाणित होते हैं। यथा—"संवत् ८४० के लगभग 'आर्यदेव या कर्णरीपा' भिक्षु होकर *नालन्द-विहार* में रहे। ८६० के लगभग 'विरूपा'—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष आदि आठ ग्रन्थ—पूर्व देश में जन्म हुआ था—नालन्द-विहार में शिक्षा पाई। ८७० के लगभग 'डोभिपा'—मगध-निवासी क्षत्री—गुरु थे विरूपा—तंजूर में २१ ग्रन्थ मिलते हैं। ८७० के लगभग 'भूसुक या शान्तिदेव'—ग्रन्थ 'सहजगीति'—नालन्द के पास क्षत्रिय-वंश में पैदा हुए और भिक्षु होकर उसी विहार में रहने लगे—उपर्युक्त ग्रंथ *मागधी हिन्दी* में लिखा हुआ भोटिया-भाषा में मिलता है। ८८० के लगभग 'कर्णपा या कृष्णपा'—वसन्त-तिलक, वज्रगीति, दोहा-कोष आदि ग्रंथ *मगही-भाषा* में हैं—जन्म कर्णाटक में हुआ था। ८८० के लगभग 'तांतिपा' ने

भी पुरानी मालवी या *मगही* में ग्रन्थ लिखा है। संवत् ६०० के लगभग 'महोपा' (महिल)—*मगध देश के शूद्र थे—गुरु* थे सिद्ध 'कृष्णपा'—'वायुतत्त्वदोहा गीतिका' ग्रन्थ *पुरानी मगही* का है। ६५५ के *लगभग* 'तिलोपा'—*जन्मस्थान* भगुनगर (बिहार)—*विक्रमशिला* के सिद्ध नारोपा इनके पट्टशिष्य थे—*मगही-भाषा* के चार ग्रंथ तजूर में सुरक्षित हैं। संवत् १०३० के लगभग 'नारोपा'—*मगध* में जन्म—*नालन्द-विद्यालय* में शिक्षा पाई—*विक्रमशिला* में पूर्वद्वार के महापंडित हुए—*भागलपुर-नरेश* के मंत्री थे। १०७० के लगभग 'शान्तिपा' (रत्नाकर शान्ति)—*मगध* के ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे—बहुत बड़े विद्वान् थे—सिद्धों में इनके बराबर कोई दूसरा पंडित नहीं था—*विक्रमशिला-विहार* में पूर्वद्वार के पंडित—आयु १०० वर्ष से अधिक—तिब्बत के सर्वोत्तम कवि और सिद्ध 'जे-चुन मि ला रे पा' इनके चेले थे।"

इन विवरणों से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि अति प्राचीन काल में भी इस प्रान्त के कवि उस समय की प्राचीन हिन्दी में कविता करते थे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा पंडित भगीरथप्रसाद दीक्षित द्वारा सम्पादित 'साहित्य-सुधाकर' की गवेषणापूर्ण प्रस्तावना में स्वयं दीक्षितजी ने स्पष्ट लिखा है—"विद्वत्प्रवर राहुल सांकृत्यायन महोदय ने पुरानी हिन्दी के अनेक ग्रंथ तिब्बत के पुस्तक-भंडारों से खोज निकाले हैं जिनसे क्रमबद्ध संवत् ८०० विक्रमी तक हिन्दी के इतिहास की परम्परा मिल जाती है। अक्टूबर, सन् १९३३ ई० में *बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भागलपुर* में हुआ था जिसमें बाबू काशीप्रसादजी जायसवाल का सभापति की हैसियत से एक सारगर्भित भाषण हुआ था। उस भाषण में राहुलजी के परिश्रम और प्रयत्न की प्रशंसा (करते) तथा ग्रंथों के उद्धरण देते हुए जायसवालजी ने बतलाया था कि बाणभट्ट की मंडलीवाले कुछ नाटक दिखलाने के लिये देश में भ्रमण किया करते थे। उनमें अपभ्रंश तथा देश-भाषा के कवि भी रहा करते थे। इस प्रकार हिन्दी के इतिहास का समय संवत् ६५० विक्रम तक जा पहुँचा है।... *सबसे प्राचीन कविता* सरह उपनाम धारी सरोजवज्र सिद्धाचार्य (सं० ८०० विक्रमी में वर्त्तमान) की प्राप्त हुई है।... (इनके एक) दोहे में अपभ्रंश भाषा का वह स्वरूप है, जो आठवीं शताब्दी में उत्तरी *भारत के पूर्वी भाग में* शिक्षित समाज में बोली जाती थी। इसमें प्रयुक्त छन्द दोहा भी हिन्दी का ही छन्द है।...यह अनुमान होता है कि अधिकांश बौद्ध कवि अपने समय की प्रचलित भाषा में कविता करते थे और जैन कवि शुद्ध

अपभ्रंश की ओर अधिक झुके रहते थे। वे प्राचीनता के पक्षपाती होने के कारण ही ऐसा किया करते थे। . इस समय के *बौद्ध कवियों* ने भी इस प्रकार की भाषा लिखी है। ..नाडपाद सं० ११०० वि० में वर्त्तमान थे। इन्होंने *मगध में जन्म लिया* और नालन्दा में विद्याभ्यास किया। ये विक्रमशिला के महापंडित थे। इस कवि की भाषा में कुछ *बिहारीपन* भी है।"

'भाषा में कुछ बिहारीपन' की शिकायत बहुत पुरानी है। यह तो ईश्वर की दया हुई कि इसी 'बिहारीपन' से हिन्दी का उद्भव हुआ! कम-से-कम आठ-नौ सौ वर्ष पूर्व की भाषा में 'बिहारीपन' की छाप तो मिली! ईश्वर की ऐसी विचित्र प्रेरणा कि इस बात की खोज करके प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करनेवाले—जायसवालजी और राहुलजी—दोनों विद्वान् भी कर्मणा बिहारी ही हैं। बाणभट्ट भी बिहारी थे। 'सबसे प्राचीन कविता' करनेवाले सरोजवज्र सिद्धाचार्य निश्चय ही बिहारी थे; क्योंकि नाम से स्पष्ट ही बौद्ध आचार्य का भाव व्यक्त होता है, और उनकी भाषा में 'अपभ्रंश भाषा का वह स्वरूप है जो आठवीं शताब्दी में *उत्तरी भारत के पूर्वी भाग में* शिक्षित समाज में बोली जाती थी'। यहाँ 'उत्तरी भारत के पूर्वी भाग में' यथार्थतः 'बिहार' की विस्तृत व्याख्या है। बिहार बौद्धपीठ था—बौद्ध सभ्यता, बौद्ध संस्कृति और बौद्ध साहित्य का सर्वप्रधान केन्द्र था। बौद्ध धर्म के समान ही जैन धर्म का भी मुख्य केन्द्र था। अतः बिहार में ही सबसे अधिक प्रसिद्ध 'बौद्ध कवि' और 'जैन कवि' हुए थे। इस प्रकार यह स्वयंसिद्ध बात है कि 'बौद्ध कवियों की भाषा शुद्ध अपभ्रंश' का जन्मस्थान और विकास-केन्द्र भी बिहार ही है। 'मगध', 'नालन्दा' और 'विक्रमशिला' भी बिहार ही में हैं।

उपर्युक्त पांडित्यपूर्ण प्रस्तावना में कुछ ही आगे चलकर दीक्षितजी ने फिर लिखा है—"संवत् १३५० वि० के लगभग मिथिला के चंडेश्वर मंत्री के सम्बन्ध मे हरिब्रह्म नाम के भाट ने कुछ पद्य कहे थे। इस (हरिब्रह्म भाट की) रचना के १०० वर्ष पश्चात् विद्यापति का समय आता है।" इससे विदित होता है कि चौदहवीं शताब्दी मे हरिब्रह्म भाट नामक बिहारी कवि ने अपभ्रंश मे, या अपभ्रश से मिलती-जुलती भाषा में, कविता की थी। बौद्धों और जैनों का गढ़ होने के कारण बिहार अपभ्रंश का अड्डा-सा था। विवेचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो अपभ्रंश एक प्रकार से हिन्दी का उद्गम-स्थल है—मूल स्रोत है। स्वयं विद्यापति ने अपभ्रंश मे सुन्दर कविता की है। अपभ्रंश के कालिदास विद्यापति ही हैं। विद्यापति बिहार के गौरव थे। आज वे समस्त हिन्दी-संसार के गौरव हैं। उनकी

छाप और छाया उत्तरकालवर्त्ती हिन्दी-कवियों पर स्पष्ट पड़ी परिलक्षित होती है। उन्होंने पन्द्रहवीं शताब्दी में जिस भाषा में कविता रची थी वह पुरानी हिन्दी का नमूना मानी जाती है। महाप्रभु चैतन्यदेव उनकी कविताओं के बड़े अनुरागी थे। †

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में लक्ष्मीनारायण * नामक बिहारी कवि बड़े प्रसिद्ध हुए, जो 'रहीम' खानखाना (संवत् १६१०—१६८२) के दरबार में रहते थे। सत्रहवीं शताब्दी में ही मिथिला-निवासी महाकवि गोविन्ददासजी हुए, जिनकी कविताएँ 'गोविन्द-गीतावली' में सटिप्पण प्रकाशित हैं। 'सुदामा-चरित' के रचयिता सूर कवि हलधरदास ‡ भी सत्रहवीं शताब्दी में ही हुए थे। इसी शताब्दी में तिरहुत-निवासी बलवीर कवि ने दोहा-चौपाइयों में एक ग्रंथ बनाया था। विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में भी मिथिला में एक प्रसिद्ध कवि हुए थे— 'सीतायन' ग्रंथ के रचयिता रामप्रियाशरण' सीताराम (संवत् १७६०)। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूदन ने अपने ग्रंथ 'सुजानचरित्र में रमापति नामक एक मैथिल कवि का नाम लिखा है, जो सं० १७१४ के पूर्व हुए थे। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में तो अनेक कवि इस प्रान्त का गौरव बढ़ा रहे थे। जैसे—गया जिले के 'दत्त प्राचीन' कवि, जिन्होंने सज्जनविलास, वीरविलास, व्रजराजपंचाशिका आदि ग्रंथ बनाये थे। इनका रचना-काल वि० संवत् १८०४ है। शाहाबाद जिले के धरकंधा-ग्रामवासी दरियादास या दरिया साहब बड़े प्रसिद्ध निर्गुणवादी कवि हुए। इनका कविता-काल लगभग संवत् १८२७ माना जाता है। ये अपनेको महात्मा कबीरदास का अवतार बतलाते थे। संत-मत के ये बड़े सिद्ध कवि थे। ज्ञानस्वरोदय, ज्ञानरत्न, ज्ञानदीपिका, अनुभववानी, दरियासागर, अमरसार, ब्रह्मविवेक, भक्तिहेतु, बीजक, सतसैया आदि इनके तेरह ग्रंथ हैं। पटना-कालेज के प्रोफेसर, सारन-जिला-निवासी, श्रीधर्मेन्द्रब्रह्मचारी शास्त्री इनके ग्रंथों के

† "विद्यापति की कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसंद करते थे। इस महानुभाव की रचनाएँ बड़ी ही सजीव, श्रुतिमधुर, तल्लीनतापूर्ण और उमंग-वर्द्धिनी हैं। हिन्दी में पहले नाटककार विद्यापति ही हैं। 'पारिजातहरण' और 'रुक्मिणीपरिणय' नामक दो नाटक ग्रंथ भी बनाये हैं।"—मिश्रबन्धु-विनोद, (भाग १)

* रचना-काल संवत् १६५७, मैथिल; ग्रंथ—'प्रेमतरंगिणी', हनुमानजी का तमाचा'। —मि० बं० वि० (भा० १)

‡ इस कवि के सम्बन्ध में इसी ग्रंथ में विस्तृत लेख पढ़िये (पृष्ठ ३२१)—सं०

अन्वेषण और सम्पादन में बरसों से लगे हुए हैं। गया के मन्नूलाल-पुस्तकालय से इनके अनेक हस्तलिखित ग्रंथ उन्हें मिले हैं। ये वास्तव में बिहार के कबीर थे। सारन जिले के सरयू-तटस्थ 'झाँभी' गाँव में आज भी वहाँ के सन्त कवि महात्मा धरणीधरदास के भजनो की हस्तलिखित पोथियाँ विद्यमान हैं। ये पहुँचे हुए साधु पुरुष थे। इनकी जीवनी पुस्तक-रूप मे सन् १८८८ ई० में छपी थी। पटना के कवि शकरदत्त हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत के भी अच्छे कवि थे। इनका रचना-काल संवत् १८३० है। इनके चार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—हरिवंशप्रशस्ति, हरिवश-हंस (नाटक), सद्वृत्ति-मुक्तावली और राधिका-वर्णन (काव्य)। मिथिला के भजन कवि ने भी बड़ी अच्छी भाषा में कविता की है। इनका रचना-काल संवत् १८५७ के लगभग है। इन्हीं के समकालीन शाहाबाद जिले के जैन कवि 'वृन्दावन' ने प्रवचनसार, छन्दशतक, वृन्दावनविलास आदि ग्रंथ बनाये थे। इनके हाथ का लिखा एक ग्रंथ आरा के जैनसिद्धान्तभवन-पुस्तकालय में है। सारन जिले के महम्मदनगर-निवासी मुन्शी चतर्भुज सहाय के भी, जो छतरपुर-(बुन्देलखड)-राज्य के दीवान थे, अनेक स्फुट पद पाये जाते हैं।

उपर्युक्त बिहारी कवियो के अतिरिक्त और भी बहुत-से प्राचीन बिहारी कवि ऐसे हुए हैं, जिनके समय का ठीक-ठीक पता नहो लगता। ऐसे अज्ञात-कालिक कवियों मे कुछ के नाम आदि ये हैं—गुमानी कवि (पटना); गोपीचंद (मगही कवि); 'भवानी-स्तुति' के रचयिता 'चतुर्भुज' (मिथिला, जयनन्द कायस्थ (मिथिला); टुडरस कवि; चक्रपाणि (मिथिला); सेवादर्पण और और तिथिनिर्णय तथा भाषावर्षोत्सव ग्रंथो के रचयिता राधावल्लभी 'प्रियादास' (पटना), भड्डरीपुराण और ज्योतिषशकुनावली ग्रंथो के रचयिता शाहाबाद-जिला-निवासी 'भड्डरी' कवि, ज्ञानप्रभाकर ग्रंथ के निर्माता कवि महावीरप्रसाद कायस्थ (भागलपुर); लोरिक (मगही कवि); सरस राम (मिथिला); हनुमानाष्टक के रचयिता हरतालिकाप्रसाद त्रिवेदी (भोजपुर)।

भोजपुर के ही निवासी थे कवि कृष्णदत्त पांडेय, जिनके रचे 'कृष्ण-पद्यावली' और 'भारत का गदर' नामक पद्यग्रंथ अग्निकांड मे स्वाहा हो गये, इनकी मृत्यु संवत् १९१६ में हुई थी; ये बड़े शिवभक्त थे। सारन जिले के मुबारकपुर-निवासी मुन्शी तपसीराम ने सीतारामचरणचिह, प्रेम-गंगतरंग, अयोध्यामाहात्म्य आदि भक्तिभावोत्तेजक ग्रंथ बनाये थे। गया जिले के पाठक-बिगहा-निवासी हरिनाथ कवि ने 'ललितरामायण' की रचना की थी; ये बड़े

इनके रचे कई ग्रंथ उक्त प्रेस से निकल चुके हैं। इनकी लिखी लछिराम कवि की जीवनी और कविकीर्त्तिकलानिधि नामक पुस्तकें भी वहीं से प्रकाशित हुई हैं।

महाराज राधाप्रसादसिंह के समय मे ही डुमरॉव-राज्य के वंशपरम्परागत दीवान सूर्यपुरा (शाहाबाद) के राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह रससिद्ध कवीश्वर थे। आपके दरबार मे अनेक कवि, सगीतज्ञ, मल्ल आदि आश्रित थे। आपके पूज्य पिता दीवान रामकुमारसिहजी भी 'कुमार' उपनाम से भक्तिपक्ष की कविताएँ किया करते थे, जो आपकी सचित्र ग्रंथावली मे ही प्रकाशित हैं। आपके दरबारी कवियो मे कविवर लछिराम, कवि प्रभाकर (महाकवि पद्माकर के पौत्र), मार्कंडेय कवि 'चिरजीव', कवि सत, इन्द्र कवि, दामोदर कवि, मिश्र श्यामसेवक आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपकी सचित्र ग्रंथावली सन् १९३७ में आपके सुपुत्र राजा राधिकारमणप्रसादसिंह एम ए. ने प्रकाशित की, जिससे प्रकट होता है कि आप ब्रजभाषा के प्राचीन परम्परा के कवियो के समान ही काव्यकौशल से भूषित थे। भारतेन्दु के आप घनिष्ठ मित्रों में थे।

डुमरॉव के समीप ही बक्सर-राज्य था, जिसके अधीश्वर महाराज गोपालशरणसिह बहादुर प्रसिद्ध गुणिजनाश्रय थे। उन्होंने तुलसीकृत रामायण की 'मानसमुक्तावली' टीका लिखकर उसे छपवाया और पचीस-पचीस रुपये दक्षिणा के साथ पॉच सौ रामानुरागियो मे वितरित किया था। उन्हीं के दरबार मे 'मानसमयंक' के लेखक पडित शिवलाल पाठक रहते थे। उनके सुपुत्र महाराज-कुमार उदयप्रकाशसिह ने भी तुलसी की 'विनयपत्रिका' की एक अपूर्व टीका लिखी थी, जिसका मुद्रण और वितरण पूर्ववत् हुआ था।

डुमरॉव-राज्य के समान चम्पारन जिले के बेतिया-राज्य के अधीश्वरो ने भी साहित्य की स्तुत्य सेवा की है। भारतेन्दुजी ने अपने अभाव-कष्ट के अन्तिम दिनो मे बेतिया-दरबार से प्रभूत आर्थिक सहायता पाई थी। भारतेन्दु के गुरुतुल्य राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' को बेतिया राज्य से ही बहुत बड़ा भूमि-दान मिला था। बेतिया-दरबार मे सरदार, पजनेस, लछिराम आदि प्रसिद्ध कवि सदा आया करते थे। महाराज आनन्दकिशोर सिंह, महाराज नवलकिशोर सिह, महाराज राजेन्द्र-किशोर सिंह और महाराज हरेन्द्रकिशोर सिंह इस राज्य के प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। ये चारों नरेश हिन्दी-साहित्य के परिपोषक और संरक्षक थे।

महाराज आनन्दकिशोर सिंह काव्य-संगीत-कलाचार्य थे। वे सन् १८१६ ई. मे गद्दी पर बैठे और लार्ड विलियम बेंटिक ने उनको 'महाराजा बहादुर' की उपाधि

से विभूषित किया था। उनका 'राग-सरोज' ग्रंथ उनकी कवित्वशक्ति और संगीत-ज्ञता का प्रमाण है। महाराज नवलकिशोर सिंह भी अच्छी कविता करते थे। इनके गेय पद बड़े भावुकतापूर्ण हैं। ये संगीताचार्य भी थे। इन्होंने भारत की प्राचीन संगीत-पद्धति के ध्रुपदाचार्यों की एक टोली अपने दरबार में बसाई थी। महाराज राजेन्द्रकिशोर सिंह तो कवियों और साहित्य-रसिकों के लिये कल्पद्रुम थे। आप सन् १८५५ ई. में राज्याधिकारारूढ़ हुए थे। आपकी दानवीरता से अनेक गुणी और कलावन्त सफलमनोरथ हुए। आपका दरबार कवियो और कलाविदों का अड्डा और अखाड़ा था। पं० छोटक पाठक, पं० जगन्नाथ तिवारी, बाबू दीन-दयालु, मुन्शी प्यारेलाल, पं० नारायणदत्त उपाध्याय, पं० कालीचरण दुबे, पं० महावीर चौबे, मँगनीराम आदि कवि आपके दरबार को सुशोभित करते थे। नित्य कविता-पाठ सुनना और अधिकांश समय काव्यचर्चा में ही बिताना आपका सहज स्वभाव था। महाराज हरेन्द्रकिशोर सिंह भी अपने पूर्वजों की परम्परा और दरबार की प्रतिष्ठा के परिपालक थे। उन्हें सरकार से 'के. सी. आइ. ई.' की उपाधि मिली थी। वे ही बेतिया के अन्तिम राजा हुए। सन् १८६३ ई० में कलकत्ता में उनका स्वर्गवास हुआ। उनकी विधवा महारानी जानकी कुँअरि आजतक जीवित हैं।

हर्ष का विषय है कि बेतिया-राज्य के वर्त्तमान मैनेजर श्रीविपिनविहारी वर्मा बारिस्टर के उद्योग से उपर्युक्त नरेशों की रचनाओं का सुसम्पादित संग्रह प्रकाशित करने के लिये एक साहित्यिक समिति का संघटन हो गया है, और तत्परता से काम हो रहा है। राज्य की ओर से अनेक बरसों से विजयादशमी के अवसर पर जो मेला होता आ रहा है उसमें अब, श्रीमान् वर्माजी के ही प्रयत्न से, प्रतिवर्ष साहित्यिक समारोह भी हुआ करता है। इस महोत्सव में कविसम्मेलन आदि का आयोजन करने के लिये भी वर्माजी ने एक साहित्यिक समिति संगठित कर दी है, जो राज्य की ओर से कवियों और साहित्य-सेवियों का स्वागत-सत्कार किया करती है।

दरभंगा के मिथिला-नरेशों का दरबार तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही साहित्य का केन्द्र रहा है। संस्कृत-साहित्य और मैथिली-साहित्य के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य के प्रतिपालन में भी मिथिलेशों ने बड़ी उदारता दिखाई है। दरभंगा-दरबार में रहनेवाले अनेक* विद्वानों ने कितने ही साहित्यिक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें अधिकांश संस्कृत और मैथिली में हैं; पर हिन्दी के भी

* इसी ग्रंथ में प्रकाशित प्रथम लेख 'मिथिला के पंडित' पढ़िये।—सं०

कुछ कम नहीं हैं और उनमें से कई तो छप भी चुके हैं। दरभंगा-नरेश महाराज प्रतापसिंह ने 'राधागोविन्दसंगीतसार' नामक ग्रंथ बनाया था (संवत् १८३२)। कवि हरिनाथ झा और माधवनारायण उपनाम 'केसन कवि' इन्हीं के दरबार में आश्रित थे।

ईसा की उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह और महाराज रमेश्वरसिंह के समय में, दरभंगा का राज-दरबार अनेक हिन्दी-कवियों का आश्रयस्थल रहा। इन्हीं दोनों भाइयों के समय में सुप्रसिद्ध प्रकाशित ग्रंथ 'मैथिली रामायण' के रचयिता कविवर चन्दा झा दरभंगा-दरबार में रहते थे। पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने अपना 'सोमवती' संस्कृत-नाटक महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह को समर्पित कर पर्याप्त पुरस्कार पाया था। उनके द्वारा भारतेन्दुजी भी आमंत्रित और सम्मानित हुए थे। उनके समय में कविवर लछिरामजी भी दरभंगा-दरबार में आया करते थे। इन्होंने 'लक्ष्मीश्वर-रत्नाकर' नामक ग्रंथ बनाकर प्रचुर पुरस्कार पाया था। मार्कण्डेय कवि 'चिरजीव' ने 'लक्ष्मीश्वरविनोद' नामक नवरसमय हिन्दी-काव्य-ग्रंथ रचकर उनसे प्रभूत द्रव्य प्राप्त किया था। यह ग्रन्थ अयोध्या-नरेश के सुप्रसिद्ध 'रसकुसुमाकर' के समान सर्वाङ्गसुन्दर छपकर वितरित हुआ था।

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह के समय में कविवर विश्वनाथ झा 'बाला जी' ने 'रमेश्वरचंद्रिका' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ सन् १९१० में दरभंगा-राज-प्रेस से प्रकाशित किया गया था। 'बाला जी' दरभंगा जिले के 'नवटोल'-ग्रामवासी प० बदरीनाथ झा के पुत्र थे। उन्होंने 'बिहारी-सतसई' के दोहों पर जो कुंडलियाँ रची हैं, वे उनकी कवि-प्रतिभा का अच्छा परिचय देती हैं। दरभंगा-दरबार के ही कवि लालदास ने 'रमेश्वरचंद्रिका' की अपनी भूमिका में उन कुंडलियों की बड़ी प्रशंसा की है। मुन्शी रघुनन्दनदास, पं० शिवप्रसाद राजकवीश्वर और उनके सुपुत्र देवीशरण भी उस समय दरभंगा-दरबार के कवि थे।

महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह बहादुर के संरक्षण में ही राज्य के छापाखाने से १९०८ ई० में 'मिथिला-मिहिर' मासिक पत्र निकला था। उसके सम्पादक पं० योगानन्द कुमर की लिखी कई हिन्दीपुस्तकें राजप्रेस से निकली थीं। जैसे—'वाजसनेयी नित्यकर्मपद्धति' और 'छन्दोग-संध्यातर्पण' का हिन्दी-भाष्य तथा 'मिथिलाब्राह्मण-डाइरेक्टरी'। महाराजाधिराज के दरबार में



पुरातत्त्वेतिहास के मर्मज्ञ विद्वान
पटना-निवासी विख्यात बारिस्टर
महामहोपाध्याय, विद्यामहोदधि
स्व० डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल



छपरा

त्रिपिटकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन



स्वामी भवानीदयाल संन्यासी (शाहाबाद)



पटना

आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ



[illegible]
(मुजफ्फरपुर)



स्वर्गीय वासुदेवनारायण सिंह
(शाहाबाद)



श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' (गया)

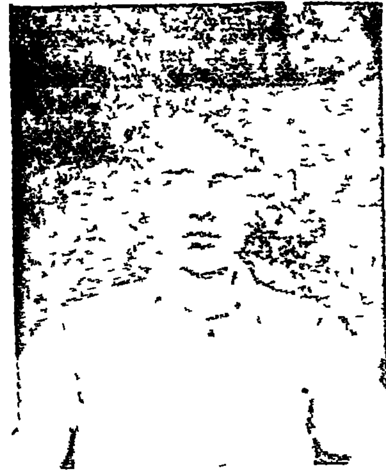
भागलपुर



प्रोफेसर जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज',
एम० ए०, (राजेन्द्र-कालेज छपरा)



[सेमरियाघाट-(मुँगेर)-निवासी]
श्री 'दिनकर'



श्रीगोपालसिंह नेपाली
(चम्पारन)



श्री 'केसरी', एम० ए० (शाहाबाद)



श्रीआरसीप्रसाद सिंह (दरभंगा)

पं० गोपीनाथजी और पं० मथुराप्रसादजी दीक्षित अन्त तक रहे। वयोवृद्ध-पं० गोपीनाथजी काश्मीरी थे, हिन्दी के पुराने प्रसिद्ध लेखक; 'श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार' और 'मित्रविलास' के सम्पादक, भारत-धर्म-महामंडल (काशी) के उपदेशक और भारतेन्दु-युग के साहित्यिक संस्मरणों के धनी। दीक्षितजी भी बिहार के प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक हैं, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में हैं, 'देश' और 'तरुणभारत' तथा 'नवयुवक' के सम्पादक रह चुके हैं—वर्त्तमान मिथिलेश के दरबार में भी कई साल तक थे।

वर्त्तमान मिथिलेश महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिह बहादुर भी हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। इस समय आपके राज्य में दो साहित्यिक व्यक्ति विशेष उल्लेख-योग्य हैं—श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिंह, एम० ए० और पंडित गिरीन्द्रमोहन-मिश्र, एम० ए०, बी० एल०। इसके अतिरिक्त आप ही की छत्रच्छाया में पटना से हिन्दी का दैनिक 'आर्यावर्त्त' और अँगरेजी का दैनिक 'इंडियन नेशन' प्रकाशित हो रहे हैं, और राजप्रेस से तो पूर्ववत् 'मिथिलामिहिर' बराबर निकल ही रहा है, जो साहित्याचार्य श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' के समान सुयोग्य हिन्दी-लेखक के सम्पादकत्व में इस समय हिन्दी का बड़ा उपयोगी साप्ताहिक पत्र बन गया है।

बिहार के अति प्राचीन राज्य 'हथुआ' के नरेश भी हिन्दी-कवियों और संगीतज्ञों का सत्कार तथा पोषण करने में बड़े उदाराशय थे। प्रसिद्ध-कवि 'पजनेस' बराबर इस दरबार में आते थे। उनके भाई 'भुवनेस' का तो सारा जीवन छपरा नगर में ही बीता था। दशहरे के अवसर पर प्रति वर्ष हथुआ-राजधानी में बहुत दिनों से मेला लगा करता है और मेले के साथ-साथ राज्य की ओर से रामलीला का भी विशेष प्रबन्ध होता है। 'भुवनेस' कवि हमेशा इस उत्सव के समय दरबार में जाया करते थे। महाराज छत्रधारी साही, जिन्होंने हथुआ में राजधानी स्थापित की थी, हिन्दी-कवियों को मुक्त-हस्त हो पुरस्कार दिया करते थे। महाराजा बहादुर सर कृष्णप्रताप साही वर्त्तमान महाराज के पिता थे। वे परम शिवभक्त थे। शिवभक्ति-सम्बन्धी कविताएँ सुनानेवाले अनेक हिन्दी-कवियों को उन्होंने बहुमान-पुरस्सर पुरस्कृत किया था।

वर्त्तमान हथुआ-नरेश महाराज गुरुमहादेवाश्रम प्रसाद साही बहादुर तो हिन्दी के केवल प्रेमी ही नहीं, उसके बड़े भक्त और विद्वान् भी हैं। आपके ही समय में राज्य की ओर से 'पाटलिपुत्र' निकला था, जिसके लिये पटना में एक बहुत बड़ा प्रेस स्थापित हुआ था। उस प्रेस से हिन्दी की कई अच्छी पुस्तके भी

धाम का शिवमन्दिर इसी राज्य की कीर्त्ति है। शिवभक्ति-परक कविताओं पर इस राज्य के दरवार से अनेक कवियो को पुरस्कार और सम्मान मिल चुका है। सन् १८६५–६६ में काशी मे एक कवि-समाज स्थापित हुआ था। उसमे गिद्धौर-नरेश श्रीमन्महाराज रावणेश्वरप्रसादसिंह, महाराजकुमार श्रीगौरीप्रसादसिंह और महाराजकुमार श्रीगुरुप्रसादसिंह सदैव समस्यापूर्त्तियाँ भेजा करते थे। श्रीगुरुप्रसादसिंह की लिखी हुई तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं—राजनीतिरत्नमाला, भारत संगीत और चुटकुला (स्फुट पद्य-संग्रह)। कविराज लछिरामजी ने 'रावणेश्वर-कल्पतरु' नामक काव्यग्रंथ बनाकर उक्त गिद्धौर-नरेश से भी 'सन्तोषजनक पारितोषिक' पाया था। 'रघुवीरविलास' नामक ग्रंथ बनाकर श्रीगुरुप्रसादसिंह को भी कविराज ने रिझाया था। लछिरामजी इस दरवार मे हमेशा आते और पुजाते थे। महाराज चन्द्रमौलीश्वरप्रसादसिंह और महाराज चन्द्रचूडेश्वरप्रसादसिंह भी हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। इनके समय में स्वर्गीय पंडित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी का केवल साहित्य के नाते दरवार मे वड़ा सम्मान था। अन्तिम महाराज श्रीचतुर्वेदीजी के अनुरोध से खड़ी बोली में वड़ी अच्छी कविता करने लगे थे। अपने प्रान्त की 'गंगा' पत्रिका के वे संरक्षकों मे थे। भरी जवानी में उनके कैलासवासी होने से हिन्दी का एक अनन्य अनुरागी नरेश उठ गया। ईश्वर उनके एकमात्र वालक राजकुमार को अपने राज्य की साहित्यिक परम्परा का सच्चा प्रतिनिधि बनावे।

इसी प्रकार गया जिले का टेकारी-राज्य भी पुराने समय से साहित्य-मर्मज्ञ विद्वानो का आश्रयस्थल रहा है। गया जिला शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का अड्डा है। उस जिले मे बड़े-बड़े धुरन्धर पंडित हो गये हैं। आज भी कितने ही हैं। उन पंडितों मे से अनेक वाक्पटु शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् टेकारी-दरबार मे प्रतिपालित और सम्मानित हो चुके हैं। संस्कृत-साहित्य की चर्चा के साथ-साथ वहाँ हिन्दी की काव्यचर्चा भी बराबर होती रही है। सन् १८२६ ई० में इस दरबार के आश्रित 'दिनेस' कवि ने 'रसरहस्य' नामक ग्रंथ रचा था। उस समय इस ग्रन्थ की बड़ी प्रसिद्धि हुई थी। वाद यह दरवार की ओर से छपवाया भी गया था। इसके रचयिता 'दिनेस' के यश और मान से आकृष्ट होकर अनेक हिन्दीकवि इस दरवार में आते और आदर पाते थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य में महाराज मित्रजित्सिंह के आश्रित कवि पंडित नाथ पाठक भी बड़े प्रसिद्ध हुए। महाराज हितनारायणसिंह और महाराज रामकृष्णसिंह अतिशय धर्मनिष्ठ होने के कारण ईश्वरभक्ति-विषयक कविताएँ सुनानेवाले कवियों के बड़े चाहक थे। इनके समय मे अनेक कवियो के



(छपरा-निवासी)
कविवर श्रीरघुवीरनारायण, बी० ए०



श्री जगदीश झा 'विमल'
(भागलपुर)



श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश'
(सन्ताल परगना)



पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव', एम०एल० ए०,
रजिस्ट्रार, गोवर्द्धन-साहित्य-महाविद्यालय,
देवघर सन्ताल परगना।



ताजपुर-(दरभंगा)-निवासी
श्रीअनिरुद्धलाल 'कर्मशील'



(सारन-जिला-निवासी)
श्रीकपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद'



श्रीजयकिशोरनारायण सिंह, साहित्याचार्य

मुजफ्फर-
पुर



आनन्दपुर-देवढी (दरभंगा)-निवासी
श्रीभुवनेश्वरसिंह 'भुवन'



श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री (गया)



श्रीहंसकुमार तिवारी (भागलपुर)



श्रीरामदयाल पाण्डेय

(शाहाबाद)



श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य

लिये सालाना विदाई की रकम बँधी हुई थी। अब, वर्त्तमान टेकारी-नरेश को केवल शिकार-साहित्य का बड़ा शौक है।

इस तरह यह स्पष्ट देखने में आता है कि बिहार की रियासतो में आज की तरह नीरसता नहीं थी, बल्कि साहित्यिक सरसता से हरएक दरबार ओतप्रोत था। शिवहर (मुजफ्फरपुर), नरहन (दरभंगा), सुरसंड (मुजफ्फरपुर), आनन्दपुर-देवढ़ी (दरभंगा), सोनबरसा (भागलपुर), तिलौथू (शाहाबाद), चैनपुर (सारन), मधुबन (चम्पारन) आदि रियासतों के दरबार भी साहित्यकारो और कलाकारों के लिये बहुत बड़े अवलम्ब थे। पहले कहे हुए चारो दरबार तो साहित्यानुराग और काव्यशास्त्र विनोद के केन्द्र रह चुके हैं तथा आज भी उनमे साहित्य का सत्कार बड़े प्रेम से होता है।

काव्ययुग में बिहार में कितने और कैसे साहित्यसेवी थे, इसका कुछ आभास उपर्युक्त वर्णन वा विवरण से मिल जाता है। उस युग के रत्नो की खोज के लिये संगठित रूप से अनुसन्धान होना चाहिये। हिन्दीहितैषिणी संस्थाओ का यह कर्त्तव्य है।

गद्ययुग में भी बिहार आरम्भ ही से सेवामार्ग पर अग्रसर होता रहा। उन्नीसवी सदी के आरम्भ में ही सदल मिश्र ने सुन्दर गद्य को सृष्टि की थी। किन्तु 'मिश्रबन्धुविनोद' * (द्वितीय भाग) से पता लगता है कि संवत् १७६० (सन् १७०३ ई०) में भी भगवान मिश्र मैथिल नामक गद्य-लेखक थे। इस प्रकार सदल मिश्र से एक सौ वर्ष पूर्व के एक बिहारी गद्यलेखक का अस्तित्व प्रमाणित होता है। संयोगवश दोनों 'मिश्र' ही थे। किन्तु मिथिला-निवासी भगवान मिश्र ने ईसा की अठारहवी शताब्दी के आरम्भ में जो गद्य लिखा है, वह उन्नीसवीं शताब्दो के आरम्भ में लिखे गये सदल मिश्र के गद्य का प्राचीन रूप-सा जान पड़ता है। भगवान मिश्र का लिखा हुआ, बस्तर-राज्यान्तर्गत 'दन्तावारा' ग्राम (मध्यप्रदेश) † में, एक हिन्दी-शिलालेख मिला था, जिसकी भाषा का नमूना यह है—

* द्वितीय संस्करण (सं० १९८४)—पृष्ठ ५३५-३६।—ले०

† मध्यप्रदेश, मध्यभारत, राजपूताना आदि प्रान्तों में अत्यन्त प्राचीन काल से मैथिल पंडितों के प्रवास के प्रमाण मिलते हैं। इन प्रान्तों के देशी राज्यों में मिथिला के बहुत-से विद्वान् राजगुरु, सभा-पंडित, ज्योतिषी, कर्मकाडी आदि पदों पर रह चुके हैं—आज भी कई दरबारों में हैं। उनके द्वारा अर्जित प्रभूत भू-सम्पत्ति को आजतक उनके वंशधर भोगते हैं। इन राजाश्रित प्रवासी मैथिल विद्वानों में महामहोपाध्याय मधुसूदन झा (जयपुर), जस्टिस रामभद्र झा (अलवर), विद्वद्वर रमानाथ मिश्र (गवालियर) आदि कितनों ही के नाम प्रसिद्ध हैं।—लेखक

"दन्तावाला देवी जयति। देववाणी मह प्रशस्ति लिखाए राजा दिक्पाल देव के कलियुग महँ सस्कृत के बचवैया थोर हो हैं ते पांइ भाषा लिखे हैं। सोमवशी पांडव अर्जुन के संतान तुरुकान हस्तिनापुर छाड़ि ओरंगल के राजा भए। ते वंश महँ काकतो प्रतापरुद्र नाम राजा भए जे राजा शिव के अंश नउ लाख धानुक के ठाकुर जे के राज्य सुवर्न वर्षा भै ते राजा के भाई अन्नमराज वस्तर महँ राजा भए ओरंगल छाड़ि कै। ते के सतान हंमीरदेव राजा भए। ताके पुत्र भैरव राजदेव राजा। ताके पुत्र पुरुसोत्तमदेव महाराजा ताके पुत्र जैसिंहदेव राजा ताके पुत्र नरसिहराय देव महाराजा जेकर महारानी लछिमादेई अनेक ताल बाग करि सोरह महादान दीन्हें। ताके पुत्र जगदीश राय देव राजा। ताके पुत्र वीरसिह देवनाम धर्म अवतार, पंडित-दाता, सर्वगुन-सहित, देव-ब्राह्मन-पालक चंदेलिन वदन कुमरि महारानी विषै दंतावली के प्रसाद ते दिक्पालदेव पुत्र पाए। शतसठि वर्ष राज्य करि दिक्पालदेव कहँ राज सौंपि कै वैशाषी पूर्णिमा महँ प्राणायाम समाधि वैकुंठ गए। ताके पुत्र स्वस्तिश्री महाराजाधिराज सक प्रशस्ति सहित पृथुराज के अवतार, बुद्धिगणेश, बलभीम, सोभाकाम, पन परशुराम, दानकर्ण, . सीलसागर, रीझे कुवेर, खीझे यम, प्रताप अगिनि, - सेना सरदार इंद्र... आचार ब्रह्मा, विद्या सेसनाग एहूँ भाँति दस दिक्पाल के गुन जानि 'पडित वामन' दिक्पाल देव नाम धरे। ते दिक्पाल देव विआह कीन्हें वरदी के चदेलराव रतन राजा के कन्या अजब कुमरि महारानी विषैं अठारहे वर्ष रक्षपाल देव नाम युवराज पुत्र भए। तब हल्ला ते 'नवरगपुर' गढ़ टोरि फारि सकल वन्द करि जगन्नाथ वस्तर पठै के फेरि नवरगपुर देकै ओडिया राजा थापे ....। पुनि सकल पुरवासी लोग समेत दतावाला के 'कुदुम जात्रा' सवत् सत्रह सै साठि १७६० चैत्र सुदी १४ आरम्भ वैशाख वदी ३ ते सपूर्न भै जात्रा। कतेकौ हजार भैंसा वोकरा मारे तेकर रकत प्रवाह वह पॉच दिन संषिनी नदी लाल कुसुम वर्न भए। ई अर्थ मैथिल भगवान मिश्र राजगुरु पंडित भाषा औ सस्कृत दोउ पाथर महि लिखाए। अस राजा श्रीदिक्पालदेव समान। कलियुग न होहै आन राजा।" *

* मिश्रबन्धुविनोद—द्वितीय भाग—(द्वि० स० १९८४)—पृष्ठ ५३६–३७। और, देखिये 'सरस्वती' (भाग १७, खड २, संख्या ५, पृ २८१) में प० कामताप्रसाद गुरु का लेख।—ले०

विहार में गद्ययुग के आदिकाल के पुराने † लेखकों में भगवान मिश्र मैथिल और आरा-निवासी सदल मिश्र ‡ के अतिरिक्त दो अन्य लेखकों के नाम भी मिलते हैं। जैसे—'रामकथा' नामक गद्यग्रन्थ के लेखक बाँकीपुर-(पटना)-निवासी छोटूराम और 'प्रवीण पथिक' के लेखक मुजफ्फरपुर-निवासी देवीप्रसाद। इनके समय का ठीक पता नहीं; पर जान पड़ता है कि भारतेन्दु-युग के आरम्भ के आसपास ही इनका समय रहा होगा। हाँ, भारतेन्दु-युग से आज तक के विहारी लेखकों और कवियों के सम्वन्ध मे विस्तृत और संक्षिप्त विवरण यत्र-तत्र विखरे मिलते हैं, जिनका यथाशक्य संग्रह करने का प्रयत्न हमने किया है। संगृहीत सामग्री को हमने विहार के जिलों में अलग-अलग बाँट दिया है, जिससे आगे के अन्वेषकों में अपने-अपने जिले के अभावों की पूर्त्ति कर डालने का उत्साह-सचार हो। निम्नांकित सूची यथासम्भव कालानुसार तैयार की गई है। इसमें सर्वत्र विक्रम-संवत् का प्रयोग किया गया है, जो ईसवी सन् से ५७ वर्ष पहले का है। यदि कहीं ईसवी सन् का प्रयोग मिल जाय, तो कोई भ्रम न होना चाहिये।

विहार के हरएक जिले के साहित्यसेवियों का संक्षिप्त परिचय—

पटना

विहारीलाल चौवे। मथुरापुर (वनारस) के निवासी थे; पर विहार में ही हिन्दीसेवा करते हुए अधिकांश जीवन विताया। राँची के नार्मल स्कूल में पाँच वर्ष हिन्दी-अध्यापक रहे। फिर पटना-कालेजियट में अध्यापक हुए और पीछे सिटी-स्कूल मे वदलकर वहीं से पेन्शन ली। संवत् १९७२ में काशी में शिवरात्रि को कैलासवासी हुए। रचनाएँ—भाषाबोध, पत्रबोध, विहारी-तुलसी-भूषण, वर्णनबोध, पदवाक्यबोध, प्रबोध, वालोपहार, चालचलनवोध, दशावतार, तुलसीसतसई की टीका, शिक्षाप्रणाली आदि। ×

पं० केशवराम भट्ट। विहारशरीफ। जन्म १९१०, मृत्यु १९६२। साप्ताहिक

† "हमारे यहाँ पद्यरचना तो प्राचीन काल से होती आई थी; किन्तु गद्य का साहित्य में पहले-पहल प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने किया।"—मिश्रवन्धुविनोद (भाग ४, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ १६८)—देखिये इसी ग्रंथ का पृष्ठ २१३।—सं०

‡ "सदल मिश्रवाली भावप्रकाशन की पद्धति स्तुत्य थी।"—मिश्रवन्धुविनोद (भा० ४, पृ० १६८)

× देखिये—'सरस्वती', भाग १, खंड १, संख्या ६, जून १९१५, पृष्ठ २२२।—ले०

'बिहारबन्धु' के संस्थापक और सम्पादक। रचनाएँ—विद्या की नींव, भारतवर्ष का इतिहास, शमशाद सौसन और सज्जाद सम्बुल (नाटक), हिन्दी-व्याकरण, एक जोड़ अँगूठी, रासेलस। देखिये पृष्ठ ५३७, ५७४। बिहार में हिन्दी के प्रथम प्रचारक और परमोत्साही सफल पत्रकार।

महाराजकुमार रामदीनसिंह। जन्म १६१२, मृत्यु १६६०। रचनाएँ—बिहार-दर्पण, हितोपदेश आदि। (देखिये पृष्ठ २६०, ३६०, ५३८, ५७६, ६१३)। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सचालक और सम्पादक, साहित्यसेवियों के पृष्ठपोषक, भारतेन्दु के अन्तरङ्ग मित्र और उनके ग्रंथो के प्रथम प्रकाशक तथा प्रचारक, खड्गविलास प्रस के संस्थापक, बिहार में हिन्दी के समर्थ उन्नायक।

बाबू महेशनारायण। पटना-निवासी। 'बिहारबंधु' मे बराबर खडी बोली की कविताएँ लिखते थे। बिहार के निर्माताओ मे एक माने जाते है। रचनाकाल—सन् १८७५-८५ ई०।

जनकधारीलाल, जन्म १६०६, दानापुर-निवासी, रचना—सुनीति-संग्रह।

रघुनाथ शाकद्वीपी, कवि, राघवपुर, जन्म १६२५, रच०—सूक्तिविलास, उद्धवचम्पू, आर्याचारादर्श, रसमंजूषा।

व्रजनाथ शास्त्री, पटना, ज० १६३०, रच०—अनुरागशतक।

महादेवप्रसाद 'मदनेश'। झाऊगंज, पटना सिटी। कवि। रच०—गंगालहरी, रामचन्द्र-नखशिख, मदनेश-कल्पद्रुम, संकट-मोहन आरसी, मदनेश-कोष, तनतीत्र-ताला की तरहदार कुजी, भैरवाष्टक।

गिरिजानन्दन तिवारी, बिहारशरीफ, उपन्यास-लेखक—विद्याधरी, पद्मिनी, सुलोचना (भारतजीवन प्रेस से क्रमश. सन् १६०४ ई०, १६०५ ई० और १६०६ ई० में प्रकाशित।)

हरिहरप्रसाद (जीतूलाल), मुख्तार, बाकरगंज-बाँकीपुर, रच०—'सनातन-धर्म-विजय' (१६१२ ई० मे ख० वि० प्रेस में छपा १५० पृष्ठो का दयानन्द-मत-खडनात्मक ग्रंथ)।

बाबू बाँकेबिहारीलाल, नयाटोला—बाँकीपुर, सावित्री (नाटक, १६०८ ई० मे ख० वि० प्रेस मे छपा था)।

हरसहायलाल, बी० ए०, डिपटी-मजिस्टर, बाँकीपुर, कवि, रच०—अवतार-पराभव, कान्ता-वियोग, शकुन्तला (अनुवाद)।

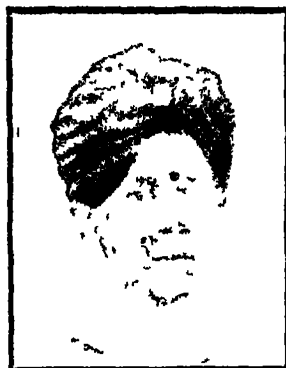
चन्द्रशेखर पाठक, बिहारशरीफ, जन्म १६४४, मृत्यु १६६८, उपन्यास-लेखक।



स्वर्गीय रूपकला भगवानजी, जिन्होंने विहार के स्कूलों के लिये हिन्दी में पाँच ग्रंथ लिखे



पोखरपुर-(सारन)-निवासी
स्वर्गीय मंगलप्रसाद सिंह
(वाणी-मन्दिर, छपरा के संस्थापक)



भागलपुर-निवासी स्वर्गीय 'विभूति'



पटना-निवासी
स्वर्गीय श्री नागेश्वरप्रसाद सिंह शर्मा
(लालबाबू) 'तरुणभारत' के
संचालक और सम्पादक



ओइनी-(दरभंगा)-निवासी
स्वर्गीय राघवप्रसाद सिंह महंथ
बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-
सम्मेलन के संस्थापकों में से एक



पटना-निवासी
श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'



मुजफ्फरपुर-निवासी
श्री रेवतीरमण 'रमण'



श्री रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द'



श्री उपेन्द्रनाथ मिश्र 'मंजुल'
सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) निवासी



भदई-(मुजफ्फरपुर) निवासी
श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश'



वाजितपुर-(मुजफ्फरपुर) निवासी
श्री योगेन्द्र मिश्र

रमाबाई (१६०७ ई०), वाराङ्गना-रहस्य, मायापुरी आदि उपन्यास, पाठक एंड कम्पनी (कलकत्ता) के स्वामी, अनेक सुन्दर पुस्तकों के प्रकाशक।

स्वर्गीय रायबहादुर रामरणविजयसिंह, खड्गविलास प्रेस के स्वामी, 'शिक्षा' पत्रिका के संचालक, स्वनामधन्य बाबू रामदीनसिंह के ज्येष्ठ सुपुत्र, बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (मुँगेर) के सभापति।

स्वर्गीय शिवप्रसाद पांडेय 'सुमति', कवि, महेन्द्रू—पटना, बिहारप्रान्तीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन (भागलपुर) के सभापति, रच०—सुमति-विनोद।

स्वर्गीय नागेश्वरप्रसादसिंह (लालबाबू), चौधरीटोला-पटना, 'तरुणभारत' के जन्मदाता और संचालक, साहित्यसेवी रईस।

स्वर्गीय सोनासिंह चौधरी, चौधरी-टोला, 'पाटलिपुत्र'-सम्पादक, सहृदय विनोद-प्रिय साहित्यरसिक।

मुकुटलाल मिश्र, फुलौरीगंज-पटना, र०-दुर्गासप्तशती का पद्यात्मक अनुवाद।

रामानन्दसिंह, बी० ए०, बाँकीपुर, रच०—पाटलिपुत्र में खुदाई।

मेवालाल चौधरी, खगौल, दानापुर, रच०—व्यापारतत्त्व (दो भाग), हिन्दी रेलवे गाइड (दो भाग)—वहीं के शारदा-पुस्तकालय से प्रकाशित।

स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल विद्यामहोदधि, बारिस्टर, पटना। पुरातत्त्वेतिहास के प्रामाणिक विद्वान्, द्विवेदी-युग में 'सरस्वती' के प्रसिद्ध लेखक, अनेक ऐतिहासिक लेख, 'पाटलिपुत्र' के आदि-सम्पादक, बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (भागलपुर) के सभापति।

स्व० टेकनारायणप्रसाद तर्कवागीश, 'मंगल' कवि, पत्थरदेरीवा (पटना सिटी), पुरातत्त्व-सम्बन्धी स्फुट लेख, रच०—बिहार-विभव (१८६५ ई० में पटना सिटी के राजनीति-प्रेस में छपा काव्य), फाग-बहार (१८६७ ई० में बिहारबंधु प्रेस में छपी)।

स्वर्गीय रामचन्द्र द्विवेदी, जन्म १६३८, वैद्यनाथधाम-देवघर के गुरुकुल-विद्यालय के संस्थापक, रच०—तुलसी साहित्य-रत्नाकर (अपूर्व ग्रन्थ है), उपदेश-कुसुमाकर, धर्म, ईश्वरास्तित्व, हिन्दूजाति का संगठन और सुधार, प्राचीन और अर्वाचीन भारत।

आचार्य बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ, सीठापुर-पटना। 'भारतमित्र' (कलकत्ता) और 'देश' (पटना) के भूतपूर्व सम्पादक, बिहारविद्यापीठ के आचार्य और पीठस्थविर, बि० प्रा० हिन्दी सा० सम्मे० (गया) के सभापति और

श्रीमती सुदर्शन देवी, कटारी, लई, स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख।

ईश्वरीप्रसाद वर्मा 'शब्द', कमगर गली, पटना सिटी, स्फुट रचनाएँ।

प्रोफेसर कृष्णनन्दन सहाय, एम० ए०। भागलपुर के टी० एन० जे० कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर, उत्साही सुन्दर लेखक।

पारसनाथसिंह 'विशारद'। हिन्दीप्रचारिणी सभा (पटना) के प्रधान मंत्री। हिन्दुस्तानी विरोधी आन्दोलन के उत्साही कार्यकर्त्ता। तत्सम्बन्धी स्फुट लेख।

प्रोफेसर नारायणप्रसाद शास्त्री, मुजफ्फरपुर में भूमिहार-ब्राह्मण-कालेज के अध्यापक, 'रौनियार-वैश्य' पत्र के सम्पादक।

गिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी० ए० (ऑनर्स), मिरचाई गली, पटना सिटी, प्रतिभाशाली उत्साही लेखक, रच०—विमान, कहानी-कला, आकाश की सैर। (देखिये पृष्ठ ५७१)

गया

पत्तनलाल 'सुशील', जन्म १९१६, दाऊदनगर-निवासी। रचनाएँ—रोला रामायण, जुवली-माठिका, भर्तृहरि-शतक, नीति-शतक, साधु, उजाड गाँव, यात्री, देशी खेल (दो भाग), ग्रियर्सन साहब की बिदाई।

शीतलप्रसादसिंह, इमामगंज, जन्म १९२२, र०—श्रीसीतारामचरितायन।

कान्हलाल 'कान्ह', नवागढी, जन्म १९२४, रच०—सगीत-मकरन्द, सावन-मयूर, सुधातरगिणी, आनन्द-लहरी, जगन्नाथ-माहात्म्य, नखशिख, आनन्दसार रामायण, कामविनोद, वैद्यनाथमाहात्म्य, हास्य-पचरत्न, सुहृद्शिक्षक, विश्वमोहिनी सग्रह।

स्वर्गीय कालिकाप्रसाद, बी० ए०, बी० टी०। जिला और ट्रेनिंग स्कूलों के यशस्वी हेडमास्टर, टेक्स्टबुक-कमिटी के सेक्रेटरी, अनुभवी और आदर्श अध्यापक, रचनाएँ—व्याकरण पढाने की विधि, अनेक शिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख।

प्रबोधचन्द्र, कतरीसराय, जन्म १९२८। स्फुट रचनाएँ।

जानकीशरण 'स्नेहलता', जन्म १९३२, परम वैष्णव। सौर दरियापुर-निवासी। गोस्वामी तुलसीदासजी की शिष्यपरम्परा में से हैं। रच०—विरहानल, श्रीहरिकीर्त्तनपदावली, गवाष्टक, श्रीहसकला-सप्तक, नवीन भक्तमाल (१००० छप्पय अप्रकाशित), मानस-उत्तर-पक्षावली (३०० दोहे अप्रकाशित), स्फुट पद।

रामगुलामराम, जन्म १९३३, जमोर-निवासी। रच०—रामगुलाम शब्द-कोष, शकुनावली रामायण, नाम-रामायण, पैसा प्रताप-पचासा।



भगवानपुर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी भ्रातृद्वय
श्री रामधारी प्रसादजी और
श्री श्यामधारी प्रसादजी



मुजफ्फरपुर-निवासी
श्री ललितकुमार सिंह 'नटवर'



शाहाबाद जिला-निवासी
पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ



मुंगेर-निवासी पं० श्रीकृष्ण मिश्र
बी० ए०, बी० एल०



दरभंगा-जिला-निवासी
रायसाहब पं० सिद्धिनाथ मिश्र



प्रोफेसर जगन्नाथराय शर्मा, एम ए
(पटना कालेज)



'बीसवीं सदी' के सयुक्त सम्पादक
भागलपुर-निवासी श्री तारकेश्वर प्रसाद



प्रोफेसर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम ए.
(पटना कालेज)



'बीसवीं सदी' के सयुक्त सम्पादक
भागलपुर-निवासी श्री सत्येन्द्रनारायण



प्रोफेसर नवलकिशोर गौड़, एम. ए.
(बी एन्० कालेज)



शिवहर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी
श्री परमेश्वर सिंह

रायसाहब लक्ष्मीनारायणलाल। औरंगाबाद-निवासी वकील और रईस। लक्ष्मी प्रेस (गया) के संस्थापक। 'लक्ष्मी' और 'गृहस्थ' के संचालक तथा सम्पादक। इनकी जीवनी (द्वारकाप्रसाद गुप्त-लिखित) लक्ष्मी प्रेस से प्रकाशित है। इनके सुपुत्र श्रीरामानुग्रहनारायणलाल भी 'लक्ष्मी' के सम्पादक हुए थे। (देखिये पृष्ठ ५८५)

ब्रह्मदेवनारायण, जन्म १६३६, बेलवा-निवासी। रच०—कलिचरित्र, कृपण-चरित्र, कलियुगचरित्र।

जानकीशरण वर्मा, बी. ए., बी एल., गया-निवासी। प्रयाग-सेवा-समिति की मुखपत्रिका 'सेवा' के सम्पादक और प्रसिद्ध बालचरनायक। 'जीवनसखा' (प्रयाग) के भूतपूर्व सम्पादक। बालचर्य्य के विशेषज्ञ। स्काउटिङ्ग और जन-सेवा के सम्बन्ध में अनेक अनुभवपूर्ण लेख।

पन्नालाल भैया गयावाल 'छैल'; रच०—कजली-विनोद, बसंतबहार, काली घटा, कुंडलिया-कुंडल, उर्वशी, मोहनकुमारी, भर्तृहरिभूषण, मेघमंजरी, जमालमाला (कविवर 'जमाल' के १०८ अनूठे दोहों पर रोला-छन्द-मिश्रित कुंडलियाँ)।

रामचीज पांडेय, अरवल-निवासी। ग्रंथ—बिहारी वीर, मित्रवेश में शत्रु, जेबी हिन्दी-कोष। हिन्दी-अध्यापक।

बजरंगदत्त शर्मा, गया-निवासी, स्फुट रचनाएँ, बिहार-प्रान्तीय हिन्दूसभा के पूर्व मंत्री, ओजस्वी वक्ता, सार्वजनिक सेवा-परायण।

सूर्यप्रसाद महाजन, सुप्रसिद्ध मन्नूलाल-पुस्तकालय (गया) के संस्थापक, हिन्दीप्रेमी, रईस।

गोवर्द्धनलाल गुप्त, एम० ए०, बी० एल०। विद्वान्, निबंध-रचयिता। रच०—नीतिविज्ञान (हिन्दीग्रंथरत्नाकर, बम्बई से प्रकाशित)। बि० प्रा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रस्तावित अठारहवें अधिवेशन (गया) के मनोनीत स्वागताध्यक्ष।

अनुग्रहनारायणसिंह, बिहार की कांग्रेसी सरकार के भूतपूर्व अर्थमंत्री। हिन्दी में आत्मकथा लिखी है।

बाबूलाल गुप्त, लक्ष्मी प्रेस के प्रबंधक, स्फुट लेख।

द्वारकाप्रसाद गुप्त, उक्त बाबूलालजी के सुपुत्र, गया जिले के हिन्दी-साहित्य-सेवियों का परिचय लिखा है। 'गृहस्थ' के सम्पादन में सहयोग दिया है।

पार्वतीप्रसाद, एम० एस-सी०, विज्ञानाचार्य। साइंस-कालेज (पटना) के सीनियर प्रोफेसर। बिहारप्रादेशिक हिन्दी-विज्ञान-सम्मेलन के अध्यक्ष।

गंगाधर मिश्र, काव्यतीर्थ, सुप्रसिद्ध वैद्य। स्फुट लेख। प्रसिद्ध कहानी-लेखक आचार्य राधारमण शास्त्री इन्हीं के सुपुत्र हैं।

पंडित अयोध्याप्रसादजी, अमावाँ-निवासी। जन्म १६४५, मृत्यु १६६१। आर्यसमाज के भारत-प्रसिद्ध विद्वान् व्याख्याता। अनेक भाषाओं के पंडित। आर्य-समाज-सम्बन्धी कई ग्रंथ लिखे। (देखिये 'बालक', वर्ष ६, अक ६, पृष्ठ ५१२, सितम्बर १६३५)।

अवधकिशोर सहाय वर्मा 'वाण', एम० ए०। जन्म १८५७, कंचनपुर-निवासी। रच०—चित्तौरोद्धार, दार्शनिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी स्फुट लेख। अब स्वर्गीय। प्रसिद्ध लेखक थे।

गोविन्दलाल झंगर, जन्म १६५८, रच०—सलिला।

रामचन्द्र शर्मा 'साहित्यरत्न'। स्फुट लेख। जिलाबोर्ड के चेयरमैन।

चन्द्रदेव शर्मा शांडिल्य, जहानाबाद-निवासी, 'गुरुचेला'-सम्पादक।

मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', ऊपरडीह, गया शहर। जन्म १६५६। आधुनिक शैली के सुप्रसिद्ध सुकवि। प्रतिभाशाली कहानी-लेखक। हृदयग्राही सस्मरण-लेखक। सहृदय मिष्टभाषी। रच०—निर्माल्य, एकतारा, रेखा, आरती के दीप, कल्पना, विचारधारा आदि। गद्य और कविता लिखने तथा व्यंग्यचित्र बनाने मे सिद्धहस्त। (देखिये पृष्ठ ५६४)।

श्रीनारायण जिजल, एम० ए०, बी० एल०। स्फुट लेख। अब स्वर्गीय।

श्याम बरथवार। 'चिनगारी'-सम्पादक।

राधारमण शास्त्री, साहित्याचार्य। गया-निवासी। प्रसिद्ध कहानी-लेखक। उत्साही साहित्यसेवी। स्फुट लेख, कविता आदि। (दे पृ ५५३–५४)।

जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य। मैगरा-निवासी। सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक, सुकवि, समालोचक। सस्कृत-साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान्। रच०—काकली (संस्कृत-कविता-सग्रह), रूप और अरूप (हिन्दी-कविता-संग्रह), कानन (कहानी-सग्रह), अपर्णा (कहानी-सग्रह), साहित्यदर्शन (आलोचनात्मक साहित्यिक निबन्ध-सग्रह)। इनके विषय मे हिन्दी के स्वनामधन्य युगान्तरकारी कवि श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी ने लिखा है—"श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी-लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता, लेखनकौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक वार मुझपर अपनी गहरी छाप डाली है। हिन्दी के साहित्यिक उत्थान मे विहार की आधुनिक प्रतिभा

को मानना पड़ता है। जानकीवल्लभ वहाँ के और समस्त हिन्दीभाषी प्रान्तों के प्रतिभाशालियों में एक हैं। उनके संस्कृत और हिन्दी के भावपूर्ण ध्वन्यात्मक कलामय पद्य और आलोचनाएँ मैं पहले देख चुका था, इधर 'कानन' में उनकी कहानियाँ देखीं। कहानियों की भाषा मँजी हुई; वाक्यन्यास संगीतमय; बातचीत, स्थल और घटनाओं का वर्णन—उठान, पूर्ति और परिसमाप्ति की कलात्मिकता लिये हुए—ध्वनि और अलंकारों से सज्जित हैं। आनन्द लेने और सीखने की उसमें बहुत-सी सामग्री है।" (देखिये पृष्ठ ५७१)

रामगोपालसिंह 'रुद्र'। भावपूर्ण एवं सरस स्फुट कविताएँ। सुयोग्य अध्यापक।

'गुलाब'—होनहार प्रतिभावान् नवयुवक कवि। स्फुट कविताएँ।

अवधकिशोर सहाय 'कुश्ता'। उर्दू के भी कवि हैं।

जागेश्वरप्रसाद 'खलिश'। 'नवीन भारत'-सम्पादक।

बदरीनाथ शर्मा 'मधुकर'। केतकी-निवासी। जन्म १९८५। कवि और लेखक।

पन्नालाल महतो। स्फुट कविताएँ।

शाहाबाद

साधुशरणप्रसाद, भदवर-निवासी, जन्म १९०८, मृत्यु १९६९। व्यापार-सम्बन्ध से 'बलिया'-प्रवासी थे। रच०—भारतभ्रमण (५ भाग) अत्यंत महत्त्वपूर्ण और विशाल ग्रंथ है; धर्मशास्त्रसंग्रह। (शास्त्रों और स्मृतियों के सिद्धान्तप्रमाण-वाक्यों का संकलन करके इन्होंने जो शास्त्रीय व्यवस्थासंग्रह तैयार किया था वह बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से १०) में प्राप्य है और इसी में इन्होंने अपनी जीवनी भी लिखी है।)

महाराजकुमार हरिहरप्रसादसिंह, दिलीपपुर-निवासी। जन्म १९११, मृत्यु १९४६। रच०—हरिहरशतक, षटपदावली, नखशिखवर्णन, स्मरणी।

महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी, दिलीपपुर-निवासी। जन्म १९१२, मृत्यु १९८४। इनकी सचित्र जीवनी ('बिहार के विद्यासागर') 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित हुई है। स्फुट लेख और भाषण। इनके सुपुत्र देवदत्त त्रिपाठी अच्छे लेखक हैं।

विजयानन्द त्रिपाठी, 'श्रीकवि', 'विद्यारत्न', बेलौंटी-निवासी। जन्म १९१३, मृत्यु १९८२। रच०—महामोहविद्रावण, सच्चा सपना, महाअंधेरनगरी, प्रेमसाम्राज्यादर्श, भारतीय इतिहासपंजिका, नीतिमुक्तावली, अन्योक्तिमुक्तावली, रत्नावली नाटिका; उच्चकोटि की स्फुट कविताएँ (संस्कृत और हिन्दी में)। 'उद्योग'-सम्पादक।

बी० एन०-कालेजिएट मे संस्कृत-हिन्दी-अध्यापक। अखिलभारतीय हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन के दशम अधिवेशन (पटना) के स्वागताध्यक्ष। अनेक भारतीय भाषाओ के मर्मज्ञ विद्वान्। बिहार के पुराने कवियों में केवल इन्ही की जीवनी 'कविता-कौमुदी' (भाग २) मे छपी है। 'सरस्वती' (सितम्बर १९१७ ई०, भाद्रपद सवत् १९७४) मे भी प्रथम पृष्ठ पर प० रामदहिन मिश्र की लिखी हुई इनकी सचित्र जीवनी छपी है। इनके छोटे भाई शिवनन्दन त्रिपाठी भी अच्छे लेखक थे, उन्होंने 'बिहारबंधु' को पुन जीवित करके उसका सम्पादन भी किया था। (देखिये पृष्ठ ५३८)

शिवनन्दनसहाय, अख्तियारपुर-आरा-निवासी। जन्म १९१७, मृत्यु १९८९। बिहारप्रादेशिक हिन्दीसाहित्यसम्मेलन के तीसरे अधिवेशन (सीतामढी) के सभापति। बिहार के प्राचीन हिन्दीसाहित्यसेवियो के जीवनचरित और ग्रंथों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करानेवाले जगम विश्वकोष थे। रच०—गोस्वामी तुलसीदास की बृहत् जीवनी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी, बाबू साहबप्रसादसिह की जीवनी, श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद की जीवनी, बाबा सुमेरसिह साहबजादे की जीवनी, सिक्खगुरुओ की जीवनी, गत ५० वर्षों में बिहार में हिन्दी की अवस्था, कृष्णसुदामा, सुदामा नाटक, कविताकुसुम, विचित्र संग्रह, बंगाल का इतिहास आदि। (देखिये पृष्ठ—५३९), इन्हीं के सुपुत्र बाबू ब्रजनन्दनसहाय प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हैं।

राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह 'प्यारे' कवि, सूर्यपुराधीश, जन्म १९२२, मृत्यु १९९०, इनकी ललित कविताओं का बडा ही अनूठा संग्रह इनकी सचित्र ग्रंथावली मे प्रकाशित है। (देखिये पृष्ठ १२५, ३०३, ५४०, ६३०)। इनके सुपुत्र राजा राधिकारमणप्रसादसिंह एम० ए० प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार हैं।

गणपति मिश्र, आरा-निवासी, जन्म १९२६, अब स्वर्गीय। रच०—मुक्तिमार्ग-प्रकाश, सुतानन्दप्रकाश, ऋतुवर्णन, सिद्धेश्वरी-स्तोत्र-अभिषेक। कवि थे।

यशोदानन्दन अखौरी, जन्म १९२८, मृत्यु १९९५, नवादा-निवासी। रच०—जोजेफ विलमट का अनुवाद पॉच भागों मे, भगवान रामकृष्णदेव के उपदेश-शतक, विवेक-वचनावली, शिक्षाविज्ञान की भूमिका, होली की भेट (पद्य)। देवनागर, प्रभाकर, भारतमित्र, देशसेवक के सम्पादक और प्रबन्धक। (दे० पृ० ५३९)—('बालक', वर्ष ९, अंक ११, पृष्ठ ६२९, नवम्बर १९३५ ई० मे विस्तृत-जीवनी)

पाडेय सकलनारायण शर्मा, महामहोपाध्याय, कलकत्ता-सस्कृत-कालेज के



डुमराँव-(शाहाबाद)-निवासी
प्रिन्सिपल मनोरंजनप्रसादसिंह, एम० ए०
(राजेन्द्र कालेज, छपरा)



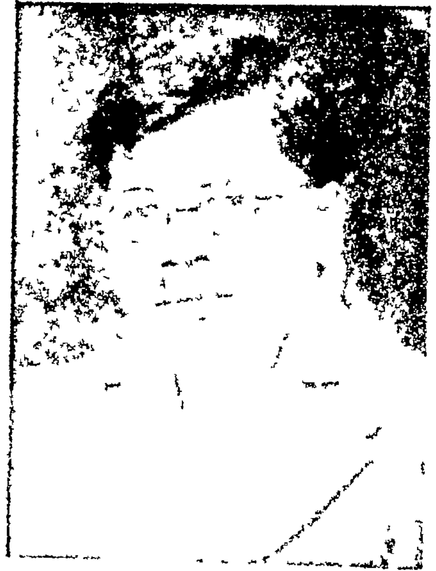
छपरा निवासी
श्रीकार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय



छपरा-निवासी
प्रिंसिपल विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०,
ए० १ साहित्याचार्य, साहित्यरत्न,
पटना-कालेज



श्रीशीतलियाबिहारीलाल वर्मा, एम० ए०,
बी० एल० (छपरा-निवासी)
एडवोकेट, सीतामढ़ी



जबलपुर-(मध्यप्रदेश)-निवासी
प्रोफेसर वेणीमाधव अग्रवाल, एम० ए०
(राजेन्द्र कालेज, छपरा)



श्रीगोपालराम गहमरी
(गाजीपुर)

प्रो० नलिनीमोहन
सन्याल एम्० ए०
(बंगाल)





श्रीसूर्यनारायण व्यास, उज्जैन (मालवा)



श्रीधर्मदेव शास्त्री,
(देहरादून)



श्रीपरमानन्ददत्त (भागलपुर)

व्याख्याता, जन्म १९२८, आरा-निवासी। नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के प्रधान संस्थापक। लगभग २०-२५ वर्ष 'शिक्षा' के सम्पादक। बि० प्रा० हिन्दी-सा० सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (छपरा) के सभापति। रच०— हिन्दीसिद्धान्तप्रकाश, सृष्टितत्त्व, प्रेमतत्त्व, आरा-पुरातत्त्व, व्याकरण-तत्त्व, वीर-बाला-निबन्ध-माला, राजरानी (उपन्यास), अपराजिता (उपन्यास), जैनेन्द्रकिशोर (जीवनी)। ओजस्वी विद्वान् वक्ता। परम शिवभक्त। (पृष्ठ ५४३ देखिये)

जैनेन्द्रकिशोर जैन, आरा-निवासी प्रतिष्ठित रईस। स्वर्गीय। रच०— कमलिनी, मनोरमा, प्रमिला, सुलोचना, सोमा सती, चुड़ैल, परख, खगोल-विज्ञान, सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक। (दे० पृ० ५४१, ५५६)। इन्हीं के सुपुत्र श्रीदेवेन्द्रकिशोर जैन अपने सरस्वती प्रेस से सचित्र मासिक 'बालकेसरी' निकाल रहे हैं। ये नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के संस्थापकों में थे।

व्रजनन्दनसहाय 'व्रजवल्लभ', आरा-निवासी वकील, जन्म १९३१। नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के भूतपूर्व मंत्री। बि० प्रा० हिन्दी-सा० सम्मे० (बेगूसराय, मुंगेर) के सभापति। सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक। 'शिक्षा', 'समस्यापूर्त्ति' और 'साहित्यपत्रिका' के सम्पादक। रच०—राजेन्द्रमालती, व्रजविनोद, हनुमान-लहरी, सप्तम प्रतिमा, बूढ़ा वर, कमलाकान्त का इजहार, रजनी, अद्भुत प्रायश्चित्त, चन्द्रशेखर, लालचीन, विस्मृत सम्राट्, राधाकान्त, सौन्दर्योपासक, विश्वदर्शन, अरण्यबाला, उषाङ्गिनी, उद्धव, सत्यभामा-मंगल, निर्जन द्वीपवासी का विलाप, अर्थ-शास्त्र, बलदेवप्रसाद मिश्र, राधाकृष्णदास, बंकिमचन्द्र, मैथिल कोकिल विद्यापति। इनके विख्यात उपन्यास 'सौन्दर्योपासक' का मराठी और गुजराती में तथा 'लालचीन' का अँगरेजी में अनुवाद हुआ है। इनके ज्येष्ठ सुपुत्र रमेशनन्दन सहाय, एम० ए०, बी० एल० भी 'माधुरी' आदि पत्रिकाओ में प्रायः लिखा करते हैं। (पृ० ५४५, ५५६ देखिये)

श्यामजी शर्मा, भदवर-निवासी। जन्म १९३१। ग्रंथ—श्यामविनोद रामायण (१९०० ई०), श्यामविनोद दोहावली (५०० दोहे, १९०१ ई०), रामचरितामृत महाकाव्य (सन् १९०३ ई०), रामचरितामृत महाकाव्य (१९०३ ई०), वृन्दविलास (वृन्दसतसई के दोहों पर कुंडलियाँ), अबलारक्षक, खड़ीबोली-पद्यादर्श, भाग्य-परिवर्त्तन, प्रेममोहिनी, प्रियावल्लभ, श्यामहर्षवर्द्धन, सत्वामृतकाव्य, बालविधवा-गुहार, स्वाधीन विचार, विधवा विवाह, पंडित-मानी-मति-चपेटिका, स्फुट कविताएँ, समस्यापूर्त्तियाँ।

अक्षयवट मिश्र, 'विप्रचन्द्र' कवि, डुमरॉव-निवासी, जन्म १६३१, मृत्यु १६६६, पटना-कालेज में हिन्दी-अध्यापक थे। रच०—दुर्गादत्त परमहंस (जीवनी), लेखमणिमाला (निबंधसंग्रह), आत्मचरितचम्पू (आत्मकथा) प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे अनेक ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनकी लिखी, अनुवादित और सटीक पुस्तकों के नाम ये हैं—राधामाधव-विलास, स्तोत्रकुसुमाञ्जलि, पद्यपुष्पोपहार, कृष्णकीर्त्तन, विनयमालिका, शोकसूक्ति, उपदेशरामायण, दशावतार-कथा, आनन्दकुसुमोद्यान, सदाबहार, मार्कण्डेयपुराण, दशकुमारचरितसार, देवी चौधुरानी, मृणालिनी, रजनी, (उपन्यास), शिवमहिम्नस्तोत्र, शिवतांडवस्तोत्र, गंगालहरी, गंगाष्टक, भामिनी-विलास, महाराणा प्रतापसिंह, अजान कवि, बच्चू मल्लिक, कवि गोविन्द गिल्लाभाई, बालराम स्वामी, अयोध्यानरेश, पंडित राधावल्लभ जोशी, पंडित उमापतिदत्त शर्मा इत्यादि। पूर्वोक्त तीनों ग्रंथ 'पुस्तकभंडार' से निकले हैं। (देखिये पृष्ठ ५४३, ६१५)

उमापतिदत्त शर्मा, चिलहरी-निवासी। विशुद्धानन्द-विद्यालय (कलकत्ता) और मेरठ के कालेज में संस्कृत-हिन्दी-अध्यापक थे। हिन्दी-संसार में सबसे पहले इन्होंने ही यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिन्दी के साहित्यसेवियों का एक अखिलभारतीय सम्मेलन होना चाहिये। साल-भर आन्दोलन करने के बाद इनका देहान्त हो गया। 'भारतमित्र' और 'उचितवक्ता' तथा 'हिन्दीबंगवासी' (कलकत्ता) में इनके अनेक लेख छपे हैं।

परमेश्वरदयाल 'रसिक', जन्म १९३२, स्वर्गीय, डुमरॉव-निवासी, रच०—भक्तिलता, गाने की चीजें।

अमीराय, जन्म १६३७, स्वर्गीय, भभुआ-निवासी, रच०—बालकांड (छप्पयों मे), गुलिस्ताँ का आठवाँ बाब (कवित्तों में)।

मुन्शी हरिहरप्रसाद, जगदीशपुर-निवासी। रच०—दिल्लीदरबार-चरितावली (दो भाग)।

जयनारायणलाल, शाहपुरपट्टी-निवासी। रच०—कृष्णप्रति रुक्मिणीपत्र, चन्द्रमा की आत्मकहानी, भारत-मिस्र का प्राचीन सम्बन्ध, कवितादेवी।

चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य, निमेज-निवासी, जन्म १६४०। स्वर्गीय। महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा के सहपाठी। संस्कृतमासिक पत्रिका 'शारदा' के सम्पादक। प्रयाग से 'समाज' मासिक निकाला था। 'शिक्षा' (पटना) का भी सम्पादन किया। वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद्भागवत और महाभारत का हिन्दी-अनुवाद करके हिन्दी-पाठकों का महत् उपकार किया। अन्य ग्रंथ—दरिद्रकथा,

विधवा के पत्र, समाज का कोढ़, भारत की सती नारियाँ। साहित्यिक तपस्वी थे। त्याग-विराग-मय आदर्श जीवन था। स्वावलम्बी, स्वाभिमानी और स्वाधीनचेता सात्विक पुरुष थे। इन्हीं के सुपुत्र हैं 'आरती'-सम्पादक 'मुक्तजी'। (पृष्ठ ५४६)— (दे० 'बालक', वर्ष ८, पृ० ४५७)

ईश्वरीप्रसाद शर्मा, मिश्रटोला-आरा-निवासी। जन्म १८४९, मृत्यु १९८४। मनोरंजन, पाटलिपुत्र, लक्ष्मी, श्रीविद्या, शिक्षा, धर्माभ्युदय, हिन्दूपंच आदि के सम्पादक। सिद्धहस्त अनुवादक। अनेक प्रमुख भारतीय भाषाओं के पंडित। कुशल अभिनेता। अद्भुत प्रत्युत्पन्नमति। नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) के मंत्री। हास्य-विनोद-प्रिय। रच०—श्रीरामचरित्र, सीता, सिपाही-विद्रोह, बँगला-हिन्दी-कोष, सूर्योदय (नाटक), रँगीली दुनिया (नाटक), मानमर्दन (नाटक), पंचशर (गद्यकाव्य), मागधी कुसुम (उपन्यास); उद्भ्रान्त प्रेम, अन्नपूर्णा का मन्दिर, किन्नरी, इन्दुमती, प्रेमगंगा, प्रेमिका, जलचिकित्सा, चनाचबेना (पद्यसंग्रह), सौरभ, सुशीलशिक्षा, चन्द्रकुमार-मनोरमा, हिरण्मयी, गल्पमाला, सच्ची मैत्री, बालगल्पमाला, मानमोचन आदि सब मिलाकर इनकी लिखी और अनुवादित लगभग एक सौ पुस्तकें हैं। मराठी, गुजराती, बँगला, अँगरेजी से तो हिन्दी-अनुवाद किया ही; हिन्दी से बँगला में पंजाब-हत्याकांड का अनुवाद किया। और, अभी इनकी कई रचनाएँ अधूरी एवं अप्रकाशित हैं। इन्हीं के साहित्यिक शिष्य हैं शिवपूजनसहाय। (दे० पृ०, ५४६, ५६०, ५८३, ६१४)। इनके बड़े चचेरे भाई पं० गुरुदेवप्रसाद शर्मा, बी. ए., एल. टी., रिटायर्ड हेडमास्टर भी हिन्दी के विद्वान् लेखक हैं। 'लक्ष्मी' और 'मनोरंजन' में उनके कई विद्वत्तापूर्ण लेख छपे हैं।

शिवनन्दन त्रिपाठी, बेलौटी-निवासी, प० विजयानन्दजी के भाई, 'बिहार-बंधु' के सम्पादक। कलकत्ता में हिन्दी के अध्यापक भी थे।

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, बहुआरा-निवासी, दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी। जन्म १९४१। बि० प्रा० हि० सा० सम्मे० (देवघर) के सभापति। ग्रंथ—दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, ट्रान्सवाल के भारतवासी, कारावास की कहानी, नेटाली हिन्दू, शिक्षित और किसान, वैदिक धर्म और आर्यसभ्यता, महात्मा गांधी, भजनप्रकाश, प्रवासी की कहानी, वैदिक प्रार्थना, वर्णव्यवस्था या मरणावस्था। दक्षिण अफ्रिका में, 'हिन्दी' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकालते थे, जिसके अनेक विशेषांक अत्यन्त सुन्दर निकले थे। प्रवासी भारतवासियों के प्रसिद्ध नेता। सुवक्ता। राजनीति-कुशल आन्दोलक। अब अजमेर (राजपुताना) के आदर्श आर्यनगर

मे 'प्रवासी-भवन' बनवाकर वहीं से प्रवासी भारतीय साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं। इनके सुपुत्र ब्रह्मदत्त भवानीदयाल भी हिन्दी के प्रतिभाशाली कहानी-लेखक और उपन्यासकार हैं, जिनका 'प्रवासीप्रपच' पुस्तक भडार से निकला है। स्वामीजी ने प्रवासी भारतवासियो मे हिन्दी का खूब प्रचार किया है।

धर्मराज ओझा, एम ए , देकुली-निवासी। पटना-कालेज में हिन्दी-संस्कृत के अध्यापक और धर्मसमाज-संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) के प्रिंसिपल थे। 'शिक्षा' मे स्फुट लेख।

चन्द्रहास द्विवेदी, काव्यतीर्थ, देकुली-निवासी, हाइस्कूल (दानापुर) के हिन्दी-अध्यापक , रच०— हिन्दीबोध।

देवदत्त त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, दिलीपपुर-निवासी, जन्म १६३६। म० म० रघुनन्दन त्रिपाठी के सुपुत्र। पटना-कालेज के भूतपूर्व संस्कृत-हिन्दी-अध्यापक। 'शिक्षा' मे स्फुट गद्य-लेख। ग्रं०—तुलसी-साहित्य। दे०-'बालक', वर्ष ६, पृ० २४६)

रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ, थार-निवासी। बालशिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय तथा हिन्दुस्तानी प्रेस (पटना) के संस्थापक और संचालक। बाल-शिक्षा-ग्रंथमाला (मासिक) तथा 'किशोर' के जन्मदाता और सम्पादक। ग्रंथ—साहित्य-मीमासा, साहित्यपरिचय, साहित्यालंकार, मेघदूत-विमर्श, हिन्दी के मुहावरे, रचना-विचार साहित्यमंजूषा, महाभारतीय सुनीति-कथा आदि। अन्य अनेक बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकों के लेखक, सम्पादक और प्रकाशक। शाहाबाद-जिला-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम सभापति।

चन्दाबाई जैन, आरा-निवासिनी, विदुषी महिला। जैनबाला-विश्राम (कन्या-विद्यालय) की प्रधानाध्यक्षा। रच०—उपदेशरत्नमाला, सौभाग्यरत्नमाला, महिलाओं का चक्रवर्त्तित्व आदि।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम ए , सूर्यपुराधीश, जन्म १६४८; बि० प्रा० हि० सा सम्मे० के द्वितीय अधिवेशन (बेतिया, चम्पारन) के सभापति और उसीके पन्द्रहवें अधिवेशन (आरा) के स्वागताध्यक्ष। नागरीप्रचारिणी सभा (आरा) के वर्त्तमान सभापति। ग्रंथ—गल्पकुसुमावली, नवजीवन-प्रेमलहरी, तरङ्ग, राम-रहीम, गांधी टोपी, सावनी समा पुरुष और नारी, टूटा तारा। (देखिये पृष्ठ ४५१, ५६१, ६०६)। अपनी राजधानी मे राजराजेश्वरी-साहित्य मदिर स्थापित कर अपनी रचनाओं का सुन्दर प्रकाशन करा रहे हैं। आपके विषय मे समालोचक-शिरोमणि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दीसाहित्य का इतिहास' मे लिखा

है—"सूर्यपुरा के राजा राधिकारमणप्रसादसिंहजी हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्भुत अधिकार रखनेवाले पुराने लेखक हैं। उनकी एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण कहानी 'कानों में कँगना' संवत् १९७० (सन् १९१३ ई०) में 'इन्दु' (काशी) में निकली थी। उसके पीछे आपने 'बिजली' आदि कुछ और सुन्दर कहानियाँ भी लिखीं। उनका 'रामरहीम' भिन्न-भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता के व्यापक सम्बन्ध पर जोर देनेवाला (उपन्यास) है।"

अवधविहारीशरण, एम. ए., बी एल. ; आरा निवासी। स्वाध्याय-निरत गम्भीर विद्वान् लेखक। शिक्षा, साहित्यपत्रिका आदि में सुन्दर निबन्ध। रच०—मेगास्थनीज का भारतविवरण।

रघुनाथप्रसाद, मुख्तार, डुमराँव-निवासी ; शिक्षा और साहित्य-पत्रिका तथा मनोरंजन में अनेक लेख। बँगला से अनुवादित कई उपन्यास। कई मौलिक रचनाएँ।

श्रीकृष्णजी सहाय। मुहम्मदपुर। शिक्षा और साहित्यपत्रिका में गद्यपद्यरचनाएँ।

पारसनाथ त्रिपाठी, काव्यतीर्थ, शाहपुरपट्टी-निवासी। अब स्वर्गीय। पाटलिपुत्र, देश, शिक्षा, बालक, लोकमान्य के सम्पादक और सहकारी। आरा से 'पाटलिपुत्र' पुनः निकाला था। पुस्तकें—जालिया क्लाइव, सीतावनवास, शकुन्तला आदि। अनेक पुस्तकों के अनुवादक।

हरिनारायणसिंह, बी० ए०, शाहपुरपट्टी। डुमराँव-राज्य के असिस्टैंट मैनेजर थे। प्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस। सार्वजनिक सेवा के अनुरागी। 'शिक्षा' में स्फुट लेख। रच०—एक शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक 'सुधांशु' (पाँच किरणें)।

शिवपूजन सहाय, उनवाँस-निवासी, जन्म १९५० । द्विवेदी-अभिनन्दन ग्रंथ के प्रस्तावक और सम्पादक। बिहारप्रादेशिक हिन्दीसाहित्यसम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन (पटना) के सभापति। मारवाड़ीसुधार, आदर्श, उपन्यासतरंग, बालक, गंगा, जागरण (पाक्षिक) के सम्पादक। मतवाला, माधुरी, समन्वय, गोलमाल, मौजी के सम्पादकीय विभाग में काम किया। रचनाएँ—विभूति (महिलामहत्त्व), देहाती दुनिया, बिहार का विहार, भीष्म, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, हिन्दी-ट्रान्सलेशन। संकलित और सम्पादित पुस्तकें—प्रेमकली, प्रेमपुष्पांजलि, सेवाधर्म, त्रिवेणी, संसार के पहलवान। अनेकानेक पुस्तकों के सम्पादक। वर्त्तमान प्रोफेसर (हिन्दी-विभाग)—राजेन्द्रकालेज, छपरा।

रमेशप्रसाद, बी० एस्-सी० ; जन्म १९५० ; मुरार-निवासी। रमेश प्रिंटिङ्ग वर्क्स (मीठापुर , पटना) के संस्थापक और संचालक। विज्ञान-सम्बन्धी अनेक

महत्त्वपूर्ण मनोरजक लेख। माधुरी, गगा, बालक आदि पत्रपत्रिकाओ के नियमित लेखक।

रजनीकान्त शास्त्री, काव्यतीर्थ, बी० ए०, एल एल० बी०, डुमरी—बक्सर-निवासी। हाइस्कूल (बक्सर) के सुयोग्य अध्यापक। 'चॉद' के नियमित लेखक। गम्भीर विद्वान् सुलेखक। स्फुट रचनाएँ।

सुपार्श्वदास गुप्त, एम ए०, बी० एल०। प्रतिभा-सम्पन्न स्वाध्यायी विद्वान्। आरा-निवासी जैन रईस। डिपुटीकलक्टर थे। रच०—पार्लियामेंट। 'सरस्वती' आदि प्रसिद्ध पत्रिकाओं में लेख।

अखौरी वासुदेवनारायणसिह। धमार-निवासी। बिहार-सरकार के हिन्दी ट्रान्सलेटर। दैनिक बिहारी के संयुक्त सम्पादक। अँगरेजी के विद्वान् लेखक। 'माडर्न बिहार' (पटना) के सम्पादक और 'लीडर' (इलाहाबाद) के प्रधान सहकारी सम्पादक रह चुके है। उपनिषदो का अँगरेजी मे अनुवाद किया है। हिन्दी की रच —श्रीरूपकलाजी की एक झॉकी, रूपवती (उपन्यास)।

शुकदेवसिह हिन्दी-स्कूल के प्रधानाध्यापक, नागरी-प्रचारिणी सभा (आरा) के पुस्तकालयाध्यक्ष। शिक्षा, साहित्यपत्रिका, मनोरंजन, देश, हिन्दी-चित्रमयजगत् (पूना) मे अनेक विचारात्मक निबंध। सार्वजनिक कार्यों में विशेष दिलचस्पी।

रामविलाससिह, जन्म १९५४, ग्रं०—कमला, उषा, भगवद्गीता पद्यानुवाद, सेनापति कर्ण, दमयन्ती नाटक, अनाथ महिलाओ की पुकार, प्रणयिनी-विछोह।

गोपीनाथ वर्मा, नॉद-निवासी, जन्म १९११। माधुरी आदि सामयिक पत्रिकाओ मे अनेक रोचक लेख। रच०—सयोगिता।

मधुसूदन ओझा 'स्वतत्र', जन्म १९५६, महिला-निवासी। रच०—कंसवध, धर्मवीर, मोरध्वज, समाजदर्पण।

नन्दकिशोर तिवारी, बी० ए, तिवारीपुर-निवासी, जन्म १९५७। रच०—स्मृतिकुञ्ज गद्यकाव्य)। चॉद, महारथी, सुधा, कर्मयोगी, भविष्य, मतवाला आदि के भूतपूव सम्पादक। यशस्वी पत्रकार। उद्भट व्युत्पन्न सुलेखक। बिहार-सरकार के हिन्दीपब्लिसिटी अफसर थे। विलक्षण प्रतिभाशक्ति। दे० पृ० ५९१, ५९३)

मनोरजनप्रसादसिह, एम० ए०, डुमरॉव-निवासी, जन्म १९५७, हिन्दू-विश्वविद्यालय (काशी) मे अँगरेजी-साहित्य के प्रोफेसर थे, अब राजेन्द्र कालेज (छपरा) के प्रिन्सिपल है। प्रसिद्ध कवि और गद्यकार। रच०—राष्ट्रीय मुरली, उत्तराखड के पथ पर (यात्रा), गुनगुन (कविता-सग्रह), सगिनी (कविता-पुस्तक)।

श्रीमती राजदेवी कुँअरि 'विशारदा'; रूपसपुर-(भभुआ) निवासिनी प्रसिद्ध कवयित्री। इन्हीं के सुपुत्र हैं सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीवीरेश्वरसिंह, एम ए. एल-एल. बी., जो मुजफ्फरनगर में वकालत करते हैं। (देखिये पृष्ठ ५६८)

ठाकुर राजकिशोरसिंह। ऐमन-डिहरी-निवासी। साप्ताहिक 'अग्रसर' (कलकत्ता) के सम्पादक और दैनिक 'भारतमित्र' के संयुक्त सम्पादक। रच०—हंगरी में अहिंसात्मक असहयोग, हिन्दूसंगठन, बृटिश राजरहस्य, एशिया का जागरण, ईची-रहस्य (अँगरेजी के प्रसिद्ध जापानी उपन्यास का अनुवाद, दो भाग)। 'स्वार्थ' (काशी) में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण लेख। आरा के नामी वकील।

चन्द्रनारायण शर्मा बड़ोरनपुर-निवासी; जन्म १९५५; भूतपूर्व 'धर्मवीर'-सम्पादक। रच०—धारा प्रकाशिका, नलोदय, आरत भारत, त्रिपथगा, गद्यगमक, पचगव्य, पिङ्गलप्रबोध, विवेकबोध, तलवार की धार पर। अब हिन्दी-शिक्षक।

हरद्वारप्रसाद जालान आरा-निवासी, जन्म १९६१, मृत्यु १९९७। 'मारवाड़ी-सुधार' के संस्थापक और संचालक। हास्यरस के नाटक अच्छे लिखे। रच०—धरकट सूम, क्रूर वेण, पृथ्वी पर स्वर्ग, राज्यचक्र, भगवान कृष्णचन्द्र आदि नाटक और दिल्ली-एक्सप्रेस आदि कहानी-संग्रह। कई अप्रकाशित उपन्यास-कहानियाँ।

रामचन्द्रशर्मा, 'काव्यकंठ', आरा निवासी; १९५८; स्फुट पद्यरचनाएँ।

रामवचन द्विवेदी 'अरविन्द', दुबौली-निवासी, १९६२; प्रसिद्ध कवि। रच०-वर्णदशा, हिन्दीसन्देश, विनय, वीरों की वाणी, श्रीकृष्णसंदेश आदि।

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम० ए०; मिश्रौली-निवासी; १९६२, साप्ताहिक 'सनातनधर्म' (हिन्दूविश्वविद्यालय) के भूतपूर्व सम्पादक। 'कल्याण' (गीता प्रेस, गोरखपुर) के वर्त्तमान सहकारी सम्पादक। भक्ति-साहित्य और सन्त-साहित्य के मार्मिक अनुभवी विद्वान्। परम भागवत। रच०—मीरा की प्रेम-साधना, सन्त-साहित्य। अत्यंत भावुक लेखक और भक्त कवि। (दे० पृ० ५५२)

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह 'किशोर'। ऐमन-डिहरी। 'किसान-समाचार' (मुजफ्फरपुर) के सम्पादक। दैनिक 'भारतमित्र', श्रीकृष्णसन्देश, हिन्दूपंच, दैनिक 'स्वाधीन भारत' आदि कलकतिया पत्रों के सम्पादकीय विभाग में थे। रच०—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, नारी-हृदय (कहानी-संग्रह), सतीत्व-प्रभा या सती विपुला, मेवे की झोली, बालरणरंग (पद्य), प्राचीन सभ्यता, अरुणा, रणजीतसिंह (बँगला से अनुवादित) ; भैषज्य-दीपिका (होमियोपैथी); बाबू शिवनन्दनसहाय की जीवनी।

शाहाबाद-जिला-साहित्य-सम्मेलन और आरा-साहित्य-परिषद् के प्रधान मन्त्री। भोजपुरी-शब्दकोष का निर्माण कर रहे हैं।

श्रीमती विमलादेवी- 'रमा', 'साहित्यचन्द्रिका', डुमरॉव-निवासिनी। माधुरी आदि सामयिक पत्रिकाओं में स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अनेक लेख। रच०—शिक्षासौरभ, स्फुट गद्यपद्य।

गुप्तेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव, डुमरॉव-निवासी रईस, कहानी-लेखक।

रामप्रीत शर्मा 'शिव', 'विशारद', केसठ-निवासी, हाइस्कूल मे हिन्दी-अध्यापक। 'हरिऔध-अभिनन्दन ग्रंथ' (नागरीप्रचारिणी सभा, आरा) के अन्यतम सम्पादक। स्फुट गद्य पद्य।

कमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, एल०-एल बी०, आरा-निवासी। प्रसिद्ध कहानी-लेखक और संगीतविद्याविशारद। 'विशालभारत' के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक। (दे० पृ० ५७१)

जगन्नाथरायशर्मा, एम० ए०, साहित्याचार्य, रामपुर-डिहरी-निवासी। पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी के व्याख्याता। विद्वान् लेखक और कवि। रच०—अपभ्रंश-दर्पण, विक्रम-विजय (कविता-पुस्तक) आदि।

मार्कण्डेय पांडेय, खरेदा-निवासी, जन्म १६६३, 'देशसेवक' (आरा) के सम्पादक थे।

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', 'आरती'-सम्पादक, निमेज-निवासी। जन्म १६६६। स्व० साहित्याचार्य चन्द्रशेखरशास्त्री के सुपुत्र। रच०—पतझड़, पाप-पुण्य, सन्यासी, लालिमा, धारा, तलाक, जेलयात्रा, दो दिन की दुनिया आदि। प्रसिद्ध कहानी-उपन्यास-लेखक और पत्रकार तथा कवि। भूतपूर्व 'बिजली'-सम्पादक। (देखिये पृष्ठ ५६५)

महाराजकुमार दुर्गाशंकरप्रसादसिंह, दिलीपपुर-निवासी रईस। इन्हीं के पितामह श्रीनर्मदेश्वरप्रसादसिंह 'ईश' बड़े विद्वान् लेखक और व्रजभाषा के सुन्दर कवि थे। (दे० पृ० ५४१, ६११)। ये स्वयं बड़े प्रसिद्ध कथाकार हैं। रच०—ज्वालामुखी (गद्यकाव्य), हृदय की ओर (उपन्यास), भूख की ज्वाला। अनेक कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओ मे। (दे० पृ० ५६६)

सरयूपंडा गौड़, जगदीशपुर-निवासी। हास्यरस की रचनाओं के लिये विशेष प्रसिद्ध। कुशल कहानी-लेखक। ग्रं०—लेखक की बीबी, मिस्टर तिवारी का टेली-फोन-कॉल, कोर्टशिप, अश्रुगंगा, भूली हुई कहानियाँ, वेदना। (दे० पृ० ५६५)। 'आर्यमहिला' (काशी) के सम्पादक थे।

वृन्दावनविहारी; आरा; अध्यापक। र०—मधुवन, आकांक्षा।

त्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०, आरा-निवासी। वर्त्तमान 'बालकेसरी'-सम्पादक। 'भविष्य' के भूतपूर्व सम्पादक। कथाकार और पत्रकार। (दे० पृ० ५६५, ५८५)

रामायणप्रसाद, एम० एल० ए०; भभुआ-निवासी। 'बाल-हिन्दी-पुस्तकालय' (आरा) के संस्थापकों में। 'स्वाधीन भारत' (आरा) के संचालक और सम्पादक।

शिवस्वरूप वर्मा, एम्० ए०, बी० एल०। द्वितीय आरा-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष। स्फुट लेख।

बनारसीप्रसाद 'भोजपुरी', मटुकपुर-निवासी। 'स्वाधीन भारत' और 'आर्य-महिला' के सम्पादकीय विभाग में रह चुके हैं, अब 'बालकेसरी' में हैं। रच०—समाज का पाप, मैदाने जंग।

भागवतप्रसाद वर्मा, 'दुःखित', सियरुआँ-निवासी। 'माधुरी' और 'गंगा' के सम्पादकीय विभाग में काम कर चुके हैं, अब सूर्यपुरा के राज-हाइस्कूल में हिन्दी-अध्यापक हैं। अनेक स्फुट गद्य-पद्य-रचनाएँ।

कलक्टरसिंह 'केसरी', एम० ए० ; एकौना-निवासी ; सुप्रसिद्ध कवि ; बिहार-प्रान्तीय कवि-सम्मेलन (पटना) के सभापति (१९४१ ई०)। अनेक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में। सीवान (सारन) के कालेज में अँगरेजी के प्रोफेसर।

देवराज उपाध्याय, एम० ए०, बभनगाँवाँ। साहित्यिक निबन्ध और आलोचनाएँ। जोधपुर के जसवन्त कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर। र०—साहित्य की रेखा।

वीरेश्वरसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०; रूपसपुर-निवासी। इस समय मुजफ्फरनगर (युक्तप्रान्त) में ऐडवोकेट। ग्रं०—उँगली का घाव। उच्च कोटि के यशस्वी कहानी-लेखक। (दे० पृ० ५६८)

राजेन्द्रप्रसाद, एम्० ए०, बी०एल०; कटेयाँ-निवासी। मॉडल-हाइस्कूल (आरा) के हेडमास्टर। कवि और लेखक। अँगरेजी और हिन्दी के पद्यों में भगवद्गीता का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। र०—गीतामृत त्रिवेणी। आरा-साहित्य परिषद् के सभापति।

राधाकृष्णप्रसाद, आरा-निवासी। प्रसिद्ध कहानी-लेखक। प्रतिभाशाली कथाकार। रच०—देवता, विभेद, अंतर की बात। (दे० पृ० ५७०)

रामदयाल पांडेय, शाहपुर-पट्टी-निवासी। भूतपूर्व 'अग्रदूत'-सम्पादक। सुप्रसिद्ध कवि। स्फुट कविताएँ। हाइस्कूल में हिन्दी-अध्यापक।

हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य, परसिया-निवासी, कवि और

लेखक। स्फुट कविताएँ और गद्य-रचनाएँ 'बालक', 'कर्मयोगी', 'भारती' आदि में। 'बालक' के सम्पादकीय विभाग मे वर्त्तमान।

बैजनाथप्रसादसिंह 'विस्मृत', ससराम-निवासी, कवि, र०—आहट।

सूर्यदेव उपाध्याय 'अनुरागी', अँगरा-निवासी; र०—सत्याग्रह (कहानी-संग्रह)।

सुरेशचन्द्र जैन, आरा-निवासी। जल-समाधि (कहानी-संग्रह)। बिहार के कहानी-लेखकों की चुनी हुई कहानियों का संकलन 'प्रतिबिम्ब' इन्हीं के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है।

रामेश्वरप्रसाद गुप्त, एम. एस्-सी.। डिपुटी-कलक्टर हैं। 'माधुरी' आदि में अनेक वैज्ञानिक लेख छप चुके हैं। आरा-निवासी।

मुरलीधर श्रीवास्तव, एम० ए०, बी० एल०, साहित्यरत्न। स्फुट गद्य-पद्य। सीवान (सारन) के कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर।

महेश्वरीप्रसाद, डिहरी- (सोन-तट)-निवासी, स्फुट गद्य-पद्य।

उमाशंकर बहादुर, बी. ए.। डुमराँव। कहानियाँ। र०—बाल-व्यायाम।

उमाशंकर, सुकुलपुरा-निवासी; सामयिक पत्रों में अनेक उपयोगी लेख।

सुरेशचन्द्र, कुम्हैला-निवासी। स्फुट गद्य-पद्य। सूर्यपुराधीश की सेवा में।

अध्यापक रामखेलावन पांडेय, बी. ए.। ससराम-निवासी। विद्वान् समालोचक और गम्भीर विचारक तथा निबन्धकार। (दे० पृ० ५६५)। बि० प्रा० हि० सा० सम्मेलन के संयुक्त मंत्री। र०—वर्त्तमान हिन्दी-कविता, वर्त्तमान हिन्दी-गद्य-साहित्य, दीप शिखा (कविता-संग्रह); तीनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

बी० पी० श्रीकृष्ण। चाँदी-निवासी। स्फुट कहानियाँ और कविताएँ।

श्रीरामप्रसाद पांडेय, एम ए., डिप्. एड.। बीरमपुर-निवासी। रच०—साहित्य-सरिता, साहित्य-सुषमा और काव्यकलश की व्याख्याएँ। अध्यापक।

मुजफ्फरपुर

अयोध्याप्रसाद खत्री, मुजफ्फरपुर-निवासी। मृत्यु १९६१। खड़ी बोली की कविता के उन्नायक, प्रचारक और समर्थक। खड़ी बोली का पद्य-संग्रह पिनकाट साहब के सहयोग से इंगलैंड में छपवाया था। रचनाएँ—हिन्दी-व्याकरण, खड़ी बोली का पद्य, मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्दभेद, मौलवी साहब का साहित्य। 'खड़ी बोली का पद्य' (भाग १) की भूमिका में इन्होंने स्वयं लिखा है—"सन् १८८७ ई० में हिन्दी-व्याकरण लिखा। खड़ी बोली के मैंने पाँच भेद माने हैं—ठेठ हिन्दी, पंडितजी की हिन्दी, मुन्शीजी की हिन्दी, मौलवी साहब की हिन्दी, यूरेशि-

यन हिन्दी।" २० जून, १८८७ ई० के 'पीयूषप्रवाह' में 'खड़ी बोली का पद्य' की समालोचना यों छपी थी—"इस भाषा (खड़ी बोली) में पद्य भी बनने लगे। इसका उद्योग 'ब्राह्मण' और 'हिन्दीप्रदीप' के सम्पादक भी कुछ कर चुके हैं और इस ढंग की कविताओं के विरोधी हम भी नहीं हैं।" खत्रीजी की सचित्र जीवनी 'सरस्वती' (मार्च १६०५ ई०, भाग ६, संख्या ३, पृष्ठ ८३) में चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्मा की लिखी हुई, छपी थी।

देवकीनन्दन खत्री, मालीनगर-निवासी, जन्म १६१८। स्वनामधन्य उपन्यास-लेखक। २४ वर्ष की अवस्था तक मुजफ्फरपुर और गया जिले में रहकर शेष साहित्यिक जीवन बनारस-मिर्जापुर जिलों में बिताया। र०—चन्द्रकान्ता (४ भाग), चन्द्रकान्ता-सन्तति (२४ भाग), भूतनाथ (१६ भाग), नरेन्द्रमोहिनी, वीरेन्द्रवीर, काजल की कोठरी इत्यादि। 'सुदर्शन' मासिक पत्र निकाला था।

कीर्त्तिनारायण सिंह, चन्दनपट्टी-निवासी, जमीन्दार और रईस। र०—कीर्त्तिस्तोत्रमंजरी, कीर्त्तिरागमंजरी (२ भाग), जार्जबतीसी, सतनाम। अब स्वर्गीय। सूर्यपुराधीश के सम्बन्धी थे।

लक्ष्मीप्रसाद, मानपुरा-निवासी, 'बिहारबंधु' में बराबर शुद्ध खड़ी बोली की कविताएँ लिखा करते थे। रचना-काल १८७५ ई० से १८६० ई० तक।

गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा (स्वर्गीय), मानपुरा-निवासी। जन्म १६३३। रच०—कमला, सरस्वती, पवित्र जीवन, मोती, गार्हस्थ्य जीवन, भक्ति-भेंट, सिंहावलोकन। 'आत्मविद्या', 'प्रेमाभक्ति', 'सत्संग', 'बिहारी' आदि के सम्पादक।

उदयनारायणसिंह वर्मा, मधुरापुर-बिद्दूपुर-निवासी। शास्त्रप्रकाश कार्यालय खोलकर संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों के सटीक संस्करण निकालते थे। यथा—गोभिल-गृह्यसूत्र २॥), न्यायदर्शनम् ३॥)—(दे 'सरस्वती', भाग ८, संख्या ८, १६०७ ई.) रच०—सर्वदर्शनसंग्रह, सिद्धान्तशिरोमणि, आर्यभट्टीय सूर्यसिद्धान्त।

राम झा (स्वर्गीय), जलालपुर। मुजफ्फरपुर-कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर थे।

रायबहादुर वैद्यनाथप्रसादसिंह, मुजफ्फरपुर-निवासी प्रभावशाली रईस। केन्द्रीय एसेम्बली के माननीय सदस्य। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में प्रमुख तथा उसके प्रथम अधिवेशन (सोनपुर) के स्वागताध्यक्ष। साहित्य-सेवियों के सत्कार में विशेष अनुराग। कला-पारखी। गुणग्राही।

यज्ञेश्वरसिंह (स्वर्गीय), जारंग-निवासी। रच०—यज्ञेश्वरविनोद, रामरहस्य और सीताराम (दो नाटक)।

सम्पत्ति कवि, जन्म १६२६। र० - नीतिभूषण, मंत्रविषोपचारचंद्रिका।

शिवचन्द्र मिश्र, वैद्यराज, भिषक्रत्न, आयुर्वेदज्ञ-चूडामणि। धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) के आयुर्वेदाध्यापक। मुजफ्फरपुर-निवासी, विजय-प्रेस के संस्थापक। 'आयुर्वेदप्रदीप' के सम्पादक। अद्भुत वक्तृत्वशक्तिसम्पन्न। अब स्वर्गीय!

गोपीनाथ कुमर, बाजितपुर-निवासी। स्वर्गीय। र०—रामचरितेन्दुप्रकाश। (देखिये पृष्ठ ५४०)—यह पुस्तक सन् १६०३ ई० में मुजफ्फरपुर के त्रिकुटीविलास प्रेस में छपी थी, पृष्ठ-संख्या सवा दो सौ है।

जनार्दन झा 'जनसीदन', बाजितपुर-निवासी। जन्म १६२६। 'मिथिला-मिहिर' के आदि-सम्पादकों में। र०-पुरुषपरीक्षा, अन्योक्ति मणिमाला, कलिकाल-कुतूहल, चिकित्सा-सागर, शशिकला, पुनर्विवाह। अनुवाद–गोरा,राजर्षि, आश्चर्य-घटना, विचित्र वधूरहस्य,आदर्श महिला राजपूत-जीवनसंध्या, महाराष्ट्रजीवनप्रभात,इन्दिरा, देवीचौधरानी, विषवृक्ष, स्वर्णलता, सम्राट् अकबर, नेपोलियन बोनापार्ट, ग्रहनक्षत्र, समुद्रीय जन्तुओं की कहानियाँ, युगलांगुलीय। टीकाएँ - मनुस्मृति काव्यनिर्णय। इन्हीं के सुपुत्र हैं प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम ए.। दे पृ :,३१३,४७०,५४४ ५६०)

रामदास राय, जन्म १६२६, जन्मस्थान—सुहबल (गाजीपुर), कर्मक्षेत्र—मुजफ्फरपुर। यहीं के कालेज मे संस्कृत-हिन्दी के प्रोफेसर रहे। पहले स्कूल में शिक्षक थे। आजतक साहित्यसेवा मे रत हैं। र०—दूतवाक्य, हिन्दीवाक्यक्रम-संशोधन शिक्षा-लता, लिङ्गभ्रमसंशोधन पंचरात्र उत्तररामचरित, मेघदूत, मुद्राराक्षस, रघुवंश, हिन्दी भर्तृहरिशतक मनुकालिक ब्रह्मचारी। गद्य पद्य के विद्वान् लेखक।

संत जंगलीबाबा। र०—वेदोक्त गो-माहात्म्य, रागपदावली।

शिवनन्दनसहाय, बी० ए, धरहरवा निवासी। जन्म १६३५। डिपुटीकलक्टर थे। र०—कैलासदर्शन, वदरी-केदार-दर्शन, मेरी शाद्रू-यात्रा। हिमालय की यात्रा अनेक बार कर चुके हैं और उसके आन्तरिक प्रदेशों तक जाते हैं।

वैद्यरत्न व्रजविहारी चौबे, हाजीपुर-निवासी भारत-प्रसिद्ध चिकित्सक। निखिल-भारतीय आयुर्वेद-महासम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। पटना में रहा करते हैं। पूज्य महामना मालवीयजी इनकी चिकित्सा पद्धति में बड़ा विश्वास करते हैं। आयुर्वेद-सम्बन्धी पत्रों मे तद्विषयक स्फुट लेख।

युद्धविक्रम मारुक, मुजफ्फरपुर। हिन्दी के पुराने सेवक। अब संन्यासी।

पुरुषोत्तमदास वैष्णव, मुजफ्फरपुर। 'सरस्वती' में कई लेख छपे हैं। हिन्दी के बड़े उत्साही समर्थक और साहित्यानुरागी व्यक्ति हैं।

लक्ष्मीनारायण गुप्त, मुजफ्फरपुर। रौनियारहितैषी'-सम्पादक। स्फुट लेख।

रामरूपप्रसाद, बी. ए., बी टी.। बि. प्रा हिं सा स. के मंत्री एक वर्ष तक। र०—बालोपयोगी कई गणित-पुस्तकें।

बलदेवलाल (स्वर्गीय)। र०—बलदेवसतसई।

जंगबहादुरसिंह अष्ठाना, फातमाचक-निवासी। र०—पत्र-प्रकाश, छत्रबंध।

महादेवप्रसादसिंह अष्ठाना, फातमाचक-निवासी। र०—संकीर्त्तन के पद।

रायसाहब रामलोचनशरण बिहारी, राधाउर-निवासी। जन्म १९४५। पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय और पटना), विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय), और हिमालय प्रेस (पटना) के संस्थापक। 'बालक' के जन्मदाता और सम्पादक। 'होनहार' और 'रौनियार-वैश्य' के संस्थापक और सम्पादक। सैकड़ों बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकों के लेखक और सम्पादक। संयुक्ताक्षर-रहित बालोपयोगी दस-बारह पुस्तकें लिखी हैं। र०—व्याकरणबोध, व्याकरण-चन्द्रिका, व्याकरण-नवनीत, व्याकरण-चन्द्रोदय, बाल-रचना, रचना-प्रवेशिका, रचना-चन्द्रिका, रचना-चन्द्रोदय, रचनानवनीत, नीति-निबन्ध, गद्यसाहित्य, गद्यामोद, गद्यप्रकाश, साहित्य-सरोज, साहित्य-विनोद, साहित्य-प्रमोद, राष्ट्रीय साहित्य (६ भाग), राष्ट्रीय कवितासंग्रह, काव्यसरिता, इतिहास-परिचय, भूगोल-परिचय, स्वास्थ्य-परिचय, प्रकृति-परिचय, प्रतिवेश परिचय, धर्मशिक्षा, शिशुकर्म-संगीत, मनोहर पोथी, गणित पढ़ाने की विधि, ऐतिहासिक कथामाला, इत्यादि। हिन्दी, उर्दू, बँगला और सताली वर्ण-मालाओं की नई विधियाँ। इन्होंने दूसरो के नाम से भी बीसियों पुस्तकें लिखी हैं। बिहार मे हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ पृष्ठपोषक। (देखिये पृष्ठ १४८, ५४८, ६१४)।

वंशलोचनप्रसाद, राधाउर। जन्म १९४६। उक्त रायसाहब के छोटे सगे भाई। र०—कहानियो का गुच्छा, व्याख्या सम्बन्धो कई पुस्तकें।

रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय, बी० ए; एम० एल० सी०; बाघी-निवासी सुप्रतिष्ठित धनाढ्य रईस। अखिलभारतवर्षीय हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन के अष्टादश अधिवेशन (मुजफ्फरपुर, १९२७ ई०) के स्वागताध्यक्ष। हिन्दी के परम हितैषी और हिन्दी की संस्थाओ के सहायक। (दे० पृ० १३५)आपके सुपुत्र श्रीकृष्णनन्दन सहायजी मुजफ्फरपुर की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'सुहृदसंघ' के सभापति हैं।

लक्ष्मीनारायण, मुजफ्फरपुर। अखिलभारतीय चरखा-सघ की बिहार-शाखा के प्रधान मत्री। बिहार मे खादी-आन्दोलन के मुख्य उन्नायक। चरखा-सघ के मासिक मुखपत्र 'खादीसेवक' के जन्मदाता और संचालक। खादी के प्रचार और उसके अर्थशास्त्र तथा उसको उपयोगिता पर अनेक महत्त्वपूर्ण लेख।

महादेवप्रसाद, एम० ए०, मुजफ्फरपुर। बिहार-सस्कृत-एसोसिएशन के मंत्री। महाकवि सूरदास की 'साहित्यलहरी' के टीकाकार।

रामधारीप्रसाद 'विशारद', भगवानपुर-निवासी। जन्म १९५२। बिहार प्रान्तीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सस्थापकों मे—कई वर्षों तक उसके प्रधान मत्री, अब उपसभापति। र०—ध्रुवतारा, जयमाल (दो उपन्यास)। सम्मेलन-सम्बन्धी अनेक लेख। चम्पारन-जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नवम अधिवेश (नरकटियागंज, १९४१ ई०) के सभापति।

कमलदेवनारायण, बी० ए०, बी० एल०। बखरा-निवासी। जन्म १९५७। र०—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, युगलकुसुम, अर्द्धाङ्गिनी, झरना, बिखरे फूल, प्रेम-नगर की सैर, वैज्ञानिक वार्त्तालाप, बच्चो के खेल।

सत्यनारायणसिंह, खुटॉही-निवासी। जन्म—१९५८। र०—पद्य-शब्दकोष, हिन्दीगीता।

भैरवगिरि, धर्म-समाज-सस्कृत-कालेज (मुजफ्फरपुर) के अध्यापक। प्रसिद्ध कवि और सुयोग्य विद्वान्। र०—मारुतिविजय (खंडकाव्य)।

राजकिशोरनारायणसिंह, पकड़ी-निवासी सुप्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस। र०—ओंकार-निर्णय, पद्मपुराण को समालोचना। आप ही के सुपुत्र हैं सुकवि जयकिशोरनारायणसिंह साहित्याचार्य।

गोविन्दप्रसाद, भुल्ली-निवासी। स्वर्गीय। र०—ज्ञानप्रकाश। इनके किसो पूर्वज का लिखा 'अलिफनामा' नामक एक हिन्दी-पद्य-ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक वाक्य क्रमशः उर्दू के एक-एक अक्षर से प्रारम्भ होता है।

नवरंगीसिंह, रीगा-निवासो। स्वर्गीय। र०—सुखसागर।

जानकीप्रसाद वर्मा, सोतामढ़ी-निवासो। र०—मेरा कर्त्तव्य; राष्ट्रीय ढंग से शिक्षा (स्वामी विवेकानन्द के भाषण का अनुवाद)।

वैद्यराज वच्चूप्रसाद। र०—वैद्यक ग्रथ।

लक्ष्मीप्रसाद, सुन्दरपुर-निवासी। र०—चरखा-शास्त्र।

उपेन्द्रनाथ मिश्र 'मंजुल', सीतामढ़ी। र०—कविताकदम्ब, राष्ट्रीय गीतगुच्छ, धनञ्जय-मान-मर्दन। कवि और हिन्दो अध्यापक। स्फुट कविताएँ।

रमाचरण, बी० ए०; मुजफ्फरपुर। 'जीवनसन्देश' और 'खादीसेवक' के सम्पादक। राष्ट्रीय विचार के सौम्य लेखक।

लक्ष्मणशरण 'मोदलता'। खँगुरा-पहसौल-निवासी। र०—विवाह-पद्यावली।

जगन्नाथप्रसाद वैष्णव, बड़कागाँव-निवासी। हरिनाम-यश-संकीर्त्तन की लगभग दो दर्जन पुस्तकों के संकलनकर्त्ता। भजनानन्दी।

ललितकुमारसिंह 'नटवर', मुजफ्फरपुर। प्रसिद्ध कवि और अभिनेता। न्यू थिएटर आदि सिनेमा-कम्पनियों में रह चुके हैं। बिहार-प्रान्तीय हिंदी साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में। विख्यात स्काउट-मास्टर। 'आशा' और 'आलोक' के सम्पादक। परम विनोदी। र०—बाँसुरी, स्फुट कविताएँ। बिहार प्रांतीय हिन्दी कविसम्मेलन (राँची) के अध्यक्ष।

शिवप्रसाद खन्ना, मुजफ्फरपुर। र०—विद्यासागर, सीतावनवास।

श्रीमती शारदाकुमारी देवी, एम० एल० ए०; मुजफ्फरपुर। छपरा के मासिक 'महिलादर्पण' की सम्पादिका। पत्रों में नारी-स्वत्व-रक्षा-सम्बन्धी लेख।

नगेन्द्रनारायणसिंह, चन्दनपट्टी-निवासी जमीन्दार और रईस। बिहार-प्रान्तीय हरिजन सेवक-संघ के प्रधान मंत्री। माधुरी, गंगा, बालक आदि में अनेक स्फुट लेख।

गिरीन्द्रनारायण सिंह; चन्दनपट्टी; स्फुट लेख, कविताएँ, कहानियाँ।

रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, बेनीपुर-निवासी। जन्म १९५८। तरुण भारत, किसान-मित्र, गोलमाल, बालक, युवक, लोकसंग्रह, कर्मवीर (खंडवा), योगी, जनता आदि पत्रों का सम्पादन कर चुके हैं। पुस्तकें—(बालोपयोगी) बगुला-भगत, सियार पाँड़े, बिलाई मौसी, हीरामन तोता, आविष्कार और आविष्कारक, रंगबिरंग, चिड़ियाखाना, जानवरों का जीवन, क्यों और क्या, पँचमेल मिठाइयाँ, सतरंगा धनुष, कविताकुसुम;—(नवयुवकोपयोगी) साहस के पुतले, जान हथेली पर, फलों का गुच्छा, पदचिह्न, झोपड़ी से महल, बहादुरी की बातें, प्रेम;—(काव्यों की टीकाएँ) बिहारी सतसई, विद्यापति की पदावली, कलामे-'जोश';—(कहानी-उपन्यास) पतितों के देश में, लालतारा, झोपड़ी का रुदन, दीदी, माटी की मूरतें, सात दिन, जीवनतरु, रानी;—(ऐतिहासिक) लाल चीन, लाल रूस;—(विचार-धाराएँ) नई नारी, नया मानव, नवीन साहित्य;—(जीवनियाँ) शिवाजी गुरु गोबिन्दसिंह, विद्यापति, लगटसिंह। इनकी निम्नलिखित पुस्तकों के उर्दू-संस्करण भी छप चुके हैं—लाल तारा, साहस के पुतले, सियार पाँड़े, बिलाई-मौसी, हीरामन तोता, आविष्कार और आविष्कारक। (दे० पृ० ५५०, ५६४, ५७८, ५८०)।

श्यामधारीप्रसाद 'साहित्यभूषण', भगवानपुर-निवासी जन्म १८५८। र०-रुदन (कविता संग्रह)। इन्हीं की स्वर्गीया पत्नी श्रीमती शिवकुमारी देवी ने 'सावित्री' और 'दमयती' पुस्तकें लिखी थीं।

युगेश्वरप्रसादशर्मा, विष्णुपुर। 'बालक' मे कितने ही लेख छपे हैं।

उमाशंकरप्रसाद, बी० एस सी०, मुजफ्फरपुर। जन्म १८६०। सुप्रतिष्ठित रईस। सगीताचार्य। अनेक वैज्ञानिक लेखों के लेखक। (दे. पृ ३ १)।

रामजीवनशर्मा 'जीवन', मरवन-निवासी। जन्म १८६१। स्फुट लेख और कविताएँ। सम्पादक—सन्देश, प्रणवीर, महारथी, नवयुवक। ओजस्वी लेखक।

शारदाप्रसाद भंडारी, मुजफ्फरपुर। जन्म १८६१। स्फुट गद्य-पद्य।

जगदीशचन्द्र शास्त्री, मरवन-निवासी। जन्म १८६१। दिल्ली और दार्जिलंग में हिन्दी-सेवा। स्फुट लेख और कुछ पुस्तकें।

जगदीशनारायण; हाजीपुर। युगान्तर-साहित्य-मदिर (पटना) के संस्थापक और संचालक। र०—बड़ों का बचपन, गॉव की ओर, बैर का बदला।

जगदीशप्रसाद 'श्रमिक', हाजीपुर। सम्पादक—'महिला-सन्देश'। पुस्तक—मुजफ्फरपुर जिले का सत्याग्रह-आन्दोलन। ओरियंट प्रेस (पटना) के मैनेजर।

अवधेश्वरप्रसादसिंह, दहिला-निवासी। 'युवक' के सहकारी सम्पादक। स्फुट लेख। किसान-महासभा के अध्यक्ष।

श्रीमती चन्द्रमणि देवी। जन्म १८६१। रायसाहब रामलोचनशरणजी की पत्नी। जन्मस्थान नैपाल-राज्यान्तर्गत 'रामबन' गॉव। नैपाली भाषा का भी अच्छा ज्ञान। र०—दुलहिन, बेटी, माता, कन्यासाहित्य (३ भाग)।

किशोरीप्रसन्न सिह, हाजीपुर। स्फुट लेख और पुस्तिकाऍ।

रामनारायण शर्मा; बिद्दूपुर-निवासी। जन्म १८६२। भागलपुर के तेजनारायण जुबली कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर।

शिवकुमारी देवी (स्वर्गीया), जन्म १८६२, जन्मस्थान—डालटेनगंज (पलामू)। ससुराल—भगवानपुर। श्रीश्यामधारीप्रसाद की पत्नी। रच०—सावित्री, दमयन्ती।

जटाधरप्रसादशर्मा 'विकल', बाजितपुर-निवासी। जन्म १८६२, मृत्यु १८८६। कवि और लेखक। रच०—योगमाया, धर्मवती, अहल्या, दमयन्ती, प्रेमप्रमोद, कृषकक्रन्दन, शिक्षकक्रन्दन, पावसबहार, शिवाशिव। हँसमुख और दोस्तपरस्त।

परमेश्वरसिंह, शिवहर-निवासी। विश्वमित्र (कलकत्ता), प्रताप (कानपुर), हिन्दुस्तान (दिल्ली) के सम्पादकीय विभाग में काम कर चुके हैं। किताब-घर (पटना) के संस्थापक और संचालक।

मोहनलाल गुप्त, 'मोहन'; मुजफ्फरपुर। प्रसिद्ध कवि। स्फुट कविताएँ और लेख। नवयुवक और तिरहुतसमाचार के सम्पादक।

जगन्नाथप्रसाद साहु, लालगंज-निवासी। वहीं की हिन्दीप्रचारिणी सभा के संचालक। हाजीपुर-सबडिवीजन के पुस्तकालय-संघ के मंत्री। स्फुट लेख और पुस्तिकाएँ।

हरिमोहन झा, एम. ए.; कुमरबाजितपुर। जन्म १९६५। कविवर 'जनसीदन' जी के सुपुत्र। बी. एन. कालेज (पटना) में फिलासफी के प्रोफेसर। रच०—भारतीय दर्शनपरिचय, तीस दिन में संस्कृत, तीस दिन में अँगरेजी, संस्कृत-रचना-चन्द्रोदय, संस्कृत-रचना-चन्द्रिका, अनुवाद-चन्द्रोदय, कन्यादान (मैथिली-उपन्यास)। हास्यरस के कवि और लेखक।

राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह, बी ए., एम. एल. ए.; सुरसंड-निवासी जमीन्दार और रईस। 'जन्मभूमि'—सम्पादक। प्रसिद्ध कहानी-लेखक। आलोचनात्मक निबंध-रचयिता। रच०—आहुतियाँ (कहानी-संग्रह)।

अक्षयलाल झा, आयुर्वेदाचार्य, जागढ़-निवासी। रच०—औषधि के उपयुक्त फलों के प्रयोग, सूखे फलों के प्रयोग, त्रिफला के प्रयोग, ताजा फलों के प्रयोग, व्यजनफलों के प्रयोग, फूलों के चुटकले।

जयकिशोरनारायणसिंह, साहित्याचार्य; पकड़ी-निवासी प्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस। सुविख्यात सुकवि। स्फुट कविताएँ, कहानियाँ, साहित्यिक और आलोचनात्मक निबंध। (दे० पृ० ५५३, ५६६, ६०६, ६१८)

नवलकिशोर गौड़, एम० ए; दुनियाही-निवासी। 'योगी' और 'जनता' के सम्पादकीय विभाग में काम किया है। बी० एन० कालेज (पटना) में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। कई एकांकी नाटक लिखे हैं—कहानियाँ और आलोचनात्मक निबंध भी। सहृदय-सुहृद्।

नवलकिशोर सिंह। स्फुट कहानियाँ। 'सर्चलाइट' के सम्पादकीय विभाग में काम करते हैं।

नागेन्द्रकुमर, बी० ए०; कुमरबाजितपुर-निवासी। जन्म-१९६८। स्फुट लेख। सब-डिपुटी-कलक्टर हैं। बड़े प्रतिभाशाली हैं।

रेवतीरमण 'रमण', मुजफ्फरपुर। जन्म १६७३। स्फुट कविताएँ और कहानियाँ। अपनी सुन्दर कविताएँ मधुर कंठ से गाते हैं।

नीतीश्वरप्रसादसिंह, दहिला-निवासी। जन्म १६७४। 'सुहृद-संघ' (मुजफ्फरपुर) के संस्थापक और प्रधान मंत्री। हिन्दुस्तानी और रोमन-लिपि के विरोध में अनेक महत्त्वपूर्ण लेख। साहित्यिक जागृति के लिये सतत आन्दोलन करने में प्रवृत्त बड़े ही उत्साही नवयुवक।

जयमंगलसिंह शास्त्री, जहाँगीरपुर-निवासी। र०—नवीन टर्की।

हरिदेव शर्मा 'प्रेमी हरि', विष्णुपुर-निवासी। स्फुट लेख।

रामरीझन रसूलपुरी, रसूलपुर-निवासी। स्फुट कविताएँ और लेख। तिरहुत-समाचार के सम्पादकीय विभाग में काम किया है। काशी से 'अप्सरा' पत्रिका निकालने के उद्योग में हैं।

रामइकबालसिंह 'राकेश', भदई-निवासी। बिहार के ग्रामगीतों का अपूर्व संग्रह तैयार किया है, जिसके कई अंश आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में छपे भी हैं; पर अब पुस्तकाकार पाँच भागों में छपनेवाला है। रच०—स्टालिन, फैसिज्म।

अमरेन्द्रनारायण, एम० एस-सी०; मुजफ्फरपुर। साइन्स-कालेज (पटना) में प्रोफेसर। स्फुट वैज्ञानिक लेख।

वैद्यनाथप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, सीतामढ़ी। स्फुट लेख और कविताएँ।

लक्ष्मीनारायण गुप्त 'किशोर'; सीतामढ़ी। 'रौनियार-वैश्य'-सम्पादक।

अशरफीलाल वर्मा, मकुनाही-निवासी। 'बालक' में अनेक लेख। रच०—एक सच्चा किसान, प्रेमपञ्चाशिका।

बलदेवनारायण, बी० ए०, कुशी-निवासी। तरवारा (दरभंगा) की बिहार-विद्यापीठ-शाखा में अध्यापक। विद्वान् अर्थशास्त्री। स्फुट लेख।

शुकदेवनारायण, कुशी-निवासी। रच०—पशुपक्षी। (दे० पृ० ६२०)

जयकान्त मिश्र, विष्णुपुर-निवासी। 'ज्योति:श्री'-सम्पादक। दैनिक 'आर्यावर्त्त' (पटना) के सहकारी सम्पादक। रच०—इत्सिङ्ग की भारत-यात्रा। (दे० पृ० ५११)

योगेन्द्र मिश्र, बी० ए०; जन्म १६७६; कुमरबाजितपुर। स्फुट लेख और कविताएँ।

६



(दरभंगा-जिला-निवासी)
डाक्टर उमेश मिश्र, प्रयाग-विश्वविद्यालय

पृष्ठ ७१६



श्रीनलिनविलोचन शर्मा, एम ए; छपरा
(स्वर्गीय पं० रामावतार शर्मा के सुपुत्र)

पृष्ठ २६४



श्रीब्रह्मदत्त-भवानीदयाल
(शाहाबाद-जिला-निवासी) साउथ-अफ्रिका

पृष्ठ १०७



(दरभंगा-जिला-निवासी)
श्रीसुमन वात्स्यायन (सारनाथ, बनारस)



श्रीधर्मलाल सिंह (पृष्ठ १५६)
(दरभंगा-गोशाला के व्यवस्थापक)



श्रीतारकेश्वरप्रसाद वर्मा (मुजफ्फरपुर)
(पृष्ठ १८१)

(पृष्ठ २७१)

प
ट
ना



शा
हा
बा
द

श्रीरासबिहारीराय शर्मा, एम० ए०



श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग', बी० ए०



श्रीहवलदारीराम गुप्त
(अध्यापक, राँची-जिला-स्कूल)

(पृष्ठ ५१९)



श्रीनीतीश्वरप्रसाद सिंह
प्र० मन्त्री, सुहृद-संघ, मुजफ्फरपुर



श्रीदेवनारायण कुंवर 'किसलय'
साहित्यरत्न (दरभंगा)



श्रीनागेन्द्र कुमर, बी० ए०
(कुमरबाजितपुर, मुजफ्फरपुर)

दरभंगा

* भुवनेश्वर मिश्र, मिश्रटोला-दरभंगा। जन्म १६२४ मृत्यु १६६१। 'चम्पारणचन्द्रिका' और 'हिन्दीवङ्गवासी' के सम्पादक। रचनाएँ—कवि-परिचय, कवि-सोपान, परलोक, घराऊ घटना, बलवन्त भूमिहार आदि। †

शिवशंकर शर्मा, चिहुटा-निवासी। स्वर्गीय। रच०—त्रिदेवनिर्णय। आर्य-समाज के उद्भट विद्वान्। 'बालक' (वर्ष ८, पृष्ठ ३७६) में सचित्र जीवनी छपी है।

योगानन्द कुमर, पुतइ-निवासी। स्वर्गीय। 'मिथिलामिहिर'-सम्पादक। रच०—वाजसनेयी नित्यकर्म का हिन्दीभाष्य, छन्दोगसन्ध्यातर्पण का हिन्दीभाष्य, मैथिल-ब्राह्मण-डाइरेक्टरी इत्यादि। (देखिये 'बालक', वर्ष ६, पृष्ठ ४६७)।

युगलकिशोरनारायणसिंह, सतमलपुर-निवासी। स्वर्गीय। स्फुट गद्य-पद्य।

हरनाथप्रसाद खत्री, मधुबनी-निवासी। स्व०। रच०—व्याकरणबटिका।

मनमोहन चौधरी, परसाद-निवासी। स्व०। र०—मनमोहन-विलास, दरभंगा-राजवंशावली।

मुन्शी कालीप्रसाद, मिश्रटोला-दरभंगा। स्व०। र०—आरोग्यलहरी।

चेतनाथ झा, नवटोल-निवासी। स्वर्गीय। रच०—दिल्ली का ऐतिहासिक वृत्तान्त, खंडबलाराजदर्पण (दरभंगा-राज्य का इतिहास)।

राघवप्रसादसिंह 'महन्थ', वैनी-निवासी स्वर्गीय। जन्म १६४५। रच०—राष्ट्रीय संगीत, कथामंजरी, बाल-रामायण। बिहार-प्रान्तीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के आरम्भिक कार्यकर्त्ताओं में आप बड़े उत्साही और कर्मठ थे। बालकों के मनोहर कवि। विनोदी स्वभाव। मित्रों के चितचोर।

उदितनारायणदास, बी० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ, बहेड़ा-निवासी। स्व०। र०—आदर्श राघव, सुकन्याचरित, मानस-मराल, कुन्ती नाटक।

शिवनन्दन ठाकुर, एम० ए०, कोइलख-निवासी। स्व०। रच०—महाकवि विद्यापति।

* "हिन्दी-काव्य-आलोचना के विषय में अखबारों में एक वर्ष तक वादविवाद चलते रहे। विशेष झगड़ा इस बात पर था कि नायिकाओं की रोमावली का वर्णन नखशिखों में उचित होता है अथवा अनुचित। इन विवादो में हमने भी उत्तर दिया, और दरभंगा के प्रसिद्ध लेखक पं० भुवनेश्वर मिश्र ने हमारे सिद्धान्तों की पुष्टि में एक उत्कृष्ट लेख लिखा।"
—'मिश्रबन्धु' (—'विनोद', तृतीय संस्करण, भाग १, पृष्ठ ८३—८४)—ले०

† 'बालक' (वर्ष ८, पृष्ठ २१४) में आपकी सचित्र जीवनी छपी है। —ले०

महम्मद मुसलिम जालवी, जाले-निवासी। स्व०। स्फुट लेख।

नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०। दरभंगा। जन्म १६१८। संवत् १६३७ में पटना-कालेज से एफ. ए पास किया। सं० १६७८ मे स्वर्ण-पदक-प्राप्त प्रथम श्रेणी के एम० ए० हुए—हिन्दी मे। १८ वर्षों तक हेडमास्टर रहे। सात वर्ष कलकत्ता-विश्वविद्यालय मे हिन्दी के लेकचरर। मुजफ्फरपुर मे भी कई साल रहे। रच०—तुलनात्मक भाषाज्ञान की उपक्रमणिका, समालोचना तत्त्व, भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास, उच्चविषयक लेखमाला, मोहनमाला (कहानियाँ)। सुप्रसिद्ध बंगाली हिन्दी-लेखक।

महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा। जन्म १६२५; मृत्यु १६६८। प्रयाग विश्वविद्यालय के तीन-तीन बार वाइसचान्सलर चुने गये। इनके सुपुत्र प्रोफेसर अमरनाथ झा भी उसी विश्वविद्यालय के दुबारा चुने गये वाइसचान्सलर हैं। पटना-विश्वविद्यालय मे रामदीन-रीडरशिप के लिये दर्शन और साहित्य पर विद्वत्ता-पूर्ण भाषण। हिन्दी-लेखकों मे एकमात्र 'सर'-उपाधिधारी। द्विवेदी-मेला (प्रयाग) के साहित्य-समारोह के सभापति। अनेक पांडित्यपूर्ण ग्रंथो और स्फुट दार्शनिक लेखों के लेखक। (दे० पृ० ३६, १४७, ५४३)

रघुनन्दनदास, सखवाड़-निवासी। र०—पावसप्रमोद, भर्तृहरि-निर्वेद, रस-प्रबोध। मैथिली के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक।

बलदेवनारायण महथा, जाले-निवासी। जन्म १६३०। र०—पाठ्यपुस्तकें।

गिरिवरधर, वकील, समस्तीपुर। र०—गाँव-सुधार। इन्हींके सुपुत्र हैं श्रीउमेशचन्द्र 'मधुकर'—नवयुवक कवि। इनका मूल निवासस्थान है 'कुम्हैला' (शाहाबाद)।

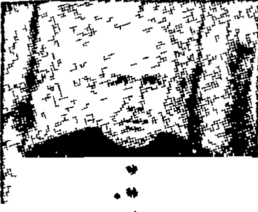
मौनी बाबा। त्यागी महात्मा। नैपाली में तुलसीकृत रामायण छपवाया है।

मुरारिप्रसाद, ऐडवोकेट, पटना-हाइकोर्ट। सिमरी-निवासी। संगीतशास्त्र-विशारद। संगीत-सम्बन्धी एक विशद और वृहत् ग्रंथ लिखा है। (दे० पृ० २८०)

जगदीश्वरप्रसाद ओझा, रोसड़ा-निवासी। सुदर्शन प्रेस (दरभंगा) के संचालक। स्त्रीशिक्षा, उद्योग और पुरुषार्थ तथा स्वास्थ्यरक्षा पर अनेक लेख।

अवधनारायण, शुभंकरपुर-निवासी। र०—विमाता (उपन्यास), झलक (कहानी-संग्रह), सेकंडहैंड लेडी (उपन्यास)। 'विमाता' अद्वितीय उपन्यास।

गिरीन्द्रमोहन मिश्र, एम० ए०, बी० एल०। दरभंगा-राज के असिस्टैंट



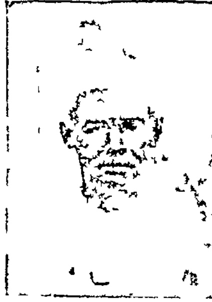


प० श्रीगिरीन्द्रमोहन मिश्र
एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ
(पृ० ६६८)

श्रीयुत सूर्यनारायण सिंह
एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ
(पृ० ६८१)



श्रीयुत वासुदेवनारायण



श्रीमहादेवप्रसाद सिंह अष्ठाना
(पृ० ६६१)



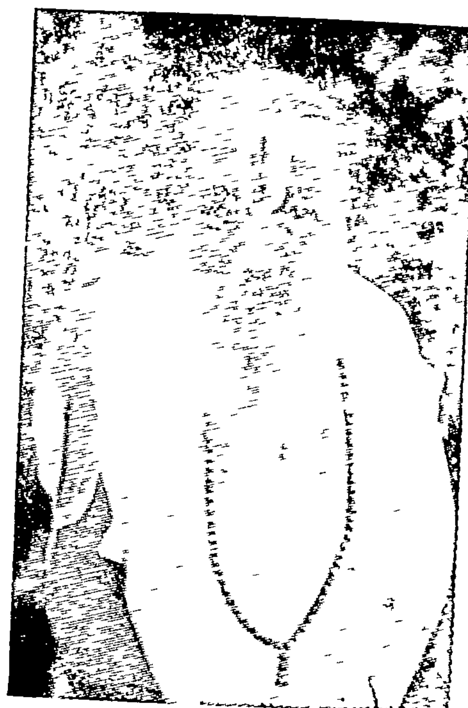
अध्यापक श्रीसरयूसिंह
(पृ० ६६८)



श्रीमोदलताजी (पृ० ६६३)



साकेतवासी अनन्त श्रीराजकुमारदासजी,
प्रमोदवन (अवध)



साकेतवासी अनन्त श्रीरामवल्लभाशरणजी,
जानकीघाट (अवध)



श्री १०८ रामपदार्थदासजी वेदान्ती, जानकीघाट (अवध)

मैनेजर। 'सरस्वती' के लेखक। कई पुस्तकों के पुराने सम्पादक। बालविवाह, भूकम्प, वाणभट्ट, धर्मद्वारा प्रेमसंस्कार, कम पूँजी बहुत काम आदि लेखमालाएँ

जयनारायण मल्लिक, एम० ए०; मधेपुर-निवासी। स्फुट लेख।

विष्णुकान्त झा, बी० ए०, वकील; घोघरडीहा-निवासी। 'मिथिलामिहिर' के भूतपूर्व सम्पादक। यह पत्र पहले-पहल संवत् १९६५ में मकर-संक्रान्ति (माघ कृष्ण ७) को मासिक रूप मे इन्हींके सम्पादकत्व में निकला था।

गौरीनाथ झा, व्याकरणतीर्थ। महरैल-निवासी। सुलतानगंज (भागलपुर) में कुमार कृष्णानन्दसिंह बहादुर (बनैली-राज्य) के प्राइवेट सेक्रेटरी। 'गगा' के जन्मदाता और सम्पादक। मिथिला प्रेस (भागलपुर) के संस्थापक और 'हलधर'-सम्पादक। नीतिनिपुण।

आद्यादत्त ठाकुर, एम० ए०; माधोपुर-निवासी। लखनऊ-विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर हैं। 'माधुरी' में अनेक लेख और आलोचनाएँ।

गंगापति सिंह, बी० ए०। पचही-निवासी। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के, हिन्दी और मैथिली के, भूतपूर्व प्रोफेसर। रच०—कन्नौज-पतन (नाटक), खड्गबहादुर (नाटक), विवाह-विज्ञान, नरपशु (उपन्यास), मिथिला की घरेलू कहानियाँ, पुराणों में वैज्ञानिक बातें, ग्रियर्सन साहब की जीवनी।

रायसाहब सिद्धिनाथ मिश्र, बी० ए०, एल-टी०। गोनौली-निवासी। रच०—हिन्दी-अँगरेजी-अनुवाद, रचना और इतिहास की पाठ्यपुस्तकें। अनुभवी शिक्षण-शास्त्री। हाइस्कूल के पुराने हेडमास्टर। (दे० पृ० ६०७, ७१६)

रायसाहब रामशरण उपाध्याय, बी० एल०, एल-टी०। हाँसा-निवासी। 'नवीन शिक्षक' के सम्पादक। ट्रेनिङ्ग स्कूल (पटना) के हेडमास्टर। इतिहास, भूगोल, प्रबन्ध-रचना, हिन्दी-अँगरेजी-अनुवाद पर प्रामाणिक पाठ्यपुस्तकें। ग्रं०—मगध का प्राचीन इतिहास। (दे० पृ० ७१३)

कामेश्वरनारायण सिंह। नरहन-निवासी सुप्रतिष्ठित जमीन्दार और रईस। संस्कृत-हिन्दी-साहित्य के अध्ययनशील व्युत्पन्न विद्वान्। 'धर्म' पर पांडित्यपूर्ण लेखमाला -'मिथिलामिहिर' में। साहित्यिक ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन गम्भीर।

कपिलेश्वर मिश्र, वैयाकरणशिरोमणि। जन्म १९४७। सोती-सलेमपुर-निवासी। कानपुर और शान्तिनिकेतन (बंगाल) में बरसों संस्कृत के अध्यापक रह चुके हैं। हिन्दी का एक बृहत् कोष तैयार किया है जो शीघ्र छपनेवाला है। स्वाध्यायी, सभाचतुर, वाग्विलासी। (दे० पृ० ४५०)।

कपिलेश्वर शास्त्री, फुलपरास,निवासी। भू० पू० 'मिथिलामिहिर'-सम्पादक।

धर्मलालसिंह, गौरजा-निवासी। बिहार के ये गंगाप्रसाद अग्निहोत्री हैं। सभी देशों के गोपालन-साहित्य का अध्ययन और मंथन किया है। दरभगा-गोशाला के प्रबन्धक। 'किसान-केसरी' और 'जीवदया-गोपालन' के भूतपूर्व सम्पादक। गोरक्षा सम्बन्धी अनेक स्फुट लेख। र०—गोपालन की पहली और दूसरी पोथी। (दे० पृ० १५६ और ७६८)

डाक्टर उमेश मिश्र, गजहरा-निवासी। प्रयाग-विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर हैं। प्राकृत और पाली भाषाओ के मर्मज्ञ विद्वान्। अनेक गवेषणापूर्ण लेखों के लेखक। (दे० पृ० ६८, ४१३)

कालीकुमारदास, भच्छी-निवासी। र०—मैथिली-गीतांजलि।

भोलालालदास, बी० ए०, एल० एल० बी०, कसरौर-निवासी। जन्म १६५३। र०—हिन्दू-लॉ मे स्त्रियों के अधिकार, अक्षरो की लड़ाई, भारतवर्ष का इतिहास। 'चॉद' (प्रयाग) के भूतपूर्व नियमित लेखक। युनाइटेड प्रेस लिमिटेड (भागलपुर) मे साहित्यिक प्रकाशन विभाग के व्यवस्थापक हैं।

रामप्रकाश शर्मा, बथुआ-निवासी। जन्म १६५३। डाक्टर। स्फुट रचनाएँ।

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, एम० ए , बी० एल०। पतोर-निवासी। जन्म १६५३। चन्द्रधारी-मिथिला कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर हैं। मासिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक। वक्तृत्वशक्तिसम्पन्न। 'विशालभारत' मे अनेक लेख। र०—दरभगा, मुगेर (दोनो जिलो का विस्तृत विवरणात्मक परिचय), जीवन देवता की वाणी (नवयुवकोपयोगी), साम्यवाद क्या है ?, जानते हो, बच्चों का चिड़ियाखाना बालोपयोगी)। अन्य अनेक अप्रकाशित ग्रंथ। दे० पृ० १०७)

अमरनाथ झा, एम ए। जन्म १६५४। सरिसव-पाहीटोल-निवासी। म० म० डा० सर गगानाथ झा के सुपुत्र। भारतविख्यात स्वनामधन्य विद्वान्। प्रयाग-विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर। हिन्दी के अनन्य उपासक। सुवक्ता। प्र०—हिन्दी-साहित्यसंग्रह, हिन्दीसाहित्यरत्न। अनेक स्फुट लेख और भाषण। अखिल-भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के तीसवे अधिवेशन अबोहर (पंजाब) के सभापति।

रामनिरीक्षणसिंह, एम० ए०, काव्यतीर्थ। बिहार-विद्यापीठ के प्रोफेसर। र०—पवित्र जीवन, स्फुट लेखादि।

नन्दकिशोरलाल 'किशोर'। छतनेश्वर-निवासी। जन्म १६५८। मुख्तार।

र०—कुसुमकलिका, महात्मा विदुर (नाटक), बालबोध रामायण, आरोग्य और उसके साधन, मुक्तिधारा।

जयनारायण झा 'विनीत'। बैगनी-नवादा-निवासी। जन्म १६५६। कवि और कांग्रेसकर्मी। र०—घननादवध, दूत श्रीकृष्ण, वीर-विभूति, महिलादर्पण, कुंज, माला। (दे० पृ० ७७४)

कन्हैयाप्रसादसिंह, एम. ए., बॅंगरहटा निवासी। नालन्दा-कालेज के प्रोफेसर। 'विशालभारत' आदि में अनेक लेख। कहानी-लेखक। र०—चित्रकथा।

रमानाथ झा, एम. ए.। उजान-निवासी। स्फुट लेख। (दे० पृ० ५१)

श्रीकान्तठाकुर, विद्यालंकार। कोइलख-निवासी। सम्पादक—साप्ताहिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता), अब दैनिक 'विश्वमित्र' (बम्बई)। ग्रं०—नवीन शासनपद्धति। यशस्वी पत्रकार।

यमुना कार्यी, बी० ए०; देवपार-निवासी। 'भारतमित्र' और 'लोकसंग्रह' के सम्पादक। बिहार में किसान-आन्दोलन के एक नामी नेता।

शशिनाथ चौधरी, बी० ए०, बी० एड०। मिश्रटोला, दरभंगा। र०— मिथिला-दर्पण, भगवान् बुद्ध, सौन्दर्यविज्ञान, प्रेमविज्ञान, चरित्रगठन।

रामाशीष ठाकुर; एम० एल० ए०। डाक्टर। बथुआ-निवासी। स्फुट कविताएँ और लेख। पुस्तकालय-आन्दोलन के संचालक।

बी० पी० सिन्हा, बी० एस-सी० (लन्दन), बार-ऐट-लॉ। सिमरी-निवासी। उपनाम पन्ना बाबू। 'देश' के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक। 'संघर्ष' (लखनऊ) के प्रधान सम्पादक। मोतीलाल-मेमोरियल-हाइस्कूल (लखनऊ) के प्रिन्सिपल। उच्चकोटि के विचारक और आलोचक।

रामनन्दन मिश्र शास्त्री, पतोर-निवासी। किसान-सभा और साम्यवादी-दल के नेता। बिहार-महिला-विद्यापीठ और मगन-आश्रम (मझौलिया, दरभंगा) के संस्थापक। स्फुट लेख और भाषण।

सूर्यनारायणसिंह, एम० ए०, बी०-एल०, काव्यतीर्थ। तारापट्टी-निवासी। स्फुट लेख (दे० पृ० ६८१)।

शुकदेव ठाकुर, एम० ए०। र०—पंचामृत।

अनिरुद्धलाल, 'कर्मशील'। ताजपुर। जन्म १६६ । स्फुट कविताएँ। कवि।

वागीश्वरीसिंह, बॅंगरहटा-देवढ़ी निवासी। जन्म १६६३। स्फुट रचनाएँ।

राजदेव झा। भखराइन-निवासी। र०—शिवविवाह, स्फुट कविताएँ।

भुवनेश्वरसिंह 'भुवन'। आनन्दपुर-देवढी-निवासी। जन्म १६६३। सुकवि, सुलेखक, पत्रकार। दरभगा-राजवश के रईस। विद्यापति, लेखमाला, वैशाली, विभूति और तिरहुत-समाचार के सम्पादक। र०—अर्घ्य। (दे० पृ० ५२८; ५८६)

नरेन्द्रनाथदास,विद्यालंकार। सखवाड़-निवासी। र०—विद्यापति-काव्यालोक। विद्यापति और गोविन्ददास की कविताओं के मर्मज्ञ विशेषज्ञ।

सुभद्र झा, एम ए०। नागदह-निवासी। मिथिला-कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर मैथिली-साहित्य-मर्मज्ञ।

लक्ष्मीपतिसिह, बी० ए०; मघेपुर-देवढ़ी। र०—चारु चरितावली, चामुंडा। 'मैथिलवधु' (अजमेर) के सम्पादक। (दे० पृ० ७६०)

त्रिगुणानन्द कुमर, पुतई-निवासी। भूतपूर्व 'मिथिलामिहिर'-सम्पादक पं० योगानन्द कुमर के सुपुत्र। र०—अष्टावक्र।

यदुवीरसिंह। डाक्टर। होमियोपैथी-सम्बन्धी चार हिन्दी-पुस्तकें।

कमलनारायण झा 'कमलेश'। कैना-निवासो। जन्म १६६७। विहार-प्रान्तीय हिन्दूमहासभा के संयुक्त मंत्री। पुस्तकें—महाराज लक्ष्मीश्वरसिह, महाराज रमेश्वर-सिह, मंडन मिश्र, विहार के विद्यासागर, रामायण के पूर्वकाल की कहानियाँ, पडित योगानन्द कुमर, धनकुवेर कारनेगी, सर वाल्टर स्कॉट, छोटी-छोटी वेटियाँ, लार्ड किचनर, विलियम शेक्सपियर, ज्ञान की खोज में। (दे० पृ० ११७, ७८६)

रामेश्वर झा। वेहटा-वेनीपट्टी। जन्म १६६७। स्फुट लेख'। हास्य-रस के लेखक।

सुरेन्द्र झा 'सुमन' साहित्याचार्य। वर्त्तमान 'मिथिला-मिहिर'-सम्पादक। वल्लीपुर-निवासी। सुकवि और सुलेखक। स्फुट कहानियाँ और कविताऍ। (दे० पृ० ५३२, ५६२)

रामजी महथा जालवी। जाले-निवासी। स्फुट कविताएँ और लेख। डाक्टर। (दे० पृ० ७६३)

सूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव। समस्तीपुर। रच०—सरिता, चुम्बक, देश-भक्त, पराया पाप, समाज की चिता, होमशिखा, करुण पुकार, अतीत भारत, ठंढी आग। कुशल कहानी-लेखक और नाटककार तथा अभिनेता। (दे० पृ० ५५७)

आरसीप्रसादसिंह; एरौत-निवासी। सुविख्यात कवि और लब्ध-कीर्त्ति कहानीकार। ग्र०—कलापी, आरसी। (दे० पृ० ५५३, ५६८)

उमेशचन्द्र 'मधुकर'। समस्तीपुर। स्फुट कविताऍ। नवयुवक कवि।

देवनारायण कुँअर, 'किसलय', साहित्यालंकार। 'राष्ट्रसन्देश' (पूर्णिया) के

भूतपूर्व सम्पादक। कवि और आलोचक। स्फुट कविताएँ और आलोचनाएँ। र०—हिन्दी-कविता की आधुनिक प्रगति।

रामावतार प्रसाद 'अरुण'। समस्तीपुर। र०—अरुणिमा, स्फुट कविताएँ।

सारन

श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसादजी, बी० ए०, 'रूपकला'। जन्म १८६७। स्वर्गीय। मुबारकपुर-निवासी। परम भक्त महात्मा। इनकी विस्तृत सचित्र जीवनी आरा-निवासी बाबू शिवनन्दनसहाय की लिखी हुई, खड्गविलास प्रेस से, प्रकाशित है। हरिनाम-यश-संकीर्त्तन-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक। पहुँचे हुए सिद्ध सन्त। ग्रंथ—मीराबाई, तन-मन की स्वच्छता, शरीर-पालन, भागवत गुटका, भगवद्वचनामृत, सीताराम-मानस-पूजा, भगवन्नाम-कीर्त्तन, श्रीसीतारामीय प्रथम पुस्तक, पीपाजी की कथा, भक्तमाल की टीका। (दे० पृ० १४१)

रामधारी सहाय। डीही-निवासी। जन्म १६१४। स्वर्गीय। र०— गुरु-भक्ति-पचीसी, गोरक्षा-प्रहसन, महिमा-चालीसी, शिवमाला, कुमार-सम्भव (अनुवाद)।

लक्ष्मीप्रसाद गोकुल, बी० ए०, बी० एल०। छपरा। सत्तर वर्ष की आयु में, संवत् १६८३ में, देहान्त। प० अम्बिकादत्त व्यास के परम मित्र। अनेक सभाओं के सभापति। र०—उर्वशी और पृथ्वीराज (दो नाटक), संगीत-पत्रिका, अनेक लेख और भाषण मुद्रित बि० प्रा० हि० सा० सम्मे० (छपरा) के स्वागताध्यक्ष।

दामोदरसहायसिंह, 'कविकिंकर', बी० ए०, एल० टी०। शीतलपुर जन्म १६१५। स्वर्गीय। र०— सुधासरोवर, रसाल, सन्धिसन्देश, हिन्दी-गीता, भ्रातृ-भाव, उद्यम-विचार, काल-पचासा, श्रीहरिगीतिका, नृपसूर्यास्त, संकीर्त्तन-संगीत, कविता-कुसुम, चातक-चालीसी, हमारी शिक्षा-प्रणाली, शिक्षा-निबन्धावली, तर्क-शास्त्र, निगमन और आगमन। इनके सुपुत्र जगन्नाथप्रसादसिंह भी लेखक हैं। इनके द्वारा स० १६८६ में स्थापित एक पुस्तकालय (हिन्दी-मन्दिर) इनके घर पर है, जिसमें प्राचीन अलभ्य हिन्दी-पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का बहुमूल्य संग्रह है।

बालमुकुन्द पांडेय। बलुआ। १६२६ र०—गंगोत्तरी नाटक।

जीवानन्द शर्मा, काव्यतीर्थ; रसूलपुर-निवासी। जन्म १६३०। बाल-अभिनय, आदर्श हिन्दू, बाबा का ब्याह, छूत का भूत, चित्तौरगढ़-दमन, भारत-विजय आदि नाटकों के रचयिता। कवि, गायक, सुवक्ता, कथावाचक, पत्रकार। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) के प्रचारक रह चुके थे। 'श्रीकमला'

और 'प्रजाबन्धु' के सम्पादक। गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओं के ज्ञाता। बिहार में सबसे पहले प्रजाबन्धु लिमिटेड-कम्पनी खोलकर पटना में कई साल तक पत्रसंचालन का प्रयत्न किया। सन् १९३४ ई० में भूकम्प के शिकार हुए।

महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा, एम्० ए०। छपरा-निवासी। जन्म १८७४, मृत्यु १९२६। भारत-प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान्। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्राच्य-विद्याविभाग के प्रधानाध्यक्ष। पटना-कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर। अपने समय के एकच्छत्र उद्भट पंडित। अखिलभारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन (जबलपुर) के सभापति। स्वाधीनचेता मौलिक विचारक। मनस्वी और तेजस्वी लेखक। ग्रन्थ— यूरोपीय दर्शन, परमार्थदर्शन, ज्योतिर्विद्या (गोलाध्याय), भूगर्भविद्या, नरशास्त्र, विज्ञान का विकास, भारतीय इतिवृत्त, अधिकरणरत्नमाला सवार्त्तिक, हिन्दी-व्याकरणसार, मुद्गरानन्दचरित, सभ्यता का विकास आदि। एक वृहत् कवितावद्ध संस्कृत-कोष अप्रकाशित। अनेकानेक ग्रन्थों और लेखों के स्रष्टा। (दे० पृ० १४५, ५४३)

गोप्य अली देवी, 'ज्ञानकला'। अपहर-निवासिनी, राम-भक्तिपरायणा विदुषी महिला कवयित्री। जन्म १८३५, मृत्यु १८७७। र०— सियावरसप्तक, हनुमानाष्टक, रामनाम माहात्म्य-चालीसा, विनय-पचासा, झूला-बहार, श्रीहनुमान-यशावली, श्रीसीताराम-होली-बहार, आनन्दनिधि-दोहावली (अप्रकाशित), जयजयकार-शतक, युगल-केलि-गीतावली, शिवाष्टक, श्रीसीताराम-नखशिख।

शुकदेवनारायण। डीही। १८३६। र०—नारदमोह वाटिका।

रायसाहब कालिकासिंह, खलपुरा-निवासी। जन्म १८४१, मृत्यु १८८३। सरकारी जिला-स्कूलों और ट्रेनिंग-स्कूलों के हेडमास्टर, इन्स्पेक्टर, टेक्स्टबुक कमिटी के सेक्रेटरी और ट्रेनिङ्ग-कालेज के प्रोफेसर। र०—बालोपयोगी इतिहास, भगवद्गीता का हिन्दी-भाष्य। (दे० पृ०-६१६)—('बालक', वर्ष १०, पृष्ठ ३६५)

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, एम एल., जीरादेई निवासी। जन्म १८८४। देशपूज्य राजनीतिक नेता। राष्ट्रीय महासभा (बम्बई कांग्रेस) के अध्यक्ष (राष्ट्रपति)। अखिलभारतीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलन (नागपुर) के सभापति। राष्ट्रभाषा-सम्मेलनों (कोकनाडा, काशी, कलकत्ता) के सभापति। विहारप्रादेशिक हिं० सा० सम्मे० (दरभंगा) के सभापति। राष्ट्रभाषाप्रचार के सुदृढ स्तम्भ। 'देश'-संपादक। भारत के गौरवालंकार। त्यागमूर्त्ति तपस्वी। र०—चम्पारन में महात्मा गांधी, अर्थशास्त्र, संस्कृत का अध्ययन। (दे० पृ० १४८, ५७७-७८, ६१६)।

कालिकाप्रसाद; डिह्मौरा निवासी। स्व०। र०—सियास्वयंवर।

श्रीमती रत्नावली शर्मा। उपर्युक्त महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा की स्वर्गीया धर्मपत्नी। इनकी सभी कन्याएँ विदुषी और लेखिका हैं। इनके सुपुत्र प० नलिनविलोचनशर्मा, एम० ए०, नामी कहानी-लेखक हैं इनके लेख 'सुधा' और 'माधुरी' में निकले थे।

रघुवीरनारायण, बी० ए०। नयागाँव-निवासी। जन्म १६४१। बनैलीनरेश स्व० राजा कीर्त्यानन्दसिंह बहादुर, बी० ए०, के प्राइवेट सेक्रटरी थे, अभी तक उसी दरबार में हैं। इनके सुपुत्र श्रीहरेन्द्रदेवनारायण, एम० ए०, बिहार के नवयुवक कवियों में अत्यन्त प्रतिभाशाली एव प्रसिद्ध हैं। र० —बटोहिया (भोजपुरी भाषा में राष्ट्रीय गीत, जो बिहार के गाँव-गाँव में गूँज गया है), भारतभवानी, रघुवीर-रसरंग, रघुवीर-पत्रपुष्प। अँगरेजी के उच्च कोटि के कवि। इगलैंड के राजकवि ने इनकी कविताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। परम ईश्वरभक्त पुरुष हैं। हिन्दी में अपूर्व 'आत्मकथा' लिख रहे हैं। (दे० पृ० ४२२)

रामनारायण मिश्र, सांख्यरत्न, काव्यतीर्थ। छपरा-निवासी। जन्म १६४३। र० —जनक बाग दर्शन और कंसबध (दो नाटक), विरुदावली, भक्तिसुधा।

जगन्नाथशरण, ऐडवोकेट, जमीन्दार और रईस। भगवानबाजार, छपरा। प्रसिद्ध वकील। र० अम्बिकादत्त व्यास के साहित्यिक शिष्य। स्वर्गीय। शारदा-नाट्यमंदिर (हिन्दीरंगशाला) के निर्माता। इनका पुस्तक-संग्रहालय इन्हीं के नाम की स्मृति में राजेन्द्रकालेजिएट स्कूल में सुरक्षित है, जिसमें अनेक अलभ्य प्राचीन साहित्यिक ग्रथ हैं। र०—नीलमणि, अनन्त सुन्दरी, कुरुक्षेत्र (नाटक) इत्यादि। इन्हीं के सुपुत्र श्रीहरिहरशरणजी राजेन्द्रकालेज के संस्थापक हैं।

फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस०-सी०। जन्म १६४८। कौसड़-निवासी। हिन्दू-विश्व-विद्यालय (काशी) में रसायन-विभाग के प्रधान प्रोफेसर। विज्ञानपरिषद् (प्रयाग) के सभापति। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के वैज्ञानिक कोष के सम्पादकों में। पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों वैज्ञानिक लेख। र० —प्रारम्भिक रसायन (दो भाग), साधारण रसायन (दो भाग)। (दे० पृ० ६७)

मथुराप्रसाद दीक्षित 'विशारद'। पिरारी-निवासी। जन्म १६५१। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापकों में। तरुणभारत, देश, नवयुवक के सम्पादक। स्व० महाराजाधिराज सर रमेश्वरसिंह (दरभंगा) के पर्सनल-असिस्टेंट।

सुलेखक और कुशल पत्रकार। र०—बाबू कुँवरसिंह, नादिरशाह, विदेशों में भारतीय विप्लवी वीर, गोविन्दगीतावली की टीका-टिप्पणी।

जनार्दन पाठक। भेलही। १६५२। र०—देशोद्धार, स्वराज्य, युधिष्ठिर।

सॉवलियाविहारीलाल वर्मा, एम० ए०, बी० एल०। मथुराभवन, छपरा। १६५३। रच०—यूरोपीय महाभारत (१६१४–१८), गद्यचन्द्रोदय, गद्यचन्द्रिका, लोकसेवक महेन्द्रप्रसाद। सीतामढ़ी मे ऐडवोकेट। अर्थशास्त्री। देशाटनप्रेमी। साहित्यसम्मेलनों के अनुरागी और नियमावली निर्माण मे विधानाचार्य। पटना-कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर। नैपाल पर एक बड़ी पुस्तक लिख रहे हैं।

राहुल सांकृत्यायन, महापडित, त्रिपिटकाचार्य। जन्म १६५३—आजमगढ जिला, कर्मक्षेत्र—सारन जिला। बौद्ध सन्यासी। र०—बुद्धचर्या, धम्मपद, मज्झिमनिकाय, दीर्घनिकाय, विनयपिटक, तिब्बत में बौद्धधर्म, तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी तिब्बतयात्रा, मेरी यूरोपयात्रा, लद्दाखयात्रा, लका, ईरान, जापान, सोवियत भूमि, साम्यवाद ही क्यो, बाईसवीं सदी, कुरान-सार, पुरातत्त्व निबधावली, शैतान की आँख, जादू का मुल्क, सोने की ढाल, विस्मृति के गर्भ मे, सतमी के बच्चे, दिमागी गुलामी, तुम्हारा क्षय, क्या करें इत्यादि। (दे० पृ० ६२२—२३—२४) किसान-आन्दोलन के एक नेता। उद्भट लेखक।

शिवप्रसाद गुप्त। हथुआ-निवासी। जन्म १६५३। सन् १६२२–२४ में काशी ना० प्र० सभा मे थे। पाटलिपुत्र, ज्ञानशक्ति, हिन्दी-मनोरजन, महिलादर्पण, आर्य-महिला, विजय आदि में स्फुट कहानियाँ और कविताएँ। जूही (कानपुर) मे आचार्य द्विवेदीजी के साथ रहे। 'माधुरी' मे लेख।

राजवल्लभ सहाय। मॉझी-निवासी। 'हिन्दीशब्दसग्रह' कोष (ज्ञानमंडल, काशी) के सयुक्त सम्पादक। काशी-विद्यापीठ में अध्यापक। विद्वान् लेखक और पत्रकार।

हरिवंश मिश्र, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य। मिश्र-बतरहाँ-निवासी। सन् १६२१ मे देहान्त। सरस्वती, इन्दु, ज्ञानशक्ति मे कविता और आलोचना।

कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय। कालीबाड़ी, छपरा। १६५४। सुलेखक और पत्रकार। कुटीर-शिल्प-कला कुशल। सहकारी और सम्पादक—भारतमित्र, हिन्दू-पच, विजय, बॉसुरी, हलधर, दारोगादफ्तर आदि। र०—मुस्तफा कमाल पाशा, सती सुभद्रा, मणिपुर का इतिहास, सावित्री-सत्यवान, नल दमयन्ती, सती पार्वती, सीता देवी, शैब्या-हरिश्चन्द्र, सती शकुन्तला, देवी द्रौपदी, श्रीरामकथा, (बॅगला),

हिन्दी-वर्ण-परिचय (दो भाग , बाग-बगीचा, साग सब्जी, कृषि और कृषक, किराने की खेती, भदई की फसलों की खेती, रबी की फसलों की खेती, तेलहन की खेती, प्रेम-निकुञ्ज। (अनुवादित) चरित्रहीन, चन्द्रशेखर. कपालकुंडला, युगलांगुलीय, राधा रानी, शैतानी शरारत शैतान की नानी, खूनियों का जत्था, रणभूमि का रिपोर्टर, टर्की का कैदी, कैदी की करामात, जर्मन जासूस, पिशाचिनी, चीना सुन्दरी, जासूसी गुलदस्ता, जासूस की डायरी, जासूस की झोली, रेगिस्तान की रानी, हवाई क़िला, कापालिक डाकू, चांडाल चौकड़ी। दो मौलिक पुस्तकें भिन्न नामों से—विद्रोही राजा (के० एम्० भारद्वाज), कलकत्ता रहस्य—दो भाग (पोलखोलानन्द)। दूसरों के नामों से लिखी इनकी अनेक पुस्तकें हैं। हाथ का बना कागज तैयार करने को कला में अत्यन्त निपुण हैं। बँगला से अनेक पुस्तकों का अनुवाद। (दे० पृ० ५६०)

सूर्यनारायणसिंह, एम० ए०। छपरा। जन्म १६५३। र०—रायसाहब रामलोचनशरण (जीवनी)। रामायण के मार्मिक विद्वान् और भक्त।

विश्वनाथप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०, साहित्यरत्न, साहित्याचार्य। छपरा-निवासी पटना-कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर। सुलेखक और सुकवि। र०—मोती के दाने। स्फुट लेख और कविताएँ।

विश्वमोहनकुमारसिंह, एम० ए०। सज्जनपुर-निवासी। जन्म १६५७। चंद्रधारी-मिथिला-कालेज दरभंगा) के प्रिन्सिपल। स्फुट लेख, कहानियाँ, आलोचनाएँ। दो अप्रकाशित उपन्यास। (दे० पृ० ७३१)

कामेश्वरप्रसाद, एम० ए०। छपरा। १६५८। स्फुट कविताएँ। शिक्षक।

वीरेशदत्तसिंह 'विशारद'; एम० ए०, बी० एल०; एम० एल० ए०; साहित्याचार्य। कलकत्ता के कई दैनिक पत्रों के सम्पादकीय विभाग में काम किया है। स्फुट लेख। राजेन्द्र कालेज (छपरा) के संयुक्त मंत्री।

पारसनाथसिंह, बी० ए०, बी० एल०, परसा निवासी। कलकत्ता के दैनिक पत्रों के सम्पादन-विभाग में रह चुके हैं। 'सरस्वती' के लेखक और कवि। आचार्य द्विवेदीजी के स्नेहभाजन लेखकों में। दानवीर सेठ घनश्यामदास बिड़ला के प्राइवेट सेक्रेटरी हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली) के प्रबन्धक। अब सर्चलाइट (पटना) के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर। र०- पक्षी-परिचय, आँखों देखा युद्ध। अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और साहित्यिक लेख तथा स्फुट कविताएँ।

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम० ए० (त्रितय) सीवान निवासी। पटना

कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर। निबन्धकार और समालोचक। र०— पुरुषप्रकृति और रमणी-निर्माण, गुप्तजी के काव्य मे कारुण्यधारा, हरिऔधजी का प्रियप्रवास, सन्त कवि दरियादास। 'रोशनी'-सम्पादक (दे० पृ० ७३)

जयप्रकाशनारायण। सिताब-दियारा-निवासी। जन्म १९५८। अमेरिका मे एम० ए० पास किया। भारत-प्रसिद्ध साम्यवादी नेता। कविताएँ भी लिखा करते थे। हिन्दी में स्फुट लेख, वक्तव्य, भाषण आदि। 'जनता' के जन्मदाता।

कपिलदेवनारायणसिंह 'सुहृद'। सिताब-दियारा। र०—बन्दी, प्रेमालाप आदि।

महामायाप्रसादसिंह। पटोरी निवासी रईस। जिले के कांग्रेसी नेता। यूरोप यात्रा-सम्बन्धी लेखमाला। व्यायामप्रणाली के विशेषज्ञ। सुवक्ता।

विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री। बिलासपुर-निवासी। 'सूर्योदय' और 'सुप्रभातम्' (काशी) के सम्पादक। 'आर्यमहिला' मे अनेक धार्मिक लेख। सेंट्रल हिन्दू स्कूल (बनारस) मे हेडपंडित।

गोपाल शास्त्री, दर्शन-केसरी। काशी-विद्यापीठ मे अध्यापक। धर्मशास्त्र-सम्बन्धी अनेक स्फुट लेख। विद्वान् वक्ता। (दे० पृ० ५७)

डाक्टर सत्यनारायण, पी० एच्० डी०। मलखाचक-निवासी। (दे० पृ० ५५४)। इनकी कई पुस्तकें बँगला-भाषा मे भी प्रकाशित हुई है। अद्भुत प्रतिभाशाली।

भगवतीप्रसादसिंह 'शूर'। चौतरिया-रियासत। सुप्रतिष्ठित साहित्यानुरागी रईस। साहित्यिक आयोजनों और समारोहों मे गहरी दिलचस्पी। स्फुट लेख और भाषण। म० म० रामावतार शर्मा के संस्मरण लेखक।

नलिनीबाला देवी। कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय की पत्नी। र०—शकुन्तला।

हरेश्वरदत्त, बी० ए०, बी० एल०, 'मिमिकमैन'। छपरा। हास्यरस के अनेक लेख।

उपेन्द्रनाथ मिश्र। शीतलपुर। जन्म १९५६। स्फुट कविताएँ।

पांडेय जगन्नाथप्रसादसिंह। शीतलपुर। जन्म १९६२। पूर्वोक्त स्वर्गीय कवि किंकरजी के सुपुत्र। र०—बालविनय, भारतगीत, स्फुट लेख आदि।

ठाकुर मंगलप्रसादसिंह। पोखरपुर-परसा-निवासी जन्म १९६४, मृत्यु १९९८। 'वाणीमन्दिर' (छपरा) और वाणीमन्दिर प्रेस के संस्थापक और संचालक। उत्साह और स्वावलम्बन के मूर्त्तिमान् आदर्श। अनेक साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक। र०—बिहार के नवयुवक हृदय।

मृत्युञ्जयप्रसाद विद्यालंकार। जीरादेई निवासी। जन्म १९६८। देशरत्न

डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के सुपुत्र। 'देश' और महात्मा गांधी के 'हिन्दी-नवजीवन' के सहकारी सम्पादक। र०—अनीति की ओर, भारतवर्ष की प्रधान एकता।

श्यामदेवनारायण (दीपाजी); सहुली-निवासी। उत्साही कांग्रेसकर्मी। र०—वोटरों का राज्य, भोजपुरी-कहावत-संग्रह।

अच्युतानन्दसिंह; अतरसन-निवासी। जन्म १६७१। 'साहित्य सेवक'-कार्यालय (छपरा) तथा साहित्य प्रेस के स्वामी और संचालक। 'गंगा' में स्फुट लेख। कई साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक।

भुवनेश्वरप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०। 'भुवनेश कवि'। छपरा-निवासी व्रजभाषा के सुन्दर कवि। राजेन्द्र कालेज (छपरा) में संस्कृत के प्रोफेसर, संगीत कला के मर्मज्ञ। चमत्कारपूर्ण स्फुट कविताएँ।

श्रीराघवेन्द्रदेवनारायण, बी० ए०, बी० एल०। नयागाँव-निवासी। कविवर श्रीरघुवीनारायणजी के भ्रातुष्पुत्र। स्फुट कविताएँ।

कमलेश्वरी देवी। कवयित्री। उक्त राघवेन्द्रजी की धर्मपत्नी। स्फुट कविताएँ।

अवधविहारी श्रीवास्तव। पकड़ी-नरोत्तम-निवासी। स्फुट लेख।

रामेश्वरप्रसादसिंह, एम० ए०। र०—सीतारामीय पद्य-संग्रह।

शत्रुदमनप्रसाद शर्मा। शंकरपुर। जन्म १६७५। र०—मणिमाला।

प्रेमकुमार वर्मा। डीही-निवासी। र०—प्रतीक्षा (कहानीसंग्रह)।

हरेन्द्रदेवनारायण, एम० ए०। नयागाँव। पूर्वोक्त कविवर श्रीरघुवीरनारायणजी के सुपुत्र। अत्युत्कृष्ट स्फुट कविताएँ। बड़े मस्त और भावुक कवि। बिहार की नई पीढ़ी के नवयुवक कवियों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली।

श्रीमती प्रकाशवती देवी। उक्त हरेन्द्रदेवजी की धर्मपत्नी। सुन्दर कवयित्री। स्फुट कविताएँ—'क्रान्ति का शिशु', 'आजादी की बुलबुल' आदि।

शिवेन्द्रनाथ दीक्षित, बी० ए०। संगीतज्ञ। 'विजय' के सम्पादक। (५६०)

रामचन्द्र द्विवेदी। 'देश'-सम्पादक। साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक।

पुष्पदन्तप्रसाद जैन। दौलतगंज, छपरा। सुप्रतिष्ठित साहित्य-प्रेमी रईस। साहित्यपरिषद् के मंत्री। स्फुट लेख। काशी-निवासी कलाविद् राय कृष्णदासजी के प्रिय जामाता।

व्रजशंकरप्रसाद, वसंतपुर-निवासी। 'योगी'-सम्पादक। (दे० पृ० ५७६, ६१६—१७) परमोत्साही एवं कर्मठ पत्रकार।

व्रजनन्दन 'आजाद', बी० ए०। हिन्दुस्तानी-विरोधी स्फुट लेख सौरेजी-निवासी कुशलपत्रकार। बि० प्रा० हिं० सा० सम्मे० के सयुक्त मन्त्री।

रमानाथ, एम० ए०। छपरा। र०— सूर-माधुरी।

आचार्य कपिलदेव शर्मा, सतीशचन्द्र शर्मा, सियावरशरण; शकरनाथ विद्यार्थी छपरा)। हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी लेख और भाषण।

चम्पारन

चन्द्रशेखरधर मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक चूडामणि, विद्यालंकार, कवीन्द्र, वैद्यरत्न। रत्नमाला-निवासी। उदुम्बर-सार नामक अमोघ ओषधि के आविष्कर्त्ता। जन्म १६१५। श्रीचन्द्रोदय-औषधालय (रत्नमाला और काशी) के संस्थापक। पीयूषपाणि भिषग्-रत्न। श्रीचन्द्रोदय-महाशिक्षा सदन (सस्कृत-महाविद्यालय, रत्नमाला) के सस्थापक और सचालक। औषधालय और विद्यालय के लिये अपनी सारी सम्पत्ति अर्पित कर दी है। बिहार प्रादेशिक पचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (पटना) के सभापति। सस्कृत और हिन्दी के प्रकांड विद्वान् तथा सुकवि। रच०—तीस पद्यग्रंथ, एक नाटक, पाँच उपन्यास, कई जीवनियाँ। 'विद्याधर्मदीपिका' (नि शुल्क पत्रिका) के जन्मदाता और सम्पादक। भारतेन्दु-युग के यशस्वी साहित्यसेवी। (दे० पृ० ५३८, ५५९, ५६१, ६१३)। काशी-प्रवास कर 'आत्मकथा' लिख रहे हैं, 'आविष्कार' मासिकपत्र निकाल रहे हैं। नई रचना—आरोग्य-प्रकाश।

त्रिलोचन झा। बेतिया-निवासी। जन्म १६३५। स्वर्गीय। रच०—गणपति-शतक, मगलशतक, आत्मविनोद, जनेश्वरविलाप, शोकोच्छ्वास, कलानदविनोद, मिथिला की वर्त्तमान अवस्था, सम्मेलन-सवाद, शकुन्तलोपाख्यान, जीवन-चरितविषय।

देवीप्रसाद उपाध्याय (फौजदार कवि), रामनगर-निवासी। स्वर्गीय। रामनगर राज्य (चम्परन) के दीवान। काशी की जेनरल ट्रेडिङ्ग कम्पनी के स्वामी। 'सुन्दर सरोजनी' आदि कई उपन्यास लिखे। स्फुट कविताएँ।

इन्द्रनारायण द्विवेदी। केसरिया-निवासी। स्वर्गीय। तुलसीकृत रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार और विशेषज्ञ। यशस्वी रामायणी।

रामजीशरण विन्ध्याचलप्रसाद। हरपुरनाग-निवासी जन्म १६३६ स्वर्गीय। रच०—श्रीकृष्णायन, विनयरत्नाकर, अष्टकभंडार, कामादि वशीकरण, नामयश दर्पण, नामयशकुटीर, जानकीयशतरगिणी, सीतासुयशावली, गुरुवन्दना, विलोम-



स्वर्गीय हरिगोविन्द चौधरी, बेरि-(दरभंगा)-निवासी
(भागलपुर-कॉलेज के हिन्दी-अध्यापक)



श्रीशिवेन्द्र दीक्षित, बी० ए०
(पृ० ५६०)



पं० शिवराम झा
[गोवर्द्धन-विद्यापीठ-(देवघर)
के संचालक]



स्वर्गीय प० शिवनन्दन ठाकुर, एम्० ए०
(पृ० ६६७)



डॉक्टर जनार्दन मिश्र, एम्० ए०, साहित्याचार्य
[प्रोफेसर, बी० एन्० कॉलेज (पृ० ६७२ ट)]



श्रीयुत पीर मुहम्मद मूनिस, बेतिया
(पृ० ६७२ क)



अब्दुल गफूर नौमानी
(पृ० १००४)

दोहावली, शारदा-लम्बोदर, प्रह्लादसौगन्द, कलह-मोचिनी, विपत्तिभंजन, कल्प-लतिका, हनुमद्यशपताका, महासंकटमोचन, तुलसीचालीसा, सूर्यचालीसा, भवसागर-नौका, सद्गुरुचालीसा, प्रेमविवर्द्धिनी, आनन्दगुटिका, गीतमुक्तावली, सज्जन-चरितमाला, विन्ध्याचल-संहिता, मगलमयूष, रामस्तवतिलक, प्रेमकुसुमाञ्जलि, विनयपुष्पाञ्जलि, पत्रविन्यास।

शिवनन्दन पांडेय। रच०—चम्पारण रहस्य या चम्पारण का प्राथमिक इतिहास (क्राउन प्रेस, मोतीहारी में मुद्रित)।

पांडेय जगन्नाथप्रसाद, एम० ए०, दर्शनकेसरी। शिकारपुर-निवासी। स्वर्गीय। मासिक 'सत्ययुग' के सम्पादक। पटना-कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर। स्वनामधन्य विद्वद्वर प० रामावतार शर्मा के परम प्रिय विद्यार्थी। हिन्दी के सुन्दर वक्ता और लेखक। उद्भट् विद्वान्।

सेठ राधाकृष्णजी। बेतिया। बिहार-प्रान्तीय द्वितीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष। स्वर्गीय।

पीर महम्मद मूनिस। बेतिया। ज० १८५१। रच०—मूनिसग्रंथावली; राष्ट्रीय जागृति-सम्बन्धी अनेक स्फुट लेख प्रताप, अभ्युदय, कर्मयोगी आदि में। बि० प्रा० हि० सा० सम्मे० (आरा) के अध्यक्ष। सच्ची लगन के हिन्दी-सेवक।

देवव्रत शास्त्री; गोरे-निवासी। जन्म १८५८। कानपुरी 'प्रताप' के भूत-पूर्व सहकारी सम्पादक। 'नवशक्ति' और 'राष्ट्रवाणी' के वर्त्तमान सम्पादक। बिहार में पत्रसंचालन-सम्बन्धी सफलता के आदर्श उन्नायक। रच०—गणेशशंकर विद्यार्थी, मुस्तफा कमालपाशा। (दे० पृ० ५५१, ५७३, ६१६, ६१८)

धनराजपुरी। सिकटा-निवासी। जन्म १८६०। र०—विधवा, हितोपदेश, स्फुट कविताएँ। कवि और लेखक।

गोपालसिंह नेपाली। बेतिया। सुप्रसिद्ध कवि। रच०—पंछी, रागिणी, रिमझिम, उमंग, हमारी राष्ट्रवाणी, पीपल का पेड़, कल्पना आदि। (दे० पृ० ५५३)

भगवतीप्रसाद वर्मा। शिकारपुर। बेतिया-राज्य के हिन्दी हितैषी मैनेजर श्रीविपिनविहारी वर्मा बारिस्टर के अनुज। जिला-साहित्य-सम्मेलन के उत्साही संचालकों में। बि० प्रा० हि० सा० सम्मे० के मोतीहारी-अधिवेशन के अध्यक्ष।

भगवतीचरण वर्मा। मोतीहारी। कवि और लेखक। स्फुट कविताएँ।

दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम० ए०। सुबैया-निवासी। ज० १८६८। पटना-कालेज में अँगरेजी साहित्य के प्रोफेसर। गम्भीर विचारक और सूक्ष्मदर्शी

समालोचक। संवेदनशील कवि और कहानी-लेखक। नई सूझ और नई कल्पना के धनी। (दे० पृ० ५६६, ६१७)

देवदूत विद्यार्थी। मोतीहारी। दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-केन्द्र में बीस बरसों से काम करते हैं। सुलेखक और सुवक्ता र०—तूणीर।

जगन्नाथप्रसाद 'मनुज'। बेतिया। र०—स्फुट लेख।

विश्वम्भरप्रसाद, एम० एस०-सी०। मेहसी-निवासी। उपनाम—स्वामी विद्यानन्द। 'किसानसमाचार' (मुजफ्फरपुर) के संस्थापक और सम्पादक।

महादेवप्रसाद, बी० ए०, विशारद। केसरिया-निवासी। स्फुट लेख।

जंगबहादुर सिंह 'विजयी'। स्कूली किताबों के लेखक।

श्रीधरशरण, एम० ए०। जिहुली। स्फुट लेख।

व्रजकिशोरनारायण। मलाही। र०—किशोर-गल्पावली।

रामसजीवनसिंह, बी० ए०, बी० एड०। जिहुली। सुन्दर भावपूर्ण कविताएँ।

हरवंश सहाय, बी० ए०। र०—आयरलैंड की स्वतंत्रता का इतिहास।

रामसुन्दर द्विवेदी। बेतिया। स्फुट लेख। जिला सम्मेलन के संचालकों में।

गणेश चौबे। मोतीहारी। देहाती गीतों और कहावतों के संग्रहकर्त्ता। तत्सम्बन्धी स्फुट लेख। ग्रामगीतों के अत्यन्त उत्साही अन्वेषक।

भागलपुर

नौरंगीलाल चौधरी 'नन्ददास'। कहलगाँव। जन्म १६२०; मृत्यु १६८९। रच०—जगन्नेत्र, नन्दसागर, श्रीहरिनामाष्टक।

ब्रह्मदत्त चौबे। छतहार। जन्म १६३०। स्वर्गीय। र०—हितोपदेश।

राधाकृष्ण झा, एम० ए०। कहलगाँव। जन्म १६४५, मृत्यु १६८३। पटना-कालेज मे अर्थशास्त्र के प्राफेसर। बड़े मेधावी और साहित्यिक प्रवृत्ति के हँसोड़ व्यक्ति। रच०—भारत की शासनपद्धति, भारत की साम्पत्तिक अवस्था, राजनीतिक अर्थशास्त्रसम्बन्धी कई अप्रकाशित ग्रंथ। (दे० पृ० ६१३, ६१६)

द्वारकाकृष्ण दत्त। भलुआही। जन्म १६४५, मृत्यु १६७०। र०—मानस-रंगतरंगिणी, द्वारकाविनोद, स्फुट गीत और कविताएँ।

जगदीश झा 'विमल'। कुमैठा। १६४८। र०—वीणा-झंकार, पद्यप्रसून, पद्यसंग्रह, खरा सोना, जीवनज्योति, लीला, आशा पर पानी, दुरंगी दुनिया, रमणी, सावित्री, महावीर, सतीपंचरत्न, आदर्श सम्राट् आदि अस्सी पुस्तकें प्रकाशित।

संस्कृत, बँगला, मराठी आदि के ज्ञाता। कवि, कथाकार और अनुवादक। (दे० पृ० ५५१, ५६२, ६०६)

डाक्टर जनार्दन मिश्र, एम० ए०, साहित्याचार्य। मिश्रपुर। जन्म १६५०। बी० एन० कालेज (पटना) में हिन्दी के प्रधान प्रोफेसर। रच०—विद्यापति, भारतीय संस्कृति की प्रस्तावना, सूरदास, कई सकलित और सम्पादित पुस्तकें। दार्शनिक और समालोचक। (दे० पृ० ५५३, ६१७

ज्योतिषचन्द्र घोष, बी० ए०। रूपसा निवासी। जन्म १६५४, मृत्यु १६८४। रच०—सिकन्दर और पुरु (खडकाव्य)। 'सुरभि'-सम्पादक।

शिवदुलारे मिश्र, 'मधुकर', बी० ए०, बी० एल०। लालूचक। जन्म १९५४। कवि और लेखक। रच०—तिलकतरग, स्फुट कविताएँ।

जगदीश कवि। परसरमा। र० प्रतापप्रशस्ति, बूटी रामायण। दरभगा और नैपाल के दरबारो से सम्मानित। सोनबरमा (भागलपुर) के राजा राणा रुद्रप्रतापनारायणसिंह बहादुर से गजदान पाया है।

भूषणसिंह 'भूषण'। बाँका। र०—भूषण-सतसई।

कालीकुमार मुखोपाध्याय, एम० ए०-(त्रितय)। भागलपुर। सरस्वती, माधुरी आदि उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण लेख।

बनारसीप्रसाद झुनझुनूवाला, बी० ए०, बी० एल०। भागलपुर। प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता। अनेक सामाजिक और राजनीतिक लेख। हरिनगर (चम्पारन) की सुगर-मिल के मैनेजर।

अशरफी मिश्र, बी० ए०। गोसाईंगाँव। दैनिक 'शान्ति' (भागलपुर) और दैनिक 'जनक' (पटना) के सम्पादक। रच०—धनकुवेर कारनेगी।

शिवनन्दन मंडल, बी० ए०, बी० एल० मधेपुरा। बिहार की कांग्रेसी सरकार के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी। रच०—भारत की झलक, स्फुट लेख।

हरकिशोरप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०। चाँदन। 'भारतमित्र'-सम्पादक।

श्रीकृष्ण मिश्र, एम० ए०, बी० एल०। लालूचक। र०—प्रेमा, महाकाल।

छेदी झा 'द्विजवर'। बनगाँव। र०—गंगालहरी सटीक, मिथिला की वर्त्तमान दशा, स्फुट कविताएँ।

चंडीप्रसाद ठाकुर। कदराचक। स्फुट कविताएँ।

अच्युतानन्द दत्त। भलुआही-निवासी। जन्म १६५६। 'बालक' के सहकारी सम्पादक। जयन्ती-स्मारक ग्रंथसम्पादक। संस्कृत और व्रजभाषा के साहित्य

का अत्यन्त गम्भीर अनुशीलन। पौराणिक साहित्य के पंडित। रच०—तुलसी-सतसई की टीका, पार्वतीमंगल की टीका, छन्दचन्द्रिका, सचित्र भूषणग्रन्थावली सटीक, कवितावली की टीका, गीतावली की टीका, सूरसरोवर टिप्पणी सहित, पौराणिक बालक, मौर्य चन्द्रगुप्त, वीरवर हम्मीर, संन्यासी रामतीर्थ, गोस्वामी तुलसीदास, सूर्यनमस्कार, गाँव, रहीम, जमशेदजी ताता, रामायण, महाभारत। बालसाहित्य के कुशल रचयिता (दे० पृ० ५५०)

रामेश्वर झा, 'द्विजेन्द्र', एम० ए०। जन्म १९६०। स्फुट कविताएँ, कहानियाँ और लेख।

जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज', एम० ए०। रामपुरडीह-निवासी। जन्म १९६१। राजेन्द्र-कालेज (छपरा) में हिन्दी के प्रधान प्रोफेसर। लब्धकीर्त्ति कथाकार, सुकवि, सुलेखक और समालोचक। विहार के सर्वश्रेष्ठ सुवक्ता। इन्होंने अपने ओजस्वी व्याख्यानों से युक्तप्रान्त और पंजाब तक में बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। रच०—किसलय, मृदुदल, मालिका, मधुमयी, अनुभूति, अन्तरध्वनि, प्रेमचन्द की उपन्यास-कला, चरित्ररेखा। (दे० पृ० ५५०, ५६३, ५९९, ६१७)

सतीशचन्द्र मिश्र, एम० ए०। रामपुरडीह। बी० एन० कालेज (पटना) में इतिहास के प्रोफेसर। रच०—भारतवर्ष का इतिहास। (दे० पृ० ७३४)

कृपानाथ मिश्र, एम० ए०। चम्पानगर। साइन्स-कालेज (पटना) में अंगरेजी साहित्य के प्रोफेसर। सुप्रसिद्ध लेखक। रच०—मणिगोस्वामी (नाटक), देश की बात, बालकों का योरप, साहित्यिक प्रबन्धसंग्रह, हिन्दोस्तानी की कहानियाँ, प्यास, अँगरेजी उच्चारण-विधि। 'रोशनी'-सम्पादक। (दे० पृ० ५६६)

नोखेलाल शर्मा, एम० ए०, काव्यतीर्थ। सुरिहारी। र०—मणिमाला।

साहित्याचार्य 'मग'। छतहार। 'गंगा' और 'हलधर' के सम्पादक। संस्कृत और हिन्दी के सुन्दर कवि और लेखक। र०—रतिरहस्य। (दे० पृ० ५८०)

भगवान मिश्र 'निर्वाण'। चम्पानगर। जन्म १९६३। स्फुट कविताएँ।

झारखंडी झा, बी० ए०। बैजानी। र०—भागलपुर-दर्पण (उत्तम ग्रंथ)।

माहेश्वरी सिंह 'महेश', एम० ए०। पकरिया। टी० एन० जे० कालेज (भागलपुर) में हिन्दी के प्रोफेसर। प्रसिद्ध लेखक और कवि। र०—सुहाग, युगवाणी, अनेकानेक सामयिक लेख। 'बीसवीं सदी' के सम्पादकों में।

सत्यनारायण पोद्दार, बी० ए०। भागलपुर। र०—वज्रपात (गद्यकाव्य)।

लक्ष्मीकान्त झा, आइ० सी० एस०। बरारी। र०—'मैंने कहा'। (दे० पृ० ५५६, ५६८)। विशिष्ट प्रतिभाशाली कथाकार और निबन्ध-लेखक तथा समालोचक।

सत्येन्द्रनारायण अग्रवाल, बी० ए०। भागलपुर-निवासी प्रतिष्ठित रईस। 'बीसवीं सदी' के सम्पादकों में। काशी के प्रसिद्ध नेता और हिन्दीलेखक श्रीप्रकाशजी के प्रिय जामाता। स्फुट लेख।

तारकेश्वरप्रसाद। भागलपुर। 'बीसवीं सदी' के सम्पादकों में। कुशल कहानी लेखक। रच०—गाँव की जमीन पर (उपन्यास)। (दे० पृ० ५७१)

हंसकुमार तिवारी। चम्पानगर। प्रसिद्ध कवि, कहानी-लेखक, निबन्धकार, समालोचक और पत्रकार। किशोर, बिजली और छाया के सम्पादक। र० – कला, स्फुट कविताएँ और आलोचनात्मक निबन्ध। (दे० पृ० ५६६)

सिद्धिनाथ झा, बी० ए०। झपनिया। र०—जादू, आदर्श भूगोल।

गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'। भंडारीचक। स्फुट कविताएँ।

परमानन्द दत्त, 'परमार्थी'। भलुआही-निवासी। जन्म १६६४। पूर्वोक्त दत्तजी के अनुज। र०-एकलव्य, प्रतापादित्य, वाल्मीकि, परशुराम, रहीम, श्रीकृष्ण, रुक्मिणी, नौसेरवानजी ताता, शिशुपालवध का हिन्दी-पद्यानुवाद, उद्धव-सन्देश का हिन्दी-पद्यानुवाद, हँसी-खुशी की कहानियाँ, हिन्दुस्तानी शब्दकोष। (दे० पृ० ६२२)

पीताम्बर झा। कुमैठा। कविवर 'विमल'जी के सुपुत्र। स्फुट लेख और कहानियाँ। फिल्म-कहानी-लेखक।

वागीश्वर झा, बी० ए० (ऑनर्स)। कुमैठा। श्रीविमलजी के सुपुत्र। स्फुट लेख और कहानियाँ। (दे० पृ० ७८२)

सेवाधर झा, 'साहित्यरत्न'। कमलपुर। र०—जागरण (नाटक)। स्फुट गद्यपद्य।

गोविन्दप्रसाद झा, 'साहित्यालंकार'। लखपुरा। स्फुट निबंध।

वसन्तकुमार झा, 'साहित्यालंकार'। सलेमपुर। स्फुट लेख।

योगेन्द्र झा। सुखपुर। स्फुट लेख।

कान्तिप्रसाद झा। कहलगाँव। स्फुट लेख।

कामिनीमोहनदास, एम० ए०। जगतपुर। स्फुट कविताएँ और लेख।

मनोहरलाल झा। भतकुंडी। स्फुट कविताएँ।

मुक्तेश्वरप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०। भागलपुर। सरल मुहावरेदार हिंदी में शेर और गजलें बहुत ही सुन्दर, चमत्कारपूर्ण और दिलचस्प।

मुँगेर

जयपाल महाराज; सूजा-निवासी। जन्म १६२२। रच०—रसिक-प्रमोद। व्रजभाषा के कवि।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी। मलयपुर। जन्म १६३२, मृत्यु १६६७। हास्य-रसावतार। बिहार प्रादेशिक प्रथम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (सोनपुर) तथा अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वादशाधिवेशन (लाहौर) के सभापति। रच०—वसन्त-मालती, संसारचक्र, तूफान, विचित्र विचरण, भारत की वर्त्तमान दशा, स्वदेशी आन्दोलन, गद्यमाला, मधुरमिलन, भगवान् श्रीकृष्ण, अनुप्रास-अन्वेषण। सजीव विनोदी और भाषा-मर्मज्ञ। (दे० पृ० ५४४, ६१४)

केशवलाल झा 'अमल'। सोन्हौली। जन्म १६४६। र०—काव्यप्रबोध, प्रेमपुष्पमालिका, ललितमालतीप्रलाप। कवि।

श्यामारुण वंशी। मुँगेर। जन्म १६५४। स्वर्गीय। रच०—हिन्दी-व्याकरणतत्त्व, मनस्वी ध्रुव, तिलकप्रथा, बिहार की सम्मिलित परिवार-प्रणाली, स्फुट कविताएँ। कवि और लेखक।

भोगवती देवी। गोगरी-निवासी श्रीसंतरामजी की पत्नी। र०—सन्तमत-प्रकाशिका। भक्तिप्रधान स्फुट कविताएँ।

गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ। वन्नी-निवासी। जन्म १६५६। र०—देशरत्न राजेन्द्र-प्रसाद, बिहारदर्पण, बिहार के दर्शनीय स्थान, अर्थशास्त्र, राजनीति का पारिभाषिक कोष। भारतीय इतिहास-परिषद् के कार्यालय (काशी) में राष्ट्रीय इतिहास के सहकारी कार्यकर्त्ता।

महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'। असरगंज। जन्म १६६०, मृत्यु १६७७। र०-प्रह्लाद (खंडकाव्य), गन्धर्व, बिहार का इतिहास, प्रेमाञ्जलि, स्मृति, ब्रह्मचर्य।

रत्नेश्वरप्रसादसिंह 'ईश्वर'। नौगाईं। जन्म १६६०। स्फुट कविताएँ।

बनारसी ढँक 'मधुप'। रतैठाँ। जन्म १६६१। स्फुट कविताएँ।

नवलकिशोर झा 'नवल'। सुनौली। जन्म १६६२। स्फुट कविताएँ।

नृसिंह पाठक 'अमर'। रतैठाँ। जन्म १६६३। स्फुट कविताएँ।

सुरेश्वर पाठक, 'विद्यालंकार'। रतैठा। जन्म १६६३। र०-वंग-विजय, रचना-विजय, शबरी, अनेक पाठ्य-पुस्तकें। 'देश' के सहकारी सम्पादक और वर्त्तमान 'प्रभाकर'-सम्पादक।

सुशीला देवी। मुँगेर। स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल की सुपुत्री। अ० भा० हिं० सा० सम्मे० (देहरादून) से स्वर्णपदक प्राप्त।

श्रीकृष्णसिंह, एम० ए०, बी० एल०। कांग्रेसी बिहार-सरकार के प्रधान मंत्री। स्वाध्यायपरायण। प्रभावशाली वक्ता। 'बिहार-केसरी'। राजनीतिशास्त्र-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ। स्फुट लेख।

रामधारीसिंह, 'दिनकर', बी० ए० (ऑनर्स)। सिमरियाघाट-निवासी। जन्म १९६५। बिहार के स्वनामधन्य प्रतिनिधि-कवि। रच०—रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, कलिङ्गविजय, कुरुक्षेत्र। बिहार - प्रान्तीय कवि-सम्मेलन (छपरा) के सभापति। इतिहास के विद्वान्।

कुमार कालिकाप्रसादसिंह (हीराजी)। गिद्धौर। स्फुट लेख और व्याख्यान।

रामप्रसादसिंह, 'साधक'। मौरवाडीह। राष्ट्रीय विद्यालय (हवेली-खड्गपुर) के अध्यापक। कविता की कई पुस्तकें।

नन्दकुमारसिंह। मौरवाडीह। द्विवेदी-युग में 'सरस्वती' के लेखक।

यमुनाप्रसाद चौधरी, 'नीरज', बी० ए०, बी० एल०। मुँगेर। स्थानीय हिन्दी-साहित्य-परिषद् के उत्साही मंत्री। र०—द्रुमदल, स्फुट कविताएँ।

युगलकिशोर शास्त्री। मिल्की-बड़हरा। साप्ताहिक 'प्रताप' (कानपुर) के सम्पादक। सुलेखक। पत्रकार।

रणधीरसिंह। नौगाईं। स्फुट कविताएँ।

रणवीरसिंह 'वीर'। नौगाईं। र०— तारापुर हत्याकांड, स्फुट कविताएँ।

वासुदेव झा शास्त्री। भगलपुरा। दै० 'आज' (काशी) के भू० पू० स० सं०।

रमावल्लभ चतुर्वेदी। मलयपुर। हास्यरसाचार्य स्वर्गीय पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के सुपुत्र। रच० —रेलदूत। (दे० पृ० ३९४)

नवलकिशोर 'धवल'। जमालपुर 'मुँगेर-समाचार' के सम्पादक।

घूरनसिंह चौहान। सरडीहा। स्फुट रचनाएँ।

जगदम्बाशरण शर्मा, एम० ए०, डिप्० एड०, 'साहित्यरत्न'। डुमरिया-निवासी। स्कूलों के डिपुटी-इन्स्पेक्टर। रच०—बुद्धिपरीक्षा, वाणीसुधार, रचनावाटिका (तीन खंड), व्याकरणवाटिका।

श्यामसलिल। मुँगेर। कवि और लेखक तथा पत्रकार।

पूर्णिया

राजा कमलानन्दसिंह। श्रीनगराधीश। (दे० पृ० १२६, ३१३, ४३०, ५४२)।

बाबू लालचन्द्र। विष्णुपुर। र०—लाल-सतसई।

जयगोविन्दजी। बहोरा। जन्म १६१०, मृत्यु १६७०। र०—अलंकार-आकर, कविता-कौमुदी। श्रीनगर-राजवंश के कुमार कालिकानन्दसिंह के आश्रित कवि।

रामदेनी तिवारी, 'द्विजदेनी', एम० एल० ए०। फारबिसगंज। हास्यरस के रससिद्ध कवि। बिहार-प्रांतीय कवि-सम्मेलन (पूर्णिया) के स्वागताध्यक्ष। 'हितैषी'—सम्पादक। अनेक मुद्रित पुस्तकें हैं। जिला-साहित्य सम्मेलन के सभापति।

पुण्यानन्द झा, बी० ए०। 'पूर्णिया-समाचार'-सम्पादक।

सन्त मेंहीदास। सन्त-मत-प्रवर्त्तक। सन्त-मत के अनेक ग्रंथ।

नित्यानन्दसिंह। बुन्देला-जाति पर प्राचीन शैली का एक काव्य।

सूर्यनारायण चौधरी, एम० ए०। संस्कृत-कवियों की जीवनियाँ और संस्कृत-महाकाव्यों के अनुवादकर्त्ता। परिश्रमी विद्वान्।

कुमार गंगानन्द सिंह, एम० ए०, एम० एल० सी०। श्रीनगराधीश। जन्म १६५५। विद्वान् सुलेखक। अनेक गवेषणापूर्ण लेख। (दे० पृ० १४६)

कुमार अच्युतानन्द सिंह, बी० ए०। श्रीनगर। स्फुट रचनाएँ।

अशरफीलाल वर्मा, मुख्तार। र०—पूर्णिया जिले का इतिहास।

दिनेशदत्त झा, बी० ए०। कटिहार। दै० 'आज' (काशी) के संयुक्त सम्पादक और दै० 'आर्यावर्त्त' (पटना) के वर्त्तमान प्रधान सम्पादक। सफल पत्रकार।

अनूपलाल मंडल, साहित्यरत्न। समेली-निवासी। जन्म १६५७। सुप्रसिद्ध कहानी-उपन्यास-लेखक। र०—रहिमन-सुधा, अलंकार-दीपिका, मुसोलिनी का बचपन, नारी—एक समस्या, दस बीघे जमीन, आवारों की दुनिया आदि। (दे० पृ० ५५१, ५६६, ७६८)

लक्ष्मीनारायण सिंह, 'सुधांशु', एम० ए०। रूपसपुर। जन्म १६६५। उच्च कोटि के निबन्धकार और समालोचक। र०—कुमार, भ्रातृप्रेम, गुलाब की कलियाँ, रसरंग, वियोग, काव्य में अभिव्यंजनावाद, जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत। 'राष्ट्रसन्देश' के जन्मदाता और आदि-सम्पादक। (दे० पृ० ५१२, ५६५, ५८०)

रूपलाल मंडल, साहित्यालंकार, साहित्यरत्न। धमदाहा। स्फुट लेख।

गणेशलाल वर्मा, साहित्यालंकार, साहित्यरत्न। पूर्णिया-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उत्साही मन्त्री। स्फुट लेख।

जीवत्स शर्मा, 'हिमांशु'। काझा-निवासी। र०—आँसू, स्फुट कविताएँ।

राय रामनारायण। पूर्णिया। सुन्दर कविताएँ।

नारायणप्रसाद वर्मा। पूर्णिया। स्फुट कविताएँ।

राधाप्रसाद। अररिया-निवासी। कहानी-लेखक।

प्रतापनारायणसिंह, साहित्यालंकार। मल्लडीहा। 'पूर्णियादर्पण' के संपादक। 'राष्ट्रसन्देश' के वर्त्तमान सम्पादक। कहानी-लेखक।

सन्ताल-परगना

दर्शन दुबे। बन्दनवार-निवासी। जन्म १८३२, मृत्यु १९६९। र०— दर्शन-विनोद, मेघनादवध नाटक, प्रबोधचन्द्रिका, प्रेमप्रवाह, शैवानन्द, युगलविहार, संगीतसार, पावस-पचासा, शृङ्गारतिलक, ऋतुमाला, चैतीसंग्रह।

रामचरण वाजपेयी। बन्दनवार। स्वर्गीय। स्फुट रचनाएँ।

शशिभूषण राय। सिमरा-देवघर। स्वर्गीय। र०-सन्ताल-परगना का इतिहास

जनार्दन मिश्र, 'परमेश'। सनौर-निवासी। जन्म १९६८। रच०—आर्ज-किरणोदय, हमारा सर्वस्व, रसविन्दु, पद्मपुष्प, सती, जीवन-प्रभात, कालापहाड़ (अनुवाद), वीर-वृत्तान्त, कृष्ण, घटकर्पर-काव्य, हेमा, राष्ट्रीयगान, बरवै रामायण की टीका। (दे० पृ० ७४१)

कान्तिप्रसाद दुबे। बन्दनवार। स्फुट रचनाएँ।

भवप्रीतानन्द ओझा, सरदार पंडा, देवघर। स्फुट रचनाएँ।

भैरव झा। महेशपुर। 'रसिकमित्र' और 'रसिकरहस्य' नामक पत्रिकाओं में समस्यापूर्त्तियाँ। नामी कवि।

भागवत झा। महेशपुर। स्फुट रचनाएँ।

नकछेदी राम, 'गोपीनाथ' कवि। महगामा। स्फुट कविताएँ।

बुद्धिनाथ झा, 'कैरव', एम० एल० ए०। सनौर-निवासी। जन्म १९५४। र०—आगे बढ़ो, पश्चात्ताप, खादी-लहरी, लवणलीला, अछूत, कैदी, हीरा, आरती, अन्तर-जलन, बन्धन। बि० प्रां० कवि-सम्मेलन (बेगूसराय, मुँगेर) के सभापति। गोवर्द्धन-साहित्य-महाविद्यालय (हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर) के रजिस्ट्रार।

चक्रधर झा, साहित्यालंकार। सोनागुजी-निवासी। महाकवि 'भूषण' पर समालोचनात्मक ग्रंथ। अन्य स्फुट लेख।

अचम्भित चौधरी। रनसी। र०—शवरी, भजनविनोद।

नरसिंहप्रसाद झा, साहित्यालंकार। कसबा। स्फुट लेख।

शिवराम झा। देवघर। उक्त हिन्दी-विद्यापीठ के संस्थापक एवं संचालक।

मोतीलाल केजरीवाल। जसीडीह। स्फुट लेख।

नथमल सिंहानिया। देवघर। र०—देशभक्त (नाटक), आँखों में आँसू।

विष्णुप्रसाद राय। रतनपुर। स्फुट लेख। श्रीहनुमान-पुस्तकालय (कलकत्ता) के पुस्तकालय प्रबन्धक। अध्ययनशील।

कृष्णचन्द्रमिश्र, बी० ए० (ऑनर्स)। बन्दनवार। सुन्दर गद्यलेखक। इतिहास के अध्ययन के अनन्य अनुरागी। (दे० पृ० २४२)

सुरेशप्रसाद झा। दुराजपुर। स्फुट लेख।

ज्योतीन्द्रप्रसाद झा, 'पंकज', साहित्यालंकार। सारठ-निवासी। रस-अलंकार-सम्बन्धी सुन्दर ग्रंथ। काव्यमर्मज्ञ।

वररुचि झा, एम० ए०। महेशपुर। कुशल कहानी-लेखक। चित्रपट-सम्बन्धी अनेक आलोचनात्मक लेख। सहकारी 'राष्ट्रवाणी'-सम्पादक।

सागरप्रसाद राय, साहित्यालंकार। सरावाँ। स्फुट लेख।

छेदीप्रसाद झा, साहित्यभूषण। जमनी। सन्ताली रीडरें।

शम्भुनाथ बलियासे, साहित्यभूषण। मरपा। स्फुट रचनाएँ।

कृष्णप्रसाद साह, साहित्यरत्न। मोहनपुर। स्फुट लेख।

नर्मदेश्वरप्रसाद झा। महेशपुर। स्फुट कविताएँ।

हजारीबाग (छोटानागपुर)

जगन्नाथसहाय कायस्थ। बड़ाबाजार, हजारीबाग। र०—आनन्दसागर, प्रेमरसामृत, भक्तरसनामृत, भजनावली, कृष्ण-बाललीला, मनोरंजन, चौदह-रतन, गोपालसहस्रनाम। नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) से 'आनन्दसागर' प्रकाशित है।

कृष्णवल्लभ सहाय, एम० ए०, बी० एल०। हजारीबाग। बिहार की कांग्रेसी सरकार के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी। 'छोटानागपुर-संवादपत्र'—सम्पादक।

राधागोविन्दप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०। स्फुट निबंध।

त्रिवेणीप्रसाद शर्मा। गिरिडीह। स्फुट रचनाएँ।

राँची (छोटानागपुर)

बालकृष्णसहाय। स्वर्गीय। उत्साही हिन्दी-प्रचारक।

एस० के० (श्रीकृष्ण) सहाय। बारिस्टर। परम हिन्दी-हितैषी।

सुशीला देवी सामन्त, 'विदुषी' । प्रेमपत्र (गद्यकाव्य) ।

राधाकृष्ण । राँची । स्वनामधन्य कहानी-लेखक । (दे० पृ० ५६७)

द्वारकाप्रसाद । लोहरदग्गा । र० स्वयसेवक, भटका साथी, परियो की कहानियाँ । (दे० पृ० ५७०) ।

ज्योतीन्द्रप्रसाद । कहानी-लेखक ।

कोल्हासाहु । कवि और लेखक । व्यापार और समाज-सुधार-सम्बन्धी रचनाएँ।

पलामू (छोटानागपुर)

रामावतार शर्मा, एम० ए०, बी० एल०; साहित्याचाय, साहित्यशिरोमणि । खरोंधी-निवासी । हिन्दी-रिसर्च-स्कॉलर, पटना-विश्वविद्यालय । र०—भारत का इतिहास, आस्तिकवाद, भारतीय ईश्वरवाद; अनेक विद्वत्तापूर्ण निबन्ध प्रसिद्ध पत्रिकाओं मे । 'भारतीय ईश्वरवाद' ग्रंथ पर विदेश से उपाधि मिली है ।

हवलदारीराम गुप्त हलधर' । र०—कंगाल की बेटी (उपन्यास), त्यागी भरत, छोटानागपुर का इतिहास, बालक-विनोद, बालिका-विनोद । राँची में हिन्दी-शिक्षक ।

× × × × ×

इस लेख में जिन पुराने और नये लेखकों तथा कवियों एवं सम्पादकों के नाम दिये गये हैं उनके अतिरिक्त अभी और कितने ही साहित्यसेवी होंगे जिनका उल्लेख इसमें न हो सका । इसका कारण केवल स्थानसंकोच ही नहीं है, यथा-सम्भव प्रामाणिक सामग्री का उपलब्ध न होना भी है । फिर भी प्रमुख एव प्रसिद्ध साहित्यसेवियों का बहुत-कुछ परिचय इसमें देने का प्रयत्न किया गया है । निश्चय ही यह प्रयत्न पूर्णत सफल नहीं है, किन्तु प्रत्येक जिले के साहित्यानुरागी हिन्दी-हितैषी सज्जन यदि कृपा करके प्रस्तुत सामग्री की त्रुटियों का सुधार करने में हाथ बटावेंगे और अभावों की पूर्त्ति के लिये सामग्री-संकलन कर भेजेंगे, तो सोत्साह चेष्टा की जायगी कि बिहार के नये-पुराने साहित्यसेवियो पर एक स्वतंत्र पुस्तक ही तैयार हो जाय । पर यह तो सहृदय सज्जनो के सहयोग पर निर्भर है । आशा है, अपने-अपने जिले के लिये सभी सज्जन थोड़ा परिश्रम अवश्य करेंगे । मैं तो आधार-शिला रखनेवाला श्रमिक-मात्र हूँ, दीवार चुननेवाले शिल्पी अपनी कुशलता से साहित्य मन्दिर का निर्माण कर ले । तथास्तु ।*

* जिन साहित्यसेवियों की चर्चा इस ग्रथ के अन्य लेखों में है या जिनके लेख इसमें छपे है, उनके नाम के साथ—पाठकों की सुविधा के लिये—इस ग्रथ के उन लेखों को पृष्ठ-संख्या भी दे दी गई है ।

—सं०



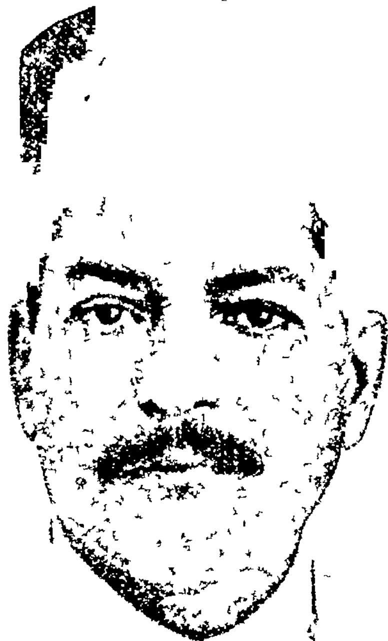
भारतीय चित्रकला में पटना-शैली

श्रीराधामोहन, बी० ए०, बी० एल०, प्रिन्सिपल, पटना-स्कूल ऑफ आर्ट

किसी देश की सभ्यता के आदर्श का परिचय उस देश की कला और साहित्य से मिलता है। कला और साहित्य को जातीय महत्ता का स्थायी गौरवस्तम्भ समझना चाहिये। देश की जैसी आभ्यन्तरिक अवस्था रहती है, वैसा ही प्रभाव वहाँ की कला और साहित्य पर पड़ता है। जब किसी देश के भीतर अशान्ति वा अव्यवस्था व्याप्त हो जाती है, तब वहाँ की कला और साहित्य पर धक्का लगना अवश्यंभावी परिणाम है। भारतवर्ष भी इस नियम का अपवाद नहीं है।

इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि ऐतिहासिक युग के आरम्भकाल से ही भारतवर्ष को महान् संकटों से गुजरना पडा है। और, प्रत्येक बार उसी अनुपात में, यहाँ की कला और साहित्य को गहरी क्षति उठानी पड़ी है। इतना होने पर भी यह निर्विवाद है कि विश्व-संस्कृति के निर्माण मे भारत का—उसमें भी विशेषतः बिहार का—महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। बिहार, विद्याओं और कलाओं का, केन्द्रस्थान था। मेगास्थनीज ने इसके विषय मे काफी कहा ही है। नालन्दा-विश्वविद्यालय सबसे विराट् और सुसंस्कृत विद्या-कला-केन्द्र था, यह भी सर्वविदित ही है। वस्तुतः भारतीय चित्रकला के इतिहास मे बिहार—उसमें भी विशेषतः पटना—का बड़ा महत्त्व है।

भारतवर्ष में प्रागैतिहासिक युग के जो चित्र मिलते हैं, उनकी संख्या अधिक नहीं है। फिर भी जो मिलते हैं, वे बहुत ही मनोरंजक हैं। मध्यभारत की



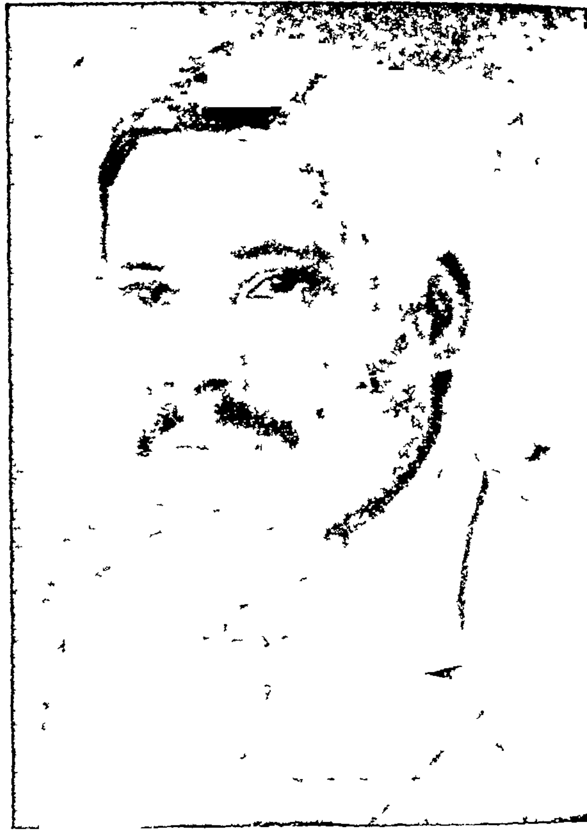
प्रोफेसर ईश्वरीप्रसाद वर्मा

स्वर्गीय रामेश्वरप्रसाद वर्मा





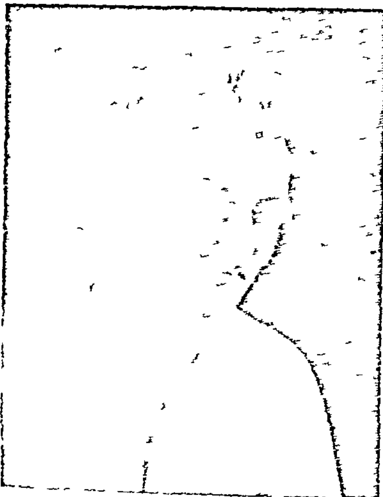
श्रीदिनेश बख्शी, जी० डी० आर्ट,
वाइसप्रिंसिपल, पटना-आर्टस्कूल



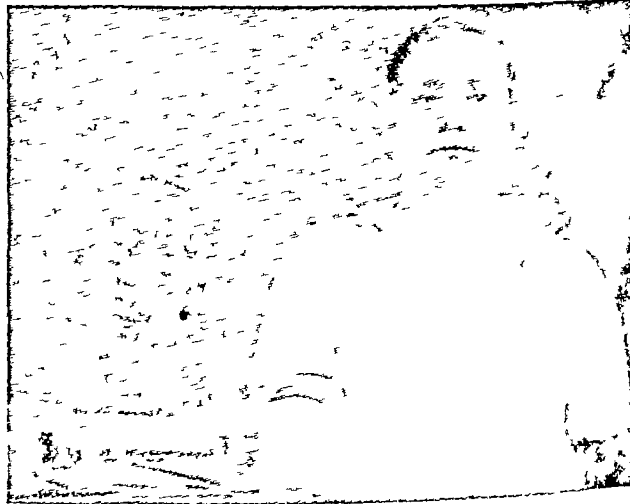
पटना-स्कूल ऑफ आर्ट के प्रिंसिपल श्रीराधामोहनजी
जिनका पटना-कलम पर एक लेख पृष्ठ.. में छपा है



श्रीआत्मानन्दसिंह व्यंग्यचित्ररचना
में प्रवीण



श्रीश्यामलानन्द, पटना-आर्टस्कूल



श्रीयदुनाथ बनर्जी, मूर्त्तिकला-विशेषज्ञ, पटना-आर्टस्कूल

गुफाओं में दीवारों पर ऐसे-ऐसे चित्र मिलते हैं, जिनमें आखेट-सम्बन्धी दृश्यों का स्थूल रूप से अंकन है। युक्तप्रान्त की गुफाओं में भी कुछ ऐसे ही चित्र पाये जाते हैं।

बौद्धधर्म के विकास के साथ-साथ भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक नवीन और विकसित अध्याय का आरम्भ होता है। इस युग में बिहार और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र का स्थान सबसे अग्रगण्य हो उठता है। मौर्यकाल में बौद्धधर्म को राजधर्म होने का गौरव प्राप्त हुआ, जिससे चित्रकला और मूर्त्तिकला का एक विशेष स्वरूप निर्धारित हो गया और उसपर धार्मिकता की छाप पड़ गई।

धार्मिक विषयों को लेकर कलाकारो ने उनपर अपना रंग चढ़ाना शुरू किया। तिब्बत के इतिहासज्ञ तारानाथ ने कहा है—'जहाँ-जहाँ बौद्धधर्म का प्रसार हुआ, वहाँ-वहाँ धार्मिक विषयो के चित्रकार भी पाये गये हैं।" बौद्ध प्रचारको ने कला को देशवासियो में धार्मिक भावो का प्रचार करने का साधन बानया। नैपाल और तिब्बत के मन्दिरो में जो ध्वजाएँ देखने में आती हैं, वे इसी प्रकार के धार्मिक भावों के प्रसार के साधन हैं।

बौद्धधर्म की जन्मभूमि होने के कारण बौद्ध-शैली की चित्रकला का प्रादुर्भाव बिहार मे ही हुआ। मौर्यवंशी राजाओं ने कला को बौद्धधर्म के प्रचार का माध्यम बनाया और राजधानी होने के कारण पाटलिपुत्र इसका मुख्य केन्द्र रहा। यहीं से विचारों का स्रोत प्रवाहित होता था और अन्यान्य केन्द्रों के लिये शिल्पी भेजे जाते थे। बौद्ध प्रचारकों के साथ-साथ चित्रकार और प्रतिमाकार भी दूर-दूर तक भेजे जाते थे। गौतम बुद्ध की जीवनी, उनके उपदेश, उनके पूर्व जन्म की गाथाओ तथा कृतियो से सम्बन्ध रखनेवाले दृश्य, मन्दिरों तथा स्तूपो की भित्तियों में, खोदकर अंकित किये जाते थे।

राजकीय धर्म के प्रचार की दृष्टि से यह बात केवल इस देश के भीतर ही सीमित नहीं रही, अपितु चीन, जापान, मलय, पारस्य प्रभृति देशों में भी इस प्रचार-पद्धति का अवलम्बन किया गया। इसमें एक विशेषता यह थी कि भित्ति के प्रस्तर को सुचिक्कण बनाकर उसमें मूर्त्तियाँ खोदी जाती थीं। दुःख की बात है कि यहाँ के जलवायु के प्रभाव से ऐसी मूर्त्तियाँ लुप्त हो गई हैं। फिर भी अजन्ता की मूर्त्तियो से इस कला की उत्पत्ति और विकास की समीक्षा की जा सकती है।

सातवीं शताब्दी में बौद्धधर्म के ह्रास के साथ-साथ चित्रकला का भी लोप होने लगा। उसके बाद से एक हजार वर्ष तक कला का कोई नमूना नहीं मिलता। हो सकता है, राजनीतिक क्षेत्र की अव्यवस्था और अराजकता के कारण ही चित्र-

कला ह्रासोन्मुख रही हो। ब्राह्मण-काल के उपरांत यवनों के आक्रमण से लोगों के चित्त मे अशान्ति का होना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ कि देश मे शायद ही कोई कलाकार उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण-काल में कलाओं की तरफ प्रवृत्ति थी सही, किन्तु उसके चिह्न अधिकांशतः दक्षिण-भारत में ही मिलते हैं।

आठवीं और दसवीं शताब्दियों के मध्य का भाग भारतीय कला के आदर्श में चरम विकास का युग माना जाता है। एलोरा और एलीफेंटा की गुफाओं में जो चित्र पाये जाते हैं, वे इस बात के प्रमाण हैं। किन्तु, इसके बाद कला का लोप होने लगा। संभव है, जलवायु के प्रभाव से, अथवा विदेशी आक्रमणकारियों की कट्टरता के कारण, इस समय के चित्रांकन के नमूने नष्ट हो गये हों। भारत मे मुगल-साम्राज्य की स्थापना होने पर चित्रकला-विषयक अनुराग पुनरुज्जीवित हो उठा। कलाकारों को बादशाहों, नवाबों और साधारण जनता के द्वारा प्रोत्साहन मिलने लगा।

मुगल-सम्राट स्वय कला और सगीत के उपासक थे। हुमायूँ का फारस में भाग जाना भारतवर्ष के लिये ईश्वर का वरदान सिद्ध हुआ। भारतवर्ष लौटने पर वह विख्यात शिल्पियों को अपने साथ लेता आया। इस तरह भारत की चित्रकला केइतिहास में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ। उन दिनों फारस अपने अभ्युदय की चरम सीमा पर था। कला और व्यवसाय की समुन्नति थी। चित्रांकन-कला उत्कर्ष पर थी। हुमायूँ ने निपुण-से-निपुण शिल्पियों को चुना। मृतप्राय वस्तु मे जान आ गई, विस्मृत कला सजीव हो उठी।

हुमायूँ के उत्तराधिकारियों ने भी फारस से चुने हुए शिल्पियों को बुलाकर अपने दरबार में नियुक्त किया और इस देश के कारीगरों को उनकी कला सीखने के लिये प्रोत्साहित किया। इस तरह भारत में एक नई कला का आविर्भाव हुआ, जो देहली-शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। फारस की तूलिका से यहाँ के विषय अंकित किये जाने लगे। इस भारत-फारस की सम्मिलित शैली के भी कई उपभेद हो गये। यथा—लखनऊ-शैली, दाक्षिणात्य शैली, बगीय शैली और पटना-शैली।

उस समय के प्रख्यात इतिहास-लेखक अबुलफजल ने तत्कालीन कलाकारों की लम्बी नामावली दी है। उसने फर्रुख कलमक, अबू सम्मद शीराजी, मीर सैयद अली तबराजी, बसावन, दसवन्त, केशोदास प्रभृति शिल्पियों का नामोल्लेख किया है।

यह चित्रकला, जिसका हुमायूँ के राजत्वकाल मे इस शान के साथ उदय

हुआ, शाहजहाँ के समय तक अपना प्रबल आकर्षण बनाये रही। तदनन्तर ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। औरंगजेब के समय में तो उसका अन्त-सा ही हो गया।

शाहजहाँ का स्थापत्यकलानुराग प्रख्यात है। किन्तु उसने भी चित्रांकन-कला की उन्नति की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। मुगलवंश का अन्तिम महान् सम्राट् औरंगजेब तो खासा वैरागी ही था। उसने संगीत-विद्या, चित्रकला और स्थापत्य-कला के प्रति—और इस्लाम से वर्जित अन्यान्य कलाओं के प्रति भी—गहरी उदासीनता दिखलाई। जो कलाकार कभी दिल्ली-दरबार के गौरव समझे जाते और राजकीय पुरस्कारों से सम्मानित होते थे, वे अब भूखों मरने लगे।

दिल्ली के शिल्पी, जो कला के साकार रूप थे, अब जीविका की तलाश में, भिन्न-भिन्न दिशाओं में तितर-बितर होकर, घूमने लगे। कोई काश्मीर गया, कोई अवध-प्रान्त, कोई बंगाल की तरफ, कोई पटना, कोई दक्खिन। वे जहाँ गये वहाँ की परिस्थिति के अनुसार अपनी कला का उपयोग करते हुए वहीं रम गये। एक ही केन्द्र-स्थान दिल्ली से निकलकर उन्होंने मूल शैली का स्वरूप कायम रक्खा; किन्तु फिर भी अज्ञात रूप से उनमें रंग-निर्वाचन तथा तूलिका-प्रयोग आदि की प्रणाली में अन्तर पड़ता गया।

दिल्ली की कलम मूलभूत और आदर्श-स्वरूप है। इसकी कारीगरी में रूपरेखा की अद्भुत स्पष्टता और सफाई देखने में आती है। 'शेडिंग' की कला में गोल विन्दुओं का अधिकतर प्रयोग किया गया है। चित्रांकन के विषय मुख्यतः जीवन से लिये गये हैं। जैसे—शिकार, युद्ध, घेरा, ऐतिहासिक घटनाएँ, दरबार, पौराणिक कथाएँ, प्राणी, वनस्पति और धार्मिक दृश्य।

लखनवी कलम भी देहलवी कलम की तरह ही है; किन्तु बारीकी में उसकी बराबरी नहीं कर सकती। शैली में भी कुछ विभिन्नता है। लखनऊ की कलम में ठस कुछ कम है; पृष्ठ-भूमि में श्वेतशिला की चाल वहाँ अधिक है।

दक्षिण की कलम का मनोरंजक ढंग पर विकास हुआ। यह भी दिल्ली-स्कूल की एक उपशाखा है। औरंगजेब के समय में दक्षिण-भारत पर जो चढ़ाइयाँ हुईं और वहाँ से जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, उसी के फलस्वरूप इस शाखा का आविर्भाव हुआ।

काश्मीर की कलम से मुख्यतः उन चित्रों का बोध होता है जो मूलतः काश्मीर में अंकित किये गये थे। किन्तु पीछे इससे उस चित्रकला का बोध होने लगा, जिसे पंजाब के लाहौर, अमृतसर प्रभृति नगरों में बस जानेवाले काश्मीरियों ने अपनाया।

पटना की कलम इन सबके बाद चली। यह दिल्ली और लखनऊ की शैली की अनुवर्त्तिनी रही। फिर भी, विदेशी प्रणाली का भी प्रभाव इसपर पड़े बिना न रहा।

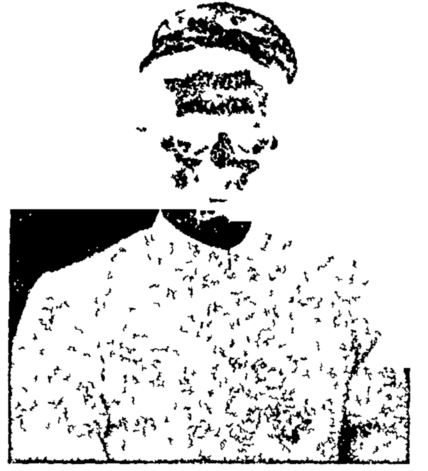
पटना-शैली के चित्र अपने आदर्श, व्यवस्था तथा रचना-प्रणाली में अपना स्थान बनाये रहे। किन्तु पीछे विदेशी कला के सम्पर्क से उनका रूप विकृत हो गया—उनकी मौलिकता भग्न हो गई। चित्रांकन-प्रणाली के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि यहाँ शेडिंग में तिरछे विन्दुओं का प्रयोग किया गया है। आधार भूमि के अंकन मे यहाँ अधिकतर सुन्दर दृश्यों से काम लिया गया है, जैसे नदी के सामने गृहद्वार, उपवन, स्तम्भों से युक्त भवन का अंश, सुसज्जित मशहरी से अलंकृत शय्या इत्यादि। रंगों की व्यवस्था में भी यह विशेषता देखने में आती है कि उनमें चटकीले और मौलिक रंगों से भरपूर काम लिया गया है। दिल्ली की शैली में ये वातें नहीं हैं।

दिल्ली के चित्रकारों की तरह यहाँ के चित्रकार भी बकलों, फूलों, नगों और धातुओं से रंग बनाना जानते थे। कौड़ी और मोती से श्वेत रंग बनाया जाता था। जंगार (ताँबा या तूतिया) से लाल, पत्थर और पेड़ की छाल से पीला और लाजू (लाजवर्द) पत्थर से नीला रंग बनाया जाता था।

काच, अबरक और हाथीदाँत पर चित्रकारी करना भी वे जानते थे। हाथी-दाँत पर बहुत सूक्ष्म और बारीक काम किया जाता था। इसी प्रकार अबरक पर भी नई प्रणाली से सुन्दर नक्काशी की जाती थी। सोने के तार और पत्तर का भी चित्रों में उपयोग होता था।

पटना-स्कूल की चित्रांकन-पद्धति मे विषयों का चुनाव कुछ विभिन्नता लिए हुए था। मूल केन्द्रों मे राजदरबार से सम्बद्ध घटनाओं और दृश्यों की ही प्रधानता रहती थी। किन्तु पटना-शैली के चित्रकार दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं पर भी अपनी तूलिका चलाने लगे। संगतराश, चर्मकार, पालकी ढोने-वाला कहार, शराब की भट्टी, पाकशाला, मक्खन की दूकान आदि के दृश्य भी अंकित किये जाने लगे। जो पक्षी बिहार में अधिकतर पाये जाते थे, उनके भी चित्र बने।

किन्तु, क्रमश प्रत्येक स्कूल (शैली) मे—दिल्ली, काश्मीर, दक्षिण, पटना; सर्वत्र—कला की अवनति होती गई। राजकीय आश्रय का मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर, कला केवल नवाबों और दरबारियों के साये में पलने लगी। कुछ समय तक अवध



श्री हीरालाल बब्बन जी
गया-निवासी बिहार के सुप्रसिद्ध चित्रकार



मुजफ्फरपुर-जिला निवासी श्रीमहादेवनारायण
(उदीयमान चित्रकार)



श्रीहरेश्वरदत्त, बी० ए०, बी एल०
(मिसिकमैन छपरा-निवासी)



रायसाहब इन्द्रदेवनारायणसिंह
सिन्हा लाइब्रेरी, पटना के लाइब्रेरियन



श्रीकुलानन्ददास
(दरभंगा जिला निवासी)



श्रीयुत महेश्वरीप्रसाद, डिहरी-ओन-सोन (शाहाबाद)

के नवाबों ने कला को आश्रय दिया; किन्तु सब कुछ होने पर भी कला की ह्रासोन्मुख गति रोकी न जा सकी। शिल्पियों के झुंड छिन्न-भिन्न हो जीविकोपार्जन के निमित्त यत्र-तत्र घूमने लगे। जो लोग बिहार में आये वे मुख्यतः तीन स्थानों—पटना, दानापुर और आरा—में बस गये। पटना-सिटी के लोदी-कटरा और मोगलपुरा मुहल्ले में उनलोगों की घनी बस्ती थी।

किन्तु, समय का चक्र प्रतिकूल था। कलाकारों की संख्या में दिनानुदिन ह्रास होता गया और कला बेचारी अन्तिम साँस लेने लगी।

जयरामदासजी, यमुनाप्रसाद, शिवलालजी, शिवदयालजी, भैरोजी और मिर्जा निसार मेहदी पटना-स्कूल के नामी चित्रकार थे। उनकी कला के नमूने अब भी पटना-सिटी के बाबू जमुर्रदलाल, बाबू पोखराज बहादुर, कोएन बाबू, राय मथुराप्रसाद, राय राधाकृष्ण, राय सुलतान बहादुर, मिस्टर पी० सी० मानुक बारिस्टर आदि कलानुरागियों के भवनों में पाये जाते हैं।

वर्त्तमान काल में केवल दो उल्लेखनीय व्यक्ति हैं, जो पटना-स्कूल के सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं—प्रोफेसर ईश्वरीप्रसाद वर्मा और बाबू महादेवलाल। वर्माजी अब प्राय कलकत्ता में रहते हैं—कलकत्ता-कला-विद्यालय के वाइस-प्रिन्सिपल रह चुकने के बाद अब विश्रामपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बाबू महादेवलाल अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं। वार्द्धक्य के कारण अब उन्होंने काम करना छोड़ दिया है। उनकी कला के नमूने महाराजघाट में महाराज रामनारायण के परिवार में, तथा पटना-कला-विद्यालय की आर्ट-गैलरी में, देखे जा सकते हैं। उन्होंने बहुत-से कलाविद् शिष्यों को तैयार किया है। आज भी बिहार में, चित्रकला की प्रगति में, उनके शिष्यों का ही प्रधान हाथ है। इस तरह पटना-स्कूल की प्राचीन परम्परा एक तरह से जारी है।

पटना के कला-विद्यालय में एक गौरवपूर्ण विशेषता है। यहाँ के चित्र-संग्रहालय में अधिकतर पटना-शैली के चित्र हैं, जिनमें उस शैली की तूलिका-विधि, अङ्कन-प्रणाली तथा विषय निर्वाचन-पद्धति का परिचय मिलता है। दुःख की बात है कि अधिकांश चित्रों पर कुछ लिखा नहीं है, जिससे उनके निर्माता का पता नहीं चलता। इन चित्रों में अंकन-कला, रंगसंमिश्रण और विषयादर्श के अतिरिक्त और भी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनसे साधारण दर्शक को भी बहुत-कुछ मनोरंजक अध्ययन की सामग्री मिल सकती है। दो-तीन सौ वर्ष पूर्व के पटना का आभास उनसे मिल जाता है। उन दिनों कौन-कौन-सी सवारियाँ प्रचलित थीं,

कौन-कौन परिच्छद और परिधान प्रचलित थे, कौन-कौन कला व्यवसाय प्रचलित थे, इन बातों का स्पष्ट दिग्दर्शन इन चित्रों से हो जाता है। संग्रहालय में जितने चित्र हैं उनमे प्रत्येक से कोई नई बात झलकती है, प्रत्येक चित्र मे कोई-न-कोई नवीन सन्देश मिलता है। ये चित्र अतीत और वर्त्तमान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने मे बहुमूल्य सूत्र का काम करते है।*

* इस लेख में व्यक्त विचारों से हमारा कई अंशों में मतभेद है। बौद्धकालीन भारत में एक ही चित्रांकन-प्रणाली का प्रचार था—विभिन्न शैलियों का पता भी नहीं था। बौद्ध-काल में यह कला पारस्य, चीन, तिब्बत, रोम, जावा आदि देशों में गई और वहाँ की लोकरुचि पर पनपी। अभिप्राय यह है कि अन्य विद्याकलाओं की भाँति भारत ने ही ससार को चित्रांकन-कला की शिक्षा दी। हर्ष की बात है कि आज बिहार में नई पीढी के कुछ कलाविद् इस लुप्तप्राय प्राचीन कला के उद्धार में लगे हुए हैं। उनमें श्रीयुत उपेन्द्र महारथी का नाम अन्यतम है। आप शरणजी का प्रश्रय पाकर भारत के आकाश में प्रोज्ज्वल नक्षत्र के समान चमक उठे हैं और परिस्थिति की अनुकूलता से वह दिन दूर नहीं जब आप अन्ताराष्ट्रिय ख्याति-प्राप्त कलाकार के रूप में संसार के समक्ष उपस्थित होंगे।—सं०

संस्मरण



रायसाहब श्रीरामलोचनशरण विहारी, 'बालक'–सम्पादक
संस्थापक और अध्यक्ष—पुस्तकभंडार (लहेरियासराय और पटना),
विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय), हिमालय प्रेस (पटना)



वैष्णव-रत्न श्रीरामलोचनशरणजी

श्रीसूर्यनारायण सिंह, एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ, एस० डी० ओ०, राँची

ईश्वर को जहाँ अल्प समय में महान् सुधार करने की आवश्यकता मालूम होती है, वहाँ एक महापुरुष का प्रादुर्भाव कर देते है। ऐसे-ऐसे महापुरुष हर जगह और हर समय पैदा नही हुआ करते। किसी निर्दिष्ट देश-काल मे, उद्देश्य-विशेष की पूर्त्ति के लिये, उनका जन्म हुआ करता है। उनपर ईश्वर की एक ऐसी अमिट—पर अदृश्य—छाप रहती है जो उनकी आत्मा को एक अज्ञात शक्ति से प्रेरित करती हुई, उन्हे समस्त विघ्नबाधाओ पर विजय दिलाती हुई, उन्हे आगे बढ़ाती जाती है और अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा देती है। ऐसे ही पुरुष कर्मवीर कहलाते है, और उन्ही से संसार का यथार्थ कल्याण होता है।

आज हम एक ऐसी महान् आत्मा के जीवन पर कुछ प्रकाश डालना चाहते है, जिसके अवलोकन से ईश्वरीय विभूति का प्रत्यक्ष आभास मिल जायगा।

भारतवर्ष के इतिहास मे राजा हेमचन्द्र (हेमू) का नाम कौन नही जानता ? उनका अस्त होते ही सहसराम (शाहाबाद) का गुलजार चमन उजाड़ हो गया, उनके वीर वंशज भला विजेताओ की अधीनता कब स्वीकार करनेवाले थे ? स्वाभिमान-पूर्वक जगदीशपुर (शाहाबाद) चले आये। इतिहास-प्रसिद्ध बाबू कुँवरसिह के पूर्वजो ने उनको पहचाना, उनका सम्मान किया और उनके चरित्रबल पर मुग्ध होकर अपना समस्त कोषागार उनके हाथो मे छोड़ दिया।

१८५७ ई० मे विद्रोह की भीषण आँधी उठी, और जगदीशपुर मे ऐसी क्रान्ति मची कि वहाँ के अधिकांश लोग तितर-बितर हो गये। उसी विप्लव के समय उनका शान्तिप्रिय परिवार मिथिला की शान्तिप्रद भूमि मे आ बसा, और यहाँ के सात्त्विक जलवायु मे पलकर जीवन-यापन करने लगा।

सन् १८९१ ई० का साल था, फाल्गुन का महीना। उसी परिवार मे एक बालक का जन्म हुआ—जिस बालक की, बिहार को, आवश्यकता थी। बालक तेजस्वी था। उसके लक्षण ही देखकर माता-पिता ने, बन्धु-वर्गों और ग्रामीण कृषको ने, समझा—यह कोई मामूली बच्चा नही, हमलोगो के बीच मे एक असाधारण शिशु का प्रादुर्भाव हुआ है। सरल-प्रकृति माता-पिता इस गुदड़ी के लाल को पाकर निहाल हो गये।

कहा जाता है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। शुरू से ही बच्चे की प्रतिभा अपनी चमक दिखाने लगी। लोग उसकी विलक्षण बुद्धि देखकर चकित होने लगे।

बालक का नाम रक्खा गया 'रामलोचन'। उसकी बुद्धि गजब की पैनी थी। जब पिता ने गॉव की प्राइमरी पाठशाला मे उसे पढ़ने भेजा, उसकी तीक्ष्ण बुद्धि देखते ही शिक्षक दग रह गये। ऐसा कुशाग्रबुद्धि बालक उन्हे पहले कभी मिला न था।

उस सात वर्ष के बच्चे की ऐसी चमत्कृत प्रतिभा देखकर अपर-क्लास मे पढ़नेवाले छात्र भी निःसंकोच उसके पास जाकर अपनी कठिनाइयॉ उपस्थित करते थे और वह बच्चा सरल भाव से नम्रता-पूर्वक बात-की-बात मे उन्हे हल कर देता था।

साढ़े सात वर्ष की अवस्था होते-होते बालक ने लोअर की परीक्षा पास कर ली और सबसे प्रथम स्थान पाया। अपर की परीक्षा मे उसने स्कूल मे पहले-पहल स्कॉलरशिप पाकर अपने गॉव का नाम उजागर किया।

शिवहर (मुजफ्फरपुर) के मिड्ल-स्कूल से ससम्मान पास करने पर बालक की इच्छा आगे अध्ययन करने की हुई। किन्तु उस समय घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। मॉ-बाप के पास इतना धन न था कि उसे पटना भेजकर पढ़ाई का खर्च चला सके। विवश हो, इस होनहार बालक को, अपनी इच्छा के विरुद्ध, तड़पते हुए दिल से घर पर ही रह जाना पड़ा। वह घर की स्थिति सँभालने लगा।

इसी बीच बालक का विवाह हो गया और सहधर्मिणी भी घर आ गई। उस समय घर की ऐसी तंग हालत थी कि मुश्किल से घर के सभी प्राणी जीवन-निर्वाह कर पाते थे। एक रात बालिका पत्नी ने बालक पति को खूब फटकारा। कहा—"मैं यहॉ अकेली रहकर घर सँभालूँगी, आप बाहर जाकर पढ़िये और अपनी उन्नति की चेष्टा मे लगिये।"

कहते है, पत्नी के वाक्य ने ही गोस्वामी तुलसीदास के जीवन की धारा

पलट दी था। यही भी वही हुआ। पत्नी के मन मे राम वसे। उसके वाक्य ने चौदह वर्ष के वालक की सोई हुई शक्ति जगा दी। वह चल पड़ा—अकेला, जीवन-संग्राम का सैनिक वनने के लिये। माँ ने प्यार के साथ अँगोछे में थोड़ा-सा चिउड़ा, गुड़ और नमक वाँध दिया। पिता ने इधर-उधर से जोड़-जाड़कर चार रुपये इकट्ठा किये और आशा-भरी दृष्टि से वालक के हाथ में रख दिये। वालक खुशी से माता-पिता के चरण छू घर से निकल पड़ा।

उन दिनो का पटना आज-कल का पटना नही था। उसमे यह तड़क-भड़क, शान-शौकत और चहल-पहल नही थी; ये आलीशान मकान और रौनकदार वाजार नहीं थे। फिर भी एक देहाती वालक के लिये, जिसने पहले कभी शहर का मुँह नहीं देखा था, वही कलकत्ता-सरीखा था।

वालक ने गंगा-माई से कहा—"मैया! यहाँ तुम्हारे सिवा और कोई मेरी जान-पहचान का नहीं है। देखना, तुम्हारा ही भरोसा है।"

गंगा-माई ने मानो कल-कल करते हुए कहा—"कुछ परवा नहीं बच्चा, घबराते क्यों हो? ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम्हें यहीं बुलाकर राजमहल-सरीखे भवन मे रक्खूँगी। तव तक जाओ, लगन के साथ अपना काम करो।"

वालक को राह मे ही एक पुराने मास्टर मिल गये, जिन्होने उसको सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर) के स्कूल मे पढ़ाया था। अपरिचित स्थान मे पूर्व-परिचित शिक्षक को देखकर वालक ने मानो चाँद पा लिया। उसके नन्हे-से हृदय मे गुरुभक्ति उमड़ चली। मन मे कहा—खाली हाथ गुरुजी को कैसे प्रणाम करूँ? यह सोचकर कुरते की जेव टटोली। टिकट खरीदने में १।।) लगा था और २) मे से एक चमकती हुई अठन्नी वच गई थी। गरीब वालक ने श्रद्धापूर्वक वह अठन्नी गरीव गुरुजी के पाँव पर रख उन्हे प्रणाम किया। गुरुजी गद्गद् हो उठे। उनकी आँखो मे प्रेम के आँसू भर आये। उन्होने रुँधे स्वर से आशीर्वाद दिया—'वेटा, एक दिन तुम वहुत वड़े आदमी हो जाओगे।' आज गुरु का वह आशीर्वाद सफल है।

उसी समय एक अड़चन आ पड़ी। वालक की अवस्था छोटी थी। भरती होने के लिये उसका कद वड़ा होना जरूरी था। हेडमास्टर ने नाप-जोख करते हुए कहा—'यह अभी विल्कुल वच्चा है, भरती नही हो सकता।'

उपर्युक्त गुरुजी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होने वालक की अपूर्व प्रतिभा का वर्णन करते हुए जोरदार सिफारिश की। वालक भरती हो गया। लगे हाथो गुरु-दक्षिणा का फल मिल गया।

गणित मे वालक की अद्भुत प्रगति थी। विकट-से-विकट सवाल को वह

सहज मे ही हल कर डालता था। उन दिनो के० पी० वसु के बीजगणित का नोट नही वना था। उसका एक प्रश्न ऐसा था, जिसे गणित के विद्वान् शिक्षक भी नही लगा सकते थे। वालक ने एक वार उस प्रश्न को गौर से देखा और सबके सामने वोर्ड पर जाकर कुछ ही मिनटो मे उसे हल कर डाला।

पंडितजी दाँतो अँगुली काटकर रह गये। उस दिन से जब कोई कठिन सवाल आ जाता, बालक की ओर पंडितजी अँगुली उठाते। वह चट वोर्ड पर जा उसे वना देता। पडितजी उसकी योग्यता के इतने कायल हो गये कि उसे परीक्षा की कापियाँ तक देखने के लिये देने लगे। यह देखकर कुछ विद्यार्थी ईर्ष्या से जलने लगे, बालक को तंग करने लगे। एक दिन तो कुछ लडकों ने सावन-भादो की वढ़ी हुई गंगा मे उसे धकेल दिया। पर गंगा-माई का तो यह लाड़ला बच्चा ही ठहरा। उन्होने बाल-बाल बचा लिया।

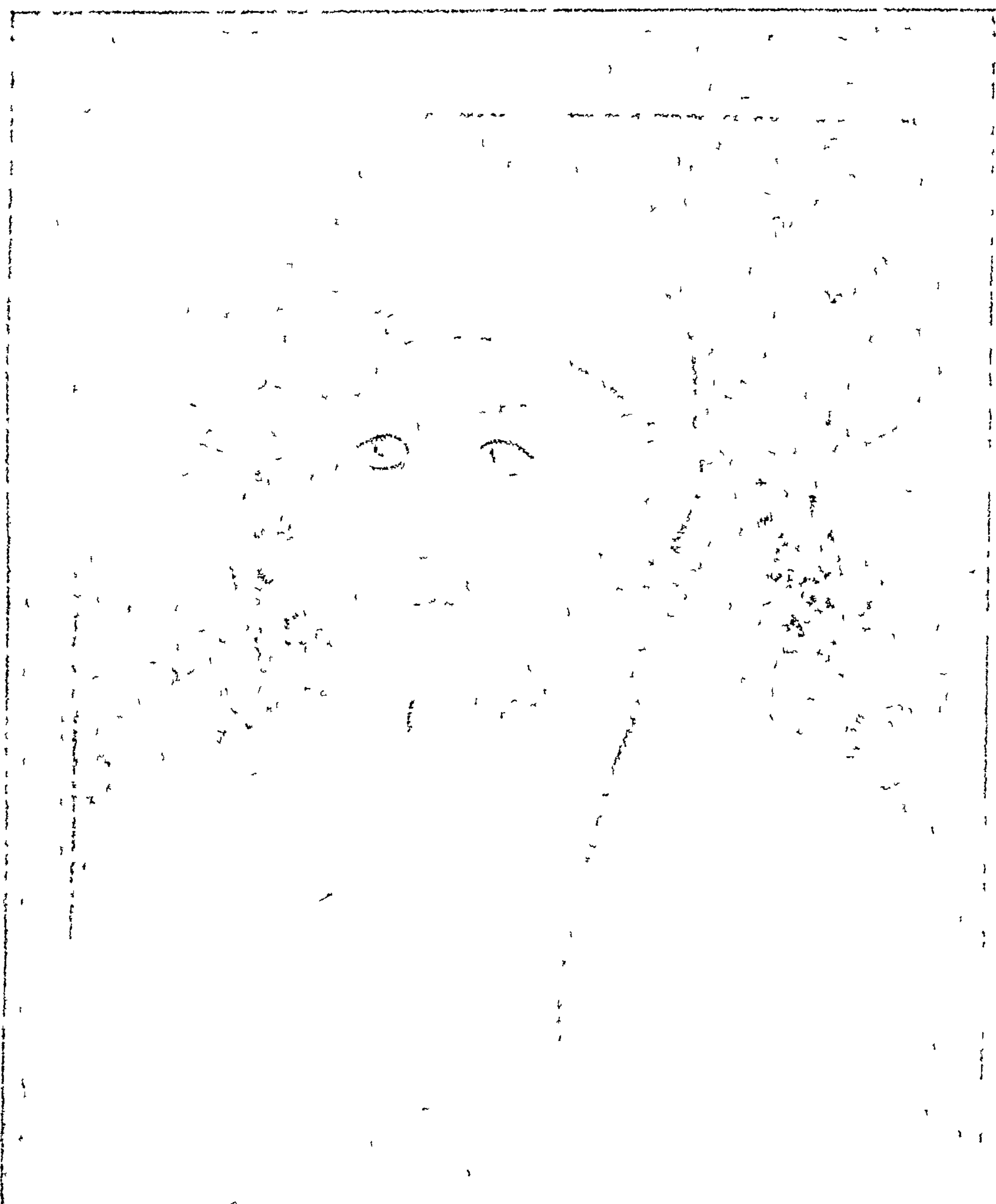
स्कूल मे एक लड़का था। वह चित्रकारी मे सबसे अच्छा था। ड्राइंग-मास्टर की उसपर विशेष कृपा रहती थी। एक दफा प्रतियोगिता हुई। उसके साथ होड़ करने की किसी लड़के की हिम्मत न हुई। मास्टरो की दृष्टि, सब ओर से घूमकर, इस छोटे-से देहाती वालक पर जा पड़ी—"क्यो जी, रामलोचन!"

वालक नम्रतापूर्वक उठा। 'जो आज्ञा' कहकर हाथ मे पेंसिल ली। फिर तो ऐसा चित्र खींच डाला कि सभी सन्नाटे मे आ मुँह ताकते रह गये। वालक ने वाजी मार ली।

नार्मल स्कूल की परीक्षा मे बालक ने प्रान्त-भर मे सर्वप्रथम होकर पास किया। उसके वाद संसार की विकट यात्रा का कुछ-न-कुछ अनुभव उसे होने लगा। चढ़ाई खड़ी थी। कोई हाथ थामनेवाला न था। आरा-निवासी पं० दिवाकर-दत्त मिश्र हेडमास्टर होकर मोतीहारी के जिला-स्कूल मे चले गये थे। वे वहाँ जाकर भी अपने मेधावी छात्र को नही भूले थे। उन्होने उसे बुला भेजा। बालक रामलोचन ने कुछ दिन वहाँ पढ़ाया। अब वह छात्र से 'मास्टर साहब' हो गया।

एक दिन 'नये मास्टर साहब' के नाम से एक पत्र आ पहुँचा। ट्रेनिंग स्कूल (पटना) के हेडमास्टर खाँ-वहादुर मौलाना अमजद अली बड़े ही सज्जन थे। ये ऐसे सात्विक थे कि नित्य गंगास्नान और रामायण का पाठ करते थे। इन्होंने लिख भेजा था कि शाहाबाद-जिले के चूडामणिपुर-स्कूल मे १०) की जगह खाली है, पत्र देखते ही चले आओ।

आपने उक्त पंडितजी की आज्ञा लेकर मोतीहारी से कूच किया। बक्सर का टिकट कटाया। रात मे ढाई वजे बक्सर-स्टेशन पर उतरे। कहीं कोई जान-पहचान का न था। आपने एक अधेड़ औरत को देखा। उससे नम्रतापूर्वक



बाबू कुँवर सिंह

चित्रकार—श्रीउपेन्द्र महारथी

[[illegible] के 'चित्र-पट से']

चूड़ामणिपुर का रास्ता पूछा। औरत ने आपको चकमा देकर कहा—"चलो मेरे साथ।"

उसके पीछे-पीछे आप चले। जब सवेरा हो गया, वह औरत अपने घर के पास पहुँच गई। उसने कहा—'अब पूछते-पूछते चले जाओ, चूड़ामणिपुर पहुँच जाओगे।' आपने दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ कि स्टेशन से आप चार मील दूर दक्खिन चले आये है, चूड़ामणिपुर तो स्टेशन से चार मील उत्तर है।

आप अपनी सिधाई पर पछताते वापस आये। दुनियादारी का पहला सबक आपको यही मिला। सोचा—"अधिक सुधाइहुँ ते बड़ दोपू"। खैर, चूड़ामणिपुर मे भी आपने ठीक बाइस रोज तक काम किया।

एक दिन आपके नाम से एक पत्र आ पहुँचा। यह भक्तवर रायसाहब भगवतनारायण का पत्र था। उन्होने लिखा था—"सिमरा (मुजफ्फरपुर) के मिडूलस्कूल मे हेडपंडित की जगह खाली है, पत्र देखते ही सेक्रेटरी से मिलो।"

आपको फिर अपनी प्यारी जन्मभूमि के दर्शन का सुअवसर मिला। सिमरा के स्कूल में आकर नई उमंग के साथ काम करने लगे।

इसी बीच एक ऐसी बात हुई कि आपको सिमरा का स्कूल छोड़ना पड़ा। स्कूल के हेडमास्टर का व्यक्तिगत चरित्र कुछ ऐसा था, जिसके कारण उनकी अधीनता मे काम करना आपने अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझा। बस निर्भीकतापूर्वक त्यागपत्र दे वहाँ से चले आये।

परन्तु ईश्वर का हाथ आपके सिर पर था। अभी एक सप्ताह भी न बीतने पाया था कि अनायास आपको एक सरकारी चिट्ठी मिली—"दरभंगा के नार्थब्रुकस्कूल मे तुम १५) महीने पर शिक्षक नियुक्त किये गये।"

नार्थब्रुक स्कूल मे आपकी इतनी धाक जमी कि सौ-सवा सौ रुपये माहवार ट्यूशन से आने लगे। उस समय ज्ञान बाबू हेडमास्टर थे। एक दिन का जिक्र है, मास्टर लोग आपकी हिन्दी की तारीफ करने लगे। आपको यह ठकुरसुहाती पसन्द न आई। आपने हेडमास्टर के सामने ही उन शिक्षको के हिन्दी-ज्ञान की यथार्थ समालोचना शुरू की। इस छोटी-सी घटना से आपकी सत्यप्रियता और निर्भीकता प्रकट होती है।

दूसरे वर्ष आपकी बदली गया के जिला-स्कूल मे हो गई। आप जब क्लास में ड्राइंग सिखलाते थे तब खली लेकर बोर्ड पर चुटकियो मे सुन्दर चित्र खींच देते थे। उन दिनो रायबहादुर भगवती सहाय अस्थायी रूप से शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। जब वे स्कूल का निरीक्षण करने आये, आपका विलक्षण अध्यापन और हस्तलाघव देखकर मुग्ध हो गये। उन्होने आपके विषय में बहुत ही सुन्दर

सम्मति लिखी। आपकी तरक्की के लिये वचन भी दिया। इसी समय आपने 'लक्ष्मी'-सम्पादक लाला भगवान 'दीन' से 'विहारी-सतसई' पढ़ी। यही आपकी साहित्यिकता का वीज-वपन हुआ।

जव आप गया मे थे, तभी आपको अपने स्कूल के शिक्षको मे ही एक अपूर्व महात्मा मिल गये। वे थे भक्तवर वावा सोहराईराम दास वैष्णव। उन्होने आपको वैष्णव-धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा दी—भक्ति-मार्ग सुझाया। समय-समय पर वे अपने साथ भगवान् के भजन-कीर्त्तन और झॉकियो मे भी आपको ले जाने लगे।

आपको रामलीला से इतना गहरा प्रेम हुआ कि गर्मी की छुट्टी मे महीना-भर 'वाढ़' (पटना) मे रहे और वहॉ काशीराम की मंडली के साथ रहकर रामलीला देखते रहे।

तीन वर्ष वाद आप फिर दरभंगा के नार्थब्रुक-स्कूल मे आ पहुँचे। आपने देखा कि हिन्दी-व्याकरण की ऐसी कोई भी निर्दोष और सर्वाङ्गसुन्दर पुस्तक नही है, जो वालको के लिये सुगम हो। इसी वीच युक्तप्रान्त की सरकार ने सर्वोत्तम व्याकरण की पुस्तक पर पुरस्कार देने की घोषणा की। आप दस वर्ष पहले ही से व्याकरण का अनुशीलन कर रहे थे। वस नवीन आगमनात्मक-विधि (Inductive Method) की शैली का अनुशीलन कर चटपट एक पुस्तक तैयार कर डाली। पुस्तक का नाम था 'व्याकरण-वोध', जिसके आधार पर पीछे 'व्याकरण-चन्द्रिका', 'व्याकरण-नवनीत', 'व्याकरण-चन्द्रोदय' आदि बीसियो पुस्तके लिखी गई।

अव यह प्रश्न उठा कि पुस्तक का प्रकाशन कैसे किया जाय। उन दिनो प्रकाशन-क्षेत्र मे विहार वहुत पिछड़ा हुआ था। इने-गिने दो-चार प्रकाशको को छोड़ और कोई था ही नहीं। आप पुस्तक छपवाने के लिये ३०) लेकर गया पहुँचे। किन्तु वहॉ के प्रकाशक शीघ्र और सुन्दर छापने को तैयार न हुए। उनसे अपना पावना—पुस्तको की लिखाई, जो ढाई आने फी पेज की दर से तय हुई थी—४२) वसूल करते हुए वनारस चले गये। इसी ७२) की पूँजी से आपने कार्य का श्रीगणेश किया। ईश्वर की दया से यही वहत्तर हजारो वहत्तरो का विधाता हुआ।

काशी मे आप हितचिन्तक प्रेस के मालिक श्रीयुत कृष्णवलवन्त पावगीजी से मिले। अपना अभिप्राय जताया। पावगीजी आपकी लगन देख वहुत प्रसन्न हुए। उन्होने आपको प्रकाशन-सम्वन्धी छोटी-मोटी वाते भी वतला दी। यही पावगीजी प्रकाशन-क्षेत्र मे आपके आदि-गुरु हुए।

काशी मे पहुँचते ही आपके हृदय का सुषुप्त भक्ति-भाव जाग उठा। आप वैष्णव-धर्म में विधि-पूर्वक दीक्षित होने के लिये अयोध्या पहुँचे। वहॉ प्रमोद-वन

(बड़ी कुटिया) के बूढ़े महाराज श्री १०८ राजकुमार दासजी की कृपादृष्टि आप-पर हुई। आप उनके शिष्य हुए।

दीक्षा ग्रहण कर पुनः काशी होते हुए दरभंगा लौट आये। यहाँ आने पर युक्त-प्रान्त की सरकार की चिट्ठी मिली—"तुम्हारी लिखी हुई व्याकरण की पुस्तक सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुई है, अतएव तुम्हें १६७) पारितोषिक प्रदान किया जाता है।"

सिर्फ दो फार्म (३२ पेज) की किताब पर आपको सरकार ने १६७) इनाम देकर सम्मानित किया। यही से आपके साहित्यिक जीवन का विकास शुरू हुआ। जीवन के इतिहास का दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ हुआ।

× × × ×

१९१६ ई० की तीसरी जनवरी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उसी दिन लहेरिया-सराय की एक छोटी-सी झोपड़ी मे एक ऐसी संस्था का जन्म हुआ जिसपर आज सारे बिहार को गर्व है, जिसका समस्त हिन्दी-भाषियो को गौरव है। यह संस्था है 'पुस्तक-भंडार'।

यह संस्था आरम्भ से ही उन्नति-पथ की ओर अग्रसर होने लगी। दिन-दिन इसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रसिद्धि होने लगी।

आपने एकमात्र अपनी लेखनी और अपने अध्यवसाय के बल पर 'भंडार' की नीव डाली। 'भंडार' की अभिवृद्धि के लिये आपने भगीरथ प्रयत्न किया—दिन-रात लिखा, खूब लिखा; ऐसा लिखा जैसा पहले किसी ने नही लिखा था। तरुण तपस्वी की भाँति साहित्य-मन्दिर मे समाधि लगाई और उसी मे मस्त रहे।

पाँच-सात वर्षों के निरन्तर घोर परिश्रम से आपने ढेर-की-ढेर पुस्तके लिख डाली। शायद ही कोई दिन ऐसा बीता हो जिसमे आपने सोलह घंटे से कम काम किया हो। लगन हो तो ऐसी।

जो कुछ आपने लिखा, उसे अपने रंग मे रँग दिया। आपकी कोई पुस्तक ऐसी नही, जिसमे आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट अंकित न हो। आपका 'व्याकरण-चन्द्रोदय' हिन्दी मे अपना खास स्थान रखता है। ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण हिन्दी मे पहले न था।

आपका सबसे बड़ा कार्य है बालसाहित्य का निर्माण। बालको का मनो-विज्ञान परखने की आपमे अद्भुत शक्ति है। कठिन-से-कठिन बात को भी आप इस रूप मे रख देगे कि छोटे से छोटा बच्चा भी आसानी के साथ समझ जाय। चाहे कोई भी विषय दीजिये, आप तुरत उसे अपने साँचे मे ढाल देगे। इस कला मे आप अपना सानी नहीं रखते। आपकी नकल पर बहुत-से लोग चले, पर आपकी खूबी को अभी तक कोई पा न सका।

आपने बालसाहित्य का भंडार भरने के लिये व्याकरण, साहित्य, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान, नीतिधर्म आदि विषयो की उत्तमोत्तम पुस्तके लिखने मे कमाल कर दिखलाया। आपकी लिखी हुई सभी पुस्तको की यदि गिनती की जाय तो कई सौ तक पहुँच जायगी। इसके अतिरिक्त आपने अन्यान्य अनेक पुस्तको का जो संपादन और संशोधन किया है, उनकी संख्या अलग है। निम्न कक्षा से लेकर आजकल के विश्वविद्यालय की उच्च कक्षा तक मे आपकी पुस्तके पाठ्य है।

आपकी पुस्तको को लोगो ने खूब पसन्द किया, दिल खोलकर अपनाया। शिक्षक आपकी पुस्तको पर लट्टू हो गये। लड़को के लिये तो मानो नया युग ही आ गया।

लेकिन ईश्वर की इच्छा थी कि आपकी कुछ और कठिन परीक्षा ली जाय। आपकी दो-चार किताबे भी अभी मंजूर न होने पाई थी कि कुछ सज्जनो ने आपके विरुद्ध अधिकारियो के कान भर दिये। आपकी नई किताबे स्वीकृत न हो सकी, बल्कि शिक्षको को पूरी ताकीद की गई कि आपकी पुरानी किताबे भी न पढ़ाई जायँ। परन्तु आप कब हताश होनेवाले थे। आपकी किताबे तो इतनी लोकप्रिय हो उठी थीं कि विरोध मे जोरदार आन्दोलन होने पर भी उनकी बाढ़ न रुकी—न रुकी। कई पुस्तको की तो पाँच-पाँच लाख प्रतियाँ हाथो-हाथ बिक गईं, और फिर भी जनता की माँग पूरी न हुई, बारबार नये संस्करण निकालने ही पड़े।

देखते-ही-देखते आप गरीब मास्टर से लखपती हो गये। जो १५) माहवार पाकर गुजर करते थे, वही अब प्रति मास १५००) अपने नौकरो को तनखाह बाँटने लगे। 'पुस्तक-भंडार' टूटी-फूटी झोपड़ी से उठकर अब सुन्दर भव्य भवन मे आ गया।

अधिकारियो की कोपदृष्टि देखकर आपने स्कूली किताबो से कुछ समय के लिये अपना हाथ खीच लिया। अब साहित्यिक पुस्तको की ओर झुके। चार वर्षों मे ही अनेक उत्कृष्ट जीवन-चरित, उपन्यास, गद्य-काव्य, काव्य-ग्रन्थ और कहानी-संग्रह 'भंडार' से निकले। हिन्दी-ससार ने उन्हे खूब सराहा। सच्चे हृदय से सभी पत्र-पत्रिकाओ ने प्रशंसा की। आपने देखा, अब विना अपना खास प्रेस हुए काम नही चलने का।

सन् १९२८ ई० मे आपने अपने 'भंडार' मे ही विद्यापति प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस ने छपाई-सफाई की सुन्दरता से सबको चकित कर दिया। सरस्वती, प्रताप, मतवाला, सम्मेलन-पत्रिका, त्यागभूमि, महारथी आदि हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ ने दिल खोलकर एक स्वर से 'भंडार' के प्रकाशन और

विद्यापति प्रेस की मुद्रणकला को तारीफ की। सबने यही कहा कि बिहार के लिये यह बिल्कुल नई चीज है। इस तरह बिहार मे मुद्रण-कला का गौरव स्थापित करने मे भी आपका ही सबसे बड़ा हाथ है।

सन् १९२६ ई० मे आपने, पूरी सजधज के साथ, बालकों का सुपरिचित, बाल-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ सचित्र मासिक पत्र, 'बालक' निकाला। हिन्दी-संसार के सभी विद्वानो ने 'बालक' को हृदय से आशीर्वाद और बढ़ावा दिया। प्रवासी भारतवासियों मे भी उसकी ख्याति बढ़ने लगी।

कुछ ही सालो के अन्दर आपने साहित्यिक पुस्तकों का तॉता लगा दिया। हिन्दी के धुरन्धर लेखक आचार्य द्विवेदीजी, श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं० अयोध्यासिह उपाध्याय, पं० जनार्दन झा 'जनसीदन', लाला भगवान 'दीन', पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, श्रीजयशंकर प्रसाद, श्रीशिवपूजन सहाय आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वानो ने 'भंडार' के साथ सहर्ष सम्बन्ध स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त आपने बिहार के कितने ही उदीयमान लेखकों और कवियो को हिन्दी-संसार के समक्ष उपस्थित कर बिहार का यश बढ़ाया, जिनमे पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी', पं० हरिमोहन झा एम० ए०, पं० रामलोचन शर्मा 'कंटक', एम० ए०, श्रीअच्युतानन्द दत्त, पं० जटाधर शर्मा'विकल' और श्रीचन्द्रमाराय शर्मा के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। बिहार के आधुनिक गद्य-शैली-निर्माण और साहित्य-प्रचार का जितना श्रेय आपको है, उतना और किसी को नही। महाराज-कुमार रामदीन सिंह ने बिहार मे हिन्दी-प्रचार और हिन्दी-लेखन की जो नीव डाली, आपने उसपर एक सुन्दर इमारत तैयार कर डाली। यही आपका महान् गौरव है।

इतना होते हुए भी, नामवरी की कुछ भी परवा न कर, आप चुपचाप अपना काम करते चले जाते है—अपनी धुन मे मस्त रहते है। यदि कोई जरूरत आ पड़ी तो कही किसी से मिलने गये, नही तो बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नही। आपने जो काम दस वर्षों मे कर दिखाया है, वह पिछली अर्द्ध-शताब्दी मे भी बिहार मे नही हो पाया था। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने बिहार के सूने भंडार को भरा-पूरा कर दिया है। इसी महान् कार्य के लिये आपका जन्म हुआ था। इस महत्कार्य को आपने जिस उद्योग, साहस, आत्मबल और अध्यवसाय के साथ पूरा करने की चेष्टा की है, वह सर्वथा अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है।

सन् १९२९ मे बिहार-सरकार की कृपादृष्टि 'भंडार' पर हुई। आपकी पुस्तकें हर-एक कक्षा मे मंजूर होने लगी। प्राथमिक कक्षा से लेकर एम० ए०

तक मे आपकी जो किताबे जारी है, उनकी संख्या चालीस से कम न होगी। यह देखकर आप द्विगुणित उत्साह से पाठ्य पुस्तके तैयार करने लगे।

सन् १९३० मे आपने पटना मे 'पुस्तक-भंडार' की शाखा खोल दी। वहाॅ का 'भडार' भी खुलते ही चमक उठा। साल-दो-साल बीतते-बीतते बीसियो उत्तमोत्तम पुस्तके प्रकाशित हो गई। उनमे कई शिक्षा-विभाग मे मंजूर भी हुईं।

छात्रो के प्रति तो आपका अगाध प्रेम है। जिसको आप होनहार और प्रतिभाशाली देखते है, उसपर तो आपकी और भी प्रीति जम जाती है। दो छात्रो को तो आपने अपने लडके की तरह हजारो रुपये खर्च कर पढ़ाया-लिखाया। उन दोनो ने भी योग्यतापूर्वक, सर्वप्रथम होकर, एम० ए० की परीक्षा पास की। उनमे एक हैं पं० रामलोचन शर्मा 'कटक', जो कलकत्ता के बंगवासी-कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर है, और दूसरे है प्रोफेसर हरिमोहन झा।

अपने गॉव के एक ब्राह्मण छात्र को भी आपने सहायता देकर काशी से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा पास कराई। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे निर्धन विद्यार्थियो की जो सहायता आपने रुपयो से, पुस्तको से और अन्यान्य वस्तुओ से की है, और आजतक करते आ रहे हैं, उन सबका यदि सविस्तर वर्णन किया जाय, तो एक बड़ा-सा पोथा बन जायगा।

आपकी नीति है कि स्वयं भी ऊपर चढ़ें और साथ-ही-साथ औरो को भी ऊपर चढ़ाते चले। आपका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। सामूहिक लाभ के आगे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को आप कुछ भी नही समझते। महापुरुष की यही सच्ची पहचान है। इसी उदार नीति के कारण 'भंडार' के आश्रित लोग आपको कठोर शासक न समझकर पथप्रदर्शक समझते है, स्वामी न समझकर हितैषी समझते है। सैकड़ो कर्मचारियो की संस्था होते हुए भी 'भडार' एक परिवार-सा प्रतीत होता है। यहाॅ का वातावरण एक आफिस-सा उतना नही जान पड़ता जितना एक आश्रम-सा। और-और संस्थाओं मे यह बात देखने मे नही आती।

एक बार 'भंडार' का एक कर्मचारी एक लिफाफा रजिस्ट्री कराने के लिये पोस्ट-आफिस भेजा गया। उस लिफाफे मे बीस रुपये के नोट थे। १०) महीना पानेवाले नौकर को लालच ने धर दबाया। उसने चुपचाप नोट निकाल लिफाफे मे रद्दी कागज भरकर भेज दिया। जब वहाॅ से शिकायत आ पहुॅची, और आफिस मे जॉच हुई, तब वह नौकर पकडा गया। डर के मारे उसने अपना कसूर कबूल कर लिया। अन्त मे आपके कानो तक यह बात पहुॅची। लोगो ने समझा, अब खैर नही, यह पुलिस के सुपुर्द किया जायगा। किन्तु आप मानव-हृदय की दुर्बलताओ से परिचित थे। आपने उस गरीब को अभयदान दे दिया। उसे पूरी तनखाह

देकर ईमानदारी के साथ शेष जीवन बिताने की सलाह दी। वह लज्जित हो अनुताप करता हुआ आपके पैरों पर गिर पड़ा।

एक बार आपको मालूम हुआ कि एक कर्मचारी 'भंडार' की किताबें चुरा चुराकर बेचता आ रहा है। उसकी चोरी साबित हो गई। वह सबके सामने बुलाया गया। आपने उसकी पूरी परिस्थिति जानकर, उसे अपनी ओर से १) और अधिक तनखाह देकर, बिदा किया। कहा कि आगे पेट न भरे तो मालिक से अधिक माँग लिया करना, इस प्रकार चोरी मत करना। उसकी आँखों में आँसू भर आये। तब से वह आपका बे-दाम का गुलाम बन गया।

किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि आप 'सामू रशीद' की तरह आवश्यकता से अधिक क्षमाशील और सीधे हैं। आप स्वयं कर्मशील हैं और दूसरों को भी कर्मठ देखना चाहते हैं। अकर्मण्यता के तो आप मानो जानी दुश्मन हैं। आपका सिद्धान्त है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'—'कर्म करते जाओ, अनवरत चेष्टाओं में लगे रहो, फल देनेवाला ईश्वर है।' काम से जी चुराना, खाली बैठकर व्यर्थ की गप्पें हाँकना, और इधर-की-उधर लगाना-बझाना, आपको फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। आप चाहते हैं, सब अपने-अपने समय का सदुपयोग करें और उससे लाभ उठावें—खूब जी लगाकर काम करें और झगड़कर अधिक-से-अधिक पैसे लें।

आप सच्चे कर्मयोगी हैं। जिस धुन में लग जायँगे, उसके लिये आकाश-पाताल एक कर डालेंगे। चाहे आँधी हो या तूफान, क्रान्ति हो या विप्लव, आप नेपोलियन-बोनापार्ट की तरह आगे ही बढ़ते जायँगे; रास्ते में रुक नहीं सकते। इसी में आपकी महत्ता छिपी हुई है।

संकल्प की दृढता और चित्त की एकाग्रता, दोनों शक्तियाँ, मनुष्य को ऊपर उठा देती हैं। ये दोनों बातें आपमें कूट-कूटकर भरी हुई हैं। जिस समय आप अपने काम में लग जाते हैं, उस समय आपकी मुखमुद्रा देखने योग्य रहती है। वह तन्मयता, वह गम्भीरता, वह मनोनिवेश देख बड़े-बड़े साधक भी दंग रह जायँ। जब तक वह काम पूरा नहीं होता, तब तक क्या मजाल कि घर की चिन्ता आपके पास फटक सके। और, जब आप घर के अन्दर पाँव रखते हैं, तब फिर वहीं के हो रहते हैं। उस समय क्या मजाल कि कोई बाहरी झंझट घर की चौखट के भीतर झाँक सके। आपका अपने मन पर इतना नियन्त्रण है कि आप उसे जहाँ लगा देंगे, वहाँ से वह तिल-भर इधर-उधर बहक नहीं सकता। इसी का नाम है कर्मयोग। यही आपकी सबसे बड़ी विशेषता है।

आपने अपनी जन्मभूमि के लिये जो कुछ किया है, वह आदर्श है।

आपकी नस-नस मे मिथिला के लिये प्रेम की धारा प्रवाहित होती है। आपने हजारो का घाटा सहकर भी मिथिला-भाषा की एक मासिक पत्रिका निकाली—मैथिल-कोकिल विद्यापति की पदावली निकाली। मिथिला के प्रति आपका इतना असीम अनुराग है कि अपने प्रेस का नामकरण तक विद्यापति के नाम पर ही किया। पुत्रो का नामकरण भी किया तो-वैदेहीशरण, मैथिलीशरण, सीताशरण, सियारामशरण इत्यादि। जन्मभूमि से प्रेम करना कोई आपसे सीखे।

आपने अपनी जाति की उन्नति मे भी खूब हाथ वटाया। सामाजिक सुधार के आप पक्षपाती हैं। आगे बढने की सलाह तो देते है, किन्तु सरपट दौड़कर नही, सोच-समझकर, सँभलकर। रौनियार-वैश्य-जाति को आपसे वढ़कर भला और कौन सुयोग्य नेता मिल सकता था। उसने एक स्वर से आपको जातीय सभा का मन्त्री चुना। लगभग बीस वर्षों से अपनी जातीय सभा का मन्त्रित्व-भार उठाकर बडी कुशलता और तत्परता के साथ आप कार्य-सम्पादन करते आ रहे है। आपने अपने खर्च और उद्योग से 'रौनियार-वैश्य' नामक मासिक पत्र निकाला। वरसो आप योग्यता-पूर्वक उसका सम्पादन करते रहे है। जातीय संस्थाओ मे, प्रकट रूप से और गुप्त रूप से, आपने जितना दान किया, उतना यदि दूसरे लोग करते तो चारो ओर ढोल पीटते फिरते।

इन्ही गुणो की बदौलत आपने लक्ष्मी और सरस्वती दोनो का पूर्ण प्रसाद प्राप्त किया। किन्तु इतना प्रतिष्ठित और यशस्वी होते हुए भी घमंड तो आपको छू तक नही गया। आपकी रहन-सहन देखकर कोई भी इस वात का अनुमान नही कर सकता कि आप ही लाखो की सम्पत्ति के स्वामी और देश-देशान्तर मे विख्यात 'पुस्तक-भंडार' के प्राण है। एक धोती और एक कुरता, वस, यही आपकी पोशाक है। अगर कही बाहर जाने लगे, तो सिर पर एक टोपी रख ली। पाँवो मे मामूली जूते। यह सादगी देखकर किसे विश्वास हो सकता है कि ये ही वह मास्टर साहव हैं, जो रुपये को रुपया नही समझते और मौका पडने पर ठीकरे की तरह उससे खेल सकते है।

आपका खान-पान भी वैसा ही सादा है। जिनके नौकर तक कचौरियाँ और रसगुल्ले उड़ाते है, वही अपने वालवच्चो के साथ वैठकर, अदरख-नमक के साथ, तर या हरे चने खाने मे ही अधिक स्वाद पाते है। जिनके वहुत-से नौकर कलाई मे घडी वाँधकर वावू वने पान खाते हुए सैर को निकलते है, वही अपने हाथ से पानी खीचकर नाली तक साफ करने मे अपनी हेठी नही समझते। वड़प्पन इसी का नाम है।

आपका पारिवारिक जीवन भी वैसा ही सुन्दर, सात्त्विक और सुखमय है।



रायसाहब श्रीरामलोचनशरणजी (मास्टर साहब) का परिवार



रायसाहब श्रीरामलोचनशरणजी की बडी लडकी अपनी नवजात कन्या के साथ

अपने जीवन के प्रथम भाग में, जब आप मास्टर साहब थे, आपकी प्रथमा पत्नी सरस्वती-रूप मे मौजूद थीं। अब जीवन के द्वितीय भाग मे, जब आप 'भंडार' के अधिपति है, आपकी द्वितीया पत्नी लक्ष्मी के रूप में मौजूद है। ऐसी आदर्श गृहिणी पाना पुराकृत पुण्य का ही फल कहा जा सकता है। उनमे ऐसी शासन-क्षमता है कि आपकी अनुपस्थिति मे भी गृह-प्रबन्ध मे शिथिलता नहीं आने देती।

आपने अपने कर्त्तव्य को खूब निबाहा। ईश्वरीय आदेश का पालन करने मे कोई कोर-कसर न की। इसका फल भी आपको भगवान् की कृपा से मिल गया है। जो कभी 'मास्टर साहब' थे, आज 'रायसाहब' हैं। जो कभी दस आने भाड़े के मकान मे रहते थे, आज सुबह-शाम दस हजार का वारा-न्यारा किया करते है। यदि किसी स्वतंत्र देश मे आप होते, तो नार्थक्लिफ और कार्नेगी की तरह सार्वजनिक सम्मान पाते। फिर भी, बिहार के स्वनामधन्य साहित्यसेवी बाबू रामदीनसिंह और दानवीर बाबू लंगटसिंह के साथ आपका नाम भी सदियो तक इस प्रान्त के इतिहास मे अमर रहेगा।





हिन्दी-संसार की अमर कीर्त्ति

(स्वर्गीय) प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'

बाबू रामलोचनशरण एक प्रतिभाशाली एवं उन्नतिशील पुरुष है। आपका सर्वप्रथम एक व्याकरण मैंने देखा। उसे आपने रायसाहब राजेन्द्रप्रसादजी (भूतपूर्व हेडमास्टर, पटना-नार्मल-ट्रेनिग-स्कूल) के द्वारा मुझे देखने तथा उसपर सम्मति देने के लिये दिया। मुझे वह पुस्तक बहुत ही अच्छी जॅची। मैंने सम्मति भी बहुत अच्छी लिखी। यही मेरा-आपका सर्वप्रथम परस्पर-परिचय है। यह घटना सन् १९२३ ई० की है।

अब आपने पुस्तके लिखने का कार्य आरम्भ किया और अनेक उपयोगी पाठ्य पुस्तके लिखकर यश तथा धन प्राप्त किया। धीरे-धीरे आपके पास एक पुस्तक-भंडार तैयार हो गया। क्रमश इसका कलेवर ऐसा बढ़ा कि यह पूर्वोक्त नाम से प्रसिद्ध हो चला। इससे आपका उत्साह बढ़ा। आपने लहेरियासराय के अतिरिक्त पटना नगर मे भी एक पुस्तक-भडार स्थापित करने का विचार किया।

सन् १९२७ ई० मे मैंने पटना के लालबाग महल्ले मे एक मकान बनवाया और उसमे रहना प्रारम्भ किया। इसी अवसर मे आप आये और मेरे पडोस ही मे एक छोटा-सा मकान लेकर रहने लगे। आपने मुझसे अपना मनोगत भाव प्रकट किया और गोविन्दमित्र-रोड पर एक विशाल भवन भाड़े मे लेकर पुस्तक-भडार का स्थापन किया। यहाॅ पाठ्य पुस्तके बिकने लगी और चारो ओर पुस्तक-भंडार की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। मेरा भी पुस्तक-भंडार मे विशेषत आने-जाने का कार्य प्रारंभ हुआ। कारण यह कि नई-नई पुस्तके पढ़ने की लालसा मेरी चिरसंगिनी है।

अब पुस्तक-भडार के स्वामी तथा कर्मचारियो से मेरा पूरा परिचय हो गया। मैंने अनुभव किया कि बाबू रामलोचनशरणजी की मुझपर कृपा बढ़ती जाती है। ऐसे ही सुअवसर मे मेरे हृदय मे स्वार्थ सिद्ध करने का लोभ उत्पन्न हुआ। मैंने निज-रचित 'दुर्गादत्त परमहस' नामक ग्रथ प्रकाशित करने के लिये

आपको दिया। आपने सहर्ष स्वीकार कर उसे प्रकाशित किया। आपपर मेरी प्रीति और श्रद्धा विशेष बढ़ गई। अनन्तर आपने मेरा 'कृष्णकीर्त्तन' नामक दोहा-छंदोवद्ध काव्य भी बड़े उत्साह से प्रकाशित किया।

'पुस्तक-भंडार' का कलेवर बढ़ता गया और आपकी—स्वतंत्र निज भवन बनवाकर उसमें पुस्तक-भंडार को स्थापित करने की—लालसा बढ़ती गई। भक्तो के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले दशरथनंदन, कौसल्या-हृदय-चंदन, जानकी-जीवन की असीम अनुकम्पा से गोविन्दमित्र-रोड मे एक बहुत प्रशस्त भूमि मिल गई और आपने पंद्रह हजार रुपये देकर उसे खरीद लिया। उसी मे उपयोगी भवन का निर्माण कराकर 'पुस्तक-भंडार' का स्थापन किया। इस 'भंडार' की प्रसिद्धि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती गई और बढ़ती जा रही है। इसी अवसर मे गंगालहरी, गंगाष्टक, लेखमणिमाला, आत्मचरितचम्पू—मेरी चार पुस्तके प्रकाशित हुई।

मै अध्ययनशील पुरुष हूँ। पुस्तकाध्ययन विना जीवन व्यर्थ जान पड़ता है। 'पुस्तक-भंडार' से मेरे अध्ययन मे बड़ी सहायता पहुँची है। कारण यह कि यहाँ से सदा नई-नई साहित्यिक पुस्तके प्रकाशित होती रहती हैं।

मासिक पुस्तके पढ़ना भी मुझे बहुत पसंद है। 'भंडार' से बाबू रामलोचन-शरण के द्वारा सुसम्पादित होकर 'बालक' प्रकाशित होता है। आपकी सम्पादन-शैली बहुत ही मनोहर है। लेखो के चुनाव मे आप बड़ी दूरदर्शिता से काम लेते है। आपका विचार स्वतंत्र और गम्भीर है। आप द्विवेदीजी की श्रेणी के सम्पादको मे हैं। बालक-सम्बन्धी जितने पत्र है, सबमे 'बालक' उत्तम और सर्वाङ्गसुन्दर है, इसको सभी विद्वान् स्वीकार करते है। इसके साधारण अंक भी विशेषांक के समान होते है। इसके द्वारा सर्वसाधारण में हिन्दी का बहुत प्रचार हुआ है; बालको मे हिन्दी पढ़ने की रुचि बढ़ी है। इसका वहिरंग नयनाभिराम तथा अंतरंग हृदयाभिराम है। पत्र सर्वप्रकार श्रेष्ठ है। इसके सम्पादक का स्वभाव नम्र, उदार, दयालु, सहनशील, शान्त, परोपकारनिरत, परदुःखकातर, गुणग्राही तथा उत्साहपूर्ण है।

आपकी उदारता का परिचय मुझे कई बार मिल चुका है। १९२७ ई० में मैने लालबाग महल्ले मे एक विशाल भवन बनवाया। उसमे पूर्व-संकल्पित विचार से बहुत अधिक खर्च पड़ गया। तकाजावालो से जी ऊब गया। कई मित्रो से सहायता के लिये प्रार्थना की; किन्तु सभी व्यर्थ—कारण यह कि बहुत बड़ी रकम थी। अन्त मे विवश होकर मैने आपसे प्रार्थना करने का साहस किया। उस समय आपसे बहुत ही साधारण परिचय था। मैने लहेरियासराय मे आपके पास पत्र लिखकर अपना अर्थसंकट प्रकट किया। आपने दूसरे ही दिन आकर मेरा

संकट दूर कर दिया। धन्य है आपकी उदारता। आपके जन्म से वैश्यकुल गौरवान्वित हुआ है।

जब मैं रोगी हो गया और दवा-दारू मे विशेष खर्च हो गया, अर्थ की संकीर्णता हो गई, उस समय भी आपने अच्छी सहायता की और फिर कभी लौटाने का नाम भी नहीं लिया।

एक बार मेरा विचार सीतामढ़ी और जनकपुर देखने का हुआ। साथ ही यह भी इच्छा हुई कि मै लहेरियासराय का पुस्तक-भंडार तथा प्रेस आदि भी देखूँ। मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी और सहोदर मँझले भाई थे। हमलोग आपके घर पर उतरे, जिससे आपको अपार हर्ष हुआ। आपने आशातीत सत्कार किया। चलने के समय आपने ऐसी पूजा दी जिससे आपकी महती उदारता का परिचय मिलता है।

आपके पूज्यपाद पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। आपने उनका नाम अमर करने के लिये एक संस्कृत-पाठशाला का स्थापन किया है। उसमे भू-सम्पत्ति सम्मिलित कर सरकार को समर्पित कर दिया है जिससे वह चिरस्थायी हो। आपके हाथ से लेखको तथा कवियो का सदा सत्कार होता रहता है, इसलिये वे सदा आपके वशीभूत रहते है। प्रेस तथा भडार के कर्मचारी आपके सद्व्यवहार से सदा प्रसन्न रहते है।

आप और आपका पुस्तक-भंडार हिन्दी-संसार की अमर कीर्त्ति है।





श्रीरामलोचनशरण का प्रारम्भिक छात्र-जीवन

(स्वर्गीय) श्री हरिवंश झा, महुआइन (मुजफ्फरपुर)

चिरंजीव श्रीरामलोचनशरण को १८९८ या १८९९ ई० मे इनके पिताजी ने शिक्षा-निमित्त हमारे स्कूल मे बैठाया। उस समय इनकी अवस्था लगभग छ वर्ष की थी। उस समय इनका सौन्दर्य हजारो मे एक था। आज-कल के बच्चो-सा ये कमजोर नही थे, बल्कि इनका शरीर बहुत हृष्ट-पुष्ट तथा गोरा चेहरा बहुत भव्य था। उस समय इनकी बोली भी कुछ तुतली थी और इनकी सुन्दरता देखकर गॉव के जमींदार भी कुछ देर तक इन्हे देखते रह जाते थे। इनका स्वरूप देखनेवाला हरएक व्यक्ति कहता था कि यह लड़का बहुत भाग्यशाली होगा।

पढ़ने मे ये बहुत तीव्र थे। प्रकृति भी बड़ी चंचल थी। साथ-साथ नटखटपन भी था। विना पकड़े या अपने पिताजी को हैरान किये, स्कूल मे ये उपस्थित नही होते थे। इनके पिताजी की, इन्हे पढ़ाने की, बड़ी लालसा थी। इस हेतु हमे भी वे बहुत मानते थे। यदि वे कही बाहर जाते थे तो इन्हे हमी को सौप जाते थे।

मुजफ्फरपुर जिले मे 'राधाउर' गॉव बहुत बड़ा है। इसी गॉव मे स्कूल से कुछ दूरी पर इनका मकान था। अतएव कुछ दिनो तक विना अपने पिता के साथ हुए ये स्कूल जाना पसंद नही करते थे। ऊधम करने से भी कभी बाज नही आते थे। इसलिये इनके पिता की अनुपस्थिति मे हमी को इन्हे बुलाने जाना पड़ता था।

स्कूल से अनुपस्थित होने का इनका स्वभाव दो साल तक रहा होगा। बाद ये बहुत सुधर गये। हमसे अच्छी तरह हिल-मिल गये। इनके घर के लोग—पिता, माता, चाचा, खासकर इनकी पितामही—इनको घर-भर के बच्चो से अधिक मानते थे—प्यार करते थे।

वास्तव मे उस समय जितना ये पढ़ने मे तीव्र थे, उतना ही डरते भी थे। लड़का पकड़ना ही उस समय हमारा काम था। अन्य लड़के जो सजा पाते थे उसे देखकर ही ये थरथर कॉपना शुरू कर देते थे—प्यास की भी नौबत आ जाती थी। कभी तो इस प्रकार नटखटपन करते थे कि हमे देखते ही घर के दूसरे दरवाजे से बाहर-निकल जाते थे-। अपनी पितामही के ये अधिक दुलारे थे। उस समय वही घर.की मुखिया थी। इनको तो वे उचित शिक्षा देकर संतोष देती थी, लेकिन हमसे कहती थी कि यह आज बहुत रोता था।

जिस दिन ये स्कूल पढ़ने नही जाते थे उस दिन गो-सेवा मे लग जाते थे। उस समय ये रट्टूमल नही थे, कुशाग्रबुद्धि थे। घर पर किताब नही पढ़ते थे, लेकिन अपना पाठ कभी अधूरा नही रखते थे। हिसाब इनका बहुत अच्छा था। प्राय' सभी विषयो मे ये बहुत तेज थे।

आत्माभिमान इनमे कूट-कूटकर भरा था। गॉव मे तिवारी-खानदान सब दिनो से धनी था। उस घराने के लड़के भी स्कूल मे पढ़ते थे। पर ये ऐसा कभी नही समझते थे कि हम गरीब है। उनलोगो से झगड़ा और बराबरी करने मे भी ये कभी हिचकते न थे।

पढ़ने मे अच्छा रहने का फल यह हुआ कि इन्हे अपर-प्राइमरी से ही स्कॉलरशिप मिला। उसके बाद ये शिवहर (मुजफ्फरपुर) पढ़ने चले गये।





श्रीरामलोचनशरण का औदार्य

पं० जनार्दन झा 'जनसीदन'; कुमरबाजितपुर (मुजफ्फरपुर)

लगभग बीस वर्ष पहले की बात है। मैं दरभंगा-राज-प्रेस के साप्ताहिक 'मिथिलामिहिर' का प्रधान सम्पादक था। उसी समय एक घटना हुई। जिला-स्कूल के एक हिन्दी-शिक्षक ने मास्टरी छोड़कर साहित्याराधन के क्षेत्र में प्रवेश किया। देखते-ही-देखते वे साहित्यिकों के मास्टर बन गये। वही हैं श्रीरामलोचनशरणजी, जो समस्त विहार में विशेषतः 'मास्टर साहब' के नाम से विख्यात हैं। उक्त घटना देखने में छोटी थी; किन्तु वह युगान्तरकारी सिद्ध हुई। अब तो वह ऐतिहासिक महत्त्व की चीज हो गई है।

इनके पूर्वज * ऐतिहासिक पुरुष थे। वे पश्चिम प्रदेश से आकर मिथिला में बस गये। इनका 'राधाउर' गाँव दरभंगा-राज्य के अधीन है।

उस समय 'मास्टर साहब' एक छोटे-से खपरैल मकान में रहते थे। उसी किराये के छोटे मकान में विहार का भावी साहित्यिक इतिहास बन रहा था।

इनके 'हिन्दी-व्याकरण-चन्द्रोदय' ने इनके सुयश का आलोक दिग्दिगंत में फैला दिया। इनकी पुस्तकें इतनी लोकप्रिय हुईं कि इनका नाम साहित्य-क्षेत्र में चमक उठा। विशेषत. बाल-साहित्य के आकाश में तो ये पूर्णचन्द्र के समान उदित हो उठे।

* इनके पूर्वज मेवात (राजपूताना) से आकर सहसराम (शाहाबाद) में बसे थे। उनमें मधुशाह का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनके नाम से 'मधुसाही पैसा' चलता था। इन्हीं के पुत्र 'हेमू' थे जो इतिहास-प्रसिद्ध सूर-वंश के शासन से सम्बन्ध रखते हैं। सहसराम के बाद मास्टर साहब के पूर्वज भोजपुर (शाहाबाद) में आकर बस गये और बाबू कुँवरसिंह के जगदीशपुर-दरबार के आश्रय में रहने लगे। सन् सत्तावन के गदर के समय से ये लोग मुजफ्फरपुर जिले में आकर रहने लगे।—लेखक

इनका प्राय सारा समय पुस्तक लिखने ही मे बीतता था और इनकी साध्वी सहधर्मिणी सुचारु रूप से घर का काम सँभालती थी। इन्होंने अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसाय से थोड़े ही दिनो मे 'पुस्तक-भंडार' की नीव दृढ कर दी। इनकी लिखी पुस्तके इतनी सुन्दर और उपयोगी होती थीं कि प्रान्त-भर के शिक्षक अपने स्कूलो के लिये ये ही पुस्तके खरीदने लगे। देहात के लोग अपने लड़को के लिये यहीं से शिक्षोपयोगी पुस्तके खरीद कर ले जाते थे। किसी-किसी दिन तो खरीदारो का मेला-सा लग जाता था। इस प्रकार पुस्तको की प्रचुर बिक्री से 'भंडार' की आय क्रम-क्रम से बढ़ चली। जो रुपये आते थे, वे साहित्यिक कार्यों मे ही लगाये जाते थे।

× × × ×

सन् १९२२ ई० मे मुझे १५०) की बड़ी जरूरत हुई। मैंने छुट्टी के लिये दरभगा-राज के सदर आफिस मे दरख्वास्त दी। एक सप्ताह की भी छुट्टी मिल जाती तो मैं अपने घर जाकर रुपये का प्रबंध करता। पर छुट्टी मंजूर नहीं हुई। प्रेस के क्लर्क पं० जयमंगल दूबे से मैंने अपनी विषम स्थिति प्रकट की। उन्होंने कहा—"आप पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष बाबू रामलोचनशरणजी से मिले और उनसे अपनी आवश्यकता सूचित करे, वे साहित्य-सेवियो की सेवा करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं।"

मै दूसरे ही दिन सवेरे इनसे जा मिला। अपना परिचय देते हुए मैंने कहा—"मैं आपसे कुछ कहने के लिये तो जरूर आया था; परन्तु कहने का साहस नहीं होता।" इन्होंने कहा—"आप निसंकोच कहिये, जो काम मुझसे होने लायक होगा, अवश्य होगा।" मैंने कहा—"मुझे १५०) की बड़ी जरूरत है। दो दिन के भीतर न मिलने से मैं बड़े सकट मे फँसूँगा। मुझसे आप हैंडनोट लिखा ले। प्रतिमास थोड़ा-थोड़ा देकर छ महीनो मे चुका दूँगा।" इन्होंने कहा—"यह भडार साहित्य-सेवियो की सेवा करने के लिये सर्वदा तैयार रहता है। किन्तु इस समय मेरे पास उतना रुपया मौजूद नहीं है। मेरी गृहिणी के पास यदि होगा तो मैं उनसे लेकर दे सकता हूँ।"

यह कहकर घर के अन्दर गये और थोड़ी देर के बाद दस-दस रुपये के पन्द्रह नोट लाकर मेरे हाथ मे रख दिये। मैंने इनकी ऐसी अविरल उदारता पर मुग्ध होकर कहा—"धन्य आपकी धर्म-पत्नी और धन्य आप। एक अपरिचित व्यक्ति के साथ ऐसा औदार्यपूर्ण व्यवहार लोक-दुर्लभ है। आपके नाम के साथ 'शरण' शब्द सार्थक है।"

जब मैंने इनसे हैंडनोट की बात कही, बोले—"हैंडनोट की जरूरत नहीं

है। अगर आप पीछे रुपया न देना चाहेंगे तो हैंडनोट ही कौन काम देगा? इतने के लिये हम क्या आप पर नालिश दायर करेंगे? आप सुविधा से, जब जैसे हो, दे दीजियेगा।"

इनका ऐसा उच्च विचार देखकर मेरी आँखों में कृतज्ञता के आँसू भर आये। मैंने गद्गद कंठ से कहा—'ईश्वर आपके भंडार को दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ावे' और पुलकित चित्त से अपने आफिस का रास्ता पकड़ा। पं० जयमंगल दूबे तब तक आफिस में आ गये थे। मैंने उनसे इनकी उदारता की सब बातें सुनाते हुए कहा—"वे अनुपम व्यक्ति हैं। उनके सदृश उच्च विचार का मनुष्य-रत्न ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। साहित्य-रसिक शरणजी की यह उदारता राजा भोज का स्मरण कराती है।"

समय पर रुपया मिल जाने से मैं निश्चिन्त होकर अपना काम करने लगा। जिस जरूरी काम के लिये मैंने रुपया लिया था, वह भी पूरा हो गया। तब से, जब कभी मैं किसी काम से लहेरियासराय जाता था, इनसे जरूर मिलता था, और घंटों इनसे साहित्य-संबंधी वार्त्तालाप करके वापस आता।

सन् १९३३ ई० में इन्होंने बड़ी श्रद्धा-भक्ति तथा विराट समारोह के साथ श्रीरामार्चा-यज्ञ किया था, जिसमें अनेक गण्य-मान्य व्यक्ति निमंत्रित होकर आये थे। यज्ञीय संभार के आयोजकों तथा कार्य-निरीक्षकों में श्रीसूर्यनारायणसिंह (डिपुटी मैजिस्ट्रेट), बाबू रामेश्वरप्रसाद सिंह (आबकारी-विभाग के जिला-सुपरिंटेंडेंट), रायबहादुर पं० जयानन्द कुमर (पोस्ट-आफिस-सुपरिंटेंडेंट) आदि विशिष्ट ईश्वर-भक्त व्यक्ति थे। इन पंक्तियों का लेखक भी सम्मिलित था। यज्ञ समाप्त होने पर आमंत्रित व्यक्तियों और गुणी लोगों की यथा-योग्य विदाई की गई। याचक भी संतुष्ट होकर गये।

सज्जन तो सभी पुस्तक-भंडार के शुभचिन्तक थे, परन्तु कितने ही दुर्जन इसके विरोधी भी हुए, किन्तु 'यतो धर्मस्ततो जय.'—'राखनिहार जिन्हे भुज चारि कहा करिहैं भुज दोइ बिगारे।' जिसपर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचंद्र की कृपा होती है, उसका कौन बाल बाँका कर सकता है? शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति 'भंडार' की कला दिन-दिन बढ़ने लगी।

× × × ×

जनवरी, १९२३ में मैं वणिक् प्रेस (कलकत्ता) में नियुक्त हुआ। जब मुझे जनवरी का वेतन मिला तब मैंने सर्वप्रथम बाबू रामलोचनशरणजी को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार २५) मनीआर्डर द्वारा भेज दिया और लिख दिया कि हर महीने २५) भेजकर छ महीने में आपका रुपया चुकता कर दूँगा।

अपने संकल्प के अनुसार फिर दूसरे महीने मे भी मैंने २५) इनके पास भेजा। अबकी बार इन्होने रुपया न लेकर मनीआर्डर वापस कर दिया और पत्र लिखा कि रुपये के बदले कोई सुपाठ्य पुस्तक लिख दीजिये, रुपया मत भेजिये।

इनकी ऐसी उदारता देखकर मै मुग्ध हो गया। मन मे कहा, साहित्य से इतना प्रगाढ़ प्रेम रखनेवाला और साहित्य-सेवियो पर इतनी दया दिखलानेवाला व्यक्ति और कौन मिलेगा ?

जब मै श्रीनगर (पूर्निया) के दरबार मे था, तब (१९०६ मे) महाकवि विद्यापति के नीति-विषयक 'पुरुष-परीक्षा' ग्रन्थ का हिन्दी-गद्य-पद्य मे अनुवाद करने लग गया था। इनके उदार विचार ने अब मुझे उसे पूरा करने को प्रोत्साहित किया। इन्होने सहर्ष उसे छपवा डाला और ऋण-बंधन से मुझे मुक्त कर दिया। बाद इन्होने मुझसे और भी पुस्तके लिखवाईं और तदर्थ उचित पुरस्कार भी दिये।

× × × ×

सन् १९२३ मे लहेरियासराय मे कचहरी के समीप 'गोल कोठी'* खरीदी गई, जिसके साथ बहुत बड़ा हाता था। उसी मे 'भंडार' का कारबार चलने लगा। कलकत्ता से मशीने मॅगवाई गईं। विद्यापति प्रेस खुल गया। विद्यापति-पुस्तकालय भी खुला। सुन्दर 'बालक' पत्र का भी प्रादुर्भाव हुआ। सुरुचिपूर्ण सम्पादन, आकर्षक चित्र, नयनाभिराम छपाई, शिक्षित समाज मे सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी। इस प्रकार 'भंडार' का सर्वत्र आदर होते देख इन्होने पटना मे भी जमीन खरीदकर 'भंडार' की शाखा खोल दी।

× × × ×

सार्वजनिक संस्थाओ को दान देने में आप सर्वदा अग्रसर रहे हैं। विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भवन बनाने के लिये जमीन खरीदने मे आरम्भिक सहायता देकर आपने उसे चिरऋणी बना लिया। देशोपकारी, धार्मिक तथा जातीय कार्यों मे भी आपने हजारो रुपये दान दिये हैं।

* जनवरी १९३४ ई० में भयंकर भूकम्प होने से यह गोल कोठी भूमिसात् हो गई, जिसमें हजारों रुपये का सामान नष्ट हो गया। परन्तु इस दैवी दुर्घटना से शरणजी जरा भी विचलित नहीं हुए। जो मकान मरम्मत के लायक था उसकी मरम्मत करवा दी और एक बहुत बड़ी इमारत सड़क के पास बनवा दी, जिसके बनने में कम-से-कम दो वर्ष समय लगा। वह सर्वाङ्गसम्पन्न होकर आज पथिकजनों के मन को अपनी ओर खींचती है। विशाल भवन की शोभा देख दर्शकों के नेत्र अँटक जाते हैं। आज बिजली के पखों और बिजली-बत्तियों से वह जगमगा रहा है। अब उसीमें 'भंडार' के काम हो रहे हैं।—लेखक

पुस्तक-भंडार से साहित्यसेवी और विद्वान् जितना उपकृत और सत्कृत हुए हैं, उतना बिहार की दूसरी किसी भी साहित्यिक संस्था से नहीं। बिहार के इस गौरवान्वित 'भंडार' की यह उदारता सर्वथा प्रशंसनीय है।

इस रजत-जयन्ती-महोत्सव के शुभावसर पर हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह भंडार को सर्वदा उन्नतिशील और चिरस्थायी रक्खे तथा श्रीरामलोचनशरणजी दीर्घजीवी होकर साहित्यिकों के लिये आधुनिक भोज बने रहें।





साहित्य के तीर्थ-स्थान में

स्वामी भवानीदयाल सन्यासी, जेकब्स, नेटाल, दक्षिण-अफ्रिका

वर्षों से 'पुस्तक-भंडार' का नाम सुन रहा था। उसके द्वारा स्वदेश मे हिन्दी-साहित्य की जो अभिवृद्धि हुई है, उससे भी परिचित था। उसके प्रवर्त्तक भाई रामलोचनशरण बिहारी ने हिन्दी-साहित्य-भडार को अनमोल रत्नो से अलकृत करने के लिये जो आत्मोत्सर्ग किया है, उसके प्रति मेरे हृदय मे श्रद्धा भी जम गई थी। किन्तु अबतक न 'भडार' को देखा था और न उसके प्रवर्त्तक को। देखने की बडी लालसा थी, किन्तु वह पूर्ण नही होने पाती थी।

जब सन् १९३१ मे मेरे बिहारी भाइयो ने मुझे दशम बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (देवघर) का सभापति चुना तब मेरी यह लालसा बलवती हो उठी कि बिहार की प्रमुख हिन्दी-सस्थाओ और विशेषत 'भडार' को देखना चाहिये। उस समय मै पटना मे साप्ताहिक 'आर्यावर्त्त' का सम्पादन कर रहा था। किन्तु दक्षिण-अफ्रिका के प्रवासी भारतवासी भाइयो की स्थिति ऐसी भयावह हो उठी कि मुझे अपनी सारी आकाक्षाओ का दमन करके वहाँ जाना ही पडा।

सन् १९३६ मे जब मै फिर भारत गया और बिहार पहुँचा तब 'भडार' का स्मरण आये बिना न रहा। लेकिन उस समय भी प्रवासियो के प्रश्न के सामने और किसी काम के लिये अवकाश निकालना कठिन था। सच तो यह है कि इधर राजनीतिक झमेले मे पड़कर मै साहित्य की ओर से पराङ्मुख हो रहा हूँ।

सन् १९३९ मे मै पृथक्करण कानून (Segregation Bill) के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये, दक्षिण-अफ्रिका के हिन्दुस्थानियो का प्रतिनिधि बनकर, भारत पहुँचा। बम्बई, दिल्ली, आगरा, अजमेर, कलकत्ता आदि का पर्यटन करते



बाईं ओर से—श्रीरामलोचनशरणजी
दाहिनी ओर से—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

हुए बिहार पर दृष्टि पड़ी। सबसे पहले मुझे 'भंडार' याद हो आया। उस समय भी मुझे बिल्कुल अवकाश न था। फिर भी मैं 'भंडार' को भूला न था। उसकी शक्ति बरबस मुझे अपनी ओर खीचने लगी। मैंने निश्चय कर लिया कि इस बार बिहार मे सबसे पहले लहेरियासराय जाऊँगा। इस चिरपोषित अभिलाषा का दमन करना अब कठिन हो गया।

मैंने कलकत्ता से लहेरियासराय के लिये कूच कर दिया। गंगा पार कर उत्तरीय बिहार के सौन्दर्य की छटा निहारते हुए ठीक समय पर वहाँ पहुँच गया। स्टेशन पर 'भंडार' के अनेक कर्मचारी उपस्थित थे, जिनमे केवल भाई शिवपूजन सहाय और वैदेहीशरण को ही मै पहचान सका। शिवपूजन बाबू ने सब भाइयो से परिचय करा दिया। गाड़ी से उतरते ही मैंने सबसे पहले 'मास्टर साहब' की तलाश की। मुझे यह जानकर निराशा हुई कि वे पटना गये हुए है। मुझे यह आशा दिलाई गई कि वे आज-कल मे ही वापस आ जायँगे।

मै थका-माँदा 'भंडार' के प्रसिद्ध चित्रकार श्री उपेन्द्र महारथी के बँगले पर पहुँचा। तीन दिन वहीं आसन रहा। महारथीजी की शक्ल-सूरत देखकर मै यह कल्पना भी न कर सका कि वे बिहार के एक ऐसे कलाकार है जिन्होने अपनी कृतियो से स्वदेश का मुख उज्ज्वल किया है। महारथीजी का स्वभाव जैसा नम्र है, हृदय भी वैसा ही कोमल है। उनमे श्रेष्ठ कलाकार के सभी गुण विद्यमान है। यदि वे यूरोप या अमेरिका मे पैदा हुए होते, ता आज संसार उनकी कृतियो का आदर किये विना नही रहता। यदि उनको अनुकूल अवसर मिला होता तो भारतीय कलाकारो मे उनका अपना एक स्थान होता। संतोष इतना ही है कि मास्टर साहब ने इस होनहार कलाकार को पहचाना और इसकी कलाओ से अपने 'भंडार' को सजाया। इस कलाकार के लिये मेरे हृदय मे स्नेह-भाव उत्पन्न हो गया है और मै उसकी कला का पुजारी बन गया हूँ। मेरा तो यह खयाल है कि इस कलाकार को उत्साह और सहायता देकर विशेष अध्ययन के लिये विदेश भेजना चाहिये, ताकि यह अपनी कृतियो से भारत-माता की अधिकाधिक मानवृद्धि कर सके। तथास्तु।

महारथीजी के बँगले, मेरे आराम की यथेष्ट व्यवस्था थी। वातावरण मे कला की छाप थी। वास्तव मे महारथीजी 'भंडार' के गौरव और गर्व है। महारथीजी और शिवपूजन बाबू को 'भंडार' की छत्रच्छाया मे पाकर मैं समझ गया कि मास्टर साहब कैसे नर-रत्न-पारखी हैं। अभीतक उनसे भेट नही हुई थी; किन्तु उनकी बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलता की धाक मुझपर जम गई।

शिवपूजन बाबू से मिलकर तो मेरे आनंद की सीमा न रही। 'भंडार' के वे अनमोल रत्न है और 'भंडार' की उनपर अनुपम छत्रच्छाया है।

उसी दिन शिवपूजन बाबू और महारथीजी को पटना जाना था—राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का आदेश पाकर। बिहार ही (रामगढ़) मे राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का महाधिवेशन होनेवाला था, जिसमे सभी बिहारियो के सहयोग की आवश्यकता थी। प्राचीन और अर्वाचीन बिहार को चित्रो मे चित्रित करना था, उसके लिये महारथीजी की जरूरत थी, और बिहार का एक बृहत् इतिहास छप जाना था, उसमे शिवपूजन बाबू की सहायता आवश्यक थी। दोनो भाई पटना चले गये, किन्तु वचन दे गये कि दूसरे दिन अवश्य लौट आवेगे। मुझे वैदेही शरणजी की देख-रेख मे छोड़ गये। इन्होने बड़े प्रेम और लगन से मेरी सेवा की। इनके साथ दत्तजी भी साहित्य-चर्चा से मेरा बड़ा मनोरंजन करते थे। सच मुच सहकारी 'बालक'-सम्पादक श्रीअच्युतानंद दत्त हिन्दी और संस्कृत तथा मैथिली के प्रकांड पंडित हैं।

दूसरे दिन भाई रामलोचनशरणजी के दर्शन हुए। आप ही 'पुस्तक-भंडार' और 'बालक' के शरीर, हृदय और आत्मा है। आप ठीक वैसे ही मिले जैसे कोई अपने बिछुड़े भाई से बहुत दिनो पर मिलता है। उस मिलन की स्मृति मेरे हृदय मे सदा सुरक्षित रहेगी। जब मुझे यह मालूम हुआ कि आप भी पूर्वज-परम्परा के अनुसार आरा (शाहाबाद) जिले के ही एक रत्न है, तब तो मेरे हर्ष की सीमा न रही। आपकी मंजुल मूर्त्ति को देखते ही आपकी सेवाओं की जीती-जागती तसवीर मेरी आँखो के सामने आ गई।

मास्टर साहब बिहार की एक ऐसी विभूति है, जिनपर हम गर्व से मस्तक उठा सकते हैं। राष्ट्रभाषा के चरणो पर उन्होने सर्वस्व निछावर कर दिया है। हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि करके उन्होंने मातृभूमि की जो महान् सेवा की है, उसके सामने श्रद्धा से हमारा सिर झुक जाता है। उनके कार्यों का विवरण वास्तव मे बिहार के हिन्दी-साहित्य के इतिहास का एक अनुपम अध्याय है।

मैंने मास्टर साहब को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखा, किन्तु उनमे व्यापारिक भावनाओ का पता न चला। मैंने बहुत ढूँढ़ा, खूब टटोलकर देखा, फिर भी उनको विशुद्ध साहित्यिक ही पाया। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि साहित्य ही उनका धर्म, कर्म और भगवान् है।

साहित्य की रचना और प्रकाशन के लिये साधन की आवश्यकता होती है। उसी साधन का नाम है रुपया। किन्तु साधन को उन्होने साध्य नहीं बनाया, केवल अर्थोपार्जन की दृष्टि से उन्होने इस व्यवसाय को नहीं अपनाया।

वे जन्म से वैश्य है सही; किन्तु उनके कर्म में ब्राह्मणवृत्ति और वैश्यवृत्ति का अनुपम सम्मिश्रण है। जहाँ उन्होने स्वयं साहित्य की सृष्टि और सेवा की है, वहाँ दूसरो को भी सहायता और प्रोत्साहन देकर वैसा ही करने का अवसर दिया है। उनके अन्दर एक ऐसा दिल है जिसमे देश के लिये दर्द है और उसी का प्रतिविम्ब है—'पुस्तक-भंडार'।

मास्टर साहब और उनके 'पुस्तक-भंडार' के विरुद्ध उस समय एक तूफान-सा मचा हुआ था। उनपर यह आक्षेप किया जा रहा था कि वे हिन्दुस्तानी के अग्रदूत बन रहे है। लेकिन जहाँ तक मैने उनको समझा है—विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यह आक्षेप निराधार ही नहीं, निन्दनीय भी है।

मास्टर साहब ने मुझे 'भंडार' के भिन्न-भिन्न भाग दिखलाये। विशाल छापाखाना देखा, गोदाम देखा, पुस्तको का थोक देखा, 'बालक' और 'भंडार' के दफ्तर देखे। सब कुछ देख-सुनकर जब मास्टर साहब के खास दफ्तर मे आया तब वहाँ दीवार पर टँगी हुई तसवीरों पर मेरी आँखे अटक गई। बिहार के सभी प्रमुख साहित्य-सेवियो के बड़े आकार के सुन्दर चित्र थे। उनमे अपना भी एक चित्र देखकर मुझे बड़ा ही संकोच हुआ। वास्तव में न मैं साहित्यिक हूँ और न भाषा-विज्ञान का मर्मज्ञ ही। किन्तु जिस प्रकार प्रवासी भारतवासी हिन्दी-प्रेमी होने के कारण ही मै अखिलभारतीय हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन (कलकत्ता) और बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के आसन पर बैठाया गया, शायद उसी प्रकार मास्टर साहब ने मुझे बिहार का एक हिन्दी-सेवक मानकर वहाँ स्थान दे दिया था।

मास्टर साहब के स्वभाव का मुझपर गहरा असर पड़ा। उनकी योग्यता और अनुभव का मैं कायल हो गया। 'भंडार' के अन्य कर्मचारियों ने भी अपने प्रेम का परिचय देकर मुझे मोह लिया।

लहेरियासराय से प्रस्थान करने से पहले मैने शिवपूजन बाबू के घर पर जाकर भोजन करने की ठान ली; क्योकि वे प्रति दिन भोजन तैयार कराकर महारथीजी के बँगले पर भेज दिया करते थे और यह बात मुझे बहुत खटक रही थी। वे एक झोपड़े मे रहते थे और वहाँ मुझे ले जाने मे संकोच करते थे। अन्त में मेरे हठ के सामने उनको झुक जाना पड़ा। उस दिन उनकी देवीजी के हाथो से प्रसाद पाकर मै तृप्त हो गया और उनके बच्चो का स्नेह पाकर और भी अघाया।

'पुस्तक-भंडार' से मुझे जो दक्षिणा मिली थी वह मेरे पुस्तकालय की अमूल्य सम्पत्ति है। मैं वहाँ विश्राम करने के लिये गया था; किन्तु अन्तिम दिन स्थानीय कांग्रेस-कमिटी के अनुरोध से, कांग्रेस-आश्रम के मैदान मे, सार्वजनिक

सभा मे व्याख्यान देना पडा। इस प्रकार तीन दिन इस साहित्यिक तीर्थ मे बिताकर मैं राजनीतिक क्षेत्र मे आरा के लिये प्रस्थान किया।

आज मैं समुद्र-पार विदेश मे बैठा हूँ, फिर भी मास्टर साहब, शिवपूजन सहाय, महारथीजी, अच्युतानंद दत्तजी तथा 'भंडार' के अन्य कर्मचारियो की प्रेम पूर्ण प्रतिमाएँ मेरे सामने है। वहाँ की स्नेहमयी स्मृतियाँ न अबतक भूली हैं और न कभी भूल ही सकती हैं।





सुदामा के कृष्ण

अध्यापक श्रीरामदास राय; अशोकाश्रम, गाजीपुर (युक्तप्रान्त)

'स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितम्'—इस संसार में उसी का जन्म लेना सार्थक है जिससे वंश उन्नति प्राप्त करे।

आज लहेरियासराय मे एक भव्य भवन खड़ा है और उसमें कितने ही जीव अपना निर्वाह कर रहे है। उसे जिस माई के लाल ने वहाँ खड़ा कर दिया है, वह सन् १८९७ में—मेरे इंट्रेंस पास कर लेने पर हेडमास्टर होने के बाद—अपने पिता के द्वारा, मेरे पास, शिवहर (मुजफ्फरपुर) के मिड्ल इंगलिश स्कूल मे लाया गया। उसकी अवस्था उस समय दस-बारह वर्ष की रही होगी। देखने मे लड़का हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न मालूम पड़ा। अपर पास कर मिड्ल मे पढ़ने आया था। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उसके देखने से कहावत चरितार्थ होती जान पड़ती थी। वह अपनी धुन का पक्का जान पड़ता था। साधारण स्थिति के पिता के लड़के मे सादगी होनी ही चाहिये, वह उसमे भरपूर थी।

पिता उसके यद्यपि बहुत साधारण स्थिति के आदमी थे, तथापि धर्म-कर्म मे उनकी प्रबल निष्ठा थी। माँ भी किसी तीर्थ-यात्रा से—संभवतः वाराह-क्षेत्र से—लौटी थी जब मै संयोगवश लहेरियासराय पहुँचा था। माँ-बाप दोनो धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पुत्र है ही क्या, माता-पिता के भावो का सम्मिश्रण। धार्मिक भाव उस समय रामलोचन मे अंकुर-रूप से रहे, पीछे पल्लवित हुए है।

बालक रामलोचन को लड़के तंग करते थे, पर रामलोचन उनसे बदला लेना नही जानता था—अपना काम करता जाता था। जो लड़के अपर पास कर

आते थे, वे दो वर्षों मे मिड्ल इंगलिश तभी कर सकते थे जब तेज होते थे। रामलोचन ने यह काम आसानी से कर लिया।

उस समय रामलोचन के लिये 'हजारी गाछी'—हजार पेड़ो वाला आम का वागीचा, जो स्कूल के पास था—दौड़-धूप और खेल-कूद की जगह थी, और शिवहर के राजा साहब का दिव्य दरबार देखने-सुनने की वस्तु था।

रामलोचन के पिता ने दो बोरे दूध के ऐसा उज्ज्वल चावल मेरे घर भेजा था। रामलोचन ने १००) मेरे लड़के गौरीशंकर को मिठाई खाने को दिया। वालक रामलोचन के प्रति मेरे हृदय मे जो स्नेह था, वह उसके पिता की गुरुभक्ति के कारण और भी बढ़ा हुआ था।

उस समय के सब लड़के स्कूल मे ऐसे मालूम पड़ते थे मानो वे एक परिवार के हो। श्रीकृष्ण और सुदामा की याद दिलाने के लिये आज भी प्रियवर सूबालाल कर्ण रामलोचन के साथ है। भगवान् इस पुरानी जोड़ी की यह संगति वहुत दिनो तक निबाहे। रामलोचन अपने प्रेमी वर्गों के साथ वहुत दिनो तक फूले-फले और साहित्य की सेवा करे।





बिहार का साहित्यिक गौरव

रायबहादुर बेचूनारायण; रिटायर्ड इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स; पटना

मै 'पुस्तक-भंडार' को बिहार का रत्न-भंडार समझता हूँ। इसके संस्थापक और संरक्षक श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी को एक सच्चे देश-सेवक के रूप मे अलौकिक पुरुप समझता हूँ।

'भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर शरणजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाने का आयोजन मणि-काञ्चन-संयोग है। इसे बिहार का एक महान् साहित्यिक पर्व या महोत्सव समझना चाहिये। कौन जानता था कि आपकी स्वर्ण-जयन्ती के साथ 'भंडार' की रजत-जयन्ती का इस प्रकार शुभ मिलन होगा। यह विधाता का ही मंगलमय और आनन्दप्रद विधान है।

जिस तरह मनुष्य और मनुष्य की छाया परस्पर अभिन्न है, उसी तरह 'भंडार' और रामलोचनशरणजी है। यथार्थ ही आप रामलोचन है। आपने अपने नाम को सार्थक किया है। धन्य है आपके माता-पिता, जिन्होंने पचास वर्ष पहले आपके लिये ऐसा नाम चुना था। पचीस वर्ष पहले आपकी आँखो ने देश की सच्ची अवस्था देखी थी, मानो इन आँखो मे राम ही की सत्ता थी। राम की शरण ही शरणजी की इस उन्नति का कारण है। अगर आप राम की शरण न लेते, तो बिहार मे 'रत्न-भंडार' की स्थापना नहीं कर सकते।

प्रश्न उठ सकता है कि आपने तो अपनी जीविका के उपार्जन के लिये उपाय सोचकर 'भंडार' की नीव डाली थी। लेकिन यहाँ पर यह निवेदन करता हूँ कि जीविका के उपार्जन के अनेकानेक उपाय है। किन्तु भगवान् ने आपमे

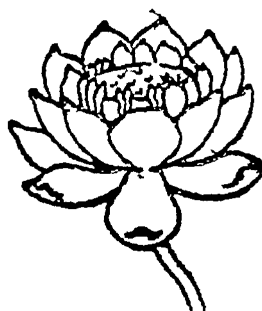
शिक्षा-प्रचार की ही प्रेरणा दी। उसी से अनुप्राणित हो आपने इस महान् कार्य का भार उठाया।

रामलोचनजी ने शिक्षा-प्रसार द्वारा देश-सेवा करने के लिये पचीस वर्ष पहले कटिबद्ध हो दृढ़ संकल्प किया था। विशेषत देश के मूलधन बच्चो की शिक्षा की ओर आपकी दृष्टि पड़ी। आपकी चिन्ता सदा यही रही कि बच्चों की शिक्षा के लिये किस प्रकार भली-भली शिक्षाप्रद पुस्तके लिखकर उनकी सच्ची सेवा करे। आपने शिशुओ की सेवा मे अपनेको उत्सर्ग कर दिया। बच्चो के योग्य सुन्दर-सुन्दर पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर सचमुच उन्हे साहित्य-रस-पान कराया। इतना ही नही, शिक्षक, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सभी के लिये आपने नाना प्रकार की उपयोगी पुस्तके प्रकाशित कीं। फिर 'बालक' भी आपकी सेवा का एक अपूर्व और ज्वलन्त प्रमाण है।

१९३५ मे जब सम्राट् पचम जार्ज की रजत-जयन्ती मनाई गई थी, आपने बहुत ही उत्साह के साथ उसमे योग दिया था—'बालक' का रजत-जयन्ती अंक बहुत ही सुन्दर निकाला था। सम्राट् अष्टम एडवर्ड और वर्त्तमान सम्राट् षष्ठ जार्ज के अभिषेकोत्सव में भी आपने उसी उत्साह से सेवा की थी। उस अवसर पर भी 'बालक' के द्वारा आपने राज्याभिषेक-महोत्सवो का सचित्र विवरण हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित किया था। सम्राट् पंचम जार्ज के स्वर्गारोहण के समय भी आपका शोक-प्रकाश 'बालक' के विशेषांक मे प्रकट हुआ था। साक्षरता-आन्दोलन मे आपने जिस उदारता तथा सेवा-भाव का परिचय दिया, वह सर्वथा स्तुत्य है। इस सेवा के उपलक्ष्य मे सरकार ने आपको स्वर्ण-पदक प्रदान कर अपनी गुणज्ञता का परिचय दिया।

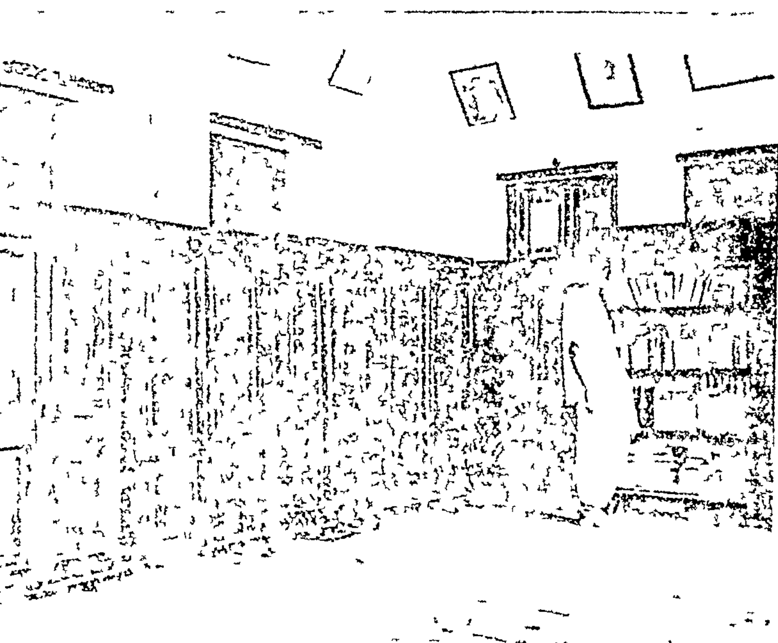
रामलोचनजी ने सदा अपने सरल, सच्चे और आनन्दमय स्वभाव से सबको संतुष्ट और प्रसन्न रक्खा है। स्कूल, पाठशाला, शिक्षक और छात्र तथा शिक्षा-विभाग के साथ आपका सम्बन्ध बराबर बहुत ही सराहनीय रहा। उनके साथ आज भी आपका व्यवहार बहुत ही प्रेमपूर्ण है।

मैने जो कुछ कहा है, सुनी-सुनाई बाते नही, मेरी आँखो-देखी है।





विद्यापति-पुस्तकालय का वाचनालय



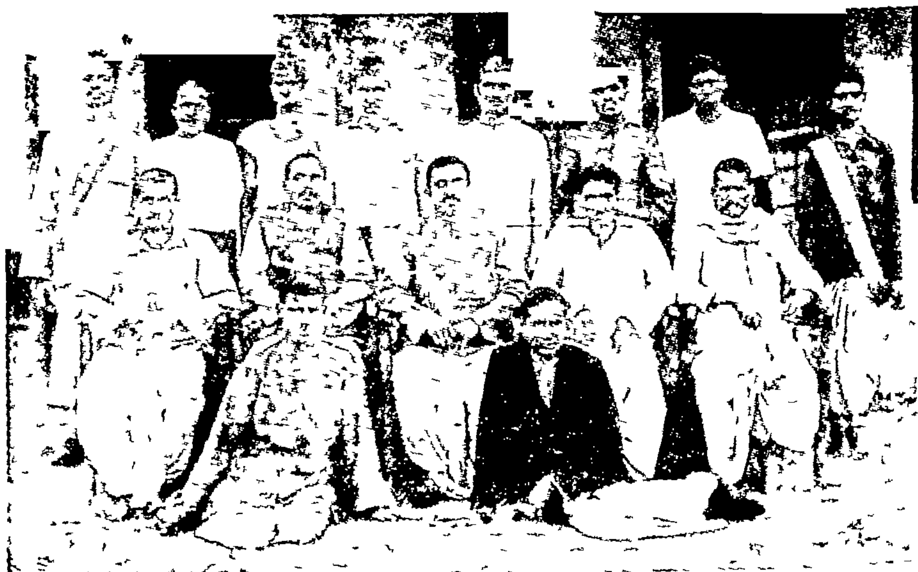
पुस्तक-भंडार का विद्यापति-पुस्तकालय
पुस्तकालय-प्रबन्धक—
श्रीलक्ष्मीनारायण झा (दरभंगा)



पुस्तक-भंडार का पुस्तक-बिक्री-विभाग
आगे खड़े—पं० व्रजविहारी त्रिवेदी (पटना), बैठे—पं० बबुए झा (प्रधान) ; पीछे खड़े दाहिनी ओर से—शिवनारायणलाल कर्ण, झींगुर और रूदल।



विद्यापति प्रेस के आफिस-कर्मचारी
दाहिनी ओर से दूसरे (कुर्सी पर)— श्रीहनुमानप्रसाद (काशीनिवासी), मैनेजर



पुस्तक-भंडार (पटना) के कर्मचारी
बीच में कुर्सी पर—मैनेजर पं० जयनाथ मिश्र (दरभंगा), बाईं ओर से दो—पं० कमलाकान्त झा, बाबू परमेश्वरसिंह। दाहिनी ओर से दो —श्रीमणिशंकरलाल कर्ण, मुन्शी ठक्कन।



मास्टर साहब की अनुकरणीय सरलता

रायसाहब श्रीरामशरण उपाध्याय, एम० ए०; प्रधानाध्यापक, ट्रेनिंग स्कूल, पटना

सन् १९१४ की जुलाई की पहली तारीख। मैं कालेज से निकलकर पहले-पहल, शिक्षण-कार्य के लिये, सहायक शिक्षक के रूप में, दरभंगा के नार्थब्रुक स्कूल मे पहुँचा। मेरी जन्मभूमि दरभंगा जिले मे है; लेकिन दरभंगा शहर मे निवास करने का सुअवसर मुझे कुछ महीनो के लिये ही सन् १९०५ मे मिला था—मिड्ल-वर्नाक्युलर की छात्र-वृत्ति-परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर। इसलिये परिचय वहाँ बहुत कम लोगो से था। स्कूल मे प्रविष्ट होने पर तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्रीयुत (अब रायसाहब) ज्ञानदाचरण मजुमदार ने बहुत ही आह्लाद तथा उत्साह के साथ मेरा स्वागत किया।

मैं उस समय इक्कीस वर्ष का था। लड़को मे बहुत-से मेरी उम्र के थे। शिक्षको की मंडली मे जब मैं पहले-पहल जाकर बैठा तब उनलोगो ने कुछ विनोद-पूर्ण भाव से, किन्तु प्रेम-पूर्वक, मुझे अपने मे सम्मिलित किया। श्रीरामलोचन-शरणजी से वहीं भेट हुई।

अवस्था मे शरणजी मुझसे कुछ ही बड़े थे, शिक्षा-विभाग मे भी केवल कुछ ही वर्ष पहले सम्मिलित हुए थे। उन दिनो स्कूलो मे हिन्दी की तरफ प्रायः अल्पसंख्यक छात्रो तथा अभिभावको का झुकाव था। इन्होंने इस क्षेत्र में लहेरियासराय मे तथा नार्थब्रुक स्कूल मे कुछ कार्य का श्रीगणेश किया था। लहेरियासराय मे पंडित गिरीन्द्रमोहन मिश्रजी, जो अब दरभंगा-राज्य के असिस्टैंट मैनेजर है, तथा श्रीयुत ब्रजकिशोरप्रसादजी वकील (अब वयोवृद्ध राष्ट्रीय नेता) के संरक्षण मे एक साहित्य-सभा स्थापित हुई थी। स्कूलो मे भी कुछ छात्रो के उत्साह तथा हिन्दी-प्रेम से लाभ उठाकर एक हिन्दी-सभा की स्थापना की गई थी।

इन्होंने मेरा सप्रेम हार्दिक स्वागत एक हिन्दी-भाषा-भाषी एकमात्र ग्रेजुएट शिक्षक के नाते किया। 'एकमात्र' का तात्पर्य यह कि उस समय नार्थब्रुक स्कूल मे एक भी हिन्दी-भाषा-भाषी ग्रेजुएट शिक्षक नही था। हाँ, मेरे जाने के दो वर्ष पूर्व एक हिन्दी-भाषी ग्रेजुएट पंडित गुरुदेवप्रसाद शर्माजी, जो आरा के स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा के बड़े भाई है, कुछ महीनो तक रहकर वहाँ से अन्यत्र जा चुके थे। मिलने के साथ इन्होंने हिन्दी की अवस्था के संबंध मे मुझसे बाते की तथा अपने शुभ अनुष्ठान मे हाथ बँटाने का प्रोत्साहन दिया।

इनकी व्याकरण-विषयक पहली किताब उस समय तैयार हो चुकी थी। प्रयाग के 'विद्यार्थी' मासिक पत्र का, स्कूल मे तथा नगर मे, इनके द्वारा खूब प्रचार हो रहा था। स्कूल तथा नगर की हिन्दी-सभाओ की बैठके नियमित रूप से हुआ करती थीं। इनकी प्रेरणा के फल-स्वरूप मुझे भी उक्त सभाओ मे सहयोग देने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

पटना-विश्वविद्यालय का स्थापन उस समय नही हुआ था। नार्थब्रुक स्कूल कलकत्ता-विश्वविद्यालय से संबद्ध था। उक्त विश्वविद्यालय ने इतिहास तथा भूगोल के प्रश्न-पत्रो का इच्छानुसार अँगरेजी अथवा देशी भाषाओ मे उत्तर देने का अधिकार दिया था। किन्तु उसका उपयोग कदाचित् ही कोई छात्र करता था। देशी भाषाओ मे, विशेषत हिन्दी मे, पुस्तको का अभाव तो था ही—अनुकूल वायु-मंडल का भी अभाव था।

प्रवेशिका-वर्ग मे इतिहास पढ़ाने का काम मुझे सौपा गया। इन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं हिन्दी मे उत्तर लिखने के लिये कुछ छात्रो को उत्साहित करूँ तथा उसके लिये इतिहास की पाठ्य पुस्तक का एक संक्षिप्त अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत कर दूँ। इनकी प्रेरणा से मैने चेष्टा की। १९१५ और १९१६ के कुछ परीक्षार्थियो ने हिन्दी मे इतिहास-पत्र का उत्तर लिखा। उनमे श्रीयुत परमानंद दारुका तथा श्रीयुत यमुना कार्यी का स्मरण अभी तक है।

इनका जीवन तो अभी तक सादा है। किन्तु १९१४ मे इनकी जैसी आर्थिक स्थिति थी, उसमे सादगी अनिवार्य थी। ये सादा कुरता तथा दुपल्ली टोपी पहनकर प्राय स्कूल आया करते थे। जूता देशी पहनते थे।

१९१४ के अगस्त मे, स्कूलो के इंस्पेक्टर की हैसियत से, श्रीयुत (अब रायसाहब) पडित बलदेव मिश्रजी ने स्कूल का निरीक्षण किया। सभी शिक्षको को आज्ञा मिली कि अवसर के उपयुक्त कपड़े पहनकर आवे। कोट-पतलून चपकन-पाजामा अथवा कम-से-कम कुरता या कमीज और धोती के ऊपर कोट या अचकन



श्रीमान् रामलोचनशरणजी (मास्टर साहब १९१२ ई०)—
आप जब गया जिला - स्कूल में हिन्दी - शिक्षक थे।

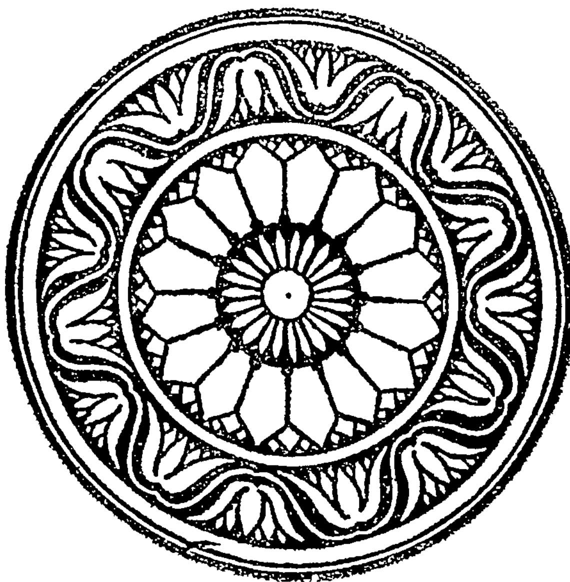
की गणना उपयुक्त पोशाक मे हो जाती थी। नहीं तो कुरते के ऊपर एक चादर रखना जरूरी था।

निरीक्षण के दिन सभी शिक्षक कपड़ों में कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन कर आये; किन्तु केवल ये ही पूर्ववत् धोती-कुरते मे आये। इसके लिये इन्हे हेड मास्टर के पास कैफियत भी देनी पड़ी।

समय का कैसा परिवर्त्तन है। धोती और कुरते का प्रवेश, गत पचीस वर्षों के भीतर बड़े-से-बड़े लोगो के बैठकखानो मे तथा बड़े-से-बड़े पदाधिकारियों के दफ्तरो मे निस्संकोच हो रहा है।

इनका और मेरा साथ केवल छ महीनों का रहा। जनवरी, १९१५ मे मैं 'पूसा' (दरभंगा) चला गया। किन्तु इनके प्रेम का पात्र सदा बना रहा। हिन्दी-सेवा मे इनसे सदा उत्साह-वर्द्धन पाता रहा।

'पुस्तक-भंडार' तथा 'बालक' बिहार-प्रान्त के गौरव है। जब तक दोनो रहेंगे, इनकी प्रतिभा, कार्यक्षमता तथा सुसंगठन-शक्ति के परिचायक बने रहेंगे।



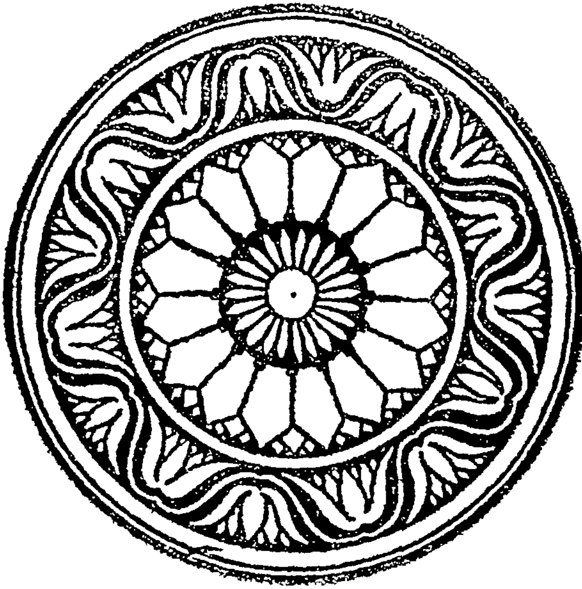
की गणना उपयुक्त पोशाक में हो जाती थी। नहीं तो कुरते के ऊपर एक चादर रखना जरूरी था।

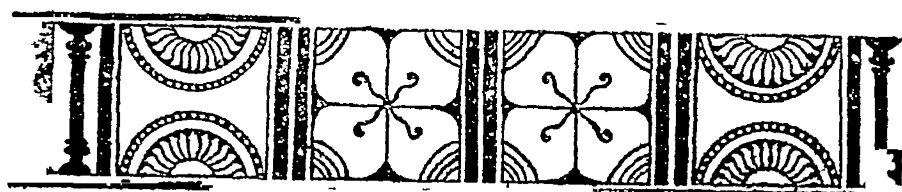
निरीक्षण के दिन सभी शिक्षक कपड़ों में कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन कर आये; किन्तु केवल ये ही पूर्ववत् धोती-कुरते में आये। इसके लिये इन्हें हेड मास्टर के पास कैफियत भी देनी पड़ी।

समय का कैसा परिवर्त्तन है। धोती और कुरते का प्रवेश, गत पचीस वर्षों के भीतर बड़े-से-बड़े लोगो के बैठकखानो मे तथा बड़े-से-बड़े पदाधिकारियों के दफ्तरों मे निस्संकोच हो रहा है।

इनका और मेरा साथ केवल छ महीनों का रहा। जनवरी, १९१५ मे मैं 'पूसा' (दरभंगा) चला गया। किन्तु इनके प्रेम का पात्र सदा बना रहा। हिन्दी-सेवा मे इनसे सदा उत्साह-वर्द्धन पाता रहा।

'पुस्तक-भंडार' तथा 'बालक' बिहार-प्रान्त के गौरव है। जब तक दोनो रहेंगे, इनकी प्रतिभा, कार्यक्षमता तथा सुसंगठन-शक्ति के परिचायक बने रहेंगे।





बिहार का गौरव 'पुस्तक-भंडार'

रायसाहब पं० सिद्धिनाथ मिश्र, बी० ए०, एल० टी०, एफ० पी० यू०; पटना

कौन जानता था कि बाबू रामलोचनशरण के भीतर उन्नति की ऐसी चिनगारी है, जो बरसों शिक्षक का कार्य करने पर भी बुझी नहीं, बल्कि दिन-दिन धधकती गई, और अन्त मे जिसने आपको एक अकिञ्चन पद से उठाकर भारत-विख्यात सम्भ्रांत व्यक्ति बनाकर ही छोड़ा।

जिस समय आप अपने शिक्षण-कार्य को तिलांजलि दे रहे थे, उस समय आपके मित्रो को कदापि यह विश्वास न था कि आप पुस्तक-प्रकाशन-कार्य का योग्यता-पूर्वक परिचालन कर सकेंगे। किन्तु अध्यवसाय भी एक चीज है। जिसने इसका वरण किया, ससार मे उसका नाम निकला।

आज के उन्नत 'भंडार' की नीव सन् १९१६ ई० मे ३ जनवरी को पड़ी थी। कैसा शुभ मुहूर्त्त था वह! दिन-दिन उन्नति-पथ पर अग्रसर होकर 'भंडार' ने उत्तम रूप से साहित्य-सेवा की है। छोटे बच्चो से लेकर बी० ए० और एम० ए० तक के छात्रो के पढ़ने योग्य उसने उत्तमोत्तम पुस्तके तैयार कराई है। केवल बिहार-सरकार ने ही नहीं, उसकी पुस्तको का आदर अन्यान्य प्रान्तीय सरकारो ने भी किया।

जिस समय बिहार के कांग्रेसी शिक्षा-मंत्री डाक्टर सैयद महमूद साहब ने निरक्षरता-निवारण का आन्दोलन चलाया, उस समय जनता मे शिक्षा की ज्योति जगाने के उद्देश्य से 'भंडार' को प्राय पंद्रह-बीस हजार रुपये व्यय करने पडे।

धन्य भंडार! यह तुम्हारी कीर्त्ति अनपढ़ जनता अब पढ-पढकर सदा गाया करेगी और तुम्हारी आयु-वृद्धि की प्रार्थना वह परमात्मा से करती रहेगी,

जिसे शीघ्र सुननेवाले परम पिता तुम्हारी इस सहायता से इन्हें दिन-दूनी रात-चौगुनी आगे बढ़ाने का मंगलमय आशीर्वाद देंगे।

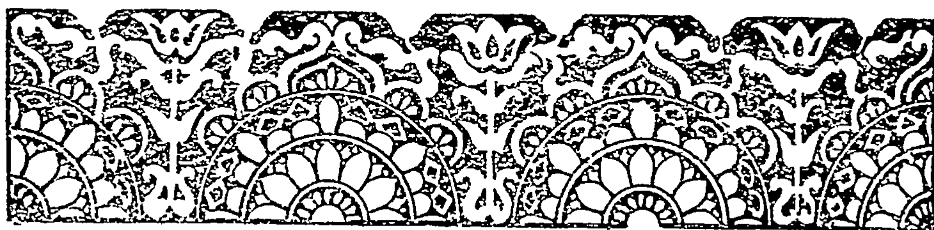
'भंडार' ने सयाने अनपढ़ो मे केवल पुस्तक-वितरण ही नहीं किया, कई सौ लालटेने और हजारो स्लेटे भी बाँटीं, जिससे 'भंडार' कुवेर के भंडार की भाँति चमकने लगा।

'भंडार' की भावी उन्नति पर भूकंप की क्रूरता ने भयानक आक्रमण किया। लगभग लाखो की क्षति हुई। किन्तु परमात्मा ने 'भंडार' को अपनी कृपादृष्टि की अमृत-वृष्टि से पुनः जीवित किया।

'भंडार' की पुस्तकों की छपाई उत्तम होती है। इसके लेखक चुने हुए अनुभवी विद्वान् हैं। इसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि इसके द्वारा प्रकाशित स्कूल और कालेज की अनेक पाठ्य पुस्तकें प्रायः स्वीकृत है। शिक्षकों तथा छात्रो ने सर्वदा इसकी पुस्तको की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसने समय-समय पर दरिद्र विद्यार्थियो और संस्थाओ की जो सहायता की है, उससे प्रत्यक्ष है कि इसने केवल अपने लिये ही द्रव्य नही उपार्जित किया, बल्कि असमर्थों की सहायता के लिये भी। इसकी समयानुकूल उपयुक्त सहायता से उपकृत होनेवाले असंख्य है।

मै तो देखता हूँ कि 'पुस्तक-भंडार' के कार्य-कलाप सब-के-सब श्रीरामलोचनशरणजी के सतत उद्योग के परिणाम है। इसको यो समझिये कि दोनो मे अभिन्नता है। हाँ, इतना मै और इसमे बढ़ाता हूँ कि श्रीरामलोचनशरणजी साहित्य के क्षेत्रो में भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है, और आपकी लेखनी का प्रभाव बिहार के उन नवयुवक लेखको की साहित्य-सेवा मे भी है, जिन्होंने गत पचीस वर्षों मे शिक्षा पाई है। हो सकता है कि बिहार के कुछ व्यक्ति आपकी पुस्तको का अध्ययन न कर सके हों, परन्तु उनकी संख्या प्रति शत दस से अधिक न होगी।

मुझे, शिक्षा-विभाग मे कार्य करने के कारण, यह स्वीकार करते हुए आनंद होता है कि आपने बाल-साहित्य को उन्नत बनाकर बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। और, आपकी पढ़ाने की कई विधियाँ ऐसी सुन्दर प्रमाणित हुई है, जिनके अनुसार यहाँ पढ़ाई हो रही है, और उन विधियो की छाप भारत मे बहुत दूर तक फैल गई है। मै तो गुजराती साहित्य के आचार्य गिजूभाई से आपकी उपमा देते तनिक भी संकोच नही करता। आपकी गद्य-शैली इतनी सरल है कि विद्यार्थियों के ऊपर वह अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है।



'पुस्तक-भंडार' अथवा रत्न-भंडार

श्रीजगदीश झा 'विमल'; भागलपुर

सन् १९११ ई० की बात है। मैं भागलपुर में शिक्षक था। उस समय बाबू रामलोचनशरणजी गया-जिला-स्कूल में अध्यापक थे। अध्यापन-कार्य करते हुए आपने 'लोअर प्रकृति-परिचय' और 'लोअर भूगोल-परिचय' नाम की किताबें स्कूली लड़कों के लिये लिखी थीं। आपकी वे पुस्तकें इतनी सुन्दर और काम की हुई थीं कि वर्ष के भीतर ही उनकी कई हजार प्रतियाँ बिक गईं।

जब आप गया से बदलकर लहेरियासराय आये, अपनी पुस्तकों का विशेष प्रचार देख, आपने लहेरियासराय में 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना की। आपने अपर और मिडल के लिये भी गणित, व्याकरण, विज्ञान, भूगोल, स्वास्थ्य, इतिहास आदि विविध विषयों की बेजोड़ पुस्तकें लिखीं जिनका आदर विहार-प्रान्त ही में नहीं—अन्यान्य प्रान्तों में भी है। उस समय 'भंडार' का अपना प्रेस न था। इसलिये आपकी पुस्तकें कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ के प्रेसों में छपा करती थीं।

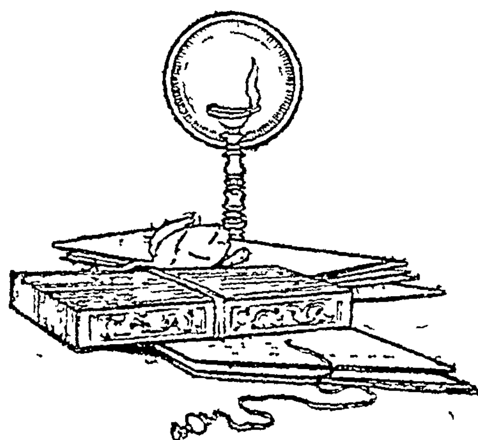
आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा में वह चमत्कार है कि जिस विषय को आप छूते हैं, उसीको हस्तामलकवत् बना देते हैं। आपकी लिखी विविध विषयों की पुस्तकें इतनी सुन्दर और खरी उतरीं कि उत्तरोत्तर उनका प्रचार बढ़ता ही गया। कार्य की अधिकता के कारण आप सरकारी नौकरी छोड़कर साहित्य-मंदिर के पुजारी बन गये।

अब, स्कूली पुस्तकों के निर्माण के साथ-ही-साथ आपका ध्यान विशुद्ध साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन की ओर भी आकृष्ट हुआ। फलस्वरूप 'भंडार'

से सुन्दर साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। साहित्यिको को आश्रय मिला। आपने हृदय खोलकर उनका स्वागत किया। आपने उनकी सुन्दर पुस्तके सुसम्पादित कर प्रकाशित की। हिन्दी-संसार में उन पुस्तकों का खूब आदर और प्रचार हुआ। सचमुच आपका 'भंडार' बहुमूल्य हिन्दी-ग्रंथ-रत्नो का भाण्डागार हो गया।

इतने से ही आपको संतोष न हुआ। आपने बालको को विशेष रूप से आकृष्ट करने और लाभ पहुँचाने के लिये 'बालक' नाम का एक सुन्दर मासिक पत्र निकाला, जो अपनी अभिनव विशेषताओ के कारण इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि जन्म लेते ही देश-विदेश के हिन्दी-क्षेत्र मे सबका दुलारा बन गया। 'बालक' ने अनेक बालकों को सुन्दर लेखक बनाया। आप उसको विशेष रूप से क्रमशः रुचिकर बनाते गये। अवकाश के अभाव में भी उसका सम्पादन-भार ग्रहण किये रहे। उसकी आकार-वृद्धि की। सुन्दर सुपाठ्य लेख स्वयं लिख और लिखाकर उसको उन्नत बनाने लगे। 'बालक' चमक उठा, और चमक उठे 'बालक' को अपनानेवाले बालक भी।

हिन्दी के विद्वान् लेखको के साथ शरणजी का जैसा मधुर व्यवहार है, वैसा दूसरे प्रकाशको का नही। आप उनकी सुन्दर रचनाओ पर आशा से अधिक पुरस्कार देकर उनका सम्मान-वर्द्धन करते है। आपका मधुर भाषण, निष्कपट आचरण और प्रशंसनीय कार्य-पद्धति किसी को निराश और विमुख नही होने देती। आपके हृदय मे साहित्य-सेवा की जो सच्ची लगन है, उसीका यह मीठा फल है।





'पुस्तक-भंडार' और उसके भंडारी

श्रीरामवृक्ष वेनीपुरी, भूतपूर्व सम्पादक,—'बालक', 'युवक', 'योगी', 'जनता'

प्रारम्भ मे ही साहित्य-क्षेत्र मे दरिद्रता का दौर-दौरा देखकर भी साहित्य-सेवी वनने की जो सुनहली आकांक्षा मन मे पैदा हुई थी, वह असमय मे ही तिरोहित होने जा रही थी कि अकस्मात् मेरा सम्वन्ध 'पुस्तक-भंडार' से स्थापित हुआ। यदि उसके गुणग्राही भंडारी वाबू रामलोचनशरण के वरदहस्त की छाया न मिली होती, तो मेरी उस समय की सुकुमार प्रतिभा-लता शायद इस तरह झुलस गई होती कि मातृभाषा के चरणो मे मैने जो कुछ 'पत्र-पुष्प' अर्पित किये है, उनका आज नाम-निशान भी न होता। प्रतिभा की अमोघता पर मुझे विश्वास है। यदि मुझमे प्रतिभा थी, तो वह कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप मे, प्रकट होती ही, लेकिन सुविधा और सुयोग भी सफलता के प्रभावशाली साधन है, यह भूल जाना कृतघ्नता ही नहीं, वास्तविक सत्य से आँखे मूँदना भी है।

मुजफ्फरपुर मे विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन, वनैली-नरेश राजा कीर्त्यानंद सिह वहादुर की अध्यक्षता मे, हो रहा था। कवि-सम्मेलन के सभापति थे हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी। मनोरजन-मूर्त्ति प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा भी पधारे थे। ईश्वरीजी ने खादीधारी देशभक्तो एव चतुर्वेदीजी के लम्बे-लम्बे वालो पर चुटकियाँ लेते हुए कुछ ऐसे कवित्त सुनाये कि लोग लोटपोट हो गये। लेकिन 'खद्दर चद्दर भेप दरिहर' और 'चदा-धन पै अँखियाँ अँटकीं' सुनकर कुछ देशभक्तो के दिल पर काफी चोट भी लगी। लेकिन उसका प्रतिकार क्या हो सकता था ?

उसी समय मुझे कुछ सूझ गया। झट एक तुकवदी वना, सभापति से

समय माँग, मैंने जवाब में सुना दी। बस, उस तुकबंदी ने धारा पलट दी। हँसी का फव्वारा तो छूटा ही, बार-बार उसकी आवृत्ति कराई गई। प्रान्त के कई नेताओं ने आकर मेरी पीठ ठोकी। लेकिन मुझे सबसे मीठी लगी ईश्वरीजी की वह चपत, जो नजदीक आकर हँसते-हँसते उन्होने मेरे गाल पर जड़ दी और गाढालिंगन करते हुए कहा—'जिन्दगी मे पहली ही बार मैं इस तरह छकाया गया हूँ।'

मैं सबकी आँखो पर था। मेरी प्रशंसा हो रही थी। राजा बहादुर ने स्वर्ण-पदक का वचन दिया। क्षणिक आवेग मे मैं भी बहा जा रहा था।

लेकिन मेरे अन्तस्तल मे तो दूसरा ही हाहाकार था—बहन की शादी और बाढ़ के प्रकोप के कारण अकाल पड़ने से परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता। मै चाहता था कोई ऐसी साहित्यिक नौकरी, जो साहित्य-सेवा की इच्छा-पूर्त्ति के साथ-साथ आर्थिक समस्याओ को भी हल कर दे। मैंने वहीं से तीन खत लिखे—एक भाई शिवपूजनजी के पास 'माधुरी'-कार्यालय मे, दूसरा खड्ग-विलास प्रेस के सर्वेसर्वा बाबू गोकर्ण सिहजी के पास, तीसरा लहेरियासराय। मन-ही-मन निर्णय किया—जहाँ से पहली बुलाहट आयगी, जाऊँगा। किन्तु सबसे पहला खत जो मुझे घर पर मिला, 'पुस्तक-भंडार' का था। मुझे उसका मजमून आज भी याद है।—"प्रिय महाशय, जय सीताराम। आपका पत्र पहुँचा। 'भंडार' अपनेको अभी इस योग्य नही समझता कि आप ऐसे विद्वानो की सेवा कर सके, तो भी आप पधारें। हमसे जहाँ तक बन पड़ेगा, हम पत्र-पुष्प से आपको संतुष्ट करने की चेष्टा करेंगे।"

अपनेको विद्वान् मैंने कभी माना नही। मेरी आवश्यकता भी कोई ऐसी बड़ी नहीं थी, जिसकी पूर्त्ति मे विशेष कठिनाई हो। अतः मैं शीघ्र वहाँ जा पहुँचा। फिर तो वहीं का हो रहा। साढ़े तीन वर्षो तक वही रहा। संयोगवश वहाँ से हटा भी, तो आजतक अपना संबंध नही तोड़ सका।

'भंडार' मे पहुँचने के कई दिनो बाद तक तो अतिथि-सत्कार के ही मजे लेता रहा, फिर अपने मिशन की याद आई। लेकिन देखा, मास्टर साहब कुछ चर्चा नहीं करते। मै जरा पशोपेश मे था। सुन रक्खा था, व्यवहार मे स्पष्टता चाहिये। लेकिन अपना स्वभाव लेन-देन के मामले में हमेशा संकोची। इसी बीच मास्टर साहब ने मुझे अपनी एक रचना-संबंधी पुस्तक दी और कहा, इसका नया संस्करण होने जा रहा है, देखिये और जहाँ-जहाँ सुधार की आवश्यकता समझिये, कर दीजिये। यह मेरी जाँच थी। किन्तु मेरे कार्य से वे संतुष्ट होते दीख पड़े। फिर उन्होने अन्य त्रुटियो की तरफ मेरा ध्यान आकृष्ट कर संशोधन-कला की शिक्षा दी। यही मेरे नवजीवन की शिक्षा का श्रीगणेश था।

दूसरे ही दिन जिला-स्कूल की तरफ टहलने जाते हुए उन्होंने मुझे साथ कर लिया, और शाम के धुँधले मे जब हम लौट रहे थे, एक जगह बैठ मेरे घर की बाते पूछने लगे। मै क्या चाहता हूँ, यह भी पूछा और कहा—"देखिये, रुपये की चिन्ता मत कीजिये। यदि आपमे लगन होगी तो समय पाकर आप 'भंडार' के गोकर्णसिंह बन जाइयेगा।"

मै कह सकता हूँ, जब तक मै उनके यहाँ था, तभी तक नही, बाद भी हमेशा उन्होंने अपना वचन निभाया, आजतक निभाये जा रहे है।

मास्टर साहब की सिद्ध लेखनी ने मुझपर जादू का काम किया। उन्होंने बालोपयोगी सरल पुस्तको के लिखने मे, मै दावे से कह सकता हूँ, कमाल किया था। यद्यपि वे पुस्तके सरकार से स्वीकृत नही थीं और सिर्फ हैडबुक ही समझी जाती थीं, तो भी उनकी बिक्री अंधाधुध होती थी। 'सवा पहर सोना बरसने' की बात बचपन मे सुनी थी, लेकिन 'भडार' मे 'सवा पहर चाँदी बरसते' तो मैने अपनी आँखो देखा। स्कूली सीजन मे कर्मचारी सिर्फ चार-पाँच घंटे रात मे सो पाते—नही तो सात बजे भोर से रात के दो बजे तक कारबार चला करता। एक बार एक दिन मे ५२००) से भी अधिक की बिक्री हुई थी।

मै जिस समय पहुँचा, 'भंडार' ने किसी जिलाबोर्ड से स्कूलो के लिये आर्डर-बुक-सप्लाइ करने का एक अच्छा-सा आर्डर पाया था। अतः सबसे पहले मुझे वही काम दिया गया था। उसी समय मास्टर साहब 'बिहारी-सतसई' की टीका तैयार कर रहे थे। करीब पचीस दोहो की सुन्दर टीका उन्होंने लिखी थी। वह काम भी मुझे ही सौपा गया। मैने उन्हीं के ढर्रे पर शेष दोहो की टीका पूरी की। उनको मेरी टीका पसन्द आई। फिर तो उनकी बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार मैने कई बालोपयोगी और युवकोपयोगी पुस्तके लिख डाली। इसके पहले पुस्तक-प्रकाशन का मुझे कुछ भी ज्ञान न था। उनके साथ दो-एक महीने काशी मे रहने पर मुझे इस विषय मे भी काफी अनुभव हुआ। उसके बाद तो मै ही काशी जा-जाकर पुस्तके छपवाने लगा। मेरी कार्य-दक्षता से वे संतुष्ट हुए। इसके पुरस्कार-स्वरूप जो कुछ उन्होंने किया, वह मै कभी भूल नही सकता।

एक दिन अचानक मुझसे अकेले मे उन्होंने पूछा—"तुमने कहा था, बहन की शादी करनी है (अब मुझे वे अपना अनुज-सा समझ 'तुम' ही कहा करते), तो उसके बारे मे क्या कर रहे हो?" मैने कहा—"अभी तो दो-तीन महीने ही मैंने काम किये हैं, रुपया कहाँ है कि मै उसपर सोच भी सकूँ।" उन्होंने शीघ्र ही मुझे छुट्टी दी। एक नई साईकिल खरीद दी कि मै घर के आसपास

ही कहीं योग्य वर ढूँढूँ। शादी का कुल खर्च भी उन्होने उठा लिया। मेरी वह बहन अकाल-मृत्यु का शिकार हुई, यो तो सब किया-कराया व्यर्थ गया, लेकिन कृतज्ञता को तो काल भी विनष्ट नहीं कर सकता।

मास्टर साहब ने साहित्यिक पुस्तको की कई मनोहर मालाएँ निकाली। हर माला मे चुन-चुनकर सुन्दर पुस्तक-पुष्प पिरोये गये। इन पुस्तको मे सुरुचिपूर्ण विषयो के अतिरिक्त छपाई-सफाई, गेट-अप आदि पर खास ध्यान रक्खा जाता था। ये पुस्तके ज्योही बाजार मे आई कि धूम-सी मच गई। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपनी रिपोर्ट मे सराहा। श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने अपने भाषण मे प्रशंसा की। बिहार के अखबारो ने भी प्रोत्साहन दिया। अन्य प्रान्तों की पत्र-पत्रिकाओ ने भी मास्टर साहब के इस प्रयत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'भंडार' की कितनी ही कृतियो को अद्वितीय बताया।

किन्तु, सबसे बड़ी अद्वितीय चीज तो अब आनेवाली थी। मेरे आने से पहले ही मास्टर साहब ने 'बालक' निकालने की सूचना दे रक्खी थी। उन्होने इंगलैड और अमेरिका से ॲगरेजी के कई बालोपयोगी मासिक पत्र और वार्षिक पुस्तकें (इयर-बुक) मँगाई। बॅगला, गुजराती, मराठी और उर्दू के प्रमुख बालोपयोगी पत्र भी मॅगाये। बच्चो के लिये ॲगरेजी मे 'बुक-ऑफ नॉलेज' (Book of Knowledge) आदि जो प्रसिद्ध ग्रन्थ-मालाएँ है, उन्हे भी मॅगाया।

इन सबके मॅगाने में बहुत ज्यादा खर्च पड़ा। लेकिन उन्होने इसके लिये रुपये को रुपया नहीं समझा। एक बार मुझे कलकत्ता भेजकर वहॉ से मैकमिलन, न्यूमैन, थैकर आदि ॲगरेजी कम्पनियो की दूकानो और बॅगला-प्रकाशको की सुप्रसिद्ध दूकानो से लगभग एक हजार रुपये की बालोपयोगी पुस्तके मॅगवाई। उन सबके अध्ययन और परीक्षण के बाद उन्होने 'बालक' के लिये उपयुक्त विषयो तथा शीर्षको का चुनाव किया। बाल-साहित्य के निर्माण मे उनकी जो प्रगाढ़ योग्यता और अगाध अनुभूति थी, उसने 'बालक' के लिये सोने मे सुगंध का काम किया।

भाई शिवपूजनजी को मै हमेशा से ही अपना साहित्यिक अग्रज मानता हूँ। वे 'माधुरी' से फिर 'मतवाला' मे आ गये थे। उनकी सलाह और स्वीकृति से हेडिंग, कवर आदि के डिजाइन हिन्दी के ख्यातनामा चित्रकार श्रीरामेश्वर प्रसाद वर्मा * से तैयार कराये गये।

* सन् १६२९ ई० में जब मास्टर साहब कलकत्ते गये थे, तब वर्मा जी से उनका साक्षात्कार हुआ था। वर्माजी इसी साल इगलैंड जाने के सिलसिले में 'पुस्तक-भंडार'

'बालक' का पहला अंक वणिक् प्रेस, (कलकत्ता) मे छपाया गया। बाद वह ज्ञानमंडल प्रेस (बनारस) मे छपने लगा। पुस्तक-मालाओ और 'बालक' का काम कुछ ऐसी प्रगति से बढ़ा कि अब वह अकेले हमलोगो के सॅभालने योग्य नही रह गया। मास्टर साहब की यह हार्दिक इच्छा थी कि भाई शिवपूजन सहायजी किसी तरह बिहार मे लाकर बैठाये जायँ और उनकी प्रतिभा का पूरा उपयोग प्रान्त की साहित्य-वृद्धि मे किया जाय। चूँकि छपाई का काम काशी मे होता था, अत शिवपूजन भाई को वही रखने का निश्चय हुआ। बाबा विश्वनाथ के अनन्य भक्त शिव भैया को तो यही चाहिये था। जिस दिन कलकत्ता से सपरिवार भाई शिवपूजन काशी आये, उस दिन हमलोगो के कन्धे से एक बहुत बड़ा भार उतर गया।

'बालक' ने निकलते ही एक अजीब धूम मचा दी। इंडियन प्रेस (प्रयाग) से उस समय 'बालसखा' बड़ा सुन्दर निकलता था, अब भी निकलता है। वही के सुदर्शन प्रेस से 'शिशु' भी अच्छा निकलता था, जो आज भी निकल रहा है। कई बालोपयोगी पत्र और भी थे। पीछे और कई नये पत्र निकले। किन्तु 'बालक' ने अपनी उम्र से बड़ो को कही पीछे छोड़ दिया और छोटो को तो छाया भी न छूने दी। हिन्दी के महारथियो और आचार्यों ने एक स्वर मे कहा—"यह तो हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ बालोपयोगी पत्र है।" बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो के पत्रो ने भी यह माना कि 'बालक' की कोटि का बालोपयोगी पत्र उन प्रान्तो की भाषाओ मे भी नही निकलता।

इधर 'बालक' शान से निकलता रहा, उधर पुस्तक-मालाओ मे भी धीरे-धीरे मनोहर पुस्तक-कुसुम गूँथे जाने लगे। हिन्दी-संसार के धुरंधर विद्वानो, कवियो, लेखको और कथाकारो का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त होता गया। लहेरियासराय का 'पुस्तक-भंडार' अब प्रान्त के एक कोने मे स्थित एक छोटी-सी संस्था नहीं रह गया। निस्सन्देह उसे इस हालत मे पहुँचाने मे मास्टर साहब की लेखनी, सहृदयता, महाशयता और सूक्ष्म व्यापारिक सूझ ने बहुत बड़ा काम किया।

शुरू से ही मास्टर साहब का ध्यान बिहार के लेखको और कलाकारो को प्रोत्साहन देने की ओर था। बिहार मे प्रतिभा की कमी नही, किन्तु बिहारियो के

में आये थे। मास्टर साहब ने उन्हें एक हजार रुपये दिये थे। जब तक वर्माजी इंगलैंड में रहे, तब तक उनके घर ५०) माहवार 'भंडार' से जाता रहा। इंगलैंड से भी वर्माजी की फिर माँग आई तो भंडार से ६००) और भेजे गये थे। वहाँ से लौटने पर दुर्भाग्यवश वर्माजी अधिक दिनों तक नहीं जी सके। अन्यथा वे भी इस अवसर पर कृतज्ञता प्रकट करते।— लेखक

२

१–२ – विद्यापति प्रेस मे बड़ा   फ्लैट) मशीनों पर छपाई हा   रही है

विद्यापति प्रेस की लीथो-मशीन



विद्यापति प्रेस में ट्रेडिल-मशीनों पर काम हो रहा है

संकोचशील स्वभाव के कारण वह ढकी रह जाती है। अतः उन्होने सिर्फ नवीन लेखको और कवियो को ही लिखने के लिये प्रोत्साहित नही किया, वल्कि उन बड़े-बूढ़े लेखकों को भी उकसाया जो एक तरह से संन्यास ले चुके थे। वे भी अपना प्रसाद देने को वाध्य हुए। 'बालक' के आरम्भिक अंको को देख जाइये, पुस्तक-मालाओ की लेखक-नामावली देखिये, आप-से-आप इस बात की सत्यता प्रकट हो जायगी। आज बिहार के जिन नवयुवक कवियों ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी-संसार को चकित-विस्मित कर रक्खा है, उन्हे 'बालक' के पन्नो मे ढूँढ़िये, एकाध को छोड़ सबकी प्रारम्भिक रचनाएँ आपको दीख पड़ेगी। यही नहीं, साहित्याचार्य पं० चंद्रशेखर शास्त्री, बाबू शिवनंदन सहाय, प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र, प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, बाबू व्रजनंदन सहाय, डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित सकलनारायण शर्मा, पं० जनार्दन झा 'जनसीदन', आचार्य बदरीनाथ वर्मा आदि मनीषियो की रचनाएँ भी आपको 'बालक' के नन्हे कलेवर मे अंकित मिलेंगी।

किन्तु मास्टर साहब के स्वप्रान्त-प्रेम का अर्थ अन्य प्रान्तो से विद्वेष नही था। संकीर्ण-हृदयता से वे हमेशा बचते रहे। यही कारण है कि सभी प्रान्तों के नूतन और पुरातन हिन्दी-सेवको से उनका साहित्यिक संबंध आज तक निभ रहा है।

उनके स्नेह से सभी प्रकार की आर्थिक झंझटो से निश्चिन्त होकर दिन-रात मैं भी साहित्य-सेवा मे ही व्यतीत करता—नित नये साहित्यिको की संगति का लाभ उठाता। तबतक 'पुस्तक-भंडार' का अपना प्रेस नहीं खुला था। छपाई का सारा काम काशी मे ही होता रहा। अत. मेरे ज्यादा दिन काशी के साहित्यिक वायु-मंडल मे ही व्यतीत होते। बड़े-बूढ़ों मे पं० अयोध्या सिह उपाध्याय, लाला भगवान 'दीन', प्रेमचंदजी, जयशंकर 'प्रसाद' जी, रायकृष्ण दासजी, बाबू व्रजरत्न दासजी, बाबू रामचंद्र वर्मा आदि एवं समवयस्को मे उग्र, सुमन, द्विज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री विनोदशंकर व्यास, श्रीवाचस्पति पाठक, श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत आदि की वह गोष्ठी भूलने की चीज नहीं।

मास्टर साहब के 'पुस्तक-भंडार' से सिर्फ पुस्तक-प्रकाशन ही नही हुआ, लहेरियासराय में एक साहित्यिक वातावरण भी पैदा होने लगा। प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन लहेरियासराय मे हुआ, वह शायद सर्वश्रेष्ठ अधिवेशन था। सम्मेलन के सभापति थे श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू, कवि-सम्मेलन के कुमार गंगानंद सिह और सम्पादक-सम्मेलन के काशी-निवासी श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे। उसी अवसर पर 'भंडार' के अहाते मे विद्यापति-वाचनालय भी खोल दिया गया। 'पुस्तक-भंडार' बिहार का भारती-पीठ बन गया।

किन्तु, ईश्वर की इच्छा थी कि मैं साहित्य-सुरसरि की स्वच्छ-शीतल धारा को छोड़कर राजनीति के प्रखर निर्भर मे अवगाहन करूँ। शुरू से राजनीतिक विषयो की तरफ मेरा झुकाव था। अब वह दिन-दिन उग्रतर होता गया। अन्ततः वह एक ऐसे विन्दु पर पहुँचा, जहाँ से विशुद्ध साहित्य-सेवी मास्टर साहव के साथ मेरा संबंध-विच्छेद होना अनिवार्य हो गया। यद्यपि न यह मेरी इच्छा थी, न मास्टर साहव की।

'बालक' छोड़कर मैंने 'युवक' चलाना शुरू कर दिया। मेरे अवतक के विशुद्ध साहित्यिक जीवन मे सहसा राजनीति ने प्रवेश किया, जिसका रंग अव दिन-दिन गहरा ही होता जा रहा है। लेकिन मास्टर साहव और 'भंडार' से मेरा सद्भाव आज भी वैसा ही है। 'भंडार' से हटने के वाद भी मैंने कितनी ही पुस्तके लिखकर 'भंडार' को दीं और मेरी जरूरतो पर मास्टर साहव ने हमेशा ही ध्यान रक्खा है।

मुझे सबसे बड़ी खुशी इस बात की है कि जो साहित्यिक योजनाएँ मास्टर साहव ने तैयार की थीं, वे आज भी जारी है। खासकर शिवपूजन भाई के सहयोग से उनमे कोई व्याघात नही हो रहा है। 'वालक' का सम्पादन-भार अव स्वयं मास्टर साहव ने ग्रहण किया है और नाना प्रकार की व्यापारिक झंझटो मे व्यस्त रहने पर भी वे वाल-साहित्य-निर्माण के अपने अगाध अनुभव के वल पर उसे अव तक शान से चलाते जा रहे है। पुस्तक-मालाओ का कार्य भी जारी है और कितने ही उपयोगी पुस्तक-पुष्प उनमे गुम्फित होते चले जा रहे हैं।

'भंडार' ने अपने स्कूली पुस्तको के प्रकाशन-क्षेत्र मे भी वड़ी उन्नति की है। उच्च-से-उच्च श्रेणी की पुस्तके ऐसी सजधज से निकली है कि कलकत्ता-वम्बई की कौन वात, विलायती प्रकाशन से भी वे होड़ कर सकती है। प्रान्त के शिक्षा-विभाग ने भी उन्हे दिल खोलकर अपनाया है।

'भंडार' का अपना एक विशाल अप-टु-डेट प्रेस भी हो गया है, जो मिथिला के महाकवि विद्यापति ठाकुर की स्मृति मे स्थापित होने से 'विद्यापति प्रेस' नाम से विख्यात है। पटना मे भी 'भंडार' की शाखा खुल गई है। वहाँ भी 'हिमालय प्रेस' खुल गया है। श्री उपेन्द्र महारथी-जैसे निपुण चित्रकार के सहयोग ने प्रकाशन मे चार चाँद लगा दिये है।

'पुस्तक-भंडार' का श्रीगणेश सिर्फ सत्तर-पचहत्तर रुपये से हुआ था। मास्टर साहव एक गरीव परिवार के सपूत है, जिन्होने वड़ी मुश्किल से नार्मल की परीक्षा पास कर हिन्दी-अध्यापन का काम शुरू किया था। अध्यापक रहते हुए ही उन्होने

प्रकाशन शुरू किया। उनकी पैतृक वैश्य-वृत्ति ने इसमे उनकी भरपूर मदद की। आज निस्सन्देह 'भंडार' बिहार की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था है।

साहित्यिको की सेवा मे मास्टर साहब हमेशा तत्पर रहे है। जब तक मै था, उन्होने कितने ही जरूरतमंद साहित्यिको की सेवा-सहायता, विना आगा-पीछा किये, सिर्फ मेरे अनुरोध पर, की। मेरे बाद भी उनका यह बाना बना हुआ है। आज बिहार मे 'भंडार' ही एक ऐसी संस्था है, जहाँ—मेरे एक साहित्यिक प्रोफेसर मित्र के मतानुसार—कोई भी साहित्यिक किसी अवसर पर पहुँचकर सहायता पाने की आशा कर सकता है। अतः हर साहित्यिक का, उसकी रजत-जयन्ती के इस शुभ अवसर पर, एक ही आशीर्वाद हो सकता है कि 'भंडार' दिन-दिन उन्नति करे और उसके भंडारी बाबू रामलोचनशरणजी चिरायु हो। उसकी इस रजत-जयन्ती के अवसर पर मेरा हृदय आनंद-गद्गद है। लेखनी रह-रहकर आनन्दमग्न हो रुक-रुक जाती है। आशीर्वाद देने की मुझमे शक्ति नहीं, सिर्फ अपनी शुभकामना सादर प्रेषित करता हूँ।





मास्टर साहब की सरसता

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी, 'समीर', एम. ए., कप्तानगंज, बस्ती (युक्तप्रात)

मेरे मित्रो मे अनेक ऐसे है जिनसे मेरा प्रथम परिचय साक्षात्कार द्वारा नही, पत्र-द्वारा हुआ है। पता नही, यह दुर्भाग्य की बात है या सौभाग्य की, पर बचपन से ही मेरा यह सिद्धान्त रहा है कि कोई दिन ऐसा न जाने देना चाहिये जब मनुष्य कोई नई बात न जान ले या किसी अच्छे व्यक्ति से परिचय न प्राप्त कर ले। इसका फल यह हुआ है कि मेरे परिचितो की सख्या बहुत अधिक हो गई है और कभी-कभी तो मै प्रसिद्ध ॲगरेजी कहावत कह बैठता हूँ—"God save me from my friends—परमात्मा मुझे मेरे मित्रो से बचावे।" पर हर्ष इस बात का है कि इसी पुरानी आदत के कारण मेरे कई ऐसे मित्र भी मिले, जिनका मेरे जीवन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा और जिन्हे जीवन-भर मैं कभी न भूलूॅगा। मास्टर साहब भी मेरे ऐसे ही पुराने मित्रो मे है।

आज से १३-१४ वर्ष पहले की बात है। मै दिल्ली के पास एडवर्ड कौरोनेशन कालेज मे प्रोफेसर था। उसके तीन-चार वर्ष पहले ही मेरी दो पुस्तके—'सौरभ' तथा 'सोने की गाड़ी'—भडार से प्रकाशित हो चुकी थीं, पर न तो वेनीपुरीजी से और न मास्टर साहब से ही मेरा साक्षात्कार हुआ था। हॉ, पत्रो द्वारा अलबत्ता बहुत दिनो से परिचय था।

खुर्जा (बुलन्दशहर) मे रहते हुए एक दिन मुझे बिहार की लीचियो और विशेषत दरभगा के आमो की याद आ गई। खाने की इच्छा तो उतनी नही थी—यद्यपि ब्राह्मण के नाते तो किसी भी मीठी वस्तु के खाने से इनकार करना पाप मे दाखिल हो जायगा (ब्राह्मणो मधुरप्रिय.), पर यह जानने की बहुत इच्छा थी

कि सितम्बर-अक्तूबर तक भी दरभंगे में आम मिल सकते हैं या नहीं। उस समय तक मैंने विहार की सीमा मे कभी पैर भी नहीं रक्खा था—यद्यपि हमारे कई मित्र और रिश्तेदार बिहार में है।

मैंने एक पत्र मे यो ही मास्टर साहब या बेनीपुरीजी से पूछा कि आम खतम हो चुके या नहीं। मै यह नही समझता था कि उत्तर के स्थान मे मुझे पके आम ही मिल जायँगे; क्योकि एक तो फसल बीत चुकी थी, दूसरे लहेरियासराय से खुर्जा इतनी दूर था कि आते-आते आम सड़ जाते। पर देखता क्या हूँ कि एक सप्ताह के भीतर ही एक दिन मुझे रेलवे-पार्सल की एक रसीद मिलती है। पार्सल जव घर पहुँचा, विद्यार्थियो तथा मित्रो ने घेर लिया। भला दिल्ली के दरवाजे पर दरभंगा के पके आमो की सुगंध कैसे छिपी रह सकती थी? एक-एक करके सब आम समाप्त हो गये। मेरे हिस्से में तो उतने आम भी न आये जितने भेजनेवाले ने समझा होगा।

मुझे उर्दू मे मौलाना हाली वाली आमो की तारीफ और हिन्दी मे 'आम दयाराम के' वाली पंक्ति स्मरण हो आई। पर साथ-ही-साथ जापान गये हुए उन पंजावी भाइयो की भी याद आ गई, जिन्होंने स्वदेश से दिवाली के अवसर पर मिठाइयो का पार्सल मँगाया था। कथा यों है। कुछ पंजाबी सज्जन पार्सल लेकर आ रहे थे। रास्ते मे चुंगीवालो ने तंग करना शुरू किया। पूछा, इसमे क्या है? पंजाबी मसखरे तो ठहरे ही, ये लोग नवयुवक विद्यार्थी भी थे, सब ने कहा—कुछ नहीं है। चुंगीवाले आश्चर्य से ताक ही रहे थे कि इनलोगों ने पार्सल खोलकर सब मिठाइयाँ वही खा डाली, चुंगी का एक पैसा भी न दिया। बेचारे चुंगीवाले दंग रह गये। पता नहीं, पंजाबी मित्रो ने कुछ मिठाइयाँ चुंगीवालों को दी थी या नहीं, पर मेरे साथ तो पंजाब के उन पड़ोसियो ने कुछ ज्यादती नहीं की, और करते भी तो अपना लगा ही क्या था—मास्टर साहब ने तो पार्सल के सारे पैसे पहले ही चुका दिये थे। हाँ, कुछ आम दबकर खराब अवश्य हो गये थे।

मै चकित रह गया। पत्र मे पूछने मात्र से ही पार्सल आ पहुँचा, यह साहित्यिक मैत्री का ही नमूना था। इसके पहले ही मैंने अपने बड़े लड़के चिरंजीव सुधाकर को 'बालक' का उपनाम दे दिया था। कारण यह था कि पुस्तक-भंडार से 'बालक' थोड़े ही दिन पूर्व निकला था। वह हम सब लोगों को इतना पसंद आया कि उसी समय से घर के सभी लोग सुधाकर को 'बालक' कहने लगे। तभी से उसका यह उपनाम सारे परिवार और नातेदारों मे पूर्णरूप से प्रचलित है।

उस समय 'बालक' बनारस मे छपता था। तब से इस बीच मे 'बालक' सुधाकरजी तो एक-दो बार दरभंगा और लहेरियासराय हो भी आये हैं। हाँ,

स्वप्न मे भी मेरे ध्यान मे यह नही आया था कि मै मास्टर साहब का ऐसा साक्षात्कार प्राप्त कर सकूँगा कि मुझे स्थायी रूप से उनके पड़ोस मे ही रहना पड़ेगा। बेनीपुरीजी तो मुझसे पं० माखनलाल चतुर्वेदी के साथ मध्यभारत (धार) मे ही मिल चुके थे और मेरा आतिथ्य भी स्वीकार कर चुके थे; पर मै जब धार के महाराजा-कालेज से पिताजी के देहांत के पश्चात् घर के पास आया तब दरभंगा-राज्य के शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष होकर। मुझे यह पता भी न था कि लहेरिया-सराय दरभंगा जिले की राजधानी है। जब दरभंगा के रास्ते मे लहेरियासराय स्टेशन का नाम देखा, ट्रेन मे ही उछल पड़ा।

मास्टर साहब की आवभगत का क्या कहना! भाई बेनीपुरीजी के स्थान मे पुराने मित्र शिवपूजनजी को देखकर सतोष हुआ। 'बालक' के सहकारी सम्पादक दत्तजी से परिचय हुआ और 'कमलेश' जी से भी। पर सबसे अपार हर्ष हुआ स्वयं मास्टर साहब के दर्शनो से और उनके छोटे बच्चे प्यारे लालबाबू (मैथिलीशरण) को देखकर। यह १९३८ की बात है, जब लालबाबू केवल ६ वर्ष के थे और एक छोटे ॲगरेजी-हिन्दी-शिशुकोष (Baby Dictionary) का प्रकाशन करा रहे थे। परमात्मा लाल बाबू को दीर्घायु करे। इनसे विहार मे हिन्दी की कीर्त्ति स्थायी होनेवाली है।

पिता-पुत्र दोनो मेरे आग्रह से दरभंगा-राज्य के लालबाग के गेस्ट-हाउस मे मेरे पास आये। मैने मास्टर साहब को कुछ खिलाना चाहा, पर वे कुछ भी खाने को राजी न हुए। चलते समय उन्होने हॅसी मे कहा—"मैंने आमो का पार्सल भेजा था, बदले मे आप भी एक-दो आम दे दीजिये।" मैने लालबाबू को बस्ती के पेड़े और नमकीन खिलाकर ही संतोष किया।

'भंडार' से तो दूर रहकर भी मेरा वैसा ही नाता बना रहेगा। मै भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि जैसी उदारता तथा त्याग से मास्टर साहब ने इस साहित्यिक यज्ञ का आयोजन किया है—जिसे अब २५ वर्ष हो गये है—वैसी ही लगन एवं तपस्या से वे और उनके पुत्र-पौत्र इस महान् यज्ञ को सम्पन्न करते रहे। तथास्तु!





हमारी स्मृति

श्रीविश्वमोहनकुमारसिंह, बी० ए० ऑनर्स (लंदन), एम ए. (पटना) प्रिंसिपल,
चन्द्रधारी मिथिला-कालेज, दरभंगा

साहित्य की सेवा कई प्रकार से होती है। एक तो ग्रन्थकार करते हैं, जो अपने जीवन की अनुभूतियों को एकत्र कर अपनी कल्पना-शक्ति द्वारा उन्हें सजीव तथा प्रत्यक्ष कर दिखाते है। दूसरी सेवा प्रकाशकों द्वारा होती है, जो अपनी सहज बुद्धि से नवीन भावों को ताड़ जाते हैं और उनके उत्पादकों को संसार के सामने ला रखते हैं। इन दोनो के संयोग से ही नवयुग का जन्म होता है।

इसमे सन्देह नहीं कि हिन्दी मे नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ है। इसकी किरणें धीरे-धीरे उज्ज्वल और भासमान होती जा रही हैं। आशा है, थोड़े ही समय मे जीवन का सारा आकाश इनसे उद्भासित हो उठेगा।

मैं बहुत छोटा था। हृदय की आकांक्षाएँ शनैः-शनैः खिलती जा रही थीं। उस समय की मुझे याद है। श्रीरामलोचनशरणजी की पुस्तको ने ही मेरी मानसिक तृषा शान्त की थी। जिस समय असहयोग-आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ और हिन्दुस्तान उमंग की तरंगों से उद्वेलित हो उठा था, उस समय भी विहार में यदि कोई प्रकाशक उन उमंग-तरंगो को सीमाबद्ध कर साहित्य का सुन्दर स्वरूप दे सका, तो वे श्रीरामलोचनशरण ही थे। इनका सारा जीवन ही साहित्यमय रहा है। पुस्तकों द्वारा अर्थ-साधन तो इनका ध्येय न था, लेकिन पुस्तकों द्वारा मानसिक मोक्ष का रास्ता दिखाने का श्रेय इनको अवश्य है। नवयुग का प्रादुर्भाव एक मनुष्य से नही होता ; परन्तु विहार मे नवयुग लानेवालों मे श्रीरामलोचनशरणजी का स्थान बहुत ऊँचा रहेगा।



प्रकाशन-कार्य और पुस्तक-भंडार

श्रीप्रेमनारायण टंडन, रानीकटरा, लखनऊ

काशी मे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मुझसे एक प्रकाशक ने कहा था—पुस्तक-प्रकाशन से सस्ता कोई व्यवसाय नही। मैं भी इससे सहमत हूँ। व्यवसाय का प्रधान उद्देश्य पैसा कमाना है। प्रकाशक भी इसीलिये पुस्तके प्रकाशित करते है कि उन्हें चार पैसे मिल जायँ। तभी तो वे प्रत्येक पुस्तक का प्रकाशन करते समय लेखको से अथवा अपने सलाहकारो से पूछ लिया करते है कि अमुक पुस्तक कितनी निकल जायगी अथवा निकल सकती है। साधारण व्यापार मे यदि व्यवसायी 'दाल मे नमक' खाता है, तो हम इसे उसका हक—उसके परिश्रम की मजदूरी समझते है। परन्तु यदि वह बेईमानी करता है तो हम झुँझला पड़ते है। मै समझता हूँ, अन्य व्यवसायो की अपेक्षा पुस्तक-प्रकाशन-कार्य मे अधिक मुनाफे के साथ-साथ बेईमानी भी ज्यादा करने की गुंजाइश है।

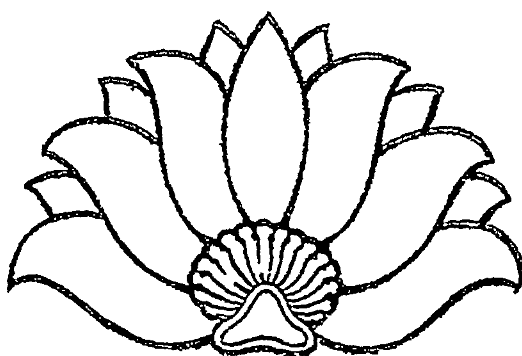
शायद हमारे कुछ हिन्दी-प्रकाशक इन दोनो बातो को सुनकर चौंक पडेगे। कारण, एक ओर तो डिपार्टमेंट का दरवाजा बंद है, दूसरी ओर लड़ाई के कारण, छपाई का सामान और कागज बहुत मँहगा हो गया है। अत आज तो उनका चौंकना ठीक समझा जायगा। परन्तु उन्हे यह भी मानना पड़ेगा कि पिछले बीस वर्षों मे ज्यो-ज्यो हिन्दी-प्रचार हुआ है त्यो-त्यो उनका व्यवसाय बढ़ा है, और प्राय सभी प्रकाशक दाल मे नमक नही, दाल की दाल उड़ाकर मोटे हो गये है।

यदि प्रकाशक दाल मे 'नमक' खायँ तो कोई हानि नही, पर 'दाल की दाल' उड़ा जाना वैसा ही बुरा है जैसा रिशवत लेकर पैसा कमाना। मेरा आशय यह है कि प्रकाशक सुन्दर-सुन्दर पुस्तके प्रकाशित करे, उनके विज्ञापन का प्रबंध

कर, और अंत में जो लाभ हो उसमे से लेखकों को उचित पारिश्रमिक देकर अपना हिस्सा निकाल ले।

जहाँ तक मै समझ सका हूँ, लहेरियासराय का पुस्तक-भंडार 'दाल में नमक' खाकर ही संतोष करता आया है। उसने पाठ्य पुस्तकें अवश्य प्रकाशित की है—इसके लिये हम उसपर दोषारोपण कर ही नहीं सकते, फिर तो शायद ही कोई प्रकाशक इस दोष से बच सके—परन्तु पाठ्य पुस्तकों से होनेवाले लाभ को 'भंडार' ने अन्य प्रकाशकों की भाँति सैर-सपाटे मे और होटलों के बिल चुकाने मे नही खर्च किया है, वरन् उससे साहित्य की सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की है। यों एक ओर तो उसे हिन्दी-साहित्य की उन्नति मे योग देने का सुयोग प्राप्त हो सका और दूसरी ओर उसका हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों—यथा लाला भगवान 'दीन', आचार्य द्विवेदीजी, 'प्रसादजी', आचार्य शुक्लजी, 'हरिऔधजी' आदि की सुन्दर रचनाएँ हिन्दी-संसार को भेट करने का। इसके लिये हम उसे बधाई देते हैं, उसके भाग्य की सराहना करते है। इस संबंध मे हमे यह कहते संकोच न होना चाहिये कि संयुक्तप्रान्त के प्रकाशको मे इंडियन प्रेस के बाद—नागरी-प्रचारिणी सभा का क्षेत्र दूसरा है—हिन्दी भाषा और साहित्य के लिये जितना कार्य किसी भी दूसरे प्रकाशक ने किया है, उतना ही कार्य विहार के प्रकाशको मे पुस्तक-भंडार ने किया है। हमारे कुछ प्रकाशको से पुस्तक-भंडार इसलिये भी बढ़ जाता है कि उसके अध्यक्ष स्वयं भी संपादक, लेखक और बाल-साहित्य के सुंदर पारखी है।

एक बात और। काशी मे उपर्युक्त साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पुस्तक-भंडार से प्रकाशित होनेवाले 'होनहार' की भाषा की कड़ी आलोचना की गई थी। सम्मेलन के बाद भी यह आलोचना उग्र रूप धारण करती रही। इस संबंध मे मुझे केवल इतना ही कहना है कि पुस्तक-भंडार की हिन्दी-सेवा पर दृष्टि रखते हुए यदि आलोचना की जाती तो विशेष लाभ होता। दोष देखनेवाली आँख को साफ करके यदि देखे तो 'पुस्तक-भंडार' की गिनती हम उच्चकोटि के ग्रंथ प्रकाशित करनेवाले प्रकाशको मे करने को वाध्य होगे।





'पुस्तक-भंडार'—एक आदर्श संस्था

प्रोफेसर सतीशचन्द्र मिश्र, एम० ए०; बी० एन० कालेज पटना

आज से लगभग बीस साल पहले की बात है। हमलोग शायद अपर या मिड्ल की कक्षा मे पढ़ते थे। उन दिनो पुस्तको के प्रकाशक या लेखक के नाम जानने का अधिक कौतूहल नही रहता था। पुस्तक जैसी भी हो और जहाँ-कही से भी प्रकाशित हो, उसके प्रति एक प्रकार की विशेष श्रद्धा हुआ करती थी। पुस्तक-प्रणयन हमलोगों की कल्पना मे एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य था, जो असाधारण व्यक्तियो के लिये ही सम्भव हो सकता था। इस धारणा के अनुसार मै समझता था कि लेखक या प्रकाशक कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नही हो सकता, जो समीप के गॉवो या शहरो का रहनेवाला हो। उसे ऐसा होना चाहिये जिसको देखना हमलोगो को नसीब न हो, और उसका निवास-स्थान ऐसी जगह हो जहॉ तक बचपन मे हमलोगो का पहुँचना कठिन हो। अतएव हमलोग स्वभावतः यही सोचते थे कि लेखक या प्रकाशक इलाहाबाद या बनारस मे ही जन्म ले सकता है या पनप सकता है—अधिक-से-अधिक पटना मे। उससे आगे भागलपुर, मुँगेर, पूर्णिया, दरभंगा आदि के लिये लेखक पैदा करना कल्पना से परे था।

इलाहाबाद या बनारस के प्रकाशको के नाम तो मालूम नही होते थे। शायद देखने पर भी उन दिनो हमलोग उन्हे अपनी स्मृति मे रख नही सकते थे। बिहार के प्रकाशको मे बॉकीपुर के खड्ग-विलास प्रेस का नाम अलबत्ता हमलोगो को अच्छी तरह मालूम था। हिन्दी की पुस्तको के अतिरिक्त बचपन मे हमलोग और किसी भाषा की पुस्तको से कोई सरोकार नही रखते थे। अपने समय मे हमलोग ठोस हिन्दी-युग मे पैदा हुए थे। हिन्दू विद्यार्थियो के लिये हिन्दी के सिवा और किसी देशी भाषा का खयाल भी नही हो सकता था।

उसी समय कुछ ऐसी छोटी स्कूली पुस्तके मिलीं, जिनपर प्रकाशक का नाम था पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय। चूँकि लेखको के नामो की ओर हमलोगो का ध्यान न गया, इसलिये आज भी वह स्मरण नहीं। सबसे अधिक कौतूहल का भाग था 'लहेरियासराय'। पता नहीं क्यों, हमलोग समझते थे कि विहार मे पटना के अतिरिक्त और किसी शहर के लिये प्रकाशन के क्षेत्र मे या पुस्तक-प्रणयन के क्षेत्र मे—क्योकि प्रकाशन और प्रणयन का भेद उस समय अच्छी तरह नही जानते—प्रवेश करना एकदम असम्भव था। शायद अकारण ही मन मे यह भी आता था कि यह 'भंडार' की अनधिकार चेष्टा है।

पॉच-सात साल हाइस्कूल और कालेज की पढ़ाई मे निकल गये। उन दिनो 'भंडार' की प्रगति की ओर विशेष ध्यान न गया। अवसर भी नहीं था। पर संयोग-वश फिर प्राइमरी और मिड्ल वर्गों की पुस्तके देखने का अवसर मिला। घर के छोटे-छोटे लड़के उन्हे पढ़ते थे। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि उन दिनो 'पुस्तक-भंडार' इतना उन्नत हो गया था कि अधिकांश हिन्दी-शिक्षक वहीं की प्रकाशित पुस्तके पढ़ाना पसन्द करते थे; क्योकि वहॉ की पुस्तके कुछ नवीन और संशोधित शैली की हुआ करती थीं।

कुछ वर्षों के बाद यह देखकर और अधिक हर्ष हुआ कि पुस्तक-भंडार का कार्य-क्षेत्र अब पाठ्यपुस्तके निकालने तक ही सीमित नहीं है, उसने बहुत-सी साहित्यिक पुस्तके भी हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों और लेखको से लिखवाकर निकाली हैं। आज तक उसका यह काम जारी है। 'बालक' का प्रकाशन, सुरुचि-पूर्ण सम्पादन और सबसे बढ़कर उसका स्थायित्व, न केवल 'भंडार' और विहार के लिये, बल्कि हिन्दी-संसार के लिये भी गौरव का विषय है।

इस प्रकार बहुत अरसे तक मैं पुस्तक-भंडार को केवल नाम से जानता रहा। इस सफल उद्योग के पीछे कौन-सा व्यक्तित्व है, यहॉ मुझे जानने का मौका न मिला था। किन्तु आज से कुछ साल पहले 'भंडार' के 'मास्टर-साहब' से भेट हुई। उनसे बातचीत करने पर, और उनके व्यक्तित्व से परिचित होने पर, मुझे 'भंडार' की सारी सफलता का रहस्य स्पष्ट मालूम हो गया। उनका मनोहर व्यक्तित्व, अपनापनवाला सद्‌व्यवहार, आनन्ददायक बात-चीत, और अटूट लगन देखकर विस्मयपूर्ण आनन्द हुआ। तब पता चला कि क्योंकर इस व्यक्ति ने जीवन के दौरान मे एक सामान्य स्थिति से उठकर इतना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। उन्होने विहार में नये क्षेत्र मे कार्य प्रारम्भ किया, समय की गति को पहचाना, और अपनी व्यावसायिक उन्नति के साथ ही देश का इतना बड़ा उपकार किया।

मास्टर साहब की देख-रेख मे भंडार, हिन्दी की प्रकाशन-सस्थाओं में, एक ऊँचा स्थान रखता है। कितने ही लेखक और विद्वान् इससे हर प्रकार की सहायता और प्रोत्साहन पाते है। कितने ही आवश्यकता-ग्रस्त लेखक और विद्वान् इसके ऋणी है। कितने ही विद्यार्थियो ने इसके द्वारा शिक्षा प्राप्त करने मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता पाई है। जनता की सामूहिक शिक्षा के लिये इसने जो काम किया उसके उपलक्ष्य मे सरकार से मास्टर साहब को स्वर्णपदक मिल चुका है। निरक्षरो के लिये इन्होने जो वर्णमाला के चार्ट बनवाये है, वे तो उनकी उसी प्रवृत्ति के अन्दर शामिल है जो उनकी सफलता का मूलमंत्र रही है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, व्यावसायिक नीति की जो सफाई उनके यहाँ है, वह वहुत-से अन्य प्रकाशको के लिये अनुकरणीय है।

इस प्रकार मास्टर साहब हमारे समक्ष एक व्युत्पन्न प्रकाशक के रूप मे आते है। किन्तु उनके कार्य-क्षेत्र का दूसरा पहलू भी कम महत्त्व का नही है। वह है उनका बाल-साहित्य का निर्माण-कार्य। इन्होने अपना जीवन शिक्षक की तरह प्रारम्भ किया। उससे यथेष्ट अनुभव भी प्राप्त किया। उसी अनुभव की प्रेरणा से उन्होने प्रकाशन-क्षेत्र मे भी प्रवेश किया। किन्तु उनकी शिक्षण-प्रवृत्ति और उनके विद्या-प्रेम ने अभी तक उनका साथ नहीं छोडा" है। उन्होने घोर परिश्रम करके व्याकरण, निबंध-रचना, इतिहास, अंकगणित, नीति इत्यादि विपयो पर वालको के लिये अनेक उत्तमोत्तम पुस्तके लिखी है। उनकी विपय-प्रतिपादन शैली से पता चलता है कि अनेक विषयो के ज्ञान के साथ उनमे वाल-मनोविज्ञान का भी गहरा अनुभव है। अनेक स्पष्ट और सरल उदाहरण, इतिहास की कहानियो का रोचक वर्णन, प्रबन्ध-रचना की कठिनाइयो पर वैज्ञानिक प्रकाश इत्यादि उनकी अपनी विशेपताएँ है। व्यवसाय का व्यस्त जीवन रहते हुए भी व्यक्तिगत परिश्रम द्वारा इतनी अधिक संख्या मे अच्छी-से-अच्छी पुस्तको का प्रणयन और सम्पादन कोई साधारण वात नहीं। उनकी प्रतिभा और कार्य-क्षमता अद्भुत है। अब उन्होने अँगरेजी के प्रकाशन-क्षेत्र मे भी प्रवेश किया है। मुझे 'भडार' के पिछले इतिहास को देखते हुए इस वात की पूरी आशा है कि इस कार्य मे भी उन्हे पूरी सफलता मिलेगी। ऐसी लोक-हितकारी संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करे, यही मेरी शुभकामना है।



बिहार की अनुपम विभूति

श्रीअवधनारायणलाल, शुभंकरपुर, दरभंगा

हमने मास्टर साहब का बहुत मनन किया, मगर कुछ पता न चला। उनमे लौकिक और अलौकिक बातो का समावेश है। हमारे लिये वे अभी तक एक रहस्य ही रह गये।

सद्गुणो के वे भंडार है। सद्गुणी के पास सभी विभूतियाँ स्वत: चली आती है। सरस्वती की सेवा करते-करते उनपर लक्ष्मी की भी बहुत कृपा हो गई। मगर उनमे अभीतक अहंकार का लेश भी नहीं आया। उनके धार्मिक विचार भी घटने के बदले दिन-दिन बढ़ते ही जा रहे है।

धनी और गरीब, विद्वान् और मूर्ख, सबसे वे एक-सा मिलते है। तारीफ तो यह कि जिसका उनसे संपर्क है, सब यही समझते है कि मास्टर साहब सबसे ज्यादा हमी को मानते है और हमारे ही ऊपर उनका सबसे बेशी खयाल है।

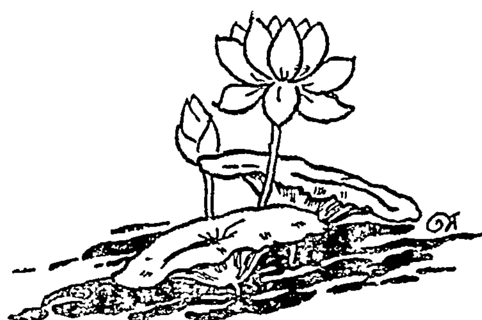
जिस समय वे लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र मे एकाएक कूद पड़े थे, उस समय बिहार इस कार्य मे सबसे पीछे पड़ा हुआ था। अब कलकत्ता, बम्बई और मद्रास को छोड़कर और कौन दूसरी जगह है जो हमारे दरभंगा का मुकाबला करे? बिहार में वे लेखन-प्रकाशन-कार्य के पायनियर (Pioneer) है।

भारतवर्ष मे वे अपने ढंग के एक ही आदमी है। कोई बता दे—किसी एक प्रकाशक का नाम, जिसने स्वयं इतनी पुस्तको का निर्माण किया हो, और जिसका जीते-जी इतना आदर हुआ हो। लेखको का आदर भी उनके यहाँ से बढ़कर और कहाँ है? उनका 'बालक' तो बाल-संस्कृति के उत्थान का बहुत बड़ा साधन है।

उनकी बदौलत लेखन-प्रकाशन-व्यवसाय की अपार उन्नति हुई। कितनों की रोटी का सवाल हल हो रहा है। मेरे पास आँकड़े तो नहीं है, मगर अनुमान से कह सकता हूँ कि १९१६ मे, जिस समय 'पुस्तक-भंडार' की उन्होने स्थापना की थी, समग्र बिहार मे पुस्तको की दूकाने बीस-पचीस से अधिक न रही होगी। आज छोटी-बड़ी सब मिलाकर एक हजार से कम न होगी। यह किसकी कीर्त्ति है ? उन्हीं की प्रेरणा का फल है।

उन्होने अपने कुल की, ग्राम को, जाति की और देश की कितनी बडी सेवा की है, यह बहुतेरे जानते है। परिश्रम, धीरता और अध्यवसाय के वे अवतार है। धन, मान, प्रतिष्ठा पाकर उनमे न अहंकार है, न बड़प्पन का दिखावा। छोटे-से-छोटे कुली तक से जिस तरह वे प्रेम से बाते करते हैं, देख-सुनकर हम मुग्ध हो जाते है।

ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि दयामय उन्हे दीर्घजीवी करे, जिससे हिन्दी और बिहार की सेवा होती रहे। वे बिहार की अनुपम विभूति है, इसमे सदेह नही।





वे दिन !

ज्योतिर्विद् प० कुशेश्वर कुमर, बाजितपुर (मुजफ्फरपुर)

जिनकी स्मृति मे आज मै कुछ लिख रहा हूँ, उन महापुरुष का नाम है बाबू रामलोचनशरणजी। आप चतुर, उदार और अध्यवसायी है। सन् १९२० ई० के मार्च महीने मे मैं आपके यहाँ उपस्थित हुआ। उस समय एक छोटी-सी दूकान बाजार मे थी। आप स्वयं किराये के साधारण मकान मे रहते हुए पुस्तक-प्रणयन करते थे। विशेष ध्यान आपका दो कामो की ओर मैने देखा—प्रथम, अधिक समय तक किताबो की रचना मे दत्तचित्त रहते थे—द्वितीय, प्रतिदिन अपराह्ण मे घर के अन्दर जाकर अपनी नवोढ़ा सहधर्मिणी को पढ़ाया करते थे। आपका विद्यानुराग देखकर मैने विशेष आग्रह किया कि मेरा बनाया हुआ 'मिथिलादेशीय पंचांग' आप प्रकाशित करे। आपने बड़ी प्रसन्नता से पूछा—"आपको क्या मिलना चाहिये ?" मैने उत्तर दिया—"जो कुछ मिले, मंजूर है।" इतना सुनकर आपने कहा—"पंचांग से मुझे लाभ उठाना नही है, मैं इस कार्य के द्वारा देश-सेवा करना चाहता हूँ और आप अपनी प्रतिष्ठा समझे।" हम दोनो का सिद्धान्त मिल गया। तब से लगातार दस वर्षों तक प्रतिवर्ष अधिक संख्या मे बड़े-छोटे दो आकारो के पंचांग प्रकाशित होने लगे और समाज मे इस पवित्र कार्य से हम दोनो आदरणीय हुए। पंचांग-प्रकाशन के बाद मेरे ऊपर आपकी कृपा बढ़ने लगी। आप पूर्ण उत्साह से कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र आदि विषयो की बहुसंख्यक पुस्तके मेरे सम्पादकत्व मे प्रकाशित कराने लगे, जिससे मेरी जीविका का भी मार्ग प्रशस्त हो गया।

गुरुवर महामहोपाध्याय श्रीमुरलीधर झा (प्रोफेसर, क्वीन्स कालेज,

बनारस) की लिखी 'भारती' नामक संस्कृत पुस्तक के प्रकाशन का भार भी मुझे ही सौपा गया। उड़िया, बँगला और देवनागरी लिपियो मे उसे छपवाने के लिये मुझे कलकत्ता जाना पडा। मेरे काम से आप बहुत संतुष्ट हुए। अतएव, सन् १९२८ ई० मे १७ फरबरी को जब 'विद्यापति' प्रेस का श्रीगणेश हुआ तब आपने मुझको ५०) मासिक वेतन पर प्रेस का मैनेजर बनाया। कुछ समय के बाद आपने 'मिथिला' नामक मैथिली पत्रिका निकाली, जिसके सम्पादन के लिये मुझको तथा बाबू भोलालालदास, बी० ए०, एल० एल० बी० को नियुक्त किया। इस प्रकार, 'भंडार' की वृद्धि शुक्लपक्ष की चन्द्रकला की तरह दिनानुदिन होती रही। ईश्वर शरणजी को चिरायु करे, तथा, 'भंडार' की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो—यही मेरी कामना है।





बिहार का साहित्यिक तीर्थस्थान

अध्यापक श्रीजनार्दन मिश्र 'परमेश', कुरसेला (पूर्णिया)

कुछ दिन पहले हिन्दी-संसार मे लेखको के साथ प्रकाशको का व्यावहारिक सामञ्जस्य नही था। विहार मे तो खड्गविलास प्रेस को छोड़ साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली दूसरी संस्था थी ही नही। पर वह प्रेस नवीन युग का अनुसरण नही कर सका। इसलिये बिहार को एक ऐसी प्रकाशन-संस्था की जरूरत थी, जिसका मेल नवयुग की प्रगति के साथ होता।

लगभग वीस साल पहले की वात है। मै उन दिनो भागलपुर से 'सुप्रभात' नामक मासिक पत्र निकालने मे व्यस्त था। लगन थी, पर वातावरण अनुकूल न था। उन्ही दिनो वावू शिवपूजनसहाय आरा से प्रकाशित 'मारवाड़ी-सुधार' मासिक पत्र का सम्पादन कर रहे थे। श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' की कलापूर्ण लेखनी और तूलिका से गया मे हिन्दी का शृंगार हो रहा था। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित और वावू रामधारीप्रसादजी के अथक परिश्रम से प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हो चुका था। हमारे वेनीपुरी, द्विज, कैरव आदि साहित्य-मंदिर की शोभा वढ़ा रहे थे।

एक दिन मैं अपने घर पर वैठा हुआ था। किसी ने 'वालक' का पहला अंक मेरे हाथ में रख दिया। मैं अत्यन्त हर्ष, विस्मय और कौतूहल के साथ उसे देखने लगा। सम्पादक थे श्रीरामवृक्ष शर्मा वेनीपुरी और प्रकाशक श्रीरामलोचन शरण विहारी का पुस्तक-भंडार। वेनीपुरीजी को तो मै अव तक नहीं जानता था, किन्तु शरणजी के नाम से अवश्य परिचित था—यद्यपि उनसे मुलाकात नही थी। मासिक साहित्य के संचालन की कठिनाइयो का मुझे काफी अनुभव था। यही मेरे विस्मय का कारण था। फिर 'बालक' का अंतरंग देखा। उसके सम्पादक को भी अलग से पहचान सका। कलम मे जान थी। विचारो मे मौलिकता भी थी। साथ ही प्रौढता और सुलझन भी। मैंने उस अंक में प्रकाशित

विज्ञापनो से यह भी जान लिया कि 'भंडार' बालकोपयोगी साहित्यिक पुस्तको के साथ-साथ उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रंथो की प्रकाशन-संस्था भी बनने जा रहा है। स्वभावत इसके प्रति एक आकर्षण और सहानुभूति जग उठी।

'बालक' के परिवार से मिलने का संयोग चार-पॉच साल बाद हुआ। उस समय बेनीपुरी जी उससे अलग हो चुके थे। शिवपूजन सहायजी के हाथो मे 'बालक' का सम्पादन आ गया था। मेरी पहली दरभंगा-यात्रा थी। 'भंडार' मे पहुँचकर देखा, फर्श पर मामूली-सी चटाई बिछी थी और उसपर एक शांताकार पुरुष बैठा था। मुझे पता लगा कि वे ही मास्टर साहब है। मैने एक बार उन्हे देखा—साकार सारल्य, नेत्रो मे ज्योति, वाणी मे गभीरता, ललाट पर चिन्तनशीलता की तरंगे, विचारो मे उच्चता। शरीर पर गाढे की मोटी धोती। सामने फर्श पर कुछ कागज पड़े थे। कलम-दावात रक्खी थी।

उनके शिष्टाचार-प्रदर्शन के साथ-साथ मै भी वही बैठ गया। मेरा परिचय पाते ही उनका मुख-मंडल आह्लाद से प्रकाशित हो उठा। अब वे एक चिरस्नेही की तरह बातचीत करने लगे। जब बीच-बीच मे वे 'जनार्दनजी' कहकर सबोधन करते, मुझे उसी कीमती प्यार का स्वाद मिलता जो एक बडे भाई के द्वारा पुकारे जाने पर छोटे को मिल सकता है। इतनी आत्मीयता!

मेरे साथ, बगल मे, कुछ कागजो का पुलिदा कपड़े मे लपेटा हुआ था। मैं उसे संकोच से छिपाने की चेष्टा करता था। मेरी इस हरकत को वे ताड गये। उन्होने उसे लेकर देखा—'वीरो की कहानियॉ।' * उदारतापूर्वक बोले—"मै इसे सचित्र प्रकाशित करूँगा।" और, कुछ 'नोट' मॅगाकर मेरे हाथो मे रख दिये। मेरा सिर आभार से झुक पडा। हृदय कृतज्ञता से पुलकित हो उठा।

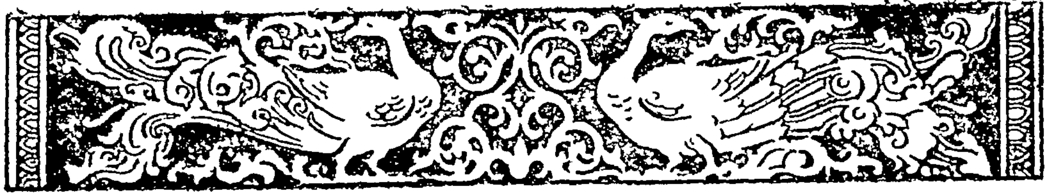
'भंडार' को देखकर मैं बडा ही प्रभावित हुआ। जैसी आदर्श प्रकाशन-सस्था की बिहार को आवश्यकता थी, उसकी पूर्त्ति 'भंडार' के द्वारा होती देख मैंने एक उल्लास-पूर्ण सन्तोष का अनुभव किया। वास्तव मे इसे एक व्यापारिक कार्यालय कहने की अपेक्षा एक साहित्यिक तीर्थ कहना अधिक उपयुक्त होगा।

'भंडार' ने इधर कितनी ही उच्च कोटि की साहित्यिक पुस्तके प्रकाशित कर बिहार का गौरव बढाया है। कितने ही नये साहित्यिक इसके द्वारा प्रोत्साहन पाकर आगे बढ़ सके है। श्रीमान् बाबू रामलोचनशरणजी के हृदय मे साहित्य-सेवा के साथ-साथ साहित्य-सेवियो की सेवा-सहायता करते रहने की भावना हमेशा जाग्रत रहती है। मै 'भडार' और 'मास्टर साहब' की एकान्त मंगल-कामना करता हूँ।

* मेरे ही दोष से यह पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। इसकी कुछ कहानियाँ समय-समय पर 'बालक' में प्रकाशित हुई हैं। —लेखक



'बालक'-सम्पादक श्रीरामलोचनशरण बिहारी



श्रीरामलोचनशरणजी का सम्पादन-कौशल

अध्यापक सूर्यनारायण सिंह, एम० ए०, डिप० एड, साहित्य-भूषण, मुजफ्फरपुर

बिहार मे हिन्दी-प्रचार के शुभ आयोजन में श्रीरामलोचनशरणजी का अमूल्य सहयोग है। सम्पादन और प्रकाशन के क्षेत्र मे एक साधारण हिन्दी-शिक्षक को जो आशातीत सफलता मिली है उससे बिहारी प्रकाशको और सम्पादको मे नवजीवन का संचार हुआ है। मास्टर साहब की साहित्यिक सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल हुआ है। आपने पुस्तक-प्रकाशन के द्वारा आकर्षण और लोकरंजन मे अद्भुत व्यापारिक प्रतिभा का परिचय देकर बिहार का कलंक-मोचन किया है। आपके शिष्टाचार, सादगी, सचाई और अध्यवसाय के प्रसाद से ही पुस्तक-भंडार समुन्नत हुआ है।

मुझको एक बार आपकी वह अपूर्व शक्ति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो आपकी सफलता का प्रधान रहस्य है। आपके स्वावलम्बन और कार्य-कुशलता की वह पवित्र स्मृति मुझे सदा उत्साह प्रदान करती रहेगी।

दिसम्बर, १९२८ के कठोर जाड़े की रात थी। रात ही भर मे लगभग ५० पृष्ठो का मैटर कम्पोज कराकर उसका प्रूफ देखकर उसे प्रातःकाल होते-होते छपवाना था और क्षत्रिय-महासभा के सभापति के समक्ष स्वीकृत्यर्थ पेश करना था। आपने मुझे आफिस मे ही एक कोमल शय्या पर शयन करने का आदेश दिया। मेरी लेखनशैली और वर्णनशैली से आप शीघ्र ही इतने परिचित हो गये कि काट-छॉट कर प्रेस-कापी तैयार कर दी। आपके अध्याहार की शक्ति से मै बहुत ही प्रभावित हुआ। मैने आपको आवश्यक संशोधन और परिवर्त्तन का पूर्ण अधिकार दे दिया; क्योकि आपके भाषा-ज्ञान का मै कायल हो गया था। सफल सम्पादक की

काट-छाँट देखकर मैं मुग्ध रह गया। मैंने अनुभव किया कि सफल सम्पादक की कला ही मर्मज्ञ विद्वान् की काव्य-कला को भी चमका सकती है। वह सुखद रात्रि, जिसमें मैंने आपसे कुछ सीखा, सदा स्मरण रहेगी।

किन्तु, सबसे अधिक स्मरण रहेगा आपका वह वात्सल्य भाव जिसमें अपनापन था, सहानुभूति थी, और थी सहृदयतापूर्वक कुछ सिखाने की प्रवृत्ति। मेरी धारणा है कि अध्यापन-कला के ज्ञान के कारण ही आप सफल सम्पादक (लोक-गुरु) हो सके हैं। आप इसी लिये 'बालक' के सफल सम्पादक हो सके कि आप बाल-गुरु रह चुके हैं। आपको बालकों की आवश्यकताओं तथा उनके मनस्तत्त्व का पूर्ण ज्ञान है।

प्रातःकाल सूर्योदय के समय मेरी निद्रा भंग हुई। मैं आश्चर्यित हुआ कि इतने कम समय में ऐसा कठोर काम इतनी सुन्दरता के साथ कैसे हुआ। वास्तव में आपका सम्पादन-कौशल सर्वथा प्रशंसनीय है।





कर्मवीर रामलोचनशरणजी

अध्यापक श्रीहवलदारीराम गुप्त 'हलधर', राँची-जिला-स्कूल

लगभग २५ वर्ष पहले की बात है। बिहार मे लोअर से लेकर मिडिल तक मैकमिलन-कम्पनी की पुस्तको—विज्ञान-पाठ, इतिहास-पाठ, भूगोल-पाठ—आदि—की धूम थी। पटना, गया आदि शहरो से चन्द छोटी-छोटी पुस्तकें निकली थीं, पर उनसे शिक्षक-मंडली को सन्तोष न था। उसी समय 'भंडार' से रामलोचनशरणजी की कई छोटी-छोटी पुस्तकें—प्रकृति-परिचय, स्वास्थ्य-परिचय, पत्र-चन्द्रिका आदि—बाजार में आईं। शिक्षक और शिक्षार्थी उनपर टूट पड़े। मैंने सोचा, उन पुस्तकों मे कौन-सी खूबियाँ हैं जो ये इतनी लोकप्रिय हो रही है कि टेक्स्टबुक-कमिटी ने उन्हें मंजूर भी नहीं किया और लोग धड़ल्ले से खरीद रहे हैं। आखिर उनको पढ़कर देखा—उनमे नई सिलेबस के अनुसार सभी पाठ बहुत ठिकाने से सजाये गये थे। भाषा सुबोध थी। शैली मनोवैज्ञानिक थी। सूझ बड़ी पैनी थी। विषय-प्रतिपादन चमत्कारपूर्ण था।

गया से भी छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तकें, बाबू रामसहाय लाल प्रकाशक के यहाँ से, निकली थीं जिनमे अधिकांश के लेखक बाबू रामलोचनशरण थे। बहुत-सी पुस्तके दूसरो के नामो से थीं; पर उनमें भी प्रायः इन्हीं का हाथ था। कारण, उस समय ये गया-जिला-स्कूल के एक प्रसिद्ध हिन्दी-शिक्षक थे। इन्होंने दस-पैसे प्रति पृष्ठ के हिसाब से पुरस्कार लेकर पुस्तके लिखी थीं। इसी तरह इनको हजार-बारह सौ रुपये मिले थे। इतने ही से इनकी श्रमशीलता का अनुमान किया जा सकता है।

'भंडार' की पुस्तको से प्रभावित होकर मैं उनके लेखक शरणजी के दर्शनों

के लिये उत्सुक हो उठा। छान-बीन करने से पता लगा—शरणजी हमारे ही जैसे एक हिन्दी-शिक्षक है। मिलने के सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

सौभाग्यवश अवसर आया। सन् १९२० मे, काशी मे, जातीय महासभा मे, देखा—कोलाहलमय सभा-मंडप मे भी सादगी का एक पुतला पुस्तक का प्रूफ देख रहा है।

"आपही का नाम रामलोचनशरणजी है ?"

"जी हॉ, इसी गरीब को लोग इस नाम से पुकारते है।"

"भंडार के आप ही मालिक है ?"

"नही, मै तो उसका सेवक हूॅ।"

"आपकी पुस्तके तो खूब अच्छी बनी है।"

"यह रामजी की कृपा है।"

"यह आप क्या शुद्ध कर रहे है ?"

"व्याकरण-चन्द्रोदय का प्रूफ है। आज ही इसे देखकर प्रेस को दे देना जरूरी है। फिर पीछे मिलेगे। माफ कीजियेगा।"

पॉच ही मिनट मे बिदाई का अनुरोध। मैंने मन-ही-मन कहा—"यह कर्मठ युवक भविष्य में इतिहास का निर्माण करेगा।"

ईश्वर की दया से वही हुआ भी। शरणजी ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अपना जो ऊॅचा स्थान बना लिया है, वह सदा अक्षुण्ण रहेगा। इन्होने स्वयं अपने इतिहास का निर्माण किया है।

'भंडार' की उन्नति देख उसकी नकल पर अनेक नामधारी पुस्तिकाएॅ निकलीं, पर इससे 'भंडार' घबराया नही, बल्कि और भी उत्साहित होकर नये-नये ढॅग की पाठ्य पुस्तके निकालने लगा। 'भंडार' की लोक-प्रियता और भी बढ़ चली।

अब कर्मवीर शरणजी और उनके 'भंडार' के दर्शनो की लालसा और भी बलवती हुई। सन् १९३० मे केवल पौन घंटा ही वहाँ रहने का अवसर मिला। 'भंडार' के सभी विभागो को न देख सका।१९३४ के प्रलयंकर भूकम्प ने 'भंडार' के मकानो को चूर-चूर कर दिया। अखबारो मे यह पढ़कर बड़ा दुःख हुआ कि एक बार वहॉ गया भी था तो अच्छी तरह देख न सका। प्रतिद्वंद्वियो ने समझा—"अब भंडार क्या उठेगा ?" किन्तु जिसे जगदाधार परमेश्वर का करावलम्बन प्राप्त है, उसके उठने मे क्या देर लगती है ?

चार वर्षों के बाद लहेरियासराय जाने का सुअवसर आया। देखा, 'भंडार' अब भूकम्प के पहले का 'भंडार' नहीं है। उसकी काया पलट गई है। पहले वह बालक था, अब जवान है। एक नजर से 'भंडार' के कोने-कोने देख आया। जिधर

देखा, उधर ही पुस्तकों के बड़े-बड़े बंडल। गल्ले के गोदाम की तरह सामान भरा पड़ा था। स्टॉक की सजावट और सुव्यवस्था देखते ही बनती थी। इतना बड़ा पुस्तक-गोदाम बिहार में अब तक नहीं देखा था। भिन्न-भिन्न विभागो को देखा। बड़ा आनन्द आया। 'भंडार' के अहाते में ही 'पुस्तक-भंडार-डाकघर' भी है। श्री शिवपूजनसहायजी, यशस्वी चित्रकार महारथीजी, 'बालक' के सहकारी सम्पादक अच्युतानन्द दत्तजी, 'भंडार' के मैनेजर माणिकजी, प्रेस के मैनेजर हनुमानप्रसादजी और 'भंडार' के अन्य कर्मचारियो से मिलकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। सब-के-सब सादगी के सॉचे मे ढले हुए थे। सौजन्य मानो इन्हीं के पल्ले पड़ा था। सब-के-सब मधुर-भाषी, व्यवहार-कुशल, शीलवान् और कर्त्तव्यपरायण दीख पड़े। बड़े तो बड़े ही थे, छोटों का शील-स्वभाव भी सराहनीय था। मालूम होता था, 'भंडार' के सभी कर्मचारी हृदय से 'भंडार' के हितैषी है। उनकी बातो से ज्ञात हुआ—"भंडार हरा-भरा रहेगा तभी तो हम भी हरे-भरे रहेगे।" 'भंडार' और 'भंडार' के मालिक को देखकर गुसाई जी की वह चौपाई याद पड़ गई—"जस दुल्लह तस बनी बराता।"

स्नान-भोजनोपरान्त शरणजी से और मुझसे तरह-तरह की बाते होती रही। एक स्थल पर उनके मुख से निकले वाक्य ये है—"मै 'भंडार' का मालिक नहीं, बल्कि एक कर्मचारी हूँ। 'भंडार' मे सब-के-सब कुछ काम करके ही खाते है। मेरा बड़ा लड़का 'वैदेही' काम करता है, वेतन पाता है। ये छोटे लालबाबू भी 'बालक' के लिये कुछ लिख देते है, तब इनको पाकेट-खर्च मिलता है।"

एक विशेषता मैंने देखी। 'भंडार' के सभी कार्य कर्मचारियो की कमिटी के द्वारा संचालित होते है। समय की पाबन्दी वे स्वयं रखते हैं। अधिकारी, दबाव से नहीं, प्रेम से काम लेने के पक्षपाती हैं। कुछ कर्मचारियों के रहने की सुविधा 'भंडार' के अहाते ही में है। यदि कोई कर्मचारी अपराध करता है, तो उसपर 'भंडार' के कर्मचारी स्वयं विचार करते हैं। दोषी दंड और निर्दोष पुरस्कार पाता है। मुझे यह भी वहाँ विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि शरणजी अपने कर्मचारियों के सुख-दुःख में प्रायः गुप्त रीति से आर्थिक सहायता किया करते हैं। उनके साथ इनकी पूरी सहानुभूति रहा करती है।

मेरी उपस्थिति मे कई लेखक 'भंडार' मे पधारे। देखा, 'भंडार' उनका सत्कार करने में सदा संलग्न है—उनके बिदाई की भेंट भी दी जाती है।

'भंडार' का एक सुन्दर उद्देश्य और है। वह होनहार शिक्षार्थियों से कुछ लिखने का काम लेकर उनको आर्थिक सहायता दिया करता है। इससे दो काम होते हैं—विद्यार्थी आगे चलकर लेखक बन जाते है और 'भंडार' का काम

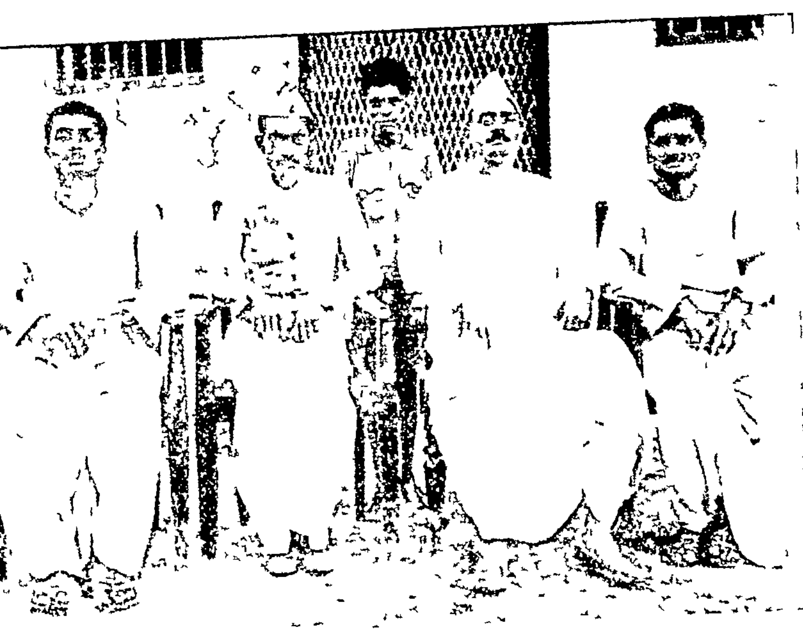
निकल जाता है। 'भंडार' उनको सदा के लिये अपना आभारी बना लेता है। इसके उदाहरण है बी. एन. कालेज (पटना) के फिलासफी के प्रोफेसर श्रीहरिमोहन झा, एम० ए० और श्रीनगेन्द्रकुमर, बी० ए०, सब-डिपुटी-कलक्टर।

लहेरियासराय से बिदा हो मै पटना की 'भंडार'-शाखा मे पहुँचा। वहाँ भी १५-२० कर्मचारी रहते है। जनाना अस्पताल के सामने, गोविन्दमित्र-रोड मे एक बड़े अहाते के अन्दर यह स्थित है। देखा, यहाँ भी 'भंडार' से सम्बन्ध रखनेवालो का यथेष्ट समादर होता है।

पचीस रुपये मासिक वेतन पानेवाला एक हिन्दी-शिक्षक आज हजारो रुपये मासिक वेतन बाँटता है। उसके कई कर्मचारी ऐसे है जिनको ५०) से १००) तक मासिक वेतन मिलता है। किन्तु लाखो के मालिक होकर भी शरणजी 'मास्टर साहब' कहलाने मे कुंठित नही होते। यह इनका बड़प्पन है।

पुरुलिया-(मानभूमि)-जिला-स्कूल की बात है। शरणजी पहुँचे हुए थे। एक हिन्दी-शिक्षक बात के सिलसिले मे कह बैठे—"हुजूर, आप बडे आदमी हैं, आपकी दयादृष्टि हमपर रहनी चाहिये।" शरणजी हाथ जोड़कर बोले—"हुजूर और 'बड़े आदमी' कहकर मुझको लज्जित न करे। मै भी आप ही के ऐसा शिक्षक था। आज भी शिक्षक कहलाने मे ही प्रसन्न होता हूँ। मुझको अपना भाई समझे। भाई के नाते, कहिये, आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।" शिक्षक महाशय ने कहा—"मेरा एक छोटा भतीजा दसवी श्रेणी मे पढ़ता है। उसके लिये, आपकी कई पुस्तको की जरूरत है।" शरणजी ने कहा—"आप पत्र लिखकर मँगा लीजिये। मै एक पुर्जा देता हूँ। और, आपको जब-जब जरूरत हो, मँगा लिया करे।"

एक बार, राँची-जिला-स्कूल मे! शरणजी, मिस्टर दास वर्मा हेडमास्टर से बाते करने के बाद, मुझसे मिलने आये। मै छठे दर्जे मे हिन्दी-व्याकरण पढ़ा रहा था। इन्होने एक सज्जन से मिलने का अनुरोध किया। मै संकुचित चित्त जाने को उद्यत हुआ। इन्होने कहा—"तुम ड्यूटी मे हो, मै क्लास देखता हूँ।" बस, क्लास मे घुस गये। दस मिनट के बाद लौटकर देखता हूँ, शरणजी आज पचीस वर्षों के बाद फिर मास्टर साहब बने हुए है। बोर्ड पर डटे है। लड़के विमुग्ध चित्त इन्हे निहार रहे है।" मैने कहा—"लड़को। ये कौन हैं, पहचाना? ये वही है जिनकी लिखी हिन्दी-पुस्तके तुमलोग पढ़ा करते हो। ये तुम्हारे प्यारे 'बालक' के सम्पादक हैं।" सब लड़के चकित चित्त खड़े हो गये। सबका मस्तक झुक गया। सबके चेहरे पर श्रद्धा झलक रही थी—आँखो मे प्रेम थिरक रहा था। इन्होने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और फिर उसी बात को



पुस्तक-भंडार का प्राइवेट-आफिस। बाईं ओर से—पं० सूर्यनारायण झा, श्रीवैदेहीशरण, श्रीनथुनीप्रसाद माणिक (मैनेजर), पं० रामेश्वर झा



पुस्तक-भंडार का आफिस। पीछे खड़े—दो चपरासी। कुर्सी पर बैठे बाईं ओर से—सर्वश्री रामदेव प्रसाद, मणिशंकरलाल कर्ण, अशरफीलाल वर्मा। बैठे हुए बाईं ओर से—सर्वश्री दर्पनारायण चौधरी, कपिलदेव-नारायण, रामएकबाल सिंह।



उर्दू-विभाग के लेखक (खुशनवीस) कुर्सी पर बाईं ओर से—मुन्शी अब्दुल हलीम (दरभंगा), बिहार-शरीफ निवासी मुन्शी मुहम्मद एकराम उद्दीन (कातिब), मुन्शी मुहम्मद मुसलिम (दरभंगा)। बाईं ओर से खड़े—जफर आलम (दरभंगा), मुहम्मद शफीक (भागलपुर), वसीअहमद (बिहारशरीफ)।





पुस्तक-भंडार का साहित्य विभाग। कुर्सी पर बाईं ओर से—श्रीअविनाा चन्द्र कुड्डू, प्रो० हरिमोहन झा, प्रो जगन्नाथप्रसाद मिश्र, श्री ... शरण, प्रो० शिवपूजनसहाय, प कपिलेश्वर मिश्र। बैठे बाईं ओर से-सर्वश्री अच्युतानन्द दत्त, कामेश्वर झ हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', ... झा, कमलनारायण झा 'कमल्र जयकान्त मिश्र।

'बालक' का सम्पादन-विभाग। बाईं ओर से—श्री अच्युतानन्द दत्त (सहकारी सम्पादक), श्रीरामलोचन-शरण (प्रधान सम्पादक), श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' साहित्याचार्य, अशरफीलाल वर्मा (क्लर्क)।

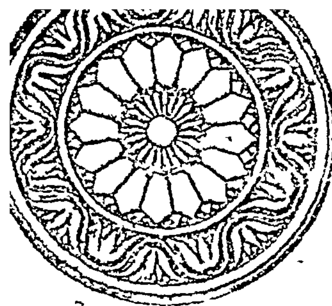
पुस्तक-भंडार का चित्रकला-विभाग। कुर्सी पर दाहिनी ओर से—श्रीहरलाल महतो (मुजफ्फरपुर), मुन्शी मुहम्मद एकरामउद्दीन कातिब, श्रीश्यामदेव श्रीवास्तव (दरभंगा), पीछे खड़े दायें से—श्रीकुलानन्द दास (दरभंगा), ... य वर्मा (शाहाबाद)।



दुहराया—"मैं भी आज से बहुत पहले जिला-स्कूल का शिक्षक था। तुमलोग छोटे-छोटे लेख 'बालक' के लिये लिखकर भेजना, मै छपवा दूंगा।"

उसी दिन, सन्ध्या समय, आर्य-निवास होटल मे मैं इनसे मिलने गया। मैने कहा—"क्या मेरी कुटिया पवित्र न होगी ? क्या मालूम न था कि मै रॉची मे ही हूँ ?" उत्तर मिला—"भाई ! जब 'भंडार' पनप रहा था तभी से मै इसी 'निवास' मे ठहरता आया हूँ; इसलिये इससे अधिक प्रेम हो गया है। यदि कल भोर मे न जा सका तो तुम्हारे यहॉ आऊँगा।" दूसरे रोज शाम को रिम-झिम पानी बरस रहा था। रिक्शे पर लाल बाबू के साथ मेरी कुटिया मे आ पहुँचे। पहुँचते ही बोले—"लो, आ गया, खिलाओ। हॉ, याद रहे, जो तुम खाते हो वही खाऊँगा। मेरे लिये कोई तूल न करो।" इस तरह अपनी सादगी का आदर्श दिखा, उसी रिम-झिम पानी मे, वापस गये।

जैसी चरम सीमा की सादगी, वैसी ही उदारता। दोनो गुण इनमे वर्त्तमान है। 'भंडार' को उपयुक्त मालिक, और मालिक को उपयुक्त 'भंडार' मिला है। फिर 'भंडार' अपने नाम को सार्थक क्यो न करे ? 'भंडार' ने अबतक लगभग चार सौ सु-सम्पादित साहित्यिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। लोअर प्राइमरी स्कूल से कालेज तक की कोर्स की किताबे—संस्कृत, हिन्दी, बंगला, उड़िया, उर्दू, अँगरेजी, संथाली आदि भाषाओ मे—हजारो की संख्या मे प्रकाशित कर अपने नाम को सार्थक किया है। साहित्य-क्षेत्र मे जो-जो महत्त्वपूर्ण काम बिहार ने अबतक नही किये थे, 'भंडार' उन्ही कामो को पूरा कर बिहार का मस्तक ऊँचा करने मे संलग्न है। सच पूछिये तो पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र मे अन्य प्रान्तो के सामने खड़ा होने लायक बिहार को इसी 'भंडार' ने बनाया है। अतः बिहार को 'पुस्तक-भंडार' और उसके निर्माता शरणजी पर गर्व होना स्वाभाविक है। भगवान् ! 'भंडार' को चिर-स्थायी करे।





मास्टर साहब की सहृदयता

श्रीशशिनाथ चौधरी, बी. ए., बी. एड; दरभंगा

'मास्टर साहब' नार्थब्रुक-जिला-स्कूल (दरभंगा) के शिक्षक थे। मै था राज-हाइ-स्कूल (दरभंगा) का विद्यार्थी। १९०७ ई० मे मैने हाइ-स्कूल मे पढ़ना प्रारम्भ किया। आप अनुमानत लगभग उसी समय मे शिक्षक नियुक्त हुए थे। यद्यपि उक्त दोनो स्कूलो के शिक्षको और विद्यार्थियो मे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न था, तथापि स्कूल मे प्रवेश करने के कुछ ही वर्षों के बाद मुझे आपकी सहानुभूति-शीलता तथा सहृदयता के कितने ही उदाहरण आपके विद्यार्थियो के द्वारा सुन पड़े। असहाय तथा दीन विद्यार्थियो के प्रति आप सदैव उदारता दिखलाते थे और आज भी दिखला रहे है। कभी पुस्तक देकर विद्यार्थियो की सहायता करना, कभी उनके नाम कटने के समय मे स्कूली फीस देना, कभी विना ट्यूशन-फी के ही विद्यार्थियो को पढ़ाना—यही आपका सहज व्यापार था। पहले यह परोपकार का भाव बीज-रूप मे था, जो आज प्रस्फुटित होकर एक विशाल वट-वृक्ष के रूप मे देख पड़ता है। उस महान् वृक्ष की छाया मे आज अनेक शिक्षक, विद्यार्थी तथा साहित्यिक व्यक्ति विश्राम कर रहे है।

हम यह निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि आपने 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना करके साधारण रूप से हिन्दी तथा हिन्दी-भाषी जनता की, और विशेष रूप से विहार-प्रान्त की वह अपूर्व सेवा की है, जिसके लिये विहार के इतिहास मे आपका नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। विहार पहले पाठ्य पुस्तको के लिये अन्य प्रान्तो का मुखापेक्षी था। आपने उसे अपने पैरो पर खड़ा किया। विहार के एक-आध प्रकाशक कुछ पाठ्य पुस्तके अवश्य प्रकाशित करते थे, पर अन्य प्रान्तवालो

की स्पर्धा में ठहरते नहीं थे। 'भंडार' ने अपनी कार्य-कुशलता से प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र मे बाजी मारकर अपनी प्रगति बहुत अधिक बढ़ा ली है। और, पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त 'भंडार' ने अनेक सुरुचिपूर्ण साहित्यिक पुस्तके भी प्रकाशित की है, जो हिन्दी-संसार मे आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं।

मेरी समझ में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य 'भंडार' ने यह किया है कि बिहार के कितने ही लेखको को प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान कर आदरणीय साहित्य-सेवियों की श्रेणी मे स्थान दिलाया है। यदि आप बिहार के वर्त्तमान लेखको और साहित्य-सेवियो की सूची उठाकर देखे, तो उसमे अधिकांश नाम ऐसे व्यक्तियो के पाये जायँगे, जिनका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप मे 'भंडार' से अवश्य ही रहा है, और आज भी है।

मेरे पूज्य (स्वर्गवासी) पिताजी इम्पीरियल बैंक में काम करते थे। मास्टर साहब के साथ उनका विशेष परिचय था। वे भी सर्वदा आपकी प्रशंसा ही किया करते थे। अतएव 'भंडार' के अनेक ग्रन्थों का परिचय मुझे घर बैठे ही मिल जाया करता था। सन् १९२६ ई० मे मेरी नियुक्ति 'सब-इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स' के पद पर हुई। तब से आपके साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ। मेरे हृदय मे आपके प्रति पहले से ही आदर का भाव भरा हुआ था। अब व्यक्तिगत सम्पर्क से वह भाव उमड़ पड़ा। इसके कई कारण थे। मैंने देखा कि यद्यपि आप उम्र मे मुझसे कहीं अधिक बड़े थे तथापि मेरे सम्मुख इतनी नम्रता प्रकट करते थे और मेरा इतना आदर करते थे कि मुझे स्वयं संकोच से लज्जित-सा होना पड़ता था। और, आज भी, जब कभी मै 'भंडार' जाता हूँ, वही नम्रतापूर्वक 'प्रणाम' सुन पड़ता है। लोग कहते है, अधिक धन होने से आदमी मतवाला हो जाता है; परन्तु आपका व्यापार यद्यपि लाखो का होगा, फिर भी आज आपमे वही सादगी और नम्रता है, जो बीस वर्ष पूर्व थी। व्यक्तिगत रूप से मै आपका अत्यन्त आभारी इसलिये हूँ कि आपने मेरें 'भगवान् बुद्ध' नामक ग्रन्थ को प्रकाशित कर तथा पटना-विश्व-विद्यालय की पाठ्य पुस्तकों मे उसे स्थान दिलाकर मेरे नाम और उत्साह को बढ़ाया है।

आपकी उदारता का परिचय एक घटना के उल्लेख द्वारा देना अनुचित न होगा। सन् १९३० के पूर्व की बात है। मैंने 'सौन्दर्य-विज्ञान' नामक एक पुस्तक लिखी। नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) ने उसे लेना स्वीकार किया। पर कुछ कारणो से उसे न दे सका। आखिर 'चॉद'-कार्यालय (प्रयाग) से सब बाते तय पा गई। पर, उसने रुपये देने की शर्त यह रक्खी कि पुस्तक के प्रकाशित

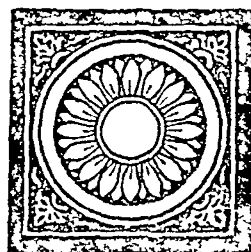
होने के एक महीना बाद पुरस्कार मिलेगा। इसपर तुर्रा यह कि पुस्तक के प्रकाशित होने की कोई निश्चित तिथि नहीं। विवश होकर मुझे पुस्तक वापस लेनी पड़ी।

मैंने सब बाते 'मास्टर साहब' से कही। आपने विना सोचे-विचारे पुस्तक ले लेने की सम्मति प्रकट की। आपने पुस्तक देखी तक नही। मुझे पुरस्कार के रुपये भी मिल गये। अनेक लेखकों को आप इसी प्रकार पुरस्कार का द्रव्य दे दिया करते हैं। फिर उनकी पुस्तके सुविधानुसार छापते रहते हैं।

आपकी उदारता की एक और कहानी लिखना चाहता हूँ। एक बार दो गुरुओ ने मुझसे प्रार्थना की कि मुझे 'भंडार' से कुछ पुस्तके दिलवा दीजिये। मैंने आपसे इसकी चर्चा की। आपने ढाई-ढाई सौ रुपयो के दो पार्सल दोनो गुरुओ के नाम भिजवा दिये। जब भेट हुई, गुरुओ ने बड़ा हर्ष प्रकट किया। वे आपकी उदारता का बड़ा बखान करने लगे। एक ने तो कुछ पुस्तके वापस भी कर दी, पर दूसरे ने एक पैसा भी न भेजा, तकाजा करने पर उत्तर तक न दिया। आखिर मैंने आपसे कहा—"आप नालिश कर दे। ढाई सौ रुपये कुछ कम नही होते।" आपने सरल-भाव से कहा—"ऐसे बहुतेरे महानुभाव हैं, कितनो पर नालिश करूँ ?" आज तक उस कृतघ्न गुरु ने एक पैसा भी न दिया।

मैं इस बात का उल्लेख किये विना नही रह सकता कि आपके व्यक्तिगत गुणो का प्रभाव आपके कर्मचारियो पर भी स्पष्ट रूप से पाया जाता है। 'भंडार' के मैनेजर नथुनी बाबू, 'बालक' के सहकारी सम्पादक दत्तजी और चित्रकार महारथीजी नम्रता की सजीव मूर्त्ति है। प्रोफेसर शिवपूजन सहाय जैसे सरस, सहृदय, साहित्यिक व्यक्ति के साथ मेरे घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना 'भंडार' के द्वारा ही हुई है।

अन्त मे मैं आपके हृदय की विशालता की चर्चा करना अपना धर्म समझता हूँ। जब कभी मुझे रुपये-पैसे की जरूरत होती रही है, आपके यहाँ पहुँचा हूँ, आपने तुरत मेरे कष्ट को दूर कर दिया है। यहाँ तक कि कभी-कभी केवल संवाद भेजने से ही मेरा काम चल गया है। इसलिये यदि मैं आपको 'औढर-ढरन' भी कहूँ तो कोई अत्युक्ति न होगी।





बिहार के 'चिन्तामणि घोष'

श्रीनारायण-राजाराम सोमण, भूतपूर्व मैनेजर, श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

मैं महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हूँ। काशी मे मेरे पूर्वज शायद दो-तीन सौ वर्ष पूर्व आकर बस गये थे। इसलिये आनुवंशिक गुणों के रहते हुए भी मैं अब संयुक्तप्रान्त का निवासी हूँ।

पुस्तक-भंडार के संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी से मेरा सम्पर्क सन् १९१७ में हुआ। इसी वर्ष से उनका छपाई का काम लक्ष्मीनारायण प्रेस मे होने लगा। हिन्दी-संसार का शायद ही कोई प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक या प्रकाशन-संस्था होगी, जिसका कोई-न-कोई काम इस प्रेस मे न हुआ हो। शरणजी की भी प्रेस पर कृपा हुई, और कहते हर्ष होता है कि वह कृपा अबतक बनी हुई है।

शरणजी से परिचय बढ़ते-बढ़ते घनिष्ठ होने लगा। मेरी ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। इस बीच उन्होने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वह आदर्श और प्रशंसनीय है। मै लेखक नही, और न बुक्सेलर ही हूँ। मै तो प्रेस-व्यवसाय का जानकार 'मजदूर-पेशा' आदमी हूँ। लेकिन इतना मै जरूर कहूँगा कि जहाँ तक 'सुव्यवहार' का विस्तृत अर्थ किया जा सकता है वहाँ तक मैंने उनको हमेशा ठोस पाया। खासकर रुपये-पैसे के विषय मे उन्होने कभी भी वैसी वणिक्वृत्ति का परिचय नही दिया जैसी अक्सर सफल और सम्पन्न व्यवसायियो मे पाई जाती है।

सन् १९२९ मे मेरा और प्रेस के तात्कालिक मैनेजर स्वर्गीय गुर्जरजी का कुछ सैद्धांतिक मतभेद हुआ। मैंने खुशी से त्याग-पत्र दिया और नौ महीने तक यो ही बैठा रहा। इसी वर्ष के अन्त मे शरणजी ने मुझे प्रेमपूर्वक बुलाया

और मै 'पुस्तक-भंडार' मे विद्यापति प्रेस का संचालन करने के लिये नियत किया गया।

शरणजी १९१५ से ही प्रकाशन-कार्य मे लग गये थे। उस समय शायद स्वयं उनके दिमाग मे यह बात न आई होगी कि वे बढ़ते-बढ़ते बिहार के 'चिन्तामणि घोष' बन जायँगे। पर मनुष्य की प्रतिभा छिपती नही। स्कूली पुस्तको के उस समय जितने प्रकाशक थे, इने-गिने थे और बिहार के बाये-दाये प्रान्तो के प्रकाशको की पुस्तको की बिक्री खूब थी। शरणजी ने अपनी नवीन मौलिक प्रणाली से पुस्तके लिखना और छापना शुरू किया। कुछ अन्य प्रकाशक एक बिहारी प्रकाशक की लिखी हुई पुस्तको को आगे आने देना नहीं चाहते थे। तरह-तरह की युक्तियाँ लगाकर उनकी प्रकाशित पुस्तको पर रुकावटे डाली जाती थीं। इतना सब होते हुए भी ठोस विशेषताओ के कारण उनकी किताबे धड़ल्ले से बिकती रहीं और हजार रोक-थाम रहने पर भी समूचे बिहार मे उनकी पुस्तको की कद्र होती रही। शरणजी ने हिन्दी के अनन्य सेवक होने के नाते, इसी बीच मे, लाखो रुपये साहित्यिक पुस्तको के प्रकाशन और 'बालक' के संवर्द्धन मे लगा दिये। आज ये दोनो काम उसी प्रकार चल रहे हैं। अस्तु।

जब मै १९२९ मे आया तब हमलोगो को सारी परिस्थिति का अवलोकन करने मे कुछ समय लग गया। बिहार मे बाहरी प्रभाव कुछ कम हो रहा था और प्रान्त मे इस बात की समझ आ रही थी कि बिना बाहरी मदद लिये बिहार ही मे पुस्तके लिखनेवाले और प्रकाशक मिल सकते है। इसी आधार पर शरणजी ने पुन प्रयत्न आरम्भ किया, क्योकि प्रेस तथा 'भंडार' के संचालन के लिये मैं बुला ही लिया गया था। ईश्वर की कृपा, शिक्षक-मंडली का सोत्साह सहयोग और पक्की लगन ने सफलता दी और एक-दो वर्ष के अन्दर 'भंडार' की बीसो पुस्तके शिक्षा-विभाग ने स्वीकृत की। कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि दुराग्रह-वश जो लोग शरणजी को सामने नहीं आने देना चाहते थे और उनकी प्रतिभा को दबा देना चाहते थे, वे मुँह ताकते रह गये। इसके आगे की बाते सब लोग जानते हैं। वे ही पुस्तके, जिनके न पढ़ाने के लिये सर्कुलर जारी कराये जाते थे, अन्य पुस्तको के साथ शिक्षा-विभाग-द्वारा स्वीकृत हुईं, और अबतक चल रही हैं।

नियति की गति विचित्र होती है। मैं 'भंडार' मे जबतक रहा, मास्टर साहब ने अपने छोटे भाई की तरह मुझे रक्खा। किन्तु नियति को मेरा इतना आदर असह्य हो उठा। कुछ सज्जनो के पाले पड़कर मैंने अपना निज का कारबार उनके साझे मे करने की ठानी। मास्टर साहब ने इससे कुछ उदास होते हुए भी प्रेमपूर्वक मेरी विदाई की। मेरे नेत्र भी कृतज्ञता के अश्रु बरसा रहे थे।

और, आगे चलकर तो मेरी वह योजना मृगतृष्णामात्र सिद्ध हुई। अपनी जल्द-बाजी के कारण 'भंडार' से बिछुड़ जाने का पश्चात्ताप अभी तक मेरे हृदय मे बना है। किन्तु 'समय चूकि पुनि का पछिताने' !

अपना अल्प संबंध जो 'भंडार' से रहा है उसका उल्लेख कर मै केवल इतना ही कहूँगा कि 'शरणजी' की पूरी कद्र उनके जीवित रहते भले ही न हो; पर बिहार की भावी पीढ़ी जब निष्पक्ष हृदय से विचार करेगी—और उनकी सेवाओ का सिहावलोकन करेगी—तब वही उनकी कद्र कर सकेगी।

इस समय मै फिर दुबारा 'भंडार' मे आ गया हूँ। आज भी मास्टर साहब का सद्भाव वैसा ही है। उनके स्वभाव की मधुरता और शान्तिप्रियता दिन-दिन बढ़ती जाती है। ईश्वर से प्रार्थना है कि 'भंडार' अथच 'शरणजी' अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के अनुसार उसी प्रकार बिहार और हिन्दी की सदा सेवा करते रहें, जिस प्रकार अबतक वे करते आये है। ईश्वर सदा उनका उत्कर्ष करेगा। वे 'बिहार के चिन्तामणि घोष' सच्चे अर्थ मे है, क्योंकि उनके जीवन की अनेक घटनाएँ इस दृष्टान्त को प्रत्यक्ष सिद्ध करती हैं।





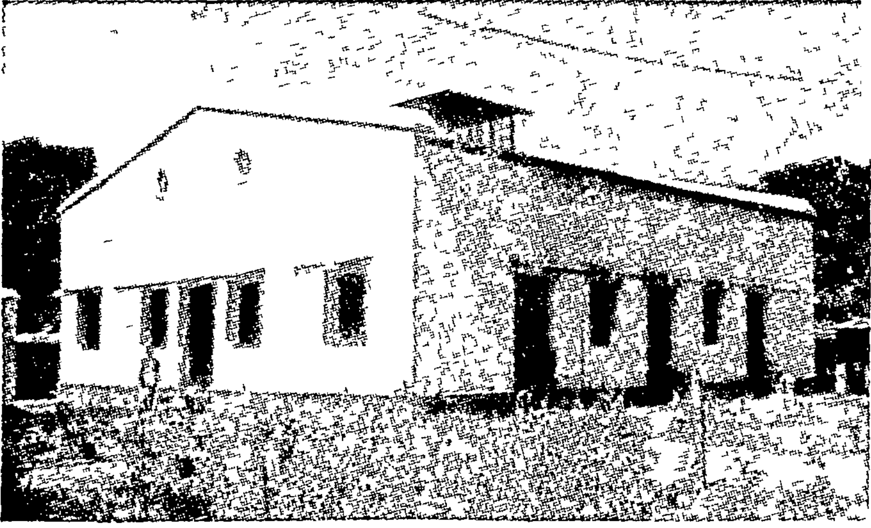
विहार और हिन्दी

श्रीमती शैलकुमारी चतुर्वेदी 'हिन्दी-भूषण'; जयपुर (राजपूताना)

विहार-प्रान्त, भारतवर्ष के पूर्व मे, वंगाल और संयुक्तप्रान्त के मध्य मे वसा हुआ है। इसी प्रान्त ने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे श्रीजगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीईश्वरी-प्रसाद शर्मा, श्रीरामलोचनशरण, श्रीनंदकिशोर तिवारी, श्रीराजा राधिकारमण प्रसादसिह, श्रीशिवपूजनसहाय-जैसे लेखक और सर्वश्री 'द्विज', दिनकर, वियोगी, केसरी, नेपाली, आरसी-जैसे कवि उत्पन्न किये है। क्या हिन्दी साहित्य इस उपकार को भूल सकता है ?

इस प्रान्त की अनेक पत्र-पत्रिकाओ ने भी हिन्दी-साहित्य मे अच्छा स्थान प्राप्त किया है। उनमे 'वालक', 'नवशक्ति', 'योगी', 'किशोर' आदि प्रसिद्ध हैं। लेखको और कवियो के अतिरिक्त कुछ प्रकाशको ने भी हिन्दी-साहित्य का अच्छा उपकार किया। हिन्दी-भाषा का प्रचार करनेवाली कुछ सभाएँ भी विहार मे स्थापित है। विहार मे हिन्दी का अच्छा प्रचार है। सर्वसाधारण मे हिन्दी के प्रति प्रेम वढ़ता ही जा रहा है। हिन्दी-साहित्य की जैसी प्रगति अन्य प्रान्तो में है उससे कम विहार मे नही है।

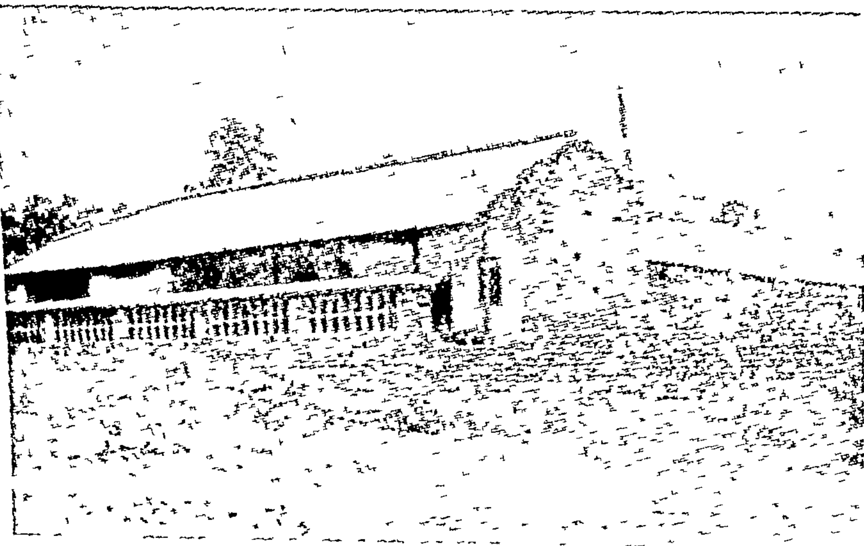
विहार मे हिन्दी के प्रचार का श्रेय वहुत-कुछ 'पुस्तक-भंडार' और उसके संचालक श्रीरामलोचनशरणजी को है। यदि पुस्तक-भंडार को हम 'हिन्दी-प्रचारक-संघ' कहे तो अनुचित न होगा। पुस्तक-भंडार हिन्दी की अगणित पुस्तके प्रकाशित कर चुका है। उन पुस्तको मे अधिकांश हिन्दी-साहित्य में उच्चकोटि की मानी जाती है। 'भंडार' की प्राय सभी पुस्तके सुलेखको और सु-कवियो की सुललित रचनाएँ है। 'भंडार' द्वारा प्रकाशित साहित्य साधारण कोटि का साहित्य नही है।



हिमालय प्रेस (पुस्तक-भंडार), पटना का नया भवन



विद्यापति प्रेस का जिल्दबँधाई-विभाग



विद्यापति प्रेस (लहेरियासराय) के कर्मचारियों का वासस्थान



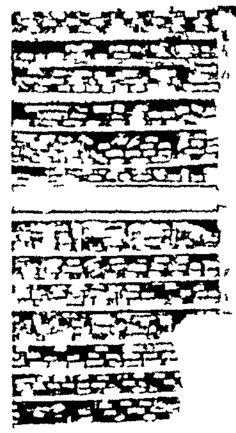


२

४

१

३





५



१—दफ्तरीखाने के कटिङ्ग मशीन-विभा
का एक अंश—प्रधान जमह
मोमिन (दरभंगा)

२—विद्यापति प्रेस—ट्रेडिल-मशीन प
काम हो रहा है।

३—पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय)
डाकखाने का बाहरी दृश्य

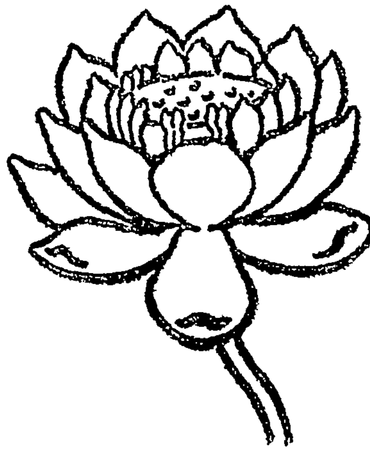
४—ब्लाक-विभाग—श्रीराजवल्लभ मलिक

५—बही-खाता-विभाग के तीन मुन्शी—ब
ओर से—मुन्शी श्यामसुन्दर गु
मुन्शी मेहीलाल, मुन्शी सीताराम

सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'बालक' पुस्तक-भंडार की ही एक अनुपम भेंट है। यह पत्र सोलह वर्षों से हिन्दी की निरंतर सेवा कर रहा है। देश के बड़े-बड़े विद्वान् इसको बाल-साहित्य का सर्वोत्तम मासिक पत्र स्वीकार कर चुके हैं। 'बालक' ने बिहार प्रान्त मे एक-दो को नही, अनेक को—विशेषतया बालको तथा बालिकाओं को—हिन्दी लिखना सिखाया।

श्रीरामलोचनशरणजी बिहार-प्रान्त के प्रमुख साहित्यिकों मे हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी है। अपने जीवन का उद्देश्य भी आपने हिन्दी-साहित्य की सेवा ही बना रक्खा है। निःस्वार्थ भाव से आप लगभग तीस वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे है। 'पुस्तक-भंडार' और 'बालक' आपके साहित्य-प्रेम के ज्वलंत प्रमाण हैं। बिहार-सरकार को शिक्षा-प्रचार मे आपने काफी सहायता प्रदान की है। बिहार की साक्षरता-समिति ने जब 'रोशनी' नामक पत्रिका निकाली तब आपने 'होनहार' को जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आपकी साहित्य-सेवा वास्तव मे स्तुत्य है। हिन्दी के लिये आपका परिश्रम श्लाघ्य है। यह आपके ही परिश्रम का फल है कि आज 'बालक' का स्थान उच्च कोटि के पत्रो मे है। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में उसका नाम सम्मान से लिया जाता है। यदि 'पुस्तक-भंडार' का नाम बिहार के हिन्दी के इतिहास से निकाल दिया जाय तो अवश्य ही वह इतिहास शुष्क हो जायगा।

बिहारी सज्जनो ने हिन्दी-प्रचार के लिये काफी परिश्रम किया है और आज तक कर रहे हैं। उनका परिश्रम सफल भी हुआ। जो कुछ भी उन्होने किया, और कर रहे हैं, वह कम नही, प्रत्युत हिन्दी-साहित्य के लिये गौरव का विषय है।





बिहार के रूपर्ट ब्रूक *

कविवर श्री 'केसरी', एम. ए.

"तुम भूलते हो। तुलसीदास की सर्वप्रियता की आधार-शिला है उनकी वह कला, जो भारतीय आत्मा की चिरंतन अनुभूतियों को वाणी में उतारकर साकार कर देती है। इस तरह—मान लो, तुम लड़कपन से कुछ सुहावने स्वप्न देखते आये हो। जागरण की चेतना मे तुम उन स्वप्नो को प्रत्यक्ष देखते नही, या वे तुम्हारी अनुभूति मे बँधते नही, बिखर जाते है। कोई जादूगर आता है और हूबहू तुम्हारे स्वप्नो की एक प्रतिमा तुम्हारी आँखो के सामने रख देता है—एक बोलती प्रतिमा। तुलसीदास वही जादूगर है। अनेक लोग उस प्रतिमा के वाणी-विलास पर मुग्ध है, किन्तु उसे समझने के लिये उन स्वप्नो की अनुभूति होनी चाहिये। यही कारण है कि कतिपय समालोचक तुलसीदास की उस प्रतिमा के साथ केवल खिलवाड़ करके अपने को कृत-कृत्य समझ लेते है।"

यह प्रसंग छिड़ा था लम्बगोड़ाजी के रामचरितमानस-विषयक लेख पर। मास्टर साहब तुलसीदास के एकांत भक्त है। तुलसी की महत्ता को उन्होने जिस दृष्टि-विन्दु से समझा है, उसीसे वे आज के साहित्य को देखते है तो निराश होते है।

"तुमलोगो की पुस्तके जनता के हृदय मे क्यो नही उतरती ? कारण वही है। जनता कुछ सोचती है, तुम कुछ और सोचते हो। अपने सांस्कृतिक जाग-

* रूपर्ट चानर ब्रूक (Rupert Chawner Brook) अँगरेजी का कवि था—ग्रैंटचेस्टर (इंगलैंड) में जन्म ३ अप्रैल, १८८८, मृत्यु २३ अप्रैल, १९१५, अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व।—ले०

रण के उषाकाल मे हमने स्वतंत्रता की अँगड़ाई के साथ अपने अतीत को देखा था। मैथिलीशरण ने उसी अँगड़ाई का एक चित्र 'भारत-भारती' मे खीचा। मुझे मालूम नही, उनकी दूसरी कोई पुस्तक उतनी प्रिय हो सकी है। जानते हो, 'कल्याण' की कितनी कापियाँ खपती है ? पचास हजार !!"

"किन्तु जन-रुचि को साथ लेकर कोई कलाकार बहुत दूर नहीं जा सकता। यदि जनता को रिझाना ही कलाकार अपना ध्येय बना ले, तो उसे 'चलो वीर पटुआ खाली' और 'मस्ताना भगतसिह' लिखकर ही संतोष की साँस लेनी चाहिये।"—यह कहकर मैंने अर्वाचीन साहित्यिको का पक्ष-समर्थन किया।

"इसी वहम से तो छायावाद बदनाम है। तुमलोग अपनी जगह पर अड़कर बैठे हुए हो, पाठक अपनी जगह पर—बिगड़ी हुई बारात के समधियों की तरह। जरूरत है अँकवार-भेंट की।"

यह एक रूप है उस व्यक्तित्व का, जो सरस्वती और लक्ष्मी के दुर्लभ सम्मिलन के सुखद वातावरण मे हमारे साहित्य की गति-विधि का मूल्यांकन किया करता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने महात्मा गांधी के विषय मे यों लिखा है—"उनके समक्ष जाकर आदमी अपनी तुच्छता भूल जाता है। कोई कितना ही नाचीज क्यों न हो, जब अपनेको उनके सामने पाता है, उसके भीतर जैसे कुछ सोया हुआ जाग उठता है। यही उनकी विशेषता है।"—(Gandhi, the Man.)

मेरा अपना विश्वास है, बिहार के लेखक भी, 'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष के सामने कुछ ऐसा ही अनुभव करते है। आप बैठे है—सामने मास्टर साहब है। आप 'रतन' है बिहार के। बिहारी प्रतिभा पर हँसनेवाला पैदा नहीं हुआ !—ऊपर जरा सिर उठाइये—एक कतार मे चित्र टँगे है। आपका भी है !

"अरे! यह तो मै हूँ !"—आप कल्पना के पंखो पर उड़ते हुए बाईसवी शताब्दी मे पहुँचकर अपनेको उस दीवार पर पाते है। आप कभी मानियेगा कि आपकी लाइने पचीस बरस के बाद कोई नही पढ़ेगा ! इस अनिर्वचनीय आत्म-गौरव की लहरो पर आप किलोले करते ही है कि आवाज आती है—"इन चित्रो के बीच बैठा हुआ मै क्षण-क्षण गर्व का अनुभव करता हूँ—फूला रहता हूँ। तुम कहते हो, मैं मोटा हो रहा हूँ।"

दो घंटे प्रीतिपूर्वक बातचीत करके जब आप उठना चाहते है, आग्रह के मधुर शब्द आपको फिर बिठा लेते हैं—"अरे, भोजन का समय है, ऐसे भी कही से कोई जाता है ?" विचार जरूर उठते हैं—यह व्यक्ति कितना मिलनसार है! व्यवसाय के नीरस जीवन मे भी यह कितना ठोस साहित्य जमा किये हुए

है। यह मधुरता और भी सुशोभन लगती है, जब हम यह सोचते है कि ऐसी परिस्थिति के लोगो के चेहरे पर लिखा रहता है—'मुझसे न बोलो।'

किन्तु, मास्टर साहब के व्यक्तित्व का सबसे महान् पहलू तो वह है, जिसके द्वारा विहार की सांस्कृतिक तरुणाई को ऊर्ज्जस्विता मिली है।

साहित्यिक कर्त्तृत्व की परख के लिये अभी तक कोई सर्वानुमोदित माप-दंड नही बना। आचार्य द्विवेदीजी की महत्ता को जो लोग उनके लिखे हुए पत्रो मे ही खोजकर ठहर जाते है, वे पूर्णकाम नही हो सकते। सूर्य अपने मे महान् है, किन्तु मानव की भक्ति का अर्घ्य उस प्रकाश के देवता के चरणो मे समर्पित होता है, जिसकी विभूति से उसकी आँखो की ज्योति सार्थक होती है। हम उसकी वंदना करते हैं, जिसके आते ही हम सोते से जाग उठते हैं, जिसके द्वारा विश्व से हमारा तादात्म्य स्थापित होता है। महत्ता का यही रूप हमे उलझन मे डाले रहता है, क्योकि सहस्र-रश्मि प्रभाकर की किरणों की तरह यह अनिश्चित दिशाओ मे व्याप्त रहता है।

विहार की अर्वाचीन साहित्यिक समुन्नति के इतिहास के लिखनेवालो को इन्ही अनिश्चित दिशाओ मे फैले हुए प्रकाश-कणो को खोजना होगा। अँगरेजी साहित्य के पढ़नेवाले जानते है कि उस साहित्य मे नवीन युगो के लानेवालो मे कैक्सटन (Caxton), पर्सी (Percy) इत्यादि भी है, जिन्होने नवीन प्रकाश के लिये पथ प्रशस्त किया—आगे का रास्ता बनाया, बतलाया।

नेपाल-राज्य मे रामचरितमानस का जो प्रचार करता है, वह भी कुछ करता है। रॉची के आदिवासियो मे जो हिन्दी की ध्वजा फहराना चाहता है, वह कविजनो के लिये दी गई वाहवाही को पीछे छोड़ आया है। और, जिसने वाल-साहित्य को इतना परिपुष्ट किया कि वह युवा-जीवन के बोझ को सँभाल सके, उसने तो निस्सन्देह 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का सृजन किया है।

इस व्यक्ति ने विहार को प्यार किया है। उसने गर्व के साथ अपनेको 'रामलोचनशरण विहारी' घोषित किया है। मुझे डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह का वह लेख याद आ जाता है, जिसमे उन्होने अपने विदेशीय अनुभवो को व्यक्त किया है। उन दिनो विहार वंगाल के अंदर था। लंडन मे किसी ने उनसे पूछा—"Mr. Sinha, which part of India do you belong to ? (आपका घर कहॉ है ?)"। उन्होने कहा—"विहार।" उक्त सज्जन चकरा गये, क्योकि विहार का नाम नक्शे मे उन्होने नही देखा था। उन्होने कहा—"विहार। अरे, यह विहार कहॉ है ?" डाक्टर सिन्हा को यह बात लग गई।

उन्होंने वहीं संकल्प किया कि मैं बिहार का नाम हिन्दुस्तान के नक्शे में लिखवा दूँगा।

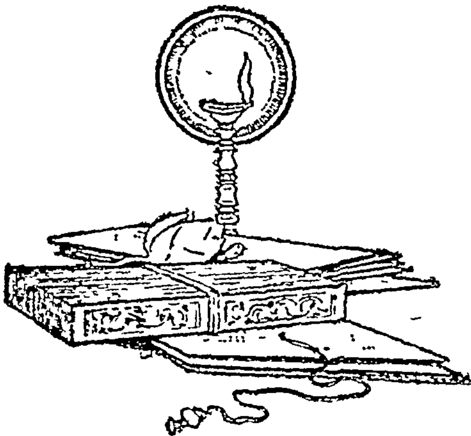
डाक्टर सिन्हा का संकल्प सर्वथा कल्याणकारी सिद्ध हुआ। साहित्य के क्षेत्र में खंड-शासन अशोभन है; किन्तु अपने घर—अपने प्रान्त—से प्रेम स्वाभाविक ही है। यह प्रेम कल्याणकारी होता है। जो अपने प्रान्त को प्यार करेगा, वही प्रान्त की आधार-भूमि भारत-वसुंधरा को प्यार करेगा। 'रूपर्ट ब्रूक' ने लिखा है—

"England is the one land I Know
And Cambridgeshire of All England
The Shire for men who understand
And of that district I prefer
The lovely hamlet grantchester.,,

अर्थात्—"इंगलैंड को मैं प्यार करता हूँ, उसमें भी 'कैम्ब्रिजशायर' को ज्यादा और फिर 'ग्रैंटचेस्टर' को सबसे ज्यादा।"

यही ब्रूक अपने इंगलैंड के लिये गत महायुद्ध में लड़ते-लड़ते मरा था।

ऐसा ही कुछ अपनापन इस 'बिहारी' को अपने बिहार से है। इस स्वनामधन्य 'बिहारी' की दिवस की खोज और रात्रि के स्वप्न हैं—बिहार की संस्कृति, बिहार का साहित्य। इस पावन आकांक्षा पर बिहार की श्रद्धा निछावर है। इस महान् जीवन की साध सभी को है। इस आदर्श जीवन की बलिहारी!





मास्टर साहब की सादगी

श्रीयुत रामजीवन शर्मा 'जीवन' (मुजफ्फरपुर); भूतपूर्व संपादक—'सन्देश', 'प्रणवीर', 'महारथी', 'नवयुवक'

"बाबूजी ! बाबूजी !!"

"क्या है, बेटा ?"

"देखिये, उमराव काका ने मेरी सब मिठाई खा ली।"

करीब सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १९२५ की गर्मी के दिन थे, शाम का वक्त। 'भंडार' की लाल कोठी के सामनेवाले मैदान की हरियाली पर बैठे हुए हमलोग—मास्टर साहब, हरिवंश बाबू आदि गपशप कर रहे थे। इतने मे वैदेहीशरण, जो उन दिनो दस-बारह साल से ज्यादा के नही रहे होगे, हमलोगो के पास एक फरियाद लेकर आये। उमराव का अपराध यह था कि उसने बिना मॉगे वैदेही की मिठाई खा डाली थी। सारा हाल जानकर मास्टर साहब ने मुस्कुराकर कहा—"कृष्ण का अंश चुराकर खा जाने से सुदामा निर्धन हो गये, यह बात इसको मालूम नही थी। एक प्रति 'सुदामा-चरित' इसको मॅगवा दो।"

उदारहृदय स्वामी के इस सरस व्यवहार से उमराव का मुरझाया हुआ मुख-कमल खिल उठा। वह गद्‌गद हो उनके पैरो पर गिर पड़ा।

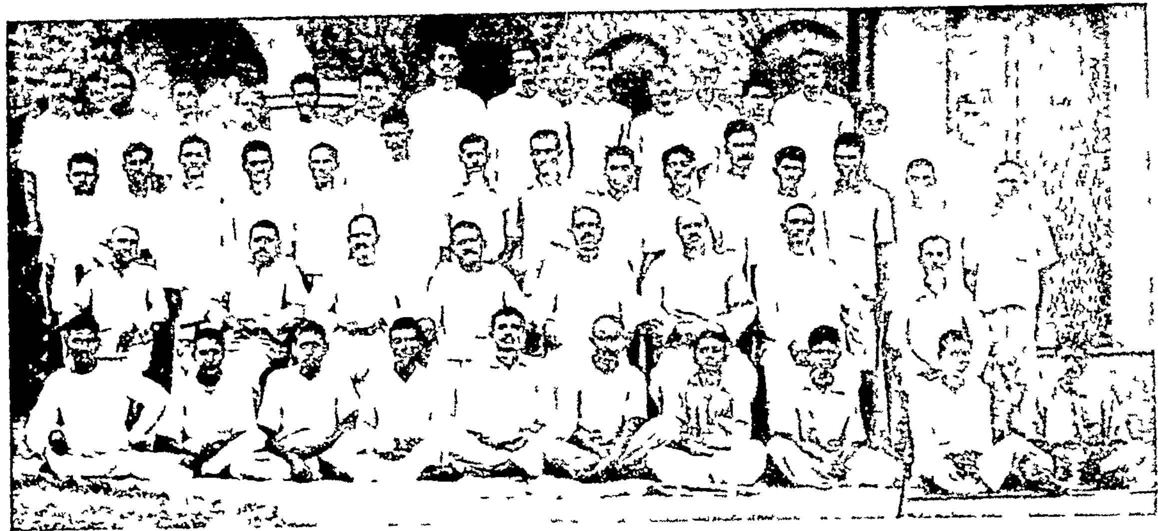
एक इसी घटना से मैं समझ गया कि व्यवसायी बन जाने के बाद भी आपके पास एक स्नेहार्द्र हृदय विद्यमान है, जिसके प्रभाव से शत्रु भी आपके मित्र बन जाते हैं। आज सोलह वर्षों के बाद भी जब मैं उस बात की याद करता हूँ, मुझे मालूम पड़ता है कि मेरा वह सोचना गलत नही था, और जो किसी समय आपके घोर विरोधी थे, वे आज आपके क्रीतदास बन रहे हैं।

प्रख्यात लेखकों और यशस्वी सुकवियो के ग्रन्थ छापने के लिये प्रकाशक भले ही बेचैन रहते हो, परन्तु हिन्दी मे आज कितने प्रकाशक ऐसे हैं जो अपने पत्रो मे 'बालको की कलम से', 'साहित्योद्यान के आशाकुसुम', 'भविष्य के उज्ज्वल सितारे' आदि स्तम्भ रखकर एवं भाँति-भाँति से उन बाल-लेखको को पुरस्कृत कर उनका उत्साह बढ़ाते हो ? मास्टर साहब ने अपने 'बालक' के जन्म-काल ही से साहित्य-क्षेत्र मे नवागंतुको का हौसला बढ़ाया है, वाणी और लेखनी ही से नही, बल्कि धन से भी नौजवान लेखको की मदद की है, और अपनी साहित्यिक पुस्तक-मालाओ मे मुफ्त नही, बल्कि पुरस्कार दे-देकर अधिकतर नये लेखकों की कृतियो को स्थान दिया है। नौकरी के लिये द्वार खटखटाने पर नही, बल्कि स्वयं बुला-बुलाकर साहित्यिक नवयुवको को अपने यहाँ रखने का आपको व्यसन-सा है। मुझे अच्छी तरह याद है कि सर्वप्रथम 'भंडार' में जाने पर आपने मुझसे भी वहाँ रहकर साहित्य-सेवा करने को कहा था, और मेरे यह कहने पर कि 'अभी मेरी इच्छा नौकरी करने की नहीं है', एक सच्चे हितैषी की तरह जरा व्यंग्य-पूर्ण शब्दो मे 'अमीर के लड़के पैतृक सम्पत्ति के रहते कुछ करना-धरना नहीं चाहते' कहकर मीठी भर्त्सना भी की थी। तब से लेकर आज तक, इन सोलह वर्षों के बीच में, जीवन मे अनेक ऐसे अवसर आये है, जब बिलकुल अपने लोगों ने गैरो से भी बढ़कर कटु व्यवहार किया है, मित्र कहलानेवालो ने शत्रुओ के भी कान काटे है, मुझे अक्सर आपके उस आग्रह की याद आई है, और मैने अपने-आपसे पूछा है कि इस द्वेष-पूर्ण संसार मे कितने ऐसे जीव है जो अपने भले के साथ-साथ दूसरो का भी भला चाहते हैं ? अनुभव से तो यही पता चला है कि अधिकांश संख्या उन्हीं महाशयो की है, जो अपनी एक पाई के लिये दूसरो के सोलह आने नष्ट करने मे भी आनाकानी नहीं करते। इतना ही नही, बल्कि अपनी एक आँख फोड़ देने की प्रार्थना भगवान् से इसलिये कर सकते है कि पड़ोसी की दोनो आँखे फूट जायँ। 'आप भी बनो और दूसरो को भी बनाओ' वाली नीति का पालन करनेवाले आप-जैसे महानुभाव इस संसार में इने-गिने हैं।

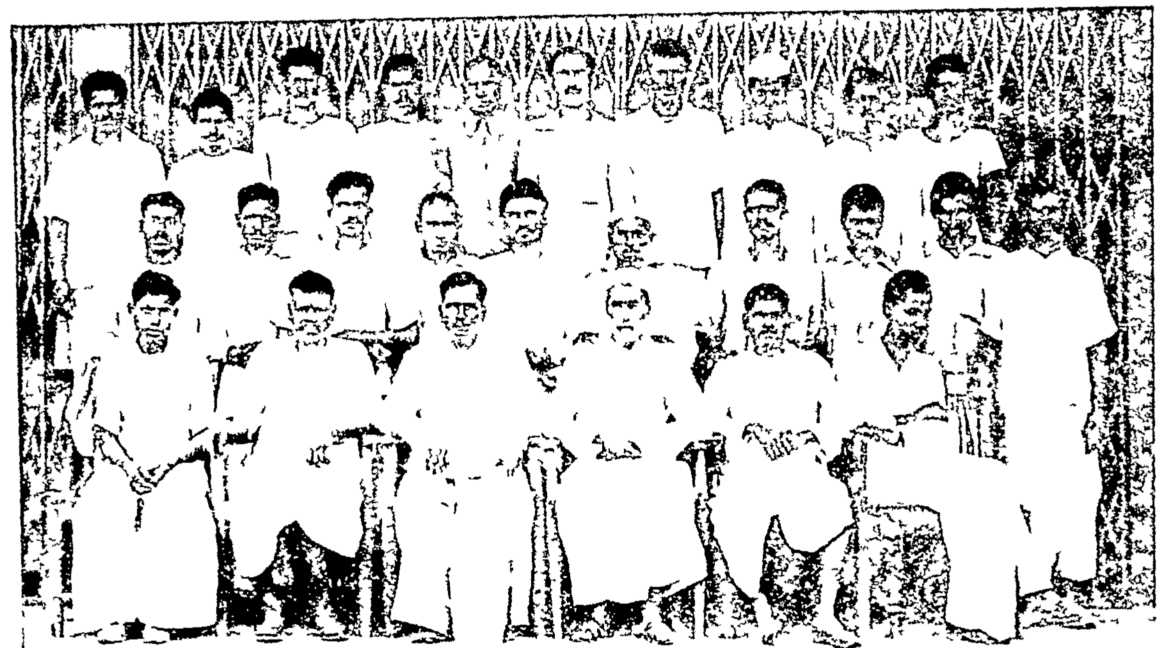
अब आइये, जरा चित्र के दूसरे रुख पर भी विचार किया जाय। महीना है आज से पूरे एक युग पहले सन् १९२९ के मई-जून का और स्थान विश्व-विख्यात नगर बम्बई की एक विशाल अट्टालिका के नौमंजिले पर। पाँच सुन्दर हवादार कमरे जिनमे क्रमशः मद्रासी मैनेजर और उसके सहायक कई क्लर्क, सह-कारी, संयुक्त और प्रधान सम्पादक; काम कम और बाते ज्यादा कर रहे है। सबसे आखिरी कमरे से, जहाँ पहुँचने के लिये पं० सुन्दरलाल और महात्मा

भगवान दीन को भी दिक्कते उठानी पड़ती है, इस सुन्दर स्टेज के संचालक अध्यक्ष महोदय एक स्प्रिंगदार कुर्सी पर आसीन हो मित्रो से गप लड़ाने मे व्यस्त है। कार्यालय मे कहाँ क्या हो रहा है, इसका उनको कुछ पता नही, शायद पता लगाने की चेष्टा भी नही करते। प्रेस से पत्र समय पर आया या नही, और अगर आया तो डिस्पैचिंग मे विलम्ब तो नही हो रहा, यह जानने की वे कोई जरूरत नही समझते। किस पुस्तक की कितनी प्रतियाँ बिकी और कितनी प्रेस ही से गायब हो गईं, इसका हिसाब ठीक रखने की आवश्यकता क्लर्क लोग क्यो महसूस करे जब ऊपर से कोई चेक करनेवाला ही नही है? हाँ, शाम होते-होते राग-रंग और भंग-भवानी की उपासना मे जरा भी कसर न हो, इसका पूरा प्रबन्ध है। संक्षेप मे नतीजा यह कि बीस हजार की विशाल पूँजी दो वर्षों मे समाप्तप्राय और प्रेस के बकाये मे सेठजी की मोटर जब्त! नरसिंह लॉजवाले दो-तीन सौ का बिल लिये अभी झख ही मार रहे हैं। यह आँखो-देखा सच्चा हाल है उस जाति के एक युवक का, जो मारवाड़ की रहनेवाली है और जिसके अधिकांश लाल एक लोटा-डोरी लेकर घर से निकल पड़ने एवं स्वयं अपने परिश्रम के बल पर झोपड़ो से अट्टालिका खड़ी कर लेने के लिये हिन्दुस्तान-भर मे मशहूर हैं। परन्तु उद्योगी जाति मे जन्म लेने ही से क्या, यदि हृदय मे सचाई और मस्तिष्क मे कुछ कर दिखाने की दृढ़ लगन के साथ-साथ रगो मे आत्म-विश्वास की निर्मल धारा न बहती हो! रंक से राजा हो जाने पर भी जिसने सादगी को अपना रक्खा हो, और जिसके दिल मे सतत कार्य-निरत रहने की दृढ़ भावना हो, उसके यहाँ से क्या लक्ष्मी कभी पलायन कर सकती है?

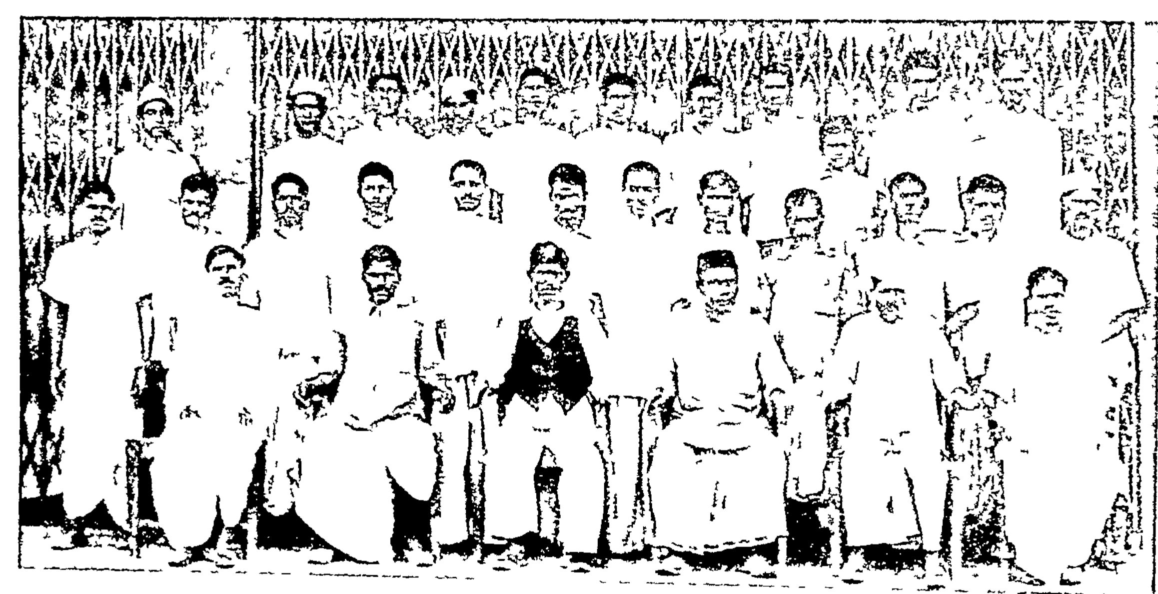
उपर्युक्त घटना से एक साल पहले—सन् १९२८ की बात है। किसी काम से लहेरियासराय जाने पर मै शायद तीसरी या चौथी बार 'भंडार' मे गया हुआ था। विद्यापति प्रेस की स्थापना हो चुकी थी। 'भंडार' का शांत वातावरण हड़हड़-खटखट की ध्वनि से गूँज रहा था। चार-पाँच साल पहले जो लाल कोठी खरीद की गई थी, शायद उसमे अँटाव न हो सकने के कारण, चहार-दीवारी से लगे हुए और भी कुछ मकान बन गये थे, जिनमे प्रेस से सम्बद्ध कार्य होते थे। मै किसी कार्य से नही, बल्कि मास्टर साहब से मिलने के लिये 'भंडार' गया था। एक साहित्यिक आदमी लहेरियासराय जाय और आपसे न मिले, यह तो गैरमुमकिन है। परन्तु आप सुनकर आश्चर्य करेगे कि इतनी बड़ी संस्था के अध्यक्ष से मिलने के लिये न तो मुझे किसी बरामदे या ड्राइंग-रूम की कुर्सियो पर झख मारना पड़ा और न किसी से यह पूछने की जरूरत हुई कि मास्टर साहब कहाँ है? प्रेस के बरामदे मे, द्वार के ठीक सामने, मिट्टी या ईंट के एक चौकीनुमा चबूतरे पर बैठे हुए



विद्यापति प्रेस के कम्पोजीटर ; बीच की पाँती मे कुर्सी पर बाईं ओर से दूसरे—पं० ठकन झा (फोरमैन)



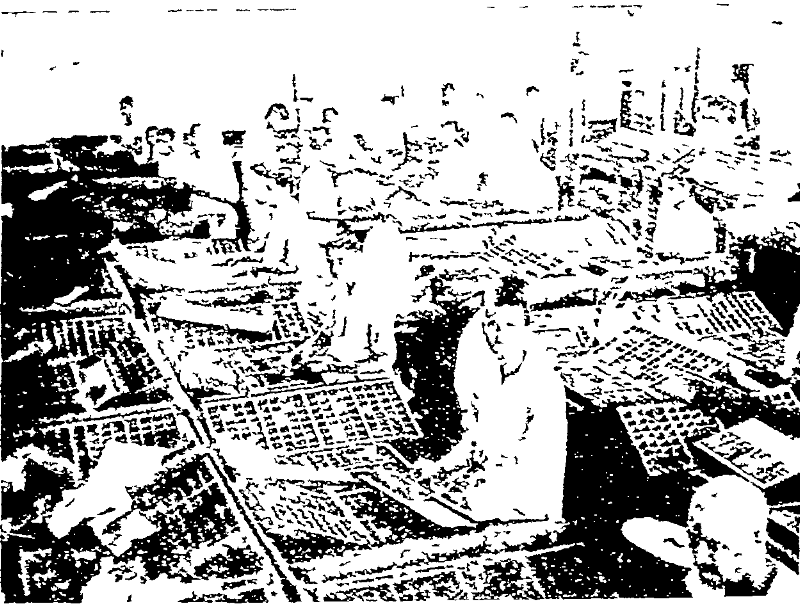
मशीन-विभाग—नीचे कुर्सी पर दाहिनी ओर से तीसरे—उस्ताद सैयद मनीरुद्दीन (दिल्ली-निवासी)



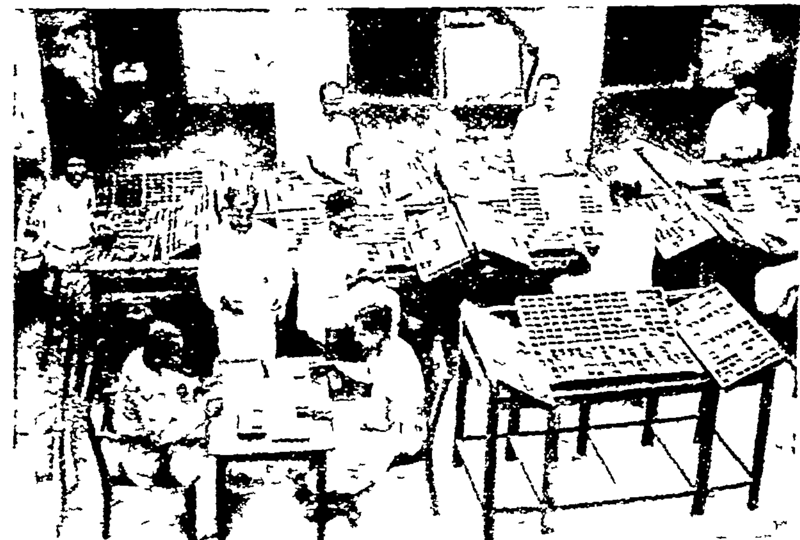
दफ्तरीखाने के कर्मचारी नीचे कुर्सी पर दाहिनी ओर से तीसरे हेड दफ्तरी ताजमुहम्मद



कम्पोजीटर काम क
हैं (हिन्दी-विभा



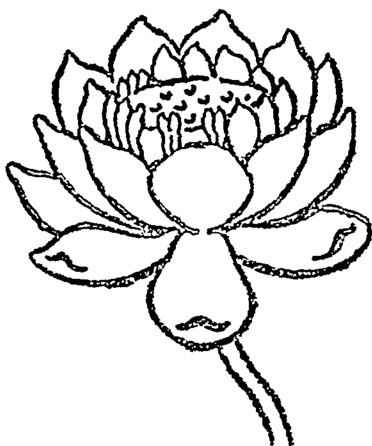
कम्पोजीटर काम कर रह
हैं—(अँगरेजी-विभाग)



बँगला-विभाग के कम्पो
जीटर—बाइ ओर कुर्सी
पर प० फणीन्द्र भा
(फोरमैन)

आप डाक के साथ-साथ अपनी पैनी दृष्टि से समूचे भंडार की देखरेख कर रहे है; वहाँ जाने के लिये आगंतुक को एक मामूली सीढ़ी पर भी चढ़ने की जरूरत नही होती। इस सादगी और निरभिमानता को देखकर मैं दंग रह गया। और, मैं ही क्या, जिसने आपको पहले-पहल देखा, उसके मुँह से सहसा यही निकल पड़ा कि क्या यही मास्टर साहब हैं ? मेरे मित्र श्रीश्यामधारीप्रसाद के मुँह से यह वाक्य उस समय निकला जब सन् १९२५ या २६ मे मुजफ्फरपुर मे बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा का सुविख्यात अधिवेशन (स्वर्गीय) लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व मे बड़ी धूमधाम से हो रहा था और मास्टर साहब अपनी नव-प्रकाशित 'पद्य-प्रसून', 'बिहारी-सतसई', 'विद्यापति की पदावली' आदि पुस्तको के साथ उस जलूसे मे आये हुए थे। मुझे ठीक याद है, आप अपने स्टाफ के साथ कल्याणी की ओर जा रहे थे और हमलोग मित्रवर (स्वर्गीय) राघवप्रसादसिंह 'महंथ' की दूकान पर खड़े थे। जब किसी ने कहा कि यही बाबू रामलोचनशरण है तब श्यामजी की नजर आपके कपड़ेवाले जूतो पर पड़ी और उन्होने तत्काल कहा कि कितना सीधा-सादा आदमी है यह !

आप सचमुच सादगी की मूर्त्ति हैं, यह मै निस्संकोच कह सकता हूँ, और यह एक बड़ा जबरदस्त गुण है। आप मिलनेवालो को चुम्बक की तरह अपनी ओर आकर्षित किये विना नही रह सकते। जिसके नौकर-चाकर कुर्सियो और गद्दियो पर बैठते हो, वह स्वयं एक मिट्टी के चबूतरे पर बैठकर अपना काम देखे, यह सादगी नहीं तो क्या है ?





बालसाहित्य के स्रष्टा

श्रीनन्दकिशोर लाल, मुख्तार, समस्तीपुर (दरभंगा)

लगभग इक्कीस वर्ष की बात है। मै दरभंगा मे 'मिथिलामिहिर' का सहकारी सम्पादक था। प्रधान सम्पादक थे वयोवृद्ध साहित्यसेवी पं० जनार्दन झा 'जनसीदन'। मैने पूज्य महात्मा गांधी का जीवन-चरित लिखा। पुस्तक की पांडुलिपि लेकर चला 'पुस्तक-भंडार' मे रामलोचनशरणजी के पास।

एक शांत, सौम्य, सरल मूर्त्ति—खुली हवा मे छोटी-सी चौकी पर विराजमान। सामने पुस्तको का ढेर लगा था। कागज पर तेजी से कलम दौड़ रही थी। पुष्प वृक्ष—शीतल, मद, सुगंध समीरण की हल्की थपकियाँ देकर—उस मूर्त्ति के प्रशस्त ललाट से श्रम-विन्दुओ को वाष्प की तरह विलीन कर रहे थे।

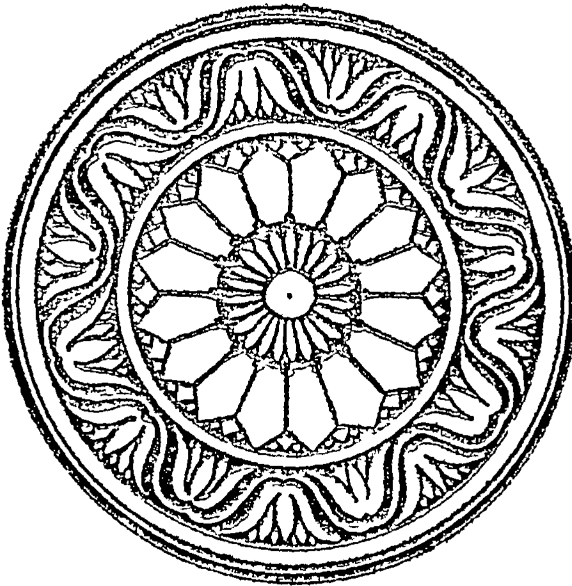
बाबू रामलोचनशरणजी बाल-साहित्य-निर्माण मे निमग्न थे। पं० जनार्दन झाजी ने उनसे मेरा परिचय कराया। मैने अपनी पुस्तक भेट की। फिर तो ऐसी साहित्य-चर्चा छिड़ी कि बहुत देर तक बाते होती रही। उनकी बातो मे सहृदयता तथा सरसता की वह अमृत-निर्झरिणी थी, जो हृदय मे नवजीवन का सचार कर रही थी।

उन्होने ही मुझे साहित्य-सेवा की ओर विशेष रूप से अग्रसर किया। उन्ही के प्रोत्साहन-प्रदान से हृदय मे शक्ति का संचार हुआ। उनके आदेशानुसार मैने समय-समय पर कई पुस्तके लिखकर प्रकाशनार्थ दी। फिर तो 'पुस्तक-भडार' से मेरा घना संबंध हो गया। मैं बहुधा वहाँ जाता और शरणजी से 'पुस्तक-भंडार' के प्रकाशन-विभाग की उन्नति के सम्बन्ध मे बाते होती। उसी समय उन्होने मुझसे 'बालक' मासिक पत्र तथा बालोपयोगी पौराणिक ग्रथ-माला

प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया था। कई बरस बाद 'बालक' प्रकाशित होकर लोगो का आनन्द बढ़ाने लगा; किन्तु पौराणिक ग्रंथ-माला के बदले 'सुन्दर-साहित्य-माला', 'चारु चरित-माला', 'बाल-मनोरंजन-माला', 'सुबोध काव्य-माला', 'नवयुवक-हृदय-हार', 'महिला-मनोरंजन-माला' आदि पुस्तक-मालाएँ निकलने लगी, जिनमे आज तक अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

बाबू रामलोचनशरण बड़े ही नम्र तथा मिलनसार हैं। साहित्य-सेवियों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते है, उनसे अपनापन का व्यवहार रखते है। बालको और युवको के प्रति आपका स्नेह अकृत्रिम है। स्नेह-सूचक 'तुम' कहकर ही उनका संबोधन करते हैं। जो एक बार आपसे मिला, आपका प्रशंसक हो गया।

आपने केवल स्वयं ही साहित्य-सेवा नहीं की है, बहुतेरो को साहित्य-सेवी बनाया है। आपकी साहित्य-सेवा के सम्बन्ध मे इतना ही कहना अलम् होगा कि हिन्दी मे बाल-साहित्य के स्रष्टा होने का गौरव आपको ही प्राप्त है। आपकी साहित्य-सेवा तथा व्यावसायिक कुशलता का सम्मिश्रित साक्षात् प्रमाण है—उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन आपका यशस्वी 'पुस्तक-भंडार'।





मेरे साहित्यिक द्रोणाचार्य

श्रीअनूपलाल मंडल 'साहित्यरत्न' (पूर्णिया)

मैं उसकी बात नही कहता, जिसने अपने स्वप्न को सार्थक करने का कभी हौसला नहीं किया, जिसने अपने पाँवो पर खड़ा हो अपने जीवन की रंगीनियो और विषमताओ के बीच जूझते-जूझते अपने-आपको नहीं ललकारा; बल्कि मैं तो उसकी कहा चाहता हूँ, जिसका जीवन दिन मे सौ-सौ बार मरने के लिये न होकर जीने के लिये रहा हो, जो जीता रहना इसलिये जरूरी समझता हो कि वह अपने स्वप्न को साकार रूप दे, जो साँस-साँस पर स्वतंत्रता का कड़वा-मीठा अनुभव करे, और जो जिये इसलिये कि अपनी आत्मा को निर्द्वन्द्व रख कर—किन्तु अपने मस्तिष्क और मन को द्वंद्व की उलझन मे डालकर—हँसता हुआ कह सके 'यही तो जीवन है .. ...यही तो जीवन है... ..... ।'

और, मै ऐसे जीवन का थोड़ा-सा अनुभव उस समय कर पाया था जिस समय मै अपनी एक अच्छी-सी नौकरी पर लात मारकर, अपने मित्रो के बीच उपेक्षित हो, उन बरसात के दिनो मे, रात मे आराम की नीद के लिये, अपनी खाट लिये घर मे घूम-घूमकर जगह की तलाश कर रहा था। घर का छप्पर छलनी हो रहा था। बारिश की झड़ी से घर मे पनाले बह निकले थे। मेरी सहधर्मिणी मुँह पर विषाद की छाया लिये कह रही थी—'आज यह गत न होती अगर आप नौकरी . .. ।'

शायद मेरी वह गलती थी। मैं सूखी हँसी हँसकर केवल उन्हे सन्तोष देने को कुछ कह उठता, पर तब मेरा ध्यान एक ही ओर जा लगा था—केवल एक ही दृष्टि-विन्दु पर आ टिका था—केवल एक ही लक्ष्य पर अँटका था, और

उस लक्ष्य को अपने दृष्टि-पथ पर डाल मेरे वे दिन कट रहे थे—और, मैं सोच रहा था—'जब एक वैसा कर सकता है, तब क्या दूसरा उसके पद-चिह्नो का अनुसरण नही कर सकता ? जो एक के लिये सुलभ हो सकता है वह दूसरे के लिये क्या सुलभ नहीं हो सकता ? वह धूनी रमानेवाला अपने कर्त्तव्य-पथ पर कठोरतापूर्वक अपने को ढो ले जाने मे समर्थ...... ..अपने सुदूर भविष्य की चिन्ता मे तल्लीन........अपने लक्ष्य की ओर सतत सचेष्ट—सतत उद्योग-रत, कॉटो को रौंदता हुआ बढ़ा जा रहा है—बढ़ा जा रहा है........यही मेरा आदर्श हो सकता है, यही मेरे लिये द्रोणाचार्य होगा, मैं इसीका एकलव्य बनूँगा........हॉ, एकलव्य !'

और, मैंने अपनी कल्पना में उसकी मूर्त्ति गढ़ी और देखा कि वह बड़ी धीर मुद्रा मे एकनिष्ठ योगी-जैसा समाधिस्थ है। मेरा मस्तक उस स्वनिर्मित मूर्त्ति के प्रति नत हुआ। मेरी अंतरात्मा कह उठी—'अवश्य इस तपोनिष्ठ साधक से, जो मेरी ऑखो के सामने उस मूर्त्ति में लक्षित हुआ, मेरी क्षुधा की तृप्ति होगी—अवश्य मेरी लालसा उसी के चरण तल मे जाकर फलवती हो सकेगी।

तबतक मेरी एक-दो पुस्तके प्रकाश मे आ चुकी थीं। मैं एक सफल प्रकाशक बनने का व्रती हो चुका था। मगर साधन-हीन, संबल-हीन !

मैं कई दिनो तक उधेड़बुन में पड़ा रहा। शायद एक अपरिचित व्यक्ति के पत्र का मूल्य उस महापुरुष के सामने तुच्छ होगा या नगण्य होकर ही रहेगा। फिर भी मैं ऐसा करने के लिये उल्लसित हो उठा। हृदय मे साहस भर कर पत्र तो भेज दिया; पर स्वयं कुछ लज्जित भी हुआ—कुछ भयभीत भी। सच पूछिये तो जान पड़ा जैसे मै अपने-आपको खोकर नि.स्व हो चुका हूँ। मैं पत्रोत्तर की प्रतीक्षा तो क्या करता, उलटे मन मे रह-रहकर एक वितृष्णा ही होती। ओह, पत्र भेजकर शायद मैंने कितनी बड़ी गलती कर दी।

पर नहीं; बड़ों का बड़प्पन! सहसा एक कार्ड मिला। मैं भयभीत हो उसे उठाकर पढ़ने लगा। परमात्मा को धन्यवाद ! भय की जगह एक आनन्द का स्रोत प्रवाहित हुआ। लिखा था—"आपके प्रयत्न की सराहना करता हूँ। मुझसे जो भी सहायता चाहेंगे, मिलेगी। एक बार आ जाइये तो अच्छा।" सचमुच उस दिन मेरी खुशी का ठिकाना न था। एक अपरिचित व्यक्ति के प्रति इतना स्नेह-सिक्त मधुर व्यवहार! और, उसी दिन मेरी अन्तरात्मा कह उठी—'अवश्य वह नर-रत्न है।' बस, मै उस नर-रत्न के दर्शनार्थ चल पड़ा।

उस दिन की स्मृति आज भी ताजी है। शायद वह आजीवन एकरस रहेगी। जान पड़ता है, जैसे मैं उनके सामने हूँ और वे मुझसे घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं। मैंने उस प्रथम दर्शन में पाया—एक निरा दिहाती, बिलकुल मामूली कपड़ों में, पुष्ट शरीर, उन्नत ललाट, घनी भँवें, बढ़ी हुई मूँछें, सिर पर छोटे-छोटे केश, आँखें पैनी—जैसे भीतर पहुँचकर कुछ ढूँढ़ रही हों, मुँह पर गंभीरता की अमिट छाप—जाने कितनी अगाध चिन्ता में रत हों। कौन कह सकता है—वे ही विहार को गौरवान्वित करनेवाले 'पुस्तक-भंडार' के स्वत्त्वाधिकारी रामलोचन-शरणजी (मास्टर साहब) हैं। मैं भी तो एक दिन मास्टर साहब था। 'मास्टर साहब' शब्द से जिस वेश-भूषा-भूषित व्यक्ति का चित्र मस्तिष्क पर आप-से-आप अंकित हो उठता है—सच पूछिये तो, इस 'मास्टर साहब' में उसका आभास-मात्र भी देखने को न मिला! पर, इतना तो सच है कि उस व्यक्तित्व के भीतर जो छिपा हुआ था, वह एक महापुरुष था—एक कर्त्तव्यनिष्ठ योगी था, और मैं निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर जाने कब तक निहारता रहा। मैंने अपनी कल्पना में एक दिन जिस मूर्त्ति का चित्र खींचा था, उस समय प्रतीत हुआ जैसे वह मूर्त्ति कितनी अधूरी हो, कितनी निष्प्राण। वास्तव और कल्पना—दो विभिन्न दिशाओं में।

ओह! कितना बड़ा स्नेह-घट लेकर बैठा है वह 'मास्टर साहब'। कामों की भीड़ लगी है, प्रूफ-संशोधन हो रहा है, पत्र डिक्टेट कराये जा रहे हैं, आगंतुकों से दो बातें हो रही हैं, कर्मचारियों को आदेश दिये जा रहे हैं। बीच-बीच में पांडु-लिपि भी तैयार हो रही है. . . . . . एक साथ ही सब-के-सब काम चल रहे हैं—अविराम गति से, जैसे क्षण-मात्र के लिये भी उन्हें अवकाश न हो! इतना कर्म-कोलाहल, मगर अपने काम में तन्मय। इतना कार्य-तत्पर!. .. और, इसी कार्य-व्यस्तता की अवस्था में मैं उनके सामने हूँ, वे कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं, मैं संकोच से तौल-तौलकर उत्तर दे रहा हूँ और, इतने ही कुछ वार्त्तालाप में मालूम हुआ, जैसे वे मेरे कितने अपने हैं—कितना मेरे प्रति, मेरे बाल-बच्चों के प्रति, मेरे घर-परिवार के प्रति अपनापन है उनके विशाल हृदय में—मैं कितना उनके निकट हूँ, वे मेरे कितने निकट हैं। इतनी सहानुभूति, इतना ममत्व, इतना अमायिक स्नेह! जी चाहा, कह दूँ—'बिना मोल को चेरो।' यद्यपि मैं मुँह खोलकर ऐसा न कह सका—वह शायद मेरी कमजोरी थी, पर आज भी प्रेरणा होती है—उसी तरह फिर कह दूँ—'बिना मोल का चेरो।' इतना स्नेह-रस छककर 'भला कब जी अघायगा—कब अघाया है?

कल्पना से अधिक उस व्यक्ति के स्नेह-सौजन्य को पाकर जहाँ मैने अपने को धन्य माना, वहाँ मेरा दुर्भाग्य सदैव मुझपर विद्रूप की हँसी हँसता रहा—आज भी वह उसी तरह हँस रहा है। पर मेरे सिवा उससे और कौन निबटेगा! संघर्ष चल रहा है। मै उसके बीच से लड़ता-भिड़ता हुआ कभी दम लेने को ठहर जाता हूँ—और तब, मेरा ध्यान फिर एक बार वहाँ जाकर टिक जाता है, जहाँ मेरे लिये एक आश्वासन है, एक आश्रय है, एक सहारा है।

और, मैने अनुभव किया है कि वह स्नेह न केवल मेरे लिये ही अलम् है, वरन् मै निकट से जानता हूँ कि बिहार के साहित्यिको मे से शायद ही दो-एक ऐसे हो, जिन्हे उनसे मिलने का—उनसे स्नेह पाने का—अवसर हाथ न लगा हो। साहित्यिको और कलाकारो के प्रति उस व्यक्ति मे कितना अधिक आदर है—कितना अधिक स्नेह!

और, मैने उस स्नेह को मनोवैज्ञानिक सत्यता की कसौटी पर कसकर पाया कि बचपन की धन-हीनता के बीच पलकर—बढ़कर जो लघुता उनके अंतर को उद्वेलित करती रही, उसने उनकी यौवनोचित कर्मठता को उभाड़ा, उससे उनके पौरुष को बल मिला। उनके मन मे उस लघुता के प्रति विक्षोभ हुआ—उसकी प्रति-क्रिया उत्पन्न हुई और उस प्रति-क्रिया के फल-स्वरूप उनकी अन्तश्चेतना मे स्फुरण हुआ, जो स्फुरण हमारे सामने स्नेह-दान के रूप मे प्रत्यक्ष हो उठा। उन्हे गरीबी का स्वयं अनुभव है, अतएव उसके प्रति उनके हृदय मे हाहाकार भी है। लोग कहते है—वे एक कुशल व्यवसायी है; मै भी मानता हूँ कि वे एक कुशल व्यवसायी हैं, पर पहले वे मनुष्य है—पीछे और कुछ! यदि वे मनुष्य न होते, तो व्यवसायी बनकर लक्ष्मीवान् हो सकते थे, दयावान् नहीं।

'पुस्तक-भंडार' उनकी अखंड कर्मठता का प्रतीक है। वह उनका विशाल यशस्तम्भ है। वह उनकी अपनी अर्जित सम्पत्ति तो है; पर उनकी अपनी कुछ नहीं—मेरी है, आपकी है, सबकी है। वह निरक्षर को साक्षर, साक्षर को कलम पकड़नेवाला और कलम पकड़नेवाले को कलाकार बनाता है। आज न जाने कितनो को उससे सहायता मिलती है—जीविका मिलती है। साहित्यिक उद्योग में केवल वह अकेला बिहार की जितनी सेवा कर सका है, उतनी अन्य सब प्रकाशन-संस्थाएँ मिलकर भी न कर पाई। अतएव, रामलोचनशरणजी पर बिहार का गर्व करना स्वाभाविक है।

आज, जब उनके 'भंडार' की रजत-जयन्ती और उनकी अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही हैं, मै उनके चरणों पर अपनी श्रद्धा के दो पुष्प अर्पित करने मे असीम आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ—इसलिये कि उन चरणो के

चिह्न मेरे जीवन के लिये माइल-स्टोन है। भले ही अपने 'गोल' तक न पहुँच सकूँ, पर मुझे अत्यधिक आनन्द केवल इस बात के लिये है कि मेरा 'आदर्श' आदर्श रहा। और, मेरी कामना है कि वह आदर्श दिनानुदिन उन्नत हो, सघन हो, विशाल हो—और कुछ नही तो, उसकी सघन छाया मे जीवन-पथ के थके पथिको को दो घड़ी साँस लेने का तो आसरा रहे।





स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य एक नाम

पंडित रामप्रीत शर्मा 'प्रियतम', 'विशारद', नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा

मास्टर साहब का नाम हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा। आपने 'भंडार' और 'बालक' के द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह समस्त देश के लिये आदरणीय और अनुकरणीय है। इस देश मे और भी सफल प्रकाशक है; परन्तु हृदय की विशालता और सौजन्य मे आपने सबसे बाजी मार ली है। मुझे तो आपका प्रत्यक्ष परिचय सन् १९३६ के जून महीने मे मिला।

आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से कविवर 'हरिऔध' जी को जो अभिनन्दन-ग्रन्थ दिया गया मै उसका संयोजक और उसके सम्पादक-मंडल का सदस्य था। खड्गविलास प्रेस ने ग्रन्थ छापने का भार अपने ऊपर लिया था। छपाई और प्रकाशन के विषय मे मतभेद होने के कारण उस पुनीत अनुष्ठान मे भयंकर रुकावट आ पड़ी। मैं हताश होकर बॉकीपुर से लौटा आ रहा था। अकस्मात् मास्टर साहब के दर्शन हुए।

मेरी उदासी का कारण जानने पर आपने दृढ़ विश्वास दिलाते हुए कहा—"भंडार साहित्यिक तपस्वियो की सेवा और पूजा के लिये ही है। मै व्यापारी नही, साहित्य का एक सेवक हूँ। सभा का अनुष्ठान बिहार का गौरव-वर्द्धक है। मै आपको एक हजार पृष्ठो का सर्वाङ्गसुन्दर ग्रन्थ एक महीने मे छापकर दे दूँगा।"

आपके उस आश्वासन ने मुझे आनन्द-विभोर कर दिया। अंततोगत्वा ग्रन्थ तो खड्गविलास प्रेस मे ही छपा, परन्तु चित्रो के अधिकांश ब्लाक 'भंडार' से ही मिले। इसके लिये मै ही नही, सभा भी चिर-आभारी है। जिनलोगो का आपसे व्यवहार होता है, वे आपके आत्मीय बन जाते है। आपके साथ अध्यापको, लेखको और बुक्सेलरो की चिर-अभिन्नता ही आपके सौजन्य की कसौटी है। आपके द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो सेवा हुई है, वह निस्संदेह स्वर्णाक्षरो मे लिखी जायगी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे आपका नाम तबतक स्वर्णाक्षरो मे चमकता रहेगा, जबतक इस देश मे हिन्दी-भाषा का अस्तित्व रहेगा।



बिहार का विद्यापीठ—'पुस्तक-भंडार'

श्रीजयनारायण झा 'विनीत', समस्तीपुर (दरभंगा)

'भंडार' की रजत-जयन्ती हिन्दी-साहित्य के सुन्दर भविष्य की ओर संकेत है। हिन्दी-संसार में अपने ढंग का यह पहला उत्सव है। हिन्दी-प्रेमियो को तो इसका गौरव होना चाहिये। यो तो समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तो को गौरव का अनुभव होगा, लेकिन विशेषत. बिहार और उसमे भी दरभंगा जिले को अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये।

जिस जिले को बच्चो की भी पाठ्य पुस्तिकाओ के लिये परमुखापेक्षी रहना पड़ता था, उसी जिले के 'पुस्तक-भंडार' ने समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तो मे बच्चो से लेकर वयस्को और वृद्धो तक के लिये सुपाठ्य पुस्तके प्रसारित कर दी। ऐसे प्रकाशन-भवन 'भंडार' पर उस जिले को गर्व क्यो न हो ?

बाल से वृद्ध तक—सभी श्रेणियो के लोगो के लिये, पठनीय पुस्तको का प्रकाशन कर 'भंडार' ने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर ली है। पुस्तक-प्रकाशन मे उसने बालक-बालिका, युवक-युवती, स्त्री-पुरुष सबकी आवश्यकताओ और रुचियो का ध्यान रक्खा है। दर्शन-शास्त्रो से लेकर कथा-कहानियो तक की पुस्तके प्रकाशित कर 'भडार' ने रुचि-वैविध्य का पूर्ण रूप से पोषण किया है।

'भंडार' ने हिन्दी की सेवा तो पूर्ण रूप से की ही है, मिथिला और मैथिली की भी आराधना मे पूर्ण मनोयोग दिया है। दीप्तिमान् देवता को तो सभी पूजते है। सच्चा साधक पुजारी तो वह है जो उपेक्षित और अज्ञात देवता को अपनी पूजा एव साधना के बल से उद्दीप्त रूप मे संसार के सामने प्रकट कर दे। मैथिली का अमर उपन्यास 'कन्यादान' और मिथिलाक्षर के टाइप 'भडार' की अमूल्य देन है, जिसके लिये मैथिल-मात्र को उसका कृतज्ञ रहना चाहिये।

'भंडार' देह है, 'मास्टर साहब' उसके प्राण। इस उत्तरोत्तर विशाल होनेवाले 'भंडार'-रूपी वट-वृक्ष को अंकुरित अवस्था मे भी मैने देखा है। जिन्होने बीज-वपन कर उसे आजतक अपने श्रमकणो से सींच-सींच इस रूप मे सफल कर दिया है, वे निश्चय ही धन्य है। 'भंडार' के अणु-अणु मे उनके प्रयास का आभास है। वे कर्मठ योगी है। प्रतिकूल वातावरण को भी अनुकूल बना लेने की उनमे अद्भुत क्षमता है। अनुकूल और प्रतिकूल, सभी परिस्थितियो मे वे एक-सी लगन से अपना मार्ग-निर्माण करते हुए चलनेवाले व्यक्तियों मे है।

जिनलोगो ने 'भंडार' के आरम्भिक जीवन से आज तक की स्थिति को समीप से देखा है, वे इस बात को अच्छी तरह जानते है कि 'भंडार' पर विभिन्न समयो मे, विभिन्न दिशाओ से, विभिन्न प्रकार की, आपत्तियाँ आती रही है, फिर भी उन सबका धैर्यपूर्वक निवारण करते हुए वे 'भंडार' को उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर किये जा रहे हैं। वे मितभाषी और मिष्टभाषी स्वभाव के व्यक्ति है। पात्रानुसार स्वागत-सत्कार करने का भी उन्हे अच्छा अभ्यास है। हिन्दी के अनेक लेखको और कवियो ने उनसे पूर्ण प्रोत्साहन पाया है। आशा है, आगे भी पाते रहेगे।

उनका ध्यान सुन्दर साहित्य को सुन्दर ढँग से मुद्रित और प्रकाशित करने की ओर सदा रहता है। इस प्रान्त मे विशिष्ट श्रेणी के साहित्य का सृजन करने का श्रेय उन्ही को है। उनका 'पुस्तक-भंडार' निस्सन्देह बिहार का विद्यापीठ है।





बिहार के गौरव 'मास्टर साहब'

श्रीहरेश्वरदत्त 'मिमिकमैन', एम० ए०, बी० एल०; छपरा

यों तो बचपन से ही मैं 'भंडार' और शरणजी का नाम सुनता आ रहा हूँ, पर जब कभी मैं लहेरियासराय गया हूँ, 'भंडार' के कर्मचारियों से मिलकर प्रसन्न ही नहीं, वरन् उनके सराहनीय अतिथि-सत्कार से चकित भी हुआ हूँ। वहाँ की प्रकाशित उपयोगी पुस्तकें सिर्फ आलमारियों में सजी देखकर ही नहीं लौटा हूँ, वरन् उनमें से बहुत-सी उपहार-स्वरूप मेरे घर भी आई हैं। हिन्दी-साहित्य की सेवा करने में 'भंडार' बिहार का एकमात्र सफल प्रकाशन-गृह है। समस्त भारत में इसका आदरणीय स्थान है।

'बालक' की ख्याति केवल अखिल भारतीय ही नहीं, अन्ताराष्ट्रिय भी है। प्रवासी भारतीयों के प्रकाशित लेख इसके प्रमाण हैं। बालकों की ज्ञानवृद्धि और उनमें साहित्यिक सुरुचि उत्पन्न करने तथा उन्हें लेख लिखने का प्रोत्साहन देने में 'बालक' सर्वदा प्रयत्नशील है। बाल-साहित्य-निर्माण का कार्य इसके द्वारा सही और सच्चे ढंग से हो रहा है। इसमें मेरी बहन शकुन्तला, भतीजी इन्दुमती और भतीजा कमलेशकुमार के लेखों को सम्पादकजी ने कृपापूर्वक बराबर स्थान दिया है। अपने लेखों के बल पर मैं भी कई बार सम्पादकजी से लँगड़ा आम और लीची वसूल कर चुका हूँ।

'भंडार' की पुस्तकों की छपाई बड़ी ही अप-टु-डेट है। 'बालक' की छपाई भी प्रशंसनीय होती है। चित्र बड़े सुरुचिपूर्ण निकलते हैं इसका श्रेय प्रसिद्ध कलाकार भाई उपेन्द्र महारथीजी को है।

मास्टर साहब बिहार के साहित्य-गगन के चमकते तारा हैं। स्वयं साहित्यिक होने के कारण, व्यापारी होते हुए भी, लेखकों और कवियों के साथ उनका व्यवहार और सम्बन्ध बड़ा मधुर और घनिष्ठ है। मैं तो उन्हें सर्वदा सहृदय पाता रहा हूँ। उन्होंने अपनी साहित्य-सेवा से बिहार को गौरवान्वित किया है। वे सच्चे अर्थ में बिहार के गौरव हैं।



साहित्यिकों का मातृमन्दिर

श्रीश्यामधारीप्रसाद 'साहित्यभूषण'; कुढ़नी (मुजफ्फरपुर)

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सातवें अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये मै मुजफ्फरपुर से साहित्यिक मित्रो के साथ दरभंगा चला। रास्ते ही मे मुजफ्फरपुर के कहानी-लेखक भाई कमलदेव नारायण बी. एल. ने अपने यहाॅ ठहरने का आग्रह किया। मैंने भी प्रतिनिधि-निवास से उन्ही के यहाॅ रहना अच्छा समझा। अतः स्टेशन से, अपने पूज्य अग्रज बाबू रामधारीप्रसादजी के साथ, सीधे कमलदेव बाबू के पास पहुॅचा। सामान अभी उतर ही रहा था कि एक दूसरी पालकी-गाड़ी आकर खड़ी हुई। उससे एक गौर-वर्ण सज्जन उतर-कर मेरे निकट आये। मैं उन्हे पहचानता न था। किन्तु उन्होने चिर-परिचित की भाॅति मुझसे यहाॅ उतरने का कारण पूछा। मै अवाक् खड़ा था। इतने ही मे कमलदेव बाबू बाहर निकले। उनको 'मास्टर साहब' के नाम से सम्बोधित कर प्रणाम किया।

भाई बेनीपुरीजी से 'भंडार' के सर्वस्व शरणजी के सम्बन्ध मे बहुत-कुछ सुन चुका था। यह भी जानता था कि शरणजी को लोग 'मास्टर साहब' ही कहते है। मै उनकी विनम्रता देख बड़ा विस्मित हुआ। मन-ही-मन सोचा—'विद्या ददाति विनयम्' को चरितार्थ करने ही के लिये क्या 'मास्टर साहब' की सृष्टि हुई है ?

मैं चुप खड़ा अभी सोच ही रहा था कि मास्टर साहब ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। मुझे 'भंडार' मे चलने के लिये कहा। साथ ही, मेरा सामान अपनी गाड़ी पर लदवाने लगे। मै भी चुपचाप गाड़ी पर सवार हो 'भंडार'

पहुँचा। मेरे वहाँ पहुँचने के पूर्व ही से श्रीराघवप्रसाद सिह 'महंथ' (स्वर्गीय) तथा अन्य कई परिचित साहित्यिक मित्र 'भंडार' के अतिथि हो चुके थे। मैं भी उसी दल मे शामिल हो गया। सम्मेलन के अधिवेशन तक मै वहीं रहा। मास्टर साहब की सहृदयता की बदौलत मुझे बोध ही नही हुआ कि घर छोड़कर कहीं अन्यत्र आया हूँ। मै उनकी मधुर स्मृति लिये घर लौटा। वास्तव मे उनका 'भंडार' साहित्य-सेवियो के लिये अतुलनीय अतिथिशाला है।

मुझ जैसे नगण्य व्यक्ति को भी आज तक वे भूल न सके। जब-जब 'बालक' का कोई विशेषाङ्क निकालने की योजना हुई, मुझसे जरूर कोई-न-कोई लेख या कविता माँगी गई। मेरे आलस्य करने पर तकाजे का ताँता लग गया।

भाई बेनीपुरीजी से जब उन्हे मालूम हुआ कि मेरी स्वर्गीया पत्नी ने 'सावित्री' नामक पुस्तक लिखी तब बड़े ही आग्रह के साथ उन्होने बेनीपुरीजी को भेजकर पाण्डु-लिपि मँगवाई—'भंडार' से उसे प्रकाशित किया।

इसी तरह उन्होने सदा बिहार के नव-युवक कवियो और लेखको की पुस्तके प्रकाशित कर होनहार साहित्यसेवियो को उत्साह-दानपूर्वक आगे बढ़ाया है। उनका 'भंडार' सचमुच इस प्रान्त के साहित्यिको के लिये अनुपम मातृमन्दिर है।





बिहार के 'गिजू भाई' *

श्रीसूर्यदेवनारायण श्रीवास्तव; समस्तीपुर (दरभंगा)

"बिहार के किस जिले से आ रहे हैं आप ?"—नैपाल-रेलवे के आखिरी स्टेशन 'अमलेखगंज' मे एक नैपाली सज्जन ने पूछा।

"दरभंगा जिले से।"

"लहेरियासराय तो दरभंगा जिले मे ही है न ?"

"हाँ, आप लहेरियासराय को कैसे जानते है ?"

"जहाँ बाबू रामलोचनशरण है और जहाँ पर उनका 'पुस्तक-भंडार' है, भला उस जगह को कोई क्यो न जाने ?"

"आप उन्हे कैसे जानते है ?"—मै मुस्कुरा रहा था।

"वाह साहब, जिन्होने बालकों के लिये सैकड़ो किताबे लिखी—बालको को समझाने के कितने नये-नये तरीके निकाले, जिनकी किताबे बालको के दिल मे घर कर लेती हैं, जो हिन्दी-भाषी प्रान्तो के लिये स्वनामधन्य गिजू भाई हो रहे हैं, भला उन्हे हम न जाने, यह आप कैसी बाते कर रहे है ?"

मै चुपचाप सुन रहा था।

"देखिये इधर।"—मैने उधर देखा।

उन्होने जेब से 'मनोहर पोथी' निकाली—"यह एक छोटी-सी किताब बच्चो को अक्षर ज्ञान कराने के लिये लिखी गई है। लेकिन इसकी विधि को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। बच्चे इतना जल्द सब-कुछ सीख लेते है कि वाह! इसके बाद इस तरह की चाहे जितनी भी किताबे निकली हो; किन्तु इस

* स्वर्गीय गिजू भाई गुजराती भाषा में बाल-साहित्य के स्रष्टा थे।—ले०

प्रणाली के आविष्कारक महोदय के दिमाग की तारीफ करनी ही पड़ती है। मैंने बाल-साहित्य की बहुत-सी पुस्तके देखी है। प्रश्नोत्तर-विधि (Socrate's method) आगमनात्मक विधि (Inductive method) पर अनेक किताबे लिखी पड़ी है, लेकिन मेरा विश्वास है, इन दोनो विधियो को उन्होने जितना साफ समझा और समझाया है, कम लोगों ने उतना समझा होगा। प्रश्न और उत्तर के बल पर इतनी सरलता से वे बच्चो को कठिन-से-कठिन चीजे समझा देते है कि तबीयत बाग-बाग हो जाती है। उनके दृष्टान्त इतने पक्के होते हैं और उन दृष्टान्तो से नियम इतने शीघ्र निकल आते है कि बालको को याद रखने के लिये तनिक भी दिमाग पर जोर लगाना नही पड़ता। हिसाब और व्याकरण-जैसे नीरस विषयो मे भी सरलता और सरसता लाना, इनके विश्लेषण और स्पष्टीकरण की कला को जानना—उन्ही का काम है। मेरा अपना तजरबा है, मैंने उनकी जितनी भी पुस्तके पढ़ी है, उसके बल पर कह सकता हूँ, उनके ऐसा बाल-साहित्य के निर्माता उँगलियो पर गिनने लायक है।"

"आप कही शिक्षक है क्या ?"—इतनी बाते सुनकर मैंने पूछा।

"हॉ साहब"—वे चमक उठे, जैसे मैंने उनके गौरव की कोई बात कही हो—"किन्तु आपने कैसे समझा कि मै शिक्षक हूँ ?"

"शिक्षक की बाते शिक्षक खूब समझते है।"

"अच्छा, आप भी शिक्षक है ? कहॉ ?"

"मुजफ्फरपुर के एक हाइ-स्कूल मे।"

"खूब! हॉ, तो नैपाली बालको मे हिन्दी का प्रचार ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। पर मै किसी स्कूल का नौकर नही। बस, इधर-उधर डोलते फिरकर जहॉ भी हिन्दी का सर्वथा अभाव है वहॉ हिन्दी की ओर बालको का प्रेम बढ़ाना ही मेरा काम है। इसके साधन भी रामलोचनशरणजी की पुस्तके ही है।"

इसी समय उनकी लॉरी ने खुलने का पहला भोपू बजाया।

"हॉ साहब, आपने तो उन्हे देखा होगा, कैसे है वे ? सुना है, अब वे बहुत बड़े आदमी हो गये है, बहुत बड़ा भवन बनवाया है, मोटर मे चलते हैं, नौकर-चाकर आगे-पीछे लगे रहते है। जाकर एक बार दर्शन करने की अभिलाषा है। सबसे मिलते है ?"

"आपने कहॉ सुनी ये बाते ?"—मुझे हॅसी आ गई—"आप लहेरियासराय स्टेशन पर उतरकर पहुँचिये सीधे 'पुस्तक-भंडार'। हॉ, 'भडार' की बडी इमारत है अवश्य। अदर जाइये। एक ओर पोस्ट-ऑफिस मिलेगा, फिर प्रेस, जिसमे सौ से ज्यादा आदमी काम करते हैं। दूसरी ओर आप देखेगे 'भडार' का कार्या-

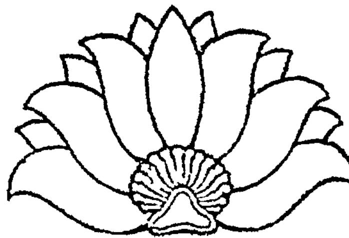
लय। अनेक कमरे, टेबुल-कुर्सियाँ, बिजली-बत्ती, बिजली के पंखे, टेलीफोन और बड़ी-बड़ी तनख्वाह पानेवाले बाबू। कार्यालय के पास ही एक कमरा मिलेगा। मोटे कम्बल पर तीन-चार छोटे बालकों को बहलाते, उनसे हँसते-बोलते और इसी बीच कर्मचारियों को बुला-बुलाकर काम भी समझाते हुए एक अधेड़ सज्जन मिलेंगे। बाल खिचड़ी, कुछ दाँत टूटे, कभी खाली देह, कभी मामूली कुरता, हँसती आँखें, खिले चेहरे पर कांति, सादा भेष और उच्च विचार का प्रतीक अगर आपको कोई मिले, तो आप समझ लीजिये कि आपने मास्टर साहब को पा लिया।"

"मास्टर साहब को?" वे चौंके।

"अरे हाँ, श्रीरामलोचनशरणजी को सभी 'मास्टर साहब' ही कहते हैं। आप पहले मास्टर साहब थे न। हाँ, तो आप समझ लीजिये, आपने उनको पा लिया। आप प्रणाम कीजिये। वे दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करेंगे। पास बिठाकर कुशल-समाचार पूछेंगे। कुछ ही मिनटों के बाद आपको जान पड़ेगा जैसे आप दोनों का परिचय बरसों का है। 'वे बड़े आदमी हो गये हैं, मोटर पर चलते हैं, नौकर-चाकर लगे रहते हैं'—ये सब बातें किसने कह दीं आपसे? उनके मोटर नहीं है, उनके लिये एक भी खास नौकर नहीं है। जितने भी नौकर हैं, सभी 'भंडार' के लिये हैं, जिन्हें वे पंद्रह सौ रुपये प्रति मास वेतन देते हैं। जनाब, आवश्यकता पड़ने पर आपके लिये वे स्वयं गिलास में पानी लावेंगे। इतनी सादगी है उनमें, इतना अपनापन है।"

उस नैपाली सज्जन की आँखें भर आईं। वे कुछ कहना ही चाहते थे कि लॉरी का आखिरी भोंपू बज उठा।

"मैं उनके दर्शन शीघ्र ही करूँगा।"—कहते हुए वे चल पड़े।





मेरे साहित्यिक गुरु

श्रीवागीश्वर झा, बी० ए० (ऑनर्स), भागलपुर

लगभग बारह वर्ष पहले की बात है। मै सिर्फ नौ वर्ष का बालक था। पढ़ता था अपने गॉव के मिडूल-इंगलिश-स्कूल की पॉचवी श्रेणी मे। पूज्य पिताजी (श्रीजगदीश झा 'विमल') 'ई० आइ० आर०-स्कूल' (जमालपुर) मे अध्यापक थे। प्राय प्रत्येक छुट्टी मे वे घर आया करते और मेरे लिये कुछ-न-कुछ ले आया करते थे।

एक बार उन्होने 'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित 'बालक' की एक प्रति मुझे देते हुए कहा—"यही तुम्हारा सच्चा गुरु होगा, जो तुमको बिना दंड दिये निर्मल ज्ञान प्रदान करेगा। तुम ध्यान से इसको पढ़ो और जुगाकर रक्खो। हर महीने मे इससे नई-नई बातो की जानकारी होगी।"

मै 'बालक' पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। पहले उसके सुन्दर चित्रो को देख गया। फिर छोटे-छोटे ज्ञान-वर्द्धक गद्य-पद्यमय लेखो को पढ़ गया। बड़ा आनन्द मिला। कई नई बाते मालूम हुई।

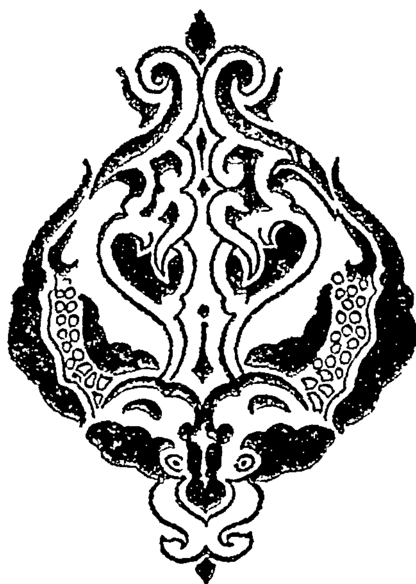
पिताजी प्रति मास 'बालक' लाकर मुझे देने लगे। कभी-कभी प्रश्नो द्वारा मेरी जॉच भी करने लगे कि मैं सचमुच 'बालक' से कुछ सीखता हूँ या नही। यह क्रम बरसो चला।

'बालक' के अतिरिक्त 'भडार' से नई प्रकाशित साहित्यिक पुस्तके भी पिताजी के पास आती थीं। मै उन्हे भी ध्यान से पढ़ जाता था। इस प्रकार मेरे मन मे साहित्यिक पुस्तको के पढ़ने की अभिरुचि 'बालक' पढ़ने से ही पैदा हुई। अब तो 'बालक' अपना आकार-प्रकार बदलकर विशेष उन्नतावस्था मे निकल रहा है।

'बालक'-सम्पादक श्रीशरणजी के दर्शनों का सौभाग्य यद्यपि आजतक मुझे प्राप्त नहीं हुआ है, तथापि उनके प्रति हृदय में बचपन से ही श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होकर उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती जा रही है। इसका प्रधान कारण यह है कि बचपन से ही उनकी लिखी हुई सुन्दर पुस्तके, स्कूल से कालेज तक, पढ़ता आ रहा हूँ। उनपर और उनके 'भंडार' पर हम बिहारियो को गर्व है, क्योकि उन्होने अपने साहित्यिक सत्कार्य से बिहार का मस्तक ऊँचा किया है।

मैं, कानून का विद्यार्थी होकर भी, 'भंडार' द्वारा प्रकाशित नई साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने के लिये, सदा लालायित रहता हूँ; क्योकि प्रायः वहाँ से बेजोड़ पुस्तके निकला करती है।

मै कोई लेखक या कवि नहीं हूँ, किन्तु साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने की रुचि किसी साहित्यिक से कम नहीं है। यह प्रवृत्ति 'बालक' पढ़ते रहने से ही हुई है। इसलिये मै 'बालक'-सम्पादक को अपना साहित्यिक गुरु मानता हूँ।





'भंडार' के नाम एक खुला पत्र

श्रीकमलदेवनारायण, बी० ए०, बी० एल०; मुजफ्फरपुर

बालसखा 'भंडार'।

तुम्हारे संस्थापक 'मास्टर साहब' स्कूल मे तो मुझे पढ़ाते ही थे, घर पर भी 'ट्यूशन' पढ़ाते थे। मेरे हमजोलियो मे 'कामता', 'शालग्राम' और 'गुलजार' थे। प्राय संध्या समय हमलोग ट्यूशन पढने जाते थे। तुम्हारे वर्त्तमान घर से उत्तर गुलजार का डेरा था। उसी मे एक तरफ 'मास्टर साहब' रहते थे। हमलोगों के पढ़ाने के बाद वे भोजन करते। फिर लिखने बैठ जाते थे। प्राय. एक-दो बजे रात तक बैठे लिखा करते। पहले की लिखी उनकी कितनी ही किताबे उनके एक मित्र बाबू शिवनन्दनसहाय के नाम से प्रकाशित हुई। लेकिन थोड़े ही दिनो के बाद उनका ध्यान मौलिक पुस्तके लिखने की ओर गया।

बात यह हुई कि स्कूल मे पंडित भूषण सिह हिन्दी के विद्वान् समझे जाते थे। परन्तु मास्टर साहब ने आते ही उनसे मैदान ले लिया। जो भी विद्यार्थी हिन्दी सीखने के लिये उनसे जितना काम ले, उसपर वे उतना ही ज्यादा खुश रहते। हिन्दी-प्रचार करते-करते उनको एक सुलभ व्याकरण का अभाव खटका। तब 'डिरेक्ट मेथड' (Direct method) पर व्याकरण लिखने का विचार किया। 'अपर-व्याकरण-बोध' लिखना आरम्भ कर दिया। रात को लिखते और दिन को पढा देते थे। आसानी से विद्यार्थियो को व्याकरण का अच्छा ज्ञान हो गया। साथ-ही-साथ 'पत्र-चन्द्रिका' तथा एक और कोई किताब उन्होंने लिखी। इनका प्रकाशन उन्होने खुद करना चाहा। उनके मन मे एक शुभ सकल्प हुआ।

बात संवत् १९७२ की है। मेरे पूज्य पिताजी ने कहा—"मास्टर साहब, यदि किसी प्रकार इन पुस्तको को आप छपवा सके तो हिन्दी की एक अपूर्व वस्तु होगी।" काशी के हितचिन्तक प्रेस ने मास्टर साहब के अपूर्व उत्साह से प्रभावित होकर पुस्तके छाप दी। पूज्य पिताजी के आनन्द का ठिकाना न रहा। पुस्तको के छपते-छपते तुम्हारा जन्म हुआ। इसी वर्ष साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन का भी श्रीगणेश हुआ। विमाता, पवित्र जीवन, रामायण का अध्ययन इत्यादि ग्रन्थ छपे और तब से बराबर साहित्यिक पुस्तको का प्रकाशन जारी है, जिनकी लोगो ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

हरवंश बाबू ने भी कुछ किताबे लिखी। मास्टर साहब को बच्चो की पाठ्य पुस्तको की भद्दी भाषा और भूले बराबर खटकती थीं। तुम्हारे ऐसे होनहार को पाकर उनका दिल बढ़ा। उनके द्वारा पुस्तके लिखी जाने लगी। क्रमश. प्रकाशित भी होती गई। काम बढ़ता गया। तुम्हारे लाड़-प्यार के लिये उन्होने लम्बी छुट्टी ली। आखिर त्याग-पत्र दे दिया।

उसी समय 'बाल साहब' वाली लाल कोठी बिक रही थी। मास्टर साहब को तुम्हारे लिये एक सुखकर भवन का अभाव बराबर खटकता था। कोठी खरीद ली गई। उसमे काफी कमरे थे। भिन्न-भिन्न कमरो मे विभिन्न विभाग बॉट दिये गये। तुम्हारा कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया।

अब तुम्हारे 'बालक' की भी चिन्ता उन्हे करनी पड़ी। आखिर 'बेनीपुरी' बुलाये गये। फिर बेनीपुरी के बाद भैया शिवपूजनजी ने तुम्हारे 'बालक' को सॅवारा। अब तो वह सिंह-शावक-सा बलिष्ठ और तेजस्वी हो गया है और शरणजी के हाथ मे है।

तुम्हारे काम इतने बढ़ गये कि काशी के दो-दो, तीन-तीन प्रेस भी तुम्हारी मॉग पूरी नही कर सकते थे। फलत. निज का प्रेस खोला गया। विद्यापति प्रेस की छपाई ने सारे देश मे धूम मचा दी।

सन् १९३४ मे भूकम्प ने 'बाल साहब' वाली लाल कोठी को धराशायी कर दिया। लेकिन तुम्हारे निर्माता ने शीघ्र ही उससे कही अच्छा भवन बनवा दिया, जिसमे अब तुम मौज करते हो।

भैया, अब तुम बड़े आदमी हो गये। विशाल भवन, निज का प्रेस, सैकड़ो कर्मचारी, लाखो की सम्पत्ति, सब पर धाक, ऊँची साख, सब तो है।

एक गरीब आदमी भी, यदि उसके दिल मे सच्ची लगन हो, मीठा व्यवहार रक्खे, तो अध्यवसाय के बल पर सब कुछ कर सकता है—इसका जीता-जागता नमूना तुम्हारे 'मास्टर साहब' हैं।

भाई, तुम्हारी रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर तुम्हे हार्दिक बधाई। दूधो नहाओ पूतो फलो। मुझको भी तुम्हे गोद खेलाने का सौभाग्य प्राप्त है। लखिया बने रहो।



मास्टर साहब और उनकी विनोदप्रियता

श्रीकमलनारायण झा 'कमलेश', कैना (दरभंगा)

बड़े गुरुजी ने मुझे पुकारा और हाथ मे कुछ नई पुस्तके दी। उनके टाइटिल-पेज रंगीन थे। सम्राट् पंचम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी के चित्र छपे थे। आज तक इतनी सुन्दर पुस्तके मुझे देखने को नही मिली थी।

मेरे नाना चौकी पर बैठे माला फेर रहे थे। हियालाल नीचे बैठा चिलम भर रहा था। मैने पुस्तके उसे दिखाई और कहा—"नाना की पुस्तके ऐसी हैं? वे तो बिलकुल पुरानी—फटी हुई है।"

इतने मे नाना का ध्यान टूटा। उन्होने पुस्तके मेरे हाथ से ले ली। लगे उनके पन्ने उलटने। मै चुप खड़ा रहा। उन्होने कहा—"यह पुस्तक तुम्हारे पढने लायक है। देखो न, भगवान् रामचन्द्र की कथा कुछ ही पृष्ठो मे लिखी गई है। अरे, कृष्णकथा भी है। और भी कई अच्छी-अच्छी कहानियाँ है। अच्छा, रामकथा याद कर सुना दोगे तो इनाम दूँगा।"

मै रामकथा पढ़ गया। एक बार पढ़ा, दूसरी बार पढ़ा, सारी कथा कठस्थ हो गई। नाना को सुना दिया ठीक दूसरे दिन। ऐतिहासिक कहानियाँ मुझे इतनी पसद आई कि कुछ ही दिनो मे सब कहानियाँ रट डाली। पुस्तक अक्षरश. कंठस्थ हो गई। उसका नाम था 'लोअर इतिहास-परिचय'। उसके लेखक थे बाबू रामलोचनशरण विहारी।

कुछ महीनो के बाद मै अपने गाँव गया। वहाँ भी अपनी नई पुस्तकें लेता गया। गाँव के गुरुजी नित्य मुझसे इतिहास की एक-एक कहानी लिखवाते। गुरुजी को मेरी भाषा की शुद्धता पर अचरज होता। नित्य डिक्टेशन लिखाते समय जो कुछ वे बोलते, मै शुद्ध-शुद्ध लिख जाता। मैने अबतक व्याकरण नही

पढ़ा था, पर 'लोअर-इतिहास-परिचय' की भाषा कंठस्थ कर लेने के कारण शुद्ध लिखने की प्रवृत्ति हो गई थी।

एक साल बाद मेरा नाम अपर-प्राइमरी स्कूल मे लिखाया गया। वहाँ 'अपर-व्याकरण-बोध', 'अपर-इतिहास-परिचय' और 'अपर-भूगोल-परिचय' नामक पुस्तके पढ़ाई जाती थी। ये सभी पुस्तके शरणजी की लिखी थीं। इन्हे पढ़कर मै सिर्फ अपने वर्ग के सभी छात्रों से ज्यादा नम्बर ही नही लाता, वरन् अपने शिक्षक को भी अचरज मे डाल देता।

× × × ×

सन् १९२७ ई० की बात है। मै मैट्रिकुलेशन-परीक्षा की तैयारी करने दरभंगा आया। 'बालक' का जन्म हो चुका था। उसमे मेरे कुछ लेख प्रकाशित हो चुके थे। उन दिनो 'पुस्तक-भंडार' के सामने साहित्य-परिषद् का वाचनालय था। एक दिन, संयोगवश, श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी' से वहीं भेट हुई। मुझे हिन्दी-साहित्य का अनुरागी बनने की उत्कट अभिलाषा थी, किन्तु मार्ग-दर्शक का अभाव था। इधर-उधर साहित्यिको की खोज मे, मिल जाने पर उनसे बाते करने मे, व्यस्त रहता था। 'राबिसन क्रूसो' की छाया पर मैने एक कहानी लिखी थी। 'विकल' जी ने शरणजी को वह कहानी दिखाई। वे बड़े प्रसन्न हुए। 'विकल' जी ने उनसे मेरा परिचय करा दिया। मुझे आज तक अपने साहित्यिक गुरु से बात करने का अवसर नही मिला था। उस दिन मै बहुत प्रसन्न था।

दूसरे दिन सायंकाल वाचनालय से होकर मै 'विकल' जी के साथ श्रीशरणजी से मिलने गया। मेरा नन्हा-सा उत्साह देखकर उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा—"केवल साहित्यिको से वार्त्तालाप करने और पत्र-पत्रिकाओ के पन्ने उलटने से कुछ न होगा। सोच-समझकर कुछ लिखा करो।" मैने पूछा—"क्या लिखूँ? कुछ बतलाइये तो सही।" उन्होने कहा—"इन दिनों छोटी-छोटी बालोपयोगी पुस्तिकाओ की बड़ी माँग है। तुम्हारे यहाँ के मैथिल महापुरुषो के नाम लुप्त हो रहे है। मंडन मिश्र, वाचस्पति मिश्र, चित्रधर मिश्र, चंदा झा, महाराज लक्ष्मीश्वर सिह, महाराज रामेश्वर सिह आदि अमरकीर्त्ति विद्वानो और आदर्श महापुरुषो की जीवनियाँ लिख डालो।"

फिर क्या था, प्रोत्साहन और सहारा मिलने की देर थी, मै तुरत तैयार हो गया। दरभंगा-राज-लाइब्रेरी मे पहुँचा। वहाँ बहुत-कुछ सामग्री मिल गई। छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार हो गईं। उन्होने छपवाकर हिन्दी-संसार के सामने रक्खा। मै कृतकृत्य हो गया।

सन् १९३१ ई० की बात है। मै वल्लीपुर (दरभंगा) के मिडूल-इंग-

लिश स्कूल मे प्रधानाध्यापक था। गर्मी की छुट्टी मे मै लहेरियासराय आया। मास्टर साहब ने कहा—"तातील मे यहीं क्यो नही रह जाते ?"

'भंडार' के वायु-मंडल मे मुझे एक विचित्र आकर्षण प्रतीत हुआ। मास्टर साहब ने भारतीय इतिहास की एक पुस्तक अँगरेजी मे तैयार कराई थी। उसका हिन्दी-अनुवाद करने का भार उन्होने मुझे सौपा।

'भडार' मे नित्य सायंकाल साहित्यिक गोष्ठी वैठा करती थी। प्रोफेसर हरिमोहन झा उन दिनो एम. ए. के छात्र थे। वे भी छुट्टी यहीं बिता रहे थे। श्रीअच्युतानन्द दत्त और प्रोफेसर साहब साहित्यचर्चा मे खूब रस बरसाते। एक-न-एक साहित्यिक यहाँ नित्य आया ही करते। इस साहित्यिक दरबार मे नितनूतन काव्यचर्चा हुआ करती।

× × × ×

सन् १९३२ मे दरभंगा-गोशाला मे गो-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन दुर्गा-पूजा की छुट्टी मे हुआ। मास्टर साहब उसकी स्वागत-समिति के मंत्री थे। सभापति कविवर 'हरिऔध' जी की अनुपस्थिति मे स्वागताध्यक्ष श्रीमान् कुमार गंगानन्द सिह ने उनका आसन ग्रहण किया। दूसरे दिन कवि-सम्मेलन हुआ। कुछ समस्याएँ कुमार साहब ने दीं, कुछ मास्टर साहब ने। मास्टर साहब की समस्याओ की पूर्त्ति हास्य-रस के सिवा अन्य किसी भी रस मे नहीं हो सकती थी। पूर्त्ति मे भाग लेनेवाले थे प्रोफेसर हरिमोहन झा, श्रीअच्युतानन्द दत्त, प्रोफेसर रामलोचन शर्मा 'कंटक', श्रीपरमानन्द दत्त, पं० राजदेव झा और महाराजाधिराज के दरबारी कवि श्रीजगदीशजी। प्रोफेसर झा की पूर्त्तियाँ अत्यन्त विनोदपूर्ण रहीं। सभी साहित्यिक हँसते-हँसते लोट गये। उस समय मास्टर साहब मे जो उत्साह मैंने देखा, वह भूलने की चीज नही।

× × × ×

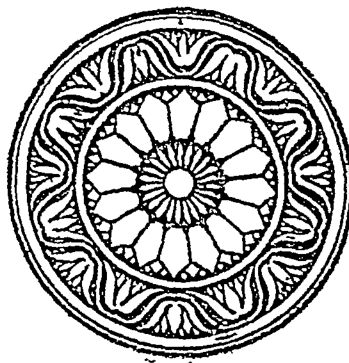
सन् १९३४ ई० मे १५ वीं जनवरी को विहार का इतिहास-प्रसिद्ध भूकम्प हुआ। दरभगा शहर बरबाद हो गया। उस दिन मै 'भडार' मे ही था। देखते-ही-देखते 'भडार' का विशाल भवन धराशायी हो गया, विद्यापति प्रेस का दुमंजिला मकान भी। मैंने कहा—"मास्टर साहब, अनर्थ हो गया।" उन्होने उत्तर दिया—"कोई चिन्ता नहीं, जिन्होने 'भंडार' को बनाया था उन्होने ही विगाडा है, वे ही फिर बना भी देंगे।" मैंने उनके चेहरे पर कभी विषाद की रेखा नहीं देखी।

उसी साल की बात है। मै दरभगा-जिला-बोर्ड की शिक्षा-समिति का सदस्य था। वहाँ का एक चपरासी सोलह रुपये का चेक लेकर पहुँचा। मास्टर साहब मेरे निकट ही बैठे हुए थे। 'भंडार' के अहाते मे कई सुन्दर झोपड़ियाँ थीं। एक

झोपड़ी में बाहर से आये हुए साहित्यिक ठहराये जाते थे। उस समय श्रीगंगापति सिंह, बी. ए. (कलकत्ता-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर) और प्रोफेसर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' एम. ए., उसी झोपड़ी मे किसी साहित्यिक विषय पर बाते कर रहे थे। मास्टर साहब ने उन्हें पुकारा। उनके आते ही मास्टर साहब ने मेरे हाथ से चेक छीन लिया और कहा—"जिला-बोर्ड की हर मीटिंग मे उपस्थित होने पर इसे सोलह रुपये मिलते है। 'भंडार' से भी काफी रुपया लेता है। पर कभी भोज नही खिलाता। और कुछ नहीं तो भूँजा ही सही।"

सबने बड़ा उल्लास प्रकट किया। फिर क्या, मास्टर साहब ने नौकर को बुलाकर चार आने का भूँजा लाने का हुक्म दे दिया। जब भूँजा आ गया, तब उन्होने तीन रुपये की मिठाई मँगाई। श्रीअच्युतानन्द दत्त, श्रीगंगापति सिंह, प्रोफेसर 'द्विज', श्रद्धेय मास्टर साहब, सबने मिलकर भोज मे ओज भर दिया। मैं भी अपने सवा तीन रुपये मे से दो-चार आने उड़ा गया!

आज भी, जब कभी 'द्विज' जी से या गंगापति बाबू से भेट होती है, उस दिन की बाते याद कर वे हँसे बिना और मास्टर साहब की विनोद-प्रियता की प्रशंसा किये बिना नही रहते।



आप काशी मे 'पुस्तक-व्यवसायि-संघ' के सभापतित्व के लिये आमंत्रित किये गये। उसमे आपने जो भाषण किया, उसमे आपकी प्रकाशन-सम्बन्धी सूझ को सब ने सराहा। वह भाषण मुद्रित है। उसमे दी गई योजनाएँ प्रकाशन-क्षेत्र मे युगान्तर लानेवाली है।

आप हमारे प्रान्त के आदर्श प्रकाशक है। सुन्दरता से पुस्तके निकालने की धुन मे ही सदैव लगे रहते है। यदि आपके पास चितचाही सम्पत्ति होती तो किसी भी लेखक की पुस्तक को आप अप्रकाशित न रहने देते।

आपसे बातें काफी देर तक हुई, किन्तु किसी व्यक्ति पर आक्षेप करते मैने नहीं पाया। यह एक बड़ी विशेषता देखी। साहित्यिक विषयो पर ही बाते करना आप पसन्द करते हैं।

जब कभी मै 'भडार' मे जाता हूँ, दिल यही चाहता है कि वहीं रहूँ। साहित्यमय वातावरण है। साहित्यिक प्रगति की आलोचना वहाँ प्रतिदिन होती रहती है।

आप बिहार मे ऐसे समय मे हिन्दी-माता के पुजारी बने, जब वह बिहारियों की उदासीनता पर अश्रुपात कर रही थी। अपनी कार्यपटुता, अध्यवसाय और अदम्य उत्साह के बल पर आपने अपने प्रान्त के निवासियो का हृदय जीत लिया।

निरक्षरता-निवारण के अवसर पर हजारो रुपये की पुस्तके, चार्ट इत्यादि मुफ्त वितरण कर आपने अपने साहित्य-प्रेम का ज्वलंत उदाहरण दिया। फलत बिहार-सरकार ने 'राजेन्द्र-स्वर्ण-पदक' प्रदान कर आपके उत्साह का यथेष्ट सम्मान किया।

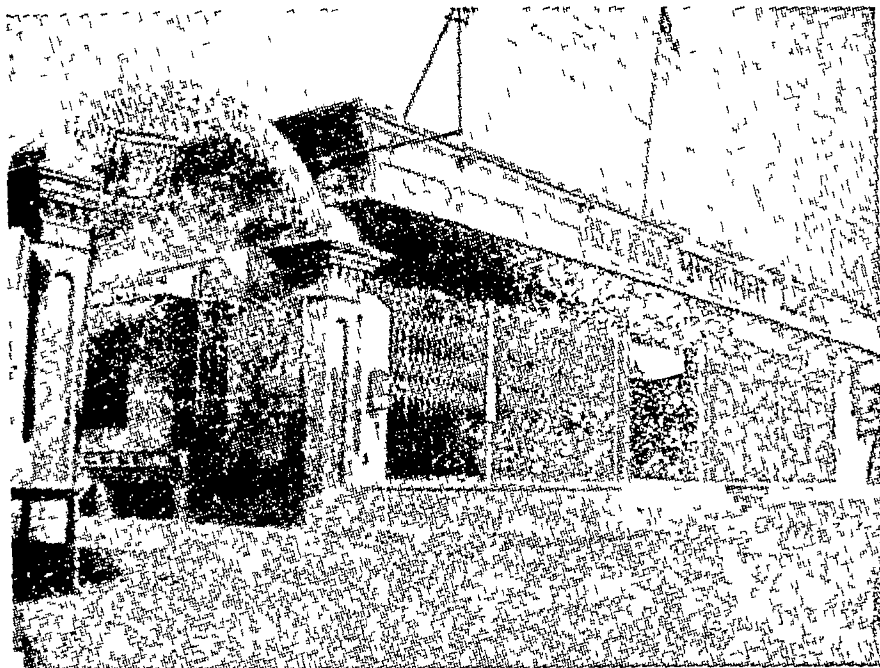
देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी जब देशकार्य के चंदे के लिये 'भंडार' मे पहुँचे, आपने एक हजार रुपये का चेक काटकर अनुपम दान-शीलता और उदारता का परिचय दिया।

लक्ष्मी की असीम कृपा रहने पर भी आपको अभिमान छू नहीं गया। आपका स्वभाव मृदुल और रहन-सहन साधुवत् है। सादगी आपको निहायत पसंद है। चेहरे पर उदारता और सहृदयता की रेखाएँ झलकती है।

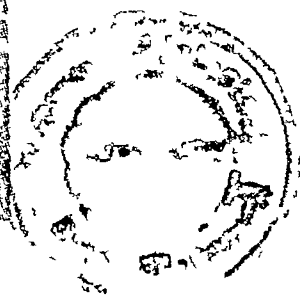
आपका जीवन सादा, भोजन सात्त्विक और हृदय निष्कपट है। आपका 'भंडार' सदैव अतिथियो का अड्डा बना रहता है। आव-भगत करने में आपका 'भंडार' अनुपम है।

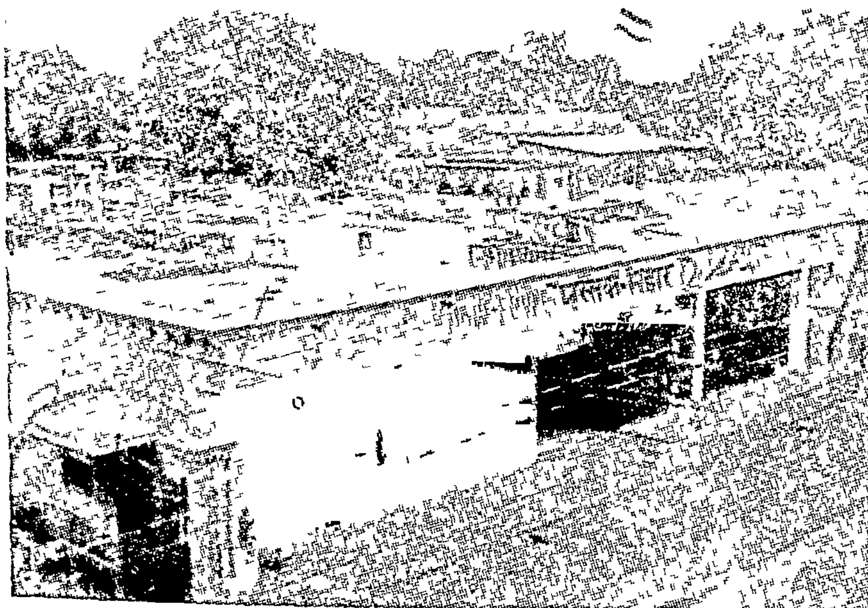
आपने बिहार मे साहित्य का बीज ऐसे समय बोया जब बिहार ऊसर हो गया था। आज अपने हाथो लगाये हुए वृक्ष को पल्लवित, पुष्पित और फलित देखकर आपको जो खुशी है, उसमे हम बिहारियो का अंश कम नहीं।

वास्तव मे सुरुचिपूर्ण साहित्य के निर्माण मे आपका भगीरथ प्रयत्न अवश्य ही आपको ऐतिहासिक अमरता प्रदान करेगा।

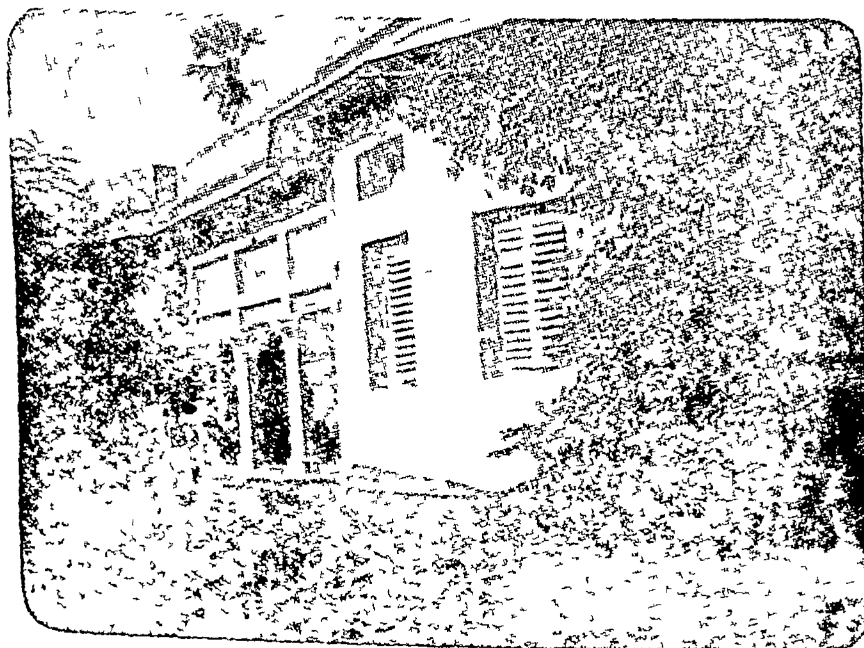


पुस्तक-भंडार (लहेरिया-सराय) का भव्य भवन
बाईं ओर—मुख्य द्वार
दाहिनी ओर—दूकान

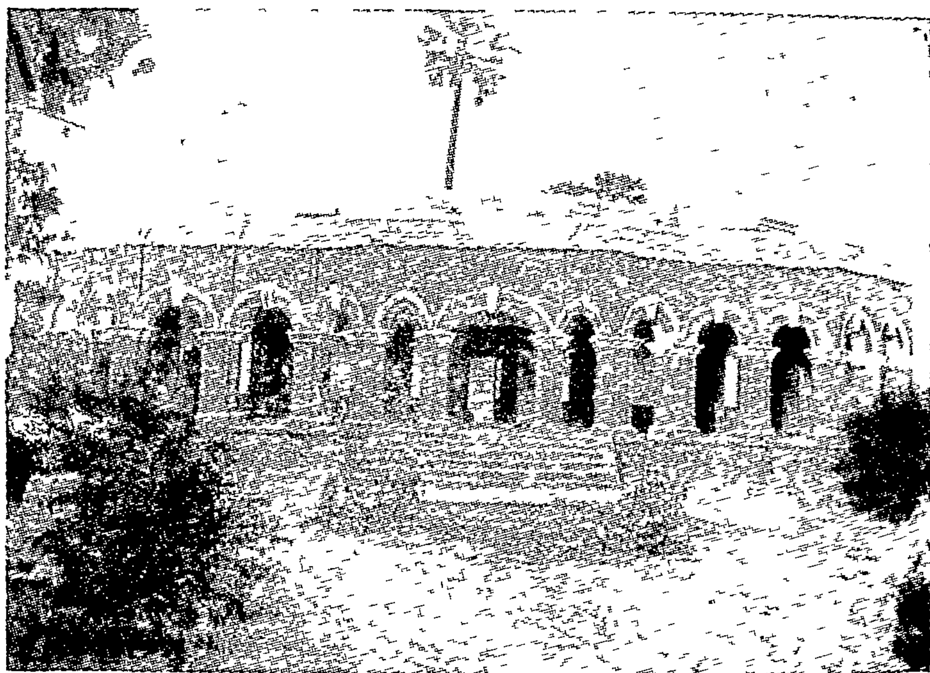




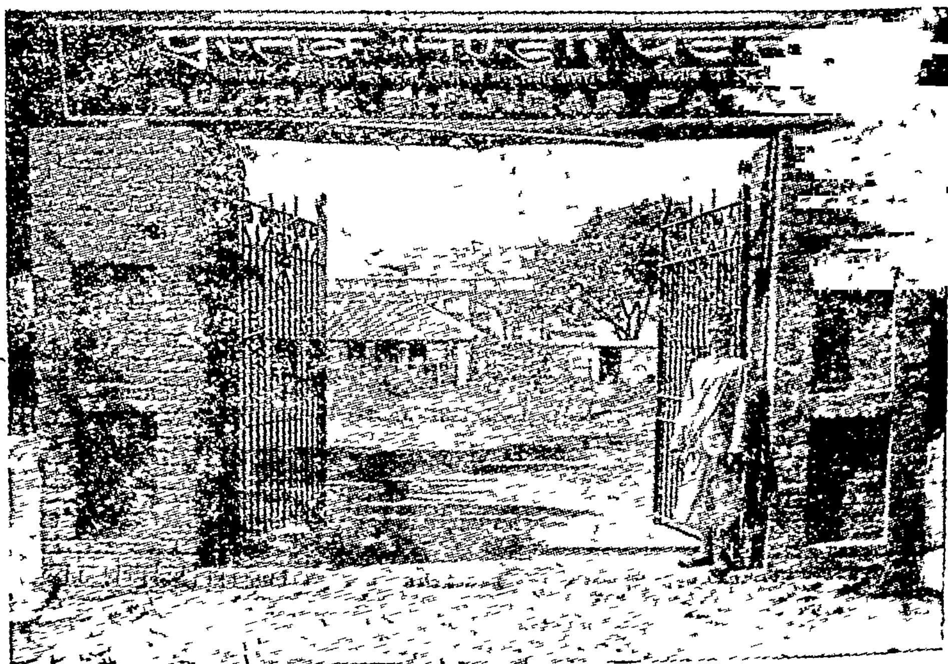
नगर की प्रधान सड़क से पुस्तक-भंडार (लहेरिया-सराय) का बाहरी दृश्य



और लो
परिवार का



पुस्तक-भंडार का पुराना भवन, जो १५ जनवरी (१९३४ ई०) के भीषण भूकम्प में धराशायी हो गया। सन् १९२३ ई० में, कम्पाउण्ड के साथ, यह तेरह हजार रुपये में खरीदा गया था।



पुस्तक-भडार (गोविन्दमित्र रोड, पटना) का बाहरी फाटक



साहित्यिकों का अतिथि-मंदिर 'भंडार'

डॉक्टर श्रीरामजी महथा 'जालवी' (दरभंगा)

मै लगभग १२–१३ साल का बालक था। अपने पिताजी के साथ 'भंडार' के निकट श्रीगोकुलप्रसाद के मकान मे रहता था। स्थानीय नार्थब्रुक-स्कूल मे पढ़ता था। जब कभी मुझे पेन्सिल, कागज, कलम, दावात या किताबो की जरूरत होती, सीधे 'भंडार' मे जाता।

एक बार, वार्षिक परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर, कुछ कोर्स की किताबे खरीदने की जरूरत पड़ी। पिताजी से कहा। संयोगवश उस समय पिताजी के पास पैसे नहीं थे! वे किताबो की 'लिस्ट' ले 'मास्टर साहब' के यहाँ गये। उनकी बाते सुनकर मास्टर साहब ने मुस्कुराते हुए कहा—"लिस्ट के मुताबिक किताबे ले जाइये। मुहल्ले की बात है, दाम पीछे ही सही।"

× × × ×

सन् १९३५ मे मैं 'किसलय' नामक एक मासिक पत्र निकालने जा रहा था। अनुभव तो कुछ था नहीं, मास्टर साहब से सलाह लेने गया। जब उनकी शिक्षाप्रद बाते सुनी, अपने-आपमे गलतियाँ दीख पड़ी। उन गलतियो के सुधारने का वहीं निश्चय किया।

मास्टर साहब के प्रोत्साहन पर मैने 'बालक' मे कई सचित्र लेख लिखे। अब भी समय-समय पर लिखता हूँ। इसका श्रेय 'बालक'-सम्पादक ही को है।

'मास्टर साहब' सचमुच मास्टर साहब है। आप जब उनसे मिलेगे, वे आपसे सहज अमायिक स्नेह के साथ बाते करेगे। वे अधिकतर आपसे घरेलू भाषा मे ही बातें करेगे। एक बार मैं स्वरचित 'फफोले' एवं 'समाज का नाटक' लेकर उनके समक्ष उपस्थित हुआ। अपनी इन किताबो को 'भंडार' के द्वारा बिकवा देने का आग्रह किया। वे बहुत खुश हुए। किताबो की ५० प्रतियाँ 'भंडार' की दूकान मे रखकर बेचने की आज्ञा दे दी। इस तरह मेरा उत्साह बढ़ाया।

'भंडार' को मै स्वागत-सत्कार का अड्डा कहूँ तो कोई अत्युक्ति न होगी। बहुतो को इसका रस मिल चुका है। मै यहाँ कुछ ही घंटो तक रहकर अपने घर से भी अधिक आनन्द प्राप्त कर चुका हूँ। इसके संस्थापक, मैनेजर और प्रत्येक कार्यकर्त्ता ने प्रेम एवं सद्भाव का पाठ पढ़ा है।



मीनावतारी 'पुस्तक-भंडार'

पं० जीवनाथ राय, बी. ए., तीर्थत्रयी, हेडपंडित, दरभंगा-जिला-स्कूल

मै १९१७ ई० मे मोतिहारी से दरभंगा बदलकर आया। श्रीरामलोचनशरण उस समय जिला-स्कूल के हिन्दी-शिक्षक थे; पर थे छुट्टी मे। 'भंडार' का जन्म हो चुका था। उसी के पालन-पोषण के लिये इन्होने स्कूल से लम्बी छुट्टी ली थी। उस समय इनका मासिक वेतन ३०) था। छुट्टी मे ही २) की वृद्धि की सूचना आई थी। पर इन्होने वह ली नही, क्योकि छुट्टी से लौटकर नौकरी के बंधन मे फिर पड़े ही नही।

लहेरियासराय के बाकरगंज-बाजार मे वह नन्हा-सा घर अभी तक खड़ा है, जिसमे 'पुस्तक-भंडार' का शुभ जन्म हुआ था। बाबू रामलोचनशरणजी अपने शिशु 'भंडार' के पोषण मे निरन्तर लीन रहने लगे। मै भी, साथी के नाते, इनके प्रशंसनीय अध्यवसाय को देखकर, इनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा।

'पुस्तक-भंडार', मीनावतारी भगवान् विष्णु की तरह, छोटे स्थान से एक बड़े स्थान मे, फिर उससे भी बड़े स्थान मे, कुछ दिनो के बाद उससे भी बहुत बड़े स्थान मे, अपने विकास के साथ-साथ, आता गया। अब तो वह ऐसे विशाल भवन मे विराज रहा है, जो बिहार मे पुस्तको के भवन की दृष्टि से अद्वितीय है।

श्रीरामलोचनशरण आरम्भ मे केवल हिन्दी-पुस्तको के लेखक तथा प्रकाशक थे। पीछे अनेक भाषाओ की पुस्तकों के प्रकाशक हो गये। हिन्दी-संस्कृत पुस्तको के प्रकाशन-कार्य मे मुझसे भी सहायता लेने लगे। इन्होने मैथिल कवि विद्यापति के नाम पर ही 'विद्यापति प्रेस' की स्थापना की। उस महाकवि की भाषा तथा लिपि की ओर भी इनका ध्यान आकृष्ट हुआ।

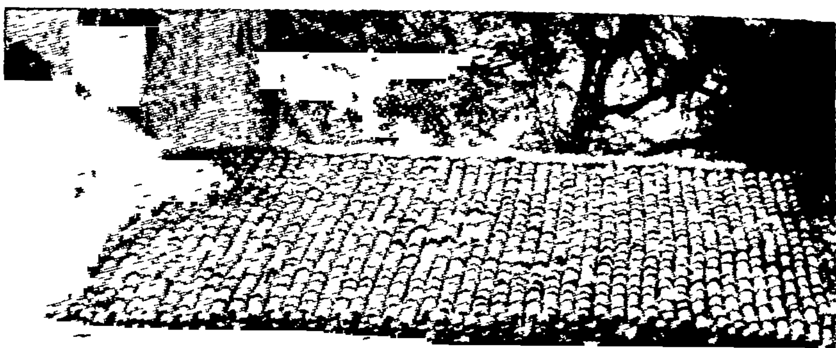
गत तेईस वर्षो के निरन्तर सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध के कारण, श्रीरामलोचनशरण और उनका 'भंडार' दोनों मुझे अपने मालूम पड़ते हैं। मैं भी उनको अपना मालूम पड़ता हूँ। इस बात की मधुर स्मृति मेरे जीवन के लिये विशेष सुखद रहेगी।

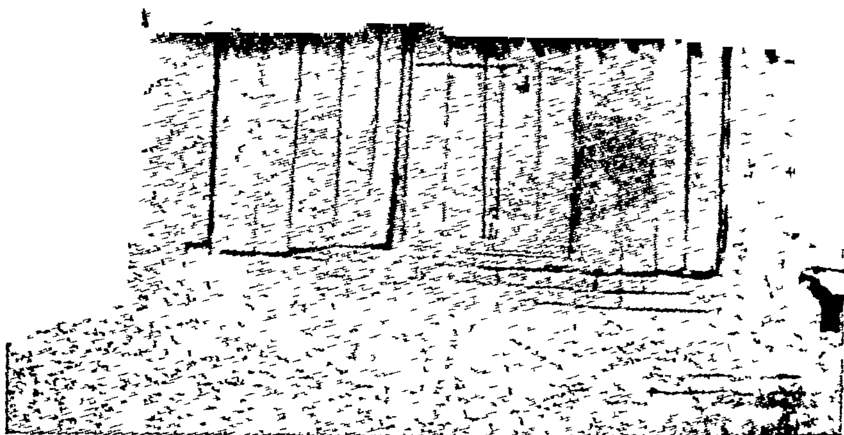


लहेरियासराय का वह सबसे पहला मकान (मुहल्ला रहमगंज), जिसमें श्रीरामलोचनशरणजी दस आने मासिक भाड़े पर पहले-पहल आकर रहने लगे थे, जब स्थानीय जिला-स्कूल में शिक्षक थे। (सन् १९०९—१० ई०)



लहेरियासराय (मुहल्ला बलभद्रपुर) का वह मकान, जिसमें दो रुपये मासिक भाड़े पर श्रीरामलोचनशरणजी सन् १९१३-१४-१५ ई० में रहते थे। इसी में पहले-पहल 'पुस्तक-भंडार' का नामकरण हुआ और 'अपर-व्याकरण-बोध' नामक सबसे पहली पुस्तक लिखी गई, जिसपर युक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग ने १६७) पुरस्कार दिया था। यही मूल पूँजी हुआ।





लहेरियासराय के बाकरगंज मुहल्ले का वह मकान, जिसमे ढाई रुपये मासिक भाडे पर 'पुस्तक-भडार' की सबसे पहली दूकान खुली थी। इसी मकान में सन् १९१५ से १९२२ ई० तक दूकान रही और पुस्तकों की खुदरा बिक्री बाबू गंगाप्रसाद गुप्त (स्वर्गीय) करते थे, जो 'भडार' के वर्त्तमान मैनेजर के बडे भाई थे ।



लहेरियासराय के बलभद्रपुर मुहल्ले का वह मकान, जिसमे सन् १९२३ तक 'पुस्तक-भंडार' की पुस्तकों का स्टाक रहा। इसी मे श्रीरामलोचनशरणजी का निवास-स्थान था। यहीं से आपने स्कूल की नौकरी छोडी। इसका किराया दस रुपये मासिक था। १९३४ ई० के भूकम्प में मकान तो चूर हो गया, पर उसकी जगह एक झोपडा खडा है। बाईं ओर का नया मकान भूकम्प के बाद बना है। इस झोपडे के स्थान पर जो मकान था उसी में से उठकर 'पुस्तक-भडार' अपने खास खरीदे हुए नये मकान में आया था। (सन् १९२३ ई०)



रामलोचनशरणजी का छात्र-जीवन

प्रोफेसर गायत्री उपाध्याय, एम. ए; बी. एन-कालेज, पटना

१६ वर्ष की अवस्था मे, १९०६ ई० के जनवरी मास मे, श्रीरामलोचनशरणजी ने पटना-ट्रेनिंग-स्कूल मे नाम लिखाया। उस समय वहाँ के छात्रो को ४) मासिक छात्र-वृत्ति मिलती थी। छात्रावास निःशुल्क था। स्कूल के अहाते मे, गंगा के किनारे, उत्तर स्कूल, पूरब हेडमास्टर का निवास (पीछे ट्रेनिंग-कालेज), पश्चिम छात्रावास, दक्षिण रसोई-घर था। अहाता लम्बा-चौड़ा था। बीच मे विस्तृत फुलवारी थी। उस समय वहाँ के हेडमास्टर मौलवी अमजद अली (पीछे खाँबहादुर), सहायक हेडमास्टर बाबू राजेन्द्रप्रसाद (पीछे रायसाहब), हेडपंडित प्रसिद्ध हिन्दी कवि बिहारीलाल चौबे—पीछे महामहोपाध्याय पं० रघुनंदन त्रिपाठी, हेड-मौलवी मौलवी सईद; गणित-शिक्षक पं० दिवाकरदत्त मिश्र, और ड्राइंग-मास्टर बाबू विनोदबिहारी दास थे। वहाँ हिन्दुओ को उर्दू और मुसलमानो को हिन्दी पढ़ना पड़ता था।

श्रीरामलोचनशरण वहाँ के उत्तम छात्रो मे थे। ये गरीब घर के थे। मैं भी १९०७ ई० मे वहाँ का छात्र हुआ। उस समय गाजीपुर, बलिया, पटना-कमिश्नरी, भागलपुर-कमिश्नरी और तिरहुत के छात्र वहाँ पढ़ते थे। एक कमरे मे विशेषतः गाजीपुर और शाहाबाद के छात्र रहते थे। मैं भी कुछ दिनो उसी मे रहा। इनके घनिष्ठ मित्र गाजीपुर के बाबू शीतल राय, बाबू अवधबिहारी सिंह और बाबू देवनारायण राय थे। मै तो किसी से ज्यादा बोलता ही न था। मगर मेरा ध्यान इन चार प्रेमी संगियो के परस्पर व्यवहार की ओर प्रायः जाता था; क्योकि इनमे हरएक विशेष गुणवाला था। बाबू शीतल राय से इनकी सबसे ज्यादा मित्रता थी। वे बहुत धार्मिक और बुद्धिमान् थे। उनकी उम्र भी

ज्यादा थी। उनका मान बड़े भाई का-सा था। अवधविहारी सिंह भी हँसमुख थे। उनकी बोली कुछ तोतली थी। उन्हें लोगो की नकल करने की आदत थी। उनकी बोली सुनते ही हमलोग हँस देते थे। देवनारायण राय के शरीर पर, स्कूल के अहाते मे रहने पर, सिवा धोती और यज्ञोपवीत के दूसरा कुछ नही रहता था। वे देहाती सादगी का नमूना थे।

रामलोचनशरणजी उन चारो मे छोटे थे। ये सभी लोगो से नम्रता से झुककर और मुस्कुराकर बाते करते थे। इनको जब देखिये, साथियो से हँस-हँसकर बाते कर रहे हैं। देवनारायण राय पढ़ते हुए कम देखे जाते थे। वे साथियो से गप्प ही करते-करते पाठ याद कर लेते थे। बाकी तीनो को जब देखिये, डटकर किसी जगह कम्बल बिछाकर पढ़ रहे है। कभी-कभी इन चारों मे मनोरंजक हँसी-खेल भी हुआ करता था। एक बार अकारण ही, दूसरे के अपराध को इनका समझ, नीचे क्लास का एक छात्र, इनसे बकझक करने लगा। तब भी ये उससे नम्रता-पूर्वक हँसकर ही बाते करते रहे।

इनका बर्ताव जब अपने छोटे सहपाठियो से ऐसा था, तब शिक्षकों के प्रति इनके आचरण की प्रशंसा व्यर्थ है। ये बड़े देश-प्रेमी थे। इनकी इच्छा थी कि हमलोग ऐसे उत्तम शिक्षक हो कि देश के बच्चे हमसे अधिकाधिक लाभ उठावे। पढ़ाते समय बच्चों के साथ ये भी बच्चा हो जाते थे। स्वयं गरीब होने से दूसरे गरीबों की यथासाध्य सहायता करने तथा अपने साथियो से उन्हे सहायता दिलाने मे ये बड़े उत्साह से तत्पर हो जाते थे। इनका मन खेल-कूद मे नही लगता था। उस समय सिनेमा नही था। कहीं-कहीं नाटक हुआ करते थे। प्रसिद्ध रामलीला-मंडलियाँ आया करती थीं। उस समय के लोग एक-एक पैसा आरती मे देकर खूब प्रेम से रामलीला देखते थे। कभी-कभी स्कूल मे भी, रायसाहब राजेन्द्रप्रसादजी के उद्योग से, वहाँ के छात्र सत्य हरिश्चन्द्र, शकुन्तला आदि नाटक खेलते थे। नाटक-सिनेमा के लिये गरीब छात्रो के पास पैसे कहाँ थे।

सन् १९१० ई० के अंत मे इन चारो साथियो ने सफलतापूर्वक नार्मल पास किया। हरएक को ड्राइंग मे स्पेशल-सार्टिफिकेट मिला। इसलिये हरएक को शीघ्र ही ड्राइंग-मास्टरी मिल गई। रामलोचनजी का खिचाव पहले ही से व्यवसाय की ओर था। कोई नहीं जानता था कि ट्रेनिंग-स्कूल का यह गरीब छात्र एक गरीब मास्टर न होकर लखपती प्रकाशक, यशस्वी सम्पादक, लेखकों का सम्मानदाता, दीनो का सहायक और विहार का एक रत्न हो जायगा। ठीक कहा है—'पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्य'।



होनहार बालक 'रामलोचनशरण'

श्रीरघुवीर कुमर; शिक्षक, हाइस्कूल, शिवहर (मुजफ्फरपुर)

बाबू रामलोचनशरणजी की किशोरावस्था का मूल्यवान् समय दो वर्ष मेरे साथ बीता। सहपाठियो से लड़ना-झगड़ना तो वे जानते ही न थे। सबसे सदा प्रेम-भाव। बड़ो के साथ नम्रता। सहपाठियो के साथ सस्नेह वार्त्तालाप। रहन-सहन बिल्कुल सादा। स्वभाव भोला-भाला। विचार मे गाम्भीर्य। बुद्धि विलक्षण। जो विषय बतलाया जाय, झट समझ जाते; दुबारा पूछने की आवश्यकता न पड़ती। गणित मे अनोखी सूझ थी—गणित-शिक्षक को हैरत मे डालनेवाली। ऐसा प्रतीत होता, यह छात्र आगे कुछ करके ही रहेगा। ऐसा विरला ही छात्र मैंने देखा होगा।

दीनावस्था मे पहले छात्रो मे कंजूसी अधिकतर पाई जाती है। परन्तु उनमे इसका सर्वथा अभाव था। उचित खर्च मे पीछे पैर देनेवाले नहीं थे। मितव्ययियो मे आदर्श थे। धार्मिक विषयो मे अनुराग था। 'रामचरित-मानस' और 'हनुमान-चालीसा' प्रेम से पढ़ा करते। साधु-महात्माओ मे प्रगाढ़ श्रद्धा थी। गुरु-भक्ति और उदारता तो आजतक वैसी ही विराजमान है। सन् १९३२—३३ मे हमारे स्कूल मे आये थे। छात्रो को मिठाई खाने के लिये २५) दे गये। एक बार यह जानकर कि मेरा भतीजा मैट्रिकुलेशन मे है, दूसरे-दूसरे प्रकाशको की लगभग २०) की पुस्तके पेड-पार्सल से भेजने की कृपा की। ऐसा व्यवहार विरले ही करते हैं।

एक होनहार छात्र मे जिन सद्गुणो की आवश्यकता है, सभी गुण उनमें विद्यमान थे। उन दिनो मैं मन-ही-मन कहा करता था, भगवान् इसे चिरायु और देशोद्धारक बनावे। मेरी मन कामना फलीभूत हुई।



शरणजी की क्षमाशीलता

श्रीधर्मलाल सिंह, व्यवस्थापक—दरभंगा-गोशाला

श्रीरामलोचनशरणजी का सम्पूर्ण जीवन अध्यवसाय और आदर्श-पालन का एक ज्वलन्त उदाहरण है। मेरे ही समान वे भी हाइस्कूल के एक साधारण शिक्षक थे। किन्तु अपने असाधारण गुणों के कारण वे उन्नति के उच्चतम शिखर पर आसीन हो गये और मैं जैसे-का-तैसा रह गया। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे, विशेषत वाल-साहित्य-निर्माण मे, उन्होने महान् यश पाया है। समस्त भारत-वर्ष मे उनका नाम आदरणीय हो रहा है। उनकी श्रमशीलता, मिलनसारी, मिष्टभाषिता और दयालुता स्तुत्य है। मेरा संबंध प्राय: सभी स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओ से है। इनके निमित्त मैं जव कभी उनके पास याचना करने गया, उन्होने नाहीं कभी नही की।

सवसे वढ़कर उनमे क्षमाशीलता है। मैं अपने कड़वे स्वभाव के कारण उनसे वरावर द्वेष रखता था। सन् १९२५ ई० मे यहाँ पूज्य राजेन्द्र वावू के सभापतित्व मे विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ। उसका सारा प्रवन्ध करीव-करीव मेरे ही हाथ मे था। व्यक्तिगत द्वेष के मारे मैंने उनसे सम्मेलन के लिये चंदा तक नही लिया। खुली सभा मे जव पं० जनार्दन झा 'जनसीदन' ने उनकी प्रशंसा मे कविता पढ़ी, तव मेरी ईर्ष्याग्नि और भी भभक उठी। मैंने वयोवृद्ध 'जनसीदन' जी का साधारण स्वागत तक नहीं किया। यहाँ तक कि जो प्रतिनिधि 'भंडार' मे ठहरे थे, उन्हे मैं वहाँ से ले आया, और 'भंडार' ही मे रामलोचन वावू को जली-कटी सुना दी। किन्तु वाहरी महानुभावता! उनके चेहरे पर जरा भी शिकन न पड़ी। मुझे वे पूर्ववत् छोटे भाई की तरह मानते रहे। मैं इतना लजाया कि तव से उनका वशवर्त्ती वन गया। अव सदा उनकी आज्ञा के पालन मे तत्पर रहता हूँ।



कला-पारखी मास्टर साहब

श्रीयुत उपेन्द्र महारथी

कलकत्ता के सरकारी कलामहाविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मेरी इच्छा हुई कि लंडन के रायल कालेज ऑफ आर्ट्स में जाकर चित्रकला विषयक उच्चतर शिक्षा प्राप्त करूँ; किन्तु विलायत जाने के लिये काफी रुपये की जरूरत थी। मेरे पास पैसे थे नहीं। इसी उधेड़बुन में मैं पूर्णिया में अपने एक मित्र के यहाँ ठहरा समय बिता रहा था।

एक दिन संयोगवश मेरे मित्र पं० शम्भुनाथ झा (जो 'इंडियन नेशन' के प्रबन्ध-विभाग में हैं) लहेरियासराय के एक व्यक्ति बाबू वीरेन्द्रनारायण सिंह के साथ मेरे यहाँ आये। बातचीत के सिलसिले में वीरेन्द्र बाबू ने कहा—"मैं पुस्तक-भंडार का एक कर्मचारी हूँ। मेरी संस्था के कला-विभाग में इस समय एक कुशल चित्रकार की आवश्यकता है। यदि आप वहाँ चलना स्वीकार करें तो मैं अपने मालिक से पूछकर आपको खबर दूँ।"

यहीं से मेरे जीवन का नवीन अध्याय प्रारंभ हुआ। उस समय मैं दरभंगा-महाराज को समर्पित करने के विचार से उनका एक तैलचित्र निर्माण कर रहा था। मैंने मन में सोचा—"यह अच्छा संयोग है। दरभंगा तो जाना ही है। अब 'एक पन्थ दो काज' हो जायगा।"

दो सप्ताह के बाद मैं दरभंगा पहुँचा। मेरे लिये यह स्थान सर्वथा अपरिचित था। अतः मैं धर्मशाला में ठहरा। मैं कुछ संकोची प्रकृति का आदमी हूँ। इसलिये राज-दरबार में प्रवेश होना भी कठिन था।

एक दिन पूछता-पाछता मैं पुस्तक-भंडार जा पहुँचा। जाड़े का दिन था। एक सज्जन धूप में चटाई पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने वीरेन्द्र बाबू की सारी बातें बताकर कहा—"मैं यहाँ मालिक से मिलना चाहता हूँ।" इसपर उन्होंने मुस्कुराकर कहा—"कहिये, क्या काम है?"

मैं उनकी यह सादगी देखकर चकित रह गया। उन्होंने मेरी बातें सुनकर प्रेम से कहा—"मै महाराज बहादुर की सेवा में समय पर आपको पहुँचा दूँगा। आप निश्चिन्त रहिये। तबतक आप मेरे यहाँ कला-विभाग मे कुछ दिन रहकर काम कीजिये।"

मैं उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर विना मोल उनके हाथों बिक गया। पन्द्रह दिनों के भीतर ही मैं पूर्णिया से अपना बोरिया-बधना लेकर लहेरियासराय आ पहुँचा और 'भंडार' में नियुक्त हो गया। मास्टर साहब के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से मैं इतना मुग्ध हुआ कि यहाँ आकर अपने जीवन की विषम परिस्थितियों से उत्पन्न सारी कटुताओं को भूल गया।

मैं यहाँ आया तो यही सोचकर था कि छ महीने रहकर आर्थिक समस्या हल हो जाने के उपरान्त, विलायत-यात्रा की तैयारी करूँगा, किन्तु कुछ ही दिनों में इनलोगों के प्रेम के रंग में कुछ ऐसा रँग गया कि यहाँ के बंधन को काटकर बाहर निकलना मेरे लिये असंभव हो गया।

चित्रांकन-कला की उपासना मे जो-जो सुविधाएँ मैं प्राप्त करना चाहता था वे यहाँ आकर पर्याप्त रूप में मुझे मिलने लगीं। मास्टर साहब की दृष्टि कला के परखने में कितनी सूक्ष्म है, यह मुझे यहाँ आकर मालूम हुआ। यहाँ आने पर मैंने जो-कुछ कला की उपासना की है, जो थोड़ा-बहुत नाम-यश प्राप्त किया है, उसका पूरा श्रेय मास्टर साहब को है जिन्होंने अपने प्रिय बालक की तरह मुझे आगे बढ़ाने का सतत प्रयत्न किया है और कर रहे हैं।

इसी सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख कर देना मनोरंजक होगा। शुरू-शुरू जब मैं दरभंगा आया था, मेरा नाम तक यहाँ कोई नहीं जानता था। एक दिन चुपके श्रीमान् मिथिलेश का तैलचित्र लेकर उन्हे समर्पित करने के लिये मैं दरबार मे जा पहुँचा। मैंने अपनी विलायत-यात्रा-सम्बन्धी इच्छा भी प्रकट की। मैं समझता था कि मेरे चित्र की काफी प्रशसा होगी और संभवतः इसीके द्वारा मेरा बेड़ा पार हो जायगा, किन्तु मेरी मनोदशा की कल्पना आप कर लीजिये जब चार दिनों की दौड़-धूप के बाद एक राजकर्मचारी ने वह चित्र वैरंग मुझे वापस करते हुए मेरी आशा पर तुषार-पात कर दिया। मैं एकाएक सातवें आस्मान से नीचे जमीन पर आ रहा और मेरा सारा कला-गर्व चूरचूर हो गया। मैंने लज्जा के मारे अपनी इस अवज्ञा की कहीं चर्चा तक न की।

इस घटना के पूरे सात वर्ष बाद जब 'भंडार' में रहते-रहते मेरी कुछ ख्याति हो चली, तब एक दिन दरभंगा-राज से एक पत्र 'पुस्तक-भंडार' के नाम आ पहुँचा जो अविकल रूप में नीचे उद्धृत किया जाता है—

DARBHANGA
The 1st. March, 1942.

My dear Rai Sahib,

It may be news to you to learn that we have decided to hold an exhibition of all arts, crafts and industries found in Raj villages and His Highness is very keen on having such a show. You will be glad to hear we have co-opted your artist Shri Upendra Maharathi as a member of our committee. His co-operation and collaboration will, I am sure, prove very helpful May I therefore request you to very kindly allow him to work with us for the successful meterialisation of the scheme? I hope as one who has always taken an active interest in all beneficent work for the welfare of the district you will accord the permission requested.

* * *

कहना न होगा कि मास्टर साहब की छत्रच्छाया में रहकर मेरी तूलिका ने जो परिष्कृत स्वरूप ग्रहण किया, उसने अनायास ही मुझे उस राजसम्मान का अधिकारी बना दिया जिसे प्रयास करने पर भी मैं पहले नहीं पा सका था। अब मास्टर साहब की उस उक्ति का गूढ़ अभिप्राय मेरी समझ में आया जिसमें उन्होंने कहा था कि समय पर तुम्हें श्रीमान् मिथिलेश की सेवा में पहुँचा दूँगा।

सन् १९४० ई० में रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर देशपूज्य राजेन्द्र बाबू ने मेरी कृतियों की प्रशंसा सुनकर मास्टर साहब से मुझे छ-सात महीनों के लिये माँग लिया। वहाँ जाकर मैंने बिहार के अतीत गौरव-सम्बन्धी चित्र बनाये जिन्हें सब लोगों ने पसंद किया। मास्टर साहब मेरे सुयश पर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे अनुभवी मास्टर अपने सुयोग्य छात्र की सफलता पर आनंदित होता है।

'भंडार' के सात्त्विक वातावरण में रहते-रहते मुझमें भी कुछ-कुछ साधु प्रकृति का उदय हो चला है। कट्टर मांसभोजी अब मैं शुद्ध निरामिष-भोजी बन गया हूँ। मास्टर साहब के प्रभाव से, मैं अनुभव करता हूँ, जैसे मेरे जीवन की धारा ही भिन्न दिशा में प्रवर्त्तित हो गई हो। जिस प्रकार दिशाज्ञान-शून्य नाविक ध्रुवतारा पाकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है उसी प्रकार मेरे-जैसे निश्चित उद्देश्यहीन जीवन बितानेवाले नवयुवक के लिये भाग्यवश एक पथ-प्रदर्शक गुरु मास्टर साहब के रूप में मिल गये। मास्टर साहब पर मेरी अविचल श्रद्धा है। इस जीवन में उनके इस गुरुतर ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं होने का।



मास्टर साहब और साहित्य-सम्मेलन

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, बिहारप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के जन्मकाल से ही मास्टर साहब और उनके 'भंडार' से सम्मेलन का अत्यन्त मधुर और घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अपने सरल और संकोची स्वभाव के कारण मास्टर साहब सभा-सोसाइटियों से सदा अलग रहते हैं। फिर भी, मुझे जहाँ तक स्मरण है, वे सम्मेलन के तृतीय और सप्तम अधिवेशनों में प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए थे। तृतीय अधिवेशन (सीतामढ़ी) की विषयनिर्वाचिनी समिति में जब बिहार के राष्ट्रीय विद्यालयों में बिहार में छपी पुस्तकें पाठ्य पुस्तकों के रूप में रखने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ तब देशरत्न पूज्य श्रीराजेन्द्र बाबू ने कहा कि बिहार-विद्यापीठ के विद्यालयों के लिये हिन्दी-रीडरों की जरूरत है। इसपर मास्टर साहब ने शीघ्र ही हिन्दी-रीडरों को तैयार कर प्रकाशित करने का वचन दिया और सिर्फ एक महीने के भीतर उन्होंने रीडरें तैयार कर प्रकाशित कीं। वे रीडरें बरसों तक बिहार के राष्ट्रीय विद्यालयों में पढ़ाई जाती रहीं। सप्तम अधिवेशन (दरभंगा) की स्वागत-समिति को इनसे काफी सहायता मिली थी और उस अवसर पर सम्मेलन के बीसों प्रतिनिधि उनके अतिथि होकर 'भंडार' में ही ठहरे थे। सम्मेलन ने अपने कार्यालय में जब पुस्तकालय का संगठन किया तब मास्टर साहब ने 'भंडार' से प्रकाशित सभी पुस्तकें सम्मेलन-पुस्तकालय को दीं तथा उसके बाद से जैसे-जैसे 'भंडार' से पुस्तकें प्रकाशित होती गईं, वे उन्हें सम्मेलन-कार्यालय में भेजते गये। 'भंडार' का 'बालक' तो शुरू से ही सम्मेलन-कार्यालय में आकर समान रूप से सभी वाचकों का मनोरंजन करता रहा। सम्मेलन के प्रथम पाँच अधिवेशनों के सभापतियों तथा स्वागताध्यक्षों के भाषणों को 'बिहार का साहित्य' के नाम से 'भंडार' ने ही प्रकाशित किया। सम्मेलन का एक वर्ष का वार्षिक विवरण भी विद्यापति-प्रेस में छपा था। सम्मेलन के साथ मास्टर साहब

की सच्ची सहानुभूति सदा से रही है और सम्मेलन के आरंभिक जीवन में मास्टर साहब तो सम्मेलन के कुछेक सहायकों में थे।

वे सम्मेलन की स्थायी समिति के लगातार १०–१२ वर्षों तक सदस्य रहे हैं और कभी-कभी उसकी बैठकों में उपस्थित भी होते रहे हैं। सम्मेलन का कार्यालय जबतक मुजफ्फरपुर मे रहा, वे जब-जब मुजफ्फरपुर आते, एक बार जरूर सम्मेलन-कार्यालय मे आकर इन पंक्तियों के लेखक तथा मित्रवर स्वर्गीय राघवजी से मिलकर सम्मेलन की कठिनाइयो और कार्यों से परिचित हो जाया करते थे। स्वयं प्रकाशक होकर भी वे सम्मेलन से साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन पर सदा जोर दिया करते थे। एक बार तो सम्मेलन की आर्थिक कठिनाई दूर करने के लिये उन्होंने यह भी राय दी कि सम्मेलन अपने तत्त्वावधान में सुंदर सुसम्पादित हिन्दी-रीडरें तैयार कराकर टेक्स्टबुक कमिटी के सामने उपस्थित करे और उनके स्वीकृत हो जाने पर उन्हे रायल्टी पर किसी प्रकाशक को दे दे जिससे उनका अंदाज था कि सम्मेलन को हजारों रुपये साल की आय होगी। सम्मेलन-कार्यालय के पटना चले जाने पर उन्होंने दूसरी बार सम्मेलन-पुस्तकालय के लिये अपने 'भंडार' की सारी पुस्तकें दी तथा सम्मेलन-भवन के निमित्त पहली जमीन खरीदने के लिये भी उसकी पूरी कीमत सम्मेलन को दी।



मास्टर साहब

श्रीयुत अनिरुद्धलाल 'कर्मशील', ताजपुर, दरभंगा

'बेनीपुरी'।

'जी'—व्यस्त होकर बेनीपुरी ने कहा। पर्दा उठा और वे भीतर आये। वे ही थे मास्टर साहब।

'ये कौन हैं ?'—पूछा उन्होंने।

'ये कर्मशील हैं। अपने 'बालक' में इनकी रचनाएँ निकलती हैं।'

'ओहो, तुम्हीं हो कर्मशील! अच्छा, अच्छा, भाई, तुममें प्रतिभा है। भगवान् ने चाहा और तुम प्रयत्न करते गये तो नाम करोगे।'

मैंने देखा कि 'भगवान् ने चाहा तो'—इतना कह देने के बाद भी वे 'प्रयत्न'-विषयक शर्त लगा देना न भूले। कुछ समझा, कुछ भाँपा। यही गुर है मास्टर साहब की सफलता का और इसे वे सबको बाँट देना चाहते हैं—सतत प्रयत्न और भगवान् की दया।

फिर तो जब जाता, दर्शन कर आता—प्रसाद के लोभ से। वहाँ खाने को भरपेट मिल जाता था और घंटों साहित्यचर्चा चलती।

मगर, मास्टर साहब उन दिनों लेखक को परख रहे थे और शायद उनकी जाँच में आया कि मैं कुछ काम का हो सकता हूँ। जब उनकी जाँच खतम हुई तब उन्होंने कुछ सलाहें दीं, सहारा देने का वचन दिया। मैं जानता हूँ, मास्टर साहब का सहारा पाकर आज बिहार के कितने नवयुवक चमक रहे हैं।

एक बार लेखक अपने पिताजी के साथ लहेरियासराय गया हुआ था, कचहरी का काम खतम करके वह सीधे अकेला 'भंडार' पहुँचा। पिताजी भी खोजते हुए वहीं पहुँचे। उन्होंने मास्टर साहब से पूछताछ की और जब मास्टर साहब ने आगन्तुक का परिचय जाना तब वे उठकर खड़े हो गये और प्रणाम किया, कहा—'जब आप कर्मशील के पिता हैं तब मेरे भी हुए।' आज तक पिताजी को मास्टर साहब का वह व्यवहार मोहे हुए है और पिताजी उनकी बड़ाई करते नहीं अघाते। आत्मविश्वास, शिष्टता तथा स्वातन्त्र्य-प्रियता—इन तीन तत्त्वों को अपनाकर उनके साथ अध्यवसाय का संयोग करके ही उन्होंने इतना कुछ किया है। वे बिहार के हमारे-जैसे नवयुवक लेखकों के पथप्रदर्शक हैं।

उनका 'भंडार' एक पुस्तकागार ही नहीं है, बल्कि एक संस्था है, एक शिक्षणालय है, जहाँ से सीखकर नौजवान निकलते और चमकते हैं।



बिहार के 'लॉर्ड नार्थक्लिफ' *

श्रीशिवनन्दन पांडेय, शिक्षक, डुमरिया (बलिया, यु० प्रां०)

आज के विहार में कौन ऐसा साक्षर होगा, जिसने श्रीरामलोचनशरण विहारी की लिखी या संगृहीत या सम्पादित पुस्तके न पढ़ी हो। विहार ही क्यो, अन्यान्य प्रान्तो मे भी इनकी रची पुस्तके बड़े चाव एवं सम्मान के साथ पढ़ी-पढ़ाई जाती है। इनके द्वारा सम्पादित 'वालक' हिन्दी-संसार मे सबको सन्तुष्ट कर रहा है। इनके द्वारा स्थापित सुविशाल 'पुस्तक-भंडार को देखकर कोई सहसा विश्वास नही कर सकता कि इसका निर्माता पन्द्रह रुपये-मात्र मासिक वेतन पाने-वाला एक साधारण शिक्षक रहा होगा।

ये महाशय किसी समय मेरे सहयोगी या सहकर्मी थे, किन्तु ऐसा कहकर मै अपनी हँसी कराना नहीं चाहता। यह सब-कुछ परमात्मा की महती कृपा है। यदि परमात्मा की कृपा न होती तो क्या आठ रुपये वेतन पानेवाला 'लंगट सिह' पैट-मैन मुजफ्फरपुर का विशाल कालेज वना सकता ?

× × × ×

पुरुप का विकास एकाएक नही होता। किसी छोटी वस्तु या किसी साधारण घटना के व्याज से वह कर्म-क्षेत्र मे दर्शन देता है। क्रमशः बढ़कर अन्त मे अपना नाम अमर कर जाता है। ये ऐसे ही पुरुप हैं।

मैकमिलन-कम्पनी की 'हिन्दी-लिटररी-रीडर' को व्याख्या के लेखक के रूप

* लार्ड नार्थक्लिफ—ईंगलैंड के प्रसिद्ध पत्रकार और पत्रप्रकाशक। जन्म—डबलिन (आयरलैंड) में १५ जुलाई, १८६५। मृत्यु—१४ अगस्त, १९२२। दि इवनिंग न्यूज, दि डेलीमेल, दि डेली मिरर, दि आबजर्वर, दि टाइम्स आदि सुप्रसिद्ध पत्रों के जन्मदाता और संचालक।

मे, सन् १९११ ई० मे, साहित्य-क्षेत्र मे इनके दर्शन हुए। वह पुस्तक विहार की पाठशालाओ (अपर प्राइमरी वर्गों) मे पढ़ाई जाती थी। थी तो वह छोटी-सी एक रीडर, पर ठेठ शब्दो का भंडार थी। शब्दो का अर्थ समझना दूभर था। मैंने भी उसकी 'व्याख्या' लिखी। उसे छपवाने के लिये प्रेसो से पत्र-व्यवहार कर रहा था। उसी समय इनकी लिखी 'व्याख्या' मैंने छपी देखी। चकित होकर उसे बडे गौर से आद्योपान्त पढ़ गया। मैंने अपनी 'व्याख्या' को छिपा रखना ही उचित समझा।

× × × ×

सन् १९१२ ई० मे ये गया-जिला-स्कूल मे थे। मै शाहपुर-औरंगावाद (गया) के गुरु-ट्रेनिंग-स्कूल मे हेड-मास्टर था। 'निम्न-शिक्षक-सुहृद्' नाम की एक मोटी पुस्तक गुरुओ को पढ़ाई जाती थी। गुरु भी प्राय. लोअर-प्राइमरी तक ही पढ़े रहते थे। यह पीन-कलेवरा पुस्तक गुरुओ के लिये दुर्वोध थी। मैंने उसका एक नोट लिखा। उस समय खड्ग-विलास प्रेस से 'शिक्षा' पत्रिका निकलती थी। उसमे पटना-ट्रेनिंग-कालेज के प्रिन्सिपल थिकेट साहव का एक विज्ञापन देखा। उसमे शिक्षा-प्रणाली, पाठ-टीका आदि विषयो पर निवन्ध लिखने का अनुरोध किया गया था। मेरे गुरुदेव वावू वेचूनारायण, वावू रामचन्द्रप्रसाद आदि के लेख निकलने लगे। मै भी अपने उत्साह को रोक न सका। 'पाठ-टीका' और 'पाठन-प्रणाली' शीर्षक मेरे भी कई लेख 'शिक्षा' मे छपे। उनमे से कुछ लेखो के लिये मुझे प्रथम पुरस्कार भी मिले। अव मै उपर्युक्त नोट को संशोधित एवं परिष्कृत करके छपवाने की धुन मे लगा, किन्तु वह धुन हिरन हो गई जव मैंने एक दिन अचानक देखा—रामलोचनशरणजी की लेखनी का चमत्कार—'निम्नशिक्षक-सुहृद् का नोट !' उसे भी आद्योपान्त पढ़ा। मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि इनकी अन्वेषण-वुद्धि, लेखन-शैली और पाठन-प्रणाली अपूर्व है। मैंने लज्जित होकर अपना 'नोट' खटाई मे डाल दिया।

× × × ×

मेरा 'हिन्दी-भाषा का अपूर्व व्याकरण' लक्ष्मी प्रेस (गया) मे छप रहा था। सन्ध्या का समय था। लम्प जलाकर मै उसका प्रूफ देखने वैठा। इतने मे मेरे एक मित्र ने समाचारपत्र लाकर दिखाया—"युक्तप्रान्त की सरकार ने वावू रामलोचनशरण को इनके 'व्याकरण-वोध' पर १६७) पुरस्कार दिया है।" मैंने वड़े ध्यान और डाह के साथ पढ़ा। कुछ मिनट मौन रहा। तवतक मित्र ने कहा—"देखे, 'अपूर्व व्याकरण' के लिये सरकार क्या पुरस्कार देती है।" यह जले पर नमक था। किन्तु मानसिक कष्ट को छिपाकर मैंने 'डाह' को 'श्रद्धा' के रूप मे परिवर्त्तित कर दिया। इनसे प्रतिद्वन्द्विता करने की व्यर्थ कल्पना त्याग दी।

सन् १९०९ ई० मे सरकार ने नवीन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की। मैं नवीन पद्धति से गुरुओ को पढ़ाने लगा। उसके नियम, क्रम, विधि, व्यवस्था आदि का अध्ययन किया। इसीके आधार पर दो-तीन पुस्तके भी लिखी। उन्हें छपवाकर बाबू रामसहायलाल (बुकसेलर, गया) के द्वारा बेचने भी लगा। चार-पॉच वर्षों तक अच्छा लाभ हुआ। इसी बीच मे मेरी बदली गुमला (रॉची) हो गई। साथ ही, मेरी व्यवसाय-बुद्धि भी तिरोहित हो गई।

बाबू रामलोचनशरणजी कब चूकनेवाले थे। आप अध्यवसायी भी उच्च-कोटि के है। इस बीच मे आपने लोअर से लेकर मिड्ल तक के लिये कितनी ही मौलिक हैंड-बुक लिख डालीं। टेक्स्ट-बुक-कमिटी भी उनपर अपनी मुहर लगाने लगी। बिहार मे आपकी पुस्तकों का सर्वत्र आदर होने लगा। शिक्षा-विभाग में आपकी पुस्तको का बोल-बाला हो गया। अब बाल-वर्ग से लेकर मैट्रिक, इंटरमिडियट, आचार्य, विशारद आदि तक मे आपकी लिखित, संगृहीत एवं सम्पादित पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं।

बाबू रामलोचनशरणजी गणित की ओर से भी उदासीन न रहे। भाषा पर आपका जैसा अधिकार और प्रभाव है, गणित पर उससे कम नही है। लोअर से लेकर मिड्ल तक आप ही की लिखी गणित-पुस्तके पढ़ाई जाती है। अब तो मैट्रिक मे भी आपकी गणित-पुस्तक जारी है। इन गणित-पुस्तको मे जैसी पाठन-प्रणाली, दृष्टान्त-प्रश्नावली आदि है, वैसी अन्य पुस्तकों मे नही पाई जाती।

× × × ×

आपका ध्यान केवल पाठ्य पुस्तको तक ही सीमित नही है। साहित्य की उन्नति करने मे आप किसी से पीछे नहीं है। हिन्दी-साहित्य का भंडार भरने में आप तन-मन-धन से लगे हुए है।

बिहार-सरकार की निरक्षरता-निवारिणी संस्था को आपने उल्लेखनीय सहायता दी है। नवीन प्रणाली की अनेक पुस्तके, स्लेटे और लालटेनें निरक्षर जनो मे वितरित करके जनता और साहित्य की सच्ची सेवा की है।

'बालक' आपकी सम्पादन-कला-कुशलता का सुन्दर नमूना है। इसके लेख और चित्र किसे मुग्ध नही करते ? यह बिहार का अनमोल लाल है।

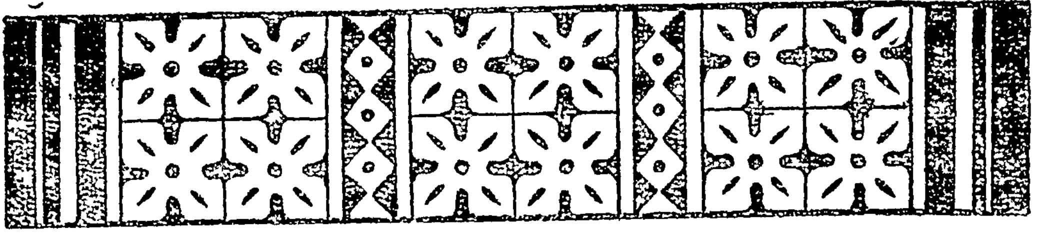
आपने अपने प्रेस का नाम 'विद्यापति प्रेस' क्यो रक्खा ? इसके दो कारण है—एक तो अपनी जन्मभूमि मिथिला के महाकवि विद्यापति का सम्मान, दूसरा अपनी जन्मभूमि मिथिला का अनुराग। आज उस प्रेस मे बिजली से मशीनें दिन-रात चलकर अनेक सुन्दर ग्रन्थ छाप रही हैं।

आपके दयाभाव का एक ही दृष्टान्त अलम् है। डुमरिया (बलिया) से

एक गरीब आपके पास गया। घर लौटने का मार्ग-व्यय उसके पास नहीं था। आपने गाड़ी-भाड़ा और भोजन-व्यय देकर उसे डुमरिया भेज दिया।

साधारण शिक्षक की अवस्था से आज जिस उन्नत अवस्था को आप पहुँचे हैं, उसका कारण है आपका अध्यवसाय—आपकी कर्मनिष्ठा—आपका आत्म-विश्वास—परमात्मा की कृपा। मैंने किसी पुस्तक मे पढ़ा था—"स्कूल जीविका का भंडार है।" इसको आपने सत्य करके दिखला दिया। आप सचमुच विहार के 'लार्ड नार्थ क्लिफ' है। आपकी जीवनी प्रकाशको के लिये मनन करने की वस्तु है।





शरणजी का बाल्यकाल

श्रीकिशोरीलाल दास; मकुनाही (मुजफ्फरपुर)

शरणजी के पिता आदर्श गृहस्थ थे। इनके और हमारे पूर्वजो मे गाढ़ी मैत्री चली आती थी, अत. हम उन्हे 'चाचा' कहते थे। चाचाजी के ये प्रथम पुत्र-रत्न थे। पाँच वर्ष की अवस्था मे इन्हे हमारे गाँव के एक कायस्थ (स्व०) कोदईलाल ने इन्हें सर्व-प्रथम खली छुलाई। उनसे कुछ दिन पढ़ लेने के बाद इनका नाम अपर-प्राइमरी स्कूल मे लिखाया गया। स्कूल मे दो शिक्षक थे—बाबू रघुनी साहु और पं० हरिवंश झा। मै भी उसी स्कूल में पढ़ता था।

पढ़ने में ये इतने तेज थे कि जो पाठ गुरुजी पढ़ाते, इन्हें उसी समय कंठस्थ हो जाता। जिस समय गुरुजी नया पाठ पढ़ाते थे, ये बड़े ध्यान से उसे सुनते थे। यदि क्लास का कोई लड़का उस समय इनकी कलम, पेंसिल या अन्य कोई चीज उठा लेता तो ये कुछ नही देखते थे। जब गुरुजी चुप होते, तब कही ये अपनी खोई हुई चीज ढूँढ़ते। ये अपने क्लास के लड़को मे सबसे तेज विद्यार्थी थे। निडर इतने थे कि गुरुजी के अतिरिक्त किसी का रोब नहीं मानते थे। शांत भी उतने ही थे। कभी किसी के साथ लड़ना-झगड़ना नहीं चाहते थे। बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। एक बार लोअर क्लास मे, गुरुजी ने रेखा-गणित पढ़ाते समय, अपर के एक विद्यार्थी कालीचरण तिवारी को, जो सबसे तेज समझे जाते थे, एक वृत्त बनाने के लिये कहा। जब वे स्लेट पर वृत्त नही बना सके तब गुरुजी ने इनको पुकारकर कहा—"रामलोचन, तुम स्लेट पर गोलाकार रेखा (वृत्त) वना सकते हो तो बनाओ।" इन्होने झट स्लेट-पेंसिल उठाई। अपनी तर्जनी उँगली से केंद्र लगाकर ठीक वृत्त वना दिया। गुरुजी बड़े खुश हुए।

ये स्वतंत्र विचार के थे। जब कभी कुछ कहते, इनके माता-पिता को पूरा करना पड़ता था। जिस दिन स्कूल जाने की इच्छा नहीं होती, नहीं जाते थे। जब गुरुजी इन्हे बुलाने के लिये इनके दरवाजे पर पहुँचते, कन्नी दबाकर निकल जाते। गॉव के बाहर किसी बगीचे मे खेलते रहते।

पाठ याद रखने मे तो बेजोड़ के। बड़ी सफाई के साथ अपना सबक सुना देते थे। कठिन-से-कठिन हिसाब भी बात-की-बात मे हल कर देते थे। इससे गुरुजी भी खुश हो कोई दंड नही देते थे।

अपने सहपाठियो से इनका खूब मेल रहता था। मिल-जुलकर खाने-खिलाने मे इन्हे बड़ा आनद आता था। ये अपने घर से माताजी की ऑख बचाकर खाने-पीने की चीजे उठा लाते थे और सहपाठियो के बीच बॉटकर खाते थे। जब कभी इनके यहॉ कही से 'सॅदेशा' आता था, उसमे से प्राय. चौथाई भाग इसी तरह लाकर सहपाठियो को खिलाया करते थे।

कई बरस तक लगातार उपज कम हो जाने और अपनी पट्टीदारी मे विच्छेद होने के कारण चाचाजी के सिर कर्ज का बोझ पड़ गया। कसौटी पर कसे जाने पर भी सोना दमकता ही रहता है। चाचाजी की आर्थिक दशा गिरी हुई थी। मुश्किल से ४—५ बीघे खेत बचे थे। कुछ जमीन फॅस गई थी। व्यापार भी कुछ अच्छी पूॅजी का नही था। तो भी वे हिम्मत हारनेवाले पुरुष नहीं थे। किसी के रोब-दाब मे नही रहते थे। कष्ट झेलते हुए भी अपने प्यारे पुत्र को शिक्षित बनाने के धुनी थे।

चाचाजी की इच्छा न रहने पर भी ये स्कूल से छुट्टी पाकर कभी-कभी गृहस्थी मे मदद कर दिया करते थे। बड़े प्रेम से गाय-बैलो को चारा देते, सानी बना देते, बथान भी साफ कर दिया करते। गाय पर तो इनकी अपार श्रद्धा थी।

धर्म की ओर इनका झुकाव बचपन से ही है। जब ये अपर मे पढ़ रहे थे, क्लास मे धर्म-शिक्षा की भी एक पोथी पढ़ाई जाती थी। दोपहर को छुट्टी पाकर, अपने गॉव के दक्षिण राधेश्वरी पोखरे मे, स्नान करने जाते। स्नान कर धर्म-शिक्षा की उस पोथी का पाठ बड़ी भक्ति से करते थे। तब घर आकर भोजन करते।

झूठ से इन्हे नफरत थी। कोई भी बात गुरुजी से सच-सच बता दिया करते थे। इसलिये क्लास के लड़के इनसे डरा करते थे।

जब ये मिड्ल स्कूल मे पढ़ते थे, तभी से इनका मन पुस्तक लिखने की ओर आकृष्ट हुआ। गणित के तो ये पक्के जानकार थे। वहीं इन्होने 'पी० घोष

पाटीगणित' के कुल हिसाब आद्योपांत क्रिया-सहित बनाकर एक पुस्तक तैयार की। पर किसी सज्जन ने इनकी लिखी वह पुस्तक उड़ा ली।

इनके ध्यान मे एक और बात समा गई थी। वह यह कि टोले मे बड़ी गंदगी फैली हुई है, उसे साफ रखना चाहिये। एक बार छुट्टी मे घर आये। एक सड़क, जो इनके घर के उत्तर से पूरब-पश्चिम गई थी, बड़ी गंदी थी। उसे देखते ही कुदाल और टोकरा लेकर उसे साफ करने पर तुल गये। यह देखकर उस टोले के कई और लड़के भी उस काम मे जुट गये। आखिर उस रास्ते को साफ करके ही छोड़ा। ऐसा इन्होने कई बार किया।

सन् १९०२ ई० मे ये मिडूल की परीक्षा देकर घर चले आये। इसके बाद इनका गौना हुआ। घर मे नई दुलहिन आई। पर आजकल के विद्यार्थी की तरह नई दुलहिन पाकर पढ़ने की ओर से ध्यान न हटाया। बेकार गॉव के लड़कों के साथ व्यर्थ की बाते नहीं करते थे। अपने एक पड़ोसी कायस्थ बाबू रामअवतार लाल से केवल एक मास मे ही उर्दू लिखना-पढ़ना सीख लिया।

इसी समय इन्होने 'चंद्रकांता' उपन्यास पढ़ा। उसी ढर्रे का एक नया उपन्यास लिखने लगे। किन्तु वह पूरा न हो सका। इसी बीच इनका परीक्षा-फल निकला। इसमे भी इनका स्थान ऊँचा रहा; पर कुछ षड्यन्त्रकारियो के प्रयास से इनकी उम्र बढ़ा दी गई, जिससे सर्व-प्रथम होने पर भी स्कॉलरशिप नहीं पा सके।

मिड्ल पास करने पर इनकी इच्छा आगे पढ़ने की थी। चाचाजी की हिम्मत भी बढ़ गई थी; पर हाथ खाली था। लाचार इन्हे गुरुआई करनी पड़ी। पहले तो अपने गॉव से पूरब 'जवाही' गॉव मे लड़को को पढ़ाने लगे। किन्तु वहॉ इनका मन नही लगा। थोड़े ही दिनो के बाद घर चले आये। फिर 'सहनियापट्टी' गॉव मे जाकर लड़को को पढ़ाने लगे। यह इनके गॉव से लगभग आध मील की दूरी पर है। वहॉ भी इनका जी नहीं लगता था। इनकी इच्छा तो आगे पढ़ने की थी।

इन दोनो जगहो मे पढ़ाने से जब इनके हाथ पर कुछ रुपये आ गये, तब इन्हीं रुपयो को लेकर बड़ी प्रसन्नता से ये पटना पहुँचे। इनके पास रेल-भाड़े के सिवा तीन-चार ही रुपये थे। तथापि वहॉ इन्होंने नार्मल-ट्रेनिग मे नाम लिखाया। खूब मन लगाकर पढ़ने लगे। वहॉ इन्हे छात्रवृत्ति भी मिलती थी। अपने शिक्षको पर इनकी अपार श्रद्धा थी। शिक्षक भी इनके समान आदर्श विद्यार्थी पाकर बड़े खुश थे। खूब प्रेम से पढ़ाते थे। ये स्कूल से छुट्टी पाकर खेल-कूद में शामिल नही होते थे, वरन् पुस्तको के नोट आदि लिखा करते थे।

१९०७ ई० में इन्होने नार्मल-ट्रेनिंग की परीक्षा पास की। वहाँ भी इनका स्थान प्रान्तभर मे ऊँचा रहा। इनकी ड्राइंग-(चित्र)-कला भी बड़ी अच्छी थी। खूब सुन्दर-सुन्दर चित्र बना लिया करते थे। इनके परीक्षोत्तीर्ण होने पर चाचाजी ने धूमधाम से भगवान् सत्यनारायण की पूजा की।

अब इनके सामने संसार की विकट यात्रा का प्रश्न आया। इसी समय इनके एक शिक्षक मोतिहारी-जिला-स्कूल मे हेडमास्टर होकर आये। ये उनकी कृपा से उसी स्कूल मे शिक्षक नियुक्त हुए। अब ये छात्र से 'मास्टर साहब' हो गये।





छात्रोपकारी शरणजी

पं० सौखीलाल झा, प्रधान, हिन्दी-शिक्षक, टी० के० घोष एकेडमी, पटना

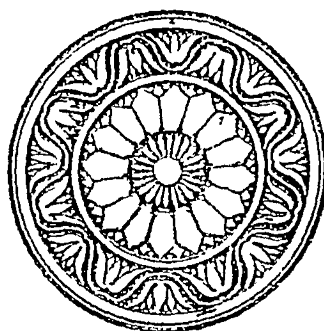
आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व। मैं १२ वर्ष का था। लोअर प्राइमरी पास कर पचाढ़ी (दरभंगा) के मिडूल-इंगलिश स्कूल मे पढ़ता था। लहेरियासराय का नाम मात्र ही जानता था, मुझे कुछ कोर्स की किताबें खरीदनी थीं। मै एक छोटा लड़का, वहाॅ से पैदल ७ कोस चलकर करीब १२ बजे आपके 'भंडार' मे पहुँचा। आप मेरा सूखा चेहरा देखते ही समझ गये कि मैंने कुछ खाया नहीं है। आपने मुझे स्नान-भोजन कराया। दो किताबे अपनी तरफ से मुफ्त दीं। उसी दिन से मैं आपको परम साधु समझने लगा।

जब मैं मारवाड़ी हाइस्कूल, (दरभंगा) मे पढ़ता था, मैंने देखा कि आप कतिपय छात्रो को मुफ्त पुस्तके देकर पढ़ने मे सहायता देते है। आपका परोपकार देखकर मैं मुग्ध रह जाता। एक समय मैंने आपसे कहा भी था—"मास्टर साहब, लोगो को इस तरह आप पुस्तक, भोजन इत्यादि देते हैं; क्या 'भंडार' की इससे हानि नहीं होगी?" छूटते ही आपने कहा—"यह सब परमात्मा की दया और प्रेरणा है।" उसी समय से मुझे मालूम हुआ कि आप उन सांसारिक व्यवसायियो की कोटि मे नहीं हैं, जो रुपया कमाना ही एकमात्र पुरुषार्थ समझते हैं।

जब से मैं टी. के. घोष हाइस्कूल मे हूँ, तब से आपकी साधुता, उदारता और दानशीलता देखता आ रहा हूँ। एक गरीब विद्यार्थी को मैंने कुछ पुस्तको के लिये दो-तीन प्रकाशकों के यहाॅ भेजा। कोई भी बिना मूल्य पुस्तक देने को तैयार नहीं हुए। 'भंडार' की ओर उस गरीब विद्यार्थी को लेकर चल पड़ा। 'भंडार' ने सब किताबें उस गरीब को मुफ्त दे दीं।

पटना मे जितने प्रकाशक हैं, किसी मे ये बाते नही हैं। मैं यहाँ १४ वर्षों से हूँ। सबको खूब जानता हूँ। जब से 'भंडार' पटना मे खुला, उससे ५ वर्ष पूर्व ही से मैं ईश्वर से बराबर प्रार्थना किया करता था कि यहाॅ के गरीब शिक्षकों और विद्यार्थियो के लिये भगवान् कब सहायक भेजेगे। मैं बराबर देख रहा हूँ कि 'भंडार' गरीब छात्रो को अनेक प्रकार से सहायता देता आ रहा है। मास्टर साहब की ऐसी खास आज्ञा है।

संसार मे वे ही बड़े है जो दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि 'भंडार' के व्यवस्थापक दीर्घजीवी हो, ताकि गरीब छात्रों का बराबर उपकार होता रहे।





बिहार के द्विवेदीजी

रेवरेंड प० श० नवरंगी; राँची

पचीस वर्ष पूर्व श्रीरामलोचनशरणजी ने, इस प्रान्त मे हिन्दी की दशा देख, अपना सारा साहस बटोरकर, प्रण किया कि मै हिन्दी का सिर ऊँचा करूँगा—बिहार मे विशुद्ध हिन्दी का प्रचार करूँगा।

शरणजी ने शीघ्र प्रणपूर्त्ति के कार्य मे हाथ डाला। 'पुस्तक-भंडार' को स्थापित किया। उसको उन्नत करने मे अपनी सारी शक्ति लगा दी। एक ओर वे नये लेखको का उत्साह बढ़ाते, दूसरी ओर स्वयं अपनी लेखनी धड़ाधड़ चलाते रहते थे। पाठ्य और साहित्यिक पुस्तको की झड़ी-सी लगा दी।

आचार्य द्विवेदीजी को अपना आदर्श मानकर इन्होने सभी क्षेत्रो मे हिन्दी की उन्नति करनी चाही। पहले तो देखा कि बिहार मे भाषा की विशुद्धता की ओर लोग कुछ भी ध्यान नही देते। व्याकरण-सम्बन्धी नियमो मे भूल करते है। इसलिये सबसे पहले उनका ध्यान व्याकरण की ओर गया। उन्होने बड़े-छोटे कई व्याकरण लिखे और उनके नये-नये संस्करण निकाले।

उन्होने अपने व्याकरण अँगरेजी-व्याकरण के आदर्श पर ही लिखे। आज कितने पंडित इन व्याकरणो पर नाक-भौ सिकोड़ते है। पर उन्हे यह भूल न जाना चाहिये कि इन्ही व्याकरणो की कृपा से आज हममे से बहुतेरे थोड़ी-बहुत विशुद्ध हिन्दी लिख और बोल सकते है।

उन्होने अनुभव किया कि बड़े-बूढ़ो की अपेक्षा कोमल-मति बालको पर ही शुद्ध हिन्दी का प्रभाव डालने का प्रयत्न करना चाहिये। अतः बालोपयोगी पुस्तकें लिखना और छापना आरम्भ कर दिया। उन्होने स्वयं कितनी ही स्कूली

रीडरें लिखी—संकलित की; दूसरो को लिखने के लिये उत्साहित किया। इस कार्य को वृहत्तर क्षेत्र मे फैलाने और स्थिर रखने के लिये ही उन्होंने 'बालक' निकाला।

ये सब कार्य किसी भी साहित्यिक दिग्गज को गौरव प्रदान करने के लिये काफी है, परन्तु हमारे इस साहित्यिक महारथी ने इतने ही से संतोष न किया। वे भीष्मपितामह की तरह आज भी अविचल गति से साहित्य के मैदान मे आगे बढ़े जा रहे है।

मेरे जानते हिन्दी-भाषा के यशस्वी सेवको मे कदाचित् स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी तथा रायबहादुर श्यामसुन्दरदासजी के सिवा और कोई ऐसा व्यक्ति न होगा, जिसने अकेले ही हिन्दी के प्रचार के लिये इतने कार्य किये और इतने कष्ट सहे। आज भी सर्वत्र हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्यिक है जो स्वान्त' सुखाय लिख रहे है, परन्तु शरणजी हिन्दी-प्रचार के लिये ही कलम उठाते है।

सभी हिन्दी-प्रेमी, विशेषत. बिहार के, आज बिहार के इस द्विवेदी पर गर्व करते है—उन्हे बधाइयाँ देते नही अघाते। परमेश्वर करे, उनकी कीर्त्ति-लता का दिन-दिन विस्तार होता रहे।





बिहार में सरल गद्य-शैली के प्रवर्त्तक—'मास्टर साहब'

अध्यापक योगेन्द्र सिंह; दरभंगा

जब मै बालक था, अपने शिक्षक बाबू याज्ञेश्वर सिहजी के साथ 'पुस्तक-भंडार' मे पुस्तक खरीदने गया था। याज्ञेश्वर सिहजी सर्किल पंडित के स्थान पर भी काम कर चुके थे। कम अँगरेजी जानते हुए भी वे धारा-प्रवाह अँगरेजी बोलते थे। बड़े ही विनोदी व्यक्ति थे। उस समय 'भंडार' की दूकान बाकरगंज-बाजार मे साधारण रूप मे थी। उस समय कोई क्या जानता था कि यही 'भंडार' किसी दिन बिहार का साहित्यिक गौरव होगा।

छात्रावस्था तक मैं बाबू रामलोचनशरणजी के सिर्फ नाम से ही परिचित था। जब मैं १९२४ ई० मे शिक्षक हुआ तब उनके दर्शन कर सका।

१९२९—३० ई० की बात है। मैंने बातो के सिलसिले मे मास्टर साहब से कहा—"मिड्ल के लायक कोई अच्छा संक्षिप्त व्याकरण नही है। यद्यपि 'व्याकरण-चंद्रोदय' का संक्षिप्त रूप 'व्याकरण-नवनीत' के नाम से निकल चुका है, तथापि बहुत बड़ा है।"

उन्होने गौर से मेरी बात सुनी। फिर तुरत उठकर दूकान मे गये। वहाँ से 'व्याकरण-चंद्रोदय', 'संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण' (पं० कामताप्रसाद गुरु) तथा सादा कागज लेते आये। उन्हे मुझे देते हुए कहा—"तुम जैसा चाहते हो वैसा ही व्याकरण लिखकर मुझे दो, तो मै बड़ा कृतज्ञ होऊँगा।"

मैंने असमंजस मे ही व्याकरण लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान् की कृपा से मैंने किताब पूरी कर मास्टर साहब को समर्पित की। उन्होने उसे बाबू अच्युतानंद दत्तजी के हवाले किया और उन्ही की देख-रेख मे 'व्याकरण-

प्रवेशिका' के नाम से छपी। अगर उनकी प्रेरणा न होती, तो आज मुझे जो कुछ भी लिखने का ज्ञान है, वह भी न होता। बाद उन्हीं की प्रेरणा से कई स्कूली पुस्तको की व्याख्या भी लिखी—'बालक' के लिये लेख भी।

मेरी क्या बात, उन्होने सैकड़ो बिहारी युवकों को लेखक बनने में सहायता पहुँचाई है तथा उनकी भाषा का परिमार्जन किया है।

इस सम्बन्ध की एक खास घटना की याद मुझे हो रही है। मुजफ्फरपुर मे पं० पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अष्टादश अधिवेशन हुआ था—'हरिऔध' जी की अध्यक्षता मे कवि-सम्मेलन। पं० हरिमोहन झा, एम० ए० के कविता-पाठ से सबका हृदय आनन्द गद्गद हो गया। पर बाबू रामलोचनशरणजी को जो आनन्द हुआ, वह छिपा न रह सका। उन्होने पुरस्कार की घोषणा की। उसके बाद मैंने हरिमोहनजी को कई बार 'भंडार' मे देखा। पीछे पता चला कि उन्हे 'भंडार' से ही पढ़ने का खर्च बराबर मिलता रहा है। प्राय: मैंने उनको शरणजी की छत्रच्छाया मे कार्य करते पाया। उनके विकास मे शरणजी का बहुत बड़ा हाथ है। फिर पं० रामवृक्ष बेनीपुरीजी को भी 'बालक' का सम्पादन-भार देकर उन्होने ही हिन्दी-संसार के सामने एक ऐसा प्रतिभाशाली लेखक उपस्थित किया, जो आज 'अखिल भारतवर्षीय प्रगतिशील लेखक-संघ' का सभापतित्व तक करके अपनी रचनाओ से हिन्दी को धनी बना रहा है। उन्ही की प्रेरणा और उन्ही के प्रोत्साहन से बेनीपुरीजी ने बाल-साहित्य की कई सुन्दर पुस्तके लिखी हैं।

हिन्दी-भाषा के क्षेत्र मे जो कार्य आचार्य द्विवेदीजी ने कर दिखाया है, बिहार मे वही कार्य उन्होने कर दिखाया है। इस कार्य मे उनके व्याकरण एव उनकी रचना-सम्बन्धी पुस्तको से बड़ी सहायता मिली है।

बाल-साहित्य के वे मर्मज्ञ लेखक है। बिहार मे बाल-साहित्य के विकास का सारा श्रेय उन्ही को है। इस क्षेत्र मे उन्ही के प्रशसनीय प्रयत्नों को देखकर अन्यान्य लोगो मे भी प्रतियोगिता की भावना पैदा हुई। इससे उत्तमोत्तम पुस्तके सामने आई। इस तरह उन्ही के कारण बिहार के साहित्यिक क्षेत्र मे क्रांति उपस्थित हुई है।

वे जैसे मिलनसार, मधुरभाषी, अहम्मन्यता-शून्य, विनोदी तथा व्यवसाय-कुशल व्यक्ति हैं, वह तो सर्व-विदित ही है। उन्होने साहित्य-क्षेत्र मे बिहार के मुँह की लाली रख ली है।

बाल-मनोभाव के विशेषज्ञ—'मास्टर साहब'

श्रीपरमानन्द दत्त 'परमार्थी'; भलुआही (भागलपुर)

श्रीमान् मास्टर साहब के प्रथम शुभदर्शन का सौभाग्य दिसम्बर, १९२६ में प्राप्त हुआ। ज्योंही मैं प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने लगा, कुछ किताबें इनकी लिखी दिखाई दीं। वे ऐसे मनोरंजक बातचीत के ढँग से लिखी गई थीं कि बालकों को तो प्रसन्नता होती ही थी, शिक्षकों को भी कौतूहल उत्पन्न होता था। जैसे-जैसे इनकी किताबों की संख्या अधिक मिलने लगी वैसे-वैसे इनके नाम के साथ 'भंडार' का नाम जुड़ा देखकर दोनों से एक प्रकार की आत्मीयता का बोध होने लगा। मन में भावना होती थी कि वे कैसे होंगे, जिन्होंने हमलोगों के मनोगत भावों को बातचीत के ढँग पर इतनी सहृदयता से अंकित किया है और हमलोगों के पाठ्य विषयों को कहानी का रूप देकर जटिल को भी सुगम और हृदयग्राही बना दिया है। हमारे शिक्षक—जिनका इनसे परिचय था—इनके विषय में इस तरह का वर्णन करते, जिसे सुनकर और भी कौतूहल होता—उत्कंठा होती कि जरा देखूँ तो वे कैसे हैं।

सन् १९२९ में जब मेरे पूज्यचरण अग्रज (श्रीयुत अच्युतानन्द दत्त) 'भंडार' के कर्मचारी होकर आये, तब से मेरी भी 'भंडार' से घनिष्ठता हुई। मास्टर साहब की शीतल दृष्टि और मधुर कृपा मुझे बराबर मिलने लगी। मैं उन्हें गुरुवत् मानने लगा और वे मुझे अनुजवत्। मुझे 'भंडार' में यदा-कदा काम करने का अवसर मिलने लगा। वह भी मास्टर साहब की खास देखरेख में।

एक दिन 'भंडार' के कई कर्मचारी मेरे इर्द-गिर्द बैठे बातें कर रहे थे। हिन्दी-साहित्य की चर्चा चल रही थी। प्रसंगवश एक ने कहा—'हिन्दी के एक-दो पद्य ऐसे जटिल हैं, जिनका कुछ अभिप्राय हमलोगों को नहीं ज्ञात होता।' मैंने साकांक्ष होकर पूछा—'मैं भी तो सुनूँ।'

"वसुधाधर मे वसुधाधर मे . " सवैया सुनाते हुए एक ने कहा—"यह इतना जटिल है कि कुछ समझ मे नहीं आता। यदि इसका अर्थ बाहर के विद्वानों से पूछा जाय तो 'भंडार' की हेठी होगी। हमलोग यहाँ केवल मास्टर साहब और दत्तजी से नहीं पूछ सके है।"

मुझे उस पद्य का अर्थ मालूम था। मैने सबके सामने इसकी व्याख्या की। अर्थ तो हुआ; परन्तु अर्थ सही है या नही, इसके विश्वास के लिये उनलोगों ने श्रीदत्तजी और श्रीहरिमोहनजी को बुलाया। मैंने फिर व्याख्या की। श्रीभाईजी और श्रीहरिमोहनजी के सामने मेरी व्याख्या सही साबित हुई। मुझे स्मरण है कि उसी दिन से मास्टर साहब मुझे स्नेह की दृष्टि से देखने लगे।

दरभंगा-गोशाला मे गो-साहित्य-सम्मेलन का आयोजन हुआ। उसके मंत्री हुए मास्टर साहब। कवि-सम्मेलन मे मेरी समस्यापूर्त्ति की बड़ी प्रशंसा की गई। इसपर मास्टर साहब को सन्देह हुआ कि वे कविताएँ मेरी रचना नही हैं। इसलिये तत्क्षण नई समस्या दी गई। उसकी पूर्त्ति मे भी मुझे सफलता मिली। इससे मास्टर साहब को अपार हर्ष और आश्चर्य हुआ। साथ ही, कविगोष्ठी करने की उनकी इच्छा भी बढ़ी। फल-स्वरूप 'भंडार' मे भी अनेक कवि-गोष्ठियाँ हुईं।

मास्टर साहब जैसे ऊपर से भव्यमूर्त्ति है, वैसे ही भीतर के भी उदाराशय है। उन्होने समय-समय पर जो आर्थिक सहायता दी है, चाहे वह पारिश्रमिक-स्वरूप ही क्यो न हो, अकथनीय है। उनका कृतज्ञ रहना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है।

मास्टर साहब की सहृदयता और उदारता की सुगध दूर-दूर तक फैली हुई है। एक बार श्रीमहावीर-पुस्तकालय के सभापति के रूप मे मधेपुर (दरभंगा) गये। वहाँ इनकी उदारता और सहृदयता ने लोगो को मत्रमुग्ध कर दिया।

मास्टर साहब मुझे सगे-जैसे प्रतीत होते है। 'भंडार' मे आकर मै यह नही समझता कि किसी दूसरे के कारखाने मे बैठा हूँ या इसके हानि-लाभ से मुझे कुछ सरोकार नही है।

मास्टर साहब बड़े साहित्यरसिक, व्यवहार-कुशल, सत्यप्रिय और कर्त्तव्य-निष्ठ है। उसीका यह फल है कि 'भंडार' भी दिनानुदिन अभिवृद्धि करता हुआ उन्नति के शिखर तक पहुँच गया है।

'भंडार' के उन्नति-शिखरारूढ होने का कारण यह है कि मास्टर साहब बाल-मनोभाव के पारंगत विशेषज्ञ हैं। प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र मे उनकी लिखी बालोपयोगी पुस्तको का एकच्छत्र साम्राज्य-सा स्थापित हो गया है। बालको के मनस्तत्त्व की ऐसी सच्ची परख हिन्दी-संसार मे शायद ही किसी को नसीब है। इसी कला ने उन्हे पारस बनाया है।



शिक्षण-कला के आचार्य—'मास्टर साहब'

श्रीगुरुशरण लाल, बिहार—कॉटन-मिल्स, गया

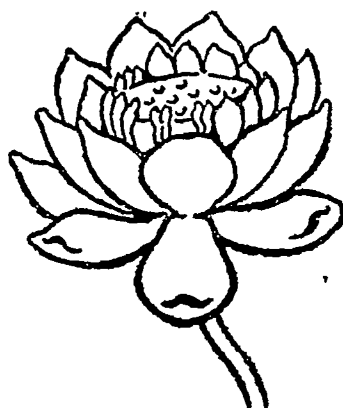
सौभाग्यवश मुझे भी मास्टर साहब के चरणों मे बैठकर दो वर्षों तक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला था। आप गया-जिला-स्कूल मे शिक्षक थे—साहित्य के नही, इतिहास-भूगोल के भी नही—ड्राइंग के। पर इससे क्या ? बिजली भी कही बादलों मे छिपती है ? सभी आपके साहित्य-ज्ञान से परिचित थे। आप मुझे घर पर भी पढ़ाने आते थे। सभी विषय पढ़ाते थे। उस समय मुझे यह ज्ञान न था कि मेरे मास्टर साहब बिहार मे हिन्दी-साहित्य के कर्णधार होंगे। मुझे केवल इतना ही याद है कि आपके अध्यापन से जी नही ऊबता था—फुटबॉल खेलने का समय आ जाने पर भी कोई छात्र बहानेबाजी करके क्लास नही छोड़ता था और न कोई डेस्क के अन्दर पैर ही घिसता था।

आपके पढ़ाने की शैली आकर्षक थी। प्रत्येक शब्द मे आपकी प्रतिभा के चमत्कार की छाप पड़ी रहती थी—चाहे अध्यापन का विषय कुछ भी हो। उस समय की शिक्षा-प्रणाली आज से कुछ भिन्न थी। शिक्षक छात्रो पर रोब रक्खा करते थे, आये दिन नई-नई सजाओ का ईजाद किया करते थे। पर आपको इनकी जरूरत न थी। लड़को मे आपका आदर काफी था। छात्रो मे क्या, सभी लोगो मे आपकी लोक-प्रियता व्याप्त थी। आपके गया छोड़ देने पर लोग खोये-खोये-से जान पड़ते थे।

आपके विषय मे ज्ञातव्य बातें मुझे तब मालूम हुई जब आप गया छोड़ चुके थे। जब रामलोचनशरणजी लहेरियासराय गये, तब हमने आपके जौहर को पहचाना। आपकी लिखी प्रत्येक पुस्तक को अपनी समझकर अपनाया।

इस समय आपकी देख-रेख मे तैयार कराई हुई निरक्षरता-निवारण कमिटी की किताबो की काफी चर्चा है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के पचड़े मे आप कभी न पड़े। हिन्दी के हित की दृष्टि से ही अबतक सब-कुछ किया-कराया। हिन्दुस्तानी को आप हिन्दी मे खपाकर छोड़ते, पर दुनिया की चाल निराली है—दलबंदी का बाजार गर्म है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि आपने जो कुछ भी किया है, साफ दिल और नेकनीयती से। राजनीतिक वातावरण की छाप साहित्य पर बराबर पड़ती रही है, भविष्य मे भी पड़ेगी।

कौन जानता था कि गया के स्कूल मे रूप-रेखा सिखलानेवाला शिक्षक एक दिन हिन्दी-ससार की रूपरेखा बदल डालेगा और चित्र सिखलाने के स्थान मे स्वयं चित्र का आदर्श बन जायगा, जिसकी पूजा देश के लोग करेगे ?





मास्टरों के सरताज—'मास्टर साहब'

श्रीहरिनंदन सिंह, हेडपंडित, ई० टी० स्कूल, माधोपट्टी (दरभंगा)

सन् १९१५ ई० में बिहार-सरकार ने नई 'सिलेबस' प्रकाशित की थी। इस 'सिलेबस' के पहले लोअर-प्राइमरी स्कूलों में इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, प्रकृति-पाठ, चित्रकारी आदि की शिक्षा नहीं दी जाती थी। नई सिलेबस के निकलने पर लोअर-प्राइमरी स्कूलों में इन विषयों की शिक्षा आवश्यक हो गई। उन स्कूलों के शिक्षक घबराने लगे; क्योंकि 'सिलेबस' संकेत के रूप में थी। सिलेबस के वास्तविक मन्तव्य की व्याख्या नहीं की गई थी। जब तक बिहार-प्रान्त बंगाल-सरकार के अधीन था, तबतक जो सिलेबस निकलती थी वह व्याख्यात्मक रूप में रहती थी। यह नई सिलेबस वैसी न थी। इसलिये प्राइमरी स्कूलों के शिक्षक अंधकार में पड़े थे। इन विषयों के लिये क्या पढ़ावें और कैसे पढ़ावें, सब इसी उधेड़-बुन में पड़े थे।

समयानुकूल सूझ रखनेवाले दूरदर्शी व्यक्ति सदा ऐसे अवसर की ताक में रहते हैं। ऐसे सुअवसरों से लाभ उठानेवाले व्यक्ति आम-के-आम और गुठली के दाम तुरत पा जाते हैं। हमारे सहयोगी शिक्षक श्रीरामलोचनशरणजी ने अपनी सूझ से काम लिया। उन स्कूलों के लिये सब विषयों की किताबें लिख डालीं। 'भंडार' से प्रकाशित भी कर दीं। इन पुस्तकों के प्रकाशित होते ही बेचारे शिक्षकों को सीधा मार्ग मिल गया। बिहार-भर के प्राइमरी दर्जों के शिक्षकों ने आपकी किताबें अपनाईं। उनका ध्यान आपकी ओर खिंच गया। उन दिनों आपकी इन विषयों की पुस्तकें हैंड-बुक के रूप में टेक्स्टबुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत न थीं। फिर भी उन पुस्तकों का काफी प्रचार रहा।

इस प्रचार के तीन प्रधान कारण थे। पहला यह कि किसी लेखक या प्रकाशक ने इस तरह की पुस्तके बहुत दिनो तक न लिखी और न प्रकाशित कीं। दूसरा यह कि पुस्तको की भाषा बालोपयोगी थी। और, तीसरा यह कि आपने बाल-मनोवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए उन्हे लिखा था। बस, थोड़े ही दिनों मे आपका और 'भंडार' का नाम विहार के कोने-कोने मे गूँज गया। सब लोग आपको प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

व्यवसायियो ने देखा, आप और 'भडार' केवल नाम और यश ही नहीं कमा रहे है, बल्कि साथ-साथ पैसे भी कमा रहे हैं। तब, कतिपय व्यवसायियों ने, इस प्रकार की पुस्तके प्रकाशित करने की चेष्टा की। किन्तु उनकी चेष्टा मे आपकी तरह मौलिकता न थी, थी केवल कोरी नकलबाजी। भला, नकल, असल के सामने, कब तक ठहर सकती है? कितने ही नकलबाजो ने तो आपकी पुस्तको के वाक्यो मे से कतिपय शब्दो को निकाल उनकी जगह पर्यायवाची शब्दो को बैठा दिया था। इसका परिणाम जो होना चाहिये, वही होकर रहा। वे जुगनू की तरह उठे, मगर आपके प्रकाश मे आते ही टिमटिमाकर भाग गये। लहेरिया-सराय मे ही कितने नकली उठ खड़े हुए और देखते-देखते गिर गये।

व्यवसायी संसार स्पर्द्धा और डाह से भरा होता है। कितने प्रतिस्पर्द्धी और डाही खड़े हुए, किन्तु आपको गिरा न सके। बात असल यह है कि आप स्वाभाविक शिक्षक है। आपकी बराबरी नकली शिक्षक नही कर सके। आप बालोपयोगी जो कुछ भी लिखते है, उसपर आपके स्वाभाविक शिक्षकत्व की छाप रहती है। आपके लेख पर आपकी यह छाप 'रजिस्टर्ड पेटेट मार्क' का काम करती है, इसलिये बाजारो मे हजार नकलबाजियाँ होती है, किन्तु उनपर यह छाप न रहने से ग्राहक नकली चीजो को देखकर मुँह मोड़ लेते हैं और असली चीज की माँग पेश करते है।

आपकी बालोपयोगी शिक्षण-पद्धति की व्यावहारिकता भी कम सराहने योग्य नही है। हमने आपकी व्यावहारिक शिक्षण-पद्धति आँखो देखी है। आपका छोटा बच्चा लाल बाबू लगभग दस वर्ष का है। अभी तक उसने कभी किसी स्कूल का मुँह तक नही देखा है। किन्तु उसकी उम्र का, हाइस्कूल का, कोई भी विद्यार्थी, किसी विषय मे, उसका मुकाबला नही कर सकता। इतनी तरक्की लाल बाबू ने अपने पिता की शिक्षण-पद्धति के कारण की है। तारीफ तो यह है कि इतना बड़ा 'भंडार' का कार्य, एक मिनट का अवकाश नही, तब भी नियमित रूप से प्रतिदिन पढाना, और वह भी हँसी-खेल मे, सचमुच अचरज की बात है।

सन् १९३४ ई० में सरकारी तौर पर श्रीमान् डिप्पी साहब ने एलान किया कि बच्चो को प्रारंभिक अक्षर-ज्ञान अक्षरादि क्रम से न कराकर किसी नई उपयोगी प्रणाली से कराया जाय। यह भी एक विकट समस्या थी। सपने मे भी किसी के ध्यान मे यह बात न आई थी कि 'अ, आ, इ, ई' को छोड़कर 'मा, माला, ताला' इत्यादि शब्दों के द्वारा बच्चो को अक्षर और शब्द पढ़ने-लिखने का आरम्भिक ज्ञान कराया जा सकता है। इस समस्या के सामने आते ही बिहार के प्राथमिक शिक्षा-क्षेत्र मे तहलका-सा मच गया। इस समय भी शिक्षक अंधकार मे पड़ गये। इस प्रकार की पुस्तक के लेखन और प्रकाशन का मैदान सूना पड़ गया। इसी समय लाल बाबू को पढ़ाने मे आपने अपनी एक नई प्रणाली का प्रयोग किया। सफलता तत्काल मिली। बस, चटपट 'बड़ी मनोहर पोथी' और 'छोटी मनोहर पोथी' लिखकर प्रकाशित कर दी। ये पुस्तकें सचमुच ही 'मनोहर पोथी' थी। इनके प्रकाशित होते ही शिक्षकों को प्रकाश मिल गया। पीछे बाजार मे इस तरह की अनेकानेक पोथियाँ आने लगीं। किन्तु उनमे वह स्वाभाविक मौलिकता न थी, थी शुद्ध नकलबाजी। इसलिये सरकार और जनता ने जितना 'मनोहर पोथी' का आदर किया उतना किसी का नही। शिक्षित-वर्ग मे 'मनोहर पोथी' की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। अन्यान्य प्रान्तो मे भी इसकी माँग होने लगी।

इसी तरह, जब-जब सिलेबस मे परिवर्त्तन हुआ, आपकी लेखनी सबसे आगे रही। आज तो प्रारम्भिक पाठशाला से कालेज तक आपकी पुस्तके छा रही हैं।

इधर कतिपय वर्षों से ही आपकी पुस्तके टेक्स्टबुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत हो रही हैं; मगर हमने आपके लेखन तथा प्रकाशन का जो हाल लिखा है वह उस समय का है जब आपकी एक भी पुस्तक टेक्स्ट-बुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत न थी। आज भी आपकी बहुतेरी ऐसी पुस्तके हैं, जिनपर टेक्स्ट-बुक-कमिटी की मुहर नही है; किन्तु उनकी बिक्री स्वीकृत पाठ्य पुस्तको से भी अधिक है। इसकी दूसरी कोई वजह नही, सिर्फ उन पुस्तको पर आपके शिक्षकत्व की छाप पड़ी हुई है।

आज पुस्तक-प्रकाशन-क्षेत्र मे स्पर्द्धा और द्वेष की प्रचुरता है। नवम्बर और दिसम्बर के महीनो मे प्रकाशको के प्रचारको से शिक्षक, चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट-इन्सपेक्टर, डिपुटी-इन्सपेक्टर, सब-इन्सपेक्टर, शिक्षा-विभाग के क्लर्क तक हैरान-परेशान हो जाते है। पुस्तक पढ़ाना शिक्षको का कार्य है और पढ़ना छात्रों का। पुस्तके सरकारी 'सिलेबस' के संकेत तथा सरकारी आदेश के अनुसार

लिखी गई है कि नहीं, यह देखना टेक्स्ट-बुक-कमिटी का काम है। जब टेक्स्ट-बुक-कमिटी किसी पुस्तक के प्रचार अथवा प्रयोग के लिये स्वीकृति दे देती है, तब प्रकाशकों को अन्य अफसरों के द्वारा प्रचार-कार्य कराना नहीं चाहिये। हमारे विचार से यह अनुचित है। यह कार्य शिक्षकों को ही सौंप देने योग्य है। शिक्षक जब अपनी निर्णयात्मक बुद्धि से पुस्तक चुन लेंगे, और इस चुनाव से जिस प्रकाशक तथा लेखक की पुस्तक का प्रचार अधिक होगा, सचमुच वही लेखक और प्रकाशक उत्तमता की श्रेणी में समझा जायगा। इस कसौटी पर कसने से भी, लेखक तथा प्रकाशक की हैसियत से आप आगे रहेंगे।

प्रकाशन-कार्य से जो आय होती है, वही आपकी सम्पत्ति है। वह सम्पत्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती हुई मालूम पड़ती है। अनेक प्रकार की विघ्नबाधाओं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर भी आप और 'भंडार' पर आँच आती नहीं दीखती। यह ईश्वर की कृपा है।

आपमें और भी बहुतेरी योग्यताएँ हैं। आप सुन्दर लेखक, अनुभवी सम्पादक, चतुर व्यवस्थापक, सच्चे साहित्य-सेवी, निरक्षरता के कट्टर शत्रु, सूक्ष्मदर्शी व्यापारी, उदार-हृदय और अध्यवसायी सज्जन पुरुष हैं।

लेखक की हैसियत से देखते हैं तो पता चलता है कि आपकी लेखनी में यदि सार न होता, तो आपकी लिखी और सम्पादित पुस्तकों तथा पत्रों का इतना प्रचार क्यों होता। बाल-साहित्य की परख जैसी आपकी है, वैसी परख रखनेवाले बहुत थोड़े नजर आते हैं। आपकी निजी सम्पत्ति सचमुच बाल-साहित्य है। बालोपयोगी पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन तथा प्रचार बिहार में जितना आपने किया है, उतना शायद ही किसी ने किया हो। सन् १९११ ई० के पहले बिहार में बाल-साहित्य का नाम भी नहीं था। जब से आपने लेखनी उठाई है तबसे ही विशुद्ध बाल-साहित्य का जन्म बिहार में हुआ है। इसका श्रीगणेश करने का श्रेय आपको ही प्राप्त होना चाहिये और है भी। सचमुच अभिनव बाल-साहित्य की सृष्टि करके आपने बिहार का बहुत बड़ा उपकार किया है। लड़कपन में जिस बात का चसका लग जाता है वह शीघ्र दूर नहीं होता। आपके द्वारा निर्मित बाल-साहित्य से बालकों में जो साहित्यिक प्रवृत्ति पैदा हो रही है वह बिहार के भावी साहित्य-निर्माण कार्य में बड़ी सहायता पहुँचावेगी। भविष्य की बिहारी संतानें साहित्य की उन्नति देखकर आपको सदा याद करेंगी। आपका नाम बाल-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

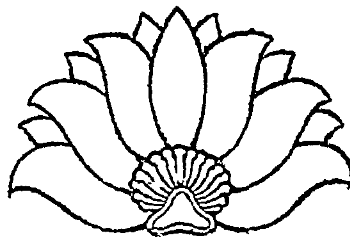
आपकी भाषा-शैली कैसी है, इसका विचार तो साहित्य-मर्मज्ञ करेंगे, किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि आपका स्थान उस चन्दन-वृक्ष के ऐसा है, जो सम्पूर्ण

कानन को अपनी दिव्य और स्थायी सुरभि से सुरभित किये रहता है। जूही, बेला और गुलाब की सुगन्ध मादक होती है; किन्तु स्थायी नहीं। दो दिनों के बाद सूख जाने पर उनका कुछ भी मूल्य नहीं रहता। किन्तु चन्दन की यह विशेषता है कि सूखने पर भी, काटे जाने पर भी, घिसे जाने पर भी, उसकी सुरभि नष्ट नहीं होती, बल्कि और भी अधिक फैलती है। आप साहित्य-कानन के चन्दन-तरु हैं, इसमे कोई सन्देह नही।

सामयिक पत्र-पत्रिकाओं मे आपकी साहित्यसेवाओ पर जो सम्मतियाँ प्रकाशित होती रहती हैं, वे बताती हैं कि साहित्य-संसार आपके कार्यों को कितने आदर की दृष्टि से देखता है। साहित्य-गगन के देदीप्यमान ध्रुव-नक्षत्र के समान आप अविचल रूप से पथ-प्रदर्शन का काम करते हैं।

आप स्कूली पुस्तको के सिद्धहस्त लेखक तथा सम्पादक हैं; इसलिये मास्टर साहब नाम अक्षरशः सार्थक है। बिहार मे बाल-साहित्य के जन्मदाता आप हैं, इस कार्य को आदर्श रूप मे आपने ही बिहार मे ला रक्खा है, इसलिये आप बाल-साहित्य-निर्माण के भी मास्टर है। इस प्रकार हर पहलू से देखने पर आपका 'मास्टर साहब' नाम सार्थक जॅचता है।

आपने हम वर्नाक्युलर-शिक्षको का सर ऊँचा कर दिया है। जिन वर्नाक्युलर-शिक्षको के नाम से विश्वविद्यालयो के डिग्रीधारी नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं—जिन वर्नाक्युलर-शिक्षको की जड़ खोदकर, विश्वविद्यालयो के विधाताओ ने, उनकी जगह पर 'मैट्रिक और आइ० ए० पास' लोगों को बैठा दिया है, उन्ही वर्नाक्युलर-शिक्षको मे एक आप भी है। आपने प्रमाणित कर दिखा दिया है कि वर्नाक्युलर-पास शिक्षक कितने योग्य, परिश्रमी और उन्नतिशील होते थे। समस्त शिक्षकों को आपपर गर्व है। परमेश्वर आपको शतञ्जीवी करे!





एक आदर्श महापुरुष

श्रीतुलाकृष्ण चौधरी; दादपट्टी (दरभंगा)

मुजफ्फरपुर जिले के सुरसंड थाने मे 'राधाउर' ग्राम प्रसिद्ध है। वहाँ बाबू महँगूजी एक बहुत उदार और धर्मात्मा पुरुष थे। उन्ही के सुपुत्र बाबू रामलोचनशरणजी है। यद्यपि उनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी, तथापि वे दीन-दुखियो की यथाशक्ति सहायता तन-मन-धन से किया करते थे। पक्के सनातनी थे वे। जनकपुर वहाँ से लगभग १६ मील की दूरी पर है। वे प्रतिमास एक-दो बार अवश्य ही जाकर बडे प्रेम से जानकी-माता के दर्शन-पूजन कर आते थे। एकादशी इत्यादि व्रत भी बड़ी श्रद्धा से करते थे। कुछ खेती और थोड़ा व्यापार भी करते थे। आर्थिक संकट मे रहने पर भी अपने सुपुत्र के शिक्षको का यथासाध्य पूर्णतया सम्मान करते थे।

शरणजी बाल्यावस्था से ही बड़े होनहार थे। गूढ़ से भी गूढ विषय को झट समझ जाते थे। आपके विनीत स्वभाव से शिक्षक बड़े प्रसन्न रहते थे। पढ़ने मे आप ऐसे सुबुद्धि निकले कि सभी शिक्षक तथा छात्र आपसे प्रसन्न रहते थे। आपमे श्रद्धा ऐसी थी कि प्रति दिन प्रात काल उठकर भक्तिपूर्वक शिक्षको के पॉव छूकर प्रणाम करते थे। नित्य-क्रिया से सुचित्त हो बात-की-बात मे अपना पाठ याद कर लेते थे। सहपाठियो से भी बहुत प्रेम रखते थे।

सन् १९०७ ई० मे आपने फाइनल ट्रेनिङ्ग-परीक्षा प्रथम होकर पास की। अब आगे पढ़ने की कोई भी आशा न देखकर आर्थिक संकट ने नौकरी करने के हेतु आपको बाध्य किया। आप दो-एक स्थानो मे शिक्षण-कार्य करके अन्ततोगत्वा मुजफ्फरपुर पहुँचे। डिप्टी-इन्सपेक्टर ने आपकी छोटी अवस्था,

मधुरभाषिता तथा विनीत स्वभाव से मुग्ध होकर कहा कि आप अभी कैसे शिक्षक का कार्य करेंगे। शीघ्र ही आपने उत्तर दिया कि जिस प्रभु की दया से मैंने फाइनल-परीक्षा पास की है उसी की अनुकम्पा से। डिप्टी-इन्सपेक्टर बाबू भगवतनारायण बड़े हरिभक्त थे, समझ लिया कि आप अवश्य प्रभुभक्त विद्यानुरागी शिक्षक निकलेंगे। उसी समय सिमरा (मुजफ्फरपुर) के उत्साही जमींदार बाबू फतहनारायण के उद्योग से वहाँ एक मिडूल इंगलिश स्कूल की स्थापना हुई थी। उसी मे हिन्दी-अध्यापक के पद पर आप नियुक्त हुए।

उस समय नई योजना के अनुसार प्रत्येक जिला-स्कूल मे एक-एक वर्नाक्यूलर-शिक्षक बहाल होने लगे। आपने भी दरख्वास्त दी। दरभंगा-जिला-स्कूल मे स्थान मिल गया। आपके मिलनसार स्वभाव, कोमल भाषण तथा पढ़ाने की अपूर्व कला से सभी शिक्षक तथा छात्र आपसे प्रेम तथा सहानुभूति रखने लगे। यहाँ तक कि उस समय के प्रधान वकील बाबू हरिनंदनदासजी—जो आगे चलकर दरभंगा-जिला-बोर्ड के चेयरमैन प्रसिद्ध हुए—तथा पं० गिरीन्द्रमोहन मिश्रजी वकील—जो सम्प्रति दरभंगा-राज के असिस्टैंट जेनरल मैनेजर हैं—आपपर बड़ी कृपा और स्नेह रखने लगे।

वह नई स्कीम का समय था। पुस्तक-प्रकाशक केवल एक मैकमिलन ही था। दरभंगा, मुजफ्फरपुर इत्यादि नगरो मे कोई भी ऐसी दूकान न थी जहाँ सुविधा के साथ पाठ्य पुस्तके मिल सके। केवल पटना मे चार दूकाने थीं—बाबू कालीपद सरकार की, हेमचन्द वियोगी की, मथुरानाथ (एम० एन०) बर्मन की और खड्गविलास प्रेस की। पत्र लिखने पर भी वहाँ से शिक्षको को समय पर किताबे नहीं मिलती थीं। बुकसेलरो को भी इच्छानुसार किताबे मिलना कठिन था। प्रायः अधिक पुस्तको की पढ़ाई शिक्षको पर ही छोड़ दी जाती थी कि 'सिलेबस' के अनुसार पढ़ावे। फलतः 'हैंडबुक' की आवश्यकता हुई। आजकल की तरह किताबो की बिक्री न थी कि जितना सरकार से मंजूर है उससे एक पाई भी अधिक मूल्य कोई नही ले सकता। उस समय प्रत्येक पुस्तक उचित मूल्य से एक आना अधिक खर्च देने पर बालको को मिलती थी।

उसी समय दरभंगा मे कोर्स की किताबो की एक दूकान खोलने के लिये लोगो ने उस समय के डिप्टी-इन्सपेक्टर राय राधाप्रसादजी की सेवा मे प्रार्थना-पत्र भेजा। डिप्टी-साहब ने उस समय के म्युनिसिपल-इन्सपेकूटिंग पंडित लाला अम्बिकाप्रसाद को खोलने की आज्ञा दी। उन्होने 'बुक-डिपो' नाम से लहेरियासराय मे दूकान खोली।

अब प्रश्न उठा कि रुपये कैसे मिलेगे। अन्त मे कई शिक्षको तथा

इन्सपेक्टिंग पंडितो के सहयोग से १०००) रुपये एकत्र हो गये। लालाजी ने बाकरगंज मुहल्ले मे दूकान खोली। लालाजी की दूकान उत्तम संचालक के विना डूबने लगी। सभी हिस्सेदार अपनी-अपनी पूँजी गॅवा बैठे। लाचार दूकान बन्द कर लेनी पड़ी।

इस समय 'मास्टर साहब' का ध्यान पुस्तको के लिखने की ओर लगा हुआ था। उस समय दरभंगा जिले मे केवल एक यूनियन प्रेस था। उसकी छपाई अच्छी न थी। आपने बनारस मे किताबे छपवाना आरंभ किया। शुभ लग्न मे सोच-विचार के उपरान्त 'पुस्तक-भंडार' नाम पड़ा। बाबू गंगाप्रसाद गुप्त तथा बाबू नथुनीप्रसाद माणिक संचालन के लिये रक्खे गये। बाजार मे एक कामचलाऊ मकान किराये पर ले लिया गया।

ईश्वर की दया से पहले ही साल मे अच्छी बिक्री हुई। अब लाभदायक किताबे प्रकाशित करने की आपकी प्रबल इच्छा हुई। दूसरे वर्ष मे अपर-मिडूल-वर्गों के लाभार्थ पुस्तकें प्रस्तुत हो गई।

आरम्भ से ही आपकी उदारतापूर्ण नीति ने लोगों को चकित कर दिया। जिन-जिन महाशयो ने दूकान और प्रकाशन मे आर्थिक सहायता की थी, उनलोगो को आपने चार-पॉच महीनो के भीतर ही हिसाब करके ४० सैकडे मुनाफे के साथ रुपये लौटा दिये। अब, छोटी दूकान से काम चलाना कठिन हो गया। आप दूसरे मकान की खोज मे लगे। दैवी विचित्रा गतिः। उसी समय एक बारिस्टर साहब की इच्छा मकान बेचने की हुई। झट रुपये जुटाकर आपने वह लाल कोठी खरीद ली।

आपकी प्रवृत्ति शुरू से ही साहित्य-सेवा की तरफ थी। सुविधा पाते ही कई साहित्यिक पुस्तके निकालीं। यद्यपि उस समय साहित्यिक पुस्तकों की बिक्री उतनी न थी, तथापि आपने बड़ी हिम्मत की। अब एक सर्वाङ्गसुन्दर मासिक पत्र निकालने की धुन समाई। वड़ी सजधज के साथ आपने 'बालक' निकाला। जन्म लेते ही उसने बालको पर अपना सिक्का जमा लिया। देश-विदेश मे उसकी कीर्त्ति-पताका फहराने लगी। ईश्वर की दया से उत्साह बढता ही गया। स्कूली और साहित्यिक पुस्तको की मॉग भी बढ़ती गई। 'बालक' की धूम हर तरफ थी ही। फल-स्वरूप आपने विद्यापति प्रेस की भी स्थापना की।

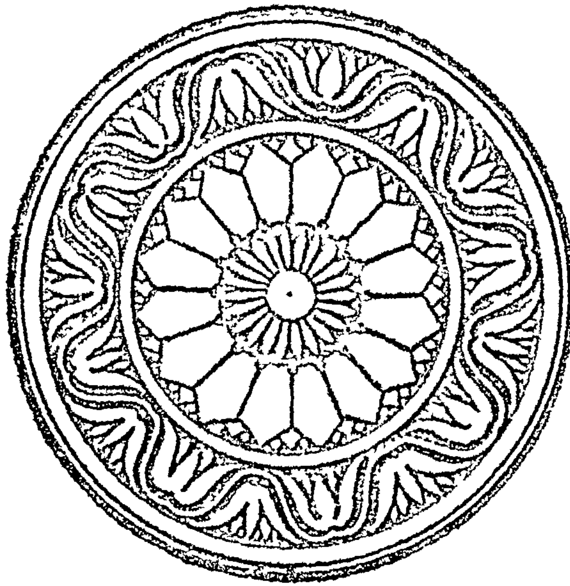
फिर आपने स्वजाति-सुधार के हेतु 'रौनियार-वैश्य' मासिक पत्र निकाल कर अपने समाज का भी वड़ा उपकार किया। 'मिथिला' मासिक पत्रिका निकाल कर मैथिलो के भी कृतज्ञता-भाजन हुए।

विहार का केन्द्र पटना है। वहॉ भी आपने गोविन्दमित्र रोड के किनारे

अच्छी जमीन खरीदकर 'भंडार' की शाखा खोल दी। वह शाखा भी आशातीत सफलता प्राप्त कर रही है।

भूकम्प मे 'भंडार' की उपर्युक्त 'लालकोठी' के नष्ट हो जाने पर आपने सड़क के किनारे नई आलीशान इमारत बनवाई। वह सुन्दर और दर्शनीय है—बिजली-बत्तियो से जगमगा रही है।

'भंडार' सुन्दर, 'भंडार' की पुस्तकें सुन्दर, 'भंडार' का 'बालक' सुन्दर, 'भंडार' के संस्थापक और 'बालक' के सम्पादक सुन्दर! ईश्वर देश की उस सुन्दर विभूति को कायम रक्खे।





रायसाहब रामलोचनशरणजी

प्रिन्सिपल मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम० ए०, राजेन्द्र-कालेज, छपरा

आज से शायद तीस वर्ष पहले की बात है। मै उस समय नार्थब्रुक स्कूल (दरभंगा) का विद्यार्थी था। शायद तत्कालीन पाँचवी या चौथी कक्षा मे पढ़ता था। उन्हीं दिनो मुझे शरणजी से गणित पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

गणित का मै पूरा पंडित था। उसके अध्ययन की ओर मेरी रुचि न थी। फिर भी किसी तरह परीक्षा मे निभा ले जाता था। इसका नतीजा यह हुआ कि मैंने आइ० ए० तक गणित का पिंड नही छोड़ा।

शरणजी मे पढ़ाने की कुछ अजीब प्रतिभा थी। उनका तरीका कुछ इतना सुलझा हुआ होता था कि उनसे पढ़ने मे तबीयत लगती थी। इतना नीरस विषय भी उनके हाथ मे पड़कर सरस हो जाता था।

किन्तु, क्लास मे चुपचाप जी लगाकर कुछ सुन लेना और बात है, और घर से पाठ बनाकर ले आना कुछ और। अस्तु, मैं अक्सर उसमे पिछड़ जाता था। वक्त पर अपनी कापी 'मास्टर साहब' को न दे पाता था।

तबतक मुझे यह पता नही था कि किसी के हस्ताक्षर की नकल करने को ही जालसाजी कहते है और यह बहुत बड़ा अपराध है, जिसके लिये कठिन-से-कठिन दंड का विधान है। इसीसे मै ठाट के साथ अपनी कापी के पिछले पन्नों पर 'मास्टर साहब' के दस्तखत की नकल कर दिया करता था।

एक बार कापी मास्टर साहब के यहाँ पहुँची। उन्होने मेरी वह जालसाजी देखी, अथवा यो कहिये, पकड़ ली। सीधे हेडमास्टर साहब के पास मेरी

जालसाजी पेश कर दी। मेरी तलबी हुई। मै ग्यारह-बारह वर्ष का बालक, कुछ परेशान-सा, डरता-कॉपता, हेडमास्टर के सामने पहुँचा।

"क्या तुमने यह दस्तखत बनाया है?" "हाँ।"

"जानते हो, यह कितना बड़ा कसूर है? इसके लिये तुम स्कूल से निकाल दिये जा सकते हो।"

"नहीं सर, यह तो मै नही जानता। लेकिन क़सूर है, यह तो जरूर मानता हूँ।"

"हथेली सामने करो।" खजूर की छड़ी सप-सप दो बार हथेली पर लगी। मैं तिलमिला गया। ऑसू निकल पड़े। किन्तु चिल्लाया नहीं।

मैंने कभी मार नहीं खाई थी—वही प्रथम और वही अन्तिम थी।

किन्तु, इस मार के कारण मास्टर साहब के प्रति मेरे भक्ति-भाव मे कोई कमी नहीं हुई।

मुझे याद है। वे नार्थब्रुक स्कूल से बदलकर कहीं जा रहे थे। अन्यान्य विद्यार्थियो के साथ, उस दुपहरी मे, मैं भी उन्हे पहुँचाने गया था। जब ट्रेन खुली और वे ऑखों से ओझल हुए, मेरी ऑखो से ऑसू गिर रहे थे।

बहुत दिन बीत गये। कहॉ मास्टर साहब, कहॉ मैं। हॉ, काफी दिनो के बाद मैने उनकी कई रचनाएँ देखीं। उस समय उनकी पुस्तको पर उनके नाम के साथ 'बिहारी' शब्द भी छपा था।

बरसो बाद उनका 'बालक' निकला। मेरे मित्र श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी उसके सम्पादक हुए। मै यदा-कदा उसमे कुछ लिखता रहा। इस प्रकार एक बार फिर मास्टर साहब से मेरा संबंध स्थापित हुआ।

धुँधली-सी स्मृति है। शायद सन् १९२८ मे पं० पद्मसिह शर्मा के सभापतित्व में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन मुजफ्फरपुर मे हुआ। वहीं उनके दर्शन हुए थे।

संयोगवश, सन् १९३५ मे, मेरे बड़े साले डाक्टर सत्यनारायण प्रसाद वर्मा दरभंगा के मेडिकल स्कूल मे वहॉ के डिप्टीसुपरिटेडेंट होकर गये। उसी सिलसिले मे मुझे कई बार दरभंगा जाना पड़ा। उसी समय फिर मुझे मास्टर साहब के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भाई शिवपूजनसहाय जी के वहॉ रहने से और भी बार-बार जाने का मौका मिला। साहित्यिक चर्चा में न जाने कितनी दुपहरियॉ बीतीं।

मै तबतक बदरीनाथ की यात्रा कर चुका था। उस यात्रा के विवरण 'विशाल-भारत' (कलकत्ता) तथा 'सनातन धर्म' (काशी) में प्रकाशित हो चुके थे।

उन्हें पुस्तक-रूप मे प्रकाशित करने के लिये मास्टर साहब सहर्ष तैयार हो गये। शिवपूजनजी के तत्त्वावधान मे काफी सजधज से सचित्र पुस्तक निकली—'उत्तराखंड के पथ पर।'

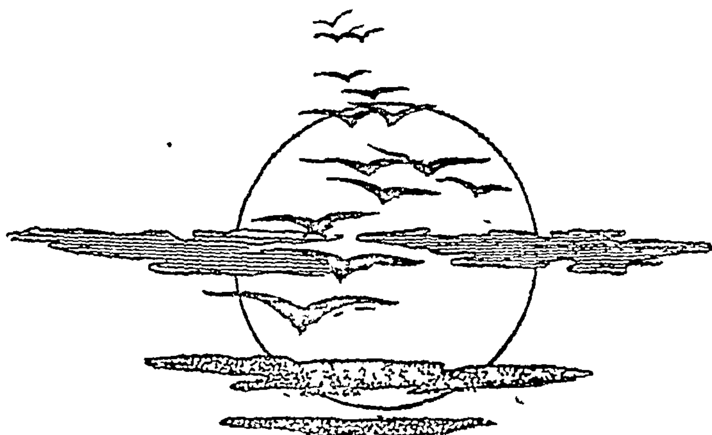
कुछ दिन बाद वही से मेरा पद्य-संग्रह 'गुनगुन' भी निकला। दूसरे पद्य-संग्रह 'संगिनी' की पांडुलिपि भी वही पड़ी है!

जब मेरी किताबे छपी, और मुझे रुपयों की आवश्यकता पड़ी, मास्टर साहब ने मुझे मदद भी दी, जिससे मैं उनकी सहृदयता का कायल हो गया, क्योकि वे रुपये मुझे ऐसे मौके पर मिले थे जब मुझे उनकी बहुत आवश्यकता थी।

मास्टर साहब से आज भी मेरा वही गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है। आज भी जब उनके दर्शन होते है, पैर छूकर ही उन्हे प्रणाम करता हूँ। उनका सौम्य मुखमंडल, सरल स्वभाव, सदय हृदय, सहज स्नेह तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार मै कभी भूल नही सकता। आज उनकी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर मै उनके दीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हुआ उनके चरणो पर आदर तथा श्रद्धा से नत होता हूँ।

उनका 'पुस्तक-भंडार' बिहार के लिये गौरव की चीज है। उसने हिन्दी की जितनी सेवा की है और कर रहा है, उतनी विरलो ने ही की है। उसने कितनी ही सुन्दर, उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तके प्रकाशित की हैं। उसका 'बालक' सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार के समान अक्षय बचपन का वरदान लेकर आया है।

वह 'पुस्तक-भंडार' अक्षय हो। वह 'बालक' अमर हो।





साहित्य-गगन के निष्कलंक चन्द्र

श्रीशिवनारायण सिंह, 'साहित्यरत्न'; मधुवनी (दरभंगा)

कथन है—"बड़े न हूजे गुनन विन, गुन विन मान होय।" तात्पर्य यह है कि गुण-सम्पन्न होने ही से संसार में मनुष्य मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है तथा बड़ा समझा जाता है।

आज हिन्दी-संसार मे 'भंडार' की तूती बोल रही है—साहित्य के रंगमंच पर उसका ललित अभिनय आज लोग बड़े चाव से देख रहे है। विद्यापति प्रेस का प्रकाश, महाकवि विद्यापति की कमनीय कविता की छटा के सदृश, हिन्दी-जगत् को आलोकित कर रहा है। आज ये दोनो उन्नतिशील संस्थाएँ किस साहित्य-सेवी के नयनो को अनुरंजित नही कर रही हैं—किस साहित्यिक की आशा-लता के ये मनमोहक प्रसून नही बन रहे है? अवश्यमेव आज का साहित्य-सागर इन ज्योत्स्नापूर्ण युगचन्द्रो का अवलोकन कर आनन्द की लहरियाँ उछाल रहा है।

इन लोकोपकारी संस्थाओं के संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी विहारी को आज के शिक्षित-समाज का कौन-सा व्यक्ति नही जानता—इन्हे कौन आज आदर की दृष्टि से नही देखता—इन्हे आज बड़ा कौन नही मानता। क्यो? इसलिये कि इनमे बड़प्पन के बहुत-से गुण विद्यमान है—इसलिये कि प्रतिष्ठा प्राप्त करने के योग्य इन्होने काफी तपस्या कर ली है।

मै इन्हे उस समय से जानता हूँ जिस समय ये दरभंगा-जिला-स्कूल मे १५) मासिक वेतन पर शिक्षण-कार्य करते थे। पश्चात् मैने देखा कि साहित्य-पथ पर किस प्रकार अपना पहला कदम रक्खा। वाकरगंज मे २

छोटी-सी दूकान—बस, पाँच फीट की कोठरी—मैंने देखी थी, और आज इनके 'भंडार' का भव्य भवन भी—विविध भाँति की पुस्तको की राशि से भरापूरा—विद्युत्-प्रकाश से जगमग करता हुआ मेरी दृष्टियो के सामने है। विविध यंत्रो से युक्त इनका विद्यापति प्रेस भी मेरी आँखो के आगे मौजूद है, जहाँ से कई भाषाओं में प्रकाशित विविध विषयो की अनेकानेक स्कूली पुस्तके प्रकाशित हो विद्यार्थी-जगत् मे विद्या का वीज-वपन कर रही हैं। इतना ही नहीं, प्रौढ़ साहित्यिकों के अध्ययन के योग्य उच्चकोटि के ग्रन्थरूपी सुधाकर भी साहित्य-गगन को आलोकित करके विद्यानुरागियो के हित अमृत की बूँदे टपका रहे हैं—यह सब भी मैं देख रहा हूँ। इसके सिवा 'बालक' का शुभ्रमयंक-मुख-मंडल भी अवलोकित कर मेरे हृदय-सागर मे आनन्द की तरंगे उठ रही है। तब और अब के दृश्यो को दृष्टि में रखता हुआ मै कहूँगा कि ये सब शरणजी के विलक्षण सद्गुणो और तपश्चर्या के परिचायक है।

जिन दिनो ये साहित्यिक कार्यक्षेत्र मे पदार्पण कर चुके थे, मै लहेरिया-सराय की नागरी-प्रचारिणी सभा का संयुक्त मंत्री था। सभा के ये सदस्य थे। लाइब्रेरी की पुस्तके प्रायः पढ़ने के लिये ले जाया करते थे। कभी-कभी ये पुस्तको को अधिक दिनो तक अपने पास रख लिया करते थे। इनकी यह नियम-विरुद्ध बात मुझे खटक जाया करती थी। मुझे सन्देह हुआ कि ये सज्जन सभा की पुस्तकों से लेख चुराते है एवं पुस्तके अपने नाम से छपा-छपाकर साहित्यिक बने हुए हैं। किन्तु सत्य का सूर्य कबतक छिपा रह सकता है? इनकी साहित्यिक प्रतिभा का प्रकाश चारो ओर फैलने लगा। क्रमशः उस प्रखर प्रकाश से समस्त हिन्दी-संसार उद्भासित हो उठा। मैंने इनके प्रति जो मिथ्या धारणा बना ली थी, उसके लिये बड़ा लज्जित हुआ। समझ गया कि इनमे मुरादाबादी पालिश नहीं है, ये ठोस 'बावन तोले पाव रत्ती' खरा उतरनेवाले सोना है।

इनमें साहित्यिक संस्कार कूट-कूटकर भरा है। ये विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति है। प्रौढ़ साहित्य के लेखक तो अनेकानेक हो चुके है, किन्तु बाल-साहित्य का भंडार पूरा करने के लिये भगवान् ने इन्ही को भेजा है। ये बालको के हृदय को अच्छी तरह पहचानते है। ये जानते हैं कि कैसी शैली बालकों को रुचिकर हो सकती है। ये बालको को पहाड़ पर चढ़ाने के लिये पैदल घसीटना पसंद नही करते। ये समझते है कि बालक स्वभावतः कोमल होते हैं, इतनी कठोरता उनके साथ नही की जा सकती। स्वाभाविक दयालुता के कारण ये बच्चों को अपनी विलक्षण शैली के वायुयान पर चढ़ाकर सीधे उस दुर्गम मेरु की चोटी पर उतार डालते हैं।

सच पूछा जाय तो कहा जा सकता है कि इनका साहित्यक्षेत्र में आ जाना बालकों के लिये बड़ा ही उपकारक हुआ है। 'बालक' का प्रकाशन करके बालहितैषिता का इन्होंने खासा परिचय दिया है। यह बात प्रसिद्ध होते हुए भी कि बिहार-प्रान्त पत्र-पत्रिकाओं के लिये ऊसर भूमि है, 'बालक' का सफल संचालन करके इन्होने बिहार के ऊपर लगी कालिमा को धो डाला है। यह सब इसीलिये हो सका है कि इसके सम्पादन एवं प्रकाशन में समुचित कला का प्रयोग किया गया है। लोग पत्रों का प्रकाशन तो कर ही दिया करते हैं; किन्तु वे सम्पादन-कला का ज्ञान कम रहने के कारण उन्हे जन-रुचिकर नहीं बना पाते, जिससे वे पत्र फूल-फल नहीं पाते। इस रहस्य को न समझकर लोग कह बैठते हैं कि बिहार पत्र-पत्रिकाओ के लिये उर्वर भूमि नहीं है। आज 'बालक' की स्थिरता देखकर यह कहना ही पड़ेगा कि शरणजी मे सम्पादन-कला का कितना चमत्कार है और ये बालकों के हृदय के निकट कहाँ तक पहुँचे हुए है। बालक ही क्यों, प्रौढ़ साहित्यिको का चित्र भी इस अनुपम 'बालक' के दर्शनों से प्रसन्न हो उठता है।

लेखन तथा सम्पादन की कला कुछ और होती है एवं प्रकाशन की कला कुछ और। इनमे लेखन और सम्पादन की जैसी अपूर्व योग्यता है, वैसी ही प्रकाशन की भी अद्‌भुत क्षमता है। 'भंडार' की पुस्तको के देखने से ज्ञात होता है कि इनका प्रकाशन किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा हुआ है जो सच्चा कलामर्मज्ञ एवं सौन्दर्योपासक है। यही कारण है कि यहाँ की पुस्तकें नयनाभिराम होती हैं। यदि यहाँ की पुस्तक कहीं पड़ी हो तो बिना उसे उठाकर देखे चित्त चैन नही पाता।

मैंने अपनी आँखो देखा है कि ये किस प्रकार अपनी पुस्तकों के शोभा-संवर्द्धन में अपने मतिष्क का उपयोग करते है। वही फूल लोकप्रिय होता है, जिसमे सुगंध और सौन्दर्य्य साथ-साथ रहते हैं। 'भंडार' की पुस्तको में ये दोनो गुण मौजूद रहते हैं।

इनमें बड़प्पन के और भी गुण हैं, जो उपार्जित नहीं, वरन् स्वाभाविक हैं। परिश्रमशीलता इनकी उल्लेखनीय है, मैंने देखा है कि पुस्तक लिखते समय ये उकताते नही, बस भूख-प्यास भूलकर गर्मी के दिनों में भी कलम दौड़ाते चले जाते हैं। शब्द-सुमनो की माला गूँथ माँ भारती के पद-पद्मो पर ला धरते हैं। 'भंडार' के उन्मेषकाल में, जब कभी पुस्तक-विक्रय का मौसम आता, ये तीन-तीन बजे रात तक जागकर ग्राहको के हाथ किताब बेचते और उनका हिसाब करते रह जाते, ऐसा मैंने प्रायः देखा है। उन दिनो ये मुश्किल से तीन-चार घंटे सो पाते थे। ग्राहको अथवा शिक्षको के साथ इनके लेन-देन का व्यवहार बड़ी सचाई

और मिठास का रहता आया है। ये स्वभावतः किसी को नाखुश होकर नहीं जाने देते। यह व्यापार की उन्नति के लिये एक बहुत ही मार्के की बात है।

गोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" सादगी का उपदेश प्रायः सभी जन दिया करते हैं और 'सादा जीवन उच्च विचार' का ढिंढोरा पीटा करते हैं, किंतु स्वयं इसको व्यवहार मे नहीं लाते। रुपये-पैसे होते ही वे भोगविलास के दास बन जाते हैं, किन्तु धन्यवाद है इनको कि लाखो की सम्पत्ति के मालिक होने पर भी विषयोपभोग की ओर कभी ध्यान नही दिया। न पान, न सिगरेट; न सिनेमा, न सिमला-मसूरी; सादी पोशाक, सादा भोजन, जो तब रहा, वह अब भी है। ये मोटर रखने की शक्ति प्राप्त कर चुकने पर भी पैदल चलकर काम करने मे ही गौरव समझते हैं। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि ये 'भंडार' को अपनी निजी सम्पत्ति नहीं समझते, वरन् इसे साहित्य-संसार की सार्वजनिक सम्पत्ति मानते है। ईश्वर की दी हुई धरोहर सम्पत्ति का अपनेको पहरेदार समझते हैं।

कोई कह सकता है कि ये कंजूसी के कारण सादगी-पसंद हैं, किन्तु यह बात निराधार है। कारण, अतिथि-सेवा मे ये कम पैसा नहीं खर्च करते। जो भी कोई 'भंडार' का अतिथि होता है, वह संतुष्ट होकर अपने घर जाता है। जिन दिनो मैं खड्गविलास प्रेस (पटना) के सम्पादकीय विभाग मे कार्य करता था, मुझे प्रायः बाहर प्रेस के कामो से जाना पड़ता था। मैं जहाँ-जहाँ जाता वहाँ-वहाँ मैं इनके सद्व्यवहार और आतिथ्य-सत्कार की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनता। मै कह सकता हूँ, और जोर देकर कह सकता हूँ, कि आतिथ्य मे 'भंडार' की जो मर्यादा है, वह विहार की और किसी संस्था को नसीब नही।

जो व्यक्ति बड़े-से-बड़ा काम करके भी अहम्मन्य नहीं, वही कर्मयोगी और सन्त की उपाधि प्राप्त करता है। जब कभी मेरे साथ इनकी बातें हुईं, ये इस ऐश्वर्य को भगवान् का प्रसाद और उनकी कृपा ही बताते रहे। इन्होने कभी न कहा कि मैंने यह किया और वह किया और आगे ऐसा कर डालूँगा। सचमुच यही भगवान् के भक्तो के लक्षण हैं।

एक पेशे के दो व्यक्तियो की मति कभी नहीं मिलती। एक दूसरे से द्वेष रखते हैं। किन्तु इसे इनमे लागू होते मैंने नही पाया! ये स्वयं लेखक हैं, किन्तु इन्होंने किसी भी लेखक से द्वेष न रक्खा, वरन् इनको आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया—केवल वचन से ही नही, अनुकूल साधन प्रदान करके भी।

जिन दिनो मैं, १९१५ ई० मे, दरभंगा-कलक्टरी मे एप्रेंटिस हुआ, मेरी आकांक्षा लेखक होने की थी। किन्तु—"मति अति नीच ऊँच रुचि आछी, चहिय

अमिय जग जुरै न छाँछी।" १९२२ मे मैं नौकरी छोड़कर असहयोग-आन्दोलन मे शामिल हुआ। मेरे हृदय मे आन्दोलन-सम्बन्धी बातें घर कर गई थीं और भीतर-ही-भीतर मुझे प्रेरित कर रही थीं कि मै उन्हे पुस्तकाकार मे प्रकट करूँ। मैंने लिख डाला 'स्वराज-दर्शन' नाटक। दरभंगा के प्रथम असहयोगी नेता बाबू ब्रज-किशोर प्रसादजी ने इसको देखा और कहा कि बाबू रामलोचनशरणजी से भाषा के लिये एक बार दिखा लीजिये। मैंने पुस्तक इन्हे दे दी। कुछ दिनों बाद इन्होंने पुस्तक मुझे लौटा दी और कहा—"भाव बड़े भव्य हैं; पर भाषा-सुधार की थोड़ी आवश्यकता है।" इनका यह कथन मेरे लिये प्रोत्साहन का काम कर गया। इस 'स्वराज्य-दर्शन' को मैंने तीन बार लिखा और मिटाया। पीछे 'समाज-दर्शन' नाटक लिखा। क्रमशः डेढ़ दर्जन से ऊपर पुस्तके लिख डालीं, जिनमें से चौदह पुस्तकें छप चुकी हैं। इसके बाद मै खड्गविलास प्रेस के सम्पादकीय विभाग मे स्थान पा सका। यदि ये मुझे प्रथम ही निरुत्साह कर देते, तो मैं इन पंक्तियो तक के लिखने मे भी असमर्थ रह जाता। मै इनका आजीवन आभारी रहूँगा।

महात्मा तुलसीदास के निम्नलिखित पदो को इन्होने अक्षरशः सार्थक कर दिखाया है—

"जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं
जद्यपि ताहि कामना नाहीं
तिमि सुख-सम्पति बिनहिं बुलाये
धर्मसील पहँ जाहिं सुभाये"

और भी—

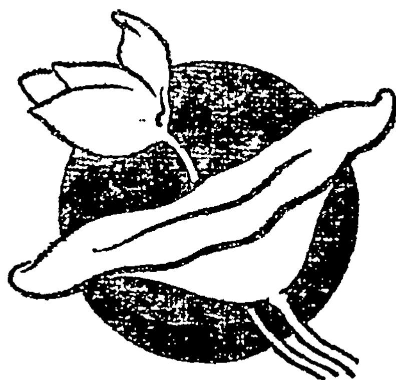
"प्रभुता को सबकोउ चहै, प्रभु को चहै न कोय
जो तुलसी प्रभु को चहै, आपुहि प्रभुता होय"

तात्पर्य यह कि धर्मशीलता ही सुख-सम्पत्ति की जड़ है। पूर्व जन्म अथवा इस जन्म मे जिसने धर्म का आश्रय ग्रहण किया है, उसी के सुखी होने का अवसर प्राप्त होता है। सब धर्मों का मूल भगवत् शरणागति है। जो प्रभु की कृपा प्राप्त करता है, उसी मे प्रभुता आ जाती है। यही सभी शास्त्रो और सन्तो का मत है। मैं देखता हूँ कि शरणजी मे श्रीभगवान् की भक्ति अटूट है। तभी तो विषय-वासनाएँ इनके पास फटकने नहीं पातीं—विषयी लोग इनके पास बैठने नहीं पाते। इनकी संगति रहती है पंडितो, साधुओ और सदाचारियो की। इनके 'भंडार' में नियमित रूप से श्रीभगवान् का यशः-कीर्त्तन होता है। यह सच्ची उन्नति का पथ-प्रदर्शक है। इनका धन बहुत-कुछ धार्मिक कार्य्यों मे ही व्यय

होता है। ये धार्मिक आचरणो में ही समय भी लगाते हैं। इनकी जबतक ऐसी निष्ठा रहेगी तबतक ये अनवरत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते चले जायँगे।

संसार मे वही बड़ा और वही सज्जन है, जिसकी प्रशंसा बड़े एवं सज्जन लोग किया करते हैं; उसमे भी ऐसे सज्जन जो उस व्यक्ति के प्रतिस्पर्द्धी हों। खड्गविलास प्रेस के दिवंगत स्वामी श्रीमान् रायबहादुर रामरणविजयसिंहजी का बड़प्पन और उनकी सुजनता उनके प्रेस के समान ही बिहार के कोने-कोने मे प्रख्यात है। मै कई बार उनके मुँह शरणजी की प्रशंसा सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाता। क्यो न हो—"सज्जन सुकृत-सिंधु सम कोई, देखि पूरविधु बाढ़इ जोई।"

समुचित सिंहावलोकन करने से यही ज्ञात होता है कि शरणजी दैवी सम्पदा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। इनसे संसार का अपूर्व कल्याण होने की सम्भावना है। ये औरो के लिये आदर्श स्वरूप हैं। ईश्वर करे, ये दीर्घजीवी हों—साहित्य गगन के निष्कलंक शरच्चंद्र-स्वरूप हो—अपनी विमल चंद्रिका से देश का अविद्यान्धकार दूर करते रहे। एवमस्तु।





साहित्य-सेवा का बिहारी आदर्श

श्रीगोविन्दनारायण सोमण ; काशी

मै जब छः-सात वर्ष का था तभी से श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस मे जाया करता था, क्योकि मेरे पिता (श्रीनारायण राजाराम सोमण) वहॉ उस समय सहायक मैनेजर थे। मैने कई बार वहॉ बाबू रामलोचनशरणजी (मास्टर साहब) को देखा था। अचानक एक बार वहॉ मैंने एक पुस्तक पर इनका नाम 'रामलोचनशरण बिहारी' देखा। इस 'बिहारी' का आशय जानने की लालसा उत्पन्न हुई।

श्रीमान् मास्टर साहब एक देहाती मास्टर का वेष बनाये वहॉ पहुॅचा करते थे, अतएव इनपर किसी की नजर न थी। ये एक साहित्यिक तपस्वी की तरह एक कोने मे बैठे प्रूफ वगैरह देखा करते थे। एक बार कुछ साहित्यिको मे 'बिहारी हिन्दी' पर बात छिड़ी। अब श्रीमान् मास्टरसाहब का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। इन्होने बिहार का पक्ष लिया। अब लोगो का ध्यान भी इनकी ओर आकृष्ट हुआ। एक ने पूछा—"जिस बिहार की आप हिमायत करते है उसमें गद्य-लेखक हैं कितने ? क्या उन्हीं के लेखो से कोई अच्छा संग्रह तैयार हो सकता है ?"

बात खतम हुई। ये काशी से लौटे। बिहारी लेखको के गद्य-लेखों के दो संग्रह, 'गद्य-चंद्रोदय' और 'गद्य-चन्द्रिका' के नाम से, कुछ ही दिनो में तैयार किये। इन पुस्तको को देख साहित्यिक-मंडली ने बिहार का गौरव समझा। उसी दिन से मास्टर साहब अपने नाम के आगे 'बिहारी' शब्द जोड़ने लगे। यह घटना आज से कोई बीस बरस पहले की है।

इनकी उस जान-पहचान से मेरी श्रद्धा भी इनकी ओर बढ़ती गई। कभी-कभी बनारस मे इनसे भेंट हो जाया करती थी। बाद मुझे पता लगा कि पूज्य पिताजी

अब लहेरियासराय चलकर 'भंडार' मे काम करेगे। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न रही। मै भी पिताजी के साथ तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था मे यहाँ आया। यहाँ आने पर मुझे मास्टर साहब के निकट रहने का तथा इनके रोज के कार्य-क्रम के देखने का मौका मिला। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। खूब तड़के उठना, दूर तक टहलना, पूजा-पाठ, सादा वेष और भोजन, किसी प्रकार का व्यसन नहीं। ये बातें मेरे लिये आश्चर्यजनक ही तो थी, क्योकि मैं शहर का रहनेवाला—शहर के रईसों की दैनिक कार्यवाही देखने का मौका मुझे मिल जाता था; पर यहाँ इनकी ऐसी सादगी देखकर मै मानो किसी दूसरी ही दुनिया में आ गया हूँ, ऐसा मालूम हुआ। इनका मेरे ऊपर अत्यन्त स्नेह था। ये और इनके परिवारवाले मुझे बहुत प्यार करते रहे। यहाँ मुझे घर का सुख मिला।

मै काशी का रहनेवाला ही हूँ, और पढ़ने के सिलसिले मे प्रयाग मे भी कई साल बिता चुका हूँ। ऐसी हालत मे मुझे वहाँ के साहित्य-सेवियों के देखने का मौका मिला है। काशी मे तो कई साहित्यिको से मेरी जान-पहचान भी है। इसीलिये मै उधर के लेखको के विषय मे थोड़ा-बहुत जान सका हूँ। बिहार के लेखकों को भी देखने तथा उनके सान्निध्य मे रहने का मौका मिला है। इन दोनों की तुलना करते हुए मुझे एक बात का बड़ा आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग इतने विद्वान् होते हुए भी अन्य प्रान्तवालो की तरह प्रदर्शन नही करते। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे आडम्बरहीन होते है और आत्मविज्ञापन करने की प्रवृत्ति उनमे नही होती। वे चुपचाप काम करना जानते है और इसलिये उनके काम अधिकतर ठोस हुआ करते है।

मास्टर साहब देश-भर के—विशेषतः बिहार के—साहित्यिकों को आश्रय देकर उनकी मूक सेवा को आगे बढ़ाते आये हैं, और आज भी बढ़ा रहे हैं।





सफल-जीवन की एक झाँकी

श्रीपरमेश्वरसिंह, शिवहर (मुजफ्फरपुर)

उन्नत ललाट, प्रशस्त मुख-मंडल, जिसपर तेज झलक रहा हो। बड़ी-बड़ी आँखे, जिनसे करुणा और प्रेम उमड़ रहा हो। गौर वर्ण, कांतिमय स्वरूप। यह शब्द-चित्र है स्वनामधन्य 'मास्टर साहब' का।

बिहार के किसी कोने मे, शिक्षित-समुदाय मे, आप चले जाइये, 'मास्टर साहब' कहते ही लोगो के सामने दया तथा त्याग की विमल मूर्त्ति आ जायगी।

'मास्टर साहब' क्या है, किन छोटे-बड़े तत्त्वो से उनका निर्माण विधाता ने किया है, यह समझने के लिये थोड़ा समय लगाना होगा। वे वह क्षुद्र नदी नही है, जो थोड़े ही जल मे इतराने लगती है; वे हैं गम्भीर समुद्र, जिसकी थाह लेनेवाला लाख मे एक होता है।

लगभग पाँच-छ साल से मै उनकी संगति से लाभान्वित हो रहा हूँ। उनके सम्पर्क मे आकर बहुत-कुछ सीखा। उनसे मुझे प्रेरणा मिली है। फिर भी मेरा यह दावा नही कि उनकी विशालता, उनकी ऊँचाई, तक पहुँच सका हूँ—उसे छू सका हूँ।

उन्होने बिहार मे शिक्षा का व्यापक प्रचार कर सुकीर्त्ति स्थापित की है। अपनी विविध सेवाओ के द्वारा बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। उच्चकोटि के साहित्यिक-ग्रंथ प्रकाशित कर बिहारियो के चेहरे की लाली रख ली है।

उनके जीवन को मै अपने परीक्षण, निरीक्षण, अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर तीन भागो मे विभक्त कर रहा हूँ। पहला भाग—शिक्षा-प्रचारक या शिक्षा-शास्त्री, दूसरा—समाज-सेवक, तीसरा भगवद्भक्त।

शिक्षा-शास्त्री और शिक्षा-प्रचारक की हैसियत से छोटे बच्चो के लिये सरल

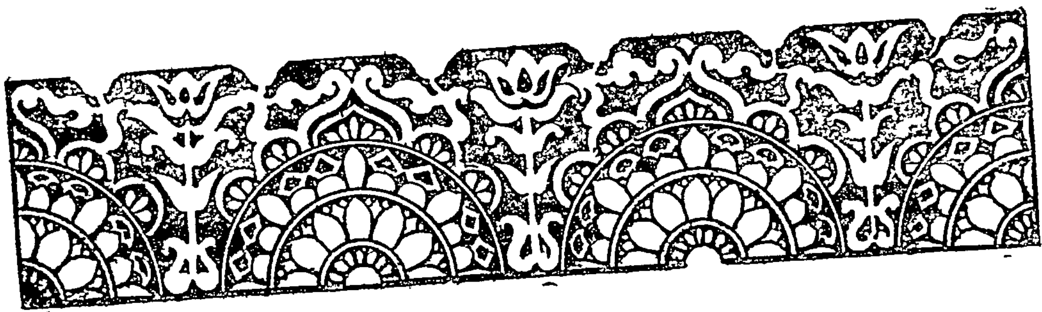
भाषा मे व्याकरण, गणित, इतिहास तथा भूगोल की पोथियाँ लिख और छापकर उन्होंने भावी पीढ़ी के आत्मबोध का मार्ग खूब प्रशस्त किया है। आज भले ही बालोपयोगी साहित्य प्रगति के पथ पर हो, मगर इस साहित्य का विकसित करने का श्रेय उन्हींको है। उनका 'बालक' सचमुच बालको का राजा है।

हिन्दी के प्रकाशको—खासकर विहार के प्रकाशको—मे अगर किसी ने लेखको की कृतियो की कदर की, उन्हे यथेष्ट पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया, तो मास्टर साहब ने ही। निरक्षरो में शिक्षा-प्रचार-आन्दोलन मे उनका बहुत बड़ा हाथ है। उन्होने हिन्दी, उर्दू और बँगला भाषाओ मे करीब एक लाख वर्णमाला सम्बन्धी 'चार्ट' छपवाकर मुफ्त बाँटे है।

समाज-सेवक के रूप मे भी उन्होने कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भवन के लिये पहले-पहल पटना मे जमीन खरीदी जाने लगी तो उन्होने ही उसका पूरा मोल दिया था। अपने गाँव मे अपने पूज्य पिता की स्मृति में, महँगू-संस्कृत-विद्यालय की स्थापना की है। उसके संचालन के लिये अबतक वे छः हजार से ज्यादा रुपये दे चुके है। तिरहुत-प्रान्तीय रौनियार-सभा, हरिकीर्त्तन-भवन आदि संस्थाओ की सेवा के लिये उनकी थैली हमेशा खुली रहती है। सबसे बड़ी समाज-सेवा उन्होंने हिन्दू-मुसलिम एकता के सम्बन्ध मे अपने क्रियात्मक प्रयत्नो द्वारा की है। १९३९ मे, दरभंगा जिले के 'जाले' गाँव मे, दोनो सम्प्रदायो मे भीषण दंगा हो जाता यदि वे उस अवसर पर उदारता-प्रदर्शन न करते।

भगवद्भक्त के रूप मे वे अध्ययन करने योग्य हैं। उनके सत्संग से मनुष्य मे प्रभुभक्ति का उद्रेक होता है। वे साहित्यिक विद्वान् से भी बढ़कर भगवान् के अमायिक भक्त हैं। कोई उत्सव या त्योहार ऐसा नहीं जिसमे भक्तो का समुदाय भंडार मे एकत्र न होता हो। साधु-संतो का तो वहाँ बराबर सत्कार होता रहता है।

दूसरो ने उनमे चाहे जो गुण या अवगुण देखे हो; पर मैंने तो उनमे दो गुण और एक ही अवगुण पाया है। पहला गुण है श्रमशीलता और दूसरा उदारता। अवगुण यह है कि लाख कोई हित-हानि करे, पर जान-बूझकर भी उससे बदला न लेने की मनोवृत्ति उनमे है। दुनियादारी मे इसका कुफल उन्हे भोगना पड़ता है, पर वे अपनी विशेषता नहीं छोड़ते।



'शरणजी' और मैं

श्रीहरिवंश सहाय, बी० ए०, बी० टी०, रिटायर्ड डिप्टी-इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, दरभंगा

मेरा पूर्ण विश्वास है कि रायसाहब रामलोचनशरणजी को हिन्दी-संसार के प्रायः सभी लोग जानते होगे। नैपाली लोग भी अपनी भाषा मे सटीक प्रकाशित तुलसीकृत ग्रन्थो को पाकर इनसे परिचित हो गये होगे।

जो पुस्तकें इनके 'भंडार' से प्रकाशित होती हैं, वे किसी भी भाषा मे हों, चाहे किसी विषय की हों, उनपर एक-न-एक विचित्रता और विशेषता की छाप पड़ी ही रहती है।

ऐसे पुरुष की उपमा किससे दी जाय ? इन्होने बिहार मे 'पुस्तक-भंडार' के द्वारा साहित्य सेवा के मार्ग को प्रशस्त कर दिया है। आज तो 'भंडार' की पुस्तको को आदर्श मानकर अन्य प्रकाशक भी देखादेखी पुस्तके प्रकाशित करते हैं। आज कितने ही बिहारी लेखक इनका सहारा पाकर हिन्दी-साहित्य-संसार मे प्रसिद्ध हो रहे हैं। इसका श्रेय इन्ही को है।

दरभंगा मे कालेज न रहने के कारण मिथिला के छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने मे बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। इसलिये मिथिला-कालेज की स्थापना हुई। मैं उसका सेक्रेटरी हुआ। कालेज खोलने मे इन्होने हमे अनेक प्रकार की सहायता दी। सैकड़ो रुपयो के फार्म छपवाकर और रजिस्टर बँधवाकर मुफ्त ही दिये। आज भी ये कालेज की सेवा मे सदा तत्पर रहते है।

शिक्षा की वृद्धि के कारण मिड्लि-परीक्षोत्तीर्ण बच्चों की संख्या दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। हाई स्कूलो मे सीटो का अभाव होने से सैकड़ो छात्रो का समय नष्ट होता था। इस असुविधा को दूर करने के लिये इन्होने लहेरियासराय मे

'महारानी कामेश्वरी प्रिया-विद्यापति-हाइ-स्कूल' की स्थापना मुझसे कराई। साथ ही, विद्यार्थियो को स्वावलम्बन की शिक्षा देने के लिये, श्रीमान् डाइरेक्टर साहब की अनुमति लेकर, प्रेस का काम मुफ्त सिखाने की भी व्यवस्था की है।

सचमुच इनका विद्यापति प्रेस कुबेर का भंडार है। अनेक सूचनाएँ—समाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, बालचर-सम्बन्धी, यहाँ बिना मूल्य छपती हैं। बहुत-से गरीब बालको को इनकी प्रकाशित हजारो रुपयो की पुस्तके प्रति वर्ष मुफ्त दी जाती हैं। साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों मे ये जी-जान से सहायता करते हैं।

सन् १९१० मे मैं नार्थब्रुक-स्कूल (दरभंगा) मे सहायक शिक्षक था। उसी समय ये भी स्कूल मे आये। इनका कोई परिचित न था। प्रधानाध्यापक ने मुझसे कहा—'इनके ठहरने का प्रबन्ध कर दे'। इनसे परिचय पूछने पर पता चला कि ये बदलपुरा-रियासत (पटना) के मालिक रायबहादुर रामानुग्रहनारायण सिह के सम्बन्धी हैं। बस, ज्यादा पूछपाछ न कर अपने साथ इन्हे ठहराया। दो-चार ही घंटों के बाद हम दोनो घुल-मिल गये। धीरे-धीरे ऐसा मालूम होने लगा कि हम दोनों मानों पूर्व जन्म के सगे भाई हो।

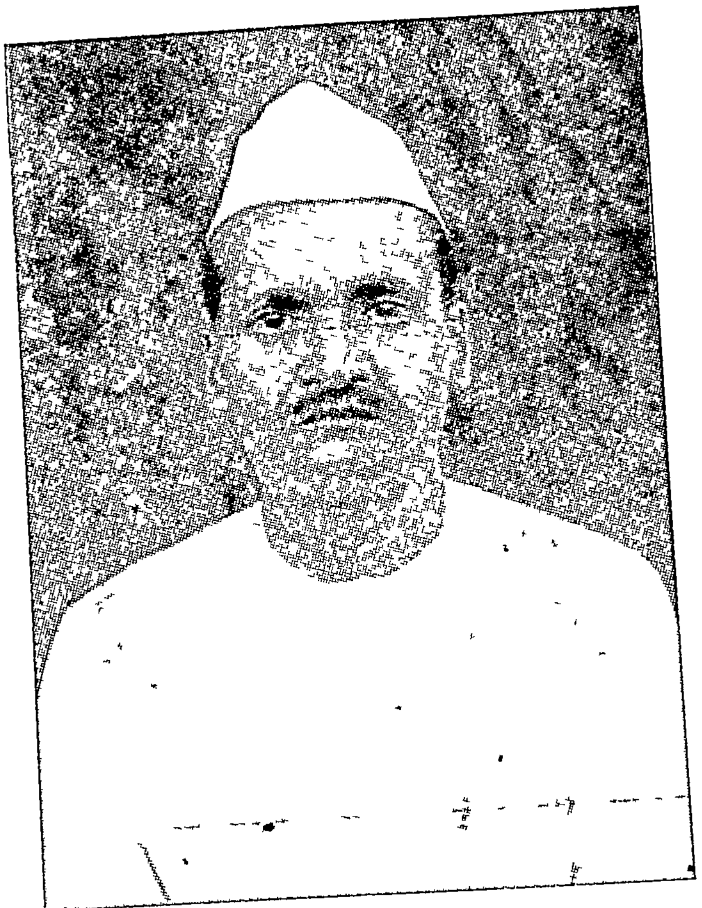
महीनो हमलोग आनन्द-पूर्वक साथ रहे। फिर बदलकर ये गया की ओर चले और मैं चला पटना ट्रेनिंग कालेज की ओर। १९११ ई० मे मैं ट्रेनिंग समाप्त कर दरभंगा आया और ये भी गया से लौटकर फिर नार्थब्रुक स्कूल मे आये। बहुत दिनो बाद बिछुड़े साथी मिले।

१९१३ ई० में मैं स्कूलो का सबइन्स्पेक्टर हुआ। मेरी बदली दरभंगा से सारन जिले मे हो गई। वहाँ कुछ दिनो तक रहने के बाद मैं फिर चम्पारन जिले मे बदल दिया गया। दोनो जिलो के स्कूलो के निरीक्षण से मैं पूरी तरह इनकी कलम की धाक से परिचित हो गया। सचमुच विद्यार्थी इनकी पुस्तकों को मिठाई की तरह मधुर समझकर उनके रसास्वादन से अपूर्व आनन्द उठाते थे।

मैं समझता हूँ कि इनकी एक खास शैली है, जिसके अनुयायियो की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। अत' जिस तरह श्रद्धेय आचार्य द्विवेदीजी की प्रसिद्धि हिन्दी जगत् में है उसी तरह बिहार प्रान्त मे इनकी भी है। मैं इन्हें युग-प्रवर्त्तक मानता हूँ।

मैं अपनी बाते कहना भूल गया। मुझे प्रोत्साहन प्रदान कर इन्हीं ने मुझसे अँगरेजी मे बहुत-सी पुस्तकें लिखवाई। मेरी पुस्तको की भी प्रसिद्धि खूब हुई। अपनी पुस्तकों के कारण 'भंडार' से मुझे हजारो रुपये मिले हैं। अत. मैं शरणजी और 'भंडार' का आजीवन कृतज्ञ हूँ।

श्रीशरणजी के स्वर्गीय पूज्य पिता



श्रीशरणजी के अनुज—बाबू वंशलोचनप्रसाद (पृ० ६६१)



श्रीरामलोचनशरणजी की फूफी



श्रीजगत्तारणप्रसाद
(श्रीरामलोचनशरणजी का भांजा)

श्रीरामलोचनशरण की दानशीलता

श्रीनथुनीप्रसाद मालिक; मैनेजर—'पुस्तक-भंडार'

मुझ-जैसा साधारण योग्यता का मनुष्य आज एक भारत-विख्यात संस्था के मैनेजर-पद पर आसीन है, इसका सारा श्रेय मास्टर साहब को है, जिन्होंने मुझे अपने लड़के की तरह पाल-पोसकर और लिखा-पढ़ाकर आदमी बनाया है।

मेरे पिताजी की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। मास्टर साहब की कृपा-दृष्टि से मेरा भाग्योदय हुआ। यदि 'भंडार' की छत्रच्छाया न होती तो प्रायः शिक्षित समाज से सम्पर्क का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त न होता। मेरे लड़के भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, यह 'भंडार' का ही प्रसाद है।

'पुस्तक-भंडार' के खुलने के छः महीने बाद से ही मैं मास्टर साहब की सेवा में नियुक्त हो गया। उसी समय से मैं देखता आ रहा हूँ, 'भंडार' से छात्रों का असीम उपकार हुआ है। मास्टर साहब की लिखी हुई पाठ्यपुस्तकें छात्रों और शिक्षकों के लिये वरदान सिद्ध हुईं। शुरू से ही शिक्षकों, छात्रों तथा ग्राहकों के प्रति 'भंडार' का व्यवहार इतना सुन्दर रहा है कि वे सब-के-सब मुग्ध रहते हैं। मास्टर साहब की बराबर यही ताकीद रहती है कि 'भंडार' में समागत किसी व्यक्ति के सत्कार में कोई त्रुटि न होने पावे। 'भंडार' के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से सभी आगन्तुक सज्जन सन्तुष्ट होकर ही जाते हैं। जब 'भंडार' की आर्थिक अवस्था आज की तरह उन्नत नहीं थी तब भी, जब कोई साहित्यिक व्यक्ति 'भंडार' में पधारने की कृपा करते, मास्टर साहब का प्रेम देखने लायक होता। वे स्वयं खड़े हो उनके स्नान, जलपान, भोजन और विश्राम की व्यवस्था करते तथा हमलोगों को आदेश देते—"देखो, ये जबतक रहें, इनकी सेवा में किसी तरह की त्रुटि न होने पावे।"

यह कहते हुए मुझे गर्व का अनुभव होता है कि 'भंडार' साहित्यिकों के लिये सचमुच विश्रामागार-स्वरूप है। एक बार पूज्यपाद आचार्य द्विवेदीजी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"बिहार में साहित्यिकों के लिये ठहरने को कोई जगह है,

तो वह है श्रीयुत रामलोचनशरणजी का पुस्तक-भंडार।" वास्तव मे 'भंडार' शुरू से ही साहित्यिकों का आतिथ्य-भवन रहा है। जो कोई बाहर के विद्वान् बिहार में पधारते है, वे प्रायः 'भंडार' के ऊपर अवश्य ही कृपा करते हैं। 'भंडार' को जिन साहित्यिक विद्वानों का सम्मान करने अथवा उनकी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है, उनमें कुछ व्यक्तियों के नाम ये हैं—आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी, प्रसादजी, प्रेमचंदजी, कविवर मैथिलीशरण गुप्त, कविवर हरिऔधजी, पं० अक्षयवट मिश्र, महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, डाक्टर सर गंगानाथ झा, राय कृष्णदासजी आदि। इनके अतिरिक्त पूज्य महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० सच्चिदानन्द सिंह, काका कालेलकर, प० हरिभाऊ उपाध्याय, स्वामी भवानीदयाल सन्यासी आदि देशसेवकों का आशीर्वाद तथा सहानुभूति प्राप्त करने का सौभाग्य भी 'भंडार' को मिला है। बिहार के साहित्यानुरागी नरेशों में दरभंगा के महाराजाधिराज, राजनगराधीश श्रीमान् राजा विश्वेश्वर सिंह बहादुर, श्रीनगराधीश कुमार गंगानंदसिंह, सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, नरहनाधीश श्रीमान् कामेश्वरनारायण सिंह तथा सुरसंड के श्रीमान् चंद्रेश्वरप्रसाद-नारायण सिंह का विशेष प्रेम तथा अनुग्रह इस 'भंडार' पर है। और, यह सब सौभाग्य मास्टर साहब की उस प्रतिभा एवं उदारता का परिणाम है जो उन्हे ईश्वर ने विशेष रूप से दी है।

मास्टर साहब की गणना उन व्यक्तियों में है जो रुपये की महत्ता सिर्फ उसके सदुपयोग में समझते हैं। समय-समय पर, प्रकट वा अप्रकट रूप से, उन्होंने जितने व्यक्तियों और संस्थाओं की सहायता की है, उन सबका यदि नामोल्लेख भी किया जाय तो एक बड़ा-सा पोथा तैयार हो जायगा। कई हजार रुपये गुप्त दान के खाते मे मेरे ही हाथ से दर्ज हैं।

हर साल दिसम्बर-जनवरी मे 'भंडार' में गरीब विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों का मेला-सा लग जाता है। किसी को इतिहास चाहिये, किसी को भूगोल, किसी को व्याकरण, किसी को रीडरें। मैं उनका चिट्ठा देखकर परेशान रहता हूँ। लेकिन उस चिट्ठे पर मास्टर साहब की मुहर देख किसी को विमुख भी नहीं कर सकता। परिणामतः हर साल हजारों किताबें 'फ्रीलिस्ट' में चढ़ जाती हैं। इस तरह 'भंडार' के कई हजार रुपये खैरात निकल जाते हैं। किन्तु असंख्य निःसहाय छात्रों के हृदय से निकले हुए आशीर्वाद उन रुपयों से कहीं अधिक मूल्य रखते हैं।

सुयोग्य छात्रों के लिये तो मास्टर साहब कल्पवृक्ष के समान हैं। आज तक उन्होंने कितने ही छात्रों को हर तरह की सहायता देकर सुयोग्य बनाया है। पूरा ब्योरा देना तो कठिन है, पर प्रोफेसर रामलोचन शर्मा 'कंटक', प्रोफेसर हरि-

मोहन झा, पं० अभिराम झा ज्योतिषाचार्य, श्रीनागेन्द्र कुमर बी.ए. आदि उन्हीं की कृपा से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके हैं। इन कामों में भी बीस हजार रुपये लगे होंगे।

देश-सेवा के कार्य में भी मास्टर साहब सदा अग्रसर रहते है। कितने लोग यश कमाने के लिये ढिढोरा पीटकर दान देते हैं। आप उन व्यक्तियों में नहीं हैं। आप सच्चे दानवीर है। समय पड़ने पर हजारो रुपये दे डालते हैं और उसके लिये धन्यवाद तक लेना पसंद नहीं करते। रामगढ़ की ५३ वीं कांग्रेस के समय 'भंडार' मे पूज्य राजेन्द्र बाबू के पदार्पण करते ही आपने तुरत एक हजार का चेक काटकर सादर अर्पित कर दिया।

सम्राट् पंचम जार्ज की सिलवर जुबली तथा सम्राट् षष्ठ जार्ज के राज्याभिषेक के अवसरो पर आपने जी खोलकर रुपया खर्च किया। 'बालक' के विशेषांक निकाले। उसका विना मूल्य वितरण किया गया। स्वर्गीय सम्राट् की जीवनी प्रकाशित कर जनता मे बॉटी गई। जुब्ली के उत्सव-विषयक फिल्म दिखलाने के लिये जगह-जगह प्रचारक भेजे गये। इन सब कामो में भी 'भंडार' के बीस हजार रुपये से कम नहीं लगे होंगे।

बिहार-सरकार के साक्षरता-आन्दोलन मे आपने अपने नवाविष्कृत सुन्दर वर्णमालाचार्ट की एक लाख प्रतियॉ छपवाकर भिन्न-भिन्न शिक्षा-केन्द्रो मे मुफ्त बॉटी थी। इतना ही नही, निरक्षरो के लिये उर्दू, हिन्दी, बॅगला, संथाली आदि भाषाओ मे रीडरे भी तैयार कर हजारो की संख्या मे मुफ्त बॉटी थी। इस काम मे भी लगभग पचीस हजार रुपये लगे होगे।

स्वजातीय और सामाजिक हित के कार्यों में भी आप सदा अपनी उदारता का परिचय देते रहे हैं। आज रौनियार-सभा को हजार रुपये दे रहे हैं, तो कल कीर्त्तन-समाज के लिये भवन बनवा रहे है। सार्व-जनिक संस्थाओं के लिये आप मानो कामधेनु हैं। कभी साहित्य-सम्मेलन के लिये चुपके से चेक काटकर भेज देते है, कभी किसी राष्ट्रीय संस्था के लिये। आपको विश्वास-भर हो जाय कि संस्था ठोस काम कर रही है और चंदे का सदुपयोग होगा, फिर तो चेक काटते देर नही होती।

आपका विद्यापति प्रेस तो मानो सदाव्रत के लिये ही खुला है। कभी किसी गोशाला के लिये मुफ्त फार्म छप रहा है, तो कभी किसी अनाथालय के लिये। कभी 'मिथिला' पत्रिका छप रही है, तो कभी 'रौनियार वैश्य'। प्रेस भी समझता है कि इनका बिल कभी चुकता होनेवाला नही। ऐसा धर्म-खाता रोज ही खुला रहता है।

आपने मिथिला और मैथिली के लिये जो ठोस काम किये हैं, वे भी उपेक्षणीय नही है। मिथिलाक्षर के टाइप बनवाकर, मैथिली मे पुस्तकें लिखवाकर,

'मिथिला' पत्र निकालकर, महाकवि विद्यापति की प्रतिभा के चमत्कार को जनता के समक्ष लाकर, मैथिली-साहित्य की वृद्धि मे योग देकर मिथिला का जो गौरव आपने बढ़ाया है, वह विस्मरणीय वस्तु नही है। इतना ही नही, मिथिला की जनता के उपकारार्थ धर्मशास्त्र, कर्मकांड आदि की सस्ती पोथियाँ छपवाकर आपने जो पुण्य कमाया है, वह भी थोड़ा नही है। आपके परिचित ब्राह्मण तो 'भंडार' के छपे हुए पंचांग पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। इस तरह 'भंडार' के कई हजार रुपये प्रति वर्ष परमार्थ मे लग जाते हैं।

आप साहित्यिक प्रकाशन मे शूर हैं। स्कूली किताबो से जो आय होती है, उसका बहुत बड़ा अंश साहित्यिक ग्रन्थो के प्रकाशन मे ही जाता है। यद्यपि उन ग्रन्थो से आर्थिक लाभ नहीं है, प्रत्युत व्यावसायिक दृष्टि से हानि ही है, तथापि आपका विचार है कि साहित्य-सेवा द्रव्य-लाभ से कहीं श्रेष्ठ है।

अगर सच पूछा जाय तो 'भंडार' की आय का मूल स्रोत आपकी अपनी ही लेखनी है। हिसाब लगाने से मालूम होता है कि आपकी लिखी 'पत्र-चंद्रिका' पन्द्रह लाख से अधिक बिकी है। 'भारत की ऐतिहासिक कहानियाँ' भी पन्द्रह लाख से कम नही बिकी। आपकी जितनी भी रचनाएँ हैं, वे लोकप्रियता में अपना सानी नही रखती। आपकी लिखी 'मनोहरपोथी' आज देश के बच्चों का कंठहार हो रही है।

कभी-कभी आप ऐसी पुस्तके निकालने लगते हैं, जो शुरू मे अनावश्यक प्रतीत होती हैं। जैसे—संथाली-प्राइमर, मुंडा-उराँव-गीत। आज से छ-सात वर्ष पहले जब आप ये पुस्तके तैयार कर रहे थे, मै भीतर-ही-भीतर कुढ रहा था। आज देखता हूँ, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन उस कार्य की महत्ता स्वीकार कर उसके लिये बधाई दे रहा है। आपकी सूझ सचमुच विलक्षण है। हमलोग आपके दूरदर्शितापूर्ण कार्य का अर्थ तब समझ पाते हैं जब बरसो बाद उस कार्य का महत्त्व और सुफल सामने आता है।

आपने अपने ग्राम तथा बन्धुबान्धवो की उन्नति मे भी काफी रुपये लगाये हैं। अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति मे अपने गाँव मे एक संस्कृत-विद्यालय की स्थापना कर दी है। उसके संरक्षणार्थ भूसंपत्ति का उचित प्रबन्ध कर दिया है। आपके सगे छोटे भाई बाबू वंशलोचनप्रसाद आपसे पृथक् परिवार मे रहते हैं। समय-समय पर आपने उनकी प्रभूत आर्थिक सहायता की है। आपके जितने निकट वा दूर के स्वजन-संबधी हैं, सब-के-सब श्राद्ध-विवाहादि मे आपसे सहायता-रूप मे रुपये ले जाते है।

इस तरह लाखो रुपये मास्टर साहब ने परोपकार मे लगाये हैं।



सफल उद्योगी 'मास्टर साहब'

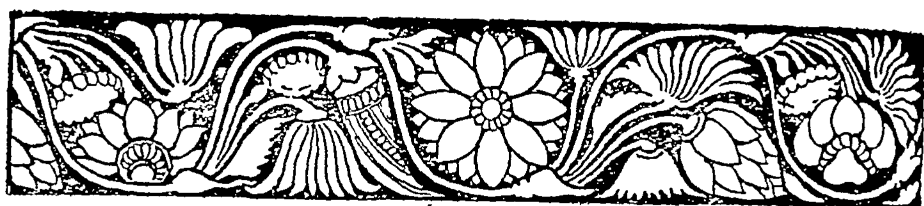
काशी-निवासी श्रीहनुमानप्रसाद; मैनेजर—विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

सन् १९२२ ई० मे, जब मै लक्ष्मीनारायण प्रेस (बनारस) मे काम कर रहा था, मेरा सबसे पहला परिचय 'मास्टर साहब' से हुआ। इनके साहस और परिश्रम को देख मै चकित हो गया। मुझमे क्या गुण है, मै नही जानता; परन्तु इन्होने वहीं मुझे अच्छी तरह पहचान लिया। मनुष्य को परखने की शक्ति इनमे अद्भुत है।

सन् १९२८ ई० इन्होने 'विद्यापति प्रेस' खोला। सन् १९२९ ई० मे मैं इस प्रेस मे काम करने के लिये आया। उस समय पं० कुशेश्वर कुमर मैनेजर थे। कुछ दिनो के बाद वे किसी कारण से चले गये। तब इन्होने मुझे मैनेजर नियुक्त किया। उस समय प्रेस मे सिर्फ १ ट्रेडिल और १ हैड प्रेस था। प्रेस मे करीब दस-बारह आदमी काम करते थे। परन्तु, आज भगवान् की कृपा से उन्नीस मशीने हैं—४ फ्लैट, ३ ट्रेडिल, १ लीथो प्रिंटिंग, २ प्रूफ प्रेस, १ परफेरेटिंग, ३ पेपर कटिंग, ४ स्टिचिंग और १ शान चढ़ानेवाली। आजकल लगभग २०० आदमी यहाँ काम करते है। इस प्रकार २०० आदमियो के द्वारा १००० आदमियो का पालन-पोषण हो रहा है। आजकल हिन्दी, अँगरेजी, बँगला और उर्दू के नाना प्रकार के नये ढँग के टाइप काफी है।

यह सब किसका फल है—केवल मास्टर साहब के उद्योग का। जब से मैं यहाँ आया हूँ, 'प्रेस' और 'भंडार' की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति देखता आ रहा हूँ। इसका असल कारण यह है कि बहुत-से लोग थोड़ी-सी सफलता पर घमंड मे चूर हो जाते है—किसीको कुछ नहीं समझते; परन्तु 'मास्टर साहब' मे यह बात नहीं। 'उद्योगी नर-सिंह को आवत संपति भूरि'।

श्रीमान् मास्टर साहब ने अपना प्रति मिनट अबतक बराबर सदुद्योग मे बिताया है। उन्होने जो कुछ अबतक किया है, उत्साह के साथ। मेरा विश्वास है कि यदि भगवान् की कृपा रही तो कुछ ही दिनो मे 'भंडार' और 'प्रेस' ताता-कम्पनी की तरह बिहार मे अपना नाम तथा यश स्थापित कर लेगा।



श्रीरामलोचनशरण

प्रोफेसर कृपानाथ मिश्र, बी० ए० ऑनर्स (लन्दन); एम० ए० (पटना); एम०ई० ए० (लंदन)

जुलाई, १९३० मे विलायत से लौटकर मै श्रीमुरलीमनोहर सिह के मकान पर ठहरा था। मुरली बाबू उस समय अँगरेजी दैनिक 'एक्सप्रेस' (पटना) के सम्पादक थे। उस समय उनका मकान स्वर्गीय सर फखरुद्दीन के मकान के पास था (अब उनका अपना घर कदमकुँए मे है)। उसी मकान मे श्रीरामलोचन शरण से मेरा प्रथम व्यक्तिगत परिचय हुआ। पत्र-द्वारा परिचय तो पहले से था ही। उस समय मुझे यह भी मालूम नही था कि निकट के लोग इन्हे 'मास्टर साहब' कहते है।

प्रथम परिचय से मुझे खुशी तो हुई ही, आश्चर्य भी हुआ। मैने तो यह समझा था कि श्रीरामलोचनशरण कोई वृद्ध सज्जन होगे, जिनका चेहरा रूखा-सूखा होगा। वृद्ध मै इसलिये समझता था कि पुस्तक-व्यवसाय और प्रकाशन में, प्रतिद्वन्द्वियो के रहते भी, जैसी सफलता इन्होने प्राप्त कर ली थी, वैसी सफलता अनुभव-सापेक्ष्य है, और अनुभवी तो वृद्ध ही होते है न? चेहरा रूखा-सूखा इस लिये समझता था कि परिचय के पूर्व मैने हिन्दी में लिखित इनके व्याकरणों को पढ़ा था। पढ़कर मै इनकी विशुद्ध प्रणाली, सत्य-निष्ठा (thoroughness) और वैज्ञानिक पद्धति का कायल हुआ था।

अब कल्पना कीजिये मेरे आश्चर्य की, जब मैने एक मध्यवयस्क, हँसमुख, तीक्ष्ण, सुप्रतिभ सज्जन को अपने सम्मुख पाया। न केश पके थे, न आँखें खराब थीं, संभवत. सामने का एक दाँत टूटा था जिससे इनकी हँसी और भाती थी।

तबसे लेकर आजतक मास्टर साहब से मै अनेक बार मिला, मास्टर साहब मुझसे अनेक बार मिले। पारस्परिक सम्बन्ध घना हुआ, और अबतक है।

मास्टर साहब ने जो मेरे साथ सज्जनोचित व्यवहार किया है, वह व्यावसायिक सम्बंध के परे है, और इसी से मुझपर उनका स्नेहाधिकार है।

× × × ×

न मालूम क्यो, मास्टर साहब मे प्रतिभा परखने की एक विचित्र शक्ति है। बिहार के बाहर भी जिन-जिन लेखको के साथ इनके सम्बंध मे बातें हुई, सबने इनकी प्रशंसा की। यहाँतक कि स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रसंगवश इनको बड़ा माना। बात यह हुई कि १९३१—३२ में पत्र-द्वारा द्विवेदीजी के साथ मेरा सम्बंध निकटतम हो चला। बड़ी अनुकम्पा से वे अपनी तकलीफो का वर्णन अपने पत्रों में किया करते थे। मेरी उनपर ऐसी अटूट श्रद्धा थी (और है) कि मैंने उन्हे पटना आकर अपने साथ रहने का विनम्र आमंत्रण भेजा। उन्होने लिखा—"भाई मेरे, खाट पर से उठने तक की शक्ति मुझमे नही। अन्यथा जरूर आता। तुम्हारी तरह बिहार मे मेरे और प्रेमी भी है—जायसवालजी, रामलोचनजी और बलदेवजी*। पर मैं क्या करूँ, लाचार हूँ।"

× × × ×

मास्टर साहब ने एक सामाजिक बात मे जैसी सहायता मेरी की, वैसी मेरे निकटतम मित्रों ने भी नहीं की है। मेरी छोटी बहन के विवाह में कुछ बखेड़ा हो रहा था। मैथिलो मे विलायत से लौटे हुए ब्राह्मण की सगी बहन के वैवाहिक सम्बंध मे बखेड़ा होना स्वाभाविक ही है। मैं लहेरियासराय बहुत दिनो तक रहा। इधर-से-उधर भटकता फिरता। कही पूछ न थी। बुद्धि चकरा गई, धैर्य नष्ट हुआ। इसी समय मास्टर साहब ने मेरे झमेले को अपनाया और कई दिनो मे ही उसे सुलझा डाला। मेरे बहनोई आज गवर्नमेंट प्रेस मे सुखी हैं, बी० ए० हैं; उस समय मैट्रिक मे पढ़ते थे। इस वैवाहिक सम्बन्ध को ठीक करते समय एक बात ऐसी हुई जिससे मास्टर साहब के चरित्र की खूबी का पूरा पता चलेगा।

लहेरियासराय से मेरे साथ मोटर पर दो सज्जन सवार हुए—मास्टर साहब और पं० कपिलेश्वरमिश्र। गंतव्य स्थान था पिंडारुछ। यात्रा का उद्देश्य था अपने भावी बहनोई को देखना। कुछ दूर जाने पर मोटर खराब हुई। मास्टर साहब लौटनेवाले जीव तो थे नही। हम सभी इक्के पर सवार हुए और चल पडे। मुहम्मदपुर स्टेशन पर वर-पार्टी के लोग आये और बातें हुईं। फिर अँधेरा हुआ और वर-पार्टी ने हमलोगो के लिये कुछ खाने की चीजे भेजी। हमलोग स्टेशन के बुकिंग-आफिस के पास नीचे बैठ गये। एक कुली ने रेलवे-लालटेन रख दी। उसीकी रोशनी मे हमलोगो ने खाया। अब यहाँ सबसे मार्के की बात यह है कि

* आजतक मैं नहीं जानता, ये कौन हैं और इनका पूरा नाम-पता क्या है।—ले०

मास्टर साहब ने जो मेरे साथ सज्जनोचित व्यवहार किया है, वह व्यावसायिक सम्बंध के परे है, और इसी से मुझपर उनका स्नेहाधिकार है।

× × × ×

न मालूम क्यो, मास्टर साहब मे प्रतिभा परखने की एक विचित्र शक्ति है। विहार के बाहर भी जिन-जिन लेखको के साथ इनके सम्बंध मे बातें हुई, सबने इनकी प्रशंसा की। यहाँतक कि स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रसंगवश इनको बड़ा माना। बात यह हुई कि १९३१—३२ में पत्र-द्वारा द्विवेदीजी के साथ मेरा सम्बंध निकटतम हो चला। बड़ी अनुकम्पा से वे अपनी तकलीफो का वर्णन अपने पत्रो में किया करते थे। मेरी उनपर ऐसी अटूट श्रद्धा थी (और है) कि मैंने उन्हे पटना आकर अपने साथ रहने का विनम्र आमंत्रण भेजा। उन्होने लिखा—"भाई मेरे, खाट पर से उठने तक की शक्ति मुझमे नही। अन्यथा जरूर आता। तुम्हारी तरह विहार मे मेरे और प्रेमी भी है—जायसवालजी, रामलोचनजी और बलदेवजी*। पर मैं क्या करूँ, लाचार हूँ।"

× × × ×

मास्टर साहब ने एक सामाजिक बात मे जैसी सहायता मेरी की, वैसी मेरे निकटतम मित्रों ने भी नहीं की है। मेरी छोटी बहन के विवाह में कुछ बखेड़ा हो रहा था। मैथिलो मे विलायत से लौटे हुए ब्राह्मण की सगी बहन के वैवाहिक सम्बंध मे बखेड़ा होना स्वाभाविक ही है। मैं लहेरियासराय बहुत दिनो तक रहा। इधर-से-उधर भटकता फिरता। कही पूछ न थी। बुद्धि चकरा गई, धैर्य नष्ट हुआ। इसी समय मास्टर साहब ने मेरे झमेले को अपनाया और कई दिनो मे ही उसे सुलझा डाला। मेरे बहनोई आज गवर्नमेंट प्रेस मे सुखी हैं, बी० ए० हैं; उस समय मैट्रिक मे पढ़ते थे। इस वैवाहिक सम्बन्ध को ठीक करते समय एक बात ऐसी हुई जिससे मास्टर साहब के चरित्र की खूबी का पूरा पता चलेगा।

लहेरियासराय से मेरे साथ मोटर पर दो सज्जन सवार हुए—मास्टर साहब और पं० कपिलेश्वरमिश्र। गंतव्य स्थान था पिंडारुछ। यात्रा का उद्देश्य था अपने भावी बहनोई को देखना। कुछ दूर जाने पर मोटर खराब हुई। मास्टर साहब लौटनेवाले जीव तो थे नही। हम सभी इक्के पर सवार हुए और चल पडे। मुहम्मदपुर स्टेशन पर वर-पार्टी के लोग आये और बाते हुई। फिर अँधेरा हुआ और वर-पार्टी ने हमलोगो के लिये कुछ खाने की चीजे भेजी। हमलोग स्टेशन के बुकिंग-आफिस के पास नीचे बैठ गये। एक कुली ने रेलवे-लालटेन रख दी। उसीकी रोशनी मे हमलोगो ने खाया। अब यहाँ सबसे मार्के की बात यह है कि

* आजतक मैं नहीं जानता, ये कौन हैं और इनका पूरा नाम-पता क्या है।—ले०

पुस्तके है जिनके प्रकाशन से इनको आर्थिक लाभ हो नही सकता (जैसे—हरिऔधजी का 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास')—इनमे रुपया लगाना दिलेरी है, और मास्टर साहब दिलेर है। मैने स्वयं इस बात का अनुभव किया है कि मामूली-से-मामूली टेक्स्ट-बुक-सबंधी काम के लिये प्रकाशक रुपये मुक्त हृदय से दे देते है, लेकिन ठोस साहित्यिक काम के लिये आनाकानी करते है। उदाहरणार्थ-जब हिन्दी मे मैने 'अँगरेजी उच्चारण-विधान' लिखना शुरू किया, कई प्रकाशको ने यह कहा कि इस पुस्तक को छापने मे बड़ा बखेड़ा है। मास्टर साहब ने, कई टाइपो को छोटा-बड़ा कर, पुस्तक निकाल ही दी। मै जानता हूँ, इससे एक पैसा मिलने की आशा अभी नही—(यद्यपि डाक्टर सिन्हा के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' मे यह लिखा गया है कि भारतीय भाषाओ मे ऐसा प्रयत्न प्रथम और स्तुत्य है)। इस तरह की पुस्तको को निकालना साहस का काम हैं।

दूसरे कथन का प्रमाण यह है कि हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध मे—लोग चाहे जो कहे—मेरा विश्वास है कि जनता की भाषा यही हो सकती है। इस विषय मे मास्टर साहब से बहुत-सी बाते, रह-रहकर, हुई है। जब-जब मैने यह कहा कि इस भाषा को लेकर मै गवेषणात्मक निबंध लिखना चाहता हूँ—लोग कहाँ, कैसे, क्या बोलते है, इसका ग्रामोफोन-रेकर्ड बनवाकर शब्द-समष्टि का टेबुल बनाना चाहता हूँ, तब-तब मास्टर साहब ने यही कहा है कि जो खर्च होगा, मै दूँगा। आजतक यह काम मुझसे नही हो सका, लेकिन कभी-न-कभी होगा ही। अब आप ही विचारिये, इस निबंध के प्रकाशित करने में खर्च, लिखवाने मे खर्च, और लाभ? न तो किसी युनिवर्सिटी मे टेक्स्ट होगी, न किसी स्कूल मे। हाँ, लेखक और प्रकाशक भले ही कोसे जायँ—जायँगे ही। लेकिन इससे मास्टर साहब कहाँ डरते? बिना लाभ की आशा से यदि रुपये खर्च वे करते और ऐसा करने पर गाली सुनते हुए भी सिद्धान्त के लिहाज से वे आगे ही बढ़े जाते है, तो उन्हे आदर्शवादी न क्यो कहा जाय?



पुस्तके है जिनके प्रकाशन से इनको आर्थिक लाभ हो नही सकता (जैसे—हरिऔधजी का 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास')—इनमे रुपया लगाना दिलेरी है, और मास्टर साहब दिलेर है। मैने स्वयं इस बात का अनुभव किया है कि *मामूली-से-मामूली टेक्स्ट-बुक-सबंधी काम के लिये* प्रकाशक रुपये मुक्त हृदय से दे देते है, लेकिन ठोस साहित्यिक काम के लिये आनाकानी करते है। उदाहरणार्थ-जब हिन्दी मे मैने 'ॲगरेजी उच्चारण-विधान' लिखना शुरू किया, कई प्रकाशको ने यह कहा कि इस पुस्तक को छापने मे बड़ा बखेड़ा है। मास्टर साहब ने, कई टाइपो को छोटा-बड़ा कर, पुस्तक निकाल ही दी। मै जानता हूँ, इससे एक पैसा मिलने की आशा अभी नही—(यद्यपि डाक्टर सिन्हा के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' मे यह लिखा गया है कि भारतीय भाषाओ मे ऐसा प्रयत्न प्रथम और स्तुत्य है)। इस तरह की पुस्तको को निकालना साहस का काम हैं।

दूसरे कथन का प्रमाण यह है कि हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध मे—लोग चाहे जो कहे—मेरा विश्वास है कि जनता की भाषा यही हो सकती है। इस विषय मे मास्टर साहब से बहुत-सी बाते, रह-रहकर, हुई है। जब-जब मैने यह कहा कि इस भाषा को लेकर मै गवेषणात्मक निबंध लिखना चाहता हूँ—लोग कहाँ, कैसे, क्या बोलते है, इसका ग्रामोफोन-रेकर्ड बनवाकर शब्द-समष्टि का टेबुल बनाना चाहता हूँ, तब-तब मास्टर साहब ने यही कहा है कि जो खर्च होगा, मै दूँगा। आजतक यह काम मुझसे नही हो सका, लेकिन कभी-न-कभी होगा ही। अब आप ही विचारिये, इस निबंध के प्रकाशित करने में खर्च, लिखवाने मे खर्च, और लाभ ? न तो किसी युनिवर्सिटी मे टेक्स्ट होगी, न किसी स्कूल मे। हाँ, लेखक और प्रकाशक भले ही कोसे जायँ—जायँगे ही। लेकिन इससे मास्टर साहब कहाँ डरते ? विना लाभ की आशा से यदि रुपये खर्च वे करते और ऐसा करने पर गाली सुनते हुए भी सिद्धान्त के लिहाज से वे आगे ही बढे जाते है, तो उन्हे आदर्शवादी न क्यो कहा जाय ?





मास्टर साहब का पारिवारिक-जीवन

श्रीअशरफीलाल वर्मा; मकुनाही (मुजफ्फरपुर)

मास्टर साहब के गॉव 'राधाउर' मकुनाही के बीच केवल एक फर्लाङ्ग का अन्तर है। इनके और मेरे पूर्वजो मे गाढ़ी मित्रता थी, जो आज भी उसी तरह चली आती है।

इनका पहला व्याह, सन् १९०४ ई० मे, मुजफ्फरपुर जिले के 'भारसर' गॉव मे, हुआ था, जिससे ज्येष्ठ सुपुत्र श्रीवैदेहीशरण का जन्म हुआ। सन् १९१६ मे प्रथम पत्नी का देहान्त हुआ। सन् १९१७ मे, इनका दूसरा व्याह नैपाल राज्य के 'रामवन' गॉव मे हुआ, जिससे तीन सुपुत्र है—मैथिलीशरण (लालबाबू), सीताशरण (श्यामबाबू), सियारामशरण (रामबाबू), और पॉच कन्याएँ हैं—शान्ति, भारती, भवानी, उर्मिला और इन्दिरा।

मास्टर साहब ने सोने की गृहस्थी बनाई है। इनके परिवार मे शान्ति, सादगी, स्नेह और सबसे बढ़कर भगवान् की भक्ति का बोलबाला है। इनकी वर्त्तमान पत्नी गृहप्रबन्ध मे इतनी कुशल है कि उन्ही पर इन्होने गृहस्थी का सारा भार छोड़ दिया है और वे बड़ी दक्षता से चला रही हैं।

इनके पितामह के समय तक अच्छी सम्पत्ति थी, परन्तु इनके पिता और चचा के समय में वह क्षीण हो गई। जो कुछ बची-खुची थी, दोनो भाइयो मे बॅट गई थी। घर की हालत नाजुक होने से भू-सम्पत्ति न बच सकी। कुछ बिक गई, कुछ बॅधक पड़ गई। इन्होने अपनी जीविका की राह पकड़ी। बॅधक भूमि के भी छुड़ाने का प्रयत्न किया। जो कुछ पैतृक संपत्ति इस तरह बचाई गई, वह भी परिवार-पोषण के लिये काफी नहीं थी। इन्होने कुछ और जमीन खरीद कर पिता की सम्पत्ति बढ़ा दी।

जब इनके सगे छोटे भाई वंशलोचन बाबू ने पढ़ना-लिखना छोड़ा, उन्हें कोई व्यापार करने के लिये 'भंडार' से काफी सहायता दी गई, परन्तु आधुनिक शिक्षा का प्रभाव उनपर ऐसा पड़ा था कि वे आराम से घर बैठने के सिवा और कुछ कर ही न सके। गॉव का वातावरण कुछ ऐसा कलुषित था कि मास्टर साहब को घरू संपत्ति से आशा तोड़ लेनी पड़ी। उन्होने अपने बाहु-बल से प्रचुर द्रव्य का उपार्जन कर अपनी संसार-यात्रा को सुखशान्तिमय बनाया। तो भी इन्होने अपनी गॉव की उन्नति का ध्यान रक्खा—अपने सगे कुटुम्बियो को रुपये कर्ज दिये। फिर जैसे ही इनकी अवस्था सुधरी, इन्होने अपनी ओर से उन्हे हजारो रुपये दिये। गॉव मे एक संस्कृत-विद्यालय खोलकर अपने पिता के नाम को अमर कर दिया।

ये अपने खानदान और पड़ोस के लड़को को भी शिक्षित देखना चाहते थे। अपने एक चचेरे भाई रामसेवक प्रसाद को पढ़ाकर मिडूल पास कराया और एक प्राइमरी स्कूल मे जगह दिलवा दी थी। पर वे संसार से उठ गये। उनके घर की शोचनीय दशा देखकर इन्होने इनके दूसरे भाई गंगाविष्णु गुप्त को 'भंडार' की दूकान पर नौकरी दी। परन्तु वे भी न रहे। तब उनके छोटे भाई श्रीदेवीचरण को दूकान पर नौकरी दी। तीन-चार वर्ष हुए, किसी के बहकावे मे पड़कर, देवीचरण ने 'भंडार' मे हिस्सा लेने के लिये उत्पात मचाया। 'भंडार' ने उन्हे सदा के लिये अलग कर दिया।

इनके 'राधाउर' गॉव मे लगभग सवा बीघा जमीन पड़ती थी। वही जमीन वहॉ के गरीब किसानो की स्त्रियो के लिये 'निकास' की जगह* थी। पहले उसमे नोनिया लोग नमक निकालते थे, जिससे वह 'नोनथार' कहलाती थी। अब वे उसे जोतकर फसल उपजाने लगे। गॉव मे सनसनी फैली। जब यह बात इनको मालूम हुई, इन्हे बड़ा क्षोभ हुआ। इन्होने गॉव के कुछ लोगो को इकट्ठा कर उस जमीन को पूर्ववत् छोड़ देने की प्रार्थना की। पर जमीन का लोभ नोनियो ने न छोड़ा। उन्होने दरभंगा-राज से उस जमीन का दमामी बन्दोबस्त लेना चाहा। इन्होने भी राज मे अर्जी भेजी। आखिर उस जमीन पर डाक बोली गई। डाक इन्ही के नाम खतम हुई। लगभग दो हजार रुपये खर्च कर और ५०) प्रति बीघा सालाना लगान देना मंजूर कर गॉव की स्त्रियो का कष्ट दूर किया। इससे वहॉ के गरीब किसानो ने इन्हे हृदय से आशीर्वाद दिया।

तीन-चार वर्ष पूर्व इन्होने एक छोटी-सी जमीन्दारी भी खरीदी है। इनकी रैयत इनके समान दयालु मालिक पाकर बहुत प्रसन्न रहती है। वहॉ जलाशय का अभाव-सा था। जो पोखरे थे भी, फागुन-चैत मे सूख जाते थे। लोगो को नहाने-

* स्त्रियों के शौचादि के लिये एक निर्दिष्ट स्थान।



श्रीरामलोचनशरणजी की पूजनीया माता

तीन पुश्त

दाहिनी से बाईं ओर—श्रीरामलोचनशरणजी, उनके ज्येष्ठ पुत्र वैदेहीशरण और उनके पिता स्वर्गीय श्रीमहँगू साहुजी

धोने और मवेशियों को पानी पीने मे बड़ी दिक्कत होती थी। इन्होने हजारो रुपये खर्च कर वहाँ एक बड़ा तालाब खुदवा दिया है।

इनका खान-पान और रहन-सहन बिलकुल सादा है। हरे फल-शाक खूब खाते हैं। बाजारू चीजो से इन्हे नफरत है, इनके बच्चे तक नहीं खाने पाते। बाल-बच्चो और आगत व्यक्तियो के लिये रसोइया और नौकर बराबर रहते हैं; फिर भी ये स्वयं अपने हाथों बनाई या अपनी पत्नी की ही बनाई रसोई खाते हैं। हाँ, वैष्णवों के बनाये प्रसाद खाने में नहीं हिचकते; परन्तु अवैष्णवो की बनाई रसोई नहीं खाते। कपड़ो मे भी वही सच्ची सादगी है। सूट-बूट इन्हे कभी पसंद न आया। गर्मियो मे आधी धोती ही देह पर डाले रहते है।

बच्चो से इन्हें बड़ा प्रेम है। कभी-कभी उनके साथ ये खेलते भी है। चाहे कोई भी बच्चा इनके सामने आ जाय, उसे अपने बच्चे से कम नही समझते। इस युग मे यदि और कोई इनके समान लाखो का स्वामी होता तो दस-पाँच डग भी पैदल चलना पसंद न करता; पर इनको पैदल ही चलने मे आनंद आता है। रोज चार-पाँच मील पैदल टहलना इनकी सुबह की ड्यूटी है।

मास्टर साहब सपरिवार वैष्णवधर्म मे दीक्षित हैं। धार्मिक भाव इनमे कूट-कूटकर भरा है। 'भंडार' मे प्रति रविवार को श्रीरामायणजी का पाठ और संकीर्त्तन होता है। उसमे बहुधा ये भी बैठकर बड़े प्रेम से भगवान् का गुण गाते है। धार्मिक कामों मे ये आँखे मूँदकर रुपये देते हैं। अपनी जमींदारी के पास ही 'फुलहर' गाँव मे श्री गिरिजा-मंदिर के जीर्णोद्धार मे इन्होने अच्छी सहायता दी है। लहेरियासराय के पास ही बहादुरपुर गाँव में भी भगवती-मंदिर बनवा दिया है। और-और कई मंदिरो मे भी इन्होने सहायता दी है।

इनमे अपनापन का भाव बहुत है। ये 'भंडार' के कर्मचारियो को अपने परिवार का अंग समझते है। इनके प्रेम-भरे 'तुम' सम्बोधन मे तो जादू का असर है। जिस दिन ये किसी कर्मचारी को 'आप' कहकर संबोधित करते है, वह समझ जाता है कि आज ये अप्रसन्न है, परन्तु जब फिर 'तुम' कहकर पुकारते है, तब उसकी चिन्ता दूर होती है। ये अलौकिक क्षमाशील है। अक्षम्य अपराधी को भी बड़े प्रेम से क्षमा कर देते है।

बच्चों की शिक्षा के लिये सुन्दर व्यवस्था की है। एक बूढ़े ग्रेजुएट को रक्खा है। कन्याओ की शिक्षा पर भी इनका पूरा ध्यान रहता है।

श्रीसीतारामजी इन्हे दीर्घायु बनावे, जिससे 'पुस्तक-भंडार' की 'स्वर्ण-जयन्ती' भी ये अपनी आँखों देखें और हम सब इनकी 'हीरक-जयन्ती' मनाने का आयोजन करे।



आदरणीय भाई रामलोचनशरणजी

श्रीसूबालाल कर्ण, धरहरवा (मुजफ्फरपुर)

सन् १९०२ ई० की बात है। मेरे गाँव के रघुनी साहुजी, जो उस समय 'राधाउर' ग्राम मे अपर-प्राइमी स्कूल के हेड-गुरु थे, घर आये। उस समय मेरे ग्राम मे दरभगा-राज का अपर-प्राइमरी स्कूल था, जिसमे मेरे पूज्य पिताजी हेड-मास्टर थे। रघुनी साहुजी स्कूल मे ही पिताजी से मिलने आये। पिताजी से कहा—"सूबा अपर पास कर चुका, इसको शिवहर के मिडूल इंगलिश स्कूल मे भेजिये। वहाँ अच्छे साथी भी मिलेगे। एक लड़का गत वर्ष से स्कॉलरशिप पाकर वहाँ पढ़ रहा है—बड़ा ही मिलनसार, तीक्ष्ण-बुद्धि और परिश्रमी है—नाम है—'रामलोचन'।"

यथासमय शिवहर के मिडूल इंगलिश स्कूल मे मेरा नाम लिखाया गया। उस समय सुहवल-(गाजीपुर)-निवासी पं० रामदासरायजी, जो पीछे मुजफ्फरपुर-कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हुए, हेडमास्टर थे। उनका जीवन ऋषियो का-सा था।

उस समय की पढ़ाई का नियम यह था कि मास्टरो को उठकर, क्लासो मे नहीं जाना पड़ता था, लड़के ही मास्टरो के कमरे मे रूटीन के अनुसार आया करते थे। जिस समय पिताजी मेरा नाम लिखा रहे थे, उस समय प्रथम वर्ग के छात्रो को हेडमास्टर पढ़ा रहे थे। नाम लिख जाने के बाद ही एक भोले-भाले लड़के ने अपने स्थान से उठकर क्लास ही मे पिताजी के पाँव छू प्रणाम किया। पिताजी ने पूछा—'क्या नाम है ?' उत्तर मिला—'रामलोचन'। पिताजी को बडी प्रसन्नता हुई। उसी दिन से मुझमे और भाई रामलोचनशरणजी मे भ्रातृत्व का श्रीगणेश हो गया।

मिडूल पास करते समय इनकी उम्र लगभग १४ वर्ष की थी। उस समय फाइनल-ट्रेनिंग की पढाई मे उम्र और कद की ऊँचाई की कैद थी। सोलह वर्ष से कम उम्र के छात्र नहीं लिये जाते थे। अत दो वर्षों तक इनको घर बैठना

पड़ा। इनका यह समय भी अधिकतर स्वाध्याय तथा अध्ययन मे ही बीता। खेलकूद का इन्हें शौक ही न था।

जनवरी, १९०६ ई० मे मैं पटना-नार्मल-स्कूल में नाम लिखाने गया। वहाँ भी भाई रामलोचनशरणजी मिले। मुझे देखते ही दौड़े हुए आये। मेरा सामान अपने कमरे मे रखवा दिया। उस समय हेडमास्टर थे एक बंगाली महाशय; बड़े कड़े थे। उनका कड़ा आदेश था कि छात्रावास मे कोई बाहरी आदमी नहीं ठहर सकता। अत. मेरे कारण इनको अर्थदण्ड का भागी बनना पड़ा।

भाई रामलोचनशरणजी मे आज जो गुण पाये जाते है, उस समय भी थे। हृदय सरल और साफ, विचार पवित्र, परोपकार मे अनुराग, धर्मभीरु बुद्धि। आज जिस लेखनी और अध्ययन तथा अध्यवसाय का परिणाम प्रत्यक्ष है, उसकी उपासना उसी समय इनके हृदय मे घर कर चुकी थी। ये मेरे लिये आज जैसे दयालु अभिभावक हैं, उस समय भी थे। मेरे पढ़ने-लिखने, खाने-पीने एवं रहन-सहन पर इनकी—एक कड़े निरीक्षक के समान—कड़ी दृष्टि रहा करती थी। मेरे जलपान करने, समय पर पढ़ने और बाहर घूमने पर इनका पूरा अनुशासन रहा करता था। मैं तो स्कूल से छुट्टी पाने के बाद जलपान कर गेंद खेलने चला जाया करता था और ये शौचादि से निवृत्त हो—जलपान कर तबतक अध्ययन करते जबतक सूर्यनारायण दृष्टिपथ से ओझल नहीं होते। इतना ही नहीं, ये पाठ्य पुस्तको की टिप्पणियाँ—प्रश्नोत्तरी के रूप मे—लिखते रहते। इसीसे पाठ-स्मरण भी हो जाता और साथ ही पाठ्य विषयो पर पुस्तके भी तैयार होती जाती थीं। इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य, विज्ञान, क्षेत्रमिति इत्यादि विषयो की पुस्तको का पूरा-पूरा नोट इन्होने दैनिक अध्ययन के साथ-ही-साथ तैयार कर लिया। ये नोट ऐसे उपयोगी थे कि केवल उन्हे ही पढ़कर कोई छात्र परीक्षा पास कर लेता। दृष्टान्त-स्वरूप मैं विद्यमान हूँ। यथार्थतः केवल उन्हीं नोटो की बदौलत मैं परीक्षा में सफल हुआ। आज भी मेरे मन में इस बात का बड़ा भारी अफसोस है कि मैंने वे नोट सुरक्षित नहीं रख छोड़े। मैं क्या जानता था कि आगे चलकर ऐसा सुन्दर संयोग उपस्थित होगा।

जब ये विद्यार्थी थे, तभी से इनकी प्रतिभा की झलक दिखाई देने लग गई थी। ये धुन के बड़े पक्के थे। जिस काम में लग जाते, उसे पूरा किये बिना छोड़ते नहीं थे। गणित में इनकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी। गणित-शिक्षक इनको बहुत मानते थे। इससे इनके साथियो को जलन होती थी। इनके सहपाठियों में एक पं० अचम्भित चौधरी थे, जो आज भी अपने जिले (सन्तालपरगना) के एक गुरु-ट्रेनिंग स्कूल में प्रधान शिक्षक हैं। उनका चित्रांकन बढ़िया होता था,

जिस का उनको गर्व था। इनके हृदय मे भी उस विषय की स्पर्द्धा जगी। फिर तो ये ऐसी लगन के साथ इस विषय मे प्रवृत्त हुए कि देखते-ही-देखते सबसे आगे बढ गये और चित्रांकन मे स्पेशल सर्टिफिकेट लेकर ही छोड़ा।

एक वर्ष तक हमलोग एक साथ सगे भाई की तरह रहे थे। मेरे रुपये-पैसे इन्हीं के पास रहा करते थे। जब कभी चौका बंद होता, मुझे आटा-दाल के लिये बाजार भेजते और तबतक अपने ही हाथ से चौका-बर्तन ठीक कर लेते। इनको किसी काम मे आलस न था। पूरे स्वावलम्बी थे। मै तभी से इनको अपने बड़े भाई के ऐसा मानता आ रहा हूँ।

मैं १९११ ई० मे सिमरा (दरभंगा) के मिडूल-इगलिश स्कूल मे हेड-पडित नियुक्त हुआ। रहने लगा सिमरा से दो मील दूर 'पिलखी' गॉव मे जमीन्दार बाबू ताराप्रसादसिह के घर पर। उक्त स्कूल में पहले ये भी शिक्षक रह चुके थे। ये भी पिलखी मे ही वही रहा करते थे। वहॉ के लोग सदा इनके परिश्रम, सादगी, अध्यापन, चरित्र, सुशीलता प्रभृति गुणो की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। उनलोगो के कथनानुसार इनकी दिनचर्या यह थी—४ बजे प्रातःकाल उठना, ६ बजे के भीतर नित्यक्रिया से निवृत्त हो स्नान-पूजा कर तैयार, तुलसीकृत रामायण का पाठ, फिर भोजन के बाद ११ बजे स्कूल मे दाखिल, शाम को छुट्टी के बाद पिलखी वापस—इसी गॉव का एक टोला गॅघटी है, इससे लगभग एक मील दूर, जहॉ एक ज्योतिषीजी थे, जो व्याकरण भी अच्छा जानते थे और ऋषिवत् जीवन व्यतीत करते थे। उन्ही के यहॉ जाकर संस्कृत का अध्ययन करते, फिर रात मे ट्यूशन पढ़ाने के समय के पहले ही आ पहुँचते। इस तरह ये प्रति-क्षण का सदुपयोग करते। इतना ही नही, रात मे, भोजन के बाद, काफी देरतक अध्ययन करके शयन करते। जबतक ये सिमरा के स्कूल मे रहे, अध्यापन के साथ-साथ अध्ययन का काम भी जारी रहा। वहॉ के लोग अबतक बखान करते हैं।

१९१६ ई० मे मै भी लहेरियासराय के सरस्वती-स्कूल मे हिन्दी-शिक्षक होकर पहुँचा। एक दिन इनसे मिलने गया। प्राय. ५ बजे सायंकाल की बात है। देखा कि नीचे भूमि पर एक साधारण बिछावन बिछाकर कुछ लिख रहे हैं। मैंने कहा—"आप पटना मे भी स्कूल की छुट्टी के बाद नोट लिखा करते थे, वह आदत अभी तक आपमे है ही? अभी-अभी स्कूल से आये है। और तुरत लिखने बैठ गये?" कहने लगे—"समय का कितना महत्त्व है, नहीं जानते?" मैंने पूछा—"ट्यूशन भी करते हैं न?" बोले—हॉ, कई, इतना ही नही, बशलोचन और नथुनी को भी पढ़ाने का जिम्मा है।"

मैं दंग रह गया इनके परिश्रम पर। हाइस्कूल मे मास्टरी करना, घर पर कई

विद्यार्थियो को पढ़ाकर अपने दो भाइयों को भी पढ़ाना, मौका पड़े चूल्हा-चौका चेतना, पुस्तक लिखना; इतना काम कैसे कर लेते है, धन्य हैं।

संयोगवश अब इनका और मेरा रहना एक ही शहर मे हो गया। बराबर इनसे मिला करता। इनके हृदय मे यह बात बराबर रही कि सूबा साथ रहे, कुछ पुस्तके लिखे। पर, मै १९१७ ई० से मैट्रीकुलेशन की परीक्षा की तैयारी मे लग गया। १९१८ ई० मे परीक्षा दे दी। कड़े परिश्रम के कारण महीनो बीमार रहा। अन्त मे लहेरियासराय से पुपरी के स्कूल मे बदल गया। इसी बीच मे इन्होने कई स्कूली किताबे लिखी।

१९२१ ई० मे सीतामढ़ी मे बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन हुआ। वयोवृद्ध बाबू शिवनंदन सहायजी सभापति थे। उस समय देश मे असहयोग-आन्दोलन की धूम थी। जहाँ-तहाँ राष्ट्रीय विद्यालय खुल चुके थे। सदाकत-आश्रम (पटना)' मे 'बिहार-विद्यापीठ' खुल चुका था। राष्ट्रीय पाठ्य पुस्तकों की माँग चारो ओर से आ रही थी।

उक्त अधिवेशन मे देशरत्न श्रीराजेन्द्रप्रसादजी भी गये और भाई शरणजी भी।। वही पर पूज्य राजेन्द्र बाबू ने चर्चा की—"बिहार के प्रकाशक चुप क्यों बैठे हैं? राष्ट्रीय विद्यालयो के लिये पाठ्य पुस्तकें कहाँ से आवेगी?"

इसपर इन्होने कहा, हमे कब आज्ञा मिली है? अधिकारियो ने कहा—"बच्चा-क्लास से मिडूल-क्लास तक के लिये राष्ट्रीय साहित्य की पाठ्य पुस्तकें आप कब तक दे सकते हैं?" इनके मुँह से निकल पड़ा, तीन सप्ताह मे!

बस, अधिवेशन समाप्त हुआ; ये लहेरियासराय आये। तीन-चार दिनों मे आवश्यक तैयारी करके बनारस चले गये। वहाँ से २१ वें दिन, प्रथम भाग से छठे भाग तक 'राष्ट्रीय साहित्य' छपवाकर, लहेरियासराय भेज दिया। दो-चार सेट अपने साथ ले, पटना जाकर, अधिकारियो को समर्पित कर दिये।

ये किताबे ऐसी निकलीं कि विद्यापीठ के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके बाद प्रोफेसर गौड़जी की राष्ट्रीय रीडरे भी निकलीं; परंतु इनके राष्ट्रीय साहित्य ही का स्थान ऊँचा रहा।

करीब दस-बारह वर्ष हुए। मुझे एक बार नेपाल की तराई मे जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। देखा, वहाँ वर्ण-परिचय, लोअर-भूगोल-परिचय, लोअर इतिहास-परिचय, पत्रचन्द्रिका, देशी हिसाब, लोअर-अंकगणित आदि इन्हीं की पुस्तके पढ़ाई जाती हैं। बड़ा आनन्द हुआ कि इस अशिक्षित प्रदेश में भी इन्होंने हिन्दी का प्रचार करके ही छोड़ा।

धन्य है इनका अदम्य साहस और अडिग अध्यवसाय!



मास्टर साहब की स्वजातीय सेवा

[१]

सीतामढी-निवासी श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त 'किशोर', 'शौनियार-वैश्य'-सम्पादक

हमारे 'मास्टर साहब' उन्ही कर्त्तव्यशील प्राणियो मे हैं जो देश, समाज, साहित्य और जाति की उन्नति के सपने देखा करते है और अपने स्वप्नों को सच्चा रूप देने का प्रयास किया करते है।

बरसो की बात है। मै बालक विद्यार्थी था। मास्टर साहब की किताबें पढा करता था। यह भी सुना था कि वे हमारी ही जाति के एक आदर्श पुरुष हैं; किन्तु दर्शन का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ था। सहसा एक सूचना मिली—"लहेरियासराय मे जातीय सभा है"—मै उछल पड़ा। दादा को साथ लेकर चल पड़ा। वर्षा के दिन थे।

टाउन-हॉल मे सभा का आयोजन था। जोरो से वर्षा हो रही थी। बिजली की कड़कड़ाहट मुझे डरा देती थी। वैसे भीषण समय मे किसी ने मुझे दिखलाया—"यही मास्टर साहब है।"

मैं तो आश्चर्य-चकित रह गया। इतना सादा वेश! ऐसा सुन्दर व्यक्तित्व! उस समय विवेचना-शक्ति तो थी नही जिससे उनके जीवन का विश्लेषण कर पाता, किन्तु उस समय की उनकी सौम्य मूर्त्ति याद कर आज सहसा मस्तक आप-ही-आप झुक जाता है।

वर्षा की कठोर बूँदे उनके दृढ़ निश्चय को नहीं डिगा पाती थीं। हृदय में उत्साह था और होठो पर हँसी। सैकड़ो भाई आ गये और बात-की-बात मे सारा प्रबन्ध हो गया। मास्टर साहब स्वयं इधर-उधर दौड़ रहे थे। आग्रह-पूर्वक एक बच्चे से लेकर बूढ़े तक की आवभगत करते थे।

वैभव के रूप का सच्चा निखार तभी होता है जब उसमे परार्थ की भावना लगी हो। स्वयं अपने सुखी होने से तो समाज को कोई सुख नही हो सकता। औरो के सुख के साथ-साथ ही अपने सुख और अपने हिताहित का ध्यान रखना श्रेयस्कर है। बस, इसी भावना से प्रेरित होकर मास्टर साहब ने तिरहुत-प्रान्तीय सभा की नींव डाली और उसका पहला अधिवेशन निज के सैकड़ों रुपये खर्च कर लहेरियासराय मे कराया।

जाति की हीनावस्था ने उनके हृदय मे एक टीस पैदा की और वह टीस, वह लगन, वह कामना बुझनेवाली तो थी नही। वह भावना बराबर जागरूक बनी रही और अब भी उसी रूप मे उनके अन्तस्तल मे चमक रही है।

सभा के बाद जातीय पत्र का प्रश्न उठा। उन्होने पत्र के प्रकाशन का सारा भार अपने सर ले लिया। उस समय उनका निज का प्रेस था नही। कलकत्ता से पत्र छपाया जाता था। काफी रुपये खर्च करने पड़ते थे। ब्लाक बने। सुन्दर रूप से पत्र का प्रकाशन चला। आफिस का सिलसिला शुरू हुआ। मैंने देखा, उन्होने रुपये खर्च करने मे कोई कोर-कसर नही की। सात-आठ वर्षों तक पत्र का प्रकाशन हुआ। पत्र पर हजारो रुपये उनके खर्च हो गये। बैठक हुई। अंत मे सभा ने उनसे रुपये माफ कर देने का अनुरोध किया। उन्होने रुपये माफ कर अपनी दानशीलता का परिचय दिया।

इतना होते हुए भी उन्होने जातीय कार्य्यों से अपना हाथ कभी नही खींचा। सदा अकुंठित भाव से जातीय मर्यादा की रक्षा मे तत्पर रहे।

कई वर्षों के बाद, जब सभा मे काफी शिथिलता आई थी, पत्र के प्रकाशन की बात छिड़ी। एक वर्ष तक पुनः पत्र चलाने का भार उन्होने १९३९ मे लिया। १९४० तक पत्र सुन्दर रूप से निकला। फिर भी लोगो से सहयोग न मिलने के कारण पत्र बंद करना पड़ा।

उन्हे रुपये तो काफी व्यय करने ही पड़े; किन्तु सबसे बड़ी छाप जो उन्होने मेरे दिल पर छोड़ी है, वह है उनकी अपूर्व सहनशीलता की। सभा के बीच, सभ्यता की सीमा लॉघकर, उनपर फब्तियाँ कसी गईं, किन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए। अंगदपैज की भाँति अचल रहे। अंत मे, आवाजे कसनेवालो को स्वयं मुँह की खानी पड़ी।

अपनी जाति के अनेक कर्णधार व्यक्तियो ने, अकारण मनोमालिन्य के वशीभूत हो समय-समय पर, अपनी दूषित मनोवृत्ति का परिचय दिया है। फिर भी न वे कभी घबराये हैं और न कभी आपा खोया है।

दूसरो के कष्ट देखकर वे स्वयं आहत हो उठते है। कारण, उन्होंने स्वयं

जीवन मे अनेक कष्ट झेले है। यद्यपि आज वे काफी पैसेवाले है, तथापि उनके हृदय मे गरीबो के लिये ममता, अपने भाइयो के लिये प्यार और अपनी जाति के लिये पर्याप्त प्रेम है।

परिस्थिति और समय के प्रवाह मे भले ही हम उनको भुला बैठे; किन्तु सतत साहित्य-सेवा, उनका जातीय अनुराग, उनकी सच्ची कर्त्तव्य-परायणता, उनकी अपूर्व सहन-शक्ति और उनकी परार्थ-भावना कभी भुलाने की वस्तु नही।

[२]

श्रीहरिराम गुप्त, सहतवार (बलिया, युक्तप्रान्त)

यो तो शरणजी की सेवा परायणता तथा दान-शीलता से अनेक सस्थाएँ उपकृत हुई है और हो रही है; किन्तु जो अपूर्व सेवाएँ रौनियार-संसार की आपके द्वारा हुई है, वे सर्वदा रौनियार-समाज के लिये आदर्श रहेगी।

सर्वप्रथम आपसे अखिल भारतवर्षीय रौनियार-महासभा के द्वितीय अधिवेशन (काशी) मे साक्षात्कार हुआ। तदनन्तर, स्थायी समिति की बैठक मे, बाबू दासनारायण जी रईस (बेलवरगंज ; पटना) के वास-स्थान पर। उसी समय आपके विचार मे अपनी इस मोह-निद्रा-निमग्न जाति के उत्थान के निमित्त अनेक कार्यक्रम प्रस्फुटित हुए। फल-स्वरूप तिरहुत-प्रांतीय सभा का संगठन हुआ। उसका प्रथम अधिवेशन लहेरियासराय मे ही हुआ। आपके अथक परिश्रम तथा त्याग-तपस्या के साथ-साथ सारा व्यय-भार उठाने की क्षमता की बदौलत नियमित रूप से कार्य होने लगा। अच्छे-अच्छे सुधार के प्रस्ताव पासकर जन-साधारण मे जागृति के भाव भरे जाने लगे।

परिणाम यह हुआ कि इस निद्रित जाति की भी आँखे खुली। अपनी भलाई-बुराई का दृश्य सामने आया। बाल विवाह, वृद्ध-विवाह तथा अनमेल विवाह एक तरह से बन्द हो गये। नाच, आतिशबाजी आदि फिजूलखर्ची, जो विवाह आदि अवसरो पर भरपूर रूप से होती थी, रुकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि अब इस जाति के अज्ञान का अन्धकार थोड़े ही दिनो मे दूर होकर ज्ञान सूर्य का प्रकाश हो जायगा।

तिरहुत-प्रान्तीय सभा नाम होने पर भी इसमे बिहार के आठ जिले शरीक थे। फिर भी कई अन्य जिले इसी मे अपनेको मिलाने का निवेदन-पत्र देने लगे।

सचमुच आपमे काम करने की अद्भुत शक्ति है। अगर आप इस तरह प्रान्तीय सभा का संगठन न करते, तो इतना सुधार होना कभी संभव न था।

आपने अच्छी तरह समझ लिया था कि जबतक जातीय पत्र न रहेगा

तबतक केवल प्रस्ताव पास करने से कुछ न होगा। पत्र निकालने में कठिनाइयाँ थीं; किन्तु आप तो अपनी जाति की उन्नति के लिये सब कुछ करने पर दृढ़ थे। आपने 'रौनियार-वैश्य' मासिक पत्र निकाला। वह अधिकाधिक पाठकों के हाथों में पहुँच सके, इसके लिये विना वी. पी. के ही पत्र भेजने की व्यवस्था की। खुद कई हजार का घाटा उठाकर भी आप अनेक वर्षों तक 'रौनियार वैश्य' चलाते रहे। केवल पत्र पर ही व्यय नहीं होता था, प्रत्युत प्रचार करने में भी 'भंडार' का ही खर्च होता था। कभी-कभी तो स्वयं रुपया देकर भी आप दूसरों के नाम चन्दा लिखा देते थे। आपने इस प्रकार तन-मन-धन से जाति-सेवा का पुण्य कार्य किया।

जगन्नियंता से मेरी प्रार्थना है कि इस स्वजाति, स्वदेश तथा स्वधर्म के सेवक बाबू रामलोचनशरणजी को वे दीर्घजीवी करें, ताकि इस वीर सेवक से देश और समाज को अधिकाधिक लाभ पहुँचता रहे।





श्रीरामलोचनशरणजी के कार्य

श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी

एक किताब मे मैंने पढ़ा था कि 'तुम अपनी राय किसी मनुष्य के बारे मे तभी बनाओ जब तुम उसके निकट संपर्क मे रह चुको!' यह वाक्य बिलकुल सही और सत्य है।

कुछ समय पहले मुझसे कहा गया था कि पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय के संचालक श्रीरामलोचनशरणजी व्यापारी आदमी है। यदि आप व्यापारी नहीं होते तो बीस रुपये की नौकरी करते हुए आज लखपति मनुष्य कैसे बन जाते?

जुलाई महीने मे कुछ दिनो के लिये मुझे लहेरियासराय जाना पड़ा। वहाँ श्रीरामलोचनशरणजी के निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला, बहुत निकट सपर्क मे।

जब मैंने सुना कि मास्टर साहब (श्रीरामलोचनशरणजी) पहले बीस रुपये के अध्यापक थे, घर की हालत कुछ विशेष अच्छी नही कही जा सकती। मास्टर साहब स्वयं अपने हाथ से छोटे-से-छोटा काम करते थे, घर-गृहस्थी का सारा काम स्वयं करते थे; कठोर परिश्रम करते, परिश्रम की रोटी खाते थे।

समय ने पलटा खाया। मास्टर साहब ने प्रेस खोला। धीरे-धीरे प्रेस बढ़ता गया। आपकी उन्नति होने लगी। आपका विचार देश-प्रेम के साथ शुरू से था। आपने सन् १९२०-२१ मे सबसे पहले राष्ट्रीय साहित्य निकाला जो काफी लोक-प्रिय रहा।

आपने स्कूली किताबो का भी प्रकाशन किया। इस कार्य मे आपको विशेष सफलता मिली। शिक्षा-प्रचार मे आपने अद्भुत कार्य किया। बिहार के कोने-कोने में आपने शिक्षा-प्रचार का काम किया। आज *आपका नाम बिहार के बच्चे-बच्चे की जबान पर है। आपने 'बालक' पत्र निकालकर बिहार ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान-भर के बालकों को एक अमूल्य चीज दी। मेरी समझ में साहित्य में 'बालक' का अपना एक विशेष स्थान है।* यह बालको के लिये अत्यन्त उपयोगी और उत्तम पत्र है।

उसका मुकाबला अन्य पत्र नहीं कर सकते। कारण, 'बालक' के संपादक अपनी जिम्मेदारी परिश्रम से करते है।

जहाँ पहले मास्टर साहब की आर्थिक हालत बहुत गिरी हुई थी वहाँ आज आपका यश, वैभव सभी फैला हुआ नजर आता है। मैं श्रीरामलोचनशरण जी के संबंध मे जो ये बातें लिख रहा हूँ वह आपका धन-वैभव बताने के लिये नही, बल्कि केवल इतना बताने के लिये कि मनुष्य चाहे कितना ही क्यो न गिरा हो, पर एक दिन परिश्रम और प्रेम से बड़ा बन सकता है। मास्टर साहब इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। *मास्टर साहब के विचारों से मेरा मतभेद हो सकता है, पर आपकी सचाई, ईमानदारी, कार्य-कुशलता और* मनुष्यता का मैं कायल हूँ। मैंने देखा, *मास्टर साहब मनुष्य पहले हैं, धनी पीछे।* आपको अपने धन का जरा भी अभिमान नहीं है। आपकी सरलता देखने पर मालूम होता है कि आप आज भी एक मामूली आदमी हैं।

पुरानो संस्कृति के आप बड़े प्रेमी और ईश्वरभक्त है। आपका जीवन बहुत नियमित और संयमी है।

आप कोरे व्यापारी ही नही हैं, एक अच्छे साहित्य-सेवी भी है। मैंने पहले सुना था कि आप स्वयं किताब नही लिखते, पर वहाँ जाने पर मैंने देखा, जो मैंने सुना था वह गलत है। आप तो एक अच्छे साहित्य-सेवी है।

मास्टर साहब ने अपने धन और प्रेस से बिहार मे अच्छे-अच्छे साहित्य-प्रेमी पैदा किये हैं। आपने बहुतेरों को अच्छा लेखक बनाया है। बिहार के लोगों को लिये आपने जितनी सेवा की है शायद ही दूसरे के प्रकाशको ने की होगी।

एक चीज आपमे मैंने विशेष तौर से देखी। आप जो कह देते है उसे पूरा करके ही दम लेते है। अपनी बातो को पूरा करने के लिये पूरी कोशिश करते है। आपके जीवन मे धूर्तता नहीं है। सात्विक विचार के मनुष्य है। आप-जैसे ईमानदार प्रकाशक आज बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। लेखको के साथ आप मनुष्यता से पेश आते है। मैं जानता हूँ, आपने ऐसे कितने ही लेखकों को पारिश्रमिक रूप मे पेशगी रुपया दे रक्खा है। जिनकी किताब शायद छपने में अभी पाँच-छः साल की देरी लगेगी।

लोग आलोचना कर सकते है। *परन्तु श्रीरामलोचनशरण की विशेषताओं को दबाना या छिपाना उनके बूते की चीज नहीं है।* आपने अपने अथक परिश्रम और अकथनीय साहित्य-सेवा से भारतीय साहित्य मे, विशेषकर बिहारी साहित्य मे, एक नये युग का निर्माण किया है।



ज्ञानदीपक मास्टर साहब

पं० रामेश्वर झा

जाड़े की धूप मे एक चटाई पर बैठकर लिख रहे थे। बदन पर धोती का ही दूसरा छोर पड़ा था। मुख पर प्रतिभा और दयाशीलता साफ झलक रही थी। वैदेही बाबू ने उन्हे 'बाबूजी' कहकर पुकारा। मै जैसे चौंक पड़ा। मुझे सहसा अपनी आँखो पर विश्वास नही हो रहा था कि विख्यात साहित्यसेवी और लक्षाधीश होकर भी मास्टर साहब सादे वेश मे चटाई पर बैठे हैं। उस एकनिष्ठ कर्मयोगी, 'एकान्त तपस्वी और स्वावलम्बी महापुरुष के प्रति मेरा सिर श्रद्धा से झुक गया।

मै अपने गुरुवर सूबालाल जी कर्ण के पास पुपरी जाकर काम करने लगा, परन्तु 'भंडार' मे मेरा आना-जाना जारी रहा। पुपरी मे ही पता चला कि मास्टर साहब के परामर्श और सहायता से कुछ सज्जनो ने नैपाल-राज्य में भी जहाँ-तहाँ हिन्दी के स्कूल खोल रक्खे हैं और वहाँ हिन्दी का प्रचार धड़ल्ले से हो रहा है।

एक बार मैं 'भंडार' मे मास्टर साहब के निकट बैठा था। उन्होंने मुझे एक हिसाब हल करने को दिया। ईश्वर की कृपा, मैंने चट हल कर दिया। उसी दिन से मुझपर उनकी विशेष कृपा रहने लगी। उनका कहना है कि 'भंडार' तुम्हीं लोगों की संस्था है, स्वयं भी कमाकर खाओ और इसको बढाने की चेष्टा करो। उनकी इस उक्ति मे कितना अपनापन है और कितनी सहृदयता।

१९३३ ई० की जनवरी से मै 'भंडार' की सेवा मे चला आया।

इसी बीच मास्टर साहब को किसी काम से कटक (उडीसा) जाना पड़ा। उड़ीसा-प्रान्त मे भी उन्होने हिन्दी की दुंदुभी बजाने की ठानी। उनके उद्योग

स्वर्गीय रायसाहब लक्ष्मीनारायण लाल, गोरखपुर

[ऊपर—रायसाहब रामलोचनशरणजी के समधी; नीचे—बड़े जामाता]

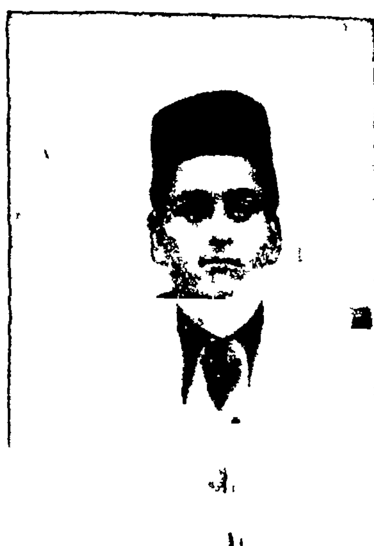


श्रीयुत सच्चिदानद, बी. ए.

बाईं ओर—रायसाहब रामलोचनशरणजी के समधी; दाईं ओर—छोटे जामाता



श्रीकृष्णमुरारीनारायणसिंह
[रईस, बदलपुरा (पटना)]



श्रीवीरेन्द्रकुमारनारायणसिंह

और साहस के प्रभाव से वहाँ के लोगों में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न होकर रहा। फलतः कटक में एक हिन्दी-मिड्ल-स्कूल स्थापित हुआ। उसका सारा श्रेय मास्टर साहब को ही है।

अब वहाँ ऐसे योग्य शिक्षकों की आवश्यकता थी, जो हिन्दी का प्रचार कर सकें। शिक्षक चुनने का भार मास्टर साहब पर ही था। लहेरियासराय आकर उन्होंने मुझे ही वहाँ का प्रधानाध्यापक बनाकर भेजा। मैंने देखा कि वहाँ के लोग भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हैं। उनके प्रभाव से मैं शीघ्र ही वहाँ के लोगों का विश्वास-पात्र बन गया।

सन् १९३६ ई० में उड़ीसा एक पृथक् प्रदेश बना दिया गया। मैं फिर मास्टर साहब की छत्रच्छाया में लहेरियासराय चला आया। मुझे बराबर उनके निकट रहने का मौका मिलता आया है। मैं उन्हें अत्यन्त समीप से पहचान सका हूँ।

यों तो उनका परिचय मुझे तभी मिला जब मैं अक्षर पहचानने लगा था। मेरी उम्र के प्रायः जितने हिन्दी-भाषी मनुष्य बिहार में हैं उनमें अधिकांश को उन्हीं की बनाई पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज के बिहारी नव-युवकों में जो हिन्दी की योग्यता है वह मास्टर साहब की लेखनी से निःसृत उस साहित्य-निर्झरिणी से परिष्कृत हुई है जिसमें वर्त्तमान पीढ़ी के शिक्षार्थी बाल्यावस्था से ही अवगाहन करते आ रहे हैं। उनकी भाषा और शैली साधारण जनों के लिये भी बोधगम्य और सुलभ हैं। अतः उनकी लेखनी की छाप हम सब पर पड़ी है। कवि और लेखक बनाने में उन्होंने द्विवेदीजी का-सा नाम कमाया है। इस 'दीपक' से बिहार में अनेक दीपक जगमगा रहे हैं।

आज के कितने ही सुप्रसिद्ध कवियों की कविताओं को मास्टर साहब दुरुस्त कर 'बालक' में छापते और उनका उत्साह बढ़ाते थे। बिहार के ही नहीं, अन्य प्रान्तों के भी कई वर्त्तमान प्रसिद्ध कवियों की बाल-रचनाएँ 'बालक' में छपा करती थीं। इन होनहार कवियों का उत्साह बढ़ाने के लिये उन्होंने बहुतों की रचनाएँ 'बालक' में सचित्र छापी थीं। आज उनमें से अनेक कवि हिन्दी-संसार में चमक रहे हैं।

मास्टर साहब ने बिहार में विद्या-प्रचार को एकदम आसान कर दिया है। उन्होंने जिस विषय पर लेखनी उठाई, कमाल कर दिया। वे बाल-साहित्य के निर्माण में अपना सानी नहीं रखते।

वे देखने में तो 'भंडार' के विशाल कार्यभार से दबे रहते हैं; पर एकान्त-वासी योगी की तरह उनकी आत्मा निर्लिप्त रहती है।

उन्हें सूझती बड़ी दूर की है। उनके कथन का आशय हमलोगों को तब

जान पड़ता है जब उसका परिणाम निकल चुकता है। हम उनकी दूरदर्शिता पर आश्चर्यित रह जाते हैं।

वे नियम के बड़े पाबन्द हैं। औरों को भी वे ऐसा ही देखना चाहते हैं। 'अतिथिदेव' के तो वे प्रत्यक्ष आदर्श हैं। कोई भी अतिथि उनके यहाँ से सन्तुष्ट होकर ही जाता है। 'भंडार' में हरिनाम-कीर्त्तन सदा करते-कराते रहते हैं। भूकम्प से क्षति-ग्रस्त कितने ही देव-मन्दिरों का उन्होने पुनरुद्धार करवाया है। जैसे—स्थानीय गिरिजास्थान, बेहटा की ठाकुरबारी, बहादुरपुर का दुर्गास्थान आदि। साधु-ब्राह्मणों में उनकी बड़ी भक्ति है। कितने ही दीन ब्राह्मणों का उप-नयन-संस्कार कराया, कितनों को धन देकर विवाह, श्राद्धादि करवा दिये। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का भवन पटना में जिस जमीन पर पहले बनने-वाला था, उसे खरीदने के लिये पूरी सहायता उन्होंने ही दी थी। कितनी ही संस्थाएँ उनके दान से चल रही हैं।

मास्टर साहब अपने कर्मचारियों को नौकर नहीं, बल्कि 'भंडार'-परिवार का सदस्य समझते हैं। यदि किसी कर्मचारी से भूल हो जाती है, एक अभिभावक की तरह उसे मिठास के साथ डाँटकर समझा देते हैं। कुछ क्षणों के बाद ही उसे बुलाकर स्नेह भी जताते हैं।

एक बार पहले-पहल वे अपनी जमीन्दारी पर गये। मैं साथ था। वहाँ की प्रजा नियमानुसार उनसे मिलने आई। सबने योग्यतानुसार नजराना भी दिया। नजराना देखकर वे रोने लगे। बोले—रैयत खेत जोतती है, लगान देती है; यह क्या है ? गरीबों से नजराना लेना सरासर अन्याय है।"

नजराना तो लौटा ही दिया, लगान की वसूली में भी एक आना फी रुपये छूट दे दी। ऐसी है उनकी प्रजा वत्सलता!

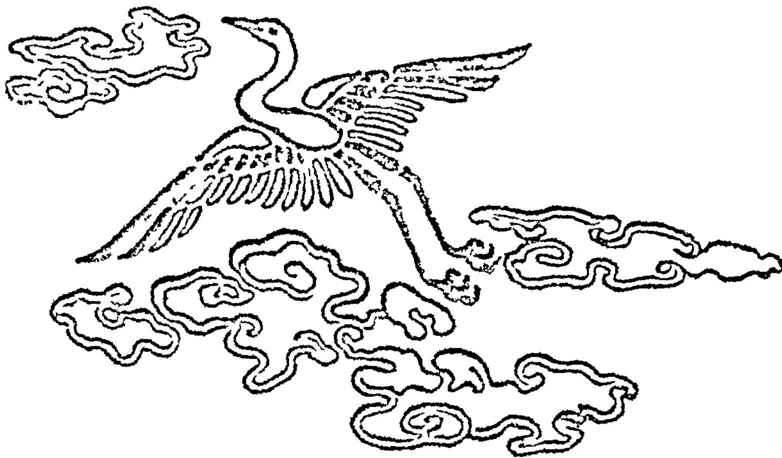
क्षमा के तो वे साकार रूप ही हैं। जो उनकी बुराई करता है, उसकी भी भलाई ही सोचते हैं। बुराई करनेवाले फिर स्वयं उनके यहाँ आकर क्षमाप्रार्थी होते हैं। वे प्रायः कहा करते हैं—"द्वेष से द्वेष का शमन नहीं होता।"

मितव्ययी भी परले सिरे के हैं। निजी खर्च उनका ठीक साधुओं का-सा है। दिखावा या आडम्बर तो वे जानते ही नहीं।

सदाचार की तो वे मूर्त्ति ही हैं। खाने में, पहनने में, चाल-ढाल में, सब में सदाचार ही की झलक। सहनशीलता तो मानों उन्हीं के बाँटे पड़ी है। निजी काम या व्यापार में कितनों ने उनको धक्का दिया, पर वे हिमालय की तरह अडिग रहे। धक्का देनेवाले स्वयं ही मुँह की खाते हैं।

वे निर्भीक भी एक ही हैं। आज तक ऐसा कोई देखने मे न आया जो उन्हे धमकाकर नाजायज फायदा उठा ले। बड़े-बड़ो को मुँहतोड़ जवाब दे डालते है।

लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की उनपर कृपा है। फलत उनके मित्रो की भी कमी नहीं है; पर अधिकतर मित्र मतलबी हैं। वे भी उन्हे पहचानते हैं, पर अपने मृदु स्वभाववश कुछ बोलते नहीं। उन्हे कई बार बनावटी मित्रो ने धोखा भी दिया है; पर उनकी तो नीति है—"उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" ईश्वर उनको चिरायु करे।





मास्टर साहब : एक अध्ययन

श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', साहित्याचार्य, 'बालक'—कार्यालय

जनवरी, १९३७ मे पहले-पहल लहेरियासराय आया। खूब तड़के एक मित्र ने अँगुलि-निर्देश कर कहा—"वह देखो, वे ही मास्टर साहब है।" मै कुछ भी इसका अर्थ न समझ सका।

सर मे अँगोछा बाँधे, पैर मे बिलकुल मामूली जूते, हाथ मे एक मोटी-सी छड़ी, शीत के सुवह मे भी सिर्फ एक ऊनी कुरता, चाल ऐसी जैसी मीलो चल-कर आ रहे हो, एक कर्मशील गृहस्थ की अस्तव्यस्तता समेटे भला मै सोचता भी कैसे कि कोरियो पुस्तको के लेखक और सम्पादक तथा 'भंडार'-जैसी विशाल सस्था के सस्थापक एवं संचालक मास्टर साहब यही है।

उस समय तक मै श्रद्धेय 'मास्टर साहब' का नाम अच्छी तरह जान गया था। बचपन की कई पुस्तको मे इनका नाम देखा था। पढ़ा भी था इनकी लिखी पुस्तको को। साहित्यानुरागवश 'बालक'-सम्पादक के रूप मे तो और भी अधिक जानता था।

तब से मैने वरावर यह देखा और समझा कि मास्टर साहब अपनी धुन के पक्के, बड़े ही दूरदर्शी एव 'नक्षत्री' पुरुष है—एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह चिन्तनशील और कर्मपरायण हैं—आज तक अपने अनुसधान मे कभी कच्चे नही निकले—एक सच्चे साधक की तरह किसी काम की साधना करते है। असफलता शायद इनके यहाँ कोई शव्द ही नही है। विघ्न-वाधा देखकर समुद्र की तरह पहले तो क्षुब्ध होते है; किन्तु आ पड़ने पर हिमालय की तरह दृढ़ हो जाते हैं।

शुरू मे छ मास तक विद्यापति प्रेस मे इस रूप मे मैंने काम किया कि

इनसे मेरा परिचय तक भी न हो पाया। इसका एकमात्र कारण था मेरा संकोची स्वभाव।

एक रात, एक पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव मे, इन्होने मेरी कविताएँ सुनी। इतना प्रभावित हुए कि उसी समय सभापतिजी से कहलावा दिया—'त्रिपाठी के वेतन मे पॉच रुपये की मैंने वृद्धि कर दी।'

मास्टर साहब की यह गुणग्राहकता देखकर मेरा मन इनके समीप तक जाने के लिये तड़पने लगा। ईश्वर की दया, मुझे इनकी खास देखरेख मे काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अति समीप आकर मैंने अनुभव किया, मै एक ऐसे उदार पुरुष के साये मे बढ़ रहा हूँ, जिसने समस्त बिहार के अनेक लेखको एवं कवियो को विविध रूपो मे प्रोत्साहन एवं साहाय्य प्रदान किया है। बहुतों का तो स्वयं निर्माण भी किया है, समस्त बिहार का हिन्दी-क्षेत्र जिसकी विद्या-बुद्धि और उद्योगशीलता से उर्वर हुआ है, जिसका ऋण समस्त बिहार के हिन्दी-संसार पर है।

बिहार की साहित्यिक संस्कृति की सेवा जैसी मास्टर साहब के द्वारा हो रही है, वैसी सेवा करनेवाले गिने-चुने कुछ ही बिहारी मिल सकेगे। बिहार का इतना बड़ा भक्त आज मेरी नजरो मे शायद एक भी नही है।

मास्टर साहब का हृदय एक ऐसे गृहपति का हृदय है जो सारे परिवार की चिन्ता मे सदा व्यस्त रहता है और फूला-फला एवं भरा-पूरा घर देखकर नितान्त प्रसन्न भी। इसीलिये अपने कर्मचारियो के साथ अपने परिवार के सदस्यो की तरह व्यवहार करते हैं।

इनकी सहनशीलता का मै सदा से कायल रहा हूँ। बड़ी-से-बड़ी मेरी भूलें एक सच्चे मास्टर की तरह सहानुभूतिपूर्वक डॉट-डपटकर क्षमा कर दी हैं। किसी भी कर्मचारी की पराकाष्ठा पर पहुँची गलतियो मे तबतक विष की तरह पीते जाते हैं जबतक इनके प्राण न घुटने लगे। सरल हृदय ऐसे कि किसी के प्रति उठी विरोध-भावना छिपाकर रख नही पाते। कहा करते है—"घर मे उचित डॉट-डपट नही करेगे तो कहॉ करेगे।"

एक बार मै किसी काम से स्टेशन जा रहा था। रास्ते मे 'भंडार' का पियन डाक लिये हुए मिला। मैने तुरत उससे डाक का थैला लेकर अपनी चिट्ठियॉ ढूँढ़ डाली। एक सज्जन मेरी गलती देख रहे थे। उन्होने तुरत आकर मास्टर साहब से कह दिया कि त्रिपाठी रास्ते मे डाक देख लिया करते है। सचमुच यह बड़ा भारी अपराध था; पर सुचतुर मास्टर साहब ने मेरी नादानी और उक्त सज्जन की सज्जनता तुरत ताड़ ली। सिर्फ इतना ही, मुस्कुराते हुए कहा—"

यह एक अक्षम्य अपराध है। आगे ऐसा कभी न करना। डाक ही संस्था की जान है। नियम का उल्लंघन होने से संस्था की हानि हो सकती है।"

मास्टर साहब का विश्वासी कर्मचारी उनका पुत्र-तुल्य प्यारा है। आँख मूँदकर उसको कार्य-भार और धन सौंप देते हैं। मैंने अन्यान्य सम्पादकों की बातें सुनकर समझा है कि हिन्दी-संसार के विरले ही सम्पादक और पत्र-संचालक मास्टर साहब जैसा अपने सहकारी को सुविधा और स्वतंत्रता देते हैं। साहित्य-सेवा मे जिस तरह अपनेको इन्होने खपा दिया है, उसी तरह ये अपने लहू से अर्जित धन का भी परार्थ उत्सर्ग करते रहते हैं।

रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर देशरत्न राजेन्द्र बाबू को ऐसा कोई भी प्रकाशक न मिला जो 'बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन'-जैसी बड़ी पुस्तक एक सप्ताह मे छपवा कर दे दे। उन्होने इसका भार मास्टर साहब के ही सर पटका। संयोग की बात, मै अपनी छुट्टी बिताकर घर से लहेरियासराय आ रहा था। मास्टर साहब पटना मे ही थे। वही से इन्होने उक्त इतिहास की तैयार कापी के साथ मुझे बनारस भेज दिया और शिवपूजनजी को छपरा तार दिया कि आप कालेज से एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बनारस जाइये, त्रिपाठी कापी लेकर बनारस गया।

इतना ही नही, उसी कांग्रेस के कला-विभाग के लिये देशपूज्य राजेन्द्र बाबू ने बिहार का एक चित्रमय इतिहास भी तैयार कराया था, जिसमे भारत के विभिन्न प्रान्तो के नामी कलाकारो ने हाथ बॅटाया था। मास्टर साहब ने इस काम के लिये अपने प्रसिद्ध कलाकार श्रीउपेन्द्र महारथी को सवेतन सात मास की छुट्टी दी थी, ताकि भैया महारथी को कांग्रेस से कुछ न लेना पड़े।

वह चित्रबहुल पुस्तक भी कांग्रेस के अधिवेशन से एक-डेढ़ सप्ताह ही पहले तैयार हुई। उसके लिये ब्लॉक बनकर छपवाने मे शीघ्रता के कारण हजारों का टोटा पड़ा। मगर मास्टर साहब का साहस कार्यभार बढ़ता देखकर पूर्णेन्दु-दर्शी सागर की तरह बढ़ता ही गया। खास इसी काम के लिये कई बार महारथी जी को कलकत्ता भेजा। ठीक अवसर पर सुन्दर चीज तैयार कर बिहार-प्रान्त की लाज रखने और गौरव-वृद्धि करने के लिये पानी की तरह रुपये खर्च किये।

मास्टर साहब ने इन कामो मे हजारों का घाटा उठाकर भी बिहार की कांग्रेस का गौरव बढ़ाया। देशमान्य राजेन्द्र बाबू को ऐसी आशा न थी, पर इन्होने गुपचुप सारा काम आशातीत ढंग से पूरा करके उनके सामने रख दिया। ऐसे कामो मे साहस दिखलाने के लिये मास्टर साहब अनन्वय हैं।

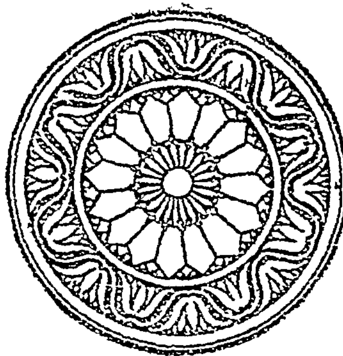
उसी कांग्रेस के अवसर पर श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू अर्थ-संग्रह के निमित्त

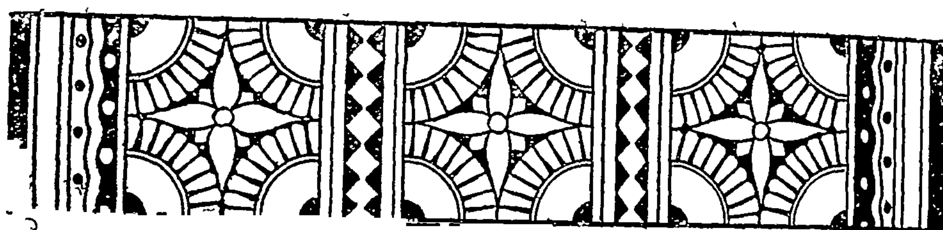
प्रान्त का दौरा करते हुए जब दरभंगा आये, पुस्तक-भंडार मे पधारे, उसी क्षण एक हजार का चेक इन्होने सादर अर्पित कर दिया ; आखिर जिला-भर मे वही रकम सबसे बड़ी रही। इनकी वदान्यता अतुलनीय है।

मास्टर साहब इतने भावुक-हृदय हैं कि किसी की जरा-सी चाल पर इनका हृदय अत्यन्त दुःखित हो उठता है। न खुद चालबाजी पसन्द करते हैं और न दूसरों से वैसी आशा करते है।

मैंने, श्रद्धेय मास्टर साहब से, एक शिष्य की तरह, शिक्षा और प्यार— दोनो पाये हैं। इनका आदर्श सम्पादन-कौशल और गंभीर भाषा-ज्ञान तथा अति सरल लेखन-शैली अद्भुत चमत्कारपूर्ण है। गद्य-शैली मे सरलता लाने के लिये सदा उपदेश दिया करते हैं।

मैंने जो कुछ भी सीखा है, उसपर मास्टर साहब की अमिट छाप है। फिर भी इनकी शैली अपनाने मे अभी मुझे पूरी सफलता नही मिली है। इनके लिये जो वस्तु अपने हृदय मे बन्द किये पाल रहा हूँ, वह कभी भविष्य मे ही खुल सकती है।





श्रीरामलोचनशरणजी का आदर्श जीवन

पंडित व्रजविहारी त्रिवेदी, हिल्सा (पटना)

मैं एक साधारण ग्रामीण ब्राह्मण हूँ। जब नवे क्लास का विद्यार्थी था, अचानक सांसारिक झंझटो के चपेट मे पड़, अत्यधिक मानसिक चिन्ताओ के निवारणार्थ, श्रीअयोध्या जाकर, भगवान् श्रीराम के शरणागत हो गया। ग्यारह वर्षों तक वैष्णव साधु के वेश मे देश-भर भटकता फिरा।

एक बार जनकपुर जाते हुए, भगवान् की प्रेरणा से, लहेरियासराय मे, श्रीरामलोचनशरणजी के 'पुस्तक-भंडार' मे आया। मैंने इनकी भगवद्भक्ति तथा भक्तो के प्रति इनकी अविरल प्रीति की बाते सुनी थीं। प्राय वे सारी बाते सच्ची दीख पड़ी। नियमपूर्वक दोनो जून एकांत कोठरी मे प्रभु की पूजा करना—सन् १९३५ से आज तक मै अपनी आँखो देखता आ रहा हूँ। इनकी जन्म-भूमि श्रीजनकपुर-धाम के पास ही है। मुझे योगिराज महाराज जनक के गुणो मे से कई गुण इनमे दिखलाई पड़े। जैसे—गृहस्थ रहते हुए भी भगवद्भक्ति मे अनुरक्ति तथा भागवतो की पूरी सेवा, आप गृहस्थ के रूप मे ही साधु हैं।

सन् १९३४ के भूकम्प से जब समस्त मिथिला ध्वस्त हुई, तब 'पुस्तक-भडार' को भी लाखो की क्षति हुई। उस समय दत्तजी के पूछने पर इन्होने ईश्वर मे अपने अटल विश्वास का परिचय देते हुए कहा था कि जिस प्रभु ने 'भंडार' को बनाया था उसी की इच्छा से वह नष्ट हुआ है और यदि वह फिर चाहेगा तो इसे पहले से भी सुन्दर बना देगा।

इनका वह अटल विश्वास अक्षरश चरितार्थ हुआ। 'भंडार' अपने अनेक प्रतिस्पर्द्धियो का सामना करते हुए प्रति दिन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। यह प्रगतिशीलता ईश्वर की कृपा ही की प्रेरणा तो है।

जब मैं भारतवर्ष के अनेक तीर्थों मे भ्रमण करता हुआ मास्टर साहब के समक्ष आया, तब मेरी पूर्ण युवावस्था पर ध्यान देते हुए आपने जो कुछ भी मुझे उपदेश दिया वह मेरे मत से प्रत्येक युवक साधु के ध्यान देने योग्य है। आपने कहा—"क्या मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि जब वह कमाकर खाने-खिलाने योग्य जवान हो जाय, तब अपनी बूढ़ी मा और बूढ़े पिता तथा आश्रित कुटुम्बियो का ध्यान न रख जवानी की मस्ती से देश-विदेश घूमता फिरे और घरवाले उसके लिये तड़पते रहे ? जीवित माता-पिता से बढ़कर कोई तीर्थ पृथ्वी पर नहीं है। विरक्ति की भी अवस्था निश्चित है।"

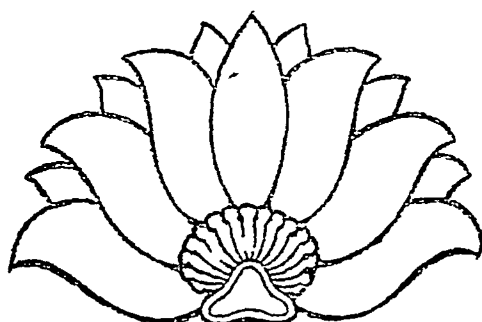
आपने मुझे समझाते हुए फिर कहा—"एक मनुष्य पृथ्वी पर खड़ा हो, दूसरा ऊँचे कोठे पर। अगर दोनो किसी प्रकार गिर जायँ तो अधिक चोट ऊँचाई से गिरनेवाले को लगेगी। मनुष्य-शरीर काम-क्रोधादि का अड्डा है। गलत रास्ते पर साधु और गृहस्थ दोनों ही जा सकते है। परन्तु, गृहस्थ से अधिक साधु ही भगवान् के दरबार मे दंडित होगा। चोरी करने पर एक मूर्ख देहाती की अपेक्षा एक कानून जाननेवाला चोर सिपाही अधिक दंडित होता है। सोचो, दूसरे के द्वारा दिये हुए अन्न को खाकर जो भजन करते है, उनके पुण्य का कुछ भाग अन्न देनेवाले को भी अवश्य मिलता है। इसलिये उत्तम यह है कि मनुष्य अपने परिश्रम से उपार्जन करके खाय-खिलावे और निश्चिन्त होकर भगवान् का भजन करे। जो अपने आश्रितो की आशा पर पानी फेरकर, जीवन-संग्राम से कदराकर, दूसरो के अन्न के भरोसे, भरी जवानी में, साधु होता है, वह अपनी आत्मा को तो धोखा देता ही है, समाज के बोझ को भी भारी बनाता है।"

आपके उपर्युक्त उपदेशो से मेरा शीघ्र भ्रमभंजन हुआ और मैं पुनः गृहस्थ बनकर भगवद्भजन करने लगा। अब मेरी माता की धुँधली हुई आँखो मे सचमुच जोत जग गई है।

जब आपको रायसाहब की उपाधि गवर्नमेंट से मिली, तब मै खुश होता हुआ आपको बधाई देने गया। तब भी आपने यही कहा—"प्रभु के प्रसाद से ही यह उपाधि मिली है; उसकी कृपा के पात्र पर सबकी कृपा होती है।" यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता, जो आपकी तरह गरीब से धनी होकर इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त करता, तो वह मारे घमंड के अपने सामने दूसरो को तुच्छ समझ किसी से भर-मुँह बोलता तक नहीं। परन्तु, यह भगवान् का अटल विश्वास ही है जो आपको सांसारिक वैभव के अहंकार मे लिप्त नहीं होने देता।

आज से पचीस वर्ष पहले बिहार मे कोई ऐसा सजग प्रकाशक नहीं था, जो बिहार के होनहार लेखको को आश्रय और प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाता।

पाठ्य पुस्तके भी अधिकतर वाहर से आती थी और इस प्रकार हर साल हजारो रुपये इस प्रान्त से वाहर चले जाते थे। ईश्वर की प्रेरणा से आपने 'पुस्तक-भंडार' की स्थापना करके विहार के लेखको को तो वाहर भटकते फिरने से वचाया ही, आपने प्रान्त को भी उस आर्थिक हानि से वचाया जो वरसो से हर साल होती थी। इस प्रकार आपने विहार को आर्थिक दृष्टि से भी लाभ पहुँचाया और साहित्यिक दृष्टि से तो कहना ही क्या! वास्तव मे आगे आनेवाली पीढ़ी के लिये आपका आदर्श जीवन सच्चा मार्गदर्शक है।





कृतज्ञताञ्जलि

श्रीरामानुग्रह मिश्र; विष्णुपुर, (मुजफ्फरपुर)

बात संभवत. १९२२ या २३ ईसवी की है। तब 'भंडार' एक छोटी-सी दूकान मे था। मैं दरभंगा गया था—वहॉ के एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव कायस्थ के यहॉ विवाह के तिलक मे। उस समय मेरा बड़ा लड़का सीतामढ़ी के हाइस्कूल मे पढ़ता था। उसके लिये कुछ पुस्तके खरीदनी थी।

'भंडार' से पुस्तके खरीदने गया, तो दूकान पर बाबू रामलोचनशरण भी पहुँच गये। मैने उनके निकट जाकर पुस्तको की सूची सामने रख दी। सबका दाम उन्होने उन्नीस रुपये पॉच आने बताया। मै निराश हो चुपचाप उठकर चलने लगा।

श्रीशरणजी ने पूछा—"लौटते क्यों हैं, पंडितजी ?"

मैने कहा—"मेरे पास केवल दस रुपये हैं। विचारकर आया था, यदि इतने मे पुस्तके मिल जायँगी तो ठीक नही तो लड़के को स्कूल से हटा घर बैठा दूँगा। औकात कहॉ है कि किताबो मे इतना दाम लगाऊँ। भगवान् की यही इच्छा है। मैं क्या कर सकता हूँ।"

उन्होने मुझे बैठाया। मेरे पास जो रुपये थे, ले लिये। कुल पुस्तकें देकर मुझे ढाढ़स दिया। उनकी इस उदारता पर मैं अवाक् था। मुँह बन्द था, हृदय आनन्द-गद्‌गद। उनके आभार से मै दबा जाता था। मेरी दो मूक ऑखो ने उन्हे तथा उनके 'भंडार' को आशीर्वाद दिया। फिर मौन कृतज्ञता प्रकट कर चला आया।

वह बात मुझे आज तक नही भूली। 'भंडार' की वर्त्तमान उन्नत अवस्था देखकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता है। यह उन्नति इस तरह के असंख्य उपकारों का प्रत्यक्ष फल है।



'पुस्तक-भंडार' की सिलवर जुबली

मुहम्मद सुलेमान अशरफ, दरभगा

'पुस्तक-भंडार' किताबो और अखबारो का एक कारखाना और खजाना है। इसकी बुनियाद डालनेवाले बाबू रामलोचनशरणजी है। आप विद्या के प्रेमी, हमदर्द-कौम और मुल्क की भलाई चाहनेवाले है। आप ही की कोशिश से यह कारखाना कायम हुआ और आज ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया है। 'भंडार' की सिलवर-जुबली और आपकी गोल्डेन जुबली—दोनो के जलसे एक साथ मिलकर और भी आलीशान हो गये है।

यह मानी हुई बात है कि अगर कोई आदमी आम लोगो के फायदे के लिये कोई काम शुरू करता है, तो शुरू मे बहुत-से एतराज पेश आते हैं और लोग फब्तियाँ कसने लगते है, लेकिन जब वह किसी की परवा नहीं करता और अपना काम खुदा के भरोसे किये जाता है, तब कुछ ही दिनो मे वह अपनी मुराद को पहुँच जाता है, और फब्तियाँ कसनेवाले खुद झक मारकर उसके झंडे के नीचे चले आते है।

इसका अंदाजा आप इससे कर सकते है कि जो भी ऋषि, मुनि, पीर, महात्मा गुजरे है, उन्हे भी शुरू मे बहुत ज्यादा मुश्किले झेलनी पड़ी। वे बुरे-भले कहलाये। यहाँ तक लोग पीछे पड़े कि उनके जानी दुश्मन भी हो गये; लेकिन फिर अखीर मे शरमिन्दा हो माफी माँगकर उनकी सेवा करनी पडी। ठीक यही हालत आपके 'भंडार' की भी हुई है।

सब लोगो को यह मालूम है कि जाहिलो के पढ़ाने की स्कीम के मुताबिक़ आपने महमूद-सीरिज की एक सौ किताबो का एक सेट् तैयार कराकर लोगों के सामने रख दिया। इन किताबो के पढ़ लेने से इन्सान को किसी जरूरी बात के लिये दूसरो का मुँह ताकना नही पड़ता। आपने जिहालत दूर करने के सिलसिले मे नये तरीके के कई चार्ट निकाले और उन्हे मुफ्त बाँटकर मुल्क और कौम की बहुत बड़ी खिदमत की।

इन सब खूबियो के बदले खुदगज लोगों ने 'भंडार' और उसके सरपरस्त आपको बेजा इलजाम देने की कोशिशे की और अपने इलजाम को सही साबित करने के लिये किताब के अंदर से वर्क निकालकर उसकी जगह वैसे ही दूसरे नये वर्क लगा दिये। उनमे गलत और काबिल-एतराज अलफाज इस्तेमाल करके पब्लिक मे प्रोपगंडा किया और जगह-जगह सभाएँ करके 'भंडार' को दोषी बनाने की कोशिश की। मगर 'भंडार' अपनी सचाई की वजह से बेकसूर साबित हुआ। बकौल बड़ो के—

"सच्चे की तो इज्जत ही बढ़ेगी जो करें जाँच
मशहूर मसल है कि नहीं साँच में कुछ आँच"

आपने 'सयानो के पढ़ने के लिये पहली रीडर' नाम की एक किताब लिखकर अनपढ़ लोगो की जिहालत के दूर करने मे बड़ी मदद की है। वह किताब बेहद मुफीद है। मुल्क की इस खिदमत के लिये सरकार से आपको एक मेडल भी मिला है।

हिन्दुस्तानी जबान मे, फारसी और नागरी दोनो हरूफ मे, आपने, 'होनहार' माहवार निकाला। वह लाजवाब रिसाला साबित हुआ। उसकी तारीफ से बड़े-बड़े आलिम-फाजिल लोगो और अखबारो के एडिटर वगैरह के खतूत 'भंडार' के दफ़्तर मे मौजूद है। यहाँ तक कि तालीम के महकमे ने भी उसको मंजूर किया। जामे मिल्लिया (देहली) और अंजुमन-तरक्की-उर्दू (दक्खिन हैदराबाद) ने भी इसकी खूब-खूब तारीफे कीं। मगर अफसोस कि कुछ लोगो ने 'होनहार' की होनहारी पर भी डाह की। सचमुच वह हिन्दू-मुसलिम एका के लिये एक अच्छा जरिया था।

एक नुक्ता और काबिल-तहरीर यह है कि बिहार-सरकार ने जब हिन्दुस्तानी जबान जारी करने का हुक्म दिया, तब 'भंडार' ने ऐसी जबान मे किताबे निकाली, जो हकीकत मे हिन्दुस्तानी जबान कहलाती है। इन किताबो मे वे ही अलफाज ज्यादातर इस्तेमाल किये गये, जिन्हे हिन्दू और मुसलमान दोनो बोलते है। मगर आपस की फूट की वजह से हिन्दुओ को एतराज हुआ कि यह हिन्दुस्तानी नही, बल्कि उर्दू है और मुसलमानो ने भी एतराज पेश किया कि यह बिलकुल हिन्दी है। अब आप ही बतायॅ कि 'भंडार' ऐसी हालत मे कौन-सा रास्ता अख्तियार करे, जिससे दोनो को खुश कर सके।

एक दफा दरभगा जिले के 'जाले' थाने मे जनाब कलक्टर साहब की सदारत मे एक सभा हुई, जिसमे मुसलमानो ने इसी किस्म के एतराज पेश किये थे, जिसके जवाब मे आपने फरमाया कि अगर कोई साहब ऐसी किताब तैयार कर दे जो मुसलमानो के लिये मुफीद हो तो मै उसे मुफ्त छापकर बॉट दूँगा।

आखिर 'वालिगो की किताब' तैयार की गई, जिसे आपने अपने खर्च से तीन हजार छापकर मुसलमानो की तालीम के लिये दे दिया। इसे कहते है कौम की हमदर्दी और मुल्क के लिये जॉ-निसारी। अब आप ही फैसला करे कि जो शख्स अपने मुल्क की इस तरह खिदमत करे उसकी हिम्मत बढ़ाने के लिये हमारा क्या फर्ज हो सकता है। मगर अफसोस कि हमे इसका जरा भी खयाल नही।

चाहे कोई किसी जबान का लेखक क्यो न हो, 'भंडार' से ज्यादा उसकी कही कद्र नही। आपको इल्म की प्यास इतनी है कि अपनी इब्तदाई उम्र से लेकर आज तक इल्म की खिदमत करते रहने पर भी वह प्यास न बुझ सकी। जहॉ किसीने आपको कोई किताब देने की इत्तला दी और वह मुफीद सावित हुई, आप बेधड़क उसे काफी उजरत देकर ले लेते है।

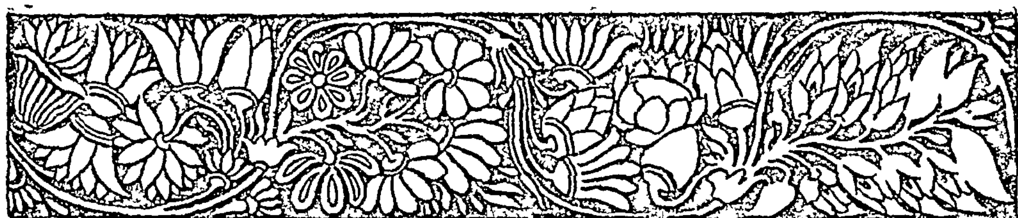
आपकी वरावर यह ख्वाहिश रहती है कि उर्दू की अदबी किताबे छापी जायॅ, मगर चंद मजबूरियो की वजह से आप अपने इस इरादे मे पूरी तरह कामयाव न हो सके। मगर फिर भी आज आपने काफी तादाद मे उर्दू की अदवी किताबे छाप डाली है, जिनके पढ़ने से बहुत-सी बातो की जानकारी हम घर-बैठे हासिल कर लेगे। हमारा खयाल है कि 'भंडार' की किताबे, हर लिहाज से, सिर्फ विहार ही मे नहीं, बल्कि तमाम हिन्दुस्तान मे, अपनी नजीर आप है।

बाबू रामलोचनशरणजी का अखलाक भी काबिल-तारीफ है। आपमे घमंड, दिखावा और गुस्सा तो नाम को भी नही है। आप छोटे-बडे सवसे एक-सॉ बर्ताव रखते है। कोई आदमी ऐसा नही जो आपसे मिलकर आपके बड़प्पन की तारीफ न करता हो।

आप हर साल गरीब विद्यार्थियो को ज्यादा-से-ज्यादा तादाद मे किताबें मुफ्त देते है। यही नहीं, बल्कि बहुतो के पढ़ने का भी कुल खर्च दिया करते हैं, जो मशहूर है।

अपने मुलाजिमो के साथ भी आपका बर्ताव बहुत अच्छा है। आप उनके दुख दूर करने मे 'हातिम' और इंसाफ मे 'नौशेरवॉ' की मिसाल है।

हम विहारियो—और खासकर दरभगावालो—के लिये यह लाजमी है कि 'भंडार' की सिलवर-जुबली मे, जो हकीकत मे इल्म और अदब की—विद्या और साहित्य की—जुबली है, खुशियॉ मनाये, और साथ ही खुदा से यह दुआ करे कि 'भडार' और इसके मालिक बाबू रामलोचनशरणजी जुग-जुग जियें, जिससे 'भंडार' की गोल्डेन-जुबली और आपकी डायमंड-जुबली इसी तरह एक साथ मनाने का मौका नसीब हो। आमीन !!!



आभारमय हृदयोद्गार

[१]

श्रीमदनप्रसाद गुप्त विद्यार्थी, बी ए (बी. एन. कालेज, पटना)

बाबूजी (श्रीहवलदारी राम गुप्त 'हलधर') ने कहा—अपने चाचा को प्रणाम करो। सकुचाते हुए श्रद्धेय 'शरण' चाचा के पाँव छूकर प्रणाम किया। उन्होंने उठाकर गोद में बैठा लिया और लगे दुलारने। पूछा—'मदन, तुम क्या चाहते हो?' बार-बार आग्रह करने पर मैंने कहा—'बिलाई मौसी' किताब। इसपर उन्होंने खूब ठहाका लगाया—"तुम्हारी मौसी बिलाई? अच्छा, तुम अपने हाथ से मेरे पास पत्र लिखोगे तो मैं भेज दूँगा, मगर खबरदार, अपने हाथ से पत्र लिखना।"

घर पहुँचने पर कई दिनों के बाद बाबूजी ने कहा—"क्यों जी, अपने 'शरण' चाचा को पत्र लिखकर किताब मँगा लो न?" मैंने उदास होकर कहा—"मैं नहीं लिखूँगा। देने का मन तो था नहीं, पत्र का एक अड़ंगा लगा दिया। बड़े आदमी हैं।"

बाबूजी मेरे मन की बात ताड़ गये। बड़े लाड़ से समझाया—"देखो, उनका मतलब है कि मदन पत्र लिखना सीखे। तुम लिखकर देखो, भेजते हैं कि नहीं।"

बाबूजी का आदेश-पालन करने के सात दिन बाद एक बड़ा पार्सल लेकर डाकिया पहुँचा। मेरा नाम पूछकर उसने एक बड़ा पार्सल दिया। मेरे आनन्द की सीमा न रही। उछलते-कूदते किताबों को लेकर, बाबूजी और माताजी को दिखलाया और कहा—"बाबूजी, सचमुच 'शरण' चाचा बड़े आदमी हैं।"

उस रोज से न जाने उनपर कितनी श्रद्धा है, जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

[२]

श्रीबबुएजी झा, प्रधान—पुस्तक-बिक्री-विभाग, 'भंडार'

सन् १९२८ ई० में पढ़ना छूट गया। मैं हिन्दी-पुस्तकों की एजेन्सी करने लगा। 'भंडार' से पुस्तकें खरीदता और दरभंगा-दरबार में जाकर बेच आता।

स्वर्गीय महाराजाधिराज डाक्टर सर रामेश्वरसिंह बहादुर हिन्दी पुस्तकों के बड़े प्रेमी थे। प्रत्येक व्यक्ति उनसे मिलने का मौका पा सकता था। मैं उनकी सेवा में उपस्थित हो जाता और वे कृपा कर पुस्तकें लाने की आज्ञा देते। सन् १९२८ ई० में उनका स्वर्ग-वास हो गया। फिर भी मैं श्रीमान् राजा विश्वेश्वरसिंह बहादुर के दरबार में पुस्तकें देता रहा। वर्त्तमान महाराजाधिराज के भागिनेय श्रीमान् कन्हैयाजी की कृपा मुझपर अब भी रहती है। वे बड़े साहित्यानुरागी हैं। साल में वे कई सौ रुपयों की पुस्तकें खरीदते हैं। सन् १९३० ई० में श्रीमान् मास्टर साहब की नजर मुझपर पड़ी। उन्होंने मुझे 'भंडार' का पुस्तक-विक्रय-विभाग सौंप दिया। उन्हीं की कृपा से मैं उत्तरोत्तर उन्नति करता आ रहा हूँ। उनकी विशेष आज्ञा है कि दूकान पर ग्राहकों के साथ सदा सचाई और नम्रता का व्यवहार हो।

[३]

श्रीरामभरोस झा, हेड प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

लगभग दो सौ कर्मचारी 'भंडार' और विद्यापति प्रेस में काम कर अपने परिवार के सैकड़ों व्यक्तियों का पालन-पोषण कर रहे हैं। कौन जानता था कि एक साधारण निर्धन बालक अपने उद्योगबल से सम्पत्तिशाली बनकर विहार का एक आदर्श पुरुष होगा। ठीक ही कहा है—

"वैभव की दीवानी दुनिया मत इतराना कोठों पर
दीनों के प्रति अपशब्दों को ला मत अपने होठों पर
कुटिया के कोने में कोई गुप्त पड़ा होवेगा लाल
जब आवेगा समय, उसी से हो जावेगा विश्व निहाल"

[४]

श्रीनन्दीपति दास, प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

नवम्बर, सन् १९३९ में एक युवक ने बेकारी और ऋण से तंग आकर ईसाई होने की ठानी। उसे मिशनवालों ने अच्छी-सी नौकरी की आशा दिलाई। वह अपने परिवार—माँ, स्त्री और दो बच्चों—के साथ लहेरियासराय के 'अमेरिकन मिशन' में विधर्मी होने आया। यह खबर स्थानीय आर्य-समाजियों को मिली। किन्तु, पादरियों की फटकार से वे उस युवक तक न पहुँच सके।

इतने में कुछ सज्जन आये और मिशन के भीतर चले गये। फाटक पर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। लगभग आधे घंटे के बाद देखा गया कि वे लोग उस युवक को सपरिवार घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ाकर मिशन से बाहर ले गये। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे लोग स्थानीय 'पुस्तक-भंडार' के कर्मचारी थे और उसके धर्मप्राण

मालिक 'मास्टर साहब' ने युवक के उद्धारार्थ उन्हे यहाँ भेजा था। मास्टर साहब ने 'भंडार' मे उस युवक को एक अच्छी-सी नौकरी दी है, ऋण-मुक्त किया।

एक दिन मैं सुबह आठ बजे के बदले बारह बजे 'भंडार' गया। मास्टर साहब ने मुझे कुछ डॉटकर कहा—"क्यो साहब, क्या यही समय की पाबंदी है? मैंने तो आपको आठ ही बजे बुलाया था, लेकिन अब तो बारह बज रहे हैं।"

मैं उनकी फटकार सुनकर कुछ भयभीत तथा निराश-सा हो गया। मुझे हतप्रभ देख उन्होने बहुत ही मीठे स्वर से कहा—"हम भारतीयों को समय की पाबंदी का ध्यान नहीं है, इसीलिये हमलोग उन्नति की सीढ़ी पर नही चढ़ सकते।"

[५]

श्रीगौतमचरण उपाध्याय; प्रूफ-रीडर, विद्यापति प्रेस

मेरे एक समीपी सम्बन्धी के अनुरोध और परामर्श से मास्टर साहब ने यह वचन दिया था कि ये लहेरियासराय आवें, जिस काम की ओर इनका झुकाव होगा उस काम मे लगा दूँगा।

पन्द्रह-बीस दिनो के बाद मैं संध्या-समय लहेरियासराय पहुँचा। मुझको देखते ही आप पहचान गये। पूछ-ताछ करने लगे। तबतक भोजन का समय हो गया। मै बाजार-घाट उतरने की सोच रहा था, तबतक आपके घर से भोजन-सामग्री लेकर रसोइया पहुँच गया। मैनेजर साहब मुझे भोजन कराने आये।

मैं समझता था, मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति के लिये बाजार से भोजन-सामग्री लाने की आज्ञा होगी। मुझे स्वप्न मे भी ऐसी आशा न थी कि नौकरी के उम्मीदवार मुझ-जैसे नगण्य व्यक्ति की इतनी खातिरदारी होगी।

दूसरे दिन आप मुझे साथ लेकर प्रेस मे गये। मैनेजर साहब से कहा—इनको प्रेस का काम सिखलाइये। उस समय जो काम मेरे जिम्मे किया गया, उसके लिये मैं पूर्ण योग्य न था; किन्तु आपकी स्नेहयुक्त कृपा ही का फल है कि आपने एक अनजान आदमी को भी आश्रय देकर अपनी दयालुता दिखलाई।

[६]

श्रीजगतारणप्रसाद, आफिस-इञ्चार्ज, विद्यापति प्रेस

मामाजी (मास्टर साहब) परिश्रमी को ही होनहार समझते हैं। उसको वे अपना ही समझने लगते हैं। कहा करते हैं—"ईमानदारी और मुस्तैदी से काम करते रहना भावी उन्नति की निशानी है।" वे यह नहीं देखना चाहते हैं कि हमारे अपने ही लोग अकर्मण्य हों। कार्यतत्परता के लिये प्यार से समझाते हैं, रास्ता दिखाते हैं और कभी-कभी डॉट-डपट भी करते हैं। उनकी हर बात मे हम-लोगों का कल्याण ही छिपा रहता है।



कुछ बाल्य स्मृतियाँ

[१] बाबू सत्तूठाकुर; राधाउर (मुजफ्फरपुर)—

रामलोचन के पिता महँगू शरण से हमारा भाई-चारे का रिश्ता था। हम दोनो समवयस्क थे। हमे रामलोचन की बोली बडी प्यारी लगती थी। जब हम इस बच्चे को देखते, बुलाकर पूछते—रामलोचन, तुम पढ़कर क्या करोगे? झट उत्तर मिलता—"मजिस्टर होंगे।"

[२] श्रीरीझू तिवारी; राधाउर—

राधाउर के रईसो के बहुत लड़के स्कूल मे पढ़ते थे, पर रामलोचन के समान होनहार लड़का कोई नही था। उसका सुन्दर मुखड़ा देखकर यह कोई नही समझ सकता था कि यह गरीब घर का लडका है। आज वह लखपति बनकर सैकड़ो की परवरिश कर रहा है। हमारे गॉव के उपकार के लिये भी कई ऐसे-ऐसे काम किये है कि उसका नाम अमर रहेगा।

[३] श्रीरामसागर तिवारी; राधाउर—

रामलोचनशरण ने हमारे गॉव का ही नही, बिहार का सिर ऊँचा कर दिया। इसका हमे गौरव है। हम दोनो साथी है। वह हमारे गॉव का रत्न है।

[४] श्रीसीताशरण तिवारी; राधाउर—

रामलोचनशरण के समान स्वस्थ और सुन्दर शरीर हमारे स्कूल के किसी भी छात्र का नही था। वह हमारा स्कूली साथी है। शरीर ही की भॉति उसकी स्मरण-शक्ति और बुद्धि भी पुष्ट थी। जो पाठ गुरुजी क्लास मे पढ़ा देते थे, रामलोचन को वह उसी वक्त कंठस्थ हो जाता था। पर उसको हम रात मे पढ़ते

नहीं देखते थे। फिर भी वह क्लास मे अपना पाठ ठीक-ठीक सुना दिया करता था। अपने सहपाठियो के साथ लड़ना उसको पसन्द नहीं था, पर यदि कोई लड़का उसका अपमान कर देता तो वह उसकी अच्छी खबर लेता—धनियो से भी दबना नही जानता था। कौन जानता था कि हमारा वह गरीब साथी विहार मे अपना स्थान ऊँचा कर हजारो का अन्नदाता बन जायगा ?

[५] श्रीकालीचरण तिवारी; राघाउर—

हम और रामलोचनशरण एक साथ ही स्कूल मे पढ़ते थे। उसका बचपन का सुन्दर और स्वस्थ शरीर आज भी हमारी आँखो के सामने झलक जाता है। आज तो हमारा वह लँगोटिया दोस्त लाखो का राजा बनकर सैकड़ो का गुजर करा रहा है। उसने आज न केवल हमारे गाँव को, वरन् सारे विहार की लाज रक्खी है।

[६] श्रीकुलदीप साहु; राघाउर—

रामलोचन बचपन मे स्कूल से आकर घर मे कभी-कभी खूब ऊधम मचाता था। पर उसमे पितृभक्ति ऐसी थी कि भाई साहब (उसके पिता) के आते ही वह शान्त हो जाता था।

[७] श्रीकेवल तिवारी; राघाउर—

रामलोचनशरण हमारा बचपन का साथी है। पढ़ने के समय इसका ध्यान दूसरी ओर नही जाता था। जिस क्लास मे गुरुजी नया पाठ पढ़ाते थे, उस समय यह किसीसे नही बोलता था; बड़े गौर से नये पाठो को सुना करता था।

[८] पं० कुमर झा, मकुनाही (मुजफ्फरपुर)—

यद्यपि हमारे घर मे किसी चीज की कमी नही थी, तथापि शनिवार की पाठ-पूजा मे गुरुजी को देने के लिये 'शनिचरा का पैसा' कभी-कभी हमे घर से नही मिलता था, और जब हम शरणजी से यह बात कहते थे तब वे अपना पैसा हमे दे दिया करते थे।

[९] श्रीद्वारिकालाल, मकुनाही (मुजफ्फरपुर)—

बाबू रामलोचनशरण के पिता और हमारे चाचा—दोनो मे बड़ी अपनैती थी। शरणजी जब कभी हमारे यहाँ आते, यथा-योग्य सबको प्रणाम करते और बड़ी नम्रता से बाते करते थे। अब भी जब कभी मिलते है, पूर्ववत् प्रेम रखते है। आज लखपती होने पर भी उनमे लेशमात्र अभिमान नही है। वे परोपकार के लिये सदा तत्पर रहते है।

[१०] श्रीराजकुमार राउत, सहनियापट्टी (मुजफ्फरपुर)—

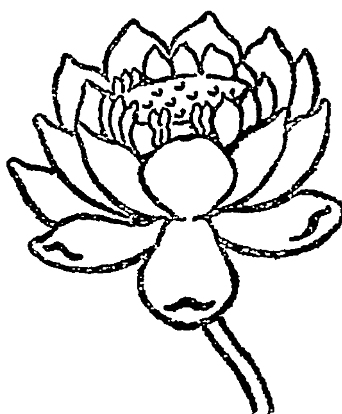
बाबू रामलोचनशरण कुछ दिनो तक हमारे गॉव मे लडको को पढाया करते थे। उनका स्वभाव और उनकी बोली इतनी अच्छी थी कि जब वे लड़कों को पढ़ाने लगते तब हम अपने काम-धाम छोड़कर वहॉ जा बैठते। उनकी मीठी बोली और लड़को को पढ़ाना तथा डॉटना-डपटना सुनने मे जी लगता था। वे बड़े खुशमिजाज और दिलेर हैं।

[११] श्रीसिंहेश्वर राउत, सहनिगापट्टी (मुजफ्फरपुर)—

जब बाबू रामलोचनशरण हमारे गॉव मे पढ़ाते थे, हमलोग पाठशाला मे जाकर उनका पढ़ाना सुन मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वे थे तो छोटी अवस्था के; पर उनकी मीठी बोली मे न जाने कैसा आकर्षण था। वही होनहार गुरुजी आज हमारे देश के रत्न हैं।

[१२] पं० जयरुद्र झा, कंसारा (मुजफ्फरपुर)—

अपने गॉव मे भी शरणजी ने अपने पिताजी के नाम पर एक संस्कृत-विद्यालय खोल दिया है। उसमे हमारा छोटा बेटा पढ़ता है। हमारी यह चिर-अभिलाषा पूरी हो गई।



मेरे साहित्यिक गुरुदेव

प्रोफेसर हरिमोहन झा एम. ए (बी. एन कालेज, पटना)

बचपन से हँसते-खेलते मेरी शिक्षा का क्रम चलता रहा। चौदह वर्ष की अवस्था तक मैं किसी स्कूल मे भर्ती नही हुआ। हाँ, घर पर पूज्य पिताजी (पंडित जर्नादन झा 'जनसीदन') की संगृहीत पुस्तके और पत्र-पत्रिकाएँ थीं। उन्हे मैं चट कर गया। क्लिष्ट होने के कारण जो समझ मे नहीं आती थी उन्हे छोड़कर शेष पुस्तको और पत्रिकाओ का मै रसास्वादन कर लेता था। यह चसका ऐसा लगा कि आठ-दस बक्सो मे भरी हुई किताबों को मैंने उधेड़ डाला। बाबूजी के यहाँ 'सरस्वती' शुरू से ही—१९०२ ई० से—नियमपूर्वक आती थी। उसकी पूरी फाइल का मैंने बारंबार मथन कर डाला। मेरे लिये यही अध्ययन का कोर्स था।

एक दिन बाबूजी ने एक नई किताब लाकर मेरे हाथ मे दी और कहा—"देखो, ऐसी पुस्तक अब तक कोई नहीं निकली थी। हिन्दी-व्याकरण की बहुत-सी बाते तुमको मैंने बतला दी है, किन्तु क्रमपूर्वक नही। इस पुस्तक मे तुमको शृङ्खलाबद्ध रूप मे व्याकरण के सभी नियम मिल जायँगे। व्याकरण की ऐसी सुन्दर पुस्तक अभी तक कोई नही थी। इसे ध्यानपूर्वक पढ़ जाओ।"

मैंने पुस्तक हाथ मे लेकर देखी। लिखा था—'व्याकरण-चन्द्रोदय'। नीचे लेखक का नाम दिया हुआ था—'श्रीरामलोचनशरण'। मनोवांछित विषय की पुस्तक पाकर मै उछल पड़ा। आद्योपान्त पढ़ गया। उसके बाद मै उस पुस्तक का भक्त बन गया। रचयिता के प्रति मेरी अटल श्रद्धा हो उठी। न जाने, वह लेखक कितना भारी अनुभवी, विद्वान् और कलाकार होगा जिसने व्याकरण के

नियमो का ऐसे सुन्दर, सुसंगठित और सुव्यवस्थित रूप मे संकलन किया है। चुने हुए शब्दो मे लक्षण बतलाये गये है। न एक शब्द अधिक, न एक शब्द कम। कोई भी विषय छूटने नही पाया है। उस अज्ञात लेखक की रचना-चातुरी और बारीक सूझ देखकर मै मुग्ध हो उठा।

× × × ×

आज से करीब १७ वर्ष पहले की बात है। मेरी अवस्था प्राय चौदह वर्ष के लगभग थी। उन दिनो मेरे पिता दरभगा मे रहकर 'मिथिला-महिर' का सम्पादन करते थे। मै रोज उनके साथ आफिस जाया करता था। वे अपने कार्य मे लग जाते थे और मै 'विद्यार्थी,' 'माधुरी' 'इन्दु', 'मनोरंजन' आदि मासिक पत्रो के समुद्र मे डूब जाता था। हाँ, बाबूजी के डर से दो-एक किताबे हिसाब या अँगरेजी की भी साथ मे रक्खे रहता था। मौका पाने पर झट उन्हे निकाल लेता था।

एक दिन शाम को बैठा मै कुछ लिख रहा था। रविवार था। बाबूजी कही बाहर गये थे। इसलिये मै नि शंक होकर कुछ बाल-सुलभ रचनाओ के द्वारा अपना मनोरंजन कर रहा था। इतने मे एक सम्भ्रान्त सज्जन बाबूजी की खोज मे आ पहुँचे। मैने उनके आते ही रचनावाली कापी पर हिसाब की बही रखकर हाथ मे पेंसिल ले ली थी; किन्तु उनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने मेरी चालाकी भाँप ली। वे पूछ बैठे—"क्यो जी, अभी क्या लिख रहे थे?" मैने कहा—"नही तो। चक्र-वर्त्ती-अंकगणित से एक त्रैराशिक बना रहा हूँ।" उन्होने हँसकर कहा—"उस कापी को क्यों छिपा रहे हो? लाओ तो देखे।"

यह कहकर उन्होने कापी हाथ मे ले ली और मेरी रचना देखने लगे। मै संकोच से गड़ा जा रहा था। सरसरी तौर से देख जाने के बाद उन्होने कहा—"क्यो जी, तुम तो अच्छा लिख लेते हो। कही से नकल तो नही की है? क्योकि इसमे कही भी कुछ अशुद्धि नही है।" मैने कहा—"'व्याकरण-चन्द्रोदय' के सभी नियमो को ध्यानपूर्वक मैने समझ लिया है। इसी लिये लिखने मे भूल नही होती।"

इसपर आगन्तुक सज्जन के होठो पर मुसकुराहट आ गई, जिसका अर्थ मुझे पीछे मालूम हुआ। उसी समय बाबूजी आ पहुँचे। उन्होने आगत सज्जन को बडे ही आदर-सत्कार के साथ बैठाया और जो साहित्य-चर्चा छिडी तो घटो जारी रही। शाम होने पर उन सज्जन ने जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु बाबूजी ने नही माना। रात मे उन्हे वही भोजन करना पडा। भोजनोत्तर बाबूजी उन्हे विदा करने गये। जब लौटे तब मैने पूछा—"कौन आये थे?" बाबूजी ने कहा—"यही थे बाबू रामलोचनशरण, जिनका लिखा 'व्याकरण-चन्द्रोदय' है।"

मैं अवाक् रह गया। जिसकी कल्पित मूर्त्ति इतने दिनो से मेरी उपास्य वस्तु थी, वह व्यक्ति मेरे यहाँ आकर स्वयं दर्शन दे गया और मै कुछ अभ्यर्थना भी न कर सका। यह अफसोस बहुत दिनो तक मन मे बना रहा।

× × × ×

सन् १९२७ ई० मे मैंने मुजफ्फरपुर के कालेज से आइ० ए० की परीक्षा दी और पटना युनिवर्सिटी मे सर्वप्रथम हुआ। परीक्षा के बाद घर पर समय विता रहा था। एक दिन बाबूजी के नाम से निमन्त्रण-पत्र आया। मुजफ्फरपुर मे अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा था। बाबूजी मुझे भी साथ लेते गये। 'हरिऔधजी' के सभापतित्व मे कवि-सम्मेलन हो रहा था। बाबूजी ने अपनी कविताएँ पढ़कर सुनाईं। काव्यानुरागियो ने सराहना की। अन्त मे बाबूजी के आदेश और उपस्थित सज्जनो की स्वीकृति से मैने भी अपनी रचना सुनाई। समस्या थी—'समर मे'। और लोगो ने इसकी पूर्त्ति वीररस मे की थी। किन्तु मेरी सभी पूर्त्तियाँ हास्यरस की थीं। श्रोताओ को बहुत पसन्द आई। स्वयं 'हरिऔध'जी ने मेरी आशुरचना से प्रसन्न हो मेरे गले मे माला पिन्हा दी। एक सज्जन ने सभामंच पर आकर मेरे सामने पाँच रुपये मिठाई खाने के लिये रख दिये। दूसरे ने ५१ के पुरस्कार और तीसरे ने स्वर्णपदक की घोषणा की। सार्वजनिक सभा में प्रशंसित और पुरस्कृत होने का मेरा यह पहला मौका था। बाबूजी आनन्द से फूले नहीं समाये। सम्मेलन समाप्त होने पर बाबूजी के एक मित्र उन्हे बधाई देने लगे। मैने पहचाना—अरे! यह तो वही रामलोचनशरणजी है। मैने नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। वे मुझे शाबाशी देते हुए बोले—"तुम्हारी प्रतिभा देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। रचना का अभ्यास जारी रक्खो।"

दूसरे दिन हमलोग विदा हुए। बाबूजी को कार्यवश दरभंगा जाना था। इसलिये हमलोग शरणजी के दल मे सम्मिलित हो गये। उनके दल मे श्रीरामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्रीजटाधर प्रसाद शर्मा 'विकल' (स्वर्गीय), श्रीछविनाथ पाण्डेय आदि थे। रास्ते-भर खूब विनोद होता रहा।

शरणजी के आग्रह पर हमलोग उन्ही के यहाँ ठहरे। उस समय उनका 'पुस्तक-भडार' बाल्यावस्था से किशोरावस्था मे पदार्पण कर रहा था। अहाते के भीतर बीच मे सुन्दर लाल कोठी थी और इसके सामने पान के पत्ते के आकार का हरी दूब का फर्श उसकी शोभा बढ़ा रहा था। एक लम्बा-चौड़ा दालान था जो साहित्यिको का आवास-स्थान था। उसी मे हमलोग ठहराये गये। बड़ा आनन्द आया। भोजन की वेला हो गई थी। लेकिन इधर दो साहित्य-महारथी विहारीलाल के एक दोहे को लेकर आपस मे उलझे हुए थे। नवरस के सामने षट्रस को कौन

पूछता ? अन्ततः किसी प्रकार दोनों मे सन्धि स्थापित होने पर लोग भोजन करने उठे। लेखक-गृह के पीछे चौका-घर था। भोजन के साथ-साथ व्यङ्ग्य-विनोद खूब चलता रहा। जब शाम को विनोद-गोष्ठी जमती तब सभी साहित्यिक झगड़ो की मिसले श्रीशरणजी के सामने पेश होती और वे अपना फैसला सुनाते।

सन् १९२९ ई० मे मैंने ऑनर्स के साथ बी० ए० पास किया। किन्तु घर की आर्थिक दशा ऐसी न थी कि एम्० ए० पढ़ सकूँ। इच्छा रहते हुए भी आगे का मार्ग मेरे लिये अवरुद्ध दीख पड़ता था। इसी उधेड़बुन मे पड़ा था कि एक दिन अकस्मात् श्रीरामलोचनशरणजी की चिट्ठी मेरे नाम आ पहुँची। उसका आशय था—"छुट्टी मे घर पर व्यर्थ समय क्यो बिता रहे हो ? कुछ दिनो के लिये यहाँ चले आओ।" मैं 'पुस्तक-भंडार' जा पहुँचा। देखा कि अनेक साहित्यिक अपने काम मे लगे हुए है। वहाँ कुर्सी-टेबुलवाली सभ्यता नही थी। फर्श पर शतरंजी बिछी हुई थी और लेखक अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार लिख रहे थे। मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि श्रीशरणजी भी उन्हीं लोगो के बीच मे बैठे तन्मय होकर 'बालक' के लिये लेख लिख रहे है। वे एक मामूली धोती-मात्र पहने हुए थे। बदन पर और कोई कपड़ा न था। अन्य लेखको मे और उनमे कोई फर्क नहीं दीख पड़ता था। केवल एक मसनद उनके नजदीक रक्खी हुई थी। इतनी ही विशेषता थी। अपरिचित व्यक्ति को यह भान नहीं हो सकता था कि साधारण कर्मचारी की तरह उन्ही के साथ काम करनेवाले ये ही सज्जन इतनी बड़ी संस्था के मालिक है। मुझे देखकर उन्होने सहज भाव से, बिना किसी भूमिका के एक छपा हुआ कागज मेरे हाथ मे रख दिया और कहा—"देखो तो, इसमे क्या-क्या गलतियाँ है।" मै समझ गया, मेरी योग्यता की परीक्षा हो रही है। मैंने परीक्षार्थी की तरह धड़कते हुए हृदय से कुछ गलतियाँ निकालकर दिखलाई। वे सन्तुष्ट-से होते हुए दीख पड़े। बोले—"हाँ, ठीक है। लेकिन एक और भूल है जो तुमने नहीं पकड़ी। 'स्वर्गीय राजा साहब की मृत्यु से जो देश की क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना कठिन है।' इस वाक्य मे 'स्वर्गीय' शब्द का व्यवहार आक्षेप्य है। मृत्यु जीवित व्यक्ति की होती है, स्वर्गीय की नही। इसलिये केवल 'राजा साहब की मृत्यु' लिखना ही उचित था।"

यह मेरा पहला सबक था। शरणजी विद्वत्समाज मे 'मास्टर साहब' के नाम से सम्बोधित होते है। न जाने वे कितनो के साहित्यिक गुरु होगे। आज से मै भी उनकी शिष्य-मंडली मे दीक्षित हो गया।

× × ×

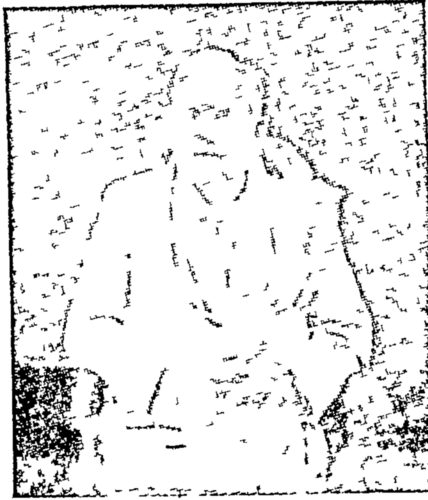
मास्टर साहब का 'स्कूल' साधारण स्कूल नही है। वह एक ऐसा आश्रम



श्रीअविनाशचन्द्र कुडु
(अँगरेजी-विभाग)



पं० श्रीकपिलेश्वर मिश्र, वैयाकरणशिरोमणि
(संस्कृत-विभाग)



श्रीहरिवंश सहाय, एल० टी०
इन्हीं की पुस्तक से अँगरेजी-विभाग का कार्य प्रारम्भ हुआ।



पं० श्रीरामेश्वर झा (साहित्य [illegible])



[illegible] झा [illegible] [illegible])



साहर-बलवा (दरभंगा) के निवासी
बाबू रामलखनप्रसाद
(पुस्तक-भडार के आय-व्यय-परीक्षक)



'पुस्तक-भडार' के अध्यक्ष के ज्येष्ठ सुपुत्र
श्रीवैदेहीशरणजी



श्रीरामलोचनशरणजी के अनन्य मित्र
श्रीसूबालाल कर्ण



श्रीहनुमानप्रसाद
(भूतपूर्व मैनेजर, विद्यापति प्रेस)

है, जहाँ आदर्शवाद और व्यावहारिकता का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। मास्टर साहब उस कोरी शिक्षा को अधिक महत्त्व नहीं देते जो स्कूलों मे दी जाती है। उनकी दृष्टि में चारित्रिक निर्माण ही शिक्षा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। उनके यहाँ केवल ठोस चीज को महत्त्व दिया जाता है। आडम्बर के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं। उनके यहाँ साहित्यिकता की जो कसौटी है, वह किसी भी साहित्यिक संस्था के लिये गौरव की वस्तु हो सकती है। उस कसौटी पर खरा उतरना बड़े-बड़े उपाधिधारियों के लिये भी सहल नहीं है।

मास्टर साहब बिहार मे आधुनिक गद्यशैली के प्रवर्त्तक है। और, बाल-साहित्य के तो वे स्रष्टा ही कहे जा सकते है। उनकी शैली मे सरलता, सुन्दरता और रोचकता का अपूर्व सम्मिश्रण पाया जाता है। गहन-से-गहन विषय क्यो न हो, उनके हाथ मे पड़ते ही वह हस्तामलकवत् हो जाता है। गणित, इतिहास और विज्ञान-जैसे दुरूह विषय को सरल, सरस और सुगम कर बच्चो के लायक बना देना उन्हीं का काम है। कारण, वे मनोविज्ञान के पूरे पंडित है। बालको का कौतूहल जगाकर किसी विषय मे उनकी रुचि कैसे उत्पन्न की जा सकती है, इस बात को वे खूब अच्छी तरह जानते है। इसीलिये उनकी लिखी हुई किसी भी विषय की पुस्तक मे लड़को को कहानी पढ़ने का मजा आता है। वे कथनोपकथनात्मक शैली (Conversational style) के मर्मज्ञ है। सरल वार्त्तालाप के द्वारा वे किसी भी जटिल विषय को बोधगम्य बना सकते है। यही उनकी लेखन-सफलता का मुख्य रहस्य है।

व्याकरण और गणित मे भी सर्व-प्रथम 'अवरोह विधि' (Inductive-method) का व्यवहार उन्हीं ने किया है। व्याकरण के कठिन नियमो का अभ्यास करना कोमल-मति बालको के लिये लोहे का चना चबाना है। लेकिन वे लड़को की नब्ज टटोलना जानते हैं। वे नियम से प्रारम्भ न कर दृष्टान्तो से ही श्रीगणेश करते है। तारीफ यह है कि अन्त मे विद्यार्थी के मुँह से ही कहवा लेते हैं। इस फन मे उनको कमाल हासिल है। दूसरे लोग जो विषय घोर माथापच्ची करने पर भी सरलतापूर्वक लिखकर बालको को स्पष्टत नहीं समझा सकते, उसे मास्टर साहब उन्हे हँसाते-खिलाते चुटकियो मे ऐसा समझा देते है कि वह अनायास ही हृदयङ्गम हो जाता है। विश्लेषण (Analysis) और स्पष्टीकरण (Explanation) की कला मे वे प्रवीण है। उनकी यह कला इतनी सफल और लोकप्रिय हुई कि बहुतेरे उसका अनुकरण करने लग गये। किन्तु उनकी जो अनुभूति और अन्तःप्रेरणा है वह सर्व-साधारण की पहुँच की वस्तु नहीं। उनकी रचना मे उन्हीं की एक खास छाप रहती है, उसकी नकल करना

टेढ़ी खीर है। उन्होने लेखन-कला के क्षेत्र मे जिस नवीन पद्धति का आविष्कार किया है वह सर्वथा मौलिक है और उस मार्ग मे आज भी वे अग्रणी हैं।

× × ×

मास्टर साहब की रचना-प्रणाली का अध्ययन करने पर मुझे एक मौलिक विशेषता दीख पड़ी। उनका ध्यान सर्वदा सभी विषयो को अभिनव दृष्टि से उपस्थित करने पर रहता है। कौन बात किस तरह पेश की जाय—उसका किस ढँग से 'उपन्यास' (Introduction) किया जाय कि पाठको का ध्यान बरबस आकृष्ट हो जाय, इस कला मे वे पारङ्गत दीख पड़ते हैं।

मैंने सर्वप्रथम मास्टर साहब से इसी बात की शिक्षा ग्रहण की। इस दिशा मे मेरी प्रवृत्ति और प्रतिभा देखकर वे प्रसन्न हो एक दिन मुझसे कहने लगे—"देखो, संस्कृत को लोगो ने ऐसा जटिल बना रक्खा है कि रटते-रटते विद्यार्थी का कण्ठ सूख जाता है, फिर भी विपय आसानी से हृदय मे नही उतरता। जहाँ तक हो सके तुम संस्कृत का मार्ग सरल बनाने की चेष्टा करो।"

उनका यह आदेश पाकर मै उत्साह के साथ काम मे जुट गया और ईश्वर की कृपा से मुझे एक सुगम मार्ग (short cut) भी मिल गया। मैने उन्ही की प्रणाली का अनुसरण करते हुए 'तीस दिन मे संस्कृत' (Sanskrit in Thirty Days) नामक पुस्तक की रचना कर डाली और प्रथम गुरुदक्षिणा के रूप मे उन्हे समर्पित किया। मेरी सूझ पर वे बहुत प्रसन्न हुए। उनके प्रशंसा-वाक्यों से मेरा उत्साह इतना बढ़ा कि मैं नई-नई पुस्तको के द्वारा व्याकरण, रचना, अनुवाद आदि के मार्ग सुगम बनाने का प्रयत्न करने लगा। मास्टर साहब ने मेरी पुस्तको को प्रकाशित कर उन्हे लोकप्रिय बनाने का सुअवसर दिया।

× × ×

एम. ए. पढ़ने के लिये मेरे पास पर्याप्त साधन नही था। किन्तु अब मास्टर साहब की छत्रच्छाया मे आ जाने से मेरी सारी आर्थिक समस्याएँ हल हो गईं। 'पुस्तक-भंडार' की पटना-शाखा मे रहकर पढ़ने लगा। मास्टर साहब ने जिस प्रेम के साथ मुझे वहाँ रक्खा और पढाया उसे मै आजीवन नही भूल सकता। १९३२ मे मैने दर्शन-शास्त्र मे एम० ए० की परीक्षा दी और पटना-विश्वविद्यालय मे प्रथम हुआ। १९३३ मे मै बी० एन कालेज (पटना) मे अध्यापक नियुक्त हुआ। तब से आज तक मास्टर साहब के साथ मेरा अविच्छिन्न सम्बन्ध बना आ रहा है और वे पूर्ववत् मुझपर कृपादृष्टि रखते हैं। मै भी उनका एक सुयोग्य शिष्य कहलाने मे गर्व का अनुभव करता हूँ। उन्ही की प्रेरणा से गत कई वर्षों से

मैं भारतीय दर्शन विषयक एक वृहत् ग्रन्थ का प्रणयन कर रहा हूँ, जो 'पुस्तक-भंडार' द्वारा क्रमशः प्रकाशित हो रहा है।

× × ×

मास्टर साहब से मैने बहुत-कुछ पाया है। उनके वैयक्तिक जीवन ने तो मुझपर गहरा प्रभाव डाला है। लक्षाधिपति होते हुए भी उनका रहन-सहन संतों जैसा है। सात्त्विक भोजन, सादा वस्त्र। कई बार तो मैने उन्हे भिगोये चने खाकर जल-पान करते देखा है। विलासिता उन्हे छू नही गई है। आजतक मैने उन्हे न पान खाते देखा है, न सिनेमा जाते। उनका सम्पूर्ण परिवार उसी सात्त्विकता के रंग मे रँगा हुआ है। आडम्बर से उन्हे घृणा है। भड़कीला सूट पहनकर बाहर निकलना या लम्बी-चौड़ी बाते हाँकना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। आलस्य और अकर्मण्यता के तो वे कट्टर शत्रु है। 'काम के समय काम और विश्राम के समय विश्राम'—यही उनका अटल सिद्धान्त है। कार्य के समय को व्यर्थ ही गप्पो मे नष्ट करना उनकी नीति के सर्वथा विरुद्ध है।

उनका एक विलक्षण गुण है 'कर्मयोग'। उनके जैसा कर्मठ पुरुष विरला ही मिलेगा। "कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्" वाली धुन के वे प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनका संकल्प इतना दृढ़ है—इच्छा-शक्ति इतनी बलवती है कि जिस काम को हाथ मे लेगे उसे विना पूरा किये नही छोड़ेगे। चित्त की एकाग्रता ऐसी है कि लिखने बैठे तो इतने तन्मय हो गये कि पृष्ठ पर पृष्ठ रँगते चले जा रहे हैं—१० बज गये, ११ बज गये, १२ का समय आया, फिर भी कलम नहीं रुकती। वह बन्द होती है तब, जब उनकी विचारधारा का विराम होता है, और जब उठते है, एक अभिनव सुन्दर कृति को पूर्ण करके। उनकी कितनी ही रचनाएँ ऐसी है जो एक दिन मे ही तैयार हुई है। किन्तु, कर्म मे इतना लीन रहते हुए भी उनको फल की विशेष चिन्ता नही रहती। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इस अनासक्ति योग के वे अनुयायी है। उनका निश्चित सिद्धान्त है—"अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिये, फल ईश्वर के हाथ है।" ईश्वर पर उनका अखंड विश्वास है—भगवान् रामचन्द्र पर अचल आस्था है। इसका फल भी उन्हे मिला है। उनपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनो की समान रूप से कृपा है। २५ वर्ष पहले उनके 'भंडार'-परिवार मे दो-चार ही व्यक्ति थे। आज 'भंडार'-परिवार इतना विस्तृत—इतना सुविशाल—हो गया है कि उसमे सैकड़ो प्राणी प्रतिपालित होते है। जहाँ झोपड़ी थी, वहाँ आज भव्य भवन खड़े है। इतनी बड़ी समृद्धि, इतना बड़ा अभ्युदय, क्या कम पुण्य का प्रताप है ? किन्तु आज भी वे अपने को श्रमजीवी समझते हैं। उनकी संस्था कारखाना नही, एक वृहत् आश्रम है जहाँ प्रेम का

साम्राज्य है। 'पुस्तक-भंडार' हिन्दी-साहित्य-संसार की शोभा और गौरव है। साहित्य की उन्होने जो अमूल्य सेवाऍ की है, उनके लिये सारा शिक्षित-संसार उनका चिरऋणी रहेगा। वे साहित्यिक कार्य-सम्पादन मे विहार के द्विवेदी, बाल-साहित्य के निर्माण मे बिहार के गिजू भाई और पुस्तक-प्रकाशन मे बिहार के चिन्तामणि घोष है। उन्होने स्वयं साहित्यसेवा करके तथा दूसरो को साहित्यसेवा का सुअवसर देकर बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। प्रत्येक बिहारी को उनपर गर्व है और होना चाहिये। आज बिहार उनकी स्वर्ण-जयन्ती मना रहा है। ईश्वर उनकी 'हीरक-जयन्ती' के भी सुदिन दिखावे।



पुस्तक-भंडार के दिवंगत शुभचिंतक

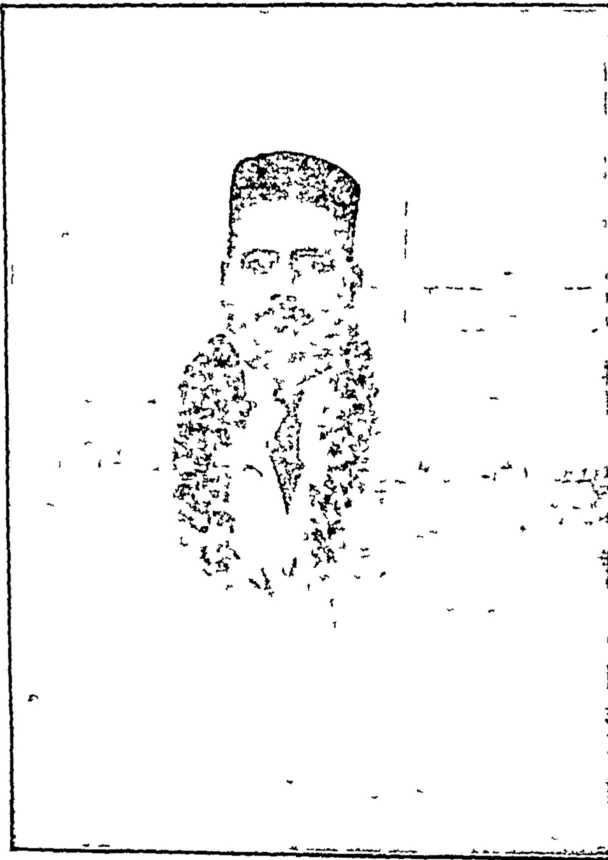
(पृ० ८१२)



स्वर्गीय प० योगानन्द कुमार



स्वर्गीय पं० ईश्वरीदत्त दौर्गादत्ति शास्त्री



स्वर्गीय रायबहादुर पं० जयानन्द कुमर

पुस्तक-भंडार के कुछ शुभचिंतक उत्कलीय महानुभाव

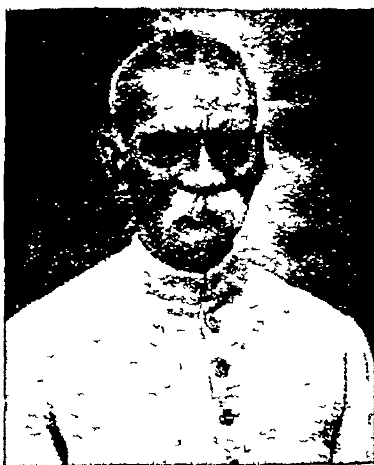
(पृ० ८१३)



रायबहादुर गोपालचन्द्र प्रहराज
कटक, उत्कल



पं० गोदावरी मिश्र
फाइनेंस-मिनिस्टर, उत्कल



रायबहादुर भिखारीचरण पट्टनायक
कटक, उत्कल,



प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त चौधरी
कटक, उत्कल



मास्टर साहब की सहृदयता

श्रीअच्युतानंद दत्त, सहकारी 'बालक'-सम्पादक

सन् १९१६ ई० का जाड़ा था। मेरी उम्र तेरह वर्ष की थी। मैंने तबतक दरभंगा देखा न था। इस बार अपने मास्टर के साथ दरभंगा आया। लहेरिया-सराय के बाकरगंज महल्ले मे किताबो की एक छोटी-सी दूकान थी और साइनबोर्ड टँगा था—'पुस्तक-भंडार'।' मैने सोचा, इस नई दूकान से कोई पुस्तक ले लूँ। याद आई; चलते समय मेरे पूज्यचरण बड़े चाचा ने, जो रामानंदीय सम्प्रदाय के वैष्णव और रामायण के अनन्य प्रेमी थे, कहा था—"अच्चो (स्नेह के कारण वे मुझे इसी नाम से पुकारते थे), रामायण पर कोई पोथी मिले तो मेरे लिये वही संदेश लाना। मैने 'पुस्तक-भंडार' के दूकानदार से मनोऽनुकूल पुस्तक माँगी और उन्होने दिया 'रामायण का अध्ययन।' मै उसे खरीद कर घर ले गया और अपने चाचा को अक्षर-अक्षर पढ़कर सुना दिया। उन्होने बड़ा आनन्द प्रकट किया था।

मुझे अपने छोटे भाई को पढ़ाने के लिये कुछ प्रारंभिक पुस्तको की आवश्यकता हुई। घर मे हमी दोनो भाई पढ़ रहे थे, अतः पुस्तके खरीदने का भार मेरे ही जिम्मे रहा। तबतक बाजार मे लोअर क्लास के लिये 'परिचय'-नामधारी इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य और विज्ञान की छोटी-छोटी पुस्तके आ चुकी थीं। मैने उन्हे खरीदा और पहले खुद पढ़ लिया, तब भाई को दिया। पुस्तको के लेखक थे बाबू रामलोचनशरण विहारी। मैंने देखा, जो बात अपर-मिडूल मे भी पढ़ने पर मै नही सीख सका था, वह मैने, बिना किसी के बतलाये, इन्ही पुस्तको से, खुद पढ़कर सीख ली। सोचा, नार्थब्रूक स्कूल दरभंगा का यह हिंदी-शिक्षक कितने अच्छे ढँग से पढ़ाता होगा—यदि मैं भी इसीका छात्र होता।

मै किशोर से युवक हुआ और छात्र से गृहस्थ। घरू झंझटो ने मेरी हिम्मत तोड़ दी और स्कूली शिक्षा की शृंखला टूट गई। मै घर पर ही कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी-मैथिली व्याख्याता श्रीगंगापति सिह के आदेश से कुछ बँगला-पुस्तको का अनुवाद करता आ रहा था। उनके साथ सन् १९२६ मे कलकत्ता गया। वहाँ कुछ दिनो तक 'हिन्दी-लोकोक्ति कोष' के निर्माता बाबू विश्वंभरनाथ खत्री के साथ कुछ साहित्यिक काम करता रहा। वही एक साहित्यिक मित्र से पता चला कि 'पुस्तक-भंडार' से 'बालक' नामक एक बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र निकल रहा है और बेनीपुरीजी उसका पहला अंक यही से छपाकर ले गये है तथा उसके सचालक हैं श्रीरामलोचनशरण-बिहारी। छूटते ही मैने पूछा "वही रामलोचनशरण तो नही जो कभी नार्थब्रूक-स्कूल के हिन्दी-शिक्षक थे?" उन्होने कहा—"हॉ, जनाब, वही।"

× × × ×

इधर-उधर की हवा खाकर मै सरडीहा (मुगेर) के मिडल-इगलिश स्कूल मे हिन्दी का अध्यापक हुआ। वहाँ 'बालक' नियमित रूप से आता और मैं उसे बड़े चाव से पढ़ा करता। न मालूम क्यो, शुरू से ही 'बालक' मुझे अपना-सा मालूम हुआ। सोचा, 'बालक'-परिवार से सम्बन्ध स्थापित करूँ और उसमे कुछ लेख-कविताएँ भेजूँ।

× × × ×

सन् १९२९ का वर्षा-काल था। मै सयोगवश लहेरियासराय चला आया। दरभंगा-डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन बाबू हरिनन्दन दासजी वकील से भेट की। मिथिला-भाषा मे मैंने पद्यात्मक 'महाभारत' लिखा था और 'रघुवंश' का पद्यात्मक अनुवाद भी पूरा कर चुका था। हिन्दी-भाषा मे एक 'वामनोदय' नामक महा काव्य के कुछ सर्ग भी लिख डाले थे, जो १९३४ के भीषण भूकम्प मे सदा के लिये भूगर्भ मे समा गया। वकील साहब बडे साहित्यानुरागी थे। उन्होने मेरी रचनाओ को सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उनके प्रकाशन के प्रबन्ध का आश्वासन भी दिया। उन्होने यह भी कहा कि आपके दरभंगा मे रहने का भी मैं प्रबन्ध कर देता हूँ जिससे हमलोग एक जगह रहने का आनन्द उठावे। मै भी जानना चाहता था कि 'महाभारत' के प्रकाशन मे क्या खर्च पडेगा। इसके लिये अच्छे प्रेस से बात-चीत की जरूरत थी। मै कचहरी-रोड से जा रहा था कि 'पुस्तक-भडार' के साइनबोर्ड पर नजर पड़ी। मैने लोगो से पूछा—"क्या पुस्तक-भडार बाकरगंज से यहाँ चला आया?" लोगो ने कहा—"हाँ, 'भडार' अपने खास मकान मे आ गया है।" वहीं एक ओर विद्यापति प्रेस का भी साइनबोर्ड टँगा था। मैंने सोचा, यह

प्रेस अवश्य ही मिथिला-भाषा के ग्रन्थ-प्रकाशन का सुप्रबंध करता होगा। यह सोचकर मै 'भंडार' मे गया और दूकान पर पूछा कि प्रेस के व्यवस्थापक कहाँ है ? उत्तर मिला कि बगल के मकान मे जाकर मिलिये। मैने देखा, मकान खपरैल है। उसमे एक चबूतरा है जिसपर दरी बिछी हुई है। वहाँ एक प्रौढ़ सज्जन खुली देह बैठे कुछ लिख रहे है। बदन उनका दोहरा और रंग गोरा है। उनके पास दो छोटी-छोटी लड़कियाँ खेल रही है, उन्हे तंग भी कर रही है, पर वे अपने काम मे लगे ही हैं, बच्चियो को डॉटते नही—बीच-बीच मे प्यार भी करते जाते है; परन्तु फिर भी उनके कामो की लडी नही टूटती। मैने कहा, मनस्विता हो तो ऐसी ! भर्तृहरि का पद याद आया—"विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रति हन्यमानाः प्रारब्धमुत्तम जनाः न परित्यजंति," जो शायद ऐसे ही मनस्वियो के लिये लिखा गया था।

मैने जाते ही पूछा—"इस प्रेस के प्रोप्राइटर कौन है ? मुझे उनसे कुछ काम है ?" उक्त सज्जन ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, फिर मिथिला-भाषा मे कहा—"की ? कोन काज हवे ?" मै लजा गया कि मुझे भी क्या मैथिली-भक्त होने का गौरव है ? खैर, बात-चीत का सिलसिला चला और वह भी मैथिली भाषा में ही। पता चला कि ये ही महाशय बाबू रामलोचनशरण बिहारी है, जो मेरी स्मृति मे आज बारह-तेरह वर्षो से विद्यमान है। और यही नही, ये ही पुस्तक-भंडार तथा विद्यापति प्रेस के संस्थापक, संचालक, 'बालक' के वर्त्तमान सम्पादक और बिहार के पेटेन्ट 'मास्टर साहब' है। साथ ही, बाल-साहित्य के निर्माता, परिष्कर्त्ता और नवयुग-प्रवर्त्तक भी।

मैने इन्हे हिन्दी और मैथिली मे अपनी पद्यात्मक रचनाएँ सुनाईं। इन्होने अब हिन्दी मे ही कहा—"आप हिन्दी मे गद्य लिख सकते है ? पद्य तो आप अच्छा बना लेते है।" मैने कहा—"लिखने का अभ्यास तो नहीं है, पर लिख सकता हूँ।"

"आपको यहाँ काम मिले तो कर सकते है ?"

"कर क्यो नही सकता हूँ।"

"आप अध्यापन-कार्य से साहित्य-क्षेत्र मे आ जाइये। आपका भविष्य बन जायगा।"

मैने इनका आशीर्वाद सिर पर लिया। दूसरे ही क्षण मै इनका 'आप' से 'तुम' बन गया। इनके परिवार का एक अंग-सा हो गया। मुझे ये तब से अपना शिष्य और लघु बन्धु समझते हैं।

× × × ×

मास्टर साहब सचमुच मेरे मास्टर बन गये। मेरी लेखनी को दुरुस्त

किया। मेरी भाषा की ऊबड़-खाबड़ शिला इनकी लेखनी-नारायणी के प्रवाह मे रगड़ खा-खाकर शालग्राम बन गई। यह अहंभाव का दंभ नही—कठोर सत्य है।

बिहार मे हिन्दी-गद्य-साहित्य का, उन्नीसवीं शताब्दी का, बाल्यकाल बीत चुका था। बीसवीं शताब्दी ने उसमे यौवनोचित स्फूर्त्ति भरना शुरू किया। हिन्दी-गद्य-सरिता की धारा पहाड़ के ऊबड़-खाबड़ रास्तो को पार कर समतल मैदान मे आ चुकी थी। बीसवी शताब्दी के प्रारंभ के दस वर्षों तक यह धारा कुछ ऐसे असमंजस मे रही कि वह कौन-सा मार्ग पकड़कर आगे बढ़े। इसके बाद के पाँच वर्षों मे यह धारा दो मुख्य भागो बॅटी-सी दिखाई देने लगी। इसी समय मे मास्टर साहब ने लिखना शुरू किया। दस-पंद्रह साल तक लिखा, खूब लिखा और इतनी सुंदरता से लिखा कि उक्त दोनो धाराएँ खूब प्रशस्त और अलग-अलग दिखाई पड़ने लगी। पहली धारा की गति तो इतनी तीव्र थी कि उसमे अपनी नैया पर चढ़कर राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह और बाबू शिवपूजन सहाय जैसे कुशल कर्णधार ही साहित्य-रत्नाकर के दर्शन कर सकते थे और वह भी बडे धैर्य के साथ। किन्तु मास्टर साहब की लेखनी ने जो दूसरी धारा बहाई वह सरल, बोध-गम्य और बालको द्वारा भी तैरी जाने योग्य बन गई। इस धारा के द्वारा कई नवसिखुए तैराक भी साहित्य-सागर के दर्शन कर सके। कहना न होगा, मास्टर साहब की अमर लेखनी ने बिहार मे सैकड़ो लेखक तैयार किये। ऐसे मास्टर साहब की लेखनी की छाप मेरी लेखनी पर भी पडी, जो स्वाभाविक ही था।

मास्टर साहब की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कोई भी विषय हो, उसके मर्म पर पहुँचते इन्हें देर नही लगती—बड़ी बारीकी से खूबी निकाल लेते हैं और उसके गूढ़-से-गूढ़ दोषो पर भी नजर डाले बिना नही रहते। मास्टर साहब तुकबंदियाँ भले ही करते हो, कविता-रचना नही करते, पर किसी भी कविता को उनके सामने रख दीजिये उसके गुण-दोष तुरत ही बतला देगे।

× × ×

भूलो का होना तो मानव-स्वभाव ही है। मुझसे एक बार नही, अनेक बार भूलें हुई हैं, जिनके लिये उन्होने मुझे समझाया है, चेतावनी दी है और डाँटा भी है। डाँटने पर मेरे ध्यान मे आता था कि मास्टर साहब मुझसे बिगड़े हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण ये बुलाकर कहते—"मेरा बिगड़ना दिल दुखाने के लिये नही, वरन् तुम्हारा भविष्य सुधारने के खयाल से है। तुमको अप्रिय लगे तो मैं बिगड़ना छोड़ दूँ।"

× × × ×

दरभंगा-गोशाला-सोसाइटी की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर गो-साहित्य-

सम्मेलन हो रहा था। हमलोग उसकी तैयारी में जुटे थे। दम मारने की फुर्सत नहीं थी। इसी बीच में, न मालूम कैसे, मास्टर साहब को पता लगा कि मेरी जमीन मालगुजारी न देने के कारण नीलाम हो रही है। इन्होंने मुझे बुलाकर पूछा —"तुमने पहले से इसका प्रबंध क्यों नहीं किया? तुमको मुझसे कहना न चाहिये। जितनी रकम लगती हो, 'भंडार' से लेकर दे दो। हिसाब पीछे होता रहेगा।" मैंने रुपये लेकर मालगुजारी अदा कर दी। फिर कुछ महाजनी झमेले निबटाने के लिये भी रुपये लिये। अपने मन से कुछ रुपये अदाकर सका और कुछ बाकी पड़ा चला आता था। एक दिन मास्टर साहब ने यह हाल जानकर कहा— "तुम 'भंडार' से पारसाल से ही, १०) रु० प्रतिमास के हिसाब से अपनी रकम लेकर कर्ज चुका दो। कर्ज रखना ठीक नहीं है।" भला, ऐसा कौन होगा जो बिना कहे-सुने वेतन-वृद्धि कर दे?

× × × ×

एक बार मैं बीमार पड़ा। पहले तो सामान्य ही ज्वर था। एक जरूरी किताब का प्रूफ देखना था। मैंने अपना हाल किसी से नहीं कहा और ज्यों-त्यों कर काम पूरा कर दिया, परन्तु ज्वर ने भीषण रूप धारण कर लिया। मास्टर साहब—जैसा उनका स्वभाव है, किसी सामान्य कर्मचारी के भी बीमार पड़ने पर उसे रोज देखते हैं और उसके लिये प्रबंध करने की ताकीद करते हैं—मुझे देखने आये, और देखकर कहा—"जरूर तुम्हारा ज्वर एकाएक नहीं बढ़ा है—सामान्य ज्वर में तुमने खबरगीरी नहीं की है।" मैं क्या कहता, दोष तो अपना ही था। मैं यदि पहले ही कह देता तो ये मुझे काम ही नहीं करने देते। मास्टर साहब को बाहर जाना जरूरी था—चले गये, परन्तु मेरी देख-रेख की ताकीद कर गये। भंडार के प्रमुख कर्मचारियों ने मुस्तैदी से मेरा डाक्टरी इलाज कराया और मैं चंगा हो गया। चंगा होने पर भी मास्टर साहब ने मुझे मिहनत के काम से बहुत दिनों तक रोक रक्खा। इस वात्सल्य की याद मुझे आजन्म रहेगी।

× × × ×

शायद १९३४ या ३५ की बात है। मेरा परिवार एक जमींदारी मामले में फँस गया था। अदालत का खर्च जुटाना आसान न था—नाकोदम था। नवम्बर का महीना आया। पास में पैसे न थे। सोचा था, इस महीने के निकल जाने पर कुछ सहूलित होगी तो जाड़े के कपड़े खरीदूँगा। मामले के खर्च में 'भंडार' से भी जहाँ तक ले सकता था, ले लिया था, अब आगे गुंजायश न थी। मास्टर साहब ने मेरी फटेहाली देखी और बिना पूछे सब समझ लिया। ये उसी दम मुझे 'खादी-भंडार' में ले गये और जाड़े के सब कपड़े खरीद दिये। कहा—"यदि तुम स्वयं

कष्ट भोगोगे तो काम क्या कर सकोगे ? भंडार को तो तुम्हारे निजी कष्ट के लिये भी फिक्र करनी होगी !"

× × × ×

मास्टर साहब गुरुजन की तरह किसी कर्मचारी की बड़ाई मुँह पर नही करते, पर जो मन लगाकर काम करते है उनकी बड़ाई ये परोक्ष मे करते नही अघाते और उनकी प्रतिष्ठा का खयाल बराबर रखते है। ऐसा मैंने कई बार अपनी आँखो देखा है।

× × × ×

१९३४ के प्रलयंकर भूकंप से 'भंडार' पर भी, उसके फूलने-फलने के समय मे ही, अनभ्र वज्रपात हुआ। 'भंडार का विशाल वैभव मिट्टी मे मिला जा रहा था और मास्टर साहब का उस समय का वाक्य हमलोगो के लिये ध्रुवतारा के समान पथ-प्रदर्शक बना। वह वाक्य था—"घबराओ नही, जिसने 'भंडार' को बिगाड़ा है, वही फिर बनावेगा।" हुआ भी सचमुच ऐसा ही। ईश्वर ने 'भंडार' को फिर नये सिरे से, पहले से भी अधिक, चमका दिया।

× × × ×

इस कृपण कलियुग मे भी—जहाँ 'दाता जगति दुर्लभा' चरितार्थ है—मास्टर साहब की दानशीलता देखकर अवाक् हो जाना पड़ता है। इनका दान नाम के लिये कम होता है; गुप्त दान को ये ज्यादा पसंद करते हैं। प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले महापुरुषो का यही लक्षण है। इसीलिये इनकी गुणावली से अखबारों के कॉलम रँगे हुए नही दिखाई देते।

एक बार, प्राय. १९३९ मे मास्टर साहब एक साहित्यिक समारोह के सभापति होकर गये थे। मै भी साथ था। प्राय प्रत्येक साहित्यिक समारोह मे मास्टर साहब के साथ मै भी रहा करता। रुपये-पैसे का खर्च मेरे ही जिम्मे था। सभा समाप्त हुई। हमलोगो को महनार-रोड (मुजफ्फरपुर) स्टेशन पहुँचाने के लिये मोटर तैयार थी। मास्टर साहब ने निभृत मे मुझसे पूछा—"तुम्हारे पास कितना बचा है ?"

"तीस रुपये और कुछ पैसे।"

"अच्छा तो तीस रुपये यहाँ के स्कूल के लड़को को मिठाई खाने के लिये दे दो।"

"मास्टर साहब, लेकिन . . ।"

"क्या सोचते हो ? कुछ पैसो से ही काम चल जायगा। रिटर्न टिकट तो हमारे पास है ही। आज तो दस बजे रात को लहेरियासराय पहुँच ही जायँगे।"

मैंने रुपये दे दिये। मोटर पर हमलोग स्टेशन आये, लेकिन गाडी छूट

चुकी थी। कहाँ तो दस बजे रात ही को घर पहुँचने की बात थी और कहाँ अब दूसरे दिन दस बजे दिन मे पहुँचने की बारी आई। पाँच-छः घंटों के लिये वही रुकना था। मास्टर साहब ने कहा—"तुम बाजार से भर-पेट खा आओ। मै तबतक संध्योपासन से निपट लेता हूँ।" मैने कहा—"और आपके····।"

"मै कुछ नही खाऊँगा। भूख नही है। देखना, पैसे बचाने के खयाल से कहीं अधपेट न खा लेना।"

मै चला गया। खाया और भरपेट खाया। मै यहाँ एक बात साफ कह दूँ—कुछ लोग जीने के लिये खाते है, मै केवल खाने के लिये जीता हूँ। इसलिये जबतक स्वादु भोजन करके पेट नही भर लेता तबतक मेरी तृप्ति नही होती। इससे मेरे पास पैसे कम ही बच रहे। खा-पीकर मेरे लौटने पर मास्टर साहब ने कहा—"तुम खा आये ?"

"हाँ"

"अब कितने पैसे हैं ?

"तीन ही"

"एक पैसे की मूढ़ी (उबले चावल का भूजा) मेरे लिये ले आओ। मैंने इधर मूढ़ी कभी नही खाई है। आज वही खाने का मन है।"

मै ग्लानि से गड़ गया। मेरे खिलाने के लिये ही मास्टर साहब ने यह त्याग किया! करता ही क्या ? यदि मास्टर साहब चाहते तो वहाँ भी रुपयो की ढेरी लग जा सकती थी। परन्तु इन्होने कुछ नही किया। एक पैसे की मूढ़ी खाकर रात बिताई, अपने हाथो गठरी ढोई, परन्तु अपनी दान-शीलता मे फर्क नही आने दिया। मन मे आता था—यह व्यक्ति कही 'मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्' वाले महाराज रघु वा जगदीश्वर को भी याचक बनानेवाले दानवीर वलि की आत्मा का 'पाकेट एडीशन' तो नही है ?

मास्टर साहब विपत्ति मे अतुलित धैर्य का परिचय देते है, सम्पत्ति मे क्षमा प्रदर्शित करते है, अनुगतो के साथ सहानुभूति रखते हैं, साधु-संतो का सम्मान करते है, पढ़ने-लिखने मे गहरा व्यसन है, अपने-आप से भी बढ़कर 'भंडार' की प्रतिष्ठा का खयाल रखते हैं, कार्य-सिद्धि का रहस्य जानते है, अनवरत परिश्रम करते है, उचित कहने मे कही भी नही हिचकते। यह श्लोक शायद इन्ही के अनुरूप है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥



'पुस्तक-भंडार' और भूकम्प

प्रोफेसर श्रीशिवपूजनसहाय, राजेन्द्र-कालेज, छपरा

जगदाधार परमात्मा की सत्ता को अनायास स्थापित कर देनेवाले भूकम्प ने सन १९३४ ई० की १५ वीं जनवरी को भारत के इतिहास मे अमर कर दिया। उस दिन मै लहेरियासराय मे था, जो दरभगा नगर का एक हिस्सा है। लगभग सवा दो बजे दिन मे अचानक भूकम्प आया। मै 'बालक' के सहकारी सम्पादक श्रीअच्युतानन्द दत्त के साथ फूस की एक झोपड़ी मे बैठकर 'टाइम्स आफ इंडिया' का वार्षिक विशेषाक देख रहा था। उक्त रमणीय झोपड़ी 'पुस्तक-भडार' के विस्तृत अहाते के एक कोने मे थी। जब एकाएक मेज हिलने लगी, मै अपनी चौकी से झट नीचे कूद पड़ा। दत्तजी भी अपनी कुर्सी छोडकर मेरे साथ ही बाहर मैदान मे भगे।

इतने मे भूकम्प का वेग बहुत बढ़ गया। 'पुस्तक-भंडार' के अहाते मे चारो ओर भगदड़ मच गई। 'भंडार' की विशाल इमारत से सब कर्मचारी हड़बड़ाकर निकल आये। प्रेस के मकान से, दफ्तरीखाने से, टिड्डी-दल की तरह आदमी निकल भागे। किन्तु कोई अहाते के फाटक से बाहर न निकला। सब-के-सब अहाते के सहन मे त्रस्त और चकित खड़े होकर 'भंडार' के भव्य भवन का थिरकना देखने लगे।

जैसे कोई बालक अपनी हथेली पर गेद को उछालता है वैसे ही वह भडकीली इमारत पृथ्वी पर उछलने लगी। दो-चार ईंटो का खिसककर गिरना तो स्पष्ट देख पड़ा, पर उसके बाद सारी इमारत धूल के अन्धकार मे छिपने लगी। देखते-ही-देखते, निमिप-मात्र मे, दीवारे अरराकर धमाधम गिर पडीं। धूल के अन्धकार से आगे का सहन भर गया। इसी बीच मे प्रेस का दोमंजिला मकान

भी बिखरी हुई इटो का ढेर बन गया। अहाते की चहारदीवारी भी जड़ से कटे रूख की तरह जमीन पर आ रही।

आदमी जितने थे, सब उसी सहन मे तितर-बितर कॉपते हुए खड़े थे। मगर जब पृथ्वी तूफानी तरंगो पर नाचती हुई किश्ती की तरह डोलने लगी—'चढ़े मत्त गज जिमि लघु तरणी'—तब किसी आदमी के लिये खड़ा रहना असम्भव हो गया। पैरो के डगमगाने से देह मे कॅपकॅपी लग गई। व्याकुलता के मारे सब लोग बैठ गये। लेकिन जमीन मे हाथ टेके विना बैठना भी असम्भव था।

बैठने पर एक दूसरी आफत नजर आई। धरती फटने लगी। अबतक लोगो की जवान पर केवल 'राम'-नाम था, पर जमीन का दरकना देखकर सब लोग जोर-जोर से 'त्राहि भगवन्! त्राहि भगवन्!' पुकारने लगे। मालूम होने लगा, पृथ्वी नीचे धॅस रही है। अचानक पाताल-प्रवेश का प्रसंग उपस्थित देखकर सब लोग करुणार्द्र नेत्रो से आकाश की ओर ताकने लगे।

'सीताराम'-'सीताराम' की रट लग रही थी। 'जय-जय सियाराम' की ध्वनि गूँज रही थी। भय-कातर ऑखो के अंचल पसारकर लोग परमात्मा से प्राणो की भीख मॉग रहे थे। वैसा दिल दहलानेवाला दृश्य इन ऑखो ने कभी देखा न था। वैसा भयङ्कर आर्त्तनाद भी इन कानो ने कभी न सुना था। दिल के अन्दर धड़कनो का तॉता बॅधा था।

जीभ की सुबुद्धि ऐसी जगी कि क्षण-भर भी 'राम'-नाम के सुमिरन से विलग न हुई। कानो से लोगो के करुण कंठ से निकला हुआ 'त्राहि-त्राहि' का ऊॅचा स्वर तो भर ही रहा था, एक प्रकार का और गम्भीर नाद भी सुन पड़ता था। मालूम होता था, सैकड़ो हवाई जहाज एक साथ ही उड़ते आ रहे हैं, या तेजी से दौड़ने के लिये हजारो फौजी मोटरो के इजिन एक साथ ही खोल दिये गये है। रह-रहकर यह भी मालूम होता था कि पैरो के नीचे से पृथ्वी बड़ी तेजी से सरकती जा रही है। जैसे दौड़ती हुई डाकगाड़ी पर चढ़े हुए मुसाफिरों को बाहर की दुनिया भागती नजर आती है वैसे ही हमलोगों को भी चारों ओर की चीजे दनादन सरकती नजर आती थी। सूर्य भी चक्कर खाता हुआ दीख पड़ता था। ठीक प्रलय का दृश्य था।

रण भी असम्भव हो गया। किसी भाषा की शब्दावली उस भीषण दृश्य और लोगो की दयनीय दशा का यथार्थ चित्र नही अंकित कर सकती।

उस समय भविष्य का ध्यान न था, जीवन का भरोसा न था, लोक-परलोक की चिन्ता न थी, अगर कुछ था तो केवल ईश्वर का सहारा ही था। उस समय ऐसे लोगो के मुँह से भी राम-नाम सुन पड़ा, जो कभी सपने मे भी राम का नाम नही लेते। उसी समय जान पड़ा कि ईश्वर अगर सबसे बड़ा मारनेवाला है, तो बचानेवाला भी है। ईश्वर ने क्षण ही भर मे अपनी विचित्र लीला की खूबी दिखला दी। घोर नास्तिक भी उस समय कट्टर आस्तिक नजर आया। जीभ और तालू के असमर्थ एवं शुष्क हो जाने पर भी हृदय मे केवल ईश्वर ही के सुमिरन का तार लगा हुआ था।

धरती फटने से जो हड़कम्प छा गया था, वह जल के सोते फूट निकलने से और भी बढ़ गया। चहारदीवारी के गिर जाने से बाहर के मैदान मे फूटे हुए सोते भी दीख पड़ने लगे। चारो ओर जगह-जगह फवारे फूट पड़े। उनके अन्दर से बड़े वेग के साथ वालू और मिट्टी मिला हुआ जल निकलने लगा।

फाटक के सामनेवाली सड़क से लोग बेसुध दौड़े जा रहे थे। गिरते-पड़ते, डगमगाते-डोलते, फिसलते-चिल्लाते, लोग अन्धा-धुन्ध भाग रहे थे। कचहरी से भागे हुए एक वकील के एक ही पैर मे जूता था।

ईश्वर के सिनेमा का वह फिल्म मै कैसे दिखाऊँ? भुक्तभोगी होने के कारण मेरे हाथ भी लिखते समय थरथरा रहे है। शायद इन्ही पंक्तियो के लिये ईश्वर ने मुझे बचाया।

ईश्वर की दया से कुछ ही मिनट के बाद भूकम्प का प्रचंड झकोर शान्त हुआ। किन्तु जल के सोते शाम तक मटमैला पानी उगलते रहे। 'भंडार' के दफ्तरी-खाने मे ऐसा जबरदस्त सोता फूटा कि सैकड़ो रीम छपे हुए कागज और भँजे हुए फॉर्म कीच मे लथपथ सन गये।

मास्टर साहब का चित्त इस आकस्मिक सर्वनाश से ऐसा विक्षिप्त हुआ कि वे तो पागल-से हो गये। उनका पन्द्रह-बीस बरसो का उद्योग क्षणभर मे इस दशा को पहुँच गया। तीस-पैतीस रुपये की पूँजी से लखपती बननेवाले पुरुषार्थी को ईश्वर ने चुटकियो मे अधीर बना दिया। जब उनसे कहा गया—"आपके 'भंडार' से सैकड़ो आदमियो को रोजी मिलती है, अगर आप इतने अधीर होगे तो कैसे काम चलेगा"—तब वे इसी वाक्य को बार-बार दुहराने लगे—"सैकड़ो आदमियो को रोजी मिलती है—हाँ, सैकड़ो आदमियो को रोजी मिलती है।"

उसी उन्मत्तता की दशा मे उनके मुँह से आप-ही-आप अन्त मे यह भी

निकल पड़ा—"ईश्वर ही ने भंडार को बनाया था और ईश्वर ही ने उसे अचानक बिगाड़ दिया, तो फिर वही बनावेंगे भी।"

उस समय वे 'भंडार' के सब कर्मचारियो की ओर देखकर अत्यन्त विह्वलता से आँसू ढाल रहे थे, पर उनके मुख से 'राम'-नाम के सिवा कोई शब्द नही निकलता था। कुछ देर तक वे बार-बार 'भंडार' के गिरे हुए आलीशान मकान की ओर देखते रहे। इसके बाद उनका शरीर इतना शिथिल हो गया कि अशक्त की तरह बैठ गये। सब लोगों के चेहरे पर व्याकुलता की गहरी छाप थी।

अब बाहर से भी बड़ी-बड़ी डरावनी खबरे आने लगी। कोई आकर कहता—अदालत-दीवानी की दो-मंजिला इमारत चकनाचूर हो गई, बहुत-से लोग दब मरे और घायल हो गये। किसी ने आकर कहा—अस्पताल के गिर पडने से पचासो रोगी घायल हो गये और चॅप गये। एक ने सुनाया—बाजार की सड़क फट जाने से एक्के का घोड़ा धँस गया है, लोग निकाल रहे है। इसी तरह के भयावने समाचारो का ताँता बँध गया। शाम तक खबरो का तार न टूटा।

आतंक छा गया। 'धीरज छू कर धीरज भागा।' हर घड़ी यही आशंका होती थी कि धरती डोल रही है जो कोई आता था, यही पूछता था—'बाल-बच्चे बच गये? कोई आदमी तो नही मरा?' उस समय सिर्फ जिन्दगी की भूख थी, धन की कोई चिन्ता या चर्चा नही करता था। प्रायः धन की ओर से सब विरक्त देख पड़ते थे। सब आकर यही कहते थे कि जान बच गई तो धन फिर हो जायगा।

मास्टर साहब के उद्विग्न मस्तिस्क पर लोगो की इस मनोवृत्ति का बड़ा प्रभाव पड़ा। जब उन्होने सब पर एक ही तरह की विपत्ति देखी, तब उनका चित्त कुछ शांत हुआ। वे अपने कर्मचारियो की खोज-पूछ करने लगे। सबका पता लग गया, पर 'बालक'-कार्यालय के एक असिस्टैंट क्लर्क का पता न मिला। वह विद्यापति-पुस्तकालय का लाइब्रेरियन भी था, इसलिये लाइब्रेरी की ओर झाँककर देखा गया, वहाँ भी न था। बड़ी चिन्ता छा गई। आशंका होने लगी की हो-न-हो, वह मलबे के नीचे दब गया। बिखरी हुई ईंटो का ऊँचा ढेर देखकर यही अनुमान होता था कि इस टीले के अन्दर दबा हुआ आदमी क्षणभर भी नही जी सकता।

आखिर अनुमान सत्य निकला। दूसरे दिन सवेरे जब मलबा हटाया जाने लगा, क्लर्क बेचारे की लाश मिली। देखने से पता लगा कि भागते समय वह सबसे पीछे निकला और बाहरी द्वार की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते उसके ऊपर दीवार गिर पड़ी। उसकी मृत्यु से सबको बड़ा भारी अफसोस हुआ। 'भंडार' मे सैकड़ो आदमियो की जान बच गई, पर वह बेचारा न बच सका।

'भंडार' मे प्रति रविवार को नियमित रूप से हरिकीर्त्तन हुआ करता है।

मैने देखा था कि भूकंप (सोमवार) से एक दिन पहले मकर-संक्रान्ति (रविवार) की रात मे वह ग्यारह वजे तक हारमोनियम वजाकर संकीर्त्तन करता रहा। वह बड़ा ही निरीह व्यक्ति था। गाने-वजाने में तो पटु था ही, वड़ा अच्छा मोटर-ड्राइवर भी था। उसकी जब से एक नोटबुक मिली, जिसमे उसका एक फोटो और लाइसेन्स भी था। अंटी मे आठ रुपये भी निकले। उसका नाम था रामनारायण लाल दास। उम्र पचीस-छब्बीस साल की रही होगी। ईश्वर की दया से अविवाहित था। घर मे अकेली बुढ़िया माँ और एक छोटा भाई। कमासुत यही एक था। लम्बा-तगडा वदन और हँसमुख चेहरा भुलाये नही भूलता।

लाश की दुर्दशा 'बालक'-कार्यालय के हेडक्लर्क श्री अशरफीलाल वर्मा ने वतलाई—एक आँख फूटकर धँस गई है, दूसरी वाहर निकल आई है, खोपड़ी भी फट गई है, जीभ वाहर निकल आई है। ईश्वर की विचित्र लीला।

एक की ऐसी दशा देखकर भी हमलोग अपनी जान के लिये तरस रहे थे। चारो ओर से सैकड़ो-हजारो आदमियो के मरने की खवरे धडाधड आ रही थीं, तब भी हमलोग जीने की इच्छा और आशा मे व्यस्त थे। इतने वडे आश्चर्य की सृष्टि केवल ईश्वर ही कर सकता है।

ईश्वर का भरोसा रखनेवाले मास्टर साहव का मन धीरे-धीरे शान्त-सुस्थिर हुआ। उस समय वे वहुत मौन रहा करते थे। जवतक भूकंप-जनित अव्यवस्था रही, उन्ही की ओर से सबको भोजन-छाजन मिलता रहा। हरिकीर्त्तन का क्रम भी पूर्ववत् चलता रहा। मेरा परिवार काशी मे था। उन्होने मेरे बच्चो का कुशल-मंगल जानने के लिये वहाँ जवावी तार भेजा।

उनका हृदय वड़ा कोमल है। करुणा उनकी चिरसगिनी है। अनुकूल प्रसंग पाते ही उनकी भावुकता उमड़ आती है। साहित्यसेवियो की दुखगाथा सुनते ही उनके नेत्र सजल हो उठते हैं। कितनो की कष्ट-कथा सुनकर चुपके-से आर्थिक सहायता भेजते मैने कई बार देखा है।

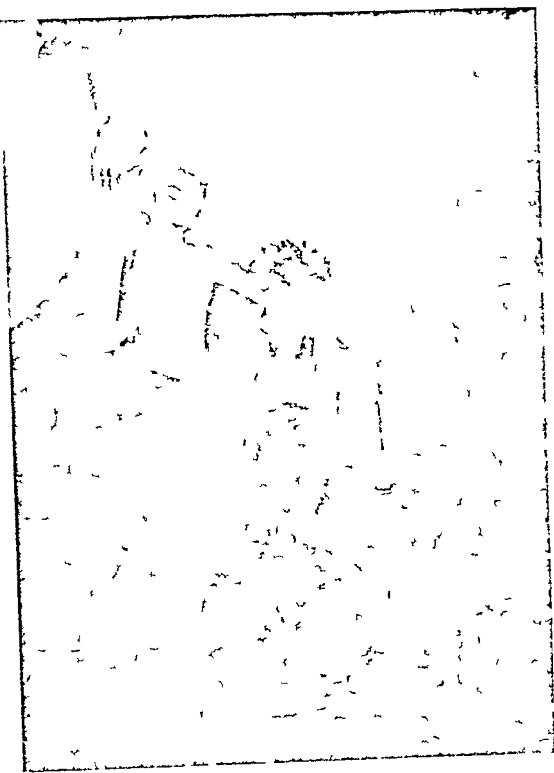
मै तो उनके 'भंडार' मे लगभग दस-बारह वरस रहा। अपने साहित्यिक विभाग का सारा दायित्व उन्होने सहर्ष मुझे सौंप दिया था। इतनी अधिक स्वतंत्रता दे रक्खी थी कि मुझे नौकरी का कभी भान ही न हुआ। साहित्य-विभाग मे स्याह-सफेद जो कुछ करूँ, कभी उन्होने दखल न दिया। मैने सात घाट का पानी पिया है, ऐसा वर्ताव हिन्दी की दुनिया मे दुर्लभ है। मुझपर स्नेह उनका इतना रहा कि कभी मुँह खोलकर कुछ माँगने की जरूरत ही न हुई। उनका मेरा घरेलू व्यवहार था, अब भी है, ईश्वर चाहेगा तो आजीवन रहेगा। यदि उनकी वदान्यता की कहानियाँ छेड़ दूँ तो 'वाढ़ै कथा पार नहिं लहऊँ'!



—श्यामदेव श्रीवास्तव, दरभंगा



बिहार के कुछ
तरुण चित्रकारों
की
कृतियाँ
[महारथी का शिष्य-मंडल]



—कालिकाप्रसाद वर्मा चम्पारण



—हरलाल महतो मुजफ्फरपुर

—काली भट्टाचार्य, दरभंगा

भूकम्प मे उनका सर्वस्व नष्ट हो गया था; किन्तु उसी दशा मे उन्होने अपने अनेक भूकंप-पीड़ित कर्मचारियों और आश्रितो की सहायता की। उनसे संबंध रखनेवाले बहुत ही कम लोग ऐसे है जो अपने गाढ़े समय मे उनसे सहायता पाकर उनके चिरऋणी न बन गये हो। पुस्तक-लेखक को नियमानुसार पारिश्रमिक तो दे देते है, आगे के लिये भी मानो उसके संकटो का बीमा ले लेते है।

लहेरियासराय और पटना मे उनका 'भंडार' साहित्यसेवी-मात्र के लिये विश्रामस्थल है। उनके सिवा बिहार मे कोई ऐसा साहित्यानुरागी नहीं जिसके हजारो रुपये हर साल केवल साहित्यसेवियो की आवभगत मे खर्च होते हो। 'भंडार' मे जो लब्धप्रतिष्ठ साहित्यसेवी पहले-पहल आते हैं उनकी सादर विदाई करना उनका व्रत-सा हो गया है। बिहार के साहित्यसेवी अपनी आवश्यकता के समय सबसे पहले 'भंडार' की ही याद करते है।

भूकंप-ध्वस्त 'भंडार' का पुनर्निर्माण करने मे उन्होने जिस प्रगाढ़ धैर्य का प्रदर्शन किया, उससे उनका नाम अक्षरशः सत्य जान पड़ा। वे 'राम के लोचनों की शरण मे विहार करनेवाले' अनन्य रामभक्त है। यही अविरल रामभक्ति उनकी सारी सिद्धियों की खान है।





মিথিলাক সেবক শ্রীরামলোচনশরণজী

পণ্ডিত শ্রীকপিলেশ্বর মিশ্র 'বৈয়াকরণশিরোমণি' ভূতপূর্ব অধ্যাপক

শান্তিনিকেতন (বোলপুর)

'কুলে দৈবাৎকশ্চিৎ প্রভবতি পুমান্ শ্লাঘ্যমহিমা'

কুলমে দৈবাৎ ক্যো প্রভাবশালী পুরুষ জন্মগ্রহণ করৈত অছি।

সিপাহী-বিদ্রোহক সময মে বাবূ রামদয়াল প্রসাদ ভোজপুর সঁ পড়াকএ মুজফ্ফরপুর জিলাক দরভঙ্গা রাজ্যক অন্তর্গত রাধাউর গাম মে আবি কএ বসলাহ, এত মিথিলেশক ছত্রছায়ামে রহি হুনক প্রপৌত্র শ্রীযুত রামলোচনশরণ বিহারীজী বৈশ্য সমাজকেঁ অলঙ্কৃত কয়লন্হি। মৈথিল, মিথিলা আর মৈথিলীক জতেক হিমাযতী ভেলাহ ততেক বহুত কম ব্যক্তি। যদ্যপি এহি দেশ মে এক সঁ এক উৎকৃষ্ট বিদ্বান্ লোকনি সম্প্রতি বিদ্যমান ছথি আর অনেকানেক অদ্বিতীয বিদ্বান ভএ গেলাহ—হুনকা লোকনিক কীর্ত্তি-কৌমুদী অদ্যাবধি চমকি রহল অছি তথাপি তকর ক্ষীণাবশেষ এহি বিকরাল সময মে হিনকা দ্বারা জতেক এহি প্রান্ত কেঁ সাহিত্যক ক্ষেত্র মে প্রোৎসাহন ভেটৈল অছি ততেক আনকা ককরহু বুতে নহি, ঈ বস্তু সর্বথা স্পষ্ট অছি।

বহুত দিন ধরি শ্রীযুত রামলোচনশরণজী অনেক তরহক বৈযক্তিক, সামাজিক তথা আর্থিক ঝঞ্ঝট কেঁ সহি অপন অসীম উৎসাহ সঁ মৈথিল, মিথিলা আর মৈথিলীক উপকারক হেতু 'মিথিলা' নামক পত্র চলবৈত ছলাহ, পরন্তু হমরা লোকনিক অভাগ্যবশ এহি সমাজক শিথিলতা সঁ ঈ পত্র নহি চলি সকল। 'জকরে লএ কানী তকরে আঁখি মে নোর নহি' ঈ কথা এহিঠাম চরিতার্থ ভেল।

শ্রীযুত রামলোচনশরণজীক কার্য্য এতবেধরি সমাপ্ত নহি অছি। অপন জন্মসিদ্ধ ধার্মিক ভাব সঁ প্রেরিত ভএ অনেকানেক ধর্ম্মশাস্ত্র, কর্ম্মকাণ্ড আদিক পুস্তক বহুত অল্প মূল্য মে প্রকাশিত কএ এহি প্রান্তক ওজে সেবা কএল অছি, তাহি সঁ সম্পূর্ণ মিথিলাবাসী কৃতজ্ঞ অছি। এহি সঁ পূর্ব এহি প্রান্তক লোক হস্তলিখিত পুস্তক সঁ অপন-অপন কাজ চলবৈত ছলাহ। যদি আনঠাম সঁ এহি বিষয়ক এক আধ পুস্তক প্রকাশিতো ভেল ছল ত ও সব মৈথিল সম্প্রদায়ানুসার সর্বথা পরিশুদ্ধ নহি। ওহি মে কতহু পাঠাশুদ্ধি, কতহু মুদ্রাদোষ, কতহু সম্প্রদায় বিরুদ্ধ-ইত্যাদি অনেক প্রকারক ত্রুটি দেখল জাইত ছল তথা মূল্যো বহুত লগৈত ছল। বহুত গবেষণাক্য মিথিলাক্ষর আর দেবনাগরাক্ষর দুহু মে পরিশুদ্ধ মৈথিল সম্প্রদায়ানুমোদিত দুর্গা-সপ্তশতী আর সত্যনারায়ণক পূজা তথা কথা জেহেন এহিঠাম সঁ প্রকাশিত ভেল অছি তেহেন অদ্যাবধি আনঠাম সঁ নহি। নিত্যকৃত্য এহিঠাম সঁ বহুত থোড়ে দাম মে মৈথিল সমাজক উপকারার্থ প্রকাশিত ভেল অছি। সদাচার আদি পুস্তকসঁ অনেক আবশ্যক বিষয় এহি মে বিশেষ রহলহুঁ ওতবে মূল্য মে ঈ ভেটি রহল অছি।

মিথিলাদেশীয় পঞ্চাঙ্গ মে ত এহিঠাম সঁ অভূতপূর্ব পরিবর্ত্তন ভেল অছি। জে পতরা পহিলে লোক কেঁ ছ-সাত আনা মে ভেটৈত ছলৈক সে আব এহিঠাম সঁ পঞ্চাঙ্গ প্রকাশিত ভেলে সর্বত্র দু আনা মাত্র মে ভেটি রহল অছি। আকার মাত্র মে ছোট এহি তরহক খূব সুন্দর পঞ্চাঙ্গ কেবল এক আনা মে ভেটি রহল অছি। এহি সঁ পূর্ব এতবা অল্প মূল্য মে ঈ বস্তু কতহু সঁ ক্যো প্রকাশিত করবাক সাহস নহি কএলে ছলাহ। এতদর্থ অনেকানেক পঞ্চাঙ্গ-প্রণেতা তথা বিক্রেতাক ক্রমভঙ্গ ঈ ভণ্ডার সহল কয়লে অছি। এহি সুলভতাক হেতু মিথিলাক ঘর-ঘর পঞ্চাঙ্গ সঁ পরিপূরিত ভএগেল অছি। এহিহেতু প্রস্তুত ভণ্ডারক ঈ কার্য্য সর্বথা প্রশংসনীয় অছি।

মিথিলাক্ষরক 'টাইপ' অনএবাক হিনক কাজ সব সঁ বেশী মহত্বপূর্ণ অছি। এহি উন্নতিশীল ক্রান্তিকারী যুগ মে অনেকানেক যোগ্যতম সুপুত্র রহলহুঁ জগজ্জননী জানকীক ঈ পবিত্র ভূমি মিথিলা প্রায়ঃ শিথিল অছি। সামাজিকরোগ আর পরস্পর বিদ্বেষাগ্নি মে হজারো রুপৈয়া ভস্ম ভএ জাইত অছি, পরন্তু মিথিলা আর মৈথিলীক দিশ বহুত কম লোকক ধ্যান আকৃষ্ট ভেল অছি, যদি শ্রীমান্ মিথিলেশক এহি বিষয় মে ধ্যান নহি জাইত ত অদ্যাবধি সবগোটে হমরা লোকনি বটগমনী এঁ গবৈত রহিতৈতহুঁ। মিথিলাক্ষর ক ত প্রায়ঃ লোপে ভএ রহল অছি।

প্রাচীন লোক কেঁ ছোড়ি সযোগ সঁ ক্যো নবীন ব্যক্তি ভেটৈতাহ, জে অপন এহি লিপি সঁ অপরিচিত হোথি। সাধারণ ব্যক্তিক কোন কথা আধুনিক পণ্ডিতো লোকনি প্রায়ঃ এহি বিষয মে হাঁস্যএ রহৈতনে ছথি। 'দীপক তর অন্ধকার'— ওা উদাহরণ অক্ষরশঃ এহিঠাম ঘটৈত অছি। এহনা পরিস্থিতি মে শ্রীরামলোচনশরণজী পঁডিত শ্রীজীবনাথরাযক প্রেরণা তথা সহযোগ সঁ মিথিলা ক্ষরক টাংপক নির্মাণ করাএ ওহিমে মৈথিলী প্রথম পুস্তিকা প্রকাশ কএ কনিএঁমে অত্যন্ত মহত্বপূর্ণ আদর্শ উপস্থিত করৈত মিথিলাক অপূত ভএ অপন দেশাভিমানক পরিচয দেল অছি। কিএক লে—

জননী জন্মভূমিশ্চ স্বর্গাদপিগরীযসী।
ওাসে সংসেবিতে যেন সফলং তস্য জীবনম্॥

পুস্তক ভণ্ডারসঁ বিদ্বান্ মাত্রকে সম্পর্ক রহৈত অছি, কেবল হিন্দী মৈথিলীএক বিদ্বান্কেঁ নহি—এহিঠাম সময সময পর সংযোগবশ নবাগত বিশিষ্ঠ বিদ্বানো লোকনি যথাসাধ্য সম্মানিত ভেল ছথি। জাহি মে সংস্কৃতক মৈথিল বিদ্বান্ লোকনিক গণনা সব সঁ মহত্বপূর্ণ অছি। মহামহোপাধ্যায মুরলীধরঝা, পঁ০ শ্রীশ্রীকান্তমিশ্র, শ্রীজনার্দ্দনঝা (জনসীদনঝা), ম ম মুকুন্দঝা বক্সীক নাম মৈথিল বিদ্বান্ মে বিশেষ উল্লেখনীয অছি, এতদতিরিক্তো অনেক বিদ্বান্ ছথি জনিক নাম সঁ হম পূর্ণ পরিচিত নহি রহবাক হেতু উল্লেখ নহি কএ সকলহুঁ। এতবে নহি, প্রবৃত্ত আলোপ্রান্তক সংস্কৃতক বিশিষ্ঠ বিদ্বান্, সংস্কৃত, হিন্দী আর মৈথিলীক কবি তথা যশস্বী লেখকো লোকনি এহি সঁ বঁচিত নহি ছথি।

অনেক প্রাচীন মৈথিল কবি লোকনিক কবিতা বিকরাল কালক গালমে পড়ি বিলীন ভএ গেল আর অনেক বিলীন ভএ রহল অছি। প্রতিবর্ষ কতেক অগ্নিদেবক ক্রীড়ামে পড়ি তল্লীন ভএ গেল। কতোক ওন্দ্রদেবক কৃপাপাত্র ভএ নির্বাণ প্রাপ্ত কএলক, কিছু ভূকম্পক হডকম্পসঁ ভূমিসাৎ ভএ সমাধি লেলক। কিছু কীড়াক দ্বারা ক্ষত-বিক্ষতভয অসীম বেদনাক অনুভব করৈত মিথিলাক অপূতকেঁ অভিশাপসঁ জর্জ্জরিত কএ রহল অছি। কতোক পরস্পর বিদ্বেষাগ্নিসঁ পরিপূরিত ভাওক হিংসেসদারীমে বিভক্ত ভএ অপনাকেঁ অকার্ম্মক বুঝি সাহস রহিত ভএ মৃতপ্রায ভএ গেল। কতোক শিথিলা মিথিলাক শিথিল সন্তানকেঁ দেখি সর্বথা অপন ভবিষ্য অন্ধকারময বুঝি দুঃখসঁ কাঁহি কাঁহি কএ রহলি অছি। কতোকমে কিছু আশাক উদয ভেলাসঁ নব জীবনক সংচার ভেল অছি। কিছু প্রকাশিত ভএ লোকক সমক্ষ আবি অপন গুণ-গরিমাসঁ লোকক উৎসাহ

বন্ধ ভए রহল অছি—এহেন বিকট পরিস্থিতিমে অনেক প্রাচীন মৈথিলী কবিতাক প্রকাশ কএ ওহি যশস্বী কবিক কীর্ত্তিকেঁ অমর বনাএ শ্রীযুত শরণজী অপন দেশাভিমানক জে পরিচয় দেল অছি সে ককরো অবিদিত নহি। বিদ্যাপতিক পদাবলী, গোবিন্দ গীতাবলী, মনবোধকৃত কৃষ্ণজন্ম, শিবনন্দন ঠাকুরক সংগৃহীত মহাকবি বিদ্যাপতি, শ্রীপরমানন্দ দত্তকৃত মৈথিলী মেঘদূত, প্রভৃতিক অনেক প্রাচীন তথা নবীন কবিলোকনিক ছিটফুট কবিতা, তথা যশস্বী লেখক প্রোফেসর শ্রীযুত হরিমোহনঝাক লিখল 'কন্যাদান' নামক মিথিলা ভাষাক সর্বস্বন্দর সামাজিক উপন্যাস জে কলকত্তা, পটনা আর কাশী এহি তীনূ য়ুনিবর্সিটীমে স্বীকৃত অছি, হমর লিখল 'সীতাদাও' নামক মৈথিলীক গদ্যপদ্যপুস্তক জে পটনা য়ুনিবর্সিটীমে স্বীকৃত অছি, তথা মৈথিলী লেখশৈলী মৈথিলীক প্রথম পুস্তিকা, মিথিলাভাষা ব্যাকরণ, প্রবেশিকা মৈথিলী গদ্যপদ্য সংগ্রহ আদি প্রকাশিত কএ জে মৈথিলীক সেবা কএল অছি তদর্থ হিনকা জতেক ধন্যবাদ দেল জায় সে থোড থীক।

শ্রীযুত রামলোচনশরণজীক দ্বারা 'মৈথিলীসাহিত্য পরিষদ' ক বহুত কাজ ভেল আর ভए রহল অছি। এহিপরিষদ ক ওা আজন্ম সদস্য ছথি। অপন সাহিত্যিক মণ্ডলী তথা অন্যান্যো ব্যক্তিকেঁ এহিমে সদস্য বনএবাক হেতু বহুত কিছু হিনক প্রযাস অছি ও ভए রহল অছি। দ্রব্যাভাবক পরিস্থিতিযোমে মৈথিলী সাহিত্য পরিষদক পুস্তক ছাপি বহুত দিনক অনন্তর ক্রমশঃ অপন খর্চমাত্র লেবাক স্বঅবসর উপস্থিত কএলে ছথি। অন্যথা ওহি সমযমে দ্রব্যাভাব প্রযুক্ত মৈথিলীসাহিত্য পরিষদক পুস্তক প্রকাশন কষ্টকর ভए জাএত। প্রতিবর্ষ ভণ্ডারসঁ কিছু নে কিছু মৈথিলীক পুস্তক প্রকাশিত ভএজাএত অছি, অতএব পুস্তক-ভণ্ডারকেঁ মৈথিলীসাহিত্য পরিষদক প্রধান সহাযক বুঝব অনুচিত নহি।

কোনো দেশ, জাতি, সমাজ অথবা সাহিত্যক সর্বাঙ্গপরিপূর্ণ উন্নতিএ বাস্তবিক উন্নতি কহল জাএ সকৈত অছি, বিকলাঙ্গ উন্নতিকেঁ পক্ষাঘাত রোগগ্রস্তে বুঝক চাহী। অতএব সর্বতোমুখী প্রতিভাশালী শ্রীযুত রামলোচনশরণজীক প্রযাসো সর্বতোমুখ অছি। হিনকাসঁ অংগ্রেজী তথা সংস্কৃতক বিদ্যার্থী লোকনি আর্থিক সাহায্য পাবি বিদ্যালাভ কএ পূর্ণখ্যাতিলাভ কএলেনহি অছি। প্রোফেসর শ্রীযুত হরিমোহনঝা এহীমহঁক একরত্ন থিকাহ। পং শ্রীগৌরীনাথমিশ্র হিনকে সহাযতাসঁ এম্, এ পরীক্ষোত্তীর্ণ ভए লব্ধজীবিক ভেল ছথি। পঞ্চাঙ্গ-নির্মাতা প. শ্রীযুত অভিরাম মিশ্র এহীঠামক রায্ সঁ জ্যোতিষাচার্য পরীক্ষোত্তীর্ণ ভেল

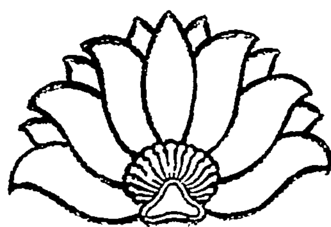
ছথি। শরণজী অপন গাম হাধাউরমে ২০০০ রুপৈয়া নগদ আর ২০০০ তীন হজারক জমীন সংস্কৃত এসোসিয়েশনমে দএ এক স্থায়ী পাঠশালাক স্থাপন কএ অপন পিতাক নামকেঁ অমর বনাওল জাহিমে মৈথিল বিদ্যার্থী লোকনি পঢ়িকএ পরীক্ষোত্তীর্ণ ভএ রহলাহ অছি। যদ্যপি হিনক পুস্তক ভণ্ডারক জীবিকা কোনো জাতি, সমাজ, সম্প্রদায় আরো প্রান্তমে সীমিত নহি অছি তথাপি মৈথিলক সংখ্যা অধিক অছি জে স্বাভাবিক থীক।

সাহিত্য আর সাহিত্যিক হিনক জীবনক আধার অছি অথবা এহী দুনূবস্তুক আধার হিনকা বুঝাক চাহী। হিনক আচরণ বহুত সরল, ভোজনাচ্ছাদন অতি সাধারণ। সবসঁ বিচিত্রতা হিনকামে ওা অছি জে সকল সাধারণ ব্যক্তি জকাঁ পরিশ্রমসঁ উপার্জিত অপনদ্রব্যকেঁ ওা ভোগবিলাসমে ব্যয় নহিকএ পাঁচ পাঁচ সার্বজনিক কার্য্যমে সদুপযোগ করৈত ছথি। মন্দির আদিক জীর্ণোদ্ধার, উপনয়ন, বিবাহ, শ্রাদ্ধ ওরাদিমে যথাশক্তি সহায়তা দেবমে কহিয়ো ওা বিমুখ নহি হোওত ছথি। কীর্ত্তন ভজন আর সাধু-সন্তক সমাগম বরাবরি পুস্তক-ভণ্ডারমে রহিতহি অছি।

যস্মিঞ্জীবতি জীবন্তি বহবঃ স তু জীবতু।
কাকোপি কিন্ন কুরুতে চঞ্চ্বা স্বোদরপূরণম্॥

জকরা জীলে বহুত প্রাণী জীবৈত অছি সে জীব। অন্যথা কৌআ কী চঁচুসঁ অপন পেট নহি ভরৈত অছি? ওা বরাবরি এহী সিদ্ধান্তকেঁ পালন করৈত আএলাহ আর কএ রহল ছথি। অতএব কেবল অপন উদ্যোগক বল সঁ ওা সংস্থা বহুত দ্রুতগতিসঁ সর্বতোমুখী উন্নতি কএ রহলি অছি। বাস্তবমে স্বাবলম্বী উদ্যোগীক উপর পরমেশ্বরো দয়া করৈত ছথি—

উদ্যোগিনোঽসহায়স্য দয়তে পরমেশ্বরঃ॥





স্মারক-লিপি

শ্রীঅবিনাশচন্দ্র কুণ্ডু, বি. এ, বি. এড্, নদিযা

আমি ১৯২২ খৃষ্টাব্দে কনিকাব বাজ হাই স্কুলেব প্রধান শিক্ষকেব পদত্যাগ কবিযা কিছু দিন বাযপুব বাজকুমাব কলেজে একাধিক বাজকুমাবেব শিক্ষকতা ও অভিভাবকেব পদে ব্রতী ছিলাম। সে সময অবসব অনেক ছিল। কর্ম্মময জীবন নিষ্ক্রিযতায পবিণত হইলে কিছুদিনেব জন্য ভাল লাগিযাছিল বটে; কিন্তু শীঘ্রই মনে হইল কোন-কিছু-একটা কবি। স্কুলে শিক্ষকতা কবিতে কবিতে অনেক জল্পনা কল্পনা কবিতাম। কিন্তু প্রধান শিক্ষকেব পদেব কর্ত্তব্য সমষ্টিব গুরু ভাবে সেগুলি চাপা পড়িযা যাইত। এখন ভাবিলাম সেই কল্পনাব দুই একটী কার্য্যে পবিণত কবিতে পাবিলে মন্দ হইত না।

তাই মনে কবিলাম একখানি বই লিখিব। তখন ইংবাজি অনুবাদেব বই ওড়িষ্যা বা মধ্যপ্রদেশে তেমন পছন্দমত ছিল না। কিন্তু বাঙ্গালা ভাষায ওরূপ পুস্তকেব অভাব ছিল না। বাযপুরে দেখিলাম, শিক্ষা প্রণালীব ভাবধাবা স্বতন্ত্র। আমাব উপব ওড়িযা ও বাঙ্গালী ছাত্রদিগেব অনুবাদ শিখাইবাব ভাব ছিল। তাই আমি free translation এর উপযোগী বাঙ্গালা পুস্তক হইতে topic সংগ্রহ কবিযা পড়িযা দিলে ছাত্রগণ উহাব অর্থ গ্রহণ করিযা আপন ইংবাজিতে তর্জ্জমা কবিযা দিত। বলাবাহুল্য, বাজকুমাব কলেজের ছাত্রগণ সাধাবণতঃ হাই স্কুলেব ছাত্রগণেব অপেক্ষা ইংরাজী ভাষা ও সাহিত্য জ্ঞানে অধিকতব অগ্রসব। তাহারা এই প্রণালীতে শিক্ষা মনোজ্ঞ ও ফলোপধাযক মনে কবিযাছিল। সে যাহা

হউক, ফলে আমার নূতন প্রণালীতে লিখিত বাঙ্গালা হইতে ইংরাজী অনুবাদের পুস্তক লেখা শেষ হইয়া গেল।

অল্পকাল মধ্যেই যখন ১৯২৩ সালের শেষ ভাগে আমি সমস্তিপুর কিং এড্ওয়ার্ড হাইস্কুলের হেডমাষ্টার পদে নিযুক্ত হইয়া কার্য্যভার গ্রহণ করি, তখন আমার শ্রদ্ধেয় বন্ধু স্বর্গীয় ফণিভূষণ মুখোপাধ্যায় পণ্ডিত মহাশয়ের সহিত কর্ম্মসূত্রে বিশেষরূপে পরিচিত হই। তিনি আমার বাসায় অপরাহ্ন কালে বেড়াইতে আসিলে প্রায়ই আমাকে আমার ঐ অনুবাদের পুস্তকখানি লইয়া নাড়াচাড়া করিতে দেখিতেন। একদিন পণ্ডিত মহাশয় কৌতূহলাক্রান্ত-হইয়া আমাকে পুস্তকের বিষয় জিজ্ঞাসা করিলেন। তিনি জিজ্ঞাসা করিলেন যে আমি ঐ পুস্তকখানি ছাপাইয়া প্রকাশ করিতে চাহি কি না। আমার ধারণা ছিল, পুস্তক ছাপান বহুব্যয় সাধ্য ব্যাপার। ব্যয় করিয়া পুস্তক অচল হইলে অর্থব্যয় ও পরিশ্রম উভয়ই নিষ্ফল হইবে। এজন্য আমি কোন কিছু বলিলাম না। পণ্ডিত মহাশয় আমার মনের ভাব বুঝিতে পারিয়া আমার নিকট যে প্রস্তাব করিলেন তাহা আমার অতীব মনোজ্ঞ ও অভিপ্রেত মনে হইল।

এই সর্ব্বপ্রথম আমি লাহেরিয়াসরাইএর পুস্তক-ভাণ্ডারের সন্ধান পাইলাম। স্বর্গীয় পণ্ডিত মহাশয় রামলোচনবাবুর সহিত খুব ঘনিষ্ঠ ভাবেই পরিচিত ছিলেন। তিনি বলিলেন যে তিনিও কয়েকখানি পুস্তক লিখিয়া পুস্তক-ভাণ্ডারের সাহায্যে ছাপাইয়াছেন। তখনও তিনি তাঁহার উচ্চাকাংক্ষা সমন্বিত "স্পর্শমণি"—কাব্য রচনা করিতেছেন এবং সঙ্গে সঙ্গে এক এক ফর্ম্মা পুস্তক-ভাণ্ডারের কল্যাণে ছাপাইয়া লইতেছেন। অবসর হইলে আমরা দুজনে পুস্তক-ভাণ্ডারের কথা আলাপ করিতে লাগিলাম। কয়েক দিন মধ্যেই স্থিরীকৃত হইল যে আমরা একদিন লাহেরিয়াসরাই আসি ও মাষ্টার সাহেবের সহিত কথাবার্ত্তা করি।

শুভকার্য্য শুভদিনে সুসম্পন্ন হইয়া থাকে। এজন্য আমরা পাঁজি-পুঁথি দেখিয়া শুভদিন ও শুভক্ষণ নির্ণয় করি। লাহেরিয়াসরাই আসিবার শুভদিন ও শুভক্ষণ পাঁজি দেখিয়া নির্ণীত না হইলেও আমি মাষ্টার সাহেবের সহিত অতি শুভদিনে ও শুভলগ্নেই সাক্ষাৎ করিয়াছিলাম বলিয়া মনে করি। সেই আমাদের উভয়ের প্রথম দর্শন ও প্রথম আলাপ কি শুভক্ষণেই সংঘটিত হইয়াছিল। ইহার পুণ্যস্মৃতি-বক্ষে ধারণ করিয়া আমি আজ এই সুদীর্ঘ অষ্টাদশবর্ষ পুস্তক-ভাণ্ডারের অক্ষয় ভাণ্ডারকে আশ্রয় করিয়া রহিয়াছি।

পুস্তক-ভাণ্ডারের আদর আপ্যায়ন ও আতিথেয়তা চিরন্তন; আমি



आय-व्यय-परीक्षण-विभाग
कुर्सी पर श्रीरामलखनप्रसाद



पुस्तक-भंडार का स्टोर-विभाग
बीच में कुर्सी पर—श्रीवीरेन्द्रलाल कर्ण [प्रधान]



पुस्तक-भंडार [लहेरियासराय] का डाकखाना
र्सी पर—बाबू श्यामानंदप्रसाद पोस्टमास्टर [मुजफ्फरपुर]



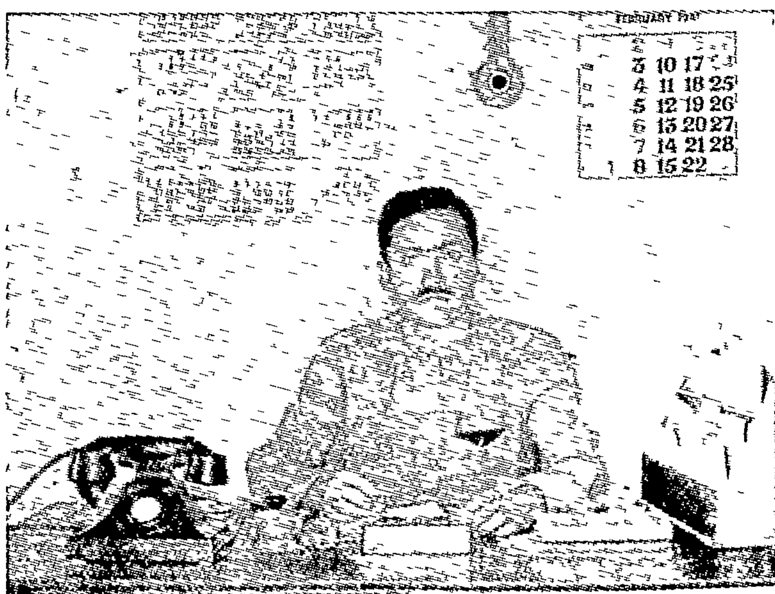
पुस्तक-भंडार के प्रधान एजेन्ट
श्रीजागेश्वरसिंह और श्रीवीरेन्द्रनारायण सिंह



श्रीनारायण-राजाराम सोमण
(विद्यापति प्रेस के मैनेजर)



श्रीनथुनीप्रसाद माणिक
(पुस्तक-भंडार के मैनेजर)



पुस्तक-भंडार (पटना) के मैनेजर प० जयनाथ मिश्र

সে দিন প্রারম্ভেই তাহার প্রথম আস্বাদনের অধিকারী হইয়াছিলাম। পরন্তু মিষ্টান্নের মধুরতা অতিক্রম করিয়া রামলোচনবাবুর সারল্যপূর্ণ, অমায়িক মিষ্টালাপ ও আদর আপ্যায়ন অধিকতর মনোমুগ্ধকর প্রতীত হইয়াছিল। তিনি সাদরে আমার Modern School Translation বহিখানি গ্রহণ করিয়া যে যে সর্ত্তে প্রকাশ করিতে প্রতিশ্রুতি দিলেন, তাহা আমার মনোমত হইল। প্রতিশ্রুতি পত্রে উভয়ে স্বাক্ষর করিবার পর তিনি আমাকে আর একটি অনুরোধ করিলেন।—

তিনি তাঁহার হিন্দি রচনা পুস্তকখানি দেখাইয়া বলিলেন, "আপনি এই-ভাবে সরল বিশুদ্ধ ইংরাজিতে যদি একখানি ইংরাজি রচনা পুস্তক (Essay Book) লেখেন তাহা হইলে ভাল হয়।" এ কার্য্য অতি সহজ ও অনায়াস সাধ্য বলিয়া আমি আমার প্রতিশ্রুতি প্রদান করিলাম। শীঘ্রই তিন-চারিটি রচনা লইয়া রামলোচনবাবুকে দেখাইতে গেলে তিনি আমার রচনা পছন্দ করিলেন। তখনই কথাবার্ত্তা পাকাপাকি হইয়া গেল এবং তিনি আমাকে তৎক্ষণাৎ কিছু অর্থও প্রদান করিলেন।

এই প্রসঙ্গে একটি বিষয় আমি উপলব্ধি করিয়া উত্তরকালে যখনই স্মরণ করিয়াছি তখনই আমার অন্তঃকরণ রামলোচনবাবুর প্রতি বিপুল শ্রদ্ধায় ভরিয়া উঠিয়াছে। প্রকাশকের বুদ্ধি, বিচারশক্তি ও দূরদর্শিতা গ্রন্থকারের পাণ্ডিত্য ও মেধাকে সর্ব্বথা অতিক্রম করে। আমি যে পরিশ্রম অধিকতর মূল্যবান্ মনে করিয়াছিলাম ও আমার যে প্রচেষ্টা অধিকতর সাফল্য মণ্ডিত হইবার সংকল্প করিয়া ছিলাম, তাহা প্রকাশকের তীক্ষ্ণ দৃষ্টিতে ভ্রমাত্মক মনে হইয়াছিল। তিনি বুঝিতে পারিয়াছিলেন যে, আমার রচিত রচনা পুস্তক অধিকতর আদৃত হইবে এবং যে অনুবাদ পুস্তক আমি প্রাণপণে লিখিতে চেষ্টা করিয়া উহার পূর্ণ সাফল্য কামনা করিতেছি তাহা তাদৃশ সাফল্য লাভ করিতে সমর্থ হইবে না।

আমি পাঁচ ছয় মাস মধ্যে আমার ইংরাজি রচনা পুস্তক সমাপ্ত করিয়া দিলে প্রকাশক রামলোচনবাবু আমাকে আশাতীত ভাবে পুরস্কৃত ও উৎসাহিত করিলেন। সেই হইতে আমি প্রয়োজন হইলেই পুস্তক-ভাণ্ডারে কোন না কোন কার্য্য করিতে লাগিলাম।

রামলোচনবাবু বিপন্ন শরণার্থীর প্রকৃতই সহায়ক—"শরণ"। আমি ইহা একাধিক বার উপলব্ধি করিয়াছি। আমি রামলোচন বাবুর আনুকূল্যে আমার পিতৃ সম্পত্তি ঘর বাড়ী, দালান কোঠা ও বাগান পিতৃঋণ হইতে উদ্ধার করিতে পারিয়াছি। আমি যখন আমার Essay বহি

লিখিতেছিলাম তখন আমি এরূপ দুর্দ্দশাগ্রস্ত ছিলাম ও তাঁহার প্রদত্ত অর্থে এই ঋণভার দূর করিতে সমর্থ হইয়াছিলাম। একবার হঠাৎ আমার ১০০৲ টাকার বিশেষ প্রয়োজন হইয়াছিল। অনন্যোপায় হইয়া আমি তাঁহার শরণাপন্ন হই। আমার ত্রয়োদশবর্ষ বয়স্ক পুত্রকে সুদূর বাঙ্গালাদেশ হইতে পাঠাইয়া দিয়া যখন সন্দেহ দোলায় দুলিতেছিলাম তখন আমার পুত্র এক-শত টাকার নোট আমার হাতে আনিয়া দিয়া যেন আমাকে আকাশের চাঁদ হাতে তুলিয়া দিয়াছিল।

একবার আমি লোভের বশীভূত হইয়া প্রকাশকের সাহায্য না লইয়া পুস্তক ছাপাইয়া অধিক লাভবান্ হইবার আশা করিয়া বিড়ম্বিত হইয়া-ছিলাম। এ ব্যাপারে মুদ্রকের নিকট আমি একশত টাকা ঋণগ্রস্ত হইলে আমি রামলোচন বাবুর শরণাপন্ন হইয়াছিলাম। তিনি ঐ টাকার চেক দিয়া আমাকে আসন্ন বিপদ হইতে উদ্ধার করিয়াছিলেন।

গত ১৯৩৫ খৃষ্টাব্দে আমি চক্ষুঃরোগে পীড়িত হইয়া দৃষ্টিশক্তি হারাইতে বসিলে পুস্তক-ভাণ্ডারই আমার চিকিৎসার জন্য অর্থ প্রদান করে। আমি দৃষ্টিশক্তি পুনঃ প্রাপ্ত হইলে ভাণ্ডারের জন্য উপযুক্ত কোন কার্য্য করিবার অবসর পাইয়া আমার অবস্থা স্বচ্ছল করিতে সমর্থ হই।

আমার প্রতি অনুগ্রহাতিশয্য বশতঃ একাধিক বার আমার পুত্রদিগকে রামলোচন বাবু তাঁহার পুস্তক-ভাণ্ডারে কর্ম্ম করিবার অবসর দিয়া আমাকে অনুগৃহীত করিয়াছেন। কিন্তু দুরদৃষ্টবশতঃ পুত্রগণ এই অনুগ্রহের পূর্ণ সার্থকতা লাভ করিতে সমর্থ হয় নাই।

এক্ষণে আমি বৃদ্ধবয়সে বিদ্যালয়ের কর্ম্ম হইতে অবসর গ্রহণ করিয়া যখন স্বয়ং অনন্যোপায় মনে করিতেছিলাম তখন রামলোচন বাবু তাঁহার কর্ম্মভারাক্রান্ত ও নিরবচ্ছিন্ন চিন্তাবহুল মস্তিষ্কের এক প্রান্তে এই বৃদ্ধ ও সুপরিচিত শিক্ষকের কথা স্মরণ করিয়া সেই সুদূর বঙ্গদেশ হইতে পত্র দ্বারা আহ্বান করিয়া আনাইয়া বর্ত্তমানে বহুদায়িত্বপূর্ণ নিজ সন্তানগণের শিক্ষাভার অর্পণ করিয়া আমার প্রতি তাঁহার পূর্ণ প্রীতি, আস্থা, অনুরাগ ও কৃপাপরায়ণতার যে পরাকাষ্ঠা প্রদর্শন করিয়াছেন তাহা আমি ও আমার বংশধরগণ এবং আমার হিতাকাঙ্ক্ষী বন্ধুগণ একবাক্যে ও মুক্তকণ্ঠে স্বীকার করিতে থাকিবে।

এজন্য আমি পুস্তক-ভাণ্ডারের শ্রীবৃদ্ধি কামনা ও স্থায়িত্ব বাঞ্ছা করি এবং ইহার স্বত্বাধিকারী বাবু রামলোচনশরণ মহোদয়ের নিকট আমার চিরকৃতজ্ঞতা জ্ঞাপন করিয়া তাঁহার স্বাস্থ্য, সম্পৎ, দীর্ঘায়ু ও পারিবারিক

সুখ-শান্তি ভগবৎ-সকাশে প্রার্থনা করি। বহুদূর ব্যবধান থাকিলেও আমার পুত্র পরিবার স্বজনগণ এবং হিতার্থী বন্ধুবর্গ সুদূর বঙ্গদেশ হইতে পুস্তক-ভাণ্ডারকে সর্ব্বদা তাঁহাদের প্রীতিপূর্ণ নয়নে দেখিতে থাকিবে এবং ইহার হিতকামনা করিবে।

মৎসদৃশ নিঃসম্পর্ক বাঙ্গালীর প্রতি রামলোচন বাবুর নিরপেক্ষতা, সমদর্শিতা ও অটল বিশ্বাস তাঁহার হৃদয়ের সম্প্রসারণ ও একদেশিতা জ্ঞাপন করে। সংকীর্ণচেতা, স্বার্থপর ও সাম্প্রদায়িকভাবাপন্ন তথাকথিত "বাঙ্গালা-বিহারী"—নির্দ্দেশানুশীল ভাক্ত দেশপ্রেমিকগণ বাবু রামলোচন-শরণের সমদর্শিতা সমক্ষে অবনতমস্তক হউন।





পুরাতন প্রসঙ্গ

শ্রীপ্রফুল্লচন্দ্র চক্রবর্ত্তী, বি-এ, বি-এড্

বহুদিনের কথা, প্রায় পনর ষোল বৎসর পূর্ব্বের। বাবু রামলোচন শরণের সঙ্গে আলাপ করিতে আসিয়াছি। তিনি একটী সাধারণ আরাম কেদারায় বিশ্রাম করিতেছিলেন। গ্রীষ্মের সন্ধ্যা। পাশেই চার পাঁচটী চেয়ারে তাঁহার পরিচিত কয়েকজন ভদ্রলোক বসিয়া তাঁহার সহিত কথা-বার্ত্তা কহিতেছিলেন। মনে হয় হিন্দী সাহিত্যের উন্নতি সম্বন্ধে কিছু আলোচনা হইতেছিল। রামলোচন বাবুর পরিধানে একখানি ধুতি ছাড়া অন্য কোন বস্ত্র নাই; তাহাও আবার গ্রীষ্মাতিশয্যে ইতস্ততঃ বিস্রস্ত। আমি আসিবামাত্র সকলে উঠিয়া দাঁড়াইলেন। পরিচয় হইয়া গেলে তিনি আমাকে আরাম কেদারায় বসিবার জন্য বিশেষ পীড়াপীড়ি করিতে লাগিলেন ও শেষে বাধ্য হইয়া আমাকে উহাতে বসিতেই হইল। পাশের চেয়ারে তিনি বসিলেন ও বলিলেন, "বলুন, আমি আপনার কি সেবা করিতে পারি।"

তাঁহার সহজ সরলতা ও অমায়িক ভাব আমাকে উৎসাহিত করিল। আমি বলিলাম, "আমি দরিদ্র শিক্ষক, আপনার সাহায্যে দুই একখানি বই ছাপাইতে চাই।"

তিনি বলিলেন, "আমিও ত নিজেকে এক দরিদ্র শিক্ষক বলিয়াই জ্ঞান করি। আমার দ্বারা যদি আপনার কিছুমাত্র উপকার হয় তাহাতে আমি পশ্চাৎপদ হইব না।"

× × × × × ×

এই ছিল প্রথম আলাপের সূত্র। তাহার পর অনেক বৎসরই চলিয়া গিয়াছে। প্রায়ই দেখা শোনার ফলে তাঁহার সহিত বিশেষ ঘনিষ্ঠ সম্বন্ধই জমিয়া উঠিয়াছে। তিনি যেন আমার কত আপনার জন। তাই তাঁহার

সম্বন্ধে দুই একটী নিছক সত্য কথা বলিতে গেলেও ইতস্ততঃ করিতে হয়, পাছে লোকে উহা অত্যুক্তি বলিয়া মনে করে। কিন্তু উপায় নাই। বিশাল পুস্তক-ভাণ্ডারের রজতজয়ন্তী উপলক্ষ্যে তাহার প্রাণপ্রতিষ্ঠাতা ও পরিচালক রামলোচন বাবুর সম্বন্ধে কিছুনা বলিয়াও থাকা যায় না।

রামলোচন বাবু ছিলেন সামান্য শিক্ষক, এখন হইয়াছেন এত বড়। কেমন করিয়া ইহা সম্ভব হইল তাহা নির্ণয় করিতে গেলে স্বতঃই তাঁহার ব্যক্তিগত বিশেষতার দিকে মনোযোগ আকৃষ্ট হয়। তাঁহার চরিত্রের প্রথম বৈশিষ্ট্য তাঁহার অনাড়ম্বর অহঙ্কারলেশশূন্য ভাব। সরল জীবন যাপনের সঙ্গে সঙ্গে অকৃত্রিম কর্ত্তব্যনিষ্ঠা তাঁহাকে যেন সাধারণ লোকের নিকট হইতে পৃথক করিয়া রাখিয়াছে। কত বৎসরই কাটিয়া গিয়াছে, কিন্তু তাঁহার প্রকৃতির মধ্যে একটুও পরিবর্ত্তন ঘটে নাই। পোষাকপরিচ্ছদ সেইরূপ অতি সাধারণ। ধনীদরিদ্র নির্ব্বিশেষে সকলের সহিত সেই এক অমায়িক ব্যবহার। বিংশ শতাব্দীর লক্ষপতি, না আছে তাঁহার গাড়ীজুড়ি, না আছে বাহিরের পারিপাট্য, হাঁকডাক, ঐশ্বর্য্যের ঘটা, আড়ম্বরের আকাংক্ষা। যখনই দেখিলাম সেই সাদা মানুষটী, পরিধানে একখানি ধুতি, কখনও বা গায়ে একটী সাধারণ জামা, সৌম্য সহাস্য মূর্ত্তিতে সকলের সহিত আলাপ করিতে ব্যগ্র। বেশভূষা দর্শনে প্রথম প্রথম মনে হইতে পারে লোকটী কৃপণ কিন্তু মোটেই নয়। তাহার জ্বলন্ত প্রমাণ তাঁহারে পুস্তক-ভাণ্ডার ও বিদ্যাপতি প্রেস, উহাদের সংশ্লিষ্ট কর্ম্মচারিদল, লেখক ও সাহিত্যিক বৃন্দ। সকলের সুখসুবিধা তাঁহার প্রধান লক্ষ্য। ইহা ব্যতীত কত দীনদরিদ্রকে তাঁহার মুক্তহস্তের দানে ধন্য হইতে দেখিয়াছি। তার পর কি কঠোর কর্ত্তব্যনিষ্ঠা। এই দুইটী বিভাগের কিরূপে সর্ব্বাঙ্গীণ উন্নতি হইতে পারে এই চিন্তায় সর্ব্বদাই বিভোর। এই দুইটী বিভাগকে জনপ্রিয় করিবার জন্য তাঁহার কি আকুল আগ্রহ। ইহাদের উন্নতিকল্পে নিজের সর্ব্বস্বদানে কৃতসঙ্কল্প। আলস্য ও দীর্ঘসূত্রতা কাহাকে বলে রামলোচন বাবু জানেন না। দিবারাত্র নিরলস পরিশ্রমশীল এই মানুষটীকে দেখিয়া বিস্মিত হইতে হয়।

সময়নিষ্ঠা তাঁহার চরিত্রের আর একটী বৈশিষ্ট্য। ঘড়ির কাঁটার সঙ্গে যেন নিজেকে বাঁধিয়া রাখিয়াছেন। তাহার উপর নিয়মানুবর্ত্তিতা সোণায় সোহাগা। এতবড় কারখানার মালিক, সূর্য্যোদয়ের সঙ্গে সঙ্গে প্রাতঃকৃত্য সমাপন করিয়া ঠিক যথাসময়ে প্রত্যহ আপিসে আসেন ও স্বয়ং ষোলঘণ্টা কঠোর মানসিক পরিশ্রম করেন। বলেন, আমি নিজে কাজ না করিলে আমার অধীন কর্ম্মচারিগণ কাজ করিবে কেন? তাঁহার

কার্য্যকুশলতা দেখিয়া ঈর্ষ্যা হয়। এতবড় কঠোর সাধনা, সিদ্ধি কি নিজেই ছুটিয়া আসিয়া তাঁহাকে আলিঙ্গন করিবে না।

তাঁহার চরিত্রের আর এক বৈচিত্র্য তাঁহার অকপট ব্যবহার, সত্যের প্রতি অবিচলিত নিষ্ঠা, নির্ভীকতা ও স্বাভাবিক প্রফুল্লতা। পরিচিত হউক বা অপরিচিত হউক সকলেরই সহিত এমন সরল ব্যবহার, যে কতদিনের চেনা লোক। যখনই দেখিলাম, মুখে গম্ভীর প্রসন্ন হাসি লাগিয়া আছে। সকলের সঙ্গে এক ব্যবহার। নিজের কর্ম্মচারিদের মধ্যে যাঁহাদের বেতন অধিক তাঁহাদের সঙ্গে যেমন ভাব, তেমনই সদয় ভাব যাঁহারা অল্প বেতন পান তাঁহাদের সঙ্গে। তাঁহার মধ্যে ভেদবুদ্ধির লেশমাত্র দেখি নাই।

১৯৩৪ সালের ভূমিকম্পের কথা মনে পড়। ঠিক তিন-চারিদিন পরে তাঁহার সঙ্গে দেখা। তখন লোকের কি অবস্থা তাহা বর্ণনা করা যায় না। যেদিকে যাই সেখানেই হাহাকার রব। নিজের সামান্য যাহা কিছু ছিল হারাইয়াছি। ভাবিতেছিলাম রামলোচন বাবুও আমার ন্যায় 'হায় হায়' করিয়া বেড়াইতেছেন। কিন্তু, দেখিলাম অন্যরূপ। তিলমাত্র ক্ষোভ নাই। ধীর ও ক্ষিপ্র ভাবে ভাণ্ডারের পুনঃ সংস্কার কার্য্যে নিজেকে লিপ্ত করিয়াছেন। আমাকে দেখিয়া বলিলেন, "আমার ব্যক্তিগত ক্ষতির জন্য আমার কোন দুঃখ নাই। কিন্তু আমার আশ্রিত ব্যক্তিগণের জন্য আমার মন বড়ই চঞ্চল হইয়াছে ; তাহাদের না আছে আহার, না আছে বাসস্থান। যতদিন তাহাদের সম্বন্ধে সুব্যবস্থা করিতে না পারি, ততদিন আমার বিশ্রাম নাই। আশীর্ব্বাদ করুন যেন আমি শীঘ্রই তাহাদের দুঃখ দূর করিতে পারি।" অনুজীবিগণের প্রতি তাঁহার এতদূর অনুকম্পা। এত বড় দৈবদুর্ব্বিপাক তাঁহাকে ব্যক্তিগতভাবে একটুও বিচলিত করিতে পারে নাই, অথচ পরের দুঃখ দূর করিবার জন্য এরূপ বদ্ধপরিকর! চরিত্রের কোমল-কঠোরের এমন মধুর সমাবেশ খুব অল্পই দেখিয়াছি।

বহু বিষয়ে তাঁহার সহিত অনেক তর্কবিতর্ক হইয়াছে। কিন্তু নিজের জিদ বজায় রাখিবার জন্য অপরের মত তাচ্ছিল্য করিবার দুরাগ্রহ কখনই তাঁহার মধ্যে লক্ষ্য করি নাই। বরং এ বিষয়ে তাঁহার উদারতা লক্ষ্য করিবার বস্তু। তিনি বলেন, সকলেরই নিজ নিজ মতামত প্রকাশের সমান অধিকার এবং যদি অপরের মত গ্রহণযোগ্য বলিয়া প্রতিপন্ন হয় তাহা হইলে বিনা দ্বিধায় নিজ বিপরীত মত পরিত্যাগ করিয়া উহা গ্রহণ করা উচিত। তাঁহার সম্মুখে তাঁহার সম্বন্ধে প্রশংসাসূচক কিছু বলিলে তিনি বিশেষ লজ্জিত হন। বলেন, "আত্ম প্রশংসা শ্রবণ করিলে পাপ হয় ; বন্ধুগণের

উচিত দোষত্রুটী প্রদর্শন করা; তাহা হইলে নিজেকে সহজে উন্নতির পথে চালিত করিতে পারা যায়।

তাহার পর তাঁহার ভগবদ্ভক্তি! অতি গোপনে, লোকচক্ষুর অন্তরালে অত্যন্ত অন্তরঙ্গের সহিত ভগবৎমহিমা শ্রবণ ও কীর্ত্তনে রামলোচনের লোচন বাহিয়া অজস্র অশ্রুধারা গণ্ডপ্লাবিত করিয়াছে দেখিয়া আমার ন্যায় পাষণ্ডও কতদিন ধন্য হইয়াছে।

কিছুদিন হইল মহামান্য গভর্ণমেণ্ট বাহাদুর শ্রীযুক্ত রামলোচন শরণকে 'রায়সাহেব' উপাধিতে বিভূষিত করিয়াছেন। সংবাদ প্রাপ্তিমাত্র তাঁহাকে আন্তরিক অভিনন্দন জানাইতে গিয়াছিলাম। আমার পদস্পর্শ করিয়া প্রণাম করিলেন ও বলিলেন, "গভর্ণমেণ্ট এই অকৃতীকে কেন উপাধি বিভূষিত করিলেন তাঁহারাই জানেন। তাঁহাদের দান আমার শিরোধার্য্য। তবে আপনার কাছে আমি চিরদিন 'মাষ্টার সাহেব' বা 'ভাইসাহেব থাকিতে চাই; আপনি আমাকে 'রায়সাহেব' বলিয়া ডাকিয়া লজ্জিত করিবেন না।" পদ, গৌরব, সম্মান বৃদ্ধিতেও এত অবিচলিত!

আজ পুস্তক-ভাণ্ডারের রজতজয়ন্তী। যিনি সমস্ত সুখের আকর; যাঁহার কৃপায় জগতের সমস্ত জীব সুখের অধিকারী; যাঁহার বিরাট দান স্বয়ং পৃথিবীও বহন করিতে অক্ষম; সেই পরম কারুণিক ভগবান রামলোচন বাবুকে দীর্ঘজীবন দান করুন, তাঁহার পুস্তক-ভাণ্ডারকে কুবেরের ভাণ্ডারে পরিণত করুন—ইহাই আমার আন্তরিক কামনা।



علم و ادب کی جوبلی

حکیم نذر خلیلی، حالوی

دوستو! "علم" وہ گراں مایہ اور غیر فانی دولت ہے، جو غاصبوں کے ہاتھ لگ سکتی ہے، نہ چوروں اور ڈاکوؤں کے۔ نہ کوئی آمرانہ حکومت اس کو تباہ کر سکتی ہے اور نہ کوئی حاسدانہ کوشش۔ اس کی اہمیت اور افضلیت پر جتنے اوراق سیاہ کئے جا چکے ہیں ان کو قطع نظر کیجئے۔ جتنی تقریریں ہو چکی ہیں انہیں بھول جائیے۔ اپنے دماغ کو تمام مذکورہ اثرات سے پاک کرکے بھی اگر آپ علم کی خوبیوں پر غور فرمائیے گا تو اس نتیجہ پر پہنچنا لازمی ہے کہ علم ہی وہ دولت ہے جس پر انسان بجا طور پر فخر کر سکتا ہے۔ میں آپ سے پوچھتا ہوں کہ وہ کون سی طاقت ہے جس نے آپ کو گذرے ہوئے رہنماؤں، عالموں، پادشاہوں، فلسفیوں، حکیموں، پیروں، پیغمبروں اور تمام پچھلی نسلوں کے واقعات سے آج با خبر کر رکھا ہے؟ وہ کون سی دولت ہے جس کی بدولت آج دنیا کی تمام حالتوں سے لمحہ بہ لمحہ کے انقلابات، تمام دنیا کے معاشرتی، جغرافیائی اور سیاسی حالات سے آپ با خبر ہوتے رہتے ہیں؟ وہ کون سی قوت ہے جس کے ذریعہ آج ریلوں، موٹروں، ہوائی جہازوں، ٹاکی فلموں، ریڈیو، ٹیلیفون اور ایسے بے شمار بر از منافع ذرائع سے آپ بہرہ اندوز ہو رہے ہیں؟ ان سب سوالات سے آپ قطع نظر کر لیجئے۔ صرف مجھے ایک سوال کا جواب دیجئے۔ میں آپ سے پوچھتا ہوں کہ وہ کون سی چیز ہے جس کے ذریعہ آپ اپنے رسیوں، ملیوں، پیروں اور پیغمبروں کی قدر و قیمت، اخلاقی فرائض، انسانی ضرورتوں اور مذہبی بندھنوں سے واقف ہو کر اپنے پیدا کرنے والے خدا کو پہچاننے لگے ہیں؟

ان سوالوں کا جواب ایک ہے — "علم"

انسان علم ہی کا حامل ہونے کی بنا پر اشرف المخلوقات کا درجہ حاصل کر چکا ہے ورنہ جانداری کے لحاظ سے اللہ کی پیدا کی ہوئی بہت سی مخلوقیں تھیں۔ انسان نے اپنی علمی ضرورتوں کو پورا کرنے کے لئے اور آپس میں ایک دوسرے کے خیالوں کے

معلوم کرنے اور اپنے خیالات کو دوسروں تک پہنچانے کے لئے ایک ذریعہ تلاش کیا جس کا
نام **زبان** رکھا - دنیا کے تمام ممالک نے مختلف زبانوں کی ایجاد کی اور یہی زبانیں
دنیا کے تہذیب و تمدن کی علم بردار ہیں -

ہمارے ہندوستان میں بھی بیسوں زبانیں بنائی گئیں اور سب زبانیں ایک
ایک خوبی رکھنے والی ہیں، مگر ان میں جو ہمہ گیری اور اصلیت زبان اردو اور ہندی
کو نصیب ہوئی وہ اوروں کو نہیں- ہندوستانی تہذیب کا تمام خاکہ، ہندوستانی معلومات
کے تمام ذخیرے انہیں کے اندر پوشیدہ ہیں - اگر غور کیجئے تو دونوں زبانیں دو نہیں
بلکہ ایک ہی زبان ہیں جن کو دو رسم الخط میں استعمال کیا جا رہا ہے - اور
رسم الخط کے اختلاف سے ناجائز فائدہ اٹھا کر غیر ملکی حکومت نے غیر محسوس پروپگنڈے
کے ذریعے ہندوؤں اور مسلمانوں کے دلوں کو ایسا مسموم کر رکھا ہے کہ دونوں آج اردو اور
ہندی کے درمیان ایک خلیج پیدا کرنے پر تلے ہوئے ہیں - مجھے یہاں یہ بتلانا مقصود
نہیں کہ ہندی اور اردو کی جنگ میں کون حق بجانب ہے اور کون مجرم ؟ مجھے
کہنا تو یہ ہے کہ آج اس جنگ نے دونوں کی ترقی کے راستے کو روک رکھا ہے - مجھے تو
اس جنگ کا حال سن سن کر صدمہ ہوتا ہے اور تعجب بھی کہ آج ہندوستان کی بڑی بڑی
ہستیاں بھی اس میں غافل نظر آرہی ہیں - ایسی ہستیاں جو بڑی سے بڑی
پیچیدگیوں کو دم میں ناخن عقل سے ادھیڑ کر پھینک دینے والی ہیں ، اس مسئلہ کو
آج تک کیوں نہ سلجھا سکیں - مگر ساتھ ہی یہ محسوس کرکے اطمینان سا معلوم
ہوتا ہے کہ بعض بعض ایسی ہستیاں بھی ہیں جو تعصب سے دور رہ کر عام و ادب کے
یکساں خدمات کو اپنے لئے راہ عمل بنا چکی ہیں - آج ایک ایسی ہی باکمال ہستی
بابو رام لوچن شرن کے قائم کردہ علمی ادارہ **پستک-بھنڈار** کی سلور جوبلی منانے
کے لئے ہم لوگ جمع ہیں - اس موقع پر ہمیں دیکھنا یہ ہے کہ ہمارے صوبۂ بہار کے
علمی و ادبی حالات کیا ہیں ؟ بہار اپنی تمام دوسری خوبیوں کے علاوہ ہمیشہ گنجینۂ
علم و ہنر بھی رہا ہے - موجودہ دور ترقی میں بھی ہمارا صوبہ کسی صوبہ سے پیچھے
نہیں، مگر مجھے افسوس ہے کہ ابھی تک ہماری علمی اور ادبی ضرورتیں تشنۂ تکمیل
ہیں- اس کی ذمہ داری ہماری گردنوں پر ہے - آپ کے صوبہ بہار میں مضمون نگاروں،
مصنفوں، مؤلفوں اور مترجموں کی کمی نہیں، اگر کمی ہے تو داد قلم دینے والوں کی -
ایسے ہمدرد لوگوں اور اداروں کی جو ان کے بیش قیمت علمی ذخیروں کو جمع کرکے
قوم کے استفادہ کے لئے پیش کریں - کتابوں کی تصنیف و تالیف اور اشاعت نشر کے لئے
روپیوں کی ضرورت ہوتی ہے - بہار میں دولتمندوں کی کمی نہیں، کمی ہے تو ذوق
علم و ادب کی - بد قسمتی سے دولتمند طبقہ اپنے فرض سے غافل ہے - دور کیوں جائیے،
آپ کے شہر دربھنگہ ہی میں کیا اہل مقدور حضرات کی کمی ہے ؟ ہرگز نہیں !

حضرات ! جہاں ہمیں اپنی کم مائگی احساس پر افسوس ہوتا ہے، وہاں فخر
کا موقع بھی ہے کہ صوبۂ بہار میں ہمارے ہی شہر دربھنگہ کے اندر ایک ہستی ایسی اور
ایک ادارہ ایسا موجود ہے جو بہت کافی حد تک علمی ضروریات کو پورا کر رہا ہے اور ४२१

آج پچیس سال سے صوبہ بہار کے تمام علمی و ادبی ضروریات کو پورا کرنے کے علاوہ وہ نہایت ہی بے تعصبی کے ساتھ ہندوستانی زبانوں کی یکساں طور پر خدمات انجام دے رہا ہے۔

مجھے معلوم ہے کہ مصنفوں، مؤلفوں اور مترجموں کی کس طرح اور کس قدر ہمت افزائی کی جا رہی ہے۔ صوبہ بہار کا اہل بصیرت طبقہ اچھی طرح جانتا ہے کہ بہار کی کانگریس گورنمنٹ نے جب تعلیم بالغان کا انتظام کیا تو اس موقع پر بابو رام لوچن شرن اور ان کے پستک بھنڈار نے کس طرح پمفلٹوں، کتابوں، سہل تعلیم کے لئے اردو اور ہندی چارٹوں اور دوسرے مختلف ذریعوں سے بہار گورنمنٹ کے اس علمی پروگرام کی مدد کی۔ آپ یہ جان کر خوش ہوں گے کہ اس سلسلے میں ماسٹر صاحب نے مالی امداد سے بھی گریز نہ کیا۔ اس موقع پر جالہ تھانہ کے ایک جلسہ کی طرف اگر میں آپ کی توجہ مبذول کروں تو بے جا نہ ہوگا۔ جالہ تھانہ میں پچھلے سال جب تعلیم بالغان کے نظام کو جاری کرنے کی کوشش ہو رہی تھی، اسی زمانے میں مسٹر کے۔ پی۔ سنہا کلکٹر دربھنگہ کی صدارت میں ایک جلسہ طلب کیا گیا اور عوام کے خیالات معلوم کرنے کے لئے بہت سے لوگوں کو اظہار خیال کا موقع دیا گیا۔ تعلیم بالغان کے چند مذہبی باتوں پر مسلمانوں نے اعتراض کیا۔ ان میں سب سے اہم اعتراض یہ تھا کہ وہ کتاب جو ماس لٹریسی کمیٹی کی طرف سے تعلیم بالغان کے لئے شائع کی گئی ہے، مسلمان اسے پڑھنے کے لئے تیار نہیں۔ کلکٹر صاحب کے پاس اس کے سوا کوئی چارہ نہ تھا کہ وہ مسلمانوں کے شکایات کو وزیر تعلیم کے پاس پہنچا دیں۔ اس طرح اس تعطل کو ختم کرنے میں وقت کی بربادی تھی اور خدشہ اس امر کا ہو گیا کہ ایک مفید تعلیمی عمل اس اختلاف کی بنا پر برباد نہ ہو جائے۔ ماسٹر صاحب نے موقع کی نزاکت کو محسوس کر لیا اور فوراً اعلان کیا کہ آپ حضرات کوئی دوسری کتاب جس پر مسلمانوں کو اعتراض نہ ہو، لکھ کر لائیں۔ پستک بھنڈار اسے چھاپ کر رفاہ عام کے لئے دینے کو تیار ہے۔ ' اسے کہتے ہیں تدبر اور علمی خدمات کا سچا جذبہ!'

ماس لٹریسی لائبریری کے لئے آپ نے "محمود سیریز" کے نام پر سو کتابوں کا ایک سیٹ تیار کرایا اور چھاپ کر مفت ہی کمیٹی کے حوالے کیا۔ یہ کتابیں اردو اور ہندی دونوں زبانوں میں شائع کی گئیں۔ یہ کتابیں مفید، کارآمد اور پر از معلومات ہونے میں اپنا نمونہ آپ ہیں۔ مجھے افسوس ہے کہ بہت سے خود غرض لوگوں نے ان پر اعتراضات کئے۔ یہ اعتراضات لغو اور بیہودہ تھے اور اعتراض کے پردے میں دشمنی کے رشک اور بغض کو دخل تھا۔ **ماسٹر صاحب!** کام کرنے والے ناجائز اعتراضوں سے ڈرا نہیں کرتے۔ میں آپ کو اطمینان دلاتا ہوں کہ جہاں کچھ خود غرض معترضین آپ پر حملے کرتے رہے ہیں وہاں ایک بہت بڑا ہوشمند طبقہ آپ کے جذبۂ خدمت علم و ادب کا مداح بھی ہے۔

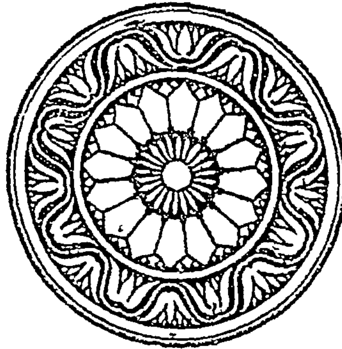
کچھ دن ہوئے، پستک بھنڈار نے ایک رسالہ ہونہار نامی شائع کرنا شروع کیا تھا۔ جو اب کسی نامعلوم سبب کی بنا پر بند ہو چکا ہے۔ اس رسالہ میں

گرچہ ابھی خامیاں باقی تھیں مگر اُس کی خوبیوں کے مقابلے میں یہ خامیاں قابل ذکر نہیں - مجھے یقین ہے کہ ماسٹر صاحب ہونہار کو دوبارہ جاری کرنے کی فکر میں ہوں گے -

حضرات! یہ محض چند نمونے پستک بھنڈار کے علمی و ادبی بے تعصب خدمات کے ہیں - ورنہ کارناموں کے بیان کرنے کے لئے ایک دفتر کی ضرورت ہوگی - مجھے کہنے دیجئے کہ اس دور میں جبکہ ہندوستان کی بڑی بڑی ہستیاں اُردو اور ہندی کے جھگڑوں میں پھنسی ہوئی ہیں، ماسٹر رام لوچن شرن جی اور پستک بھنڈار کی اس طور سے یکساں اور بے لوث خدمت قابل قدر ہے -

آج بڑی خوشی اور مسرت کا مقام ہے کہ آپ لوگ پستک بھنڈار جیسے کامیاب اور خدمت گذار علمی و ادبی ادارہ کی جوبلی منا رہے ہیں - اس مبارک گھڑی میں میری طرف سے بھی مبارکباد قبول کیجئے - مگر میری مبارکباد، ماسٹر صاحب یا پستک بھنڈار ہی کے لئے نہیں، بلکہ تمام اُن اجزاء کے لئے ہے، جو پستک بھنڈار کے کسی طرح سے بھی شریک رہے ہوں - میری نظروں میں یہ جوبلی پستک بھنڈار ہی کی جوبلی نہیں بلکہ **"علم و ادب"** کی جوبلی ہے -

ماسٹر صاحب! آخر میں میں آپ کو یقین دلاتا ہوں کہ آپ کے ادبی اور علمی کارنامے ناقابل فراموش ہیں - یہ کارنامے آئندہ نسلوں کے سامنے تاریخی صورت میں پیش ہونگے اور صوبہ بہار ہی نہیں بلکہ ہندوستان آپ پر فخر کرے گا -



A GREAT MAN OF BIHAR

Rai Bahadur Gopal Chandra Praharaj, Compiler, Oriya Lexicon, Cuttack.

Babu Ramlochan Saran is one of the most enterprising publishers of Bihar and his amiable personality has brought him a host of friends I have found him labouring with perseverance against disadvantages which he has at last overcome.

His 'Balak' is full of valuable informations not only for the young but for elderly people as well. He has taken a leading part in the propagation of juvenile literature and the spread of the Hindi language throughout India.

His strong common sense, his promptness of decision and action, his love of literature and his affection for the young people have made him known far beyond the boundaries of his mother province.

By honesty, sincerity and enterprise he has raised his concern from small beginnings to the status of a leading institution of India. He has the knack of finding out and encouraging best writers and of making solid and substantial contributions to literature.

Orissa has got its due share of his liberality. He has got many Oriya text books written and translated by competent persons. He is one of the genuine well-wishers of the Purunachandra Oriya Bhashakosha (Quadrilingual Oriya Lexicon) edited by me.

May he live long to see the Golden Jubilee of the Pustak-Bhandar.



[१]

देशपूज्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी, सदाकत-आश्रम, पटना—

[illegible]

[२]

डाक्टर सर गंगानाथ झा, एम० ए० डि० लिट्—

शिक्षाप्रचारात्परमार्थसिद्धिः
शिक्षाप्रथा पुस्तक सव्यपेक्षा।
तत्संग्रहे ये सफलप्रयत्नाः
भवन्तु कल्याणजुषः सदा ते ॥

इति पुस्तक-भंडारम्प्रति शुभाशंसनम्

दरभंगा, ६।७।४०

—श्रीगंगानाथ झा शर्मणः

[३]

डाक्टर सैयद महमूद साहब, भूतपूर्व शिक्षामंत्री, बिहार—

यह मालूम कर खुशी हुई कि 'पुस्तक-भंडार' अपनी पच्चीस साल की मुसलसल मुफीद खिदमतों के बाद इस साल अपनी जुबली मना रहा है। यह बात यकीनी काबिलतारीफ है कि यह 'भंडार' सन् १९१५ ई० में निहायत मामूली पूँजी से कायम होकर आज सूबे का एक बहुत बड़ा पबलिशिंग हाउस है जिसने हिन्दी और उर्दू की जबरदस्त खिदमत अंजाम दी है। इसके बानी बाबू रामलोचनशरण की, जिनके ऊँचे हौसले और कोशिशों का यह नतीजा है, जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा इल्म और अदब की खिदमत और सूबे में तालीम के मकसद को आगे बढ़ाने में गुजरा है। बच्चों के लिये 'पुस्तक-भंडार' ने अबतक तकरीबन् एक सौ पचास किताबें शाया की हैं जिससे हमारे मुल्क मे बच्चे के अदब में बहुत बड़ा इजाफा हुआ है, लेकिन अनपढ़ों की तालीम के मुतल्लिक पुस्तक-भंडार ने जो सस्ती और मुफीद किताबों का सिलसिला निकाला है वह इसके नाम को काफी अरसे तक जिन्दा रक्खेगा। पुस्तक-भंडार का जारी किया हुआ रिसाला 'होनहार' सहीह और सच्ची हिन्दुस्तानी का जिन्दा नमूना है और इससे हिन्दुस्तानी जबान के मकसद को कूवत पहुँची है। भंडार बच्चों के और रिसाले भी निकालता है जो हर लिहाज से बच्चों के लिये मुफीद हैं।

बाबू रामलोचनशरण की जाती खूबियो और काबलियत से भी मैं मुता-स्सिर हुआ। आपके दिल में खिदमत का सहीह जजबा है और तालीम के मकसद के लिये आपने अक्सर माली कुर्बानियाँ भी की हैं।

मै पुस्तक भंडार को और ज्यादा कामयाब देखना चाहता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि दूसरे लोग भी इसके नक्शकदम पर चलने की कोशिश करेंगे।

—सैयद महमूद

[४]

माननीय श्रीअनुग्रहनारायण सिंह, भूतपूर्व अर्थमंत्री, बिहार-सरकार

"श्रीरामलोचनशरण की साहित्यिक सेवाओं के विषय में दो रायें नहीं हो सकतीं।"

—अनुग्रहनारायण सिंह

[५]

महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा, काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ, व्याख्याता, कलकत्ता-विश्वविद्यालय—

मुझे यह कहते बड़ा हर्ष होता है कि पुस्तक भंडार ने हिन्दी-भाषियों को

अमूल्य पुस्तक-रत्न प्रदान किये हैं। जबतक हिन्दी की दुनिया विद्यमान है, तबतक उनके प्रकाश से हिन्दी-भाषियों के हृदय और मस्तिष्क जगमगाते रहेंगे। श्रीरामलोचनशरण ने भारत का, विशेषतः बिहार का, गौरव बढ़ाया है। ऐसी स्थिति में देश का कर्त्तव्य है कि वह उनका अभिनन्दन करे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे तथा उनका 'भंडार' अक्षय शक्तिशाली बनकर सरस्वती तथा उनके भक्तों की सेवा करें। उक्त शरणजी ने 'भंडार' की भक्ति करते-करते लक्ष्मी का वरदहस्त अपने ऊपर रखवा लिया है। लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों के कृपा-पात्र कम लोग होते है। शरणजी दोनों के प्रिय हैं।

[६]

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह एम० ए० सूर्यपुरा—

'पुस्तक-भंडार' गत २५ वर्षों से जिस लगन से हिन्दी की अनमोल सेवा करता आ रहा है वह किसपर विदित न है? इस संस्था ने बिहार के पुस्तक-प्रकाशन का गुरुतर भार अपने कन्धों पर लिया और सुन्दर एवं सस्ती पाठ्य-पुस्तकों तथा साहित्यिक ग्रंथों को मुद्रित कर प्रान्त की एक बड़ी कमी की पूर्त्ति की है। आज इसकी रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं तहे-दिल से बधाई देता हूँ।

[७]

श्री राय कृष्णदास, काशी—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती प्रकाशन-जगत् मे एक उल्लेखनीय घटना है। वट की नाईं एक सूक्ष्म बीज से एक विशाल वृक्ष के रूप में इस संस्था का विकास केवल बिहार ही नहीं, समूचे देश की व्यवसायी प्रगति के लिये एक गौरव का विषय है। परमात्मा से 'भंडार' को उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की प्रार्थना करते हुए, हम आशा करते हैं कि 'भंडार' आज तक जिस साधु हिन्दी का प्रचार करता आया है, जो अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में भी—अर्थात् देश-भर के बहुत बड़े भाग में—भली भाँति समझी जाती है, उसी के प्रचार में निरत रहेगा। यह दूने हर्ष की बात है कि 'भंडार' के जन्मदाता और स्वत्वाधिकारी मास्टर रामलोचनशरणजी बिहारी की स्वर्ण-जयन्ती भी इसी अवसर पर सम्पन्न हो रही है। मास्टर साहब कर्त्तव्यपरायणता, एकनिष्ठा और अध्यवसाय की मूर्त्ति हैं। देश के व्यवसायियों के लिये उनका जीवन एक आदर्श है। जगन्नियता करें, वे अनेक वर्षों तक अपने सफल जीवन-द्वारा हमारी उगती पीढ़ी को मार्ग दिखाते रहे।

[८]

पंडित रामनारायण मिश्र सभापति नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी—

श्रीरामलोचनशरण के पुस्तक-भंडार ने न केवल बिहार की सेवा की है, वरंच हिन्दी को ऊँचा उठाने मे सारे भारत की सेवा की है।

[९]

राय ब्रजराजकृष्ण बी. ए., बी० एल., एम. एल. सी., एफ. पी. यू., आनन्दबाग, पटना सिटी—

अब से २५ वर्ष पहले साधारण-रूप मे कार्य-आरम्भ कर आज यह 'पुस्तक-भंडार' बिहार की एक प्रमुख प्रकाशन-संस्था बन गया है और इस पचीस साल की अवधि मे इसने आशातीत सफलता प्राप्त की है। व्यवसाय के साथ-साथ हिन्दी की जितनी सेवा संभव है, उतनी करने का इस भंडार ने अच्छा प्रयत्न किया है। इसके मुख्य पत्र 'बालक' ने कोमलमति बालकों में ज्ञान विस्तार के लिये सराहनीय उद्योग किया है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर इस संस्था ने बहुतेरी उपयोगी पुस्तकें—हर प्रकार की और भिन्न-भिन्न विषयों पर—प्रकाशित की हैं। मैं 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर श्रीरामलोचनशरणजी को बधाई देता हुआ हृदय से 'भंडार' की उन्नति चाहता हूँ।

[१०]

पंडित धर्मराज ओझा एम. ए., काव्यतीर्थ, प्रिंसिपल संस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर—

'पुस्तक-भंडार' के अध्यक्ष, बाल-साहित्य के निर्माता, बाबू रामलोचनशरणजी बिहारी ने हिन्दी-साहित्य के अभ्युत्थान और प्रचार के लिये निःस्वार्थ और अटूट परिश्रम किया है, उसके लिये हिन्दी-साहित्य का प्रेमी-जगत् उनका कृतज्ञ है और रहेगा। यह उनके महान् त्याग और अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र मे भारत के किसी भी प्रान्त के सामने बिहार अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। छात्र-जीवन-काल से ही इनके साथ मेरा घनिष्ठ संबंध रहा है। इनके हृदय की उदारता और हिन्दी-साहित्य-सेवा की प्रगाढ़ लगन का परिचय मुझे गत तीस वर्षों से है। उसी समय इनके हृदय में हिन्दी-साहित्य के प्रति पवित्र प्रेम और उसके प्रचारार्थ अदम्य उत्साह बीज-रूप में समीक्षकों को प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगे थे। वे ही आज पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर हिन्दी-साहित्य के भंडार को अमूल्य पुस्तक-रत्नों से भर रहे हैं। ऐसे तो

पुस्तकों और पत्रों के प्रकाशन के लिये अनेक संस्थाएँ हैं, परन्तु इनके प्रकाशन-कार्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस व्यवसाय में इन्होंने आर्थिक लाभ को नहीं, प्रत्युत हिन्दी-साहित्य की सच्ची सेवा को ही प्रधान स्थान दिया है।

[११]

भिक्षु आनंदकौसल्यायन, सारनाथ, बनारस—

'पुस्तक-भंडार' के जितने प्रकाशन मेरी नजर से गुजरे हैं, सभी काम के। पत्रों में 'बालक' का अपना खास स्थान है। मेरे एक स्याम देश के विद्यार्थी अपने देश के पत्रों से जब यहाँ के पत्रों की तुलना करते हैं, तब मैंने देखा है कि वह 'बालक' की विशेष प्रशंसा करते हैं। मेरी कामना है कि देश के भावी नागरिकों—बालकों—का पथ-प्रदर्शक 'बालक' चिरञ्जीवी हो। 'भंडार' की जयन्ती के अवसर पर मेरी हार्दिक मंगलकामना स्वीकृत हो।

[१२]

डाक्टर रामकुमार वर्मा, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय—

'पुस्तक-भंडार' से मेरी पहली पहिचान 'बालक' के द्वारा हुई, जब मै स्वयं एक विद्यार्थी था और प्रतिमास 'बालक' के नवीन अंक की प्रतीक्षा में रहता था। तब से अबतक मैंने 'भडार' की अनेक पुस्तकें पढ़ीं। मेरा ऐसा विश्वास है कि भारत की प्रमुख हिन्दीसंस्थाओं में 'भंडार' भी है। जहाँ तक मै इस संस्था की पुस्तकें पढ़कर ज्ञात कर सका हूँ, साहित्य का सांस्कृतिक दृष्टिकोण और उसका देशव्यापी प्रचार इसका आदर्श रहा है और मै इस आदर्श को श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। मुझे आशा है, इस संस्था से भविष्य में हिन्दी की अनेक सेवाएँ होंगी।

[१३]

पं० धर्मदेवशास्त्री, दर्शनकेशरी, दर्शनभूषण, सांख्य-योग-वेदान्त-न्यायतीर्थ, कन्यागुरुकुल, देहरादून—

'पुस्तक-भंडार' हिन्दी-साहित्य की जो सेवा कर रहा है और जिस खूबी के साथ हिन्दी-प्रकाशन-क्षेत्र मे सर्वाङ्गीण उन्नति कर रहा है, वह प्रशंसनीय है। बिहार के लिये ही नहीं, भारत के लिये वह गौरव की चीज है। उसके संचालक और व्यवस्थापक जिस उत्तमता के साथ कार्य कर रहे हैं, वह अनुकरणीय है। मैं 'भंडार' की सर्वतोमुखी उन्नति चाहता हूँ और सञ्चालकों को बधाई देता हूँ। 'बालक' मेरा प्रिय पत्र है। यद्यपि वह अब १५ वर्ष का होने लगा है तब भी वह अपने स्वरूप को स्थिर बनाये हुए है। 'बालक' में प्रायः सभी उपयोगी विषयों पर

लेख छपते हैं। चित्र-संग्रह तो 'बालक' की अपनी ही चीज है। बालकों के लिये 'बालक' अपना पत्र है और प्रौढ़ों के लिये आश्चर्य-दृष्टि से देखने की चीज।

[१४]

ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायण व्यास (विद्यारत्न), भारती-भवन, उज्जैन—

श्रीरामलोचनशरण का 'बालक' और 'पुस्तक-भंडार' एक ही वस्तु के दो नाम हैं। जिस प्रकार साहित्य-सेवा करके 'भंडार' ने शुभ्र कीर्त्ति प्राप्त की है, बिहार का नाम बढ़ाया और विस्तृत किया है, उसी प्रकार 'बालक' ने अनेक परिवारों में प्रवेश कर लोकप्रियता पाई है। 'बालक' निरा अज्ञान-बालक नहीं है, वह बड़े-बूढ़ों को भी सीख देने की क्षमता रखता है। दस-बारह वर्ष हुए, 'भंडार' और 'बालक' से मैं परिचित हुआ हूँ। उसकी पिछली प्रतियाँ अबतक भी मेरे पास सुरक्षित हैं। उनमें कुछ विशेषांक तो इतने सुरुचिपूर्ण सम्पादित हैं कि बड़े-बड़े नामधारी मासिकों के भी वैसे विशेषांक न मिलेंगे। उनका साहित्य इतना बढ़िया है कि हर घर मे बालकों के सुसंस्कार के लिये उनका सुरक्षित रखना परमावश्यक है। मैं तो बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अभी तक मुझसे लेकर कई परिवारों ने अपने बालक-बालिकाओं में इनका उपयोग किया है और इस बात के कायल भी हुए हैं कि इतना उत्तम साहित्य बालकों के लिये आज कई संग्रह-पुस्तकों में भी एकत्र ढूँढ़े न मिलेगा। अकेले 'बालक' के कारण भी हिन्दी-जगत् में तथा सभी प्रान्तों मे बिहार की इस उत्कृष्ट संस्था 'भंडार' का नाम चिरकाल तक रहेगा। फिर 'भंडार' की अनन्य साहित्य-सेवा भी कम महत्त्व की नहीं है। बाल-साहित्य के नाते तो उसका अपना इतिहास स्वतंत्र और सुवर्णवर्णाङ्कित होने योग्य है। मैं अपनी ओर से इस जयन्ती के प्रसंग पर सद्भावनापूर्ण शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ। हिन्दी के इतिहास में यह संस्था अमर रहे और निरन्तर सुन्दर साहित्य-सृजन कर भारती के भंडार को वैभवपूर्ण करे।

[१५]

श्रीआनन्दराव जोशी बी. ए., फडनीसपुरा, नागपुर सिटी—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर आपने जयन्ती स्मारक-ग्रंथ प्रकाशित कराने का जो शुभ आयोजन किया है, उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। 'भंडार' ने पिछले पचीस वर्षों में हिन्दी की जो सेवा की है वह निस्सन्देह अभिनंदनीय एवं चिरस्मरणीय है। उसके 'बालक' ने तो हिन्दी की बालकोपयोगी

पत्र-पत्रिकाओं में अग्रस्थान प्राप्त कर लिया है। 'भंडार' की शुक्लेन्दुवत् वृद्धि तथा उन्नति हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

[१६]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', एम. ए., जिला कां. क., पूर्णिया—

'पुस्तक-भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीयुत रामलोचनशरणजी के साहित्यिक प्रयत्नो से मैं, एक अरसे से, परिचित हूँ। बचपन बीत जाने के बाद भी उनके 'बालक' का मै एक उत्साही पाठक हूँ। 'भंडार' द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी-जगत् मे अपना एक खास स्थान रखती हैं और 'बालक' बड़े-बूढ़ों का भी ज्ञानवर्द्धन तथा मनोरंजन करता है। मैं इस संस्था के दिनानुदिन विकास की कामना करता हूँ।

[१७]

प्रोफेसर विश्वनाथप्रसाद, एम. ए., बी. एल., साहित्याचार्य, साहित्यरत्न; पटना-कालेज, पटना—

युगप्रवर्त्तक भारतेन्दु के ग्रन्थों के प्रकाशन तथा हिन्दी-सेवा के द्वारा किसी जमाने में खड्गविलास प्रेस ने हमारे प्रान्त के लिये जो गौरव अर्जित किया था, आज आधुनिक हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि तथा सेवा के द्वारा 'पुस्तक-भंडार' ने भी प्रान्त को पुनः उसी गरिमा से विभूषित किया है। वर्त्तमान युग के प्रवर्त्तक स्वर्गीय द्विवेदीजी, रहस्यवाद के श्रेष्ठ कवि 'प्रसादजी', महाकवि 'हरिऔध' आदि अनेक साहित्य-महारथियों के ग्रंथों के प्रकाशन का श्रेय 'भंडार' पहले ही उपलब्ध कर चुका है। इसके अतिरिक्त प्रान्त के योग्य लेखकों और कवियों को इसकी ओर से सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसके संस्थापक तथा संचालक बाबू रामलोचनशरणजी कोई बहुत बड़े धनपति नहीं थे; केवल प्रगाढ़ साहित्यानुराग और मातृ-भाषा के सेवा-भाव का उत्साह ही उनका मूल धन था। उसीके द्वारा उन्होंने यह 'भंडार' खड़ा किया और आजकल इसका संचालन करते जा रहे हैं। उनमें अनोखी सूझ है, अदम्य सेवा-भावना है, पैनी व्यावसायिक बुद्धि है और है असाधारण योग्यता। पर सबसे बड़ा गुण जो उनमे है वह है उनकी सहृदयता तथा गुणग्राहकता। उन्होंने जिन कवियो या लेखकों की कृतियों का प्रकाशन किया है, उनमें से कोई भी ऐसा न होगा जिसे उनकी सज्जनता का परिचय न मिला हो। अपनी सहृदयता के द्वारा उनसे वे ऐसा स्नेह का सम्बन्ध कायम कर लेते हैं, जो अमिट हो जाता है। मैं उनकी सहृदयता का कायल हो चुका हूँ। बिहार-प्रान्त की यह साहित्यिक संस्था बराबर फूलती-फलती रहे, साहित्य का यह 'भंडार' सदा भरापूरा रहे, यही मेरी हार्दिक मंगल-कामना है।

[१८]

प्रोफेसर कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम. ए., एल. टी. (लेकचरर डी० ए० वी० कालेज) बनारस—

मेरा सम्पर्क 'पुस्तक-भंडार' से बहुत पुराना है। 'बालक' तो पहले अंक से आज तक बराबर पढ़ता चला आया हूँ। यदि श्रीरामलोचनशरणजी और कोई पुस्तक न लिखते, केवल 'बालक' ही सम्पादित करते, तो भी हिन्दी-साहित्य में उनका नाम स्थायी रहता। 'बालक' ने हिन्दी मे कितने लेखक पैदा किये, नवयुवकों को कितना प्रोत्साहन दिया, यह हिन्दीवालों से छिपा नहीं है। नाम के लिये वह बालक-बालिकाओं के लिये है; मगर कौन प्रौढ़ व्यक्ति कह सकता है कि 'बालक' से उसकी भी ज्ञानवृद्धि नहीं होती है। हिन्दी मे जो दो-तीन बड़े-बड़े पुस्तक-प्रकाशक है, जिन्होंने सत्साहित्य का प्रकाशन कर हिन्दी-माता को सम्पन्न बनाया है, उनमे आप भी एक हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'पुस्तक-भंडार' का नाम अमर है, इसमे दो मत हो नहीं सकते। ईश्वर करें, दिनदिन 'भंडार' उन्नत हो। हिन्दी-द्वारा वह बिहार ही नहीं, भारतवर्ष की सेवा कर रहा है। आपने जिस स्थिति से 'पुस्तक-भंडार' को इस रूप में उठाया है, वह भी अध्यवसाय का एक सुन्दर उदाहरण है।

[१९]

श्रीप्रवासीलाल वर्मा मालवीय, काशी—

'पुस्तक-भंडार' हिन्दी के उद्बोधक तथा सुन्दर-साहित्य की एक गौरवशील संस्था है। मुझे इसका परिचय लगभग १४ वर्षों से है। इसका 'बालक' अपनी कोटि का अनोखा पत्र है। उसके विविध विशेषांक हिन्दी-साहित्य में सर्वदा के लिये अद्भुत तथा अमर रहेंगे। 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी साहित्यिक कार्यों में धन-व्यय करने का जैसा साहस रखते हैं, वैसी ही हार्दिक लगन भी। उनकी इसी लगन और अन्य आकर्षक गुणों ने 'भंडार' को आज बिहार ही नहीं, भारतवर्ष के लिये एक आदर्श संस्था बना छोड़ा है। उसने इधर १५–२० वर्षों में बालको और युवकों के लिये जैसा उत्तम साहित्य प्रकाशित किया है, उसके कारण वह अभिनन्दन के योग्य हैं। प्रसन्नता की बात है कि बिहार का शिक्षित-समुदाय पुस्तक-भंडार तथा उसके संस्थापक की रजत-स्वर्ण जयन्ती मनाने का आयोजन कर रहा है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि जिस भंडार ने हिन्दी में ऐसा उत्तम साहित्य प्रकाशित किया हो, और उसके संस्थापक ने एक आदर्श स्थापित किया हो, उसकी रजत और स्वर्ण-जयन्ती सर्वथा सार्थक

है। हम ईश्वर से प्रार्थी हैं कि उनकी सद्बुद्धि से सर्वदा इसी प्रकार लोकोपकार होता रहे।

[२०]

पं० हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी, एल-एल. बी., साहित्यरत्न, सम्पादक 'सरयूपारीण', गोरखपुर—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के इस शुभ अवसर पर हम 'भंडार' का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। 'भंडार' ने हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि के लिये जो स्तुत्य प्रयास किया है, वह साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जायगा। 'भंडार' की सेवाएँ बहुमूल्य रही हैं। बिहार-प्रान्त के लिये 'भंडार' उत्तम साहित्य का उद्गम स्थान रहा है। न मालूम कितने सहृदय हिन्दी-सेवकों ने 'भंडार' की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन पाकर ही मातृभाषा के चरणों में अपनी कमनीय कृतियों की सुमनाञ्जलि समर्पित की है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी उन धुनी व्यक्तियों में हैं, जिनका जीवन साहित्य-सेवा में ही व्यतीत हुआ है। आपने अनेक उपादेय पुस्तकों का सम्पादन और प्रणयन किया है। मैथिल-कोकिल विद्यापति की रम्यस्थली मे जब हिन्दी के हिमायती बहुत कम थे, उस समय भी आपने वहाँ राष्ट्रभाषा का झंडा ऊँचा रक्खा। 'भंडार' भविष्य में भी मातृभाषा की सर्वतोमुखी सेवा में निरत रहे—यही कामना है।

[२१]

प्रोफेसर माहेश्वरीसिंह 'महेश', एम० ए०, टी० एन० जे० कालेज, भागलपुर—

एक अत्यन्त लघुबीज, प्रकृति का कोमल स्पर्श पा, विशाल वटवृक्ष के रूप में परिणत हो, शत-शत जीवों को अपने दिव्य अंचल एवं सघन छाया में रख उन्हें स्वर्गीय सुख एवं आनंद पहुँचाता है। ठीक उसी प्रकार लघु 'पुस्तक-भंडार', श्रीरामलोचनशरणजी के अदम्य अध्यवसाय का मधुर संयोग पा, आज विशाल पुस्तक-भंडार के रूप में परिणत हो गया है। इसके पावनक्रोड, विशाल अंचल एवं शीतल छाया में सारा हिन्दी-संसार आनन्दोल्लास की किलकारियाँ मार रहा है। मेरा विश्वास है, जिस प्रकार आज से सदियों पहले मानव-जाति के बड़े लाल को वटवृक्ष के तले मानवता का संदेश मिला था—जो संदेश-प्रकाश सारी सृष्टि के तमस्तोम मिटाने तथा उसके नव्य संस्करण का कारण बना था, उसी प्रकार हिन्दी-संसार एक दिन इस वट के तले वह संदेश-दीप जला सकेगा, जिसके प्रकाश में वह नव समृद्धि एवं नवीन प्रगति की सृष्टि कर सकेगा।

[२२]

साहित्याचार्य परमेश्वरप्रसाद शर्मा एम० ए०, बी० एल, प्रोफेसर, सेंट्कौलम्बाज कालेज, हजारीबाग—

यह 'बिहारी' जी की सुव्यवस्था का ही मधुर फल है कि 'बालक' हिन्दी-साहित्य की सेवा-द्वारा बिहार-प्रान्त के मुँह की लाली रक्खे हुए है। आशा है कि दिन-दिन उन्नति-मार्ग में अग्रसर हो यह साहित्य की उत्तरोत्तर सेवा-द्वारा बालकों, युवकों और प्रौढ़ों का मनोरञ्जन कर उनकी ज्ञान-लिप्सा को तृप्त करता रहेगा।

[२३]

साहित्यरत्न श्रीरासविहारीराय शर्मा, एम. ए., ट्रेनिङ्गस्कूल, राँची—

'पुस्तक-भंडार' ने हिन्दी के लिये जितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसके लिये 'भंडार' के अध्यक्ष श्रीयुत बाबू रामलोचनशरणजी यथार्थतः बधाई के पात्र हैं। पुस्तक-प्रकाशन, 'बालक' के सम्पादन, ग्रन्थ-प्रणयन आदि के रूप मे शरणजी ने हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा की अमूल्य सेवा की है और साहित्य-क्षेत्र में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। वास्तव में शरणजी बिहार के गौरव हैं। मैं इस जयन्ती के अवसर पर 'भंडार' की शुभकामना करता हूँ और चाहता हूँ कि इसकी उन्नति दिन-दूनी रात-चौगुनी हो।

[२४]

प्रोफेसर रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र' एम० ए०, तेतरिया, भागलपुर—

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में सदा संलग्न रहनेवाले 'पुस्तक-भंडार' की यह रजत-जयंती एक राष्ट्रीय अनुष्ठान है। ऐसे शुभावसर पर मेरा सहस्र साधुवाद स्वीकार करें। हिन्दी के साहित्य-भंडार को यथाशक्ति पूर्ण करने में आपके 'भंडार' की कार्य्यतत्परता की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। आपके अटूट अध्यवसाय, अलौकिक साहित्यानुराग एवं अमर लोक-सेवा ने 'भंडार' को उन सद्गुणों से आभूषित कर दिया है, जिनके द्वारा यह हिन्दी-साहित्य को गौरवमय बनाने में समर्थ हो सकेगा। मेरा तो एकान्त विश्वास है कि आपके औदार्य्यपूर्ण सेवा-व्रत के अमोघ फल-स्वरूप 'भंडार' के ग्रंथ-रत्नों की अजस्र किरणों से समग्र हिन्दी-संसार उद्भासित होता रहेगा। जगन्नियन्ता आपको सुदीर्घ जीवन प्रदान करें जिससे 'भंडार' सदा अपने सुन्दर प्रकाशन-कार्य द्वारा हिन्दी-साहित्य की अनुकरणीय सेवा में अहोरात्र संलग्न रहे।

[२५]

पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव', एम० एल० ए०, रजिस्ट्रार, हिन्दी-विद्यापीठ, देवघर—

किसी संस्था या व्यक्ति की महत्ता का अनुमान इससे नहीं किया जाता कि अर्थ या ख्याति की उपलब्धि में उसका भाग कितना बड़ा है, बल्कि इससे कि जन-समाज को प्रबुद्ध करने में उसकी प्रेरणा कितनी तीव्र है। इस दृष्टि से 'पुस्तक-भंडार' और उसके संचालक प्रसंशा के पात्र हैं कि उनके द्वारा नवीन बिहार के शैशवकाल में लोगों को आत्मबोध और स्वावलंबन की प्रबल प्रेरणा मिली। वह प्रेरणा जन-रुचि को वहाँ तक ले गई जहाँ से जीवन की बिलकुल सामान्य स्थिति के अन्दर असाधारण अभ्युदय के दर्शन होते हैं—जहाँ लघुता के आवरण में महत्ता की झाँकी मिलती है। सच तो यह है कि उस प्रेरणा ने व्यापार को एक नई दिशा सुझाकर साहित्य-सृजन द्वारा राष्ट्रीय हित को परिपुष्ट करने का एक नूतन संदेश दिया है। हम बिहारवाले आज पुस्तक-भंडार और उसके संचालक को देखकर गौरवान्वित होते हैं। आज हमारी साहित्यिक स्थिति सबल हो गई है, हमारी प्रकाशन रुचि ऊपर उठ गई है और हमारे साहित्यिक जीवन का धरातल ऊँचा हो गया है। इसका सारा श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को है। 'भंडार' की रजत-जयन्ती के अवसर पर हम उसकी मंगलकामना करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसी संस्था और ऐसे व्यक्ति युग-युग जीयें।

[२६]

श्रीयुत लक्ष्मीकान्त झा, आइ० सी० एस०, जमशेदपुर—

'पुस्तक-भंडार' ने अनपढ़ को पढ़ाने में, अशिक्षित को शिक्षा देने में, विद्याप्रचार में जितनी सहायता दी है, उतनी सहायता बहुत कम लोगों ने की है। 'भंडार' मास्टर साहब का और मास्टर साहब भंडार के प्राण हैं। ईश्वर दोनों को दीर्घजीवी बनावें।

[२७]

अखौरी वासुदेवनारायणसिंह, हिन्दी-ट्रान्सलेटर, बिहार-सरकार सेक्रेटेरियट, पटना—

विगत २५ वर्षों से 'पुस्तक-भंडार ने साहित्यिक पुस्तक-प्रकाशन एवं हिन्दी-प्रचार द्वारा राष्ट्र-भाषा की जो अमूल्य सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय

है। इसने प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य-निर्माण में बिहार किसी से पीछे नहीं। पुस्तकों को आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण बनाने का जो अनुकरणीय ढंग 'भंडार' ने अपनाया है, वह सच-मुच अभिनन्दनीय है। बालोपयोगी साहित्य के सृजन में 'भंडार' ने विशेष सफलता प्राप्त की है। 'भंडार' सदैव इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे—यही हमारी मंगल कामना है।

[२८]

पं० कृष्णबलवंतपावगी, अध्यक्ष, हितचिन्तक प्रेस, काशी

श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी'जी युवकों तथा व्यवसायियो के लिये आदर्श हैं। आपकी उद्योगशीलता, सत्यव्यवहार तथा सबसे प्रेमपूर्ण बर्ताव सराहनीय हैं। हम आपकी स्वास्थ्य-कामना करते तथा आपके स्थापित 'भंडार' की दिनोंदिन उन्नति चाहते हैं।

[२९]

पं० बालकृष्ण शास्त्री, अध्यक्ष, ज्योतिषप्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस—

बिहार के लोकप्रिय बाबू रामलोचनशरणजी ने आज पचीस वर्षों से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपके 'पुस्तक-भंडार' ने अपने सुन्दर प्रकाशन से बिहार ही मे नहीं, वरन् समस्त भारत मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। आप बच्चो से बड़ो तक के लिये उपयुक्त पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते हैं। 'बालक' बाल-साहित्य का एक सुंदर प्रतीक है। आज आपही के प्रयास का यह फल है कि 'भंडार' उन्नति के मार्ग पर स्थित है। मुझे विश्वास है कि 'भंडार' अपने प्रकाशन-द्वारा चिरकाल तक राष्ट्र तथा हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहेगा।

[३०]

श्रीहरिमोहनलालवर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न, 'आरोग्यमित्र'-सम्पादक—

सुविख्यात 'पुस्तक-भंडार' अपने जन्मकाल से ही हिन्दी-जगत् में स्थायी महत्त्व रखनेवाले साहित्य का सृजन कर रहा है। श्रीरामलोचनशरण बिहारी एक कर्मठ साहित्य-सेवी हैं, जिन्होंने उत्तम ग्रंथों के प्रकाशन एवं 'बालक' के उत्कृष्ट सम्पादन द्वारा बिहार-प्रान्त को सब प्रकार गौरवान्वित किया है। मैं अपनी समस्त शुभकामनाओं के साथ उनका अभिनंदन करता हूँ। आशा करता हूँ कि साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति 'भंडार' के लिये लोकप्रियता का पथ प्रशस्त करती रहेगी।

[३१]

साकेतवासी रायसाहब राजेन्द्रप्रसाद, पी० ई० एस०, भूतपूर्व इंसपेक्टर स्टुडेंट्स रेजिडेन्सेज, पटना तथा एक्स-ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, छपरा—

ॲंगरेजी भाषा मे एक कहावत है—'Child is the father of man' तथा 'The morning shows the day' यानी 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। इन कहावतों का व्यवहार प्रायः ऐसे महानुभावों के सम्बन्ध मे किया जाता है जो सयाने होने पर अदम्य परिश्रम से सत्पथ पर अग्रसर होकर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाते हैं। श्रीरामलोचनशरणजी भी ऐसे ही महानुभाव व्यक्तियो मे हैं। सन् १९०६ ई० मे मैं दरभंगा से बदलकर पटना-ट्रेनिंग-स्कूल में आया और वहाँ पर डेढ़ वर्ष तक शिक्षक का कार्य सम्पादन किया। उस समय अन्तिम उच्च श्रेणी मे दो छात्र बड़े होनहार, तीव्र बुद्धि वाले और परिश्रमी थे। उनमें एक थे श्रीरामलोचनशरणजी।

सयाने होने पर शरणजी मे श्री भगवान्‌जी के चरण-कमलों में श्रद्धा उत्पन्न हो आई और इससे इनका शुभजीवन सुगन्धित सोना बन गया। श्रीभगवान्‌जी के अनुग्रह से ये व्यवहार मे बड़े कुशल हुए जिससे आशातीत उत्तम फल देखने मे आया। बिहार में ये अपने उत्तम कार्यों से उच्च पद को प्राप्त करने के लिये अग्रसर हो रहे है।

हमारी माननीय गवर्नमेंट ने इनके शुभगुणों का सम्मान-स्वरूप इनको 'रायसाहब' की उपाधि प्रदान की है। हमारी शुभ कामना है कि जिस उत्साह, परिश्रम और अध्यवसाय से ये जनता की शिक्षा-सम्बन्धी सेवा कर रहे हैं, निकट भविष्य मे अधिक-से-अधिक उच्च पद तथा सम्मान के पात्र बने। इति शुभम्।

[३२]

श्रीयुत रामधारीप्रसाद, बिहारप्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, मुजफ्फरपुर (वर्त्तमान—सेंट्रल जेल, हजारीबाग)—

'पुस्तक-भंडार' की रजत-जयन्ती के शुभअवसर पर मैं 'भंडार' तथा उसके सर्वेसर्वा श्रीरामलोचनशरणजी को हृदय से बधाई देता हूँ। 'भंडार' ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की जो अपूर्व सेवा की है वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखने लायक है। 'भंडार' से जितनी सुन्दर सुन्दर साहित्यिक पुस्तके निकली है उतनी एक साथ बिहार को किसी दूसरी प्रकाशन-सस्था से नहीं निकलीं। बिहार के नये-पुराने लेखकों की कृतियो का सुन्दर ढँग से छापकर

प्रकाश में लाने तथा बिहार के युवा-साहित्य-सेवियों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित कर आगे बढ़ाने का काम 'भंडार' ने किया है, इसके लिये प्रत्येक हिन्दी-सेवी के हृदय में 'भंडार' के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव उठने लगते हैं। लगातार १५-१६ वर्षों से, अनेक वर्षों तक निरन्तर घाटा उठाकर भी 'बालक' का प्रकाशन कर 'भंडार' ने बिहार का गौरव बढ़ाया है। आज 'बालक' निश्चय ही बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं मे आदरणीय तथा श्रेष्ठ स्थान रखता है।

'भंडार' के अध्यक्ष श्री मास्टर साहब के सम्बन्ध में तो कुछ लिखना बेकार ही है। 'भंडार' ने आज जो कुछ गौरव पाया है उसका सारा श्रेय मास्टर साहब को ही है। मास्टर साहब ने हिन्दी-सेवा की अनेक दिशाओं में अपने प्रान्त मे मार्गप्रदर्शक का काम किया है। गत २५-३० वर्षों की अपनी एकान्त साहित्य-साधना के कारण मास्टर साहब बिहार के साहित्य-सेवियों के बीच आदरपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर उनका अभिनन्दन कर वास्तव में हम हिन्दी-सेवी अपना अभिनन्दन करते है। भगवान करें, मास्टर साहब तथा उनका 'भंडार अनेक वर्षों तक जीवित रहकर हिन्दी की सेवा करते रहें।

[३३]

श्रीअवधनन्दनजी, दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मद्रास—

'शरणजी' ने बालसाहित्य तैयार करने में जो सफलता पाई है, उससे दक्षिण-भारत के हिन्दी-प्रचार-कार्य में भी काफी सहायता मिलती रहती है। आशा है, भविष्य में लोग आप से और भी अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

[३४]

श्रीमती विमलादेवी 'रमा' (साहित्यचंद्रिका), डुमरॉव (शाहाबाद)—

बिहार के प्रकाशकों में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नाम श्रीरामलोचन-शरणजी का है, जिन्होंने अपने अदम्य उत्साह और स्वाभाविक सुरुचि से कितने ही बिखरे साहित्य-सुमनों को चुनकर सुन्दर हार बनाया है। आपने सुसम्पादित साहित्यिक पुस्तकें आकर्षक सजावट के साथ प्रकाशित की हैं। अनेक बालोपयोगी पुस्तकों तथा 'बालक' पत्र के द्वारा बालकों के सच्चे हितैषी का सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है। इसमे संदेह नहीं कि शरणजी में अनोखी सूझ है। एक सूक्ष्म वट-बीज से एक विशाल वृक्ष के रूप मे संस्था का विकसित होना केवल बिहार ही के लिये नहीं, समूचे देश की प्रगति के लिये गौरव का विषय है। 'भंडार' की उत्तरोत्तर वृद्धि हो, यही मेरी शुभकामना है।

[३५]

पं० कालीप्रसादसिंह चौधरी 'मीत', पर्णकुटी, हथुआ (गया)—

पुस्तक-भंडार ने और उसके संस्थापक तथा 'बालक'—सम्पादक ने बिहार और हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, वे इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों से लिखी जाने योग्य हैं। जिस योग्यता से वहाँ का 'बालक' सुसम्पादित होकर निकलता है वह बिहार के लिये गर्व की वस्तु है। रजत-जयन्ती आयोजन नितान्त स्तुत्य है। ऐसे सुअवसर पर मुझ ब्राह्मण का एकमात्र यही शुभाशीर्वाद है—

"चिरजीवै 'बालक' सकल-गुण-गरिमा-दातार,
'मीत' सुसम्पादक लहैं मंगल-मोद अपार।"

[३६]

श्रीसहदेव पंजिकार, भागलपुर—

मैं मंगलमय भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि आपका 'पुस्तक-भंडार', जो बिहार में एक ही है, उन्नति-पथ पर सदा डटा रहे। यह शिक्षकों की सेवा करने में बराबर तल्लीन रहा है। यह प्रत्येक साहित्य-सेवी के लिये गौरवस्तम्भ बना रहेगा।

[३७]

श्रीनरेन्द्र मालवीय, काशी—

'पुस्तक-भंडार' ने उत्तमोत्तम पुस्तकें तथा 'बालक' प्रकाशित कर देश की तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो बहुमूल्य सेवाएँ की हैं, वे उसका नाम अमर बनाये रक्खेंगी। रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं आपका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। 'बालक' हिन्दी-साहित्य को 'भंडार' की ओर से एक अमूल्य देन है। वह दिन-दिन उन्नति करता जा रहा है। आज वह देश के बालकों का सर्वप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ पत्र है। बड़ी लगन के साथ वह बालकों के एक सच्चे मित्र तथा आदर्श शिक्षक का कार्य कर रहा है। वह दिन-दिन फूले-फले।

[३८]

श्री गोविन्दलाल झंगर, गया—

'बालक' ने बालकों और इतर वर्गों की जो सेवा की है, वह अकथनीय है। बालकों एवं शिक्षकों के बौद्धिक विकास में इसका महत्त्वपूर्ण हाथ है। इसके सम्पादक बाबू रामलोचनशरणजी की कर्मठता का ही फल है कि 'बालक' को सर्व-साधारण ने अपनाया है। आपके उदार सज्जनोचित व्यवहार का पता उस समय मिला था जब बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन

लहेरियासराय में हुआ था। आपके सुन्दर व्यक्तित्व की झाँकी बराबर 'बालक' में देखने को मिला करती है। परमात्मा 'बालक' को अमर करे।

[३९]

श्री के० भुजबली शास्त्री 'विद्याभूषण', जैन-सिद्धान्त-भास्कर' एवं 'वीरवाणी' के सम्पादक, आरा—

श्रीयुत रामलोचनशरणजी के द्वारा लिखित और प्रकाशित अनेक पुस्तकों को मैंने देखा है। उनकी छपाई और सजावट सुन्दर और चित्ताकर्षक है। इस सुन्दर साहित्य-निर्माण के लिये आप प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं।

[४०]

पं० यदुनन्दन शर्मा, दरभंगा—

पवन-प्रताप गगन रज चढ़ता पर ऊपर पाता न ठहर है।
विलग वायु से फिर वह रज-का-रज ही रह जाता गिरकर है॥
शैल स्वयं बढ़ता लघु-लघु ही होती बाढ़ चिरस्थायी है।
रज रज रहा, स्वावलम्बन से गिरिवर ने गुरुता पायी है॥
रही न रज की रीति आपकी, आप स्वावलम्बन के बल से।
शनैः-शनैः बढ़ शैल-सरिस साहित्य-सृष्टि में लसे अचल-से॥
जोड़ उपेक्षित टुकड़ों को साहित्य-सदन निर्माण किया है।
शिल्पी मय-सा सरस्वती की शिल्पकला का त्राण किया है॥
जहाँ पत्र अप्राप्य वहाँ पर रच 'पुस्तक-भंडार' दिया है।
रजत-जयन्ती कर साहित्यिक जग का आशीर्वाद लिया है॥
माला-पर-माला रचते हैं सरस्वती-माँ के पूजन में।
वितर शारदा का प्रसाद, कर लिया नाम है सदन-सदन में॥
अमर रहें साहित्य-लताएँ अमल 'सुयश ज्योत्स्ना यह न्यारी।
लह-लह करती रहे लुभाती नित यह साहित्यिक फुलवारी॥
यही कामना है मेरी, यह समय जयन्ती का फिर आये।
यह 'पुस्तक-भंडार' अमर बन रहे सुकीर्त्ति-केतु फहराये॥
'शरण रामलोचन' खुद हैं साहित्य सुसेवक राम-दुलारे।
दोनों का सम्बन्ध मधुर है, एक अपर के बने सहारे॥

[४१]

श्रीराधाकृष्णप्रसाद, प्रकाश-लॉज, रतनपुरा, छपरा—

यह तो हमारे लिये एक चिरस्मरणीय घटना है कि श्रीरामलोचनशरणजी

के समान युग-निर्माता व्यक्ति हमारी जाति में आ पड़े। हमारी जाति के ही आप साहित्यिक प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि बिहार के साहित्य के इतिहास में आप अपना एक अलग अध्याय छोड़ जायेंगे, यह कोई अंधा भी कह सकता है। आपसे मुझे काफी प्रेरणा मिली है। आपके चरण-चिह्न पर मैं चलने मे समर्थ हो सकूँ, यही आशीर्वाद आपसे चाहता हूँ।

[४२]

आयुर्वेदरत्नाकर पं० राधारमण शर्मा, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, प्रधान मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, गया—

पुस्तक-भंडार के संचालक श्रीमान् मास्टर साहब के भौतिक शरीर से तो मेरा परिचय नहीं; पर उनके यशः-शरीर से मैं पूर्ण परिचित हूँ। अपने 'भंडार' से हिन्दी के भंडार को कई अनमोल रत्न प्रदान कर जहाँ उन्होंने बिहार की प्रतिष्ठा बढ़ाई है, वहाँ स्थायी हिन्दी-साहित्य की सृष्टि के लिये भी चिर-स्मरणीय कार्य किये हैं, जिसके कारण बिहार में ही नहीं, सभी हिन्दी-प्रान्तों में उनकी ख्याति फैल रही है। भगवान् करें, श्रीमान् मास्टर साहब अपने 'भंडार' के साथ मार्कण्डेय की आयु प्राप्त करें, जिसमे हमारी हिन्दी को आपके द्वारा श्रेष्ठ और सुन्दर चीजें मिलती रहें।

[४३]

श्रीरामनारायणसिंह, एम० एल० ए० (केन्द्रीय), हजारीबाग—

मेरी हार्दिक शुभकामना है कि 'पुस्तक-भंडार' दिन-दूनी और रात-चौगुनी उन्नति प्राप्त करता रहे जिससे देश और समाज का लाभ हो और बिहार का यश बढ़े।

[४४]

श्रीसुखलालसिंह, एम०एल०ए०, चेयरमैन, जिलाबोर्ड, हजारीबाग—

'पुस्तक-भंडार' से प्रकाशित 'बालक' को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। यह बालकों के अलावा युवकों और वृद्धों का भी साहित्यिक आहार है। 'भंडार' ने निरक्षरता-निवारण में जनता की अटूट सेवा कर देश में बड़े गौरव का स्थान प्राप्त कर लिया है।

[४५]

श्रीयुत मथुराप्रसादजी, सदाकत आश्रम, पटना—

'श्रीयुत रामलोचनशरण ने मुण्डारी, उराँव तथा संथाली भाषाओं के साहित्य को, उनकी गाथाओं को, सुन्दर सज-धज के साथ पुस्तकों के रूप मे प्रकाशित कर, और इस तरह उन्हें अमर बनाकर, जो महान् कार्य किया है, उसके लिये मैं धन्यवाद ही देकर संतोष करना नहीं चाहता हूँ कि उनके इस बड़े काम मे मदद पहुँचानेवाला बन जाऊँ। उन्होंने अपने उद्योग से छोटानागपुर से लेकर हिमालय की तराई तक और संथालपरगना से लेकर कर्मनाशा नदी तक रचनात्मक कार्य-द्वारा हिन्दी के प्रचार मे जो सहायता पहुँचाई है वह बहुत अधिक है और उसकी जितनी तारीफ हो, ठीक ही है।

छोटानागपुर की भाषाओं के ग्रामगीतों की पुस्तकें प्रस्तुत करने में उनके जितने रुपये खर्च होते हैं उनकी पूर्त्ति किसी रूप में होनी चाहिये। इसका सब से सुन्दर रूप है प्रान्त का उनके साथ सहयोग। दर्शन, विज्ञान या अन्य उच्च भावों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के प्रस्तुत करने में जो मूलधन उनका लग जाता है, वह समालोचकों के लिये आँकने की वस्तु है।

अच्छा, कोई समझे या न समझे, वे इसकी परवा न करें। बस, सब समालोचकों के समालोचक, मालिकों के मालिक, सब प्राणों के प्राण, जगन्नियंता, प्रियतम प्राणेश्वर की कृपा दृष्टि रहे और उनकी कृपालु प्रेमपूर्ण नजरों की जादूगरी उनपर और उनके उद्योगों पर चलती रहे, तो अनुष्ठान सफल होकर ही रहेगा।

[४६]

श्रीकेशवप्रसाद सिंह, प्रेसिडेंट, जिलाकांग्रेस-कमिटी, राजेन्द्र-आश्रम, गया—

श्रीरामलोचनशरणजी ने अपने पुस्तक-भंडार-द्वारा सुन्दर साहित्यिक पुस्तकों तथा 'बालक' के प्रकाशन से इस प्रान्त की जो अकथनीय सेवा की है, वह स्तुत्य तो है ही, साथ-ही-साथ अपढ़ और निरक्षर किसानों में साक्षरता प्रचार के लिये तन-मन-धन तथा लेखनी से इन्होंने जो प्रयास किया है वह बिहार के निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। मैं पुस्तक-भंडार तथा श्रीशरणजी की सतत सफलता की कामना करता हूँ।

[४७]

पं० सूर्यनाथ चौबे, प्रेसिडेन्ट, जिला कांग्रेस-कमिटी, शाहाबाद—

पुस्तक-भंडार ने बिहार के अनपढ़ों के लिये बहुत-सी अच्छी किताबें तथा चार्ट हिन्दी-उर्दू-बँगला में छापकर मुफ्त में बाँटे हैं, जिसके लिये शरणजी को गतवर्ष सरकार से स्वर्णपदक भी मिला है। साहित्यिक क्षेत्र में शरणजी का स्थान बिहार में सर्वप्रथम है, आशा है। 'भंडार' उत्तरोत्तर उन्नति करता रहेगा।

[४८]

श्रीपुरुषोत्तम चौहान, सभापति, झरिया कोलफिल्ड कॉंग्रेस-कमिटी—

पुस्तक-भंडार जैसे 'बालक' प्रकाशित कर बाल-जगत् की सेवा कर रहा है, वैसे ही एक सर्वांगसुन्दर साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी जरूरत को पूरा करे। हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्रकाशन-मंदिर में आपका स्थान सबसे अग्र रहे, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है।

[४९]

श्रीहरिकिशोर प्रसाद, बी. ए., बी. एल., एम. एल. ए., भागलपुर—

'भंडार' ने न केवल शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक-प्रकाशन से ही बिहार की सेवा की है, वरन् उच्च कोटि के साहित्यिक प्रकाशन से भी बिहार के मस्तक को अधिक ऊँचा उठाया है। 'शरणजी' के तत्त्वावधान में सम्पादित 'बालक' मासिक बाल-साहित्य में अपना एक ऐसा स्थान रखता है जिसपर बिहार को गौरव है। सच पूछा जाय तो 'भंडार' प्रान्त-विशेष की वस्तु नहीं, बल्कि हिन्दी-जगत् की ऐसी निधि है जिसपर गर्व होना स्वाभाविक है। मैं पुस्तक-भंडार के संस्थापक उन्नतमना श्रीरामलोचनशरणजी को इस स्तुत्य प्रयत्न के लिये अभिनन्दित करता हूँ और पुस्तक-भंडार एवं 'बालक' का मंगल चाहता हूँ।

[५०]

श्रीरामेश्वरप्रसाद सिंह, बी. ए., एम. एल. ए., वाइस चेयरमैन, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार निस्सन्देह हिन्दी-साहित्य की सच्ची सेवा कर रहा है। इसके सञ्चालक श्रद्धेय श्रीरामलोचनशरणजी ने तो इस 'भंडार' को खोलकर हिन्दी-संसार में अपने नाम को अमर बना लिया है। प्रकाशन का काम ये बड़ी खूबी से कर रहे हैं। आशा ही नहीं, विश्वास है कि इनके सुप्रयत्न से बिहार का

नाम हिन्दी प्रान्तों मे अत्युच्च स्थान प्राप्त कर लेगा। इस रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर मै अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

[५१]

श्रीरामेश्वरनारायण अग्रवाल, चेयरमैन, म्यूनिस्पल बोर्ड, भागलपुर—

पचीस वर्षों के अपने अनवरत परिश्रम तथा अदम्य उत्साह द्वारा पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है वह केवल प्रशंसनीय ही नहीं, बल्कि समस्त हिन्दी-ससार के सामने महत्त्वपूर्ण भी है। उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों को प्रकाशित करने मे यह हिन्दी-जगत की निधि और बिहार का गौरव है। शिक्षावृद्धि की ओर इसका विशेष ध्यान रहता है। हाल ही बिहार के निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन को सफल बनाने में अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित कर इस भंडार' ने सभी शिक्षा-प्रेमियों के हृदयों मे आदरणीय स्थान प्राप्त किया है। इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी एक सरल, उदार एवं दानशील व्यक्ति हैं। हिन्दी-साहित्य-प्रेमियो में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। विद्वानों का आदर करना आपके जीवन की विशेषता है। शरणजी-द्वारा संचालित यह पुस्तक-भडार दिनानुदिन उन्नति की ओर अग्रसर हो, यह मेरी हार्दिक कामना है।

[५२]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह, वाइस चेयरमैन, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, छपरा—

पुस्तक-भडार और उसके संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की जो सराहनीय सेवा की है, उसका वर्णन जितना किया जाय, थोड़ा है। 'भडार' ने अनेक अमूल्य पुस्तकें तथा 'बालक', जो बच्चों के लिये अपने जोड़ का अनोखा मासिकपत्र है, प्रकाशित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। इधर निरक्षरता-निवारण - आन्दोलन को सफल बनाने मे श्रीरामलोचनशरणजी ने जो कुछ किया है, उसकी प्रशंसा अकथनीय है। हम 'भंडार' के रजत-जयन्ती-अवसर पर उसके संस्थापक को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनसे हिन्दी-साहित्य की सेवा इसी रूप में होती रहेगी।

[५३]

श्रीइन्द्रदेव पाण्डेय, चेयरमैन, लोकलबोर्ड, सहसराम (शाहाबाद)—

बड़े हर्ष की बात है कि इस वर्ष पुस्तक-भडार की रजत-जयन्ती तथा भडार के संस्थापक श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण जयन्ती होने जा रही है। इसके लिये हमें बहुत खुशी है।

[५४]

श्रीमंगलचरण सिंह, वाइस चेयरमैन, लो. बो., भभुआ (शाहाबाद)—

हर्ष की बात है कि इस वर्ष पुस्तक-भंडार की रजत-जयन्ती तथा उसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही है। इस कार्य के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

[५५]

श्रीजगन्नाथप्रसाद सिंह, वाइस चेयरमैन, डि. बो., शाहाबाद—

पुस्तक-भंडार की रजत-जयन्ती तथा श्रीरामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती होने जा रही है। इस कार्य के लिये मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

[५६]

श्रीफिरंगी सिंह, चेयरमैन, लोकलबोर्ड, छपरा—

पुस्तक-भंडार को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। 'भंडार' ने आजतक सैकड़ों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी-संसार में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। इस अवसर पर हम हृदय से उसको बधाई देते हैं।

[५७]

श्रीश्यामकृष्ण सहाय, बार-एट-ला, राँची—

पुस्तक-भंडार से मेरा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है कि यह तो मेरा अपना ही प्रतीत होता है। किसी आत्मीय की उन्नति को देखकर जो आह्लाद होता है, वही मैं अनुभव कर रहा हूँ। पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य की क्या सेवा की है, इसपर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह विदित है। शरणजी ने बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के लिये उपयोगी साहित्य का निर्माण किया है। उनके विद्यापति प्रेस ने छपाई, बँधाई, गेट-अप में तो प्रान्त-भर में सर्वप्रथम स्थान पाया है। जब इतनी सफलता २५ वर्षों के अल्पकाल में प्राप्त की है, तब मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगे चलकर 'भंडार' विदेशों के विख्यात प्रकाशकों की भाँति विश्वविख्यात प्रकाशन-संस्था बनेगा।

[५८]

श्री आर०-डब्लू०-माथुर, एडुकेशन अफसर, जमशेदपुर—

इस बिहार-प्रान्त में ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जो पुस्तक-भंडार

को न जानता हो। इस संस्था के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी के अटूट परिश्रम से ही बिहार के साहित्य में इस भाँति का उत्थान हुआ है। बिहार का एकमात्र प्रसिद्ध मासिकपत्र है 'बालक'। यह इन्हींकी सेवा का फल है। मैं इस जयन्ती के अवसर पर शुभकामना करता हूँ।

[५९]

श्रीनागेश्वरदत्त पाठक, प्रधानमंत्री, जिला-शिक्षक-संघ, चम्पारन—

पुस्तक-भंडार ने गत २५ वर्षों में हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, उसे ध्यान में रखकर यह कहते हर्ष मालूम होता है कि 'भंडार' ने हम बिहारियों के गौरव को बहुत बढ़ाया है। हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिये यह एक शान की वस्तु है। इसकी उन्नति में हमारी उन्नति निहित है। 'भंडार' सदा फूलता-फलता रहे।

[६०]

श्रीविश्वनाथलाल कर्ण, भू. पू. प्रधान मंत्री, छात्रसंघ, मधुबनी—

'पुस्तक-भंडार' का स्थान आज केवल बिहार ही की नहीं, प्रत्युत भारत की प्रमुख प्रकाशन-संस्थाओं मे है। इसने, अपने अमूल्य प्रकाशनों के द्वारा, बिहार के साहित्य-जगत् में युगांतर उपस्थित कर दिया है। सैकड़ों पुस्तकें यहाँ से निकलीं—सबका कलेवर आकर्षक और विषय हृदय-ग्राही। 'भंडार' का तेजस्वी 'बालक' बालकों का अभिन्न मित्र और अभिभावकों का वाञ्छित 'बालक' है।

आज से पचीस वर्ष पूर्व एक छोटी-सी कुटिया में 'भंडार' का जन्म हुआ था। पूज्यपाद रामलोचनशरणजी सच्चे कर्मयोगी हैं, जिनके उद्योग और अनुभव का परिणाम आज प्रत्यक्ष है। यह संसार के एक सुप्रसिद्ध प्रकाशन मंदिर के रूप में प्रसिद्धि पावे, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।

[६१]

श्रीपुष्पदन्तप्रसाद जैन, मंत्री, सारन-हिन्दी-साहित्य-परिषद्, छपरा—

बिहार ने कतिपय अद्वितीय विद्वान्, कवि तथा लेखक देकर जहाँ हिन्दी के विभिन्न भागों को परिपूर्ण किया है, वहाँ वह प्रकाशन-विभाग में अन्य कई प्रान्तों से पीछे रह गया है। बिहार की इस कमी में यदि हमारी आँखें कहीं ठहर पाती हैं तो लहेरियासराय की एकमात्र संस्था पुस्तक-भंडार पर। यह संस्था अपने सुयोग्य संचालक श्रीयुत रामलोचनशरणजी की कार्य-कुशलता से, समय की

विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हुए, आज अपनी रजत-जयन्ती देखने जा रही है। मै भी इस शुभ अवसर पर सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य-जगत् से प्राप्त शुभकामनाओं की माला में एक दाना पिरोता हूँ।

[६२]

श्रीजगन्नाथसहाय, सेक्रेटरी, राजेन्द्र-कौलेजिएट स्कूल, छपरा—

पुस्तक-भंडार ने इस प्रान्त में जिस लगन और उत्साह के साथ हिन्दी-साहित्य का ठोस कार्य किया है, वह स्तुत्य है। सर्वांगसुन्दर साहित्य-ग्रंथों का प्रकाशन और सम्पादन करना इसका लक्ष्य रहा है। 'भंडार' की कीर्त्ति-ध्वजा सर्वदा लहराती रहे, यही मनःकामना है।

[६३]

श्रीगोविन्दप्रसाद सिंह, एम. बी., आई. पी. एस., उपसभापति, बिहार-प्रान्तीय हिन्दू-महासभा, झालदा, मानभूमि—

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'बालक'-सम्पादक श्रीरामलोचन-शरणजी की अनवरत तपस्या-द्वारा पुस्तक-भंडार को आज अपनी रजत-जयन्ती देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। श्रीशरणजी तथा उनके पुस्तक-भंडार की पूरी ख्याति बिहार और उसके बाहर है। ईश्वर करे, हिंदी-साहित्य की सेवा मे पुस्तक-भंडार को सदैव सफलता मिलती रहे।

[६४]

अलाउद्दीन अहमदसाहब, ऐडवोकेट, भागलपुर—

बिहार प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक पुस्तक-भंडार जैसा सुन्दर काम करता आ रहा है, उसके लिये मैं उसको दिल से बधाई देता हूँ। उसने अपने को मेरी नजरों में बहुत ऊँचा उठा दिया है और मैं निहायत खुशी के साथ बराबर उसके बढ़ते हुए कदमों को देख रहा हूँ। 'भंडार' की छपी हुई किताबें ऐसे सुन्दर और अच्छे ढंग से सजकर निकलती हैं कि उससे बढ़कर सजावट और सफाई की उमीद नहीं की जा सकती है। बरबस पढ़नेवालों की आँखों और दिलों को अपनी तरफ खींच लेती है और मुँह से 'वाह-वाह' निकल पड़ता है। मैं वर्षों से टेक्स्टबुक कमिटी का मेम्बर हूँ और इस लम्बे अरसे में इस हैसियत से मेरी नजरों मे इस 'भंडार' तथा और-और प्रकाशकों की हजारों किताबें आई हैं और उन्हे जाँचने का बराबर मौका मिला है। मुझे यह कहते बड़ी खुशी होती है

कि इस जाँच में मैंने पुस्तक-भंडार को बराबर बाजी मारते हुए पाया है। पुस्तकों के चुनाव में पुस्तक-भंडार ने बराबर बड़ी सावधानी से काम लिया है और सस्ते-से-सस्ते दामों में ऊँचे-से-ऊँचे दर्जे के और सुन्दर-से-सुन्दर प्रकाशन के लिये 'भंडार' को जितनी भी बधाई दी जाय और उसकी जितनी भी तारीफ की जाय, कम है। मैं उमीद करता हूँ कि बिहार-सरकार तथा यहाँ की जनता पुस्तक-भंडार को बराबर सब तरह की मदद और सहानुभूति देती रहेगी जिससे वह इस सूबे की उसी तरह अमूल्य सेवा करता रहे, जिस तरह आज तक करता आ रहा है।

[६५]

श्रीहरिवंशनारायण सिंह, जमीन्दार, रोसड़ा—

'पुस्तक-भंडार' तो अपने अनवरत परिश्रम से बिहार की सेवा कर ही रहा है—फिर भी 'पारिजात'-जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों को प्रकाशित कर संपूर्ण हिन्दी-संसार की सेवा करने में तत्परता दिखा रहा है। 'भंडार' अपने इने-गिने साथियों के साथ सप्रेम हिन्दी-साहित्य की सेवा करता रहे—यह देखकर मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं सर्वदा 'भंडार' की शुभ कामना करता हूँ।

[६६]

श्रीकृष्णवल्लभनारायण सिंह, रामीबीघा इस्टेट, गया—

शिक्षा का काम मानसिक उन्नति, मस्तिष्क का विकास और विचारस्वातंत्र्य का पोषण करना है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि रामलोचनशरणजी ने शिक्षा के इस प्रभाव को अपने व्यावहारिक जीवन में सार्थक कर दिखलाया है। आपने अपनी साहित्य-सेवा-द्वारा समाज तथा राष्ट्र की मानसिक उन्नति में काफी सहयोग प्रदान किया है। आपका 'बालक' साहित्य-क्षेत्र मे एक बहुत ही उच्च स्थान का अधिकारी है। पुस्तक-भंडार की रजत जयन्ती के शुभअवसर पर प्रत्येक बिहारी ही का नहीं, प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का मस्तक गर्व से ऊँचा होना चाहिये।

[६७]

श्रीब्रह्मदेवनारायण सिंह, एम. ए. बी. एल., मुंसिफ, छपरा—

'भंडार' के संस्थापक और संचालक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे सुनहले अक्षरों मे अंकित रहेगा। उन्होंने 'भंडार'

से जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं वे छपाई, सफाई और भाषा-भाव की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि की हैं। उनके द्वारा पिछले वर्षों से सम्पादित 'बालक' भारतवर्ष में बालकों के लिये एक ही पत्र है। बिहार के शिक्षा-विभाग में उनकी लिखी पुस्तकें उत्तम और प्रामाणिक मानी जाती हैं। भगवान् उनको दीर्घायु करें कि 'भंडार'-द्वारा अधिकाधिक हिन्दी-साहित्य की सेवा हो सके।

[६८]

श्रीगोपीकृष्णसहाय, सबरजिस्टरार, सुपौल, भागलपुर—

जब मैं कौलेज का विद्यार्थी था, अपने स्वर्गीय पूज्य पिता (श्रीराधिकाप्रसादजी, डिप्टी इन्सपेक्टर औफ स्कूल्स) से अक्सर मास्टर साहब (श्री रामलोचनशरणजी बिहारी) की प्रशंसा सुना करता था। मैंने उनके शिष्य होने के नाते, उनके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त कर, उन्हें अपनी आँखों देखा। उनकी कार्य-पटुता, साहित्य-सेवा, अध्यवसाय, परिश्रम तथा प्रतिभा स्तुत्य है। साहित्य-जागृति के प्रोत्साहन के निमित्त वे आर्थिक एवं शारीरिक सहायता से कभी मुँह नहीं मोड़ते। हिन्दी-माँ के सपूतों की सुसम्पादित, सुसाहित्यिक एवं स्थायी कीर्तियों का प्रकाशन करना उनके 'भंडार' का मुख्य उद्देश्य एवं खास विशेषता रहा है। 'बालक' ने हिन्दी-संसार में जो लोक-प्रियता प्राप्त की है वह सराहनीय है। हिन्दी-जगत् को 'भंडार' से बड़ी आशा है। यह सदा फूले-फले—यही मेरी हार्दिक मनोभावना है।

[६९]

पं० बदरीनारायणझा, सभापति, हिन्दूसभा, किसनपुर, पलामू—

'पुस्तक-भंडार' की सेवा से बिहार-प्रान्त कृतज्ञ और आभारी है। जिस प्रकार गुजरात-प्रांत के श्रीयुत गिजू भाई ने अपनी सेवा से गुजरातियों को कृतकृत्य किया है, उसी प्रकार शरणजी ने अपनी सेवा से बिहारियों का मुख उज्ज्वल किया है। बिहार-प्रान्त को छोटानागपुर कमिश्नरी के जिलों में हिन्दी-प्रचार का श्रेय आपको ही है। मुंडा तथा उराँव जातियों के ग्रामगीतों का संग्रह पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर आपने आदिवासियों को बड़ा लाभ पहुँचाया है। वे आपका उपकार भूल नहीं सकते। बालकों के लिये 'बालक' आपकी अपूर्व देन है। सभी विद्वानों की आकांक्षा भी आप इच्छानुकूल पूर्ण करते हैं। पात्र के अनुकूल पुरस्कार-वितरण आपका सराहनीय कार्य है। साक्षर बनने के लिये उत्सुक

जनपदों की लाइब्रेरी को पूर्ण करने का श्रेय आप ही को है। जनपदों के लिये बहुत-सी पुस्तिकाएँ आपने निकालीं। मैथिली-साहित्य की भी सेवा कर आप गौरवान्वित हुए हैं। देश और साहित्य के सेवक होते हुए आपकी राजभक्ति सराहनीय है। आपकी कीर्त्ति चिरस्थायी है। आप हमारे बिहार के द्विवेदी हैं। वह दिन आयेगा जब आपका जीवन-इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा, जिसे पढ़कर भारत-संतान फूली न समायगी। हम बिहारियों का सौभाग्य है कि आपके ऐसा पुरुष-रत्न पाया है। बहुत-से निरीह छात्र आपके द्वारा सहायता पाकर उपकृत हो रहे हैं। आपमें जो कार्य करने की क्षमता है, वह भारत के नवयुवकों के लिये अनुकरणीय है। आप आत्मनिर्भरता की ज्वलन्त मूर्त्ति हैं। आप देश की विमल-विभूति हैं। आप चिरायु हों, आपसे जगत् का कल्याण हो—यही हमारी परमेश्वर से प्रार्थना है।

[७०]

श्रीअवधेशकुमार, कुरसेला इस्टेट, पूर्णिया—

'पुस्तक-भंडार' को व्यापारिक संस्था की अपेक्षा एक विशुद्ध साहित्यिक संस्था कहना अधिक उपयुक्त होगा। अपने जीवन के सिर्फ पचीस वर्षों की अवधि में इसने जैसे सुन्दर, उपादेय और प्रगतिशील साहित्य का प्रकाशन किया है, वैसे ही इसके द्वारा बिहार में पाठकों के अंदर सत्साहित्य की ओर अभिरुचि पैदा करने का भी सफल प्रयास किया गया है। बिहार-प्रान्त में पुस्तक-भंडार ही एक ऐसी संस्था है जो साहित्यिक वातावरण को सजीव बनाये रखती है और जिसकी ज्योत्स्ना से सारा प्रान्त उद्भासित होता हुआ दीखता है। मैं 'भंडार' की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की कामना करता हूँ।

[७१]

श्रीमहादेवप्रसाद अग्रवाल, एम. ए., एल. एल. बी, प्लीडर, पुरुलिया—

पुस्तक-भंडार के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी ने गत २५ वर्षों में हिन्दी की उन्नति के लिये जो चेष्टा की है वह सर्वथा सराहनीय है। इस 'भंडार' की मुद्रित पुस्तकें बड़ी ही शिक्षाप्रद और समयोपयोगी रही हैं। उक्त पंडितजी ने 'जनशिक्षा-आन्दोलन' की सफलता के लिये जो अत्यधिक परिश्रम तथा द्रव्य व्यय किया है वह अत्यन्त सराहनीय है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पंडितजी दीर्घ-जीवी होकर हिन्दी-साहित्य की सेवा अपने पुस्तक-भंडार-द्वारा करें।

[७२]

श्रीयमुनाप्रसाद, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, गया—

बिहार में बालोपयोगी साहित्य के निर्माण में 'भंडार' ने सफल प्रयास किया और कर रहा है। बाल्यकाल में साहित्य-द्वारा चरित्र-निर्माण के लिये एक शिक्षामर्मज्ञ जो कुछ कर सकता है, उसको सम्पन्न करके श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामना है।

[७३]

श्रीगोपीनाथ वर्मा, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

लगभग तीन दशकों से पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्री रामलोचनशरणजी ने जिस लगन तथा निष्ठा के साथ हिन्दी-साहित्य—विशेषतः बाल-साहित्य—के सृजन तथा प्रकाशन के द्वारा हिन्दी-भाषा की सेवा की है, वह सर्वथा स्तुत्य है। श्रीरामलोचनशरणजी अपने तपोमय जीवन, अनवरत अध्यवसाय, अखंड साहित्य-सेवा आदि गुणों के कारण आज वस्तुतः 'बिहार के चिंतामणिघोष' कहे जाते हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि बिहार का यह अनुपम 'पुस्तक-भंडार' तथा इसके यशोधन अध्यक्ष चिरकाल पर्यन्त अन्य प्रान्तों के सामने बिहार का मस्तक ऊँचा बनाये रक्खें।

[७४]

श्रीकालीप्रसाद, एम० ए०, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, भागलपुर—

पुस्तक-भंडार ने बिहार में २५ वर्षों से हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है वह सराहनीय ही नहीं, बल्कि अकथनीय है। सर्वसाधारण के उपकारार्थ अनेकानेक पुस्तकों के निर्म्माण और प्रकाशन के अतिरिक्त बालोपयोगी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिका द्वारा बालकों का सच्चा हितैषी बनने में भी इसका स्थान अद्वितीय है। इसके द्वारा इस प्रान्त में निरक्षरता-निवारण के जो-जो कार्य हुए हैं, वे अमूल्य हैं। 'भंडार' को हिन्दी-जगत् की निधि तथा बिहार का गौरव कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं। इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी बड़े सरल, उदार तथा शिक्षित और हिन्दी-साहित्य-सेवियों में अग्रगण्य हैं। ये दीर्घजीवी हों और पुस्तक-भंडार दिनानुदिन उन्नति करे।

[७५]

श्रीद्वारकाप्रसाद सिंह बी. ए., डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, संतालपरगना, दुमका—

हिन्दी-साहित्य का भंडार भरने में पुस्तक-भंडार का सतत परिश्रम किसी से कम नहीं हुआ है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा से जो यश, कीर्त्ति तथा ख्याति 'भंडार' के अध्यक्ष ने प्राप्त की है, वह सबको प्राप्त हो। 'भंडार' सदा पूरा रहे और साहित्य-सेवा, देश-सेवा, धर्म-सेवा और लोक-सेवा इसी तरह से करता रहे। 'भंडार' का 'बालक' चिरजीवी हो।

[७६]

श्रीअक्षयकुमार, एल. टी., डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, पुरुलिया—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य का थोड़े ही दिनों में असीम उपकार किया है। वह दिन मुझे स्मरण है जब श्रीरामलोचनशरणजी और मैं—दोनों एक ही साथ लहेरियासराय नौर्थब्रुक हाइ इंगलिश स्कूल में शिक्षक थे। आपकी रुचि उसी समय से साहित्य-सेवा की ओर थी; जो अब परिपक्व होकर इस विस्तृत 'भंडार' के रूप में हमारे सामने है। आपने अनपढ़ों को पढ़ाने मे खूब ही भाग लिया और हमारी सरकार ने भी आपको स्वर्णपदक देकर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। पुस्तक-भंडार हिन्दी-साहित्य की सेवा दिन-दूनी और रात-चौगुनी करता रहे।

[७७]

श्रीराधागोविन्द घोष, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, हजारीबाग—

लगभग २५ वर्षों से मैं शिक्षा-विभाग में हूँ। तभी से देखता हूँ कि एक पुस्तक-भंडार ही ऐसी साहित्यिक संस्था है जिसने बिहार के घर-घर को शिक्षित बनाने में पूरी सफलता पाई है। इसने बालकों का एकमात्र मनोहर मासिक पत्र 'बालक' प्रकाशित कर देश की बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है। क्या बालक और क्या वृद्ध, 'बालक' सभी का मनोरंजक है। यों ही, निरक्षरता-निवारण में पुस्तक-भंडार के व्यवस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने जनता की अतुलनीय सेवा कर समूचे देश में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर लिया है। मैं पुस्तक-भंडार तथा उसके अध्यक्ष की हृदय से शुभकामना करता हूँ।

[७८]

श्रीरामकृपाल सिंह, डिस्ट्रिक्ट इंसपेक्टर, स्कूल्स, मानभूम—

पुस्तक-भंडार गत पचीस वर्षों से केवल बिहार की ही नहीं, वरन् सारे भारतवर्ष की साहित्यिक सेवा कर रहा है। यहाँ से प्रकाशित पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ सफाई, छपाई तथा सुघड़ाई मे बिहार-प्रान्त के अन्यान्य प्रकाशकों की अपेक्षा कहीं अच्छी रहती है और भारतवर्ष के उत्तमोत्तम प्रकाशकों से प्रकाशित पुस्तकों की समता मे रक्खी जा सकती है। वर्त्तमान निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन मे इस प्रकाशन-गृह ने निःशुल्क चार्ट तथा प्राइमर और नाममात्र मूल्य पर कतिपय पुस्तके वितरित कर जिस उदारता तथा देश-सेवा-कार्य का परिचय दिया है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किये विना नही रहा जा सकता। मै 'भंडार' और उसके संचालक की रजत एवं स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हृदय से बधाई देता हूँ।

[७९]

श्रीगोपाललाल वर्मा, डिपुटी इंसपेक्टर, स्कूल्स, संथालपरगना, गोड्डा—

पुस्तक-भंडार २५ वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहा है। इसके मुख्यतः तीन काम रहे है—बाल-साहित्य का प्रकाशन, 'बालक' का प्रकाशन और साहित्यिक प्रकाशन। नये-नये ढंग की पुस्तके, बालको की रुचि के अनुरूप सुरुचिपूर्ण सजधज के साथ, प्रकाशित कर इसने प्रान्त में एक रेकर्ड कायम कर लिया है। वर्त्तमान संसार-व्यापी संकट-काल मे भी 'बालक' जिस कलापूर्ण आकर्षक गेट-अप के साथ निकल रहा है, वह बाल-मासिको मे कौन कहे, हिन्दी के सभी मासिकों मे अग्रगण्य स्थान रखता है। 'भंडार' का साहित्यिक प्रकाशन भी इसके गौरव के ही अनुरूप है। मेरी हार्दिक कामना है कि 'भंडार' चिरस्थायी हो और यह बिहार के साहित्यिक इतिहास का एक अंग बने।

[८०]

श्रीरामरंजन गुप्त, बी. ए., बी. इ. टी., डिपुटी इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स, घाटशिला, सिंहभूम—

पुस्तक-भंडार के संस्थापक पंडित रामलोचनशरणजी एक स्वावलम्बी, विद्योत्साही, उन्नतिशील, परिश्रमी और परोपकारी सज्जन हैं। शरणजी ने, जब-जब सिलेबस बदला है, अधिक-से-अधिक द्रव्य और परिश्रम व्यय करके रोचक,

मधुर और सामयिक पुस्तकें शिक्षा-जगत् के सामने रक्खी हैं। जन-शिक्षा-प्रसार-आन्दोलन में भी इन्होंने चित्रपट और पुस्तकों-द्वारा प्रचुर सहायता की है। 'बालक' के प्रबंध बालक-बालिकाओं के लिये बड़े ही चित्ताकर्षक, शिक्षाप्रद और भावोद्दीपक होते हैं। परमात्मा दानवीर स्वनामधन्य शरणजी को दीर्घजीवी करें और पुस्तक-भंडार की दिन-दिन उन्नति हो।

[८१]

श्रीरामनारायण लाभ, बी. ए., बी. इडी., डिपुटी इंसपेक्टर, स्कूल्स, बाढ़ (पटना)—

पुस्तक-भंडार-द्वारा शिक्षकों का असीम उपकार हो रहा है। प्रान्त के शिक्षकगण इस बात का प्रमाण दे रहे हैं कि पुस्तक-भंडार उनका अपना भंडार है। छात्र-गण पुस्तक-भंडार के द्वारा प्रकाशित 'बालक' पढ़ने में बहुत मन लगाते हैं। शिक्षा के प्रचारार्थ जभी जिस पुस्तक की आवश्यकता होती है, तभी उसकी पूर्त्ति पुस्तक-भंडार के द्वारा शीघ्र हो जाती है। ईश्वर इस पुस्तक-भंडार की उत्तरोत्तर वृद्धि करे।

[८२]

श्रीगोविन्दशरण, एम. ए., इडी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

विश्व के प्रगतिशील साहित्य मे 'पुस्तक-भंडार' की सेवा केवल बिहार ही नही, प्रत्युत भारतीय हिन्दी-साहित्य की अमर सेवा कहलायगी। श्रीरामलोचनशरणजी का 'बालक' बूढ़ो का 'राम' है, युवक-हृदय का 'लोचन' है और है बालको की 'शरण'। बधाई है 'पुस्तक-भंडार' के इतिहास और जयन्ती-स्मारक ग्रंथ के लिये ही नहीं, वरन् श्रीरामलोचनशरणजी की सूझ-समझ और लगन-शीलता के लिये भी।

[८३]

श्रीमहम्मद मुईनउद्दीन, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, साहिबगंज, दुमका—

मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी हुई कि पुस्तक-भंडार की सिलवर-जुबिली मनाई जा रही है। इसमे कोई शक नही कि बाबू रामलोचनशरण ने इस पचीस साल के अरसे मे अदबी और इल्मी दुनिया मे बिहार मे अच्छा नाम पैदा किया है। अनपढ़ो की तालीम के सिलसिले में भी बिहार मे इन्होंने काफी हिस्सा लिया है। मै चाहता हूँ कि इनकी दिन-दूनी और रात-चौगुनी तरक्की हासिल हो।

[८४]

श्रीहरदीपनारायण सिंह, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, वारिशनगर, दरभंगा—

पुस्तक-भंडार के संचालक स्वनामधन्य श्रीयुत रामलोचनशरण के अदम्य उत्साह, प्रशंसनीय साहस और निरन्तर परिश्रम का फल है कि आज 'भंडार' का नाम सारे भारत, खासकर बिहार के कोने-कोने में युवा, वृद्ध, बालक, स्त्री-पुरुष सभी के मस्तिष्कों और हृदयों में अपना स्थान पा चुका है। यह 'भंडार' बराबर गरीब तथा निरसहाय विद्यार्थियो को द्रव्य और पुस्तकादि से विद्योपार्जन में प्रोत्साहित करता आया है। इसने कभी भी किसी को अपने यहाँ से विमुख हो नही लौटने दिया। जहाँ तक मुझे मालूम है, परोपकारिता और उदारता में कोई भी शरणजी की बराबरी नही कर सकता। इनकी लोकप्रियता का यह प्रधान कारण है। इनके लिखित और सम्पादित ग्रंथो की भाषा तथा लेखनशैली सरस, सरल, सुन्दर, मनोहर, भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है। 'भंडार' की दिन-दून और रात-चौगुनी उन्नति होती रहे।

[८५]

राय श्रीनंदनप्रसाद, एल. टी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मोतीपुर—

गत २५ बरसों से पुस्तक भंडार ने बिहार के हिन्दी-साहित्यिक संसार की जो सेवा की है, वह सराहनीय और प्रशंसनीय है। प्राइमरी स्कूलो की शिक्षण-शैली मे डिप्पी साहब ने जब नवीनता की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया तब सर्वप्रथम श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने इस दिशा में अग्रसर होकर शिक्षकों के नवीन ढँग से पढ़ाने की प्रणाली निर्धारित की। सयाने अनपढ़ो के लिये जब डा० महमूद साहब ने साक्षरता-आन्दोलन जारी किया तब शरणजी ने बहुत-बहुत चार्टो और प्राइमरो द्वारा इस महान् कार्य में अग्रसर होकर सहायता पहुँचाई। इस पुस्तक-भंडार की स्थापना से बिहार में साहित्यिक जागृति का श्रीगणेश हुआ, साहित्यिक संसार की बहुत भारी कमी की पूर्त्ति हुई और बिहार भी साहित्यिकों के स्मरण रखने योग्य हो चला, जिसके लिये पुस्तक-भंडार को और साथ-ही-साथ शरणजी को अनेकों धन्यवाद।

[८६]

श्रीकुंजविहारी शर्मा, बी. ए., बी. एडी०, स्कूल सब इंसपेक्टर, लालगंज, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने जो सेवा, बिहार ही नहीं, समूचे भारतवर्ष में साहित्य के उत्कर्ष तथा शिक्षा के प्रसार के

लिये, की है, उसका पूर्ण उल्लेख नहीं किया जा सकता। यह बात जनता तथा सरकार दोनों के सामने है और शिक्षा-विभाग के सभी हृदयवान् व्यक्ति इसे अच्छी तरह समझते होंगे। गत दो वर्षों के भीतर निरक्षरता-निवारण-कार्य में 'भंडार' बिल्कुल ही अग्रसर हो हाथ बँटा रहा है। इसे सेवा नहीं, वरन् त्याग कहना चाहिये। मैं तो ऐसा कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आधुनिक बिहार को बनाने तथा इसका पूर्व गौरव लौटाने में 'भंडार' तथा इसके अध्यक्ष श्रीराम-लोचनशरणजी का बड़ा हाथ है। इन दोनों की उत्तरोत्तर उन्नति हो।

[८७]

श्रीगुरुदयालप्रसाद, बी. ए., डिप-एड्, स्कूल सब इंसपेक्टर, महुआ, मुजफ्फरपुर

शिक्षा-विभाग से सात वर्षों के निकटतम सम्बन्ध ने यह अनुभव करा दिया है कि 'पुस्तक भंडार' विद्यार्थियों के लिये पारिवारिक शब्द हो गया है। 'भंडार' के अध्यक्ष शरणजी ने जिस द्रुत गति से बाल-साहित्य का निर्माण किया है वह सर्वथा स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। बिहार की पाठ्य पुस्तकों में जो कायापलट के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह केवल शरणजी के ही कारण।

'बालक' मासिक पत्र तो बालक-बालिकाओं का सच्चा साथी, युवकों का मित्र तथा वृद्धों की गोद का खिलौना बन रहा है। वह भंडार के प्रतिष्ठाता तथा अध्यक्ष 'मास्टर साहब' जैसे अध्यवसायी, निपुण, सहृदय तथा समय की परख रखनेवाले पिता को पाकर फूला नहीं समाता। शरणजी की ठोस सेवाएँ बिहार के साहित्यिक-इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी।

[८८]

श्रीरामगुलाम राय, स्कूल सब इंसपेक्टर, बेगूसराय, मुंगेर—

पुस्तक-भंडार ने साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पठनीय पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की है और बालोपयोगी मासिक पत्र 'बालक' द्वारा बालकों में हिन्दी पढ़ने और लिखने की रुचि पैदा कर दी है। निरक्षरता-निवारण-कार्य में अनपढ़ों के लिये 'भंडार' ने उपयुक्त शब्द-पट तथा ग्रंथमाला तैयार कर बहुत बड़ा सहयोग प्रदान किया है। ईश्वर इस 'भंडार' को सदा भरपूर रक्खें कि यह सर्वदा हिन्दी का भरण-पोषण करता रहे।

[८९]

श्रीसुरेन्द्र लाहिडी, स्कूल सब इंसपेक्टर, पाकुर—

पुस्तक-भंडार केवल पुस्तकों का ही नहीं, वरन् विद्या और बुद्धि का भी एक बड़ा भंडार है। जिस सच्ची लगन एवं निष्ठा से इसने निरक्षरता-निवारण में अपना हाथ बँटाया, वह यथार्थ में प्रशंसनीय है। पुस्तक-भंडार की सहायता के विना निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन का सफल होना कठिन ही नहीं, असम्भव था। इसका सारा श्रेय इसके यशोधन अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी 'विहारी' को ही है।

[९०]

श्रीरघुनन्दन पाण्डेय, सब इंसपेक्टर स्कूल्स, तेघरा—

पुस्तक-भंडार हिन्दी-भाषा तथा साहित्य की जो सेवा करता आ रहा है, वह वर्णनातीत तथा अकथनीय है। इस विषय में पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-संसार में बिहार का मुख उज्ज्वल किया है और अब बिहार किसी भी प्रान्त से साहित्य सेवा में पिछड़ा हुआ नहीं है। इस शुभ कार्य का सारा श्रेय श्रीरामलोचनशरणजी को है। 'भडार' से निकला हुआ 'बालक' सर्वप्रिय, मनोमोहक तथा चित्ताकर्षक मासिक पत्र है।

[९१]

श्रीरमाकान्त मिश्र, बी. ए., डिप्-इन-इडी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, मुंगेर—

पुस्तक-भंडार बिहार का गौरव है। साहित्य-शैली को सरल एवं सरस बनाने में यह सर्वदा तत्पर रहता है। 'बालक' नामक मासिक पत्र निकालकर इसने समस्त हिन्दी-भाषा-भाषी बालकों के हृदयों में हिन्दी-साहित्य के लिये अभिरुचि उत्पन्न कर दी है। बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं में 'बालक' का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। बिहार में साहित्य की उन्नति तथा यहाँ के साहित्य सेवियों की प्रतिष्ठा वृद्धि की ओर इसका विशेष ध्यान रहा है। सर्वांगसुन्दर पुस्तकें निकाल-कर इसने हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की है तथा बिहार का मस्तक ऊँचा किया है। इसके अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी 'बिहारी' एक सरल, उदार तथा निःस्वार्थ साहित्य-सेवी हैं। 'भंडार' दिनानुदिन उन्नति की ओर अग्रसर हो।

[९२]

श्रीतारिणीप्रसाद सिंह, एम० ए०, एम० इ-डी०, स्कूल सब इंसपेक्टर, खगड़िया, मुंगेर—

हिन्दी-साहित्य—विशेषतः बालसाहित्य के सृजन तथा प्रकाशन के द्वारा पुस्तक-भंडार तथा इसके अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी की जो श्रीवृद्धि की है, वह सर्वथा श्लाघ्य एवं अनुपम है। अटूट लगन के साथ ये हिन्दी-भाषा की सेवा करते आ रहे हैं। इससे न केवल इनका नाम अमर हुआ है, अपितु दूसरे प्रान्तों के सामने बिहार का मस्तक ऊँचा हुआ है, इनकी हिन्दी सेवा के दो रूप रहे हैं—एक अन्तरंग, दूसरा वहिरंग। अन्तरंग-रूप में ये हिन्दी के अनेकों होनहार कवियों तथा लेखकों और कलाकारों के प्रेरकप्राण रहे हैं तथा अनेको हिन्दी-संस्थाओं को गुप्त तथा प्रकट रूप से दान देकर उन्हें प्रगति-प्रदान किया है। वहिरंग-रूप मे इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का सृजन तथा प्रकाशन हो रहा है उससे हिन्दी-संसार परिचित है। राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का ऊँचा स्थान है और उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग बाल-साहित्य है। शरणजी ने अरसे से बाल-साहित्य की सेवा कर अपने नाम को अमर बना लिया है। इस कारण ये 'बिहार के गिजूभाई' कहे जाते हैं। इनकी कीर्त्ति अक्षय रहेगी।

[९३]

श्रीराजनंदनप्रसाद, एम. ए., डिप. इन. ए-डी., सब इंसपेक्टर औफ स्कूल्स, अरेराज (चम्पारन)—

इसके अधिष्ठाता श्रीमान् रामलोचनशरणजी के अथक परिश्रम तथा साहित्य-सेवा का यह फल है कि 'भंडार' बिहार का मुख उज्ज्वल कर रहा है तथा साथ-ही-साथ हिन्दी-संसार के लिये एक गौरव की चीज बन गया है। देश तथा हिन्दी-संसार की जब जैसी माँग होती गई, वैसी पुस्तकों को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय बिहार में पुस्तक-भंडार ही को है। 'भंडार' का सचित्र मासिक पत्र 'बालक' एक उच्च कोटि का सर्वाङ्ग-सुन्दर पत्र माना जाता है। उत्तम पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त प्रतिवर्ष नामी-नामी पुस्तकों का प्रकाशन और भी स्तुत्य है। मेरी हार्दिक शुभकामना पुस्तक-भंडार के साथ है।

[९४]

श्रीजगदम्बाशरण राय शर्मा, एम. ए., डिप.-एड., साहित्यरत्न, स्कूल सब इंसपेक्टर, छपरा—

पुस्तक-भंडार ही एक ऐसा बिहारी प्रकाशक है जो बिहार का सिर ऊँचा करने के लिये सब प्रकार प्रयत्नशील है। मैं निःसंकोच भाव से यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि हिन्दी-संसार में बिहार को जो स्थान आज प्राप्त है, उसका अधिकतर श्रेय पुस्तक-भंडार को है। यह असत्य नहीं है कि स्कूली पुस्तकों की आय का एक बड़ा अंश पुस्तक-भंडार साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में व्यय कर देता है जो अन्य प्रकाशकों मे प्रायः नहीं पाया जाता। व्यवसाय के साथ साहित्यसेवा का पवित्र गठबंधन, यमुना-गंगा-संगम के सदृश, लोक के लिये कल्याणकर जान पड़ता है। इसीसे 'भंडार' के अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरण बिहार के लाखों कंठों के हार हो रहे हैं।

[९५]

श्रीवीरेन्द्र बहादुर सिंह, बी० ए० डिप्०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर, डुमराँव—

पुस्तक-भंडार अपने यहाँ से 'बालक' निकालकर बालकों की जो सेवा करता आ रहा है, वह अद्वितीय है। निरक्षरता-निवारण के कार्य में 'भंडार' ने जो त्याग और सेवा का काम किया है; वह हर बिहारी के लिये गौरव की बात है। इधर कुछ वर्षों से अनेकों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर 'भंडार' बिहार का मुख उज्ज्वल कर रहा है। आज हर हिन्दी-हितैषी का ध्यान पुस्तक-भंडार की ओर है। 'भंडार' और उसके कर्मयोगी अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

[९६]

श्रीसन्तकुमार, बी. ए., डिप.-इन-एड., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, छपरा—

पुस्तक-भंडार एक पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है, वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सुनहले अक्षरों में अंकित रहेगा। हम हृदय से उनको बधाई देते हैं।

[९७]

श्रीशशिभूषण लाल, बी. ए. डिप-इन-एड, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, दिघवारा (सारन)—

पुस्तक-भंडार से बिहार मे विद्याप्रचार और हिन्दी की उन्नति प्रचुर रूप से हुई है। 'भंडार' के संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिये जो महान् उद्योग किया है, वह बिहार के ही नहीं, हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो में अंकित रहेगा। 'भंडार' ने आजतक सैकड़ों साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी-संसार मे अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। शिक्षा-विभाग में भी 'भंडार' की किताबें सर्वोत्तम गिनी जाती हैं। हम हृदय से इस अवसर पर बधाई देते हैं।

[९८]

श्रीमंगल झा, एम. ए., डिप. इन. एड., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, कल्याणपुर, सारन—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है उसका गर्व बिहार को ही नहीं, बल्कि प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को है। साहित्यिक उत्थान में 'भंडार' ने जैसी सफल दौड़ लगाई है, गूढ़ विषयों की जैसी छान-बीन की है और हिन्दी-साहित्य के जिन आवश्यक अंगों की पूर्त्ति करने की चेष्टा की है उनका सिंहावलोकन शिक्षित समाज की आँखों के सामने है। बालोपयोगी, शिक्षा-प्रद एवं दुष्प्राप्य पुस्तको का प्रकाशन इस 'भंडार' का प्रधान ध्येय है। आधुनिक युग के राष्ट्र-उत्थान मे पत्र-पत्रिकाओ ने बालक-समाज मे जो गौरव प्राप्त किया है, उसमे इस 'भंडार' का सर्व-प्रथम स्थान है। भगवान् इस 'भंडार' को अमर और इसके अधिष्ठाता श्रीरामलोचनशरणजी को दीर्घायु बनावें।

[९९]

श्रीबच्चनप्रसाद सिंह, एम. ए., एम. एड, स्कूल सब इंसपेक्टर, घोड़ासाहन (चम्पारन)

शिक्षा-विभाग में आने पर मुझे यह देखने का मौका मिला है कि किसी खास विषय या ढंग पर पुस्तकों की आवश्यकता होते ही 'भंडार' अपने प्रकाशन के साथ तैयार है। बिहार के साक्षरता-आन्दोलन में भी शरणजी और 'भंडार' ने

कुछ कम सहायता नहीं पहुँचाई है। जहाँ तक मेरा विचार है, बाल-साहित्य और अन्य साहित्यिक प्रकाशकों में 'भंडार' अपना अग्रगण्य स्थान रखता है और पुस्तकों की छपाई-सफाई के विषय मे भी किसी प्रकाशन-संस्था से टक्कर ले सकता है। हिन्दी-साहित्य से प्रेम रखनेवाले हर बिहारी के लिये बिहार की इस संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति की शुभकामना करना एक पवित्र कर्त्तव्य है।

[१००]

श्रीव्रजनन्दन सिंह, बी. ए., डिप. इन-एड., स्कूल सब इंसपेक्टर, छपरा—

'बालक' से मेरा परिचय बालकपन से ही है। हर मास का पहला सप्ताह मैं इसकी प्रतीक्षा में व्यतीत करता हूँ और हर बार मुझे आशा से अधिक संतोष इसके अवलोकन से प्राप्त होता है। बड़े हर्ष और गौरव का विषय है कि जो बिहार पत्र-पत्रिकाओं की मरुभूमि के नाम से बदनाम है वहीं 'बालक' जन्मकाल से ही बराबर एक-सा उन्नति करता चला आया है। भगवान् 'बालक' के प्रकाशक पुस्तक-भंडार को अमर और इसके सम्पादक तथा अधिष्ठाता श्रीरामलोचनशरणजी को दीर्घायु बनावें।

[१०१]

श्रीमुक्तिनाथ चौधरी, बी. ए., बी. टी., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, शाहाबाद—

'रजत' हेममय, हीरकमय हो विमल सुयश हो।
यह पुस्तक-भंडार ग्रंथ-धन-राशि युक्त हो।
'रामनयन'-सुस्नेह-नीर से नित सिंचित हो।
कीर्त्तिलता पल्लवित सदा हो अमित फलद हो !!

[१०२]

श्रीराजदेव सहाय, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, सदर, आरा—

पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने अच्छे ग्रंथों के प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त की एक बहुत ही बड़ी कमी की पूर्त्ति की है। मै हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

१२१

[१०३]

श्रीरामनारायण सिंह, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, आरा—

बिहार-प्रान्त मे साहित्यिक पुस्तकों को अच्छे ढँग से प्रकाशित करनेवाला एक पुस्तक-भंडार ही है जिसकी रजत-जयन्ती इस वर्ष होने जा रही है तथा 'भंडार' के संस्थापक श्रीमान् रामलोचनशरणजी की स्वर्ण-जयन्ती भी होने जा रही है। ईश्वर इनकी हीरक-जयन्ती मनाने का अवसर दें।

[१०४]

श्रीदेवकीनंदनप्रसाद, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, धनबाद—

बिहार में आज जो कुछ साहित्यिक जागृति दीख पड़ती है, उसका बहुत-कुछ श्रेय पुस्तक-भंडार तथा उसके सर्वस्व श्रीरामलोचनशरणजी को है। छपाई, सफाई, गेट अप इत्यादि मे 'भंडार' से प्रकाशित पुस्तकें अन्य प्रान्तों के अच्छे-से-अच्छे प्रकाशकों के यहाँ से निकली हुई पुस्तकों का सफलतापूर्वक मुकाबला करती हैं। साहित्यिकता के विचार से भी इनका दर्जा बहुत ऊँचा रहा है। जितना कार्य संयुक्तप्रान्त के लिये कितने ही प्रकाशनगृहों ने सम्मिलित रूप से किया है, पुस्तक-भंडार ने अकेले वह काम बिहार के लिये किया है। मेरी शुभकामना है कि 'भंडार' और अधिक लगन के साथ, अपनी अटूट सेवाओं से बिहार का मुख भविष्य मे अधिक-से-अधिक उज्ज्वल करे।

[१०५]

श्रीमहेशनारायण चौधरी, बी. ए., सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, जहानाबाद, गया—

पुस्तक-भंडार ने गत पचीस वर्षों से हिन्दी-भाषा की जो सेवा की है, वह किसी से छिपी हुई नहीं है। पुस्तक-भंडार से प्रकाशित पुस्तकों की छपाई सुन्दर, कागज उत्तम, भाषा सरल और सरस है। इनमें समयोचित वार्ताओं के रहने से बालकों के मन में इन पुस्तकों के प्रति रुचि बढ़ती ही जाती है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि 'भंडार' की दिन-दूनी और रात-चौगुनी तरक्की हो।

[१०६]

श्रीअब्दुलसलाम, बी० ए०, डिप०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स, राँची—

श्रीरामलोचनशरणजी ने जो साहित्यिक सेवाएँ की हैं, उन्हें कौन नहीं जानता है ? गाँव-गाँव के प्राइमरी स्कूलों में पुस्तक-भंडार की ही किताबें पाई जाती हैं। 'बालक' मासिक पत्र से विद्यार्थियों मे जो जागृति पैदा हुई है, उसे सभी जानते हैं। निरक्षरता-निवारण के काम में पढ़ाने-लिखाने की सामग्री बाँटने मे 'भंडार' ने जिस प्रकार पानी की तरह रुपया बहाया है, यह शिक्षा-प्रेमियों से छिपा नही है। शरणजी को मैंने नजदीक तथा दूर से जाँचा है। मैंने उन्हे देश का सच्चा प्रेमी, गम्भीर एवं उच्चकोटि का विद्वान् तथा महापुरुष पाया है। इस प्रकार का सहनशील, उदार तथा दृढपुरुष मुझे कम मिला। जुबिली के अवसर पर मैं एकबार फिर उन्हे बधाई देता हूँ।

[१०७]

श्रीसरयूप्रसाद दुबे, बी० ए०, डिप०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, दुमका—

पचीस वर्षों की अवधि में बालोपयोगी पत्र एवं अनेकानेक अच्छी और मनोग्राही पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी-संसार के बालकों और युवकों में पुस्तक-भंडार ने अखंड यश और ख्याति प्राप्त की है। विभिन्न विषयों के अच्छे-अच्छे ग्रंथों के प्रणयन एवं प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त में ही नहीं, प्रत्युत अन्यान्य हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में भी इसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की है। साक्षरता-प्रचार-आन्दोलन मे जिस तत्परता और सच्ची लगन से इसने अपने प्रकाशन-विभाग-द्वारा सहायता दी है, वह अनुकरणीय और सराहनीय है। रजत-जयन्ती जैसे शुभोपलक्ष्य में मेरी शुभकामना और आन्तरिक प्रेम इसके साथ है।

[१०८]

श्रीसलोमन मुर्म्मू, सब इंसपेक्टर, संथाली स्कूल्स, पश्चिम दुमका, संथालपरगना—

जिस लगन और निष्ठा के साथ पुस्तक-भंडार ने अपने यशोधन अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी 'बिहारी' की देख-रेख में मातृभाषा और देश की

सेवा की है, वह यथार्थ में सराहनीय है। मेरी हार्दिक कामना है कि बिहार का गौरव पुस्तक-भंडार अपने संरक्षक 'बिहारी'जी के संचालन में उपयोगी ग्रंथों के प्रकाशन द्वारा बिहार-प्रान्त की प्रतिष्ठा बनाये रक्खे।

[१०९]

श्रीहिमांशुशेखर सरकार, बी० ए०, डिप०-इन-एड०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, साउथ, दुमका—

पुस्तक-भंडार ने बालोपयोगी अनेकों उत्तम ग्रंथों का प्रकाशन कर बिहार में ही नहीं; अपितु अन्यान्य हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों मे भी प्राथमिक शिक्षा-प्रसार-विभाग से सम्पर्क रखनेवालों में अच्छा नाम प्राप्त किया है। साहित्यिक क्षेत्र में भी इसकी देन किसी भी सुयोग्य संस्था से न्यून नहीं है। सरकार-द्वारा संचालित निरक्षरता-निवारण-जैसे पवित्र आन्दोलन मे 'भंडार' के सुयोग्य और यशस्वी संस्थापक त्यागवीर श्रीरामलोचनशरणजी ने जिस सच्चे प्रेम से इस प्रान्त के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री की सहायता की है, वह वास्तव में अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। मेरी शुभेच्छा और शुभकामना स्वतः ही इनके साथ है।

[११०]

श्रीचुनचुन झा, बी० ए०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, देवघर—

इन गत पचीस वर्षों में जिस लगन एवं निष्ठा से इसने हिन्दी-साहित्य की सेवा की है, स्तुत्य है। अपने यशोधन अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी 'बिहारी' की देखरेख में 'बालक' जैसे आदर्श मासिक पत्र को प्रकाशित कर 'भंडार' ने युवकों मे एक नया भाव उत्पन्न कर दिया है। निरक्षरता-निवारण में इसने बिहार की जो निःस्वार्थ एवं आदर्श सेवा की है, वह प्रशंसनीय एवं सराहनीय है। निरक्षरता-निवारण की सफलता का सबसे बड़ा श्रेय पुस्तक-भंडार एवं इसके यशस्वी त्यागी अध्यक्ष को है। बिहार का यह पुण्य स्थान पुस्तक-भंडार दिनानुदिन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो।

[१११]

श्रीरघुनाथप्रसाद सिंह, बी० ए०, सब इंसपेक्टर, स्कूल्स, गोड्डा—

पुस्तक-भंडार गत २५ वर्षों से बिहार और हिन्दी की सेवा अच्छी तरह से कर रहा है। माननीय शिक्षामंत्री-द्वारा निरक्षरता-निवारण की घोषणा होते

ही 'भंडार' ने विद्युत् वेग से चार्ट छपवाकर निरक्षरता-निवारण से सम्बन्ध रखनेवाले सभी सज्जनों के पास भेज दिये। 'भंडार' निःस्वार्थ सेवा करने के लिये विख्यात है। ईश्वर इसको सदा उन्नति के पथ पर अग्रसर रक्खें।

[११२]

श्रीशीतलप्रसाद ठाकुर, बी. ए., सब इंस्पेक्टर, स्कूल्स, कटोरिया, भागलपुर—

मैं 'पुस्तक भंडार' को उस समय से जानता हूँ जब इसका श्रीगणेश एक टूटी-फूटी झोपड़ी में श्रीरामलोचनशरणजी ने किया था। इसकी प्रारंभिक कठिनाइयों को देखते हुए यह कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी कि आगे चलकर यह 'भंडार' हिन्दी-साहित्य के लिये इतना उपयोगी सिद्ध होगा। अब तो इसकी सेवाएँ सब के सामने प्रत्यक्ष ही हैं। निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन के सिलसिले में इसकी कार्यवाहियों को देखकर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह केवल एक व्यापारिक संस्था ही नहीं है, बल्कि उपयुक्त अवसर होने पर यह एक समाज-सेवी संस्था भी प्रमाणित हो सकती है। इसके अध्यक्ष शरणजी स्वयं एक उच्च कोटि के साहित्यिक हैं और विद्वानों का सत्कार करने में आप सदा दत्तचित्त रहते हैं। दीन प्रतिभाशाली छात्रों को आर्थिक सहायता पहुँचाने की ओर आप विशेष ध्यान रखते हैं। आपकी उदारता के फलस्वरूप कितने ही असहाय छात्र उच्चकोटि के विद्वान् बन गये हैं। मैं पुस्तक-भंडार और शरणजी की मंगल कामना करता हूँ।

[११३]

श्रीबदरीनारायण सिंह, एम. ए., बी. एल., डिप.-इन-एड., हेडमास्टर कर्मयोगी, विद्यालय, गोरियाकोठी (सारन)—

पुस्तक-भंडार के संचालक श्रीरामलोचनशरणजी की साहित्य-सेवा और कर्मनिष्ठा से भी बढ़कर उनकी नम्रता लोगों के लिये अनुकरणीय है। 'भंडार' ने साहित्यिक पुस्तकों और उत्कृष्ट मासिक 'बालक' के द्वारा हिन्दी की जो सेवा की है वह कम-से-कम इस प्रान्त में तो अवश्य बेजोड़ है। मेरी यह शुभकामना है कि पुस्तक-भंडार इस प्रान्त का ज्ञान-मंदिर बने।

[११४]

श्रीशुकदेव ठाकुर, एम. ए., एम. एड., हेडमास्टर, हाईस्कूल, बक्सर, शाहाबाद—

'बिहार', 'साहित्य' और 'पुस्तक-भंडार'—इन तीनों के अटूट संबंध का हमारे लिये विशेष महत्त्व है। यह तो अब ईश्वरीय प्रेरणा ही जान पड़ती है कि पुस्तक-भंडार अपने सेवा व्रत से हमारे जीवन और साहित्य में आदर्शवाद की अधिकाधिक वृद्धि करता रहेगा। हमारा शतशः साधुवाद स्वीकार हो।

[११५]

श्रीहरिपदमुखोपाध्याय, एम. ए., हेडमास्टर, डि. एम. एच. ई. स्कूल, शेखपुरा—

पुस्तक-भंडार ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह अतुलनीय है। इसका 'बालक' बालकों की मानसिक तथा नैतिक वृद्धि के लिये एकमात्र पत्र है। मैं सर्वथा इसकी शुभकामना करता हूँ।

[११६]

श्रीभुवनेश्वरी दयाल, बी० ए०, बी० एल०, डिप०-एड०, हेडमास्टर, हाईस्कूल, मनेर, पटना—

बिहार-प्रान्त तथा अन्य हिन्दी-प्रान्तों को भी आपके पुस्तक-प्रकाशन-कार्य से जो लाभ हुआ है वह बहुत अधिक है। 'भंडार' ने बिहार में सबसे पहले हिन्दी में स्कूली किताबों का एक स्टैंडर्ड कायम किया है। 'भंडार'-द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'बालक' हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रखता है। इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो।

[११७]

श्रीराजेन्द्रप्रसाद, एम. ए., बी. एल., हेडमास्टर, मोडेल इन्स्टिट्यूट, आरा—

पुस्तक-भंडार एक पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ संस्था है। इससे बिहार में विद्या-प्रचार, विशेषतः हिन्दी की उन्नति तथा विकास, प्रचुर रूप से हुआ है। इसके संस्थापक श्रीयुत रामलोचनशरणजी ने शिक्षक के गौरव,

पूर्ण पद से प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ कर इसे इस उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। इन्हें बिहारी शिक्षक-समुदाय अपने लिये आदर्श समझता है। इनकी स्वर्ण-जयन्ती पर मैं बधाई देता हूँ।

[११८]

श्रीकैलाश सिंह, एम. ए., डिप.-इन-एड., हेडमास्टर, राज-हाईस्कूल, डुमराँव—

'भंडार' ने बिहार-प्रदेश में किस महान् अभाव की पूर्त्ति की है, यह किसी भी हिन्दी-साहित्य-सेवी से अविदित नहीं। 'भंडार' को हिन्दी-साहित्य-सेवा की सच्ची लगन है। इसकी सेवा से बिहार का भाल सर्वदा सर्वथा गर्वोद्दीप्त रहेगा। बधाई!

[११९]

श्रीसच्चिदानन्द सहाय, बी. ए., डिप.-इन-एड., हेडमास्टर, हाईस्कूल, गुमला (राँची)—

'पुस्तक-भंडार' ऐसी प्रकाशन-संस्था के जन्मदाता श्रीरामलोचनशरणजी बधाई के पात्र हैं। यह निर्विवाद है कि 'भंडार' का स्थान बिहार में अद्वितीय है। यहाँ से प्रकाशित होनेवाले 'बालक' ने भी राष्ट्र के भावी उन्नायक बालकों का पर्याप्त मनोरंजन एवं उपकार किया है। हमारी हार्दिक कामना है कि 'भंडार' इसी प्रकार उन्नति की ओर अग्रसर होता रहे।

[१२०]

श्रीनवलकिशोर प्रसाद, एम. ए., बी. एल., डीप. एड., हेडमास्टर, जिला-स्कूल, हजारीबाग—

बालशिक्षा में किसी तरह हाथ बँटाना नागरिकों का प्रथम कर्त्तव्य है। श्रीरामलोचनशरण बिहारीजी ने सच्चे नागरिक की भाँति इस कार्य में कितना भाग लिया है, यह सर्वविदित है। 'बालक' इस प्रान्त का एकमात्र मासिक पत्र है। श्रीबिहारीजी ने 'बालक'-द्वारा हमेशा किशोरों के कोमल मस्तिष्क में नागरिकता का भाव बहुत ही सुचारु रूप से भरने की कोशिश की है। अनेक उपयोगी पुस्तकें भी यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। जयन्ती के अवसर पर मै हार्दिक बधाई देता हूँ।

[१२१]

श्रीपाण्डे परमेश्वरीप्रसाद, असिस्टेंट मास्टर, जिला-स्कूल, राँची—

श्रद्धेय श्रीरामलोचनशरणजी ने हिन्दी-प्रचार के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम दिखलाया है। जिन दिनों हिन्दी का नाम लेते ही कुछ लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, उन दिनों भी शरणजी ने इसकी उन्नति के लिये जीजान से चेष्टा की। 'बालक' तो बालक था, पर उसकी शैशवावस्था अब चली गई। वह अब प्रत्येक श्रेणी के बालकों में निःशङ्क विचरण कर रहा है। शरणजी के इस महान् यज्ञ मे मंगलमय प्रभु सफलता प्रदान करें।

[१२२]

श्रीविभूतिभूषण मुखोपाध्याय, हेडमास्टर, राज हाई स्कूल, दरभंगा—

'पुस्तक-भंडार' ने छात्रोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित कर छात्रों की आवश्यक माँग की पूर्त्ति की है। इससे स्कूल और 'भंडार' मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है। 'भंडार' के अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने अपने अदम्य उत्साह तथा स्वाभाविक साहित्य-रुचि से कितने बिखरे साहित्य-सुमनो को चुनकर सुन्दर हार बनाने की चेष्टा की है और, इसमें सफल भी हुए हैं। एक छोटी-सी पुस्तक की दूकान बढ़कर चंद दिनों में 'भंडार' का रूप में बिहार का सर्वोन्नत साहित्यिक केन्द्र बन गई है। 'भंडार' बराबर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो, बिहार ही को क्या, सम्पूर्ण देश को गौरवान्वित करे।

[१२३]

श्रीसरयूप्रसाद सिंह, हिन्दी-शिक्षक, एम. एल. एकेडमी, लहेरियासराय—

सन् १९१५ ई० में मैं मिड्ल वर्नाक्युलर मे परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के साथ लहेरियासराय आया था, उस समय श्रीयुत रामलोचनशरणजी से भेंट हुई। आपने अपनी नवीन ढंग से बनाई हुई एक व्याकरण की पोथी (अपर व्याकरणबोध) मुझे दिखलाई जिसपर युक्तप्रांत की सरकार से आपको नगद इनाम भी मिला था। मैंने कहा कि मैं तो आपसे एक वृहत् हिन्दी-व्याकरण की आशा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् ही आपने सचमुच एक बहुत सुन्दर हिन्दी-व्याकरण, जिसका नाम व्याकरण-चन्द्रोदय है, मेरे पास भेज दिया।

में देखकर आनन्दविभोर हो गया। आज हिन्दी-संसार में व्याकरण की बहुत पोथियाँ बन गई हैं, परन्तु व्याकरण-चन्द्रोदय अपने ढंग का एक ही रहा। अब तो हिन्दी-संसार में हिन्दी-भाषा-भाषी आपको व्याकरण के आचार्य ही कहकर सम्बोधित किया करते हैं। मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर आपको अधिकाधिक साहित्य सेवा की शक्ति प्रदान करें।

[१२४]

श्रीसतीशचन्द्र चक्रवर्त्ती, हेडमास्टर, जिला-स्कूल, चायबासा—

पुस्तक-भंडार की स्थापना से बिहार के अन्तर्गत पाठ्य-पुस्तकों का अभाव दूर-सा हो गया है। 'भंडार' की पुस्तकें प्रत्येक भाषा की अर्थात् हिन्दी, उर्दू और बँगला की होती हैं। उड़ीसा-प्रदेश इसके पूर्व बिहार के अन्तर्गत था, इसलिये उड़िया भाषा की पाठ्य-पुस्तकें भी 'भंडार' से उपलब्ध हैं। 'भंडार' ने कितने ही लेखकों को उत्साहित कर लब्धप्रतिष्ठ बनाया है। बालकों में लेख लिखने की प्रसुप्त शक्ति को जगाकर भविष्य के सुधार का आयोजन किया है। परमात्मा से प्रार्थना है, 'भंडार' फूले-फले और सदा भरपूर रहे।

[१२५]

श्रीराजदयाल चौधरी, एम. ए., डिप. एड, साहित्य-रत्न, आर० हाईस्कूल, सुरसंड, मुजफ्फरपुर—

'भंडार' बिहार और हिन्दी-साहित्य की सेवा वर्षों से संलग्नता के साथ करता आ रहा है। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्यान्य लाभप्रद पुस्तकों का तथा बालकोपयोगी 'बालक' का प्रकाशन कर इसने अपने को अमित पुण्य और यश का भागी बनाया है। मैं इस संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति की कामना करता हूँ।

[१२६]

श्री एस० एन० पांडेय, प्रधानाध्यापक, यदुनन्दन एच० ई० स्कूल, बाघी, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार की हिन्दी-साहित्य-सेवा सराहनीय है। इसने बिहार की भारी त्रुटि की पूर्त्ति की है। 'भंडार' की ही सेवा का फल है कि स्कूल के पाठ्य-क्रम की पुस्तकों के लिये, अब बिहार को दूसरे प्रान्तों का मुँह जोहना नहीं पड़ता है। यह उत्तरोत्तर उन्नति करे।

[१२७]

श्रीरामनंदन सिंह, प्रधानाध्यापक, देवीमंगल एकेडमी, बगहा, चम्पारन—

पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त का मस्तक हिन्दी-संसार में ऊँचा किया है। इसने हिन्दी-साहित्य के इतिहास को गौरवान्वित बनाया है। साहित्य के प्रत्येक अंग को सुन्दर, सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने का जो गंभीर और भगीरथ-प्रयत्न इसने किया है, वह सर्वदा स्तुत्य—क्या भारत के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। 'पुस्तक-भंडार' अपने पावन उद्देश्य में सफल हो, मेरी मनःकामना यही है।

[१२८]

श्रीप्रयागमाधव कुण्डु, बी० ए०, प्रधान-शिक्षक, कुण्डु मिड्ल-इंगलिश स्कूल, राँची—

पुस्तक-भंडार ने अच्छे ग्रन्थों के प्रकाशन-द्वारा बिहार-प्रान्त की अच्छी सेवा की है। इसने पुस्तकों की छपाई-सफाई, जिल्द और बाहरी सौन्दर्य का मूल्य समझा है। श्रीयुत रामलोचनशरणजी इस सदुद्योग और साहित्यिक सेवा के लिये समस्त बिहार के धन्यवाद-पात्र हैं। 'बालक' की प्रथम संख्या में जो उद्देश्य निर्देशित किये गये थे, सम्पादक ने उनकी यथाशक्ति पूर्त्ति की है। 'भंडार' के कर्म्मचारियों का वर्ताव हमने प्रशंसनीय और भद्रजनोचित पाया। पुस्तक भंडार पर सदा भगवान् की कृपा बनी रहे।

[१२९]

श्रीमनुराम, अँगरेजी शिक्षक, रातू एम. भी. स्कूल, राँची—

'भंडार' के २५ वर्षों का समय हिन्दी-साहित्य के लिये आशा, वैभव और उन्नति का युग रहा है। पुस्तक-भंडार की साहित्य-सेवाओं से ऐसा कौन हिन्दी-प्रेमी है जो परिचित नहीं है? 'बालक' पत्र इसी 'भंडार' से प्रकाशित होकर वर्षों से साहित्य-सुमन विकीर्ण कर रहा है। पुस्तक भंडार की पुस्तकें शिक्षाप्रद, छपाई में सुन्दर तथा सस्ती होती हैं जिन्हें जनता हृदय से पसन्द करती है। यह बिहार का एक आदर्श पुस्तक-भंडार हो रहा है। मैं शुभकामना के साथ आशावान् हूँ कि यह भविष्य में भी हिन्दी-भाषा की उन्नति करता हुआ सदा फूलता-फलता रहे।

[१३०]

श्रीजगन्नाथ राम, हेडपंडित, रातू मि० व० स्कूल, राँची—

मुझे 'भंडार' की पुस्तकें उपयोगी, समयोचित विचारों से परिपूर्ण और शिक्षकों तथा छात्रों को उचित सहायता पहुँचानेवाली मिली हैं। प्रत्येक विषय की पुस्तकें अति लाभदायक सिद्ध हुई हैं। छपाई, सफाई, गेट अप सभी बातों में ये आधुनिक हैं। इनमें सिलेबस के अनुसार काम की जितनी बातें चाहिये, खोज के साथ दी जाती हैं और त्रुटियाँ नहीं रहने पातीं। मुझे २१ वर्षों से इसका अनुभव रहा है कि 'भंडार' की सभी पुस्तकें काम की होती हैं। 'भंडार' दिनोंदिन फूले-फले और अक्षय-कीर्त्ति प्राप्त करे।

[१३१]

श्रीयदुनन्दन पाठक, 'विशारद', प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी एम० ई० स्कूल, राँची—

पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त में हिन्दी-साहित्य की अनुपम सेवा की है। यही एक ऐसा 'भंडार' है जो हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन तथा हिन्दी-साहित्य-सेवा करने में इस प्रान्त में अग्रगण्य है। इसकी प्रत्येक पुस्तक, चाहे वह किसी विषय की हो, अनुपम और अद्वितीय होती है; भाषा, भाव और विषय के वैचित्र्य में इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने ढँग की एक होती है। शिक्षकों पर ऐसी कृपादृष्टि रखनेवाला शायद ही और कोई 'भंडार' है। यह 'भंडार' इसी प्रकार शिक्षकों के सहयोग से फूलता-फलता रहे।

[१३२]

श्रीसरयूप्रसाद गुप्त, हेडमास्टर, डुमरी एम. ई. स्कूल, हजारीबाग—

'पुस्तक-भंडार' कुबेर का भंडार हो और बराबर फूलता-फलता रहे।

[१३३]

श्रीब्रजविलासप्रसाद, प्रधानाध्यापक, भुवनेश्वर मिडूल इंगलिश स्कूल, आरा—

" 'पुस्तक-भंडार' अपनी साहित्य-सेवा से बिहार का मुख उज्ज्वल करता चला आया है और अभी तक बिहार में साहित्य-सेवा की जो कमी थी, यह

उसको पूरा कर रहा है। 'भंडार' बिहार टेक्स्टबुक-कमिटी के द्वारा स्वीकृत पुस्तकों को नई सिलेबस के अनुकूल रचकर विद्यार्थियों की जो सहायता आजतक करता चला आया है, अकथनीय है। हम 'पुस्तक-भंडार' को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

[१३४]

श्रीकेदारनाथ सिंह, बी० ए०, हेडमास्टर, एम० ई० स्कूल, बलाही नीलकंठ, मुजफ्फरपुर—

'भंडार' ने अपने जन्मकाल से ही हिन्दी की अनुपम सेवा की है। पुस्तक-भंडार की सफलता का इतिहास बिहार साहित्य की सफलता का इतिहास है। हमने विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही रूपों में 'पुस्तक-भंडार' की किताबों का काफी अध्ययन किया है और उन्हे सर्वथा लाभदायक तथा शिक्षाप्रद पाया है। पुस्तक-भंडार के स्वत्वाधिकारी श्रीयुत रामलोचनशरणजी शतश' धन्यवाद के पात्र हैं।

[१३५]

श्रीरामसागर शाही, बी. ए., हेडमास्टर, मि. ई. स्कूल, मुजफ्फरपुर—

पुस्तक-भंडार बिहार का साहित्य-मंदिर है। श्रीरामलोचनशरणजी इसके अनन्य पुजारी हैं। जिस प्रकार राष्ट्रीयता के मैदान में महात्मा गाँधी का नाम अमर रहेगा उसी प्रकार पिछड़े हुए बिहार में हिन्दी-सेवा के लिये शरणजी का नाम सर्वप्रथम रहेगा। शिक्षक-समाज को 'भडार' की पुस्तकों से जितना प्रेम है, उतना किसीसे नहीं।

[१३६]

श्रीजगदीश मिश्र 'मैथिल', काव्यतीर्थ, हेडमास्टर, मारवाड़ी एम. ई. स्कूल, सीतामढ़ी—

'पुस्तक-भंडार' के सत्वाधिकारी संस्थापक श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी' अपने समय के धुरन्धर नीतिज्ञ हैं। 'भंडार' इनके अतीत स्वप्न का सक्रिय अनुवाद है। इसके उदार प्रतिष्ठापक ने जिस महान् उद्देश्य से इसकी स्थापना की है, वह कोरा व्यापार नहीं है। पिछले १० वर्षों से 'भंडार' से मेरा निकटतम सम्पर्क रहा है। मैंने देखा है कि 'भंडार' एक आदर्श परिवार के सिद्धान्त पर संचालित है। इसने उपादेय ग्रंथों के सुंदर प्रकाशन से प्रान्त का माथा ऊँचा

किया है। 'बालक' इस जागृति-युग का यशस्वी अग्रदूत है। मेरे लिये यह जयन्ती महान् गौरवपूर्ण एवं पुण्यमय पर्व है।

[१३७]

श्रीसरयू ठाकुर, हेडमास्टर, बो. मि. ई. स्कूल, खिरहर, दरभंगा—

जैसे-जैसे इस 'भंडार' की अवस्था उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करती जाती है, वैसे-वैसे इसकी लोकप्रियता, उदारता एवं सहृदता में यथेष्ट वृद्धि होती जाती है। इसकी दिन-दिन उन्नति होती रहे।

[१३८]

श्रीहरिनंदन चौधरी, बी. ए., हेडमास्टर, एम० ई० स्कूल, चाँदपुरा, मुजफ्फरपुर—

आकर्षक कवर, सुन्दर गेट-अप, नूतन भाव-क्षेत्र और कलात्मकता पुस्तक-भंडार के प्रकाशन की खास खूबियाँ रही हैं। बिहार के साहित्य और साहित्यिकों की सृष्टि में इसका सबसे बड़ा हाथ है। बाल-साहित्य को इसने जीवन दिया है, प्रौढ भावनाओं को प्रगति दी है और महान् आत्माओं के जीवन के विस्मृत क्षणों को प्राण-स्पंदन।

[१३९]

श्रीराय पीताम्बर शर्मा, बी० ए० हेडमास्टर, इंडस्ट्रियल एम० ई० स्कूल, दिघरा (दरभंगा)—

अद्यावधि पुस्तक-भंडार-कृत सेवा सर्वथा स्तुत्य है। इसका गौरवपूर्ण अतीत ही समुज्ज्वल भविष्य का परिचायक है। दीन विद्यार्थियों की सहायता, साहित्य-सेवा, निरक्षरों के प्रति सहानुभूति और उन्हें साक्षर और शिक्षित बनाने के प्रयत्न, शिक्षकों के साथ सद्भाव एवं व्यापारियों के लिये सुविधा सभी चित्ताकर्षक हैं। दिनानुदिन इसकी अभिवृद्धि हो मेरी मंगल कामना यही है।

[१४०]

श्रीराजेन्द्रनारायण झा, हेडमास्टर, मि० ई० स्कूल, सुपौल (दरभंगा)—

'भंडार' सम्पूर्ण बिहार-प्रान्त के गौरव की वस्तु है। जिस खूबी के साथ इसके निर्माता ने एक अति साधारण संस्था से इसे इतना विकसित रूप दिया है,

वह तो केवल साहित्य के विद्यार्थियों के ही हेतु नहीं; वरन् एक-एक ग्रामीण जनता के उत्साह एवं गौरव की बात है। इस महान् संस्था और इसके जन्मदाता श्रद्धास्पद श्रीमान् मास्टर साहब के दीर्घजीवन के हेतु मैं ईश्वर से प्रार्थी हूँ।

[१४१]

श्रीरमाकान्तप्रसाद, बी० ए०, हेडमास्टर, बो. एम. ई. स्कूल, मानिकपुर (सारन)—

पुस्तक-भंडार ने अपने प्रकाशनों द्वारा बिहारी होनहार साहित्यिक नवयुवकों की प्रतिभा संसार के सामने रक्खी है। बिहार के स्कूलों में आज तक नक्शे और चित्रकारी की किताबें बाहर से मँगाई जाती थीं, लेकिन 'हिमालय एटलास' और 'अजंता-चित्रावली' निकालकर पुस्तक-भंडार ने इस कमी को भी पूरा किया है। राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' की भंडार-वृद्धि की ओर पुस्तक-भंडार जिस तत्परता से अग्रसर हो रहा है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये गौरव की वस्तु बन जायगा। 'पुस्तक-भंडार' की हिन्दी-सेवा केवल व्यवसाय के लिये नहीं है, बल्कि बिहार में हिन्दी की उन्नति के लिये भी है।

[१४२]

श्रीरामसेवक तिवारी, शिक्षक, मि० ई० स्कूल, जलालपुर (सारन)-

मेरी हार्दिक शुभकामना है कि बिहार मे हिन्दी के अनन्य सेवक श्रीमान् रामलोचनशरणजी इस 'भंडार' की 'स्वर्ण-जयन्ती' तथा 'हीरक जयन्ती' भी देखने के लिये हमारे बीच समुन्नत अवस्था मे रहे।

[१४३]

श्रीरघुनाथप्रसाद, हेडमास्टर, गौरीशंकर मि० ई० स्कूल, मोतीहारी—

पुस्तक-भंडार अपनी अमूल्य एवं सुगम पुस्तकों के द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों की, विशेषकर बिहार के शिक्षा-विभाग की, जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिये सभी शिक्षक तथा छात्र उसके ऋणी हैं। पुस्तक-भंडार ने 'बालक' नामक मासिक पत्र निकालकर छात्रों की साहित्यिक रुचि बढ़ाई है और निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन में पर्याप्त सहायता पहुँचाकर देश की अनुपम सेवा की है। इस आदर्श संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति हो और इसके अध्यक्ष श्रीयुत रामलोचनशरणजी दीर्घायु होकर देश का गौरव बढ़ाते रहें।

[१४४]

श्रीवेदानंद कुमर, हेडपंडित, मि० स्कूल, सुखासन, भागलपुर—

पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीमान् रामलोचनशरणजी ने आजतक जिस अनवरत परिश्रम, अदम्य उत्साह तथा लगन से हिन्दी तथा अन्य साहित्यिक क्षेत्रों में बिहार—विशेषकर मिथिला—का मुख उज्ज्वल किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। परमात्मा उन्हें दीर्घजीवी करें।

[१४५]

श्रीमुरलीधर सिंह, प्रधानाध्यापक, मि० ई० स्कूल, हेमजापुर, मुंगेर—

'भंडार' ने सदा हम शिक्षकों की कठिनाइयाँ दूर करने की चेष्टा की है। इसके द्वारा प्रकाशित प्रत्येक विषय की पाठ्य-पुस्तक अपना सानी नहीं रखती। बालोपयोगी सुन्दर पुस्तकें तथा हिन्दी-साहित्य के उद्भट विद्वानों की सुन्दर रचनाएँ प्रकाशित कर 'भंडार' ने बिहार का सिर ऊँचा किया है। 'बालक' का प्रकाशन तो हिन्दी-प्रेमी बालकों का ही नहीं, वयस्कों का भी ज्ञानवर्द्धन करता है। मैं 'भंडार' की उत्तरोत्तर उन्नति की शुभकामना करता हूँ।

[१४६]

श्रीरामचंद्रनारायण, हेडमास्टर, मि. ई. स्कूल, नवाकोठी, मुंगेर—

'भंडार' ने हिन्दी-साहित्य की सराहनीय सेवा कर दिखाई है एवं इस कार्य में सतत प्रयत्नशील है। इसके सेवा-स्वरूप उत्तमोत्तम ग्रंथ हमें देखने को मिल रहे हैं। हमें आशा है कि अनेकों बाधाओं को सहन करता हुआ यह बिहार में अपना सर्वप्रथम स्थान अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ रहेगा।

[१४७]

श्रीताराकान्त झा, हेडमास्टर, मि. ई. स्कूल, साहरी, मुंगेर—

'पर-हित बस जिनके मन माहीं, तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं'—के सिद्धान्त से इस 'भंडार' की स्थापना है। इस 'भंडार' ने पुस्तक के मुद्रण, प्रकाशन और दान पर ध्यान रखकर स्वार्थ और परमार्थ में शरीर और प्राणों की-सी घनिष्ठता दिखा दी है। इसे पुस्तक-भंडार कहा जाय या ज्ञान-भंडार? बिहार के इतिहास में इसकी कीर्त्ति रजतपत्रों पर स्वर्णाक्षरों से लिखी जायगी।

[१४८]

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'विशारद', प्रथमाध्यापक, बी. मि. ई. स्कूल, बाँका, भागलपुर—

मेरी साहित्य-चेतना का श्रेय 'बालक' तथा उसके प्रकाशक 'भंडार' को ही है। मेरी यह सबल धारणा है कि मेरे जैसे अनेक व्यक्तियों को 'भंडार' ने अपनी साहित्य-सुधा पिलाकर पुष्ट किया है। बिहार की यह एकमात्र साहित्य-संस्था चिरंजीव हो।

[१४९]

श्रीबलराम किशोर, हेडमास्टर, न्यू एम. ई. स्कूल, गया—

'पुस्तक-भंडार'-द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें बुद्धि को तीव्रता प्रदान करनेवाली, चरित्र को सुन्दर साँचे में ढालनेवाली तथा देश की प्रगति के अनुकूल हैं। शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिये 'भंडार' ने अथक प्रयत्न किया है। इसकी उन्नति में हमारी भी उन्नति है।

[१५०]

श्रीरामकृष्णप्रसाद सिंह 'विशारद', हेडपंडित, मि० ई० स्कूल, सिरसा, सारन—

मैं एक शिक्षक के नाते कहूँगा कि 'भंडार' की कोर्स के सभी विषयों की पुस्तकें बिहार-प्रान्त मे सर्वोत्तम साबित हुई हैं। पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त में हिन्दी की अद्वितीय सेवा की है। पुस्तक-भंडार ने बिहार-प्रान्त की कमी को पूरा किया है।

[१५१]

श्रीजगन्नाथ शर्मा, हेडमास्टर, मि० ई० स्कूल, कुरथा, गया—

भूकम्प आदि तरह-तरह के प्रबल तथा प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करते हुए भी पुस्तक-भंडार ने जो साहित्य की सेवा की है, वह स्तुत्य है—श्लाघ्य है—स्मरणीय है। इसके प्रबंधकों का व्यवहार शिक्षक-समाज के प्रति सदा उचित, उदार और प्रशंसनीय रहा है। 'भंडार' बिहार का गौरव है—हमारी उज्ज्वल कीर्त्ति है। ईश्वर इसे सदा उन्नति प्रदान करें।

[१५२]

श्रीहरसहायलाल, हेडपंडित, मि० व० स्कूल, होसिर, हजारीबाग—

पुस्तक-भंडार इस सूबे के अपने विभाग का एक अद्वितीय महारथी है। इसने अत्यल्प समय में अपने अक्लान्त उद्योग से बहुत-से नूतन-नूतन ग्रंथ निकाले हैं। इसका दृष्टिकोण नागरी के अतिरिक्त इंगलिश, बँगला, उर्दू, आदि विभिन्न भाषाओं की सेवा भी है। इसी से 'भंडार' सर्वप्रिय हो रहा है। हार्दिक धन्यवाद।

[१५३]

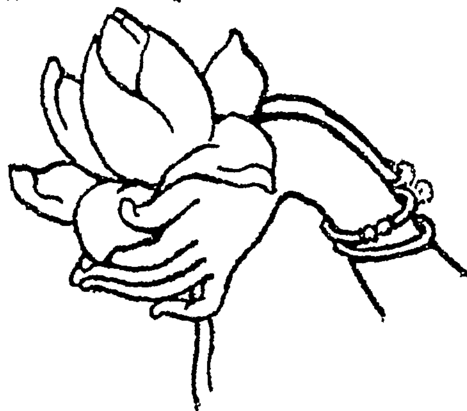
श्रीबालकृष्ण झा, द्वि० शिक्षक, अ० प्रा० स्कूल, गौरा, मुंगेर—

हमारे प्रान्त के शिक्षकों में जागरण का जो भाव लहराने लगा है उसका श्रेय पुस्तक-भंडार को है। इसके ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के समान विद्वान्, उदार और भावुक संचालक श्रीरामलोचनशरणजी ने बड़ी तत्परता से समय-समय पर नई-नई पुस्तकें बनाकर, प्रचारार्थ मुफ्त वितरण कर, 'बालक' ऐसे पत्र निकालकर, और गुप्त दान देकर शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को जो उचित पथ-प्रदर्शन कराया है, उसके लिये हम मुक्तकंठ से आपकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। आज 'शिक्षक-संघ' का जो सूत्रपात हुआ है—हमने आपस में प्रेम करना सीखा है—वह आपके उद्योग का ही फल है। मैं आपके दीर्घजीवन और पूर्ण सफलता की कामना परमात्मा से करते हुए आपके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

[१५४]

श्रीवशिष्ठनारायण, प्रधानाध्यापक, मि. ई. स्कूल, रामपुर, मुंगेर—

बिहार का 'पुस्तक-भंडार' अपनी साहित्य-सेवा के लिये हिन्दी-संसार में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुका है। 'बालक' अपना सानी नहीं रखता। प्रत्येक बिहारी को 'भंडार' की सफलता पर गर्व है।





साहित्य-सेवियों के कृपापत्रों से संकलित कुछ महत्त्वपूर्ण-अंश

[१] स्वर्गीय प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'—

आपने जो मेरे अनेक उपकार किये हैं, उनकी बातें याद कर लगा। सचमुच मैं जब आपके अकृत्रिम उदारता को स्मरण करता हूँ, सिर झुका देता हूँ। यदि आप कहीं के राजा होते तो देश का बड़ा उपकार जो हो, आपकी सम्पत्ति परोपकार ही के लिये है, यह मुझे दृढ़ वं. गया। इसीलिये आपकी कीर्त्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी भारत में फैलती है। अनेक लक्ष्मीपात्र हैं सही, पर आप-सा उदार तथा दयालु बहुत कम ह

❀ ❀ (३०-५

आपकी उदारता मेरे हृदय में जन्मांतर मे भी रहेगी।

❀ ❀ (२२-११

आपकी सम्पादन-शैली मुझे बहुत पसंद है। सम्पादन-कला आपकी ऊँची हो गई है।

(३०-१२-

[२] स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, नेटाल, दक्षिण

यह जानकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही कि शीघ्र ही आपकी जयन्ती मनाई जायगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि मैं स्वयं वहाँ होकर आपका अभिनंदन कर सकता। प्रथम मिलन में ही आपने मेरे उच्च आसन ग्रहण कर लिया है। मै तो अपने अनुभव के आधार पर कह हूँ कि आपने साहित्य की जो सेवा की है, वह हिन्दी के इतिहास की सम्पत्ति है। आप बिहार के गौरव हैं और राष्ट्रभाषा के अभिमान।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपकी सेवा के सामने श्रद्धा से शीश झुकाया करेंगी। भ
आपको दीर्घायु करें ताकि आपके द्वारा राष्ट्रभाषा के 'भंडार' मे साहित्य-रत्नों
अहर्निश अभिवृद्धि होती रहे। (१०-२-४०

[३] श्रीरामदास राय, अशोकाश्रम (गाजीपुर)—

आपसे मेरी पुस्तकों के लिये जो सहायता मिलती आई है, उसके लिये आपको हृदय से साधुवाद देता हूँ। (१४-९-४

[४] डाक्टर रविप्रताप सिंह श्रीनेत, नदीम-हाउस, भोपाल

हिन्दी के बाल-साहित्य की जो ठोस सेवाएँ 'मास्टर साहब' ने भ ग
की हैं, वे हिन्दी के इतिहास में अमर रहेंगी। मास्टर साहब हिन्दी के 'आधर
हैं। उनका पुस्तक-भंडार 'चिल्डरेन्स न्यूज बुक-हाउस' है। उनका 'पालक'
'चिल्डरेन्स न्यूज़' है। कितने ही वर्षों से उनसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा
'बालक' का भविष्य उज्ज्वल है। उसके सामने सेवा की बड़ी मंजिल है। मैं
चाहता हूँ कि 'बालक' के अभिभावक मास्टर साहब और पुस्तक-भंडार
साल हिन्दी की सेवा करते रहें। इस सेवा की अभी बहुत जरूरत है। (५मई, १९

[५] प्रोफेसर दयाशंकर दूबे, एम., ए., एल एल. बी., दा.

प्रयाग—

'पुस्तक-भंडार' ने सचमुच बिहार मे प्रशंसनीय कार्य किया है और
साहित्य-सेवा की है। इस शुभ अवसर पर मैं उसके मालिक और कार्यक
को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी
(१०-२-

[६] प्रोफेसर मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम. ए., हिन्दू-वि श्व वि

लय, काशी—

जब-जब मुझपर संकट पड़े हैं, मैंने बराबर गुरुवर की याद की है,
अभी तक मुझे किसी प्रकार निराश नहीं होना पड़ा है।

[७] श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', गया—

मैं तो पूर्णरूप से 'भंडार' के हाथों बिका हुआ हूँ। (७-२

मेरी यह इच्छा है कि 'भंडार' से मेरा सम्बन्ध सदा मधुरतर ना।



साहित्य-सेवियों के कृपापत्रों से संकलित कुछ महत्त्वपूर्ण-अंश

[१] स्वर्गीय प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'—

आपने जो मेरे अनेक उपकार किये हैं, उनकी बातें याद कर मैं रोने लगा। सचमुच मैं जब आपके अकृत्रिम उदारता को स्मरण करता हूँ, तब मैं सिर झुका देता हूँ। यदि आप कहीं के राजा होते तो देश का बड़ा उपकार होता। जो हो, आपकी सम्पत्ति परोपकार ही के लिये है, यह मुझे दृढ़ विश्वास हो गया। इसीलिये आपकी कीर्त्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी भारत में फैलती जा रही है। अनेक लक्ष्मीपात्र हैं सही, पर आप-सा उदार तथा दयालु बहुत कम हैं।

❀ ❀ (३०-५-३८)

आपकी उदारता मेरे हृदय में जन्मांतर में भी रहेगी।

❀ ❀ (२२-११-३९)

आपकी सम्पादन-शैली मुझे बहुत पसंद है। सम्पादन-कला आपकी बहुत ही ऊँची हो गई है।

(३०-१२-३९)

[२] स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, नेटाल, दक्षिण अफ्रिका—

यह जानकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही कि शीघ्र ही आपकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि मैं स्वयं वहाँ उपस्थित होकर आपका अभिनंदन कर सकता। प्रथम मिलन में ही आपने मेरे हृदय में उच्च आसन ग्रहण कर लिया है। मैं तो अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि आपने साहित्य की जो सेवा की है, वह हिन्दी के इतिहास की अमर सम्पत्ति है। आप बिहार के गौरव हैं और राष्ट्रभाषा के अभिमान। हमारी

पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपकी सेवा के सामने श्रद्धा से शीश झुकाया करेंगी। भगवान् आपको दीर्घायु करें ताकि आपके द्वारा राष्ट्रभाषा के 'भंडार' में साहित्य-रत्नों की अहर्निश अभिवृद्धि होती रहे। (१०-२-४०)

[३] श्रीरामदास राय, अशोकाश्रम (गाजीपुर)—

आपसे मेरी पुस्तकों के लिये जो सहायता मिलती आई है, उसके लिये मैं आपको हृदय से साधुवाद देता हूँ। (१४-९-४१)

[४] डाक्टर रविप्रताप सिंह श्रीनेत, नदीम-हाउस, भोपाल—

हिन्दी के बाल-साहित्य की जो ठोस सेवाएँ 'मास्टर साहब' ने आजतक की हैं, वे हिन्दी के इतिहास में अमर रहेंगी। मास्टर साहब हिन्दी के 'आथर न्यू' हैं। उनका पुस्तक-भंडार 'चिल्डरेन्स न्यूज बुक-हाउस' है। उनका 'बालक' प्रसिद्ध 'चिल्डरेन्स न्यूज' है। कितने ही वर्षों से उनसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'बालक' का भविष्य उज्ज्वल है। उसके सामने सेवा की बड़ी मंजिल है। मैं यही चाहता हूँ कि 'बालक' के अभिभावक मास्टर साहब और पुस्तक-भंडार सैकड़ों साल हिन्दी की सेवा करते रहें। इस सेवा की अभी बहुत जरूरत है। (५मई, १९४०)

[५] प्रोफेसर दयाशंकर दूबे, एम., ए., एल-एल.-बी., दारागंज, प्रयाग—

'पुस्तक-भंडार' ने सचमुच बिहार मे प्रशंसनीय कार्य किया है और ठोस साहित्य-सेवा की है। इस शुभ अवसर पर मैं उसके मालिक और कार्यकर्त्ताओं को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। (१०-२-४०)

[६] प्रोफेसर मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम. ए., हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी—

जब-जब मुझपर संकट पड़े हैं, मैंने बराबर गुरुवर की याद की है, और अभी तक मुझे किसी प्रकार निराश नहीं होना पड़ा है।

[७] श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', गया—

मैं तो पूर्णरूप से 'भंडार' के हाथों बिका हुआ हूँ। (७–३–४१)

मेरी यह इच्छा है कि 'भंडार' से मेरा सम्बन्ध सदा मधुरतर बना रहे।



साहित्य-सेवियों के कृपापत्रों से संकलित कुछ महत्त्वपूर्ण-अंश

[१] स्वर्गीय प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र'—

आपने जो मेरे अनेक उपकार किये हैं, उनकी बातें याद कर मैं रोने लगा। सचमुच मैं जब आपके अकृत्रिम उदारता को स्मरण करता हूँ, तब मैं सिर झुका देता हूँ। यदि आप कहीं के राजा होते तो देश का बड़ा उपकार होता। जो हो, आपकी सम्पत्ति परोपकार ही के लिये है, यह मुझे दृढ़ विश्वास हो गया। इसीलिये आपकी कीर्त्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी भारत मे फैलती जा रही है। अनेक लक्ष्मीपात्र हैं सही, पर आप-सा उदार तथा दयालु बहुत कम हैं।

(३०-५-३८)

❀ ❀

आपकी उदारता मेरे हृदय में जन्मांतर में भी रहेगी।

(२२-११-३९)

❀ ❀

आपकी सम्पादन-शैली मुझे बहुत पसंद है। सम्पादन-कला आपकी बहुत ही ऊँची हो गई है।

(३०-१२-३९)

[२] स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, नेटाल, दक्षिण अफ्रिका—

यह जानकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही कि शीघ्र ही आपकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि मैं स्वयं वहाँ उपस्थित होकर आपका अभिनंदन कर सकता। प्रथम मिलन में ही आपने मेरे हृदय में उच्च आसन ग्रहण कर लिया है। मैं तो अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि आपने साहित्य की जो सेवा की है, वह हिन्दी के इतिहास की अमर सम्पत्ति है। आप विहार के गौरव हैं और राष्ट्रभाषा के अभिमान। हमारी

पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपकी सेवा के सामने श्रद्धा से शीश झुकाया करेंगी। भगवान् आपको दीर्घायु करें ताकि आपके द्वारा राष्ट्रभाषा के 'भंडार' में साहित्य-रत्नों की अहर्निश अभिवृद्धि होती रहे। (१०-२-४०)

[३] श्रीरामदास राय, अशोकाश्रम (गाजीपुर)—

आपसे मेरी पुस्तकों के लिये जो सहायता मिलती आई है, उसके लिये मैं आपको हृदय से साधुवाद देता हूँ। (१४-९-४१)

[४] डाक्टर रविप्रताप सिंह श्रीनेत, नर्दास-हाउस, भोपाल—

हिन्दी के बाल-साहित्य की जो ठोस सेवाएँ 'मास्टर साहब' ने लगातार की हैं, वे हिन्दी के इतिहास में अमर रहेंगी। मास्टर साहब हिन्दी के 'आर्थर मी' हैं। उनका पुस्तक-भंडार 'चिल्डरेन्स न्यूज बुक-हाउस' है। उनका 'बालक' प्रसिद्ध 'चिल्डरेन्स न्यूज' है। कितने ही वर्षों से उनसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'बालक' का भविष्य उज्ज्वल है। उसके सामने सेवा की बड़ी मंजिल है। मैं यही चाहता हूँ कि 'बालक' के अभिभावक मास्टर साहब और पुस्तक-भंडार सैकड़ों साल हिन्दी की सेवा करते रहें। इस सेवा की अभी बहुत जरूरत है। (५मई, १९४०)

[५] प्रोफेसर दयाशंकर दूबे, एम., ए., एल.एल.बी., दारागंज, प्रयाग—

'पुस्तक-भंडार' ने सचमुच बिहार में प्रशंसनीय कार्य किया है और ठोस साहित्य-सेवा की है। इस शुभ अवसर पर मैं उसके मालिक और कार्यकर्ताओं को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। (१०-२-४०)

[६] प्रोफेसर मनोरंजनप्रसाद सिंह, एम. ए., हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी—

जब-जब मुझपर संकट पड़े हैं, मैंने बराबर गुरुवर की याद की है, और अभी तक मुझे किसी प्रकार निराश नहीं होना पड़ा है।

[७] श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी', गया—

मैं तो पूर्णरूप से 'भंडार' के हाथों बिका हुआ हूँ। (३-३-४१)

* *

मेरी यह इच्छा है कि 'भंडार' से मेरा सम्बन्ध सदा मधुमय बना रहे।

मास्टर साहब ने मेरे साथ जिस उदारता का व्यवहार रक्खा था, उसे मैं भूला नहीं हूँ। मै उनका चिरकृतज्ञ और चिरऋणी रहूँगा। (गुरुवार)

[८] श्रीजगदीश झा 'विमल', साहित्य-सदन, जमालपुर, (मुंगेर)—

आपने मेरे साथ जो उपकार किया है वह मैं जीवन-भर नहीं भूल सकता। कई तरह से मैं आपका ऋणी हूँ। शायद ही इस जीवन में उऋण हो सकूँगा। आप हिन्दी-लेखकों के सच्चे सहायक और यशस्वी विद्वान् हैं।

(२२–२–१९३७)

[९] सुप्रसिद्ध कथाकार पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी, दारागंज, प्रयाग—

आप उन प्रकाशकों में नहीं हैं, जिन्हें रुपये के लिये ईमान तक बेच देने में कोई आपत्ति या संकोच नहीं होता। आप न केवल बिहार-प्रान्त के प्रकाशन-क्षेत्र के गौरव हैं, वरन् हिन्दी के अखिलभारतीय प्रकाशन-क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट समादरणीय आसन भी आपने प्राप्त कर लिया है। मैं आपको आज से नहीं, लगभग पन्द्रह वर्षों से जानता हूँ। मुझे पता है कि आप प्रतिभा का सम्मान करना जानते हैं। मुझे आपपर पूरा विश्वास है। मैं कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि आपके द्वारा किसी श्रमजीवी लेखक के साथ कभी किसी प्रकार का अन्याय हो सकता है। (३०–११–३९, रात ११' बजे)

आपने जिस सदाशयता का परिचय दिया है, न केवल मेरे लिये, वरन् हिन्दी-साहित्य की आधुनिक प्रगति के लिये भी, वह एक महत्त्व की बात है। पूर्ण आशा है, आगे भी आप सदा साहित्य-निर्माताओं के सहायक होंगे। आपकी यह उदारता साहित्य-निर्माण के इतिहास में सदा के लिये अमर हो जायगी। (२७–१२–३९)

[१०] श्रीरामनाथलाल 'सुमन', त्यागभूमि-कार्यालय, अजमेर—

साहित्यिकों में आपसे अधिक सहृदय मैंने दू रा नहीं पाया।

निश्चय ही मास्टर साहब की सात्त्विकता के प्रति आरम्भ से ही मेरा आदर-भाव रहा है। उनकी सादगी, उनकी लगन, उनकी स्पष्टता, उनकी निरभिमानिता का मैं सदा कायल रहा हूँ।

बिड़ला-लाइन्स, दिल्ली] (१८–९–३४)

[११] श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी—

मेरे प्रति आपने जो स्नेह दिखलाया है, उसका बदला कलम की स्याही से (किताबें लिखकर) नहीं चुकाया जा सकता। उसके लिये इससे भी कुछ पवित्र चीज चाहिये। मैं परीक्षा के अवसर पर अपने को सच्चा सिद्ध कर सकूँ और अवसर पर अपना हृदय-रक्त देकर भी अपनी कृतज्ञता अर्पित कर सकूँ, यही इच्छा है।

[१२] श्रीशिवनाथ सिंह शांडिल्य, रईस; माछरा (मेरठ)

जिस सुन्दर रूप से अपने 'शिकारी-कहानियाँ' का प्रकाशन किया है— मेरा दिल नहीं चाहता कि मैं अपनी पुस्तक को किसी दूसरी जगह से छपाने का प्रयत्न करूँ। (२५-१२-३९)

[१३] श्रीनलिनविलोचन शर्मा, एम. ए., पटना—

यह पत्र ही 'मास्टर साहब' के प्रति मेरी मूर्त्तिमती श्रद्धाञ्जलि है। उनकी मुझपर शुरू से ही कृपा रही है—केवल इसलिये नहीं, किन्तु एक सामान्य हिन्दी-प्रेमी की हैसियत से भी मैं अपनी शुभाकांक्षाएँ भेज रहा हूँ। 'बालक' को तो मैं मास्टर साहब की उर्वर एवं परिणत बुद्धि द्वारा बालकों के लिये ईजाद की हुई एक मौलिक मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति स्वीकार करता हूँ।

[१४] प्रोफेसर कृपानाथमिश्र, एम. ए., पटना-कालेज—

आपने मेरा जो उपकार किया, वह नहीं भूला हूँ—वह नहीं भूलने का। मै आपका और 'पुस्तक-भंडार' का आजन्म ऋणी रहूँगा। आपने मेरी जो सहायता की, वह अकथनीय है। आपने मुझे बिलकुल अपना लिया।

(१४-१-३६)

[१५] श्री रामधारीप्रसाद 'विशारद', भूतपूर्व मंत्री, विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—

प्रादेशिक सम्मेलन सदा से आपके ही ऐसे सहृदय हिन्दी-प्रेमियों की सहायता से चलता आ रहा है। (२४ अगस्त, १९२९)

[१६] पंडित छविनाथ पांडेय, वर्त्तमान प्रधान मंत्री, विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना—

हिन्दी और विहार के गौरव 'पुस्तक-भंडार' के स्वत्वाधिकारी बाबू रामलोचनशरण की उदारता से सम्मेलन-भवन बनाने के लिये पटने में एक जमीन ले ली गई है।

—'साहित्य' (त्रैमासिक), वर्ष १, खंड १, आश्विन १९९३ वि०

[१७] प्रो. विश्वनाथप्रसाद, एम. ए., साहित्यरत्न, साहित्याचार्य—

आपके यहाँ से अपनी पुस्तक का प्रकाशित होना, सचमुच मैं अपने लिये गौरव की बात समझता हूँ। मैं तो बस इसी को अपने परिश्रम का समुचित पुरस्कार समझता हूँ। (२१—७—३३)

[१८] प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम॰ए., पटना-कालेज—

बिहार का हिन्दी-साहित्य और 'मास्टर साहब' दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। न जाने कितने तरुण और वयस्क कवि और साहित्यिक अपनी रचनाओं को लेकर 'मास्टर साहब' के यहाँ गये और चुपके से पाकिट भरकर लौट आये। व्यवसाय निपुणता और सहृदयता की गंगा-जमुनी ने 'मास्टर साहब' के व्यक्तित्व-क्षेत्र को सिक्त कर रक्खा है। (९—६—४०)

[१९] श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', पटना-सिटी—

पिताजी के शुभचिन्तक और हितू तो कितने हैं; लेकिन सारे भारत में दो ही व्यक्ति मिले, जिन्होंने मेरे साथ सच्ची हमदर्दी दिखलाई। एक तो पूज्य राजेन्द्र बाबू, दूसरे आप। पहले से मुझसे परिचित न होकर भी मेरे लिये आपने जो कुछ किया और वैसा व्यवहार रक्खा, उसकी मधुर स्मृति मैं कभी नहीं भूलूँगा। सब के मुँह यही बात सुनी है कि आपके द्वारा साहित्यिकों की सहायता होती रही है। आशा की इसी रेखा के सहारे मैं आपका परामर्श चाहता हूँ। (९—१—२९)




आपके प्रति मन में जैसे भाव उठ रहे हैं, उन्हें लिख नहीं सकता, लिखूँगा भी नहीं। आपके बारे में सुना बहुत कुछ था, किन्तु संसार के कटु-तीक्ष्ण व्यवहारों से पीड़ित मैं आपके व्यवहार से अवाक् हूँ। सोचता हूँ, देवत्व

किसे कहते हैं? आपको 'मैं' साहित्यिक कहूँगा, तब आप साहित्यिक होंगे? आप अगर साहित्यिक नहीं तो साहित्य और साहित्यिकों के निर्माता हैं। आप कुछ भी हों, आपका गौरव अक्षुण्ण है। (२३–९–३६)

[२०] श्रीतारिणीप्रसाद सिंह, एम० ए०, खरगपुर, मुंगेर—

आपके आदर्श जीवन की सादगी और उच्च विचार के स्मरण-मात्र से मुझे काफी स्फूर्ति और प्रेरणा होती है। आपका वह वाक्य—'हमलोग तो एक ही परिवार के हैं'—नहीं भूलेगा, वह बल और आशा का सञ्चार करता रहेगा। मैं आपको निरा प्रकाशक नहीं समझता, बल्कि बिहार का साहित्य-निर्माता समझकर श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। बिहार को आपपर गर्व है।

[२१] श्रीराधाकृष्ण (राँची-निवासी सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक), कलकत्ता—

मास्टर साहब बिहार की उन विभूतियों में से हैं जिन्हें बिहार एक जमाने तक अवश्य याद करेगा। (२९–१–४१)

[२२] श्री व्यथितहृदय, अभिकनिवास, कटरा, इलाहाबाद—

आपसे अधिक परिचित न होने पर भी मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। इसका एकमात्र कारण यही है कि आप प्रकाशक होने के साथ-ही-साथ साहित्यिक भी हैं, और साथ-साथ साहित्यिकों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। (२३–११–३९)

[२३] कविवर श्री 'केसरी', अध्यापक, हाईस्कूल, पूसा (दरभंगा)—

'भंडार' बिहारी लेखकों का एकमात्र आधार है, सरस्वती के पुजारी-परिवार का कंठहार! मेरे प्रथम पत्र के उत्तर में आपके अनुकम्पामय पत्र ने मुझे यथेष्ट उत्साह दिया। (२५–७–४१)

[२४] श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन', 'वैशाली-सम्पादक', मुजफ्फरपुर—

आपकी साहित्य-सेवा का मूल्य आँकना क्या सम्भव होगा? 'जयन्ती' और 'स्मारक-ग्रंथ' इस प्रान्त के लिये गौरव की बात है। भगवान् इस उद्योग को सफल करें। 'भंडार' सदा साहित्यिकों की सम्पत्ति रहा है, इसी नाते मेरा भी इसपर कुछ हक है। (८–२–४०)

[१६] पंडित छविनाथ पांडेय, वर्त्तमान प्रधान मंत्री, विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना—

हिन्दी और विहार के गौरव 'पुस्तक-भंडार' के स्वत्वाधिकारी बाबू रामलोचनशरण की उदारता से सम्मेलन-भवन बनाने के लिये पटने में एक जमीन ले ली गई है।

—'साहित्य' (त्रैमासिक), वर्ष १, खंड १, आश्विन १९९३ वि०

[१७] प्रो. विश्वनाथप्रसाद, एम. ए., साहित्यरत्न, साहित्याचार्य—

आपके यहाँ से अपनी पुस्तक का प्रकाशित होना, सचमुच मैं अपने लिये गौरव की बात समझता हूँ। मैं तो बस इसी को अपने परिश्रम का समुचित पुरस्कार समझता हूँ। (२१–७–३३)

[१८] प्रोफेसर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, एम. ए., पटना-कालेज—

बिहार का हिन्दी-साहित्य और 'मास्टर साहब' दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। न जाने कितने तरुण और वयस्क कवि और साहित्यिक अपनी रचनाओं को लेकर 'मास्टर साहब' के यहाँ गये और चुपके से पाकिट भरकर लौट आये। व्यवसाय निपुणता और सदयहृदयता की गंगा-जमुनी ने 'मास्टर साहब' के व्यक्तित्व-क्षेत्र को सिक्त कर रक्खा है। (९–६–४०)

[१९] श्रीप्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', पटना-सिटी—

पिताजी के शुभचिन्तक और हितू तो कितने हैं; लेकिन सारे भारत में दो ही व्यक्ति मिले, जिन्होंने मेरे साथ सच्ची हमदर्दी दिखलाई। एक तो पूज्य राजेन्द्र बाबू, दूसरे आप। पहले से मुझसे परिचित न होकर भी मेरे लिये आपने जो कुछ किया और वैसा व्यवहार रक्खा, उसकी मधुर स्मृति मैं कभी नहीं भूलूँगा। सब के मुँह यही बात सुनी है कि आपके द्वारा साहित्यिकों की सहायता होती रही है। आशा की इसी रेखा के सहारे मैं आपका परामर्श चाहता हूँ। (९–१–२९)

आपके प्रति मन में जैसे भाव उठ रहे हैं, उन्हें लिख नहीं सकता, लिखूँगा भी नहीं। आपके बारे मे सुना बहुत कुछ था, किन्तु संसार के कटु-तीक्ष्ण व्यवहारों से पीड़ित मैं आपके व्यवहार से अवाक् हूँ। सोचता हूँ, देवत्व

किसे कहते हैं ? आपको 'मैं' साहित्यिक कहूँगा, तब आप साहित्यिक होंगे ? आप अगर साहित्यिक नहीं तो साहित्य और साहित्यिकों के निर्माता हैं। आप कुछ भी हों, आपका गौरव अक्षुण्ण है। (२३–९–३६)

[२०] श्रीतारिणीप्रसाद सिंह, एम० ए०, खरगपुर, मुंगेर—

आपके आदर्श जीवन की सादगी और उच्च विचार के स्मरण-मात्र से मुझे काफी स्फूर्ति और प्रेरणा होती है। आपका वह वाक्य—'हमलोग तो एक ही परिवार के हैं'—नहीं भूलेगा, वह बल और आशा का सञ्चार करता रहेगा। मैं आपको निरा प्रकाशक नहीं समझता, बल्कि बिहार का साहित्य-निर्माता समझकर श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। बिहार को आपपर गर्व है।

[२१] श्रीराधाकृष्ण (राँची-निवासी सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक), कलकत्ता—

मास्टर साहब बिहार की उन विभूतियों में से हैं जिन्हें बिहार एक जमाने तक अवश्य याद करेगा। (२९–१–४१)

[२२] श्री व्यथितहृदय, अभिकनिवास, कटरा, इलाहाबाद—

आपसे अधिक परिचित न होने पर भी मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। इसका एकमात्र कारण यही है कि आप प्रकाशक होने के साथ-ही-साथ साहित्यिक भी हैं, और साथ-साथ साहित्यिकों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। (२३–११–३९)

[२३] कविवर श्री 'केसरी', अध्यापक, हाईस्कूल, पूसा (दरभंगा)—

'भंडार' बिहारी लेखकों का एकमात्र आधार है, सरस्वती के पुजारी-परिवार का कंठहार! मेरे प्रथम पत्र के उत्तर में आपके अनुकम्पामय पत्र ने मुझे यथेष्ट उत्साह दिया। (२५–७–४१)

[२४] श्रीभुवनेश्वर सिंह 'भुवन', 'वैशाली-सम्पादक', मुजफ्फरपुर—

आपकी साहित्य-सेवा का मूल्य आँकना क्या सम्भव होगा ? 'जयन्ती' और 'स्मारक-ग्रंथ' इस प्रान्त के लिये गौरव की बात है। भगवान् इस उद्योग को सफल करें। 'भंडार' सदा साहित्यिकों की सम्पत्ति रहा है, इसी नाते मेरा भी इसपर कुछ हक है। (८–२–४०)

[२५] श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री, काव्यसाहित्य-तीर्थ, प्राच्यविद्या-वारिधि, आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली—

आपकी जैसी कीर्त्ति सुनी थी, आपका व्यावसायिक कार्य उसी ढंग का है।
(२६–२–४१)

[२६] श्रीगिरिधारीलाल शर्मा 'गर्ग' बी० ए० (ऑनर्स), पटना-सिटी—

मतभेद चाहे कितना ही हो, लेकिन इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि 'शरणजी' का बिहार के आधुनिक इतिहास में अपना खास स्थान है।

[२७] श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, मुजफ्फरपुर—

आप-जैसा उदार, सहृदय व्यक्ति मुझ-जैसे बालकों पर हमेशा क्षमाशील रहेगा ही। आपने ठीक समय पर बिहार के साहित्य और साहित्यिकों की मर्यादा का खयाल किया है। आप केवल साहित्य के ही नहीं रहे, एक कदम और आगे बढ़कर साहित्यिकों के सम्मानवर्द्धक भी हुए। बिहार के साहित्यिकों की आत्मा आपकी कृतज्ञता स्वीकार करते लज्जित न होगी। (२०–२–३९)

[२८] श्रीसूर्यशेखरप्रसाद सिंह, जमीन्दार, थतिया, रोसड़ा (दरभंगा)—

आप आश्चर्यित न होंगे—मैं आपसे अपरिचित हूँ; किन्तु अपनी विख्यात हिन्दी-साहित्य-सेवा के कारण आप हमसे ही क्यों—शायद किसी भी विद्वान् और श्रीमान् से अपरिचित न होंगे और किसी भी बिहारी को 'पुस्तक-भंडार' और आपपर उतना ही नाज हो सकता है जितना किसी को अपने सच्चे और सफल पथप्रदर्शक पर। सचमुच आपने बिहार में हिन्दी की डूबती हुई नौका पार लगाई है—बिहार के लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन देकर, उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित कर तथा और कितने ही प्रकार से हिन्दी के लिये संपत्ति और समय लगाकर।

[२९] श्रीसेवाधर झा 'मधुप', साहित्यरत्न, कमलपुर (भागलपुर)—

आप अथक परिश्रम से 'भंडार' को उन्नत करते हुए प्रत्येक प्रकार की सेवा से बिहार की गौरव-वृद्धि कर रहे हैं। यों तो मैं आपके नाम से पूर्व ही से

परिचित था, तथापि मेरे अग्रज पं० शक्तिनाथ झाजी ने आपके नाम तथा सेवा से पूर्ण परिचित कर दिया। (१९-३-३८)

[३०] डाक्टर रामप्रकाश शर्मा, बथुआ, दिघरा (दरभंगा)—

आपके द्वारा हिन्दी-संसार में बिहार का मस्तक बहुत अंशों में ऊँचा हुआ है।

[३१] श्रीकुलदीपनारायण, मदन-निवास, आसनसोल (बंगाल)—

नाना प्रकार की स्कूली पुस्तकें एवं विविध-विषय-विभूषित साहित्यिक ग्रन्थों के सफल प्रकाशन-द्वारा श्रीमान् के 'पुस्तक-भंडार' ने जो ख्याति प्राप्त करके केवल बिहार-प्रान्त ही नहीं, वरन् समस्त भारत का मुख उज्ज्वल किया है, उसकी प्रशंसा कैसे और किन शब्दों में की जाय, समझ मे नहीं आता। उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, निस्सन्देह कम है, और सूर्य को दीपक दिखलाने के बराबर है। आप बिहार के शिरोमणि हैं।

[३२] श्रीदीपनारायण सिंह—

आप का अदम्य उत्साह तथा आपकी दयालुता बिहार के कोने-कोने में ख्यात है।

[३३] श्रीभगवत ठाकुर, किसान-पुस्तकालय, जन्दाहा— (मुजफ्फरपुर)—

यहाँ की जनता, और खास कर हम नौजवान, आपसे साहित्य की चर्चा सुनना चाहते हैं; क्योंकि आपने इस प्रान्त को साहित्यिक अंधकार से निकाला है। (१-५-३९)

[३४] श्रीयुगलराम प्रेम 'विशारद', मधेपुरा (भागलपुर)—

एक बिहारी के नाते आपपर मुझे गर्व जरूर है। आपकी भावुकता और साहित्य-सेवा स्तुत्य है। प्रोत्साहन स्पृहणीय है। (२२-१-४०)

[३५] श्रीभगवतीलाल 'पुष्प', 'विशारद'—

आपके हिन्दी-प्रचार-कार्य का आभारी सारी भारतीय जनता है। आपका यह कार्य वास्तव मे सराहनीय है।

[३६] श्रीयोगेन्द्र, बी. ए., (ऑनर्स), जैक्सन होस्टल, पटना—

बिहार के साक्षरता-आन्दोलन के सम्बन्ध में आपकी बहुमूल्य सेवाओं के लिये जो सरकार ने आपको स्वर्ण-पदक दिया है, उसके लिये बधाई। यदि सरकार आपको स्वर्ण-पदक नहीं देती, तब भी आपका नाम इसके लिये इतिहास में अमर ही रहता—वह भविष्य में कभी मिटने का नहीं। सेवा स्वयं ही अपना पुरस्कार है। (२१ जुलाई, १९३९)

[३७] श्रीजगन्नाथ सिंह, सहायक 'देश'-सम्पादक, मुजफ्फरपुर—

मैं बराबर इस चिन्ता में लगा रहा कि अपने प्रान्त की एकमात्र साहित्य-सेवी संस्था 'पुस्तक भंडार' से अपना संबंध जोड़ सकूँ। आपने जो हमारे प्रान्त की साहित्य-सेवा की है, उसके लिये हम बिहार-प्रान्त-वासी सदा आपके ऋणी रहेंगे। (२७–५–४०)

[३८] श्रीरामरेखा सिंह, आथर (मुजफ्फरपुर)—

आप केवल हिन्दी-लेखक और एक तिजारती व्यक्ति नहीं, वरन् गंभीर साहित्य-सेवी, उदार और अनाड़ी-अज्ञानी आदमियों के हाथ में कलम पकड़ाकर उन्हें ऊँचा उठानेवाले सत्पुरुष हैं। (२१–४–३८)

[३९] प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम. ए., बी. एन. कालेज, पटना—

यदि मैं अपने जीवन का सिंहावलोकन करता हूँ तो आपके उपकारों का स्मरण कर मैं कृतज्ञता के भार से दब जाता हूँ। आपकी कृपाओं का उल्लेख कर मैं उनका मूल्य कम नहीं आँकना चाहता। आपका असामयिक स्नेह कभी भूलने की चीज नहीं। आप अब तक मेरे पथ-प्रदर्शक रहे हैं और भविष्य में भी मैं आपके निर्धारित मार्ग पर यथाशक्ति चलने की चेष्टा करूँगा। आपके आदेशानुसार पुस्तकें लिखी जा रही हैं। किन्तु पुस्तकें लिखकर ही मैं आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता; क्योंकि आपसे मैंने जो कुछ पाया है, उसका मूल्य रुपयों से नहीं आँका जा सकता। (१ मई, १९३२)

[४०] प्रोफेसर शिवपूजन सहाय, राजेन्द्र-कालेज, छपरा—

'भंडार' ने जो मेरे साथ सद्व्यवहार किया, उसका बदला मैं किसी तरह न चुका सका। मेरे हृदय की सम्पत्तियों में 'भंडार' की उदारता ही मूल्यवान् है। ये दोनों यावज्जीवन स्थायी रहेंगी, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं। (१९–१०–३९)

'भंडार'-भास्कर की संजीवनी किरणें रोम-रोम को अनुप्राणित कर रही हैं। किसी दिन यह इतिहास का विषय होगा कि एक तुच्छ साहित्य-सेवी पर 'भंडार' ने कृपादृष्टि की महावृष्टि की थी। (६-११-३९)

आपकी सहानुभूति ही मेरे लिये सब कुछ है। बिहार का कौन हिन्दी-प्रेमी अथवा साहित्य-सेवी है जो आपके विशाल हृदय की विभूति पाकर कृतकृत्य न हुआ हो। फिर मेरी क्या कथा, मेरा तो रोम-रोम आपका ऋणी है। मैं आपसे कभी उद्धार नहीं पा सकता। इस जीवन में इतनी क्षमता कहाँ पा सकूँगा कि आपसे उऋण होऊँ। इतिहास में आपके सौजन्य और औदार्य की विशद चर्चा कितनी ही कृतज्ञ लेखनियों द्वारा लिखी जायगी। (१७-१२-४०)

[४१] पं० छेदीलाल झा, बाढ़ (पटना)—

आप केवल अनेक रत्न-राशि के आकर ही नहीं हैं, स्वयं रत्न-निर्माता भी हैं। आपकी सद्वृत्ति कितने ही साहित्यकों के लिये आधार है।

(१७-१२-४०)

[४२] प्रो० अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द'-लिखित 'आत्मचरित-चम्पू' से—

मैंने १९२७ ई० में लालबाग वाला अपना मकान बनवाया। उसमें बहुत खर्च पड़ गया। मैंने एक पत्र आपके पास भेजा जिसमें अपना अर्थसंकट बताया। पत्र पाते ही आप स्वयं आ पहुँचे। मेरा उद्धार कर दिया। मैं आश्चर्य में पड़ गया। मैंने लज्जित होकर आपसे हैंडनोट आदि लिखवा लेने की प्रार्थना की। आपने कहा—"आपका काम पुस्तक लिखने का है, हैंडनोट लिखने का नहीं।" जब-जब आपको मेरे अर्थसंकट की सूचना मिली, तब-तब आपने बिना कहे ही सहायता की। अब तो ऐसी घनिष्ठता हो गई है कि अब मित्र के बदले आपको अपना सहोदर लघुभ्राता समझता हूँ। (पृ० ११२-११३)

[४३] श्रीहरिऔधजी-लिखित 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' से—

बाबू रामलोचनशरण···ने बालसाहित्य पर सुन्दर रचनाएँ की हैं जो इस योग्य हैं कि आदर की दृष्टि से देखी जायँ। (पृ० ७२३)

लहेरियासराय का विद्यापति प्रेस इस समय अधिक समुन्नत है और यह उसके अभिभावक बाबू रामलोचनशरण के प्रशंसनीय उद्योग और शील-सौजन्य का परिणाम है। (पृ० ७२८)

[४४] पं० नन्दकिशोर तिवारी (भूतपूर्व पब्लीसीटी ऑफिसर, बिहार-गवर्नमेंट)-लिखित 'पञ्चामृत की भूमिका' से—

पुस्तक-भंडार के मालिक बाबू रामलोचनशरण केवल प्रकाशक ही नहीं हैं, वे प्रान्त के एक यशस्वी साहित्यिक भी हैं और प्रकाशन के अतिरिक्त पत्रकार के रूप मे उन्होंने पन्द्रह वर्षों से हिन्दी-साहित्य की सेवा की है। जहाँ तक प्रकाशक का सम्बन्ध है, मेरी समझ मे वे बिहार-प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक हैं और प्रकाशक के रूप में सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवी हैं। सैकड़ों हिन्दी-पुस्तको का प्रकाशन कर उन्होने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह सहज ही भूली नहीं जा सकती।

[४५] श्रीसूर्यनारायणसिंह, एम. ए., बी. एल.-लिखित 'वैष्णवरत्न श्रीरामलोचनशरणजी की जीवनी' से—

शरणजी बिहार की आधुनिक हिन्दी-गद्यशैली के सर्वप्रथम प्रवर्त्तक हैं। बिहार का बच्चा-बच्चा इनका ऋणी है और रहेगा। इस दृष्टि से शरणजी को यदि हम 'बिहार का द्विवेदी' कहें, तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। (पृ० १६)

यदि इनमें आत्मविज्ञापन की थोड़ी-सी मात्रा भी रहती तो लोगों ने इनको अबतक अ० भा० सा० सम्मेलन का सभापति चुनने मे अपना अहोभाग्य समझा होता, और सरकार ने इनकी योग्यता पर रीझकर इन्हे सर्वोच्च कक्षाओ का हिन्दी-परीक्षक बनाने में यूनिवर्सिटी की महत्ता समझी होती। (पृ० १९)

ये सामाजिक सुधार के पक्षपाती हैं। ये आगे बढ़ने की सलाह देते हैं, परन्तु सरपट दौड़कर नहीं, धीरे-धीरे चलकर। (पृ० २५)

[४६] वृहद् उड़िया-भाषा-कोष के रचयिता रायबहादुर गोपालचन्द्र प्रहराज, कटक—

जब मैंने वृहद् 'उड़ियाभाषा-कोष' का आरम्भ किया तब मुझे इस बात की चिन्ता हुई कि इसका हिन्दी-अंश कैसे शुद्धतापूर्वक सम्पादित हो सकेगा। संयोग-वश, फोकस-वैश्य-विद्यालय का शिलान्यास करने के लिये श्रीरामलोचन-शरणजी आमंत्रित होकर यहाँ आये। उसी सिलसिले में मेरे आग्रह से उन्होंने उसके हिन्दी-अंश को प्रस्तुत करने में हाथ बँटाया और उन्हींके आदेश से पं० रामेश्वर झा, पं० सुरेश झा और पं० नृपनारायण ठाकुर, जो शरणजी के ही द्वारा इस विद्यालय मे अध्यापक बनाकर भेजे गये थे, इस काम में मेरी सहायता पहुँचाते रहे। आज मुझे इस विश्वकोष के हिन्दी-अंश से जो सन्तोष है वह शरणजी की ही कृपापूर्ण सहायता का फल है।

[४७] बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सत्रहवें अधिवेशन (पटना) के सभापति के भाषण से—

जहाँ पं० नन्दकिशोर तिवारी, श्रीरामलोचनशरण 'बिहारी', श्रीदेवव्रत शास्त्री, श्रीबेनीपुरी, पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालंकार, पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, श्रीअच्युतानन्द दत्त, पं० श्री दिनेशदत्त झा, श्रीव्रजशंकर, साहित्याचार्य 'मग', साहित्याचार्य 'सुमन', श्री सुरेश विद्यालंकार, श्रीयुगलकिशोर शास्त्री, श्रीत्रिवेणीप्रसाद श्रीवास्तव, श्री 'मुक्त' और 'श्री भुवन' के समान अनुभवी पत्रकार तथा सफलीभूत सम्पादक हैं वहाँ की साहित्यिक प्रगति में कभी रोड़े नहीं अटक सकते। (पृ० १९)

हमारे प्रकाशकों में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नाम पुस्तक-भंडार के अध्यक्ष श्रीरामलोचनशरणजी का है जिन्होंने अब तक अनेक उत्तमोत्तम सुसम्पादित साहित्यिक पुस्तकें, आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण सजावट के साथ, प्रकाशित की हैं। (पृ० २१)

बिहार का भारतप्रसिद्ध 'बालक' चौदह वर्षों से हिन्दी में उत्कृष्ट बाल-साहित्य की सृष्टि कर रहा है; पर आजतक वह स्वावलम्बी न हो सका। उसके साहसी सम्पादक की साधन-सम्पन्नता भले ही उसे मोटर पर सवार कर दौड़ाती फिरे, वह अपने पैरो के बल खड़ा होने योग्य आज भी है। (पृ. २४)


VICE CHANCELLOR

PATNA UNIVERSITY

Patna the 4th May, 1940.

Babu Ramlochan Saran, founder and proprietor of the Pustak Bhandar, is a very enterprizing publisher of sound and healthy literature in the literary languages of Bihar, and his work, as such, deserves commendation and appreciation. Starting with a small beginning in 1915, (when he wrote in Hindi an outline of Hindi Grammar, for which he received a reward from the Government of the United Provinces) till now when his enterprise is one of the most flourishing publishing concerns in this province, he has sedulously applied himself to the compilation and preparation of works conducive to the intellectual progress of the people of Bihar, ranging in scope from juvenile to adult literature. His publications, which are very neatly got up, merit encouragement from all interested in the progress of wholesome literature in Hindi and Urdoo. I have had occasion to examine several of his publications and periodicals, and I can, therefore, testify to their worth and excellence from personal experience. He may justly claim to be regarded as a public benefactor.

Sachchidananda Sinha

Vice-Chancellor Patna University,
and
ex-Finance Member, Government of Bihar & Orissa.

[४९]

Rai Bahadur Gopal Chandra Prahraj, Sahitya Visharad, Kaiser-i-Hind, Cuttack—

Certainly I want your photo for the last (7th) volume as a sincere friend I have been able to acquire during my wanderings in this world of ingratitude for the last 40 years. You cannot appreciate your own worth. It is I who feel what you are worth. May God bless you. (19-7-37.)

[५०]

N. Prasad, P. A. to Commissioner, Ranchi—

The Pustak-Bhandar is doing immense service to the cause of education and the spread of Hindi by publishing useful books in various subjects which meets the need of educational institutions as well as of the public. (14. 5. 40)

[५१]

Mathura Prasad Chaube, B. A., (Rai Bahadur) Retired Superintendent of Excise—

What I have seen and known about the Pustak-Bhandar and its founder Babu Ramlochan Saran has served only to impress me with the very admirable progress—so well regulated and rapid of the institute from year to year and with the marvellous capacity of its founder to which alone it owes its development in such a short time. He possesses unmistakable qualities of head and heart, such as foresight, enterprise, amiability, readiness to serve, and his zeal to prosecute literary and religious culture and enlightenment all around, along with his high ideals and spirit of self-sacrifice, all these and more account for such tremendous progress of the institute he founded in the year 1915. The institute enjoys now very wide reputation and confidence of the public whom it has been serving so honestly and efficiently. It is the only one of its kind in this part of the country.

[५२]

M P. Sinha, S. D O, Banka (Bhagalpur)—

The Pustak-Bhandar has rendered valuable services to the public for the last 25 years. The Banka Sub-Division is specially obliged for the help receiving in propagation of Mass Literacy work. The Bhandar has been publishing suitable books of Hindi and Urdu literature which has immensely helped the spread of education in the province.

[५३]

Elahidad Khan, B L, Pleader, P O Purulia (Nadiha)
Dt. Manbhum—

The Pustak-Bhandar is doing good works by publishing books in Hindi, Urdu, Bengali and English for Primary, Middle and High schools The owner of the firm takes much interest in Education. I wish success of the firm.

[५४]

Kali Prasad, Assistant Accountant, Indian Nation, Patna—

While I was a student at the North-Brook school, Darbhanga, Babu Ramlochan Saran Bihari was one of our revered teachers He was incharge of Hindi. He evinced his keen interest in writing books in original, compiling them and publishing them for the benefit of the public in general and students in particular Recently he has made a free gift of Charts and Primers for the beginners His is a life of plain living and high thinking

[५५]

Head Master, Secondry Training School, Ranchi—

The Pustak-Bhandar is doing valuable service to the country by publishing the useful magazine 'The Balak' which is widely read by boys I wish Pustak-Bhandar long years of splendid service to the Hindi world

[५६]

Head Mistress, R C. Mission Girl's School, Ursulin
Convent, Ranchi—

Books which come from the 'Pustak-Bhandar' are always just the style needed as text books library, books and hand books.

[५७]

G K. Horlock Jones, The Principal, St Pauls School, Ranchi—

"The Pustak-Bhandar is well-managed and is backed by a panel of erudite scholars, its productions are well-known for both matter and form The publications are daily gaining popularity It has succeeded in achieving the end with which it started two decades ago

[५८]

N Roy, Head Superviser, Lutheran School, Ranchi—

We are greatly indebted to the Pustak-Bhandar on account of the valuable books it has published The 'Balak' has been doing great good not only to the teachers but also to the taught,

[५९]

Rev. Otto Wolff D. D. Principal & A. L. Tirkey, B. A., B. Ed Head Master, Gossner High School, Ranchi—

The Pustak-Bhandar has served the educational and literary needs of this province. The school text books that it has published are always of a high order Babu Ramlochan Saran is a name of magical attraction. The Pustak-Bhandar is the foremost publishing house in our province. The article and the pictures of the 'Balak' are highly interesting and instructive, not only to boys and girls, but also to grown up men and women The whole province is indebted to the Bhandar for the service it has done to the educational world

[६०]

Head Master, B. N. Ry Indian H. E. School. Adra, (Manbhum)—

The Pustak-Bhandar has really been a store-house of knowlegde. It has served the Hindi-reading public of Bihar and the adjoining provinces in such a manner and with so much zeal and devotion that it deserves the appreciation of the public as well as of Government. The Hindi language requires men of the type of Babu Ramlochan Saran, whose courage and selflessness are exemplary.

[६१]

Head Master, Zila School, Purulia—

Mr. Ramlochan Saran is a self made man. He has shown to the world how diligence coupled with common sense can work miracles. From a man of moderate means he has risen to eminence. I have my highest admiration and regard for him. To the field of education his contribution is immense, and we Biharees are proud of him. I wish him great success.

[६२]

Rai Sahib G. C. Majumdar, B. A., Retd. Headmaster North Brook Zila School, Darbhanga (Formerly member of B. & O. Education service)—

By dint of selfless devotion and perseverance Babu Ramlochan Saran has achieved success unparalleled in the history of Bihar. His contributions to the cause of 'Hindi' literature have been of a very high order. He has

risen to eminence from very humble beginning, only through his honesty of purpose, patience and diligence and his life, therefore, should act as a beacon light to others.

[६३]

Jagdish Lal, B A. Dip. in-Ed. Head Master, Shree Kameshwar High English School, Pandaul, Darbhanga—

The Bhandar has been rendering the most valuable service to the world of Hindi literature since its very inception Its activities have not been confined to the domain of literature alone but also cover a wider range.

Babu Ramlochan Saran is a man of saintly character and has succeeded in shaping the destinies of many a youth of the province. The door of the Bhandar is always open to the poor and intelligent students who receive help both monetary and in the shape of a free gift of books. We have nothing but praise and admiration for such a noble firm and we wish it a long and prosperous career.

[६४]

The Head Master, Mukherjee's Seminary, Muzaffarpur—

I have had transactions with the 'Pustak-Bhandar' for the last twenty years in connection with my choice of approved Text Books and I have found the course-books beautifully suited to the requirements of the students. I wish the 'Bhandar' ever success and a grand day on the occasion of its Silver Jubilee.

[६५]

Kshitish Kamal Sen Gupta, M. A , Head Master, Eden School, and Secretary, Education Board, Hathwa Raj—

My intimate relations with the 'Bhandar' have convinced me that it is worthy of the highest praise for its serving the cause of education in our province.

[६६]

I. P. Pathak, Head Master, Topchanchi, M E. School, (Manbhum)—

Babu Ramlochan Saran holds a unique position among the Hindi writers He has amply shown how an energetic pen with a powerful brain can make a permanent impression on the annals of literature.

[६७]

Ramasis Sinha, Head Master, M. E. School, Punas, P. O. Ranitola, (Darbhanga)—

The Pustak-Bhandar is the glory of Bihar. It has admirably served the lovers of Hindi literature and the different sorts of text-books it has produced have enriched not only Bihar but India as a whole.

[६८]

Badri Narayan, Head Master, B. B. M. E School, Sirsia, P. O. Kanti. (Mnzaffarpur)—

The Bhandar is the outcome of the honest and indefatigable labour of Ramlochan Babu. I have all along been impressed by his simplicity, honesty and industry.

[६९]

Ram Bali Dube, Head Master, M. E. School, Ziradai, P O. (Saran)—

Babu Ramlochan Saran is a well-renowned publisher who has opened up new lines of journalistic enterprise. He has participated in no small measure in educational activities of the province. He has been famous for his steadfast zeal, honesty of purpose and courteous manners.

[७०]

Kameshwari Prasad, Head Master, Municipal M. E. School, Daltonganj (Palamu)—

The Pustak-Bhandar has done much to remove the difficulties of the students of Bihar. The books published under the able guidance of Babu Ramlochan Saran admirably meet the requirements of the students of modern times.

[७१]

Jai Krishna Jha, Head Master M. E. School, Shakarpura, P O, Bakhari Bazar, (Monghyr)—

The books published by the the 'Bhandar' never lack in matter or from. But they are put into the market with such' cheapness that they at once win popularity.

[७२]

Abdul Hai; Head Master, A M M. E. School, Puraini, (Bhagalpur)—

The guiding principle of the Pustak-Bhandar has been—

❀ حرد مند باشد طلب گار علم
که گرم است پیوسته بازار علم

It is always found to be in the forefront of the cause of Education, and particularly in the development of Hindi literature.

[७३]

Anandi Thakur, Head Master, M E. School, Mamai (Monghyr)—

The enterprising publishers of the Pustak-Bhandar Laheriasarai, are going ahead both in the matter of enriching the Juvenile literature as well as in preparing works for serious study. The printing and get-up of books are all that can be desired

[७४]

Rai Bahadur Bhikhari Charan Patnayak, Town-Hall Road, Cuttack—

Babu Ramlochan Saran has worked wonders in Hindi literature. His primers, his Alphabet Charts. his different Readers and his 'Balak' are unique in the field, I regard him as a noble ideal before the young generation The youth of the time when they feel discouraged, should look at the works done by Babu Ramlochan Saran They should study his enthusiasm for work, think over his untiring labour, steady zeal, determination of purpose and earnest adherence to a noble cause, which could lead him to success. He is the founder of the 'Pustak Bhandar' the premier publishing concern of the country He has contributed immensely towards the development of Hindi literature. His name is prominent for Juvenile literature I believe a careful study of his life should encourge many to work and to regard work as the only thing that can raise one from the lowest level of the world to highest pitch. He is undoubtedly a self-made-man and a sincere public benefactor.

❀ खिरदमन्द बाशद तलबगारे इल्म
कि गर्म अस्त पैवस्त बाजार इल्म

अर्थात्—अक्लमंद इल्म का चाहने वाला होता है ; क्योंकि इल्म का बाजार हमेशा गरम रहता है—दुनिया में इल्म ही का दोलवाला है—इल्म ही सबसे बढ़कर बेशकीमत चीज है।

[७५]

D. Prasad, M. L. A.' Chaibasa—

This publishing firm has done splendid works by publishing useful books in Hindi. The Hindi-knowing public has derived immense benefit from this firm Educational institutions in this province have been using the books published by this firm in large numbers. The proprietor of this firm Pandit Ramlochan Saran is very enterprising and industrious. His services are being appreciated by the public.

[७६]

Babu Shyama Nandan Sahay, M. L. A., Vice Chairman, District Board, Patna—

One can safely place Babu Ramlochan Saran among the most prominent public benefactors of the province. His life has been one of ceaseless devotion to the cause of Hindi and Urdu literatures 'Nation Building' is the guiding principle of all his works and compilations. His natural stress is, therefore, on a sane and healthy Juvenile literature, and his attempts in this direction without the least doubt, stand unique and unparalleled. The popularity of the 'Balak' throughout India is most deserved. It speaks of the deep insight of the Editor into child dsycholgy and his sincere efforts to let the young mind unfold itself like a flower and yet in the process learn all that is neccessary for him to weather the vagaries of sun and shower. Its neatness get-up and printing are excellent. It can very profitably be used by all school-students in order to develop a charming style, an optimistic outlook on life and to be in every touch with the progress in the world around them. Saranji's 'one pice series' is another novel and praiseworthy attempt. It will bring rudimentary knowledge of various subjects within easy reach of the ignorant and poverty-stricken masses of India. I am led to believe that Saranji has a still greater future in store for him.

[७७]

G Sinha, Deputy Director or Public Instruction Bihar, Patna—

The founder and proprietor of the Pustak-Bhandar has shown the rare gift of combining literary taste and attainments with business capacity and has developed his firm into a big literary institution from a very humble beginning. The Bhandar has insisted on a high standard of both literary production and the artistic side of the printing work. In the field of publi-

cation of school-books, it has always tried to adopt the latest ideas from the principles and practice of pedagogy. While the services of the Bhandar to the Hindi literature are very solid, it has tried to serve Urdu, Bengali and Oriya too as far as possible. I wish it long life, prosperity and new avenues for serving the society.

[७८]

The Principal, G. B. B. College, Muzaffarpur—

I heartily congratulate the firm on attaining its 25th birth-day and wish it many years of useful service to the province and to the cause of Hindi literature.

[७९]

Khan Bahadur M A, Hosain, Assitant Registrar, Patna University, Patna—

I have read some of the Urdu books published by Pustak-Bhandar for the use of school boys. These books make quite a useful and interesting reading for small boys. The Bhandar is doing very useful work in Bihar, where there is a dearth of good publishers, and it deserves to be encouraged in every way.

[८०]

Mr P Pariza, M A, (Cantab), B Sc (Cal), F N I, I. E. S., Principal and Professor of Botany, Ravenshaw College, Cuttack—

The Pustak-Bhandar has rendered signal service to the Hindi-reading public by publishing a number of good books in Hindi, but its activities are not confined to Hindi alone. It has also published some books in English and in Oriya. As a lover of books myself, I contribute my quota of good wishes to the Pustak-Bhandar Mav it continue its good work long and well. May its founder, Babu Ramlochan Saran, live long and serve the country in spreading enlightement.

There are few professions nobler than that of a publisher or a bookseller because a publisher or a bookseller brings enlightment within the reach of men of average means and thereby renders a spiritual service to the nation. Babu Ramlochan Saran has carried on this noble profession for the last twenty-five years and by dint of his perseverance has made the Pustak-Bhandar what it is to-day.

[८१]

S. M. Alam, Esq, B. A, (Cantab), Inspector of Schools, Bhagalpur—

The Pustak-Bhandar has to its credit a long list of various educational and literary publications. It has made a rich contribution to the Bihar Mass Literacy Compaign by printing and publishing a large number of literacy charts and primers, and making a free gift of them to the Government. In the literacy field the Pustak-Bhandar has also made a mark. Some of its Juvenile publications are of great educational value and interest.

[८२]

H. Lall, Inspector of schools, Patna Division—

Babu Ramlochan Saran is one of the few worthy sons of Bihar who know the value of self help and have risen to eminence by their own efforts. I congratulate him on his spirit of enterprise and self help in bringing into being the Pustak-Bhandar which has done and is doing excellent work in the field of education. The publications the press has brought out and placed in the hands of the school population, both Hindi and Urdu are second to none in point of quality, while the get-up is really charming. Saranji is an outstanding personality, reminding one of the popular maxims "Self-Help is the Best Help". His life of activity and general usefulness is bound to prove a source of inspiration to all. I wish him good luck.

[८३]

Inspector of Schools, Chotanagpur Division—

Every educationist in Bihar is acquainted with the wonderful work that the Pustak Bhandar has done. To-day there is hardly any school in the province, Primary, Middle or High in which books printed and published by the Pustak Bhandar are not used in large numbers, Pandit Ramlochan Saran is a man of ideas and he can always see a far ahead He has been fortunate enough to secure the services of eminent authors and the books brought out by him always give us full satisfaction. I wish Pustak-Bhandar every success.

[८४]

Rai Saheb A. B. Mohanti, M A, Professor Ravenshaw College, Cuttack—

Pandit Ramlochan Saran is a true patriot. His greatness lies in his simplcity, sincerity and generosity. He is not a mere publisher but teacher of very high order. By editing the monthly 'The Balak' he has given the young folk enough scope and facilities in cultivating the art of writing.

His work in the field of Hindi Literature is immense. May he live long and thrive in his noble endeavours with the blessing of God.

[८५]

District Inspector of Schools, Purnea—

The services rendered to the cause of education by Babu Ramlochan Saran have been unique. He has tried his utmost to make the Mass-Literacy movement a success in Bihar. The course-books and literary works published by his firm are all up-to date and possess admirable qualities The print, paper and get-up of the books are generally good and the prices too are moderate to suit even the poor. Both Hindi and Urdu reading public have been equally benefited by his firm."

[८६]

District Inspector of Schools, Singhbhum—

The Pustak-Bhandar has really been the store house of knowledge and culture. The Bhandar has rendered yeoman's service to the country in the field of education.

[८७]

Rama Prasad, District Inspector of Schools, Saran—

Babu Ramlochan Saran has rendered positive service to the education of the province in particular and of the country in general. He is the glaring instance of a self made-man. Pustak-Bhandar has illuminated the Hindi world with magnificent light of knowledge and won recognition by all The services done by the "Balak" to the child world has gone a long way to shape the brain and mould the character of its readers.

The Bhandar has not kept itself confined to the students' field only. Its attempt to give out standard works in fiction, religion and literature keeping a cosmopolitan view endears it to all. The philanthropy of Babu Ramlochan Saran exhibits beyond doubt the magnanimity of his mind.

[८८]

District Inspector of Schools, Arrah—

The Pustak-Bhandar has rendered immense service to the cause of education. The 'Balak' has always appealed to me as the very best one of its kind Babu Ramlochan Saran is a man of very simple habits with a big amount of patience. By dint of his sustained labour he rightly deserves the appreciation of all concerned with Education for his noble products. I wish that he may be spared long to serve the cause of Hindi.

[८९]

Deputy Inspector of Schools, Banka (Bhagalpur)—

The Bhandar has produced enormous literary work conducive to the intellectual uplift of the new generation and has appreciably contributed to replenish the stock of Hindi literature best suited to the juveniles and adults alike.

(Babu Ramlochan Saran has indeed rendered steady and glorious services to the cause of his motherland by his invaluable literary contributions and munificent donations

[९०]

Deoki Nandan Sahai, B A., B. Ed. Deputy Inspector of Schools Jamui (Monghyr)—

The Pustak-Bhandar has been doing valuable service to the cause of literature since its very existence.

[९१]

Bhagwan Prasad B.A., Dip-in-Ed. Sub-Inspector of Schools, Monghyr-

None in Bihar is unaware of the high class service of 'Master Saheb towards the growth of Hindi Literature. Our country as a whole and our province in particular will ever remember his worthy service to Hindi and Primary Education.

[९२]

Maulvi Mohammad Masud, Deputy Inspector of Schools, Jahanabad (Gaya)—

The Pustak-Bhandar has rendered valuable service to the cause of Education. I wish every success to the institution

[९३]

Jaikrishna Jha, Sub-Inspector of Schools Pupri (West) P. O. Janakpur Road, (Muzaffarpur)—

The Pustak-Bhandar is really a very useful and enterprising institution. It has removed a long-felt want of the province by enriching the stock of Hindi literature.

[९४]

Baxi Jagannath Prasad Sinha, M. A., Dip in Ed., Sub-Inspector of Schools, Behia—

The text-books published by the Pustak-Bhandar for use in primary schools, 'have been universally admitted to be the best in the market.

Indeed the boys feel quite at home with the matter in those books, and take extreme delight in going through them, even beyond school-hours.

[१५]

I. P. Singh, M. A., B. Ed. Sub-Inspector of Schools, Jamui (Monghyr)—

The unique service which the Bhandar has done during the past twenty-five years to further the cause of Hindi literature can never be forgotten. The 'Balak' has grown very popular among children, men and women of the Hindi speaking provinces

[१६]

T. D. Karmkar, Chairman, District Board, Manbhum, Purulia—

Pandit Ramlochan Saran had the courage to give up his Government service to be covetted by the millions and to take to an independent line of activity His efforts have been crowned with success I wish the celebration of his Golden-Jubilee a success and hope sincerely that he will live to see the Golden Jubilee of his firm as well.

[१७]

Chairman, Singhbhum, District Board, Chaibasa—

The Pustak-Bhandar has been contributing a great boon to the public and especially Bihar by its good number of useful and wise publications There is hardly any school in the province which has not appreciated its publications. Its most popular monthly magazine the 'Balak' is well known to the young and old Pandit Ramlochan Saran has immensely helped the provincial Mass Literacy Campaign in Bihar by free distribution of Charts and Primers.

[१८]

Jogendra N. Singh, Chairman District Board, Bhagalpur—

I have great pleasure in commending the immense utility of the Pustak-Bhandar to the public Its golden record of service to India in general and Bihar in particular is indeed valuable. Babu Ramlochan Saran the proprietor of the institution has really ushered a new era of renaissance in the Hindi literature The Bhandar has also paid a substantial quota to the progress of the Mass Literacy Campaign in the province of Bihar.

[९९]

Ramsahay Lal, Member, Educational Committee, District Board Committee, Santhal Parganas—

The Pustak-Bhandar has removed a very great want of Bihar. I remember my days of boyhood when Bihar had to depend entirely on the book published by and printed in other provinces I wish the Pustak-Bhandar may continue to prosper and carry on its brilliant career for many years to come.

[१००]

Kanialai B. Mal, Honorary Secretary, Saraswati Library, Jharia—

The Pustak-Bhandar is the only institution in the province which publishes books of the most eminent literary authors in this province. One of the great achievements made by the Bhandar is the publication of the 'Balak' magazine which is greatly liked by the student's community.

[१०१]

Rai Shrinandan Prasad, Secretary, District Subordinate Educational service Association (Inspecting Branch)—

The Pustak-Bhandar has been doing much towards the advancement of Hindi Literature by their various publications for a very long time. The regular issue of the 'Balak' has been adding considerably to the cause of Hindi literature.

[१०२]

The Director of Public Instruction, Bihar & Orissa—

The Superintendent of Sanskrit studies has sent me a copy of your letter of December 10 regarding your proposed endowment for the Vidyalaya at Radhaur. It is a very generous offer and I shall be glad to help you to give effect to it Perhaps the safest thing to do with the money will be to hand it over the Treasurer of charitable Endowment, who would pay the interest to the Superintendent of Sanskrit Studies to be used for the benefit of Vidyalaya. If you accept this suggestion and send me the money, I can arrange all the details for you.

[१०३]

Shri Shyama Prasanna Banerji, Jhalda (Manbhum)—

I am not well conversant with Hindi and as I preferred Bengali than English in this particular occasion, I have noted down my good wishes in Bengali. It is up to you to accept my humble good wishes.

সততা ও বিশ্বস্ততা পুস্তক-ভাণ্ডারকে আজ এত লোকপ্রিয় করে তুলেছে। জনসাধারণের হিতার্থে দান এবং জনমণ্ডলীর উন্নতিকল্পে শিক্ষা-বিস্তারের ঐকান্তিকী চেষ্টা, পুস্তক-ভাণ্ডারের বিশেষত্ব।

কর্ম্মীবৃন্দের নিষ্ঠা ও সত্যপরায়ণতাই 'ভাণ্ডারের' মূলভিত্তি। বস্তুতঃ তাঁদের অকপট কর্ত্তব্যানুরাগই 'ভাণ্ডারকে' আজ এত উন্নত ও সুদৃঢ় করেছে।

'ভাণ্ডারের' রজত-জয়ন্তী সার্থক ও জয়যুক্ত হ'ক,। ভগবৎ কৃপায় 'ভাণ্ডার' দিনে-দিনে সুবর্ণজয়ন্তীর পথে অগ্রসর হ'ক, গণোন্নতি ব্রত-উদ্যাপন-আশায় 'পুস্তক-ভাণ্ডারের' এতদিন যাবৎ অদম্য ও শুভ প্রচেষ্টা ঈশানুগ্রহে সাফল্যমণ্ডিত হ'ক, এই আমার কামনা।

—শ্রীশ্যামাপ্রসন্ন বন্দ্যোপাধ্যায়।

[১০৪]

عبدالغفور نعمانی، مئو بازید پور، ضلع دربھنگہ

کچھ عرصہ ہوا کہ میرا چھوٹا بھائی ڈاکٹر عبدالجلیل چھوٹے کلاسوں میں پڑھتا تھا۔ بستی کے لڑکے ہندو مسلمان سبھی اس کے ساتھی تھے — اکثر میں ان کے کمروں میں چلا جاتا۔ اُن کی نوشت و خواند کی طرف متوجہ ہوتا۔ کتابوں کو الٹ پلٹ کر دیکھتا۔ ہندی کی کتابیں بھی دیکھتا اور اُردو کی کتابیں بھی — کچھ تعجب سا ہوتا اور بار بار دیکھتا کہ جو باتیں ہندی کی کتابوں میں ہیں وہی باتیں اُردو کی کتابوں میں بھی۔ وہی لوچ اور وہی انداز — پڑھنے سے یہی معلوم ہوتا کہ متکلم باتیں کرتا اور مخاطب سن رہا ہے۔ ساری کتابوں کے اوراق الٹ جاتا — سمجھنے میں کوئی کاوش ذہنی نہیں ہوتی۔ اب میں ایسی ادھیڑبن میں پڑا کہ یہ نادر مصنف ہیں کون؟ کتابیں دیکھیں۔ ٹائٹل پیج پر دیکھا کہ جلی قلم سے لکھا ہے "رام لوچن شرن۔" قدرتی چیزوں کو دیکھئے تو خداوند عالم کا کرشمہ نظر آتا ہے اور مصنوعی چیزوں کو دیکھئے تو ان کے صانع (آرٹسٹ) کی کاریگری کا پتہ چلتا ہے — حقیقت ہے کہ بابو رام لوچن شرن نے بغیر اختلاف قوم و ملت ہائیجن، جغرافیہ، تواریخ، قواعد، ریاضی اور املا نویسی وغیرہ کی کتابیں لکھیں — ریاضی کا بہت لحاظ رکھا جس سے مسلمان بچوں کی تعلیم میں بیک گونہ مدد ملی — میں نے یہ سمجھا تھا کہ ماسٹر صاحب موصوف کی کتابیں صرف



श्रीयोगेन्द्रनाथ सिंह (पृष्ठ ३७२)



स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज



आचार्य काका कालेलकर



श्रीयुत प्रभुदयाल विद्यार्थी

میرے چھوٹے بھائی ہی کے اسکول میں پڑھائی جاتی ہیں - لیکن میں نے تجربہ کیا کہ صوبہ کے گوشہ گوشہ میں یہ کتابیں پڑھائی جاتی ہیں اور انہیں کتابوں کے الفاظ اور جملے ورد زباں ہیں :-

یہ تو ان کی خدمت ادب کی طرف ہوئی - اب ان کے اخلاق حسنہ اور اوصاف حمیدہ کو سنئے -

میں مبالغہ سے کام نہیں لیتا - حقیقت حال آپ کے سامنے پیش کرتا ہوں - کوئی جگ بیتی کہتا ہے میں آپ بیتی کہتا ہوں - میری طبیعت کچھ اس طرح کی واقع ہوئی ہے کہ خواہ مخواہ تعلیم و تربیت کی طرف جھکی جاتی ہے - اسی سلسلہ میں اکثر میں آیا کرتا - جناب ماسٹر صاحب موصوف سے ملاقاتیں ہوا کرتیں - گفتگو کا کافی موقع ملتا - کیا کہنا! ذرا بھی بے رخی نہ دیکھی - ہمیشہ خندہ پیشانی سے گفتگو کی - اصول تعلیم پر اکثر بحثیں ہوا کیں - گرام سدھار کا اکثر تذکرہ رہا - بلا امتیاز مذہب طغیانی کے وقت، آتش زدگی کے موقع پر، غریبوں کی لڑکیوں کی شادی میں ہزاروں روپئے سے مدد کی - ہر سال بلا لحاظ قوم و ملت ہزاروں روپئے کی کتابیں غریب بچوں میں تقسیم کرتے ہیں - بلاشبہ ان کی ذات سے ہندو اور مسلمان کو فائدہ پہنچتا ہے -

خداوند عالم جناب ماسٹر صاحب موصوف کو اس ادبی خدمت اور غریبوں کی امداد رسانی میں برکت دے اور اسی صلے میں اعلیٰ مرتبہ پر پہنچائے - آمین!

[१०५]

स्वर्गीय सेठ जमुनालाल बजाज—

मैं इस शुभ कार्य की सफलता चाहता हूँ।

(१०-७-४०)

[१०६]

श्रीयुत काका कालेलकर, वर्धा—

लहेरियासराय के पुस्तक-भंडार की किताबें मैंने ऊपर-ऊपर से देखीं। मुझे अच्छी लगीं। 'बालक'-जैसे मासिक को चलाकर विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ क्या हैं और हर चीज किस तरह से रोचक बनाई जा सकती है—इसका ख़याल प्रकाशक को अच्छा आया है। प्रकाशनों में विविधता भी अच्छी है। बिहार-जैसे प्रान्त में यह सफल साहस देखकर विशेष खुशी होती है। मैं आशा करता हूँ कि इस पुस्तक-भंडार से नई-नई योजनाओं के अनुसार राष्ट्र-हित की पुस्तक-मालाएँ निकलेंगी।

[१०७]

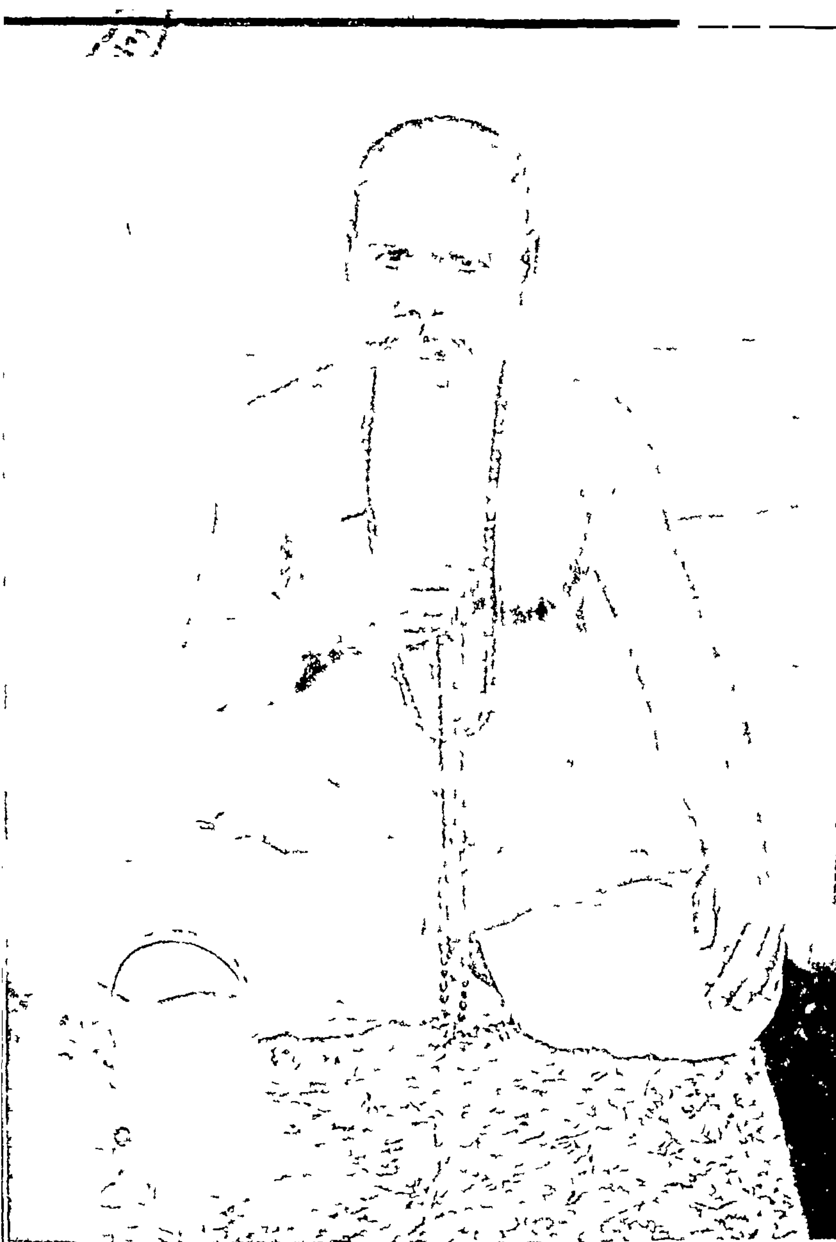
श्रीकपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद्'—

शरणजी को दूर और समीप से अध्ययन करने के अनेको अवसर आये हैं और उनके स्वभाव के विविध अंगों का अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है। मैं शरणजी को एक आदर्श मनुष्य पाता हूँ। ऐसा मनुष्य—जो हिमालय की तरह महामना और सागर की तरह गंभीर है—जिसे अमृत का लोभ नहीं और जहर का भय नहीं—जो 'सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' के सिद्धान्त को अपने जीवन में उतारे हुए है और जो मनुष्य का स्थान मित्रता और शत्रुता के बंधनों से परे मानता है। मेरे आघातों के बाद भी उन्होंने मेरे साथ जिस सद्भाव को कायम रक्खा है वह उनकी महत्ता का सबूत है। मेरे विचार से अगर आज वे विद्वान् साहित्यिक, धनवान् प्रकाशक और लोकप्रिय नागरिक न भी हुए होते तो भी जाननेवालों के बीच वे उज्ज्वल मनुष्य के रूप में पूजनीय होते। शरणजी ने भाषा की शुद्धता के प्रचार की दृष्टि से स्कूली किताबें लिखना शुरू किया और शिक्षा-विभाग की स्ववर्गीय पुस्तको को शुद्धता प्रदान की। इस दिशा में उनकी चेष्टाओं का कैसा महत्त्व है इसे केवल वे ही जान सकते हैं जिन्होंने कभी 'भंडार' के जन्म के पहले और पीछे की कोर्स की किताबों की तुलना की है। बिहार की बिखरी हुई साहित्यिक विभूतियों को एकत्र कर सामूहिक तेज से प्रान्त का शृंगार सजाने के लिये बिहार का बच्चा-बच्चा शरणजी का ऋणी है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

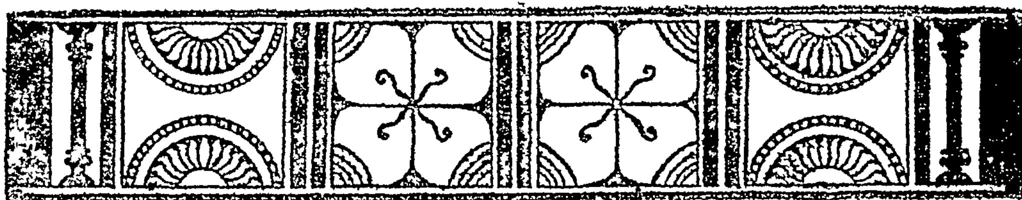




श्रीजगन्नाथ प्रसाद वैष्णव



वँसुलिया बावा



परिशिष्ट [१]

अभिनन्दन-पत्र

[१]

हिन्दी-साहित्य के परम उन्नायक, बिहार की साहित्यसाधना के सफल साधक,

अमरकीर्त्ति रायसाहब रामलोचनशरणजी

के यशस्वी करकमलों में सादर समर्पित

राष्ट्रभाषा हिन्दी के सच्चे सपूत लब्धगौरव रायसाहब,

श्रीमज्जानकीजीवन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की अशेष अनुकम्पा से आज हम आपको नये सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए अपूर्व उल्लास का अनुभव कर रहे हैं ; क्योंकि हिन्दी-संसार की जनता तो आपको सम्मान की दृष्टि से देखकर सन्तुष्ट ही थी, अब सरकार भी जनता की दृष्टि के आकर्षण-केन्द्र पर पहुँचकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर हुई है। इस प्रकार जनता की उच्च धारणा को सत्य सिद्ध करने में तत्पर हुई सरकार को हम आपसे भी पहले बधाई देना चाहते हैं। सच तो यह है कि आपको बधाई देने योग्य इससे भी अच्छे अवसर आपके जीवन में आ चुके हैं ; पर हमलोग तो दूसरे के हाथ के दीपक के प्रकाश में ही अपने घर की सम्पदा भी देखने के अभ्यासी हैं !

मातृभाषामन्दिर के अनन्य पुजारी !

आपने अपने आरम्भिक जीवन से ही शुद्ध स्वावलम्बन का आदर्श उपस्थित कर, साहित्यसेवा के मार्ग को प्रशस्त बनाने के लिये, 'पुस्तक-भंडार' और 'विद्यापति प्रेस' की स्थापना की, जिनके द्वारा बरसों से हिन्दी-साहित्य की स्तुत्य सेवा हो रही है। प्रकाशन-संस्था और प्रेस के द्वारा हिन्दी के क्षेत्र में कुछ काम करनेवाले जितने महानुभावों के नाम आजतक बिहार में देख पड़ते हैं, उनमें आपका नाम सबसे उज्ज्वल और प्रभापूर्ण है। इससे हमलोग विशेष गर्व का अनुभव करते हैं। और, आपके द्वारा सम्पादित और संरक्षित 'बालक' भी

एक संस्था ही बन गया है, जिसने समस्त हिन्दी-संसार के बालकों को आकृष्ट करने में आजतक अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं देखा। इन तीन संस्थाओं के अतिरिक्त विद्यापति-पुस्तकालय और वाचनालय तथा विद्यापति-हाईस्कूल की भी स्थापना कर आपने मिथिला के एक विशाल कीर्त्ति-स्तम्भ की रक्षा की है, जिसके शिखर-स्थित काव्यप्रदीप से सम्पूर्ण हिन्दीजगत् आलोकित है।

साहित्यसेवियों के सात्त्विक बन्धु !

आपके द्वारा सम्पोषित, समादृत और उपकृत साहित्यसेवियो की संख्या अगणित है। अनेक साहित्यसेवियो ने संकट में आपको वास्तविक बन्धु के रूप मे पाया है। उन्हे आश्रय और प्रोत्साहन प्रदान करने में आपने जो उदारता और सहृदयता दिखाई है वह बिहार के हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। केवल बिहार ही के नहीं, अन्य प्रान्तों के साहित्यसेवी भी यही मानते हैं कि बिहार में एकमात्र आप ही ऐसे वदान्य पुरुष हैं जो साहित्यसेवी मात्र के लिये अपने हृदय में अनुराग और सद्भाव संचित रखते हैं। आपका यह गौरव भी हमारे गर्व का कारण ही है।

गुणागरी नागरी की गुदड़ी के लाल !

भारत-भाल-बिन्दी हिन्दी की द्युति चमकाने में आपकी सरलगति लेखनी ने जो चमत्कार प्रदर्शित किया है वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। आपकी मँजी हुई लेखनी ने तोतली भाषा बोलनेवालों से लेकर देश के होनहार नौनिहालों तक को ज्ञान के क्षितिज की ओर उन्मुख करने मे जो कौशल दिखाया है उसके परिणाम-स्वरूप आज भी हिन्दी-साहित्योद्यान में देश के उगते हुए पौधे लहलहा रहे हैं। भगवान् मैथिलीवल्लभ से यही प्रार्थना है कि उन्होंने जो साहित्योद्यान आपके समान चतुर माली को सौंपा है उसे सदा हराभरा रक्खें और उसकी रक्षा के लिये आपको चिरायु करें।

पुनः अन्त मे हमलोग सर्वान्तःकरण से आपका आभ्यन्तरिक अभिनन्दन करते हुए आप ही के उपास्यदेव भगवान् रामचन्द्र से बार-बार प्रार्थना करते हैं कि साहित्यसेवा के निमित्त भगीरथ प्रयत्न करके आपने जो राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह आपको साहित्यसेवा की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त करने मे समर्थ हो, जिससे हिन्दी-संसार मे बिहार के साहित्यिक गौरव का झंडा सदा ऊँचा रहे।

दरभंगा-टाउनहाल

१९–६–४१

आपकी उपाधिलब्धि और साहित्यसंवर्द्धना से
अनुप्राणित और कृतकृत्य
सदस्यगण–विद्यापति-हिन्दी-सभा

बिहार के एकान्त कर्मनिष्ठ साहित्य-तपस्वी रायसाहब रामलोचनशरणजी की सेवा में

आचार्यवर,

पुण्य भारतभूमि के प्राचीन विद्यापीठ बिहार में साहित्य-संस्कृति के पुनरुज्जीवनार्थ आपने जिस अनवरत साहित्यिक तपश्चर्या के द्वारा नवयुगनिर्माण का कार्य किया है, उससे हम बिहारियों का मस्तक गौरवोन्नत हो रहा है।

विगत तीस वर्षों से आपने हिन्दी-माता की जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, वे देश के भावी इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखी जायँगी।

आपकी युगान्तरप्रवर्त्तिनी लेखनी ने जिस अपूर्व बाल-साहित्य की सृष्टि की है, वह किसी भी भाषा के लिये समादरणीय आदर्श बन सकता है।

आपने अपने रत्नप्रसवी 'पुस्तक-भंडार' के रूप में हिन्दी-संसार को जो अनुपम भांडागार प्रदान किया है, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता।

आपने 'बालक'-द्वारा देश के भावी कर्णधारों के कोमल मस्तिष्क में जो प्रगतिशील भावनाएँ अङ्कित की हैं, तदर्थ देश की अगली पीढ़ियाँ आपकी गुण-गाथा का गान करती रहेंगी।

बिहार के आधुनिक युवक साहित्यिक आपके द्वारा प्रस्तुत मानसिक भोजन से ही पुष्ट तथा संवर्द्धित होकर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं।

आपका 'व्याकरणचन्द्रोदय' साहित्य-गगन में पूर्णचन्द्र के समान अपनी शुभ्रज्योत्स्ना से सर्वदा दिगन्तव्यापी आलोक का विस्तार करता रहेगा।

आपकी लेखन-शैली, सम्पादन-कला तथा समालोचना-प्रणाली 'सरस्वती'-सम्पादन की याद दिलाती है। आप वस्तुतः बिहार के 'द्विवेदीजी' हैं। उन्हीं की तरह आपको भी सैकड़ों लेखकों और कवियों का निर्माण करने का श्रेय प्राप्त है।

श्रीमन्! बिहार में हिन्दी-साहित्य के लिये यह सर्वप्रथम गौरव है कि उसकी आराधना के हेतु सरकार उपाधिप्रदान-द्वारा सम्मान प्रदर्शित करे। यद्यपि आपकी योग्यता, गुरुता और महत्ता को देखते हुए यह उपाधि आपकी शोभा नहीं बढ़ाती, प्रत्युत आप ही से इस उपाधि की शोभा बढ़ती है, तथापि हमें इस बात से सन्तोष है कि हिन्दी-माता का आदर आपकी बदौलत सरकार

हुआ। हम समस्त हिन्दी-साहित्य-सेवी आपके इस सम्मान को अपना गौरव समझते हैं और आनन्द-गद्गद हृदय से आपका अभिनन्दन करते हैं।

परमात्मा आपको चिरायु करें, जिससे देश, जाति और साहित्य की प्री प्रकार सेवा करते हुए आप 'बिहार' का नाम उज्ज्वल करें।

दरभंगा,
आषाढ़ कृष्ण १०,
संवत् १९९८ वि.

आपकी कीर्त्ति से गौरवान्वित
सदस्यगण, दरभंगा-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[३]

श्रीमद्रामलोचनशरणकरकमलयोः सादरं समर्पणम्

श्रीमन्नशेषगुणभूषित शीलधाम !
विद्याविनोदविनयान्वित ! पुण्यनाम !
राजन्त्यलं प्रतिदिशं कृतयो यदीया—
स्तस्मै लसन्तु भवते नतयो मदीयाः ॥
राकेशवत्तव यशो सकलासु दिक्षु
सत्पुस्तक-प्रणयनेन श्रुतं चिरेण ॥
मन्ये पुरोऽद्य भवतां शुभ दर्शनेन
पुण्यं पुराकृतमहो सफलं मदीयम् ॥

बदलपुरा इस्टेट
खगौल, दानापुर
२७–११–४०

निवेदक—
कृष्णमुरारीनारायण सिंह

[४]

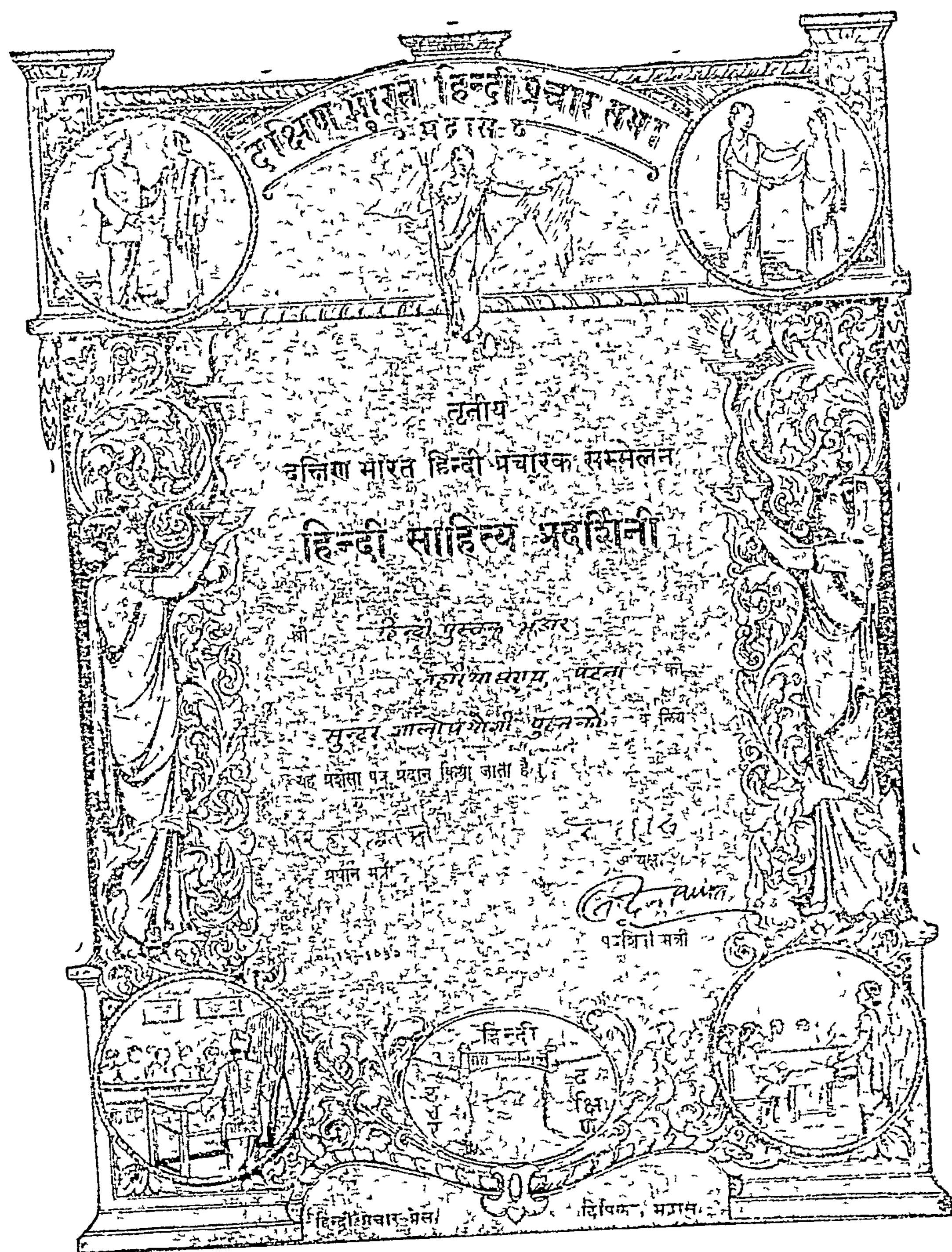
साहित्य के सच्चे सेवक, श्रीमन् महानुभाव !

जिस किसी ने भी आपके अनूठे जीवन की एक झाँकी ली होगी उसे विश्वास हो जायगा कि अध्यवसाय सचमुच ही ऐहिक सफलता की ताली है। 'कर्त्तव्यपरायणता मनुष्य को बड़ा बनाती है'—इस किताबी कहावत को चरितार्थ करके आपने समाज के समक्ष कर्त्तव्य-निष्ठता का दमकता हुआ उदाहरण पेश किया है। कौन नहीं उस शिक्षकालय के शिक्षक को जानता है, जो आज अनवरत परिश्रम कर मानव-समाज की नजरों में चमचमाता सितारा-सा हो आया है ?

जन्दाहा (दरभंगा)
ता० १२ जून, '३९ ई०

हम हैं, आपके कृपाकांक्षी—
जन्दाहा-किसान-पुस्तकालय सदस्यगण

परिशिष्ट [२]


दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास
तृतीय
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन
हिन्दी साहित्य प्रदर्शिनी
श्री हिन्दी पुस्तक भंडार
लहेरिया सराय, पटना को
सुन्दर ज्ञानोपयोगी पुस्तकों के लिये
यह प्रशंसा पत्र प्रदान किया जाता है।
प्रधान मंत्री
अध्यक्ष
परीक्षा मंत्री
हिन्दी
हिन्दी प्रचार प्रेस
मद्रास



दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
मद्रास
तृतीय
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन
हिन्दी साहित्य-प्रदर्शिनी
श्री
यह प्रशंसा पत्र प्रदान किया जाता है।
प्रधान मंत्री
अध्यक्ष
प्रदर्शनी मंत्री
हिन्दी
हिन्दी प्रचार प्रेस,
मद्रास

जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ के लेखक

कविवर अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' (पृ० ८३)



श्रीधर्मदेव शास्त्री (पृ० १५०)



श्रीशंकरदेव विद्यालंकार (पृ० २



श्रीगोपाल शास्त्री (

जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ
के
तीन सम्पादक



उनवाँस-(शाहाबाद)-निवासी
प्रोफेसर शिवपूजनसहाय
(राजेन्द्र-कालेज, छपरा)



कुमर-बाजितपुर-(मुजफ्फरपुर)-निवासी
प्रोफेसर हरिमोहन झा, एम० ए०
(बी० एन्० कालेज, पटना)



मलुआही- (भागलपुर)-निवासी
श्रीअच्युतानन्द दत्त
(सहकारी 'बालक'-सम्पादक
(लेख—पृ० ४३२)